401
हिन्दी निबन्ध

तनसुखराम गुप्त

401 हिन्दी निबन्ध

तनसुखराम गुप्त

आकांक्षा प्रकाशन
लक्ष्मी नगर, दिल्ली-110-092

ISBN : 81-904032-8-1

प्रकाशक	:	आकांक्षा प्रकाशन एफ 15ए, विजय ब्लाक, विकास मार्ग लक्ष्मी नगर, दिल्ली-92
दूरभाष	:	22544006
लेज़र कम्पोजिंग	:	गलोबल एंटरप्राइज़िज 3807/6, कन्हैयानगर, त्रिनगर, दिल्ली-110-035
मुद्रक	:	एस. एन. प्रिंटर्स नवीन शाहदरा, दिल्ली-110-032
मूल्य	:	500.00 रु.

विषय-सूची

ऋतुएँ

पर्व और त्यौहार

राष्ट्रीय पर्व एवं विश्व-दिवस

आत्मपरक

यदि

आत्मकथा

विद्यार्थी

परीक्षा

विद्यालय

युवा

जीवन-मूल्य

सुक्तियाँ

प्रकृति-सौंदर्य

वर्णनात्मक

वर्णनात्मक

समाज

नारी और परिवार

स्वास्थ्य, व्यायाम और खेल

विज्ञान

पर्यावरण

समाचार पत्र

चलचित्र, दूरदर्शन और आकाशवाणी

भौगोलिक

गाँव और शहर

भारतवर्ष

भारत की समस्याएँ

धर्म संस्कृति और सभ्यता

हिन्दी

साहित्यिक निबन्ध

जीवनियाँ

ऋतुएँ

(1) वसंत

संकेत बिंदु—(1) वसंत का अर्थ (2) प्रकृति की विचित्र देन (3) स्वास्थ्यप्रद ऋतु (4) वसंत के मेले और उत्सव (5) जीवन के विभिन्न रंगों का त्योहार।

वसंत की व्याख्या है, 'वसन्त्यस्मिन् सुखानि।' अर्थात् जिस ऋतु में प्राणियों को ही नहीं, अपितु वृक्ष, लता आदि को भी आह्लादित करने वाला मधुरस प्रकृति से प्राप्त होता है, उसको 'वसन्त' कहते हैं। वसन्त समस्त चराचर को प्रेमाविष्ट करके समूची धरती को पुष्पाभरण से अलंकृत करके मानव-चित्त की कोमल वृत्तियों को जागरित करता है। इसलिए 'सर्वप्रिये चारुतरं वसन्ते' कहकर कालिदास ने वसन्त का अभिनन्दन किया है।

भू-मध्यरेखा का सूर्य के ठीक-ठीक सामने आ-जाने के आस-पास का कालखण्ड है वसन्त। इसलिए वसन्त में न केवल भारत, अपितु समूचा विश्व पुलकित हो उठता है। अवनी से अम्बर तक समस्त वातावरण उल्लासपूर्ण हो जाता है।

प्रकृति की विचित्र देन है कि वसन्त में बिना वृष्टि के ही वृक्ष, लता आदि पुष्पित होते हैं। फरथई, काँकर, कवड़, कचनार, महुआ, आम और अन्ने के फूल अवनि-अंचल को ढक लेते हैं। पलाश तो ऐसा फूलता है, मानों पृथ्वी माता के चरणों में कोटि-कोटि सुमनांजलि अर्पित करना चाहता हो। सरसों वासन्ती रंग के फूलों से लदकर मानों वासन्ती परिधान धारण कर लेती है। घने रूप में उगने वाला कमल-पुष्प जब वसंत ऋतु में अपने पूर्ण यौवन के साथ खिलता है, तब जलाशय के जल को छिपाकर वसन्त के 'कुसुमाकर' नाम को सार्थक करता है। आमों पर बौर आने लगते हैं। गुलाब, हरसिंगार, गंधराज, कनेर, स्थलकमल, कुन्द, नेवारी, मालती, कामिनी, कर्माफूल के गुल्म महकते हैं तो रजनीगंधा, रातरानी, अनार, नीबू, करौंदां के खेत ऐसे लहरा उठते हैं, मानों किसी ने हरी और पीली मखमल बिछा दी हो। वसन्त के सौन्दर्य को देखकर कविवर बिहारी का हृदय नाच उठा—

छवि रसाल सौरभ सने, मधुर माधवी गन्ध।
ठौर-ठौर झूमत झपत, झौंर झौंर मधु अन्ध।।

वसंत का नाम ही उत्कंठा है। 'मादक महकती वासंती बयार' में, 'मोहक रस पगे फूलों की बहार' में, भौंरों की गुंजार और कोयल की कूक में मानव-हृदय जब उल्लसित होता है, तो उसे कंकणों का रणन, नूपुर की रुनझुन, किंकणियों का मादक क्वणन सुनाई देता है। प्राणियों के मनों में मदन-विकार का प्रादुर्भाव होता है। जरठ स्त्री भी अद्भुत शृङ्गार-सज्जा में आनन्द-पुलकित जान पड़ती है। इसे देखकर पद्माकर का मदमस्त हृदय गा उठता है—

और रस और रीति और राग और रंग।
और तन और मन और वन ह्वै गए।।

वसन्त मधु का दाता है। पता नहीं कितने फूलों से मधु इक्ट्ठा करता है वसंत; आम से, महुआ से, अशोक से, कचनार से, कुरबक से, बेला से, चमेली से, नीम से, तमाल से, नीबू से, मुसम्मी से, कमल से, मालती से, माधवी से।

वसन्त स्वास्थ्यप्रद ऋतु है। इसके शीतल-मन्द-सुगंध समीर में प्रात:-भ्रमण शरीर को नीरोग कर देता है। थोड़ा-सा व्यायाम और योग के आसन मानव को 'चिरायु' का वरदान देते हैं। इसीलिए आयुर्वेद-शास्त्र में वसन्त को 'स्वास्थ्यप्रद ऋतु' विशेषण से अलंकृत किया गया है।

कालिदास ने वसन्त के उत्सव को 'ऋतूत्सव' माना है। माघ शुक्ल पँचमी (वसन्त पँचमी से आरम्भ होकर फाल्गुन-पूर्णिमा (होली) तक पूरे चालीस दिन, ये वसन्त-उत्सव चलते हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी इसे मादक-उत्सवों का काल कहते हैं। उनका कहना है कि 'कभी अशोक-दोहद के रूप में, कभी मदन देवता की पूजा के रूप में, कभी कामदेवायन-यात्रा के रूप में, कभी आम्र-तरु और माधवी लता के विवाह के रूप में, कभी होली के हुड़दंग के रूप में, कभी होलाका (होला), अभ्यूप खादनिका (भुने हुए कच्चे गेहूँ की पिकनिक), कभी नवाम्र खादनिका (नये आम के टिकोरों की पिकनिक) आदि के रूप में समूचा वसन्त काल नाच, गान और काव्यालाप से मुखर हो उठता है।'

वसन्त ऋतु का प्रथम उत्सव वसन्त-पँचमी विद्या और कला की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती का पूजन-दिन भी है। इसलिए विद्याभ्यास के श्रीगणेश का मंगल-दिवस है।

वसन्त-पंचमी के दिन ही धर्मवीर बालक हकीकतराय का यवन धर्म स्वीकार न करने के कारण बलिदान हुआ था। इसलिए इस दिन *'हिन्दू तन मन, हिन्दू जीवन। रग-रग हिन्दू, मेरा परिचय'* के दर्शन को जीवन में चरितार्थ करने वाले शहीद हकीकतराय की याद में मेले लगते हैं।

वसन्त के मेलों का विशेष आकर्षण होता है—नृत्य-संगीत, खेलकूद प्रतियोगिताएँ तथा पतंगबाजी। 'हुचका', 'ठुमका', 'खेंच' और 'ढील' के चतुर्नियमों से जब पेंच बढ़ाए जाते हैं, तो दर्शक सुध-बुध खो बैठता है। अकबर इलाहाबादी के शब्दों में *'करता है याद दिल को उड़ाना पतंग का।'*

वसन्त-पंचमी के दिन पीले वस्त्र पहनकर हृदय का उल्लास ही प्रकट किया जाता है। वसन्ती हलुआ, पीले चावल तथा केसरिया खीर का आनन्द लिया जाता है।

वसन्त मादक उमंगों और कामदेव के पुष्पतीरों का ही पर्व नहीं, वीरता का त्यौहार भी है। फाँसी पर चढ़ने वाले आजादी के मतवालों ने 'मेरा रंग दे वसन्ती चोला' की कामना की, तो सुभद्राकुमारी चौहान देश-भक्तों से पूछ ही बैठीं—

वीरों का कैसा हो वसन्त? / फूली सरसों ने दिया रंग
मधु लेकर आ पहुँचा अनंग / वधु-वसुधा पुलकित अंग-अंग,
है वीर वेश में किन्तु कंत, / वीरों का कैसा हो वसन्त?

भगवान् कृष्ण का 'ऋतूनां कुसुमाकर:' कालिदास का 'सर्वंप्रिये चारुतरं वसन्ते' और

वात्स्यायन का 'सुवसंतक' बनकर वसन्त मधुऋतु और ऋतुराज कहलाया। यह नव-जीवन, नवोत्साह, नव-उन्माद, मादकता प्रदान कर चराचर को यौवन की अनुभूति कराता हुआ स्वदेश और स्वधर्म के प्रति वासन्ती परिधान पहनने का आह्वान भी करता है।

(2) ग्रीष्म-ऋतु

संकेत बिंदु—(1) ग्रीष्म का आगमन (2) लम्बे और आलस भरे दिन (3) ग्रीष्म का प्रकोप (4) गर्मी से बचने के उपाय (5) ग्रीष्म के लाभ।

'सूर्य भगवान् की अविश्राम तप्त किरणें, सन्नाटा मारते हुए लू की झपट, तेज-पूरित उष्ण निदाघ, कुसुमावली पूरित वृक्षों का मुरझाना, नदियों का शुष्क होते हुए मंद प्रवाह, धरणीतल पर की अविरल शून्यता', यह है ग्रीष्म का परिचय महाकवि प्रसाद के शब्दों में।

वसन्त के पश्चात् ग्रीष्म का आगमन होता है। भगवान् सूर्य पृथ्वी के कुछ निकट आ जाते हैं, जिससे उनकी किरणें अति उष्ण होती हैं। ज्येष्ठ और आषाढ़ ग्रीष्म ऋतु के महीने हैं। ग्रीष्म के प्रारम्भ होते ही वसन्त- ऋतु में मन्द-मन्द चलने वाली पवन का स्थान साँय-साँय चलने वाली लू ले लेती है। हरियाली का गलीचा फटने लगता है। वसन्त के चैतन्य और स्फूर्ति का स्थान आलस्य और क्लान्ति ले लेती है।

गर्मी के दिन भी लम्बे होते हैं। भगवान् भास्कर रात्रि के अन्धकार को नष्ट करने के लिए जल्दी प्रकट हो जाते हैं और बहुत देर तक जाने का नाम भी नहीं लेते। उदय होते ही वे अपनी प्रचण्डता का आभास प्रथम रश्मि में ही दे देते हैं तथा दिन-भर परशुराम के समान क्रोधाग्नि बरसाकर, जन-जीवन को झुलसाकर सायं को अन्धकार में लीन हो जाते हैं। ऊपर से साँय-साँय कर लू चलती है, नीचे सड़कों का तारकोल पिघलकर चिप-चिप करता है। सीमेंट की सड़कें अंगारे बरसाती हैं। ग्राम में ऊबड़-खाबड़ मार्गों की मिट्टी नंगे पैरों को तप्त करती है और रेत में चलने वालों को तो दादी-नानी याद आ जाती है। घर से निकलने को न नर-नारियों का मन करता है, न पशु-पक्षियों का और न जीव-जन्तुओं का।

गर्मी के प्रचंड रूप को देखकर प्रसाद जी कहते हैं—

किरण नहीं, ये पावक के कण
जगती धरती पर गिरते हैं।

'निराला' जी का भी यही विचार है—

ग्रीष्म तापमय लू की लपटों की दोपहरी।
झुलसाती किरणों की वर्षा की आ ठहरी॥

मानव और पशु-पक्षी ही नहीं, ग्रीष्म की दुपहरी में तो छाया भी आश्रय माँगती है कविवर बिहारी इस तथ्य का वर्णन करते हुए लिखते हैं—

बैठि रही अति सघन बन, पैठि सदन तन माँह।
देखि दोपहरी जेठ की, छाहौं चाहति छाँह॥

ग्रीष्म का प्रकोप प्राणियों को इतना व्याकुल कर देता है कि उन्हें सुध-बुध भी नहीं रह जाती। प्राणी पारस्परिक राग-द्वेष भी भूल जाते हैं। परस्पर विरोधी स्वभाव वाले जन्तु एक-दूसरे के समीप पड़े रहते हैं, किन्तु उन्हें कोई खबर नहीं रहती। इस दृश्य को देखकर कविवर बिहारी ने कल्पना की कि ग्रीष्म ऋतु सारे संसार को एक तपोवन बना देती है। जिस प्रकार तपोवन में रहते हुए प्राणी ईर्ष्या-द्वेष से रहित होते हैं, उसी प्रकार इस ऋतु में भी प्राणियों की स्थिति ऐसी ही हो जाती है। वे लिखते हैं—

कहलाने एकत वसत, अहि-मयूर मृग-बाघ।
जगत तपोवन सों कियो, दीरघ दाघ-निदाघ॥

प्यास और पसीना गर्मी के दो अभिशाप हैं। अभी-अभी पानी पिया है, किन्तु गला फिर भी सूखा का सूखा। प्यास से मन व्याकुल, पसीने से शरीर लतपथ। कविवर मैथिलीशरण गुप्त ग्रीष्म ऋतु में संतप्त यशोधरा के माध्यम से प्राणिमात्र का चित्रण करते हैं—

सूखा कंठ, पसीना छूटा, मृग तृष्णा की माया।
झुलसी दृष्टि, अँधेरा दीखा, दूर गई वह छाया।।

सरिता-सरोवर सूख गए, नद-नदियों में जल की कमी हो गई। परिणामत: पशु-पक्षी सूखे सरोवर को देखकर प्यास से व्याकुल हैं। प्रकृति भी प्यासी है और प्यास में उदासी है।

गर्मी के इस प्रकोप से अपने आपको बचाने के लिए मनुष्य ने उपाय खोज निकाले हैं। साधारण आय वाले घरों में बिजली के पंखे चल रहे हैं, जो नर-नारियों की पसीने से रक्षा करते हैं। अमीरों के यहाँ वातानुकूलन के यन्त्र लगे हैं। समर्थ-जन गर्मी से बचने के लिए पहाड़ी स्थलों पर चले जाते हैं और ज्येष्ठ की तपती दोपहरी पहाड़ की ठण्डी हवाओं में बिताते हैं। प्यास बुझाने के लिए शीतल पेय हैं। बर्फ तथा बर्फ से बने पदार्थ ग्रीष्म के शत्रु और जनता के लिए वरदान हैं।

ग्रीष्म की धूप से बचने के लिए जन-साधारण अपना काम सुबह और शाम के समय करने का प्रयत्न करते हैं। स्कूलों और कॉलिजों में अवकाश रहता है। यदि धूप में निकलना ही पड़े, तो फिर देखिए अद्‌भुत दृश्य। हैटधारी बाबू, हैटनुमा टोपी पहले नवयुवक और सिर पर तौलिया या कपड़ा ओढ़े अधेड़ दिखाई देंगे। फैशनपरस्त नंगे-सिर नर-नारियों की विचित्र दशा तो अवर्णनीय है। सड़क पर चलते-चलते बेहोश होने वालों में इनकी संख्या ही अधिक होती है।

ग्रीष्म ऋतु में फलराज रसाल का आनन्द जी भर कर लीजिए और कच्चे दूध की लस्सी पीजिए। खरबूजा और तरबूज का आनन्द लूटिए, किन्तु साथ में भूल से पानी न पीजिए। ककड़ी और खीरे का रसास्वादन कीजिए, किन्तु खीरे के विष का मर्दन करके। अलूचे, आलूबुखारे, आड़ू, और फालसे का भी चखिए।

वस्तुत: गर्मी अनाज को पकाती है। आम और तरबूज में मिठास लाती है। यह ऋतु वर्षा की भूमिका है, जिसके अभाव में न जलवृष्टि होगी, न धरती फलेगी, न खेती होगी और जनता अकाल का ग्रास बन जाएगी।

ग्रीष्म ऋतु उग्रता और भयंकरता का प्रतीक है। यह हमें सन्देश देती है कि आवश्यकता पड़ने पर हमें भी उग्र रूप धारण करने में संकोच नहीं करना चाहिए। इसके अतिरिक्त ग्रीष्म ऋतु प्राणियों को कष्ट सहने की शक्ति भी प्रदान करती है। ग्रीष्म के बाद वर्षा का आगमन इस तथ्य का संकेत है कि दु:ख के बाद ही सुख की प्राप्ति होती है, कठोर संघर्ष के पश्चात् ही शांति और उल्लास का आगमन होता है। अत: हमें धरती के समान ही ग्रीष्म की उग्रता को झेलना चाहिए। रहीम के शब्दों में—

जैसी परी सो सहि रहे, कह रहीम यह देह।
धरती पर ही परत हैं, सीत घाम अरु मेह॥

(3) ग्रीष्म ऋतु की दोपहर

संकेत बिंदु—(1) भगवान भास्कर के कोप का रूप (2) अग्नि में घी का काम (3) जीवन की प्रगति अवरुद्ध होना (4) प्राणियों और प्रकृति के लिए पीड़ादायिनी (5) पृथ्वी, प्राणी और प्रकृति के लिए लाभदायक।

ग्रीष्म ऋतु की दोपहर भगवान् भास्कर के कोप का प्रचण्ड रूप है, प्राणिमात्र में उदासीनता और व्याकुलता की जनक है, आलस्य, थकावट और अकर्मण्यता के संचार का स्रोत है, कीटाणुओं के लिए मृत्यु का सन्देशवाहक है और फलों के लिए रसपोषक पीयूष है।

ग्रीष्म वैसे ही जगत् को संतप्त करती है, ऊपर से आ जाए उसकी दोपहर तो एक कड़वा करेला और ऊपर से नीम चढ़ा। भगवान् भास्कर पृथ्वी के सिर पर अवस्थित होकर तीक्ष्ण किरणों से वसुधा को तपा रहे हैं। असह्य तपन से वसुधा व्याकुल है, उसका हृदय फट रहा है, उसका सुदृढ़ तारकोलीय परिधान पिघल रहा है, नंगे चरण को उसे स्पर्श तो करके देखो! लगता है सूर्य की किरणें किरणें नहीं। प्रसाद जी के शब्दों में—

किरण नहीं, ये पावक के कण, जगती-तल पर गिरते हैं।

कष्ट एकाकी नहीं आता। सूर्य की प्रचंड गर्मी से पवन भी गर्म हो गई। उसने अग्नि में घृत का काम किया। वह चलने लगी, बहने लगी। उसका वेग बढ़ा। पवन का झोंका लू में बदल गया। धूल उड़ने लगी। साँय-साँय कर वातावरण अपनी व्याकुलता व्यक्त करने लगा। विरहिणी वसुधा विरह-वेदना में उच्छ्वास ले रही है। 'प्रसाद' का हृदय व्याकुल हो उठा—

स्वेद धूलि-कण धूप-लपट के साथ लिपटकर मिलते हैं।
जिनके तार व्योम से बँधकर ज्वाला ताप उगलते हैं॥

'धूल उड़ाता प्रबल प्रभंजन' भी 'आतप-भीत विहंगम कुल का क्रन्दन' कर जब भास्कर से भयभीत हो सुरक्षा हेतु छाँह ढूँढ़ने चला जाता है, शान्त हो जाता है, तो उमस उत्पन्न हो जाती है। प्राणियों की व्याकुलता बढ़ जाती है। विरह-वेदना से वसुधा संज्ञाहीन हो जाती है। कवि केदारनाथ सिंह के शब्दों में—

'दिन के इस सुनसान प्रहर में रुक-सी गई प्रगति जीवन की।'

ग्रीष्म की दोपहर में सचमुच जीवन की प्रगति अवरुद्ध हो गई। सड़कें सुनसान हो गई, नगरों का जन-रव नीरवता में बदल गया। वाहन रुक गए। जो चल रहे थे, वे गन्तव्य पर पहुँचकर शान्त हो गए। पशु-पक्षी बाड़ों-घोंसलों में घुस गए। जो मार्ग में फँस गए, वे तरु की छाया में बैठ गए। मानव का तो बाहर निकलते दम निकलने लगता है। विवशतावश उसे निकलना ही पड़े, सूर्य की चुनौती को स्वीकार करना ही पड़े, तो शरीर को ग्रीष्म-रोधी अस्त्रों से सुसज्जित करके निकलेगा। तौलिया, रूमाल उसके अस्त्र होंगे। छाता उसका कवच होगा।

मानव ने प्रकृति की हर चुनौती को स्वीकारा और उसका मानमर्दन किया। ग्रीष्म की दोपहर को उसने विद्युत् पंखों से शान्त किया, कूलर से शीतल किया, खसग्रम से ठण्डा बनाया। वातानुकूलित वाहनों से यात्रा को सुखद किया।

प्यास और पसीना ग्रीष्म की दोपहरी के दो अभिशाप हैं। मानव ने प्यास शान्त की शीतल जल, एरियेटेड वाटर, शरबत, स्क्वेश तथा जूस से। पसीने को सुखाया पंखे और कूलर से। विद्युत् के अभाव को हाथ के पंखे ने पूरा किया, शीतल-जल की पूर्ति की घड़े और फ्रिज के पानी ने, बर्फ-युक्त जल ने। पथिक की प्यास मिटाई प्याऊ और पानी की रेहड़ियों ने। पथिक का पसीना उसका रूमाल पीने लगा।

ग्रीष्म ऋतु की दोपहर प्राणि-मात्र के लिए आलस्यवर्द्धक है, उत्साहहीनता की जननी है, अकर्मण्यता की जनक है, उदासी की प्रेरक है, वैरभाव की नाशक है, घृणा की विद्वेषिका है। पेड़ की छाँह में, सड़क में किसी शेल्टर के नीचे (चाहे वह दिल्ली परिवहन का शैड हो या किसी व्यापारिक संस्थान का बरामदा) मानव, गाय-बैल- भैंस, कुत्ते, गधे—सब एक साथ खड़े दिखाई देते हैं। कविवर बिहारी तो इससे भी एक कदम आगे बढ़ गए। वे साँप और मयूर एवं मृग और बाघ को इकट्ठा देखते हैं—

कहलाने एकत बसत, अहि मयूर मृग बाघ।
जगत तपोवन सों कियो, दीरघ दाघ निदाघ।।

ग्रीष्म की दोपहरी प्राणियों को ही नहीं, प्रकृति को भी पीड़ादायिनी है। इस समय खेत-खलिहान मुरझा जाते हैं। खड़ी फसल कुम्हला जाती है। घास सूख जाती है। पुष्पों का सौन्दर्य नष्ट होने लगता है। उनकी सुगन्ध तिरोहित होती जाती है। वृक्ष योगी के सदृश दोपहर की तपन सहते हैं। अपनी आत्मजा पत्तियों को पीले पड़ते देखते हैं। काल के कराल गाल में जाती जननी (पेड़ों) से बिछुड़ती पत्तियाँ खड़-खड़ के शब्द से जननी को अन्तिम प्रणाम करती हैं।

ग्रीष्म की दोपहरी वसुधा, प्राणी और प्रकृति के लिए लाभप्रद भी है। धूप की तेजी अन्न और फसलों को पकाएगी। खरबूजा, तरबूज, ककड़ी, खीरा, अलूचे, आड़ू, आलूबुखारे, फालसे पर रंगत लाएगी। आम को स्वास्थ्यलाभ के लिए प्रस्तुत करेगी।

प्रभाकर की प्रचण्ड किरणों से व्याकुल हो हिम का हृदय पिघलेगा, पर्वत से अजस्त्र जलधारा वसुधा को तृप्त करने निकल पड़ेगी। नदियां की नग्नता ढकेगी, सर-सरोवरों को जीवन मिलेगा।

दिवाकर की दिव्य किरणे ऊर्जा का साधन बनेंगी। ऊर्जा के संकट को हल करने में सहायक होंगी।

ग्रीष्म की दोपहरी एक ओर प्राणी, वसुधा और प्रकृति को जीवन के संघर्षपूर्ण काल में, अपार कष्टों, विपन्नियों और दु:खों से आक्रान्त क्षणों में प्रसन्नवदन रहकर उनके निराकरण की सचेष्टता सिखाती है और दूसरी ओर यह भी बताती है कि जीवन का यथार्थ आनन्द इन कष्टों, विपन्नियों, आपदाओं से ही फूट रहा है।

(4) वर्षा ऋतु

संकेत बिंदु—(1) वर्षा ऋतु का परिचय (2) वर्षा ऋतु के अनेक रूप (3) सावन के मन-भावन रूप (4) वर्षा ऋतु में हिमपात का मनमोहक दृश्य (5) वर्षा से हानियाँ।

भास्कर की क्रोधाग्नि से त्राण पाकर धरा शांत और शीतल हुई। उसको झुलसे हुए गात पर रोमावली-सी खडी हो गई। वसुधा हरी-भरी हो उठी। पीली पड़ी पत्तियों और मुरझाए पेड़ों पर हरियाली छा गई। उपवन में पुष्प खिल उठे। कुंजों में लताएं एक-दूसरे से आलिगन-बद्ध होने लगीं। सरिता-सरोवर जल से भर गए। उनमें कमल मुकुलित बदन खड़े हुए। नदियाँ इतरातीं, इठलातीं अठखेलियाँ करतीं, तट-बंधन तोड़तीं बिछुड़े हुए पति सागर से मिलने निकल पड़ीं।

सम्पूर्ण वायुमंडल शीतल और सुखद हुआ। भवन, मार्ग, वीथियाँ, लता-पादप धुले से नजर आने लगे। वातावरण मधुर और सुगंधित हुआ। जन-जीवन में उल्लास छा गया। पिकनिक और सैर-सपाटे का मौसम आ गया। पेड़ों पर झूले पड़ गए। किशोर-किशोरियाँ पेंगे भरने लगीं। उनके कोकिल कंठी से मल्हार फूट निकाला। पावस में बरसती वारिधारा को देखकर प्रकृति के चतुर चितेरे सुमित्रानंदन पंत का हृदय गा उठा—*'पकड़ वारि की धार झूलता है रे मेरा मन।'*

इस ऋतु में आकाश में बादलों के झुंड नई-नई क्रीडा करते हुए अनेक रूप धारण करते हैं। मेघमालाच्छादित गगन-मंडल में इन्द्र के वज्रपात से चिनगी दिखाने के समान विद्युल्लता की बार-बार चमक और चपलता देखकर वर्षा में बन्दर भी भीगी बिल्ली बन जाते हैं। मेघों में बिजली की चमक में प्रकृति सुन्दरी के कंकण मनोहारिणी छवि देते हैं।

घनघोर गर्जन से ये मेघ कभी प्रलय मचाते हैं तो कभी इन्द्रधनुषी सतरंगी छटा से मन मोह लेते हैं।

वन-उपवन तथा बाग-बगीचों में यौवन चमका। पेड़-पौधे स्वच्छन्दतापूर्वक भीगते हुए मस्ती में झूम उठे। हरे पत्ते की हरी डालियाँ रूपी कर नील-गगन को स्पर्श करने के लिए मचल उठे। पवन वेग मे गुंजित तथा कंपित वृक्षावली सिर हिलाकर चित्त को अपनी ओर बुलाने लगीं। वर्षा का रस रसाल के रूप में टप-टप गिरता हुआ टपका बन जाता है तो मंद-मंद गिरती हुई जामुनें मानों भादों के नामकरण-संस्कार को सूचित कर रही हों। 'बाबा जी के बाग में दुशाला ओढ़े खड़ी हुई' मोतियों से जड़ी कूकड़ी की तो बात ही निराली है।

सरिताओं की सुन्दर क्रीडा को देखकर प्रसाद जी का हृदय विस्मित हो लिखता है—'सघन वृक्षाच्छादित हरित पर्वत श्रेणी, सुन्दर निर्मल जल पूरित नदियों का हरियाली में छिपते हुए बहना, कतिपय स्थानों में प्रकट रूप में वेग सहित प्रवाह हृदय की चंचलधारा को अपने साथ बहाए लिए जाता है।' (प्रकृति-सौंदर्य, लेख से)

सावन की मनभावती फुहारों और धीमी-धीमी शीतल पवन के चलते मतवाले मयूर अपने पंखों के चँदोवे दिखा- दिखाकर नाच रहे हैं। पोखरों में मेंढ़क टर्र-टर्र करते हुए अपना गला ही फाड़े डाल रहे हैं। बगुलों की पंक्ति पंख फैला-फैलाकर चाँदनी-सी तान रहे हैं। मछलियाँ जल में डुबकी लगाकर जल-क्रीडा का आनन्द ले रही हैं। रात्रि में जुगनू अपने प्रकाश से मेघाच्छादित आकाश में दीपावली के दीपक समान टिमटिमा रहे हैं। केंचुए, बिच्छू, मक्खी-मच्छर सैर का आनन्द लेने भूतल पर विचरण कर रहे हैं। खगगण का कलरव, झींगुर समूह की झंकार वातावरण को संगीतमय बना रहे हैं।

कविवर पंत को तो लगता है कि ये सब कीट-पतंग, पशु-पक्षी प्रणय में विह्वल हो आनन्द के गीत गा रहे हैं—

वर्षा के प्रिय स्वर उर में बुनते सम्मोहन।
प्रणयातुर शत कीट-विहग करते सुख गायन॥

इस ऋतु में पर्वतों पर हिमपात का दृश्य मनमोहक होता है। हल्की-सी हवा में बर्फ रूई के फायों के रूप में हवा में तैरती हुई जब भूमि पर उतरती है तो उस नयनाभिराम दृश्य को देखकर हृदय नाच उठता है। पर्वतीय नगरों का चप्पा-चप्पा हिममय हो जाता है। पेड़ पौधे सब बर्फ से लद जाते हैं। मकानों की छतें बर्फ से ढक जाती हैं। चारों ओर सफेदी का साम्राज्य छा जाता है। बर्फ से ढकी बाड़ की जाली और तार चाँदी के समान चमकते हैं। देवदार वृक्षों को देखकर लगता है स्वर्ग के रुपहले विचित्र देवदार निकल गए हैं या खंभों के सहारे विकराल मक्के की बालें लटकाई गई हैं।

चाँदनी रात में तो हिमपात का सौन्दर्य अत्यधिक हृदयग्राही बन जाता है, क्योंकि आकाश से गिरती हुई बर्फ और बर्फ से ढके हुए पदार्थ शुभ्र ज्योत्स्ना की आभा से चमकते हुए बहुत ही सुन्दर लगते हैं। चाँदनी के कारण सारा दृश्य दूध के समुद्र के समान दिखाई देता है। नयनाभिराम हिमराशि की श्वेतिमा मन को मोह लेती है।

वर्षा का वीभत्स रूप है अतिवृष्टि। अतिवृष्टि से जल-प्रलय का दृश्य उपस्थित होता है। दूर-दूर तक जल ही जल। मकान, सड़क, वाहन, पेड़-पौधे, सब जल मग्न। जीवन-भर की संचित सम्पत्ति, पदार्थ जल देवता को अर्पित तथा जल-प्रवाह के प्रबल वेग में नर-नारी, बालक-वृद्ध तथा पशु बह रहे हैं। अनचाहे काल का ग्रास बन रहे हैं। गाँव के गाँव अपनी प्रिय स्थली को छोड़कर शरणार्थी बन सुरक्षित स्थान पर शरण लेने को विवश हैं। प्रकृति-प्रकोप के सम्मुख निरीह मानव का चित्रण करते हुए प्रसाद जी लिखते हैं—

हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर, बैठ शिला की शीतल छाँह
एक पुरुष भीगे नयनों से, देख रहा था प्रलय प्रवाह।

× × ×

चिंता कातर बदन हो रहा, पौरुष जिसमें ओत-प्रोत।

× × ×

निकल रही थी मर्मवेदना, करुणा विकल कहानी-सी।

(कामायनी : चिन्तासर्ग)

यह है वर्षा, जो आँख-मिचौनी खेला करती है। इसके आगमन और गमन के पूर्वाभास में मौसम विशेषज्ञ भी धोखा खा जाते हैं। बेचारी आकाशवाणी तथा दूरदर्शन अविश्वसनीय सिद्ध हो जाते हैं। अभी-अभी उमड़-घुमड़ कर बादल आए और 'जो गरजते हैं, वे बरसते नहीं' के अनुसार बिन बरसे चले गए। कभी-कभी आकाश साफ होता है और अकस्मात् ही इन्द्र देवता बरस पड़ते हैं। थोड़ी देर बाद वर्षा रुकने की सम्भावना होती है, पर 'शनीचर की झड़ी, न कोठी न कड़ी' बन जाती है।

वर्षा होगी तो खेती फले-फूलेगी। अकाल नहीं पड़ेगा। अनाज महँगा नहीं होगा। पर्वतों पर पड़ी बर्फ सरिता-सरोवर और नद-नदियों का जल से जीवधारियों की प्यास शान्त रखेगी। जलवायु पवित्र होगा, पृथ्वी का कूड़ा-कचरा धुल जाएगा, चातक की प्यास बुझ जाएगी।

वर्षा से अनेक हानियाँ भी हैं। सड़कों पर और झोंपड़ियों में जीवन व्यतीत करने वाले लोग भीगे वस्त्रों में अपना समय गुजारते हैं। उनका उठना-बैठना, सोना-जागना, खाना-पीना दुश्वार हो जाता है। वर्षा से मच्छरों का प्रकोप होता है, जो अपने दंश से मानव को बिना माँगे मलेरिया दान कर जाते हैं। वायरल फीवर, टायफॉइड बुखार, गैस्ट्रो एंटराइटिस, डायरिया, डीसेन्ट्री, कोलेरा आदि रोग इस ऋतु के अभिशाप हैं।

जगत् का जीवन, प्राणियों का प्राण, धरा का शृंगार, नद-नदियों, वन-उपवन का अलंकरण, हृदय में उल्लास और उत्साह का प्रेरक, प्रेम और कामना की सृजक वर्षा ऋतु को पंत जी पुनः-पुनः आने का निमंत्रण देते हुए कहते हैं—

इन्द्र धनुष के झूले में झूलें मिल सब जन।
फिर-फिर आए जीवन में सावन मन-भावन॥

('सावन' कविता से)

(5) वर्षा का वह दिन
वर्षा का एक दिन/ वर्षा में भीगने का अनुभव

संकेत बिंदु—(1) ग्रीष्मावकाश की घोषणा (2) वर्षा ऋतु का प्रारंभ (3) भीगने का आनंद (4) वर्षा से बचाव के उपाय (5) भीगने का अद्भुत अनुभव।

21 अप्रैल का आनन्दपूर्ण दिन। दो मास के ग्रीष्मावकाश की घोषणा का दिन। सहपाठियों, मित्रों तथा अध्यापकों से 60 दिन तक न मिल पाने की कसक, बिछुड़ने का दुःख और छुट्टियों की हार्दिक खुशी मन में लिए कक्षा से बाहर निकलकर मैं साइकिल स्टैण्ड की ओर चला। साइकिल ली और कल्पना -लोक में खोया घर की ओर चल दिया।

सूर्यदेव इस अवकाश घोषणा से सम्भवतः प्रसन्न नहीं हैं। अतः अपनी तेज किरणों से अपना क्रोध प्रकट कर रहे हैं। वातावरण तप रहा है। साइकिल पर सवार गर्मी से परेशान मैं चींटी की चाल चल रहा हूँ। अकस्मात् प्रकृति ने पलटा खाया। दिवाकर के क्रोध को बादलों ने ढक लिया। आकाश मेघाच्छन्न हुआ। धीमी-धीमी शीतल पवन चलने लगी। मेरा मन प्रसन्न हुआ। मन की प्रसन्नता पैरों में प्रकट हुई। पैर पैडलों को तेजी से घुमाने लगे।

अभी दस-बीस पैडल ही मारे होंगे कि वरुण देवता ने अपना रूप प्रकट कर दिया। वर्षा की तीव्र बूँदें धरती पर मार करने लगीं। मैं सम्भल भी न पाया था कि उनका वेग बढ़ गया। मैं तेज बौछारों से घबरा उठा। अपने से ज्यादा चिंता थी अपनी प्यारी पुस्तकों की। उनका तन मुझसे अधिक कोमल था। मुड़कर पीछे देखा, पुस्तकें अभी सुरक्षित थीं, बस्ते की ढाल ने वर्षा के वार को रोक रखा था।

वर्षा-जल सिर से चू-चू कर चेहरे तथा नयनों से क्रीडा कर रहा है। वस्त्रों में प्रवेश कर शरीर का प्रक्षालन कर रहा है। जुराबों में घुसकर गुद्‌गुदी मचा रहा है। बार-बार चेहरा पोंछते हुए रूमाल भी जवाब दे गया है। वस्त्रों से पानी ऐसे झर रहा है, मानो नाइलॉन का वस्त्र सुखाने के लिए टाँग दिया हो।

मार्ग में आश्रय नहीं, सिर छिपाने की जगह नहीं, अतः रुकने का भी लाभ नहीं। मन ने साहस की रज्जु नहीं छोड़ी। अकबर इलाहाबादी का शेर स्मरण हो आया और मेरी हिम्मत बढ़ गई—

जिन्दगी जिन्दादिली का नाम है, अकबर।
मुर्दा दिल क्या खाक जिया करते हैं।।

कष्ट या दुःख की अनुभूति मन से होती है। जिस भावना से कार्य किया जाता है, वैसा ही आनन्द प्राप्त होता है। वर्षा में पिकनिक का आनन्द समझकर साइकिल चला रहा हूँ। सड़क पर पानी तेजी से बह रहा है। पानी की परत ने सड़क के चेहरे को ऐसे ढक लिया

है, मानो किसी युवती ने महीन चुनरी अपने मुख पर लपेट ली हो। पानी में साइकिल चलाते हुए जोर लगाना पड़ रहा है। इधर कार, मोटर साइकिल, तिपैहिया—जो गुजरता, वह तेजी से पानी की बौछार मार जाता, होली-सी खेल जाता। बस्ते और साइकिल महित मेरे शरीर को पुन: स्नान करा जाता। एक क्षण क्रोध आता, और दूसरे क्षण साईकिल चलाने में ध्यानस्थ हो जाता।

साहस सफलता की सीढ़ी है, सौभाग्य का साथी है। आगे बस स्टैण्ड का शेड आ गया। यहाँ पर अनेक नर-नारी और स्कूली बच्चे पहले से ही स्थान को आरक्षित किए हुए थे। लेकिन शेड के नीचे तक पहुँचना, भँवर में से नाव निकालना था। पटरी के नीचे ५-६ इंच की तेज धार बह रही थी। मैंने साइकिल को पानी में खड़ा किया। बस्ते को साइकिल से उतारा और शेड के नीचे पहुँच गया।

शेड के नीचे सुरक्षित खड़ा मैं अपने को धन्य समझ रहा था, किन्तु साहब, तीव्र गति वाले वाहन होली खेलने को भूले न थे। वे जिस गति से गुजरते, उस गति से जल के छींटे हमारे ऊपर आकर डाल जाते। उस समय शेड के शरणार्थियों के मधुर (?) वचन सुनने योग्य थे।

किन्तु, मेरी साइकिल तो पानी के मध्य ध्यानस्थ थी। जल की धारा उसके चरणों का चुम्बल ले, आगे बढ़ रही थी। कभी-कभी तो जल की कोई तरंग मस्ती के क्षणों में साइकिल का आलिंगन करने को उतावली हो उठती थी।

भगवान् वरुण का क्रोध कुछ शान्त होने लगा। बादलों की झोली जलकणों से खाली हो रही थी। फलत: वर्षा की बौछार बहुत धीमी हो गई थी। जनता शेड से इस प्रकार निकल पड़ी, मानो किसी सिनेमा का 'शो' छूटा हो।

मैंने भी शेड का आश्रय छोड़ा। पटरी से सड़क पर उतरा। जूता पानी में डूब गया था। जुराबें पैरों पर चिपट गई थीं। मैंने साइकिल स्टैंड से उतारी और चल दिया घर की ओर।

वर्षा शांत थी, सड़क पर चहल-पहल थी। पैंट को ऊपर मोड़े, पाजामे को ऊपर उठाए, धोती को हाथ में पकड़े नर-नारी चल रहे थे।

सोचा था, दोपहर बाद होली डालना, फेंकना, खेलना बन्द हो जाता है, पर यह मेरी भूल सिद्ध हुई। क्षिप्र-गति वाहन जल के छींटे डालकर होली का आनन्द अब भी ले रहे थे, सड़क पर पानी जो खड़ा था।

घर पहुँचा। माँ प्रतीक्षा कर रही थी। फटाफट कपड़े उतारे। बस्ते को खोलकर देखा। वाटर प्रूफ थैले की अभेद्य वस्त्र-प्राचीर में भी वर्षा की दो-चार शूरवीर बूँदों ने आक्रमण कर ही दिया था। वर्षा में भीगने का वह अनुभव भी विचित्र और स्मरणीय था।

(6) वर्षा-ऋतु में उमड़ते-उफनते नदी नाले

संकेत बिंदु—(1) नदी-नालों का उमड़ना (2) वर्षा के अभाव में नदी-नाले (3) नदी-नालों से नुकसान (4) बाढ़ के कारण (5) बिमारियों में वृद्धि।

नदी नालों का पूरी तरह से भर जाने पर जल का बाहर निकलकर चारों और फैल जाना 'उमड़ना' है। स्वत: के भरे होने पर वेगपूर्वक जल का बाहर निकलना 'उफनना' है। वर्षा ऋतु में नदी-नाले जब जल से भर जाते हैं तो उनका उमड़ना-उफनना ऐसे ही स्वाभाविक है जैसे नवधनाढ्य-वर्ग का जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी धनवत्ता का प्रदर्शन करना।

वर्षा ऋतु में उमड़ते-उफनते नदी-नाले मर्यादा-हीनता के प्रतीक हैं, प्राणि-मात्र के विनाशक हैं, मानव के लिए विपत्ति लाने वाले, खेतों-खलिहानों को बरबाद करने वाले, यातायात को अवरुद्ध करने वाले तथा जीवन और जगत् को संकट में धकेलने वाले हैं।

वर्षा के अभाव में नदी-नाले जल विहीन होने से कंगाल-से हो गए थे। उनका जल सिकुड़ता-सिमटता जा रहा था, मानो नववधू ससुराल आकर संकोचवश अपने वस्त्रों में ही सिमट रही हो। अपनी प्यास बुझाने के लिए आने वाले पशु-पक्षियों और स्नान तथा जल-क्रीडा निमित्त आए मानवों का नदी अब स्वागत नहीं कर पाती थी। वे इसी प्रकार दु:खी थीं, जैसे कोई दाता निर्धन होने पर याचक को कुछ न दे पाने पर दु:खी होता है।

वर्षा हुई। नदियों में जल भरने लगा। छोटे नाले, जो जल के अभाव के कारण शान्त पड़े थे, वर्षा के आगमन पर हलचल मचाने लगे। वर्षा का यौवन प्रकट होता गया। वर्षा बढ़ती गई तो नदी-नालों का जल उफनने लगा। तट को स्पर्श करने लगा। नदी-नाले जल से उसी प्रकार भर गए, जैसे सज्जन के पास सद्गुण आते हैं *'सिमिटि-सिमिटि जल भरहिं तलाबा। जिमि सद्गुन सज्जन पहिंआवा।'* अथवा वर्तमान बेकारी के युग में किसी विज्ञापन के उत्तर में बेकारों की अर्जियों से कार्यालय भर जाते हैं।

वर्षा पर यौवन की चमक आई; मुख-मडल में उल्लास छाया। नदी-नालों का जल उमड़ने लगा, उफनने लगा; इतराने-इठलाने लगा। तट की मर्यादा को तोड़ चला। मर्यादा-भंग विपत्ति और विनाश का सूचक होता है। 'साकेत-संत', महाकाव्य के रचयिता श्री बलदेवप्रसाद ने चेतावनी दी—

मर्यादा में ही सब अच्छे, पानी हो वह या कि हवा हो।
इधर मृत्यु है, उधर मृत्यु है, मध्य मार्ग का यदि न पता हो॥

उमड़ते-उफनते नदी-नाले तट के ऊपर से बहते हुए अपने समीपस्थ भू-भाग को मग्न कर देते हैं। फिर साँप की भाँति बल खाते हुए आगे ही आगे बढ़ते जाते हैं। बहाव ज्यों-ज्यों बढ़ता जाता है, पानी फैलता हुआ खेत-खलिहानों, गली-कूचों में पहुँचने लगता है। निकासी के अभाव में जल इकट्ठा होने लगता है। खेती और खेत बरबाद हो जाते हैं।

कच्चे मकान टूटकर गिर पड़ते हैं। झुग्गी-झोंपड़ी वालों का तो और भी बुरा हाल होता है। सड़कें जल-मग्न हो जाती हैं। मार्ग लुप्त हो जाते हैं। आवागमन में बाधा पड़ती है। घरों से बाहर निकलना कठिन हो जाता है। बिजली फेल हो जाती है। अंधकार कोढ़ में खाज का काम करता है। पीने के पानी की व्यवस्था गड़बड़ा जाती है। स्वच्छ जल का अभाव हो जाता है।

नदी और नाले वर्षा ऋतु के जल से शायद इतना न इठलाएँ, इन्हें तो इधर-उधर के जल से जो 'ओवर फ्लडिंग' होती है उसके कारण परेशानी अनुभव होती है। घरों, बाजारों का जल नालों में गिरता है। नालों का जल अन्ततः नदी में पहुँचता है। अतिवृष्टि होने के कारण अनेक बार संचयन-स्थान (डैम) में विस्फोटक स्थिति होने पर जल छोड़ दिया जाता है। वह जल नदी-नालों को उफनाता है, जल-प्लावन का दृश्य उपस्थित करता है। भाखड़ा बांध से छोड़ा गया सीमा से अधिक जल यमुना नदी में बाढ़ का कारण बनता है।

वर्षा में मक्खी, मच्छर, विषैले जीव-जन्तु स्वभावतः पैदा हो जाते हैं, किन्तु नदी-नालों के उफनने से इनकी संख्या में कई गुणा वृद्धि हो जाती है। परिणामतः मानव का जीना दूभर हो जाता है। मच्छरों के काटने से शरीर सूज जाता है, विना बुलाए मलेरिया, टाइफाइड बुखार का आगमन हो जाता है। दिन का काम और रात की नींद हराम हो जाती है। मक्खियों की भिनभिनाहट खाने-पीने की चीजों में रोग के कीटाणु फैला देती है। मक्खी-मच्छर प्राणिमात्र को न चैन से बैठने देते हैं, न सोने देते हैं और न काम करने देते हैं।

उमड़ते-उफनते नदी-नाले प्रकृति-प्रकोप के चिह्न हैं, जगती को दण्डित करने का साधन हैं तथा नियमित जीवन को अनियमित करने के माध्यम हैं।

(7) शरत् ऋतु

संकेत बिंदु—(1) शरत् का आगमन (2) प्रसाद और कालिदास द्वारा वर्णन (3) रामचरितमानस में शरत् वर्णन (4) आयुर्वेद और भारतीय पर्वों की दृष्टि से महत्त्व (5) वैज्ञानिक दृष्टि से महत्त्व।

भारत में शरत् वसन्त के ही समान सुहावनी ऋतु है। शरत् के सम्बन्ध में गोस्वामी जी का कथन है—**'वर्षा विगत शरद ऋतु आई।'** × × × **'फूले कास सकल महि छाई।'** × × × **जनु वर्षा कृत प्रगट बुढ़ाई।'** शरत् ऋतु आने पर आकाश निर्मल और निरभ्र हुआ। रात्रि में सुधाकर अपनी किरणों से अमृत की वर्षा करने लगा। मन्द-मन्द शीतल पवन चलने लगी। वर्षा की बौछारों से, कीट-पतंगों की भरमार से तथा वर्षा-व्याधियों से प्राणियों को छुटकारा मिला। उनका हृदय शरत्-स्वागत के लिए तत्पर हो उठा।

भारतीय ऋतु-परम्परा की दृष्टि से आश्विन और कार्तिक शरत् ऋतु के मास हैं। शरत् ऋतु के आगमन तक वर्षा की मेघ-मालाएँ लुप्त हो गईं। दुर्गन्ध और कीचड़ का अन्त हो गया। वातावरण की घुमस और घुटन समाप्त हो गई। ***'पंक न रेनु, सोह अस धरनी।'*** 'स्वच्छ

और निर्मल आकाश मण्डल चमकने लगा। चाँदनी का रूप निखर गया। नदो-तट पर काँस विकसित हो गए। सर्वत्र स्वच्छता और शान्ति का साम्राज्य छा गया।

शरत् ऋतु के आगमन के सूचक लक्षणों का वर्णन करते हुए प्रमाद जी लिखते हैं—'नदी के तट पर कांस का विकास, निर्मल जल पूरित नदियों का मन्द पवाह, कुछ शीत वायु, छिटकी हुई चंद्रिका, हरित वृक्ष, उच्च प्रासाद, नदी, पर्वत, कटे हुए खेत तथा मातृ धरणी पर रजत मार्जित आभास।'

शरत् ऋतु में शस्य श्यामला धरिणी कृषि गंध से परिपूर्ण होती है। निरुक्त की परिभाषा से इस ऋतु में प्रकृति उन्मुक्त भाव से अन्नपूर्णा बनकर जल को स्वच्छ और निर्मला करती है। कोष्ठी प्रदीप के अनुसार—

नरः शरत्संज्ञकलब्ध जन्मो भवेत्सुकर्मा मनुजस्तरस्वा।
शुचिः सुशीलो गुणवान् समानी धनान्वितो राजकुल प्रपन्नः।।

अर्थात् शरत् में जन्मा व्यक्ति सुकर्मा, तेजस्वी, पवित्र विचारों वाला सुशील, गुणवान धनी होता है।

कालिदास ने शरत् का वर्णन करते हुए कहा है—

काशांशुका विकचपद्म मनोज्ञवक्त्रा, सोन्माद हंसरवनूपुर नादरम्या।
आपक्वशालि रुचि रानतगात्र यष्टिः, प्राप्ता शरन्नवधूरिव रूपरम्या।।

अर्थात् फूले हुए कांस के वस्त्र धारण किए हुए, मतवाले हंसों की रम्य बोली के बिछुए पहने, पके हुए धान के मनोहर व नीचे झुके हुए शरीर धारण किए हुए तथा खिले हुए कमल रूपी सुन्दर मुख वाली, यह शरत् ऋतु नवविवाहिता सुन्दरी वधू के समान आ गई है।

तुलसीदास जी रामचरितमानस में शरत् की प्राकृतिक छटा का उपमायुक्त वर्णन हृदयहारी है—

उदित अगस्त पंथ जल सोषा। जिमि लोभहि सोषइ संतोषा।।
सरिता सर निर्मल जल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा।।
रस-रस सूख सरित सर पानी। ममता त्याग करहिं जिमि ग्यानी।।
जानि सरत ऋतु खंजन आए। पाई समय जिमि सुकृत सुहाए।।

अर्थात् अगस्त्य नक्षत्र ने उदित होकर मार्ग के जल को सोख लिया जैसे सन्तोष लोभ को सोख लेता है। नदियों और तालाबों का निर्मल जल ऐसी शोभा पा रहा है, जैसे मद और मोह से रहित संतों का हृदय। नदी और तालाबों का जल धीरे-धीरे सूख रहा है, जैसे ज्ञानी पुरुष ममता का त्याग कर देते हैं। मेघ रहित निर्मल आकाश ऐसा सुशोभित हो रहा है, जैसे भगवान् का भक्त सब आशाओं को छोड़कर सुशोभित होता है।

जनजीवन में जागरण का संचार हुआ। हृदय प्रकृति-नटी के साथ प्रसन्न हो उठा। नर-नारी, युवा-युवती, बाल-वृद्ध सबके चेहरों पर रौनक आई। काम में मन लगा। उत्साह का संचार हुआ। प्रेरणा उदित हुई।

आयुर्वेद की दृष्टि से शरत् में पित्त का संचय और हेमन्त में प्रकोप होता है। अतः

पित्त के उपद्रव से बचने के लिए शरत्काल में पित्तकारक पदार्थों के सेवन से बचना चाहिए। दूसरे, शरत्काल में ही गरिष्ठ और पौष्टिक भोजन का आनन्द है। जो खाया, सो पच गया, रक्त बन गया। स्वास्थ्यवर्धन की दृष्टि से यह सर्वोत्तम काल है।

भारतीय (हिन्दू) पर्वों की दृष्टि से शरत्काल विशेष महत्त्वपूर्ण है। शारदीय नवरात्र अर्थात् आश्विनशुक्ल प्रतिपदा मे प्रारम्भ होकर कार्तिक की पूर्णिमा तक ये पर्व आते हैं। सम्पूर्ण धरा शुभ्र चाँदनी में स्नात हो जाती है। नवरात्र आए। विधि-विधान से दुर्गा-पूजा की गई। नवरात्र संयमित जीवन का सन्देश दे गए। तत्पश्चात् दशहरा आया—शस्त्रपूजन का दिन, मर्यादापालन का सूचक पर्व, आसुरी वृत्ति पर देवत्व की विजय का प्रतीक। शारदी-पूर्णिमा पर चन्द्रमा की किरणें सुधारस बरसाती हैं। 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' का महापर्व दीपावली कार्तिक की अमावस्या को होता है। यह लक्ष्मीपूजन का भी त्यौहार है। भगवती लक्ष्मी चेतावनी दे गई, 'जिसकी स्वामिनी बनती हूँ उसको उलूक बनाती हूँ, जिसकी सखी बनती हूँ, वह कुबेर बन जाता है, जिसकी दासी बनती हूँ, वह स्वयं श्री लक्ष्मी-निवास अर्थात् भगवान् बन जाता है।'

वैज्ञानिक दृष्टि से शरत् का बहुत महत्त्व है। वर्षा के बाद घर की सफाई लिपाई-पुताई की परम्परा है। वर्ष-भर के कूड़े-करकट को निकाला जाता है। घर की दीवारों को रंग-रोगन से अलंकृत किया जाता है। दूकानों और व्यापारिक संस्थानों की सफाई का विधान है। गंदगी रोग का घर है। साफ-सुथरा घर स्वास्थ्यवर्धन का आधारभूत सिद्धान्त है।

शरत् ऋतु-क्रम का स्वर्णिम काल है। इसमें वस्त्रपरिधान का आनन्द है, विभिन्न पदार्थों के खाने-पीने और पचाने की शक्ति है, कार्य करने का उल्लास है, चेहरों पर उमंग है और है जीवन जीने के लिए प्रेरणा और स्फूर्ति।

(8) जाड़े की ऋतु

संकेत बिंदु—(1) ऋतु की पहचान (2) जाड़े से बचाव के उपाय (3) सर्दी का यौवन रूप (4) स्वास्थ्य को दृष्टि सर्वोत्तम (5) विभिन्न पर्वों का काल।

तापमान की अत्यधिक कमी, हृदय कँपाने वाला तीक्ष्ण शीत, वायु का सन्नाटा, शिशिर शर्वरी में शीत समीर का प्रचण्ड वेग ही तो पहचान है, जाड़े की ऋतु की।

उत्साह, उमंग और उल्लास की प्रेरणा, वस्त्र-परिधान का आनन्द, विभिन्न पदार्थों की खाने और पचाने की मस्ती, वातानुकूलित कक्षों का सुख, मन्द धूप की सुहानी उष्णता का आनन्द लूटना ही तो है जाड़े की पहचान।

प्रकृति का समयानुकूल परिवर्तन ईश्वरीय रचना का अद्भुत क्रम है। कुसुमाकर वसन्त के आगमन के पश्चात् अंशुमाली भगवान् का तेज तप्त वातावरण, लूह के सन्नाटे मारते हुए झघटे के आतंक से व्याकुल प्राणियों को करते हुए ग्रीष्म का आना, और उसके पश्चात्

धरा और धरावासियों को भरपूर तृप्त करती सघन बुँदियों की अविरलधारा में वर्षा ऋतु की श्वेत आभा के दर्शन होते हैं।

वर्षा के अनन्तर वातावरण में परिवर्तन के कारण द्वार खटाया शरद् ऋतु का । मेघ शांत हुए, सरिताओं का जल निर्मल हुआ। वनों में कास फूले, चाँदनी निर्मल हुई। शरद् जब अपने यौवन पर आया तो उसने अपने साथी हेमन्त को पुकारना शुरू किया और फिर उसने और शिशिर को निमंत्रित किया। वस्तुत: मार्गशीष, पौष, माघ और फाल्गुन (हेमन्त-शिशिर) के चार मास हीं जाड़े के हैं। इनमें भी सर्वाधिक ठंड पौष-माघ में ही पड़ती है।

यद्यपि जाड़े में आग के पास बैठने पर आँखों में धुआँ भर जाने के कारण आँसू बहते हैं, फिर भी लोग आग के पास बैठने की कोशिश करते हैं। लोग आग जलाकर छाती से लटका कर रखते हैं। मानो लोग अग्नि को भी भयंकर सर्दी से डरा हुआ जानकर उसके ऊपर हाथ फैला कर उसे अपनी छाती की छाया में छिपाकर रखते हैं। अर्थात् आग सेकने के लिए उसके ऊपर हाथ फैलाते हैं तथा काँगड़ी में भरकर छाती से लगाते हैं।

इसी प्रकार शिशिर ऋतु का चित्रण करते हुए सेनापति लिखते है—

सिसिर में ससि को सरूप पावै सविताऊ,
घाम हूँ मैं चाँदनी की दुति दमकति है।
सेनापति होत सीतलता (?) है सहस गुनी,
रजनी की झाँई, बासर (?) में झमकति है।

अर्थात् शिशिर ऋतु में सर्दी इतनी अधिक बढ़ जाती है कि सूर्य भी चन्द्रमा का स्वरूप प्राप्त कर लेता है, अर्थात् शिशिर ऋतु में सूर्य का तेज इतना कम हो जाता है कि वह चन्द्रमा के समान ठंडा हो जाता है। धूप में चाँदनी की शोभा प्रकट होने लगती है, अर्थात् धूप भी चाँदनी के समान शीतल प्रतीत होने लगती है। सर्दी के कारण दिन में रात्रि की झलक दिखाई देने लगती है, अर्थात् सर्दी के कारण दिन का समय भी रात के समान बहुत ठंडा हो जाता है।

सर्दी का यौवन आया। वह उत्तरोत्तर अपना भीषण रूप प्रकट करने लगा। शीत का हृदय कँपाने वाला वेग, हिमपूरित वायु के सन्नाटे ने मनुष्य को सूटेड-बूटेड किया। गर्म वस्त्र धारण करने की विवश किया। ऊन से बने वस्त्रों की इन्द्रधनुपी छटा जगती को सुशोभित करने लगी। कमरों में हीटर लगे, अँगीठी सिलगी। वैज्ञानिक उपकरणों ने सर्दी की ठंड की चुनौती स्वीकार की।

सर्दी के मौसम में सायंकाल और रात्रि के समय शीतवायु के प्रचंड वेग से शरीर कंपायमान रहता है और चित्त बेचैन हो जाता है। रुई के गद्दे, रजाई, सौड़, कम्बल शयन के साथी और सुखकर बनते हैं।

कभी-कभी मुक्ताफल सदृश ओस की बूँदे जमकर घोर अन्धकारमय वातावरण का सृजन करती हैं, तो 'कोहरा' अपना सामासिक रूप प्रकट करता है। सर्वप्रथम उसका

आक्रमण सूर्य देव पर होता है। शीतमय वातावरण से सूर्य निस्तेज-सा हो जाता है तो ठंड बढ़ने लगती है।

शीतकाल की ठंडी तेज हवाओं को शान्त करती है वर्षा। शीतकालीन वर्षा न केवल तीर जैसी चुभती हुई हवा से बचाएगी, अपितु पृथ्वी की हरियाली को द्विगुणित करके, खेती की उपज बढ़ाएगी, गेहूँ, गन्ने को बढ़ाएगी।

आयुर्वेद की दृष्टि से हेमन्त और शिशिर में पित्त का प्रकोप होता है अत: पित्त के उपद्रव से बचने के लिए इस काल में पित्तकारक पदार्थों के सेवन से बचना चाहिए। दूसरे इस ऋतु में ही गरिष्ठ और पौष्टिक भोजन का आनन्द है। जो खाया, सो पच गया—रक्त बन गया। स्वास्थ्यवर्धन की दृष्टि से यह सर्वोत्तम काल है। आयुर्वेद-विज्ञान में स्वास्थ्यवर्धक स्वर्णभस्म युक्त औषधियों के सेवन का विधान इन्हीं चार मास में है। सूखे मेवे—काजू, बादाम, अखरोट, किशमिश, सूखी खुमानी तथा मूँगफली जाड़े की ऋतु के वरदान हैं। सेव, सन्तरा, केला, चीकू, इस काल के मौसमी फल हैं। काजू की बरफी, मूँग की दाल का हलवा, पिन्नी, सोहनहलवा की टिकिया तथा रेवड़ी-गजक इस मौसम के चहेते मिष्टान्न हैं। चाय-कॉफी शीतकाल की सर्दी को चुनौती देने वाले प्रकृति के वरदान पेय हैं।

पर्वों की दृष्टि से 'मकर संक्रांति' शीतकाल का मुख्य महत्त्वपूर्ण पर्व है। पंजाब की लोहड़ी, असम का 'माघ बिहू', तमिलनाडु का 'पोंगल' मकर संक्रांति के पर्याय हैं। ईसाई पर्वों में ईसा मसीह का जन्म-दिन २५ दिसम्बर जाड़े की ऋतु को आनन्दवर्धक बनाते हैं। विद्या की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती के पूजन का दिवस वसन्तपंचमी भी माघ शुक्ल पक्ष में ही आती है। राष्ट्रीय पर्वों में गणतंत्र दिवस (२६ जनवरी) अपनी विशाल, भव्य और इन्द्रधनुषी परेड तथा शोभा-यात्रा को जाड़े की ऋतु में ही दर्शाता है।

जाड़े की ठंड से सूर्य देव भी सिकुड़े। वह देर से दर्शन देकर शीघ्र अस्ताचल गमन करने लगे। फलत: दिन छोटे हो गए, रातें लम्बी हो गईं। सूर्य का तेज भी शीत में क्षीण हो जाता है। पौष के शीतकालीन सूर्य का वर्णन कवि बिहारी के शब्दों में—

आवत जात न जानियतु तेजहिंतजि सियरानु।
घरहिं जवाईं ज्यों घट्यो खरौ पूष दिन मानु॥

विरहिणी की ठंडी लम्बी रातें तो आह भर-भर कर कटती हैं। वह सोचती है मानों रात ठहर गई है, खिसकने का नाम ही नहीं लेती। उसका हृदय चीत्कार कर कहता है—

मोम-सा तन घुल चुका अब, दीप-सा मन जल रहा है।—महादेवी वर्मा

अन्य सांसारिक पदार्थों के तरह शीत भी अनित्य है। अपने अवतरण से जन-जीवन को शीतल और भयभीत कर खान-पान तथा परिधान का स्वाद-सुख परोस कर शीत पुन: वसन्त को निमंत्रण देने चल पड़ती है। इस दृष्टि से शीत धन्य है।

(9) त्यौहारों का महत्त्व

संकेत बिंदु—(1) सांस्कृतिक और सामाजिक चेतना के प्रतीक (2) सामाजिक संस्कृति की आत्मा (3) प्राकृतिक सुंदरता और सजीवता (4) पारिवारिक और कर्त्तव्यबोध के संदेशवाहक (5) राष्ट्रीय एकता के उद्बोधक।

त्यौहार सांस्कृतिक और सामाजिक चेतना के प्रतीक हैं। जन-जीवन में जागृति लाने वाले और उसके शृंगार हैं। समष्टिगत जीवन में जाति की आशा-आकांक्षा के चिह्न हैं, उत्साह एवं उमंगों के प्रदाता हैं। राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता के द्योतक हैं।

जीवन की एक-रसता से ऊबे समाज के लिए त्यौहार वर्ष की गति के पड़ाव हैं। वे भिन्न-भिन्न प्रकार के मनोरंजन, उल्लास और आनन्द प्रदान कर जीवन-चक्र को सरस बनाते हैं।

पर्व युगों से चली आ रही सांस्कृतिक परम्पराओं, प्रथाओं, मान्यताओं, विश्वासों, आदर्शों, नैतिक, धार्मिक तथा सामाजिक मूल्यों का वह मूर्त प्रतिबिम्ब हैं जो जन-जन के किसी एक वर्ग अथवा स्तर-विशेष की झाँकी ही प्रस्तुत नहीं करते, अपितु असंख्य जनता की अदम्य जिजीविषा और जीवन के प्रति उत्साह का साक्षात् एवं अन्त:स्पर्शी आत्म-दर्शन भी कराते हैं।

त्यौहार सामाजिक संस्कृति की आत्मा को अभिव्यक्ति देते हैं तो सामाजिक सामूहिकता का बोध कराते हैं और अगर विद्वेषकारी मतभेद कहीं हैं तो उनके विस्मरण की प्रतीति कराते हैं। इसीलिए त्यौहारों की व्यवस्था समाज-कल्याण और सुख-समृद्धि के उत्पादों के रूप में हुई थी। भारतीय समाज में ज्ञान का प्रसार करने के लिए श्रावण की पूर्णिमा को श्रावणी उपाकर्म के रूप में ज्ञान की साधना का पर्व मनाया गया। समाज में शौर्य की परम्परा बनाये रखने और भीतरी तथा बाहरी चुनौतियों का सामना करने के लिए शक्ति अनिवार्य है। अत: शक्ति-साधना के लिए विजयदशमी पर्व को मनाने की व्यवस्था हुई। समाज को सुख और समृद्धि की ओर ले जाने के लिए सम्पदा की जरूरत होती है। उसके लिए दीपावली को लक्ष्मी पूजन का पर्व शुरू हुआ। विविध पुरुषार्थों को साधते समय समाज में एक या दूसरी तरह की विषमता उत्पन्न हो जाती है। इस विषमता की भावना को लुप्त करने के लिए और सभी प्रकार का मनोमालिन्य मिटाने के लिए तथा स्नेह-भाव की वृद्धि के लिए 'होली' पर्व की प्रतिष्ठा हुई।

जब-जब प्रकृतिसुन्दरी ने सोलह शृंगार सजा कर अपना रूप निखारा, रंग-बिरंगे फूलों की चूनर ओढ़ी, खेत-खलिहानों की हरीतिमा से अपना आवरण रंगा या चाँद-तारों की बिन्दिया सजाई, माँग में बाल अरुण की लालिमा रूपी सिन्दूर भरा, इन्द्रधनुष की भौंहे तान,

काली घटा का अंजन आँजा और विराट् को लुभाने चली तब-तब धरती मुग्ध हो झूम उठी, धरती-पुत्र कृत-कृत्य हो मदमस्त हुआ। वह मस्ती में नाचने-गाने लगा। प्रकृति का बदलता सौन्दर्य मानव-मन में उमड़ती उमंग और उल्लास के रूप में प्रकट होकर पर्व या त्यौहार कहलाया।

प्रकृति की सजीवता से मानव उल्लसित हो उठा। प्रकृति ने संगिनी बनकर उसे सहारा दिया और सखी बनकर जीवन। प्रसन्न मानव ने धरती में बीज डाला। वर्षा ने उसे सींचा, सूर्य की गर्मी ने उसे पकाया। जल और सूर्य मानव के आराध्य बन गए। श्रम के पुरस्कार में जब खेती लहलहाई तो मानव का हृदय खिल उठा, उसके चरण थिरक उठे, वाणी मुखर हो गई। संगीत-स्रोत फूट पड़े। वाणी ने उस आराध्य की वन्दना की, जिसने उसे सहारा दिया था। सभ्यता के विकास में मन की उमंग और प्रभु के प्रति आभार प्रकट करने के लिए अभ्यर्थना और नृत्य-संगीत ही उसका माध्यम बने। यह वही परम्परा तो है, जो त्यौहारों के रूप में आज भी मुखरित है, जीवन्त है।

त्यौहारों का महत्त्व पारिवारिक-बोध की जागृति में है, अपनत्व के विराट् रूप-दर्शन में है। होली तथा दीपावली पर परिवार-जनों को तथा दीपावली पर इष्ट-मित्रों को भी बधाई-पत्र (ग्रीटिंग कार्ड) तथा मिष्टान्न आदि भेजना अपनत्व की पहचान ही तो है।

त्यौहार कर्तव्यबोध के संदेशवाहक के नाते भी महत्त्वपूर्ण हैं। राखी ने भाई को बहिन की रक्षा का संदेश दिया। होली ने 'वैर-भाव भूलने' के संदेश को दोहराया। दशहरे ने आततायी के विनाश के प्रति कर्तव्य का बोध कराया। दीपावली ने 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' का संदेश दिया।

त्यौहार राष्ट्रीय-एकता के उद्बोधक हैं, राष्ट्र की एकात्मता के परिचायक हैं। कश्मीर से कन्याकुमारी और कच्छ से कामरूप तक विस्तृत इस पुण्यभूमि भारत का जन-जन जब होली, दशहरा और दीपावली मनाता है, होली का हुड़दंग मचाता है, दशहरा के दिन रावण को जलाता है और दीपावली की दीप-पंक्तियों से घर, आँगन, द्वार को ज्योतित करता है, तब भारत की जनता राजनीति-निर्मित्त उत्तर और दक्षिण का अन्तर समाप्त कर एक सांस्कृतिक गंगा-धारा में डुबकी लगाकर एकता का परिचय दे रही होती है।

'दक्षिण का ओणम्, उत्तर का दशहरा, पूर्व की (दुर्गा) पूजा और पश्चिम का महारास, जिस समय एक-दूसरे से गले मिलते हैं, तब भारतीय तो अलग, परदेशियों तक के हृदय-शतदल एक ही झोंके में खिल-खिल जाते हैं। इसमें अगर कहीं से वैसाखी के भंगड़े का स्वर मिल जाए या राजस्थान की पनिहारी की रौनक घुल जाए तो कहना ही क्या? भीलों का भगोरिया और गुजरात का गरबा अपने आप में लाख-लाख इन्द्रधनुषों की अल्हड़ता के साथ होड़ लेने की क्षमता रखते हैं।'

कवि इकबाल की जिज्ञासा, 'कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी' का समाधान हमारे पर्व और त्यौहारों में ही है। सत्ययुग से चली आती त्यौहार-परम्परा, द्वापर और त्रेता युग को पार कर कलियुग में भी भारतीय संस्कृति और सभ्यता की ध्वजा फहरा रही है।

'प्रत्येक आने वाले युग ने बीते युग को अपनाया और त्यौहारों की माला में गूँथकर रख दिया। इस माला के फूल कभी सूखे नहीं, क्योंकि हर आने वाली पीढ़ी ने न सिर्फ उन फूलों को सहेज कर रखा, वरन् उनमें नए फूलों की वृद्धि भी की। और ये त्यौहार भारतीय संस्कृति और सभ्यता के दर्पण बन गए।'

(10) हमारे त्योहार : अनेकता में एकता में प्रतीक भारतीय पर्व और त्योहार

संकेत बिंदु—(1) सभ्यता और संस्कृति के दर्पण (2) त्योहारों का देश (3) ऋतुओं से संबंधित पर्व (4) अलग-अलग धर्मावलंबियों के पर्व (5) कई दिन तक चलने वाले पर्व।

भारतीय पर्व और त्यौहार भारतीय सभ्यता और संस्कृति के दर्पण हैं, जीवन के शृंगार हैं, राष्ट्रीय उल्लास, उमंग और उत्साह के प्राण हैं; विभिन्नता की इन्द्रधनुषी आभा में एकरूपता और अखंडता के प्रतीक हैं और हैं जीवन के अमृत-उत्सव।

'भारतीय पर्व और त्यौहार गहन सांस्कृतिक चिंतन, पौराणिक आख्यान, लोकरंजनात्मक वैज्ञानिक दृष्टिकोण, राजनीतिक पुनर्जागरण, आर्थिक संवर्धन एवं उत्साहपूर्ण सामाजिक जीवन के अभिराम अभिव्यंजक हैं।'—डॉ. सीताराम झा 'श्याम'

भारतीय-संस्कृति आनन्दवाहिनी है, उल्लास-सलिला है, अत: हमारे सारे पर्व मंगल माधुर्य से ओत-प्रेत हैं। इसलिए यहाँ प्रत्येक दिन पर्व है, पूजा-अर्चना का प्रसंग है।

भारत तो त्योहारों का देश है। पंचांग खोलकर देखिए, हर दिन कोई न कोई त्यौहार है, मेला है। इनमें प्रमुख पर्व चार हैं। होली, रक्षाबन्धन, दशहरा और दीपावली। होली ही 'नवान्नेष्टि यज्ञ' कहलाता है। कालान्तर में होली के अवसर पर उच्चरित होने वाला वेद-मंत्रों का स्थान अश्लील और असभ्य वचनों ने ले लिया तो चन्दन की पवित्रता का स्थान लिया रंग-बिरंगे गुलाल ने। रक्षाबन्धन वस्तुत: भाई-बहिन के पावन-प्रेम की रक्षा का त्यौहार है। समय के प्रवाह में पावन 'रक्षा-पोटलिका' का स्थान बाजारू राखी ने ले लिया। दशहरा असत्य और आसुरीवृत्ति पर सत्य और देवत्व की विजय का साक्षी है। शक्ति की आराधना का पर्व है। दीपावली एक ओर 'तमसो या ज्योतिर्गमय' की संदेशवाहिनी है, तो दूसरी ओर भगवती लक्ष्मी की आराधना और स्वागत का पर्व है। समाज की भौतिक समृद्धि लक्ष्मी पर ही आश्रित है। कहा भी गया है—*'सर्वे गुणाः काञ्चन माश्रयन्ते।'*

ऋतु-परिवर्तन के संदेशवाहक दिवस भी पर्वरूप में प्रसिद्ध हुए। इनमें 'मकर संक्रांति', 'वैसाखी' तथा 'गंगा-दशहरा', ये तीन प्रमुख पर्व हैं। पर्व के दिन पावन तीर्थों और नदियों में स्नान करने के महत्त्व पर बल दिया गया है। कृषि-प्रधान भारत-भू के ऋतु-पर्व कृषि के प्रसंग से आलोकित हैं।

तमिलनाडु का 'पोंगल' माघ (मकर) की संक्रांति पर लहलहाती फसल के घर आने पर प्रभु को भोग लगाने और गऊ-बैलों की पूजा करने का पर्व है। केरल की शस्यश्यामला पुष्पाच्छादित भूमि पर श्रावण मास में आनन्दोपभोग का त्यौहार है 'ओणम्'। आश्विन-शुक्ला सप्तमी से दशमी (विजय-दशमी) तक बंगाल के ही नहीं अपितु पूर्ण भारत के नर-नारी महिषासुर मर्दिनी 'दुर्गा-पूजा' में मस्त हो गए। वैशाखमास में उड़ीसा में जगन्नाथ जी की 'रथयात्रा' भारत का सर्वप्रथम और विश्व-प्रसिद्ध समारोह बना।

कार्तिक पूर्णिमा को 'मिटी धुंध जग चानण होया' उक्ति के मूर्तिरूप गुरु नानक का जन्म-दिवस सिक्खों का महान् पर्व है तो इसी दिन हरियाणा और उत्तर प्रदेश का प्रसिद्ध पर्व है—'नहान'। जिसमें गंगा और यमुना पर जन-समाज उमड़ा पड़ता है। पाँचवें गुरु अर्जुनदेव तथा नवें गुरु तेगबहादुर के बलिदान-दिवस सिक्खों के पवित्र त्योहार बने।

जैन मत के पवित्र पर्वों में 'महावीर जयन्ती' तथा 'पर्यूषण पर्व' विशेष उल्लेखनीय हैं। 'महावीर जयन्ती' जैन मतावलम्बियों में अन्तिम तीर्थंकर महावीर स्वामी के जन्म-दिवस के उपलक्ष्य में चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को मनाया जाता है।

समवेत रूप से देखें तो प्रतिपदा का संबंध नववर्ष (नवसंवत्) से है। दूज 'भय्या दूज' से जुड़ी है। तीज को 'हर तालिका' और 'हरियाली तीज' है। चौथ का दिन 'करवा चौथ' (करक चतुर्थी) और गणेश-चतुर्थी को समर्पित है। पंचमी को 'नागपंचमी' और 'वसंतपंचमी' मनाई जाती है। षष्ठी का सम्बन्ध कृष्ण अग्रज बलराम की जन्मतिथि 'हलषष्ठी' से है। सप्तमी 'रथ सप्तमी' और 'संतान-सप्तमी' को अर्पित है। नवमी भगवान् राम की पावन जन्म-तिथि है। दशमी 'विजय दशमी' तथा 'गंगा दशहरा' का स्मरण करवाती है। एकादशी निर्जला एकादशी, देवशयिनी एकादशी तथा देवोत्थानी (प्रबोधिनी) एकादशी के कारण प्रसिद्ध है। द्वादशी को 'वामन-द्वादशी' पड़ती है। केरल में 'ओणम्' भी श्रावण द्वादशी को मनाया जाता है। त्रयोदशी का संबंध धन-त्रयोदशी तथा धन्वन्तरि जयन्ती से है। नरक चतुर्दशी, बैकुण्ठ चतुर्दशी तथा अनन्त चतुर्दशी चतुर्दशी को आलोकित करते हैं। पंद्रहवीं तिथि समर्पित है पूर्णिमा और अमावस को। पूर्णिमा गौर्वान्वित करती हैं होली, व्यास पूर्णिमा, रक्षाबंधन, शरद् पूर्णिमा और बुद्ध-पूर्णिमा से तो अमावस्या को अलंकृत करते हैं—दीपावली और सर्वपितृ अमावस्या।

भारत के अनेक पर्व और त्यौहार का एक दिन नहीं, दो दिन नहीं, अनेक दिनों तक निरन्तर चलकर हिन्दू जन-जीवन को अमृतमय बना देते हैं। वासन्तिक नवरात्र यदि नौ दिन तक धर्म की ध्वजा फहराते हैं तो शारदीय नवरात्र प्रतिपदा से दसवीं तक उत्तर भारत में रामलीला से तथा पूर्व भारत में 'पूजा' द्वारा जीवन को उल्लास और उमंग प्रदान करते हैं।

भारत भगवान् के अनेक रूपों, देवी-देवताओं तथा महापुरुषों का लीला-स्थल है तथा विविधता और रंगीनी से परिपूर्ण है। जयन्तियाँ, पुण्यतिथियाँ, स्मृतियाँ सब हमारे यहाँ पर्व हो गईं। दशावतार, चौबीस तीर्थंकर, तेतीस करोड़ देवता, चौंसठ जोगनियाँ, छप्पन भैरव, छप्पन करोड़ महापुरुष सबकी जयन्ती और पुण्यतिथियाँ स्थान-स्थान पर पर्व के रूप में मनाए जाते हैं।

(11) वर्ष प्रतिपदा : नव संवत्

संकेत बिंदु—(1) नव वर्ष का आरम्भ (2) विक्रम-संवत् के आरम्भकर्ता (3) ऐतिहासिक दृष्टि से विक्रम-संवत् (4) विक्रम संवत् मनाने के अनेक ढंग (5) उपसंहार।

भारत का सर्वमान्य संवत् विक्रम-संवत् है। विक्रम-संवत् के अनुसार नव-वर्ष का आरम्भ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से होता है। ब्रह्मपुराण के अनुसार चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को ही सृष्टि का आरम्भ हुआ था और इसी दिन से भारतवर्ष में कालगणना आरम्भ हुई थी।

चैत्रे मासि जगद् ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेऽहनि।
शुक्ल पक्षे समग्रे तु सदा सूर्योदये सति॥

यही कारण है कि ज्योतिष में ग्रह, ऋतु, मास, तिथि एवं पक्ष आदि की गणना भी चैत्र शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से ही होती है।

चैत्र शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा वसन्त ऋतु में आती है। वसन्त में प्राणियों को ही नहीं, वृक्ष, लता आदि को भी आह्लादित करने वाला मधुरस प्रकृति से प्राप्त होता है। इतना ही नहीं वसन्त समस्त चराचर को प्रेमाविष्ट करके, समूची धरती को पुष्पाभरण से अलंकृत करके मानव-चित्त की कोमल वृत्तियों को जागरित करता है। इस 'सर्वंप्रिये चारुतरं वसन्ते' में संवत्सर का आरम्भ 'सोने में सुहागा' को चरितार्थ करता है। हिन्दू मन में नव-वर्ष के उमंग, उल्लास, मादकता को दुगना कर देता है।

विक्रम-संवत् सूर्य-सिद्धान्त पर चलता है। ज्योतिषियों के अनुसार सूर्य-सिद्धान्त का मान ही भ्रमहीन एवं सर्वश्रेष्ठ है। सृष्टि संवत् के प्रारम्भ से यदि आज तक का गणित किया जाए तो सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार एक दिन का भी अन्तर नहीं पड़ता।

पराक्रमी महावीर विक्रमादिव्य का जन्म अवन्ति देश की प्राचीन नगरी उज्जयिनी में हुआ था। पिता महेन्द्रादित्य गणनायक थे और माता मलयवती थीं। इस दम्पती को पुत्र प्राप्ति के लिए अनेक व्रत और तप करने पड़े। शिव की नियमित उपासना और आराधना से उन्हें पुत्ररत्न मिला था। इसका नाम विक्रमादित्य रखा गया। विक्रम के युवावस्था में प्रवेश करते ही पिता ने राज्य का कार्य भार उसे सौंप दिया।

राज्यकार्य संभालते ही विक्रमादित्य को शकों के विरुद्ध अनेक तथा बहुविध युद्धों में उलझ जाना पड़ा। उसने सबसे पहले उज्जयिनी और आस-पास के क्षेत्रों में फैले शकों के आतंक को समाप्त किया। सारे देश में से शकों के उन्मूलन से पूर्व विक्रम ने मानव गणतन्त्र का फिर संगठन किया और उसे अत्यधिक बलशाली बनाया और वहाँ से शकों का समूलोच्छेद किया। जिस शक्ति का विक्रम ने संगठन किया था, उसका प्रयोग उसने देश के शेष भागों में से शक-सत्ता को समाप्त करने में लगाया और उसकी सेनाएं दिग्विजय के लिए निकल पड़ीं। ऐसे वर्णन उपलब्ध होते हैं कि शकों का नाम-निशान मिटा देने वाले

इस महापराक्रमी वीर के घोड़े तीनों समुद्रों में पानी पीते थे। इस दिग्विजयी मालवगण नायक विक्रमादित्य की भयंकर लड़ाई सिंध नदी के आस-पास करूर नामक स्थान पर हुई। शकों के लिए यह इतनी बड़ी पराजय थी कि कश्मीर सहित सारा उत्तरापथ विक्रम के अधीन हो गया।

ऐतिहासिक दृष्टि से यह सत्य है कि शकों का उन्मूलन करने और उन पर विजय प्राप्त करने के उपलक्ष्य में विक्रम-संवत् आरम्भ किया गया था जो कि इस समय की गणना के अनुसार ईस्वी सन् से ५७ वर्ष पहले शुरू होता है। इस महान् विजय के उपलक्ष्य में मुद्राएँ भी जारी की गई थीं, जिनके एक और सूर्य था, दूसरी ओर 'मालवगणस्य जय:' लिखा हुआ था।

विदेशी आक्रमणकारियों को समाप्त करने के कारण केवल कृतज्ञतावश उसके नाम से संवत् चलाकर ही जनसाधारण ने वीर विक्रम को याद नहीं रखा, बल्कि दिन-रात प्रजापालन में तत्परता, परदु:ख-परायणता, न्यायप्रियता, त्याग, दान, उदारता आदि गुणों के कारण तथा साहित्य और कला के आश्रयदाता के रूप में भी उन्हें स्मरण किया जाता है। यह तो हुई विक्रमादित्य की चर्चा। वर्ष-प्रतिपदा के महत्त्व के कुछ अन्य कारण भी हैं।

'स्मृति कौस्तुभ' के रचनाकार का कहना है कि चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को रेवती नक्षत्र के विष्कुम्भ के योग में दिन के समय भगवान् ने मत्स्य रूप अवतार लिया था। ईरानियों में इसी तिथि पर 'नौरोज' मनाया जाता है। (ईरानी वस्तुत: पुराने आर्य ही हैं।)

संवत् 1946 में हिन्दू राष्ट्र के महान् उन्नायक, हिन्दू संगठन के मंत्र-द्रष्टा तथा धर्म के संरक्षक परम पूज्य डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार का जन्म वर्ष-प्रतिपदा के ही दिन हुआ था। वे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संस्थापक थे। वर्ष-प्रतिपदा का पावन दिन संघ शाखाओं में उनका जन्मदिन के रूप में सोल्लास मनाया जाता है। प्रतिपदा 2045 से प्रतिपदा 2046 तक उनकी जन्म-शताब्दी मनाकर कृतज्ञ राष्ट्र ने उनके प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की थी।

आंध्र में यह पर्व 'उगादि' नाम से मनाया जाता है। उगादि का अर्थ है युग का आरम्भ अथवा ब्रह्मा जी की सृष्टि-रचना का प्रथम दिन। आंध्रवासियों के लिए यह दीपावली की भाँति हर्षातिरेक का दिन होता है।

सिंधु प्रान्त में नवसंवत् को चेटी चंडो (चैत्र का चन्द्र) नाम से पुकारा जाता है। सिन्धी समाज इस दिन को बड़े हर्ष और समारोहपूर्वक मनाता है।

काश्मीर में यह पर्व 'नौरोज' के नाम से मनाया जाता है। जवाहरलाल जी ने अपनी आत्मकथा 'मेरी कहानी' में लिखा है, 'काश्मीरियों के कुछ खास त्यौहार भी होते हैं। इनमें सबसे बड़ा नौरोज याने वर्ष-प्रतिपदा का त्यौहार है। इस दिन हम लोग नए कपड़े पहनकर बन-ठनकर निकलते। घर के बड़े लड़के-लड़कियों को हाथ-खर्च के तौर पर कुछ पैसे मिला करते थे।' (मेरी कहानी, पृष्ठ 26)

(5) नव-वर्ष मंगलमय हो, सुख समृद्धि का साम्राज्य हो, शांति और शक्ति का संचरण रहे, इसके लिए नव-संवत् पर हिन्दुओं में पूजा का विधान है। इस दिन पंचांग का श्रवण और दान का विशेष महत्त्व है। व्रत, कलश-स्थापन, जलपात्र का दान, वर्षफल श्रवण, गतवर्ष की घटनाओं का चिंतन तथा आगामी वर्ष के संकल्प, इस पावन दिन के महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम माने जाते हैं। प्रभु से प्रार्थना की जाती है—

भगवँस्तव प्रसादेन वर्षं क्षेममिहास्तु मे।
संवत्सरोपसर्गाः मे विलयं यान्त्वशेषतः ॥

(हे प्रभो ! आपकी कृपा से नववर्ष मेरे लिए कल्याणकारी हो तथा वर्ष के सभी विघ्न पूर्णतः शान्त हो जाएँ)

हम हिन्दू हैं। हिन्दू धर्म में हमारी आस्था है, श्रद्धा है तो हमें चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को उमंग और उत्साह से नववर्ष मानना और मनाना चाहिए। सम्बन्धियों तथा मित्रों को 'ग्रीटिंग कार्ड' भेजना तथा शुभकामना प्रकट करना हमारे स्वभाव का अंग होना चाहिए। इसी से हमारे समाज में पहले से ही विद्यमान परम्परा का निर्वाह करते हुए शुभसंस्कारों का विकास होगा और हमारी भारतीय अस्मिता की रक्षा भी होगी।

(12) वसन्त-पंचमी

संकेत बिंदु—(1) वसंत पंचमी का आगमन (2) सरस्वती का जन्मदिन (3) रति-कामदेव की पूजा का दिन (4) वीर हकीकतराय का जन्मदिन (5) पंचमी मनाने के ढंग।

माघ शुक्ल पंचमी को 'वसंत-पंचमी' के नाम से जाना जाता है। कोशकार रामचन्द्र वर्मा के अनुसार 'वसन्त-पंचमी वसन्त ऋतु के आगमन का सूचक है।'

(मानक हिन्दी कोश : खंड पाँच, पृष्ठ 23)

ऋतु गणना में चैत्र और वैसाख, दो मास वसन्त के हैं। फिर उसका पदार्पण चालीस दिन पूर्व कैसे ? कहते हैं कि ऋतुराज वसन्त के अभिषेक और अभिनन्दन के लिए शेष पाँच ऋतुओं ने अपनी आयु के आठ-आठ दिन वसन्त को समर्पित कर दिए। इसलिए वसन्त-पंचमी चालीस दिन पूर्व प्रकट हुई। यह तिथि चैत्र कृष्णा प्रतिपदा से चालीस दिन पूर्व माघ शुक्ला पंचमी को आती है।

भूमध्य रेखा का सूर्य के ठीक-ठीक सामने आ-जाने के आस-पास का कालखंड है वसन्त। अतः वसन्त भारत का ही नहीं, विश्व-वातावरण के परिवर्तन का द्योतक है। सम्भव है कभी बृहत्तर भारत में माघ के शुक्ल पक्ष में वसन्तागमन होता हो और माघ शुक्ल पंचमी को वसन्त-आगमन के उपलक्ष्य में 'अभिनन्दन पर्व' रूप में प्रस्थापित किया हो। वस्तुतः वसन्त-पंचमी वसन्तागमन की पूर्व सूचिका ही है, इसी कारण इसे 'श्री पंचमी' भी कहते हैं।

वसन्त-पंचमी विद्या की अधिष्ठात्री देवी भगवती सरस्वती का जन्म दिवस भी है। इसलिए इस दिन सरस्वतीपूजन का विधान है। ज्ञान की गहनता और उच्चता का सम्यक् परिचय इसी से प्राप्त होता है। पुस्तकधारिणी वीणावादिनी माँ सरस्वती की यह देन है कि वे जीवन के रहस्यों को समझने की सूक्ष्म दृष्टि प्रदान कर ज्ञान लोक से सम्पूर्ण विश्व को आलोकित करती हैं। अत: सरस्वती पूजा 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' के आदर्श पर चलने की प्रेरणा देती है—'महो अर्णः सरस्वती प्रचेतयति केतुना। धियो विश्वा विराजति।'

(ऋग्वेद 1/3/12)

प्राचीन काल में वेद-अध्ययन का सत्र श्रावणी पूर्णिमा से आरम्भ होकर इसी तिथि को समाप्त होता था।

गत बीसवीं शताब्दी में वसन्त-पंचमी को न तो विद्या का सत्र समाप्त होता था, न विद्याभ्यास के लिए मंगल-दिन मानकर विद्या-ज्ञान का आरम्भ होता था। हाँ, माँ शारदा की कृपा एवं आशीर्वाद के लिए 'सरस्वती पूजन' अवश्य होता रहा है।

पौराणिक कोश के अनुसार वसन्त-पंचमी रति और कामदेव की पूजा का दिन है। मादक महकती वासन्ती बयार में, मोहक रस पगे फूलों की बहार में, भौरों की गुंजार और कोयल की कूक में मानव हृदय जब उल्लसित होता है, तो उसे कंकणों का रणन, नुपुरों की रुनझुन, किंकणियों का मादक क्वणन सुनाई देता है। मदन-विकार का प्रादुर्भाव होता है तो कामिनी और कानन में अपने आप यौवन फूट पड़ता है। जरठ (वृद्धा) स्त्री भी अद्‌भुत शृंगार-सज्जा से आनन्द पुलकित जान पड़ती है। दाम्पत्य और परिवारिक जीवन की सुख-समृद्धि के लिए रति और कामदेव की कृपा चाहिए। अत: यह रति-कामदेव पूजन का दिन माना जाता है।

वसन्त-पंचमी किशोर हकीकतराय का बलिदान-दिवस भी है। सियालकोट (अब पाकिस्तान) का किशोर हकीकत मुस्लिम पाठशाला में पढ़ता था। एक दिन साथियों से झगड़ा होने पर उसने 'कसम दुर्गा भवानी' की शपथ लेकर झगड़ा समाप्त करना चाहा। मुस्लिम छात्रों ने, जो झगड़ा करने पर उतारू थे, दुर्गा भवानी को गाली दी। हकीकत स्वाभिमानी था, बलवान् भी था। प्रत्युत्तर में फातिमा को गाली दी। 'फातिमा' को गाली देने के अपराध में उसे मृत्यु-दण्ड या मुस्लिम-धर्म स्वीकार करने का विकल्प रखा गया। किशोर हकीकत ने मुस्लिम धर्म स्वीकार नहीं किया। उसने हँसते हुए मृत्यु का वरण किया।

उस दिन भी वसंत-पंचमी थी। लाहौर में रावी का तट था। सहस्रों हिन्दू जमा थे। सबके सामने मुस्लिम शासक की आज्ञा से उस किशोर का सिर तलवार से काट दिया गया।

रावी नदी के तट पर खोजेशाह के कोट-क्षेत्र में धर्मवीर हकीकत की समाधि बनाई गई। स्वतन्त्रता-पूर्व सहस्रों लाहौरवासी वसन्त के दिन वीर हकीकत की समाधि पर इकट्ठे होते थे। मेला लगता था। अपने श्रद्धा-सुमन चढ़ाते थे।

वसन्त-पंचमी के दिन पीले वस्त्र पहनने की प्रथा थी। वह प्रथा आज नगरों में लुप्त हो गई है। गाँवों में अवश्य अब भी उसका कुछ प्रभाव दिखाई देता है। हाँ, वसन्ती हलुआ,

पीले चावल तथा केसरिया खीर खाकर आज भी वसन्त-पंचमी पर उल्लाल, उमंग प्रकट होता है। परिवार में प्रसन्नता का वातावरण बनता है।

वसन्त हृदय के उल्लास, उमंग, उत्साह और मधुर जीवन का द्योतक है। इसलिए वसन्त-पंचमी के दिन नृत्य-संगीत, खेलकूद प्रतियोगिताएँ तथा पतंगबाजी का आयोजन होता है। वसन्त मेले लगते हैं।

वसन्त-पंचमी प्रतिवर्ष आती है। जीवन में वसन्त (आनन्द) ही यशस्वी जीवन जीने का रहस्य है, यह रहस्योद्घाटन कर जाती है।

(13) होली

संकेत बिंदु—(1) आनंद, उल्लास का पर्व (2) मदनोत्सव के रूप में वर्णन (3) समाज में प्रचलित कथाएँ (4) होलिका दहन और होली मिलन (5) आधुनिक युग में प्रदर्शन मात्र।

भारतीय-पर्व परम्परा में होली आनन्दोल्लास का सर्वश्रेष्ठ रसोत्सव है। मुक्त, स्वच्छन्द परिहास का त्यौहार है। नाचने-गाने, हँसी-ठिठौली और मौज-मस्ती की त्रिवेणी है। सुप्त मन की कन्दराओं में पड़े ईर्ष्या-द्वेष जैसे निकृष्ट विचारों को निकाल फेंकने का सुन्दर अवसर है।

होली वसन्त-ऋतु का यौवनकाल है। ग्रीष्म के आगमन की सूचक है। वनश्री के साथ-साथ खेतों की श्री एवं हमारे तन-मन की श्री भी फाल्गुन के ढलते-ढलते सम्पूर्ण आभा में खिल उठती है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने फाल्गुन के सूर्य की ऊष्मा को 'प्रियालिंगन मधु-माधुर्य स्पर्श' बताते हुए कहा है—'सहस्र-सहस्र मधु-मादक स्पर्शों से आलिंगित कर रही इन किरणों ने फाल्गुन के इस वासन्ती प्रात को सुगन्धित स्वर्ण में आह्लादित कर दिया है।'

'दशकुमार चरित' में होली का उल्लेख 'मदनोत्सव' के नाम से किया गया है। वैसे भी, वसन्त काम का सहचर है। इसलिए कामदेव के विशेष पूजन का विधान है। कहीं फाल्गुन शुक्ल द्वादशी से पूर्णिमा तक, कहीं चैत्र शुक्ल द्वादशी से पूर्णिमा तक मदनोत्सव का विधान है। आमोद-प्रमोद और उल्लास के अवसर पर मन की अमराई में मंजरित इस सुख-सौरभ का अपना स्थान है।

''किन्तु 'यह मदनोत्सव' कालिदास, श्री हर्ष और बाणभट्ट की पोथियों की वायु बनकर रह गया है। अब बस 'मादन' रह गया है, न मदन है, न उत्सव! वर्तमान युग में काम को 'सेक्स' का पर्याय बनाकर इतना बड़ा अवमूल्यन सृष्टि-तत्त्व का हुआ है कि काम के देवत्व की बात करते डर लगता है। सच्चाई यह है कि काम व्यापनशील विष्णु और शोभा-सौन्दर्य की अधिष्ठात्री लक्ष्मी के पुत्र हैं। इसका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक व्यक्ति के भीतर दो चेतनाएँ होती हैं—एक आत्मविस्तार की और दूसरी अपनी ओर खींचने की।

दोनों का सामंजस्य होता है तो काम जन्म लेता है। एक निराकार उत्सुकता जन्म लेती है। वह उत्सुकता यदि बिना किसी तप के आकार लेती है तो अभिशप्त होती है और अपने को छार करके आकार ग्रहण करे तो भिन्न होती है।" —डॉ. विद्यानिवास मिश्र

होली के साथ अनेक दंत-कथाओं का सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। पहली कथा है प्रह्लाद और होलिका की। प्रह्लाद के पिता हरिण्यकशिपु नास्तिक थे और वे नहीं चाहते थे कि उनके राज्य में कोई ईश्वर की पूजा करे, किन्तु स्वयं उनका पुत्र प्रह्लाद ईश्वर-भक्त था। नेक कष्ट सहने के बाद भी जब उसने ईश्वर-भक्ति नहीं छोड़ी, तब उसके पिता ने अपनी बहिन होलिका को प्रह्लाद के साथ आग में बैठने को कहा। होलिका को यह वरदान प्राप्त था कि वह अग्नि में नहीं जलेगी। अग्नि-ज्वाला में होलिका प्रह्लाद को लेकर बैठी। परिणाम उल्टा निकला। होलिका जल गई और प्रह्लाद सुरक्षित बाहर आ गया।

दूसरी पौराणिक कथा के अनुसार ढुण्डा नामक राक्षसी बच्चों को पीड़ा पहुँचाती तथा उनकी मृत्यु का कारण बनती थी। एक बार वह राक्षसी पकड़ी गई। लोगों ने क्रोध में उसे जीवित जला दिया। इसी घटना की स्मृति में होली के दिन आग जलाई जाती है।

भारत कृषि-प्रधान देश है। होली के अवसर पर पकी हुई फसल काटी जाती है। खेत की लक्ष्मी जब घर के आँगन में आती है तो किसान अपने सुनहले सपने को साकार पाता है। वह आत्म-विभोर हो नाचता है, गाता है। अग्नि देवता को नवान्न की आहुति देता है।

फाल्गुन-पूर्णिमा होलिका-दहन का दिन है। लोग घरों से लकड़ियाँ इकट्ठी करते हैं। अपने-अपने मुहल्ले में अलग-अलग होली जलाते हैं। होली जलाने से पूर्व स्त्रियाँ लकड़ी के ढेर को उपलों का हार पहनाती हैं, उसकी पूजा करती हैं और रात्रि को उसे अग्नि की भेंट कर देते हैं। लोग होली के चारों ओर खूब नाचते और गाते हैं तथा होली की आग में नई फसल के अनाज की बाल को भून कर खाते हैं।

होली से अगला दिन धुलेंडी का है। फाल्गुन की पूर्णिमा के चन्द्रमा की ज्योत्स्ना, वसंत की मुस्कराहट, परागी फगुनाहट, फगुहराओं की मौज-मस्ती, हँसी-ठिठोली, मौसम की दुंदभी बजाती धुलेंडी आती है। रंग-भरी होली जीवन की रंगीनी प्रकट करती है। मुँह पर अबीर-गुलाल, चन्दन या रंग लगाते हुए गले मिलने में जो मजा आता है, मुँह को काला-पीला रंगने में जो उल्लास होता है; रंग भरी बाल्टी एक दूसरे पर फेंकने में जो उमंग होती है, निशाना साधकर पानी-भरा गुब्बारा मारने में जो शरारत की जाती है, वे सब जीवन की सजीवता प्रकट करते हैं।

चहुँ ओर अबीर-गुलाल, रंग भरी पिचकारी और गुब्बारों का समा बंधा है। छोटे-बड़े, नर-नारी, सभी होली के रंग में रंगे हैं। डफ-ढोल, मृदंग के साथ नाचती-गाती, हास्य-रस की फुव्वारें छोड़ती, परस्पर गले मिलती, वीर बैन उच्चारती, आवाजें कसती, छेड़छाड़ करती टोलियाँ दोपहर तक होली के प्रेमानन्द में पगी हैं। गोपालसिंह नेपाली ने इसका चित्रण बड़े सुन्दर रूप में किया है—

बरस-बरस पर आती होली, रंगों का त्यौहार अनूठा।
चुनरी इधर, उधर पिचकारी, गाल-भाल का कुमकुम फूटा।
लाल-लाल बन जाते काले, गोरी सूरत पीली-नीली।
मेरा देश बड़ा गर्वीला, रीति रसम ऋतु रंग रंगीली।।

आज होली-उत्सव में शील और सौहार्द्र-संस्कारों की विस्मृति से मानव आचरण में चिंतनीय विकृतियों का समावेश हो गया है। गंदे और अमिट रासायनिक लेपों, गाली-गलौज, अश्लील गान और आवाज-कसी एवं छेड़छाड़ ने होली की धवल-फाल्गुनी, पूर्णिमा पर ग्रहण की गर्हित छाया छोड़ दी है, जिसने पर्व की पवित्रता और सत् संदेश की अनुभूति को तिरोहित कर दिया है।

आज होली परम्परा-निर्वाह की विवशता का प्रदर्शन-मात्र रह गया है। कहीं होली की उमंग तो दीखती नहीं, शालीनता की नकाब चढ़ी रहती है। उल्लास दुबका रहता है। नशे से उल्लास की जाग्रति का प्रयास किया जाता है।

आज का मानव अर्थ-चक्र में दबा हुआ उससे त्रस्त है। भागते समय को वह समय की कमी के कारण पकड़ नहीं पाता। इसलिए आनन्द, हर्ष, उल्लास, विनोद, उसके लिए दूज का चन्द्रमा बन गये हैं। इस दम घोटू वातावरण में होली-पर्व चुनौती है। इस चुनौती को स्वीकार करें। मंगलमय रूप में हास्य, व्यंग्य-विनोद का अभिषेक करें।

(14) राम नवमी

संकेत बिंदु—(1) मर्यादा पुरुषोत्तम राम का जन्म दिन (2) श्रद्धेय और पूजनीय (3) राम का अलौकिक रूप (4) अनेक भाषाओं में रामचरित (5) उपसंहार।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का जन्म दिन है 'राम नवमी'। यह चैत्र शुक्ल-पक्ष की नवमी तिथि है।'फलित ज्योतिष-शास्त्र के अनुसार नवमी रिक्ता तिथि मानी गई है और चैत्र मास विवाहादि शुभ कार्यों में निषिद्ध मास माना गया है। पर इसी मनभावन, पावन मधुमास की नवमी तिथि को मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र ने जन्म धारण किया था। इसी पुण्य तिथि को गोस्वामी तुलसीदास ने अपने 'रामचरितमानस' का प्रणयन आरम्भ किया था। इस प्रकार मानो ज्योतिष-शास्त्र की स्थापनाओं के विपरीत भी यह भाग्यशालिनी तिथि पवित्र भावनाओं से सुपूजित बन गई है।'

—रामप्रताप त्रिपाठी (प्राचीन भारत की झलक, पृष्ठ १०६)

श्रीराम विष्णु के सातवें अवतार हैं। वे दशरथ की बड़ी रानी कौशल्या के पुत्र बनकर प्रकट हुए थे। वे मनुष्य रूप में जन्मे थे। अतः उनके भी शत्रु-मित्र थे। दुःख, कष्ट, विपत्ति उन्हें भी झेलनी पड़ीं। जीवन में हताश भी हुए, सिर पीटकर क्रंदन भी किया। वे पूर्ण पुरुष थे, लोकोत्तर देवता नहीं। विष्णु की भाँति चार भुजाएँ, ब्रह्मा की भाँति चार मस्तक, शिव की भाँति पाँच मुख तथा इन्द्र की भाँति सहस्र नेत्र नहीं थे उनके। उनका निवास क्षीरसागर

की अगाध जल-राशि में विराजमान शेष का पर्यंकपीठ, दुग्ध-ध्वज हिमाच्छन्न शिखर पर विराजमान नन्दीश्वर की पृष्ठिका अथवा नाभिसमुद्भूत शतदल कमल की कोमल पँखुड़ियाँ या समुद्र में पैदा होने वाले उच्चै:श्रवा नहीं था। वे तो दो हाथ, दो पैर, दो चक्षु, एक सिर वाले हम जैसे मानव थे।

'श्रीराम धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवादी, दृढ़ संकल्प, सर्वभूत हित-निरत, आत्मवान्, जित, क्रोध, अनसूयक, धृतिमान्, बुद्धिमान्, नीतिमान्, वाग्मी, शुचि, इन्द्रियजयी, समाधिमान्, वेद-वेदांग सर्वशास्त्रार्थ तत्त्वज्ञ, साधु, अदीनात्मा और विलक्षण हैं। वे गम्भीरता में समुद्र के समान, धैर्य में हिमालय के समान, वीरता में विष्णु के समान, क्रोध में कालाग्नि के समान, क्षमा में पृथ्वी के समान और धन में कुबेर के समान हैं। इसलिए श्रद्धा के केन्द्र हैं।'

श्रीराम के मर्यादा पुरुषोत्तम रूप की स्थापना जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में है। वे आदर्श शिष्य, आदर्श पुत्र, आदर्श भ्राता, आदर्श मित्र, आदर्श पति, आदर्श सेनाध्यक्ष और आदर्श राजा हैं। 'गौतम पत्नी अहल्या, शबरी, निषादराजगुह, गृध्रराज जटायु, वानरराज सुग्रीव, ऋक्षराज जाम्बवान्, कपीश हनुमान् और अंगद अपने निजी जीवन में अपावन होकर भी उनकी इसी अमर धर्मनीति की दुहाई फेरने के लिए ही धार्मिक इतिहास में पन्नों में अमिट रूप से जुड़ गए हैं। अजामिल या गणिका की कल्पना भी उनकी इसी धर्मनीति की पृष्ठभूमि पर आधारित है। जो रावण जैसे निन्दित शत्रु के सगे भाई का भी परम हितैषी, बाली जैसे अपकर्मी के सगे पुत्र का भी शुभचिन्तक, परशुराम जैसे घोर अपमान करने वाले का भी प्रशंसक तथा कैकेयी जैसी कुमाता का भी पूजक था।' (श्री रामप्रताप त्रिपाठी) वह परम शक्ति, शील, सौन्दर्य और करुणानिधि शासक श्रीराम भारत के लिए पूजनीय हैं।

एक पत्नी व्रत का आजीवन पालन, गुरुओं का आदेश पालन, धर्म रक्षार्थ पत्नी का त्याग, राज्य और सम्पत्ति के लिए विवाद नहीं, बल्कि भाई के लिए राज्य तक छोड़ने को तैयार, उच्च कुल के चरित्रवान् लोग, पतित स्त्रियों के उद्धार में अपना गौरव समझना, राजपुत्रों का गुहों, भीलों और वनचरों के साथ मैत्री स्थापन, राजन्य होने पर भी अभिमान की ऐंठन से ऊपर उठकर शूद्रादि का आलिंगन, ब्रह्मचर्य का पुनीत तेज, सत्य और धर्म की सेवा स्वीकार करना, प्रजा वर्ग में धर्म और परोपकार के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करना, उच्चवंश में उत्पन्न राजकुमार होकर भी जीवन के सुख-ऐश्वर्य को ठोकर मारकर सुख-शान्ति का सच्चा सन्देश देने निकल पड़ना, उस राम की अलौकिक कल्पना को शतशत प्रणाम।

यद्यपि श्रीराम का उल्लेख ऋग्वेद में पाँच बार हुआ है, पर कहीं भी ऐसा संकेत नहीं मिलता, जिससे सूचित होता हो कि श्रीराम दशरथ के पुत्र थे। उनको दशरथ-नंदन रूप में वर्णन किया आदिकवि महर्षि वाल्मीकि ने 'रामायण' लिखकर। इस मधुर काव्य पर अनेक काव्य-प्रणेता इतने मुग्ध हुए कि वाल्मीकि रामायण को आधार बनाकर न केवल

संस्कृत साहित्य में ही अनेक काव्य निर्मित हुए, अपितु हिन्दी तथा भारत की प्रान्तीय एवं विश्व की अनेक भाषाओं में रामकाव्य लिखे गए। संस्कृत वाङ्मय में जो स्थान वाल्मीकि का है, हिन्दी में वही स्थान तुलसी के 'रामचरितमानस' का है। बीसवीं सदी में मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत' का है। महाराष्ट्र में 'भावार्थ रामायण' का है और दक्षिण में 'कम्ब रामायण' का है।

चीन के 'अनामकं जातकं', 'दशरथ जातकं' तथा 'ज्ञान-प्रस्थानं' आदि ग्रंथों में राम कथा का सविस्तार वर्णन है। पूर्वी तुर्किस्तान की 'खोतानी रामायण' में, लंका की 'रामायण पद्म चरित' में, कम्बोडिया की 'रे आमकेर' में, लाओ के 'राम-जातक' में, मलाया की 'हिकायत सेरी राम' में राम-कथाओं का उल्लेख है। तिब्बत में भी रामचरित की अनेक हस्तलिपियाँ मिलती हैं।

डे. फेरिया ने स्पैनिश भाषा में अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'प्रसिया पौर्तुगेसा' में और डॉक्टर कोलैण्ड ने डच भाषा में रामकथा का वर्णन किया है। जे. वी. खनियर ने 'ट्रावल्स इन इण्डिया' में तथा एम. सोनेरा ने अपनी 'वायस ऑफ एन ओरियंटल' में श्रीराम की लोकप्रिय गाथाओं का निरूपण किया है। फ्रेंच भाषा की 'रेसालिया डेस़ एवरर' तथा 'मिथिलोजी डेस इण्डू' में व्यवस्थित रामकथा का उल्लेख है। रूस ने तो 'रामचरित मानस' का रूसी अनुवाद ही छाप दिया है। सच्चाई यह है कि इतने प्रिय और जगद्वन्दनीय नायक राम पूज्य हैं। फिर 'श्रुत्वा रामकथां रम्यां शिरः कस्य न कम्पते।' मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में—

राम तुम्हारा वृत्त स्वयं ही काव्य है।
कोई कवि बन जाए, सहज सम्भाव्य है॥

रामनवमी उन्हीं की पावन जन्म-तिथि है। चैत्र शुक्ल नवमी यदि पुनर्वसु नक्षत्र युक्त हो और मध्याह्न में भी यही योग हो तो वह परम पुण्यदायी है। अगस्त्य संहिता में कहा भी है—

चैत्र शुक्ला तु नवमी पुनर्वसु युता यदि।
सैव मध्याह्न योगेन, महापुण्यतमा भवेत्॥
उपोष्य नवमीं त्वद्य यामेष्वष्टसु राघव।
तेन प्रीतो भव त्वं भोः संसारात्मा हि मां हरे॥

इस मन्त्र से भगवान् के प्रति उपवास की भावना प्रकट करनी चाहिए।

रामनवमी के अवसर पर राम-मन्दिर सजाए जाते हैं, पत्रों-पुष्पों मालाओं तथा रात्रि में विद्युत्-दीपों से अलंकृत किए जाते हैं। राम-जीवन की झाँकियाँ दर्शायी जाती हैं। 'मानस' का पाठ होता है। राम-कथा पर प्रवचन होता है। राम जीवन का महत्त्व दर्शाया जाता है। राम के गुण जीवन में अवतरित करने का उपदेश होता है। जीवन में मर्यादा के मूल्यों की स्थापना का आग्रह होता है। 'सियाराम मय' रूप ग्रहण करने में जीवन की कृतार्थता पर बल दिया जाता है।

(15) बैसाखी

(विषुवत् संक्रान्ति/मेष संक्रान्ति)

संकेत बिंदु—(1) नव वर्ष और कृषि पर्व के रूप में (2) ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण (3) मेष संक्रान्ति के रूप में (4) पंजाबियों का आत्मगौरव (5) उपसंहार।

भारत में काल-गणना चान्द्र मासों और सौर मासों के आधार पर होती है। जिस प्रकार चान्द्र गणना के आधार पर चैत्र शुक्ल प्रतिपदा वर्ष का प्रथम दिन है, उसी प्रकार बैसाखी, मेप-संक्रान्ति अथवा विषुवत् संक्रान्ति सौर नववर्ष का प्रथम दिवस हैं। पंजाब, सीमा प्रान्त, हिमाचल, जम्मू प्रान्तों में, उत्तर प्रदेश के गढ़वाल, कुमायूँ तथा नेपाल में, यह दिन नव वर्ष के रूप में ही मनाया जाता है।

हाँ, बैसाखी पंजाब और पंजाबियों का महान् पर्व है। खेत में खड़ी फसल पर हर्षोल्लास प्रकट करने का दिन है। धार्मिक चेतना और राष्ट्रीय-जागरण का स्मृति-दिवस है। खालसा पंथ का स्थापना दिन भी है।

बैसाखी मुख्यत: कृषि पर्व है। पंजाब की शस्यश्यामला भूमि में जब चैती (रबी की) फसल पक कर तैयार हो जाती है और वहाँ का 'बाँका छैल-जवान' उस अन्न-धन रूपी लक्ष्मी को संगृहीत करने के लिए लालायित हो उठता है, तो वह प्रसन्नता से मस्ती में नाच उठता है।

ऐतिहासिक दृष्टि से भी बैसाखी का दिन बहुत महत्त्वपूर्ण है। औरंगजेब के अत्याचारों से भारत-भू को मुक्त कराने एवं हिन्दू-धर्म की रक्षा के लिए सिक्खों के दसवें, किन्तु अन्तिम गुरु, गोविन्दसिंह ने सन् 1699 में 'खालसा पन्थ' की स्थापना इसी शुभ दिन (बैसाखी पर) की थी।

13 अप्रैल, 1919 को बैसाखी के पावन-पर्व पर भारत में 'रोलेट ऐक्ट' तथा अमृतसर में 'मार्शल लॉ' लागू करने के विरोध में अमृतसर के स्वर्ण-मन्दिर के समीप जलियाँवाला बाग में एक महती सभा हुई थी। इस बाग के एकमात्र द्वार पर जनरल डायर ने अधिकार करके बिना कोई चेतावनी दिए सभा पर गोली बरसाना आरम्भ कर दिया। इस नृशंस हत्याकांड में 1500 व्यक्ति या तो मारे गए या मरणासन्न हो गए। अनेक लोग अपनी जान बचाने के लिए कुए में कूद पड़े। चार-पाँच सौ व्यक्ति ही जीवित बच जाए। शहीदों की स्मृति में 'जलियाँवाला बाग समिति' ने लाल पत्थरों का सुन्दर स्मारक बनवाया है।

भारत में महीनों के नाम नक्षत्रों के आधार पर रखे गए हैं। बैसाखी के समय आकाश में विशाखा नक्षत्र होता है। विशाखा नक्षत्र युता पूर्णिमा मास में होने के कारण इस मास को बैसाख कहते हैं। इसी कारण बैसाख मास के प्रथम दिन को 'बैसाखी' नाम दिया गया और पर्व के रूप में स्वीकार किया गया।

बैसाखी के दिन सूर्य मेष राशि में संक्रमण करता है, अत: इसे 'मेष संक्रान्ति' भी कहते हैं। रात-दिन एक समान होने के कारण इस दिन को 'संवत्हार' भी कहा जाता है। पद्म-पुराण में बैसाख मास को भगवत्प्रिय होने के कारण 'माधवमास' कहा गया है। अत: इस मास में तीर्थों पर कुम्भों का आयोजन करने की परम्परा है।

बैसाखी के दिन समस्त उत्तर भारत में पवित्र नदियों एवं सरोवरों में स्नान करने का माहात्म्य है। अत: सभी नर-नारी, चाहे खालसा पंथ के अनुयायी हों अथवा वैष्णव धर्म के, प्रात:काल पवित्र सरोवर अथवा नदी में स्नान करना पुण्य समझते हैं। इस दिन गुरुद्वारों और मन्दिरों में विशिष्ट उत्सव मनाया जाता है।

सौर नववर्ष या मेष संक्रान्ति के कारण पर्वतीय अंचल में इस त्यौहार का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। गढ़वाल, कुमाऊँ, हिमाचल प्रदेश आदि सभी पर्वतीय प्रदेशों में और नेपाल में इस दिन अनेक स्थानों पर मेले लगते हैं। ये मेले अधिकांशत: उन स्थानों पर लगते हैं, जहाँ दुर्गा देवी के मन्दिर हैं या गंगा आदि पवित्र नदियाँ हैं। लोग इस दिन श्रद्धापूर्वक देवी की पूजा करते हैं और नए-नए वस्त्र धारण कर उल्लास के साथ मेला देखने जाते हैं। न केवल उत्तर में, अपितु उत्तर पूर्वी सीमा के असम प्रदेश में भी मेष संक्रान्ति आने पर 'बिहू' पर्व मनाया जाता है।

बैसाख मास में वसन्त ऋतु अपने पूर्ण यौवन पर होती है। अत: बैसाखी का त्यौहार प्राकृतिक शोभा और वातावरण की मधुरता के कारण भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इस वातावरण में जन-जीवन में उल्लास एवं उत्साह का संचार होना स्वाभाविक ही है।

आमोद-प्रमोद की दृष्टि से पंजाब में ढोल की आवाज और भाँगड़ा की धुन पर अनगिनत पाँव थिरक उठते हैं। नृत्य में ऊँचा उछलना, कूदना-फाँदना एवं एक-दूसरे को कन्धे पर उठाकर नृत्य करना भाँगड़ा की विशिष्ट पद्धतियाँ हैं। तुर्रेदार रंग-बिरंगी पगड़ी, रंगीन कसीदा की हुई बास्कट नृत्य के विशिष्ट और प्रिय परिधान हैं।

बैसाखी पर पंजाबियों का आत्मगौरव दर्शनीय होता है। *'देश मेरा पंजाब नी, होर बस्से कुल जहान'* में उसका पंजाब के प्रति गर्व टपकता है। *'गबरू मेरे देश दा, बाँका छैल जवान'* में उसके पुरुषों का पौरुष झलकता है। *'मेहनत ऐसे जवान दी, सोना दये पसार'* में पंजाब का परिश्रम और पुरुषार्थ प्रकट होता है। *'नड्डी देश पंजाब दीं, हीरा बिचों हीर'* में पंजाब की नारी का अनिन्द्य सौन्दर्य दमकता है।

बैसाखी हर साल अंग्रेजी कलेण्डर के अनुसार प्राय: 13 अप्रैल को आती है। (कभी बारह-तेरह वर्ष में 14 तारीख भी हो जाती है) और पंजाब की आत्मा को झझकोरती है, पर दुर्भाग्य से आज वह आत्मा विभक्त है। मंथरा रूपी राजनीति ने पंजाब के राम और भरत को विभक्त कर दिया है। आज वहाँ की शस्यश्यामला भूमि अन्न के साथ फूट के काँटे भी पैदा करती है। आज बैसाखी पर नाचने वाले 'भंगड़े' में शिव के ताण्डव का विध्वंस प्रकट होता है। इसलिए आज बैसाखी आकर पंजाब के तरुणवर्ग को याद दिलाती है—उस खालसा पंथ की, जो हिन्दू संरक्षण की प्राचीर थी। वह याद दिलाती है उस भाई-चारे की

जहाँ माता दश गुरुओं के ऋण को उतारने के लिए अपने ज्येष्ठ पुत्र को गुरु के चरणों में समर्पित कर 'सिक्ख' बनाती थी। पंजाब की धरती-माँ बैसाखी के पावन-पर्व पर दोनों बंधुओं से अभ्यर्थना करती है, 'हो मेरे पुतरो! तुसी एक होकर रह्वो। त्वाडी एकता विच ही देश ही आन-बान-शान है।'

(16) गंगा-दशहरा

संकेत बिंदु—(1) गंगा-उत्पत्ति से संबंधित कथाएँ (2) गंगा के नाम और उसके समीप धार्मिक स्थल (3) गंगा-जल की पवित्रता (4) पुराणों और संस्कृत काव्यों में वर्णन (5) भौतिक और धार्मिक दृष्टि से महत्त्व।

गंगा-दशहरा पुण्य-सलिला गंगा का हिमालय से उत्पत्ति का दिवस है। ज्येष्ठ शुक्ल दशमी को यह पर्व मनाया जाता है। इस दिन गंगा-स्नान से दस प्रकार के पापों का विनाश होता है, इसलिए इस दिन को 'गंगा-दशहरा' नाम दिया गया।

गंगा की उत्पत्ति के विषय में दो कथाएँ प्रचलित हैं—(1) 'गंगा की उत्पत्ति विष्णु के चरणों से हुई थी। ब्रह्मा ने उसे अपने कमण्डल में भर लिया था। ऐसी प्रसिद्धि है कि विराट् (वामन) अवतार के आकाशस्थित तीसरे चरण को धोकर ब्रह्मा ने गंगा को अपने कमण्डल में रख लिया था। (ध्रुव नक्षत्र स्थान को पौराणिकगण विष्णु का तीसरा चरण मानते हैं। वहीं मेघ एकत्र होते हैं और वृष्टि करते हैं। वृष्टि ही से गंगा की उत्पत्ति होती है।)

दूसरी धारणा है कि गंगा का जन्म हिमालय की कन्या के रूप में सुमेरुतनया अथवा मैना के गर्भ में हुआ था।

पुराणों के अनुसार पृथ्वी पर गंगा-अवतरण की कथा इस प्रकार है—कपिल मुनि के शाप से राजा सगर के साठ सहस्र पुत्र भस्म हो गए। उनके उद्धार के लिए उनके वंशजों ने गंगा को पृथ्वी पर लाने के लिए घोर तपस्या की। अन्त में भागीरथ की घोर तपस्या से ब्रह्मा प्रसन्न हो गए। उन्होंने गंगा को पृथ्वी पर ले जाने की अनुमति दे दी, किन्तु पृथ्वी ब्रह्म लोक से अवतरित होने वाली गंगा के तीव्र वेग को सहन करने में असमर्थ थी। अत: भागीरथ ने महादेव जी से गंगा को अपनी जटाओं में धारण करने की प्रार्थना की। ब्रह्मा के कमण्डलु से निकल कर गंगा शिव की जटाओं में रुक गइ। वहाँ से पुन: मृत्युलोक की ओर चली।

देवकुल की होने से गंगा को 'सुरसरि' कहा गया। विष्णु चरणों से उत्पत्ति के कारण गंगा को 'विष्णुपदी' कहा गया। भगीरथ के प्रयत्नों से प्रवाहित होने के कारण गंगा को 'भागीरथी' कहा गया। जह्नु ऋषि की कृपा से प्रवाहित होने के कारण इसका 'जाह्नवी' नाम पड़ा। गंगा की तीन धाराओं (स्वर्ग गंगा : मंदाकिनी, भूगंगा : भागीरथी तथा पाताल गंगा:

भोगवती) के कारण गंगा का नाम 'त्रिपथगा' पड़ा। इनके अतिरिक्त मन्दाकिनी, देवापगा भी गंगा के पर्याय हैं।

जहाँ-जहाँ गंगा का प्रवाह मर्त्य भूमि को स्पर्श करता गया, वह पवित्र हो गई। वहाँ तीर्थ बन गए। गंगा-तट पर स्थित हरिद्वार, (मायापुरी) प्रयाग, काशी तीर्थ बन गए। इनका आध्यत्मिक महत्त्व बढ़ गया। सहस्रों जन गंगा-तट पर ध्यान, चिंतन करते हुए सांसारिक बंधन से मुक्त हो गए। अमरत्व को प्राप्त हो गए। पंडितराज जगन्नाथ संसार की ताड़ना-प्रताड़नाओं से दग्ध होकर जब गंगा-तट पर पहुँचे तो किंवदन्ती है कि स्वयं माता गंगा आईं और उन्हें अपनी गोद में उठा ले गईं। स्वामी रामतीर्थ तो गंगा की गोद में ही शरीर को विसर्जित कर मोक्ष को प्राप्त हुए।

गंगा-जल की पवित्रता के कारण ही हिन्दुओं के प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठान में गंगा-जल प्रयुक्त होता है। भूत-प्रेत, अलाय-बलाय दूर करने के लिए गंगा-जल के छींटे मारे जाते हैं। मृत्यु-पथ की ओर अग्रसर हिन्दू को गंगा-जल के आचमन से स्वर्ग-द्वार के योग्य एवं निडर बनाया जाता है। उसके लिए तो वही औषध है (औषधं जाह्नवी तोयम्)। हिन्दू मृत्यु के पश्चात् अपनी काया को अग्नि समर्पण के उपरान्त अस्थियों को गंगा में प्रवाहित करवाने में अपने को धन्य समझता है। संन्यासी का शव तो गंगा को ही समर्पित किया जाता है। कितनी दिव्यता, श्रेष्ठता और पवित्रता है गंगा-जल में। इसके प्रति कितनी श्रद्धा-आस्था है हिन्दू-मन में।

गंगा का जल हमारे ऋषि-मुनियों, त्यागी-तपस्वियों, देश-भक्त, बलिदानियों तथा पूर्वजों की क्षार होती अस्थियों से मिश्रित है, पवित्र है। गंगा में डुबकी लगा कर हम उन पुण्यात्माओं का पुण्य ओढ़ते हैं। उससे अपने शरीर को पवित्र करते हैं।

धार्मिक दृष्टि से गंगा के महत्त्व का वर्णन महाभारत, पुराणों और संस्कृत काव्यों से लेकर 'मानस', 'गंगावतरण' जैसे हिन्दी काव्यों से होता हुआ आधुनिकतम युग की काव्य-कृतियों में वर्णित है। कहा भी गया है—

दृष्ट्वा तु हरते पापं, स्पृष्ट्वा तु त्रिदिवं नयेत्।
प्रतङ्गेनापि या गङ्गा मोक्षदा त्ववगाहिता।।

महर्षि वेदव्यास ने महाभारत के अनुशासन पर्व में गंगा का महत्त्व दर्शाते हुए लिखा है, 'दर्शन से, जलपान तथा नाम कीर्तन से सैकड़ों तथा हजारों पापियों को गंगा पवित्र कर देती है।' इतना ही नहीं 'गंगाजलं पावनं नृणाम्' कहकर इसको सबसे अधिक तृप्तिकारक माना है।

तुलसी ने *'गंगा सकल मुद मंगल मूला, सब सुख करनि हरनि सब सूला'* कहकर गंगा का गुणगान किया है।

पौराणिक उद्धरणों के अभाव में गंगा में महत्त्व का प्रसंग अछूता रह जाएगा। 'विष्णु पुराण' में लिखा है कि गंगा का नाम लेने, सुनने, उसे देखने, उसका जल पीने, स्पर्श करने,

उसमें स्नान करने तथा सौ योजन से भी 'गंगा' नाम का उच्चारण करने मात्र से मनुष्य के तीन जन्मों तक के पाप नष्ट हो जाते हैं—

गङ्ग गङ्गेति यो ब्रूयात् योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्व पापेभ्यो विष्णु लोकं स गच्छति॥

भौतिक दृष्टि से भी गंगा-जल का महत्त्व कम नहीं। यह प्राणि-मात्र का जीवन है। पीने, नहाने, धोने तथा अन्यान्य कामों के लिए इसका उपयोग है। जल के बिना मानव-जीवन अधूरा है। जल सिंचाई के काम आता है। इससे भूमि शस्य-श्यामला होती है, तो खेती धन-धान्य से सम्पन्न। जल न होगा, तो देश में अकाल पड़ेगा। जन-जीवन अकाल-मृत्यु के मुँह का ग्रास बनेगा। जल यातायात का साधन है, प्रकाश-स्रोत विद्युत् उत्पादन का कारण है। जल में स्नान, क्रीडा और जल पर नौका-विहार मानव मन को स्फूर्ति प्रदान करता है।

भारत धर्म प्राण देश है। श्रद्धा उसका सम्बल है। अत: हिन्दू आज भी पुण्य सलिला गंगा में माँ के दर्शन करता है। उसके सानिध्य में तृप्त होता है। उसके जल में स्नान कर अपने को धन्य समझता है। स्वयं को पापों से मुक्त मानता है। नगर में बिना सूचना के, गाँव में बिना ढिंढोरे के लक्ष-लक्ष हिन्दू गंगा-दशहरा के पावन दिन गंगा में गोता लगाते हैं। अपने को जीवन में सफल और मृत्यु पर मोक्ष का अधिकारी मानते हैं। यह अटल विश्वास ही गंगा-दशहरा के स्नान द्वारा दस पापों के हरण का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

(17) रक्षा-बन्धन

संकेत बिंदु—(1) रक्षा-बंधन का प्रारंभ (2) मुस्लिम काल में राखी का महत्त्व (3) भाई-बहिन के प्रेम का पर्व (4) भारतीय-संस्कृति की विलक्षणता (5) पुरातन परम्परा का पालन।

रक्षा-बन्धन हमारा राष्ट्रव्यापी पारिवारिक पर्व है, ज्ञान की साधना का त्यौहार है। श्रवण नक्षत्र से युक्त श्रावण की पूर्णिमा को मनाया जाने के कारण यह पर्व 'श्रावणी' नाम से भी प्रसिद्ध है। प्राचीन आश्रमों में स्वाध्याय के लिए, यज्ञ और ऋषियों के लिए तर्पण कर्म करने के कारण इसका 'ऋषि-तर्पण', 'उपाकर्म' नाम पड़ा। यज्ञ के उपरान्त रक्षा-सूत्र बाँधने की प्रथा के कारण 'रक्षाबन्धन' लोक में प्रसिद्ध हुआ।

रक्षाबन्धन का प्रारम्भ कब और कैसे हुआ, इस सम्बन्ध में कोई निश्चित प्रमाण उपलब्ध नहीं होता। एक किम्वदन्ती है कि एक बार देवताओं और दैत्यों का युद्ध शुरू हुआ। संघर्ष बढ़ता ही जा रहा था। देवता परेशान हो उठे। उनका पक्ष कमजोर होता जा रहा था। एक दिन इन्द्र की पत्नी शची ने अपने पति की विजय एवं मंगलकामना से प्रेरित होकर उनको रक्षा-सूत्र बाँधकर युद्ध में भेजा। जिसके प्रभाव से इन्द्र विजयी हुए। इसी दिन से राखी का महत्त्व स्वीकार किया गया और रक्षा-बन्धन की परम्परा प्रचलित हो गई। (पर यह कोई यथार्थ प्रमाण नहीं है।)

श्रावण मास में ऋषिगण आश्रम में रहकर स्वाध्याय और यज्ञ करते थे। इसी मासिक यज्ञ की पूर्णाहुति होती थी श्रावण-पूर्णिमा को। इसमें ऋषियों के लिए तर्पण कर्म भी होता था, नया यज्ञोपवीत भी धारण किया जाता था। इसलिए इसका नाम 'श्रावणी उपाकर्म' पड़ा। यज्ञ के अन्त में रक्षा-सूत्र बाँधने की प्रथा थी। इसलिए इसका नाम 'रक्षावंधन' भी लोक में प्रसिद्ध हुआ। इसी प्रतिष्ठा को निबाहते हुए ब्राह्मणगण आज भी इस दिन अपने यजमानों को रक्षा-सूत्र बाँधते हैं।

मुस्लिम काल में यही रक्षा-सूत्र 'रक्षी' अर्थात् 'राखी' बन गया। यह रक्षी 'वीरन' अर्थात् वीर के लिए थी। हिन्दू नारी स्वेच्छा से अपनी रक्षार्थ वीर भाई या वीर पुरुष को भाई मानकर राखी बाँधती थी। इसके मूल में रक्षा-कवच की भावना थी। इसलिए विजातीय को भी हिन्दू नारी ने अपनी रक्षार्थ राखी बाँधी। मेवाड़ की वीरांगना कर्मवती का हुमायूँ को 'रक्षी' भेजना इसका प्रमाण है। (आज कुछ इतिहासविद् इस बात को सत्य नहीं मानते। इसे अंग्रेजों व मुसलमानों की कुटिल चाल मानते हैं।)

काल की गति कुटिल है। वह अपने प्रबल प्रवाह में मान्यताओं, परम्पराओं, सिद्धान्तों और विश्वासों को बहा ले जाता है और छोड़ जाती है उनके अवशेष! पूर्वकाल का श्रावणी यज्ञ एवं वेदों का पठन-पाठन मात्र नवीन यज्ञोपवीत धारण और हवन आहुति तक सीमित रह गया। वीर-बन्धु को रक्षी बाँधने की प्रथा विकृत होते-होते बहिन द्वारा भाई को राखी बाँधने और दक्षिणा प्राप्त करने तक ही सीमित हो गई।

बीसवीं सदी से रक्षा-बन्धन-पर्व विशुद्ध रूप में बहिन द्वारा भाई की कलाई में राखी बाँधने का पर्व है। इसमें रक्षा की भावना लुप्त है। है तो मात्र एक कोख से उत्पन्न होने के नाते सतत स्नेह, प्रेम और प्यार की निर्बाध आकांक्षा। राखी है भाई की मंगल-कामना का सूत्र और बहिन के मंगल-अमंगल में साथ देने का आह्वान।

बहिन विवाहित होकर अपना अलग घर-संसार बसाती है। पति, बच्चों, पारिवारिक दायित्वों और दुनियादारी में उलझ जाती है। भूल जाती है मातृकुल को, एक ही माँ के जाए भाई और सहोदरा बहिन को। मिलने का अवसर नहीं निकाल पाती। विवशताएँ चाहते हुए भी उसके अन्तर्मन को कुण्ठित कर देती हैं। 'रक्षाबन्धन' और 'भैया दूज', ये दो पर्व दो सहोदरों—बहिन और भाई को मिलाने वाले दो पावन प्रसंग हैं। हिन्दू धर्म की 'मंगल-मिलन' की विशेषता ने उसे अमरत्व का पान कराया है।

कच्चे धागों में बहनों का प्यार है।
देखो राखी का आया त्यौहार है॥

रक्षाबन्धन बहिन के लिए अद्भुत, अमूल्य, अनन्त प्यार का पर्व है। महीनों पहले से वह इस पर्व की प्रतीक्षा करती है। पर्व समीप आते ही बाजार में घूम-घूमकर मनचाही राखी खरीदती है। वस्त्राभूषणों को तैयार करती है। 'मामा-मिलन' के लिए बच्चों को उकसाती है।

रक्षाबन्धन के दिन वह स्वयं प्रेरणा से घर-आँगन बुहारती है। लीप-पोप कर स्वच्छ

करती है। सेवियाँ, जवे, खीर बनाती है। बच्चे स्नान-ध्यान कर नव-वस्त्रों में अलंकृत होते हैं। परिवार में असीम आनन्द का स्रोत बहता है।

भारतीय-संस्कृति भी विलक्षण है। यहाँ देव-दर्शन पर अर्पण की प्रथा है। अर्पण श्रद्धा का प्रतीक है। अत: अर्पण पुष्प का हो या राशि का, इसमें अन्तर नहीं पड़ता। राखी पर्व पर भाई देवी रूपी बहिन के दर्शन करने जाता है। पुष्पवत् फल या मिष्टान्न साथ ले जाता है। राखी बंधवाकर पत्र पुष्प-रूप में राशि भेंट करता है। 'पत्रं-पुष्पं-फलं तोयम्' की विशुद्ध भावना उसके अन्तर्मन को आलोकित करती है। इसीलिए वह दक्षिणा-अर्पण कर खुश होता है।

भाई बहिन का यह मिलन बीते दिनों की आपबीती बताने का सुन्दर सुयोग है। एक-दूसरे के दु:ख, कष्ट, पीड़ा को समझने की चेष्टा है तो सुख, समृद्धि, यशस्विता में भागीदारी का बहाना।

आज राजनीति ने हिन्दू धर्म पर प्रहार करके उसकी जड़ों को खोखला कर दिया है। तथाकथित धर्मनिरपेक्षता की ओट में हिन्दू-भूमि भारत में हिन्दू होना 'साम्प्रदायिक' होने का परिचायक बन गया है। ऐसे विषाक्त वातावरण में भी रक्षाबन्धन पर्व पर पुरातन परम्परा का पालन करने वाले पुरोहित घर-घर जाकर धर्म की रक्षा का सूत्र बाँधता है। रक्षा बाँधते हुए—

येन बद्धो बली राजा, दानवेन्द्रो महाबल:।
तेन त्वां प्रतिबध्नामि, रक्षे! मा चल, मा चल।।

मंत्र का उच्चारण करता है। यजमान को बताता है कि रक्षा के जिस साधन (राखी) से महाबली राक्षसराज बली को बाँधा गया था, उसी से मैं तुम्हें बाँधता हूँ। हे रक्षासूत्र! तू भी अपने धर्म से विचलित न होना अर्थात् इसकी भली-भाँति रक्षा करना।

(18) जन्माष्टमी

संकेत बिंदु—(1) जन्माष्टमी का नामकरण (2) कृष्ण का बहुमुखी व्यक्तित्व (3) पूर्वावतार के रूप में कृष्ण (4) मंदिरों की सजावट (5) मथुरा और वृंदावन में विशेष आयोजन।

भाद्रपद मास की कृष्ण-पक्ष की अष्टमी 'जन्माष्टमी' के नाम से जानी-पहचानी जाती है। इस दिन चतु:षष्टि (चौसठ) कलासम्पन्न तथा भगवद्गीता के गायक योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था। उनका जीवन, कर्म, आचरण और उपदेश हिन्दू समाज के आदर्श बने और वे हिन्दुओं के पूज्य देवता बने। इसीलिए उनका जन्म-दिन जन्माष्टमी नाम से विख्यात हुआ।

यद्यपि ईश्वर सर्वव्यापी हैं, सर्वदा और सर्वत्र वर्तमान हैं तथापि जनहितार्थ स्वेच्छा से साकार रूप में पृथ्वी पर अवतरित होते हैं। इसी परम्परा में भगवान् विष्णु का आठवाँ

अवतरण कृष्ण रूप में पहचाना जाता है, जो देवकी-वसुदेव के आत्मज थे। इस अवतरण में प्रभु का उद्देश्य था 'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्' तथा 'धर्मसंस्थापनार्थाय' अर्थात् दुराचारियों का विनाश साधुओं का परित्राण और धर्म की स्थापना।

आत्म-विजेता, भक्त वत्सल श्रीकृष्ण बहुमुखी व्यक्तित्व के स्वामी थे। वे महान् योद्धा थे, किन्तु उनकी वीरता सर्व-परित्राण में थी। वे महान् राजनीतिज्ञ थे, उनका ध्येय था 'सुनीति और श्रेय पर आधारित राजधर्म की प्रतिष्ठा।' वे महान् ज्ञानी थे। उन्होंने ज्ञान का उपयोग 'सनातन जन-जीवन' को सुगम और श्रेयोन्मुख स्वधर्म सिखाने में किया। वे योगेश्वर थे। उनके योगबल और सिद्धि की सार्थकता 'लोकधर्म के परिमार्जन एवं संवर्धन में ही थी।' यह ध्यान रहे कि वे योगीश्वर नहीं; अपितु योगेश्वर थे। योग के ईश्वर अर्थात् योग के श्रेष्ठतम ज्ञाता, व्याख्याता, परिपालक तथा प्रेरक थे।

कृष्ण महान् दार्शनिक और तत्त्ववेत्ता थे। उन्होंने कुलक्षय की आशंका से महाभारत के युद्ध में अर्जुन के व्यामोह को भंग कर 'हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोतिष्ठ परतंप' का उपदेश दिया। वे महान् राजनीतिज्ञ थे, महाभारत में पाण्डव-पक्ष की विजय का श्रेय उनकी कूटनीतिज्ञता को ही है। वे धर्म के पंडित थे, इसलिए 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' का धर्म-नवनीत उन्होंने जन-जन के लिए सुलभ किया। वे धर्म प्रवर्तक थे, उन्होंने ज्ञान, कर्म और भक्ति का समन्वय कर भागवत-धर्म का प्रवर्तन किया।

श्रीकृष्ण ईश्वर के पूर्णावतार थे। भागवत पुराण में पूर्वावतार का साँगोपांग रूपक वर्णित है। वे भागवत धर्म के प्रवर्तक थे। आगे चलकर वे स्वयं उपास्य मान लिए गए। दर्शन में इतिहास का उदात्तीकरण हुआ। परिमाणत: कृष्ण के ईश्वरत्व और ब्रह्मपद की प्रतिष्ठा हुई। वे जगद्गुरु रूप में प्रतिष्ठित हुए। 'कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्' द्वारा उनका अभिषेक हुआ।

कृष्ण के पूर्णावतार के संबंध में सूर्यकांत बाली की धारणा है—'कृष्ण के जीवन की दो बातें हम अक्सर भुला देते हैं, जो उन्हें वास्तव में अवतारी सिद्ध करती हैं। एक विशेषता है, उनके जीवन में कर्म की निरन्तरता। कृष्ण कभी निष्क्रिय नहीं रहे। वे हमेशा कुछ न कुछ करते रहे। उनकी निरन्तर कर्मशीलता के नमूने उनके जन्म और स्तनंधय (दूध पीते) शैशव से ही मिलने शुरू हो जाते हैं। इसे प्रतीक मान लें (कभी-कभी कुछ प्रतीकों को स्वीकारने में कोई हर्ज नहीं होता) कि पैदा होते ही जब कृष्ण खुद कुछ करने में असमर्थ थे तो उन्होंने अपनी खातिर पिता वसुदेव को मथुरा से गोकुल तक की यात्रा करवा डाली। दूध पीना शुरू हुए तो पूतना के स्तनों को और उसके माध्यम से उसके प्राणों को चूस डाला। घिसटना शुरू हुए तो छकड़ा पलट दिया और ऊखल को फँसाकर वृक्ष उखाड़ डाले। खेलना शुरू हुए तो बक, अघ और कालिय का दमन कर डाला। किशोर हुए तो गोप-गोपियों से मैत्री कर ली। कंस को मार डाला। युवा होने पर देश में जहाँ भी महत्त्वपूर्ण घटा, वहाँ कृष्ण मौजूद नजर आए, कहीं भी चुप नहीं बैठे। वाणी और कर्म से सक्रिय और दो-टूक भूमिका निभाई और जैसा ठीक समझा, घटनाचक्र को अपने हिसाब से मोड़ने की पुरजोर कोशिश की। कभी असफल हुए तो भी अगली सक्रियता से पीछे नहीं हटे। महाभारत संग्राम

हुआ तो उस योद्धा के रथ की बागडोर सँभाली, जो उस वक्त का सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर था। विचारों का प्रतिपादन ठीक युद्ध-क्षेत्र में किया। यानी कृष्ण हमेशा सक्रिय रहे, प्रभावशाली रहे, छाए रहे।'

इस दिन प्रायः हिन्दू व्रत (उपवास) रखते हैं। दिन में तो प्रायः प्रत्येक घर में नाना प्रकार के पकवान बनाए जाते हैं। सायंकाल को नए-नए वस्त्र पहनकर मन्दिरों में भगवान् के दर्शन करने निकल पड़ते हैं। रात्रि के बारह बजे मन्दिरों में होने वाली आरती में भाग लेते हैं और प्रसाद प्राप्त कर लौटते हैं। चन्द्रमा के दर्शन कर सब लोग बड़ी प्रसन्नता से व्रत का पारायण करते हैं।

इस दिन मन्दिरों की शोभा अनिर्वचनीय होती है। चार-पाँच दिन पहले से उन्हें सजाया जाने लगता है। कहीं भगवान् कृष्ण की अलंकृत भव्य प्रतिमा दर्शनीय है, तो कहीं उन्हें हिण्डोले पर झुलाया जा रहा है। कहीं-कहीं तो उनके सम्पूर्ण जीवन की झाँकी प्रस्तुत की जाती है। बिजली की चकाचौंध मन्दिर की शोभा को द्विगुणित कर रही है। उनमें होने वाले कृष्ण-चरित्र-गान द्वारा अमृत वर्षा हो रही है और कहीं-कहीं मन्दिरों में होने वाली रासलीला में जनता भगवान् कृष्ण के दर्शन कर अपने को धन्य समझती है।

यद्यपि यह उत्सव भारत के प्रत्येक ग्राम और नगर में बड़े समारोहपूर्वक मनाया जाता है, किन्तु मथुरा और वृन्दावन में इसका विशेष महत्त्व है। भगवान् कृष्ण की जन्म-भूमि और क्रीडा-स्थली होने के कारण यहाँ के मन्दिरों की सजावट, उनमें होने वाली रासलीला, कीर्तन एवं कृष्ण-चरित्र-गान बड़े ही सुन्दर होते हैं। भारत के कोने-कोने से हजारों लोग इस दिन मथुरा और वृन्दावन के मन्दिरों में भगवान् के दर्शनों के लिए आते हैं।

जन्माष्टमी प्रति वर्ष आती है। आकर कृष्ण की पुनीत स्मृति करवा जाती है। गीता के उपदेशों की याद ताजा कर जाती है। श्रीकृष्ण के जीवन-चरित्र की झाँकियों की कलात्मकता और भव्यता से मन के सुप्त धार्मिक भावों को झकझोर जाती है। एक दिन के व्रत से आत्म-शुद्धि का अनुष्ठान करवा जाती है।

(19) गणेशोत्सव

संकेत बिंदु—(1) सार्वजनिक पूजा का उत्सव (2) गणेश के जन्म से संबंधित कथाएँ (3) सभी देवताओं में सर्वश्रेष्ठ (4) गणपति के अनेक नाम (5) महाराष्ट्र में गणेशोत्सव।

विघ्न विनाशक, मंगलकर्ता, ऋद्धि-सिद्धि के दाता, विद्या और बुद्धि के आगार 'गणपति' की पूजा-आराधना का सार्वजनिक उत्सव ही गणेशोत्सव है। भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी को गणेश जी के जन्म-दिन पर यह उत्सव मनाया जाता है।

वैदिक काल से लेकर आज तक, सिंध और तिब्बत से लेकर जापान और श्रीलंका तक तथा भारत में जनमें प्रत्येक विचार और विश्वास में गणपति समाए हैं। जैन सम्प्रदाय

में ज्ञान का संकलन करने वाले गणेश या गणाध्यक्ष की मान्यता है तो बौद्ध धर्म के वज्रयान शाखा का विश्वास कभी यहाँ तक रहा है कि गणपति स्तुति के बिना मंत्रसिद्धि नहीं हो सकती। नेपाली तथा तिब्बती वज्रयानी बौद्ध अपने आराध्य तथागत की मूर्ति के बगल में गणेश जी को स्थापित रखते रहे हैं। सुदूर जापान तक बौद्ध प्रभावशाली राष्ट्रों में गणपति पूजा का कोई न कोई रूप मिल जाएगा।

पुराणों में रूपकों की भरमार के कारण गणपति के जन्म का आश्चर्यजनक रूपकों में अतिरंजित वर्णन है। अधिकांश कथाएँ ब्रह्मवैवर्त पुराण में हैं। गणपति कहीं शिव-पार्वती के पुत्र माने गए हैं तो कहीं पार्वती के ही।

पार्वती से शिव का विवाह होने के बहुत दिनों तक भी पार्वती कोई शिशु न दे पाई तो महादेव ने पार्वती से पुण्यक-व्रत करने का वर दिया। परिणामस्वरूप गणपति का जन्म हुआ।

नवजात शिशु को देखने को ऋषि, मुनि, देवगण आए। आने वालों में शनिदेव भी थे। शनिदेव जिस बालक को देखते हैं, उनका सिर भस्म हो जाता है, वह मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। इसलिए शनि ने बालक को देखने से इंकार कर दिया। पार्वती के आग्रह पर जैसे ही शनि ने बालक पर दृष्टि डाली, उसका सिर भस्म हो गया।

सिर भस्म होने या कटने के सम्बन्ध में दूसरी कथा इस प्रकार है—एक बार पार्वती स्नान करने गईं। द्वार पर गणेश को बैठा गईं। आदेश दिया कि जब तक मैं स्नान करके न लौटूँ किसी को प्रवेश न करने देना। इस बीच शिव आ गए। गणेश ने माता की आज्ञा का पालन करते हुए उन्हें भी रोका। शिव क्रुद्ध हुए और बालक का सिर काट दिया।

तीसरी कथा इस प्रकार है—'जगदम्बिका लीलामयी हैं। कैलास पर अपने अन्त:पुर में वे विराजमान थीं। सेविकाएँ उबटन लगा रही थीं। शरीर से गिरे उबटन को उन आदि-शक्ति ने एकत्र किया और एक मूर्ति बना डाली। उन चेतानामयी का वह शिशु अचेतन तो होता नहीं। उसने माता को प्रणाम किया और आज्ञा माँगी। उसे कहा गया कि बिना आज्ञा कोई द्वार से अन्दर न आने पाए। बालक डंडा लेकर द्वार पर खड़ा हो गया। भगवान् शंकर अंत:पुर में आने लगे तो उसने रोक दिया। भगवान् भूतनाथ कम विनोदी नहीं हैं। उन्होंने देवत्ताओं को आज्ञा दी—बालक को द्वार से हटा देने की। इन्द्र, वरुण, कुबेर, यम आदि सब उसके डंडे से आहत होकर भाग खड़े हुए—वह महाशक्ति का पुत्र जो था। इसका इतना औद्धत्य उचित नहीं, फलत: भगवान् शंकर ने त्रिशूल उठाया और बालक का मस्तक काट दिया।' (कल्याण : हिन्दू संस्कृति अंक, पृष्ठ 788)

पार्वती रो पड़ीं। व्रत की तपस्या से प्राप्त शिशु का असमय चले जाना दु:खदायी था ही। उस समय विष्णु के परामर्श से शिशु हाथी का सिर काटकर इनको जोड़ दिया गया। मृत शिशु जी उठा; पर उनका शीश हाथी का हो गया। गणपति 'गजानन' हो गए।

सनातन धर्मानुयामी स्मार्तों के पंच देवताओं में—गणेश, विष्णु, शंकर, सूर्य और भगवती में, गणेश प्रमुख हैं। इसलिए सभी शुभ कार्यों के प्रारम्भ में सर्वप्रथम गणेश की पूजा की जाती है। दूसरी धारणा यह है, 'शास्त्रों में गणेश को ओंकारात्मक माना गया है। इसी से इनकी पूजा सब देवताओं से पहले होती है।' (राणा प्रसाद शर्मा : पौराणिक कोश, पृष्ठ 146)। तीसरी धारणा यह है, 'देवताओं ने एक बार पृथ्वी की परिक्रमा करनी चाही। सभी देवता पृथ्वी के चारों ओर गए, किन्तु गणेश ने सर्वव्यापी राम नाम लिखकर उसकी परिक्रमा कर डाली, जिससे देवताओं में सर्वप्रथम इनकी पूजा होती है।' (हिन्दी साहित्य-कोश भाग 2 : पृष्ठ 112) लौकिक दृष्टि से एक बात सर्वसिद्ध है कि प्रत्येक मनुष्य अपने शुभ कार्य को निर्विघ्न समाप्त करना चाहता है। गणपति मंगल-मूर्ति हैं, विघ्नों के विनाशक हैं। इसलिए इनकी पूजा सर्वप्रथम होती है।

गणेश जी महान् लेखक भी हैं। व्यास जी का महाभारत इन्होंने ही लिखा था। वे शिव के गणों के पति होने के कारण 'गणपति' तथा 'विनायक' कहलाए। गज के मुख के समान मुख होने के कारण 'गजानन' तथा पेट बढ़ा होने के कारण 'लम्बोदर' कहलाए। एक दाँत होने के कारण 'एकदन्त' कहलाए। विघ्नों के नाश कर्ता होने के नाते 'विघ्नेश' कहलाए। 'हेरम्ब' इनका पर्यायवाची नाम है।

वर्तमान समाज में इनके जन्म-दिन का उत्सव भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी से अनन्त चतुर्दशी तक मनाया जाता है। इसका कारण कुछ लोग यह भी मानते हैं कि महाराष्ट्र के पेशवा प्राय: मोर्चे पर रहते थे। भादों के दिनों में चौमासा के कारण वे राजधानी में ही रहते थे। अत: तभी उन्हें विधिपूर्वक पूजन का अवसर मिलता था।

महाराष्ट्र में गणेशोत्सव की प्रथा सातवाहन, राष्ट्रकूट, चालुक्य आदि राजाओं ने चलाई थी। पेशवाओं ने गणेशोत्सव को बढ़ावा दिया।

लोकमान्य तिलक ने गणेशोत्सव को राष्ट्रीय रूप दिया। इसके बाद तो महाराष्ट्र में गणपति का पूजन एक पर्व बन गया। घर-घर और मुहल्ले-मुहल्ले में गणेश जी की मिट्टी की प्रतिमा रखकर गणेशोत्सव दस दिन तक मनाया जाने लगा। भाद्रपद में शुक्ल-पक्ष की चतुर्दशी को गणेश जी की शोभायात्रा निकाली जाती है। गणपति की प्रतिमाओं को समुद्र या महानद में विसर्जित कर दिया जाता है। उत्सव के प्रत्येक चरण में 'गणपति बप्पा मोरया, पुठचा वर्षी लोकरया' अर्थात् 'गणपति बाबा फिर-फिर आइए, अगले वर्ष जल्दी आइए' के नारे से गगन गूँज उठता है।

भारत के सभी नगरों और महानगरों में महाराष्ट्र के लोग रहते हैं। उनकी प्रेरणा से और सर्वमंगल-विघ्ननाशक होने के नाते हिन्दू-जन भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी को बड़े धूमधाम से गणेश जी की शोभा-यात्रा निकालकर आनन्दोत्सव मनाते हैं।

(20) नवरात्र

संकेत बिंदु—(1) आसुरी शक्तियों पर विजय का प्रतीक (2) नवरात्रों का महत्त्व (3) दुर्गा सप्तशती पाठों का महत्त्व (4) शारदीय नवरात्रों का महत्त्व (5) दुर्गा के नौ रूपों का परिचय।

नवरात्र-महोत्सव आसुरी शक्ति पर दैवी-शक्ति की विजय का प्रतीक है। मानव-मन को आध्यात्मिक प्रेरणा देने की शक्ति का पर्व-समूह है। दिन-प्रतिदिन आत्मा की पहचान की सीढ़ी-दर-सीढ़ी यात्रा है।

नवरात्र शक्ति की अधिष्ठात्री दुर्गा देवी के नव-स्वरूपों की पूजा के नवरात्रियों का समूह है। 'सप्तशती' के अनुसार दुर्गा के नौ रूप हैं—(1) शैल पुत्री (2) ब्रह्मचारिणी (3) चंद्रघंटा (4) कूष्माण्डा (5) स्कन्द माता (6) कात्यायिनी (7) कालरात्रि (8) महागौरी तथा (9) सिद्धिदात्री। इन्हीं नव स्वरूपों की पूजा अर्चना के लिए नवरात्रियों की कल्पना की गई है। शक्ति की पूजा के लिए शुक्ल-पक्ष की रात्रि का समय नियत करना स्वाभाविक ही है। अत:एव रात्रि के नाम पर ही नौ दिन-होने वाली पूजा के कारण 'नवरात्र' नाम पड़ा है।

स्कन्दपुराण के 'काली खण्ड' में नौशक्तियों का उल्लेख मिलता है : शतनेत्रा, सहस्त्रास्या, अयुतभुजा, अश्वारूढ़ा, गणास्या, त्वरिता, शव वाहिनी, विश्वा और सौभाग्य गौरी। भारत का दक्षिणी भू-भाग नवरात्र के पावन अवसर पर वन दुर्गा, शूलिनी, जातवेदा, शान्ति, शबरी, ज्वाला, दुर्गा, लवणा, आसुरी और दीप दुर्गा नाम से नौ दुर्गाओं को नमन करता है।

चैत्र के नवरात्रों को 'वासन्तिक' और आश्विन के नवरात्रों को 'शारदीय' विशेषण से विभूषित किया जाता है। दोनों नवरात्रों में प्रकृति का वातावरण प्राय: एक समान होता है। न अधिक ठंडक, न अधिक गर्मी। शीतल, मन्द, सुगन्ध पवन बहने लगती है। प्रकृति वृक्षों, लता, वल्लरियों, पुष्पों एवं मंजरियों की आभा से दीप्त हो जाती है। रात्रि की मनोहरता तो दोनों ही नवरात्रों में अत्यधिक बढ़ जाती है।

वासन्तिक नवरात्र का भी अपना महत्त्व है। प्रथम, चैत्र के नवरात्र के प्रथम दिन चैत्र शुक्ला प्रतिपदा संवत् का प्रथम दिन है। नव-वर्ष की बधाई का दिन है और अन्तिम दिन अर्थात् नवमी श्रीराम का जन्मदिन है। दूसरे, वह मधुमास का नवरात्र है, जिसमें मधु के स्रोत फूट पड़ते हैं। एक ओर मानव मन की उमंग और दूसरी ओर नवरात्र की पूजा का संयम।

वासंतिक और शारदीय नवरात्रों में 'दुर्गा सप्तशती' के वीर-रस पूर्ण सुललित, मनोरम, कर्ण कुहरों में आनन्द की धारा बहाने वाले श्लोकों का पाठ करने-सुनने का विशेष महत्त्व है। 'दुर्गा सप्तशती' का पाठ पढ़ने या श्रवण करने से दु:ख-बाधाओं से छुटकारा मिलने

के साथ ही माँ दुर्गा की कृपा दृष्टि भी बनी रहती है। ध्यातव्य है कि मार्कण्डेय पुराण का 'देवी माहात्म्य' खण्ड 'दुर्गा सप्तशती' के नाम से जाना जाता है। इसमें देवी के चरित्र का विशद वर्णन है। समूचे संस्कृत-साहित्य में इससे बढ़कर लोकप्रिय दूसरा स्तोत्र ग्रन्थ नहीं। सम्भवत: हिन्दी में रामचरितमानस इसकी लोकप्रियता का प्रतिद्वन्द्वी ठहरता है। श्रद्धा, भक्ति और पूज्य भावों के प्रसार में यह ग्रन्थ अद्वितीय है।

सम्पूर्ण भारत में और विशेषत: बंगाल में शारदीय नवरात्रों का विशेष महत्त्व है, 'शरत्काले महापूजा क्रियते या च-वार्षिकी।' भक्ति-भाव से दुर्गा की पूजा-अर्चना करना, पांडाल स्थापित करना, यहाँ के जन-जन के उल्लास का प्रतीक है। दुर्गा-पूजा का उत्सव आश्विन शुक्ला सप्तमी से दशमी (विजयदशमी) तक मनाया जाता है, लेकिन एक मास पूर्व से ही इसकी तैयारियाँ शुरू हो जाती हैं। दशमी के दिन दुर्गा की मूर्तियां की भव्य एवं विशाल शोभायात्रा निकाल कर जल-विसर्जन करना बंगाल की आत्मा को दुर्गामय बना देता है। इन दिनों वहाँ विवाहित पुत्रियों को माता-पिता द्वारा अपने घर बुलाने की भी प्रथा है।

दक्षिण में यह पर्व शैवों के लिए शिव पर उमा के प्रेम की विजय का प्रतीक है तो वैष्णवों के लिए लक्ष्मी-विष्णु के वरण की सफलता का प्रतीक है। सामंतों में युद्धरत दुर्गा की पूजा और बलि चढ़ाने का प्रतीक है। अष्टमी या नवमी के दिन कुँआरी कन्याओं का पूजन किया जाता है और दक्षिणा दी जाती है।

नवरात्र पूजा-पाठ का पर्व है। अत: भक्ति-भाव से माँ दुर्गा के रूपों की पूजा, अर्चना-वंदना तथा दुर्गा-सप्तशती का पठन या श्रवण अपेक्षित है। नवरात्र में की गई पूजा मानव-मन को पवित्र और भगवती दुर्गा के चरणों में लीन कर जीवन में सुख, शान्ति और ऐश्वर्य की समृद्धि करती है।

सर्वमङ्गल माङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिकं।
शरण्ये त्र्यम्बिके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते॥

नवरात्र (नौ दिनों की विशिष्ट उपासना) के रूप में निष्ठापूर्वक शक्ति साधना और उसके पश्चात् विजय-यात्रा अर्थात् विजयदशमी का आयोजन कर्मचेतना की उत्कृष्टता का अन्यतम उदाहरण है। वस्तुत: बिना साधना के सच्ची विजय मिल भी नहीं सकती।

दुर्गा के नव रूपों का संक्षिप्त परिचय :

(1) शैल पुत्री

शारदीय नवरात्र का आरम्भ आश्विन शुक्ल प्रतिपदा से आरम्भ होता है। नव दुर्गा पूजन में प्रतिपदा के दिन शैल पुत्री के पूजन का विधान है। इस प्रकार नवरात्र की पूजा-अर्चना का श्रीगणेश शैल पुत्री से होता है।

राजा हिमवान् (हिमालय) एवं मैना की पुत्री को शैलपुत्री कहते हैं। शैल पुत्री के दो रूप हैं—(1) सती और (2) पार्वती।

सती के रूप में शैल पुत्री ने अपने पति के सम्मान को ठेस लगने पर अपना जीवन योगाग्नि में भस्म कर दिया। क्योंकि दक्ष प्रजापति ने अपने यज्ञ में भगवान् शंकर को निमंत्रण नहीं दिया था। दूसरे जन्म में पार्वती के रूप में शक्ति की अधिष्ठात्री बनी। इसीलिए देवी भगवती के नौ स्वरूपों में शैल पुत्री को प्रथम स्थान प्राप्त हुआ और सर्वप्रथम उनकी पूजा की गयी।

(2) ब्रह्मचारिणी

नवरात्र की दूसरी दुर्गा-शक्ति का नाम है ब्रह्मचारिणी, जिसका पूरा अस्तित्व ही उदात्त कौमार्य शक्ति का पर्याय है। ब्रह्मचारिणी अर्थात् 'जो ब्रह्म में विचरण करे।'

'ब्रह्मणि चरितुं शीलं यस्या या ब्रह्मचारिणी' अर्थात् सच्चिदानन्दमय ब्रह्मस्वरूप की प्राप्ति जिसका स्वभाव है, वह देवी ब्रह्मचारिणी है।

देवी की यह ज्योतिर्मयी भव्य मूर्ति है। आनन्द से परिपूर्ण है। अध्यात्म ने आज के दिन को ब्रह्मप्रसाद माना है और तांत्रिकों के लिए सात्त्विक साधना का सुअवसर।

(3) चंद्रघंटा

'चंद्रः घंटायां यस्याः' आह्लादकारी चंद्रमा जिनकी घंटा में स्थित हो, उन देवी का नाम है चन्द्रघंटा। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं, चंद्र घंटा देवी के मस्तक पर घंटा के आकार का अर्धचंद्र विराजमान है।

माँ दुर्गा का यह शांत एवं शीतलता प्रदान करने वाला स्वरूप है। 'या देवी सर्वभूतेषु शांति रूपेण संस्थिता।' इनके प्रचंड भयंकर घंटे की ध्वनि से सभी दुष्ट, दैव्य, विनाशकारी शक्तियों का विनाश होता है। वह शांत भाव से भक्तों की मनःकामनाएँ पूरी करती हैं।

(4) कूष्माण्डा

भगवती दुर्गा की चौथी शक्ति का नाम है कूष्माण्डा। सूर्य मंडल के मध्य में स्थित होने के कारण इसका तेज दशों दिशाओं में व्याप्त है। इनके पूजन से भक्तों के तेज एवं ओज में वृद्धि होती है। इनकी आठ भुजाएँ हैं। सिंह पर आसीन हैं। कुष्मांड (कुम्हड़ा, काशीफल) की बलि विशेष प्रिय होने के कारण इनका नाम कूष्माण्डा प्रसिद्ध हुआ।

माँ भगवती कूष्मांडा का पूजन करने से भक्त मनवांछित फल प्राप्त करते हैं। जो सहस्रों सूर्यों के समान दीप्त है, सूर्यमंडल के समान है, जो अपने तेज से सभी दिशाओं को प्रकाशित करती है, जिसकी आठ भुजाएँ हैं, जो अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित है, जिसे कूष्मांड की बलि (उपहार) प्रिय है, उसे ही कूष्मांडा जानो। वह भक्तों के तेज और ओज को बढ़ानेवाली है।

(5) स्कन्द माता

आदि शक्ति दुर्गा का पंचम स्वरूप है स्कन्द माता। स्कन्द शिव-पार्वती के पुत्र हैं। देव सेना के सेनापति हैं। स्कन्द कार्तिकेय का पर्याय है। वीर स्कन्द की जननी होने के कारण पंचम शक्ति को 'स्कन्द माता' कहा गया।

इनकी तीन आँखें और चार भुजाएँ हैं। ये शुभ्रवर्णा हैं तथा पद्म के आसन पर विराजमान हैं। पुत्रवत्सला आदि शक्ति महामाया भगवती मातृस्नेह से अभिभूत होकर अपने भक्तों एवं उपासकों की गोद भरती हैं।

(6) कात्यायनी

नवरात्र के छठे दिन आदि शक्ति दुर्गा के छठे स्वरूप देवी कात्यायनी के पूजन-अर्चन का विधान है।

महर्षि कात्यायन ने आदिशक्ति भगवती त्रिपुर सुन्दरी की उपासना करके उनसे यह वरदान प्राप्त किया कि वे धराधाम पर रहने वाले दु:ख संतप्त प्राणियों की रक्षार्थ उनके घर में अवतरित होंगी। भगवती महर्षि कात्यायन के आश्रम पर प्रकट हुईं। महर्षि ने उन्हें अपनी कन्या माना। इसलिए वे देवी कात्यायनी नाम से प्रसिद्ध हुईं।

(7) काल रात्रि

विश्व के समाप्ति सूचक महाकाल, सबका नाश करने वाले काल की भी रात्रि की रात अर्थात् विनाशिका होने के कारण दुर्गा को सप्तम शक्ति कालरात्रि के नाम से जानी गई।

मधु और कैटभ नामक दुष्ट दैव्यों के अत्याचार से आक्रांत सृष्टि को मुक्त करने के लिए महाशक्ति ने 'काल रात्रि' के रूप में रौद्र रूप धारण किया और दोनों दैत्यों का संहार किया।

(8) महागौरी

महागौरी आठवीं दुर्गाशक्ति हैं। तपस्या द्वारा परम गौर वर्ण प्राप्त करने के कारण ये 'महागौरी' नाम से विख्यात हुईं।

देवी के तीन नेत्र हैं। वृषभ (बैल) इनकी सवारी है। श्वेत वस्त्र तथा अलंकार धारण करती हैं। चार भुजाएँ हैं। ऊपर बाएं हाथ में त्रिशूल है। ऊपर के दाएं हाथ में डमरू, वाद्य तथा नीचे वाले दाहिने हाथ वर मुद्रा में हैं।

(9) सिद्धिदात्री

दुर्गादेवी की नवीं शक्ति का नाम है सिद्धि दात्री। यह अष्ट सिद्धियों को देने वाली है। योग-साधन से प्राप्त होने वाली आठ सिद्धियों के नाम इस प्रकार हैं—(1) अणिमा (2) महिमा (3) गरिमा, (4) लघिमा (5) प्राप्ति (6) प्राकाम्य (7) ईशित्व और (8) वशित्व। ये सब सिद्धियाँ इस महाशक्ति की कृपा दृष्टि से अनायास ही सुलभ हो जाती हैं।

यह देवी सिंह वाहिनी, चतुर्भुजा एवं प्रसन्नवदना हैं। दुर्गा के इस स्वरूप की पूजा-उपासना देव, ऋषि, मुनि, योगी, साधक और भक्त, सभी करते हैं।

(21) विजयादशमी

संकेत बिंदु—(1) शक्ति पर्व के रूप में (2) दस संख्याओं का महत्त्व (3) विजयादशमी से संबंधित घटनाएँ (4) विभिन्न राज्यों में पर्व का महत्त्व (5) रा. स्व. सेवक संघ की स्थापना।

विजयादशमी शक्ति पर्व है। शक्ति की अधिष्ठात्री देवी दुर्गा के नव स्वरूपों की नवरात्र पूजन के पश्चात् आश्विन शुक्ल दशमी को इसका समापन 'मधुरेण समापयेत्' के कारण 'दशहरा' नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस प्रकार नव-रात्र पाप-पक्षालन और आत्म-शक्ति संचय कर आत्म-विजय प्राप्त्यर्थ शक्ति-पूजन का पर्व है। दशमी, उस अनुष्ठान की सफलतापूर्वक समाप्ति की उपासना का प्रतीक है, आत्म-विजय का द्योतक है।

डॉ. सीताराम झा 'श्याम' का मानना है, 'जैसे वैदिक अनुष्ठान में 'तीन' (त्रिक) की प्रधानता है, वैसे ही आदि शक्ति की उपासना में 'दस' संख्याओं का महत्त्व अधिक है। इसी से 'दशहरा' नाम से यह अनुष्ठान विख्यात है। निम्न विवरण से यह बात और अधिक स्पष्ट हो जायेगी—

तत्त्वतः, दसों दिशाओं ऊर्ध्व, अधः, पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, अग्निकोण, ईशानकोण, वायुकोण और नैर्ऋत्यकोण में आदिशक्ति का ही प्राबल्य है। इसके अतिरिक्त, शक्ति-उपासना के क्रम में दस महाविद्याओं—काली, तारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, भैरवी, छिन्नमस्ता, धूमावती, बगलामुखी, मातंगी और कमलात्मिका का ध्यान सिद्धि में परम सहायक होता है। इनमें से किसी एक रूप की आराधना से ही दसों प्रकार के पाप—कायरता, भीरुता, दारिद्र्य, शैथिल्य, स्वार्थपरता, परमुखापेक्षिता, निष्क्रियता, असावधानी, असमर्थता एवं वंचकता का नाश तत्काल हो जाता है। दस मस्तक वाले रावण का संहार भगवान् राम ने शक्ति की महती साधना से ही किया था। इसी प्रकार, दस इन्द्रियों—आँख, कान, नाक, जीभ, त्वचा (ज्ञानेन्द्रियाँ), हाथ, पैर, जिह्वा, गुदा, उपस्थ (कर्मेन्द्रियाँ) को वश में करना भी शक्ति-अर्चना से ही संभव होता है। दशमी की विजय-यात्रा दुर्गा के जिन नौ रूपों—शैलपुत्री, ब्रह्मचारिणी, चन्द्रघण्टा, कूष्माण्डा, स्कन्दमाता, कात्यायनी, कालरात्रि, महागौरी एवं सिद्धिदात्री की आराधना के पश्चात् आयोजित की जाती है, उनमें महान् संकटों को दूर करने के अमोघ उपायों का शाश्वत निर्देश है।' (स्तरीय निबन्ध : पृष्ठ 203)

विजयादशमी के पावन दिन देवराज इन्द्र ने महादानव वृत्रासुर पर विजय प्राप्त की। मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम ने राक्षस संस्कृति के प्रतीक लंका नरेश से युद्ध के लिए इसी दिन प्रस्थान किया था। (श्रीराम ने इस दिन रावण पर विजय प्राप्त की थी, यह धारणा अब समाप्त हो रही है, क्योंकि वाल्मीकि रामायण में इसका कहीं उल्लेख नहीं है।) इसीदिन पांडवों ने अपने प्रथम अज्ञातवास (एक चक्रा नगरी में ब्राह्मण वेश में रहने के उपरान्त) की अवधि समाप्त कर द्रौपदी का वरण किया था। महाभारत का युद्ध भी इसी दिन आरम्भ हुआ था।

कृषि प्रधान भारत में खेत में नवधान्य प्राप्ति रूपी विजय के रूप में भी मनाया जाता है। कारण, क्वारी या आश्विनी की फसल इन्हीं दिनों काटी जाती है।

उत्तर भारत में विजयदशमी 'नौरते' टाँगने का पर्व भी है। बहिनें भाइयों के टीका कर कानों में नौरते टाँगती हैं। 'नौरते' टाँगने की प्रथा कब शुरू हुई, यह कहना कठिन है, परन्तु इसकी पृष्ठभूमि में नवरात्र पूजन की सफलता और कृषि की उपज की विजय-श्री का भाव लगता है। बहनें नवरात्र-पूजन को विधिविधान से सम्पन्न करने के उपलक्ष्य में अपने भाइयों को बधाई रूप में नवरात्र में बोए 'जौ' (अन्न) के अंकुरित रूप नौरतों को कानों में टाँगती हैं। कुमकुम का तिलक करती हैं। दुर्गा-पूजा की प्रसादी रूप में पाती हैं मुद्रा।

शक्ति के प्रतीक शस्त्रों का शास्त्रीय-विधि से पूजन विजयदशमी का अंग है। प्राचीन काल में वर्षा काल में युद्ध का निषेध था। अत: वर्षा के चतुर्मास में शस्त्र शस्त्रागारों में सुरक्षित रख दिए जाते थे। विजयादशमी पर उन्हें शस्त्रागारों से निकालकर उनका पूजन होता था। 'शस्त्र पूजन' के पश्चात् शत्रु पर आक्रमण और युद्ध किया जाता था। इसी दिन क्षत्रिय राजा सीमोल्लंघन भी करते थे।

कालांतर में सीमोल्लंघन का रूप बदल गया। महाराष्ट्र में विजयादशमी 'सिलंगन' अर्थात् सीमोल्लंघन रूप में मनाई जाती है। सायंकाल गाँव के लोग नव-वस्त्रों से सुसज्जित होकर गाँव की सीमा पार कर शमी वृक्ष के पत्तों के रूप में 'सोना' लूटकर गाँव लौटते हैं और उस सुवर्ण का आदान-प्रदान करते हैं। शमी वृक्ष में ऋषियों का तपस्तेज माना जाता है।

बंगाल में विजयादशमी का रूप दुर्गा-पूजा का है। वहाँ अनास्थावादी, नास्तिक तथा नक्सलवादी भी माँ दुर्गा की कृपा और आशीष चाहते हैं। बंगालियों की धारणा है कि आसुरी शक्तियों का संहार कर दशमी के दिन माँ दुर्गा कैलास पर्वत को प्रस्थान करती है अत: वे दशहरे के दिन दुर्गा की प्रतिमा की बड़ी धूमधाम से शोभा-यात्रा निकालते हुए पवित्र नदी, सरोवर अथवा किसी महानद में विसर्जित कर देते हैं।

हिन्दी भाषी प्रांतों में नवरात्रों में रामलीला मंचन की प्रथा है। आश्विन शुक्ल प्रतिपदा से मंचन आरम्भ कर दशमी के दिन रावण-वध दर्शाकर विजयपर्व मनाया जाता है। भव्य शोभा-यात्रा रामलीला मंचन का विशिष्ट आकर्षण होता है। लाखों लोग श्रद्धा व भक्तिभाव से 'रामलीला' का आनन्द लेते हैं।

विजयादशमी के दिन ही सन् १९२५ में भारत राष्ट्र की हिन्दू राष्ट्रीय अस्मिता, उसके अस्तित्व, उसकी पहचान और उसके गौरवशाली अतीत से प्रेरित एक परम वैभवशाली राष्ट्र के पुनर्निमाण हेतु परम पूज्य डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना की।

विजयादशमी धार्मिक दृष्टि से आत्म-शुद्धि का पर्व है। पूजा, अर्चना, आराधना और तपोमय जीवन-साधना उसके अंग हैं। राष्ट्रीय दृष्टि से सैन्य-शक्ति संवर्द्धन का दिन है। शक्ति के उपकरण शस्त्रों की सुसज्जा, लेखा-जोखा तथा परीक्षण का त्यौहार है। आत्मा को आराधना और तप से उन्नत करें, राष्ट्र को शस्त्र और सैन्यबल से सुदृढ़ करें, यही विजयादशमी का संदेश है।

(22) करवा चौथ (करक चतुर्थी)

संकेत बिंदु—(1) पति की दीर्घायु का व्रत (2) उपवास का कारण और प्रकार (3) पर्व की विविधता (4) करवा चौथ की सार्थकता (5) पतिव्रता नारी और पति का कर्त्तव्य।

पति की दीर्घायु और मंगलकामना हेतु हिन्दू-सुहागिन नारियों का यह महान् पावन पर्व है। करवा (जल-पात्र) द्वारा कार्तिक मास के कृष्ण-पक्ष की चतुर्थी को चन्द्रमा को अर्ध्य देकर पारण (उपवास के बाद का पहला भोजन) करने का विधान होने से इसका नाम करवा चौथ है। करवा चौथ और करक-चतुर्थी पर्यायवाची हैं। चन्द्रोदय तक निर्जल उपवास रखकर पुण्य संचय करना इस पर्व की विधि है। चन्द्र दर्शनोपरांत सास या परिवार में ज्येष्ठ श्रद्धेय नारी को बायन (बायना) दान देकर 'सदा सौभाग्यवती भव' का आशीर्वाद लेना व्रत साफल्य का सूचक है।

सुहागिन नारी का पर्व होने के नाते यथासम्भव और यथाशक्ति न्यूनाधिक सोलह शृंगार से अलंकृत होकर सुहागिन अपने अन्त:करण के उल्लास को प्रकट करती है। पति चाहे गूँगा हो, बहरा हो, अपाहिज हो, क्षय या असाध्य रोग से ग्रस्त हो, क्रूर-अत्याचारी-अनाचारी या व्यभिचारी हो, उससे हर प्रकार का संवाद और संबंध शिथिल पड़ चुके हों, फिर भी हिन्दू नारी इस पर्व को कुंठित मन से ही सही, मनाएगी अवश्य। पत्नी का पति के प्रति यह मूक समर्पण दूसरे किसी भी धर्म या संस्कृति में कहाँ?

पुण्य प्राप्ति के लिए किसी पुण्य तिथि में उपवास करने या किसी उपवास के कर्मानुष्ठान द्वारा पुण्य संचय करने के संकल्प को व्रत कहते हैं। व्रत और उपवास द्वारा शरीर को तपाना तप है। व्रत धारण कर, उपवास रखकर पति की मंगलकामना सुहागिन का तप है। तप द्वारा सिद्धि प्राप्त करना पुण्य का मार्ग है। अत: सुहागिन करवा चौथ का व्रत धारण कर उपवास रखती हैं।

समय, सुविधा और स्वास्थ्य के अनुकूल उपवास करने में ही व्रत का आनन्द है। उपवास तीन प्रकार के रखे जाते हैं—

(क) ब्राह्म मुहूर्त से चन्द्रोदय तक, जल तक भी ग्रहण न करना।

(ख) ब्राह्ममुहूर्त में सर्गी, मिष्टान्न, चाय आदि द्वारा जलपान कर लेना।

(ग) दिन में चाय या फल स्वीकार कर लेना, किन्तु अन्न ग्रहण नहीं करना।

भारतीय पर्वों में विविधिता का इन्द्रधनुषीय सौन्दर्य है। इस पर्व के मनाने, व्रत, रखने उपवास करने में मायके से खाद्य-पदार्थ भेजने, न भेजने, रूढ़ि-परम्परा से चली कथा सुनने-न सुनने, बायना देने-न देने, करवे का आदान-प्रदान करने-न करने, श्रद्धेय, प्रौढ़ा से आशीर्वाद लेने-न लेने की विविध शैलियाँ हैं। इन सब विविधता में एक ही उद्देश्य निहित है, 'पति का मंगल।'

पश्चिमी सभ्यता में निष्ठा रखने वाली सुहागिन, पुरुष-मित्रों में प्रिय विवाहित नारी तथा बॉस की प्रसन्नता में अपना उज्ज्वल भविष्य सोचने वाली पति के प्रति अपूर्ण निष्ठिता का भी करवा चौथ के दिन सब ओर से ध्यान हटाकर व्रत के प्रति निष्ठा और पति के प्रति समर्पण करवा-चौथ की ही महिमा है।

हिन्दू धर्म विरोधी, 'खाओ-पीओ मौज उड़ाओ' की सभ्यता में सरोबार तथा कथित प्रगतिशील तथा पुरुष-नारी समानता के पक्षपाती एक प्रश्न खड़ा करते हैं कि करवा चौथ का पर्व नारी के लिए ही क्यों? हिन्दू धर्म में पुरुष के लिए पत्नी-व्रत का पर्व क्यों नहीं?

भारतीय समाज पुरुष प्रधान है। 19.9 प्रतिशत परिवारों का संचालन-दायित्व पुरुषों पर है। पुरुष अर्थात् पति। ऐसे स्वामी, परम-पुरुष, परम-आत्मा, जिससे समस्त परिवार का जीवन चलता है, सांसारिक कष्टों और आपदाओं में अपने पौरुष का परिचय देता है, परिवार के उज्ज्वल भविष्य की ओर अग्रसर करने में जो अपना जीवन समर्पित करता है, उसके दीर्घ जीवन की मंगलकामना करना कौन-सा अपराध है?

यह एक कटु सत्य है कि पति की मृत्यु के बाद परिवार पर जो दुःख-कष्ट आते हैं विपदाओं का जो पहाड़ टूटता है, उससे नारी का जीवन नरक-तुल्य बन जाता है। 'निराला' जी ने सच ही कहा है—

वह क्रूर काल तांडव की स्मृति रेखा-सी
वह टूटे तरु की छुटी लता-सी दीन
दलित भारत की विधवा है। (अपरा, पृष्ठ 57)

रही 'पत्नी-व्रत' की बात। पति चाहे कितना भी कामुक हो, लम्पट हो, नारी-मित्र का पक्षधर हो, अपवाद-स्वरूप संख्या में नगण्य-सम पतियों को छोड़कर सभी पति परिवार-पोषण के संकल्प से, व्रत से आबद्ध रहते हैं। अपना पेट काटकर, अपनी आकांक्षाओं को कुचलकर, अपने दुःख-सुख की परवाह छोड़कर इस व्रत का नित्य पालन करते हैं। अपने परिवार का भरण-पोषण, सुख-सुविधा और उज्ज्वल भविष्य मेरा दायित्व है, मेरा व्रत है। वह इस व्रत-पालन में जीवन की सिद्धि मानता है—

व्रतेन दीक्षामाप्नोति, दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति, श्रद्धया सत्यमाप्यते।

व्रत से दीक्षा प्राप्त होती है। दीक्षा से दक्षिणा प्राप्त होती है। दक्षिणा से श्रद्धा प्राप्त होती है। श्रद्धा से सत्य की प्राप्ति होती है।

(23) दीपावली

संकेत बिंदु—(1) उल्लास व प्रकाश का उत्सव (2) पर्वों का समूह (3) अमावस्या का महत्त्व (4) महापुरुषों के जीवन से संबंधित घटनाएँ (5) घरों की सजावट व खरीददारी का दिन।

दीपावली प्रकाश का अन्यतम पर्व है। 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' का महान् उत्सव है। मन को आलोकित करने का त्यौहार है। धन, सम्पत्ति, सौभाग्य एवं सत्त्वगुण की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी के पूजन का दिवस है। जन-मन की प्रसन्नता, हर्षोल्लास एवं श्री-सम्पन्नता की कामना का महापर्व है। अनेक महान् तथा पूज्य पुरुषों के जीवन से सम्बद्ध प्रेरणाप्रद घटनाओं का स्मृति पर्व है।

कार्तिक की अमावस्या दीपावली का शुभ दिन है। अमावस्या की काली रात को हिन्दू-जनता, घर-घर में दीपकों की पंक्ति जलाकर उसे पूर्णिमा से अधिक उजियाला बना देती है। यह उजियाला न केवल वातावरण को उज्ज्वल करता है, अपितु मन के अंधकार को हटाकर उसे ज्योतिर्गमय करने का संदेश भी देता है।

दीपावली एक दिवसीय पर्व नहीं, यह पर्व समूह है जो कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी से शुक्ल पक्ष की दूज तक बड़े हर्षोल्लास से समारोहपूर्वक सम्पन्न होता है। ये उत्सव हैं धन-त्रयोदशी, नरक चतुर्दशी, दीपावली, गोवर्धन पूजा (अन्नकूट) तथा भातृद्वितीया (भैयादूज)।

दीपावली आदिकाल में आर्यों की आर्थिक सम्पन्नता एवं हर्षोल्लास का पर्व रहा होगा। आर्थिक सम्पन्नता का मापदंड था कृषि उपज। फसल के घर आने को स्वर्ण-भरण माना गया होगा। वर्ष-भर के कड़े श्रम के बाद घर आई 'अन्न-धन' रूपी लक्ष्मी का स्वागत करने के लिए घर-आँगन लीप-पोत कर साफ-सुथरे किए जाते रहे होंगे और अभावों के कूड़े-करकट को झाड़-बुहार का एक किनारे फेंक दिया जाता रहा होगा। प्रत्येक घर में नए कपास की बाती से, नए तिल के तेल में दीप संजोया जाता रहा होगा और नए वर्ष की अगवानी की जाती रही होगी।

इसीलिए दीपावली से एक मास पूर्व घर की सफाई, लिपाई-पुताई तथा दीप-प्रज्वलन की परम्परा प्राचीन काल की देन है।

समुद्र-मंथन से प्राप्त चौदह रत्नों में लक्ष्मी भी एक रत्न थी। इस लक्ष्मी रत्न का प्रादुर्भाव कार्तिक की अमावस्या को हुआ था। उस दिन से कार्तिक की अमावस्या लक्ष्मी-पूजन का पर्व बना। इस अवसर पर लक्ष्मी जी के साथ गणेश-पूजन का भी विधान है।

लक्ष्मी जी धन-सम्पत्ति की अधिष्ठात्री देवी हैं और गणेश जी विघ्ननाशक तथा मंगल के देवता हैं। लक्ष्मी-गणेश के समन्वित पूजन का अर्थ है—धन का मंगलमय संचयन और उसका धर्म सम्मत उपभोग। अन्यथा धन-सम्पत्ति पाप एवं जीवन में विघ्नों की उपस्थिति का कारण बन जाएगी।

लक्ष्मी श्रम-साध्य है। कृषि संस्कृति का मूल-मंत्र ही श्रम है। धर्म पर आधारित लक्ष्मी का पूजन श्रम-बिन्दुओं से होता है। गणपति इस श्रम को मंगलकारी बनाते हैं। इसलिए धर्म पर आधारित अर्थ (लक्ष्मी) कमलासना है और अधर्म पर आधारित लक्ष्मी उलूकवाहिनी। अत: लक्ष्मी के साथ गणपति का पूजन होता है।

एक किंवदन्ती यह भी है कि भारतीय-संस्कृति के आदर्श पुरुष श्रीराम लंकेश्वर रावण

पर विजय प्राप्त कर भगवती सीता सहित जब अयोध्या लौटे, तो अयोध्यावासियों ने उनके स्वागत के लिए घरों को सजाया और रात्रि को दीपमालिका की। श्रीराम के अयोध्या लौटने के प्रसंग को 'दीपावली' से सम्बद्ध कर दिया गया है। (पर यह भी जनश्रुति मात्र ही है, तथ्य नहीं)

दीपावली के पावन दिन मे अन्य अनेक महापुरुषों के जीवन की घटनाओं का भी सम्बन्ध है। महाराज युधिष्ठिर का राजसूय-यज्ञ इसी दिन सम्पन्न हुआ था।

राजा विक्रमादित्य आज के ही दिन सिंहासन पर बैठे थे। जैन धर्म के अन्तिम तीर्थंकर महावीर स्वामी, आर्य समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा सर्वोदयी नेता आचार्य विनोबा भावे का स्वर्गारोहण दिवस भी है। वेदान्त के प्रसिद्ध विद्वान् स्वामी रामतीर्थ का जन्म, ज्ञान प्राप्ति तथा निर्वाण, तीनों इसी दिन हुए थे। सिक्खों के छठे गुरु हरगोविन्द जी ने इसी दिन कारावास से मुक्ति पाई थी।

भले ही ये घटनाएँ कार्तिक अमावस्या को हुई थीं, पर 'दीपावली' का उत्सव तो समाज हजारों वर्षों से मनाता आ रहा है। अत: इस उत्सव से उनका कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं।

दीपावली का वैज्ञानिक महत्त्व भी है। दीपावली से पूर्व वर्षा ऋतु समाप्त हो जाती है, किन्तु घरों में मच्छरों, खटमलों, पिस्सुओं और अन्यान्य विषैले कीटाणुओं की भरमार छोड़ जाती है। मलेरिया व टाइफाइड के फलने-फूलने के दिन होते हैं। दूसरे, वर्षभर की गन्दगी से घर की अस्वच्छता पराकाष्ठा पर होती है। अत: दीपावली से महीने-भर पहले ही गरीब और अमीर, सभी अपनी-अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार घरों की सफाई, लिपाई-पुताई और सजावट करते हैं। इससे घर की गन्दगी दूर हो जाती है। नीले थोथे के मिश्रण से की गई सफेदी से मच्छर मर जाते हैं। सरसों के तेल के दीपक जलाने से रोगादि के कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। सरसों के तेल का धुआँ (काजल) आँखों के लिए अत्यन्त लाभप्रद है।

दीपावली के दिन घरों, दुकानों, मंडियों तथा बाजारों को खूब सजाया जाता है। रात्रि को प्रज्वलित किये जाने वाले नन्हें दीपों के प्रकाश से अमावस का गहनतम नष्ट हो जाता है। विद्युत् के प्रकाश से सर्वत्र चकाचौंध भर जाती है। पुष्पमालाओं, पन्ने-पत्तियों की झिलमिल लड़ियों, कागज की रंगीन-अद्भुत लहरियों तथा कलात्मक झंडियों से यह शोभा द्विगुणित हो जाती है।

रात्रि के प्रथम प्रहर से अर्धरात्रि तक आतिशबाजी का दौर, इस पर्व के उल्लास-उत्साह तथा परम-हर्ष को प्रकट करता है। आतिशबाजी की अग्नि से विभिन्न प्रकार की रंग-बिरंगी आकर्षक झड़ियाँ हृदय को विभोर कर देती हैं। बच्चों के हाथों से जलती फुलझड़ियाँ, पटाखों की लड़ियों की पट-पट की कर्ण-बेधी आवाज, अनार और बमों से निकलती स्वर्णिम चिंगारियाँ, गगन को छूती और गगन में फूटती हवाइयों की विचित्र अग्नि-रश्मियाँ दर्शकों के मन में अद्भुत उत्साह, प्रेरणा और खुशियाँ भर देती हैं।

दीपावली खरीददारी की उमंग का दिन है। मिट्टी के खिलौनों तथा दीवे, मोमबत्तियाँ, तस्वीरें-कलेण्डर, दीपावली-शुभकामनाएँ और पूजा-सज्जा के लिए उपकरण के समान, मिठाई, सूखे-मेवे तथा फल, पुष्प, पुष्पमालाओं, आतिशबाजी के समान आदि की दुकानों

पर अपार भीड़ होती है। ग्राहक जितने अधीर हैं, दुकानदार भी विद्युत् यन्त्र की भाँति उतनी ही त्वरा से विक्रेय वस्तु देने को तत्पर हैं।

दीपावली पारिवारिक-मंगल-कामना के विस्तार का पर्व है। इस दिन बंधु-बांधवों तथा मित्रों को बधाई देना तथा उपहार भेजना मंगल-कामना के विस्तार का प्रतीक और सुसंस्कृत रूप है।

(24) मकर-संक्रांति

संकेत बिंदु—(1) मकर-संक्रांति का अर्थ (2) सूर्य के संक्रमण में महत्त्वपूर्ण संयोग (3) अलग-अलग राज्यों में पर्व का महत्त्व (4) तिल, गुड़ और मेवे का सेवन (5) उत्तरायण और दक्षिमायन का महत्त्व।

पृथ्वी सूर्य की चहुँ ओर परिक्रमा करती है। सूर्य के क्रमण करने का जो मार्ग है उसमें कुल सत्ताईस नक्षत्र हैं तथा उनकी बारह राशियाँ हैं। ये राशियाँ हैं—मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ और मीन। किसी मास की जिस तिथि को सूर्य एक राशि से दूसरी राशि में प्रवेश करता है, उसे संक्रान्ति कहा जाता है। 'सम् + क्रांति' = संक्रान्ति। संक्रान्ति का अर्थ ही है सूर्य का एक राशि से अन्य राशि में जाना। सूर्य बारह मास में बारह राशियों में चक्कर लगाता है। जिस दिन सूर्य मेष आदि राशियों का भ्रमण करता हुआ मकर राशि में प्रवेश करता है, उस दिन को 'मकर-संक्रान्ति' कहते हैं।

सूर्य के संक्रमण में दो महत्त्वपूर्ण संयोग हैं—(1) उत्तरायण (2) दक्षिणायन। सूर्य छह मास उत्तरायण में रहता है और छह मास दक्षिणायन में। उत्तरायण काल में सूर्य उत्तर की ओर तथा दक्षिणायन-काल में सूर्य दक्षिण की ओर मुड़ता हुआ-सा दिखाई देता है। इसीलिए उत्तरायण-काल की दशा में दिन बड़ा और रात छोटी होती है। इसकी विपरीत दक्षिणायन की दशा में रात बड़ी और दिन छोटा होता है। 'मकर-संक्रान्ति' सूर्य के उत्तरायण की ओर उन्मुख और 'कर्क-संक्रान्ति' सूर्य के दक्षिणायन की ओर उन्मुख होने को कहते हैं।

मकर-संक्रान्ति सूर्य पूजा का पर्व है। सूर्य कृषि का देवता है। सूर्य अपने तेज से अन्न को पकाता है, समृद्ध करता है। इसीलिए उसका एक नाम 'पूषा' (पुष्ट करने वाला) भी है। मकर-संक्रान्ति के दिन सूर्य-पूजा करके किसान भगवान् भास्कर के प्रति अपनी कृतज्ञता अर्पित करता है।

तमिलनाडु का पोंगल मकर-संक्रान्ति का पर्याय है। पंजाब में लोहड़ी का पर्व मकर-संक्रान्ति की पूर्व संध्या को मनाया जाता है। मकर-संक्रान्ति को 'माघी' भी कहते हैं। तमिलनाडु के लोग इसे द्रविड सभ्यता की उपज मानते हैं। यही कारण है कि द्रविड लोग इसे धूम-धाम से मनाते हैं। मद्रास में पोंगल ही ऐसा पर्व है जिसे सभी वर्ग के लोग मनाते हैं। मकर-संक्रांति का यह पर्व असम में 'माघ बिहू' के नाम से मनाया जाता है।

पंजाब की लोहड़ी हँसी-खुशी और उल्लास का विशिष्ट पर्व है। मकर-संक्रांति की पूर्व

संध्या पर लकड़ियाँ एकत्रित कर जलाई जाती हैं। तिलों, मक्की की खीलों से अग्नि-पूजन किया जाता है। अग्नि के चहुँ ओर नाचना-गाना पर्व के उल्लास का प्रतीक है। प्रत्येक पंजाबी परिवार में नव-वधू या नव-शिशु की पहली लोहड़ी को विशेष समारोह से मनाया जाता है।

उत्तर-भारत में इस पर्व पर गंगा, यमुना अथवा पवित्र नदियों या सरोवरों में स्नान तथा तिल, गुड़, खिचड़ी आदि दान देने का महत्त्व है। लड़की वाले अपनी कन्या के ससुराल मकर-संक्रान्ति पर मिठाई, रेवड़ी, गजक तथा गर्म वस्त्रादि भेजते हैं। उत्तर-भारत में नव-वधू की पहली संक्रान्ति का विशेष महत्त्व है। नव-वधू के मायके से वस्त्र, मीठा तथा बर्तन आदि काफी समान भेजने की प्रथा है। सधवा स्त्रियाँ इस दिन विशेष रूप में चौदह वस्तुएं मनसती हैं और परिवार में अथवा गरीबों में बाँटती हैं। वस्तुओं में कम्बल, स्वेटर, साड़ी से लेकर फल और मेवा तक मिनसे जाते हैं।

आंध्र प्रदेश में तो यह पर्व पौष मास की पूर्णिमा से दो दिन पूर्व शुरू हो जाता है। अन्तिम दिन गृहणियाँ आमंत्रित सजातीय सुहागनों के माथे व मंगलसूत्र पर कुंकुम, चेहरे पर चन्दन, पैरों में हल्दी लगाती हैं। अबीर और गुलाल छिड़कती हैं। गुड़ मिश्रित तिल तथा बेर आँचल में दिए जाते हैं। अयंगार वैष्णव खिचड़ी में घी व गुड़ मिलाकर, उसके गोले बनाकर क्षत्रियों के घरों में देते हैं।

शीत ऋतु के लिए तिल, गुड़, मेवा आदि बलवर्द्धक पदार्थ हैं। इनके सेवन से शरीर में बल और वीर्य बढ़ता है।

जो व्यक्ति इस शीत ऋतु में तिल, रुई, पान, गर्म जल (से स्नान) और गर्म भोजन का सेवन नहीं करता, वह मंद भागी है। संक्राति-पर्व पर यह तिल, गुड़, मेवा दान की प्रथा शायद इसलिए रही है कि कोई मंद भागी न रहे। दूसरी ओर, चौदह वस्तुओं के मिनसने की पृष्ठभूमि भी यही रही है कि जिनके पास गर्म वस्त्र या तन ढकने को कपड़े अल्प हों, उन्हें भी दान में ये वस्तुएं प्राप्त हो जाएँ।

मकर-संक्राति के दिन प्रत्येक पवित्र नदी या सरोवर पर स्नानार्थियों का मेला-सा लगता है, किन्तु तीर्थराज प्रयाग और गंगा सागर (कलकत्ता) में इस अवसर पर विशाल मेला लगता है, जहाँ देश के अन्य प्रान्तों से भी सहस्रों तीर्थयात्री पहुँचते हैं।

उत्तर-अयन अर्थात् मकर रेखा से उत्तर और कर्क रेखा की ओर होने वाली सूर्य की गति। ऋतु-गणना के अनुसार शिशिर, वसन्त और ग्रीष्म, इन तीन ऋतुओं में सूर्य उत्तर दिशा में गमन करता है। उत्तरायण की अवधि छह मास की है

उत्तरायण काल में सूर्य अपने तेज से संसार के स्नेह भाग (जलीयांश) को हर लेता है तथा वायु तीव्र और शुष्क होकर संसार के स्नेह भाग का शोषण करती है।

दक्षिण-अयन अर्थात् सूर्य की वह गति जो कर्क रेखा से दक्षिण और मकर रेखा की ओर होती है। ऋतु गणना के अनुसार वर्षा, शरद् तथा हेमंत, इन तीन ऋतुओं में सूर्य दक्षिण की ओर गमन करता है। दक्षिणायन की अवधि भी छह मास है।

इन छह महीनों में मेघ, वर्षा एवं वायु के कारण सूर्य का तेज कम हो जाता है। चन्द्रमा बलवान् रहता है। आकाश से (वर्षा के कारण) जल गिरने से संसार का ताप शांत हो जाता है।

(25) शिवरात्रि

संकेत बिंदु—(1) शिवरात्रि का पर्व (2) शिव-पार्वती विवाह का दिन (3) संस्कृति के समन्वयवादी रूप में शिव (4) मंदिरों की सजावट और पूजापाठ (5) आर्यसमाजियों द्वारा ऋषि बोधोत्सव रूप में मनाना।

फाल्गुन मास की कृष्ण चतुर्दशी को यह पर्व मनाया जाता है। निर्जल व्रत, रात्रि जागरण, चार पहरों की पूजा, दुग्ध से शिवलिंग का अभिषेक, शिव-महिमा का कीर्तन इस दिन पूजा-अर्चना के मुख्य अंग हैं।

शिवरात्रि का पर्व 'व्रतों का नरेश' कहा जाता है। 'शिवरात्रि व्रतं नाम सर्व पाप प्रणाशनम्' के अनुसार शिवरात्रि-व्रत सर्व पापों को नष्ट करने वाला है। इतना ही नहीं, यह व्रत व्रती को कामधेनु, कल्पवृक्ष और चिन्तामणि के सदृश मनोवांछित फल देने वाला है। 'भुक्ति मुक्ति प्रदायकम्' के अनुसार भोगों तथा मोक्ष का प्रदाता है। स्कन्द पुराण के अनुसार, 'जो मनुष्य इन तिथि को व्रत कर जागरण करता है और विधिवत् शिव की पूजा करता है, उसे फिर कभी अपनी माता का दूध नहीं पीना पड़ता, वह मुक्त हो जाता है। ज्योतिष के अनुसार अमावस्या में चंद्रमा सूर्य के समीप होता है, अत: उस समय जीवन रूपी चंद्रमा का शिवरूपी सूर्य के साथ संयोग होने से इष्ट सिद्धि की प्राप्ति होती है।'

शिवरात्रि शिव पार्वती के विवाह का दिन है। शिव-पार्वती के मिलन की रात है, शिव शक्ति पूर्ण समरस होने की रात है। इसलिए शिव ने पार्वती को वरदान दिया—' आज शिवरात्रि के दिन जहाँ कहीं तुम्हारे साथ मेरा स्मरण होगा, वहाँ उपस्थित रहूँगा।'

डॉ. विद्यानिवास मिश्र कहते हैं, 'लोग प्राय: इस उपस्थिति का मर्म नहीं समझते। सामान्य उपस्थिति सत्ता रूप में तो हर क्षण हर जगह है ही, पर भाव रूप में उपस्थिति माँग करती है, स्थल भावित हो, व्यक्ति भावित हो और समय भावित हो। शिवरात्रि के दिन इसी से काशी में भगवान् विश्वनाथ के यहाँ तीनों प्रभूत परिमाण में भावित मिलते हैं। इतने दिनों से इतने असंख्य श्रद्धालु बाबा विश्वनाथ की शरण में भाव से भरे आते हैं, उन सबका भाव आज के दिन उच्छल नहीं होगा?'

शिव अपनी पत्नी पार्वती सहित कैलास पर वास करते हैं। उनका सारा शरीर भस्म से विभूषित हैं। पहनने-बिछाने में वे व्याघ्र चर्म का प्रयोग करते हैं। गले में सर्प और कण्ठ नरमुण्ड माला से अलंकृत हैं। उनके सिर पर जटाजूट हैं, जिसमें द्वितीया का नव-चन्द्र जटित है। इसी जटा से जगत्पावनी गंगा प्रवाहित होती है। ललाट के मध्य में उनका तीसरा नेत्र है, जो अंतर्दृष्टि और ज्ञान का प्रतीक है। इसी से उन्होंने काम का दहन किया था। कण्ठ उनका नीला है। एक हाथ में त्रिशूल और दूसरे में डमरू शोभायमान है। वे ध्यान और तपोबल से जगत् को धारण करते हैं।

सर्व विघ्ननाशक गणेश और देव सेनापति कार्तिकेय शंकर जी के दो पुत्र हैं। भूत और प्रेत इनके गण हैं। 'नन्दी' नामक बैल इनका वाहन है। कृषि-भू भारत में बैल का अनन्य

स्थान है। 'उक्षाधार पृथिवीम्' अर्थात् समूची धरती बैल के सहारे स्थित है, कहकर वृषभ का वेद में गुणगान हुआ है।

शिव को भारतीय-संस्कृति के समन्वयवादी रूप में स्मरण किया जाता है, जिनके तेज से जन्मत: विरोधी प्रकृति के शत्रु भी मित्रवत् वास करते हैं। 'पार्वती का सिंह शिव के नंदी बैल को कुछ नहीं कहता। शिव-पुत्र कार्तिकेय का वाहन मोर शिव के गले में पड़े साँप को कभी छूता तक नहीं। शिव के गण वीरभद्र का कुत्ता गणेश के चूहे की ओर ताकता तक नहीं। परस्पर विरोधी भाव को छोड़कर सभी आपस में सहयोग तथा सद्भाव से रहते हैं।' (पावन झलकियाँ : मदनलाल विरमानी, पृष्ठ 14)

शिव मंदिरों में शिव-लिंग पूजन का प्रसंग गम्भीर एवं रहस्यपूर्ण है। पद्म-पुराण के अनुसार ऋषियों का आराध्य देव कौन हो, इसके निश्चयार्थ ऋषिगण शिव के पास पहुँचे। शिव भोग-विलास में व्यस्त थे। अत: द्वार पर ही ऋषियों को रोक दिया गया। मिलने में विलम्ब होने के कारण भृगु मुनि ने शिव को शाप दिया कि तुम योनि रूप में प्रतिष्ठित हो। तब से शिव लिंग-रूप में पूजित हैं। डॉ. राजबलि पाण्डेय का कथन है कि 'शिवलिंग शिव का प्रतीक है, जो उनके निश्चय ज्ञान और तेज का प्रतिनिधित्व करता है।'

(हिन्दू धर्म कोश : पृष्ठ 629)

शिवरात्रि के दिन शिव मंदिरों को सजाया जाता है। बिल्व-पत्र तथा पुष्पों से अलंकृत किया जाता है। शिव की अनेक मनमोहक झाँकियाँ दिखाई जाती हैं। गंगावतरण की झाँकी, शिव का प्रलयंकर रूप, शिव परिवार का दृश्य, इन झाँकियों में प्रमुख हैं। विद्युत् की चकाचौंध से झाँकियों और वातावरण को चमत्कृत किया जाता है।

हिन्दू-जन महाशिवरात्रि के दिन शिव के प्रति श्रद्धा भावना व्यक्त करने के लिए उपवास रखते हैं। मंदिरों में जाकर शिवलिंग पर दूध, बिल्व-पत्र तथा कमल और धतूरे के पुष्प, मंदारमाला चढ़ाकर, धूप-दीप नैवेद्य अर्पित करके पूजा-अर्चना करते हैं। भजन कीर्तन में भाग लेते हैं। प्रवचन सुनते हैं। हृदय-हारी झाँकियों को देखकर आत्मा को तृप्त करते हैं। मंदिरों में अपार भीड़ और धक्का-पेल आज भी शिव के प्रति अपार श्रद्धा का ज्वलंत प्रमाण है। मंदिरों की भव्यता और आकर्षक झाँकियों के दर्शनार्थ श्रद्धालु विभिन्न मंदिरों में जाकर अपने को कृतार्थ करते हैं।

महर्षि दयानन्द द्वारा स्थापित 'आर्य समाज' के मतावलम्बी महाशिवरात्रि को 'ऋषि बोधोत्सव' रूप में मनाते हैं। बालक मूलशंकर को शिवरात्रि के जागरण में शिवलिंग पर गणेशवाहन चूहे को देखकर बोध हुआ, 'पुराणोक्त कैलाश-पति परमेश्वर का वास शिवलिंग में नहीं हो सकता। यदि होता तो वे मूषक को प्रतीक-स्पर्श से रोकते।' उनमें ज्ञान का उदय हुआ। वे मूर्ति-पूजा के विरुद्ध हो गए। शिवरात्रि के दिन आर्य-समाजों की ओर से जलसे-सभाएँ आयोजित होते हैं। हवन-यज्ञ होते हैं। महर्षि दयानन्द के महान् कार्यों पर प्रवचन, भाषण होते हैं।

शिवरात्रि पर्व भगवान् शंकर की पूजा तथा भक्त की श्रद्धा और आस्था का पर्व है।

पाचन प्रक्रिया के उद्धार और आत्म-शुद्धि निमित व्रत का महत्त्व है। पूजा-अर्चना से उत्पन्न मन की शांति और धैर्य का जनक है। यह पाप कृत्यों के प्रक्षालन का दिन है। भावी जीवन में कल्याण, मंगल, सुख और शक्ति प्राप्तत्यर्थ अभ्यर्थना का पावन प्रसंग है। शिव पार्वती की वन्दना का महत्त्व तुलसी के इन शब्दों में देखिए—

भवानी शंकरौ वन्दे, श्रद्धाविश्वास रूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तः स्थमीश्वरम्॥

(रामचरितमानस)

(26) वाह! क्या मेला है/एकता का प्रतीक मेला

संकेत बिंदु—(1) मेरठ एक प्राचीन नगर (2) मेरठ का नौचन्दी मेला (3) मेले के मुख्य आकर्षण (4) मेले के तीन घर (5) उपसंहार।

उत्तर प्रदेश में एक विख्यात नगर मेरठ है। मेरठ रामायण काल और महाभारत काल की यादें अपने सीमे में समेटे है। मेरठ के निकटवर्ती ग्राम बनौनी में महऋर्षि वाल्मीकि का आश्रम है, जहाँ सीता अपने अन्त के बनवास काल में आयीं और यहीं लव-कुश का जन्म हुआ। मेरठ रावण की पत्नी मन्दोदरी की जन्म स्थल भी कहा जाता है। यही नहीं मेरठ के निकट ही बरनावा में पाण्डवों को जलाने के लिए लाक्षाग्रह का निर्माण भी हुआ था और मेरठ के निकट ही हस्तिनापुर में कौरवों की राजधानी भी बतायी जाती है।

मेरठ क्रांति में अग्रणी रहा, हिन्दी भाषा मेरठ की देन है। मेरठ की भूमि ने धर्म, भाषा, इतिहास और राजनीति के साथ-साथ साहित्य में भी अपना योगदान दिया है। इसी मेरठ में नौचन्दी का एक विशाल मेला लगता है। यह नौचन्दी का मेला प्रत्येक वर्ष होली के बाद का एक रविवार छोड़कर दूसरे रविवार से प्रारम्भ होता है और लगभग एक मास तक यह मेला चलता है।

मेरठ में जन-जन का वन्दन नौचन्दी।
मेरठ के माथे का चन्दन नौचन्दी॥

यह रचना कवि मनोहरलाल 'रत्नम्' ने नौचन्दी मेले को अर्पित करते हुए मेले की विशेषता का वर्णन किया है। नौचन्दी मेले की विशेषता यह है कि यह मेला शाम को लगभग 6 बजे प्रारम्भ होता है और प्रात: 6 बजे तक चलता है, दिन में यह मेला बंद कर दिया जाता है।

नौचन्दी मेले का प्राचीन नाम नव-चण्डी का मेला था, जो समय के साथ-साथ भाषा की सरलता के लिए नौचन्दी बन गया। इस मेले की ऐतिहासिकता यह है कि इस मेले में जहाँ एक ओर माँ चण्डी का भव्य मंदिर हैं वहीं मंदिर के सामने बालेमियाँ की दरगाह है, बीच में केवल एक सड़क है, मंदिर में पूरी रात भजन-कीर्तन होता है और दरगाह पर पूरी रात कव्वालियों का कार्यक्रम चलता है। मंदिर में शीर्ष गायक नरेन्द्रचंचल, लखविन्दर सिंह

लखा, सलीम, प्रमोद कुमार, कुमार विशु, सोनू-नेहा आदि अनेक भजन गायक दरबार में अपनी हाजिरी लगाते हैं तो दरगाह में देश भर के मशहूर कव्वाल अपनी कव्वालियों से दरगाह पर हाजिरी लगाते हैं। यदि देखा जाये तो हिन्दू-मुस्लिम की एकता का प्रतीक यह नौचन्दी मेला सारे भारत में विख्यात है।

इस मेले को देखने भारत ही नहीं विदेशों से भी लोग आते हैं और पूरी रात मेले का आनन्द उठाते हैं। लगभग तीन किलोमीटर के दायरे में लगने वाले इस मेले का प्रबन्ध एक वर्ष मेरठ नगरपालिका द्वारा किया जाता है और एक वर्ष मेरठ नगर परिषद् द्वारा होता है। मेले में खाने-पीने की दुकानें, खेल-खिलौने की दुकानें, सरकस, सिनेमा, खेल-तमाशे, मौत का कुआँ, नौका-विहार आदि अनेक प्रकार के मनोरंजन के साधन उपलब्ध होते हैं।

मेले का मुख्य आकर्षण पटेल मण्डप होता है जिसमें सांस्कृतिक कार्यक्रम, संगीत कार्यक्रम, मुशायरा और कवि-सम्मेलन, फैशन शो, बेबी शो, फिल्मी कलाकारों का जमावड़ा इत्यादि कार्यक्रम पंद्रह दिन तक प्रतिरात्रि चलते हैं। नौचन्दी मेले के विशेष आकर्षण कवि सम्मेलन में देश के विख्यात कवियों ने अपना कविता पाठ किया है, जिनमें काका हाथरसी, सुरेंद्र शर्मा, अशोक 'चक्रधर', ओम प्रकाश 'आदित्य', नरेन्द्र 'अजनबी', सोम ठाकुर, देवराज 'दिनेश', वेद प्रकाश 'सुमन', कृष्ण मित्र, निर्भय हाथरसी, कुँअर बेचैन, हरिओम पंवार, विष्णु सरस, महेन्द्र शर्मा, मनोहर लाल रत्नम्, रत्न सिंह 'रत्न' आदि अनेक कवि काव्य-पाठ करके माँ चण्डी को नमन कर चुके हैं। इसी प्रकार मुशायरे में देश के नामी शायरों ने अपनी रचनाओं से माँ चण्डी और बालेमियाँ को अपना सलाम पेश किया है।

यही क्रम पंजाबी कार्यक्रमों का भी है, पंजाबी के गायकों ने भी नौचंदी मेले में अपनी हाजरी लगायी है। पटेल मण्डप में सभी कार्यक्रमों में टिकट लगता है। यह कार्यक्रम रात्रि को लगभग 10 बजे प्रारम्भ होता है और प्रात:काल तक चलता रहता है। मेला देखने के लिए मेरठ के आसपास से लोग स्त्री-पुरुष, बच्चे, बूढ़े सभी आते हैं और अपनी मन पसंद चीज़ें मेले में घूमकर खरीदते भी हैं और मन पसंद खाते भी हैं।

मेले में कपड़े दुकानें, टेलीविज़न के स्टाल, बिजली के अनेक उपकरण, खाना बनाने के उपकरण, दवाइयों की दुकानें आदि अनेक प्रकार की प्रदर्शनी भी लगती हैं।

नौचंदी मेले के तीन मुख्य घर हैं, इन तीनों घरों से लोग आते-जाते हैं, आने और जाने के रास्ते अलग हैं। अनेक वर्षों से लगने वाले इस मेले की ऐतिहासिक विशेषता यह है कि मेरठ एक संवेदनशील शहर होने के बाद भी इस मेले में आज तक कभी हिन्दू-मुस्लिम दंगे की कोई घटना नहीं घटी।

नौचन्दी मेला देखने गये प्रत्येक दर्शक मेले के मुख्य घर को ही देखते ही कह देते हैं—"वाह क्या मेला है!" जैसे-जैसे मेले के भीतर लोग जाते हैं तो वह मेले को देखकर दंग रह जाते हैं, कहीं आसमान को मुँह चिढ़ाती लाइटें, कहीं रंग-बिरंगी बिजली के बल्बों की छटा, कहीं झरने से गिरता पानी, कहीं खेल-तमाशों का शोर और कहीं चूर्ण की गोलियाँ, टाफियाँ बाँटते दुकानदार! पूरी रात लगने वाला यह मेला दर्शकों के भरपूर मनोरंजन का साधन माना जाता है।

मेरठ में लगने वाला नौचन्दी का मेला इसलिए विशेष है कि इस मेले में जहाँ तरह-तरह के खाने का सामान, खेल-तमाशे, दुकानें, बाजार लगते हैं वहीं मन की शांति के लिए चण्डी देवी का मंदिर और बालेमियाँ की दरगाह आकर्षण का केंद्र है। नौचन्दी मेले में बिकने वाली मेरठ की 'नानखताई' विशेष उपहार माना जाता है। यह मेला एक बार हर आदमी को देखना चाहिए तभी तो वह कह सकेगा—"वाह क्या मेला है!"

राष्ट्रीय पर्व एवं विश्व-दिवस

(27) गणतंत्र दिवस : 26 जनवरी

संकेत बिंदु—(1) इतिहास में 26 जनवरी का महत्त्व (2) गणतंत्र दिवस के रूप में मनाना (3) राज्यों सरकारों द्वारा अनेक कार्यक्रम (4) सांस्कृतिक झाँकियाँ, बहुरंगी पोशाकें (5) उपसंहार।

भारत के राष्ट्रीय पर्वों में 26 जनवरी का विशेष महत्त्व है। यह तिथि प्रतिवर्ष आकर हमें हमारी लोकतंत्रात्मक-सत्ता का भान कराकर चली जाती है। यह दिवस हमारा अत्यन्त लोकप्रिय राष्ट्रीय पर्व बन गया है।

भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम का इतिहास बहुत लम्बा है। 26 जनवरी का दिन इस संघर्ष में नया मोड़ देने वाला विन्दु है। सन् 1929 तक स्वतन्त्रता-संग्राम के सेनानी औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग कर रहे थे, किन्तु जब अंग्रेज किसी भी तरह इसके लिए तैयार नहीं हुए, तब अखिल भारतीय कांग्रेस के तत्कालीन अध्यक्ष पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने अपनी दृढ़ता एवं ओजस्विता का परिचय देते हुए 1929 को लाहौर के समीप रावी नदी के तट पर घोषणा की यदि ब्रिटिश सरकार औपनिवेशिक स्वराज्य देना चाहें, तो 31 दिसम्बर, 1929 से लागू होने की स्पष्ट घोषणा करे, अन्यथा 1 जनवरी, 1930 से हमारी माँग पूर्ण स्वाधीनता होगी। इस घोषणा के बाद 26 जनवरी, 1930 को कांग्रेस द्वारा तैयार किया हुआ प्रतिज्ञा-पत्र पढ़ा गया। इसमें सविनय अवज्ञा और करबन्दी की बात कही गई।

इसी पूर्ण स्वतन्त्रता के समर्थन में 26 जनवरी, 1930 को सारे देश में तिरंगे (राष्ट्रीय) ध्वज के नीचे जलूस निकाले गए। सभाएँ की गईं। प्रस्ताव पास करके प्रतिज्ञाएँ की गईं कि जब तक हम पूर्ण स्वतन्त्र न हो जाएँगे, तब तक हमारा स्वतन्त्रता युद्ध चलता रहेगा। लाठियों, डण्डों, तोपों, बन्दूकों और पिस्तौलों से सजी हुई फौज और पुलिस से घिरे हुए भी हमने प्रतिवर्ष इस दिवस को अपनी पूर्ण स्वतन्त्रता-प्राप्ति की प्रतिज्ञा दोहराते हुए मनाया।

अब स्वतन्त्रता-दिवस का महत्त्व 15 अगस्त को प्राप्त हो गया, किन्तु 26 जनवरी फिर भी अपना महत्त्व रखती है। भारतीयों ने इसके गौरव को स्थिर रखने के लिए डॉ.

राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में देश के गण्यमान्य नेताओं द्वारा निर्मित विधान को 26 जनवरी, 1950 को लागू किया। इस दिन भारत में प्रजातांत्रिक शासन की घोषणा की गई। भारतीय संविधान में देश के समस्त नागरिकों को समान अधिकार दिए गए। भारत को गणराज्य घोषित किया गया। इसलिए 26 जनवरी को 'गणतन्त्र-दिवस' कहा जाता है।

भारत-राष्ट्र की राजधानी दिल्ली में यह समारोह विशेष उत्साह से मनाया जाता है। गणतन्त्र-दिवस की पूर्व संध्या को राष्ट्रपति राष्ट्र के नाम सन्देश प्रसारित करते हैं। यह कार्यक्रम दूरदर्शन पर देखा तथा आकाशवाणी से सुना जा सकता है।

गणतन्त्र-दिवस का प्रात:कालीन कार्यक्रम आरम्भ होता है, 'शहीद ज्योति' के अभिवादन से। प्रधानमन्त्री प्रात: ही 'इंडिया गेट' पर प्रज्वलित 'शहीद ज्योति' जाकर उसका अभिनन्दन करके राष्ट्र की ओर से शहीदों को श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

कुछ ही क्षण पश्चात् राष्ट्रपति-भवन से राष्ट्रपति की सवारी चलती है। छह घोड़ों की बग्घी पर यह सवारी दर्शनीय होती है। इस शाही बग्घी पर राष्ट्रपति अपने अंगरक्षकों सहित जलूस के रूप में विजय चौक तक आते हैं। सुरक्षात्मक कारणों से सन् 1999 से गणतंत्र दिवस समारोह में राष्ट्रपति बग्घी में नहीं, कार में पधारते हैं। परम्परानुसार किसी एक अन्य राष्ट्र के राष्ट्राध्यक्ष या राष्ट्रपति अतिथि रूप में उनके साथ होते हैं। तीनों सेनाध्यक्ष राष्ट्रपति का स्वागत करते हैं। तत्पश्चात् राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री का अभिवादन स्वीकार कर आसन ग्रहण करते हैं।

इसके बाद आरम्भ होती है गणतंत्र-दिवस की परेड। परेड का प्रारम्भ सेना के तीनों अंगों के सैनिक करते हैं। बैण्ड की धुन पर अपने-अपने शानदार गणवेश में सैनिकों का पथ-संचलन देखते ही बनता है। ऊँटों, घोड़ों तथा हाथियों पर सवार दस्तों के वाहनों की टापों की एकरूपता मनमोहक होती है।

अब भारत की विविधता में एकता प्रदर्शित करती हुई आती हैं विभिन्न राज्यों की सांस्कृतिक झाँकियाँ, तत्पश्चात् लोकनर्तक मंडलियाँ। राज्यों की ये झाँकियाँ दर्शनीय होती हैं। ये अपने राज्य की किसी विशिष्टता का प्रतीक होती हैं। लोक-नर्तक मंडलियों में लोक-नृत्य के साथ उस राज्य की वेशभूषा का सौन्दर्य दर्शनीय होता है।

युवा एवं बाल छात्र-छात्राओं की बहुरंगी पोशाकों वाली टोलियाँ परेड का विशेष आकर्षण होती हैं। एन.सी.सी. के कैडिटों का मार्च पास्ट, रंगीन पताकाओं को फहराती, बैण्ड बजाती एवं लेझिम, डम्बल आदि की ड्रिल करती स्कूलों की बाल-टोलियाँ हृदय को गुद्गुदा देती हैं। लाखों दर्शक ताली बजाकर उनका स्वागत करते हैं।

सबसे अन्त में वायुसेना के जहाज रंगीन गैस छोड़ते हुए विजय चौक के ऊपर से गुजरते हैं। जहाजों की आवाज सुनकर दर्शकों का ध्यान उड़ते हुए जहाजों की ओर बरबस खिच जाता है।

विजय चौक से लेकर लालकिले तक अपार जन-समूह इस कार्यक्रम को देखने के लिए जनवरी की शीत में भी सूर्योदय से पहले ही इकट्ठा होना शुरू हो जाता है। विजय

चौक पर जहाँ राष्ट्रपति सैनिकों की सलामी लेते हैं, बच्चों, युवकों तथा वृद्ध नर-नारियों की अपार भीड़ होती है।

सायंकाल सरकारी-भवनों पर बिजली की जगमगाहट होती है। रंग-बिरंगी आतिशबाजी छोड़ी जाती है। सांसदों, राजनीतिज्ञों, राजदूतों तथा गण्यमान्य व्यक्तियों को राष्ट्रपति भोज देते हैं।

भारत के विविध क्षेत्रों के विशिष्ट जनों को पद्मश्री, पद्मभूषण, पद्मविभूषण तथा भारत-रत्न की उपाधियों से विभूषित किया जाता है। वीरता तथा पराक्रम दिखाने वाले वीर सैनिकों को इस अवसर पर सम्मानित तथा अलंकृत किया जाता है। साहसी तथा विशिष्ट शौर्य प्रदर्शन करने वाले पुलिस जनों को भी विशिष्ट सेवा पदक से सम्मानित किया जाता है। यह सम्मान तथा अलंकरण लोगों में उत्साह उत्पन्न करता है। देशहित और अधिक निष्ठा व्यक्त करने की प्रेरणा जागृत करता है।

(28) विश्व पर्यावरण दिवस : 5 जून

संकेत बिंदु—(1) पर्यावरण दिवस के रूप में (2) प्रदूषण बढ़ने के कारण (3) वायु-प्रदूषण बढ़ाने वाले तत्त्व (4) जल प्रदूषण के दुष्प्रभाव (5) प्रदूषण के भयंकर परिणाम।

सम्पूर्ण विश्व में पर्यावरण की बिगड़ती स्थिति को ध्यान में रखते हुए इस समस्या की ओर जन-जन का ध्यान आकृष्ट करने के लिए प्रत्येक वर्ष 5 जून को विश्व पर्यावरण दिवस के रूप में मनाया जाता है। इस अवसर पर संयुक्त राष्ट्र संघ तथा उससे जुड़ी संस्थाओं द्वारा प्रत्येक वर्ष अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण गोष्ठियाँ आयोजित की जाती हैं जिनमें विश्व के पर्यावरण की बिगड़ती स्थिति पर चिन्ता व्यक्त की जाती है तथा इसके समाधान की दिशा में प्रतिभागी राष्ट्रों के प्रतिनिधियों द्वारा अपने सुझाव दिये जाते हैं तथा रणनीति तय की जाती है।

बढ़ता प्रदूषण मानवीय स्रोतों से उत्पन्न होता है। औद्योगीकरण और नगरीकरण की प्रक्रिया में घने वन-उपवन उजाड़े गए, इससे पर्यावरण-संतुलन बिगड़ गया। प्राकृतिक संसाधन ही नहीं बल्कि समूचा वायुमंडल विषाक्त हो गया। नदियाँ, समुद्र, भूजल, वायु सभी प्रदूषित हो चुके हैं। कार्बन डाइआक्साइड से वायुमंडल का ताप यदि इसी प्रकार बढ़ता रहा तो पहाड़ों पर जमी बर्फ तेजी से पिघलेगी और भीषण विनाश मच सकता है।

औद्योगिक-विकास का परिणाम यह हुआ कि 'ग्रीन हाऊस' गैसों की मात्रा बढ़ती गई। इन गैसों का संक्रेन्द्रण बढ़ने से सूर्य की रोशनी के जिस हिस्से से विकिरण द्वारा बाहर चला जाना चाहिए, वह हिस्सा पृथ्वी के वातावरण में फँसा रह जाता है। परिणामतः धरती की गर्मी बढ़ती है। कागज के कारखानों से हाइड्रोजन सल्फाइड, ताप बिजली घरों से सल्फर डाइआक्साइड, तेल शोधक कारखानों से हाइड्रोकार्बन और रासायनिक उर्वरक कारखानों

से अमोनिया उत्सर्जित होते हैं। इनसे वायुमंडल ही नहीं नदियाँ भी खतरनाक ढंग से प्रभावित हुई हैं। (राष्ट्रीय सहारा : हस्तक्षेप, 6.6.98)

प्रमुख प्रदूषणकारी तत्त्वों के स्वास्थ्य पर पड़ने वाले बुरे प्रभाव को केन्द्रीय नियंत्रण बोर्ड ने इस प्रकार दर्शाया है—

(1) **कार्बन मोनोक्साइड**—शरीर के तंतुओं तक आक्सीजन ले जाने की रक्त में मौजूद हामोग्लोबिन की क्षमता घट जाती है। परिणामत: केन्द्रीय नर्वस सिस्टम पर प्रतिकूल प्रभाव, स्नायु दुर्वलता तथा दृष्टि शक्ति क्षीणता फुफ्फुस के कार्य में परिवर्तन के दीर्घकालीन दुष्प्रभाव पड़ सकते हैं।

(2) **नाइट्रोजन के-आक्साइड**—श्वास-संबंधी रोग (दर्द, खांसी) उत्पन्न होते हैं। फुफ्फुस की दीवार की कोशिकाओं में परिवर्तन से दीर्घकालीन दुष्प्रभाव की संभावना बनती है।

(3) **सल्फर डाईआक्साइड**—दमा का आक्रमण होता है। फुफ्फुस की कार्य क्षमता घटने की संभावना से दीर्घकालीन दुष्प्रभाव पड़ सकता है।

(4) **धूलिकण**—कई रोगों से घिरने का अल्पकालिक प्रभाव स्वास्थ्य पर पड़ता है। दीर्घकालिक दुष्प्रभाव है—विषाक्तता और कैंसर।

(5) **हाइड्रोकार्बन**—दर्द, खाँसी और आँखों में जलन अल्पकालिक प्रभाव हैं। अनेक रोगों की उत्पत्ति इसके संभावित दीर्घकालिक दुष्प्रभाव हैं।

(6) **सीसा**—शरीर पर जटिल प्रतिकूल प्रतिक्रिया स्वास्थ्य पर पड़ने वाला अल्पकालिक प्रभाव है। जबकि लीवर और किडनी की क्षति, बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव, प्रजनन क्षमता की हानि, गर्भस्थ शिशु की क्षति संभावित दीर्घकालीन दुष्प्रभाव हैं।

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने प्रदूषित जल से होने वाले रोगों के नाम इस प्रकार गिनाए हैं—(1) हैजा (2) डायरिया (3) टायफाईड (4) पालियोमाईटिस (5) राउंडवर्म (6) ट्राकोमा (7) लौश्मानियसिस (8) शिस्टोसोमियासिस (9) गोनिया वर्म (10) स्लीपिंग सिकनेस (11) फाईलेरिया (12) मलेरिया (13) रीवर ब्लाइंडनेस (14) यलो फीवर तथा (15) डेंगू फीवर।

प्रदूषित जल की भयंकरता दर्शाते हुए विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट में कहा गया है कि डायरिया से 40 लाख, हैजा तथा मलेरिया से 20-20 लाख तथा शिस्टोसोमियासिस से २ लाख व्यक्ति (केवल विकासशील देश में) प्रतिवर्प काल का ग्रास बनते हैं।

औद्योगिक इकाइयों से निकलने वाला धुआँ तथा राख भी वायु प्रदूषण को बढ़ाने में काफी प्रभावी भूमिका निभाते हैं। एक गणना के अनुसार 450 लाख टन औद्योगिक राख हर वर्प हवा में मिलती है, जिसे हम साँस के रूप में अपने शरीर के अंदर ले जाते हैं। विभिन्न मेडिकल स्रोतों से जानकारी लेकर 'टेरी' का मानना है कि 1997 में वायु-प्रदूषण की वजह से मरने वालों की संख्या करीब 25 लाख थी।

जल, की हालत यह है कि जो जीवन के लिए दूसरी सबसे महत्त्वपूर्ण जरूरत है, देश के प्रथम एवं दूसरी श्रेणी के शहर नदियों में रोज 2000 करोड़ लीटर गंदा जल प्रवाहित करते हैं, जबकि उसमें मात्र 200 करोड़ लीटर ही शुद्ध किया जाता है। शेष गंदा जल देश की धमनियों में घूमता रहता है। देश में बढ़ते जा रहे कचरों के अंबार भी लोगों को बीमार बना रहे हैं। भारत के शहरों में आजकल करीब 480 लाख टन कचरा हर वर्ष इकट्ठा होता है और जिसके निषेधन की कोई उचित व्यवस्था हमारे पास नहीं है, अगर है भी तो अराजक, लचर और अप्रभावी। सन् 2047 तक देश 3 अरब टन कचरा, साढ़े चार अरब टन राख तथा उसका भी साठ गुना कागज की मात्रा से निपटने का बोझ झेलेगा। कुल मिलाकर हमारे देश का पर्यावरणीय भविष्य बहुत ही डरावना है।'

(सहारा : हस्तक्षेप 6 जून 1998 से उद्धृत)

(29) स्वतंत्रता दिवस : 15 अगस्त

संकेत बिंदु—(1) भारत की गुलामी का इतिहास (2) द्विराष्ट्र का सिद्धांत (3) लालकिले पर स्वतंत्रता दिवस समारोह (4) सरकारी स्तर पर स्वतंत्रता दिवस समारोह (5) अन्य कारणों से महत्त्वपूर्ण दिन।

विकास की आस भरा नवेन्दु-सा / हरा-भरा कोमल पुण्यभाल-सा।
प्रमोद-दाता विमल प्रभात-सा/ स्वतंत्रता का शुचि पर्व आ लसा।।

'15 अगस्त का शुभ दिन भारत के राजनीतिक इतिहास में सबसे अधिक महत्त्व का है। आज ही हमारी सघन कलुष-कालिमामयी दासता की लौह शृंखला टूटी थी। आज ही स्वतंत्रता के नवोज्ज्वल प्रभात के दर्शन हुए थे। आज ही दिल्ली के लालकिले पर पहली बार यूनियन जैक के स्थान पर सत्य और अहिंसा का प्रतीक तिरंगा झंडा स्वतंत्रता की हवा के झोंकों से लहराया था। आज ही हमारे नेताओं के चिरसंचित स्वप्न चरितार्थ हुए थे। आज ही युगों के पश्चात् शंख-ध्वनि के साथ जयघोष और पूर्ण स्वतंत्रता का उद्घोष हुआ था।' —बाबू गुलाबराय (राष्ट्रीयता : पृष्ठ 88)

भारत आदि से हिन्दू-भूमि रहा है। पृथ्वीराज को परास्त करने के लिए राजा जयचन्द द्वारा विदेशी बादशाह मोहम्मद गौरी की सहायता लेना और पृथ्वीराज द्वारा गौरी को 17 बार परास्त करके बंदी न बनाने की ऐतिहासिक भूल ने हिन्दू-भूमि पर इस्लाम का शासन स्थापित करवा दिया। मुगलों ने लगभग 1200 वर्ष तक भारत पर राज्य किया। इसके बाद कूटनीतिज्ञ अंग्रेजों ने ऐयाश, विलासी और गद्दी-प्राप्ति के लिए पारिवारिक षड्यंत्रों में संलग्न मुगल सल्तनत की जड़ें खोद कर ब्रिटिश राज्य स्थापित किया।

लगभग 200 वर्ष अंग्रेजों ने भारत में राज्य किया। उन्होंने भारत को एकसूत्र में पिरोकर एकात्मता के दर्शन करवाए। वैज्ञानिक उन्नति से देश को प्रगति-पथ पर अग्रसर किया। 'लॉ एण्ड आर्डर' की आदर्श व्यवस्था प्रस्तुत की। कूटनीति से श्रीलंका और बर्मा को भारत

से अलग कर उन्हें स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में प्रतिष्ठित किया। बंगाल को भी उन्होंने दो भागों में विभाजित करने की चेष्टा की थी, पर जनमत विरोध के कारण वे उसमें सफल न हो सके।

राजनीतिक दृष्टि से कांग्रेस ने ब्रिटिश राज्य को उखाड़ने के लिए अहिंसात्मक सत्याग्रह आन्दोलनों को अपनाया। क्रांतिकारियों ने सशस्त्र आक्रमणों द्वारा ब्रिटिश राज्य की नींद हराम की। सुभाषचन्द्र बोस द्वारा निर्मित 'आजाद हिन्द फौज' ने सैन्य बल से ब्रिटिश भारत पर आक्रमण किया।

भारत स्वतन्त्र तो हुआ, किन्तु अंग्रेजों की कूटनीति, मुसलमानों की हिंसक प्रवृत्ति तथा कांग्रेस के कर्णधारों के नैतिक ह्रास के कारण, द्वि-राष्ट्र सिद्धांत (Two Nations theory) के आधार पर विभाजित होकर। द्वि-राष्ट्र सिद्धांत था मुस्लिम राष्ट्र पाकिस्तान और हिन्दू-राष्ट्र हिन्दुस्तान। 14 अगस्त, 1947 को मुस्लिम-राष्ट्र पाकिस्तान का निर्माण होने पर ही 15 अगस्त, 1947 को यूनियन जैक भारत से उतरा।

15 अगस्त, 1947 को भारत स्वतन्त्र हुआ। अत: 15 अगस्त भारत का स्वातन्त्र्य-जन्म-दिवस है। राष्ट्रीय-जीवन में हर्ष और उल्लास का दिन है। स्वतन्त्रता की दीर्घायु की कामना का दिन है। इसलिए प्रांतों की राजधानियाँ तथा राष्ट्र की राजधानी दिल्ली राष्ट्रीय ध्वजों से सजाई जाती हैं। सरकारी राष्ट्रीय भवनों को विद्युत् दीपों से अलंकृत किया जाता है।

राष्ट्रीय स्तर पर मुख्य कार्यक्रम दिल्ली के लाल किले पर होता है। प्रात:काल से ही लोग 'लालकिले' पर पहुँचना प्रारम्भ कर देते हैं। लालकिले के सामने का मैदान और सड़कें खचाखच भरी होती हैं। जन-समूह उमड़ पड़ता है।

प्रधानमंत्री के आगमन से पूर्व समारोह का आँखों देखा हाल सुनाने वालों द्वारा आजादी की लड़ाई तथा ऐतिहासिक चाँदनी चौक के इतिहास पर प्रकाश डाला जाता है। साथ ही ध्वनि-विस्तारक से राष्ट्रीय गीतों और धुनों से जन-जन में राष्ट्रीय भावनाएँ जागृत की जाती हैं।

प्रधानमन्त्री के आगमन पर स्वतन्त्रता समारोह का शुभारम्भ होता है। जल, थल और नभ, तीनों सेनाओं की सैनिक टुकड़ियाँ तथा राष्ट्रीय छात्र सैन्य दल के छात्र-छात्राएँ सलामी देकर प्रधानमंत्री का स्वागत करते हैं। सैनिक बैंड अपनी मोहक धुन से स्वागत में माधुर्य-वृद्धि करता है।

प्रधानमंत्री लालकिले की प्राचीर पर पहुँच कर जन-जन का अभिनन्दन स्वीकार करते हैं। राष्ट्रीय ध्वज को लहराते हैं। ध्वजारोहण पर ध्वज को 31 तोपों की सलामी दी जाती है।

प्रधानमंत्री ध्वजारोहण के उपरान्त राष्ट्र के स्वतंत्रता दिवस की बधाई देते हैं। स्वतंत्रता के लिए न्यौछावर हुए शहीदों को स्मरण करते हैं। देश के कष्टों, कठिनाइयों, विपदाओं की चर्चा कर, उनसे राष्ट्र को मुक्त कराने का संकल्प करते हैं। देश की भावी योजनाओं पर प्रकाश डालते हैं। वर्ष-भर की उपलब्धियों पर हर्ष प्रकट करते हैं। राष्ट्र की शक्ति को निर्बल करने वाले आन्तरिक और बाह्य तत्त्वों पर प्रहार करते हैं। राष्ट्र को शत्रुओं के नापाक इरादों से सावधान करते हैं।

भाषण के अन्त में तीन बार 'जयहिन्द' का घोष करते हैं, जिसे लाखों कंठ दुहराते हैं। अन्त में राष्ट्रीय गीत के साथ प्रात:कालीन समारोह समाप्त होता है।

सायंकाल सरकारी भवनों (विशेषकर लालकिले) पर रोशनी की जाती है। आतिशबाजी छोड़ी जाती है। प्रधानमंत्री दिल्ली के प्रमुख नागरिकों, सभी राजनीतिक दलों के नेताओं, विभिन्न धर्मों के आचार्यों और विदेशी राजदूतों एवं कूटनीतिज्ञों को सरकारी भोज पर निमन्त्रित करते हैं। इस प्रकार यह दिन हँसी-खुशी से बीत जाता है।

भारत के सभी प्रान्तों में भी सरकारी स्तर पर यह पर्व मनाया जाता है। प्रभात-फेरियाँ निकलती हैं। मुख्यमन्त्री पुलिस-गार्ड की सलामी लेते हैं। राज्य सचिवालयों पर राष्ट्रीय-ध्वज लहराया जाता है, आतिशबाजी छोड़ी जाती हैं और गण्यमान्य नागरिकों को भोज दिया जाता है।

15 अगस्त राष्ट्र-स्वातन्त्र्य के लिए न्यौछावर हुए शहीदों की याद का दिन है। इस दिन शहीदों की चिताओं के प्रतीक रूप में निर्मित 'शहीद ज्योति' का अभिनन्दन किया जाता है। राष्ट्र को परतन्त्रकाल से नेतृत्व प्रदान करने वाले शहीद महात्मा गाँधी की समाधि पर श्रद्धा सुमन चढ़ाकर शहीदों के प्रति सम्मान प्रकट किया जाता है।

15 अगस्त अन्य कारणों से भी महत्त्वपूर्ण दिन है। पांडीचेरी के संत महर्षि अरविन्द का जन्म दिन है। स्वामी विवेकानन्द के गुरु स्वामी रामकृष्णपरमहंस की पुण्य-तिथि है।

पन्द्रह अगस्त प्रतिवर्ष आता है और 'हम स्वतन्त्र हैं और स्वतन्त्र रहेंगे', यह भाव जागृत कर चला जाता है। राष्ट्र और राष्ट्रीयता की हल्की-सी हलचल उत्पन्न कर जाता है। 'वर्ष में राष्ट्र ने क्या खोया और क्या पाया' का हिसाब प्रस्तुत कर जाता है। थोड़ी देर के लिए ही सही भारतमाता और भारत की स्वतन्त्र-सत्ता के लिए कर्तव्य-भाव जगा जाता है।

आइए, हम राष्ट्र-ध्वज को नमन करें, अपने राष्ट्रीय संकल्प को दुहराएं तथा स्वयं को राष्ट्र के गौरव एवं भारतीय-जन के कल्याण के लिए पुन: समर्पण की प्रतिज्ञा करें।

(30) शिक्षक दिवस : 5 सितम्बर

संकेत बिंदु—(1) शिक्षकों के सम्मान का दिन (2) डॉ. राधाकृष्णन का व्यक्तित्व (3) अध्यापक राष्ट्र निर्माता के रूप में (4) अध्यापक दिवस का महत्त्व विद्यालयों में (5) स्वतंत्रता पश्चात शिक्षा के स्तर में कमी।

शिक्षकों को गरिमा प्रदान करने वाला दिन है 'शिक्षक-दिवस'। शिक्षकों द्वारा किए गए श्रेष्ठ कार्यों का मूल्यांकन कर उन्हें सम्मानित करने का दिन है 'शिक्षक-दिवस'। समाज और राष्ट्र में 'टीचर' के गर्व और गौरव की पहचान कराने का दिन है 'टीचर्स-डे।' छात्र-छात्राओं के प्रति और अधिक उत्साह-उमंग से अध्यापन, शिक्षण तथा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में संघर्ष के लिए उनके अन्दर छिपी शक्तियों को जागृत करने का संकल्प-दिवस है 'अध्यापक-दिवस'। सम्मानित अध्यापक-अध्यापिकाओं के व्यक्तित्व और कृतित्व को

पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित कर उनकी कीर्ति और यश को गौरवान्वित करने का शुभ दिन है, 5 सितम्बर।

इसी प्रकार विभिन्न राज्यों से शिक्षण के प्रति समर्पित अति विशिष्ट शिक्षकों के नाम राज्य-सरकारें केन्द्र को भेजती हैं। राज्य-सरकारों द्वारा प्रस्तावित नामों को मानव संसाधन विकास मंत्रालय का शिक्षा-विभाग चुनता है। ऐसे चुने गए शिक्षकों को इस मंत्रालय द्वारा 5 सितम्बर को सम्मानित किया जाता है।

डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् प्रख्यात दार्शनिक, शिक्षा-शास्त्री, संस्कृतज्ञ और राजनयज्ञ थे। सन् 1962 से 1967 तक वे भारत के राष्ट्रपति भी रहे थे। राष्ट्रपति पद पर आने से पूर्व वे शिक्षा-जगत् से ही सम्बद्ध थे। प्रेजीडेंसी कॉलिज, मद्रास में उन्होंने दर्शन-शास्त्र पढ़ाया। सन् 1921 से 1936 तक कलकत्ता विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र के 'किंग जार्ज पंचम' प्रोफेसर-पद को सुशोभित किया। सन् 1936 से 1939 तक आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में पूर्वी देशों के धर्म और दर्शन के 'स्पाल्डिन प्रोफेसर' के पद को गौरवान्वित किया। सन् 1939 से 1948 तक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के उपकुलपति पद को गरिमा प्रदान की। राष्ट्रपति बनने के उपरान्त जब उनके प्रशंसकों ने उनका जन्मदिवस सार्वजनिक रूप से मनाना चाहा तो उन्होंने जीवनपर्यन्त स्वयं शिक्षक रहने के नाते इस दिवस को (5 सितम्बर) को शिक्षकों का सम्मान करने के हेतु 'शिक्षक-दिवस' के रूप में मनाने का परामर्श दिया। तब से प्रतिवर्ष यह दिन 'शिक्षक-दिवस' के रूप में मनाया जाता है।

अध्यापक राष्ट्र के निर्माता और राष्ट्र की संस्कृति के संरक्षक हैं। वे शिक्षा द्वारा बालकों के मन में सुसंस्कार डालते हैं तथा उनके अज्ञानान्धकार को दूर कर देश का श्रेष्ठ नागरिक बनाने का दायित्व वहन करते हैं। वे राष्ट्र के बालकों को न केवल साक्षर ही बनाते हैं, बल्कि अपने उपदेश के माध्यम द्वारा उनके ज्ञान का तीसरा नेत्र भी खोलते हैं। वे अपने छात्रों में भला-बुरा, हित-अहित सोचने की शक्ति उत्पन्न करते हैं। राष्ट्र के समग्र विकास में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं।

अध्यापक का पर्यायवाची शब्द है 'गुरु'। द्वयोपनिषद् के अनुसार, 'गु' अर्थात् अंधकार और 'रु' का अर्थ है 'निरोधक'। अंधकार का निरोध करने से गुरु कहा जाता है। स्कंदपुराण (गुरु गीता) के अनुसार 'रु' का अर्थ है 'तेज'। अज्ञान का नाश करने वाला तेज रूप ब्रह्म गुरु ही है, इसमें संशय नहीं।

तैतिरीयोपनिषद् में तो आचार्य को देव समान माना है, 'आचार्य देवो भव।' कबीर ने तो गुरु को परमेश्वर से भी बड़ा माना है—

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूँ पाय।
बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दिओ मिलाय॥

प्रश्न उठता है कि अध्यापक-दिवस विद्यालयों के प्रति ही समर्पित क्यों? महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय इसकी सीमा में क्यों नहीं आते जबकि डॉ. राधाकृष्णन्, जिनके जन्मदिन पर यह कार्यक्रम निर्धारित किया गया है, स्वयं महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध रहे हैं?

पहली बात, क्षेत्र की बात छोड़ दें तो डॉ. राधाकृष्णन् मूलत: अध्यापक थे। दूसरे, प्राथमिक से लेकर वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय ही विद्यार्थियों में संस्कारों के निर्माण स्थल हैं। यहाँ जिन संस्कारों के बीज उनमें अंकुरित होंगे, महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय में जाकर वे पल्लवित होंगे।

16 वर्ष की आयु तक अध्ययन करने की शैली, खेल के प्रति रुचि, एन.सी.सी. द्वारा अनुशासन, सभा-मंचों द्वारा वाद-विवाद प्रतियोगिता, संगीत और कला की साधना, स्काउटिंग द्वारा मानवीय भावनाओं की जागृति विद्यालयों में ही सम्भव है। इसी कारण शिक्षक-दिवस पर विद्यालयों के शिक्षकों का ही सम्मान करना उचित है।

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत के विद्यालयों की संख्या तो सुरक्षा के मुँह की तरह बढ़ी है, किन्तु उनकी पढ़ाई और व्यवस्था का स्तर बहुत गिरा है। राजकीय और राजकीय सहायता प्राप्त विद्यालयों में अध्यापन और अनुशासन का तो और भी बुरा हाल है। सेण्ट्रल बोर्ड ऑफ सेकेण्डरी एजूकेशन दिल्ली का परीक्षा-परिणाम इस बात का प्रमाण है। इन परिणामों का आँकड़ा 30-35% तक आ जाना इन स्कूलों की व्यवस्था और अध्यापकों की सक्रियता का दर्पण ही तो है। जब इन स्कूलों के आचार्य और प्राचार्य सम्मानित होते हों तो लगता है राजनीति के विष ने विद्यालयों को विषैला और विद्यार्थी को विद्या की अरथी उठाने पर विवश कर दिया है। व्यक्तित्व विकास के लक्ष्य के अभाव ने विद्यार्थी के आचरण को प्रभावित किया। आजीविका के अभाव ने विद्यार्थी को परजीवी बनाकर असामाजिक कर दिया है।

'मालविकाग्निमित्रम्' नाटक में महाकवि कालिदास कहते हैं—

लब्धास्पदोऽस्मीति विवादभीरोस्तितिक्षमाणस्य परेण निन्दाम्।
यस्यागम: केवल जीविकायां तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति॥

जो अध्यापक नौकरी पा लेने पर शास्त्रार्थ से भागता है, दूसरों के अंगुली उठाने पर भी चुप रह जाता है और केवल पेट पालने के लिए विद्या पढ़ाता है, ऐसा व्यक्ति पंडित नहीं वरन् ज्ञान बेचने वाला बनिया कहलाता है।

चावल या गेहूँ में कंकर देखकर चावलों को फेंका नहीं जाता, गेहूँ को अनुपयोगी नहीं माना जाता। समझदार व्यक्ति कंकर को चुन-चुन कर बाहर करता है और गेहूँ-चावल का सदुपयोग करता है। प्रशासन यदि बच्चों की शिक्षा-दीक्षा के प्रति समर्पित अध्यापकों को ही सम्मानित करे तो 'शिक्षक दिवस' और भी गौरवान्वित होगा। अपने नाम को सार्थक करेगा।

(31) हिन्दी दिवस : 14 सितम्बर

संकेत बिंदु—(1) हिंदी दिवस का महत्व (2) संविधान के अनुसार हिंदी की स्थिति (3) राजनीति, प्रांतीमता और अंग्रेजी पत्रों का हिंदी पर प्रभाव (4) हिंदी का विरोध (5) उपसंहार।

प्रतिवर्ष चौदह सितम्बर को मनाया जाने वाला हिन्दी-दिवस हिन्दी के राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित होने का गौरव और गर्वपूर्ण दिन है। हिन्दी के प्रति निष्ठा व्यक्त करने का दिन है। विश्व-भर में हिन्दी चेतना जागृत करने का दिन है। हिन्दी की वर्तमान स्थिति का सिंहावलोकन कर उसकी प्रगति पर विचार करने का दिवस है।

हिन्दी दिवस एक पर्व है। हिन्दी के हक में प्रदर्शिनी, मेले, गोष्ठी, सम्मेलन तथा समारोह आयोजन का दिन है। हिन्दी सेवियों को पुरस्कृत तथा सम्मानित करने का दिन है। सरकारी-अर्ध सरकारी कार्यालयों तथा बड़े उद्योगों में हिन्दी-सप्ताह और हिन्दी पखवाड़ा द्वारा हिन्दी मोह प्रकट करने का दिवस है।

संविधान सभा ने 14 सितम्बर 1949 को हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित किया। संविधान के अनुच्छेद 343 में लिखा गया—

'संघ की सरकारी भाषा देवनागरी लिपि में हिन्दी होगी और संघ के सरकारी प्रयोजनों के लिए भारतीय अंकों का अन्तरराष्ट्रीय रूप होगा', किन्तु अधिनियम के खंड (2) में लिखा गया 'इस संविधान के लागू होने के समय से 15 वर्ष की अवधि तक संघ के उन सभी प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी का प्रयोग होता रहेगा, जिसके लिए इसके लागू होने से तुरन्त पूर्व होता था।' अनुच्छेद की धारा (3) में व्यवस्था की गई—'संसद् उक्त पन्द्रह वर्ष की कालावधि के पश्चात् विधि द्वारा—(क) अंग्रेजी भाषा का (अथवा) अंकों के देवनागरी रूप का ऐसे प्रयोजन के लिए प्रयोग उपबन्धित कर सकेगी जैसे कि ऐसी विधि में उल्लिखित हो।'

इसके साथ ही अनुच्छेद (1) के अधीन संसद् की कार्यवाही हिन्दी अथवा अंग्रेजी में सम्पन्न होगी। 26 जनवरी, 1965 के पश्चात् संसद् की कार्यवाही केवल हिन्दी (और विशेष मामलों में मातृभाषा) में ही निष्पादित होगी, बशर्ते संसद् कानून बनाकर कोई अन्यथा व्यवस्था न करे।

प्रभु राम को चौदहवर्ष का वनवास हुआ था और पाँडवों को बारह वर्ष का, किन्तु हिन्दी को 15 वर्ष का वनवास मिला। पाँडवों के वनवास के साथ एक वर्षीय अज्ञातवास की शर्त थी, उसी प्रकार हिन्दी के साथ समृद्धि की शर्त थी। महाभारत के दुर्योधन ने हठ किया कि उसने पाँडवों को अज्ञातवास में पहचान लिया है, अत: उन्हें पुन: वनवास दिया जाए, पर उसकी गलतफहमी को किसी ने स्वीकार नहीं किया। स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने हिन्दी के 15 वर्षीय वनवासी-काल में हिन्दी की पहचान कर सन् 1963 में राजभाषा अधिनियम में संशोधन करवा दिया। 'जब तक भारत का एक भी राज्य हिन्दी का विरोध करेगा हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर सिंहासनारूढ़ नहीं किया जाएगा।' यह लोकतंत्र के मुँह पर तानाशाही का ज़ोरदार तमाचा था जो माँ भारती के चेहरे को आज भी कलंकित-पीड़ित कर रहा है। थी किसी कांग्रेसी राजनीतिज्ञ में हिम्मत जो पं. नेहरू का विरोध करता? माँ भारती के एक सच्चे सपूत कांग्रेसी सेठ गोविन्ददास ने ही संसद् में इस संशोधन-विधेयक के विरोध में मत दिया।

हिन्दी को उसका वर्चस्व प्राप्त न हो इसके लिए संविधानेतर कार्य भी जरूरी थे। पं. नेहरू तथा उनके कांग्रेसी प्रबल समर्थकों ने 'फूट डालो और राज्य करो' की नीति अपनाते हुए 'हिन्दी बनाम प्रांतीय भाषाओं' का विवाद खड़ा कर दिया। भारत राष्ट्र को दो भागों में विभक्त कर दिया—उत्तर (हिन्दी पक्षधर) और दक्षिण (हिन्दी विरोधी)। हिन्दी उत्तर-दक्षिण के विवाद में फँसकर 'सैंडविच' हो गई और अंग्रेजी इस उत्तर-दक्षिण के झगड़ों में देश की एकता बनाए रखने के लिए एकमात्र विकल्प बन गई। प्रांतीयता के मोह ने राष्ट्रीयता को डस लिया। आज उसी विष का परिणाम है कि केन्द्रीय राजनीति पर प्रांतीयता हावी है। हिन्दी आज ईस्वी सन् 2000 में प्रवेश करते हुए भी वनवासिनी ही है।

दूसरी ओर हिन्दी के प्रति अंग्रेजी-पत्रों और कूटनीतिज्ञों ने खुलकर व्यंग्य वाण मारे। उसे हिन्दी हिण्टर लैंड (हिन्दी का अन्दरूनी क्षेत्र), हिन्दी बैक वाटर्स (ठहरे हुए पानी जैसा हिन्दी क्षेत्र), काऊबेल्ट (गाय-बैलों का क्षेत्र) 'इंडियाज गटर' (देश की नाली) और टैकनीकल बैकवर्ड (तकनीकी दृष्टि से पिछड़ा हुआ) कहा जाता है। हिन्दी-भाषियों को 'धर्मान्ध जीलरस' तथा 'फेनेटिक' की संज्ञा दी गई है। सर्वश्री खुशवंतसिंह, रक्षत पुरी, अनीता मलिक और सुनील एडम्स जैसे विद्वान् और अंग्रेजी पत्रकार यह भूल जाते हैं कि हिन्दी वैज्ञानिक और व्यवस्थित भाषा है। यह पूरी तरह से ध्वन्यात्मक (फोनेटिक) है और इन्टरनेशनल फोनेटिक एल्फाबेट (अन्तरराष्ट्रीय ध्वन्यात्मक वर्णमाला) के अत्यन्त समीप मानी जाती है। विश्व के सैंतीस देशों के 110 विश्वविद्यालयों में इसके उच्चस्तरीय अध्ययन की व्यवस्था है।

अनेक हिन्दी विरोधी और हिन्दी पक्षधर हिन्दी की क्लिष्टता का रोना रोते हैं। पर वे भूल जाते हैं कि बोलचाल और साहित्यिक भाषा में अन्तर होता है। भावाभिव्यक्ति और रसानुभूति साहित्यिक भाषा की शर्त है। यदि सरलीकरण के नाम पर हिन्दी के मूल रूप को ही बिगाड़ दिया जाए तो वह संस्कृत से कटकर अलग होने पर विकृत हो जाएगी, हिन्दी-हिन्दी न रहेगी। बीसवीं सदी के अंत में हिन्दी के सरलीकरण के नाम पर हिन्दी के विद्वानों, लेखकों तथा बुद्धिजीवियों द्वारा हिन्दी का संस्कृत से मूलोच्छेदन हिन्दी को विकृत करने का कुत्सित षड्यंत्र है।

हिन्दी-विरोध दर्शाना और हिन्दी-पक्ष से आँखें मूद लेना आज के राजनेताओं की विवशता है। हिन्दी क्षेत्र में गैर-कांग्रेसी मुख्यमंत्री तथा केन्द्रीय मंत्री हिन्दी के कट्टर समर्थक रहे हैं। सत्ता प्राप्ति के पश्चात् वे हिन्दी को भूल गए। हिन्दी के प्रति उनकी वचनबद्धता पर उनकी राजनीतिक व्यूह रचना भारी पड़ गई। मुसलमानों का सहयोग पाने के लिए हिन्दी-प्रेम न्यौछावर कर दिया।

हिन्दी के चापलूस, स्वार्थी और भ्रष्ट अधिकारियों ने हिन्दी के विकास और समृद्धि के नाम पर अदूरदर्शिता और विवेकहीनता का परिचय दिया है। राजकीय कोश के अरबों-खरबों रुपए खर्च करके भी हिन्दी का जो भला हुआ है, वह आटे में नमक बराबर है। जब साधन भ्रष्ट होगा तो साध्य कैसे शुद्ध होगा? हिन्दी प्रचार के लिए प्रतिवर्ष करोड़ों रुपए

की हिन्दी पुस्तकें खरीदी जाती हैं। इस खरीद का मानदंड है, 'जिसे पिया चाहे वही सुहागन' और 'काली कलूटी से प्रेम हो गया तो वह पद्मिनी लगती है।' इसलिए कहना होगा, 'इस घर को आग लग गई, घर के चिराग से।'

इस राजकीय सोच का ही परिणाम है कि साहित्यिक पत्रिका 'धर्मयुग' ने दम तोड़ दिया। 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' स्वर्ग सिधार गया। 'आलोचना' और 'साहित्य-संदेश' अंग्रेजी की भीड़ में खो गए। साहित्यिक कृतियाँ हजार-दो हजार छपते-छपते 250-500 तक रह गईं। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने अंग्रेजी को कल्प-वृक्ष सिद्ध किया है तो दूरदर्शन ने हिन्दी की 'अर्थी' उठाने की कसम खाई हुई है।

हिन्दी-दिवस पर माँ भारती की प्रतिमा पर पुष्प चढ़ाकर, धूप-दीप जलाकर, उसका गुणगान और कीर्तन करके हम अपने को कृत-कृत्य समझते हैं, पर प्रतिमा की प्राण प्रतिष्ठा हेतु उसकी व्यावहारिक आरती उतारने के लिए दैनिक जीवन-शैली में अपनाने और सोच बनाने से हम कतराते हैं। जिस दिन यह चेतना भारत के जन-जन की आत्मा में जागेगी, उस दिन हिन्दी की प्राण प्रतिष्ठा होगी, तभी हिन्दी-दिवस की सार्थकता सिद्ध होगी।

(32) गाँधी जयन्ती : 2 अक्तूबर

संकेत बिंदु—(1) राष्ट्रीय पर्व के रूप में (2) गाँधी जी में अद्भुत नेतृत्व शक्ति (3) हरिजन सेवा संघ की स्थापना (4) हिंदू-मुस्लिम एकता और सत्य-अहिंसा (5) गाँधी जी में विचारों व क्रियाओं का विरोध और सांमजस्य।

2 अक्तूबर, 1869 को गाँधी जी भारत-भू पर प्रगटे थे। इसलिए कृतज्ञ राष्ट्र उनके जन्म-दिवस को, राष्ट्रीय-पर्व के रूप में मनाकर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है। अर्चना के अगणित स्वर मिलकर इस युग के सर्वश्रेष्ठ पुरुष और महामानव की वंदना करता है। राष्ट्र को उनकी देन, उपकार तथा वरदान के लिए 'गाँधी मेलों' द्वारा उनका पुनीत स्मरण करता है।

'अपने हाथ से कते सूत की लंगोटी पहनने वाले, चरखे को अहिंसा के प्रतीक के रूप में स्वीकार करके भारत के प्राचीन ग्राम्योद्यम एवं ग्राम्य-जीवन की महत्ता को मशीनों के वर्तमान युग में भी उज्ज्वल करने वाले; सहिष्णुता, त्याग, संयम और सादगी की मूर्ति बापू के जीवन की छाप आज हमारे खान-पान, रहन-सहन, भाव-विचार, भाषा और शैली, परिच्छद और परिधान, काव्य और चित्रकारी, दर्शन और सामाजिक व्यवहार धर्म-कर्म, राष्ट्रीयता और अन्तरराष्ट्रीयता, उनमें से प्रत्येक पर कहीं न कहीं देखी जा सकती है।

गाँधी जी में अद्भुत नेतृत्व-शक्ति थी। उन्होंने भारत को स्वतन्त्र करवाने के लिए कांग्रेस पार्टी के माध्यम से स्वातन्त्र्य आन्दोलन का नेतृत्व किया। सविनय अवज्ञा भंग, असहयोग, विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार; रॉलेट-एक्ट, नमक कानून, हरिजन एवार्ड आदि का विरोध राष्ट्रीय आन्दोलन के 'माइल-स्टोन' थे। जनता ने उनके नेतृत्व में जेलें भरीं, लाठियाँ

गोलियाँ खाईं, जीवन बलिदान कर दिए। अहिंसात्मक आन्दोलन को अपनाकर आस्था रूप में खिली जवानी के पुष्प समर्पित किए। 1942 का आन्दोलन 'करो या मरो' स्वातन्त्र्य समर का निर्णायक आन्दोलन था, जो गाँधी जी के नेतृत्व-सफलता का सर्वोत्कृष्ट प्रमाण है।

गाँधी जी ने शराब को शरीर और आत्मा का शत्रु बताकर उसका विरोध किया। हजारों महिलाएँ और पुरुष शराब की दुकानों पर धरना देने लगे। लाखों शराबियों और शराब का आस्वादन करने वालों ने जीवन में मद्य-निषेध का व्रत लिया।

गाँधी जी ने 'हरिजन-सेवा-संघ' की स्थापना की। हरिजनों के आत्मबल को ऊँचा उठाने के लिए 'अछूतोद्धार' कार्यक्रम शुरू किए। स्वयं हरिजन बस्ती में रहने लगे। अछूतों के प्रति की जाने वाली घृणा को प्रेम में बदला। कुएँ का पानी और मंदिर के पट उनके लिए खुले। 'निषेध' प्रवेश में परिवर्तित हुआ। हरिजनबन्धु न केवल हिन्दू धर्म के अविभाज्य अंग बने रहे, अपितु गाँधी जी के व्यवहार, कृत्य और कार्यक्रमों से वे सामाजिक और सांस्कृतिक सम्मान के पात्र भी बने।

गाँधी जी ने भारतीयों को स्वदेशी वस्तुओं से प्रेम करना सिखाया। विदेशी-वस्त्रों की होली जलवाई। विदेशी-वस्तुओं का बहिष्कार करने की प्रवृत्ति बनाई। परिणामतः घर-घर में चरखा चला। खद्दर का प्रयोग बढ़ा। खद्दर हमारे शरीर की आन, बान और शान बना। खादी-आश्रम खुले। करघे चले, लाखों लोगों को रोटी-रोजी का साधन मिला। राष्ट्रीयता की एक पहचान बनी।

गाँधी जी ने हिन्दू-मुस्लिम एकता का श्रीगणेश किया। मुसलमानों को राष्ट्रीयता के प्रवाह में प्रवाहित होने के लिए प्रेरित किया। हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के लिए अनेक बार उपवास किए। 'हिन्दू-मुस्लिम भाई भाई' उनका आदर्श वाक्य बना। हिन्दुओं ने हठधर्मिता छोड़ी। मुस्लिम-सुविधा के लिए अपने धार्मिक-सामाजिक, सिद्धान्तों की बलि चढ़ाई। मुस्लिम आत्मा को चोट पहुँचाने वाले कृत्यों से सावधान-सचेत रहे। परिणामतः राष्ट्र भक्त अनेक मुसलमान कांग्रेस के कंठहार बने। जैसे—मौलाना अबुल कलाम आजाद, खान अब्दुलगफ्फार खाँ, शौकतअली बंधु।

सत्य, अहिंसा और सादगी गाँधी जी के जीवन की त्रिवेणी थी, जिनका संगम थी उनकी काया। जीवन-भर एक लँगोटी में जीवन बिताया। रेल की तीसरी श्रेणी के डिब्बे में यात्रा की। खान-पान, वचन और कर्म में सात्विकता बरती। गाँधी जी सत्य में परमेश्वर के दर्शन करते थे, वे उसे मुक्ति-मार्ग समझते थे। सत्य को प्राण और आत्मा का विशिष्ट गुण मानते थे। जीवन में सत्य के प्रयोग करके वे मानव से महामानव बन गए। अहिंसा उनके आचरण का मन्त्र था; जीवन शैली का मार्ग था।

गाँधी जी हिन्दी को राष्ट्र की आत्मा मानते थे। उन्होंने दक्षिण में हिन्दी प्रचार और प्रसार के लिए राष्ट्र-भाषा प्रचार समिति तथा दक्षिण हिन्दी-प्रचार सभा जैसी संस्थानों की नीव डालीं। उनके प्रोत्साहन से लाखों लोगों ने हिन्दी सीखी, हिन्दी को आजीविका का साधन माना।

विश्वकवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर गाँधी जीवन में विचारों और क्रियाओं का विरोध एवं सामंजस्य प्रदर्शित करते हुए लिखते हैं, 'वे स्वयं निर्धन और दरिद्र हैं, किन्तु सबको सुखी एवं सम्पन्न बनाने की दिशा में वे सबसे अधिक क्रियाशील हैं। वे घोर रूप से क्रान्तिकारी है, किन्तु क्रान्ति के पक्ष में वे जिन शक्तियों को जाग्रत करते हैं, उन्हें अपने नियन्त्रण में भी रखते हैं। वे एक साथ प्रतिमापूजक और प्रतिमा-भंजक भी हैं। मूर्तियों को यथास्थान रखते हुए वे आराधकों को उच्च स्तर पर ले जाकर प्रतिमाओं के दर्शन करने की शिक्षा देते हैं। वे वर्णाश्रम के विश्वासी हैं, किन्तु जाति-प्रथा को चूर्ण किये जा रहे हैं। भाव-भावना को वे भी मनुष्य की नैतिक प्रगति का बाधक मानते हैं, किन्तु टालस्टॉय की भान्ति वे सौन्दर्य और नारी को सन्देह की दृष्टि से नहीं देखते। गाँधी जी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जो सुधार वे दूसरों को सिखाते हैं, उन सुधारों की कीमत पहले वे आप चुका देते हैं।'

गाँधी जयन्ती गाँधी जी को स्मरण करने का पुण्य दिन है। इस दिन स्थान-स्थान पर गाँधी-मेले लगते हैं। इनमें गाँधी जी के जीवन की झाँकियाँ दिखाई जाती हैं, उनके जीवन की विशिष्ट घटनाओं के चित्र लगाए जाते हैं। गाँधी जी पर प्रवचन और भाषण होते हैं।

मुख्य समारोह दिल्ली के राजघाट पर होता है। राष्ट्र के कर्णधार, मुख्यतः राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति तथा प्रधानमंत्री और नेतागण तथा श्रद्धालु-जन गाँधी जी की समाधि पर श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। प्रार्थना-सभा में राम धुन तथा गाँधी जी के प्रिय-भजनों का गान होता है। विभिन्न धर्मों के पुजारी प्रार्थना करते हैं, अपने-अपने धर्म-ग्रन्थों से पाठ करते हैं। श्रद्धा-सुमन चढ़ाने और भजन-गान का कार्यक्रम 'बिड़ला हाउस' में भी होता है, जहाँ गाँधी जी शहीद हुए थे।

गाँधी जी आज भी राजनीतिज्ञों के लिए विघ्ननाशक, मंगलदाता गणेश जी हैं। भोली-भाली जनता को ठगने, सम्पन्नता और सत्ता का भोग भोगने का गुरु-मंत्र हैं।

(33) बाल-दिवस : 14 नवम्बर

संकेत बिंदु—(1) राष्ट्र की आत्मा (2) नेहरू जी का जन्म दिन और बाल दिवस के रूप (3) बाल-दिवस का विकृत रूप (4) पुरस्कार घोषणा का दिन (5) उपसंहार।

बाल-दिवस की मूल भावना है बाल-कल्याण। बालकों के मानसिक और शारीरिक विकास की योजनाएँ बनाकर उनको कार्यान्वित करना इसका उद्देश्य है। कल्याण-संस्थाओं, सामाजिक-संगठनों, केन्द्रीय तथा प्रांतीय सरकारों का बाल-कल्याण की ओर ध्यान दिलाने, स्मरण कराने का पुनीत दिन है। बालकों को अपने कर्तव्य और अधिकारों के प्रति सचेष्ट करना इसका ध्येय है।

बाल-दिवस आता है 14 नवम्बर को। 14 नवम्बर वर्तमान भारत के निर्माता पंडित

जवाहरलाल नेहरू का जन्म दिन है। पंडित नेहरू अपने जन्म-दिन पर कुछ मिनट के लिए राजनीति की उलझनों, षड्यंत्रों तथा विवादों से दूर रहकर बच्चों की मुस्कराहट में खो जाना चाहते थे। वे भाव-विभोर हो, आत्मविस्मरण करके स्वयं बच्चे बन जाते थे। बच्चे उन्हें 'चाचा नेहरू' कहने लगे। चाचा-भतीजे का यह प्यारा रिश्ता बाल-दिवस का जनक बना। चाचा नेहरू का जन्म-दिन बालकों को समर्पित हो गया और 'बाल-दिवस' कहलाने लगा।

भारत में बाल-दिवस चार रूपों में प्रचलित हुआ—(1) शिक्षक के रूप में। (2) मनोरंजन के रूप में (3) वीर बालकों के सम्मान रूप में तथा (4) उपदेशात्मक रूप में।

बाल-दिवस के दिन स्कूलों में शिक्षक नहीं पढ़ाते। पढ़ाने का कार्य भी विद्यार्थी ही करते हैं। वे इस दिन के 'टीचर' भी होते हैं। विद्यार्थियों को 'टीचर' बनाने का उद्देश्य बच्चों में गुरुत्व भावना को भरना है, अपने दायित्वों का ज्ञान करवाना है।

मनोरंजन के लिए स्कूलों में, स्टेडियमों में, विभिन्न स्थलों पर बालकों की सामूहिक ड्रिल, लोक-नृत्य, संगीत, पथ-संचलन, एकांकी अभिनय, वेश-भूषा की विविधता प्रदर्शित करते हुए फैशन-शो आदि कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाने लगे। दिल्ली का नेशनल स्टेडियम इसका प्रमाण है। यहाँ दिल्ली के स्कूलों के चुने हुए बच्चे आते हैं और अपना रंगारंग कार्यक्रम प्रस्तुत करते हैं। रंगारंग कार्यक्रम की सुन्दरता देखकर प्रधानमन्त्री मुस्कराकर, बच्चों को उपदेश देकर चले जाते हैं। व्यवस्थापक अपनी सफलता की दाद देते हैं।

बाल-दिवस का तीसरा रूप है पुरस्कारों की घोषणा का। इस दिन वीरतापूर्ण साहसिक कार्य करने वाले बच्चों के नामों की घोषणा की जाती है। यह चयन भारत के सम्पूर्ण प्रान्तों और केन्द्रशासित प्रदेशों से किया जाता है। प्राय: 10-12-14 वर्ष के बच्चे इस श्रेणी में आते हैं। उनके चित्रों के साथ उनके साहस की गाथाएँ अखबारों में छापी जाती हैं, ताकि शेष भारतीय बच्चे उनसे प्रेरणा लें, साहस का वरण करें और वीर-जीवन को अंगीकार करें।

बाल-दिवस का चौथा रूप है उपदेशात्मकता का। भाषण और बिन माँगे उपदेश दिए बिना भारत के राजनीतिक चेहरे पर मुस्कराहट आ ही नहीं सकती। राजनेता बच्चों को उपदेश देते हैं। इसी का रूपान्तर स्कूलों में होता है। वहाँ प्रधानाध्यापक तथा वरिष्ठ शिक्षक बाल-दिवस की घुट्टी पिलाते हैं। समाचार पत्र-पत्रिकाएँ नेताओं के लेख छापते हैं। एक ओर बच्चों को शुद्ध और पवित्र आत्मा का रूप समझा जाता है और दूसरी ओर उनके सामने राजनीति प्रेरित ज्ञान का आख्यान किया जाता है।

पुरस्कार घोषणा बाल-दिवस का श्रेष्ठ और उत्साहवर्धक कार्यक्रम है। इसमें सुधार और विकास की आवश्यकता है। प्रत्येक प्रांत से कम-से-कम दो बच्चों को और केन्द्र प्रशासित प्रदेशों से एक-एक बच्चे को लेना चाहिए। दूसरे, 14 नवम्बर को ही उनका सामूहिक अभिनन्दन करना चाहिए। इस अभिनन्दन कार्यक्रम में शिक्षकों के अतिरिक्त

स्कूली बच्चों को भी प्रवेश मिलना चाहिए। पंडाल में वीर बच्चों के बड़े-बड़े चित्र होने चाहिएं, जिनके नीचे उनके शौर्यपूर्ण कार्य का विवरण अंकित हो।

बाल-दिवस बालकों में स्वस्थ प्रतियोगिता दिवस के रूप में मनाया जाना चाहिए। सप्ताह पूर्व खेल-कूद प्रतिस्पर्धा, वाद-विवाद गोष्ठियाँ, अन्त्याक्षरी, नृत्य-संगीत, निबन्ध, चित्रकला प्रतियोगिताएँ करके विजयी बालक-बालिकाओं को बाल-दिवस पर सम्मानित और पुरस्कृत करना चाहिए।

बाल-दिवस पर गरीब बालकों को स्कूली गणवेश, पुस्तकें तथा लेखन-सामग्री भेंट करनी चाहिएं। शुद्ध तथा स्वास्थ्यप्रद सामूहिक भोजन का आयोजन होना चाहिए। प्रत्येक सिनेमाघर में बिना शुल्क एक-एक बाल-फिल्म दिखाई जानी चाहिए, जिसमें केवल बच्चों के लिए प्रवेश हो। दूरदर्शन तथा आकाशवाणी पर बच्चों के रंगारंग कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाने चाहिएँ।

बाल-दिवस के कार्यक्रमों से राजनीतिज्ञों को दूर रखना चाहिए। उनकी छाया से भी बच्चों को बचाना चाहिए। शिक्षाविदों, साहित्यकारों तथा पत्रकारों की उपस्थिति, अध्यक्षता, पुरस्कार-वितरण तथा प्रवचन बाल-दिवस को उद्देश्यपूर्ण बनाने में अधिक सहायक होंगे।

इन कार्यक्रमों तथा प्रतियोगिताओं का आयोजन नगर-स्तर पर हो तथा सभी नगरों में विजेता बालकों तथा टीमों को पुरस्कृत किया जाए।

बाल-दिवस राष्ट्र के भविष्य के कर्णधारों में सद्गुणों के बीज बोने का दिन है। सुशिक्षा, प्रेम, निश्छल-व्यवहार के जल-सिंचन से यह बीज अंकुरित होंगे, पुष्पित होंगे, और उनकी सुगंधित सुवास से राष्ट्र उल्लसित हो सकेगा।

(34) विश्व विकलांग दिवस : 3 दिसम्बर

संकेत बिंदु—(1) विकलांगता अभिशाप (2) विकलांगता के कारण (3) विभिन्न क्षेत्रों में विकलांगों की उपलब्धि (4) भारत सरकार के कल्याणकारी योजनाएँ (5) उपसंहार।

विकलांगता का अभिशाप प्रकृति ने प्रत्येक राष्ट्र को दिया है। यह अलग बात है कि शाप का प्रभाव विकसित राष्ट्रों में कम पड़ा हो और विकासशील राष्ट्रों में अधिक। इसलिए यह विश्व समस्या है। विश्व-समस्या होने के नाते संयुक्त राष्ट्र संघ ने इस शाप से मुक्ति अपना दायित्व समझा और प्रत्येक वर्ष 3 दिसम्बर को विश्व-विकलांग दिवस के रूप में मनाया जाने लगा। इसलिए विकलांगता के प्रति चिन्तन-मनन का दिन है, 3 दिसम्बर।

12 दिसम्बर 1995 को संसद् में पारित विकलांग की परिभाषा के अनुसार विकलांगता का अर्थ नेत्रहीन, अल्प दृष्टि, कुष्ठ रोग युक्त, श्रवण दोष, चलन, अपंगता, मानसिक मंदता

तथा मानसिक रोग है। विकलांग व्यक्ति को किसी चिकित्सा प्राधिकारी द्वारा प्रमाणित किया जाए कि वह 40 प्रतिशत से कम विकलांग नहीं है।

विकलांगता या अंग-विकृति जन्मत: भी होती है, कोई दुर्घटना भी अंग-भंग का कारण बन सकती है और कभी-कभी समाजविरोधी तत्त्व भी बच्चों को विकलांग बना देते हैं—जैसे बच्चों से भीख मँगवाने के लिए उनकी आँख फोड़ दी जाती हैं। अज्ञानता, अंधविश्वास तथा गरीबी भी अपंगता का कारण हैं। स्वास्थ्य के प्रति उपेक्षा या ठीक-ठीक उपचार करने की असमर्थता विकलांगता में वृद्धि करते हैं।

जन्मजात विकलांगता का अधिकांश कारण स्त्री के गर्भवती होने की अवस्था में विटामिन 'ए' तथा पौष्टिक भोजन की कमी, गर्भावस्था में शिशु-पालन-शिक्षा का अभाव, अधिक तथा कठोर कार्य की प्रवृत्ति या विवशता तथा कामान्धता है। गाँवों में इसका कारण अज्ञानता, अन्धविश्वास तथा गरीबी है। आग बुझाने वाले कर्मचारी सबसे पहले आग की घेराबन्दी करके उसे फैलने से रोकते हैं। उसी प्रकार गर्भावस्था में ही शिशु की विकलांगता को रोकना चाहिए।

भारतीय संसद् ने 12 दिसम्बर 1995 में विकलांगों को समान अवसर, सुरक्षा और समानता दिलवाने के लिए एक कानून बनाया। 7 फरवरी 1996 को अधिसूचित किया गया। इस अधिनियम का उद्देश्य विकलांग व्यक्तियों को सुविधाएं, सेवाएं प्रदान करने के लिए केन्द्रीय और राज्य-सरकारों, स्थानीय निकायों का दायित्व निर्धारण करना है, जिससे वे देश के उत्पादन व उपयोगी नागरिक के रूप में समान अवसर के लिए भागीदार बन सकें।

इच्छा शक्ति विकलांग को उसका आभास नहीं होने देती। विश्व में ऐसे विकलांग भी हैं, जिन्होंने अपने अदम्य साहस, संकल्प और उत्साह से विश्व इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों पर अपन नाम लिखवाया है। काल के भाल पर अपने पद-चिह्न अंकित किए हैं।

मध्य एशिया का शक्तिशाली शासक तैमूर लंग हाथ और पैर से शक्ति हीन था। सिख राज्य की स्थापना करने वाले महाराणा रणजीतसिंह एक आँख बचपन में ही खो चुके थे। मेवाड़ के राजा सांगा तो बचपन में एक आँख गवाने तथा युद्ध में एक हाथ-एक पैर तथा 80 घावों के बावजूद भारत के इतिहास पुरुष बने। अमरीका के 32वें यशस्वी राष्ट्रपति फ्रेंकलिन रूजवेल्ट दो बार राष्ट्रपति चुनाव जीते। संयुक्त राष्ट्र संघ के गठन में उनका विराट् योगदान भुलाया नहीं जा सकता जबकि पोलियो माइलिटिस के कारण उनके दोनों पैरों की शक्ति समाप्त हो चुकी थी।

गीत, संगीत और नृत्य के क्षेत्र में अनेक विकलांग चिर स्मरणीय हस्तियाँ हुई हैं। शास्त्रीय नृत्य भरत नाट्यम् की प्रसिद्ध नृत्यांगना सुधा चंद्रन दायीं टाँग विहीन थीं। फिल्मी गीतकार कृष्णचन्द्र डे तथा संगीतकार रवीन्द्र जैन नयन-विहीन हैं। जर्मनी के पियानोवादक बीथोवन श्रवण हीनता के शिकार थे। चित्र कला में भारत प्रसिद्ध प्रभाशाह तीन वर्ष की आयु में सुनने की शक्ति खो बैठी थीं।

खेल जगत् से जुड़े तैराक तारानाथ शिनॉय मूक-बधिर थे। 26 सितम्बर 1983 को

इंग्लिश चैनल पार कर उन्होंने विश्व प्रसिद्ध तैराकों में नाम लिखवाया। क्रिकेट के शानदार पूर्व गेंदबाज अंजन भट्टाचार्य मूक-बधिर हैं।

मलयाली साहित्यकार वल्लतोल नारायण श्रवण-शक्ति से हीन थे। हिन्दी के सम्पादक तथा साहित्यकार डॉ. रघुवंश सहाय वर्मा हाथों की लाचारी के कारण पैरों से लिखते हैं। हिन्दी के प्रसिद्ध कथाकार राजेन्द्र यादव बैसाखी पर चलते हैं। 'शुभतारिका' मासिक के सम्पादक और कहानी-महाविद्यालय, अम्बाला छावनी के सफल संचालक डॉ. महाराज कृष्ण जैन के लिए व्हील चेयर प्राण है।

विकलांग व्यक्तियों के कल्याण के लिए भारत सरकार के सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय ने निम्नलिखित कदम उठाए हैं। जैसे—मूक-बधिर तथा मानसिक रूप से बधिर बच्चों के लिए विद्यालय एवं छात्रावास की सुविधाएं।

मिशन के रूप में विज्ञान व प्रौद्योगिकी परियोजना 1988 में शुरू की गई थी, जिसका उद्देश्य नई प्रौद्योगिकियों वाले उचित व किफायती सहायक यंत्रादि उपलब्ध कराना, सचलता बढ़ाना और विकलांगों के लिए रोजगार अवसर बढ़ाना है। विकलांग व्यक्तियों के लिए सेवाएं उपलब्ध कराने में स्वयंसेवी क्षेत्र को प्रोत्साहन देना इन सेवाओं में विकलांगता की रोकथाम तथा इनका जल्दी पता लगाना, शिक्षा, प्रशिक्षण, विकलांग व्यक्तियों का भौतिक व आर्थिक पुनर्वास शामिल है।

विकलांगता दिवस पर विकलांग सेवा-प्रोत्साहनार्थ सरकार ने निम्न आठ प्रकार के पुरस्कार योजना का श्री गणेश किया है—

विकलांग व्यक्तियों के सर्वश्रेष्ठ नियोक्ता। (2) सर्वश्रेष्ठ विकलांग कर्मचारी और स्वनियोजित व्यक्ति। (3) उत्कृष्ट सृजनशील व्यक्ति। (4) विकलांगों के कल्याण के लिए काम करने वाला सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति। (5) विकलांगों के कल्याण के लिए काम करने वाला सर्वश्रेष्ठ संस्थान। (6) प्लेसमेंट अधिकारी। (7) अवरोधमुक्त वातावरण का निर्माण तथा। (8) विकलांगों के कल्याण के लिए राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी पुरस्कार।

समाज में विकलांगों के प्रति दृष्टिकोण को बदलना उनके प्रति महान् उपकार होगा। विकलांग दया के पात्र नहीं, रहमो-करम के काबिल नहीं, वे भी तो समाज के अंग हैं। सम्मानपूर्ण जीवन जीने का उन्हें भी अधिकार दिलाना होगा। यह तब ही सम्भव है जब हम उनके प्रति सच्ची सहानुभूति की दृष्टि रखें। यथासम्भव उन्हें सहयोग दें। अन्धे को सड़क पार करवाकर, उसके मार्ग को सुलभ बनाकर हम अपना कर्तव्य पूरा कर सकते हैं। विक्षिप्त और अर्ध-पागल की बड़बड़ाहट की ओर ध्यान न दें, उसे रोकें नहीं। गूँगे-बहरे का मजाक न उड़ाएँ। दूसरी ओर, समाज-द्रोही तत्त्वों को, जो बच्चों से भीख मँगवाने के लिए उनका अंग-भंग कर देते हैं, कठोरतम दण्ड का प्रावधान करवाना होगा।

आत्मपरक

(35) मेरा बचपन

संकेत बिंदु—(1) मानव जीवन का स्वर्णिम काल (2) मेरा गाँव और परिवार (3) बचपन की घटनाएँ (4) बचपन की शरारतें (5) बचपन की स्मृतियाँ।

बचपन! मानव-जीवन का स्वर्णिम काल। चिन्ता-रहित क्रीडाएँ, स्वच्छन्द एवं भयविहीन घूमना-फिरना। जो हाथ में आया, मुँह में दे दिया। अँगूठा चूसने में मधु का आनन्द और दूध के कुल्ले पर किलकारी भरने में उल्लास की अनुभूति, रोकर-मचलकर, बड़े-बड़े मोती आँखों से बहाकर जननी को बुलाना और स्नेहमयी जननी का भागकर आना एवं झाड़ पोंछकर हृदय से चिपका लेना और चुम्बनों की वर्षा करना मानो अनचाहे सुधा में स्नान। तभी तो सुभद्राकुमारी चौहान अपनी बिटिया को देखकर अपने बचपन का स्मरण करते हुए कहती हैं—

बीते हुए बचपन की यह, क्रीडापूर्ण वाटिका है।
वही मचलना, वही किलकना, हँसती हुई नाटिका है॥

संघर्षमय, अशांत, और श्रांत-क्लांत जीवन में पौत्र-पौत्री की शिशु-क्रीडाओं को देखकर मुझे अपना बचपन याद आ गया। सुभद्राकुमारी चौहान की भाँति शैशव का आह्वान करने लगा—*आ जा बचपन ! एक बार फिर / दे-दे अपनी निर्मल शांति।*

वर्तमान हरियाणा के एक छोटे-से गाँव सोनीपत में, जिसने औद्योगिक विकास के साथ-साथ तहसील से जिले का रूप ले लिया है, मेरा बचपन बीता। मेरा घर था, पाँच-चार मकानों का घेर, जिसे 'महल' की संज्ञा दी गई थी और जो आज तक बरकरार है।

माता की अनेक सन्तानें काल का ग्रास बन चुकी थीं। अत: वे मेरा बहुत ध्यान रखती थीं। घर में दो वर्ष बड़े अग्रज थे। पिताजी देश की राजधानी दिल्ली में नगर-पालिका के कार्यालय में कार्य करते थे। बड़ी बहिन अपने घर-बार की हो गई थी। बाबा (दादा) हरद्वारीलाल गाँव के एकमात्र प्राइमरी स्कूल के हेडमास्टर थे।

आँगन कच्चा था। वही पीली मिट्टी का आँगन मेरी क्रीडा-स्थली थी। एक बार अग्रज ने स्नेह से गोदी में लेने का प्रयास किया। उनके हाथ मारने की शैशवी-क्रीडाएँ हॉकी के किसी खिलाड़ी से कम न थीं। मैं चारपाई पर पड़ा रो रहा था। वे खुश हो रहे थे। समझ रहे थे, उनकी छेड़-छाड़ मुझे आह्लादित कर रही है। थोड़ा और जोर लगाया। वे मुझे सँभाल न सके, मैं चारपाई से नीचे गिरा और चीख मारकर रो पड़ा। माता को निमन्त्रित करने का सहज और सरल उपाय यही था। माँ दौड़ी आई और पीली मिट्टी में सने मेरे शरीर को गोदी से चिपका लिया। भैया को डाँटा। पीट सकना उनके वश की बात नहीं थी। कारण, भैया भी शिशु थे और थे माता के हृदयांश।

यद्यपि परिवार गरीब था, किन्तु दूध-घी की कमी न थी। माता ममता लुटाती थी। हम भोजन में अति कर जाते थे। परिणामतः पेट में अफारा और दूध उलट देना स्वभाव बन गया था। घर के टोटके औषधि का रूप लेते। ममतामयी माँ समीप बैठी टुकुर-टुकुर निहारती और अपने लाल के अच्छा होने की प्रतीक्षा करती हुई मन्नतें मनाती।

घुटनों से चलते समय महल का पीली मिट्टी का प्रांगण हमारी दौड़ का मैदान बना। अड़ोसी-पड़ोसी समवयस्क बच्चों के मध्य एक-दूसरे को हाथ मारने में आनन्द आता था। एक बार हमने सामने वाली ताई के बच्चे को वह हाथ मारा कि वह चिल्ला उठा। ताई दौड़ी आई। उसको गोद में उठा लिया और क्रोध में मुझे एक चपत रसीद कर दी। साथ ही 'तारा को छोरा बड्डा तेज सै' का 'प्रमाण-पत्र' दे दिया। यह सुनकर हमने भी रोना शुरू कर दिया। उधर माँ ताई की करतूत देख रही थी। बस फिर क्या था? माँ ने हमें गोद में लिया और लगी ताई से झगड़ने। वाग्-युद्ध का दृश्य था वह।

कुछ बड़े हुए। चलना प्रारम्भ किया तो बच्चों से यारी-दोस्ती बढ़ी। परिचय का क्षेत्र घर से बाहर निकल कर गली तक पहुँच गया। बाबा के डेढ़ फुट ऊँचे चबूतरे पर चढ़ना हिमालय पर चढ़ने से कम न था। चढ़ने की कोशिश में गिरते और रो-रोकर पुनः-पुनः चढ़ने का प्रयास करते थे। प्रसाद जी के शब्दों में—

स्निग्ध संकेतों में सुकुमार, बिछल, चला थक जाता तन हार।
छिड़कता अपना गीलापन, उसी रस में तिरता जीवन॥

गली की बिल्ली और कुत्ते हमारे लिए शेर और चीते थे। गली का कुत्ता यदि जीभ निकालकर हमारे पीछे चलने लगता तो हमारी घिग्घी बँध जाती और नन्हें कदमों की दौड़ से घर में घुस जाते।

गाँव में बन्दर बहुत थे। एक दिन गली में चहल-कदमी कर रहा था कि अचानक तीन-चार बन्दर आ गए। लगे मुझे घूरने, घूर-घूर कर धमकी देने। आँखों ने यह दृश्य देखा, तो मुँह से चीख निकली, हृदय-गति तेज हो गई, नयनों ने नीर बरसाना शुरू कर दिया, हाथ-पैर काँपने लगे। चीख सुन पड़ोसिन आई और उसने बन्दरों को डंडे दिखाकर भगा दिया। मेरी जान में जान आई।

बचपन कितना भोला और साधारण-से मानवीय ज्ञान से अनभिज्ञ होता है, इसका एक उदाहरण मुझे स्मरण है। एक रात मैं और बड़े भाई एक ही खटोले पर सो रहे थे। ब्राह्ममुहूर्त का समय था। माँ मृत शिशु को गोदी में लिए रो रही थी। रोने की सस्वर वाणी किसी कवि की पीड़ा से कम न थी। 'मैं तुझे दिल्ली ले जाती, पढ़ाती-लिखाती'—मृतक पुत्र को लिए माँ न जाने क्या-क्या कल्पना करती हुई रुदन कर रही थी। प्रातः वह रुदन समाप्त हुआ। घर में क्या हुआ, क्यों हुआ? मेरी समझ से बाहर था।

शैशव बीता। हम सोनीपत छोड़कर दिल्ली आ गए। बचपन आज भी सोनीपत के 'महल' की चार-दीवारी में किल्लोल कर रहा होगा। बचपन की स्मृति आने पर मेरा मन प्रसाद जी के शब्दों में अपने आपसे पूछता है—

आज भी है क्या नित्य किशोर/ उसी क्रीडा में भाव-विभोर
सरलता का वह अपनापन / आज भी है क्या है मेरा धन!

(36) मेरी आकांक्षा/मेरी उच्च आकांक्षा

संकेत बिंदु—(1) मन में होने वाली इच्छा (2) जीवन में आकांक्षा का महत्त्व (3) भावी जीवन को सफल बनाने का गुर (4) अकांक्षा पूर्ति के लिए अंत: करण में निष्ठा (5) उपसंहार।

किसी प्रकार के अभाव के कारण मन में होने वाली इच्छा या चाहना आकांक्षा है। किसी वस्तु या बात के लिए होने वाली अभिलाषा आकांक्षा है। किसी विचार या भाव की पूर्ति के लिए तीन आवश्यक तत्त्वों में सर्वप्रथम है आकांक्षा। अन्य दो तत्त्व हैं योग्यता और आसक्ति। हजारीप्रसाद द्विवेदी के विचार में, 'आंतरिक प्रवृत्तियों का मंगलमय सामंजस्य बाहर मनोरथ, सौन्दर्य के रूप में जिस कारण प्रकट होता है; वह है आकांक्षा।' महत्त्वपूर्ण कार्य करने की इच्छा या दूसरों से आगे बढ़ने की अभिलाषा है, उच्च आकांक्षा।

इस संसार में आकांक्षाओं की परिधि और गति के बाहर कुछ भी नहीं। आकांक्षाएं आकाश के समान अनन्त हैं। इतना ही नहीं, इसकी गति भी अनन्त है। प्रसाद जी का कहना है, 'विषयों की सीमा है, परन्तु अभिलाषाओं (आकांक्षाओं) की नहीं। (चन्द्रगुप्त : चतुर्थ अंक) उर्दू के प्रसिद्ध शायर दाग अपने 'दीवान' में लिखते हैं—

दमें मर्ग तक रहेंगी ख्वाहिशें
यह नीयत कोई आज भर जाएगी?

दूसरी ओर, आकांक्षाओं की अनन्तता से तंग आकर बहादुरशाह 'जफर' को कहना पड़ा—

कह दो इन हसरतों से, कहीं और जा बसें।
इतनी जगह कहाँ हैं, दिले दागदार में॥ *(दर्दे दिल)*

प्राणी जब संसार को खुले नेत्रों से देखता है, उसका आकर्षण उसे सम्मोहित करता है। वह चाहता है कि सुख और ऐश्वर्य के साधन, ऐय्याशी के माध्यम, योग्यता और यश के आधार बिन्दु मेरे चरणों में झुके हों, परन्तु यह न सम्भव है, न प्राप्य ही। पर आकांक्षा करने में तो कोई बुराई नहीं।

मैं नवयुवक हूँ, और अभी विद्याध्ययन में रत हूँ। इस समय मेरी केवल एक ही आकांक्षा या उच्चाकांक्षा है कि मैं ब्रह्मचर्य व्रत का निर्वाह करते हुए मछली की आँख पर अर्जुन-दृष्टि की भाँति 'अध्ययन' ही एक मात्र मेरा लक्ष्य हो। परीक्षा रूपी सागर को अपने कौशल से बिना झिझक पार करूँ। छात्र जीवन के अनन्तर गृहस्थ आश्रम में अर्थोपार्जन के लिए जो सिद्धता चाहिए, उसे मैं प्राप्त कर सकूँ।

भावी जीवन को सफल बनाने का एक ही 'गुर' है, परीक्षा में प्रथम श्रेणी में अधिकतम

(90% से अधिक) अंक प्राप्त करना। इसके लिए मैं चाणक्य नीति के इस सुभापित का पालन कर रहा हूँ—

सुखार्थिन : कुतो विद्या, कुतो विद्यार्थिन: सुखम्।
सुखार्थी वा त्येजद्विद्याँ, विद्यार्थी वा त्यजेत् सुखम्॥

अर्थात् सुख चाहने वाले को विद्या और विद्या चाहने वाले को सुख कहाँ ? सुख चाहने वाले को विद्या और विद्यार्थी को सुख की कामना छोड़ देनी चाहिए। इसी प्रकार—

कामं क्रोधं तथा लोभं स्वादं शृंगार कौतुके।
अति निद्राति सेवा च, विद्यार्थी ह्यष्ट वर्जयेत्॥

अर्थात् विद्यार्थी को ये आठ बातें छोड़ देनी चाहिएं—(1) काम, (2) क्रोध (3) लोभ (4) स्वाद (5) शृंगार (6) (6) तमाशे (7) अधिक निद्रा और (8) अत्यधिक सेवा।

उक्त बातों को ध्यान में रख कर मैंने अपनी वर्तमान आकांक्षा अर्थात् उच्चतम अंकों से परीक्षा उत्तीर्ण करने का दृढ़ निश्चय किया। 'नहि प्रतिज्ञामात्रेण अर्थ सिद्धिः' प्रतिज्ञा अथवा दृढ़ निश्चय मात्र से अर्थ-सिद्धि नहीं हो सकती। डिजराइली ने सचेत किया, "The Secret of Success is constancy to purpose' अर्थात् उद्देश्य में निष्ठा ही सफलता का रहस्य है।

मैंने दृढ़ निश्चय के साथ अपनी आकांक्षा की पूर्ति के लिए अन्त:करण में निष्ठा व्यक्त की। तभी योगवासिष्ठ ने चेताया है, ब्रह्मचारी! 'तेरी इच्छा पूर्ण होगी, यदि तू प्रयत्न को न छोड़ दे।' (अवश्यं स तमाप्नोति न चेदर्थान् निवर्तत: 2/4/12) मैं खुश हुआ प्रतिज्ञा, निष्ठा और निरन्तर प्रयत्न, इन तीन तत्त्वों की त्रिवेणी स्नान से सफलता का मुखड़ा देखने को मिलेगा। तभी वाल्मीकि कहा, 'बेटा! मेरी भी एक बात मान ले। ''अनिर्वेदं च दाक्ष्यं च मनसश्चापराजयम्' (किष्किन्धाकांड : 49/6) उत्साह, सामर्थ्य और मन में हिम्मत न हारना।'

लग गया आकांक्षा की पूर्ति में। पागलपन से नहीं सचेत और सजग रहकर। विद्यालय समय को छोड़कर अध्ययन का समय निश्चित किया—प्रात: ब्रह्ममुहूर्त में एक घंटा पाठ याद करना। दिन में एक घंटा रिवीजन (पुनरावृत्ति) तथा एक घंटे का लिखित अभ्यास। अपवाद छोड़कर पढ़ाई में निष्ठापूर्वक सर्मापित जीवन।

केवल 'पढ़ाकू' बनकर मैं प्रमाद की स्थिति नहीं लाना चाहता। इसलिए दिनचर्या ऐसी बना ली है कि तन और मन स्वस्थ रहें। यदि तन और मन स्वस्थ नहीं होंगे तो अध्ययन में मन लगेगा ही नहीं। अध्यापक महोदय द्वारा समझाए गए तत्त्व मस्तिष्क में बैठेंगे ही नहीं। प्रश्नों के उत्तर बुद्धि ढूँढ ही नहीं पाएगी। अत: मध्याह्न भोजनोपरांत एक घंटा विश्राम, सायंकाल एक घंटा खेलना, रात्रि के प्रथम प्रहर में घंटाभर दूरदर्शन से रंजन करना और समाचार सुनकर ज्ञानवर्धन कर रात्रि दस बजे तक सो जाना, मेरी दिनचर्या है। इस दिन-चर्या में यदि व्यवधान रूप में माता-पिता घर का सामान लाने या अन्य कार्य करने के लिए

कहते हैं तो 'मूड' खराब नहीं करता। सहर्ष और सोल्लास आज्ञापालन उनके आशीर्वाद प्राप्ति का मूक माध्यम मानता हूँ।

आकांक्षा पूर्ति के प्रति मेरी प्रतिज्ञा, निष्ठा, निश्चय, निरन्तर अभ्यास को देखकर मेरे एक ईर्ष्यालु मित्र ने एक दिन चुटकी लेते हुए कहा, 'भाग्यं फलति सर्वत्र न विद्या न च पौरुषम्' पर मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि कर्मों का संचित फल ही भाग्य है। आकांक्षा पूर्ति में मेरे कर्म अवश्य सहयोग देंगे।

(37) मेरा जीवन लक्ष्य

संकेत बिंदु—(1) लक्ष्य निर्धारित करना (2) व्यक्ति की रुचि और प्रतिभा (3) ध्येय प्राप्ति भाग्य और पुरुषार्थ का प्रतीक (4) साहित्यकार बनने की आकांक्षा (5) जीवन में अर्थ का महत्त्व।

लक्ष्य निर्धारित करना लक्षण है जीवन और जागरण का। पृथ्वी के तमिस्राच्छन्न पथ से गुजर कर दिव्य-ज्योति से साक्षात्कार करने का। अपने गुणों के विकास से आत्मा को उज्ज्वल करने का। दुःखी, पीड़ित, संत्रस्त मानव को शान्ति और सौख्य प्रदान करने का।

कुछ आलसी लोग लक्ष्य निर्धारण को व्यर्थ समझते हैं। उनका विचार है कि शेखचिल्ली की भाँति ख्याली पुलाव पकाने से क्या लाभ ? जीवन में जो कुछ होना है, वह तो होगा ही। वास्तव में यह विचार कायरता का परिचायक है, निकम्मेपन की निशानी है। निर्धारित लक्ष्य मनुष्य की निश्चित मार्ग की ओर बढ़ने की प्रेरणा देता है और व्यक्ति के मन में उत्साह का संचार करता है।

जीवन-लक्ष्य का निर्धारण करने में व्यक्ति की रुचि एवं प्रतिभा कार्य करती है। विज्ञान के क्षेत्र में यशोपार्जन की महत्त्वाकांक्षा तभी की जा सकती है जब व्यक्ति की प्रतिभा तीव्र हो और वैज्ञानिक विषयों में अध्ययन का सामर्थ्य हो। यदि जीवन-लक्ष्य निर्धारित करने में इस सत्य का ध्यान नहीं रखा जाएगा, तो सफलता नहीं मिल सकेगी।

अथर्ववेद में कहा है, 'उन्नत होना और आगे बढ़ना प्रत्येक जीवन का लक्ष्य है।' घर के वातावरण से भी जीवन-लक्ष्य निर्धारित करने में प्रेरणा मिलती है। मुझ पर यही बात लागू होती है। हमारा परिवार शिक्षित-जनों का कुटुम्ब है। मेरे पिताजी संस्मरणकार हैं, निबन्धकार हैं। मेरी बड़ी बहन की भी दो-तीन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, मेरा मन अंग्रेजी या हिन्दी में एम. ए. करने की ओर प्रवृत्त है। हमारे यहाँ अनेक साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक पत्र-पत्रिकाएँ आती हैं। इसके अतिरिक्त बाल-पत्रिकाएँ, हास्य-पत्रिकाएँ सभी प्रकार की श्रेष्ठ पत्रिकाएँ, हमारे परिवार के सदस्य देखते हैं, पढ़ते हैं। इण्डिया टुडे, पाँचजन्य, कादम्बिनी, नन्दन की तो अनेक वर्षों की फाइलें हमारे घर में हैं। इस प्रकार के वातावरण में मेरा जीवन-लक्ष्य क्या हो सकता है, इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

ध्येय प्राप्ति प्रारब्ध और पुरुषार्थ का समन्वित प्रतिफलन है। दोनों में एक ने भी प्रवंचना की, तो ध्येय प्राप्ति ही असम्भव नहीं होगी, प्रत्युत जीवन-धारा ही बदल जाएगी। मोहनदास कर्मचन्द गाँधी, जवाहरलाल नेहरू, राजेन्द्रप्रसाद बनने चले थे बैरिस्टर, न्यायविद्; प्रारब्ध ने झटका मारा, बन गए भारत-भाग्य विधाता। वायुयान चालाक-जीवन में मस्त राजीव के प्रारब्ध ने उसे प्रधानमन्त्री पद प्रदान कर दिया।

मैं सोचने लगा कि क्यों न मैं लेखक बनूँ, मुंशी प्रेमचन्द-सा कथाकार बनूँ! कामायनी के रचयिता प्रसाद की आत्मा मुझमें समाविष्ट हो जाए। निराला का निरालापन, महादेवी की वेदना, 'दिनकर' की राष्ट्रीयता मुझ में उद्भासित हो। मैथिलीशरण गुप्त की भावना 'इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया' को अधिकाधिक मुखरित कर सकूँ। दरिद्रनारायण की विवशता, शोषित की आवाज, राजनीतिज्ञों-कूटनीतिज्ञों के छल-छन्द को लेखनी से उजागार कर सकूँ। भारतीय संस्कृति और सभ्यता का सन्देश घर-घर पहुँचा सकूँ।

साहित्य अजर-अमर है। उसमें काल की गति को प्रभावित करने की अद्भुत शक्ति है। काल के थपेड़े उसे नष्ट नहीं कर सकते। युग-युगान्तर तक साहित्यकार अपनी कृतियों के माध्यम से जीवित रहेगा। रामायण तथा महाभारत के रचनाकार वाल्मीकि और वेदव्यास आज भी भारत-भू के शृङ्गार हैं, हिन्दू संस्कृति के आधार स्तम्भ हैं। अजरत्व-अमरत्व की भावना मुझे साहित्यकार बनने के लिए उकसा रही है। अथर्ववेद का सन्देश, 'परैतु मृत्युरमृतं न एतु' (मृत्यु हमसे दूर हो और अमृतपद हमें प्राप्त हो) मन को झकझोर रहा है।

साहित्यकार बनने के लिए चाहिए अध्ययन और चिन्तन। अध्ययन ज्ञान के द्वार खोलेगा, चिन्तन ज्ञान के खुले द्वार में विवेक जागृत करेगा। इसलिए अध्ययन में समय लगाऊँगा और चिन्तन की जुगाली करूँगा।

जीवन में अर्थ का अपना विशिष्ट महत्त्व है। 'भूखे भजन न होय गोपाला।' अत: साहित्य-साधना के साथ नियमित अर्थोपार्जन हेतु मैं प्राध्यापक बनना चाहूँगा। साहित्य-सृजन और अध्यापन परस्पर सम्बद्ध वृत्तियाँ हैं। प्राध्यापक बनने पर अध्ययन-चिन्तन के लिए पर्याप्त समय भी और परिवार-पोषण के लिए पर्याप्त वेतन भी है। अध्ययन के लिए महाविद्यालयीय और विश्वविद्यालयीय पुस्तकालय नि:शुल्क मेरी मानसिक क्षुधा तृप्ति के लिए प्रस्तुत रहेंगे। विचार-विमर्श के लिए साथी प्राध्यापक, प्राध्यापिकाएँ सोत्साह उपस्थित होंगे। मेरे लेखन की वाह-वाही करने, मेरे यश को दिग्-दिगन्त में फैलाने वाले आज्ञाकारी शिष्यगण उपलब्ध होंगे। 'लाइब्रेरी-परचेज' में सहायता करने पर मेरी पुस्तक प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक करबद्ध प्रस्तुत होंगे।

यों तो मानव कभी सन्तुष्ट नहीं हुआ। एक लक्ष्य की प्राप्ति दूसरे लक्ष्य को जन्म देती है। दूसरे लक्ष्य की पूर्ति तीसरे के लिए मार्ग प्रशस्त करती है, किन्तु फिलहाल मैंने अपने जीवन का लक्ष्य रखा है, साहित्यकार बनने का। उसके लिए मैं अभी से प्रयत्नशील हूँ, संलग्न हूँ। परीक्षाएँ, उपाधियाँ और प्रमाण-पत्र इस लक्ष्यपूर्ति के सोपान मात्र हैं।

प्रभो! मुझे आशीर्वाद दीजिए कि मैं अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकूँ। माँ शारदा की सेवा कर उसके भण्डार को दिव्य कृति-रत्नों से भर सकूँ।

(38) मेरा प्रिय खेल : कबड्डी

संकेत बिंदु—(1) मेरा प्रिय खेल कबड्डी (2) राष्ट्रीयता और स्वदेश प्रेम का परिचायक (3) स्वस्थ मनोरंजन और व्यायाम (4) कबड्डी खेलने की विधि (5) कबड्डी के नियम।

खेलने के लिए क्रिकेट, हॉकी, बॉलीबॉल, फुटबॉल, बास्केटबॉल, लॉन-टेनिस, टेबल-टेनिस, बैडमिंटन, गोल्फ, पोलो, चेस तथा बिलयर्ड आदि अनेक खेल हैं। ये सभी खेल विश्व में खेले जाते हैं और विश्व खेल-प्रतियोगिताओं में मान्यता प्राप्त हैं, परन्तु मेरी रुचि इन खेलों में न होकर भारतीय खेल 'कबड्डी' में है। वही मेरा प्रिय खेल है।

विश्व-प्रसिद्ध सभी खेल चाहे वह क्रिकेट हो या हॉकी, टेबिल-टेनिस हो या बिलयर्ड बिना विशेष उपकरण, बिना खेल-सामान के व्यर्थ हैं। स्टिक के बिना हाकी कैसी ? बॉल के अभाव में बॉलीबाल, फुटबॉल या बास्केटबॉल कैसे खेले जा सकते हैं ? पर साहब कबड्डी के लिए कोई उपकरण नहीं चाहिए। उँगली से 'पाला' खींचा जा सकता है। जूते, कपड़े, कंकड़ या कोई भी चीज रखकर पाला बनाया जा सकता है।

खेल का सामान खरीदने के लिए चाहिए पैसा। आपके पास पैसा है तो खेल खेल लीजिए, अन्यथा दर्शक बने रहिए। फिर खेल के सामान ने जरा भी नजाकत दिखाई कि खेल खत्म। बॉल की फूँक खिसकी कि बॉलीबॉल, फुटबाल, बास्केटबॉल खेल ही पेंचर हो गए। टेबल-टेनिस या बिलयर्ड की मेज ने धोखा दिया, तो खेल चौपट। कबड्डी में न पैसा चाहिए, न उपकरण। जब चाहो, जहाँ चाहो, कबड्डी का मजा ले लो।

बॉलीबॉल आदि सभी खेल विदेशी हैं। इनका प्रारम्भ विदेशियों के मनोरंजन तथा स्वास्थ्यवर्धन के लिए हुआ था। कबड्डी शुद्ध भारतीय खेल है। गाँव की शस्यश्यामला भूमि में इसके अंकुर उपजे थे। अत: कबड्डी राष्ट्रीयता का प्रतीक है, स्वदेश प्रेम का परिचायक है।

क्रिकेट और हॉकी वर्तमान युग के जनप्रिय खेल हैं। इनके मैचों का सीधा प्रसारण दिखाकर दूरदर्शन भी अपने को कृतार्थ समझता है। पर ये हैं बड़े खतरनाक खेल। क्रिकेट की बॉल जरा-सी असावधानी या प्रमाद से खेलने वाले के मुँह को पिचका देती है, नयनों की दृष्टि छीन लेती है और भाल को फोड़ देती है। हॉकी का नाम ही 'स्टिक' है, टाँगों में लगी नहीं कि खेलने वाले की शामत आई। कबड्डी में ऐसी गम्भीर चोट लगने का प्रश्न ही नहीं उठता।

हल्की-फुल्की चोट लगने का भय इस खेल में भी रहता है। जैसे—कोई खिलाड़ी को पकड़ने के लिए 'कैंची' मारे तो उससे टाँग में चोट लगने का बहुत डर रहता है। दूसरे, कभी-कभी एक खिलाड़ी को जब दूसरी पार्टी के सभी खिलाड़ी पकड़कर उसके ऊपर चढ़ने की कोशिश करते हैं, तब शरीर पर चोट लगने का भय रहता है। यदि पकड़ते समय

किसी खिलाड़ी के वस्त्र हाथ में आ जाएँ, तो वस्त्र फटने की सम्भावना रहती है। पर कबड्डी तो कबड्डी है।

कबड्डी जब चाहे, जहाँ चाहे खेली जा सकती है। इसके लिए न क्रिकेट, हॉकी आदि की तरह विशेष मैदान चाहिए और न टेबिल टेनिस तथा बिलयर्ड के समान बड़ा हाल।

कबड्डी स्वस्थ मनोरंजन और व्यायाम का खेल है। तीव्र उत्सुकता उत्पत्ति की क्रीडा है। दर्शकों को एकटक देखते रहने की विवशता का आनन्द-स्रोत है। हाथ-पैरों के पर्याप्त व्यायाम का साधन है। शरीर में स्फूर्ति और चुस्ती रखने का मार्ग है। सदा सचेत रहने का मानसिक व्यायाम है।

कबड्डी खेलने की विधि बहुत ही सरल है। खेलने के स्थान के बीचों-बीच एक रेखा खींच दी जाती है, इसे 'पाला' कहते हैं। इसके दोनों ओर खिलाड़ी खड़े होते हैं। दोनों ओर के खिलाड़ी संख्या में बराबर होने चाहिएँ। खेल आरम्भ होने पर एक ओर का खिलाड़ी दूसरी ओर 'कबड्डी-कबड्डी' कहता हुआ जाता है। वह यह प्रयत्न करता है कि जब तक उसके मुँह मे 'कबड्डी' शब्द निकलना बन्द नहीं होता, वह दूसरी ओर के खिलाड़ी या खिलाड़ियों को छूकर पाले तक पहुँच जाए। दूसरी ओर के खिलाड़ियों का प्रयत्न होता है कि वे उसको ऐसे पकड़ें कि वह छूटकर पाले तक न पहुँच पाए और स्वयं भी सावधान रहें कि वे उसे पकड़ न सकें, तो वह उन्हें छू भी न जाए। यदि वह छू गया तो जिन खिलाड़ियों को उसने छूआ है, वे सब खिलाड़ी 'आउट' हो जाएंगे। दूसरी ओर से भी यही प्रक्रिया होती है।

बैठा हुआ या 'आउट' खिलाड़ी तभी खेल में पुन: भाग ले सकता है, जबकि उसका कोई साथी दूसरी ओर के किसी खिलाड़ी को 'बाहर' कर दे।

इस प्रकार जिस ओर के सब खिलाड़ी 'आउट' हो जाएंगे, वह दल हारा हुआ समझा जाएगा। कई बार खिलाड़ियों को 'आउट' करके बैठाने के बजाए अंक (प्वाइंट) गिन लिए जाते हैं। निर्धारित समय में जिसके अंक (प्वाइंट) ज्यादा होते हैं, वह दल जीता हुआ माना जाता है।

कबड्डी के कुछ अपने नियम हैं। एक बार में एक ही खिलाड़ी 'कबड्डी-कबड्डी' कहता हुआ पाले के दूसरी ओर जाएगा, दो नहीं। दूसरे, खेल के मैदान की सीमा-रेखा से शरीर या शरीर का कोई अंग बाहर होने पर खिलाड़ी 'आउट' समझा जाएगा। एक बार साँस टूटने, 'कबड्डी-कबड्डी' का स्वर बंद होने पर दुबारा साँस भरना तथा 'कबड्डी-कबड्डी' स्वर का उच्चारण करना नियम विरुद्ध है। साँस बीच में टूटते ही रक्षात्मक उपाय बरतने होते हैं। खिलाड़ी अपने पाले की ओर दौड़ता है। पाला-रेखा से पूर्व यदि दूसरी पार्टी के किसी खिलाड़ी ने उसे स्पर्श कर दिया तो वह 'आउट' माना जाएगा।

'कबड्डी-कबड्डी' शब्द के उच्चारण के साथ आक्रमण करने आए खिलाड़ी का मुँह बन्द करना, हिंसात्मक व्यवहार करना, कैंची मारना, धक्का देकर खेल-सीमा से बाहर धकेलना नियम विरुद्ध हैं। इतना ही नहीं, सीमा-रेखा से बाहर धकेलने वाले खिलाड़ी को खेल से ही 'आउट' कर दिया जाता है।

सदा सुलभ, सरल, अमूल्य, व्यायाम से पूर्ण और मनोरंजन से भरपूर कबड्डी, खेल तथा टीम भावना उत्पन्न करने का साधन कबड्डी, भातीयता, राष्ट्रीयता का प्रतीक कबड्डी खेल ही मेरा प्रिय खेल है।

(39) मेरा प्रिय मित्र

संकेत बिंदु—(1) मेरा प्रिय मित्र (2) मैत्रीभाव और सत्यवादिता (3) मित्रता की पहचान (4) आत्मीयता और घनिष्ठता (5) पारिवारिक मित्रता।

मित्र समष्टि जीवन का उत्कृष्ट तत्त्व है। जीवन पथ का सहायक है। अहर्निश सुख और समृद्धि का चिंतक है। उत्सव, व्यसन और राजद्वार का साथी है। सहोदर के समान प्रीतिपात्र है। पिता के समान विश्वास योग्य है। 'अहितात्प्रतिषेधश्च, हिते चानुप्रवर्तनम्' अर्थात् अहित से रोकने ओर हित में लगाने वाला है। मेरा ऐसा प्रिय मित्र है मोहनलाल कैला।

मित्र और प्रिय मित्र में अन्तर है। साथ खेलने-कूदने, हँसने-लड़ने वाले सब मित्र ही तो हैं। सीट-साथी महेन्द्र गोयल, हॉकी-साथी बिशननारायण सक्सेना, गली निवासी सहपाठी नत्थूराम जिंदल, स्कूल की राजनीति का साथी महावीर साबू, रघुवीर शर्मा, सभा मंच का साथी लक्ष्मीचंद गुप्त. सब सखा, सुहृद् ही तो हैं, किन्तु तुलसीदास के उपदेशामृत के अनुसार 'जे न मित्र दुःख होहिं दुखारि', 'गुन प्रगटै अवगुनहिं दुरावा', 'देत लेत मन संक न धरई' तथा 'विपत्ति काल कर सत गुन नेहा' के सभी गुण मोहनलाल कैला में ही हैं। इसलिए वह मेरा प्रिय मित्र है।

वह मेरा सहपाठी और समवयस्क है। मैत्री-भाव उसकी विशेषता है। महाभारत के रचयिता वेदव्यास जी के कथनानुसार वह कृतज्ञ, धर्मनिष्ठ, सत्यवादी, क्षुद्रतारहित, धीर, जितेन्द्रिय, मर्यादा में स्थित और मित्रता को न त्यागने वाला है।

गणित में वह गोल अंडा था, एलजबरा उसके लिए 'ऑल झगड़ा' था। ज्योमैट्री की रेखाएँ उसके लिए चक्रव्यूह थीं। चक्रव्यहू में फँसा मोहन गणित के घंटे में अकल्पित भय से कम्पित हो जाता था। एक दिन गणित अध्यापक द्वारा मोहन को अति कष्टकर दण्ड देते देख मेरा हृदय पसीज गया, 'करुणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा' विगलित हो गई।

अवकाश के अनन्तर घर की ओर जाते हुए शिक्षक की मार उसके हृदय को पीड़ित कर रही थी। मैंने मार्ग में उसको पकड़ा, समझाया और अपने घर आने का निमंत्रण दिया। वह मेरे घर आया। मित्रता का हाथ बढ़ाया। गणित की शून्यता को अंकों में बदलने के गुर समझाने का विश्वास दिलाया।

घर में पढ़ाई के बाद दोनों मित्रों की शाम एक साथ बीतने लगी। हॉकी हमारा प्रिय खेल था। इसलिए हॉकी के मैदान तक जाने और वापिस लौटने में गपशप, अनहोनी, होनी,

दु:ख-सुख की चर्चा होने लगी। गपशप हृदय की गाँठों को खोलती है, मुक्त प्रेम को उदित करता है। हमारा संग शनै:-शनै: दृढ़ मित्र भाव में परिणत होने लगा।

मोहनलाल से मित्र भाव बढ़ाते समय अचानक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की पंक्ति स्मरण हो आई, 'मित्र बनाने से पूर्व उसके आचरण और प्रकृति का अनुसंधान करना चाहिए।' इसका एक ही उपाय था—

दो शरीर एक प्राण बन एक दूसरे की अन्तरात्मा को पहचानना। गपशप में, हास-परिहास में, मंत्रवत् मुग्ध भाव में। आदमी के मुख से अनायास ऐसे शब्द निकल पड़ते हैं, जो उसकी सही पहचान के परिचायक होते हैं। इसी माध्यम से एक दूसरे के स्वभाव को पढ़ा और आचरण को समझा।

एक रविवार को अपराह्ण उसके घर गया। देखा, मोहन चारपाई पर बैठा दवाई की 'डोज' ले रहा है। मुँह सूजा हुआ है। पूछने पर उसने बताया कि बस स्टॉप पर मेरी बड़ी बहन के सामने किसी मनचले युवक ने सिनेमा गीत की पंक्ति गाकर उसे छेड़ने का प्रयास किया। मोहन उधर से गुजर रहा था। बहिन जी ने आवाज देकर मोहन को बुलाया और युवक की शरारत बताई। युवक और मोहन में कहा-सुनी हुई, मारपीट हुई। उसी का यह परिणाम है। इस घटना का मेरे मन पर गहरा प्रभाव पड़ा। मित्रता आत्मीयता में बदल गई।

एक दिन हॉकी खेलकर जब वापिस आ रहे थे तो उसने बताया की उसकी बहिन का रिश्ता टूट गया है। इस कारण सारा परिवार दु:खी है, माताजी ने रो-रोकर आँखें सुजा ली हैं। रिश्ता टूटने का कारण क्या है ? यह बात वह स्पष्ट नहीं बता पाया था या उसने बताना नहीं चाहा।

रात को मैंने अपने माता-पिता से इस दु:खद घटना की चर्चा की। उन्हें शायद यह बात पहले से ही पता थी। उन्होंने बताया कि इसमें तुम्हारे मित्र-परिवार का दोष है। फिर भी हम बिगड़ी बात बनाने की कोशिश करेंगे। पिताजी के अनथक प्रयास से टूटा हुआ रिश्ता जुड़ गया और विवाह धूमधाम से हो गया। मोहन के पिता घमण्डी-प्रकृति के हैं। घमण्ड में कहीं लड़के के रिश्तेदार को कह बैठे थे, 'लड़के का बाबा मिंटगुमरी में छल्ली (मक्कई) बेचता था। आज लड़का आई. सी. एस. ऑफिसर हो गया, तो क्या बात हुई। खानदान तो छल्ली बेचने वालों का कहलाएगा।'

उस घटना ने मोहन की मित्रता को पारिवारिक मित्रता में बदल दिया। पारिवारिक-मित्रता ने दु:ख-सुख में भागीदारी का क्षेत्र व्यापक किया और हम संसार के जगड्वाल में, बीहड़ मायावी गोरख-धन्धों में, स्वार्थमय जगत् में एक-दूसरे की मंगल-कामना में अग्रसर हुए। महाकवि प्रसाद ने ठीक ही कहा है—

मिल जाता है जिस प्राणी को सत्य प्रेममय मित्र कहीं,
निराधार भवसिंधु बीज वह कर्णधार को पाता है।
प्रेम नाव खेकर जो उसको सचमुच पार लगाता है।।

(40) मेरा पड़ोसी

संकेत बिंदु—(1) पड़ोस में रहने वाला (2) पड़ोसी से परिचय (3) अध्यापक पड़ोसी की असलियत (4) पड़ोसी की पत्नी का स्वभाव (5) उपसंहार।

विपत परे सुख पाइए, जा ढिंग करिए मौन।
नैन सहाई बधिर के, अन्ध सहाई स्त्रौन ॥ —वृन्द

पड़ोस में रहने वाला पड़ोसी कहलाता है। उसे ही प्रतिवासी, प्रतिवेशी, हमसाया या नेबरर भी कहते हैं। पड़ोसी इस हिन्दी कहावत को भी चरितार्थ करता है—'दूरस्थ भाई से समीपस्थ पड़ोसी अधिक श्रेष्ठ हैं।' लोकोक्ति की इस सत्यता को भी प्रकट करता है—'पड़ोसी के मेंह बरसेगा तो बौछार हमारे यहाँ भी आएँगी।' इसीलिए हौरेस का कथन, "When your neighbour's house is on fire, your own property is at stake.' अर्थात् जब तुम्हारे पड़ोसी के घर में आग लगी तो तुम्हारी अपनी सम्पत्ति भी खतरे में है।

सौभाग्य से मेरे पड़ोसी वैश्य परिवार के और हरियाणा निवासी हैं। कुंडली में दो-दो योग देखकर मन प्रसन्न हुआ। वे (पति-पत्नी) श्याम वर्ण हैं और हम दोनों गौर-वर्ण। यहाँ आकर कुंडली उलट गई।

पड़ोसी हैं, इसलिए परिचय होना चाहिए। कुछ दिन तक आलस्य और झिझक में परिचय न कर पाया, पर प्रकृति ने यह काम स्वयमेव कर दिया। एक दिन अपराह्णमें श्रीमती जी की धोयी हुई धोती पतंग की भाँति लहराती हुई, उनके आँगन में पहुँच गई। परिचय का बहाना हाथ लगने पर हमारी श्रीमती कुदकती-फुदकती जब उनके आँगन में घुसीं तो उस पड़ोसन ने हृदय-बेधी बाणों से ऐसा स्वागत किया कि श्रीमती जी का समस्त उत्साह मन्द पड़ गया। इतना ही नहीं धोती उठाकर देते हुए चतुराई से उसे भूमि से भी रगड़ दिया।

'प्रथमे ग्रासे मक्षिका पात:।' प्रथम परिचय ही इतना श्रेष्ठ (?) हो तो 'आगे कौन हवाल।' अस्तु पड़ोसी है, रहना तो उसके पड़ोस में पड़ेगा ही। यह सोचकर श्रीमती जी ने थोड़ी सावधानी बरतनी शुरू कर दी।

एक दिन गली के मकान-मालिकों की बैठक थी। बीस-पच्चीस व्यक्ति एकत्र थे। उसमें हमारे पड़ोसी सज्जन भी थे। वे मेरे साथ बैठे थे। मैंने हाथ जोड़कर उन्हें नमस्कार किया तो प्रत्युत्तर में उन्होंने केवल मुँडिया हिला दी। मुझे लगा कि इसके सिर पर अहंभाव हावी है। बैठक में वर्षा आगमन से पूर्व गली की नालियों की सफाई के लिए 500-500 रुपये इकट्ठे करने का प्रस्ताव आया। सबके साथ यह पड़ोसी भी तैयार। मुझे लगा यह सामाजिक दायित्व को समझता है।

बैठक समाप्त हुई। उसके एक अन्य पड़ोसी से इसका परिचय जानना चाहा तो उसने

आश्चर्य से कहा, 'अरे! तुम नहीं जानते ! ये तो हमारे विद्यालय में अध्यापक हैं।' मुझे लगा, चलो एक 'राष्ट्रनिर्माता' तथा 'संस्कार प्रदाता' से वास्ता पड़ा है।

एक दिन कारणवश उनके घर जाना पड़ा। उन्होंने प्रेमपूर्वक बिठाया। श्रीमती जी को 'चाय' का आदेश दिया। चाय पीते हुए बातचीत हुई। न जाने कौन से धान गंगा में बोए थे, जिनके प्रबल प्रताप से पहली ही मुलाकात चाय की सेवा से हुई, पर मन को ठेस लगी। हृदय आहत हुआ यह देखकर कि वे 'मास्टर जी' सब्जी काट रहे थे और 'ट्यूशन' पढ़ने वाला छात्र बैठा प्रश्न हल कर रहा था। हाय रे ! राष्ट्रनिर्माता! संस्कार प्रदाता! वाह रे ! समय के सदुपयोग (?) कर्ता !

बाद में हमारी श्रीमती जी ने बताया कि मास्टर जी कम से कम 6-7 ट्यूशन करते हैं और रात्रि को 8 से 9 बजे तक ग्रुप लेते हैं। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई कि पड़ोसी की अमीरी सदा सुखद होती है और बच्चों को पास कराने का परोपकार भी मिलता है। फिर परोपकार से पुण्य प्राप्ति है ही।

उनकी पत्नी को गली के बच्चे दुर्गा माता कहते थे। इस 'पुनीत संज्ञा' पर हमें ईर्ष्या हुई। हमने शोध करने की ठानी ताकि पी-एच. डी. उपाधि से अलंकृत होकर 'डॉक्टर' कहलाएँ। नेक काम घर से शुरू करना चाहिए, इसलिए एक दिन सम्पूर्ण परिवार को बैठाया और अपने शोध का विषय बताया तो झट 'हिज मास्टर्स वायस' का रिकॉर्ड चालू हो गया। 'बच्चे गली में खेलते है, उनकी गेंद, गुल्ली या चिड़ी चौका-छक्का मारती हुई इनके प्राँगण में घुस जाए तो ये कभी नहीं देतीं। डाकिये की भूल से किसी का पत्र इनके यहाँ पहुँच जाए तो वह अग्नि को समर्पित हो जाता है। फिर अपनी जरा-सी निन्दा सुनकर तो इनका दुर्गा रूप ही प्रकट हो जाता है। अपने किरायेदार को एक इंच ज्यादा जमीन इस्तेमाल नहीं करने देतीं। यहाँ तक कि चौक में उसका स्कूटर नहीं खड़ा करने देतीं।' मुझे लगा मैंने क्यों इस भिड़ के छत्ते को हाथ लगा दिया।

एक दिन प्रात: उठे तो देखा पड़ोसी बदल गए हैं। संसार का आठवाँ आश्चर्य! गली-मुहल्ले में यह खबर आग की तरह फैल गई। सब आश्चर्य चकित। धीरे-धीरे रहस्य खुला। मास्टर जी अपने नये मकान में चले गए। सुनकर प्रसन्नता हुई। कारण, जिस प्रकार बनवास के 14 वर्ष पश्चात् श्रीराम के जीवन में आनन्द का सागर उमड़ा था, उसी प्रकार चौदह वर्षीय अनथक ट्यूशन-परिश्रम से वे दूसरे भवन के स्वामी बने थे। कथा सरित्सागर के अनुसार, 'अप्राप्यं नाम नेहास्ति धीरस्य व्यवसायिन:।' परिश्रमी धीर व्यक्ति को इस जगत् में कोई वस्तु अप्राप्य नहीं। हमारी श्रीमती दु:खी थीं। समझाया-बुझाया पर उन पर तो कबीर हावी थे—'निन्दक नियरे राखिए आँगन कुटी छवाय।' दूसरी ओर, वे इसलिए दु:खी थीं कि अब महाभारत का सजीव सीरियल देखने से वंचित रह जाएँगे।

(41) मेरा परिवार

संकेत बिंदु—(1) परिवार का अर्थ (2) परिवार के सदस्यों का परिचय (3) भाइयों और बहनों का परिचय (4) पिताजी की शिक्षा और व्यवसाय (5) माताजी की शिक्षा और स्वभाव।

परीक्षा में 'मेरा परिवार' शीर्षक निबंध लिखने से पूर्व सोचना पड़ा कि मेरा परिवार से तात्पर्य मेरे पितामह-परिवार से है या पितृ-परिवार से ? दूसरी ओर विचार आया कि विज्ञान की कृपा से 'वसुधैव-कुटुम्बकम्' बन जाने के कारण क्या मुझे विश्व-परिवार पर लिखना चाहिए ? फिर विचार आया हिन्दी की विख्यात कवयित्री महादेवी वर्मा ने तो अपने पालित पशु-पक्षियों को ही अपने परिवार में परिगणित किया है। तो क्या मुझे अपने पालतू कुत्ते-बिल्ली पर लिखना चाहिए ? इस असमंजस का हल निकाला जैनेन्द्र जी के विचारों ने। उनका कहना है कि 'परिवार मर्यादाओं से बनता है, परस्पर कर्तव्य होते हैं, अनुशासन होता है और उस नियत परम्परा में कुछ जनों की इकाई एक हित के आस-पास जुटकर व्यूह में चलती है। उस इकाई के प्रति हर सदस्य अपना आत्मदान करता है, इज्जत खानदान की होती है। हर एक उससे लाभ लेता है और अपना त्याग देता है।'

इस प्रकार परिवार से तात्पर्य हुआ 'एक घर में और विशेषत: एक कर्ता के अधीन या संरक्षण में रहने वाले लोग।'

मेरे परिवार में सात प्राणी हैं। इसके सदस्य हैं—मेरे पिता, माता, दो भाई तथा तीन बहनें। हाँ, मैं परिवार का ही अंग हूँ। अत: संख्या आठ हो गई, संख्या बताते ही दूलन दास चिल्ला उठा—'बेटा सत्य बोल।' कारण,

दूलन यह परिवार सब, नदी नाव संयोग।
उतरि परै जहँ-तहँ चले, सब बटाऊ लोग॥

मुझे ध्यान आया दो बड़ी बहनें विवाहोपरान्त अपने ससुराल चली गईं। वे अन्य परिवारों की अंग बन गईं। दूसरी ओर दोनों बड़े भाई रहते ही विदेश में हैं, उन्होंने वहीं अपना घर बना लिया है। इसलिए परिवार से ये चार प्राणी कट गए। रह गए चार—माताश्री, पिताश्री, बहिन और मैं।

चार की संख्या पर विश्वख्यात चिंतक अरस्तू को एतराज हुआ। उन्होंने कहा पुत्र! 'तू तो परिवार की परिभाषा को संकुचित कर रहा है। परिवार तो मनुष्य की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रकृति द्वारा स्थापित एक संस्था है। इसमें तुम्हारा मुँडू (नौकर) भी शामिल होना चाहिए।' मुझे लगा अरस्तू सही कहते हैं। हम चार नहीं, पाँच हैं।

मेरी तीसरी बहन बी. ए. तृतीय वर्ष की छात्रा है। उसकी राजनीति में रुचि है। इसलिए कॉलेज इलेक्शन लड़ना उसका 'व्यसन' है। दूसरी ओर वह धाविका है। कॉलेज-दौड़ की

गोल्ड-मैडलिस्ट है। पढ़ाई में प्रथम श्रेणी प्राप्त करना, अध्ययन पर उसके अधिकार का प्रतीक है।

मैं क्या हूँ? 'न मम', मेरा अपना बताने लायक कुछ नहीं है। जो कुछ हूँ वह माता-पिता का ममत्व है, उनकी तपस्या का फल है, उनका स्नेह और आशीष मुझे प्राप्त है। भवभूति के उत्तर रामचरित में मेरी पहचान ढूँढ लीजिए—

अन्तःकरणतत्त्वस्य दम्पत्योः स्नेह संश्रयात्।
आनन्द ग्रंथिरेकोऽयम् अपत्यमिति कथ्यते॥

अर्थात् सन्तान स्नेह के आश्रम से माता-पिता के अन्तःकरण तत्त्व की आनन्द ग्रंथि कही जाती है। मैं दसवीं का छात्र हूँ। अध्ययन के प्रति समर्पित हूँ। स्वस्थ रहने के लिए नित्य एक घंटा खेल खेलता हूँ। हॉकी मेरा प्रिय खेल है। मित्रों से मित्रता निभाता हूँ, क्योंकि उनके अभाव में जीवन निर्जन वन-सा लगता है। माता-पिता और गुरुजन की सेवा और सम्मान में विश्वास रखता हूँ। मेरा अहं तुझे तंग करता है और मेरी भावकुता मुझे नीचा दिखाती है।

चलते-चलते दोनों बड़े भाई और दोनों बड़ी बहनों का परिचय करा दूँ। यद्यपि वे हमारे परिवार के सदस्य नहीं, पर हैं तो एक माता-पिता की सन्तान, एक वंश के अविभाज्य अंग। दोनों अग्रज इंजीनियर हैं। वे भारत की राजनीतिक दलदल के मारे हैं, पर विदेश में कमल बन कर खिल रहे हैं। लक्ष्मी की उन पर कृपा है। दोनों बहिनें मातृत्व की दीर्घ तपस्या का सुपरिणाम है। एक, एम. ए., पी-एच. डी हैं, अध्यापिका हैं; दूसरी एम. बी. बी. एस. डॉक्टर।

पाँच प्राणियों का परिवार और पच्चीस बातें। कोई कहता ये गंधर्व, पितर, देव, असुर और राक्षस का पंच-जन परिवार है तो कोई कहता नहीं, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद का पंच-वर्ग समूह है। तीसरा कहता है—ये मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि रूपी पंच-ग्रह हैं। चौथा हमें पंच-तन्त्र—पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश या तंत्र के अनुसार गुरु-तत्त्व, मंत्र-तत्त्व, मनस्तत्त्व, दैवतत्त्व और ध्यानतत्त्व मानता है। पाँचवाँ, पंच तरु मंदार, परिजात, सन्तान, कल्पवृक्ष और हरिचंदन से उपमित करता है। छटा, हमें चंपा, आम, शमी, कमल और कनेर के पंच-पुष्प मानता है। खैर इतनी ही है कि किसी ने हमें पंचमांगी, पंचानन या पंडक नहीं माना।

मेरे पिताजी ने एम. ए. तक शिक्षा प्राप्त की है, पर उन्होंने नौकरी के स्थान पर व्यापार को प्राथमिकता दी। वस्त्र-विक्रेता हैं। गाँधी नगर वस्त्र मार्किट के सचिव हैं। हृदय के उदार हैं, पर हैं सिद्धांतवादी। वे मुद्दों की राजनीति करते हैं, मूल्यों की नहीं। इसीलिए पुत्रियों को सुयोग्य वर थमाने में दान-दहेज देते हैं और सिद्धांतों के लिए वस्त्र-मार्किट के संघ की बलि नहीं चढ़ने देते। सगे-सम्बन्धियों, इष्ट मित्रों के काम आने वाले व्यक्ति हैं। परिवार के लिए वे इस फ्रैंच कहावत को चरितार्थ करते हैं—'A Father is a banker provided by nature'. अर्थात् पिता प्रकृति द्वारा प्रदत्त श्रेष्ठी है।

मेरी माताश्री बी. ए. हैं, शास्त्री हैं। कढ़ाई-सिलाई, विभिन्न व्यंजन तथा चित्रकला में 'उपाधिधारी' हैं। नौकरी के विरुद्ध हैं। बच्चों की सेवा को अपना परम कर्तव्य मानती हैं। बच्चों की सेवा के सम्मुख वे अपने पति की भी उपेक्षा कभी कर लेती हैं। यही कारण है कि हम तीनों भाई और तीनों बहिनें शरीर से स्वस्थ. पढ़ाई में होशियार और चिंतन में प्रखर हैं। भावुकता उनकी पहली दुर्बलता है। खर्च में उदारता उनकी दूसरी कमजोरी है।

हिन्दू-दर्शन में स्वर्ग और नरक की कल्पना है। परलोक के स्वर्ग और नरक को मैं नहीं जानता, न ही जानने में मेरी रुचि है। मेरा स्वर्ग मेरे परिवार के सुखद तथा उत्साहवर्द्धक वातावरण में है। माता-पिता मेरे शिवा और शिव हैं। बहिन लक्ष्मी रूपा है और मुँडू जी साक्षात् सेवा का अवतार हैं।

यह है मेरे परिवार की एक छोटी-सी झलक।

(42) मेरी दिनचर्या

संकेत बिंदु—(1) प्रात:काल का नियम (2) व्यायाम और सैर (3) विद्यालय के लिए प्रस्थान (4) दोपहर के क्रियाकलाप (5) नियमितता और दक्षता।

प्रात:काल उठने से लेकर रात्रि में निद्रा की गोद में खो जाने तक के दैनिक कार्यव्यवहार को दिनचर्या कहते हैं। दूसरे शब्दों में, नित्य प्रति किए जाने वाले सम्पूर्ण कार्य-व्यवहार दिनचर्या कहलाते हैं। मेरे दैनन्दिन कार्यों का विवरण इस प्रकार है—

मैं एक विद्यार्थी हूँ। मेरी दिनचर्या मेरे विद्यालय पर निर्भर है, यह मेरी विवशता है, पर इस विवशता में खिन्नता नहीं है। उसी में आनन्द और उत्साह लेने की मेरी प्रवृत्ति है।

प्रात: 7.30 बजे मेरी पाठशाला प्रारम्भ होती है। इसलिए मैं प्रात: 5 बजे उठता हूँ। शैया पर बैठकर दो मिनट के लिए परमपिता परमात्मा का ध्यान करता हूँ। पृथ्वी की तीन बार वन्दना करते हुए पृथ्वी माता से उस पर अपने चरण रखने के लिए क्षमा माँगता हूँ—

दोनों हथेलियों का दर्शन करते हुए श्लोक बोलता हूँ—

कराग्रे वसते लक्ष्मी: करमध्ये सरस्वती।
कर मूले तु गोविन्द: प्रभाते कर दर्शनम्॥
समुद्र वसने देवी पर्वतस्तन मण्डले।
विष्णु पत्नि, नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे॥

तदन्तर उठकर मुँह-हाथ धोया। एक गिलास स्वच्छ जल पीया और 5-7 मिनट घर के प्रांगण में टहल लिया। तत्पश्चात् शौच गया। दाँतों को ब्रुश करके स्नान किया। प्रभुप्रतिमा के सम्मुख साष्टांग प्रणत हुआ। निकल पड़ा प्रात:कालीन व्यायाम को।

घर के समीप ही उपवन है। घास का हरा-भरा मैदान और विभिन्न प्रकार के खिले फूल प्रात:कालीन सैलानियों का अपनी मुस्कराहट से स्वागत करते हैं। थोड़ी दौड़, थोड़ी

पी. टी. और दो-तीन आसन करना मेरा दैनिक व्यायाम है। व्यायाम करने के उपरांत पन्द्रह मिनिट बाग की हरी-हरी घास पर बैठकर विश्राम करता हूँ।

घर लौटा, कलेवा किया। विद्यालय के कालांश (पीरियड) के अनुसार बस्ता तैयार किया। जूतों को बुरुश किया। साइकिल पर बस्ता रखा और चल पड़ा विद्यालय के लिए।

निर्धारित समय से पाँच मिनट पूर्व विद्यालय पहुँचना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ। इस कर्तव्य-पूर्ति के प्रति गर्व का भी अनुभव करता हूँ।

12 बजकर 40 मिनट पर विद्यालय का अवकाश होता है। छुट्टी की घंटी बजने पर हम सब विद्यार्थी ऐसे प्रसन्न होते हैं, मानों जेल से छूट रहे हों ।

घर लौटकर अपने बस्ते को यथास्थान रखता हूँ। विद्यालय के वेश को उतार कर हैंगर पर टाँगता हूँ। घरेलू वस्त्र पहनता हूँ। हाथ-मुँह धोकर भोजन के लिए तैयार हो जाता हूँ। भोजनोपरान्त विश्राम करता हूँ।

लगभग साढ़े तीन बजे उठता हूँ। मुँह-हाथ धोता हूँ और पढ़ने की मेज पर बैठ जाता हूँ। इस समय, विद्यालय से मिले 'गृह-कार्य' को करता हूँ। साथ ही विद्यालय में पढ़ाए गए पाठों की आवृत्ति भी करता हूँ। पढ़ने की मेज पर ही साढ़े चार बजे माताजी चाय और बिस्कुट दे जाती हैं।

लगभग सायं 6 बजे पढ़ाई बन्द कर देता हूँ। सायंकाल का समय खेलने के लिए निश्चित है। अत: विद्यालय के 'प्ले ग्राउँड' में जाता हूँ। हॉकी मेरा प्रिय खेल है। अत: एक घंटा साथियों के साथ 'खेल-भावना' से हॉकी खेलता हूँ। खेल समाप्ति पर सब साथी मिलकर 15-20 मिनट कुछ मतलब की बात करते हैं, कुछ गप्पें हाँकते हैं।

रात्रि आठ बजे के लगभग घर लौटता हूँ। हाथ-मुँह धोकर टी. वी. के आगे बैठ जाता हूँ। इधर टी. वी. देखता हूँ, उधर गरम भोजन आ जाता है। 8.30 के समाचार सुनकर प्रतिदिन के राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय घटना-चक्र से अपने को भिज्ञ रखता हूँ। 9 बजे से 9-30 बजे तक के प्रायोजित कार्यक्रम का आनन्द लूटता हूँ।

साढ़े नौ बजे के बाद मुझे जागना अच्छा नहीं लगता, क्योंकि मेरी प्रिय शैया मेरी प्रतीक्षा कर रही होती है। अत: चारपाई पर बैठकर दो मिनट अपनी दिनचर्या का सिंहावलोकन किया, दिन के भले या बुरे कार्यों का चिंतन किया और लेट गया। लेटने के पश्चात् आँखों में 'लकोला-10' दवाई डालना नहीं भूलता।

यह है मेरी नित्य की दिनचर्या। इसमें नियमितता है। नियमितता में स्फूर्ति है, दक्षता है और है तेजस्विता। नियमित व्यायाम और विश्राम से मेरा स्वास्थ्य ठीक रहता है और नियमित अध्ययन में पढ़ाई की निपुणता बनी रहती है।

रविवार और विद्यालय-अवकाश-दिवस को मेरी उक्त दिनचर्या में परिवर्तन एक शाश्वत नियम है। उक्त दिनचर्या में बदलाव आता है। उन दिनों कुछ नए उत्साह, उल्लास और उमंग के कार्यक्रम प्रस्तुत रहते हैं। इस प्रकार मैं कोल्हू का बैल भी नहीं बनता और जीवन में समरस भी रहता हूँ।

(43) मेरी प्रिय पुस्तक : रामचरितमानस

संकेत बिंदु—(1) मेरी प्रिय पुस्तक रामचरितमानस (2) जीवन प्रेरक और धर्म ज्ञान की प्रदाता (3) मर्यादा पुरुषोत्तम की परिकल्पना (4) सामाजिक और पारिवारिक ग्रन्थ (5) विश्व वंदनीय ग्रन्थ।

हमारी पाठ्य पुस्तक में रामचरितमानस की कुछ चौपाइयाँ हैं। उनमें अच्छे मित्र के गुणों का वर्णन किया गया है। वे चौपाइयाँ मुझे बहुत अच्छी लगीं। हमारे अध्यापक महोदय ने बताया कि रामचरितमानस बहुत श्रेष्ठ ग्रंथ है। उसमें इसी तरह की अच्छी-अच्छी सैकड़ों चौपाइयाँ और दोहे हैं। मैंने मन में निश्चय किया कि सम्पूर्ण रामचरितमानस को अवश्य पढ़ूँगा।

अवसर मिलने पर मैंने रामचरितमानस का अध्ययन किया और आज वह मेरी प्रिय पुस्तक है। 'स्वान्तः सुखाय' लिखी गई तुलसी की यह रचना न केवल बहुजन हितकारी है, अपितु सर्वजनहित के आदर्श को प्रतिपादित करती है। हिन्दुओं का यह धर्म-ग्रंथ है। साहित्यिक दृष्टि से हिन्दी का श्रेष्ठ महाकाव्य है।

चार सौ वर्ष से भी पूर्व लिखी गई यह पुस्तक जन-जन का कंठहार, जीवन की प्रेरक, धर्म-ज्ञान की प्रदाता और कर्तव्य-बोध करने वाली है। रंक से लेकर राजा तक के घर में इस ग्रन्थ-रत्न का समान आदर है। इतना ही नहीं, यह ग्रन्थ विदेशों में हिन्दी के प्रचार और प्रचार का माध्यम है। जहाँ-जहाँ हिन्दू गया, वहाँ-वहाँ मानस उसके साथ गया। मॉरिशस में रामचरितमानस के कारण हिन्दी जन्मी, विकसित हुई।

मानस अवधी भाषा में लिखा गया ग्रन्थ है। इसमें अयोध्या नरेश दशरथ के पुत्र मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्री रामचन्द्र का जीवन-चरित्र दोहा-चौपाइयों में वर्णित है। राम के जन्म से लेकर सिंहासनारूढ़ होने तक की सम्पूर्ण कथा मानस में सात काण्डों (अध्यायों) में विभक्त है। इनके नाम हैं : बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किंधाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, लंकाकाण्ड और उत्तरकाण्ड।

तुलसीदास ने एक ऐसे सामंत या शक्तिशाली पुरुषोत्तम की परिकल्पना की जो सम्राटों का सम्राट् हो, जिसे सोने की लंका तक न ललचा पाए, बहुपत्नी की जगह एक पत्नीव्रत में विश्वास करता हो, प्रजा पालक हो—यहाँ तक कि एक सामान्य धोबी द्वारा लांछन लगाने पर अपनी एकमात्र पत्नी को त्याग दे। न राग, न रोष, न मान, न मद जिसके गुण हों। जिसमें उपेक्षित वनजातियों तक को साथ लेकर चलने का अदम्य सामर्थ्य हो। पिता (बालि) का वध कर देने पर भी उसके पुत्र को अपना दूत और सेनापति बनाने का साहस हो। स्त्री की गरिमा को महत्त्व देता हो, चाहे—शबरी हो या तारा; कैकेयी हो या कौशल्या। जो मानव की तरह दुःखी और सुखी होता हो, परन्तु अपनी प्रज्ञा से काम लेता हो। अकबर जैसे सम्राट् के मुकाबले किसी ऐसे ही सर्वशक्तिमान् सामंत को स्थापित

करके आस्था को आधार देने के उद्देश्य से राम की स्थापना की गई थी।'

—गिरिराज किशोर (नवभारत टाइम्स: 6.1.93)

स्वयं तुलसीदास ने रामचरित मानस के संबंध में मानस के अंत में लिखा है—

पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञान भक्ति प्रदं
मायामोहमलापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम्
श्री मद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्या वगाहन्ति ये।
ते संसार पतंग घोर किरणैर्दह्यन्ति नो मानवा:।।

(*मानस* (7/130/2)

यह रामचरितमानस पुण्य रूप; पापों का हरण करने वाला; सदा कल्याणकारी; विज्ञान और भक्ति को देने वाला; माया, मोह और मल का नाश करने वाला परम निर्मल प्रेम रूपी जल से परिपूर्ण तथा मंगलमय है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस मानसरोवर में गोता लगाते हैं, वे संसार रूपी सूर्य की प्रचण्ड किरणों से नहीं जलते।

श्री युगेश्वर का कहना है, 'मानस एक ऐसा वाग्द्वार है, जहाँ से समस्त भारतीय साधना और ज्ञान-परम्परा प्रत्यक्ष दीख पड़ती है। दूसरी ओर, इसमें देशकाल से परेशान, दु:खी और टूटे मनों को सहारा तथा संदेश देने की अद्‌भुत क्षमता है। आज भी यह करोड़ों मनों का सहारा है।' *(तुलसीदास : आज के संदर्भ में)*

चन्द्रबली पाण्डेय मानस को विश्व का विशिष्ट ग्रंथ मानते हुए लिखते हैं, 'यह विश्व का एक विशिष्ट महाकाव्य है। वस्तुत: जीवन की उलझन का वह एक अत्यंत सुलझा हुआ ग्रंथ है।' *(तुलसीदास : पृष्ठ 87)*

मानस आचार और धर्म की शिक्षा एक साथ देने वाला सामाजिक और पारिवारिक प्रवृतियों का ग्रन्थ है। जैसे—राजा दशरथ ने तीन विवाह किए, रानियों में सौतियाडाह उत्पन्न हुआ। राम का वन-गमन, भरत का नन्दी ग्राम में तपस्या करना आदि सौतियाडाह के ही परिणाम थे। इतना ही नहीं पिता-पुत्र में, भाई-भाई में, सास-बहू में, गुरु-शिष्य में, स्वामी-सेवक में, राजा और प्रजा में कैसा व्यवहार होना चाहिए, यह शिक्षा हमें मानस से ही मिलती है। मानस के विभिन्न प्रवृत्तियों वाले पात्रों—राजा दशरथ, पुत्र राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न; माताएँ कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी; पत्नी सीता; गुरु वशिष्ठ; सेवक सुमन्त; मित्र हनुमान् और विभीषण आदि ने हमें गृहस्थ धर्म की मर्यादा का ही पाठ पढ़ाया है।

भगवान् राम शील-शक्ति और सौन्दर्य के प्रतीक हैं। उन्हें जो देखता है, उन्हीं का हो जाता है। शीलवान् वे इतने हैं कि वे सब पर अकारण ही कृपा करते हैं। वे दुष्टों और आततायी राक्षसों का विनाश कर सकते हैं। राक्षसराज रावण जैसे महाबली शत्रु से लड़ने के लिए वानरों का संगठन कर, उनके नेताओं का सहयोग प्राप्त कर, समुद्र पर पुल बाँध कर लंका में प्रवेश करना और भाई-भाई की फूट से लाभ उठाकर लंका विजय करना, राम के जीवन की महानता का द्योतक है। शत्रु पर विजय प्राप्त करने का अद्वितीय उदाहरण है।

इन्हीं विशेषताओं के कारण तुलसी का मानस आज घर-घर में पूज्य है। वह धर्म-ग्रन्थ है। अनेक विदेशी भाषाओं में मानस का अनुवाद को चुका है। भारत की ही भाँति विदेशों में भी राम के पावन चरित्र की गाथा रामलीला के रूप में प्रदर्शित की जाती है।

ऐसा पवित्र ग्रंथ, जो सकल विश्व में पूज्य है, वन्दनीय है, मेरी भी प्रिय पुस्तक है। मैं इसका दैनिक पाठ करता हूँ। जीवन की कठिनाइयों को मानस के माध्यम से हल करता हूँ। मानस के पात्रों से सद्‌गुणों की शिक्षा ग्रहण कर इस मानस-जीवन को सफल करने की चेष्टा करता हूँ।

(44) मेरा आदर्श इतिहास-पुरुष : छत्रपति शिवाजी

संकेत बिंदु—(1) मेरा आदर्श इतिहास पुरुष शिवाजी (2) शिवाजी का जन्म और पालन-पोषण (3) शिवाजी का विजय अभियान (4) औरंगजेब से शिवाजी का युद्ध (5) कुशल शासक और संगठनकर्त्ता।

इतिहास में अनेक महापुरुषों का उल्लेख है। वे अपने राष्ट्र की सेवा कर इतिहास पुरुष बन गए। परकीयों से राष्ट्र की रक्षा, जनता के हितार्थ चिन्तन तथा उसकी प्रगति का कार्यान्वयन ऐतिहासिक महापुरुषों का जीवन-लक्ष्य रहा है। ऐसे महापुरुषों के सम्मुख मस्तक नत हो जाता है। उनके जीवन से प्रेरणा लेकर अपना जीवन राष्ट्र-हित में समर्पित करने की इच्छा बलवती होती है।

मर्यादा पुरुषोत्तम राम से लेकर आज तक भारत-भू पर इतिहास पुरुषों की यशस्वी श्रृंखला विद्यमान है, किन्तु मेरे आदर्श इतिहास पुरुष हैं, छत्रपति शिवाजी। शिवाजी ही थे, जिन्होंने—

मुगलों के अत्याचारों से जब हिन्दू जनता त्राहि-त्राहि कर थी, स्त्रियों का अपमान सरे-आम हो रहा था, गौ तथा ब्राह्मण की मान्यता समाप्त कर उनकी नृशंस हत्या की जा रही थी, हिन्दू घर में जन्म होने पर 'कर' देना पड़ता था, अपनी आन के पक्के राजपूत तलवार को छोड़ विलासिता का जीवन व्यतीत कर रहे थे, ऐसे समय में हिन्दू-धर्मरक्षक छत्रपति वीर शिवाजी भारत भू पर अवतरित हुए।

शिवाजी का जन्म 10 अप्रैल, सन् 1627 को महाराष्ट्र के शिवनेरी के दुर्ग में हुआ। उनकी माता का नाम जीजाबाई और पिता का नाम शाहजी था। शाहजी बीजापुर के शासक के अधीन थे। शिवाजी के जन्म के बाद शाहजी ने दूसरा विवाह कर लिया। जीजाबाई अब शिवनेरी से पूना आ गईं थीं।

शिवाजी के जीवन-निर्माण का श्रेय उनकी पूज्य माता जीजाबाई को ही है। वे शिवाजी को रामायण और महाभारत की कथाएं सुनातीं। बाल्यकाल में ही उन्होंने शिवाजी के हृदय में हिन्दुत्व और राष्ट्रीय स्वाभिमान का भाव कूट-कूटकर भर दिया। साधु-सन्तों की संगति

में उन्हें धर्म और राजनीति का शिक्षण मिला। कालान्तर में दादाजी कोंडदेव पूना की जागीर के प्रबन्धक नियुक्त हुए। शिवाजी ने उन्हीं से युद्ध-विद्या और शासन-प्रबन्ध करना सीखा।

दादाजी कोंडदेव की मृत्यु के उपरान्त जागीर का प्रबन्ध शिवाजी ने अपने हाथ में ले लिया। उन्होंने मराठा जाति को एकत्रित कर एक सुसंगठित सेना भी तैयार कर ली।

शिवाजी ने सर्वप्रथम आक्रमण बीजापुर के एक दुर्ग 'तोरण' पर किया। तोरण को जीत लेने के बाद उन्होंने रायगढ़, पुरन्दर और राजगढ़ के किलों को भी जीता। इस विजय में बहुत-सा धन प्राप्त होने के साथ-साथ एक अरब शाहजादे की अनुपम सुन्दर स्त्री भी मिली। जब लूट के सामान के साथ सुन्दरी को भी शिवाजी के सम्मुख पेश किया गया तो उन्होंने उसे 'माँ' कहकर सम्बोधित किया और बहुत से आभूषण देकर उसे उसके पति के पास पहुँचवा दिया।

शिवाजी की निरन्तर विजय से बीजापुर के शासक ने क्रोध में आकर शिवाजी के पिता शाहजी को जेल में डाल दिया। शिवाजी ने अपनी बुद्धिमत्ता और नीति से उन्हें छुड़ा लिया। इसके पश्चात् शिवाजी कुछ काल तक शान्त रहकर अपनी शक्ति बढ़ाते रहे।

दिल्ली में अपने भाइयों से निपटने के पश्चात् औरंगजेब का ध्यान शिवाजी की ओर गया। उसने अपने मामा शाइस्ताखाँ को दक्षिण में भेजा। शाइस्ताखाँ ने चाकन आदि कई किले जीतकर पूना पर अधिकार कर लिया। उसी रात शिवाजी ने एक बारात के रूप में पूना में प्रवेश किया। उनके साथ चार सौ मराठा सैनिक थे। महल में पहुँचते ही उन्होंने मुगलों पर धावा बोल दिया। शाइस्ता खाँ स्वयं तो बड़ी कठिनाई से बच गया, किन्तु उसका पुत्र मारा गया।

औरंगजेब ने इस पराजय के पश्चात् राजा जयसिंह को शिवाजी-विजय के लिए भेजा। जयसिंह ने अपनी वीरता और चातुरी से अनेक किले जीते। इधर, शिवाजी ने दोनों ओर हिन्दू-रक्त की हानि देख राजा जयसिंह से सन्धि कर ली। राजा जयसिंह के विशेष आग्रह पर शिवाजी ने औरंगजेब के आगरा-दरबार में उपस्थित होना स्वीकार कर लिया। दरबार में शिवाजी का अपमान किया गया और उन्हें बंदी बना लिया गया। यहाँ भी उन्होंने कूटनीति का आश्रय लिया। फलों और मिठाई के टोकरों में छिपकर भाग निकले।

अब शिवाजी यवनों के कट्टर दुश्मन बन गए। उन्होंने पुन: यवन-किलों पर आक्रमण कर उन्हें हस्तगत करना प्रारम्भ कर दिया। सिंहगढ़ का दुर्ग, सूरत की बन्दरगाह, बुलढाना और बरार आदि तक जीतकर खूब धन लूटा और वहाँ के लोगों से चौथ लेना शुरू कर दिया। 6 जून, 1674 को शिवाजी का रायगढ़ के किले में राज्याभिषेक हुआ। इस प्रकार सैकड़ों वर्षों के पश्चात् भारत में पुन: 'हिन्दू-पद-पादशाही' की स्थापना हुई।

हिन्दूपद-पादशाही की स्थापना के अनन्तर साम्राज्य-प्रसार और धन-प्राप्ति की इच्छा से शिवाजी ने बहुत से क़िले जीते। हैदराबाद और बिल्लौर ने आत्म-समर्पण ही कर दिया। अन्त में शिवाजी ने कर्नाटक तक अपना राज्य बढ़ाया।

युद्ध में अत्यन्त व्यस्त रहने के कारण शिवाजी अपने उत्तराधिकारी को उचित शिक्षा न दे सके। उनका पुत्र शम्भाजी विलासी, व्यभिचारी और कायर बन गया था। शिवाजी अपने अन्तिम समय में बड़े निराश थे। उनके शरीर को रोगों ने आ दबाया और 5 अप्रैल, 1650 को इस वीर पुरुष की मृत्यु हो गई।

शिवाजी एक कुशल संगठनकर्ता और एक श्रेष्ठ शासक थे। उनकी शासन-व्यवस्था अत्युत्तम थी। वे एक आदर्श पुरुष थे, अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णु थे। उन्होंने अन्य धर्मों के पूजा-स्थलों का कभी अनादर नहीं किया, कभी उन्हें तुड़वाया नहीं।

समर्थ गुरु रामदास शिवाजी के गुरु थे। गुरु के प्रति उनकी अटूट श्रद्धा थी। यही कारण है कि भिक्षा में गुरुजी को उन्होंने अपना सम्पूर्ण राज्य तक दे डाला था। वे उनके प्रबन्धक के नाते राज्य प्रबन्ध करते थे।

कुशल राजनीतिज्ञ, असाधारण संगठनकर्ता, गौ-ब्राह्मण प्रतिपालक, हिन्दू-धर्म परित्राता, धैर्य और साहस के स्वामी, आदर्श-चरित, न्याय-मूर्ति शिवाजी को प्रत्येक हिन्दू आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखता है तथा उनके जीवन से स्वराष्ट्र और स्वधर्म की सुरक्षा की प्रेरणा लेता है।

(45) मेरा प्रिय नेता : श्री अटलबिहारी वाजपेयी

संकेत बिंदु—(1) मेरा प्रिय नेता अटल जी (2) हिंदी के उपासक और समर्पित समाजसेवी (3) जन्म, शिक्षा और सामाजिक व राजनैतिक जीवन (4) पुरस्कार और सम्मान (5) सांसद और प्रधानमंत्री के रूप में।

निर्विवाद श्रेष्ठ, अत्यन्तप्रामाणिक, चुम्बकीय व्यक्तित्व के स्वामी; वरदायिनी हंसवाहिनी माँ शारदा के वरद पुत्र; संवेदनशील कवि, विचारवान् लेखक, जागरूक पत्रकार; कुशल, ओजस्वी और प्रभावी वक्ता; वाणी में सम्मोहन की क्षमता; सर्वधर्म समभाव के उपासक; कूटनीति के पंडित; राजनैतिक नेतृत्व के शिखर पुरुष हैं मेरे प्रिय नेता श्री अटलबिहारी वाजपेयी।

अटलजी जन-जन के प्रिय हैं। विचारधारा के कट्टर विरोधियों में भी चहेते हैं। भूतपूर्व प्रधानमंत्री सर्वश्री चंद्रशेखर तथा नरसिंहराव उन्हें अपना 'गुरु' मानते हैं। भूतपूर्व लोकसभा अध्यक्ष श्री शिवराज पाटिल तथा वर्तमान संचार-मंत्री तथा दलित नेता श्रीरामविलास पासवान उनके भाषणों के दीवाने हैं। विज्ञापन जगत् की प्रमुख व्यक्तित्व तारा सिन्हा उनकी प्रशंसक है।

वाजपेयी वक्तृत्व कला के धनी हैं। उन्हें वीणापाणी भगवती सरस्वती का आशीर्वाद प्राप्त है। शब्दों का चयन और उनका सधा हुआ तथा प्रभावी प्रयोग, उपमाओं, मुहावरों, सूक्तियों के नग, किसी भी दृश्य का शब्द-चित्र प्रस्तुत करने का कौशल, वाक्यों के मध्य

प्रभावपूर्ण तरीके से रुकना, करारे कटाक्ष, श्रोताओं का 'मूड' भाँप लेने की क्षमता, हास्य के बीच अपनी विशिष्ट व्यंग्य-शैली में बारीक से बारीक बातों को अप्रतिम प्रतिभा के कारण सहज ढंग से व्यक्त कर देने की चतुराई श्रोताओं का मन मोह लेती है।

वाजपेयी हिन्दी-भारती के उपासक हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ में तीन बार (4-10-77, 24-9-98 तथा सितम्बर 2000) हिन्दी में उनके भाषण, उनकी इस उपासना के ज्वलंत उदाहरण हैं। भावपूर्ण कविताओं, विचारप्रधान गद्य-ग्रंथों तथा दैनिक-साप्ताहिक पत्रों के सम्पादन द्वारा वीणावादिनी के चरणों में उन्होंने अनेक सुगन्धित पुष्प भेंट किए हैं। वे एक-साथ छंदकार, गीतकार, छंदमुक्त रचनाकार, सशक्त गद्यकार तथा व्यंग्यकार हैं।

वाजपेयी समर्पित समाज-सेवक हैं। भारत माता के सच्चे पुजारी हैं। 1942 की अगस्त क्रांति में जेल गए। 'आर्य कुमार सभा' के सक्रिय कार्यकर्ता रहे। विद्यार्थी-जीवन से ही राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के स्वयंसेवक बने। समाज-सेवा के लिए संघ में वे ऐसे जमे कि जीवन ही संघ को समर्पित कर दिया। विवाह नहीं किया, प्रचारक बन गए। राजनीति में कूदे तो विशुद्ध भारतीय राजनीतिक संस्था जनसंघ और भारतीय जनता पार्टी के प्रारम्भकर्ता तथा अध्यक्ष रहे। काँग्रेस-युग में अनेक बार जेल काटी, कारावासीय यातनाएं भोगीं, पर झुके नहीं। 'न दैन्यं, न पलायनम्', यह उनका आदर्श वाक्य है।

श्री अटलबिहारी वाजपेयी का जन्म 25 दिसम्बर 1924 (सार्टीफिकेट के अनुसार 1926) को शिन्दे की छावनी (म. प्र.) में हुआ। पिता थे श्रीकृष्णबिहारी वाजपेयी, माता थीं श्रीमती कृष्णा देवी। पिता श्री कृष्णबिहारी अध्यापक थे और थे ग्वालियर के प्रख्यात कवि।

अटल जी ने बी. ए. विक्टोरिया कॉलिज (अब लक्ष्मीबाई कॉलिज), ग्वालियर से किया। राजनीति शास्त्र में एम. ए. कानपुर के डी. ए. वी. कॉलिज से किया। एल-एल. बी. की पढ़ाई बीच में छोड़कर संघ कार्य में जुट गए।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की योजना से 'युगधर्म', 'पाञ्चजन्य' का प्रकाशन लखनऊ से आरम्भ हुआ तो अटल जी उसके सम्पादक नियुक्त हुए। यहीं से अटल जी ने 'स्वदेश दैनिक' का सम्पादन प्रारम्भ किया। लखनऊ से दिल्ली आने पर 'वीर अर्जुन' दैनिक और साप्ताहिक का सम्पादन भार वहन किया।

'गाँधी हत्या कांड' में संघ को राजनीतिक सहयोग की आवश्यकता पड़ी, जो नहीं मिला। परिणामत: डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी के नेतृत्व में 'जनसंघ' का गठन हुआ। अटल जी जनसंघ के प्रारम्भिक संगठनकर्ताओं में थे। बाद में वे जनसंघ के अध्यक्ष बने। आपत्काल के पश्चात् संगठित विपक्ष ने जिस राजनीतिक दल को जन्म दिया, उस 'जनता पार्टी' के अटल जी कर्णधार रहे। जनता पार्टी के शासनकाल में वे विदेश मंत्री बने। श्री राजनारायण की कृपा से जब 'जनता पार्टी' टूटी तो पूर्व जनसंघ के कार्यकर्ताओं ने 'भारतीय जनता पार्टी' बनाई। 6.4.1980 को श्री अटलबिहारी वाजपेयी इसके प्रथम राष्ट्रीय अध्यक्ष

बने। अपने रक्त से सींचकर इस पार्टी को वटवृक्ष बनाया। यह उन्हीं के नेतृत्व का चमत्कार है कि आज भारत में भाजपा और उसके सहयोगी दलों का राज्य है।

उनके राजनीतिक लेखों के संग्रह हैं—संसद् में चार दशक, राजनीति की रपटीली राहें, सुवासित पुष्प, शक्ति से शान्ति तथा समर्पण।

28 सितम्बर 1992 को उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान ने इन्हें 'हिन्दी गौरव' के सम्मान से सम्मानित किया। 25 जनवरी 1992 को भारत सरकार ने 'पद्म विभूषण' अलंकरण से सम्मानित किया। 20 अप्रैल 1993 को कानपुर विश्वविद्यालय ने डी. लिट् की मानद उपाधि प्रदान की। 17 अगस्त 1994 को सर्वश्रेष्ठ सांसद के सम्मान 'गोविन्दवल्लभ पंत पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। नवम्बर 1998 में उन्हें वर्ष का 'सर्वश्रेष्ठ ईमानदार' व्यक्ति के नाते सम्मानित किया गया।

उनके अन्तर्मन की व्यथा को प्रकट करती उनकी एक काव्य-पंक्ति देखिए—

हर 25 दिसम्बर को / जीने की नई सीढ़ी चढ़ता हूँ।
नए मोड़ पर औरों से कम / स्वयं से ज्यादा लड़ता हूँ।

जनता के भवितव्य का कितना सटीक चित्र प्रस्तुत किया है—

हर पंचायत में
पंचाली / अपमानित है।
बिना कृष्ण के
आज / महाभारत होना है।
कोई राजा बने / रंक को तो रोना है।

सन् 1956 में वे पहली बार लोकसभा के लिए निर्वाचित हुए। इसके बाद 1967 से 1984 तक तथा 1991 के पश्चात् अब तक लोकसभा के सदस्य चुने जाते रहे। सन् 1962 से 67 तक और 1986 से 91 तक राज्यसभा के सदस्य रहे हैं। वे संसद् में विपक्ष के नेता रहे।

11वीं लोकसभा में वे लखनऊ से सांसद के रूप में विजयी हुए और 16-5-1996 को वे भारतीय लोकतंत्र के प्रधानमंत्री बने। संसद् का विश्वास मत प्राप्त न कर पाने के कारण 28 मई 1996 को उन्होंने स्वयं त्यागपत्र दे दिया।

बारहवीं लोकसभा में वे पुनः लखनऊ से सांसद चुने गए और सहयोगी पार्टियों के सहयोग में 19 मार्च 1998 को भारत महान् के प्रधानमंत्री बने। उनके ही शब्दों में, 'भारतीय लोकतंत्र के कुछ सबसे बुरे दौर में से एक में राष्ट्र का नेतृत्व कर रहा हूँ।' प्रधानमंत्री बनने के बाद भी उनकी नम्रता उनके ही शब्दों में आर्द्र कर देती है—

मेरे प्रभु / मुझे इतना ऊँचाई कभी मत देना।
गैरों को गले न लगा सकूँ
इतना रुखाई / कभी मत देना।

राजनीति के चतुर चाणक्य अटल ने राजनीति पर ऐसा जादुई करिश्मा किया कि देश

22 विपक्षी दल अटल जी के नेतृत्व में चुनाव लड़ने को तैयार हो गए। परिणामत: भाजपा समर्थित राष्ट्रीय जन-तांत्रिक संगठन 13वीं लोकसभा के लिए हुए चुनाव में पूर्ण बहुमत से विजयी हुआ। लगभग 300 सीटें उसे मिलीं। 13 अक्तूबर 1999 को तीसरी बार भारत के प्रधानमंत्री के रूप में राष्ट्र नौका के कर्णधार बने थे।

(46) मेरा प्रिय लेखक : प्रेमचंद

संकेत बिंदु—(1) प्रेमचंद जी का जन्म और बाल्यकाल (2) शिवरानी से विवाह और असहयोग आंदोलन में योगदान (3) प्रेमचंद जी की रचनाएँ (4) प्रगतिशील लेखक के रूप में (5) उपसंहार।

हिन्दी-कथा-साहित्य में युगान्तरकारी मुंशी प्रेमचन्द मेरे प्रिय लेखक हैं। उनका कथा-साहित्य मानव-जीवन से सम्बन्धित है, हमारे राष्ट्रीय-जीवन का भाष्य है। जो कार्य महात्मा गाँधी ने राजनीति क्षेत्र में और महर्षि दयानन्द ने सामाजिक क्षेत्र में किया, वही कार्य मुंशी प्रेमचन्द ने अपने कथा-साहित्य के माध्यम से किया। उनके कथा-साहित्य की रोचकता पाठक को उनकी रचनाओं को पढ़ने के लिए विवश करती है। वे सच्चे देशभक्त थे, ईमानदार समाज-सुधारक थे और थे साहित्यिक कर्मयोगी।

मुंशी प्रेमचन्द का जन्म बनारस से चार मील की दूरी पर स्थित लमही नामक ग्राम में 31 जुलाई, 1880 को हुआ था। इनके पिता का नाम अजायबराय और माता का नाम आनन्दीदेवी था। तत्कालीन कायस्थ परिवार की प्रथानुसार इनको पाँच वर्ष की आयु में एक मौलवी के पास पढ़ने के लिए भेजा गया। यद्यपि आप शारीरिक दृष्टि से दुर्बल थे, तथापि पढ़ने-लिखने में निपुण और स्वभाव से विनोदप्रिय थे।

प्रेमचन्द जी का बाल्यकाल अत्यन्त निर्धनता में व्यतीत हुआ। उन्हें पैसों की कठिनाई तो प्रारम्भ से ही थी। यद्यपि स्कूल में केवल बारह आने शुल्क लगता था, किन्तु उसे देने में भी प्रेमचन्द जी को कठिनाई का सामना करना पड़ता था। प्रेमचन्द जी के साहित्य में गरीबों के प्रति जो सहानुभूति सर्वत्र दिखाई पड़ती है, उसका एकमात्र कारण उनकी अपनी गरीबी ही है।

अपने प्रथम वैवाहिक जीवन में नितान्त असफल रहने के कारण उन्होंने शिवरानी देवी से, जो एक बालविधवा थीं, दूसरा विवाह कर लिया। विवाह के पश्चात् इनकी नौकरी लग गई और ये शिक्षा-विभाग के डिप्टी-इन्स्पेक्टर पद को सुशोभित करने लगे। किन्तु सन् 1920 में गाँधी जी के भाषण से प्रेरित होकर असहयोग आन्दोलन में भाग लेने के लिए इन्होंने इस पद से त्याग-पत्र दे दिया। अब ये केवल लिखने-पढ़ने में ही समय-यापन करने लगे, किन्तु इस अल्प-आय से परिवार का खर्च न चलता। निराश होकर इन्हें पुन: नौकरी करनी पड़ी। इस बार आप मारवाड़ी विद्यालय में मुख्याध्यापक बने। डेढ़ वर्ष के लगभग आपने 'मर्यादा' पत्र में भी कार्य किया।

सन् 1930 में सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ हुआ। इस समय ये 'माधुरी' में कार्य कर रहे थे। आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने के लिए जेल जाने का प्रश्न उपस्थित हुआ। दम्पती ने परस्पर इस प्रश्न को हल किया और निर्णयानुसार शिवरानी जी सत्याग्रह करके जेल चली गईं। इधर घर का सारा काम-काज प्रेमचन्द जी को सम्भालना पड़ा।

प्रेमचन्द पहले उर्दू में लिखा करते थे। हिन्दी में उन्होंने सन् 1916 में पदार्पण किया। तब से मृत्यु-पर्यन्त (20 वर्ष की अल्पावधि में) इन्होंने 11-12 उपन्यास और 300 के लगभग कहानियाँ तथा कई नाटक लिखकर हिन्दी-साहित्य को उन्नत किया। इसलिए वे हिन्दी-जगत् में 'उपन्यास सम्राट्' के नाम से प्रसिद्ध हैं।

प्रेमचन्द जी के उपन्यास हैं—सेवासदन, रूठी रानी, वरदान, प्रतिज्ञा, प्रेमाश्रम, निर्मला, रंगभूमि, कायाकल्प, गबन, कर्मभूमि, गोदान और मंगलसूत्र (अपूर्ण)। उनकी कहानियाँ 'मानसरोवर' (आठ खंड) के अतिरिक्त 'गुप्तधन' में संग्रहीत हैं। संग्राम, कर्बला और प्रेम की वेदी, उनके तीन नाटक हैं। 'महात्मा शेखसादी, 'दुर्गादास' और 'कलम, तलवार और त्याग' उनका जीवनी साहित्य है। इनके अतिरिक्त उन्होंने बालोपयोगी पुस्तकें लिखीं तथा अन्य भाषाओं से अनूदित पुस्तकें भी प्रस्तुत कीं।

लेखन-कार्य के अतिरिक्त जमाना, मर्यादा, माधुरी, जागरण और हंस नामक पत्रिकाओं का समय-समय पर सम्पादन भार ग्रहण कर साहित्य के उच्च आदर्शों की स्थापना की।

मुंशी प्रेमचन्द प्रगतिशील लेखक थे। सुधारवादी दृष्टिकोण सदा उनके सम्मुख रहता था। उन्होंने विधवा-विवाह पर रोक, वृद्ध-विवाह, बाल-विवाह, दहेज, अनमेल विवाह, आभूषण-प्रियता, वेश्या-जीवन आदि दोषों को दूर करने के लिए सेवा-सदन, गबन, निर्मला जैसे उपन्यास और अनेक कहानियाँ लिखीं।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जी ने उनके सम्बध में लिखा है, 'प्रेमचन्द शताब्दियों से पददलित और अपमानित कृषकों की आवाज थे। परदे में कैद, पद-पद पर लांछित और अपमानित असहाय नारी-जाति की महिमा के जबरदस्त वकील थे।'

(साहित्य सहचर, पृष्ठ 25)

दूसरी ओर, राजनीति में वे गाँधीवाद से प्रभावित थे। अत: सन् 21 से 36 तक के आन्दोलनों और उनके परिणामों की सामाजिक प्रतिक्रिया ही उनके उपन्यास तथा कहानियों का विषय बनीं। उनके उपन्यास राष्ट्रीय जीवन के भाष्य बन गए।

सच्चाई तो यह है कि प्रेमचन्द जी का उपन्यास-साहित्य अपने युग की परिस्थितियों एवं उसकी समस्याओं का सच्चा दर्पण है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में—'अगर आप उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार-विचार, भाषा-भाव, रहन-सहन, आशा-आकांक्षा, दु:ख-सुख और सूझ-बूझ जानना चाहते हैं तो प्रेमचन्द जी से उत्तम परिचायक आपको नहीं मिल सकता। झोपड़ियों से लेकर महलों तक, खोमचे वालों से लेकर बैंकों

तक, गाँव से लेकर धारा-सभाओं तक, आपको इतने कौशलपूर्वक और प्रामाणिक भाव से कोई नहीं ले जा सकता। आप बेखटके प्रेमचन्द का हाथ पकड़कर मेंड़ों पर गाते हुए किसान को, अन्त:पुर में मान किए बैठी प्रियतमा को, कोठे पर बैठी हुई वार-वनिता को, रोटियों के लिए ललकते हुए भिखमंगों को, कूट परामर्श में लीन गोयन्दों को, ईर्ष्या-परायण प्रोफेसरों को, दुर्बल-हृदय बैंकरों को, साहस-परायण चमारिन को, ढोंगी पंडितों को, फरेबी पटवारी को, नीचाशय अमीर को देख सकते हैं और निश्चिन्त होकर विश्वास कर सकते हैं कि जो कुछ आपने देखा है, वह गलत नहीं है।' (हिन्दी-साहित्य : पृ. 435)।

मुंशी प्रेमचन्द भाषा की दृष्टि से भी सदा स्मरणीय रहेंगे। इनकी भाषा ठेठ हिन्दुस्तानी, सीधी-सादी, मंजी हुई, प्रौढ़, परिष्कृत, संस्कृत-पदावली से प्रौढ़ और उर्दू से चंचल है। ये अपनी भाषा में प्रचलित ग्रामीण शब्दों का प्रयोग करने में भी नहीं झिझकते थे। भाषा में सजीवता लाने के लिए उन्होंने मुहावरों और कहावतों का खूब प्रयोग किया है। यही कारण है कि उनकी जैसी चलती और मुहावरेदार भाषा बहुत कम लेखकों में देखने को मिलती है।

वस्तुत: मुंशी प्रेमचन्द ने हिन्दी-साहित्य की आजीवन सेवा की और उसका यशोवर्द्धन करते हुए मर मिटे। हिन्दी-गद्य का रूप स्थिर करने, उपन्यास-साहित्य को मानव-जीवन से सम्बन्धित करने तथा कहानी को साहित्य-जगत् में अग्रसर करने का श्रेय महामानव मुंशी प्रेमचन्द जी को ही है। आपकी अमूल्य कृतियों के लिए हिन्दी जगत् सदा उनका ऋणी रहेगा।

(47) मेरा प्रिय कवि : सूरदास

संकेत बिंदु—(1) मेरी प्रिय कवि सूरदास (2) सूरदास का जीवन परिचय (3) सूरदास के ग्रंथ और उनमें भक्ति भावना (4) बाल-क्रीड़ाओं और शृंगार का वर्णन (5) सूर की भाषा और पदों की विशेषता।

हिन्दी के सैकड़ों साहित्यकार हुए हैं, जिन्होंने माँ भारती के मन्दिर में पद्य या गद्य-विधाओं के रूप में अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित किए हैं। जैसे सभी सुमन अपनी सुगन्ध के कारण सबको अच्छे लगते हैं, ऐसे ही मैं हिन्दी के सभी साहित्यकारों के सम्मुख श्रद्धा से सिर झुकाता हूँ। फिर भी, जिस प्रकार गुलाब को फूलों का राजा माना जाता है, उसी प्रकार मैं साहित्यकारों में भक्त शिरोमणि सूरदास को कवियों का शिरोमुकट मानता हूँ। पाँच सौ वर्ष बीत जाने पर उनकी कविता आज भी काव्य-रसिकों को रसमग्न करती है और भक्तों को भाव-विभोर करती है। यही भक्त शिरोमणि सूरदास मेरे प्रिय कवि हैं।

भक्त-प्रवर सूरदास का जन्म सम्वत् 1535 में दिल्ली के निकट सीही ग्राम में हुआ था। वे सारस्वत ब्राह्मण थे। इनके जन्मान्ध होने अथवा बाद में अन्धे होने के बारे में विद्वानों में मतभेद है। अधिकांश विद्वान् उनकी जन्मान्धता की ही पुष्टि करते हैं। यह कहना तो

असम्भव है कि इनकी शिक्षा-दीक्षा किस प्रकार हुई, किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि साधुओं की संगति और ईश्वर-प्रदत्त अपूर्व प्रतिभा के बल पर ही उन्होंने बहुत ज्ञान प्राप्त कर लिया। युवावस्था में वे आगरा और मथुरा के बीच गौघाट पर साधु जीवन व्यतीत करते थे। संगीत के प्रति उनकी स्वाभाविक रुचि थी। मस्ती के क्षणों में वैरागी सूर अपना तानपूरा छेड़कर गुनगुनाया करते थे। यहीं उनकी पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक महाप्रभु स्वामी वल्लभाचार्य जी से भेंट हुई। सूरदास ने एक पद उन्हें गाकर सुनाया। स्वामी जी को यह पद बहुत पसन्द आया और उन्होंने सूरदास जी को अपने मत में दीक्षित कर लिया तथा श्रीमद्भागवत की कथाओं को सुललित गेय पदों में रूपान्तरित करने का आदेश दिया। श्रीनाथ जी के मन्दिर की कीर्तन-सेवा का भार भी उन्हीं को मिल गया।

सूरदास-रचित तीन ग्रन्थ प्राप्त हैं—सूरसागर, सूरसारावली और साहित्य लहरी। 'सूरसागर' सूरदास जी की सर्वश्रेष्ठ एवं वृहद् रचना है। इसमें प्रसंगानुसार कृष्ण-लीला सम्बन्धी भिन्न-भिन्न पद संगृहीत हैं। सूरदास के कृष्ण तो सौन्दर्य, प्रेम और लीला के अवतार हैं। इनके कुल पदों की संख्या सवा लाख कही जाती है, किन्तु अभी तक प्राप्त पदों की संख्या दस हजार से अधिक नहीं है।

सूर उच्चकोटि के भक्त थे। भक्त होने के साथ ही वे एक सिद्ध कवि भी थे। उनकी भक्ति में कवि-सुलभ कल्पना का स्वाभाविक योग है।

सूरसागर में भगवान् कृष्ण की बाल- लीलाओं एवं बालप्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण और विवेचन है। बाल-लीलाओं का जितना स्वाभाविक एवं सरस चित्रण सूरदास कर सके हैं, उतना हिन्दी का कोई अन्य कवि नहीं कर सका। रामचन्द्र शुक्लजी का मानना है, 'शृंगार और वात्सल्य के क्षेत्र में जहाँ तक सूर की दृष्टि पहुँची, वहाँ तक और किसी कवि की नहीं।' इन दोनों क्षेत्रों में इस महाकवि ने मानो औरों के लिए कुछ छोड़ा ही नहीं।' एक दो चित्रों से हम इसकी परख कर सकते हैं।

बालकों की स्पर्द्धाशील प्रकृति का रूप देखिए—

मैया कबहि बढ़ैगी चोटी?
किती बार मोहि दूध पियत भइ, यह अजहू है छोटी।
तू जो कहति बल की बेनी ज्यों ह्वै है लाँबी मोटी।
काचो दूध पियावति पचि-पचि, देत न माखन रोटी।

सूर का शृङ्गार-वर्णन भी केवल कवि-परम्परा का पालन-मात्र न होकर जीवन की सजीवता व पूर्णता की अभिव्यक्ति करता है। गोपियों का विरह वर्णन तो एक विशेष महत्त्व रखता है। उनके पद वर्ण्य-विषय का मनोहारी चित्र प्रस्तुत कर देते हैं और साथ ही सरस भाव की स्पष्ट व्यंजना करते हैं।

राधा और कृष्ण अभी अनजान हैं, किन्तु सौन्दर्य का आकर्षण उनमें विकसित होने लगा है। प्रथम मिलन में प्रेम उमड़ पड़ता है। कृष्ण खेलने निकले हैं—'खेलन हरि निकसे ब्रज खोरी' और वहीं पर—

औचक ही देखी तहँ राधा, नैन बिसाल भाल दिए रोरी।
'सूर' श्याम देखत ही रीझे नैन नैन मिली परी ठगौरी॥

आँखों का जादू हो गया। परिचय की आकुलता बढ़नी स्वाभाविक थी। कृष्ण ने आगे बढ़कर पूछ ही लिया—

बूझत श्याम कौन तू गोरी?
कहाँ रहति, काकी तू बेटी, देखी नाहीं कबहुँ ब्रज खोरी।

राधा भी कम न थी। उसने भी मुँह फिराकर उत्तर दिया—

काहे को हम ब्रज तन आवति खेलति रहति आपनी पौरी।
सुनति रहति स्त्रवन नन्द ढोटा, करत रहत माखन दधि चोरी॥

कृष्ण को मौका मिल गया, हाजिरजबाब तो थे ही। झट बोल उठे—

तुम्हरो कहा चोरि हम लैहैं, आवहुँ खेलैं संग मिलि जोरी।

सूर के काव्य की एक और विशेषता है, वह है सूर के पदों की गेयता। इस विशिष्ट गुण के कारण ही हजारों नर-नारी सूर के पदों में वर्णित कृष्ण-लीला गाकर मस्ती में झूम जाते हैं। दूसरे, उक्ति-वैचित्र्य अर्थात् एक भी भाव, विषय एवं चित्र को अनेक प्रकार से तथा अनूठे ढंग से प्रस्तुत करने के गुण ने उनके काव्य में एक विशेष आकर्षण उत्पन्न कर दिया है। सूर के दृष्टकूट पद भी हिन्दी-साहित्य में नई छटा दिखाते हैं।

सूरदास जी की भाषा ब्रजभाषा है। परिनिष्ठित ब्रजभाषा में सर्वप्रथम और सर्वोत्तम रचना करने वाले सूर ही हैं। उनकी भाषा पूर्ववर्ती कवियों की भाषा की अपेक्षा अधिक संयत, सुव्यवस्थित और मँजी हुई है। कोमल पदों के साथ उनकी भाषा स्वाभाविक, प्रवाहपूर्ण, सजीव और भावों के अनुसार बन पड़ी है। माधुर्य और प्रसाद उनके काव्य के विशेष गुण हैं।

(48) मैंने ग्रीष्मावकाश कैसे बिताया

संकेत बिंदु—(1) ग्रीष्मावकाश की छुट्टियाँ (2) गर्मियों की दिनचर्या (3) दर्शनीय स्थलों की सैर (4) कुतुबमीनार और लालकिले के सौंदर्य के दर्शन (5) ग्रीष्मावकाश की सहपाठियों से चर्चा।

दिल्ली-प्रदेश के विद्यालयों में एक मई से 30 जून तक दो मास का ग्रीष्मावकाश होता है। सूर्य की प्रचण्ड किरणों, गर्म-गर्म और तेज लुओं तथा तपती हुई धरती से बच्चों की सुरक्षा और सुविधा के लिए यह अवकाश किया जाता है।

20-21 अप्रैल से स्कूल में छुट्टियों की चर्चा होने लगी थी। एक दो मित्र बार-बार शिमला और नैनीताल जाने की बात कहकर कक्षा के शेष विद्यार्थियों को चिढ़ाते थे। आठ-दस मित्र अपने गाँव के खेतों को ही नन्दन-वन की उपमा देकर वहीं छुट्टियाँ बिताने की कहानी सुनाते थे। चार-पाँच सहपाठी शिक्षण-प्रवास की काल्पनिक गाथा गाते थे। मेरे

जैसे गरीब विद्यार्थी अपनी विवशता को छिपाकर उल्टा रोब झाड़ते हुए कहते थे—'तुम्हीं धक्के खाओ जगह-जगह के, हम तो दिल्ली में ही मजे लूटेंगे।'

आखिर छुट्टियों का पहला शुभ दिन आ ही गया। मैं मन में सोचने लगा कि इस बार छुट्टियाँ इस शानदार ढंग से बिताऊँ कि अध्यापक और सहपाठी सुनकर दंग रह जाएँ।

मेरा नियमित क्रम यह था कि प्रात: उठकर शौच आदि से निवृत्त होकर दिल्ली विश्वविद्यालय की ओर घूमने जाता। चार किलो मीटर पैदल जाना और आना बड़ा सुहावना लगता।'बाऊँटे' की चढ़ाई और उतराई में जो मजा आता, उसे शिमला वाले भी.क्या उठाते होंगे। वहाँ प्रात:काल की शीतल एवं सुगन्धित पवन का आनन्द उठाता।

'बाऊँटे' की पहाड़ी पर चढ़कर 2-4 मिनिट विश्राम करता। फिर व्यायाम करता। यद्यपि चार किलोमीटर का चलना स्वत: एक व्यायाम है, फिर भी मेरे जैसे किशोर की तृप्ति इतने व्यायाम में नहीं होती थी। फिर मन और शरीर में थकावट के लक्षण नहीं दिखाई पड़ते थे। थोड़ी पी. टी. तथा दो-चार आसन। मन प्रसन्न। दस मिनिट बैठकर विश्राम करता और फिर वापिस घर की ओर प्रस्थान।

वहाँ से वापस आने पर खूब रगड़-रगड़कर स्नान करता। थोड़ा अल्पाहार करता और स्कूल के कार्य में लग जाता। घंटा, डेढ़-घंटा पढ़ता। इधर भोजन तैयार हो जाता। माता जी के हाथ का ताजा भोजन करता। भोजन के बाद डेढ़-दो घंटे सोता। फिर, छोटे भाई-बहनों के साथ ताश, कैरम-बोर्ड आदि खेलता। चार बजे अल्पाहार करके फिर पढ़ने बैठ जाता और सायंकाल छह बजे भोजन करने के उपरान्त घूमने चला जाता। घूमकर आता तो दूरदर्शन के 3-4 एपीसोड़ देखकर, समाचार सुनकर सो जाता।

आप यह न समझें कि मैं रोजाना एक ही कार्यक्रम में कोल्हू के बैल की तरह घूमता रहता। मैंने यह विचार किया कि जिस दिल्ली में मैं रहता हूँ, क्या उसको मैंने अच्छी तरह देखा है ? मन कहता था, नहीं। इसलिए मैंने पिताजी से आग्रह किया कि वे मुझे दिल्ली के महत्त्वपूर्ण दर्शनीय स्थान दिखाने की कृपा करें। उन्होंने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली और वे प्रत्येक रविवार को मुझे एक दर्शनीय स्थान दिखाने ले जाते रहे।

नई दिल्ली का वह भव्य बिड़ला मन्दिर, जिसे देखने न केवल भारत के ही, अपितु विदेशों के लोग भी आते हैं, मैंने अच्छी तरह देखा। उसकी दीवारें भारत के महापुरुषों के दर्शन करा रही हैं, उनका जीवन-परिचय दे रही हैं और उनकी वाणी सुनाकर उपदेश दे रही हैं। उनकी भव्य प्रतिमाएं बरबस हमें नतमस्तक कर देती हैं। मन्दिर का पहाड़ी उद्यान और झरना बारम्बार खेलने को बुलाते हैं।

कैसे भूलूँ कुतुबमीनार की उन सीढ़ियों को, जिन पर चढ़ते-चढ़ते पैर थक गए, पर मन नहीं थका था। आखिर पिताजी की उँगलियाँ पकड़कर चढ़ ही गया था। सच बताऊँ, ऊपर चढ़कर मुझे बड़ा डर लगा था। फिर भी मैंने एक बार नीचे का दृश्य देखा था। विचित्र अनुभूति थी वह। दूर-दूर तक फैला हुआ दिल्ली नगर एक फैले हुए नक्शे जैसा दिखाई दे रहा था, बड़े-बड़े भवन छोटी झोपड़ियों जैसे नजर आ रहे थे और दौड़ती हुई मोटरें

या चलते हुए आदमी चींटियों के समान रेंगते हुए प्रतीत हो रहे थे। क़ुतुबमीनार के आस-पास का वातावरण कम सुहावना नहीं है। चारों ओर दूर-दूर तक फैले घास के ढके हरे-भरे मैदान मन को आनन्द और शान्ति प्रदान कर रहे थे। क़ुतुबमीनार से कुछ दूर महरौली में देवी का अति प्राचीन मन्दिर और भूलभुलैयाँ भी मैंने देखी।

मुगल बादशाहों का राज-भवन लालकिला तो सचमुच किला है और वह भी लाल पत्थर का। अब अन्दाजा लगाया, मुगल बादशाहों की शान-शौकत का।

जिस दिन मैं राष्ट्रपति-भवन देखने गया, पैरों पर तेल की मालिश करके गया था। राष्ट्रपति-भवन क्या है, किसी राजा की पूरी रियासत है। उसके शानदार कमरे देखे, तो होश-हवास गुम हो गए। वे बड़े आलीशान और कीमती सामान से सुसज्जित हैं।

वास्तुकला का चमत्कार आधुनिक तकनीक का करिश्मा, एशियाई खेलों का क्रीडांगण, जवाहरलाल नेहरू स्टेडियम तथा इन्द्रप्रस्थ इनडोर स्टेडियम देखे। इसके अलावा जन्तर-मन्तर, गाँधी-समाधि, विजयघाट और संसद्-भवन के दर्शन भी किए।

एक ऐसा भी अवसर आया जबकि एक दिन के लिए मित्र कमलेश के बड़े भाई के विवाह में मैं दिल्ली से बाहर भी गया। विवाह के ठाठ देखे। खूब खाया-पिया, किन्तु पेट खराब भी किया। बरातियों की हँसी-मजाक भी सुने और नई भाभी को भी देखा।

छुट्टियाँ समाप्त हुईं। सहपाठी मिले। कोई पूछता है, मित्र कश्मीर गए थे, जो इन तपती गरमी में भी इतने मोटे हो आए हो। दूसरा कहता है, नहीं ये नैनीताल गए थे। उन्हें यह पता न था कि नियमित जीवन से स्वास्थ्य कितना बनता है।

प्रत्येक कालांश (पीरियड) में अध्यापक आकर पहला काम छुट्टियों के काम की कापियाँ देने को कहते। जो नहीं दे पाते उन्हें बैंच पर खड़ा होने का कहा जाता।

डलहौजी और मसूरी जाने वाले वैंच पर खड़े हो जाते। मैंने मध्यावकाश में उनसे पूछा, 'सुनाओ, इस बार तो प्रथम आओगे न ?'' मित्र कुछ न पूछो, सारी छुट्टियाँ खेल-कूद और सैर-सपाटे में बिताईं। बड़ी भूल हुई।' कहकर वे चुप हो गए।

यह है छुट्टियों की कहानी, बड़ी सीधी-सादी और कम खर्चीली। स्वास्थ्य भी बनाया, जिस नगर में रहता हूँ उसके दर्शनीय स्थान भी देखे, पढ़ाई की कमी पूरी की और आनन्द भी लूटा।

(49) मेरी पर्वतीय यात्रा

संकेत बिंदु—(1) पर्वत यात्रा की आकांक्षा (2) शिमला के लिए प्रस्थान (3) प्राकृतिक सुन्दरता (4) सोलन में अल्पाहार (5) यात्रा का समापन।

भगवान् भास्कर की अविश्रान्त प्रचण्ड तप्त किरणों और लू की सन्नाटा मारती हुई झपटों से जब तन-मन व्याकुल हो गया, कूलर और वातानुकूलन का विज्ञान भी मन की

क्लान्ति और अविरल शून्यता को समाप्त न कर सका तो लगा पर्वत की शृंखलाओं में कुछ दिन बिताकर तन-मन को आह्लादित किया जाए।

दृढ़ निश्चय और आत्म-विश्वास सफलता के सोपान हैं। दो चार मित्रों से पर्वत यात्रा की आकांक्षा प्रकट की तो वे भी तैयार हो गए। मित्रों के साथ यात्रा का अपना आनन्द है, यह सोचकर मन खुशी से नाच उठा।

1 जून की प्रातःकालीन दिल्ली-शिमला बस में चारों साथी उमंग और उत्साह से जा बैठे। बस चली। पंजाब रोडवेज की बस यात्रा-देवी का अपूर्व वरदान है। ध्वनि शून्य तथा झटकों-रहित बस तेजी से दौड़ी मंजिल की ओर तीव्र गति से भागी जा रही है। ढाई घंटे तक की करनाल यात्रा तो सुखद रही, पर करनाल से कालका तक की यात्रा में सूर्य देव ने अपनी क्रोधाग्नि से हँस-मुख चेहरों को मुरझा दिया। मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में—

सूखा कंठ, पसीना छूटा, मृग तृष्णा की माया।
झुलसी दृष्टि, अंधेरा दीखा, दूर गई वह छाया॥

साढ़े ग्यारह बजे बस ने कालका छोड़ा। कालका पर्वत यात्रा का आरम्भ स्थल है। आगे-आगे प्रकृति की रमणीय स्थली पर्वत-शृंखलाएँ ही आरम्भ होंगी, यह सोचकर दिवाकर की दीप्ति से मन में विपरीत प्रभाव नहीं पड़ा।

बस पर्वतीय मार्ग पर चल पड़ी है। चढ़ाई पर चढ़ रही है। इसलिए गति मैदानी सड़क से कुछ धीमी पड़ गई है। मृत्यु को निमंत्रण देते पहाड़ी मोड़ों पर बस की चाल को लकवा मार जाता था, पर बस भागी जा रही थी, अपने दो घंटों के निर्धारित समय में सोलन पहुँचने के लिए।

लू के स्थान पर कुछ शीतल पवन हृदय को गुद्गुदा जाती थी। आँखें चहुँ ओर फैली शस्य-श्यामला और हरी-भरी भूमि के सौन्दर्य का आनन्द लूट रही थीं। दूर-दूर तक झाड़ियाँ, लताएँ, ऊँचे-ऊँचे वृक्षों के रूप में प्रकृति अपने विविध वेश में मन को मोह रही थी। लगता था—

मांसल सी आज हुई थी। हिमवती प्रकृति पाषाणी। (प्रसाद)

उधर सीढ़ीनुमा बल खाते छोटे-छोटे खेत। प्रेमी पवन के झोंके से झूमती लताएँ। वन्य पादपों पर पुष्पों के पीत-मुकुट देख-देखकर आँखें चकाचौंध हो रहीं थीं, पर हृदय-तृप्त न हो रहा था। आगे चले-चढ़े तो देखा पहाड़ों से जल स्रोत फूट रहा है। उसकी स्वच्छ निर्मल धारा को देखकर भारतेन्दु की पंक्ति का स्मरण हो आया ...... **'नव उज्ज्वल जल धार हार हीरक-सी सोहती।'**

सोलन आया। बस आधा घंटा रुकी। यात्री उतरे। अल्पाहार के लिए दौड़े। वमन वाले साथी को कुल्ला करवाया। सोडा पिलाया। हमने भी चाय-बिस्कुट लिए। तरोताजा हुए। दो बज रहे थे। भगवान् भास्कर अपने पूर्ण प्रकाश स्थिति में थे। पर, थे वे तेज-हीन। पहाड़ी शीतल पवनों ने उनके ताप का हरण कर लिया था। इसलिए गरमी भी सुखद सुहानी लग रही थी।

सोलन में सुस्ताने तथा तरोताजा होने के बाद बस चल पड़ी अपने गतव्य की ओर। असली पहाड़ी यात्रा का अनुभव तो अब शुरू हुआ था। छोटी-छोटी सड़कें, बल खाती सड़कें, सर्प-सी मोड़ खाती सड़कें। तीन-चार किलोमीटर बस चली और फिर चक्कर काटकर सामने वाली सड़क पर। समतल भूमि पर जिसके पहुँचने में पचास डग चाहिएँ।

एक ओर ऊँचे-ऊँचे पहाड़ और दूसरी ओर पाताल लोक। जरा-सा ध्यान विचलित हुआ तो बस हो या कार, पशु या प्राणी, पाताल लोक का वासी बन जाता है। हंस अकेला मृत्यु लोक के द्वार खटखटाता है, पर प्रकृति-नटी का रूप भी विचित्र है। पाताल लोक हो या पर्वत-पहाड़ियाँ सभी श्यामल हैं, हरी-भरी हैं, हास्य बिखेरती हैं, कोस-कोस पर रूप बदलती हैं।

दो चार नर-नारियों की वमन विह्वलता ने प्रकृति के रूप-सौन्दर्य को निहारने में बाधा डाली तो शीतल पवन के झोंकों ने पर्वतीय प्रदेश में संध्या-सुन्दरी के प्रवेश की पूर्व सूचना दे दी। दूसरी ओर, दीवारों पर चमकते विज्ञापनों ने सजग कर दिया अब शिमला दूर नहीं है।

शिमला समीप आ रहा था। बस चींटी की चाल चल रही थी। भारवाहक (कुली) बस के साथ दौड़ते-दौड़ते खुली खिड़कियों से यात्रियों को अपने टोकन देकर बुक कर रहे थे। बस-स्टॉप पर बस रुकी। बस का दरवाजा खुलने से पहले कुलियों ने आक्रमण कर दिया। येन-केन प्रकारेण हम बस से उतरे। उन्मद शीतल मलयानिल के झोंकों से चित्त कुछ शान्त होता, पर कुलियों के दीन-दुराग्रह ने उनकी पहचान बनाने के लिए विवश कर दिया।

मानव ने प्रकृति को अपना दास बनाया है। इसलिए यहाँ पहाड़ काट-काटकर सुगम सीढ़ियों का निर्माण किया गया है। अभ्यस्त कुली सीढ़ियां पर फुर्ती से चढ़ रहे थे और हम चारों साथी यात्रा की थकावट मिश्रित मस्ती से धीरे-धीरे डग रख रहे थे। जैन धर्मशाला पहुँचकर कुलियों ने विदाई ली। हमने धर्मशाला की शरण ली। इस प्रकार पर्वतीय स्थल पर पहुँचकर यात्रा समाप्त की।

(50) मेरी पहली रेलयात्रा

संकेत बिंदु—(1) रेलयात्रा की जिज्ञासा (2) रेलवे स्टेशन का दृश्य (3) यात्रा प्रारम्भ (4) रेल के अंदर के रोचक प्रसंग (5) रोचक और ज्ञानवर्धक यात्रा का अंत।

मेरी चौदह वर्ष की अवस्था हो गई थी, किन्तु अब तक मुझे कभी दिल्ली से बाहर किसी और शहर में जाने का अवसर नहीं मिला था। इसलिए मैं अब तक रेलयात्रा नहीं कर सका था। कुछ दिन पहले मैं अपने साथियों के साथ बालभवन देखने गया था। वहाँ छोटी-सी रेलगाड़ी को देखकर और उसमें बैठकर सैर करके मुझे बहुत आनन्द आया।

मैं सोचने लगा कि असली रेलगाड़ी में यात्रा करते हुए अधिक आनन्द आएगा। मेरे मन में रेलयात्रा की इच्छा बढ़ती ही रही।

कुछ ही दिनों बाद एक ऐसा अवसर आ गया, जिससे मुझे रेलयात्रा का सु-अवसर मिल गया। मेरे पिताजी के घनिष्ठ मित्र श्री यशपाल ने अम्बाला छावनी से सूचना दी कि उनकी पुत्री का विवाह है। इस अवसर पर मेरे पिताजी का वहाँ जाना अनिवार्य था। जब वे अम्बाला जाने का कार्यक्रम बनाने लगे, तो मेरी रेलयात्रा की इच्छा जागृत हो उठी। मैंने पिता जी से कहा, 'मैं भी जाऊँगा, बहिनजी की शादी में।' पहले तो उन्होंने मुझे डाँटा, किन्तु मैं जाने की रट लगाता रहा। बाल-हठ के आगे भगवान् भी झुक जाते हैं। आखिर पिताजी भी मुझे साथ ले जाने के लिए तैयार हो गए।

नई दिल्ली रेलवे स्टेशन से बारह बजकर दस मिनट पर 'फ्लाइंग मेल' चलती है। हम पौने बारह बजे ही स्टेशन पहुँच गए थे। पिताजी ने टिकट घर से टिकट लिए और गाड़ी की ओर चल दिए। गाड़ी के विशाल विस्तृत चबूतरे को देखकर जिज्ञासा प्रकट की तो पिताजी ने समझाया—यह विशालकाय लौहपथ गामिनी के ठहरने, विश्राम करने, दाना पानी लेने तथा अपने भार को हलका करने और नया भार लेने के लिए निश्चित स्थान है। गाड़ी पर यात्रियों के चढ़ने और उतरने के लिए यह चबूतरा या मंच है। इसे रेलवे की भाषा में 'प्लेटफार्म' कहते हैं।

यात्रियों की सुविधा के लिए प्लेटफार्म पर सार्वजनिक नल होता है, क्षुधाशान्ति के लिए जलपान की रेहड़ियाँ होती हैं। ज्ञानवर्धन और मानसिक भूख मिटाने के लिए बुकस्टाल होता है। इसके अतिरिक्त एक-दो रेहड़ियाँ बच्चों के खेल-खिलौनों या स्थान विशेष की प्रसिद्ध वस्तुओं की भी होती हैं।

गाड़ी में भीड़ बहुत थी। जब हम किसी डिब्बे में चढ़ने की कोशिश करते तो अन्दर बैठे यात्री हमारे साथ सहानुभूति दिखाते हुए कहते, 'आगे डिब्बे खाली पड़े हैं।' आगे गए तो वही हाल। तब मुझे पता लगा कि यह सहानुभूति नहीं, प्रवंचना थी।

आखिर हम एक डिब्बे में घुस गए। अन्दर विचित्र दृश्य था। पाँच-सात लोग खड़े थे और इधर-उधर झाँककर बैठने की जगह ढूँढ़ रहे थे। उधर दो-तीन लोग पैर पसारे पड़े थे। एक सज्जन ने सीट पर अपना बिस्तर रखा हुआ था। जो भी उनसे पूछता कहते, 'सवारी आने वाली है।' इधर इंजन ने सीटी बजाई और उधर गार्ड ने भी सीटी बजाकर तथा हरी झंडी दिखाकर गाड़ी को चलने की स्वीकृति दे दी।

गाड़ी मन्द गति से चली जा रही थी। पाँच-सात मिनट पश्चात् सब्जीमण्डी का स्टेशन आया। गाड़ी थोड़ी देर रुकी और बीस-तीस यात्री चढ़े-उतरे। पुनः सीटी बजी और गाड़ी चल दी।

सब्जीमण्डी स्टेशन छोड़ने के पश्चात् गाड़ी ने जो गति पकड़ी, उसका अनुमान लगाना मेरे लिए मुश्किल है। हाँ, इतना जरूर पता है कि वह छोटे-बड़े स्टेशन छोड़ती फकाफक चली जा रही थी। छोटे स्टेशन पर ठहरती नहीं, नरेला, समालखा जैसी मण्डियों की सुनती नहीं। अपनी धुन में मस्त चली जा रही थी।

यात्रियों की चर्चा में बाधा डालने वाले भी डिब्बे में आते रहते हैं। कोई आँखें अंधी होने की दुहाई देता है तो कोई अपने अंगहीन होने की दर्दनाक कहानी सुनाकर पैसे माँगता है। बैठे हुए यात्री भूख न महसूस करें, अत: विभिन्न प्रकार की खाने की चीजें बेचने वाले आते हैं। कोई दाल-सेवियाँ बेच रहा है, तो कोई मूँगफली। कई लोग अपने सुरमे तथा दंत-मंजन को 'विश्वविख्यात' की उपाधि से विभूषित कर यात्रियों की आँखों में धूल झोंकने की चेष्टा करते हैं।

पानीपत और करनाल के रास्ते में इन सब माँगने और बेचने वालों से अलग सफेद कपड़े पहने और टोप ओढ़े एक आदमी को हमने अपने डिब्बे में आते देखा। यह भी अजीब आदमी है। वह हर व्यक्ति से टिकट माँगता है। टिकट देखकर उसे अपनी मशीन से 'पंच' कर देता है। पिताजी ने समझाया यह 'टिकट चैकर' है। बिना टिकट सफर करने वालों को पकड़ना और उनसे जुर्माना वसूल करना, इसका काम है।

फ्लाइंग मेल पानीपत, करनाल और कुरुक्षेत्र पर रुकी। शेष स्टेशन छोड़ चली। करनाल जाकर पिताजी और मैं प्लेटफार्म पर उतरे। बड़ा शोरगुल था। कोई 'गर्म चाय' की आवाज लगा रहा था, तो कोई रोटी-छोले की। गाड़ी को पाँच मिनट रुकना है, अत: यात्री भी चाय पीने, पूरी खाने और सिगरेट पीने में लगे हुए हैं। हमने भी जल्दी-जल्दी चाय पी और बिस्कुट खाए। उधर गाड़ी ने सीटी दी और हम भागकर गाड़ी में चढ़ गए।

भगवान् कृष्ण की उपदेश-भूमि कुरुक्षेत्र के बाहर से दर्शन कर अपने को कृतार्थ समझा। घण्टे भर की यात्रा के बाद अम्बाला छावनी का स्टेशन आ गया। गाड़ी की गति मन्द हुई। लोगों ने अपने बिस्तर सम्भाले। हमने भी अपनी अटैची सम्भाली। झटके के साथ गाड़ी रुकी।

कुली गाड़ी की ओर झपट रहे थे। चाय, दूध, रोटी-छोले की वही आवाजें कानों में गूँज रही थीं और हम गाड़ी से उतरकर धीरे-धीरे प्लेटफार्म पर चल रहे थे। मार्ग में ही एक व्यक्ति पिताजी से गले मिला। दोनों बड़े प्रसन्न हो रहे थे। पिताजी उसे बधाइयाँ दे रहे थे। मैं समझ गया कि यही मेरे पिताजी के मित्र श्री यशपाल हैं। मैंने उनका चरण-स्पर्श किया। उन्होंने मुझे प्यार से थपथपाया।

यही है मेरी पहली रेलयात्रा, रोचक भी और ज्ञानवर्धक भी।

(51) मेरी अविस्मरणीय यात्रा ?
मेरी अविस्मरणीय रेल-यात्रा

संकेत बिंदु—(1) मेरे जीवन की निधि (2) लुटेरों का रेल में प्रवेश (3) लुटेरों को काबू में करना (4) पुलिस और जनता द्वारा लुटेरों को पकड़ना (5) उपसंहार।

अकस्मात् अयाचित्त संवेदनाओं की घड़ियाँ जब सुधियों की निधि बन जाती हैं तो

वे अविस्मरणीय बन जाती हैं। समय का साबुन भी उन स्मृतियों को शीघ्र धोने में सफल नहीं हो पाता। मेरी एक रेल-यात्रा मेरे जीवन की निधि है। रह-रहकर वह मेरे स्मृति पटल पर अंकित हो जाती है।

रात्रि का प्रथम प्रहर। गाड़ी अम्बाला शहर के स्टेशन से चंडीगढ़ के लिए चली। चण्डीगढ़ पहुँचने में एक घंटा शेष था। यात्री सुविधानुसार बच्चों को लिटा रहे थे ताकि थोड़ी नींद ले लें। कुछ लोग खाने की चीजें, जो अम्बाला शहर से खरीदी थीं, खा रहे थे। कुछ गपशप कर रहे थे। शांत वातावरण में गाड़ी की कर्कश आवाज भी अप्रिय नहीं लग रही थी।

डेराबसी का स्टेशन आया। हमारे कम्पार्टमेंट से एक पति-पत्नी उतरे। चढ़ा कोई नहीं। उनके खाली स्थान पर समीपस्थ बैठे व्यक्तियों ने कब्जा कर लिया। गाड़ी पुनः चल पड़ी। गाड़ी अभी तेजी के 'मूड' में थी कि एक आदमी चिल्लाया, जिसके पास जो पैसे हैं, गहने हैं, वे हमारे हवाले कर दो।' बस क्या था? पूरे कम्पार्टमेंट में सन्नाटा छा गया।

आवाज एक आदमी की थी, पर उसके साथी तीन और थे। वे तीनों पहले से ही अलग-अलग कोने में बैठे थे। जैसे ही उनके नायक ने चेतावनी दी, वे खड़े हो गए और लगे नर-नारियों को मारने-पीटने और उनकी नकदी, जेवर छीनने। हाहाकार मच गया। रोने चिल्लाने, गिड़गिड़ाने, आहें भरने की आवाजें कम्पार्टमेंट में गूँजने लगीं।

एक अधेड़ उम्र की औरत-मर्द उनके पैर पकड़, कह रहे थे, 'हमारी लड़की की शादी है। यह सामान उसके दहेज का है। इसे छोड़ दो।' क्रूरता शैतान का पहला गुण है। दया, ममता, मोह उसे स्पर्श भी नहीं कर पाते। उग्रता के साथ निष्ठुरता या निर्दयता के मेल से क्रूरता का आविर्भाव होता है। उसने आदमी को दो चपेट मारीं और नारी के वक्ष पर जो घूँसा मारा, वह वहीं अचेत हो गई।

मेरे सामने की सीट पर दो युवतियाँ बैठी थीं। वे भी भययुक्त नयनों से यह दृश्य निहार रही थीं, वे अकेली थीं। दिल्ली से मेरे साथ चढ़ी थीं। उसकी परस्पर बातचीत से मुझे ऐसा लगा था कि वे 'युनिवर्सिटी स्टूडेंट' हैं।

चारों लुटेरों का एक साथी, जब उन युवतियों के पास पहुँचा तो कुछ क्षण तो उनके सौन्दर्य को निहारता रहा, फिर उनमें से एक के कपोलों पर हाथ फेरने के लिए जैसे ही उसने हाथ बढ़ाया, युवती ने साहस बटोर कर उसके मुँह पर चाँटा जड़ दिया। चलचित्र की भाँति चलते इस साहसिक अभियान ने मेरी डरी-सहमी आत्मा में निडरता की चिंगारी प्रज्ज्वलित कर दी। उसकी पीठ मेरी ओर थी। मैंने पलक झपकते उसकी कोहली भर ली। उसने मुझसे छूट पाने की चेष्टा की, मुझे घूसे मारने की असफल चेष्टा की।

भय की भाँति साहस भी संक्रामक होता है। युवती के चाँटे और मेरे कोहली भरने ने फूस में अग्नि की चिंगारी फूँक दी। लोग उस लुटेरे पर टूट पड़े। उसे दबोच लिया।

युद्ध स्थल का दृश्य पलट चुका था। बहादुर लुटेरों ने जब अपने साथी की ऐसी

हालत देखी तो पलायन करना ही उचित समझा। सच भी है, चोर के पैर नहीं होते, स्थिर साहस नहीं होता। उनमें से एक ने खतरे की जंजीर खींच दी। गाड़ी डगमगाते हुए रुकी।

गाड़ी आहिस्ता होते ही उसके दो साथी तो डिब्बे से उतरने में सफल होकर रात्रि के अन्धकार में अदृश्य हो गए, पर खतरे की जंजीर खींचने वाला लुटेरा फँस गया। जंजीर खींचने के लिए वह सीट पर पैर रख कर चढ़ा था। ज्यों ही वह उतरा, दो तीन यात्रियों ने उसे पकड़ लिया और पीटना शुरू कर दिया। पलक झपकते ही उसने चाकू निकाल लिया और पीटने वालों पर वार करने लगा। दो-तीन यात्री चाकू से घायल हो गए। जन-साहस पुनः क्षीण हो गया। उत्साह और साहस चाकू के सामने पानी भरने लगे। यात्री पीछे हट गए, अपनी जान बचाने के लिए।

लुटेरे का उद्देश्य लोगों को घायल करना नहीं था, वह तो भागने के लिए अपना मार्ग प्रशस्त कर रहा था। यात्री पीछे हटे, और वह 'गेट' की ओर दौड़ा। भय-युक्त पलायन में असावधानी हो जाती है। 'गेट' से उतरने में उसका पैर किसी सूटकेस से ठोकर खा गया और वह लड़खड़ा कर गेट के नीचे गिर पड़ा। उसका चाकू ही उसके शरीर को चीर गया। फिर भी उसका लहूलुहान शरीर भागने का साहस जुटा रहा था।

गाड़ी के जंगल में रुकने और हमारे कम्पार्टमेंट के शोर को सुनकर पड़ोसी डिब्बे के लोग उतर आए। उन्होंने पहला काम उस घायल लुटेरे को पकड़ने का किया।

भीड़ इकट्ठी हुई। गाड़ी के साथ चल रही रेल-पुलिस के चार सिपाही आए। गार्ड आया। गार्ड ने परिस्थिति को समझा और सम्भाला। उसने दोनों लुटेरों को हमारे ही कम्पार्टमेंट में बिठाया। पुलिस के चार सिपाही बैठे। गार्ड ने हरी झंडी दिखाकर, पहली सीटी बजाकर गाड़ी चलने का संकेत दिया।

सीटी की आवाज सुनकर यात्री भीड़ अपने-अपने कम्पार्टमेंट की ओर दौड़ी। गार्ड ने देखा कि लोग गाड़ी में बैठ गए हैं तो उसने दूसरी सीटी बजाकर गाड़ी चलने का आदेश दे दिया।

हमारा कम्पार्टमेंट अब एक तमाशखाना बन चुका था। पहले से अधिक भीड़, पहले से अधिक काना-फूँसी चल रही थी। मजे की बात यह है कि लोग अपने-अपने साहस की डींग मार रहे थे।

चंडीगढ़ का स्टेशन आया। यात्री उतरे। लुटरों को उतारा गया। उनको देखने के लिए भीड़ जमा हो रही थी। दोनों युवतियाँ शायद पुलिस गवाही के चक्कर से बचने के लिए भीड़ में ही कहीं खो गई थीं। मैं तो पुलिस के हथकंडों का भुक्त-भोगी था, इसलिए भीड़ में पुलिस को वंचिका देकर प्लेटफार्म ही छोड़ चुका था।

ट्रेन की यह लूट-खसोट, यात्रियों का आहत-अपमान, भययुक्त चेहरे, कॉलिज छात्रा का साहसपूर्ण चाँटा, आज भी मेरे मन-मस्तिष्क के सामने आकर मुझे उस रेल-यात्रा को स्मरण रखने को विवश करता है। वह रेल-यात्रा मेरे जीवन की अविस्मरणीय रेल-यात्रा बन गई।

गूँथ कर यादों के गीत।
मैं रचता हूँ विराट् संगीत॥

(52) राशन की दुकान पर मेरा अनुभव

संकेत बिंदु—(1) उचित दर की दुकान (2) सरकार को लाभ (3) घर में राशन लाने का काम (4) वृद्धा का दुकानदार से झगड़ा (5) राशन कार्ड का गुम होना।

नियंत्रित मूल्य तथा निश्चित मात्रा में वस्तुओं के वितरण की व्यवस्था को 'राशनिंग' कहते हैं। जिस दुकान से वितरण की व्यवस्था की जाती है, उसे 'राशन की दुकान' कहते हैं। लगभग 15 वर्ष से राशन की दुकान का नाम 'उचित दर की दुकान' रख दिया गया है, जो असंगत है। कारण, उचित की व्याख्या राजकीय दृष्टि से सही हो सकती है, किन्तु मात्रा का नियंत्रण इस नाम से प्रकट नहीं होता। लकड़ी-कोयले के राशन-डिपो से निर्धारित मात्रा से अधिक सौ ग्राम कोयला तो ले लीजिए! दुकानदार राशन की काला बाजारी करने के अपराध में जेल की यातनाएँ भोगेगा और ग्राहक को गवाहियों के भुगतान में धन और समय बरबाद करना पड़ेगा।

'शस्य-श्यामला' भारत-भूमि में राशन ! घी-दूध की नदियाँ जिस राष्ट्र में बहती थीं, वहाँ उचित दर की दुकान की व्यवस्था ! यह देश का अपमान है और अधिकारियों की कार्य-विधि की अक्षमता का परिचायक है। आज देश में गेहूँ, चना, चावल खूब मिलता है, किन्तु फिर भी राशन है ! सरकार को इसमें दो लाभ हैं—प्रथम है, जनता का ध्यान राष्ट्र-हित की समस्याओं से हटाना और दूसरा है अधिकारियों की चाँदी और देश के व्यापारी-वर्ग का नैतिक बल कमजोर करना। द्वितीय विश्व-युद्ध के समय चली राशन-व्यवस्था तत्कालीन स्वतंत्रता-आन्दोलन की अग्नि को बुझाने का प्रयास था और आज हमारे शासनाधिकारी इसे अपनी असफलताओं को छिपाने का माध्यम समझते हैं। वे चाहते हैं कि जनता गेहूँ, चीनी, कोयला-लकड़ी और मिट्टी के तेल के राशन से जूझती रहे, और उमे अवकाश ही न मिले.... देश और देश की समस्याओं के विषय में सोचने का।

घर के लिए राशन लाने की 'ड्यूटी' मेरी है। मैं ही इसे प्रेम से निभाता हूँ। साइकिल ली, एक बोरी या कट्टा तथा दो थैले लिए ओर चल पड़ा राशन की दुकान पर। हमारा दुकानदार प्रसन्न-वदन व्यापारी है। मेरी शक्ल देखते ही 'आओ राजकुमार' कहकर मेरा अभिवादन करता है। भीड़ या लाइन नाम की कोई समस्या नहीं। एक बार मैंने कह दिया, मेरा नाम स्वदेश कुमार है, राजकुमार नहीं।' हँसकर बोला 'स्वदेश कुमार हो सकते हो, किन्तु अपने माता-पिता के तो तुम्हीं राजकुमार हो।' मैं चुप। मैं भी मजाक में उसे 'अन्नप्रदाता' का अपभ्रंश 'अन्नदाता' कहने लगा। वैसे उसकी बात का बुरा कोई नहीं मानता। एक दिन राशन लेने वाला एक युवक कीमती वस्त्र पहने अपने नौकर के साथ आया था। उसे उसने 'शहजादा सलीम' की संज्ञा दे डाली।

राशनकार्ड दिखाकर पर्ची कटवाई। पैसे दिए, पर्ची ली। पर्ची राशन तोलने वाले को दी। उसने सब पदार्थ ठीक-ठीक तौलकर बोरी और थैलों में डाल दिए। बोरी का मुँह सुतली

से बाँध दिया। मैंने कहा—'लाला, जरा गेहूँ की बोरी को साइकिल पर रखवा दो।' वह हँसकर कहता है—'कैसे हो स्वदेश के कुमार, जो एक मन गेहूँ नहीं उठा नहीं सकते। बदल ही दो अपना नाम।'

मेरी बातचीत चल ही रही थी कि एक वृद्धा आई। लाला ने कहा—'माता जी को पहले राशन दे दूँ, फिर उठवाऊँगा। मैं खड़ा रहा। तोलने वाले ने गेहूँ तोल कर माताजी की बोरी में डाले ही थे कि वृद्धा ने 4-5 'श्लोक' सुना दिए। 'कम तोलता है, तुझे कीड़े पड़ेंगे। तू आँखों में धूल झोंकता है, तेरी औलाद अन्धी होगी।' लाला हक्का-बक्का। काटो तो खून नहीं। उसने हाथ जोड़कर कुछ कहना चाहा, तो वृद्धा और गालियाँ देने लगी। देखते-देखते 8-10 आदमी इकट्ठे हो गए। पास ही खड़ा नागरिक-सुरक्षा का प्रहरी (सिपाही) भी आ गया।

बात बढ़ गई। लाला की दलील थी कि इस गेहूँ को पुन: तोल देता हूँ। पर्ची के हिसाब से ठीक निकले, तो मैं सच्चा, किन्तु पुलिस वाला दोनों को पुलिस स्टेशन ले जाने के लिए संकल्पित। वह लाला से रुपए ऐंठने के चक्कर में था। इसी बीच कहीं से राशन-इन्सपेक्टर आ टपका। उसने जनता को शान्त किया, बोरी का गेहूँ तुलवाया। पर्ची के हिसाब से गेहूँ बिलकुल ठीक था।

जनता बालक एक समान। हवा का रुख पलट चुका था। लाला सच्चा निकला। लोग बुढ़िया की मजाक उड़ाने लगे। कोई कहता—'बहू से लड़कर आई है', तो कोई और कुछ। बहरहाल बुढ़िया से विदा होने के बाद मैंने लाला से पुन: प्रार्थना की—'सत्यवादी हरिश्चन्द्र जी, मेरी बोरी तो उठवा दो।' इस उपाधि से लाला हँसा और बोला, 'बोरी उठाई की मजदूरी थोड़े ही मिलती है। गेहूँ का पैसा लिया है—उठवाने का नहीं।' और चलचित्र की भाँति पल झपकते ही बोरी मेरी साइकिल पर थी।

घर जाकर सामान उतारा तो देखा, राशन कार्ड थैले में नहीं है। सारे थैले देखे, बोरी-कट्टा देखा। कहीं न मिला। दौड़ा गया लाला की दुकान पर। पर्ची काटने वाले क्लर्क की मेज पर शान्त भाव से कार्ड पड़ा था, व्याकुलता से अपने संरक्षक की प्रतीक्षा कर रहा था। कारण, उसे भय था कि उसका संरक्षक न आया, तो यह लाला संदूकची में कैद कर देगा। मैंने बिना लिपिक को सम्बोधित किए कार्ड उठा लिया। लिपिक भी समझ गया। अत: उसने कुछ न कहा। कार्ड हाथ में लेने पर जान में जान आई। दो क्षण पंखे के नीचे खड़ा हुआ। कार्ड भी हवा में फर-फर करके अपनी प्रसन्नता प्रकट करने लगा।

(53) मेरे जीवन की अविस्मरणीय घटना

संकेत बिंदु—(1) घर में विवाह का वातावरण (2) कन्या पक्ष के घर प्रस्थान (3) माता की अकस्मात् मृत्यु का समाचार (4) मंगलमय अवसर पर अमंगल (5) कर्त्तव्य की भावना पर विजय।

ज्येष्ठ शुक्ला दशमी को श्री गंगा दशहरा का पावन दिन। अंग्रेजी तिथि के अनुसार 30 मई 1993, रविवार। भगवान् भास्कर का वृष राशि में स्थित होना।

विवाह के उपलक्ष्य में अपनी वाग्दत्ता की 'गोद भरने', विवाह की 'लग्न-पत्रिका' तथा टीका लेने का निश्चित दिन। घरभर में मंगल-आह्लाद और उत्साह का वातावरण। महा कवि प्रसाद के शब्दों में—

मांसल सी आज हुई थी, हिमवती प्रकृति पाषाणी।
उस लास-रास में विह्वल थी, हँसती-सी कल्याणी॥

1989 में बड़ी बहिन का विवाह हुआ था। चार वर्ष पश्चात् परिवार में पुन: मंगलमय अवसर आया था। पर परिवार विभक्त था। मेरे साथ केवल पिताश्री तथा अग्रज परिवार था। वह मंगलमय प्रभात अपनी अरुणतापूर्ण मादकता के साथ उदित होकर हृदय को अपने माधुर्य की सुनहली किरणों से रंजित कर रहा था। कवि पंत के शब्दों में सच्चाई तो यह है—

जग भी अब
प्रसन्न-सा लगता (था)
मेरे मन की प्रसन्नता से। *(आस्था)*

प्रात: 11 बजे कन्या पक्ष के घर प्रस्थान करने का समय निश्चित था। बड़ी बहन और बहनोई एक दिन पहले ही आ गए थे। दूसरी बहिन को प्रात: 8 बजे बुलाया था, ताकि दोनों बहिनें और भाभी मिलकर वधू-गृह ले जाने योग्य सामान का पुनर्निरीक्षण कर लें। वह 8 बजे आकर और 9.30 बजे के लगभग परिधान-परिवर्तन के लिए अपने घर चली गई।

हम सब 10 बजे तक तैयार होकर निश्चिंत भाव से प्रस्थान समय की प्रतीक्षा कर रहे थे। सम्पूर्ण व्यवस्था ठीक थी, इसलिए समय 'बिता' रहे थे, तभी 10 बजकर 10 मिनिट पर एक परिचित व्यक्ति पिताश्री के पास आए। कुर्सी पर बैठे और धीरे से बोले , 'तुम्हारी मिसिस की डेथ हो चुकी है।'

अत्यंत अप्रिय समाचार सुनकर पिताजी का हृदय धक् रह गया। उन्हें लगा कि राजा दशरथ की भाँति, *'मोर मनोरथु सुर तरु फूला। फरत करिनि जिमि हतेउ समूला।'* मेरी ऐसी स्थिति थी मानों बाज वन में बटेर पर झपटा हो और ताड़ के पेड़ को बिजली ने मार दिया हो। मेरे चेहरे का रंग उड़ गया।

प्रकृति के क्रूर खिलवाड़ की बात पिताजी के गले नहीं उतरी। उन्होंने पूछा, 'आप कैसे कहते हैं ?' उसने उदासीन भाव से बताया मैं अभी पहली मंजिल पर देख कर आया हूँ। डॉक्टर आया था। वह 'डेथ डिक्लेयर' कर गया है।

माता के स्वर्गारोहण को लगभग 90 मिनिट बीत चुके थे। हम मकान के भूमितल (ग्राउंट फ्लोर) पर आनन्द में लीन थे। ऊपर शेष भाई-बहनों ने जो पिताजी और हमसे अलग थे, यह सब कार्य इतनी शांति और चतुराई से किया कि हमें आहट तक न होने दी।

माँ की मृत्यु पर उनमें से कोई रोया तक नहीं, विलाप नहीं किया। न सिसिकयाँ भरीं। उनका हृदय रोता तो चीख प्राचीर तोड़ती, आहें अंतरिक्ष को गुँजातीं। पर यहाँ तो वैसा ही शांत वातावरण है। स्थित प्रज्ञता की-सी स्थिति।

मेरा मन तड़फ उठा। मंगलमय अवसर पर अमंगल होने से ही नहीं, अपितु माता के विछोह से भी। मन ने कहा साहस करो, ऊपर चलकर सच्चाई देख लो, पर दूसरे ही क्षण उसने कहा, नहीं। सच्चाई की तेज रोशनी से तुम्हारी आँखें चुंधिया गईं तो! चारों भाई बहन धक्के देकर, ठोकर मार कर द्वार को ताला लगा देंगे। याद रहे, अभिमन्यु के समान चक्रव्यूह में घुस गए तो सुरक्षित नहीं लौटोगे। याद करो, उस क्षण को जब सगाई करके जब तुम अपने जीजा के साथ घोर बीमार माता का आशीर्वाद लेने गए थे, तो उन्होंने सीढ़ियों पर ताला लगा दिया था।

माताजी की मृत्यु की किसी भाई-बहन या सगे संबंधी ने 'प्रमाणित' नहीं की थी। उस समय एक-एक सेकिंड मुझे एक घंटे के समान लगा रहा था। मन व्यग्र था, सत्य को जानने के लिए। इसी समय डिजरायली के शब्द स्मरण हो आए, "Every thing comes if only a man will wait. यदि मनुष्य प्रतीक्षा करे तो हर वस्तु प्राप्त हो सकती है। दस मिनिट पश्चात् ताऊजी आए। वे आए तो थे मंगलकार्य में भाग लेने, पर जब उन्हें अमंगल का पता लगा, तो सन्न रह गए। उन्हें ऊपर जाने से कोई रोक नहीं सकता था। अत: वे ऊपर गए और पता कर आये कि सचमुच माताजी का स्वर्गवास हो गया है।

इस दुर्घटना के थोड़ी देर बाद ही पिताजी को हृदय-आघात हुआ। वे अपने कमरे में जाकर 'सॉरबीट्रेट' लेकर लेट गए। उधर मेरे विवाह के मांगलिक कार्य के निमित्त अनेक संबंधी आ चुके थे। उन सबकी खुशी गम में बदल चुकी थी। हर्षित चेहरे मुँह लटकाए जगन्नियन्ता के क्रूर अट्टसास पर अश्रु बहा रहे थे।

तब 'सत्ये धर्मः प्रतिष्ठितः' मानकर सम्मुख खड़े कर्तव्य की चुनौती को स्वीकार किया। जीजा जी से वधू-गृह फोन करवाया। दूसरा फोन, छोटी बहिन को करवाया, जो कुछ देर पहले ही परिधान-परिवर्तन के लिए गई थी।

दिल क्या बुझा, चिराग बुझे, तारे बुझ गए।
दुनिया की आग या दिलो सोजाँ लिए हुए॥

(राजबहादुर वर्मा 'राज')

उधर कर्तव्य पुकार रहा था। भावना उसे अग्रसर होने से रोक रही थी। कुछ देर पश्चात् कर्तव्य ने भावना पर विजय पाई। अमंगल और मृत्यु के स्वागत के लिए तैयार होते समय मुझे यह अनुभूति हुई—

छोड़ पुरानी देह, देह में मेरी रही विराज।
मेरे जीवन में जीवित है, मेरी माँ भी आज॥ —लक्ष्मणसिंह चौहान

(कवयित्री सुभद्राकुमारी चौहान के पति)

(54) स्वप्न में गाँधी जी से मेरी भेंट

संकेत बिंदु—(1) गाँधी जी का जन्म दिन (2) गाँधी जी से स्वप्न में भेंट (3) भारत में सत्य और अहिंसा की स्थिति (4) विभिन्न धर्मों के लोग (5) गाँधी जी के सच्चे अनुयायी।

दो अक्तूबर का दिन, विश्व-वन्द्य 'बापू' का जन्म-दिन। उसी के उपलक्ष्य में हमारे विद्यालय में छात्र गाँधी-मेला देखने गए। दिल्ली नगर निगम कार्यालय के पीछे दंगल मैदान में यह मेला लगा था। वहाँ बापू की प्रतिमा के दर्शन कर धन्य हो गए। मेले में बापू-जीवन की चित्रावली देखी। ऐसी महती शक्ति! सोचा, काश,बापू हमारे युग में होते और हम भी उनके दर्शन कर पाते।

रात्रि 8 बजे गाँधी मेले से घर वापिस पहुँचे। पैर थक गए थे। सिर कुछ बोझिल-सा लग रहा था। खाना खाते ही नींद आ गई। थोड़ी देर बाद देखता हूँ कि गाँधीजी मेरे पास चले आ रहे हैं। उनके दर्शन कर मन बहुत खुश हुआ। मैंने आगे बढ़-कर उनके चरण छुए।

गाँधी जी ने पूछा—'बेटे! कौन-सी कक्षा में पढ़ते हो?'

मैंने उत्तर दिया—'बारहवीं कक्षा में।'

गाँधीजी बोले, 'अच्छा इण्टर फाइनल में।'

'नहीं बापू! इण्टर नहीं, बारहवीं कक्षा में।'

'यह अन्तर क्या है?' बापू ने साश्चर्य पूछा।

'बापू अब एम. ए. 16 की बजाए, 17 वर्ष में होती है। अत: यहाँ सीनियर सेकेण्डरी 11 की बजाए 12 वर्ष में पूर्ण होती है। यह नई शिक्षा-पद्धति है।'

'तो क्या सारा देश 17 वर्ष में एम. ए. करता है।'

'हाँ, बापू!'

बापू चुप हो गए। दो क्षण बाद पूछने लगे—'देश में सत्य और अहिंसा का क्या हाल है? भारतवासी और शासक सत्य और अहिंसा का पालन करते हैं या नहीं?'

बापू के इस प्रश्न पर मेरा चेहरा उतर गया। सच कहूँ तो बापू को दु:ख होगा और झूठ बताऊँ तो बापू के सामने उनके सिद्धान्तों की हत्या होगी। दो क्षण चुप रहा तो बापू समझ गए। बोले, 'बोलता क्यों नहीं?'

मैने कहा—'बापू आपके अनुयायी दिन में 108 बार आपका नाम ले-लेकर खूब झूठ बोलते हैं। हर राजनीतिज्ञ का सिद्धान्त है—

गाँधी नाम जपना। पराया माल अपना।
माल पुए खाओ। जनता को बुद्धू बनाओ॥

'और बेटा अहिंसा का?' मैंने देखा बापू का गला सूख रहा है। प्रश्न पूछने में कठिनाई हो रही है।

मैंने कहा—'बापू अहिंसा का नाटक भारत में प्रतिदिन होता है।'

गाँधीजी ने पूछा—'नाटक से क्या मतलब है ?'

'इसमें पुलिस लाठियाँ, बेंत, अश्रुगैस के गोले तथा बन्दूक की गोलियाँ चलाती है। 100 मरें तो 10 बताती है। 500 घायल हों, तो 50 बताती है। देश में हर रोज अहिंसा का नाटक होता है।'

सुनते-सुनते बापू की आँखों से आँसू बहने लगे। मैं चुप हो गया। बापू ने कहा—'बोलो, बेटा! सच-सच बताओ मेरे देश का हाल।'

कुछ रुककर बापू बोले—'एक बात बता—मेरे देश में हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई सब मिल-जुलकर तो रहते होंगे ?'

'बापू! हिन्दू-मुसलमान-सिक्ख सभी मिलकर रहना चाहते हैं, पर ये राजनीतिज्ञ रहने दें, तब न। ये तो वोट और सत्ता के लिए सबको आपस में लड़ाते रहते हैं। ऊपर से सब मुसलमानों और सिक्खों के शुभचिन्तक बनते हैं।'

यह सुनते ही बापू धड़ाम से भूमि पर गिर पड़े। मैंने बापू को उठाया। उठाकर बैठाया। वे देश की हालत सुन-सुनकर रो रहे थे—बोले, 'सच्चाई तो यह है कि मुझे गोडसे ने नहीं मारा। गोडसे ने तो मुझे अमर कर दिया। मेरे इन तथाकथित अनुयायियों ने मेरी हत्या कर दी। हिन्दू-धर्म में शरीर-परिवर्तन का नाम मृत्यु है, अन्यथा आत्मा तो अमर है। वस्तुत: मेरे अनुयायियों ने मेरी आत्मा की ही हत्या कर दी है।'

मुझे लगा बापू को कोई शुभ समाचार सुनाऊँ, अन्यथा ये तो स्वर्ग में बिलखते रहेंगे। मैंने कहा—'बापू, आजकल भारत में आपका कोई सच्चा अनुयायी है तो, वे 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' वाले हैं।'

बापू ने आँखें पोंछी और विस्फारित नेत्रों से मेरी और देखते हुए कहा—क्या कह रहा है ?' सच बापू। उन्होंने एक पत्रक बाँटा है। उसमें घोषणा की है कि संघ का उद्देश्य—'अपने श्रेष्ठ और प्राचीन राष्ट्र का अपने सनातन सांस्कृतिक मूल्यों के आधार पर तथा वर्तमान समय की आवश्यकताओं के अनुरूप सर्वांगीण विकास करना।'

'सच बेटा ?' यह कहते-कहते गाँधीजी के मुख-मण्डल पर रौनक आ गई। मैंने कहा—'हाँ, बापू।'

इतना ही नहीं बापू, वे तो आपकी तरह 'स्वदेशी अपनाओ' का आन्दोलन भी समस्त भारत में चला रहे हैं।

बापू ने खुशी से मुझे छाती से लगा लिया। बोले—'बेटा यह बात सुनाकर तूने मेरी आत्मा प्रसन्न कर दी। अच्छा, अब मैं चलता हूँ, तू जा कर पढ़ाई कर।'

अचानक मेरा यह स्वप्न भंग हुआ। मेरे कानों में पिताजी की आवाज टकराई। वे कह रहे थे—'उठ, पढ़, उठ, पढ़।'

आँख मलता हुआ उठा। मुँह हाथ धो, ठण्डा जल पिया। प्रांगण में घूमने लगा, ताकि नींद की खुमारी उतर जाए।

नींद की खुमारी तो उतर गई, पर बापू-भेंट की खुमारी अनेक दिनों तक बनी रही।

(55) मुझे भारतीय होने का गर्व है

संकेत बिंदु—(1) भारतीय होने का गर्व (2) संस्कृति और मानव सभ्यता का स्रोत (3) भारतीय संस्कृति पर विदेशी मोहित (4) राष्ट्रीय संस्कृति का साक्षात स्वरूप (5) भारतीय भाषाएँ साहित्य, कला तथा दर्शन में सर्वश्रेष्ठ।

'मर्द बनो और ललकार कर कहो कि मैं भारतीय हूँ। मैं भारत का रहने वाला हूँ। भारत मेरा जीवन, मेरा प्राण है। भारत के देवता मेरा भरण-पोषण करते हैं। भारत मेरे बचपन की हिंडोला, मेरे यौवन का आनन्दलोक और मेरे बुढ़ापे का बैकुंठ है।'

—स्वामी विवेकानन्द

भारत मेरी मातृभूमि, पितृभूमि तथा पुण्यभूमि है। इसलिए मैं भारतीय हूँ। मुझे भारतीय होने का गर्व है।

भारतीय अमृत-पुत्र कहलाते हैं। अत: देवगण भी भारत में जन्म लेने को लालायित रहते हैं। यहाँ जन्म मिलना दुर्लभ होता है। मेरा भारत-भू पर जन्म हुआ है, अत: मुझे भारतीय होने का गर्व है।

'प्रकृति ने भारत को सर्वसम्पन्न, शक्तिशाली और सुन्दर देश बनाया है'—(मैक्समूलर)। 'भारत संसार की सभ्यता का आदि भंडार है'—(काउन्ट जोन्स जेनी।)' भारतीय विज्ञान इतना विस्तृत था कि योरोपीय विज्ञान के सब अंग वहाँ मिलते हैं'—(डफ)। 'पश्चिमी सरकार को जिन बातों पर अभिमान है, वे असल में भारत से ही वहाँ गयी हैं,—(डेलमार)। आदि शब्दों में विदेशियों ने मुक्त कंठ से भारत की प्रशंसा की है। मैं उसी भारत का नागरिक हूँ, भारतीय हूँ। इस पर मुझे गर्व अनुभव होता है।

प्राचीन काल में भारत विश्व-गुरु के पद पर आसीन था। यह संस्कृति और मानव सभ्यता का आदि स्रोत रहा है। अन्य देशों की संस्कृति नष्ट हो गई। मिश्र की नील नदी की घाटी में गगनचुम्बी पिरामिडों का निर्माण करने वाली तथा अपने पितरों की 'ममी' के रूप में पूजा करने वाली संस्कृति अब कहाँ है ? असीरिया और बेबीलोनिया की संस्कृति क्या अब भूमि पर है ? देवी-देवताओं और प्राकृतिक शक्तियों को पूजने वाली संस्कृतियाँ क्या वर्तमान रोम के लोगों के लिए कोई महत्त्व रखती हैं ? उनका पहले सिर बदला, फिर धड़। भारत की संस्कृति आज भी वैदिक संस्कृति है। भारत में जीवन है, इसने दूसरों को जीना सिखाया है। भारत ने विश्व को ज्ञान का विमल आलोक प्रदान किया है।

हिमालय हमारा भाव-प्रतीक है। गंगा हमारी माँ है। इन जैसा संसार में अन्य और कौन कहाँ ? बोल्गा को पिता माना जाता है, किन्तु हम गंगा को माता मानते हैं। मेरा देश सरितामय है। यहाँ प्रकृति का सौन्दर्य अलसाकर बिखर गया है। कालिदास ने हिमालय को देवतात्मा और पृथ्वी का मानदंड माना था। महाकवि रवीन्द्रनाथ भी उसे देवात्मा मानते हैं। निकोलस रोरिख का कथन है कि—हे हिमगिरि, हे भारत के भूषण, हे ऋषियों की पावन तपोभूमि,

हे वसुधा के यश:स्नात सौन्दर्य, हे रहस्यमय, तुम्हें नमस्कार है। तुम्हारा यह अनन्त वैभव तुम्हारा यह दिव्यलोक युग-युग से आकर्षण का केन्द्र रहा है। तुम्हारे दर्शन-मात्र से चित्त प्रफुल्ल और भव्य-भावनाओं से परिपूर्ण हो जाता है। तुम धन्य हो, तुम अनन्य हो।'

जर्मन दार्शनिक भारत में जन्म लेने की कामना करता था। जर्मन कवि गेटे कालिदास की शकुन्तला पर मुग्ध था। मैक्समूलर तो ब्राह्मण बन गया था। अपने को वह मोक्षमूलम् भट्ट कहता था। अमेरिका का सन्त थोरो भारत पर लट्टू था। शॉपेनहार की तो बात ही मत पूछिए।

सम्राट् चन्द्रगुप्त, सम्राट् प्रियदर्शी अशोक, सम्राट् समुद्रगुप्त आदि विश्वविजय की क्षमता रखते थे, परन्तु उन्होंने अपनी शक्ति और पौरुष का सदुपयोग प्रजावत्सलता और भारत के 'स्वर्ण-युग' के निर्माण में किया। 'प्रसाद' के सैल्यूकस की आत्मजा कार्नेलिया और द्विजेन्द्रलाल राय की 'हेलेन' मेरे देश का स्तवन करती आघाती नहीं। वह गाती ही रहती हैं, *'अरुण यह मधुमय देश हमारा।'* तक्षशिला, नालन्दा और विक्रमशिला के विश्वविद्यालय सचमुच 'विश्व के विद्यालय' थे। यहाँ प्रतिदिन बत्तीस हजार शब्द बोलने और लिखने वाले विद्वान् थे। इसलिए मुझे अपने भारतीय होने पर गर्व है।

वाल्मीकि के राम और वेदव्यास के श्रीकृष्ण राष्ट्रीय संस्कृति के साक्षात् रूप हैं। आदि कवि वाल्मीकि भगवान् राम की उपमा एक साथ हिमालय और सागर से देते हैं और इस प्रकार सारे राष्ट्र के भौगोलिक स्वरूप को प्रस्तुत कर देते हैं। पाणिनि जैसा वैयाकरण तो संसार में पैदा ही नहीं हुआ। पन्ना धाय का आख्यान और कहाँ मिलता है ? राजस्थान का कण-कण बलिदान और शौर्य की गाथा गा रहा है।

यहाँ का मूलमन्त्र रहा है—त्याग। जिसने त्याग किया, वह महान् बना, चाहे महावीर, बुद्ध, दधीचि हों या रामकृष्ण परमहंस अथवा महात्मा गाँधी। इसलिए मेरे देश में आचार्यों, सन्तों, साधु-महात्माओं का मूल्य राजा-महाराजा से अधिक रहा। राम वशिष्ठ के चरण-स्पर्श करते थे। यहाँ का कवि गाता था—*'सन्तन का कहों सीकरी सों काम?'*

मेरे देश की धरती की भाषाओं, साहित्य में (वेद, उपनिषद्, पुराण-साहित्य, जैन-साहित्य, बौद्ध-साहित्य, तन्त्र-साहित्य, शास्त्र और धर्म साहित्य) समन्वय पर बल दिया गया है। हमारी संस्कृति सामाजिक रही है। यहाँ धर्म-पंथों का सम्मान होता है। सहिष्णुता और सामंजस्य मेरे देश की निधि है। भारतीय साहित्य ने देश की एकता में सर्वाधिक योगदान दिया है। मेरे देश की संस्कृति की पाचन-शक्ति अतीव सशक्त और तीव्र है। उसने सबको पचाकर एकरस, समरस कर दिया। यहाँ मनुष्य को वानर की संतान नहीं, अपितु अमृत पुत्र माना गया। यहाँ महावीर स्वामी ने अनेकान्त वाद दिया और बुद्ध ने दी करुणा। मेरे देश ने अनेक मानव-धर्म-रक्षक महापुरुष पैदा किए। मेरा देश कभी कूप-मंडूक नहीं रहा। बृहत्तर भारत का सांस्कृतिक इतिहास इसका साक्षी है। मेरा देश लोकतन्त्र की पुरानी प्रयोगशाला है। यहाँ विज्ञान चरमोत्कर्ष पर रहा है। यहाँ की कला, आयुर्वेद, ज्योतिष और शास्त्र विश्व के प्रकाश-प्रदाता रहे हैं। यहाँ माना गया है कि जहाँ नारी की पूजा होती है

वहाँ देवताओं का निवास है। मेरे देश को ऋषियों-मुनियों, धर्म-प्रवर्तकों और कवियों ने बनाया है। तपस्या और उत्सर्ग ने मेरे देश में साकार रूप ग्रहण किया। गणित, खगोल, दर्शन और चिन्तन के क्षेत्र में मेरे देश ने विश्व का मार्ग-दर्शन किया। गणित में 'शून्य' का प्रयोग भारत की ही देन है। मैं ऐसे महान् भारत में जन्मा हूँ, इसलिए भारतीय होने पर मुझे गर्व है।

आज विश्व भौतिकवादी दौड़ में भटक कर निराश हो चुका है और मानसिक शांति की तलाश में पुन: भारत के ऋषि-मुनियों की शरण में दौड़ रहा है। महर्षि महेश और आचार्य रजनीश के आश्रम इसके प्रमाण हैं।

मुझे अपनी भारत-भू पर गर्व है। भारत का नागरिक होने का गर्व है। भारत की संस्कृति, सभ्यता और परम्परा पर गर्व है।

(56) प्रतियोगिता जो मैं भूल नहीं सकूँगी

संकेत बिंदु—(1) अंत्याक्षरी प्रतियोगिता की सच्ची कथा (2) प्रतियोगिता के नियम और तैयारी (3) मन में उत्साह और प्रतियोगिता की तैयारी (4) प्रतियोगिता से अनेक प्रतियोगी बाहर (5) प्रतियोगिता के अंतिम दौर में मेरी जीत।

आइए, मैं अपनी एक ऐसी प्रतियोगिता की सत्य-कथा सुनाता हूँ, जिसे जीवन में भूल पाना कठिन है। मन-मस्तिष्क से हटा पाना दुष्कर है। स्मृति पटल से विस्मरण कर पाना असम्भव है।

दिल्ली-स्कूल अन्त्याक्षरी प्रतियोगिता। बाल-दिवस की पूर्व संध्या। स्थान है, दिल्ली पब्लिक लायब्रेरी, श्यामाप्रसाद मुखर्जी मार्ग, दिल्ली का सभागार। समय है, चार बजे सायं।

दिल्ली के 399 स्कूलों के 3999 प्रतियोगी अन्त्याक्षरी प्रतियोगिता में भाग लेने उपस्थित थे। मंच पर विराजमान थे तीन निर्णायक तथा चौथे संयोजक महोदय। मुख्य अतिथि थे शिक्षा-निदेशक।

प्रतियोगिता में विजेताओं के लिए तीन पुरस्कार थे—1001, 501 तथा 251 रुपये नकद तथा तीन कप। प्रथम स्थान प्राप्त करने वाले छात्र के विद्यालय को चल-वैजयन्ती भी दी जाने वाली थी।

नियम यह रखा गया कि विद्यार्थी यदि एक सेकिण्ड में किसी छन्द के अन्तिम अक्षर से कोई पद्य, कवित्त या दोहा नहीं बोलता, तो उसे 'आउट' समझा जाए। वह उठकर पीछे की सीट पर बैठ जाए। केवल हिन्दी कवि-कवयित्रियों के पद्य ही अंत्याक्षरी में बोले जा सकते थे, अन्य नहीं। फिल्मी गीत तो बिल्कुल नहीं।

मैं अपने विद्यालय लक्ष्मी देवी जैन गर्ल्स सीनियर सेकण्डरी स्कूल, पहाड़ी धीरज की ओर से इस प्रतियोगिता में भाग ले रही थी। मेरी हिन्दी अध्यापिका डॉ. सुषमा गुप्ता ने मेरे साथ कठोर परिश्रम किया था। उन्होंने सुप्रसिद्ध हिन्दी कवि तथा कवयित्रियों के पद्य

छाँटकर मुझे दिए थे, कंठस्थ करवाए थे। मैंने भी इसे प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया था। एक मास से निरन्तर अभ्यास कर रही थी। पद्य के शुद्ध उच्चारण और लय पर विशेष बल था।

मन में उत्साह था। विस्मरण की चिन्ता न थी। स्कूल का नाम रोशन करने की तमन्ना थी। एक सहस्र एक की राशि प्राप्ति की, करतल ध्वनि के बीच पुष्प-माला पहनने, अध्यापिकाओं से आशीर्वाद लेने तीव्र आकांक्षा थी। संयोजक ने शिक्षा-निदेशक महोदयसे अक्षर देने की प्रार्थना की। उन्होंने अक्षर न देकर प्रसाद जी के प्रयाण गीत का एक पद्य सुनाया—

अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो।
प्रशस्त पुण्य पन्थ है, बढ़े चलो, बढ़े चलो॥

इस प्रकार 'ल' वर्ण से अन्त्याक्षरी का प्रारम्भ हुआ। जैसे-जैसे अत्याक्षरी-प्रतियोगिता बढ़ रही थी, वैसे-वैसे प्रतियोगियों के मुख से उच्चारित काव्य-श्रवण में आनन्द आ रहा था। अनुभव हुआ कि अध्यापक-अध्यापिकाओं ने सचमुच तैयारी करवाई है। प्रथम चक्र में 399 छात्रों में मुश्किल से 21 विद्यार्थी 'आउट' हुए।

दूसरा चक्र आरम्भ हुआ तो पहले ही छात्र ने 'पीठ' शब्द पर अपना दोहा समाप्त किया। 'ठ' पर धड़ाधड़ छात्र-छात्राएँ उड़ने लगे। 'ठ' ने 50-60 छात्रों को ठोकर मार दी। आयी मेरी बारी—मैंने मैथिलीशरण गुप्त का यह दोहा सुनाकर अंत्याक्षरी को गति प्रदान की—

ठहर अरी, इस हृदय में, लगी विरह की आग।
तालवृन्त से और भी, धधक उठेगी जाग॥

अन्त्याक्षरी रुकती, प्रतियोगियों को 'आउट' करती, पुनः अग्रसर होती चलती रही। दसवें चक्र में केवल दस छात्र-छात्राएँ रह गईं—9 छात्राएँ तथा 1 छात्र।

दस दौर और चले। ट, ठ, ड की त्रिमूर्ति ने सात विद्याथियों को आउट कर दिया। शेष तीन में से एक मैं भी थी। मुझे लगा कि प्रथम आने का एक ही उपाय है कि विरोधियों को क्ष, त्र, ज्ञ पर अटकाया जाए। दूसरे, दोनों प्रतियांगी भी शायद इन्हीं वर्णों के चक्कर में फँसाकर परास्त करना चाहते थे। अचानक मेरे पल्ले 'क्ष' पड़ा। मैंने रघुवीर शरण 'मित्र' का दोहा बोला—

क्षमा पुरुष का कवच है, साहस नर का अस्त्र।
धैर्य पुरुष का धर्म है, त्याग पुरुष का शस्त्र॥

मेरे साथ बैठी लड़की 'त्र' पर न बोल सकी। उसके बाद लड़के की बारी थी। वह सरस्वती का वरद पुत्र होने की क्षमता प्रकट करना चाहता था। उसने कबीर का दोहा सुना दिया—

त्रिया, त्रिष्णा, पापणी, तासु प्रीति न जोड़ि।
पैड़ी चढ़ि पाछौं पड़े, लागै मोरि खोड़ि॥

तृतीय का निश्चय हो चुका था। रह गए मैं और एक छात्र। लगे एक दूसरे से प्रथम

पुरस्कार छीनने का प्रयास करने। प्रतियोगिता का दौर चल रहा था, पर द्रौपदी का चीर समाप्त होने में नहीं आ रहा था। इस बीच मुझे एक उपाय सूझा। मैंने एक गिलास पानी माँगा। पानी आने तक विश्राम चाहा। दो क्षण मिले सुस्ताने को सोचने को। मुझे 'म' से बोलना था। एक कविता-पंक्ति स्वयं गढ़ डाली—

मन वचन कर्म से करे कृतार्थ।
सदा रहो जीवनान्त कृतज्ञ॥

'ज्ञ' पर अपने को विचलित देख, उस छात्र का अध्यापक चिल्ला उठे, 'यह पद गलत है।' पर निर्णायक-त्रिमूर्ति ने उनकी बात नहीं मानी। घड़ी टिक-टिक कर चलती रही, सेकिण्ड समाप्ति पर आया। इधर निर्णायक ने घंटी बजाई, 5-4 मिनट के वाद-विवाद में निर्णय हुआ कि लड़का तभी हारा माना जाएगा, जब लड़की 'ज्ञ' पर बोल दे। मैं पहले से ही तैयार थी। लड़के के अध्यापक की ओर इशारा करके बोली—

ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है, इच्छा क्यों पूरी हो मन की।
एक दूसरे से न मिल सके, यह बिडम्बना है जीवन की॥

हॉल तालियों से गूँज उठा। मेरा चेहरा विजय से दमक उठा। कल्पना साकार हुई। मुझे पुष्पहार पहनाया गया, फोटो खींचे गए। एक हजार एक रुपए पुष्पाच्छादित प्लेट में रखकर दिए गए। स्कूल की ओर से डॉ. सुषमा गुप्ता ने शील्ड ग्रहण की।

अपनी प्रत्युत्पन्नमति से जीती हुई उस प्रतियोगिता को भूल पाना, सम्भव नहीं, मेरे लिए।

यदि

(57) यदि मैं पक्षी होता

संकेत बिंदु—(1) स्वतंत्रतापूर्वक विचरण (2) मानव द्वारा अनेक उपमाएँ (3) मानव कल्याण की भावना (4) महाकवियों की इच्छा पूर्ति (5) मानव को स्वावलंबन का पाठ।

यदि मैं पक्षी होता तो स्वतंत्रतापूर्वक मुक्त गगन में विचरण करता, भूमंडल के दर्शन करता, इच्छानुसार भोजन करता और हरी-भरी तरु-शाखाएँ मेरी शय्या होतीं। मेरा जीवन स्वतन्त्र और स्वच्छन्द होता।

मानव देश-विदेश भ्रमण के लिए तरसता है, सवारी का अवलम्बन लेता है, परमिट, पासपोर्ट और वीजा की प्राप्ति में रात-दिन एक करता है, फिर भी वह न भ्रमण का पूरा आनन्द ले पाता है और न जगत् की विविधता की पूरी तरह देख पाता है। यदि मैं पक्षी होता तो—

होती सीमा हीन क्षितिज से, इन पंखों की होड़ा-होड़ी।
या तो क्षितिज मिलन बन जाता, या तनती साँसों की डोरी॥

(शिवमंगलसिंह 'सुमन')

मानव पर कोई विपत्ति आ जाए, तो आज उसके दु:ख-दर्द में दूसरा शामिल नहीं होता। परदु:खकातरता की भावना लुप्त होती जा रही है। यदि मैं पक्षी होता तो मेरी एक आवाज पर सैकड़ों पक्षी इकट्ठे होकर मेरे सुर में सुर मिलाकर इतना शोर मचा देते कि दु:ख, दर्द और मुसीबतें काफूर हो जातीं।

यदि मैं पक्षी होता तो मनुष्य मेरे रंग-बिरंगे शरीर की आकृतियाँ अपने वस्त्रों पर उतारते; काष्ठ, मिट्टी या प्लास्टिक की मूर्तियाँ बनाकर अपने बैठक की शोभा बढ़ाते। तूलिका से मेरे रंग-बिरंगे चित्र बनाकर दीवारों को शोभायमान करते और मैं इस पर हर्ष अनुभव करता।

यदि मैं पक्षी होता तो मानव मेरे अंग, मेरी चाल, मेरे स्वभाव पर गर्व करता। मेरे अंगों और चेष्टाओं की उपमाएँ देता हुआ अपने कथन में प्रभावोत्पादकता लाता। काव्यों में सुन्दरियों की मनोहर नासिका की उपमा शुक की चोंच से, गर्दन की उपमा हंस और मोर की ग्रीवा से दी जाती है नव-युवतियों की चाल को हंसिनी और मोरनी की चाल बताया जाता है। अनिन्द्य सुन्दरियों के नेत्रों की उपमा चकोरी के नेत्रों से की जाती है। छिद्रान्वेषी, धूर्त, ढीठ रूप में कौवे से उपमा दी जाती है। लोभी होने पर 'गिद्ध' कहा जाता। चील-सदृश झपट्टा, तोते-सी रटन्त, भ्रमर-सी वृत्ति, मोर के-से पंख, कोयल की-सी सुरीली वाणी, हारिल की लकड़ी, नीर-क्षीर विवेकी हंस, बगुला भगत, शान्ति का प्रतीक कबूतर, शक्ति और वीरता का प्रतीक बाज बताया जाता है। इसी प्रकार की उक्तियाँ मेरे लिए निश्चित ही गर्व का कारण बनतीं।

यदि मैं पक्षी होता तो मानव से मित्रता स्थागित कर उसका हित करता। छोटे-मोटे कीड़े-मकोड़ों को खाकर फसल की रक्षा करता। मरे हुए पशुओं को खाकर वायु को दूषित होने से बचाता। दूर-दूर संदेश पहुँचाने के काम आता। जो लोग मुझे पालते, मैं उनका मनोरंजन करता। परस्पर युद्ध (तीतर-बटेर) करके मानव का मनोविनोद करता। अपनी और अपने अंडों की आहुति देकर उनकी क्षुधा शान्त करता।

यदि मैं पक्षी होता तो आलसी और प्रमादी मानव-मात्र को सूर्योदय से पूर्व 'कुकड़ूँ कूँ' (मुर्गा) का उद्घोष करके जगाता। आँगन में चहक-चहककर (चिड़ियाँ) कलरव करता। मुँडेर पर बैठकर काँव-काँव (कौवा) कर शोर मचाता और छत पर चढ़कर 'गुटर-गूँ-गुटर-गूँ' (कबूतर) का कूजन करता।

यदि मैं पक्षी होता तो महाकवि रसखान की इच्छा पूरी करता हुआ, 'कालिंदी कूल के कदम्ब डार' पर बसेरा करता। आदिकवि वाल्मीकि और कवि-शिरोमणि तुलसीदास के शब्दों को कार्यान्वित करता। काक बनकर प्रभु राम के हाथ से रोटी का टुकड़ा छीन लेता। जटायु बन सीता के अपहरणकर्ता महाप्रतापी रावण से युद्ध करता। बादशाह अकबर

के सुपुत्र सलीम के प्रेम-पत्र अनारकली तक पहुँचाकर उसकी प्रेमाग्नि को प्रज्वलित करता। युद्ध में जासूसी कर तथा सन्देश पहुँचाकर राष्ट्र ऋण से उऋण होता।

यदि मैं पक्षी होता तो देवगण का वाहन बनता। कितनी प्रसन्नता होती मुझे। गरुड़ बन भगवान् विष्णु का, उल्लू बन भगवती लक्ष्मी का, मोर बन कार्तिकेय स्वामी का तथा हंस बन ज्ञान की देवी सरस्वती का वाहन बनने का गौरव प्राप्त करता।

यदि मैं पक्षी होता तो मानव के भविष्य का लेखा पढ़कर उसे घटनाक्रम से पूर्व ही सचेत कर देता। प्रात:काल द्वार पर काँव-काँव करके अतिथि-आगमन की सम्भावना प्रकट करता। चील रूप में मेरे सामूहिक मँडराने से मृत्यु का बोध होता। मयूर रूप में मेरे नृत्य की तैयारी से वर्षा के आगमन का पूर्वाभास होता।

यदि मैं पक्षी होता तो मानव को स्वावलम्बिता का पाठ पढ़ता। रोटी के लिए हाथ पसारने की बजाए श्रम के महत्त्व को समझाता। उन्हें बताता कि मैं क्षुधाशांति के लिए दूर-दूर तक चक्कर काट लेता हूँ। मानव को सीना (पत्तों के किनारे), बुनना (मकड़ी का जाला) और नीड़-निर्माण की कला बताता। व्योम-विहार के नए-नए आविष्कार का प्रेरक बनता। संगठन-सूत्र का मंत्र बताता (कौए समूह में रहते और विहार करते हैं)।

प्रभु की असीम कृपा होती यदि मैं पक्षी होता। तब प्रभु इस मायावी संसार से मुझे शीघ्र अपने सान्निध्य में बुला लेते। मैं अस्पताल या घर की चारदीवारी के घुटन भरे वातावरण में दम नहीं तोड़ता, बल्कि प्रकृति की गोद में अन्तिम साँस लेता। प्रकृति-प्रेमी होने के कारण मुझे ईश्वर-भक्त माना जाता। ईश्वर-भक्ति अर्थात् मोक्ष की दात्री। यदि मैं पक्षी होता तो स्वर्ग-नरक के झंझट, इहलोक और परलोक की विडम्बना से मुक्त होकर परमपद का अधिकारी होता।

(58) यदि मैं अध्यापक होता

संकेत बिंदु—(1) अध्यापक द्वारा परामर्श (2) महर्षि अरविंद के विचार और अध्यापक का महत्त्व (3) अंग्रेजी भाषा का अभ्यास (4) निबंध और पत्र-लेखन (5) अध्यापक के आचरण का छात्रों पर प्रभाव।

अर्द्धवार्षिक-परीक्षा का परिणाम घोषित हुआ तो मैं यह देखकर स्तब्ध रह गया कि अंग्रेजी विषय में मेरी कक्षा के आधे से अधिक सहपाठी अनुत्तीर्ण हैं। एक-दो दिन तक अनुत्तीर्ण छात्रों की डण्डे से थोड़ी-थोड़ी सेवा भी होती रही और 'ट्यूशन' रखने का सत्परामर्श भी उन्हें दिया जाता रहा। अन्त में तीसरे दिन अध्यापक महोदय ने घोषणा की कि तुम्हारे ही हित के लिए मैंने 10-10 विद्यार्थियों के तीन समूह बनाकर पढ़ाने का निश्चय किया है। प्रत्येक छात्र से केवल सौ रुपये मासिक लूँगा। अलग 'ट्यूशन' रखने में तुम्हें एक हजार रुपये से कम में अध्यापक नहीं मिल सकता। इस प्रकार तुम्हारा खर्चा भी कम होगा और विषय की कमजोरी भी दूर हो जाएगी।

मुझे लगा हमारे अध्यापक कितने महान् हैं। विद्यार्थियों के कितने शुभचिन्तक हैं। माता-पिता की खून-पसीने की आय का किस प्रकार ध्यान रखते हैं। विद्यार्थी का पूरा वर्ष न मारा जाए, इसकी इन्हें कितनी चिन्ता है।

रात्रि को सोने से पूर्व मैं किसी धार्मिक पुस्तक का अध्ययन अवश्य करता हूँ। इससे नींद में बुरे विचार और दु:स्वप्न नहीं आते। आज 'महर्षि अरविन्द के विचार' नामक पुस्तक पढ़ रहा था। उन्होंने अध्यापक के सम्बन्ध में लिखा है—'अध्यापक राष्ट्र की संस्कृति के चतुर माली होते हैं। वे संस्कारों की जड़ों में खाद देते हैं और अपने श्रम से उन्हें सींच-सींचकर महाप्राण शक्तियाँ बनाते हैं।'

महर्षि अरविन्द के इन विचारों को पढ़कर उपर्युक्त अंग्रेजी अध्यापक की महत्ता काफूर हो गई। अपने स्वार्थवश छात्रों को अनुत्तीर्ण कर हतोत्साहित करना और फिर ट्यूशन के लिए प्रेरित कर श्रम का मूल्य वसूल करना अध्यापकीय जीवन की निकृष्ट भूमिका है। इसी क्रम में अनेक विचार मन में उठते रहे और इसी अन्तर्द्वन्द्व में एक विचार भी हृदय में जागृत हुआ कि मैं अध्यापक बनूँगा। कितनी अच्छी कल्पना है। यदि मैं अध्यापक होता तो उक्त अंग्रेजी अध्यापक के समान अर्थ-लोभ के कारण छात्रों से वैसा व्यवहार न करता। अर्द्ध वार्षिक परीक्षा में छात्रों को असफल कर, ट्यूशन रखने का अर्थ अपने कर्तव्य की अवहेलना है। यदि मैं अध्यापक होता तो अपने मैं कर्तव्य के प्रति सतत जागरूक रहता।

अंग्रेजी विदेशी भाषा है। इसको पढ़ाने के लिए मैं अत्यन्त सावधानी और परिश्रम से काम लेता। पाठ पढ़ाते हुए मैं पहले पाठ के एक-एक अनुच्छेद का कक्षा में दो-तीन बार उच्चारण करवाता। फिर उस अनुच्छेद का आशय छात्रों को समझाता। एक-एक वाक्य का शब्दार्थ करते हुए अनुच्छेद की पूर्णता मेरी पद्धति नहीं होती, बल्कि मैं वाक्य के एक-एक शब्द को लेता एक-एक शब्द का अर्थ विद्यार्थियों से पूछता। जो उन्हें नहीं आता, वह बताता और आदेश देता कि वे अपनी कापी पर साथ-साथ लिखते चलें। एक-एक शब्द के पश्चात् वाक्य का सामूहिक या भाव पूर्ण अर्थ बताता। जो छात्र कापी में लिखना चाहते, उन्हें लिखने का अवसर देता। एक अनुच्छेद में यदि एक शब्द बार-बार भी आता तो मैं यथास्थान बार-बार उसका अर्थ दुहराता। अनुच्छेद समाप्ति पर उसमें आए वचन, लिंग तथा क्रिया सम्बन्धी रूपों को स्पष्ट करता हुआ। 'डायरेक्ट-इनडायरेक्ट' भी समझता।

तदनन्तर जो पाठ, जितना भी पढ़ाया है, उसके अर्थ तथा वाक्यों का अनुवाद लिखकर लाने का आदेश देता। बच्चों को निर्देश होता कि वे पाठ के उन्हीं शब्दों के अर्थ लिखकर लाएँ जो उन्हें क्लिष्ट लगते हैं, शेष के नहीं। अनुवाद में सरलाथं ही नहीं, भावानुवाद भी समझाता।

सप्ताह का एक दिन निबन्ध-पत्र के लिए निश्चित करता। जिस दिन निबन्ध या पत्र का क्रम होता, उससे पूर्व विद्यार्थियों को परामर्श देता कि वे घर में किसी भी निबन्ध की पुस्तक से निबन्ध-विशेष को पढ़कर आएँ। निबन्ध के पीरियड में मैं कक्षा में निश्चित विषय पर अपने विचार प्रकट करता। इस विचार-विमर्श के मध्य में निबन्ध से संबंधित कुछ सुन्दर

शब्दों को अर्थ सहित कापी पर लिखवाता। कुछ श्रेष्ठ वाक्यों को भी कापी पर अंकित करवा देता। अगले सप्ताह छात्रों से उसी विषय पर कक्षा में ही निबन्ध लिखवाता। यही शैली पत्र लिखवाने के लिए भी अपनाता। इससे बच्चों को स्वयं निबंध तथा पत्र लिखने के लिए प्रोत्साहन मिलता और वे पुस्तक से नकल करने की आदत ग्रहण न करते।

एक कार्य जो मैं अत्यन्त निष्ठा से करता, वह होता कापी देखने का। मैं एक-एक अक्षर पढ़कर प्रत्येक छात्र की कापी शुद्ध करता। इसमें समय तो बहुत लगता है, किन्तु छात्र की बुनियाद सुदृढ़ करने का श्रेष्ठतम उपाय यही है। कापियाँ लौटाते समय प्रत्येक विद्यार्थी का ध्यान उसकी व्यक्तिगत गलतियों और भूलों की ओर दिलवाता। साथ ही कक्षा में अपने ही सामने एक-एक गलती को पाँच-पाँच बार लिखवाता।

अध्यापक के आचरण का छात्रों पर दूरगामी, किन्तु क्षिप्र गति से प्रभाव पड़ता है। यदि मैं अध्यापक होता तो मेरा यह प्रयास होता कि मेरी व्यक्तिगत दुर्बलताओं का प्रदर्शन छात्रों के सामने बिल्कुल न हो पाए। जैसे मुझे सिगरेट पीने का चमका है, किन्तु मैं अपनी इच्छा पर इतना नियंत्रण रखूँ कि विद्या के मन्दिर में, सरस्वती की आराधना करते समय वह दुर्व्यसन मेरा स्पर्श तक न कर पाए।

मेरा यह निश्चित सिद्धान्त होता कि काम न करने वाले छात्र की काम न करके लाने की परिस्थितियों को समझूँ और उससे वही काम स्कूल के पश्चात् 'जीरो पीरियड' मे करवाऊँ। 'भय बिन होय न प्रीति' लोकोक्ति है, किन्तु मैं यथासम्भव अपने स्नेह और व्यक्तित्व के प्रभाव से छात्रों से काम करवाता। हाँ, कभी कभी केवल अति उद्दण्ड छात्रों को दण्ड भी देता।

(59) यदि मैं डॉक्टर होता

संकेत बिंदु—(1) व्यक्तित्व और क्लिनिक को संवारना (2) रोगियों का सही परीक्षण व निदान (3) रोगियों को उनकी बिमारी की सही जानकारी (4) उचित व्यवहार (5) उपसंहार।

भगवान् और डॉक्टर की हम समान आराधना करते हैं, किन्तु करते तभी हैं जब हम संकट में होते हैं, पहले नहीं। संकट समाप्त होने पर दोनों की समान उपेक्षा की जाती है। ईश्वर को भुला दिया जाता है और डॉक्टर को तुच्छ मान लिया जाता है।

—अमरीकी पादरी जान ओवेन (एपिग्राम्स)

यदि मैं डॉक्टर होता तो व्यक्तित्व को सजा-सँवार कर रखता। अपने 'क्लिनिक' (औषधालय) को स्वच्छ, सुन्दर और आकर्षक बना कर रखता। क्लिनिक का फर्नीचर बहुकीमती रखता ताकि उस पर बैठने वाले रोगी को सुखानुभूति हो। रोगियों के स्वागत और उन्हें क्रम से भेजने के लिए विनम्रता और मधुरता की मूर्ति किसी सुन्दरी को

'रिसेप्सनिस्ट' रखता ताकि उसके व्यवहार और सौन्दर्य से प्रभावित ही आगन्तुक रोगी बिना दवा के ही कुछ क्षण 'रिलेक्स' महसूस करें।

मैं रोगी से यथासंभव प्रेम से बात करता। उसे अपने रोग को समझाने का अवसर देता। खुद भी ध्यान से उसकी बात सुनता। दवाई का परचा लिखने में जल्दी न करके, बीमारी के संबंध में उसके प्रश्नों का उत्तर देता और स्वयं उसके लिए जो 'प्रीकोशन्स' (सावधानियाँ) हैं, उनके बारे में सचेत करता। विशेषत: पथ्य के सम्बन्ध में हिदायतें जरूर देता, किन्तु बातूनी मरीज को उसकी बीमारी समझाकर चलता करने की चेष्टा भी करता, क्योंकि समय बहुमूल्य है, जिसकी कीमत कोई चुका नहीं सकता। शेक्सपीयर के शब्दों में 'More needs she the devine than the physicion'. उसे डॉक्टर की अपेक्षा ईश्वरीय कृपा की अधिक आवश्यकता है।

रोगी की परीक्षा करते हुए मैं अपने मित्र, बन्धु या सम्बन्धियों का हस्तक्षेप बर्दाश्त नहीं करता। केवल मेरे और मरीज के सिवा तीसरे की उपस्थिति मुझे असह्य होती। क्योंकि तीसरे व्यक्ति की उपस्थिति में रोगी अपने रोग की चर्चा खुलकर नहीं कर पाता। 'एमरजेन्सी केस' के सिवाय क्यू (पंक्ति) के बिना देखना शायद मुझे नागवार गुजरता।

यदि रोगी के घर जाकर उसे देखना पड़ता तो मैं उसको प्राथमिकता देता। इसलिए नहीं कि 'विजीटिंग फीस' बनेगी, बल्कि यह सोचकर कि प्राय: आपत्काल और अपरिहार्य परिस्थिति में ही कोई रोगी डॉक्टर को घर पर बुलाता है। मरीज को देखने के बाद उसके सामने ही 'विजीटिंग फीस' की माँग नहीं करता, क्योंकि मरीज के सामने 'विजीटिंग फीस' माँगने या लेने से मरीज पर अच्छा असर नहीं पड़ता।

नारी रोगियों से, विशेषत: युवतियों से मनसा, वाचा, कर्मणा थोड़ा सचेत रहकर व्यवहार करता, क्योंकि चरित्र पर लगा लांछन, स्पष्टीकरण के साबुन से नहीं धुलता।

मैं देखता हूँ कि आज के डॉक्टर रोगी को रोग का नाम या सही-सही बीमारी स्वयं समझते हुए भी नहीं बताते, मैं ऐसा नहीं करता। अनेक डॉक्टर अपनी 'जेब गर्म रखने' और रोगी को सदा सहमा रखने के लिए बीमारी को बढ़ा-चढ़ा कर बताते हैं, उसी दृष्टि से वे इलाज भी करते हैं। मुझे याद है मेरे एक मित्र को बुखार नहीं टूट रहा था तो डॉक्टर ने टी.वी. घोषित कर दिया था। दूसरे मित्र को 'हाई ब्लड प्रेशर' और वक्ष में माँसल-पीड़ा होने पर 'हार्ट-अटेक' घोषित कर अस्पताल में भर्ती करा दिया और वह साल-भर तक 'हार्ट-अटेक' की दवाइयाँ 'सोरबीट्रेट' तथा 'डिपिन-५' खाता रहा। मैं ऐसा काम नहीं करता क्योंकि ऐसा करना रोगी के साथ ही नहीं अपनी आत्मा के साथ भी धोखा करना है।

दूसरी ओर 'ब्लड्-प्रेशर' (रक्त-चाप) आज का आम रोग है और आज का डॉक्टर ब्लड-प्रेशर लेने के बाद कभी नहीं बताता कि ब्लड-प्रेशर कितना है। वह ऊपर का जरा ज्यादा है या नीचे का कुछ कम है आदि भ्रमात्मक वाक्य बोलता है। मैंने एक बार एक विख्यात अस्पताल में एक मरीज को परिचारिका से इसी बात पर झगड़ते देखा। अन्ततोगत्वा

परिचारिका ('सिस्टर') को सही 'ब्लड-प्रेशर' बताकर अपनी जान छुड़ानी पड़ी। मैं इस प्रकार के व्यवहार को प्रवंचना समझता।

आज के डॉक्टरों का एक और सनकीपन है। बीमारी समझ में नहीं आए तो टेस्टों (परीक्षणों) पर उतर आते हैं—ई.सी.जी. करवाओ, ब्लड टेस्ट करवाओ, यूरीन और स्टूल टेस्ट करवाओ, एक्सरे करवाओ। अब तो अल्ट्रासाउँड और एँजुएग्राफी भी करवाई जाने लगी है। फलत: रोगी का पैसा और समय नष्ट हो रहा है, मानसिक तनाव बढ़ रहा है। पर साहब डॉक्टरों को क्या चिन्ता? यह ठीक है कि टेस्ट जरूरी हैं, पर अपनी जगह। बीमारी समझने के लिए टेस्ट और रोग पकड़ने के लिए टेस्ट में अन्तर है। मैं अनिवार्य स्थिति में ही ऐसे परीक्षण करवाता।

यदि मैं समझता कि रोगी का रोग मेरी समझ या पकड़ में नहीं है तो उसे किसी अन्य विशेषज्ञ डॉक्टर से इलाज करवाने की सलाह देता।

फीस लेना डॉक्टर का अधिकार है। प्रतिष्ठा के नाम, रोग विशेष के नाम पर अथवा बढ़ती महँगाई की दुहाई देकर 'डेली रुटीन फीस' को बढ़ाना मैं अन्याय समझता। एक मॉडरेट (सामान्य) फीस, मध्यवर्गीय व्यक्ति जिसका भार सहज उठा सकता हो, मेरे 'डेली चार्जेस' होते। रोगी के कपड़े उतरवाने की चेष्टा करना, मेरे डॉक्टरी-धर्म के विरुद्ध होता।

(60) यदि मैं प्रधानमंत्री होता

संकेत बिंदु—(1) पूर्व प्रधानमंत्रियों को प्रेरणा स्रोत बनाता (2) कानून व्यवस्था, उद्योग-धंधों और खेती को सुदृढ़ बनाता (3) विज्ञान और प्रौद्योगिकी को प्रोत्साहन (4) शिक्षा, स्वास्थ्य का उचित प्रबंध (5) जनसंख्या नियंत्रण और समानता का व्यवहार।

यदि मैं प्रधानमंत्री होता तो जवाहरलाल नेहरू के व्यापक दृष्टिकोण को स्वीकार करता, लालबहादुर शास्त्री की विजय-नीति पर चलता, इन्दिरा जी की कूटनीति को अपनाता, मुरारजी भाई का अभयदान देश को देता, सर्वश्री चौधरी चरणसिंह, चन्द्रशेखर, वी.पी.सिंह, देवगौड़ा, गुजराल के अस्थायित्व से इस पद को बचाता तथा राजीव गाँधी के 'किसी को कुछ न समझने' की भावना को अपने मन को स्पर्श भी न करने देता।

यदि मैं प्रधानमंत्री होता तो नेहरू जी की तरह राष्ट्रहित में स्वस्थ तटस्थ विदेशनीति पर चलता। पर साथ ही चाऊ-माऊ जैसे बगल में छुरी घोंपने वाले दोस्तों से सावधान रहता। सर्वश्री लालबहादुर शास्त्री, इन्दिरा गाँधी तथा अटल बिहारी वाजपेयी की तरह पाकिस्तान जैसे धर्मांध और उद्दंड राष्ट्रों को सबक सिखाता। इंदिरा जी की तरह गुट-निरपेक्ष राष्ट्रों का राष्ट्राध्यक्ष बनकर विश्व में भारत का नाम उन्नत करता। भारत को विश्व-गुरु का पद प्राप्ति कराने का प्रयत्न करता तथा पाकिस्तान जैसे वैमनस्य रखने वाले राष्ट्रों की कमर तोड़ता। मुरारजी और अटल जी की 'सबसे दोस्ती, न काहू से बैर' की नीति पर चलता।

राजीव की तरह दूसरों की फँसी में पच्चड़ फँसाकर श्रीलंका में होने वाली भारतीय जन-धन, सेना और सम्मान की हुई हानि न होने देता।

यदि मैं प्रधानमंत्री होता तो देश को उद्योग-धंधों से समृद्ध कर स्वावलम्बी बनाता। लालबहादुर शास्त्री के 'जय किसान' नारे से देश की खेती को और अधिक उपजाऊ बनाता, ताकि देश की रीढ़ किसान भारत को शस्य-श्यामला रख सकें और अन्न का भण्डार भरपूर रहे। इन्दिरा की तरह उद्योगों का जाल बिछाता। विदेशों में निर्यात को बढ़ावा देकर राष्ट्र की अर्थ नीति को सुदृढ़ करता। चौधरी चरणसिंह की तरह किसानों के प्रति स्वाभाविक हमदर्दी अपनाता।

यदि मैं प्रधानमंत्री होता तो कानून और व्यवस्था को सुदृढ़ करना मेरा प्रथम कर्तव्य होता। आतंकवाद से जनता को मुक्त कराने के लिए निस्संकोच युद्ध-स्तर पर सैनिक कार्यवाही करता। पूर्व वित्तमंत्री श्री मनमोहनसिंह के फार्मूले को अपनाकर बहु-औद्योगिक कम्पनियों का देश में जाल बिछाता ताकि देश औद्योगिक दृष्टि से समृद्ध हो और बेरोजगारी पर काबू पाया जा सके। उग्रवाद को सदा-सदा के लिए समाप्त करने के लिए 'न होगा बाँस न बजेगी बाँसुरी' के अनुसार इसकी जड़ को ही नष्ट कर देता।

यदि मैं प्रधानमंत्री होता जो जवाहरलाल जी की तरह विज्ञान को प्रोत्साहन देता। इन्दिरा जी की तरह प्रौद्यौगिकी (टेक्नोलोजी) का विकास करता, अटल जी की तरह 'जय विज्ञान' की घोषणा करता। विश्व के महान् वैज्ञानिक राष्ट्रों की श्रेणी में अपनी गणना करवाता। विज्ञान और टेक्नोलोजी के क्षेत्र में प्रोत्साहन देकर भारत को विश्व का समृद्ध देश बनाता।

प्रधानमंत्री संसद् के प्रति उत्तरदायी होता है। इसको शिरोधार्य करते हुए यदि मैं प्रधानमंत्री होता तो अटल बिहारी वाजपेयी की तरह भारत को परमाणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्र बनाता और कूटनीति में विश्व की बड़ी शक्तियों के दबाव में नहीं आता। संसद् का सम्मान करता। संसद् में विपक्ष का आदर करता। मतभेद होने पर भी संसद् को मछली बाजार या कुश्ती का अखाड़ा नहीं बनने देता। प्रत्युत्पन्नमतित्व तथा वाक्-चातुर्य से संसद् की गरिमा को स्थिर रखता।

यदि मैं प्रधानमंत्री होता तो शासन को चुस्त रखता, लाल फीताशाही को समाप्त कर देता। ड्यूटी (कर्तव्य) को धर्म समझकर विवेक से समस्याओं का हल करने वाले अधिकारियों को प्रोत्साहित करता, उन्हें हर प्रकार का संरक्षण देता। न्यायविदों के पदों की तत्काल विधि-पंडितों से पूर्ति करता और ऐसी व्यवस्था करता जिससे जनता को शीघ्र और निष्पक्ष न्याय मिल सके। भारत की रक्षा-व्यवस्था सुदृढ़ करता, आधुनिक युद्ध सामग्री से सेना को सुसज्जित करता तथा सेना को युद्ध-तकनीक का अद्यतन प्रशिक्षण दिलवाता।

भारत का प्रत्येक शिशु, युवक, नागरिक शिक्षित हो, कोई भारतीय अशिक्षित न रहे, इसकी व्यवस्था करता। स्कूल-कॉलिजों को पवित्र मंदिर का रूप देता। 'टेक्नीकल एजूकेशन' शिक्षा का अनिवार्य अंग होता। उच्च-शिक्षा का अवसर केवल योग्य और अधिकारी छात्रों को ही प्रदान करता।

जन-स्वास्थ्य की दृष्टि से देश में डिस्पेंसरी, अस्पताल और चिकित्सा केन्द्रों को प्रोत्साहन देता। प्रदूषण को रोकता। विशेष और संक्रामक रोगों के लिए विशिष्ट अस्पताल खोलता। दूर-संचार माध्यमों द्वारा जनता को स्वस्थ रहने के गुर सिखाता।

प्रकृति-प्रकोप की पूर्व जानकारी देकर तथा समुचित उपाय करके राष्ट्र की हानि कम से कम होने देता। सहकारिता, परिवहन, पर्यटन को बढ़ावा देता। संचार-व्यवस्था सस्ती और चुस्त करता। दूरदर्शन और रेडियो को मनोरंजन, शिक्षा, बहुमुखी जानकारी तथा समाचार का विश्वस्तनीय केन्द्र बनाता।

जनसंख्या वृद्धि को रोकने के सशक्त उपाय बरतता। समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता को अक्षुण्ण रखता। पंचायत से लेकर संसद् तक की प्रत्येक 'सीट' का चुनाव निश्चित और निर्धारित समय पर करवाकर लोकतंत्र को स्थायित्व देता।

यदि मैं प्रधानमंत्री होता तो प्रादेशिक सरकारों से भेद-भाव नहीं करता। देश में समान कानून होता। किसी अल्पसंख्यक, विशेष प्रदेश या वर्ग-विशेष को विशेष छूट नहीं होती। वोटों के लिए, भय या लोभवश किसी भी अल्पसंख्यक की पीठ नहीं थपथपाता, उसे मुँह नहीं लगाता, सिर नहीं चढ़ाता। अयोग्य को योग्य स्थान नहीं देता।

मेरे निर्णय सदा देश के हित में मंत्रिमंडल की 'टीम स्प्रिट' से होते। विषम समस्याओं के आ पड़ने पर देश के पूर्व प्रधानमंत्रियों, राष्ट्रपतियों, विपक्ष तथा विद्वानों से विशेष-मंत्रणा करता। उनके सामूहिक निर्णय को कार्यान्वित करता। मैं देश का ईमानदार और सच्चा पुजारी बनने की भावना से चलता।

(61) यदि मैं पूँजीपति होता

संकेत बिंदु—(1) प्रकाशन उद्योग में पूँजी लगाता (2) हिंदी भाषा का प्रकाशक (3) नवोदित लेखकों को प्रोत्साहन (4) पुस्तक विक्रय के प्रकार (5) सूचीपत्र प्रेषण और कर्मचारियों को समय पर वेतन व बोनस।

उद्योग या व्यवसाय में पूँजी लगाना पूँजीपति होने की अनिवार्य शर्त है। अत: यदि मैं पूँजीपति हुआ तो उद्योग शुरू करूँगा या व्यवसाय में धन लगाऊँगा। उद्योग या व्यवसाय में पूँजी लगाने का मानवीय दृष्टि से महत् पुण्य यह होगा कि मैं कुछ लोगों को जीविका दे सकूँगा। देश की बढ़ती बेरोजगारी का एक अंश ही सही, कम करने में अपना योगदान दे सकूँगा। दूसरे, उद्योग या व्यवसाय से प्राप्त आर्थिक लाभ पर आयकर देकर राष्ट्र की आर्थिक-सेवा करने का सौभाग्य भी प्राप्त करूँगा।

यदि मैं पूँजीपति होता तो प्रकाशन उद्योग में पूँजी लगाता और पुस्तक-व्यवसाय को स्वीकार कर माँ सरस्वती की सेवा में अपना जीवन भी कृतार्थ करता। अमरीका आदि में हरे कृष्ण आन्दोलन के प्रणेता, चैतन्य महाप्रभु के अनुयायी, वैष्णव संत ए.सी. प्रभुपाद

ने मृत्युपूर्व ये वचन कहे थे, मेरे गुरु महाराज कहा करते थे, 'जो कुछ भी धन हो, उससे पुस्तकें प्रकाशित करो। छापो, और छापो। मैंने अपनी पुस्तकें छापी हैं। अब तुम भी ऐसा ही करो।' *(भगवत् दर्शन पत्रिका: अक्तूबर 1978 से उद्धृत)*

प्रकाशन का क्षेत्र व्यापक तथा विविधतापूर्ण है। 'प्रत्येक का ज्ञान, किन्तु विशेषता किसी की नहीं', इस उक्ति के विरुद्ध मैं रहूँगा। इसलिए मैं केवल 'हिन्दी' का प्रकाशक बनूँगा। इससे मुझे तीन प्रकार का आन्तरिक-सुख प्राप्त होगा—(1) माँ भारती की सेवा का सुअवसर : शुद्ध और प्रामाणिक ग्रंथ छापकर (2) राष्ट्र की सेवा : हिन्दी में विश्व स्तर के प्रकाशन करके हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर सिंहासनारूढ़ के प्रयत्न द्वारा। (3) हिन्दी पर लांछन लगाकर, गालियाँ देकर माँ भारती पर कीचड़ उछालने वालों को अपने प्रकाशनों द्वारा मुँह तोड़ जवाब देकर।

मैं वर्ष में लगभग पचास पुस्तकों के प्रकाशन का कार्यक्रम रखूँगा। इसमें कविता और गद्य की प्राय: सभी विधाओं पर पुस्तकें छापूँगा। हिन्दी का एक क्षेत्र ऐसा भी है, जिसमें बहुत कम प्रकाशन हुआ है। वह है, 'शोध-प्रबन्ध।' तीन वर्ष से लेकर पाँच-छह वर्ष तक खोज करके अपनी मान्यता प्रस्तुत करने वाले शोध-प्रबन्ध विश्वविद्यालय की अलमारियों में ही पाँडुलिपि रूप में धूल चाटते रहें, इससे बड़ी लज्जाजनक बात क्या हो सकती है? इसलिए मैं कम-से-कम दस शोध-प्रबन्ध प्रतिवर्ष अवश्य छापूँगा। हिन्दी का बाल-साहित्य तकनीकी दृष्टि से बहुत उच्च स्तर का है, इसलिए इस क्षेत्र को हाथ भी नहीं लगाऊँगा।

कविता, कहानी, उपन्यास, निबन्ध या समीक्षा के क्षेत्र में नवोदित लेखकों को प्रोत्साहन देने में मेरी प्राथमिकता रहेगी। कारण, इनमें से ही जयशंकर प्रसाद, निराला और महादेवी जन्म लेंगे। प्रेमचन्द, अज्ञेय और धर्मवीर 'भारती' उभरेंगे। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा हजारीप्रसाद द्विवेदी जैसे महारथी प्रकट होंगे। यह सच है कि बिक्री की दृष्टि से इनका मूल्य नगण्य-सम है, किन्तु साहित्य-निर्माताओं की दूसरी पंक्ति तैयार करने के लिए यह अनिवार्य है। कुछ पाने के लिए कुछ खोना भी पड़ता है। हाँ, एक ही लेखक को प्रतिवर्ष छापने से गुरेज करूँगा। क्योंकि इससे अन्य लेखकों को सुअवसर मिलने में व्यवधान पड़ता है।

पुस्तक की कम्पोजिंग कम्प्यूटर से होगी। प्रूफरीडिंग के लिए प्रफूरीडर रखूँगा। तीन बार प्रूफ की शुद्धि होने के बाद चौथा प्रूफ लेखक को भेजूँगा ताकि तकनीकी दृष्टि से कोई शब्द अशुद्ध जा रहा है तो वह शुद्ध हो सके और पुस्तक शुद्ध छप सके। जैसे घर में जितनी बार झाड़ू मारो, कुछ-न-कुछ कूड़ा निकल ही आएगा, उसी प्रकार कहीं-न-कहीं अशुद्धि छूट जाना स्वाभाविक है। इसके बाद पुस्तक की फिल्म बनेगी और छपेगी। मेरे प्रोडक्शन विभाग का यह कर्तव्य होगा कि पुस्तक की छपाई उच्च-कोटि की हो।

पुस्तक-विक्रय के भी तीन प्रकार हैं—(1) खुदरा व्यापारियों द्वारा (2) सीधे स्कूल, कॉलिज तथा पब्लिक लायब्रेरियों से सम्पर्क करके। (3) सरकारी खरीद।

साहित्यिक पुस्तकों का खुदरा विक्रेता आमतौर पर साल भर (आर्थिक वर्ष : 31 मार्च) का उधार लेता है। अप्रेल में पेमेण्ट कर दे तो सबसे बढ़िया पेमेंट-कर्ता माना जाता है। मगर अप्रेल में पेमेंट करना इन पुस्तक-विक्रेताओं की प्रवृत्ति और प्रकृति के विरुद्ध है। आजकल-आजकल करते चार-पाँच मास में पेमेण्ट हो जाए तो द्वितीय श्रेणी का पुस्तक-विक्रेता है। अनेक पुस्तक विक्रेता तो प्रकाशक की रकम हजम करने में ही तन-मन का सुख मानते हैं। इसलिए विक्रय के क्षेत्र में खुदरा पुस्तक-विक्रेताओं को कम प्रश्रय दूँगा।

हाँ, कर्मचारियों की एक टीम बनाऊँगा जो समस्त भारत के बड़े नगरों के स्कूल, कॉलिज, विश्वविद्यालय तथा पब्लिक लायब्रेरियों को वर्ष में दो बार विजिट करेगी। उनको अपना सूचीपत्र देगी तथा आदेश लेने का प्रयत्न करेगी।

बिक्री की दृष्टि से एक कार्य निरपेक्ष भाव से प्रतिदिन होता रहेगा। वह है, सूचीपत्र प्रेषण। प्रति छमाई स्कूल, कॉलिज, विश्वविद्यालय, पब्लिक लायब्रेरी तथा अन्य संस्थाओं में जिनके निजी पुस्तकालय हैं, उनको सूचीपत्र भेजा जाएगा ताकि अपने प्रकाशनों का प्रचार-प्रसार हो सके। इनके अतिरिक्त हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्यिकारों तथा क्रय-समितियों के अध्यक्षों को भी अपने प्रकाशनों से अवगत कराने के लिए सूचीपत्र भेजता रहूँगा। देर या सवेर से, न्यून या अधिक सूचीपत्र प्रेषण का लाभ होगा ही। कारण, विज्ञापन कभी व्यर्थ नहीं जाता। उसका प्रभाव पड़ेगा ही।

उचित वेतन, समय पर वेतन, वर्ष में एक मास का बोनस, होली-दीवाली मीठा-नमकीन और आर्थिक उपहार तथा प्रतिदिन की दो चाय, अपराह्ण चाय के साथ एक पीस मीठा या नमकीन देकर कर्मचारियों को खुश रखूँगा। उनके दुःख-सुख में भागीदार बनने की चेष्टा करूँगा। हाँ, अनियमित, कामचोर, प्रमादी कर्मचारी को 'लेबर-लॉ' के अनुसार छुट्टी देकर काम की क्षति को रोकूँगा।

इस प्रकार यदि मैं पूँजीपति होता तो प्रकाशन उद्योग को अपनाता। विश्व में ज्ञान का प्रचार-प्रसार करता। माँ भारती के माध्यम से भगवती सरस्वती की पूजा-आराधना करता। आय की वृद्धि के लिए उचित-अनुचित सब हथकंडे अपनाता। लेखकों को प्रसन्न रखता तथा अधीनस्थों को खुश।

(62) यदि मैं पुलिस अधिकारी होता

संकेत बिंदु—(1) पुलिस अधिकारी का अर्थ (2) शांति और कानून व्यवस्था (3) पुलिसकर्मियों को कर्त्तव्यपरायण का आदेश (4) सभी वर्गों को समान न्याय (5) ईमानदारी और पक्षपात रहित कार्य।

एक कहावत मशहूर है—बेटा पुलिस अफसर बनेगा तो क्या माँ को डंडे मारेगा ? ऐसा कृतघ्न क्या कोई पुलिस अफसर होगा ? पर साहब, मैं ऐसा जरूर करूँगा। कारण, मेरी

माँ है—मेरा 'पेपर सेटर'। वह पूछता है 'यदि मैं पुलिस अधिकारी होता' तो क्या करता ? सच्चाई यह है कि सर्वप्रथम उस 'पेपर-सेटर' को परीक्षा-भवन में बुलाकर उससे स्पष्टीकरण माँगता, 'पुलिस अफसर' की व्याख्या पूछता। वह दसवीं के परीक्षार्थियों से किस पुलिस अफसर का शवच्छेदन (पोस्टमार्टम) करवा रहा है ? ए.एस.आई, एस.आई., एस.एच.ओ., ए.सी.पी., डी.सी.पी., शहर अधिकारी या प्रांत अधिकारी; किसका ? यदि वह 'पुलिस अधिकारी' पदों को समझता है तो इस भ्रामक शीर्षक के लिए उसे तीन वर्ष तक 'पेपर-सेटिंग' से मुक्ति दिलवाता। यदि वह पुलिस अफसर पद को स्वयं समझता ही नहीं तो उसे लाखों विद्यार्थियों के जीवन से खिलवाड़ करने का क्या अधिकार है ?

अस्तु, मैं अपने को एस.एच.ओ. मानकर चलता हूँ। जो एक पुलिस अधिकारी होता है—और अपने क्षेत्र की सुरक्षा का प्रहरी होता है। यदि मैं एस.एच.ओ. (थाना प्रभारी) होता तो अपने क्षेत्र में व्यवस्था और शाँति रखना मेरा कर्तव्य होता और जनता के निर्भीकता से जीवन-जीने की जुम्मेदारी को निंभाता।

लोगों की जेबें काटना, गले से चेन खींचना, घड़ी या कीमती सामान छीनना, सामान चोरी होना, कार-स्कूटर, मोटर-साईकिल या साईकिल का उठाना; प्रायः पुलिस की जानकारी में होता है। असामाजिक तत्त्व पुलिस की शह पर ही ऐसा दुस्साहस करते हैं। एक कर्तव्यनिष्ठ पुलिस अधिकारी के नाते मैं अपने क्षेत्र के ऐसे गुंडों का अपने क्षेत्र में जीना हराम कर देता। वे या तो सुधर जाते या मेरा क्षेत्र छोड़कर भाग जाते।

लड़कियों को छेड़ने, तंग करने, आवाजकसी करने, उन्हें उठाने, उनसे बलात्कार करने वाले गुंडों को खोज-खोज कर उन्हें ऐसा सबक सिखाता कि वे जिन्दगी भर याद रखते।

बाजार में सड़कों के किनारे पटरी पर स्थायी और अस्थायी दुकानदार कब्जा कर लेते हैं। खोमचे-छावड़ी वाले अस्थायी दुकानदार हैं। उन्होंने सरकारी जमीन को बाप-दादा की जायदाद समझ कर उस पर जगह-जगह दुकानें बना रखी हैं। यह सब पुलिस के और नगर-निगम के कर्मचारियों की कृपा का फल है। मैं पुलिस अफसर होता तो अपने क्षेत्र में पटरी पर चलने वाले यात्रियों के अधिकार का हनन सहन नहीं करता। पटरियों पर अधिकार जमाने वालों को हटाकर यात्रियों को उनका अधिकार दिलवाता।

थाने का क्षेत्र बहुत बड़ा और पुलिस कर्मियों की संख्या कम होती है, फिर पुलिस कब और कहाँ तक चौकसी करे, इसलिए चोरी-डकैती करने वाले रात को ही साहस करते हैं। मैं इसका दायित्व उस उपक्षेत्र के ए.एस..आई. पर डालता। उसको मजबूर करता कि वह अपने 'कर्तव्य' को भलीभाँति समझे और उसे पूरा करे। नागरिकों के पसीने की कमाई से प्राप्त कर से ही तो सरकार उन्हें वेतन देती है। इसलिए उसको मुफ्त कमाई समझने की अनुमति किसी ए.एस. आई को नहीं देता।

क्षेत्र में सामाजिक, राजनीतिक या धार्मिक, सरकारी उच्च-अधिकारी तथा अति विशिष्ट व्यक्ति रहते हैं। ये लोग अपने अधिकारों का प्रयोग कानून की सीमा में रहकर नहीं करते। इनके पुत्र-पुत्रियाँ, संगी-साथी तो अपने आपको 'कानून से ऊपर' समझते हैं।

प्राय: पुलिस का वरिष्ठ अधिकारी भी इन पर हाथ डालने से डरता है। मैं ऐसे लोगों को कानून की भाषा पुलिस के हथकंडों से समझा देता ताकि वे अपनी मर्यादा में रहें और दूसरों के अधिकारों का अतिक्रमण न कर सकें।

राजनैतिक दबाव, ऊपर की सिफारिश, अवनति या सेवानिवृत्त होने का भय मुझे कभी नहीं छूता। मैं गरीब के साथ अन्याय नहीं होने देता और अमीर या स्वामित्व प्राप्त को मेरा अनुचित संरक्षण नहीं मिलता।

दूरदर्शन और केबल वालों ने दो अपराधी वर्गों को जन्म दिया है—(1) दिन में डाके डालने वाले और हत्या करने वाले और (2) बम-विस्फोट करने वाले। ये दोनों दुष्टतत्त्व इतने मनोवैज्ञानिक विधि से काम करते हैं कि साँप भी मर जाता है और लाठी भी नहीं टूटती। डाके मारना उनका धंधा है और बम-विस्फोट कर आतंक फैलाना उनका स्वभाव। सच्चाई यह है कि हम पुलिस अधिकारी इस कार्य के लिए प्रशिक्षित नहीं हैं। अत: सिवाए दौड़-धूप के कुछ नहीं कर पाते। कभी-कभी बिल्ली के भागों छींका टूट जाता है और कोई डाकू गिरोह या आतंकवादी पकड़ा जाता है। वरना हम असहाय हैं, बेचारे हैं।

मैं थाना परिसर में आने वाले प्रत्येक शिकायती-व्यक्ति की व्यथा सुनता, रिपोर्ट लिखाता, उसके साथ बिना पक्षपात के यथासम्भव न्याय करता। मन्दिर में देव-प्रतिमा अपने आराधक से कुछ माँगती नहीं। स्वयं आराधक ही अपनी ओर से देव चरणों में भेंट रखता है। इसी प्रकार जो लोग यह समझते हैं कि बिना भेंट चढ़ाए पुलिस काम नहीं करती या काम होने के बदले पुरस्कृत करना चाहते हैं तो मैं उसे पत्र-पुष्प समझकर स्वीकार करता। क्योंकि भक्ति से अर्पित पत्र-पुष्प तो भगवान् को भी प्रिय लगते हैं।

(63) यदि हिमालय न होता

संकेत बिंदु—(1) पृथ्वी का इतिहास कुछ और होता (2) पांडवों का स्वर्गारोहण असंभव होता (3) असुरक्षित भारत और देवस्थानों का अभाव (4) जड़ी-बूटियाँ, रत्न और भोजपत्रों का अभाव (5) प्राकृतिक सौंदर्य का अभाव होता।

यदि हिमालय न होता तो सृष्टि का इतिहास कुछ और ही होता। भारत उत्तर दिशा में सुरक्षित नहीं होता। हिन्दू संस्कृति का आध्यात्मिक स्वरूप होता भी तो किसी अन्य रूप में होता। गंगा-यमुना, सिंधु-ब्रह्मपुत्र और पंचनद की पाँच नदियों का नामोनिशान न होता। जगत् जल के बिना तड़पता। मानव रत्नों और महौषधियों के कोष से वंचित होता। पर्यटक प्रकृति-सौन्दर्य देखने के नाम पर अपने आँगन में ही घूम कर संतोष कर लेते।

यदि हिमालय न होता तो पौराणिक देवों में सर्वाधिक प्रभाव भगवान् शिव पर पड़ता। उनका निवास-स्थान कैलास न होता। हिमालय की ही पुत्री उनकी अर्धांगिनी पार्वती न होती। पार्वती या उमा हिमालय की ही पुत्री हैं।

यदि हिमालय न होता तो महाभारत के वीर पांडव तथा द्रौपदी को जीवन की अंतिम शांति प्राप्त न होती, क्योंकि वे तो देवतात्मा हिमालय के अंचल में गलकर ही तो अपने जीवन का अन्त करना चाहते थे। क्योंकि हिमालय में ही तो 'स्वर्गारोहण' गिरि है, उसके बिना क्या धर्मराज युधिष्ठिर का स्वर्गारोहण सम्भव था?

यदि हिमालय न होता तो हिन्दू-धर्म का आध्यात्मिक गुण शायद प्रकट होता नहीं, होता भी तो उसका रंग-रूप, साज-सज्जा कुछ अन्य ही होती। जिसकी कल्पना भी असम्भव है। हिमालय-पर्वत पर ही तो यज्ञ, तप और अनुष्ठान करके ऋषि-मुनियों ने, योगियों ने अध्यात्म की ज्योति जलाई, जीवन के सत्य से साक्षात्कार कर जीवन कृतार्थ किया। मानव को धर्म का संदेश देकर उसका जीवन धर्ममय बनाया।

हिमालय न होता तो उसके अंचलों में बसे देवस्थान न होते। अमरनाथ, कैलास, मानसरोवर, बद्रीनाथ, केदारनाथ, हरिद्वार, आदि अनगिनत पूजा और श्रद्धा केन्द्र न होते। आद्य शंकराचार्य का ज्योतिर्मठ न होता। हिमालय न होता तो मुक्तिकामी तपस्वी साधकों को पवित्र-तपस्या स्थल प्राप्त न होता।

यदि हिमालय न होता तो उत्तर की ओर से भारत की सुरक्षा का विश्वास कौन देता? अत्याचारी अरबों का आक्रमण हजारों वर्ष पूर्व ही हो गया होता, जो भारत की अस्मिता को ही बदल देता; भारत के इतिहास को पलट देता।

यदि हिमालय न होता तो सिन्धु, ब्रह्मपुत्र, गंगा, यमुना आदि नदियों के अभाव में भारत की धरती शस्य-श्यामला होकर सोना न उगलती। अन्न के अभाव में देशवासियों को प्राय: अकाल का सामना करना पड़ता। इन नदियों के अमृतसम सलिल के अभाव में मनुष्य ही नहीं. पशु-पक्षी और धरती भी प्यासी रह जाती।

यदि हिमालय न होता तो हजारों मील में फैले उसके घने जंगलों से फल-फूल, लकड़ी, जड़ी-बूटियाँ, वनस्पति, खनिज, रत्नों के अभाव में भारत की उन्नत सभ्यता का कहीं पता न होता। विज्ञान की उन्नति, आयुर्वेद और 'एलोपैथी' की नींव ही खिसक जाती। हिमालय न होता तो भू-स्वर्ग कश्मीर न होता, न उसके केशर की क्यारियाँ ही होतीं। कहते हैं कि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के घोड़ों ने कश्मीर की केशर क्यारियों में लोट-लोट करके अपने अयाल लाल कर लिए थे। हिमालय न होता तो उसके वनों में पाए जाने वाली 'चमरी गाय' के अभाव में देवों और सम्राटों के सिर पर चँवर न डुलाए जाते। भोजपत्रों पर लिखे सहस्रों प्राचीन ग्रन्थ आज हमारे पुस्तकालयों की शोभा बढ़ा रहे हैं, वे न होते। बाँस के वनों के अभाव में कृष्ण की मुरली न बजती तथा ज्ञान-प्रमार का मुख्य आधार कागज न होता। हिमालय के घने जंगलों के अभाव में और हिम नदी के अभाव में वर्षा न होती, धरती प्यासी मरती। शेर, हाथी, चीते आदि जंगली-जीव न होते।

हिमालय न होता तो सृष्टि में प्राकृतिक सौन्दर्य की कल्पना ही न होती। उसके अभाव में 'पर्यटन' का कार्य न होता। कालिदास के 'मेघदूत' का विरही यक्ष और अलकापुरी न होती। प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी को छायावादी दृष्टिकोण प्राप्त न होता। इकबाल

जैसे शायर की यह कल्पना न होती—'ऐ हिमालय! ऐ फसीले किश्वरे हिन्दोस्ताँ, चूमता है तेरी पेशानी को झुककर आसमाँ।' 'दिनकर' को 'मेरे नगपति! मेरे विशाल ? साकार दिव्य गौरव विराट्' कहकर कविता लिखने की प्रेरणा न मिलती।

हिमालय न होता तो पर्वतारोहियों को उसके सर्वोच्च पर्वत शिखर 'सरगमाथा' य 'माउंटएवरेस्ट' को स्पर्श कर उसका आलिंगन करने का निमन्त्रण कौन देता ? कर्नल हंट और शेरपा तेनसिंह विश्व में एवरेस्ट के सर्वप्रथम आरोही होने की यशस्विता कैसे प्राप्त करते ?

इसीलिए डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन है कि—'हिमालय को भारतीय-साहित्य और इतिहास से हटा दिया जाए तो वह बहुत निष्प्राण हो जाएगा। हिमालय हमारा प्रहरी है, देवभूत है, रत्नखानि है, इतिहास विधाता है, संस्कृति का मेरुदण्ड है।'

(64) यदि गणित न होता

संकेत बिंदु—(1) संसार की स्थिति डाँवाडोल होती (2) गणित के विषय में विद्वानों के विचार (3) गणित के अलग-अलग रूप (4) सामान्य विद्यार्थियों को लाभ (5) एकाग्रता और चिन्तन शक्ति की कमी।

यदि गणित न होता तो संख्या, परिमाण, मात्रा आदि निश्चित करने की विधि अस्तित्वहीन हो जाती। गणना का महत्त्व समाप्त हो जाता। गणना के अभाव में संसार की स्थिति ही गड़बड़ा जाती। गणितीय योग, भाग, गुणन और ऋण (घटा) के अभाव में सामान्य व्यावसायिक व्यवहार न होता और विज्ञान तथा वैज्ञानिक उन्नति भी धरी-धराई रह जाती। यदि गणित न होता विद्यार्थी एक क्लिष्ट और शुष्क विषय से तो बच जाते, पर भौतिक विज्ञान का क्षेत्र शून्य रह जाता।

महान् गणितज्ञ डेमोलिंस बोर्डास का कथन है, 'गणित के बिना दर्शन-शास्त्र की गहराई नहीं नापी जा सकती। दर्शन-शास्त्र के बिना गणित की गहराई नहीं नापी जा सकती दोनों के बिना किसी वस्तु की भी गहराई नहीं नापी जा सकती।'

गणित न होता तो वेदांगों और शास्त्रों का शीर्ष ही समाप्त हो जाता। क्योंकि वेदांग ज्योतिष के अनुसार—

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद् वेदांग शास्त्राणां गणितं मूर्ध्नि संस्थितम्॥

जैसे मयूरों की शिखा और नागों की मणियाँ सिर पर होती हैं, उसी प्रकार वेदांगों व शास्त्रों के शीर्ष पर गणित स्थित है।

जर्मन विद्वान् फ्रेबल के अनुसार, यदि गणित न होता तो मनुष्य और प्रकृति आन्तरिक और बाह्य जगत् विचार और प्रत्यक्ष ज्ञान में मध्यस्थता नहीं हो पाती, क्योंकि गणित के

सिवाय अन्य कोई विषय इस कार्य को कर नहीं सकता। 'Mathematics Stands forth as that which unites, mediates between Man and Nature, inner and outer world thougths perception as no other subject does.'

अंग्रेजी गणितज्ञ जे.एफ हरबर्ट की धारणा है कि यदि गणित न होता तो प्रत्ययों के द्वारा रूपों की धारणा की दिशा में हर युग के महत्तम मस्तिष्कों ने जो कुछ प्राप्त किया है, वह न कर पाता। कारण, गणित ही वह महान् विज्ञान है, जिसमें ये संगृहीत हैं। 'Everything that the greatest mind of all times have accomplished towards the comprehension of forms by means of concepts gathered into one great Science, Mathematics.' इतना ही नहीं हरबर्ट तो गणित को निश्चयात्मक और स्पष्टता की पुजारिन मानता है। 'Mathematics, the priestess of detiniteness and clearnes.'

सरल शब्दों में कहें तो यदि गणित न होता तो परिमाण, मात्रा तथा संख्या का काम कैसे हो पाता ? हिसाब-किताब कैसे रखा जाता ? किसको क्या, कितना लेना-देना है कैसे जान पाते ? व्यापार का आधार ही गणित है। आधार हटा तो व्यापार गया। अर्थ-तंत्र डूबा तो विश्व-व्यापार की रीढ़ की हड्डी टूट गई। शेष क्या रहा ? लुंज-पुंज विश्व।

गणित के तीन रूप हैं—अंक गणित, बीज गणित और रेखा गणित। इन तीनों का ज्ञान अन्य विषयों का अनिवार्य अवलम्ब है। जैसे—पाटी (अंक) गणित के बिना बुककीपिंग अधूरी है। रेखागणित के बिना इंजीनियरिंग अपंग है। बीज गणित के बिना विज्ञान की टैक्नोलोजी की कमर टूटती है। जब कोई उपग्रह अंतरिक्ष में जाता है तो आपने सुना होगा कि उल्टी गिनती जब शून्य पर पहुँचती है तो उपग्रह से अग्नि की लपटें निकलकर उसे अन्तरिक्ष में धकेलती हैं। यह उल्टी गिनती क्या है—गणना अर्थात् गणित।

इतने महत्त्वपूर्ण, जीवन और जगत् के रहस्य प्रकट कर्ता गणित का स्वयं रहस्मय होना स्वाभाविक है। गणित विद्यार्थियों के लिए डरावना विषय है। पाटी (अंक) गणित में महाकाली दुर्गा के दर्शन होते हैं। छात्र 'एलजबरा' को 'ऑल झगड़ा' समझता है। 'ज्योमैट्री' को ऐसी ज्योतिर्मयी मानता है, जिसके तीव्र प्रकाश में उसके नेत्र ही नहीं हृदय भी चौंधिया जाता है। इसलिए विद्यार्थी 'फेल' होते हैं। गणित में येन-केन-प्रकारेण उत्तीर्णांक प्राप्त भी किए तो श्रेणी गिर ही जाती है। इसलिए यदि गणित न होता तो सामान्य विद्यार्थी अच्छे अंक लेकर अपने भावी जीवन से उन्नति का मार्ग तो प्रशस्त कर सकता था। हिन्दी के उपन्यास-सम्राट् और महान् कथाकार प्रेमचन्द जी को ही लीजिए। गणित के कारण बी.ए. में कई बार फेल हुए, गणित की अनिवार्यता हटी तो तभी बी.ए. कर सके।

दूसरी ओर, गणित विषय न होता तो विद्यार्थी का मस्तिष्क एकाग्र न हो पाता। क्योंकि गणित के सवाल मन की एकाग्रता से ही हल होते हैं। जरा ध्यान विचलित हुआ कि सोल्यूशन (समाधान या हल) डगमगा जाएगा, समाधान डगमगाते ही प्रश्न का निष्कर्ष अर्थात् उत्तर गलत हो जाएगा।

तीसरी ओर गणित न होता तो विद्यार्थी की चिन्तन-शक्ति का ह्रास हो जाता। चिन्तन-शक्ति की क्षीणता से जीवन की प्रगति ही अवरुद्ध हो जाती है। मनु का कहना है—'एकाकी चिन्तमानो हि परं श्रेयोऽधिगच्छति' अर्थात् अकेले में सोचने वाला ही परम श्रेय को प्राप्त करता है।

जर्मन कवि गेटे का कहना है कि यदि गणित न होता तो गणितज्ञ न होते। गणितज्ञ न होते तो उनकी फ्रांसीसियों से उपमा व्यर्थ हो जाती। कारण, 'गणितज्ञ फ्राँसिसियों की तरह होते हैं। उनसे कुछ कहो, वे उसे अपनी भाषा में अनूदित कर लेते हैं और उसी क्षण बात बिल्कुल भिन्न हो जाती है।'

(65) यदि मैं प्रधानाचार्य होता!
अगर मैं विद्यालय का प्रधानाचार्य होता!

संकेत बिंदु—(1) छात्रों में शिक्षा और विज्ञान का प्रचार-प्रसार (2) विद्यालय का शिक्षा स्वर उन्नत और छात्रों में साहित्य प्रेम (3) छात्रों को अच्छा चिकित्सक और मानव बनने की प्रेरणा (4) छात्रों की कला प्रदर्शन और विद्यालय में अनुशासन (5) उपसंहार।

मैं यदि विद्यालय का प्रधानाचार्य होता तो देश के राष्ट्रपति रह चुके सर्व पल्ली डॉ. राधाकृष्णन् के विचारों का प्रचार-प्रसार करता और विद्यालय के प्रत्येक छात्र को शिक्षा के सम्बन्ध में तथ्यपूर्ण जानकारियाँ भी उपलब्ध कराने का भरसक प्रयत्न करता। शिक्षक रह चुके डॉ. राधा कृष्णन् की विचारधारा और उनके स्वप्न को भी साकार करने का प्रयास करता।

मैं यदि विद्यालय का प्रधानाचार्य होता तो डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम की भाँति अपने विद्यालय के छात्रों को विज्ञान में उन्नतशील बनाने और सफल वैज्ञानिक बनकर राष्ट्र का नाम उज्ज्वल करने की प्रेरणा देता। विज्ञान आज के युग की आवश्यकता है और विज्ञान के माध्यम से ही हम भारत को समूचे विश्व में विश्व गुरु के पद पर आसीन करने में सफलता प्राप्त कर सकते हैं। आज भारत का नाम समूचे विश्व में विज्ञान के द्वारा ही जाना जा रहा है और मैं विद्यालय के छात्रों को विज्ञान के क्षेत्र में अग्रणी रहने की प्रेरणा भी देता और विद्यालय के छात्र अपने साथ अपने देश के नाम को भी ऊँचा करने में सफल होते। जिस प्रकार भारत ने विज्ञान के माध्यम से अन्तरिक्ष में सफलता पायी है उसी प्रकार मैं अपने विद्यालय के योग्य छात्रों को नासा के माध्यम से अन्तरिक्ष में अध्ययन के और अधिक अवसर दिलाने का प्रयास करता।

मैं यदि विद्यालय का प्रधानाचार्य होता तो सबसे पहले तो मैं अपने पद और अधिकार का उपयोग कर अपने साथी अध्यापकों को विद्यालय का शिक्षा-स्तर और अधिक उन्नत

बनाने के लिए उन्हें प्रोत्साहित करता। योग्य अध्यापकों को राज्य स्तर पर और राष्ट्रीय स्तर पर सम्मानित और पुरस्कृत करने की सरकार से सिफारिश भी करता। यदि अध्यापक कुशलता से छात्रों को अध्ययन करायेंगे तो विद्यालय पूरे जिले और राज्य में सर्वश्रेष्ठ कहलाने का गौरव भी प्राप्त करेगा। मेरा हर सम्भव यह प्रयास होता कि अध्यापक और छात्र में संवाद प्रक्रिया बनी रहे। मैं यह भी प्रयास करता कि विद्यालय का प्रत्येक छात्र अपने सहपाठी से चार कदम आगे चलकर सफलता की सीढ़ियाँ चढ़ता चले। अध्यापकों और छात्रों में पढ़ाई के अतिरिक्त नैतिकता का भी सामंजस्य स्थापित करने का मेरा प्रयास रहता।

मैं यदि विद्यालय का प्रधानाचार्य होता तो विद्यालय के प्रत्येक छात्र को कला और साहित्य में अग्रणी बनाने का प्रयास करता। जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', रामधारी सिंह 'दिनकर', श्याम नारायण पाण्डेय, सोहनलाल द्विवेदी, भवानीप्रसाद मिश्र, देवराज 'दिनेश', सुरेन्द्र शर्मा, अशोक 'चक्रधर', सोम ठाकुर, कुँअर 'बेचैन', अज्ञेय, नागार्जुन, सरीखे कवि विद्यालय के छात्रों को बनाने का प्रयास करता। मेरा यह भी प्रयास रहता कि मुंशी प्रेमचंद, भीष्म साहनी, चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' हजारी प्रसाद द्विवेदी, सियाराम शरण गुप्त जैसे लेखक बनने की विद्यालय के छात्रों को प्रेरणा भी देता।

मैं यदि विद्यालय का प्रधानाचार्य होता तो छात्रों को चिकित्सक बनने की प्रेरणा भी देता। कहा जाता है कि, "डॉक्टर भगवान् का दूसरा रूप होता है" और मैं विद्यालय के छात्रों को यह शिक्षा भी देता कि डॉक्टर, वैद्य, हकीम बनकर समाज के रोगी जनों की सेवा करो और उन्हें नीरोग बनाकर उनका जीवन सुखमय बनाओ। समाज में डॉक्टर की एक प्रकार की विशेष भूमिका होती है और मेरे विद्यालय का छात्र डॉक्टर बनकर मरीज को स्वस्थ बनाता जिससे उसका और विद्यालय का नाम चमकता। मैं यह भी प्रयास करता कि विद्यालय का छात्र डॉक्टर बनकर उन उपेक्षित क्षेत्रों में जाकर मरीजों की सेवा करे जो क्षेत्र शहर से बहुत दूर हैं और जहाँ चिकित्सा सुविधा नहीं है।

मैं यदि विद्यालय का प्रधानाचार्य होता तो विद्यालय के छात्रों को प्राकृतिक आपदा, जैसे—भूचाल, बाढ़, तूफान में फँसे व्यक्तियों की मदद करने की प्रेरणा देता। छात्रों को मानव-सेवा की शिक्षा भी देता क्योंकि, 'नर सेवा ही नारायण सेवा' कहलाती है। प्राकृतिक आपदा में फँसे हजारों बच्चे, बूढ़े, नर-नारियों की सेवा और सहायता के लिए विद्यालय के छात्रों को लगाकर विद्यालय के नाम को ऊँचा उठाने का प्रयास करता। आपदा और संकट की घड़ी में किसी को भी सहायता देना मानवता का पहला कार्य माना जाता है, इसके लिए मैं विद्यालय के अध्यापकों और छात्रों का पूर्ण सहयोग लेकर स्वयं भी सेवा और सहायता को तत्पर होता। इस कार्य के लिए मैं सरकार से भी हर सम्भव सहायता देने की माँग भी करता। मुसीबत में फँसे व्यक्तियों को भोजन, दवाई, पानी, दूध आदि का भी प्रबन्ध कराकर छात्रों को उन पीड़ितों की सेवा में लगा देता। इससे विद्यालय और छात्रों का गौरव और बढ़ता।

यदि मैं विद्यालय का प्रधानाचार्य होता तो विद्यालय के छात्रों को हर प्रकार के खेलों का अभ्यास करने की प्रेरणा देता। क्रिकेट, हॉकी, फुटबॉल, तैराकी, शतरंज आदि जो भी खेल हैं उनमें विद्यालय के छात्रों को निपुण बनाकर ओलंपिक में उन्हें खेलने की प्रेरणा देता। तीरन्दाजी, निशानेबाजी में विद्यालय के छात्र निपुण होकर विद्यालय का नाम ऊँचा करने में सहायक होते। यही नहीं, मैं विद्यालय के छात्रों को पर्वतारोहण की प्रेरणा भी देता, जो तेनसिंह की तरह हिमालय पर्वत के शिखर पर तिरंगा लहराने के स्वप्न को साकार करते।

यदि मैं विद्यालय का प्रधानाचार्य होता तो विद्यालय के छात्रों की कला का प्रदर्शन प्रत्येक वर्ष गणतंत्र दिवस पर राजपथ पर झाँकियों के रूप में कराने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निर्वाह करता। विद्यालय के छात्र विजय चौक पर देश के राष्ट्रपति के समक्ष अपनी कला के प्रदर्शन से देश में सर्वोच्च स्थान पाने में सफल होते। छात्रों द्वारा नृत्य, भाँगड़ा और अनेक प्रकार के खेलों से राजपथ पर विद्यालय के नाम की चर्चा होती और कार्यक्रम का दूरदर्शन पर सीधा प्रसारण देश की जनता के सम्मुख होता। इससे विद्यालय और विद्यालय के छात्रों का नाम ऊँचा होता।

यदि मैं विद्यालय का प्रधानाचार्य होता तो 'विद्यालय में अनुशासन' सर्वप्रथम मेरी प्राथमिकता होती। विद्यालय का प्रत्येक छात्र एक वृक्ष विद्यालय में लगाता, जिससे वातावरण में शुद्ध वायु का प्रवाह होता। वायु में ही आपका जीवन होता है। सभी छात्र वृक्ष के साथ-साथ विद्यालय में तरह-तरह फूल भी लगाते। फूल जीवन में सुगन्ध फैलाते हैं, फूल ही प्रेम-प्यार का प्रतीक होते हैं। फूल किसी भी प्रियजन को उपहार में भेंट किये जा सकते हैं।

यदि मैं विद्यालय का प्रधानाचार्य होता तो अपने अध्यापक साथियों के साथ मिलकर विद्यालय का शिक्षा का स्तर प्रत्येक क्षेत्र में इतना ऊँचा उठाने का प्रयास करता कि समूचे राष्ट्र में मेरे विद्यालय के छात्र एक प्रकार से प्रत्येक विषय में हिन्दी, अंग्रेज़ी, गणित, विज्ञान, भौतिकी, रसायन विज्ञान, राजनीति शास्त्र, अर्थशास्त्र, सामाजिक शास्त्र, कला और साहित्य में प्रथम, द्वितीय श्रेणी को प्राप्त करते। ज़िला, राज्य और राष्ट्र में हमारे विद्यालय का नाम बड़े आदर और सम्मान के साथ लिया जाता। सम्मान किसी व्यक्ति या संस्था के चेहरे को नहीं मिला करता, सम्मान तो संस्था या व्यक्ति के काम को मिला करता है। यदि मैं विद्यालय का प्रधानाचार्य होता और मेरा विद्यालय सम्पूर्ण राष्ट्र में प्रथम स्थान प्राप्त करता और मीडिया वाले मेरी राय जानने आते तो मैं विद्यालय का प्रधानाचार्य होने के नाते प्रत्येक टी.वी. चैनल और समाचार-पत्रों को एक ही बात कहता कि, "मन में आगे बढ़ने का विश्वास, मन में लगन, लगन के साथ धैर्य और सहनशीलता और दूरदृष्टि-पक्का इरादा ही व्यक्ति को कुछ कार्य करने की प्रेरणा लेकर सफलता की ओर अग्रसर होने का अवसर प्रदान करता है।"

मेरा प्रयास देश के भविष्य को उन्नत, प्रखर, बनाकर विश्व में शिखर पर पहुँचाने का है। भारत के सपूत जब शेर के मुँह में हाथ डाल कर दाँत गिनने का साहस कर सकते हैं,

भारत के वीर घोड़ों की टापों से उठी चिनगारियों से दीप माला मनाने का साहस कर सकते हैं तो मेरे विद्यालय के छात्र मेरे प्रधानाचार्य काल में समूचे विश्व में भारत को विश्व- गुरु का पद भी दिलाने की हिम्मत कर सकते हैं। यदि मैं प्रधानाचार्य होता तो न जाने कितने और अद्‌भुत कदम उठाकर अपना और विद्यालय का आदर्श प्रस्तुत करता। इसी संदर्भ में कवि मनोहर लाल 'रत्नम्' के मन की अभिलाषा को भी देख लिया जाये तो उत्तम रहेगा—

प्रधानाचार्य मैं होता यदि, विद्यालय को शिखर चढ़ाता।
जिला, राज्य की बात नहीं फिर, पूर्ण राष्ट्र में नाम बढ़ाता।।
विद्यालय का हर बालक ही, ज्ञानी-विज्ञानी कहलाता।
थल में, जल में, 'रत्नम्' नभ में, अमर तिरंगा ही लहराता।।

(66) यदि मैं शिक्षा मंत्री होता/ यदि मैं शिक्षा मंत्री बन जाऊँ!

संकेत बिंदु—(1) वर्तमान शिक्षा प्रणाली में सुधार (2) त्रिभाषा सूत्र लागू और प्राथमिक शिक्षा में सुधार (3) सरकारी और पब्लिक विद्यालयों का समान स्तर (4) चरित्रवान और प्रशिक्षित अध्यापकों की नियुक्ति (5) उपसंहार।

मैं यदि भाग्यवश शिक्षा मंत्री बन जाऊँ तो वर्तमान शिक्षा प्रणाली में कुछ सुधार करने का पूरा प्रयास करूँगा, क्योंकि शिक्षा ही उचित-अनुचित की परख करने में सक्षम होती है और मनुष्य के जीवन को उन्नति-प्रगति के मार्ग में ले जाने में सम्पूर्ण सहायक होती है। शिक्षा से मिलने वाले ज्ञान का प्रकाश जीवन के अन्धकारमय अज्ञान को मिटाकर उजले पथ पर मनुष्य को चलने का साहस देता है।

यदि मैं शिक्षा मंत्री बन जाऊँ तो शिक्षा के लिए त्रिभाषा फार्मूला भी अनिवार्य रूप से लागू करवाऊँगा, जिससे प्रत्येक विद्यार्थी हिन्दी और अंग्रेज़ी के साथ एक क्षेत्रीय भाषा अथवा मातृभाषा की भी शिक्षा ग्रहण कर सके। इसके साथ ही स्कूली स्तर पर तकनीकी शिक्षा पर भी मैं जोर दूँगा। यह भी प्रयास रहेगा कि स्कूली छात्र को पढ़ाई के साथ-साथ कम्प्यूटर शिक्षा का भी ज्ञान दिया जाये, क्योंकि आज समाज में कम्प्यूटर की माँग बढ़ रही है और स्कूल में छात्र को जब कम्प्यूटर की शिक्षा भी प्राप्त हो जायेगी तो छात्र का भविष्य भी सुखद व सुन्दर होगा।

शिक्षा मंत्री बनने के बाद मेरा प्रयास रहेगा कि समूचे राष्ट्र में प्राथमिक शिक्षा के स्तर में सुधार लाया जाये, क्योंकि प्राथमिक शिक्षा ही छात्र की आधारशिला मानी जाती है। शहरों, कस्बों और गाँवों के सभी बालकों के लिए 'अनिवार्य शिक्षा' की योजना बनाकर करके प्रत्येक बालक को शिक्षित बनाने के लक्ष्य को भी पूरा किया जायेगा। देश के प्रत्येक छात्र को भारतीय संस्कृति के नैतिक मूल्यों के साथ-साथ आदर्शों की स्थापना और

चारित्रिक शिक्षा को स्तरीय बनाकर विशेष कार्यक्रमों के साथ नैतिक-शिक्षा को अनिवार्य विषय बना दिया जायेगा।

शिक्षा का दीप जलाकर हम, द्वार-द्वार पर जायेंगे।
भारत के अनपढ़ बालक को, 'रत्नम्' पढ़ना सिखलायेंगे।।

मेरा यह भरसक प्रयास रहेगा कि सरकारी विद्यालयों और पब्लिक स्कूलों का शिक्षा स्तर समान रहे, ताकि किसी भी विद्यार्थी के मन में परीक्षा परिणाम को लेकर मन में हीन भावना का जन्म न हो। सरकारी और गैर सरकारी स्कूलों के अन्तर को समाप्त किये जाने के प्रयास किये जायेंगे। इसके साथ ही देश में विद्यालयों की परीक्षा प्रणाली को सुधारा जायेगा। जहाँ तक पाठ्य पुस्तकों का प्रश्न है, उनका प्रारूप और स्वरूप भी सही कराने का प्रयास किया जायेगा। पाठ्य पुस्तकों में सुधार होने से देश भर में फैल रहे साम्प्रदायिकता, क्षेत्रीय समस्या, भाषा समस्या, नास्तिकवाद, आतंकवाद पर अंकुश भी शिक्षा के माध्यम से ही लगाये जाने का भरसक प्रयास किया जायेगा। जब देश की जनता और देश का भविष्य शिक्षित हो जायेगा तो अपना, समाज का तथा देश का भविष्य सँवारने में देश का नागरिक ही सहायक बन जायेगा, और यह नारा प्रत्येक व्यक्ति अपनी दैनिक पूजा के साथ सुबह-शाम लगायेगा—

हम सबका ही यह प्रण होगा।
न कोई अनपढ़ जन होगा।।
हर घर में शिक्षा आयेगी।
जनता शिक्षित कहलायेगी।।

यदि मैं शिक्षा मंत्री बनता हूँ तो मेरा यह भी प्रयास रहेगा कि अयोग्य और चरित्रहीन अध्यापक स्कूलों से बाहर कर दिये जायें और इनके स्थान पर योग्य, प्रशिक्षित और चरित्रवान् अध्यापकों को नियुक्त किया जाये। इसके साथ ही यह भी प्रयास किया जायेगा कि अध्यापकों को उचित वेतन मिले ताकि वह छात्रों को मन लगाकर पढ़ा सकें। अध्यापकों की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति हो, अध्यापकों को समुचित सम्मान मिले, इसके साथ ही अध्यापकों को समाज में भी उचित स्थान मिले। अध्यापकों को आकर्षक वेतन मिलने से अनेक प्रतिभाशाली व्यक्ति अध्यापन के क्षेत्र से जुड़कर देश के भविष्य को उज्ज्वल बनाने में सहायक होंगे, अध्यापक ही भावी पीढ़ी के निर्माण में सहायक होते हैं। अगर मुझे शिक्षा मंत्री बना दिया जाता है तो मैं ऐसी व्यवस्था कराने का प्रयास करूँगा जिससे सांस्कृतिक शिक्षा के माध्यम से व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास सम्भव हो सके। विद्यार्थी अपनी आन्तरिक प्रवृत्तियों को प्रकट और विकसित करने में सक्षम हो सके। शिक्षा को समाज के लिए बहु-उद्देशीय बनाने का प्रयत्न भी मेरे द्वारा किया जायेगा, जिससे शिक्षित होकर विद्यार्थी समाज और राष्ट्र के उत्थान में अपनी भागीदारी का निर्वाह कर पाने में सक्षम बनें। यह हर सम्भव प्रयास किया जायेगा कि शिक्षा द्वारा ही सांस्कृतिक, वैयक्तिक, सामाजिक, नैतिक, भौतिक, उद्देश्यों की पूर्ति सम्भव हो सके। इसके लिए देश के शिक्षित

वर्ग, अध्यापक वर्ग, बुद्धिजीवी वर्ग, लेखक, कवि, पत्रकार, अधिकारी वर्ग का सहयोग लेकर शिक्षा को सर्व सुलभ बनाने का भी मेरा प्रयास रहेगा।

देश में आतंक को भी मिटाने का प्रयास शिक्षा के माध्यम से किया जा सकता है, इसके लिए 'अपनी सुरक्षा। स्वयं करो' नामक योजना प्राथमिक स्तर से प्रारम्भ किये जाने की सरकार से सिफारिश की जायेगी, जिससे प्रत्येक नागरिक सुरक्षित रह सके। एक जो मुख्य आवश्यकता समाज को विशेष रूप से है इस ओर विशेष ध्यान दिया जायेगा कि क्षेत्र का प्रत्येक पढ़ा-लिखा व्यक्ति प्रौढ़ शिक्षा को प्रोत्साहन दे। प्रत्येक व्यक्ति अपने क्षेत्र के अनपढ़ वृद्ध और युवा स्त्री-पुरुषों को पढ़ाने का कार्य करेगा। इसके लिए हर पढ़ाने वाले व्यक्ति को सरकार आर्थिक सहायता प्रदान करेगी और प्रौढ़ों को पढ़ने का भी परिश्रमिक सरकार द्वारा दिया जायेगा। मेरी इस योजना से देश का हर छोटा-बड़ा व्यक्ति शिक्षित होकर अपने देश का नाम विश्व में ऊँचा करने का कार्य करेगा। जब हमारे देश का प्रत्येक व्यक्ति शिक्षित हो जायेगा तो सम्भवत: हमारा देश स्वत: ही उन्नति के शिखर पर चढ़ जायेगा।

शिक्षा के माध्यम से ही गोस्वामी तुलसीदास ने संसार को रामचरित मानस ग्रंथ प्रदान किया है। अनेक संतों महात्माओं और बुद्धिजीवियों ने समय-समय पर समाज का मार्ग-दर्शन शिक्षा के माध्यम से ही किया है। मैं भी सर्वशिक्षा अभियान के माध्यम से शिक्षा का ऐसा दीप प्रज्ज्वलित करने का प्रयास करूँगा कि आने वाले युगों तक शिक्षा का प्रकाश समूचे विश्व में प्रकाशमान् होता रहे और मेरा भारत देश विश्व-गुरु बनकर समूचे विश्व को शिक्षित करने के स्वप्न को साकार करने में अपनी भूमिका का निर्वाह करता रहे। शिक्षा ही जीवन स्तर के सुधार का सहायक है, शिक्षा ही नैतिक और सैद्धान्तिक विचारों की पोषक है, व्यक्ति का शिक्षित होना ही समाज और राष्ट्र का शिक्षित होना है। इसलिए मेरा प्रयास जारी रहेगा और मैं अपने अटल विश्वास के साथ शिक्षा को हर घर के घर से लेकर विश्व के हर घर में शिक्षा का जयनाद करने का भी संकल्प लेता हूँ।

(67) यदि मेरा जन्म 1947 से पहले हुआ होता!
अथवा
अगर मैं आज़ादी से पहले जन्मा होता!

संकेत बिंदु—(1) 1947 से पहले पैदा न होने का दु:ख (2) आजादी से पहले का भारत (3) पिताजी द्वारा जिज्ञासा शांति (4) महापुरुषों का सानिध्य मिलता (5) उपसंहार।

मुझे यह दु:ख हर रात को परेशान करता है कि मैं 1947 से पहले पैदा क्यों नहीं हुआ? अगर मैं आज़ादी से पहले जन्मा होता तो मज़ा ही कुछ और होता! मैंने सुना है कि आज़ादी से पहले एक रुपये का एक सेर देशी घी मिलता था, जो आज एक सौ पचास रुपये किलो

है, वह भी असली नहीं कहा जा सकता। आज़ादी से पहले गेहूँ चार रुपये मन मिलता था। जो आज आठ रुपये किलो है।

मैंने सुना है कि देश के कुछ कर्णधारों ने देश को आज़ादी दिलाने के लिए अंग्रेज़ों के खिलाफ नारे लगाये थे। अंग्रेजों ने उन पर अत्याचार किया था, आजादी माँगने वाले देश-भक्तों पर लाठियाँ, गोलियाँ भी अंग्रेज़ों ने चलायीं थी। कुछ युवकों को अंग्रेज़ों ने फाँसी भी दी थी। अगर मैं आज़ादी से पहले पैदा हुआ होता तो शायद मैं भी अंग्रेज़ों के खिलाफ नारे तो लगा ही देता। देश भक्तों पर पड़ने वाली उन लाठियों का नज़ारा तो मैं भी देख ही लेता, मगर हाये रे दुर्भाग्य! मेरा जन्म आज़ादी के बाद हुआ।

कहा जाता है कि आज़ादी से पहले दूध, घी खुला होता है घरों मैं, चाहे जितना दूध पीयो, मक्खन खाओ, घी खाओ मगर आज़ादी के बाद घी, मक्खन, दूध तो मिलता नहीं और मैं तो केवल चाय पीकर ही अपने मन को संतुष्ट कर लेता हूँ।

अगर मेरा जन्म आज़ादी से पहले हुआ होता तो मैं भी महात्मा गाँधी का चेहरा देख लेता, उनकी बातें सुन लेता और यह भी देख लेता कि महात्मा गाँधी ने आज़ादी की लड़ाई किस तरह धोती पहनकर, लाठी पकड़ कर लड़ी थी, वह गोल बताता है कि—

''दे दी तूने आजादी बिना खड्ग, बिना ढाल।
साबरमती के सन्त, तूने कर दिया कमाल।।''

मुझे लगता है कि यह मेरा दोष नहीं है कि आज़ादी से पहले पैदा क्यों नहीं हुआ, यह दोष मेरे पिताजी का है। जब मैंने पिताजी से इस विषय में बात की तो पिताजी ने जो तर्क दिया वह भी उचित ही लगा। पिताजी ने मुझे बताया कि उनकी शादी 20 जनवरी 1947 को हुई, इसलिए मेरा जन्म आज़ादी से पहले नहीं हो पाया। एक बात मुझे समझ में नहीं आयी कि क्या मेरे पिताजी अपनी शादी 1927 में नहीं करा सकते थे? इस पर मेरे पिता जी ने मुझसे कहा कि 1927 में उनकी आयु केवल 2 वर्ष की थी और 2 वर्ष में तो शादी सम्भव हो नहीं सकती थी, शादी के लिए तो आयु कम-से-कम 20-22 वर्ष की होनी चाहिए।

वैसे यदि मेरा जन्म आज़ादी से पहले हुआ होता तो मैं सुभाषचंद्र बोस को निकट या दूर से एक देख लेता और देखता कि जिस व्यक्ति ने ''तुम मुझे खून दो मैं तुम्हें आजादी दूँगा'' कहते हुए कैसे लगते हैं। साथ ही मुझे लाला लाजपतराय, सरदार भगत सिंह, मुहम्मद अली जिन्ना, अबदुल गफ्फार खाँ गाँधी, जवाहर लाल नेहरू आदि अनेक लोगों को भी देखने का अवसर तो मिलता। मगर यह सब कुछ सम्भव नहीं हो सका क्योंकि मैं आज़ादी के बाद ही जन्मा हूँ।

कुछ लोग कहते हैं कि मैं बड़ा भाग्यवान् हूँ क्योंकि मैंने अपने जन्म के बाद पहला साँस आज़ादी में लिया है, क्योंकि लोग कहा करते है कि, ''उनका जीना भी क्या जीना, जिनका देश गुलाम है।'' यह तो सच है कि मेरा देश गुलाम नहीं है, मगर उस दु:ख का मैं क्या करूँ जो मेरे मन में बैठा हुआ है कि मेरा जन्म आज़ादी से पहले क्यों नहीं हुआ?

अगर आज़ादी से पहले मेरा जन्म हुआ होता तो मैं भी देश की आज़ादी के तरानों में अपना स्वर लो से ही सकता था कि,

"सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है,
देखना है जोर कितना बाजुए कालिल में है।"

मेरा यह अरमान मेरे दिल में ही रह गया। और मैं हमेशा यहीं गीत गाता रहता हूँ कि, **"दिल के अरमाँ आँसुओं में बह गये।"** क्योंकि मेरा जन्म आज़ादी से पहले नहीं हो पाया है। अब मैं मन को सदा तसल्ली देता रहता हूँ कि **अच्छा हुआ कि मेरा जन्म** आज़ादी के बाद हुआ है। क्योंकि मुझे लगता है कि अब फिर से हमें आज़ादी की ज़रूरत पड़ेगी। देश के इन बाहुबली नेताओं से देश को आज़ाद कराने के लिए, देश को आतंकवादियों के चंगुल से आज़ाद कराने के लिए, देश को दलालों की पकड़ से आज़ाद कराने के लिए, सरकारी दफ्तरों में बैठे रिश्वतखोर अधिकारियों की हरामखोरियों से देश को आज़ाद कराने के लिए फिर से आवश्यकता पड़ सकती है और मेरे जैसे लोग आज़ादी के बाद जन्में हैं वह इस आंदोलन में काम आ सकते हैं। इसलिए अच्छा ही हुआ कि मैं आज़ादी के बाद ही जन्मा हूँ और देश को कभी भी मेरी आवश्यकता हो सकती है और मैं इसी प्रतीक्षा में हूँ।

आत्मकथा

(68) बस की आत्मकथा

संकेत बिंदु—(1) यात्रा का सुलभ और आरामदेह माध्यम (2) युग के अनुरूप स्वयं को ढाला (3) मेरे अनेक आकार व प्रकार (4) मेरे उपयोग के नियम (5) धर्म निरपेक्ष स्वरूप और जीवन में महत्त्व।

मैं बस हूँ। आपकी यात्रा का सर्वश्रेष्ठ सुलभ और आरामदेह माध्यम हूँ। आपके अभीष्ट गन्तव्य स्थान पर रुकने वाली, शहरों के कोने-कोने तक, सुदूर ग्राम-अंचल या उत्तुंग शैल-शिखरों तक आपको पहुँचाकर ही दम लेने वाली हूँ। 'कम खर्च पर अधिक सुखद यात्रा', मेरे जीवन का उद्देश्य है। डीजल मेरा भोजन है, और पानी मेरी प्यास बुझाता है। मानव-शरीर पाँच तत्त्वों द्वारा निर्मित है, किन्तु मेरे शरीर में छह तत्त्वों का मिश्रण है—लोहा, लकड़ी, शीशा और रबड़ मेरे बाहरी अवयव हैं। मेरी आत्मा मेरा इंजन है, जो सारे ढाँचे को जीवन प्रदान करता है। वायु मेरे चरण हैं। मनुष्य का वायु तत्त्व समाप्त हो जाए, तो शरीर शव बन जाता है, उसी प्रकार मेरे छह अंगों में से किसी एक की भी हवा निकली, तो मेरा शरीर जड़, गतिहीन हो जाता है।

जमाने की चाल का असर मेरे ऊपर भी पड़ा है। भगवान् विष्णु ने पृथ्वी का भार हरण

करने के लिए दस बार अवतार लिया, मैंने भी अपने बदलते रूप-विधान में यात्री को अधिकतम सुविधाएँ देने का प्रयास किया है। साधारण, डीलक्स, एअर-कंडीशंड, सुपर डीलक्स रूप मेरी प्रगति के द्योतक हैं। डीलक्स बस में बैठने और थोड़ा लेटने की सुविधा है, तो एअर-कंडीशंड में वातावरण को वातानुकूलित करने की क्षमता है। सुपर डीलक्स में शंका निवारण का भी प्रबन्ध है।

रेलों से मैंने गति सीखी। गति के अनुरूप मैंने अनेक नाम धारण किए—पैसेंजर, फास्ट, सुपर फास्ट, नॉन-स्टॉप नाम मेरी गति के ही परिचायक हैं। मैं स्थान-स्थान पर सवारी लेती-उतारती चलती हूँ, तो पैसेंजर बस कहलाती हूँ। छोटे-मोटे स्टॉपों की परवाह न कर बड़े स्टॉपों पर क्षण-दो-क्षण रुकती हूँ, तो फास्ट कहलाती हूँ। 'लाँग रूट' पर जब चलती हूँ, तो अनेक बड़े स्टॉपों को उसी प्रकार नमस्कार करती हूँ, जैसे किसी अन्य कार्य में व्यस्त श्रद्धालु मनुष्य मन्दिर, मस्जिद या गुरुद्वारे में अन्दर न घुसकर बाहर से ही हाथ जोड़कर, कारणवश आप मुझ पर चढ़ न सकें, तो उदासी आपके चेहरे को गमगीन बना देती है। दिल्ली से जम्मू तक का लम्बा सफर मैं एक साँस में पूरा करती हूँ। रेल को आप मनचाही जगह रोक नहीं सकते, स्टेशन पर समय के अधिक ठहरा नहीं सकते। पर साहब, मुझे जहाँ चाहें, रोक लीजिए। बस-अड्डे पर आप कुछ खा-पी रहे हैं, तो आपकी प्रतीक्षा करूँगी, आपको छोड़कर जाऊँगी नहीं।

मेरा एक भयंकर रूप भी है—वह है मृत्यु से साक्षात्कार। यमराज का निमन्त्रण। मेरे अंग का एक अवयव 'ब्रेक' फेल हो जाए, मेरा चालक असावधान हो जाए या अन्य कोई वाहन अनचाहे प्रेम दिखाने लगे, तो टकराव के परिणाम के लिए जगत्-नियंता प्रभु ही रक्षक हैं। उस स्थिति में मैं बस नहीं, 'बेबस' हो जाती हूँ, असहाय और असमर्थ हूँ।

आइए, सानन्द, सोत्साह तथा सरलता से अपनी मंगलमयी यात्रा के लिए मुझे अपनाइए, मेरा निमन्त्रण स्वीकार कीजिए।

(69) रेलगाड़ी की आत्मकथा

संकेत बिंदु—(1) मेरा आविष्कार और भारत में आगमन (2) मेरी बनावट और स्थान का सदुपयोग (3) गति के अनुसार मेरे रूप (4) स्टेशन के प्रकार व समय की पाबंदी (5) धर्मनिरपेक्ष स्वरूप और जीवन में महत्त्व।

मेरा नाम रेलगाड़ी है। जार्ज स्टीफेन्सन मेरे आविष्कारक थे। यूरोप मेरी जन्म-भूमि है। मैं लोह-पथ गामिनी हूँ। अनेक दशकों तक केवल कोयला ही मेरा भोजन था, पानी मेरे प्राण तथा भाप मेरी शक्ति थी। वैज्ञानिक अनुसंधानों की प्रगति ने मेरी शक्ति के साधन बदले। अब मैं डीजल और बिजली द्वारा भी जीवन-शक्ति ग्रहण करने लगी हूँ।

भारत में मेरा आगमन 16 अप्रैल, 1853 को हुआ। इस शुभ दिन मैं 400 यात्रियों को

लेकर बम्बई से थाना के लिए चली थी। आज 147 वर्ष पश्चात् मेरा यौवन विकसित हुआ है। भाप, डीजल तथा बिजली, तीनों की सहायता लेकर मैं यात्रियों की सेवा कर रही हूँ। भारत में न केवल मेरा तेजी से विस्तार हुआ है, अपितु मेरी प्रौद्योगिकी में भी उल्लेखनीय विकास हुआ है। आज लगभग मेरे 10,800 प्रतिरूप 70 लाख से अधिक यात्रियों और 5.5 लाख टन सामान को लगभग 7000 रेल-स्टेशनों तक पहुँचाने की सेवा में रत हैं।

मूलत: मैं लौह-निर्मित हूँ और लौह-चरणों (चक्रों) से लोह-पथ पर चलती हूँ। मेरी दुम (डिब्बे : कम्पार्टमेंट्स) लकड़ी की कारीगरी का कौशल हैं। मैं विद्युत्-शक्ति से विभूषित हूँ, आरामदेह, गद्देदार सीटों से अलंकृत हूँ।

मेरा एक-एक डिब्बा वैज्ञानिक तथ्यों के सदुपयोग का प्रमाण है। स्थान का सदुपयोग करना कोई मुझसे सीखे। पूरे परिवार के लिए जो कुछ अनिवार्य है, एक डिब्बे में सभी कुछ प्राप्त है—बैठने के लिए बर्थ, सामान रखने अथवा विश्राम के लिए 'टाँड', क्रास वेंटीलेटेड विंडोज, प्रकाश के लिए बल्ब, हवा के लिए पंखे, शौचालय तथा हाथ-मुँह धोने के लिए वाश-बेसिन। इन सबके अतिरिक्त आपत्काल में मेरी गति अवरुद्ध करने के लिए हर डिब्बे में 'खतरे की जंजीर' भी है।

गति के अनुसार मेरे तीन रूप हैं—पैसेंजर, मेल, सुपरफास्ट। इसी के अनुसार मेरे डिब्बों के भी तीन विभाग हैं—द्वितीय श्रेणी, प्रथम श्रेणी तथा वातानूकूलित। बर्थ-व्यवस्था भी तीन प्रकार की है—लकड़ी के बैंच, गद्देदार सोफा तथा आरामदेह कुर्सियाँ। इसी प्रकार बैठने की तीन व्यवस्थाएँ हैं—सार्वजनिक व्यवस्था, 4 या 6 यात्रियों की सामूहिक व्यवस्था तथा एक-एक कमरा (कॉरीडोर) व्यवस्था। इसी प्रकार मेरा शुल्क भी त्रिरूप है—पैसेंजर का कम, मेल का लगभग डेढ़ गुना तथा सुपरफास्ट का लगभग ढाई गुना। अब तो राजधानी एक्सप्रेस, ताज एक्सप्रेस, शताब्दी एक्सप्रेस जैसे अति तीव्रगागी और सब प्रकार की सुविधाओं से सम्पन्न मेरे रूप भी बन चुके हैं। इनसे यात्रियों के समय की पर्याप्त बचत हो जाती है।

भारत में मेरा रूप एशिया में सर्वाधिक विराट् है, तो विश्व में विराट्ता की दृष्टि से मेरा चौथा स्थान है। मेरे लौह-पथ की लम्बाई मात्र भारत में 1,07,360 किलोमीटर है। इसमें 81,121 किलोमीटर बड़ी लाइन है, तो 22,201 किलोमिटर मीटर लाइन तथा 4038 किलोमीटर छोटी लाइनें हैं। (भारत 1999 : पृष्ठ 592)

मेरे प्रस्थान करने तथा ठहरने के निश्चित स्थान हैं। इन्हें स्टेशन कहते हैं। स्टेशन भी तीन प्रकार के हैं—छोटे ग्रामीण स्टेशन, बड़े नगरीय स्टेशन (जंक्शन) तथा महान् महानगरीय स्टेशन। ये स्टेशन मेरी व्यवस्था, सुरक्षा के लिए उत्तरदायी हैं। प्राय: स्टेशनों के चार भाग होते हैं—बाहरी प्रांगण, प्रवेश प्रांगण, प्लेटफार्म तथा पटरी। हर जंक्शन पर मेरे पहियों की देखभाल होती है, मुझे पानी प्रदान किया जाता है, हर विशिष्ट अवयव की जाँच होती है।

मैं समय की पाबन्द हूँ। समय की पंक्चुअलिटी को कोई मुझसे सीखे। मेरी गति 'घड़ी

की सुइयों' को खुले नेत्रों से देखती रहती है। आप एक सेकिण्ड विलम्ब से स्टेशन पहुँचे, मैं प्लेटफार्म छोड़ रही होती हूँ। यात्रा करते हुए आप किसी स्टेशन पर पानी पीने या जलपान करने उतरे और आपने मेरी चेतावनी की उपेक्षा करके एक क्षण का विलम्ब कर दिया, तो मैं आपकी प्रतीक्षा नहीं करूँगी, आपको चाहे कितनी भी हानि उठानी पड़े। किसी भी स्टेशन पर धक्का-मुक्की में चढ़ न सके या गंतव्य पर उतर न सके, तो मुझे क्षमा कर देना, क्योंकि मैं आपको छह बार चेतावनी देती हूँ—दो बार सीटी बजाकर और दो बार हरी झंडी दिखाकर मेरा अंगरक्षक 'गार्ड' आपको सावधान करता है तथा दो बार मैं सीटी मारती हूँ। मेरे लिए टाइम की कीमत है। मैं जानती हूँ कि मुँह से निकले शब्द और समय कभी वापस नहीं बुलाए जा सकते। तथा 'जो वक्त की जरूरतों को पूरा नहीं करते, वक्त उन्हें बर्बाद कर देता है।'

मैं सच्चे अर्थों में धर्म-निरपेक्ष हूँ। सभी जाति, धर्म, सम्प्रदाय तथा प्रांतों के लोग मेरी सवारी करते हैं। एक साथ बैठते हैं, हँसी-ठट्ठा करते हैं। कोई किसी से नफरत नहीं करता। मेरे स्टेशन 'असाम्प्रदायिकता' के जीवन्त प्रतीक हैं। यहाँ के नल, बैंच, शौचालय, प्लेटफार्म का सभी लोग् समान रूप में प्रयोग कर सकते हैं। धर्म-विशेष के कारण किसी को कोई रियायत नहीं, किसी पर कोई प्रतिबन्ध नहीं।

जीवन-व्यवस्था में जहाँ मेरा महत्त्वपूर्ण स्थान है, वहाँ मैं अत्यन्त शक्तिशाली भी हूँ। 'जो मुझ से टकराता है, चूर-चूर हो जाता है।' मुझे कोई हानि नहीं पहुँचती। बसें, कारें, ट्रक तो मेरे सामने चींटी से हैं। जीवन और जगत् से निराश मानव आत्महत्या करने मेरे लौह-पथ की शरण लेता है। कभी-कभी मेरी दो बहनों (रेलों) की टक्कर यात्रियों का रूप विकृत कर देती है, और उन्हें यमलोक पहुँचा देती है।

भ्रष्टाचार और चरित्र-हीनता आज के भौतिकवादी युग की सबसे बड़ी विकृतियाँ हैं। उसकी काली छाया ने मेरे स्वरूप को विकृत करने में भी कोई कसर नहीं छोड़ी। चोरी, डाके, हत्या, बलात्कार मेरे सौन्दर्य को बिगाड़ रहे हैं, तो मेरे डिब्बों से शीशे, पंखे, गद्दों की चोरी, कोयला-डीजल की चोरी मेरी काया को क्षीण कर रहे हैं। कार्य में प्रमाद करने, कार्य के प्रति उपेक्षा भाव या असावधानी के कारण रेलों की टक्कर कराने वाले अधिकारी लोक में मेरी निन्दा कराने पर तुले हैं।

(70) घरेलू नौकर की आत्मकथा

संकेत बिंदु—(1) घरेलू नौकर का परिचय (2) विमाता के अत्याचार और दुकान में काम (3) घरेलू नौकरी और दुनियादारी की समझ (4) मालिक के घर में चोरी (5) मकान-मालकिन का शंकित दृष्टिकोण।

मैले वस्त्र पहने, नीची निगाह किए, डाँट-फटकार सहता, अर्ध-बुभुक्षित यह कौन प्राणी है ? कौन है यह जो ब्राह्ममुहूर्त में उठने से लेकर मध्य रात्रि

तक कर्मनिष्ठ रहता है ? कौन है यह जीवधारी, जिसकी भूख की किसी को चिन्ता नहीं, प्यास की परवाह नहीं ?

'मैं हूँ', चौंकिए नहीं, मैं हूँ आपका घरेलू नौकर। आपके घर पर एक दशक से सेवारत हूँ। आपने तो कभी जानने की कोशिश ही नहीं कि कि मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ ? मेरे ऊपर क्या बीत रही है ? तीन दशक पूर्व हिन्दी की कवयित्री महादेवी जी ने 'रामा' से पूछा था।

शॉपेनहार के शब्दों में 'प्रत्येक आत्मकथा पीड़ा का इतिहास है, क्योंकि प्रत्येक जीवन महान् और छोटे दुर्भाग्य का क्रमिक विकसित रूप है।' महादेवी जी ने 'यामा' में कहा है—'अपने विषय में कुछ कहना प्राय: बहुत कठिन हो जाता है, क्योंकि अपने दोष देखना अपने आपको अप्रिय लगता है और उनको अनदेखा करना औरों को।'

गृह-स्वामी के पुत्रों का कर्णबेध संस्कार था। घर भर में खुशी का आलम। घर की सजावट, दिलों की रंगीनी, सम्बन्धियों की हँसी-ठट्ठा, मित्रों की चुहल, बहुत बड़ा मेला और उसमें था मैं अकेला। जितना जमघट, उतनी बोझ की बढ़ोतरी। दम मारने की फुरसत नहीं। शरीर टूटकर बेहाल। रात को अनचाहे नींद आ गई।

प्रगाढ़ निद्रा के स्वप्न में 15 वर्ष पूर्व का दृश्य सामने आ गया। मेरी जन्मदात्री की मृत्यु होने पर पिता ने दूसरा विवाह किया। विमाता आई। एक तो गरीबी, ऊपर से विमाता। मुझ पर अत्याचार शुरू हुआ। एक दिन यह मेरे मामा से न सहा गया। वह मुझे दिल्ली ले आया। वह बेचारा भी गरीब था। मामी झल्लाई—'अपने पेट को तो पूरा पड़ता नहीं, ऊपर से एक और।' पाँच वर्ष का बालक मामी की उस डाँट से डर गया। भय से सिहर उठा।

मामा ने मुझे एक चाय वाले की दुकान पर नौकर रखवा दिया। दो वक्त की रोटी, दो वक्त की चाय। प्रात: 5 बजे से रात दस बजे तक काम। गाँव का नासमझ, खेलने-कूदने वाला बच्चा और 17 घंटे की ड्यूटी। दिन में तारे नजर आने लगे। मरता क्या न करता। साथियों ने बेईमानी सिखा दी, मैं सब कुछ सीखता रहा। साथी कहते—'जब साला मालिक नहीं सोचता, दिल्ली-श्रम कानून हमें नहीं बचाता, तो हम ही वफादार, ईमानदार क्यों रहें ?' दो साल गुजर गए। मैं सात साल का हो गया।

नौकरी बदली। अब घर का 'मुंडू' बन गया। मालिक दयालु, किन्तु मालकिन जालिम। सुबह अँगीठी सुलगाने से लेकर रात को सबको निद्रा-देवी की गोद में सुलाने तक की जिम्मेवारी। यहाँ चाय दो-तीन बार मिलती तो थी, पर जब मालिक की कृपा हो जाए अथवा बच जाए। बची-खुची चीज मालकिन ऐसे प्यार से पिलाती-खिलाती, मानों मैं उनकी कोख से जन्मा हूँ। यहाँ एक सुख था। मालिक के दो बच्चे थे—एक मेरा हम उमर, दूसरा मुझसे छोटा। घड़ी-दो-घड़ी उनके साथ खेलने को मिल जाता था।

जीवन के संघर्षों ने अनुभव दिया, दुनियादारी समझने लगा था। भला-बुरा पहचानने

लगा था। अल्पायु में मन का विकास हो रहा था। बच्चों को पढ़ते देखकर मेरे मन में भी पढ़ने की लालसा जगी। मालिक के दोनों बच्चे मेरे भाई बन गए। मालकिन के स्वभाव में भी अन्तर आ गया था। दोपहर एक घंटा पढ़ने-लिखने को मिलने लगा। मेरे गुरु थे मेरे मालिक-पुत्र। मुझे हिन्दी पढ़नी और लिखनी आ गई। अब मैं घर का नौकर नहीं, उनका तीसरा पुत्र बन गया।

माँ मुझे इस दुनिया में अकेला छोड़कर चली गई थी। विमाता की याद मुझे कभी आती नहीं थी। साल में पिताजी के दो-चार पत्र घर की याद ताजा कर देते थे। उन पत्रों में सदा पैसों की फरमाइश रहती थी। मेरे चार सौतेले भाई-बहिन हैं, यह पिताजी की चिट्ठियाँ बताती हैं। वे मुझे नहीं जानते, मैंने उन्हें कभी देखा नहीं। विमाता की बीमारी, घर का दारिद्र्य, पिताजी की बेबसी, अब मुझ पर नगण्य असर डालते हैं।

मैं सुखी हूँ। सुख की नींद में करवट बदलता हूँ। मालकिन झकझोर रही है—'उठ पगले, दिन निकल आया। मेहमानों को चाय पिलानी है।' मैं उठा। अलसाई आँखों में कर्तव्य का बोध हुआ।

परिवार चाय पी रहा था। अचानक मालकिन ने बताया कि कल 'भात' में जो 1100 रुपए आए थे, वे थाली में नहीं हैं। शोर मच गया। खोजबीन शुरू हुई। कइयों पर शक हुआ, पर प्रश्न था कौन किसकी तलाशी ले? घर का वातावरण बदल गया। जो रिश्तेदार दो-चार दिन ठहरने वाले थे, शाम तक चले गए। चलते वक्त सब एक ही सलाह दे गए—'घर के नौकर से सावधान रहना। आज तो 1100 रुपए गए हैं, कल को जेवरों से हाथ न धो बैठो।'

मालिक-मालकिन और दोनों पुत्रों का विश्वास हिल गया। शंका ने मेरे प्रति उनका दृष्टिकोण बदल दिया। मुझे लगा, अब यहाँ नहीं रहना चाहिए। तुरन्त छोड़ता हूँ तो चोर कहलाऊँगा। अत: तीन मास पश्चात् गाँव चले जाने का निश्चय करके उससे एक मास पूर्व मालिक को सूचना दे दी। मेरा चिन्तन प्रखर हुआ। टेलीविजन पर 'तीसरी कसम' पिक्चर देखी थी। मैंने भी कसम खाई, अब 'घरेलू नौकरी नहीं करूँगा।'

मालिक-मालकिन तथा बंधुओं का परिवार छोड़ने से पूर्व अपने शरीर, वस्त्र, अटैची, पोटली की स्वयमेव चैकिंग करवाई। एक-एक जेब उल्टी करके दिखाई। मालकिन मेरे इस व्यवहार से रुआँसी हो गईं। उनकी आँखों में आँसू छल-छला आए।

तब उन्होंने मुझे घरेलू नौकरी से हटाकर मेरी पदोन्नति कर दी। अब मैं उनके व्यवसाय का कर्मचारी हूँ। आठ घंटे काम करता हूँ। मालिक का अत्यन्त विश्वसनीय कर्मचारी, पर घरेलू नौकर नहीं।

(71) कमीज की आत्मकथा

संकेत बिंदु—(1) शरीर की शोभा के रूप में (2) कपास के रूप में जन्म और परिवार (3) सूत के रूप में परिवर्तित (4) कपड़े के रूप में दुकान में (5) कमीज बनवाने के दर्जी की दुकान में।

तुम्हें क्या सम्बोधित करके पुकारूँ, समझ में नहीं आ रहा। अच्छा छोड़ो इस सम्बोधन के पचड़े को। मैं तो यह कहना चाहती थी कि तुम मुझे पहनकर खुश हो रहे हो न ? होगे भी क्यों नहीं ? तुमने शीशे के सामने खड़े होकर जो देख लिया है मुझे अपने शरीर पर धारण करके, तुम कितने अच्छे लग रहे हो। मेरी चमक से तुम्हारा चेहरा खिल उठा है।

तुम मेरे कारण प्रसन्नता अनुभव कर रहे हो, पर क्या तुमने कभी यह जानने की कोशिश भी कि की मैं कमीज के रूप में तुम्हारे शरीर की शोभा बढ़ाने के लिए कैसे उपस्थित हो सकी ?

सुनो ! मैं तुम्हें अपनी आत्मकथा सुनाती हूँ। तुम्हें विदित होना चाहिए कि कपास से सूत, सूत से कपड़ा और तब कमीज—यही है मेरी जीवनकथा का सूत्र, जो कृषक, मजदूर और दर्जी की सहायता से विकसित होता है।

कपास के रूप में मेरा जन्मस्थान पृथ्वी है। एक उपजाऊ खेत में अपनी माँ की गोद में पली। धूप और हवा के थपेड़ों से मेरी माँ ने मेरी रक्षा तो की, किन्तु उससे शरीर बिल्कुल सफेद पड़ गया। एक दिन पवन के झोंके ने मुझको माँ से अलग कर दिया। मैं माँ से अलग होकर बहुत दु:खी हुई। मैं मूर्छित-सी पड़ी थी कि अगले दिन एक स्त्री को आते देखा। उसने बड़े प्यार से उठाकर मुझे अपनी टोकरी में डाल लिया। यहाँ मुझे बड़ा आनन्द मिला, क्योंकि उस स्त्री की टोकरी में मेरी बहुत से अन्य बहनें भी थीं। हम सब खेलते-कूदते, हँसते-गाते उसके सिर पर चढ़कर उसके घर आए। भाग्य का खेल निराला है। मुझे प्रात: काल ही अपने साथियों के साथ एक मशीन में डाला गया। हम सब बहुत घबराए। इतने में मैंने देखा कि मेरा उभरा हुआ चेहरा और खिला हुआ शरीर पिस गया। मेरी हड्डियाँ मुझसे अलग कर दी गईं। इतने पर भी मेरे प्राण नहीं निकले।

इसके बाद हड्डी रहित शरीर को एक बोरे में बंद कर दिया गया। इस बोरे में स्थान कम था और साथी अधिक थे। हमें लट्ठ मार-मार कर नीचे दबाया गया। इस डर से कि कहीं हम निकल न भागें, उस बोरे के मुँह को सी दिया गया। यहाँ पड़े-पड़े मेरा दम घुट रहा था और मैं जिन्दगी के दिन गिनने लगी।

एक दिन आया, जब मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि हमें किसी वाहन में चढ़ाया गया है। हमारी आँखें बन्द कर दी गई थीं, अत: हम कुछ भी न देख सकते थे। हाँ, जब हमें खोला गया तो हमने अपने को एक नवीन स्थान पर पाया। यहाँ बड़ी-बड़ी मशीनों की आवाज से कान के पर्दे फटे जा रहे थे। कष्ट यहीं तक सीमित न रहा। हमें एक भारी मशीन के आगे धकेल दिया गया। अब मेरा स्वरूप बहुत बारीक होकर अनेक शाखाओं में

विभाजित हो गया और मैं सैकड़ों गज लम्बे सूत के रूप में परिणत हो गई। सूत के रूप में मुझे बड़ी-बड़ी रीलों में लपेटा गया। अब तक स्वरूप बदलने पर भी मेरे वर्ण (रंग) में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। अपना स्वच्छ श्वेत रूप मुझे बहुत अच्छा लग रहा था, किन्तु लोगों की रुचि के कारण मेरे कुछ भाग को भिन्न-भिन्न रंगों में रंग दिया गया। इसके बाद एक और मशीन की सहायता से श्वेत और रंग-बिरंगे धागों को अंग-प्रत्यंग के रूप में गूँथ दिया गया और देखते-ही-देखते अत्यन्त चमकीला एवं दर्शनीय वस्त्र तैयार हो गया। इस प्रक्रिया में मुझे बहुत ही कष्ट हुआ था, किन्तु अपना सुहावना रूप देखकर मैंने सन्तोष की साँस ली और पिछले कष्टों को भूल गई।

अब मुझे ऐसा लगा कि जिस मुहूर्त में मेरा जन्म हुआ था उसके सारे ही ग्रह बुरे थे। चैन की साँस भी न लेने पाई थी कि बड़ी-बड़ी गाँठों में बाँधकर न जाने कहाँ ले जाया गया। इस बार मुझे ऐसा कसा गया कि मैं बेहोश हो गई। जब मुझे होश आया तो मैंने अपने को करीने से सजी हुई एक दूकान पर पाया। यहाँ पर मुझे सब प्रकार की शांति मिली। ग्राहक मुझे खरीदने आते। अपने मुलायम हाथ मुझ पर फेर-फेरकर मेरी चिकनाई और रंग पर मोहित होते।

तुम्हें याद होगा कि एक दिन तुमने अपने पिताजी को विवश करते हुए मुझे खरीदने को कहा। तुम्हारे पिता तुम्हारी बात को टाल न सके। दूकानदार ने तुरन्त कैंची पकड़ी और मुझे काटने लगा। शरीर के कटने से मैंने कर-कर की आवाज कर अपना दु:ख प्रकट किया, किन्तु वहाँ मेरे दु:ख और दर्द की आवाज सुनने वाला कौन था?

अगले दिन वे मुझे एक दर्जी की दुकान पर ले गए। उसने मेरे चिकने सुघड़ शरीर के अनेक टुकड़े कर डाले—कोई छोटा, कोई चौड़ा, कोई लम्बा। इतना ही नहीं, उसने मुझे मशीन के नीचे रखकर खूब सुइयाँ चुभाईं। चुभाता-निकालता चुभाता-निकालता। इस प्रकार हजारों जगह सुइयाँ चुभाकर मुझे यातना दी गई। यहाँ तक कि उसने मेरी छाती भी छेद डाली। मनुष्य को एक सुई चुभ जाए तो कई दिन कष्ट का अनुभव करता है और मेरा शरीर छलनी की तरह छेदा गया, फिर भी मैं जीवित हूँ। मैं तब सुइयाँ चुभने की पीड़ा भूल गई, जब मैंने देखा कि दर्जी ने मेरे अंगों को आपस में जोड़ दिया। मेरा गला, हाथ सब ठीक बना दिए।

शायद मेरे जीवित रहने से दर्जी को चिढ़ आ गई। उसने थोड़े पानी के छींटे डालकर लोहे की एक बड़ी भारी चीज, जो आग-सी तप रही थी, मेरे ऊपर रख दी। मैंने सोचा कि अब मेरी जान अवश्य निकल जाएगी, क्योंकि इससे बच निकलने का कोई रास्ता नजर नहीं आ रहा था। उसने कभी मेरा पेट और कभी हाथ फैलाकर सीधा किया। मेरे कान और कलाई को इतने जोर से खींचा कि मैं डर गई कि अब कलाई और कान उखड़े। खींच-तान करने और आग से जलने की यह क्रिया कुछ देर तक चलती रही। अन्त में मैंने देखा कि इस खींच-तान और अग्नि से तपने पर मेरा स्वरूप निखर आया, मैं सुन्दर कमीज बन गई। अब मुझे अपने कष्टों की इतनी पीड़ा नहीं, अपितु प्रसन्नता है कि मेरे इस रूप से (कमीज से) तुम्हारी प्रशंसा हो रही है, तुम्हारा व्यक्तित्व जो बना है मेरे कारण।

(72) दीपक की आत्मकथा

संकेत बिंदु—(1) दीपक की आवश्यकता (2) मेरे जन्म की कहानी (3) मेरे बिना मंगलकारी कार्य अधूरे (4) अंधकार से प्रकाश की ओर प्रेरित (5) मेरे आलोचक।

पूजा आरम्भ करने से पूर्व पण्डित जी ने निम्नलिखित श्लोक पढ़ते हुए दीपक प्रज्वलित किया—

शुभं भवतु कल्याणमारोग्यं सुख-सम्पदः।
मम बुद्धि-विकासाय दीपज्योतिर्नमोऽस्तु ते॥

पण्डित जी के इस कार्य को देख एक युवक मुस्कराता हुआ बोला, 'पण्डित जी दिन के दिव्य प्रकाश में इस टिमटिमाते हुए दीपक की क्या आवश्यकता है ?'

युवक के इस कथन पर दीपक को अत्यधिक खेद हुआ। उसे प्राचीन संस्कृति का उपहास करने वाले युवकों की बुद्धि पर तरस आया और उसने अपना महत्त्व प्रकट करने के लिए अपनी आत्मकथा कहने का निश्चय किया।

जरा मेरे जन्म की कहानी तो सुनो। तुम्हें विदित होगा कि कितने कष्ट सहकर मैं अस्तित्व में आया हूँ। मेरी जननी मिट्टी है। वही मिट्टी, जिससे सारे संसार का निर्माण हुआ है।

जब मैं मिट्टी के रूप में भूमि पर विद्यमान था तब एक दिन मैंने अपने ऊपर कुदाल के प्रहार अनुभव किए। खोदने वाले ने मुझे बोरे में भरा और गधे की पीठ पर चढ़ा दिया। मैं जहाँ इस अनायास ही मिलने वाली सवारी का आनन्द ले रहा था, वहाँ मेरा मन भावी जीवन के सम्बन्ध में शंकाकुल भी हो रहा था। मेरी शंका सत्य सिद्ध हुई। गर्दभ-पृष्ठ से उतार कर मुझे प्रजापति (कुम्भकार) के आँगन में डाला गया। बोरे में बाहर निकलते ही डंडे के प्रहार से मेरे कण-कण अलग कर दिए गए। कुछ देर धूप में सूख जाने पर पुनः मेरी पिटाई शुरू हुई। बिल्कुल महीन पिस जाने पर छलनी की सहायता से सभी कंकड़ अलग कर दिए गए। फिर पानी डालकर मुझे गूँधा गया। पानी के मिश्रण से मैं कुछ शान्ति का अनुभव कर रहा था कि फिर डंडे के प्रहार होने लगे और तब तक मेरी पिटाई होती रही, जब तक मैं गूँधे हुए मैदा की तरह बिल्कुल कोमल नहीं हो गया। अब प्रजापति महोदय ने चाक पर रखकर अपने कुशल करों से मेरा और मेरे सैंकड़ों अन्य साथियों का निर्माण किया और सुखाने के लिए खुले स्थान में रख दिया। मैं खुश था और सोच रहा था कि अब कष्टों का अन्त हो गया है, किन्तु एक दिन जब हमें ढेर के रूप में एकत्र कर घास-फूँस और उपलों से ढक दिया गया, तब मेरा मन फिर आशंका से भर गया। मैं सोच ही रहा था कि अब न जाने क्या विपत्ति आने वाली है कि मुझे धुएँ की दुर्गन्ध और अग्नि के ताप का अनुभव हुआ। प्रजापति महोदय ने घास-फूँस और उपलों में आग लगा दी थी।

धीरे-धीरे धुँआ और तपन बढ़ते गए। इतनी असह्य वेदना मैंने पहले अनुभव नहीं की थी। अग्निशान्त होने पर जब मुझे राख के ढेर से बाहर निकाला गया, तब मैं अपने रूप को देखकर प्रसन्न हो उठा। मेरा वर्ण लाल हो गया था और मेरा शरीर भी परिपक्व हो गया था।

अभी मेरा जीवन अपूर्ण था। वह तो पात्र रूप ही था। पूर्ण दीपक बनने के लिए मुझे अन्य सहयोगियों की आवश्यकता हुई। तब तेल/घी और रुई की बाती मेरे सहयोगी बने। इसके पश्चात् अग्निदेव ने बाती को जलाकर मुझे प्रज्वलित दीप का रूप दिया।

मैं दीप्त होने वाला और प्रकाश देने वाला दीपक हूँ। सभी मंगल-कार्य मेरे बिना अधूरे हैं। मन्दिर में भगवान् की प्रतिमा की पूजा हो, गृह-प्रवेश हो, व्यापार का शुभारम्भ हो, पाणिग्रहण-संस्कार की बेला हो, सर्वत्र मुझे सम्मुख रखकर अर्चना की जाती है। मेरी उपस्थिति में ही भगवान् भक्तों को वरदान देकर मेरा महत्त्व बढ़ाते हैं। अनेक माँगलिक कार्यों में मुझे ही देवतुल्य मानकर अक्षत-कुंकुम से मेरी पूजा की जाती है।

भारत के महान् पर्व 'दीपावली' के अवसर पर मेरा महत्त्व स्पष्ट रूप में प्रकट हो जाता है। यह पर्व बताता है कि मानव अपने हार्दिक उल्लास को व्यक्त करने के लिए दीपक जलाता है। एक नहीं, अनेक दीपक; दीपों की आवली (पंक्ति)—दीपावली। जनश्रुति के अनुसार श्रीराम के वनवास से अयोध्या लौटने पर जनता ने अपनी प्रसन्नता प्रकट करने और श्रीराम का अभिनन्दन करने के लिए मेरे प्रकाश से नगर को जगमगा दिया था। यह उत्सव मेरी शक्ति का भी परिचय देता है। मैं अमावस्या के सूचीभेद्य अन्धकार को भी नष्ट कर सकता हूँ।

अन्धेरे में सबको राह दिखाना, अन्धकार से प्रकाश की ओर प्रेरित करना मेरा कर्तव्य है। मैं अपने कर्तव्य में रत हूँ, बिना किसी फल की कामना के। योगेश्वर भगवान् कृष्ण ने गीता में निर्दिष्ट 'निष्काम-कर्म' की प्रेरणा सम्भवतः मेरे निष्काम-कर्म से ही ली हो। मैं भी सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि जब तक मानव का स्नेह-रूपी तेल और भावना-रूपी बाती मेरे अन्दर विद्यमान रहेगी, मैं तब तक अपने कर्तव्य-पथ से च्युत नहीं होऊँगा। सचाई यह है कि जैसे बिना आत्मा के शरीर निष्प्राण है, उसी प्रकार बिना मानवीय स्नेह के मैं मात्र मिट्टी हूँ, निष्प्राण हूँ।

किन्तु मानव ने भी प्रलोभन देकर मुझे कर्तव्य-विमुख करने का प्रयास किया। किसी ने चाँदी का दीपक बनाया, किसी ने स्वर्ण से भी मेरा शृंगार किया, झाड़-फानूसों और मणि-मुक्ताओं से भी मुझे अलंकृत किया गया, किन्तु मैं सभी स्थितियों में अपने कर्तव्य-पथ पर अडिग हूँ, प्रकाश दिखाता हूँ।

जहाँ मेरे प्रशंसक हैं, वहाँ मुझे गालियाँ देने वाले भी कम नहीं। चोर मेरी भर्त्सना करते हैं। कामिनियाँ मुझसे ईर्ष्या करती हैं। कामी मेरा उपहास उड़ाते हैं। ईर्ष्या, द्वेष, उपहास और भर्त्सना से मैं डरने वाला नहीं। मैं तो विदेह जनक के समान निर्लिप्त रह कर अपने कर्तव्य-पथ पर स्थिर हूँ।

सरसों के तेल से युक्त मेरे शरीर से उत्पन्न ज्योति जहाँ प्रकाश फैलाती है, वहीं उसका धुआँ कीटनाशक और स्वास्थ्यवर्धक भी है। धुएँ से निर्मित काजल नयनों की ज्योति की वृद्धि के लिए न केवल सर्वश्रेष्ठ औषधि है अपितु आँखों के सौन्दर्य को भी बढ़ाता है।

मेरे जीवन से आज भी भारतीयों को प्यार है। भारतीय-संस्कृति और सभ्यता का प्रतीक जो हूँ मैं। श्रीमती महादेवी वर्मा कि शब्दों में—

यह मंदिर का दीप, इसे नीरव जलने दो।
दूत साँझ का, इसे प्रभाती तक चलने दो॥

(73) नदी की आत्मकथा

> **संकेत बिंदु**—(1) मेरे अनेक रूप और नाम (2) मेरे जल के अनेक रूप (3) मेरे तट तीर्थ और जल स्वास्थ्यवर्धक (4) मनोरंजन साधन के रूप में (5) मेरा प्रलयकारी रूप।

हिमगिरि से निकल, कलकल-छलछल करती, निरन्तर प्रवहमान निर्मल जलधारा—जी हाँ, 'मैं नदी हूँ।' पर्वतराज मेरी माता है, समुद्र मेरा पति है। माता की गोद से निकलकर कहीं धारा के रूप में और कहीं झरने के रूप में इठलाती-गाती आगे-आगे बढ़ती हुई वसुधा के वक्षस्थल का प्रक्षालन करती हूँ, सिंचन करती हूँ। अन्त में पति-अंक—(विशाल जल-निधि) में शरण लेती हूँ। 'रविपीतजलातपात्यये पुनरोधेन हि युज्यते नदी', कहकर मेरी प्रतिष्ठा की गयी है।

हृदय की विशालता देखकर मुझे 'नद' (दरिया) कहा गया। सदा-सतत बहाव के कारण मेरा 'प्रवाहिणी' नाम पड़ा। जल-प्रपात रूप के कारण मुझे 'निर्झरिणी' नाम से पुकारा गया। निरन्तर सरकने या चलते रहने के कारण मुझे 'सरिता' नाम दिया गया और अनेक स्रोत होने के कारण 'स्रोतस्विनी' कहा गया है। मेरे सर्वाधिक पवित्र (पुण्य) सलिल रूप को 'गंगा' कहा गया है। गंगा के समानान्तर बहने वाले रूप को 'यमुना' नाम से पहचाना गया। दक्षिण भारत के गंगा रूप को 'गोदावरी' कहा गया। शतद्रु (सतलुज) की सहायक होने के कारण मुझे ऋग्वेद में 'सरस्वती' नाम से पहचाना गया। पवित्रता की इस शृंखला में मुझे 'काबेरी', 'नर्मदा' तथा 'सिंधु' नाम भी दिए गए।

भूमि-सिंचन मेरा धर्म है। मुझसे नहरें निकालकर खेती तक पहुँचाई जाती हैं, सिंचाई से भूमि उर्वरा होती है, अनाज अधिक पैदा होता है। अन्न ही जीवों का प्राण है (अन्नं वै प्राणा: भूतानां—वेद)। अत: मैं जीवों की प्राणदात्री हूँ। मैं पेड़-पौधों का सिंचन करती हूँ और प्राणियों की प्यास बुझाती हूँ।

मेरी धारा को ऊँचे प्रपात के रूप में परिवर्तित करके विद्युत् का उत्पादन किया जाता है। विद्युत् वैज्ञानिक सभ्यता का सूर्य है। भौतिक उन्नति का मूल कारण है। आविष्कार और उद्योगों का प्राण है। यह दैनिक चर्या में मानव की चेरी है और बुद्धि-प्रयोग में वह मानवीय

चेतना का 'कम्प्यूटर' है। यदि मेरे जल से विद्युत् तैयार न हो तो उन्नति के शिखर पर पहुँची विश्व-सभ्यता वसुधा पर औंधी पड़ी कराह रही होगी।

मैं परिवहन के लिए भी उपयोगी माध्यम सिद्ध हुई हूँ। परिवहन समृद्धि का अनिवार्य अंग है। प्राचीनकाल में तो प्राय: सम्पूर्ण व्यापार ही मेरे द्वारा होता था, किन्तु आज जबकि परिवहन के अन्यान्य सुगम साधन विकसित हो चुके हैं, तब भी भारत-भर में नौका-परिवहन-योग्य जलमार्गों द्वारा ६६ लाख टन समान की ढुलाई की जाती है। यही कारण है कि मेरे तट पर बसे नगर व्यापारिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण समझे जाते हैं।

मेरे जल से प्राणी अपनी प्यास बुझाते हैं, बहते नीर में स्नान करके न केवल आनन्दित होते हैं, अपितु स्वास्थ्यवर्धन भी करते हैं। आज का अभिमानी नागरिक कह सकता है कि हम तो नगर-निगम द्वारा वितरित जल पीते हैं, जो नलों से आता है। अरे आत्माभिमानी मानव! यह न भूल कि यह जल मेरा ही है, जिसे संगृहीत करके रासायनिक विधि द्वारा शुद्ध तथा पेय बनाकर नलों के माध्यम से तुम्हारे पास पहुँचाया जाता है। इसलिए कहती हूँ—मेरा जल अमृत है और पहाड़ों से जड़ी-बूटियों के सम्पर्क के कारण औषधियुक्त है।

मेरे तट तीर्थ बन गए। शायद इसीलिए घाट को 'तीर्थ' कहा गया, क्योंकि तीर्थ भवसागर पार करने के घाट ही तो हैं। सात पुरियाँ—अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, कांची, अवंतिका तथा द्वारिका एवं असंख्य पवित्र धार्मिक स्थान मेरे तट ही पर बसे हैं। इतना ही नहीं वर्तमान भारत के 'बापू' महात्मा गाँधी और प्रथम महामात्य पं. नेहरू, लालबहादुर शास्त्री और श्रीमती इन्दिरा गाँधी की समाधियाँ भी मेरे ही यमुना तट को ही अलंकृत कर रही हैं। मेरे गंगा, यमुना, नर्मदा आदि रूप को 'मोक्षदायिनी' का पद प्रदान कर मेरी स्तुति गाई जाती है, आरती उतारी जाती है।

मेरे जल में स्नान पुण्यदायक कृत्य माना गया है। अमावस्या, पूर्णमासी, कार्तिक पूर्णिमा, गंगा दशहरा तथा अन्यान्य पर्वों पर मेरे दर्शन, स्नान तथा मेरे जल से सूर्य-अर्चन तो हिन्दू-धर्म में पवित्र धर्म-कर्म की कोटि में सम्मिलित हैं।

मैं मानव के आमोद-प्रमोद के काम आई, उसके मनोरंजन का साधन भी बनी। एक ओर मानव मेरी धारा में तैराकी का आनन्द लेने लगा, तो दूसरी ओर जल-क्रीडा से तो घंटों प्रसन्न रहने लगा। नौका-बिहार का आनन्द लेने के लिए तो वह मचल उठा। चाँदनी रात हो, समवयस्क हमजोलियों की टोली हो, गीत-संगीत का मूड हो, तालियों की लयबद्ध ताल हो, तो मुझमें नौका-विहार के समय किसका हृदय बल्लियों नहीं उछलेगा?

कल-कल के मधुर गान में, उठती-गिरती लहरों की तान में, बनते-मिटते जल-फफोलों की क्रीडा पर, तट पर विद्युत्-स्तम्भों से पड़ती जलीय विद्युत्-क्रीडा पर, जल राशि की कम्पायमान स्थिति पर, मछली-कछुओं के जल-नर्तन पर किसका हृदय न्यौछावर नहीं होता? प्रकृति के चितेरे सुमित्रानन्दन पंत का हृदय इसलिए गा उठा—

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तो मेरे गंगा रूप को देखते-देखते मुग्ध हो कहने लगे—

नव उज्ज्वल जलधार हार हीरक सी सोहती।
बिच-बिच छहराति बूँद मनु मुक्तामणि पोहती।।

मनोमुग्धकारी फूल के साथ कष्टदायक और चुभने वाले काँटे भी होते हैं। अति शीतल चन्दन से भी अग्नि प्रकट हो जाती है। अति वृष्टि के कारण बरसाती नाले जब मेरे पवित्र जल को गंदा करने लग जाते हैं, तो मेरा वक्ष फट जाता है। मैं अमर्यादित हो जल-प्लावन का दृश्य उपस्थित कर देती हूँ। तब धन, जन, सम्पत्ति, पेड़-पौधे, हरियाली, खेती और पशुधन का विनाश होता है। कुछ काल पश्चात् मेरी दु:खित आत्मा अपना रोष प्रकट कर पुन: अपने मंगलकारी रूप में परिवर्तित हो जाती है।

मानव मरणोपरान्त भी मेरी ही शरण में आता है। उसकी अस्थियाँ मुझे ही समर्पित की जाती हैं। आदिकाल से अब तक कितने ही ऋषियों, मुनियों, महापुरुषों, समाज-सुधारकों, राजनीतिज्ञों और अमर शहीदों के फूलों से मेरा जल उत्तरोत्तर पवित्र हुआ है। अत: मेरे पवित्र जल में डुबकी लगाने का अर्थ मात्र स्नान नहीं, उन पवित्र आत्माओं के सान्निध्य से अपने को कृतार्थ करना भी है।

(74) भिक्षुक की आत्मकथा

संकेत बिंदु—(1) पापी पेट के लिए (2) भिखारी बनने की कहानी (3) बिना परिश्रम के धन अर्जन (4) तीर्थ स्थलों में धर्म के नाम पर लूट (5) भिखारी जीवन त्याग कर नया जीवन।

पेट की क्षुधा-पूर्ति के लिए अन्न अनिवार्य है। जब भूख लगी हो, आतें कुलमुला रही हों, तब कोई कार्य अच्छा नहीं लगता। भूखा मरता, क्या न करता। पापी पेट सब कुछ करवा सकता है। मान और अभिमान, ग्लानि और लज्जा, ये सब चमकते हुए तारे उसकी काली घटाओं की ओट में छिप जाते हैं।

मैंने दरिद्र कुल में जन्म लेकर भी येन-केन प्रकारेण दसवीं कक्षा पास की। मैट्रिकुलेट कहलाया। माता-पिता की आँखें चमकीं—'हमारा पुत्र बाबू बनेगा।' बाबू बनने के लिए दर-दर की ठोकरें खाईं। किसी ने दया न दिखाई। माता-पिता की चमकी आँखों में अँधेरा छा गया। मेरा मन उदास रहने लगा।

मंगलवार का दिन था। प्रात: हनुमान जी के मन्दिर में गया। हनुमान् चालीसा का पाठ किया। मन में आया कि आज दिन-भर हनुमान् जी का जाप करूँ। शायद हनुमान् जी प्रसन्न होकर मुझे भी अपने कंधे पर बैठा लें। मन्दिर के प्राँगण में एक ओर बैठकर आँखें मूँद लीं। मन्द स्वर में हनुमान चालीसा का पाठ करने लगा। आधा घण्टे तक इसी प्रकार ध्यानमग्न रहा। आँखें खोलीं तो आश्चर्य का ठिकाना न रहा। मेरे सामने लोग पैसे फेंक गए थे। गिने तो पूरे पाँच रुपये थे। रुपये जेब के हवाले किए। दान-पुण्य हिन्दू जाति की विशेषता है। पात्र-कुपात्र के विचार का प्रश्न ही नहीं उठता। भगवान् बुद्ध को तो घोर तपस्या

के बाद ज्ञान प्राप्त हुआ था, मुझे तो आधा घण्टे में ही हनुमान् जी ने कंधे पर उठा लिया। अब मुझे भिक्षुक नाम मिल चुका था।

घरवालों से झूठ बोला। मेरी नौकरी मथुरा में लग गई है। कल ही जाना है। दूसरे दिन पहुँच गया कृष्ण की जन्म और क्रीडा-भूमि में। तीन दिन मथुरा के मन्दिरों का अध्ययन किया। यमुना-तट पर भक्तों का स्नान-ध्यान देखा। धर्म की विविध लीलाएँ देखीं। कहीं मोक्ष बाँटा जा रहा है, कहीं पुत्र लुटाए जा रहे हैं, कहीं-कहीं पाप धोए जा रहे हैं। सर्वत्र ढोंग और ठगी का बाजार गर्म है। कहीं चिमटा चमकता है, तो कही मुंडचिरा सिर पटकता है। 'उदरनिमित्तं बहुकृतवेशः।'

वहाँ मैंने देवताओं के नाम पर माल उड़ाते और मस्त जीवन जीते पंडितों को देखा, कूड़े-करकट की पूजा करती नारियाँ देखीं, सैयदों से दुआ माँगती युवतियों को देखा, पीपल, बेर, आक, बबूल को पुजते देखा। मन ही मन हँस पड़ा—'कृष्ण नाम की लूट है, लूटी जाए सो लूट।'

साधुओं के वेष में भिखारियों को बिना परिश्रम के धन प्राप्त करते देखकर मैंने भी वही पथ निश्चित किया। ब्राह्ममूहूर्त में उठकर यमुना में स्नान किया। एक स्थान पर चद्दर बिछाई और ध्यानमग्न होने का स्वाँग रचकर बैठ गया। कीर्तन करने लगा। नर-नारी आते, पैसे चढ़ाकर चल देते। दिन चढ़ने के साथ ही भगवान् भास्कर की उष्णता बढ़ने लगी। कीर्तन बन्द किया। पैसे इकट्ठे किए और चल पड़ा प्रातराश करने। इस प्रकार एक सप्ताह में सौ रुपए इकट्ठे हो गए। केवल दो घंटे का नाम-मात्र का परिश्रम करना पड़ा।

एक दिन घाट वाले पंडित जी ने मुझे बुलाया। परिचय पूछा। जब उसे पता चला कि मैं बनिया होकर भक्तों को लूट रहा हूँ, तो उन्हें क्रोध आ गया। 'पाखंडी', 'नीच' न जाने क्या-क्या 'पुण्य श्लोक' पंडित जी ने सुना दिए। मैंने कह दिया, 'पंडित जी, कल से यहाँ नहीं बैठूँगा।' यह सुनकर पंडित जी की सिट्टी-पिट्टी गुम। कहने लगे, 'नहीं-नहीं भई, तुम्हें घाट-देवता का हिस्सा तो देना ही चाहिए।' घाट भी देवता बन गया और पंडित जी दलाल ? पर मैं उसको पूजना नहीं चाहता था।

कभी पढ़ा था बहता पानी, रमता जोगी निर्मल रहता है। चल पड़ा मथुरा छोड़कर पावन नदियों के संगम पर, तीर्थराज प्रयाग की ओर। वहाँ के तथाकथित भक्तों, सन्तों को देखा। कोई भैरव का भक्त भोपा बनकर लूट रहा है, मुसलमान 'शंकरबमभोला' बनकर पुज रहा है, संपेरे, कंजड़ भगवा वस्त्र पहनकर साधु बने बैठे हैं। किसी के हाथ में खप्पर और गले में हड्डियों की माला है और अपने को किसी महान् ऋषि की सन्तान बता रहा है। कोई एक हाथ ऊपर उठाकर स्वर्ग पर चढ़ रहा है, तो अनेक विभूति लगाकर जटाएँ बढ़ाकर पहुँचे हुए महात्मा बने बैठे हैं। भक्तों के सम्मुख ये साधु ऐसा रूप बनाएँगे, त्योरियाँ बदलेंगे, स्वाँग भरेंगे कि यदि भक्त ने उनकी माँग पूरी न की तो झट शाप दे देंगे। मुँह में शाप और हृदय में पाप। यह सब देखकर मन प्रसन्न हुआ। सोचा यहाँ कमाई अच्छी होगी।

हुआ भी वही। हनुमान्-मन्दिर के बाहर प्रातः दो घंटे कीर्तन करने लगा। कंठ मधुर था, आय बढ़ने लगी। मन्दिर के पुजारी की त्यौरियाँ चढ़ने लगीं। हनुमान् जी ने एक छलाँग में सागर पार किया था, ये एक दिन एक ही श्लोक में मुझे काबू करना चाहते थे। जब मैं काबू न आया यो हनुमान् जी की सेना आ धमकी। लगा सभी जेबकतरे, जुआरी, शराबी हनुमान् जी के सैनिक हैं। मैंने हार मान ली। पण्डित जी के चरण-स्पर्श किए, विदा हुआ।

'स्थान भ्रष्टाः न शोभन्ते' की सूक्ति मन में गूँज गई। दोपहर को पण्डित जी के चरणों में पहुँचा। दण्डवत् प्रणाम किया। समझौता हुआ। अब मेरा कीर्तनस्थल मन्दिर का प्राँगण बना। दरियाँ बिछा दी गईं। मेरा आसन लगा दिया गया। माथे पर तिलक और मुँह के सामने माइक रख दिया गया। आमदनी सुरसा के मुँह की तरह बढ़ने लगी। समझौता था—'फिफ्टी-फिफ्टी।' अर्थात् पचास प्रतिशत मंदिर का।

एक दिन एक सज्जन आए। घर पर भोजन का निमन्त्रण दे गए। उनके घर भोजन करने गया। स्वादिष्ट भोजन किया। उनकी बैठक में थोड़ा विश्राम किया। बातचीत हुई। आत्म-परिचय दिया और भिक्षुक बनने का कारण बताया। वे सिहर उठे। लगा उनका आत्मीय मिल गया। उन्होंने अपनी फैक्टरी में तीन हजार रुपये मासिक वेतन पर नौकरी की पेश-कश की। अन्धे को क्या चाहिए—दो आँखें। मैंने स्वीकृति दे दी। मुझे भी भिक्षुक जीवन से घृणा हो गई थी।

(75) रुपये की आत्मकथा

संकेत बिंदु—(1) समस्त कार्य-व्यवहार (2) रुपये के जन्म के विषय पर जिज्ञासा (3) टकसाल में रुपये के रूप में जन्म (4) रुपये के रूप में अनेक उपयोग (5) जीवन भर एक जगह से दूसरी जगह यात्रा।

एक दिन विद्यालय में मैंने अपना शुल्क दिया तो अध्यापक ने मुझे एक रुपये के नोट स्थान पर रुपये का सिक्का दे दिया। वह मैंने अपनी कमीज की जेब में रख लिया। रात्रि को सोने से पहले जब मैं कमीज उतारते लगा तो वह रुपया जेब में से निकल फर्श पर गिरा। 'खनृन्' की आवाज हुई। मैंने उठा कर वह रुपया फिर जेब में रख लिया और सोचने लगा कि यह रुपया भी अजीब चीज है, जिसके द्वारा लोगों के समस्त कार्य-व्यवहार हो रहे हैं। व्यापार में तो रुपये के बिना कुछ हो ही नहीं सकता, अन्य कार्य भी इसी की सहायता से होते हैं। मुझे ध्यान आया कि आज फीस के रूप में भी कई विद्यार्थियों ने रुपए ही दिए थे। इसका रंग रूप भी तो कितना चमकीला और गोल है! कितना चमकीला है! और आवाज? मेरे कानों में वही 'खनृन्' का शब्द गूँजने लगा, जो उसके गिरने से हुआ था।

यह रुपया बना कैसे होगा? यह प्रश्न मेरे मस्तिष्क में उभरा। मैंने सोचने-समझने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु मेरी समझ में कुछ भी नहीं आया। रुपया कैसे बना, क़िसने बनाया,

कैसे यह मुझ तक पहुँचा, इन्हीं बातों पर सोचता-सोचता मैं निद्रा की गोद में पहुँच गया। थोड़ी देर बाद मैं स्वप्न में क्या देखता हूँ कि रुपया मनुष्य की वाणी में अपनी आत्म-कथा कर रहा है—

वह बोला—भोले बालक! तू मेरे विषय में जानना चाहता था तो ले सुन। तुझे मालूम होना चाहिए कि मेरी माता पृथ्वी है। मैं अपनी माता के गर्भ में चाँदी के रूप में आराम से पड़ा था कि एक दिन ऊपर से खटखट की आवाज आई। मैं चौंक पड़ा। थोड़ी देर में देखता क्या हूँ कि कोई मुझे खींचकर बाहर ले आया और माता से मेरा सदा के लिए सम्बन्ध-विच्छेद कर दिया। मैं माता से बिछुड़ने पर दु:खी था, किन्तु वह खुश था, और कह रहा था कि 'अहा! चाँदी मिल गई।' वास्तव में मुझमें अनेक धातुएँ मिली हुई थीं। मुझे उस समय पता लगा कि मेरा शरीर चाँदी का है। बाहर निकालकर मुझे अन्य साथियों सहित टकसाल में पहुँचाया गया।

इस टकसाल की चहल-पहल देखकर मुझे कुछ नवीन वातावरण का अनुभव हुआ, किन्तु जल्दी ही मुझे पता चल गया कि हम नरक-कुण्ड में आकर गिर पड़े हैं। वहाँ मुझे धधकती हुई भट्टी में डालकर खूब गर्म किया गया और उसके बाद बड़े-बड़े हथौड़ों से पीटा गया। कितनी ही चोटें पड़ने से मेरे ऊपर की मैल उतर गई और मैं साफ हो गया। मेरा रूप श्वेत चाँदनी की तरह चमक रहा था।

मैं तो समझा था कि अब मेरे दुखों का अन्त हो गया और अब मैं चैन से जीवन बिता सकूँगा। मुझे जरा भी ज्ञात नहीं था कि आगे इससे भी अधिक दुखों का सामना करना पड़ेगा। एक दिन सहसा मुझे बड़े-बड़े टुकड़ों के रूप में कड़ाहे में डालकर भट्टी के ऊपर रख दिया गया। अग्नि का ताप बढ़ता गया। असह्य वेदना होने लगी। आखिर भट्टी का ताप इतना बढ़ा कि मेरा ठोस रूप पिघलने लगा और कड़ाहा तरल पदार्थ से भर गया। वेदना की अत्यधिकता से मैं बेहोश हो गया। मुझे ज्ञात नहीं कि उसके बाद क्या हुआ? जब मुझे होश आया तो मैंने अपने आपको वर्तमान गोलाकार रूप में पाया। मेरे साथ मेरे जैसे हजारों साथी थे। मेरे एक ओर भारत सरकार का राजकीय चिह्न तीन सिहों की मूर्ति अंकित थी और दूसरी ओर मध्य में अनाज की बाली एवं गोलाई में अंग्रेजी व हिन्दी में 'एक रुपया' लिखा था। साथ ही मेरा जन्म-सन् भी अंकित था। अब मुझे ज्ञात हुआ कि मेरा नाम 'रुपया' रखा गया है। मैं अपने नए रूप पर स्वयं ही मुग्ध था।

कुछ समय पश्चात् हजारों साथियों सहित बक्सों में भरकर मुझे बैंक भेज दिया गया। वहाँ एक सज्जन आए और उन्होंने खजांची को 100 का नोट देकर चाँदी के रुपए माँगे। खजांची ने मुझे अन्य 11 साथियों सहित उनके हवाले कर दिया। उन व्यक्ति ने हमें ले जाकर एक संदूक में बन्द कर दिया। अगले दिन प्रात:काल हमें एक सुन्दर थाल में रख दिया गया। हम अपनी इस शोभा पर क्यों न मुस्कराते? थोड़ी ही देर में हमारे इस मालिक ने हमसे बिना पूछे वह थाल अपनी सुपुत्री के मंगेतर के हाथ में रख दिया। वह हमें प्राप्त कर बड़ा खुश हुआ। हम समझ गए कि हमारी यात्रा किसी को 'शगुन' देने से शुरू हुई

है। हमने अपने को बड़ा भाग्यशाली समझा कि दो प्राणियों को मिलाने में हमें माध्यम बनाया गया है।

यह आदमी कोई निम्न मध्यवर्ग का मालूम पड़ता था। इसने हमें घर में ले जाकर रख दिया। एक दिन उस घर में भीड़ इकट्ठी हुई। बड़ी खुशी का वातावरण नजर आ रहा था। हमारे नए मालिक स्वयं पूजा स्थल पर बैठे थे और हम सब साथी उनके पिता की जेब में छिपे हुए थे। उसी समय पण्डित जी ने कहा कि 'सवा रुपया गणेश जी के सम्मुख रख दो। बस, फिर क्या था! उसके पिता ने झट मुझे मेरे साथियों से अलग करके पूजा की थाली में गणेश जी के पास रख दिया। पूजा-समाप्ति के अनन्तर ब्राह्मण ने वहाँ से उठाकर मुझे अपनी जेब के हवाले किया। बाद में ब्राह्मण महोदय मुझे एक बनिए के पास ले गए। उसने मुझे उठाया और पेटी में डाल दिया। यहाँ मेरे बहुत से साथी पहले ही विश्राम कर रहे थे।

समझा तो यह था कि यहाँ कुछ दिन विश्राम करूँगा, किन्तु वह मेरी भूल थी। थोड़ी ही देर बाद उसने अपने लड़के की फीस में मुझे शिक्षक महोदय को दे दिया। इस प्रकार मैं एक हाथ से दूसरे हाथ और दूसरे हाथ से तीसरे हाथ में चलता गया। मैंने बहुत दूर-दूर की यात्रा की।

इन सब यात्राओं का आनन्द लेते-लेते और मार्ग की कठिनाइयों को सहते-सहते एक दिन मैं तुम्हारे अध्यापक के हाथ आ पड़ा। वे मुझे अपनी जेब में रखकर खुश नहीं थे। जहाँ तक मैं समझ पाया हूँ, मेरे कारण जेब भारी हो जाती है और लोग इतने नाजुक बदन हो गए हैं कि अब मेरा बोझ सहन करने में असमर्थ हैं। अत: उन्होंने झट तुम्हें देकर अपनी जान छुड़ाई। अब मैं तुम्हारी जेब में पड़ा हूँ। चाहे तो मुझसे प्यार करो, चाहे ठुकरा दो।

(76) टेलीफोन की आत्मकथा

संकेत बिंदु—(1) बातचीत का माध्यम (2) मेरे आविष्कार की कहानी (3) मेरे अंदर के यंत्र (4) मेरी कार्य-प्रणाली (5) उपसंहार।

जी हाँ, मैं टेलीफोन हूँ। हिन्दी-प्रेमी मुझे 'दूरभाष' के नाम से पुकारते हैं। मुझे कौन नहीं जानता? मेरे माध्यम से तुम दूर-से-दूर बैठे व्यक्ति से इस तरह बात कर सकते हो मानो वह तुम्हारे सामने ही बैठा हो और मध्य में कोई पर्दा या दीवार हो। इस समय मेरे परिवार की सदस्य-संख्या इतनी अधिक है कि उनकी गिनती करना कोई आसान काम नहीं। मेरे इन सम्बन्धियों ने एक कमरे को दूसरे कमरे से, एक नगर को दूसरे नगर से और एक देश को दूसरे देश से इस तरह जोड़ दिया है कि उनके बीच की दूरी मनुष्य को महसूस नहीं होती।

· मेरे जन्मदाता (आविष्कारक) का नाम अलेक्जेण्डर ग्राहम बेल है, लेकिन उससे पहले भी कई व्यक्तियों के मस्तिष्क में मेरी कल्पना हिलोरें मार रही थी। सबसे पले मेरा

मस्तक अपने पितामह हेमहोल्टज् के चरणों में श्रद्धा से नत होता है, जिन्होंने लहरों की वैज्ञानिक सच्चाई को दुनिया के सामने रखा। इस जर्मन वैज्ञानिक ने दो प्यालों के बीच एक तार रखकर दूर तक आवाज भेजने के कई परीक्षण किए। इस सम्बन्ध में उसने एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'सेन्सेशन ऑफ टोन' भी लिखी। इसमें प्रतिपादित सिद्धान्त ही मेरे जन्मदाता ग्राहम बेल की प्रेरणा के स्रोत सिद्ध हुए। सन् 1821 में चार्ल्स व्हीटस्टोन ने भी अपने अद्भुत यन्त्रों द्वारा दूर-दूर तक आवाज पहुँचाने के अनेक परीक्षण किए। जर्मनी के एक अन्य वैज्ञानिक फिलिप रेज ने भी इस दिशा में कुछ प्रयत्न किए, लेकिन उसका यंत्र मानव ध्वनि को अधिक दूर ले जाने में सफल नहीं हो सका। 19वीं सदी के मध्य तक मैं केवल कल्पना की ही वस्तु बना रहा। अन्त में मार्च, 1876 में ग्राहम बेल इस कल्पना को साकार रूप देने में सफल हुए।

ग्राहम बेल ने अमेरिका के फिलाडेल्फिया नगर में लगने वाली एक प्रदर्शनी में मुझे जनता के सामने प्रदर्शित करने का फैसला किया। एक दिन ब्राजील के राजा तथा रानी प्रदर्शनी देखने आए। उन्होंने मेरा प्रयोग करके देखा और अनायास ही उनके मुँह से निकल पड़ा, 'ओह भगवान्! यह तो बोलता है।' महान् अंग्रेज वैज्ञानिक कैल्विन ने भी मुझे उस नुमाइश में देखा। अब लोग मुझमें रुचि लेने लगे थे। कुछ ही समय में मेरा तथा मेरे जन्मदाता का नाम सारी दुनिया में फैल गया। जगह-जगह टेलीफोन-तार फैलाने का काम शुरू हो गया और बहुत ही कम समय में मैं सारी दुनिया में एक लोकप्रिय वस्तु बन गया।

मार्च, 1976 में मैं अपने जीवन की शताब्दी पूरी कर चुका हूँ। ग्राहम बेल ने पहले-पहल जिस रूप में मुझे जन्म दिया था उसमें और मेरे आज के रूप में बहुत अन्तर आ गया है। पहले तो मैं बहुत लम्बा तथा भारी था। अब तो कान से सुनने और मुँह से बोलने के लिए एक ही आला (यन्त्र) होता है, जिसे अंग्रेजी में 'रिसीवर' कहते हैं।

तुमने मेरा इतिहास तो जान लिया, लेकिन शायद अब यह जाने के लिए उत्सुक होगे कि मैं किस जादू के जोर पर तुम्हारी आवाज मीलों दूर बैठे तुम्हारे मित्र के पास ज्यों-की-त्यों पहुँचा देता हूँ।

जिसे तुम रिसीवर कहते हो उसके बोलने वाले हिस्से के अन्दर धातु की एक चपटी और पतली पतरी होती है, जिसे डिस्क या डायफ्राम कहते हैं। डायफ्राम के पीछे कार्बन के पतले तथा छोटे-छोटे टुकड़े पड़े रहते हैं। जैसे ही तुम बोलते हो, तुम्हारी आवाज से इसमें कम्पन पैदा होती है। यह कम्पन, जिसे तुम ध्वनि की तरंगें भी कह सकते हो, तारों के जरिए दूसरी ओर सुनने वाले के रिसीवर के कान वाले हिस्से में पहुँच जाता है। रिसीवर के हिस्से में बेलन के आकार का चुम्बक का एक टुकड़ा लगा होता है, जिसके आगे रेशम से ढके तारों से लिपटा हुआ नरम लोहे (Soft Iron) का टुकड़ा लगा रहता है। इसका आखिरी छोर तारों से जुड़ा रहता है और इसके बिल्कुल सामने लोहे की एक लोचदार

डिस्क होती है। जब बोलने वाले की आवाज का कम्पन रिसीवर के कान वाले भाग में जाता है और रेशम से लिपटे हुए तार से गुजरता हुआ सोफ्ट आयरन के टुकड़े में पहुँचता हैं तो उसमें चुम्बकीय प्रभाव पैदा हो जाता है। आवाज तेज होने पर यह प्रभाव अधिक होता है और धीमी होने पर कम। अब लोहे का टुकड़ा अपने चुम्बकीय प्रभाव के कारण लोहे की लोचदार डिस्क को अपनी ओर खींचता है, जिससे एक कम्पन पैदा होती है। यही कम्पन तुम्हें शब्दों के रूप में सुनाई देता है। क्यों, समझ में आया न यह जादू!

यह तो सामान्य रूप में मैंने तुम्हें अपनी कार्य-प्रणाली बता दी, लेकिन शायद तुम अधिक विस्तार से मेरी कार्य-प्रणाली जानना चाहोगे। तो सुनो, हर एक छोटे शहर में एक टेलीफोन एक्सचेंज (केन्द्र) होता है। इस एक्सचेंज का काम होता है कि जिस व्यक्ति से तुम बात करना चाहते हो उसका नम्बर मिला दे। जब तुम अपना टेलीफोन उठाते हो तो विद्युत् तरंगों द्वारा एक्सचेंज की घंटी बजने लगती है और आपरेटर (जो व्यक्ति एक्सचेंज में तुम्हारे नम्बर मिलाने के लिए बैठा रहता है) तुरन्त तुम्हारी बात सुनने के लिए रिसीवर उठा लेता है और तुम्हारे माँगे गए नम्बर को प्लग द्वारा तुम्हारे नम्बर से मिला देता है। अब ऊपर बताए गए सिद्धान्त के अनुसार तुम अपने मित्र से बात कर लेते हो। यह रही स्थानीय लोगों से टेलीफोन मिलाने की बात, लेकिन अगर तुम किसी दूसरे नगर में बैठे हुए मित्र से टेलीफोन मिलाओ तो उसके लिए तुम्हारे नगर का आपरेटर तुम्हारे मित्र का नम्बर मिला देता है। एक एक्सचेंज से दूसरे एक्सचेंज को तारों द्वारा जोड़ा जाता है। अब टेलीफोन के तार जमीन के अन्दर बिछाए जाने लगे हैं। जमीन के अन्दर बिछाये जाने वाले इन तारों को 'केबिल' कहते हैं।

अब मेरी कार्य-प्रणाली में पहले से काफी सुधार हो गया है। उदाहरण के लिए, बड़े-बड़े शहरों में अब एक्सचेंज से नम्बर माँगने की जरूरत नहीं है। अब यह कार्य मेरे नये मॉडल में लगे 'डायल' नामक अंग की सहायता से स्वत: ही हो जाता है। दूसरे शहरों के नम्बर भी डायल की सहायता से ही मिलाने का कार्य तेजी से फैलाया जा रहा है।

इतना ही नहीं, अब तो सेल्युलर सेवा रूप में मेरा विकास हो चुका है। इसके माध्यम से किसी भी व्यक्ति से चाहे वह कार में घूम रहा हो, किसी सभा में बैठा हो या मनोरंजन में संलग्न हो, जहाँ से दूरभाष बहुत दूर है, तब भी वह सेल्युलर फोन से सम्पर्क कर सकता है। अर्थात् सेल्युलर फोन द्वारा किसी भी व्यक्ति से कहीं भी सम्पर्क किया जा सकता है। इसे 'एअर टेल' (Air Tel) प्रणाली कहते हैं।

उपग्रह द्वारा मोबाइल टेलीफोन रूप में विकास ने तो मेरी काया ही पलट दी है। इस सेवा का नाम है जी.एम.पी.सी.एस.' (G.M.P.C.S.) यह सेटेलाइन फ्रीक्वेंसी पर काम करती है। इसके जरिए ऐसे दुर्गम क्षेत्रों में भी बात कि जा सकती है जो संचार सम्पर्क की दुनिया से सर्वथा अछूते हो। है न यह आश्चर्य की बात।

(77) प्रश्न-पत्र की आत्मकथा

संकेत बिंदु—(1) परीक्षार्थी की योग्यता की कसौटी (2) परीक्षा के लिए खाका तैयार (3) सावधानी और गोपनीयता (4) मेरे प्रति छात्रों की प्रतिक्रिया (5) मेरा सम्मान और अपमान।

परीक्षा और प्रश्नपत्र परीक्षार्थी की योग्यता की कसौटी हैं। प्रश्नपत्र को सही हल करने वाला व्यक्ति सफल माना जाता है और प्रश्नपत्र को हल न कर सकने वाला अयोग्य अथवा असफल घोषित कर दिया जाता है। वास्तव में अनेक बार तो यह भी देखा जाता है कि एक साधारण योग्यता का व्यक्ति अपने अनुकूल प्रश्न पूछे जाने के कारण प्रश्नपत्र को पूरी तरह हल कर लेता है और एक अत्यन्त योग्य व्यक्ति उसी प्रश्नपत्र को हल नहीं कर पाता या आंशिक रूप से हल कर पाता है। यही कारण है कि परीक्षा और प्रश्नपत्र का सामना करते हुए सब परीक्षार्थी घबराते हैं। अपनी घबराहट को दूर करने तथा अपने अन्दर आत्मविश्वास का भाव पैदा करने के लिए प्रायः परीक्षार्थी—चाहे वे स्कूल-कॉलेज के विद्यार्थी हों और चाहे किसी प्रतियोगितात्मक परीक्षा में सम्मिलित होने वाले, परीक्षा से पहले पिछले वर्षों के प्रश्न-पत्र अवश्य देखते हैं।

परीक्षा की तैयारी में लगे हुए परीक्षार्थी पिछले वर्षों के प्रश्न-पत्र देख रहे थे। उन्हें एक प्रश्न बहुत कठिन मालूम हुआ। वे उसकी आलोचना करने लगे और गालियाँ देने लगे। एक परीक्षार्थी ने प्रश्न-पत्र को उठाकर फेंक दिया। कुछ परीक्षार्थी फिर पढ़ने में लग गए। तभी उस दिशा से, जिधर प्रश्न-पत्र फेंका गया था, आवाज सुनाई देने लगी। परीक्षार्थी ने देखा, मालूम हुआ जैसे प्रश्न-पत्र कुछ कह रहा है। वे ध्यान से सुनने लगे। प्रश्न-पत्र कह रहा था—

प्यारे परीक्षार्थियो! कितना आश्चर्य है कि कठिन होने के कारण तुम मुझे गालियाँ दे रहे हो। जरा सोचो, इसमें मेरा क्या दोष है ? मैं तो वही हूँ जो परीक्षक ने बना दिया था। तब तुम मेरे बजाय परीक्षक को क्यों नहीं कोसते ? शायद तुम मेरी कहानी सुनकर आगे इस बात का ध्यान रख सको। इसलिए मैं तुम्हें अपनी आत्म-कथा सुनाता हूँ।

मुझे डी.ए.वी कॉलेज देहरादून के प्रोफेसर गणेश शर्मा शास्त्री ने बनाया था। उन्होंने पहले मेरा एक खाका-सा बनाया। एक कागज पर बीसियों प्रश्न लिखे। फिर उनमें अनेक बार संशोधन किए। सचमुच मैं भी उस समय परीक्षक के लिए सिर दर्द बना हुआ था। अन्त में मेरी रूपरेखा तैयार हो गई और मुझे एक साफ कागज पर सुन्दरता के साथ लिखा गया। तब मुझे रजिस्टर्ड-डाक से यूनिवर्सिटी में भेजा गया और वहाँ से मैं प्रेस में पहुँचा। वहाँ मेरे अन्य साथी भी विद्यमान थे। हमें पाकर प्रेस के कर्मचारी बहुत गर्व का अनुभव कर रहे थे। वे सोचते थे कि यदि वे हमारे प्रश्नों को बाहर बता दें अर्थात् ऑउट कर दें तो हजारों विद्यार्थियों की किस्मत बदल सकती है और वे भी बहुत-सा धन पा सकते हैं, किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया, कारण वे इसे पाप समझते थे।

प्रेस में मुझे अन्य साथियों सहित बड़ी सावधानी एवं गोपनीयता के साथ रखा गया। यही मेरे जीवन की सबसे बड़ी विशेषता है कि परीक्षा के दिन से पहले तक मुझे सर्वथा गुप्त रखा जाता है। मेरे सम्बन्ध में पूरी जानकारी मेरा निर्माण करने वाले परीक्षक के अतिरिक्त और किसी को नहीं होती। जिस प्रेस में हमें छापा जाता है, उसके कर्मचारियों को इस बात के लिए वचनबद्ध किया जाता है कि वे मेरे बारे में कोई बात बाहर नहीं निकलने देंगे। प्रेस में मैंने एक और बात अनुभव की और वह यह कि मुझे मुद्रित रूप देते हुए भी बहुत सावधानी बरती गई। दो व्यक्तियों ने मेरी प्रूफ की त्रुटियाँ दूर कीं। ये दोनों यही कहते थे कि प्रश्नपत्र में कोई अशुद्धि नहीं रहनी चाहिए, क्योंकि प्रश्नपत्र की एक अशुद्धि सहस्रों परीक्षार्थियों का अहित कर सकती है।

अब मैं छपकर तैयार हो गया था। मेरे साथ मेरे ही जैसे हजारों साथी और भी तैयार किये गये। हमें बण्डलों में बाँधकर फिर यूनिवर्सिटी भेज दिया गया, जहाँ से हम समय पर परीक्षा-केन्द्रों में पहुँचाए गये। यहाँ बन्द बण्डल में पड़े-पड़े मेरा दम घुट रहा था। एक दिन हमारे बण्डल खुलने की बारी आई और मेरी खुशी का ठिकाना न रहा। जब परीक्षा भवन के व्यवस्थापक ने निरीक्षकों के सामने हमारा बण्डल खोला तो बहुत दिनों के बाद मुझे खुली हवा में साँस लेने का अवसर मिला। मैंने इसके लिए भगवान् को धन्यवाद दिया।

अब हमें विद्यार्थियों में बाँटा जाने लगा। आपस में बिछुड़ने का हमें बड़ा दु:ख हो रहा था, किन्तु हम कर भी क्या सकते थे? मैं एक मन्त्री महोदय की सुपुत्री के हाथ में गया। भाग्य की बात है कि वह लड़की उन्हीं प्रश्नों को तैयार करके आयी थी, जो परीक्षक ने पूछे थे। लड़की ने मुझे पढ़ा, वह मारे खुशी के झूम उठी उसने मुझे चूमा और माथे से लगाया। मन-ही-मन वह मेरी खूब प्रशंसा कर रही थी।

विद्यार्थियो! अब शायद तुम सोच रहे होगे कि हम भी प्रश्न-पत्र क्यों नहीं बन गये, किन्तु ऐसा नहीं सोचना चाहिए। यह तो भाग्य की बात है। मेरे दूसरे साथी जो उन परीक्षार्थियों के हाथ में गये, जिनकी तैयारी नहीं थी और प्रश्न-पत्र को कठिन समझ रहे थे, उनके साथ क्या बीती होगी? इसका भी अनुमान करो। उनमें से कुछ को तो खूब निरादर का सामना करना पड़ा होगा, गालियाँ सुननी पड़ी होंगी और कुछ तो शायद टुकड़े-टुकड़े करके फाड़ डाले गये होंगे। सोचो, जिनकी यह दशा हुई होगी, उन्हें कितना दु:ख हुआ होगा।

हाँ, तो उक्त लड़की ने खुशी-खुशी सारे प्रश्नों के उत्तर लिखे। समय समाप्त होने पर परीक्षा-भवन से बाहर आई और उछलती-कूदती घर पहुँची। आज वह खुशी के मारे पागल हो रही थी। उसके ट्यूटर ने भी जब उसका प्रश्न-पत्र देखा तो वे भी प्रसन्न हुए। लड़की ने एक बार फिर मेरा गुणगान किया और पुस्तकों में रख दिया।

प्यारे विद्यार्थियो! पुस्तकों के ढेर में से आज मैं तुम्हारे हाथ लगा और अपमानित हुआ। आगे भी मुझे मान और अपमान मिलते रहेंगे, किन्तु मैं समझता हूँ कि मेरा मान-अपमान, मेरी अपेक्षा परीक्षार्थी के ज्ञान पर अधिक निर्भर रहता है।

(78) विद्यार्थी-जीवन

संकेत बिंदु—(1) चिंतामुक्त अध्ययन का काल (2) विद्यार्थी जीवन के प्रकार (3) पाठ्यक्रम से ज्ञानार्जन और विद्यार्थी का दायित्व (4) वर्तमान में विद्यार्थी भटकाव की ओर (5) छात्रों का कामवासना की ओर झुकाव और पारिवारिक समस्याएँ।

वह विशिष्ट समयावधि जिसमें बालक या युवक किसी शिक्षा-संस्था में अध्ययन करता है, विद्यार्थी जीवन है। जीविकोपार्जन की चिन्ता से मुक्त अध्ययन का कालखंड विद्यार्थी-जीवन है।

भारत की प्राचीन विद्या-पद्धति में 25 वर्ष की आयु तक विद्यार्थी घर से दूर ऋषि आश्रमों में रहकर विविध विद्याओं में निपुणता प्राप्त करता था, किन्तु देश की परिस्थिति-परिवर्तन से यह प्रथा लुप्त हो गई। इसका स्थान लिया विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों ने। इन तीनों संस्थाओं में जब तक बालक या युवक अध्ययनरत है, वह विद्यार्थी कहलाता है। उसकी अध्ययन अवधि में उसका जीवन 'विद्यार्थी-जीवन' नाम से अभिहित किया जायेगा।

दूसरी ओर, आधुनिक भारत में गुरुकुल तथा 'छात्रावास पद्धति' प्राचीन ऋषि-आश्रमों का समयानुसार परिवर्तित रूप है। इन गुरुकुलों और छात्रावासों में रहकर अध्ययन करने वाला विद्यार्थी सही अर्थ में विद्यार्थी-जीवन का निर्वाह करता है।

वर्तमान विद्यार्थी-जीवन भी दो प्रकार का है—(1) परिवार में रहते हुए विद्यार्थी-जीवन (2) छात्रावासीय छात्र-जीवन। परिवार में रहते विद्यार्थी-जीवन में विद्यार्थी परिवार में रहकर उसकी समस्याओं, आवश्यकताओं, माँगों को पूरा करते हुए भी अध्ययन करता है। नियमित रूप से विद्यालय जाना और पारिवारिक कामों को करते हुए भी घर पर रहकर ही पढ़ाई में दत्तचित्त होना, उसके विद्यार्थी-जीवन की पहचान है।

दूसरी ओर, छात्रावास में ही रहता हुआ वह पारिवारिक झंझटों से मुक्त पूर्णत: शैक्षिक वातावरण में रहता हुआ विद्यार्थी-जीवन का निर्वाह कर अपना शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक विकास करता है।

विद्यार्थी-जीवन उन विद्याओं, कलाओं तथा शिल्पों के शिक्षण का काल है, जिनके द्वारा वह छात्र-जीवन के अनन्तर जीविकोपार्जन करता हुआ पारिवारिक दायित्वों को वहन कर सके। अत: यह काल संघर्षमय संसार में सम्मानपूर्वक जीने की योग्यता निर्माण करने का समय है। इन सबके निमित्त ज्ञानार्जन करने, शारीरिक और मानसिक विकास करने, नैतिकता द्वारा आत्मा को विकसित करने की स्वर्णिम अवधि है, विद्यार्थी-जीवन।

निश्चित-पाठ्यक्रम के अध्ययन से छात्र ज्ञानार्जन करता है। समाचार पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तकों के अध्ययन तथा आचार्यों के प्रवचनों से वह मानसिक विकास करता है।

शैक्षणिक-प्रवास और भारत-दर्शन कार्यक्रम उसके मानसिक-विकास में वृद्धि करते हैं। प्रात:कालीन व्यायाम और सायंकालीन 'खेल' उसका शारीरिक विकास करते हैं। नैतिकता का आचरण उसके चरित्र को बलवान् बनाता है, आत्मा का विकास करता है।

प्रश्न यह है कि क्या आज का शिक्षार्थी सच्चे अर्थों में विद्यार्थी-जीवन का दायित्व पूर्ण कर रहा है ? इसका उत्तर नहीं में होगा। कारण, उसे अपने विद्यार्थी-जीवन में न तो ऐसी शिक्षा दी जाती है, जिसे जीवन-क्षेत्र में प्रवेश करते ही जीविका का साधन प्राप्त हो जाये और न ही उसे वैवाहिक अर्थात् पारिवारिक जीवन जीने की कला का पाठ पढ़ाया जाता है। इसलिए जब वह विद्यार्थी-जीवन से अर्थात् गैर-जिम्मेदारी से पारिवारिक-जीवन अर्थात् सम्पूर्ण जिम्मेदारी के जीवन में पदार्पण करता है तो उसे असफलता का ही मुँह देखना पड़ता है।

आज का विद्यार्थी-जीवन जीवन के लिए अनुपयुक्त बहु-विध विषयों का मस्तिष्क पर बोझ लादता है। ज्ञानार्जन के नाम पर पुस्तकों का गधे-भर का भार कमर पर लादता है। आज का विद्यार्थी-जीवन बेकार के ज्ञानार्जन का कूड़ा-दान बनकर रह गया है।

आज का विद्यार्थी-जीवन विद्या की साधना, मन की एकाग्रता और अध्ययन के चिंतन-मनन से कोसों दूर है। इसीलिए छात्र पढ़ाई से जी चुराता है, श्रेणियों से पलायन करता है। नकल करके पास होना चाहता है। जाली-डिग्रियों के भरोसे अपना भविष्य उज्ज्वल करना चाहता है।

स्कूल, कॉलिजों में उपयुक्त खेल-मैदानों, श्रेष्ठ खेल-उपकरणों तथा योग्यशिक्षकों के अभाव में 'गेम्स' विद्यार्थी-जीवन की पहुँच से परे होते जा रहे हैं। ऐसे में आज का विद्यार्थी-जीवन जीवन को स्वस्थ और स्फूर्तिप्रद बनाने में पिछड़ रहा है।

आज का छात्र विद्यार्थी-जीवन में राजनीति की वारांगना से प्रेम करता है। हड़ताल, तोड़-फोड़, जलसे-जलूस, नारेबाजी, जिन्दाबाद-मुर्दाबाद का पाठ पढ़ता है। जो पढ़ता है, वह उसे प्रत्यक्ष करता है। उसे कार्यान्वित करें क्यों न ? जब 18 वर्षीय विद्यार्थी को वोट देने का अधिकार देकर भारत-सरकार ने उसे राजनीति रूपी वारांगना से प्रेम करने का आशीर्वाद दे दिया है।

आज के छात्र का विद्यार्थी-जीवन प्रेम और वासना के आकर्षण का जीवन है। वह गर्ल्स फ्रेंड, बोयज़ फ्रेंड बनाने में रुचि लेता है। व्यर्थ घूमने-फिरने, होटलों-क्लबों में जाने में समय का सदुपयोग मानता है। वासनात्मक सम्बन्धों को उत्तेजित करने के लिए शराब और नशीले 'ड्रग्स' का उपयोग करता है। विद्यार्थी-जीवन में विद्या की अर्थी उठाता है। ज्ञानार्जन के पवित्र कर्म को कामाग्नि में होम करता है।

आज के तेजी से बढ़ते बदलते समय में महँगाई की मार ने, पारिवारिक उलझनों और संकटों ने, दूरदर्शन की चकाचौंध ने, सामाजिक विकृतियों और राजनीतिक अस्थिरता ने भारतीय जीवन से ही जीवन-जीने का हक छीन लिया है तब विद्यार्थी-जीवन उससे अछूता कैसे रह सकता है ? गिरते परीक्षा-परिणाम, फस्ट डिवीजन और डिस्टिंकशन की गिरती संख्या वर्तमान विद्यार्थी-जीवन के अभिशाप के प्रमाण हैं।

(79) विद्यार्थी और शिष्टाचार/ आदर्श विद्यार्थी

संकेत बिंदु—(1) विद्या-प्राप्ति लक्ष्य (2) जिज्ञासा बिना ज्ञान नहीं (3) संयमित आचरण, परिश्रमी और स्वाध्यायी (4) सादा जीवन और उच्च विचार और सामाजिकता (5) सदाचार और स्वावलंबन के गुण।

जीवन का प्रथम भाग (प्राय: पच्चीस वर्ष की वय तक) विद्योपार्जन का काल है। विद्याध्ययन करने का स्वर्ण काल है। भविष्य का श्रेष्ठ नागरिक बनने की क्षमता और सामर्थ्य उत्पन्न करने की वेला है। अत: विद्यार्थी को विद्या की क्षुधा शान्त करने तथा जीवन-निर्वाह योग्य बनाने के लिए आदर्श विद्यार्थी बनना होगा। आदर्श विद्यार्थी उत्तम विचारों का संचय करेगा, क्षुद्र स्वार्थों और दुराग्रहों से मुक्त रहेगा। मन-वचन-कर्म में एकता स्थापित कर जीवन के सत्य रूप को स्वीकार करेगा।

विद्यार्थी का लक्ष्य है विद्या-प्राप्ति। विद्या प्राप्ति के माध्यम हैं गुरुजन या शिक्षक। आज की भाषा में अध्यापक या प्राध्यापक। शिक्षक से विद्या-प्राप्ति के तीन उपाय हैं—नम्रता, जिज्ञासा और सेवा। गाँधी जी प्राय: कहा करते थे—'जिनमें नम्रता नहीं आती, वे विद्या का पूरा सदुपयोग नहीं कर सकते।' तुलसीदास ने इसी बात का समर्थन करते हुए कहा हैं, ***'यथा नवहिं बुध विद्या पाये।'*** अध्यापक के प्रति नम्रता दिखाइए और समझ न आने वाले प्रश्न को बार-बार पूछ लीजिए, उसे क्रोध नहीं आएगा। वैसे भी नम्रता समस्त सद्गुणों की जननी है। बड़ों के प्रति नम्रता दिखाना विद्यार्थी का कर्तव्य है, बराबर वालों के प्रति नम्रता विनयसूचक है तथा छोटों के प्रति नम्रता कुलीनता का द्योतक है।

जिज्ञासा के बिना ज्ञान प्राप्त नहीं होता। यह तीव्र बुद्धि का स्थायी और निश्चित गुण है। पाठ्य-पुस्तकों तथा पाठ्यक्रम के प्रति जिज्ञासा-भाव विद्यार्थी की बुद्धि विकसित करेगा और विषय को हृदयंगम करने में सहायक होगा। जिज्ञासा एकाग्रता की सखी है। अध्ययन के समय एकाग्रचित्तता पाठ को समझने और हृदयंगम करने के लिए अनिवार्य गुण है। पुस्तक हाथ में हो और चित्त हो दूरदर्शन के 'चित्रहार' में, तो पाठ कैसे स्मरण होगा?

'सेवा से मेवा मिलती है', यह उक्ति जग-प्रसिद्ध है। गुरुजनों की सेवा करके विद्या-प्राप्ति सम्भव है। सेवा का रूप आज ट्यूशन भी हो सकता है। यदा-कदा अध्यापक द्वारा बताया गया निजी काम भी हो सकता है या किसी अन्य साधन से अध्यापक को लाभ पहुँचाना भी हो सकता है। सेवा से विमुख विद्यार्थी अध्यापक का कृपा-पात्र नहीं बन सकता। इसीलिए तो संस्कृत की एक उक्ति में कहा गया है—***'गुरु शुश्रूषया विद्या पुष्कलेन धनेन वा।'*** अर्थात् विद्या गुरु की सेवा से या गुरु को पर्याप्त धन देकर अर्जित की जा सकती है।

विद्यार्थी को विद्या प्राप्ति के लिए अन्य आदर्श भी अपनाने होंगे। सर्वप्रथम उसे संयमित

आचरण अपनाना होगा। असंयमित आचरण उसके जीवन को कभी सफल नहीं बनने देगा। मुख्यत: खाने, खेलने और पढ़ने में छात्र को पूर्णत संयम बरतना चाहिए। अधिक भोजन से साँड, अधिक खेलने से अशिक्षित और अधिक पढ़ने से किताबी कीड़े बनते हैं। उचित मात्रा में खाने, नियमित रूप से खेलने और पढ़ाई के लिए निश्चित समय देने में ही विद्यार्थी-जीवन की सफलता है।

विद्यार्थी को परिश्रमी और स्वाध्यायी होना चाहिए। चाणक्य का कथन है—सुखार्थी को विद्या कहाँ, विद्यार्थी को सुख कहाँ? सुख को चाहे तो विद्या छोड़ दे, विद्या को चाहे तो सुख को त्याग दे।'

आदर्श विद्यार्थी को 'सादा जीवन और उच्च विचार' के सिद्धान्त का पालन करना चाहिए। उसे फैशनेबल वस्त्रों, केशविन्यास और शरीर की सजावट से बचना चाहिए। कारण, ये बातें विद्यार्थी के मन में कलुषित विचार उत्पन्न करते हैं, जिससे विद्यार्थी का न केवल विद्यार्थी-जीवन ही खराब होता है, अपितु आगे आने वाला स्वर्णिम जीवन भी मिट्टी में मिल जाता है। उच्च-विचार रखने से मन में पवित्रता आती है। शरीर स्वस्थ रहता है—स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क निवास करता है। यदि मस्तिष्क स्वस्थ है, तो संसार का कोई भी काम आपके लिए कठिन नहीं।

आदर्श विद्यार्थी को विद्यालय के प्रन्येक कार्यक्रम में भाग लेना चाहिए। इससे उसके जीवन में सामाजिकता आएगी। स्कूल की साप्ताहिक सभाओं से उसे किसी विषय पर तर्कसंगत, शृंखलाबद्ध और श्रेष्ठ विचार प्रकट करना आ जाएगा। 'रेडक्रास' की शिक्षा से उसके मन में पीड़ित मानव की सेवा करने का भाव पैदा होगा। 'स्काउटिंग' सामूहिक कार्य करने और देश के प्रति कर्तव्य निभाने का भाव उत्पन्न करेगी।

सदाचार और स्वावलम्बन आदर्श विद्यार्थी के अनिवार्य गुण हैं। यदि उसमें सदाचार नहीं तो वह अपना विद्यार्थी-जीवन तो क्या, शेष जीवन भी सुन्दर और सफल नहीं बना सकता। दूसरे, उसमें स्वावलम्बन का भाव कूट-कूटकर भरा होना चाहिए। अपना काम स्वयं करने की आदत यदि विद्यार्थी-जीवन में नहीं पड़ी, तो भविष्य में पड़नी कठिन है। परावलम्बी मनुष्य को कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, यह दिन-प्रतिदिन के व्यवहार में हम देखते हैं। अत: एक आदर्श विद्यार्थी को स्वावलम्बी बनना चाहिए।

संस्कृत-साहित्य में आदर्श विद्यार्थी के पाँच लक्षण बताए गए हैं—

काक-चेष्टा वको-ध्यानं, श्वान-निद्रा तथैव च।
अल्पाहारी, गृहत्यागी, विद्यार्थी पंच-लक्षणम्॥

विद्या-प्राप्ति के लिए कौए जैसी सतर्कता चाहिए, एकाग्रचित्तता बगुले के समान होनी चाहिए, जरा-सी आहट पाकर टूट जाने वाली कुत्ते जैसी निद्रा होनी चाहिए, कम भोजन करना चाहिए तथा घर से दूर रहना चाहिए।

प्राचीन काल में ये लक्षण विद्यार्थी के लिए आदर्श प्रस्तुत करते रहे हों, किन्तु आज के समाज और संसार में अल्पाहारी और गृहत्यागी विशेषण अनुपयुक्त हैं।

वस्तुतः आदर्श विद्यार्थी को विनम्र, जिज्ञासु, सेवा-भाव से युक्त; संयमी, परिश्रमी, अध्यवसायी तथा मिलनसार होना चाहिए। जीवन की सादगी और विचारों की महत्ता में उसका विश्वास होना चाहिए।

(80) एक विद्यार्थी की डायरी

संकेत बिंदु—(1) दैनिक कार्यों का विवरण (2) डायरी के विभिन्न विषय (3) डायरी लेखन में निष्पक्षता (4) विद्यार्थी के चरित्र का आईना (5) कार्यक्षमता और कार्यकौशल का परिचायक।

महत्त्वपूर्ण दैनिक कार्यों के विवरण से युक्त पुस्तिका डायरी कहलाती है। स्वानुभूति के अंतरंग भावों का दैनिक लेखा-जोखा डायरी है। प्रतिदिन देखी हुई दुनिया और भोगे हुए अनुभवों की अभिव्यक्ति का माध्यम डायरी है।

रोज़नामचा, दैनिकी, दैनन्दिनी डायरी के पर्यायवाची हैं। डायरी में लेखक के मन पर पड़े प्रभाव उसी दिन लिखित रूप प्राप्त कर लेते हैं, अत: डायरी उसके लेखक के व्यक्तित्व प्रकाशन का सर्वाधिक प्रामाणिक माध्यम है। स्पष्ट कथन, आत्मीयता तथा निकटता डायरी की विशेषताएँ हैं।

विद्यार्थी का कार्यक्षेत्र सीमित है, किन्तु अनुभव-संसार विशाल और विस्तृत है। आज भारत में अप्रत्याशित घटनाओं का बाहुल्य है। अतः विद्यार्थी की डायरी सीमित क्षेत्र में भी अनुभूति की दृष्टि से व्यापकता लिए हो सकती है।

विद्यालय में कोई अनपेक्षित प्रसंग आ गया। विद्यालय जाते मार्ग में कोई दुर्घटना देख ली, बस में चढ़ते हुए जेब कट गई, राशन की दुकान पर कोई अनहोनी बात हो गई, घर का सौदा खरीदते हुए किसी वस्तु की प्रामाणिकता पर सन्देह हो गया, खेल के मैदान में किसी खिलाड़ी से तू-तू मैं-मैं हो गई, विवाह या किसी उत्सव में भाग लेते हुए सुरा-सेवन और भंगड़ा का अभिशाप देख लिया, घर के वातावरण में किसी दिन कड़वाहट आ गई, सगे-सम्बन्धी का आगमन हो गया, अध्यापक से दण्ड या प्रशंसा मिली, ये सभी विद्यार्थी की डायरी के विषय हो सकते हैं।

श्रेष्ठ डायरी-लेखक से निष्पक्षता की आशा की जाती है, किन्तु एक विद्यार्थी से तो निष्पक्षता की आशा बिल्कुल नहीं हो सकती। घटना विशेष का उसके मन पर जिस रूप में प्रभाव पड़ा है, वह अपनी डायरी में उसी रूप में अभिव्यक्त करेगा। उदाहरण के लिए विद्यार्थी विद्यालय से प्राप्त 'गृह-कार्य' करके नहीं ले गया। अध्यापक ने पूछा तो कह दिया, 'कापी घर पर भूल आया।' अध्यापक विद्यार्थी की नस-नस को पहचानता है। इसलिए बोला—'अच्छा, तुम, कापी घर भूल आए हो?

'हाँ, सर।'—लड़के ने उत्तर दिया।'

'आज शाम को जब तुम्हारे पिताजी दफ्तर से आएँ, तो कहना माताजी नमस्ते। वे चौकेंगे! पूछेंगे—क्या कहा ? तुम कह देना 'भूल से कह गया।' अध्यापक ने बड़ी संजीदगी से कहा।

लड़का पानी-पानी हो गया और सम्पूर्ण कक्षा ठहाका मारकर हँस पड़ी।

विद्यार्थी चाहे तो इस घटना को अपने झूठ बोलने का दण्ड भी लिख सकता है, किन्तु वह वैसा न कर अध्यापक पर क्रोध ही प्रकट करेगा।

इसी प्रसंग में एक और उदाहरण प्रस्तुत है। अध्यापिका ने अपनी अलमारी से डायरी लाने के लिए किसी छात्रा को भेजा। छात्रा ने अलमारी से डायरी ली, पर डायरी देखते ही उसे जैसे साँप सूँघ गया। डायरी पर लिखा था, 'श्रीमति राजकुमारी कांत' उसने अध्यापिका को कुछ नहीं कहा और रात को अपनी डायरी में लिख लिया, ''मैडम को 'श्रीमती' लिखना तो आता नहीं, बनी हैं अध्यापिका।''

अधिकांश विद्यार्थी अपनी डायरी का उपयोग महत्त्वपूर्ण प्रसंगों के वर्णन में न करके स्कूल में बताए गए 'होम टास्क' के विवरण में करते हैं। प्रत्येक कालांश में बताए गए गृहकार्य को नोट करते जाते हैं। दूसरे, साप्ताहिक टाइमटेबल, परीक्षा की सूचनाएँ, परीक्षा-तिथि उसकी डायरी के विषय होते हैं। इनके अतिरिक्त कभी किसी पुस्तक को खरीदने का आदेश हुआ तो वे उस पुस्तक का नाम, लेखक का नाम, मूल्य आदि अपनी डायरी में नोट कर लेंगे।

विद्यार्थी की डायरी स्वयं उसके के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण, अनिवार्य तथा उपयोगी दस्तावेज है। अत: लिखने में उसे सचेत रहना चाहिए। मन में आलस्य और प्रमाद नहीं करना चाहिए। अनजाने में या विवशतावश कोई बात वह डायरी में लिख नहीं पाया, तो दूसरे दिन उसे लिख लेनी चाहिए।

विद्यार्थी की डायरी विद्यार्थी के चरित्र का दर्पण है। साफ-सुथरी डायरी रखने वाला विद्यार्थी जीवन में स्वच्छता का पक्षधर होगा। मैले वस्त्र, बिना प्रेस किए कपड़े, गन्दा भोजन या गन्दे स्थान पर कोइ चीज खाना वह पसन्द नहीं करेगा। डायरी में अत्यधिक काँट-छाँट करने वाला विद्यार्थी मति-भ्रम का शिकार होगा। अशुद्ध लिखने वाला छात्र पढ़ाई-लिखाई में कमजोर होगा।

विद्यार्थी की डायरी विद्यार्थी की कार्यक्षमता तथा कार्यकौशल का परिचायक है। विद्यार्थी को दैनन्दिन कितना काम मिलता है, कितना वह कर पाता है, किस कौशल से अपने काम को पूर्ण करता है, यह उसकी डायरी बताएगी।

डायरी विद्यार्थी को गीता का संदेश देती है। वह विद्यार्थी को आलस्य, निद्रा, प्रमाद, संकोच को त्यागकर स्कूल में बताए गए काम की पूर्ति के लिए प्रेरित करती है। उसे चैन से बैठने नहीं देती, रात को आराम नहीं करने देती। 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' से मन को प्रेरित करती रहती है।

विद्यार्थी की डायरी उसके नेत्र हैं। नेत्र ज्ञान के द्वार हैं। उसकी डायरी कामधेनु गाय

है, जो उसे शैक्षणिक प्रगति का वरदान देती है। उसकी डायरी उसका कोष है, जो कोष का प्रयोग करते हैं, सफलता उनके चरण चूमती है। जो कोष को गाड़कर रख देते हैं, वे नष्ट हो जाते हैं। डायरी का प्रयोग अमृत-पान के समान है और बिना प्रयोग के यह विष बन जाती है। यही कारण है कि जो विद्यार्थी डायरी की ओर ध्यान नहीं देते और अपने समय को व्यर्थ नष्ट करते हैं, वे असफलता का मुँह देखते हैं।

इस प्रकार विद्यार्थी की डायरी उसका अमूल्य धन है। विद्यालय-क्षेत्र से बाहर, वह उसकी मित्र है, गुरु है और है पथ-प्रदर्शक।

(81) विद्यार्थी का अनुभव संसार

संकेत बिंदु—(1) अनुभूति निर्माण के तत्त्व (2) विद्यालय और परिवार के अनुभव (3) अनुशासन और तर्क संगत ढंग से विचार व्यक्त करना (4) उद्दंडता का अनुभव (5) राजनीति का अनुभव।

सोचने-विचारने की प्रक्रिया विद्यार्थी के मन में सदा रहती है। कारण, विद्यार्थी जो कुछ भी अपने आस-पास देखता है, उससे मन में जो बोध होता है, उसकी परछाईं (प्रतिमूर्ति) को मन में घुमाता रहता है। बोध, ध्यान और विचार मिलकर विद्यार्थी की अनुभूति का निर्माण करते हैं।

इस दृष्टिकोण को अपनाते हुए शरत्चन्द्र की मान्यता है, 'जीवन में उम्र के साथ-साथ जो वस्तु मिलती है, उसका नाम है अनुभव।' डिजरायली भी मानते है 'Experience is the child of thought & thought is the child of Action.' अनुभव विचार की संतान है और विचार कर्म की। (विविअनग्रे 5/1)

बिना ठोकर खाए आदमी की आँख नहीं खुलती। कष्ट सहने पर ही अनुभव होता है। दूसरों के अनुभव जान लेना भी एक अनुभव है। अनुभव एक कला है, जिसकी प्राप्ति के लिए पर्याप्त मूल्य चुकाना पड़ता है, परन्तु उससे जो शिक्षा मिलती है, जो ज्ञान प्राप्त होता है, वह किसी अन्य साधन द्वारा सम्भव नहीं।

विद्यार्थी-जीवन मानव-जीवन का स्वर्णिम काल है। भविष्य निर्माण की तैयारी का समय है। जीवन में शिक्षण का समय है। अनुभव प्राप्त करने का सु-अवसर है। अनुभवों के सोपान पर चढ़कर ही विद्यार्थी जीवन के कंटकाकीर्ण मार्ग को सफलता के पुष्पों से सुगन्धित कर सकता है।

विद्यार्थी का संसार परिवार और विद्यालय तक ही सीमित रहता है। वह इस सीमित क्षेत्र में रहकर असीम ज्ञान प्राप्त करता है। कूप-मंडूक होते हुए भी वह समुद्र-सा ज्ञान रखता है। अनुभव-हीन होते हुए भी जीवन को विषम-स्थिति में डालकर अनुभव प्राप्त करता है।

विद्यार्थी परिवार में रहता है। माता-पिता, भाई-बहन तथा आने वाले सगे-सम्बन्धियों

के व्यवहार से वह शिष्टाचार सीखता है। परिवार की समस्याओं को सुलझाने के प्रयास में रहते कुटुम्ब के वृद्धजनों के चिन्तन को देखता है, उन्हें समझने का प्रयास करता है। सब्जी-फल से लेकर वह राशन तक खरीद कर लाता है। औषधि लाने से लेकर अत्यधिक बीमारी से जूझने और उपचार के उपाय सीखता है। राशन और मिट्टी के तेल की पंक्ति में खड़े होने का अनुभव प्राप्त करता है। इस प्रकार जीवन के दैनिक व्यवहार उसे विविध अनुभूति प्रदान करते हैं।

अनुशासन का अनुभव विद्यार्थीकाल की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। अनुशासन भंग करने के कारण प्राप्त दण्ड की अनुभूति अनेक बार जीवन-दिशा में परिवर्तन कर देती है। यह कटु अनुभव जीवन-भर मस्तिष्क पर हावी रहता है।

खेल-कूद में जहाँ उत्साह, साहस, धैर्य, स्फूर्ति, अनुशासन, टीम-स्प्रिट, खेल-भावना आदि का उदय होता है, वहाँ जीवन-संघर्ष में हँसते-हँसते जूझने की शक्ति की अनुभूति होती है।

विद्यालय की साप्ताहिक सभाओं से किसी विषय पर तर्क-संगत, शृंखलाबद्ध और श्रेष्ठ विचार प्रकट करने का अनुभव होता है, तो रेडक्रास सोसायटी के कैम्पों से पीड़ितों की सेवा करने का तथा स्काउटिंग कैम्पों से कर्तव्य के प्रति जागरूक रहने की अनुभूति होती है। भारत-भ्रमण में जीवन के कष्टों की झाँकी देखता और अनुभव करता है। समय पर भोजन न मिलने की अकुलाहट, विश्राम न मिलने की व्यथा, शरीर को स्वच्छ न रख पाने की पीड़ा, स्थान-स्थान पर भटकने का कष्ट, भावी जीवन में होने वाले दु:ख-दर्द, कष्ट-पीड़ा को सहने का पूर्वाभ्यास तो पर्यटन में हो ही जाता है।

छात्राओं का अनुभव-संसार छात्रों की अपेक्षा अधिक विस्तृत और जीवनोपयोगी होता है। वे घर-गृहस्थी के अनुभव विद्यार्थी-जीवन में प्राप्त कर लेती हैं। साधारण भोजन बनाने से लेकर विविध व्यंजन बनाने तक; सीने-पिरोने से लेकर कलात्मक चित्रकारी करने तक; नृत्य-संगीत, विविध वेश-भूषा और शरीर की सजावट को वे गृहस्थ-जीवन में प्रवेश से पूर्व ही सीख लेती हैं। दैनन्दिन कार्यों से उनकी अनुभूति परिपक्व होती है।

उच्छृंखलता और उद्दंडता की अनुभूति भी विद्यार्थी के अनुभव-लोक की सीमा में आती है। कुसंगति के कारण धूम्रपान करना, गुरुजनों का निरादर, माता-पिता की अवज्ञा, निरर्थक सैर-सपाटे, गुण्डों की-सी हरकतें, सहपाठियों से मार-पीट, गृह-कार्य की अवहेलना, सामाजिक कुरीतियों की अनुभूति प्रदान करती हैं। इसी अनुभूति के बल पर जीवन-क्षेत्र में जब वह प्रवेश करता है, तो 'दादा' बनता है या फिर 'समाजद्रोही।'

मित्रों की चीज चुराने, चुराई चीज छिपाने, पकड़े जाने पर बहाने ढूँढ़ने, दूसरों पर दोषारोपण करने की कुप्रवृत्ति भी छात्र-जीवन में ही पड़ती है। उसी अनुभूति के कारण वह जीवन में झूठ बोलता है, अन्यों पर दोषारोपण करता है।

राजनीति की नेतागिरी की अनुभूति भी छात्र-जगत् की सीमा में आती है। राजनीति का प्रथम लक्षण है पार्टी बाजी। छात्र दल-निर्माण करता है। स्कूल या कॉलिज के विभिन्न

पदों का चुनाव लड़ता है। पैसा बर्बाद करता है, धुआँधार भाषण देता है। दूसरी पार्टी के विद्यार्थियों से झगड़ा करता है, लड़ता है और फँसता है दलों की दलदल में। राजनीति करने की इच्छा ने उसे हड़ताल करने की अनुभूति प्रदान की, बड़ों का अनादर करना सिखाया, बसों को जलाने और सरकारी सार्वजनिक सम्पत्ति को नष्ट-भ्रष्ट करने को प्रेरित किया। छोटी-छोटी और बेहूदा माँगों पर ऐंठना, अकड़ना सिखाया।

आज का विद्यार्थी अर्थोपार्जन के अनुभव से शून्य है, इस ओर से अनाड़ी है। आज की शिक्षा केवल क्लर्क उत्पन्न करने का साधन है, न कि व्यावसायिकता में प्रवीणता, दक्षता उत्पन्न करने का साधन। अर्थोपार्जन की अनुभवहीनता आज के शिक्षित समाज का महान् अभिशाप है।

वस्तुतः विद्यार्थी का अनुभव-संसार विशाल है, विस्तृत है। जीवन की प्रायः हर कठिनाई की अनुभूति का अंश वह भोग चुका होता है। सुख-दुःख की गलियों में झाँक चुका होता है। अतः ये अनुभूतियाँ निःसन्देह उसके भावी जीवन में काम आती हैं।

(82) विद्यार्थी का दायित्व

संकेत बिंदु—(1) अध्ययन, मनन द्वारा विद्या अर्जन (2) अनुशासन का पालन (3) संस्कार-काल और परिवार और समाज के प्रतिदायित्व (4) प्रत्येक कार्य सीमा के भीतर (5) आपातकाल में परिवार और समाज के प्रतिदायित्व।

अध्ययन, चिन्तन, मनन द्वारा विद्या अर्जित करना विद्यार्थी का दायित्व है। गुरुजनों का आज्ञाकारी बनना तथा विद्यालयीय अनुशासन में रहना विद्यार्थी का दायित्व है। धार्मिक संस्कारों को अपने हृदय में विकसित करना विद्यार्थी का दायित्व है। समाज और राष्ट्र के क्रिया-कलापों से अवगत रहना विद्यार्थी का दायित्व है। समाज अथवा राष्ट्र पर कोई विपत्ति या संकट आने पर राष्ट्र-रक्षा के लिए अपने को समर्पित करना विद्यार्थी का दायित्व है।

'दायित्व' का शाब्दिक अर्थ है जिम्मेवारी। दूसरे शब्दों में किसी कार्य की पूर्ति का भार। दायित्व के निर्वाह से शिक्षा मिलती है, बल की प्राप्ति होती है, जीवन का विकास होता है। मुंशी प्रेमचन्द के शब्दों में, 'जब हम राह भूलकर भटकने लगते हैं, तो दायित्व का ज्ञान हमारा विश्वसनीय पथ-प्रदर्शक बन जाता है।'

विद्यार्थी अर्थात् विद्या का अभिलाषी। विद्या प्राप्ति का इच्छुक। विद्या पढ़ने वाला विद्यार्थी कहलाता है, इसलिए अपने नाम के अर्थ के अनुरूप उसका सर्वप्रथम दायित्व है विद्या ग्रहण करना।

विद्या ग्रहण के लिए चाहिए निरन्तर अध्ययन, चिन्तन और मनन। 'अध्ययन ज्ञान का द्वार खोलता है, मस्तिष्क को परिष्कृत करता है तथा हृदय को सुसंस्कृत बनाता है। बेकन के शब्दों में, 'अध्ययन, आनन्द, अलंकरण और योग्यता का काम करता है।' चिन्तन और मनन

अध्ययन की परिचारिकाएँ हैं। इनके द्वारा ही अधीत विषय मानसिक माला में गुँथते हैं।

अध्ययन, चिन्तन तथा मनन के लिए नीतिज्ञ चाणक्य ने विद्यार्थी को आठ बातें छोड़ने की सलाह दी है—

कामं क्रोधं तथा लोभं स्वादं श्रृंगारकौतुके।
अतिनिद्रातिसेवा च, विद्यार्थी ह्यष्ट वर्जयेत्॥

अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, स्वाद, श्रृंगार, तमाशे, अधिक निद्रा और अत्यधिक सेवा विद्यार्थी के लिए वर्जित हैं।

विद्यालय के अनुशासन को स्वीकार करना विद्यार्थी का प्रमुख दायित्व है। इस दायित्व-निर्वाह से विद्यालय का वातावरण अध्ययनानुकूल बनेगा, जो विद्यार्थी के विकास का मार्ग प्रशस्त करेगा, मन को परिष्कृत करेगा, प्रतिभा को योग्यता में परिणत करेगा, भावी जीवन की सफलता और उज्ज्वलता में सहायक होगा।

गुरुजनों की आज्ञा का पालन करना और विद्यालय के अनुशासन को बनाए रखना विद्यार्थी का दूसरा दायित्व है। कक्षा में अध्ययन करते हुए गुरु के वचनों को एकाग्रचित होकर सुनना, ग्रहण करना तथा घर पर प्रदत्त पाठ-कार्य की पूर्ति विद्यार्थी का महत्त्वपूर्ण दायित्व है। इससे पाठ पर पकड़ बढ़ेगी, पाठ मस्तिष्क में पूरी तरह बैठ जाएगा।

केवल विद्यार्जन ही विद्यार्थी का दायित्व नहीं। विद्यार्थी-जीवन संस्कार-काल भी है। अन्त:करण में सुसंस्कारों को उद्दीप्त करने का स्वर्ण अवसर है। कारण, विद्यार्थी-जीवन के संस्कार हृदय में बद्धमूल हो जाते हैं, जो जीवन-पर्यन्त साथ नहीं छोड़ते। ये संस्कार ही धर्म, समाज तथा राष्ट्र के प्रति कर्तव्यपूर्ति की प्रेरणा देते हैं, जीवन-समर्पण और उत्सर्ग के लिए प्रेरित करते हैं। अत: सुसंस्कारों का विकास विद्यार्थी का दायित्व बन जाता है।

विद्यार्थी विद्या-अध्ययन के प्रति समर्पित होते हुए भी परिवार, समाज, देश तथा धर्म के प्रति दायित्वों से विमुख नहीं हो सकता। आज का विद्यार्थी समाज और नगर से दूर गुरुकुल का छात्र नहीं है, जिसे दीन-दुनिया की कोई खबर न हो। आज का विद्यार्थी परिवार के कार्यों में हाथ बँटाता है। समाज-सेवा में रुचि लेता है। धार्मिक कृत्यों और उत्सवों में भाग लेता है। देश की समस्याओं के समाधानार्थ अपने को प्रस्तुत करता है। राजनीति को ओढ़ता है। चुनाव में भाग लेकर प्रांत का कर्णधार (मुख्यमंत्री) बनता है। इस रूप में विद्यार्थी के दायित्व का क्षेत्र विस्तृत और विशाल हो जाता है।

प्रत्येक कार्य एक सीमा में ही सुशोभित होता है। 'अति' विनाश की ओर अग्रसर करती है। दैनन्दिन पारिवारिक कार्यों में हाथ बँटाकर परिवार की सहायता करना विद्यार्थी का दायित्व है, परन्तु विद्यालय के पश्चात् सम्पूर्ण समय परिवार के लिए समर्पण करना अति है। समाज के छोटे-मोटे कार्यों में समय देकर समाज की सेवा करना विद्यार्थी का दायित्व है, क्योंकि वह समाज का एक घटक है, जिसमें वह विकसित हो रहा है, किन्तु सामाजिक कार्यों में ही अपने को समर्पित करना 'अति' है। यह 'अति' अध्ययन में व्यवधान

डालेगी, मूल दायित्व (विद्या-प्राप्ति की इच्छा) से उपेक्षित रखेगी। मूल दायित्व को त्यागना, उसे उपेक्षित करना या उसमें प्रवंचना करना विद्यार्थी का दायित्व नहीं, दायित्व के प्रति विमुखता है, पाप है।

राष्ट्र-सेवा और राज्य-सेवा विद्यार्थी का दायित्व नहीं। राजनीति के पंक में फंसना विद्यार्थी के लिए उचित नहीं। कारण, राजनीति वेश्या की भाँति अनेक रूपिणी है, जो विद्यार्थी के मूल दायित्व को अपने आकर्षण से भस्म कर देती है, कर्तव्य से च्युत कर देती है, लोकेषणा के पंख पर उड़ाकर उसको आत्म-विस्मृत कर देती है।

किन्तु 'आपत्काले मर्यादा नास्ति।' परिवार, समाज, संस्कृति या राष्ट्र पर आपत्ति आ जाए, तो आपत्ति रूपी अग्नि में कूदना अनुचित नहीं। गुलामी के प्रतिकार के लिए गाँधी जी के आह्वान पर, आपत्काल में लोकनायक जयप्रकाश के आह्वान पर छात्रों का राजनीति में कूदना, अपने समर्पण से भारत माता का भाल उन्नत करना, प्रथम दायित्व था। असमी-संस्कृति पर संकट आने पर असम के छात्र-छात्राओं का राजनीति में कूदना मातृभूमि के प्रति अपरिहार्य दायित्व था।

विद्या का अर्जन विद्यार्थी का प्रथम और महत्त्वपूर्ण कर्तव्य है। अध्ययन, मनन और चिन्तन इस दायित्व पूर्ति की सीढ़ियाँ हैं। मन की एकाग्रता, एकांतता और एकनिष्ठता लक्ष्य-पूर्ति के साधन हैं।

(83) वर्तमान समय में विद्यार्थी का कर्तव्य

संकेत बिंदु—(1) भारत की आंतरिक स्थिति और विद्यार्थी का कर्त्तव्य (2) छात्र का कर्त्तव्य मात्र विद्या अध्ययन नहीं। (3) असामाजिक तत्त्वों के विरुद्ध समाज में जागरूकता लाना (4) असामाजिक गतिविधियों से स्वयं को अलग रखना (5) साम्प्रदायिकता से दूर रहना।

भारत की आन्तरिक स्थिति वर्तमान में शोचनीय है और विश्व-वातावरण भी इसके प्रतिकूल है। यहाँ कानून और व्यवस्था चौराहे पर औंधे मुँह पड़े सिसक रहे हैं। आतंकवादियों और समाज-द्रोही तत्त्वों के वर्चस्व ने भारतीय जीवन को आतंकित तथा मूल्यहीन कर दिया है। भारतीय नागरिक के जीवन का मानों कोई मूल्य ही नहीं। दूसरी ओर, महँगाई की मार इतनी जबर्दस्त है कि वह भारतीय जीवन को नंगा-भूखा बनाने पर तुली है। राष्ट्रीय दल दलीय स्वार्थ के पंक से उभर नहीं पाते। उभरें तब, जब उन्हें देश-हित नजर आए। राष्ट्रीय सरकार आज विविध प्रांतीय दलों की बैसाखियों पर चल रही है। अर्थतन्त्र चरमरा रहा है। राष्ट्रीय चरित्र तथा नैतिक मूल्य कहीं पाताल-लोक में छुपे बैठे हैं।

राष्ट्र की इन विषम परिस्थितियों में विद्यार्थी का कर्तव्य क्या हो सकता है? क्या उसका कर्तव्य केवल अध्ययन करना और देश की विषम स्थिति से आँखें मूँद लेना हो? क्या

विद्यार्थी का कर्तव्य समाज-द्रोही तत्त्वों और आतंकवादियों से निपटना हो? क्या विद्यार्थियों का कर्तव्य देश की महँगाई को रोकना हो? कदापि नहीं। जिस दिन देश का विद्यार्थी इन विषमताओं के विरुद्ध कमर कसकर खड़ा हो गया तो समझ लीजिए, भारत गृह-युद्ध की अग्नि में जलकर भस्म हो जाएगा। सिर दर्द दूर करने के लिए सिर कटाने का उपाय असंगत है। विद्यार्थी का यह कर्तव्य सूखे भुस में दियासलाई जलाने के समान होगा।

दूसरी ओर, देश की विषम स्थिति की अवहेलना करके मात्र अध्ययन को ही कर्तव्य समझना भी छात्र की भूल है, यह राष्ट्रीय आचरण के विरुद्ध है। आँख मींच लेने से कबूतर बिल्ली से बच तो नहीं पाएगा। बम के विस्फोट में या आतंकवादियों की अंधाधुंध गोली वर्षा में मरने वाला स्वयं विद्यार्थी भी हो सकता है और उसके परिवार-जन भी। कीचड़ से बचकर यदि कोई चले भी तो तेज चलने वाले वाहन उसके वस्त्रों को मैला तो करेंगे ही। फिर विद्यार्थी राष्ट्र की इन समस्याओं के प्रभाव से अछूता कैसे रह सकता है?

तीसरी ओर, क्या विद्यार्थी को विद्या मन्दिरों को ताला लगवाकर सक्रिय राजनीति में कूद पड़ना चाहिए? शायद सरकार की इच्छा भी यही है, क्योंकि मतदान की आयु 18 वर्ष करने की पृष्ठभूमि भी यही है। सरकार 18 वर्षीय युवक को विवाह का दायित्व सम्भालने के योग्य नहीं मानती, पर देश का दायित्व निर्वाह करने योग्य समझती है। यह कैसी विडम्बना और अन्तर्विरोध है। ऐसा करना विद्यार्थी के ज्ञान-द्वार को बन्द कर देना होगा। इसलिए विद्यार्थियों द्वारा विद्याध्ययन का काम अबाध गति से चलता रहे, यही विद्यार्थी का प्रथम कर्तव्य है।

विद्यार्थी विद्या के निमित्त अपने को समर्पित समझे, यह उसका दूसरा कर्तव्य है। नियमित रूप से कक्षाओं में जाए। एकाग्रचित होकर गुरु द्वारा पढ़ाये पाठ को सुने, घर से करके लाने को दिए कार्य की पूर्ति पर बल दे। पढ़ाए गए पाठ का चिन्तन-मनन करे। अधिकाधिक अंक प्राप्ति के लिए निरन्तर अध्यवसाय करना अपना कर्तव्य माने।

वर्तमान भारत में राजनीतिज्ञों, नव धनाढ्यों, तस्करों और असामाजिक तत्त्वों का बोलबाला है। ये सभी कानून की पकड़ से दूर हैं, पुलिस स्वयं इनकी रक्षक है। इसलिए यथासम्भव इनसे बचना चाहिए, ये तत्त्व शिकायतकर्ता विद्यार्थी को जीवन-दान दे देंगे, यह नामुमकिन है। ऐसी परिस्थिति में विद्यार्थी दूरभाष के सार्वजनिक केन्द्र से या सक्षम अधिकारी को अनाम पत्र लिखकर इसकी सूचना तो दे ही सकता है। सम्पादक के नाम गलत नाम से पत्र लिखकर उस देखी घटना को सार्वजनिक तो कर ही सकता है।

विद्यार्थी भी समाज का वैसा ही अंग है जैसे अन्य नागरिक। समाज की उन्नति में ही उसकी भी उन्नति है। इसलिए वह समाज-विरोधी तत्त्वों से सचेत रहे। 3-4 की टोली में घूमते हुए जेब-कतरों को पकड़कर पुलिस के हवाले कर दे। आभूषण छीनते बटमार को पकड़कर पुलिस को थमा दे। किसी स्थान पर कोई सन्देहास्पद वस्तु देखता है तो 100 नम्बर को फोन कर दे। यहाँ तक तो विद्यार्थी को अपना कर्तव्य समझना चाहिए।

भारत के महान् राजनीतिज्ञों ने 18 वर्षीय विद्यार्थी को मत-अधिकार देकर दूषित

राजनीति के कीचड़ में घसीट लिया है। कोई बात नहीं। वह कीचड़ में कमल पैदा करने का प्रयास न करे। कीचड़ में कमल पैदा करने का अर्थ होगा सक्रिय राजनीति में प्रवेश। हाँ, कीचड़ को सुखा कर समतल भूमि बनाना उसका कर्तव्य है। वह राजनीतिक जलूस-प्रदर्शनों में भाग लेने से बचे। तोड़-फोड़ और राष्ट्रीय सम्पत्ति के विनाश से दूर रहे। नारेबाजी और अराजकतापूर्ण वातावरण निर्माण का सहयोगी न बने। दूर खड़े रहकर दर्शक बनने में ही उसकी सार्थकता है और चुनाव में मतदान राष्ट्र के प्रति कर्तव्य-पालन है।

विद्यार्थी-जीवन विद्या प्राप्ति का काल है। विद्या का अधिकाधिक उपार्जन करना छात्र जीवन का लक्ष्य है। इसके लिए उसे किताबी कीड़ेपन से ऊपर उठना होगा। ज्ञान की ज्योति जिस ओर से आए, उसका अभिनन्दन करना होगा। समाचार-पत्र, पत्रिकाओं, टी.वी. देखना और रेडियों से नई जानकारी प्राप्त करना उसका कर्तव्य है। इसी प्रकार देश-विदेश की गतिविधियों की जानकारी प्राप्त करना भी उसका फर्ज है।

आज भारतीय समाज साम्प्रदायिकता और जातीयता की आग की लपटों में झुलस रहा है। उसका एकमात्र हल है—मानव मात्र में अपनी ही आत्मा के दर्शन। मानव की समानता का बोध। विद्यार्थी जीवन में यदि व्यक्ति में यह भाव जागृत हो जाए तो साम्प्रदायिकता की जड़ ही उखड़ जाएगी। अत: विद्यार्थी का कर्तव्य है कि वह अपने सहपाठियों में जातिवाद, वर्गवाद, प्रान्तवाद, सम्प्रदायवाद की दुर्गन्ध को न फैलने दे। भ्रातृत्व की सुगन्ध से अपने विद्यालय के वातावरण को सुगन्धित रखे।

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ने देशवासियों का ध्यान तीन कर्तव्यों की ओर आकर्षित किया है। ये ही कर्तव्य विद्यार्थी के भी हो सकते हैं—अपने देश की कमियों, खराबियों की सार्वजनिक चर्चा न करें। अन्य राष्ट्रों की तुलना में उसे हीन न बताएँ। इससे देशवासियों का मनोबल बढ़ेगा। उन्हें राष्ट्र की शक्ति का बोध होगा। दूसरी ओर, देश के सार्वजनिक स्थानों को स्वच्छ रखने, वाणी से मधुर बोलने तथा व्यवहार में शिष्टता देश के अन्त:करण को सुन्दर बनाएगी। तीसरी ओर, देश के हित में यह जरूरी है कि हम अपने 'वोट' का प्रयोग अपने विवेक से करें, न कि जाति, सम्प्रदाय या लालचवश।

(84) विद्यार्थी और राष्ट्र-निर्माण

संकेत बिंदु—(1) विद्यार्थी के चिन्तन मनन से राष्ट्र-निर्माण (2) राष्ट्र-निर्माण विद्यार्थी की भूमिका (3) आत्म-शक्ति की पहचान से राष्ट्र-निर्माण (4) राष्ट्र की समस्याओं के हल में सहायक (5) देश की सुंदरता बढ़ाने में मददगार।

आज का विद्यार्थी कल राष्ट्र की सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक, वैज्ञानिक, औद्योगिक, तकनीकी आदि पहलुओं का संचालक होगा, संवर्द्धक होगा। अत: विद्यार्थी का अध्ययन और चिन्तन-मनन में निष्ठापूर्वक संलग्न रहना ही राष्ट्र-निर्माण की प्रमुख भूमिका होगी। इन्हीं में से देश को श्रेष्ठ वैज्ञानिक मिलेंगे, विधिवेत्ता मिलेंगे, व्यापारी और

टैक्नीशियन मिलेंगे, शिक्षा-शास्त्री, समाज-शास्त्री और अर्थ-शास्त्री मिलेंगे। देश के सुव्यवस्थित संचालन के लिए निष्ठावान् लिपिक और अधिकारी मिलेंगे। राष्ट्र-प्रेमी राजनीतिज्ञ मिलेंगे, जो परिवार, वंश, दल, धर्म तथा सम्प्रदाय की भावना से ऊपर उठकर राष्ट्र का नेतृत्व करेंगे। इस प्रकार आज का विद्यार्थी अपने अध्ययन से राष्ट्र की नींव को सुदृढ़ करेगा। उस सुदृढ़ नींव पर राष्ट्र रूपी प्रासाद की उत्कृष्ट रचना संभव होगी। कच्ची नींव में पक्का घर नहीं बन सकता। उर्दू शायर हाली ने सच ही कहा है—

कब तक आखिर ठहर सकता है वह घर।
आ गया बुनियाद में जिसकी खलल॥

राष्ट्र-निर्माण में विद्यार्थी की भूमिका को समझते हुए ही भारतीय-संविधान में ६३वाँ संशोधन कर मतदाता की आयु 21 से घटाकर 18 वर्ष कर दी गई है। परिणामत: विद्यार्थी मतदान द्वारा राष्ट्र-निर्माण के कार्य में अपने कर्तव्य की पूर्ति करने लगा।

विद्यार्थी-जीवन में राष्ट्र-प्रेम, राष्ट्र के प्रति अनन्य निष्ठा तथा राष्ट्र-हित सर्वस्व बलिदान की भावना का पोषण राष्ट्र-रचना का दूसरा पक्ष होगा। विद्यार्थी के मन में ये भाव कूट-कूट कर भरे होने चाहिएं कि यह देश ही मेरी मातृभूमि है, पुण्यभूमि है। इन तत्त्वों के अभाव में राष्ट्र-भावना खंडित होगी, निष्ठा अधूरी होगी। खंडित भावना और अधूरी निष्ठा से सम्प्रदायवाद पनपेगा। संप्रदायवाद राष्ट्र को अल्पसंख्यक-बहुसंख्यक में बाँटेगा। राष्ट्र की प्राचीन संस्कृति और राष्ट्र के जीवन-मूल्यों की अवहेलना करेगा। देश में साम्प्रदायिक झगड़ों का विष-वृक्ष बोकर पुन: देश के एक और विभाजन की ओर अग्रसर करेगा। 14 अगस्त, 1947 (पाकिस्तान का उदय-दिवस) और आज का उग्रवाद या आतंकवाद राष्ट्र-प्रेम के अभाव के मुँह बोलते चित्र ही तो हैं।

विद्यार्थी-जीवन में विद्यार्थी अपनी 'आत्म-शक्ति की पहचान' बढ़ाकर राष्ट्र-निर्माण का पुण्य कार्य कर सकता है। आत्म-शक्ति की पहचान से आत्म-तेज जागृत होगा। राष्ट्र-प्रेम की ज्वाला धधकेगी। उसका पुरुषार्थ और पौरुष राम के रूप में उपस्थित होगा। उसकी कला-भावना कृष्ण के रूप में उपस्थित होगी और निर्वेद बुद्ध के रूप में उपस्थित होगा। आत्मशक्ति प्रकट होगी मर्यादित और संयमपूर्ण जीवन से। महादेवी जी विद्यार्थियों को सम्बोधित करते हुए कहती हैं 'यदि आप अपनी सारी शक्तियों को, अपनी शारीरिक शक्तियों को, आत्मिक शक्तियों को, अपनी आस्था को, विश्वास को अपने में समेट लें और देखें कि आपके पास क्या शक्ति है तो वास्तव में प्रलय के बादल छँट जाएँगे, (राष्ट्र-निर्माण के) मार्ग की जितनी भी बाधाएँ हैं, वे हट जाएंगी।'

प्रत्येक राष्ट्र के अपने जीवन-मूल्य होते हैं। ये जीवन-मूल्य राष्ट्र की रीढ़ होते हैं। कारण, यह राष्ट्र-जीवन की सहस्रों वर्षों की तपस्या और साधना का सार होता है। लोकतंत्र में आस्था, सम्प्रदाय-निरपेक्षिता में विश्वास, सर्व-धर्म समादर, मानवीय-भेदभाव के प्रति घृणा भारत के जीवन-मूल्य हैं। इन जीवन-मूल्यों के प्रति हार्दिक प्रेम और तर्क से फलित आस्था को बढ़ाना ही राष्ट्र-निर्माण के पुनीत कार्य में योगदान होगा।

प्रत्येक राष्ट्र की अपनी निजी समस्याएँ होती हैं। उन समस्याओं से जूझना, लड़ना विद्यार्थी का दायित्व नहीं है, पर उसके दायित्व का भान मन में रहना चाहिए। आतंकवाद भारत की प्रमुख समस्या है। विद्यार्थी को आतंकवाद के विरुद्ध खड़ा नहीं होना चाहिए। यह सरकार की जुम्मेदारी है। हाँ, यदि वह बस या अन्य किसी स्थान पर ऐसी चीज देखता है, जिसमें विस्फोटक सामग्री की सम्भावना हो सकती है, तो वह पुलिस को सूचित कर सकता है।

देश की दूसरी ज्वलंत समस्या आर्थिक दृष्टि से दिवालियापन की है। करचोरी, तस्करी, कालाबाजारी को रोकना सत्ता का काम है, विद्यार्थी का नहीं। वह तो अपने लिए या परिवार के लिए अनावश्यक चीजों की खरीद न करके बढ़ती माँग को रोक सकता है।

आज देश में असंख्य अशिक्षित हैं। इसके लिए छात्र ग्रीष्म तथा शरद् अवकाश के दिनों में उन अनपढ़ों को पढ़ा सकता है। श्रमदान द्वरा ग्रामीणों के जीवन में परिवर्तन ला सकता है। प्राकृतिक आपदाओं के समय यथासम्भव पीड़ितों की सहायक कर सकता है।

राष्ट्र के निर्माण में विद्यार्थी देश के सौन्दर्य-बोध को बढ़ाकर योगदान दे सकता है। घर का कूड़ा सड़क पर फेंकना; केला खाकर छिलका रास्ते में फेंकना; अश्लील शब्दों का उच्चारण करना, चुगली करना; गली, घर, स्कूल, कार्यालय को गंदा करना; सार्वजनिक स्थानों, जीनों के कोनों में पीक थूकना; उत्सवों, मेलों, रेलों, बसों तथा खेलों में ठेलमठेल करना आदि अप-कर्म देश के सौन्दर्य-बोध को आघात पहुँचाते हैं। इनको अपने जीवन में स्थान न देकर तथा इनके विरुद्ध अपना स्वभाव बनाकर और अन्यों को प्रेरित कर देश के सौन्दर्य-बोध को बढ़ा सकता है।

राष्ट्र-रक्षा और उसकी आर्थिक उन्नति सरकार का दायित्व है, कर्तव्य है। सत्ता की राजनीति में भाग लेना विद्यार्थी के लिए हितकर नहीं। इसलिए क्षुद्र राजनीति से बचते हुए अपने अन्दर शैक्षणिक योग्यता, राष्ट्र-प्रेम, आत्म-शक्ति, जीवन-मूल्यों में आस्था, सौन्दर्य-बोध से प्रेम तथा सामजिक कृत्यों द्वारा राष्ट्र-निर्माण के पुण्य कार्य में विद्यार्थी अपनी भूमिका निभा सकता है।

(85) विद्यार्थी जीवन में अनुशासन की महत्ता/ विद्यार्थी और अनुशासन

संकेत बिंदु—(1) विद्या-अध्ययन का काल (2) विद्यार्थियों में अनुशासनहीनता के कारण (3) कर्त्तव्यों की तिलांजलि देकर अधिकारों की माँग (4) उचित मार्गदर्शन का अभाव और अनुशासन हीनता (5) दूषित वातावरण का प्रभाव।

'विद्यार्थी' का अर्थ है 'विद्याया: अर्थी' अर्थात् विद्या की अभिलाषा रखने वाला। अनुशासन का अर्थ है शासन या नियंत्रण को मानना। अपनी उच्छृखंल चेष्टाओं को काबू में रखना। . ..

चार वर्ष से पच्चीस वर्ष तक की आयु विद्या-अध्ययन का काल मानी जाती है। इसमें

इस अवस्था में विद्यार्थी पर न घर-बार का बोझ होता है, न सामाजिक दायित्व का और न आर्थिक चिन्ता का। वह स्वतन्त्र रूप से अपना शारीरिक, बौद्धिक व मानसिक विकास करता है। यह कार्य तभी सम्भव है, जब वह अनुशासन में रहे। यह शासन चाहे गुरुजनों का हो, चाहे माता-पिता का। इससे उसमें शील, संयम, ज्ञान-पिपासा तथा नम्रता की वृत्ति जागृत होगी।

विद्यार्थी में अनुशासन के विरोध की दुष्प्रवृत्ति कुछ कारणों से जन्म लेती है। एक डेढ़ वर्ष का शिशु दूरदर्शन देखने लगता है। देखने-देखते वह जैसे-जैसे बड़ा होता है, उसे दूरदर्शन की भाषा समझ में आने लगती है। पाँच वर्ष का होते-होते वह भाषा ही नहीं भावों को भी सही या गलत समझने लगता है। प्रेम और वासना के पश्चात् दूसरी शिक्षा जो दूरदर्शन देता है, वह है विद्रोह और विध्वंस की। शिशु जब किशोरावस्था तक पहुँचता है तो विद्रोह के अंकुर परिवार में फूटने लगते हैं। उसे पारिवारिक अनुशासन से चिढ़ हो जाती है। रोकर घर की चीजें फेंककर, उलटकर अपना विद्रोह प्रकट करता है। टी.वी. की भाषा में माता-पिता या अग्रजों को गाली देता है। अनुशासनहीनता की प्रवृत्ति लेकर वह विद्यार्थी बनता है। शनैः शनैः यह विद्रोह प्रवृत्ति उसे शिक्षालयों के अनुशासन से विमुख करती है।

दूसरी ओर, दुर्भाग्य से हमारे राजनीतिक नेताओं ने इस निश्चिन्त विद्यार्थी-वर्ग को अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए राजनीति में घसीटकर अनुशासनहीनता का मार्ग दिखा दिया है। स्वतन्त्रता संग्राम में महात्मा गाँधी ने, 1947 की समग्रक्रान्ति के प्रणेता श्री जयप्रकाश नारायण तथा आपत्काल-विरोधी आन्दोलन के नेताओं ने शासन के विरुद्ध विद्यार्थी-वर्ग का खुलकर प्रयोग किया। 'रोपे पेड़ बबूल का आम कहाँ से होय।' स्वतन्त्रता के पश्चात् 1975 के मध्य तक विद्यार्थी-वर्ग की अनुशासनहीनता बेकाबू हो गई। विरोधी आंदोलनों के परिणामस्वरूप मई, 1977 के पश्चात् आज तक वह समस्या सुरसा के मुँह की भाँति फैलती जा रही है। लगता है यह अनुशासनहीनता न केवल अध्ययन-संस्थाओं को ही, अपितु सम्पूर्ण भारत को निगल जाएगी।

आज के विद्यार्थी और अनुशासन में ३ और ६ का सम्बन्ध है। वह कर्तव्यों को तिलांजलि देकर केवल अधिकारों की माँग करता है और येन-केन-प्रकारेण अपनी आकांक्षाओं की तृप्ति तथा अधिकारों की प्राप्ति के लिए संघर्ष पर उतर आया है। जलसे करना, जुलूस निकालना, धुआँधार भाषण देना, चौराहों या सार्वजनिक स्थान पर नेताओं की प्रतिमाएँ तोड़ना, अकारण किसी की पिटाई करना, हत्या करना, मकान व दुकान लूटना, सरकारी सम्पत्ति को क्षति पहुँचाना, बसों को जलाना, ऐसे अशोभनीय कार्य हैं जो विद्यार्थी-वर्ग के मुख्य कार्यक्रम बन गए हैं।

वस्तुतः आज का विद्यार्थी विद्या का अर्थी अर्थात् अभिलाषी नहीं, अपितु विद्या की अरथी निकालने पर तुला है। उसमें रोष, उच्छृंखलता, स्वार्थ और अनास्था घर कर गई है। पढ़ने में एकाग्रचित्तता के स्थान पर विध्वंसात्मकता उसके मन-मस्तिष्क को खोखला कर रही है। रही-सही कसर फैशन-परस्ती और नशाखोरी ने पूरी कर दी है।

अनुशासनहीनता के कारण विवेकहीन विद्यार्थी भस्मासुर की भाँति अपना ही सर्वस्व स्वाहा कर रहा है। मन की रोषपूर्ण और विनाशकारी प्रवृत्ति उसके अध्ययन में बाधक है। परिणामत: प्रश्न-पत्र ठीक तरह हल नहीं होंगे तो अंक अच्छे नहीं आएंगे। अगली कक्षाओं में प्रवेश में और जीवन की प्रगति में बाधाएँ आएँगी।

दूसरी ओर, माता-पिता के उचित संरक्षण एवं मार्ग-दर्शन के अभाव में बच्चे उत्तम संस्कार ग्रहण नहीं कर पाते। विद्यालय या महाविद्यालयों में प्रवेश करके ये मर्यादाहीन और उच्छृंखल बन जाते हैं। उनकी प्रतिभा का विकास अवरुद्ध हो जाता है, मन-मस्तिष्क पर विक्षोभ छा जाता है।

तीसरे, राजनीतिज्ञों की रट है कि 'वर्तमान शिक्षा दोषपूर्ण' है। नए-नए प्रयोगों ने विद्यार्थियों में वर्तमान शिक्षा-प्रणाली के प्रति अरुचि उत्पन्न कर दी है। अंगूठाटेक राजनीतिज्ञ जब विश्वविद्यालयों में भाषण करता है या अल्पज्ञ और अर्द्धशिक्षित नेता शिक्षा के बारे में परामर्श देता है तो माँ सरस्वती का सिर लज्जा से झुक जाता है।

चौथे, आज शिक्षक आस्थाहीन हैं शिक्षा-अधिकारी अहंकारी तथा स्वार्थी। परिणामस्वरूप शिक्षक और शिक्षा अधिकारी विद्यार्थी से व्यावसायिक रूप में व्यवहार करते हैं। विद्यार्थी के हृदय में इसकी जो प्रतिध्वनि निकलती है, वह 'आचार्यदेवो भव' कदापि नहीं होती।

नि:सन्देह यह बात माननी पड़ेगी कि आज के स्वार्थपूर्ण अस्वस्थ वातावरण में विद्यार्थी शान्त नहीं रह सकता। अस्वस्थ प्रवृत्ति के विरुद्ध विद्रोह उसकी जागरूकता का परिचायक है। उसका गर्म खून उसको अन्याय के विरुद्ध ललकारता है। जिस प्रकार अग्नि, जल और अणुशक्ति का रचनात्मक तथा विध्वंसात्मक, दोनों रूपों में प्रयोग सम्भव है, उसी प्रकार विद्यार्थी के गर्म खून को रचनात्मक दिशा देने की आवश्यकता है। यह तभी सम्भव है जब प्राचीनकाल के गुरुकुलों का-सा शान्त वातावरण हो, चाणक्य जैसे स्वाभिमानी, स्वामी रामकृष्ण परमहंस तथा स्वामी विरजानन्द सदृश तपस्वी गुरु हों। राजनीतिज्ञों और राजनीति को शिक्षा से दूर रखा जाए। माता-पिता बच्चों के विकास पर पूर्णत: ध्यान दें।

(86) छात्र-अराजकता

संकेत बिंदु—(1) अराजकता का अर्थ (2) दूषित राजनीति की भूमिका (3) शिक्षक का कर्त्तव्य विमुख होना (4) दूरदर्शन का योगदान (5) विद्यार्थी का अहं दोषी।

छात्रों द्वारा तंत्र, विधि, व्यवस्था अथवा शासन की उपेक्षा करना 'छात्र-अराजकता' है। रोषपूर्व विध्वंसात्मक कार्यों को अपनाना अराजकता है। हिंसा पर आधारित प्रवृत्ति अराजकता है। राजकीय अथवा विद्यालयी अनुशासन को नकारना अराजकता है।

छात्रों द्वारा गुरुजनों की अवहेलना करना, विद्यालय-भवन और विद्यालय-कार्यालय, पुस्तकालय को क्षति पहुँचाना, जलसे करना, जलूस निकालना, पुतले जलाना, अध्यापकों तथा व्यवस्थापकों की पिटाई करना, मकान-दूकान लूटना, बसों का अपहरण करना, उन्हें पेंचर अथवा भस्म कर डालना, छात्र-अराजकता के परिचायक हैं।

आज का विद्यार्थी उपाधि प्राप्ति का सरलतम मार्ग ढूँढ़ता है। बिना पढ़े, बिना परिश्रम के वह उत्तीर्ण होना चाहता है। कक्षा के बंधन में वह बँधना नहीं चाहता, नकल करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानता है। अतः परीक्षा भवन में मेज पर छुरी-पिस्तौल रखकर नकल करता है। नकल करने से रोकने वाले निरीक्षक पर लड़कियों को छेड़ने का झूठा आरोप लगाता है। पुलिस में रिपोर्ट दर्ज करवा कर निरीक्षक को सबक सिखाने की चेष्टा करता है।

आज का छात्र अपने लिए अनेक सुविधाएँ चाहता है। वह शुल्क में कटौती चाहता है। बस-भाड़े में रियायत चाहता है। बस के इच्छानुसार स्टॉपेज चाहता है। कक्षा में उपस्थित होने और पीरियड का बंधन स्वीकार करना नहीं चाहता। जब उसको ये सुविधाएँ नहीं मिलतीं तो वह वाहनों को क्रोध का निशाना बनाता है। पुलिस से टक्कर लेता है।

विद्यार्थी की इस मनःस्थिति के निर्माण में भारत की दूषित राजनीति मुख्य रूप से जिम्मेदार है। आज का राजनीतिज्ञ विद्या के मर्म को जानता नहीं, लेकिन विद्यालयों की कार्यकारिणी तथा संचालन समितियों का अध्यक्ष या सदस्य बन जाता है। वह विद्यालय के प्रबंध में अनुचित हस्तक्षेप करता है, रोड़ा अटकाता है। कर्तव्यनिष्ठ प्रिंसीपल जब राजनीतिज्ञों की अनुचित बात नहीं मानता, उनके कहने से छात्र-विशेष को पास नहीं करता, नकल करते पकड़ा जाने पर छात्र को माफ नहीं करता, अर्हता न होने पर विषय-विशेष में प्रवेश नहीं देता, तो राजनीतिज्ञ विद्यालय की व्यवस्था को तहस-नहस करने का षड्यंत्र करता है। अध्यापकों में फूट डालता है, विद्यार्थियों को अराजकता के लिए प्रेरित करता है।

अराजकता का एक प्रमुख कारण है आज का अनुत्तरदायी शिक्षक। अहर्निश ट्यूशनों में व्यस्त अध्यापक स्कूल में बच्चों को 'क्या और क्यों' पढ़ाएगा ? यदि वह बच्चों को विषय का ठीक-ठीक अध्यापन करा दे तो ट्यूशन कौन रखेगा ? दूसरे, अहर्निश ट्यूशनों से चढ़ी थकान से क्लांत शरीर बच्चों को क्या पढ़ाएगा ? वह तो विद्यालय की कुर्सी पर थकान उतारने आता है। शिक्षक की 'क्या और क्यों' मनोदशा पर जाग्रत विद्यार्थियों में विक्षोभ उत्पन्न नहीं होगा तो क्या वे वरदान देंगे ? यह विक्षोभ भी छात्र अराजकता का एक कारण है।

शिक्षक का पक्षपातपूर्ण व्यवहार भी छात्रों में अराजकता की चिंगारी जगाता है। ट्यूशन के छात्रों के प्रति दैनन्दिन कक्षाओं में सहानुभूति और शेष छात्रों के प्रति क्रोध; परीक्षाओं में उत्तर-पुस्तिकाओं में पक्षपातपूर्ण अंक-प्रदान, छात्रों में अध्यापक के सम्मान को कम करता है। उनके प्रति घृणा, क्रोध, विक्षोभ उत्पन्न करता है।

विद्यार्थी अपने नगर का वातावरण दूरदर्शन पर खुली नजर से देखता है, देश के वातावरण के किस्से अखबारों में पढ़ता है। अनुशासन के नाम पर नगर-पालिकाओं,

विधान-सभाओं तथा संसद् में गाली-गलौच, लड़ाई-झगड़ा, मार-पिटाई के आदर्श-युक्त, गर्व-योग्य समाचार पढ़ता है, तो नैतिकता उसे क्षितिज-समान दूर लगती है। 'महाजनो येन गत: स पंथा:' का आचरण करता हुआ वह विद्यालय में विधानसभा तथा संसद् का-सा कोलाहलपूर्ण दृश्य उपस्थित करता है।

विद्यार्थी-अराजकता के लिए आज का दूरदर्शन जगत् भी कम दोषी नहीं है। उसने विद्यार्थियों के जीवन को बर्बाद करने का ठेका लिया हुआ है। दूरदर्शन में क्लासरूम के प्रसंग में कभी अध्यापक का मजाक उड़ाते छात्र-छात्राओं को दिखाएंगे, कभी लड़का-लड़की को छेड़ता दिखाएंगे, कभी अध्यापिका से छात्र का प्रेम दिखाएंगे। इतना ही नहीं जेब कतरने, चाकू चलाने, डाका डालने, बसें फूकनें तथा कानून की अवज्ञा करके अराजकता के विविध और सफल तरीके दूरदर्शन प्रस्तुत करता है। युवा-छात्र बुराई को सहज पकड़ता है, अच्छाई सीखने में समय लगता है। फलत: विद्यार्थी दूरदर्शन से सीखकर अराजकता का पल्ला पकड़ता है।

विद्यार्थी-अराजकता में विद्यार्थी का अहं भी दोषी है। वह झूठे अहं में अध्यापक के हित के वचनों को बुरा समझता है। डाँट-फटकार को अपमान समझता है। ऐसी स्थिति में गुरु-भक्ति, विद्यालय के प्रति श्रद्धा, अध्ययन के प्रति रुचि कहाँ उत्पन्न होगी ? वह अहं की तुष्टि के लिए साथियों को भड़काएगा, अध्यापकों को मजा चखाएगा, प्रिंसीपलों (प्राचार्यों) को प्रिंसीपल (सिद्धांत) सिखाएगा।

छात्र-अराजकता को रोकने के लिए आवश्यक है कि विद्यालयों को राजनीतिज्ञों से दूर रखा जाय, विद्यालयों पर उनकी छाया भी न पड़ने दी जाए। दूसरे, छात्रों में अध्ययन के प्रति रुचि उत्पन्न की जाए। तीसरे, शिक्षकों में योग्यता तथा अध्यापन के प्रति समर्पण के गुण उत्पन्न किए जाएं। चौथे, विद्यालयों में अनुशासन का सख्ती से पालन कराया जाए, जिसमें पक्षपात की तनिक भी गुँजाइश न हो।

छात्र-अराजकता समाप्त होने पर ही विद्यालयों में पढ़ाई का वातावरण बनेगा। छात्र विद्या तथा गुरुजनों के प्रति श्रद्धावनत होंगे। उनके हृदय में माँ शारदा प्रकाश उत्पन्न करेगी। अज्ञान रूपी अंधकार को उनके जीवन से दूर हटाएगी।

(87) विद्यार्थी और राजनीति

संकेत बिंदु—(1) विद्या और राजनीति सहोदरा (2) विद्या राजनीति की दासी के रूप में (3) छात्र जीवन में राजनीति (4) वर्तमान छात्र राजनीति के रोग से ग्रस्त (5) उपसंहार।

विद्या और राजनीति सहोदरा हैं। दोनों का पृथक् रहना कठिन है। दोनों के स्वभाव भिन्न हैं, किन्तु लक्ष्य एक है : व्यक्ति और समाज को अधिकाधिक सुख पहुँचाना। विद्या नैतिक नियमों का वरण करती है, अत: उसमें सरलता हैं, विजय है तथा बल है, जबकि

राजनीति में दर्प है, और है बाह्य शक्ति। भारतीय-संस्कृति के ऐतिहासिक पृष्ठों को पलटें, तो पता लगेगा कि विद्या ने राजनीति को स्नेह प्रदान किया है और प्रतिदान में राजनीति ने शिक्षा को समुचित आदर दिया है, जिसका संचालन राजनीतिक नेताओं द्वारा होता है।

संसार का इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब भी किसी राष्ट्र में क्रांति का बिगुल बजा, तो वहाँ के छात्र द्रष्टा मात्र नहीं रहे, अपितु उन्होंने क्रांति की बागडोर सम्भाली। परतन्त्रता-काल में स्वातन्त्र्य के लिए और वर्तमान काल में भ्रष्टाचारी सरकारों के उन्मूलन के लिए भारत में छात्र-शक्ति ने अग्रसर होकर क्रांति का आह्वान किया। इण्डोनेशिया और ईरान में छात्रों ने सरकार का तख्ता ही उलट दिया था। यूनान की शासन नीति में परिवर्तन का श्रेय विद्यार्थी-वर्ग को ही है। बंगलादेश को अस्तित्व में लाने में ढाका विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों का योगदान भुलाया नहीं जा सकता। असम के मुख्यमन्त्री तो विद्यार्थी रहते ही मुख्यमंत्री बने थे।

आज विद्या राजनीति की दासी है। राजकीय तो राजकीय हैं, यहाँ तो सहायता प्राप्त विद्यालय भी राजकीय नियमों से जकड़े पड़े हैं। पाठ्यक्रम और पाठ्य-पुस्तकें भी राजकीय हैं। उससे विचलित होते ही अनुशासन को कोड़ा पीठ पर पड़ जाता है। इस प्रकार जब आर्थिक, शैक्षिक और प्रशासनिक दृष्टि से राज-शक्ति विद्यार्थियों पर राज्य करे, अनपढ़ और अँगूठाटेक राजनीतिज्ञ दीक्षांत भाषण दें और अल्पशिक्षित राजनीतिज्ञ अध्यापकों की सभा में शिक्षा-सुधार के उपाय सुझाएँ, तब विद्यार्थी राजनीति से अछूता कैसे रह सकता है ?

विद्यार्थी को विद्याध्ययन करने के उपरान्त भी जीवन के चौराहे पर किंकर्तव्य-विमूढ़ खड़ा होना पड़ता है। नौकरी उसे मिलती नहीं, हाथ की कारीगरी से वह अनभिज्ञ है। भूखा पेट रोटी माँगता है। वह देखता है, राजनीतिज्ञ बनकर समाज में आदर, सम्मान, प्रतिष्ठा और धन प्राप्त करना सरल है, किन्तु नौकरी पाना कठिन है। ईमानदारी से रोजी कमाना पर्वत के उच्च-शिखर पर चढ़ना है तो वह राजनीति में कूद पड़ता है।

आज कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में छात्र-संघों के चुनाव होते हैं, जो कि संसद् के चुनाव से कम महत्त्वपूर्ण और अल्पव्ययी नहीं हैं। विद्यालयों में संसद् और राज्य विधान-सभाओं का अनुकरण कराया जाता है। आज विधान-सभाओं और संसद् में जो हंगामे, लांछन और वाक्-युद्ध चलते हैं, क्या वे अनुकरणीय हैं ? क्या उनका दुष्प्रभाव जन-जीवन पर नहीं पड़ेगा ? ऐसी स्थिति में विद्यार्थी राजनीति में अलिप्त कैसे रह सकता है ? 'बोये पेड़ बबूल के, आम कहाँ से पाय ?'

वर्तमान भारत का विद्यार्थी राजनीति के रोग से ग्रस्त है। वह शासन और नीति की दाढ़ों में जकड़ा हुआ है। 18 वर्ष की आयु में मतदान का अधिकार देकर उसे राजनीति के छल-छंदमय वातावरण में घसीटा गया है। हड़ताल, धरना उसके पाठ्यक्रम के अंग हैं। तोड़-फोड़, राष्ट्रीय सम्पत्ति की आहुति परीक्षा के प्रश्न-पत्र हैं। उचित-अनुचित माँगों पर अधिकारियों और शासकों को झुका लेना उसकी सफलता का प्रमाण है।

आज का विद्यार्थी कल का नागरिक होगा। देश का प्रबुद्ध नागरिक बनने के लिए राजनीति के सिद्धान्त और व्यवहार का ज्ञान अनिवार्य है। कारण, 'राजनीति मानवीय कार्य-व्यापार का विज्ञान है, केवल शासन सम्बन्धी कौशल नहीं।' (चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य) डॉ. जानसन की धारणा है, 'Politics are now nothing more than a means of rising in the world.' अर्थात् राजनीति अब विश्व में ऊँचा उठने के साधन से अधिक कुछ नहीं।' (बॉसवैल द्वारा लिखित जीवनी खण्ड 2, पृष्ठ 369) विश्व में स्वयं अपने राष्ट्र की उन्नति के लिए विद्यार्थी को राजनीति का ज्ञान देना चाहिए।

उचित राजनीति के ज्ञान के लिए सर्वप्रथम शिक्षा के क्षेत्र में राजनीतिज्ञों का हस्तक्षेप बंद करना होगा और शिक्षा को शासन के नियन्त्रण से मुक्त करना होगा। इसके लिए सार्वभौम और विश्वव्यापी सिद्धान्तों का निरूपण करना होगा। आचार्यगण को सार्वभौमिक सत्यों का अनुगमन करना होगा। डॉ. आत्मानन्द मिश्र ने स्पष्ट शब्दों में राजनीतिज्ञों को चेतावनी दी है, 'राजनीतिज्ञों को यह समझाना होगा कि शिक्षा गरीब की लुगाई और सबकी भौजाई नहीं है, जो हर अगुवा और पिछलगुवा उसे छेड़ता रहे। जिसका शिक्षा से नमस्कार नहीं, दुआ-बन्दगी नहीं, वह भी उसके सम्बन्ध में बिना सोचे-विचारे, बिना आनाकानी किए, बिना आगा-पीछा देखे कुछ भी कह डाले तथा हर ऐरे-गैरे नत्थू-खैरे को शिक्षा के बारे में कुछ कहने की पूर्ण स्वतन्त्रता हो। दलगत और फरेबी राजनीति के अखाड़ेबाजों को यह समझना होगा कि शिक्षक एवं छात्र भ्रष्टाचार, सामन्तशाही, आडम्बर, विलासिता आदि को समाजवाद की संज्ञा नहीं देंगे और राजनीति के नाम पर समाज विरोधी तत्त्वों द्वारा शिक्षा की छेड़-छाड़ बर्दाश्त नहीं करेंगे।'

इस प्रकार शिक्षा में राजनीति का हस्तक्षेप समाप्त होने पर ही भारत का विद्यार्थी व्यावहारिक राजनीति के दर्शन का पण्डित बन पथ-प्रदर्शक, सूत्रधार, क्रान्त-दर्शी और समाज का उन्नायक बन सकेगा।

(88) विद्यार्थी और चुनाव

संकेत बिंदु—(1) विद्यार्थियों की भागीदारी (2) मताधिकार की आयु 21 से 18 वर्ष (3) मतदाताओं की संख्या में बढ़ोतरी (4) शिक्षण-संस्थाएँ राजनीति का अखाड़ा (5) मताधिकार का प्रयोग राष्ट्रहित में।

संसद, विधान-मंडलों और स्वायत्त संस्थानों (नगरपालिका) आदि में प्रतिनिधि चुनने की प्रक्रिया में विद्यार्थियों की भागीदारी का अर्थ है, नवयुवकों पर दायित्व का बोझ डालना, देश के पढ़े-लिखे नवयुवक वर्ग द्वारा अपना प्रतिनिधि चुनने की पात्रता सिद्ध करना, कुछ उत्साही और स्वयं स्फूर्त तरुणों द्वारा राष्ट्र-निर्माण में सहयोग देना।

पं. जवाहरलाल नेहरू लोकतंत्र में चुनाव को राजनीतिक शिक्षा देने का विश्वविद्यालय मानते थे। इसलिए विद्यार्थी-जीवन में चुनाव के विश्वविद्यालय से शिक्षा लेना राष्ट्र जीवन की उन्नति और प्रगति का प्रतीक है।

युवा पीढ़ी अर्थात् विद्यार्थी-वर्ग शिक्षित एवं समझदार है, अत: उसे राजनीतिक इकाई के रूप में अपनी भावनाओं को व्यक्त करने का अधिकार मिलना चाहिए। इसकी माँग सर्वप्रथम उठाने वाले थे तत्कालीन संसद् में विपक्ष के नेता और आज के गृहमंत्री श्री लालकृष्ण आडवानी। बाद में कांग्रेस ने भी 18 वर्ष के युवावर्ग को मतदान का अधिकार सौंपने में अपना हित समझ कर इसे कानूनी रूप देने का निश्चय किया।

परिणामत: 20 दिसम्बर, 1988 को संसद् ने 63वें संविधान संशोधन के अन्तर्गत संविधान की धारा 326 में संशोधन कर मताधिकार की आयु 21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष कर दी। इससे विद्यार्थी और राजनीति के सम्बन्धों के प्रश्न-चिह्न को समाप्त कर दिया गया है। अब विद्यार्थी भी राजनीति का एक अंग बन गया है।

महात्मा गाँधी से लेकर लोकनायक जयप्रकाश तक, प्रत्येक नेता ने युवाओं अर्थात् विद्यार्थियों की क्षमता एवं ऊर्जा को रचनात्मक तथा क्रियाशील ढंग से देशहित में लगाने पर जोर दिया है। पंडित नेहरू कहा करते थे, 'समाज में क्रांति एवं दृढ़ी भवन के मध्य एकान्तर होना चाहिए और इस काम को युवाओं के बिना नहीं किया जा सकता। वही आवश्यक ऊर्जा का स्थानान्तरण कर सकते हैं।' आगे चलकर वे कहते हैं—'वृद्ध अपने बचे हुए वर्षों के लिए जीता है जबकि युवा शाश्वत काल लिए जीता है।'

21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष की मतदाता आयु करने का लाभ यह हुआ कि उस समय भारत के लगभग पाँच करोड़ विद्यार्थी मतदाता बन गए। उन्हें अपने प्रतिनिधि चुनने, प्रतिनिधित्व करने तथा भावी नीतियों और कार्यक्रमों के सम्बन्ध में जनादेश (मैंडर) देने का अधिकार मिल गया। अब वे भी असम के भूतपूर्व मुख्यमंत्री श्री प्रफुल्लकुमार महंत की तरह 'होस्टल' से सीधे मुख्यमन्त्री बन सकेंगे। असम के विद्यार्थियों की तरह विधायक और मन्त्री बन सकेंगे। प्रांत और राष्ट्र की रचना और संचालन में योग दे सकेंगे।

आज भी भारत की चालीस प्रतिशत जनता अशिक्षित है। अशिक्षित मतदाता से सोच-समझकर मतदान की आशा भी कैसे की जा सकती है ? यही कारण कि झुग्गी-झोंपड़ी तथा ग्राम-समाज का वोट, जो प्राय: विवेकहीन होता है, चुनावी ऊँट का साक्षी बनता है और पढ़े-लिखे, शिक्षित जनों का विवेकपूर्ण वोट चुनाव की दौड़ में पिछड़ जाता है। विद्यार्थी का चुनाव में भाग लेना जनतंत्र के लिए शुभ है। जनतंत्र में यह अनपढ़ और अशिक्षित मतदाताओं के मतदान से होने वाले असंतुलन को बचाता है।

आज चुनावों के कारण शिक्षण संस्थाएँ राजनीति का अखाड़ा बनती जा रही हैं। विश्वविद्यालयों में छात्र-संघों के चुनाव प्रांतीय-निर्वाचनों का लघु रूप ही तो हैं। लाखों रुपए खर्च करके विश्वविद्यालय की अध्यक्षता तथा सचिव पद जीते जाते हैं। जब राजनीतिक मताधिकारों के घी से राजनीतिक स्वार्थों की ज्वाला भड़केगी तो उसका परिणाम सुखद होने की आशा कैसे होगी ?

दूसरी ओर, आयु के इस मोड़ पर विद्यार्थी इतना समझदार भी नहीं होता कि अपना निर्णय विवेक से, सही ढंग से ले सके। इस अवस्था में तो वह पारिवारिक दायित्व की

परिभाषा भी नहीं समझता। कमाने की योग्यता से वंचित होता है तो चुनाव के महत्त्व को क्या समझेगा ? फलत: वह कुटिल और चालाक राजनीतिज्ञों, छुटभैए नेताओं तथा 'कक्का' जी जैसे स्वार्थियों के षड्यंत्र का शिकार हो जाएगा।

विद्यार्थी में जोश अधिक, होश कम होता है। इसलिए उसमें अदम्य साहस के स्रोत का प्रवाह पूरे जोरों पर होता है। होश की कमी से वह चुनाव की धारा को मोड़ देगा तो प्रांत या राष्ट्र में परिवर्तन तो आएगा, पर परिवर्तन के लिए परिवर्तन कदापि उचित नहीं होता।

उक्त कतिपय दोषों के होते हुए भी डिजरायली के शब्दों के आधार पर कि 'The youth of a Nation are the trustees of the posperity and almost every thing that is great has been don by youth' अर्थात् राष्ट्र के युवक भावी पीढ़ियों के न्यासी होते हैं और प्राय: प्रत्येक महान् कार्य युवकों द्वारा ही किया जाता है। विद्यार्थियों को चुनाव का मताधिकार सौंपना या उम्मीदवार बनना राष्ट्रहित में ही होगा। दूसरे, विद्यार्थी-जीवन के इस अनुभव और अभ्यास का प्रयोग वह प्रौढ़ होने पर राष्ट्रहित में कर सकेगा। तीसरे, देश में नेतृत्व की दूसरी पंक्ति उभर कर सामने आएगी जो प्रथम पंक्ति के हटने पर देश में नेतृत्व का अभाव नहीं होने देगी। जैसे आज तक भारत की सोच रहती आई है—नेहरू के बाद कौन ? इन्दिरा के बाद कौन ? राजीव के बाद कौन ?

सुप्रसिद्ध साहित्यकार और दार्शनिक जैनेद्र इस पुण्य कार्य के लिए एक सुझाव देते हैं। 'युवकों का उत्साह केवल ताप बनकर न रह जाए। यदि उसमें तप भी मिल जाए तो वह बहुत निर्माणकारी हो सकता है।'

(89) विद्यार्थी और सामाजिक चेतना

संकेत बिंदु—(1) विद्यार्थी और सामाजिक चेतना (2) सामाजिक चेतना के परिणाम (3) सामाजिक व्यवहार के अनुरूप स्वयं को ढालना (4) धर्म का स्वरूप और अंधविश्वास (5) समाज के बाह्य जीवन की अनुभूति।

वह बालक या युवक जो किसी शिक्षा-संस्था में अध्ययन करता हो, विद्यार्थी कहलाता है। मानव-समुदाय ही समाज है। समाज से सम्बन्धित क्रिया-कलाप 'सामाजिक' हैं। जिस वृत्ति से व्यक्ति सचेत होता है, वह चेतना है। दूसरे शब्दों में मन की वह वृत्ति या शक्ति जिससे प्राणी को आंतरिक अनुभूतियों, भावों, विचारों आदि और बाह्य घटनाओं, तत्त्वों या बातों का अनुभव होता है, चेतना है।

समाज के स्वरूप का ज्ञान सामाजिक-चेतना है। समाज के प्रति प्रिय-अप्रिय भावों का जन्म सामाजिक-चेतना है। समाज से सम्बद्ध होने या दूर हटने की क्रिया सामाजिक-चेतना है। समाज के प्रति कर्तव्य और दायित्व-बोध भी सामाजिक-चेतना है।

आज का छात्र समाज के सुख-दु:ख को समझता है। समाज में होने वाली हलचल

और सु-संस्कारों से प्रभावित होता है। समाज द्रोहियों, शत्रुओं से वह सचेत रहता है। समाज की अकर्मण्यता पर वह उदास होता है। समाज-संघर्ष में वह अपने उदात्त गुणों को जागृत करता है। इस प्रकार समाज और व्यक्ति के व्यवहार को सर्वांगीण दृष्टि से देखने, जानने और परखने का प्रयास ही विद्यार्थी की सामाजिक-चेतना है।

विद्यार्थी का बोध और अनुभूति, ध्यान और विचार, मानसिक भान की शक्ति सब मिलकर उसके मन को कल्पना-लोक में ले जाते हैं, जिसका निर्माण समाज की वास्तविक प्रतिभाओं से बनता है। उनकी प्रतिक्रिया विद्यार्थी को जीवन को देखने, समझने तथा जीवन-बोध की तीव्रता में होती है। परिणामतः समाज में अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध स्थापित करने की मनोवृत्ति; मानसिक, सांस्कृतिक एवं उच्च मूल्यों का विकास; प्रभुत्व की भावना, श्रेष्ठतम कार्य करने की प्रेरणा, समस्याओं का अन्वेषण और उनका समाधान ढूँढना, परहित या पर-दुःख की अभिप्रेरणा, सफलता प्राप्ति की ओर अग्रसर होने की चाहना आदि विद्यार्थी की सामाजिक-चेतना के परिणाम हैं।

विद्यार्थी की सामाजिक-चेतना का विकास घर-परिवार, पड़ोस, विद्यालय, खेल-जगत्, मित्र-मण्डली, जाति, वर्ग, धर्म तथा राजनीति में क्रमशः विकसित होता है। जनमत, प्रचार, समाचारपत्र-पत्रिकाएँ, अपराध, दुष्कर्म, पारिवारिक-विघटन, सामाजिक अलगाव, सामूहिक तथा औद्योगिक संघर्ष, युद्ध और क्रांति, प्रेम और वासना, राजनैतिक दलों की संरचना और विघटन; राज्य, राष्ट्र तथा अन्तरराष्ट्रीय गतिविधियाँ उसकी सामाजिक-चेतना को प्रभावित करती हैं, विकसित करती हैं और अपने जीवन-मूल्यों को समझने, चिन्तन करने, मनन करने को बाध्य करती हैं।

छात्र परिवार में जब देखता है कि पिताजी सिगरेट पीते हैं और बच्चों को ऐसा करने पर डाँटते हैं तो उसका चिन्तन उसे विद्रोह करने की प्रेरणा देता है। माता-पिता से मिलने आने वाले सखा/सखी की बातचीत में जब वह अश्लील संवाद सुनता है तो विद्यार्थी का भोला मन कच्चे प्रेम की ओर अग्रसर होता है। परिवार की कटुता, पड़ोसी की शत्रुता-मित्रता उसको प्रभावित करती है। वह यह सोचता है कि चाचा-चाची के बच्चों के साथ कब खेलना शुरू करूँगा? पड़ोस के साथी के घर जाकर चाय कैसे पीऊँगा? बहिन के विवाह में जब माता-पिता की परेशानियों को देखता है, होने वाले मौसा-मौसी के कटु व्यवहार को देखता है तो उसका मन भी क्षोभ और घृणा से उद्वेलित हो जाता है। प्रतिक्रियावश वह विवाह की प्रक्रियाओं को व्यर्थ और आत्मघाती मानने लगता है।

विद्यालय में जब अध्यापक के पक्षपातपूर्ण और स्वार्थमय व्यवहार को देखता है, तो उसका मन विद्रोही-सा बन जाता है। वह उस अध्यापक के अनिष्ट की मन ही मन प्रभु से प्रार्थना करता है। सन्मित्र मण्डली का साथ उसके जीवन को उन्नति की ओर अग्रसर करता है तो आवारा और दुष्चरित्र साथी उसके जीवन को पतन की ओर धकेलते हैं। स्कूल के वार्षिक अधिवेशन में मित्र को पुरस्कार लेते देखता है तो उसका मन करता है, कि क्यों न मैं भी अपने अन्दर पुरस्कार प्राप्ति की योग्यता प्राप्त करूँ?

वह समाज में धर्म के स्वरूप को समझता है, पहचानता है। वह जानता है हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, यहूदी, पारसी एक समाज के अंग होते हुए भी पंथों के कारण विभक्त हैं। जब वे परस्पर टकराते हैं तो साम्प्रदायिक दंगे होते हैं। विद्यार्थी को यह अनुभूति है कि अब कर्फ्यू लगेगा, स्कूल बन्द होंगे, असामाजिक तत्त्वों द्वारा दुकानें लूटी जाएँगी, वाहनों को आग लगा दी जाएगी।

विद्यार्थी समझता है कि इस विवेकहीन धार्मिक-विश्वास से ही अन्ध-विश्वासों का जन्म हुआ है। किसी ने छींक दिया, बिल्ली रास्ता काट गई या किसी ने पीछे ही आवाज दे दी तो अपशकुन समझते हैं। मार्ग में काना मिल गया तो अशुभ मानते हैं।

इस प्रकार समाज के बाह्य-जीवन की अनुभूति या बोध जब विद्यार्थी जीवन में होता है तो वह उन अनुभूतियों और बोध के आधार पर जीवन की अनोखी और नई बातों की सृष्टि अपने मानस-पटल पर करता है। वह मन में उठे हुए भावों में अनुरक्त हो जाता है। यह अनुराग उसके मनोवेगों को उत्तेजित करती है, जाग्रत करती है। वह अपना दृष्टिकोण निर्धारित करता है। जीवन में बदलाव लाने की चेष्टा करता है। यह विचार-परिवर्तन, कार्य-शैली में बदल की चेष्टा, मन की पुनः रचना सामाजिक-चेतना के परिणाम ही तो हैं।

विद्यार्थी सोचता है—वह सामाजिक प्राणी है। उसके बिना वह जीवन जी नहीं सकता। समाज से द्रोह एक ज्वर है, भ्रष्टाचार कुष्ठ रोग के समान है, अकर्मण्यता क्षय रोग है तथा समाज-सत्य की अवहेलना सामाजिक ध्वंस है। उनमें संघर्ष की भावना को प्रश्रय देना समाज के कल्याण-मार्ग को प्रशस्त करना है। उसकी सम्पन्नता में ही उसके जीवन का सौख्य है, भविष्य की उज्ज्वलता और चरित्र की श्रेष्ठता है।

(90) विद्यार्थी और चलचित्र (सिनेमा)

संकेत बिंदु—(1) विद्यार्थी का पूजा स्थल (2) अभिनेता व अभिनेत्री विद्यार्थियों के आदर्श (3) चलचित्रों की बुराइयों को ग्रहण करना (4) कहानीकार और गायक बनने की लालसा (5) विद्यार्थी का ज्ञानवर्धन।

चलचित्र आज के विद्यार्थी के लिए प्रेयसी के समान है, जिसको देखे बिना उसको जीवन शून्य-सा लगता है। चलचित्र के संवाद उसके लिए धर्म-ग्रन्थ के श्लोक हैं, जिन्हें कण्ठस्थ करने और उच्चारण करने में उसके जीवन की कृतार्थता है। चलचित्र के गीत-संगीत उसके हृदय को झंकृत करने के उपकरण हैं।

चलचित्रगृह विद्यार्थी का पूजा-स्थल है। उसके नायक-नायिकाओं, अभिनेता-अभिनेत्रियों के चरणों पर वह अपने श्रद्धा-सुमन चढ़ाता है। अपने ड्राइंग रूम में उनके चित्र टाँगता है। अपने पर्स में उनका फोटू रखता है। सिने पत्र-पत्रिकाओं को वह चाव से पढ़ता है। उनके जीवन-चरित्र और 'पिक्चरों' के नाम, संवाद, गीतों को तोते की तरह

रटता है। कौन-सा गाना किसने लिखा, गाया, संगीत-बद्ध किया गया और किस नायक, नायिका या अभिनेता, अभिनेत्री पर पिक्चराइज किया गया है, इसे कंठस्थ करता है।

चलचित्र के अभिनेता और अभिनेत्रियाँ उसके आदर्श हैं। वह उन्हीं की तरह जीवन जीना चाहेगा, बाल बनाएगा, कपड़े पहनेगा, हावभाव बनाएगा, 'एक्टिंग' करेगा, बोलेगा, भाषण देगा, प्रेम करेगा, लड़कियों का पीछा करेगा, उन्हें छेड़ेगा, चोरी करेगा, डाका डालेगा, बैंक लूटेगा, शराब पीएगा, नशा करेगा, नशे में झूमेगा, ऊटपटाँग बकेगा।

छात्राएँ भी 'सिनेमा शैली' के अनुसार अर्धनग्न शरीरों का प्रदर्शन करेंगी, कामुक हाव-भाव दर्शाएँगी, वक्ष को कृत्रिम ढंग से उभारेंगी, विभिन्न प्रकार से केश-विन्यास करेंगी, कैफे में जायेंगी, सिगरेट पीएँगी, नशा करेंगी, बॉय फ्रैंड बनाएँगी। सार्वजनिक रूप में प्यार का भौंडा प्रदर्शन करेंगी।

विद्यार्थी चलचित्र से प्रभावित होकर प्रेम-विवाह की ओर अग्रसर हुआ। उसने प्रेमिका को पत्नी रूप में स्वीकार किया। जीवन-भर साथ रहने-निभाने की कसमें खाईं। इसके लिए माँ-बाप की इच्छा का अनादर किया। घर छोड़ा, परिवार त्यागा। जाति-बन्धन को ठोकर मारी और दहेज के मुख पर कालिख पोती, पर ऐसे कितने विवाह सफल हुए, यह न पूछिए।

जिन विद्यार्थियों पर चलचित्र का जादू सिर पर चढ़कर बोला वे चलचित्र जगत् के 'हीरो' और 'हीरोइन' बनने के लिए मचल उठे। 'एक्टिंग' सीखा, 'डांसिंग' का अभ्यास किया। चलचित्र नगरी में पहुँचे। अपवादस्वरूप जो सफल हुए, वे कृतार्थ हो गए, शेष बर्बाद हो गए। धन और चरित्र लुटाकर 'लौट के बुद्धू घर को आए' का उदाहरण बन गए।

विद्यार्थी चलचित्र से बुराई को ग्रहण करता है, उसकी अच्छाई से कतराता है। यही कारण है कि चलचित्र का प्रेमी विद्यार्थी चलचित्र के उपदेशों को ग्रहण नहीं करता, गरीबी के अभिशाप से पीड़ित युवती को सहारा नहीं देता, गुण्डों के चंगुल में फँसी युवती की रक्षा नहीं करता।

दूसरी ओर 'ए' सर्टिफिकेट के चलचित्रों को देखने की विद्यार्थी में होड़, लालसा और चाहना, यौवन में रस ढूँढने, नेत्रों को तृप्त करने तथा वासना-विष पीकर नीलकंठ बनने की तमन्ना ही तो है। साढ़े नौ और बारह बजे दिन के शो विद्यार्थियों की इच्छापूर्ति के अमृत-कुंड ही तो हैं।

चलचित्र के गीत-संगीत विद्यार्थी के मन-मस्तिष्क पर इतने छाए हैं कि वह उनकी स्वर और धुन सुनने के लिए तड़पता है। वह रेडियो पर सिनेमा गीत सुनना है। कैसेट लगाकर अपनी तृप्ति करता है। दूरदर्शन पर चलचित्र के गाने चित्रहार, चित्रमाला, चित्रगीत, रंगोली, अन्त्याक्षरी आदि रूपों में अवतरित होते हैं तो छात्र अपनी पढ़ाई-लिखाई, घर के काम-काज, सब कुछ छोड़कर उसी में डूब जाता है। 'काश, एक-दो और गाने सुनवाता' की आहभरी वेदना से व्यथित होता कह उठता है—

छलना थी, तब भी मेरा, उसमें विश्वास घना था।
उस माया की छाया में, कुछ सच्चा स्वयं बना था॥

चलचित्र देख विद्यार्थी ने भी कहानी के 'प्लाट' ढूँढे। कहानीकार बनने की इच्छा जाग्रत हुई। चलचित्र के गीतों से विद्यार्थी के कण्ठों से संगीत के स्वर फूटे। गायन-विद्या की ओर प्रवृत्त हुए। छात्राओं ने नृत्य सीखने में रुचि दर्शाई। 'फोटोग्राफी' की रुचि बलवती बनी। घरों में परिवार-एलबम बनाना इसकी क्रियान्विति ही तो है।

चलचित्रों से विद्यार्थी का ज्ञानवर्धन भी हुआ। अनेक दर्शनीय-स्थल, पवित्र तीर्थ, ऐतिहासिक भवन, सांस्कृतिक-धरोहर तथा कला-कृतियाँ जो जीवन में देख नहीं पाता, वह उन्हें चलचित्रों में देखता है। महापुरुषों, वीरों, शहीदों तथा देशभक्तिपूर्ण चित्रों ने उसमें राष्ट्रभक्ति के भाव भरे। धार्मिक चित्रों ने उसमें धर्म के प्रति आस्था और श्रद्धा जागृत की। चलचित्र से पूर्व सामयिक घटना की झाँकियों द्वारा भारत और विदेशों में घटित घटनाओं के प्रत्यक्ष दर्शन किए।

(5) चलचित्रों ने विद्यार्थी-जीवन को दिशा भी दी। सोचने-समझने की शक्ति दी। बातचीत की शैली समझाई। गीत-संगीत की ध्वनि गुनगुनाने की प्रवृत्ति दी। समाज में व्यवहार करना सिखाया। काम निकालने का गुरु-मंत्र सिखाया। युवक-युवतियों को निर्भय होकर सम्पर्क और व्यवहार करने की शिक्षा दी। व्यक्तित्व की महत्ता के उपाय सुझाए। रोजी-रोटी के अनेक अवसर प्रस्तुत किए।

(91) विद्यार्थी और देश-प्रेम

संकेत बिंदु—(1) शरीर और आत्मा का संबंध (2) देश-परिचय और कोमल भावनाओं का अंकुरण काल (3) विद्याध्ययन काल और देश-प्रेम (4) देश-प्रेम के अनिवार्य बातें (5) दोषपूर्ण शिक्षा पद्धति।

विद्यार्थी और देश-प्रेम का संबंध ऐसा ही है जैसा कि शरीर और आत्मा का सम्बन्ध। यह उसके लिए मातृभूमि के ऋण से उऋण होने का साधन है। जीवन में स्वार्थ और कामना का हवन करना है। देश-सेवा के माध्यम से अजर-अमर होने का वरदान है। कहा भी है—

शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले।
वतन पर मिटने वालों का यही बाकी निशां होगा॥

किसी भी शिक्षा-संस्था में विद्या प्राप्त करने वाला विद्यार्थी कहलाता है। सदा कुछ-न-कुछ, किसी-न-किसी विषय में जानने-सीखने के लिए प्रयत्नशील व्यक्ति भी विद्यार्थी है। मातृभूमि से साहचर्यगत प्रेम, देश-प्रेम है। देश के प्रति कर्तव्य-पालन करना और तन, मन, धन समर्पण करना देश-प्रेम का परिचायक है।

विद्यार्थी राष्ट्र का एक अंग है, अत: देश-प्रेम उसका कर्तव्य है। रामनरेश त्रिपाठी ने 'स्वप्न' कविता में देश-प्रेम की महिमा बताते हुए कहा है—

देश प्रेम वह पुण्य क्षेत्र है, अमल असीम त्याग से विलसित।
आत्मा के विकास से जिसमें, मनुष्यता होती है विकसित।।

देश-प्रेम की पहली शर्त है देश-परिचय। बिना रूप-परिचय के देश-प्रेम कैसा? देश के प्राणी (मानव, पशु, पक्षी, जन्तु), प्रकृति, धार्मिक, सामाजिक तथा राजनैतिक स्थिति का ज्ञान देश का रूप परिचय है। रूप-परिचय देश की हित-चिंतन तथा हित-साधन की प्रवृत्ति को प्रश्रय देगा। हृदय में देश-प्रेम की ललक और भावना उत्पन्न करेगा। इस प्रकार जब देश का रूप विद्यार्थी की आँखों में समा जाएगा तो उसके अंत:करण में यह भाव उदित होगा कि मेरा देश सदा धनधान्य से पूर्ण हो, उसके मानव सुखी रहें, पशु-पक्षियों व अन्य जन्तुओं का अकारण विनाश न हो तथा देश के वन-बाग सुरक्षित रहें। जलाशय जल से परिपूर्ण हों। पर्यावरण प्रदूषित न हो।

विद्यार्थी-मन कोमल भावनाओं के अंकुरण का काल है। उसमें जो बीज पड़ जाएगा, भविष्य में वे भावनाएं परिपक्व होकर वट-वृक्ष बन जाएंगी। विद्यार्थी-काल में यदि देश के प्रति प्रेम-भावना जागृत हुई तो वह जीवन-भर अंतरात्मा में विद्यमान रहेगी। विद्यार्थी काल में उदित देश-प्रेम सच्चा राष्ट्र-प्रेम होगा। उसमें न छल होगा, न कपट। न देश के प्रति द्रोह होगा, न दूरभि-संधि। अंत:करण की एक ही आवाज होगी, *'तेरा वैभव अमर रहे माँ। हम दिन चार रहें न रहें।'*

ब्रह्मचर्यावस्था अर्थात् विद्याध्ययन-काल में छात्र अविवाहित होता है। परिवार के दायित्व से मुक्त होता है। कमाने की चिन्ता से दूर रहता है। अध्ययन रूपी तप में वह प्रवृत्त रहता है। उसके हृदय में उत्साह और उमंग भरा रहता है। अत: बिना झिझक वह संघर्षों से टक्कर ले सकता है। देश-प्रेमी की तो एक ही भावना रहती है—

मुझे तोड़ लेना वन माली! उस पथ में देना तुम फेंक।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जावें वीर अनेक।

—माखनलाल चतुर्वेदी

यही कारण है कि गाँधी जी की ललकार पर सहस्रों विद्यार्थी स्वातंत्र्य-आन्दोलन में कूद पड़े थे। सीने पर ब्रिटिश राज्य की गोली खा ली, पर पीठ नहीं दिखाई। जेल की कोठरी से प्यार किया, फाँसी के फंदे को चूमा, पर देश से द्रोह नहीं किया। सन् १९७४ के आपत्काल में सिर पर कफन बांधकर विद्यार्थी यदि इन्दिरा की तानाशाही के विरुद्ध खड़े न होते तो देश आपत्काल से मुक्त न होता। दिनकर जी की शब्दों में—

जो अगणित लघु दीप हमारे / तूफानों में एक किनारे।
जल-जलकर बुझ गए एक दिन / माँगा नहीं स्नेह मुँह खोल।।

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' देश-प्रेम के लिए तीन बातों को जीवन में आचरित करना अनिवार्य मानते हैं। (1) **शक्ति बोध** अर्थात् अपने देश के सामर्थ्य का ज्ञान। देश की कमियों, खराबियों की सार्वजनिक चर्चा करना तथा दूसरे देशों की तुलना में अपने देश को हीन सिद्ध करना शक्तिबोध को चोट पहुँचाना है। इसमे नागरिकों के मनोबल का ह्रास

होगा। (2) **सौन्दर्य-बोध** अर्थात् देश को सुन्दर रखने का प्रयत्न। घर का कूड़ा सड़क पर फेंकना; केला खाकर छिलका रास्ते में फेंकना; गंदे शब्दों का उच्चारण करना; चुगली लगाना; गली, घर, कार्यालय को गन्दा रखना; सार्वजनिक स्थानों, जीनों तथा कोनों में पीक थूकना; उत्सवों, मेलों, रेलों तथा खेलों में ठेलमठेल करना; देश के सौन्दर्य-बोध को आघात पहुँचाना है। (3) **मत का प्रयोग**—देश के हित में यह जरूरी है कि हम अपने 'वोट' का प्रयोग अपने विवेक से करें, न कि जाति, सम्प्रदाय, दल या लालच वश।

शिक्षा संस्थाओं से सम्बद्ध होने के कारण आज का विद्यार्थी 'विद्यार्थी' तो हैं पर अध्ययन के प्रति उसमें पूर्ण रुचि और एकाग्रता नहीं, अध्यापक के प्रति श्रद्धा नहीं, शिक्षा-संस्थान के प्रति आदर भाव नहीं। शिक्षा संस्थान अध्ययन, मनन, चिंतन और समर्पण के देवालय हैं। मातृभूमि की पूजा अर्चना की ज्योति जागृत करने के पूजा-स्थल हैं। इनके प्रति अश्रद्धा, अवहेलना, उपेक्षा के बाद विद्यार्थी से देश-प्रेम की आशा करना वैसा ही है, जैसे रेगिस्तान में जल की कामना करना।

विद्यार्थी में देशहित की भावना के अभाव के लिए क्या हमारी शिक्षा-पद्धति दोषी है या विद्यार्थी का आचरण? वस्तुत: इसके लिए न शिक्षा-पद्धति दोषी है, न विद्यार्थी का आचरण। दोषी हैं तो राजनीतिज्ञों का व्यवहार। जब वह अखबार में तथाकथित परम देश-भक्त राजनीतिज्ञों को भ्रष्ट आचरण में लिप्त पाता है तो वह नैतिक शिक्षा को अस्पृश्य मानता है। जब राष्ट्र भक्त राजनीतिज्ञ अपने द्वारा संचालित शिक्षा-पद्धति को ही पानी पी-पीकर कोसते हैं तो वह अध्ययन को समय की बरबादी मानता है। जब गुरुजन अध्यापन में प्रमाद करते हैं तो छात्र के मन में उनके प्रति विद्रोह उठना स्वाभाविक है।

(92) शिक्षक और छात्र/अध्यापक और विद्यार्थी/गुरु और शिष्य

संकेत विंदु—(1) गुरु का स्थान ईश्वर के ऊपर (2) शिक्षक और छात्र का दायित्व (3) प्राचीन काल से ही गुरु का महत्त्व (4) छात्रों पर शिक्षक का प्रभाव (5) उपसंहार।

शिक्षक, अध्यापक, गुरु, टीचर और मास्टर ये कुछ शब्द हैं जो हमें शिक्षा के क्षेत्र में देखने और सुनने को मिलते हैं और इनके साथ ही विद्यार्थी, शिष्य, स्टूडैन्ट और चेला शब्द भी देखे और सुने जा सकते हैं। भारतीय परम्परा के अनुसार गुरु और शिष्य से बात प्रारम्भ की जाये तो अच्छा रहेगा।

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूँ पांय।
बलिहारी गुरु आपने, जिन गोविन्द दियो मिलाय॥

उपर्युक्त पंक्तियों में शिष्य संशय में है कि भगवान् और गुरु दोनों खड़े हैं किसके पाँव

छूने चाहिएँ, तभी उसी शिष्य को आभास हुआ कि गुरु के कारण ही भगवान् के दर्शन का सौभाग्य मिला है, पहले गुरु के पाँव छू लेने चाहिएँ। कहने का यह अभिप्राय है कि यह गुरु का पद भगवान् से भी ऊँचा माना गया है।

निष्ठावान् शिक्षक ही छात्र के जीवन में सुधार कर सकता है और शिक्षक के द्वारा ही छात्र जीवन में शिखर को छू पाने में सफल हो सकता है। शिक्षक और छात्र दोनों के मन में भावना का होना अति आवश्यक है। एक ओर तो बेचारा शिक्षक पूरे मनोवेग से छात्रों को पढ़ाने का प्रयास करे और दूसरी ओर छात्रों का ध्यान किन्हीं अन्य बातों में लगा रहे तो न शिक्षक को ही पढ़ाने में आनन्द आयेगा और न छात्रों का ही भला हो पायेगा।

छात्र को भी ज्ञान अर्जन के लिए सम्पूर्ण समर्पण भाव से ध्यान देने की ही आवश्यकता होती है, तभी जीवन में उन्नति प्राप्त हो सकती है। प्राचीनकाल में शिष्यों का समर्पण एक उदाहरण बनकर आज भी हमारे सम्मुख है। गुरु द्रोणाचार्य पांडवों को धनुर्विद्या में निपुण कर रहे थे और भील का बालक एकलव्य गुरु द्रोणाचार्य द्वारा पाण्डवों को सिखायी जा रही धनुष विद्या को दूर खड़ा देखा करता था। एक ही मन से द्रोणाचार्य को अपना गुरु स्वीकार लिया और वह भी धनुष का स्वतः ही अभ्यास करने लगा। पारंगत होने पर एकलव्य ने जब अपनी विद्या का प्रदर्शन किया तो द्रोणाचार्य ने एकलव्य से उसके गुरु का नाम जानना चाहा। तब एकलव्य ने बताया कि मैंने मन से आपको गुरु स्वीकार कर यह धनुष विद्या स्वयं ही सीखी है। इस पर गुरु दक्षिणा में एकलव्य ने अपने सीधे हाथ का अँगूठा काटकर द्रोणाचार्य को गुरु दक्षिणा में भेंट कर दिया। यही नहीं मुनि वशिष्ठ और विश्वामित्र ने राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न को शिक्षित किया और संदीपन गुरु ने श्रीकृष्ण को ज्ञान के साथ-साथ सहज और सरल जीवन जीने का पाठ भी पढ़ाया। शिक्षक, गुरु या अध्यापक कुम्हार की भाँति कहे गये हैं, जिस प्रकार कुम्हार अपनी गीली मिट्टी को जो चाहे आकार देने में सक्षम होता है उसी प्रकार गुरु, शिक्षक का अध्यापक अपने शिल्प को आकार दे सकता है। अरस्तू ने अपने शिष्य सिकन्दर को विश्व जीतने के लिए उकसाया तो चन्दगुप्त को चाणक्य ने शिक्षित करके देश का इतिहास ही बदल दिया।

छोटे बच्चे के मन पर अध्यापक का जैसा गहरा प्रभाव पड़ता है, वैसा किसी अन्य का नहीं पड़ता। इसलिए अध्यापक का आदर्शवान् होना परम आवश्यक है। अध्यापक ही ऐसा एक केन्द्र-बिन्दु है जहाँ से बौद्धिक परम्पराएँ तथा वैज्ञानिक और तकनीकी कुशलता एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को संचारित करती हैं। यह अध्यापक या शिक्षक ही होता है जो सभ्यता के दीपक को प्रज्ज्वलित करने में अपना योगदान करता है। शिक्षक, अध्यापक या गुरु व्यक्ति का मार्ग दर्शन ही नहीं करता, अपितु समूचे राष्ट्र का भाग्य निर्माता भी होता है।

शिक्षक यदि योग्य होगा तो छात्र भी योग्य ही बनेंगे। शिक्षक के व्यक्तित्व का प्रभाव

छात्र पर निश्चित रूप से पड़ता है। चरित्रवान् और नीतिवान् अध्यापक के विद्यार्थी भी चरित्र और नीति में प्रवीण होंगे। शिक्षण, निरीक्षण, मार्गदर्शन, मूल्यांकन और सुधारात्मक कार्यों के साथ-साथ योग्य अध्यापक ही विद्यार्थियों, अभिभावकों और समुदाय से सदैव अनुकूल सम्बन्ध स्थापित करने के दायित्व को भी निभाता है। अध्यापक द्वारा शिक्षित छात्र जब परीक्षा में सफल होते हैं तो सबसे अधिक गर्व अध्यापक को ही होता है।

गोस्वामी तुलसीदास ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि—

श्री गुरु चरण सरोज रज,
निजमन मुकुरु सुधारि।

अर्थात् शिष्य का कर्त्तव्य है कि वह गुरु के चरणों की धूल अपने मस्तक पर धारण करे, लेकिन आज के सन्दर्भ में यदि हम देखें तो इसका यह भी अर्थ है कि विद्यार्थी अपने अध्यापक का सम्मान करे। अध्यापक या शिक्षक का कार्य तो केवल शिक्षा देना है, मगर विद्यार्थी का कार्य अध्यापक से भी बढ़ कर होता है, विद्यार्थी या छात्र का यह दायित्व हो जाता है कि सम्मानपूर्वक वह शिक्षा को भी ग्रहण करे साथ ही शिक्षक का भी पूरा सम्मान करे। यह कटु सत्य है कि ताली बजाने के लिए दोनों हाथों की आवश्यकता पड़ती है। एक हाथ से कभी भी ताली नहीं बजायी जा सकती।

छात्र यदि विनम्र होगा तो वह अपने अध्यापक से अच्छी शिक्षा प्राप्त कर पाने में सक्षम रहेगा, लेकिन यदि छात्र उदण्ड है तो वह सदैव विरस्कृत ही होता रहेगा, इसमें हानि छात्र की होती है। अध्यापक ने जो भी शिक्षा देनी है वह सामूहिक रूप से सभी छात्रों को कक्षा में देगा और यह छात्रों पर निर्भर करता है कि वह उस, अध्यापक की शिक्षा को कितना ग्रहण कर पाते हैं। पूरी कक्षा में अध्यापक किसी भी छात्र से शिक्षा देते समय अर्थात् पढ़ाते समय कोई भी भेदभाव नहीं रखते, फिर भी परीक्षा परिणाम में कुछ छात्र असफल हो जाते हैं, इसमें दोष उन छात्रों का है जिन्होंने मन लगाकर न तो अध्यापक की बात ही सुनी और न ही मन लगा अध्ययन, चिन्तन और मन ही किया। लेकिन किसी भी छात्र के असफल होने का दु:ख छात्र से अधिक अध्यापक को होता है, क्योंकि अध्यापक को मन-ही-मन यह लगता है कि शायद मुझसे छात्रों को ठीक प्रकार से बताने या समझाने में कोई कमी रह गयी है।

शिक्षक और छात्र का सम्बन्ध तो दूध और पानी की भाँति होता है, जैसे दूध में मिला पानी भी दूध ही कहलाता है उसी प्रकार एक अच्छे चरित्रवान् शिक्षक का छात्र भी अच्छा चरित्रवान् ही कहलाने का अधिकारी होता है। जहाँ अध्यापक का दायित्व छात्र को शिक्षा देना हैं, वहीं छात्र का भी कर्त्तव्य है अध्यापक द्वारा दी गयी उस महत्त्वपूर्ण शिक्षा को ग्रहण कर जीवन में उन्नति पाता हुआ सदैव शिखर पर पहुँच कर अपने अध्यापक, अपने परिवार, समाज और राष्ट्र के नाम को ऊँचा करने का गौरव प्राप्त करे।

(93) राष्ट्रीय एकता में विद्यार्थियों की भूमिका/ राष्ट्रीय एकता और आज का छात्र/ छात्र और राष्ट्रीय एकता

संकेत बिंदु—(1) भारत की अखण्डता (2) एकता भारतीय संस्कृति का आधार (3) विद्यार्थियों का दायित्व (4) देश की एकता धर्म से ऊपर (5) उपसंहार।

भारत देश में अनेक भाषाएँ, अनेक परिधान, अनेक धर्म और अनेक विचार होने के बाद भी देश अखण्ड है, इसका प्रभाव प्रमुख कारण यह भी कहा जा सकता है कि देश का युवा वर्ग, देश का छात्र देश की छवि सुधारने में सदैव अग्रणी रहा है। कवि इकबाल ने भारत देश की विशालता और महानता के साथ-साथ देश के युवावर्ग की सराहना करते हुए कहा है—

यूनान, मिस्त्र रोमां, सब मिट गये जहाँ से,
क्या बात है कि हस्ती, मिटती नहीं हमारी।

इकबाल द्वारा लिखे इस गीत की पंक्तियाँ युवा वर्ग—देश का छात्र जब एक स्वर में गाता है तो लगता है कि सबके मन में देश की एकता की भावना कितनी प्रखर है, '**सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा।**' राष्ट्रीय एकता में देश के विद्यार्थी की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है, यह बताने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि देश सदैव युवा कंधों के बल पर ही आगे बढ़ता है।

भारतीय संस्कृति भावात्मक एकता का आधार मानी गयी है, लेकिन कई बार राजनीतिक स्वार्थ, अस्पृश्यता, साम्प्रदायिक तनाव, भाषा-भेद, क्षेत्रीय मोह और जातिवाद आदि संकीर्ण भावनाओं के प्रबल होने पर हमारी भावनात्मक एकता को खतरा उत्पन्न हो जाता है, लेकिन देश का जागरूक युवा छात्र अपने खुले मन से राष्ट्रीय एकता का पक्षधर बनकर सदैव तत्पर रहा है। हमारी संस्कृति इतनी विशाल न होती और सभ्यता इतनी महान् होती तो हम कभी के मिट गये होते, लेकिन देश के युवा वर्ग ने, देश के छात्र वर्ग ने सदैव अग्रणी होकर देश की एकता और अखण्डता की रक्षा की है।

देश की एकता बनाये रखने के भाई चारे के मूलमन्त्र को देश के युवा ने सदैव अपनाया है और जब भी कभी देश पर संकट के बादल मण्डराने लगते हैं तो देश का युवा वर्ग, छात्र वर्ग सजग होकर एकता और देश की अखण्डता की रक्षा के लिए कवच बनकर सामने खड़ा हो जाता है।

राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रीय चरित्र के अभाव में राष्ट्र की प्रगति प्रायः रुक जाया करती है, लेकिन देश का विद्यार्थी और युवा वर्ग यह भलीभाँति जानता है कि राष्ट्र की उन्नति हमारी आपसी एकता से ही सम्भव है। कोई भी नागरिक चाहे वह किसी भी क्षेत्र का हो,

किसी भी भाषा परिवार का सदस्य हो, किसी भी धर्म को मानने वाला हो, जब राष्ट्रीय एकता का प्रश्न आता है तो हम सब एक हो जाते हैं. यही हमारी महानता है और यही देश की विशालता भी है। देश की एकता के लिए हर वर्ग सदैव तत्पर है—

हम लाये हैं तूफान से किश्ती निकाल के।
इस देश को रखना, मेरे बच्चो सम्भाल के॥

गीत की इन पंक्तियों में देश के छात्रों, विद्यार्थियों और युवाओं को सम्बोधित कर कहा गया है कि इस देश को, देश की एकता को सँभालने का दायित्व बच्चों पर है, छात्रों पर हैं, देश के युवाओं पर हैं। एक और गीत में कहा गया है कि "**जहाँ डाल-डाल पर सोने की चिड़ियाँ करती हैं बसेरा, वह भारत देश है मेरा**, यह भी देश के छात्रों और विद्यार्थियों के मन की भावना को देश के प्रति व्यक्त करता है।

जब अपने स्कूल, कॉलेज में विद्यार्थी पंक्तिबद्ध होकर यह भावना व्यक्त करता है तो कितना मनोरम दृश्य उत्पन्न होता है—

अनेकता में एकता बनायें साथियो।
प्रेम वाले दीप हम जलायें साथियों।।

एक बार चीन के एक छात्र से एक व्यक्ति ने प्रश्न किया कि यदि कोई व्यक्ति भगवान बुद्ध को अपमानित करे तो चीन के छात्र का क्या दायित्व होगा? तो वह यह छात्र बोला- हम उस व्यक्ति की पिटाई कर देंगे जो बुद्ध का अपमान करेगा। इस पर उस व्यक्ति ने फिर दूसरा प्रश्न पूछा कि—मान लो यदि बुद्ध ही चीन पर आक्रमण कर दें तो आप छात्रों और युवाओं का क्या दायित्व होगा? इस पर उस छात्र ने प्रश्नकर्ता को तुरन्त उत्तर दिया कि हम पहले अपने देश की रक्षा के लिए सभी एक होकर बुद्ध से भी युद्ध करने को तत्पर हो जायेंगे। इसका उल्लेख यहाँ इसलिए किया गया है कि देश की एकता धर्म से अधिक सर्वोपरि है। यदि भारत में ऐसी स्थिति होती है तो देश का युवा छात्र देश की एकता के लिए देश के शत्रु से भिड़ने को तैयार है।

देश को ऊँचा उठाओ, देश हम सबसे बड़ा है।
एकता इसमें बनाओ, देश हम सबसे बड़ा है॥

देश के वीरों ने, अमर शहीदों ने अपने बलिदान से देश को स्वाधीन कराया, हम स्वतन्त्र हुए। देश की अखण्डता और राष्ट्रीय एकता बनाये रखने के लिए देश के छात्र को आगे आना है। देश तोड़ने की साजिश करने वाले देशद्रोहियों, राष्ट्र की एकता को खण्डित करने का प्रयास करने वाली बाहरी शक्तियों को मुँह तोड़ उत्तर देने का दायित्व भी देश के युवा छात्र वर्ग का है क्योंकि आज के युवा छात्र ही कल के देश के कर्णधार हैं और राष्टीय एकता की कमान भी देश के युवा छात्र वर्ग के हाथ में है।

(94) शिक्षा

संकेत बिंदु—(1) शिक्षा के बारे में विद्वानों के विचार (2) मनुष्य का सर्वांगीण विकास (3) मानव जीवन के लिए शिक्षा का उद्देश्य (4) शिक्षा-प्राप्ति के लिए अनिवार्य गुण (5) समाज व विद्यार्थी की प्रगति में सहायक।

'शिक्षा' शब्द 'शिक्ष्' धातु से भाव में 'अ' तथा 'टाप्' प्रत्यय जोड़ने पर बनता है। इसका अर्थ है—अधिगम, अध्ययन तथा ज्ञानाभिग्रहण। शिक्षा के लिए वर्तमान युग में शिक्षण, ज्ञान, विद्या, एजूकेशन (Education) आदि अनेक पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग होता है।

एजूकेशन (Education) शब्द की उत्पत्ति लेटिन भाषा के Educare तथा Educere शब्दों से मानी जाती है। Educare शब्द का अर्थ है, 'To educate. to bring up. to raise' अर्थात् शिक्षित करना पालन-पोषण करना तथा ऊपर उठाना।

शिक्षा-शास्त्री टी. रेमांट का विचार है. शिक्षा विकास का वह क्रम है, जिसमें व्यक्ति अपने को धीरे-धीरे विभिन्न प्रकार से अपने भौतिक. सामाजिक तथा आध्यात्मिक वातावरण के अनुकूल बना लेता है। जीवन ही वास्तव में शिक्षा है। प्रोफेसर ड्यूवी के मत में, 'शिक्षा एक प्रक्रिया है जिसमें तथा जिसके द्वारा बालक के ज्ञान, चरित्र तथा व्यवहार को एक विशेष साँचे में ढाला जाता है।

स्वामी विवेकानन्द का कथन है 'शिक्षा विविध जानकारियों का ढेर नहीं, बल्कि मनुष्य में जो सम्पूर्णता गुप्त रूप से विद्यमान है, उसे प्रत्यक्ष करना ही शिक्षा का कार्य है।' प्लेटो ने भी शिक्षा के सम्बन्ध में इसी तरह के भाव व्यक्त किए हैं, 'शरीर और आत्मा में अधिक-से-अधिक जितने सौंदर्य और जितनी सम्पूर्णता का विकास हो सकता है. उसे सम्पन्न करना ही शिक्षा का उद्देश्य है।' हर्बर्ट स्पेन्सर शिक्षा का महान् उद्देश्य कर्म को मानते हुए कहते हैं, 'लोगों को पूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए प्रस्तुत करना ही शिक्षा का उद्देश्य है।'

डॉ. राधाकृष्णन् के अनुसार, 'इसमें केवल बुद्धि का प्रशिक्षण ही नहीं, बल्कि हृदय की शुद्धता और आत्मा का अनुशासन भी सम्मिलित होना चाहिए।'

भारतीय संस्कृति में ज्ञान को मनुष्य का तृतीय नेत्र (ज्ञानं तृतीयं मनुजस्य नेत्रम्) बताया गया है। विद्या ही मानवी शील का शृंगार है। यही विवेक का मूल है। शिक्षा राष्ट्र की आन्तरिक सुरक्षा है, जीवन की सफलता का दिव्य साधन है। विद्या (शिक्षा) ही वह साधन है, जिसके द्वारा मनुष्यता का विकास होता है। शिक्षा-शून्य व्यक्ति तो पशु-समान ही होता है। उक्ति प्रसिद्ध है—'विद्या-विहीनः पशुः।' इतना ही नहीं, शिक्षा मनुष्य के लिए कल्पवृक्ष के समान है। उसके द्वारा मनुष्य के जीवन का सर्वांगीण विकास होता है—'किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या।'

शिक्षा रूपी सम्पत्ति संसार के सब धनों में विलक्षण है। अन्य धन नष्ट हो सकते हैं,

चुराए जा सकते हैं, शासन द्वारा जब्त किए जा सकते हैं, किन्तु शिक्षा रूपी धन इन विपदाओं से मुक्त है। इसे न चोर चुरा सकता है, न राजा छीन सकता है और न भाई-बन्धु बाँट सकते हैं। इस धन की सबसे बड़ी विलक्षणता तो यह है कि ज्यों-ज्यों व्यय किया जाता है, त्यों-त्यों यह बढ़ता ही जाता है। स्पष्ट है कि मनुष्य स्वयंगृहीत शिक्षा को जितना ही दूसरों को देगा, उतना ही उसका ज्ञान बढ़ेगा। किसी कवि ने ठीक ही कहा है—

सरस्वती के भंडार की बड़ी अपूरब बात।
ज्यों-ज्यों खरचे त्यों बढ़े, बिन खरचे घटि जात॥

शिक्षा मानव-जीवन के लिए वैसी ही है, जैसे संगमरमर के टुकड़े के लिए शिल्पकला। फलत: शिक्षा केवल ज्ञान-दान ही नहीं करती, वह संस्कार और सुरुचि के अंकुरों का पोषण भी करती है। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि श्री सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने शिक्षा को संसार की सभी प्रकार की प्राप्तियों में श्रेष्ठतम बताया है। इसी प्रकार होरसमैन विद्या को भवन के प्रजातन्त्र की किलेबन्दी मानता है।

शिक्षा के उद्देश्य को व्यक्त करते हुए प्रेमचन्द जी अपनी एक कथा में लिखते हैं कि 'यह ठीक है कि शिक्षा और सम्पत्ति का प्रभुत्व सदा ही रहा है, किन्तु जो शिक्षा हमें निर्बलों को सताने के लिए तैयार करे, जो हमें धरती और धन का गुलाम बनाए, जो हमें भोग-विलास में डुबाए, जो हमें दूसरों का रक्त पीकर मोटा होने का इच्छुक बनाए, वह शिक्षा नहीं, भ्रष्टता है।' एक शिक्षाविद् का कथन है कि जिस शिक्षा में समाज और देश के कल्याण-चिन्तन के तत्त्व नहीं हैं, वह कभी सच्ची शिक्षा नहीं कही जा सकती है।' डॉ. हरिशंकर शर्मा ने शिक्षा के आदर्श का उद्घाटन इन पंक्तियों में किया है—

'जो शिक्षा मानव्रता का मार्ग दिखाए,
मन वचन, कर्म में शुचिता, समता लाए।
तन, मन, आत्मा को विमल-बलिष्ठ बनाए,
विज्ञान, ज्ञान का मर्म महत्त्व बताए॥'

सामवेद संहिता में 'पावका न: सरस्वती' (हमारी विद्या पवित्र विचारों को फैलाने वाली हो) कहकर शिक्षा के महत्त्व का सार ही प्रस्तुत कर दिया है।

शिक्षा-प्राप्ति के लिए आत्म-संयम, कर्तव्य-निष्ठा, धैर्य, सहनशीलता, सत्य तथा अपरिग्रह अनिवार्य गुण हैं। इन गुणों के लिए अपेक्षित है अतुल शक्ति, पारदर्शी बुद्धि तथा आचरण की शुचिता। स्वाध्याय, स्मृति और विवेकशक्ति उसकी रीढ़ है, आधार स्तम्भ हैं। शिक्षा के अभाव में मनुष्य का जीवन अत्यन्त दूषित एवं पाशविक बन जाता है। इस स्थिति पर प्रकाश डालते हुए किसी कवि ने लिखा है—

विद्या बिना अब देख लो हम दुर्गुणों के दास हैं।
हैं तो मनुज हम, किन्तु रहते दनुजता के पास हैं॥
दायें तथा बायें सदा सहचर हमारे चार हैं।
अविचार, अन्धाचार औ' व्यभिचार, अत्याचार हैं॥

हाँ! गाढ़तर तमसावरण से आज हम आच्छन्न हैं।
ऐसे विपन्न हुए कि अब सब भाँति मरणासन्न हैं॥

निरुक्त में शिक्षा के लिए अपात्र का निषेध करते हुए विद्या स्वयं विद्वान् से कहती है, 'मैं तुम्हारी निधि हूँ, तुम मेरी रक्षा करो। निन्दक, कुटिल और असंयमी के लिए मुझे न दो, तभी मैं शक्ति और सामर्थ्य से युक्त रह सकती हूँ।'

'विद्याह वै ब्राह्मणमाजगाम, गोपाय मा शेवधिष्टेऽहम स्मि।
असूयकायानृजवेऽयताय, न मा ब्रूया वीर्यवनी तथा स्याम्॥'

शिक्षा चेतन या अचेतन रूप से मानव की वैयक्तिक रुचियों, समताओं, योग्यताओं और सामाजिक-मूल्यों को ध्यान में रखते हुए आवश्यकता के अनुसार स्वतन्त्रता देकर, उसका सर्वांगीण विकास करती है तथा उसके आचरण को इस प्रकार परिवर्तित करती है जिससे शिक्षार्थी और उसके समाज, दोनों की प्रगति होती है।

(95) शिक्षा का उद्देश्य

संकेत बिंदु—(1) ज्ञान और संस्कृति के लिए (2) चरित्र-निर्माण के लिए (3) व्यवसाय और रोजगार के लिए (4) जीने की कला सीखने के लिए (5) व्यक्तित्व विकास के लिए।

ज्ञान क्या है ? किसी बात या विषय के सम्बन्ध में होने वाली यह तथ्यपूर्ण, वास्तविक और संगत जानकारी या परिचय जो अध्ययन, अनुभव, निरीक्षण या प्रयोग आदि के द्वारा प्राप्त होता है, ज्ञान है।'ज्ञान अनुभव की पुत्री है।' दूसरे शब्दों में मनुष्य के संचित अनुभवों का कोश ही ज्ञान है। स्वामी शिवानन्द का मत है कि, 'सत्य का साक्षात्कार ही ज्ञान है।' सुकरात ने ज्ञान को शक्ति माना है। बेकन ने इसी बात का समर्थन करते हुए कहा है, 'Knowlege itself is Power' (ज्ञान स्वयं ही शक्ति है।) डिजराइली का कथन है—'अपनी अनभिज्ञता का बोध, ज्ञान की ओर एक बड़ा कदम है।'

ज्ञान जीवन के लिए उपयोगी तभी है, जब उसका प्रयोग किया जाए। विचारों को कार्यान्वित किया जाए, जिससे चिन्तन-प्रक्रिया एवं मानव-व्यवहार में परिवर्तन आए।

ज्ञान प्राप्ति शिक्षा का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है। आधुनिक सभ्यता शिक्षा के माध्यम द्वारा ज्ञान-प्राप्त करके विकसित हुई है। न तो ज्ञान अपने आप में सम्पूर्ण शिक्षा है, न ही शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य। यह तो शिक्षा का मात्र एक भाग है, और है एक साधन।

अतः शिक्षा का उद्देश्य सांस्कृतिक ज्ञान की प्राप्ति होना चाहिए ताकि मानव सभ्य, शिष्ट, संयत बने। साहित्य, संगीत और कला आदि का विकास कर सके। जीवन को मूल्यवान् बनाकर जीवन-स्तर को ऊँचा उठा सके। साथ ही आने वाली पीढ़ी को सांस्कृतिक धरोहर सौंप सके।

चरित्र मनुष्य की पहचान है। चैनिंग के शब्दों में, 'व्यक्तिगत चरित्र समाज की महान्

आशा है।' प्रेमचन्द जी के शब्दों में, 'गौरव-सम्पन्न प्राणियों के लिए अपना चरित्र-बल ही सर्वप्रधान है। हरबर्ट के अनुसार, 'न केवल शिक्षा, अपितु चरित्र मानव की रक्षा करता है। उच्च चरित्र एक धन है।' पंडित नेहरू के अनुसार, 'सहनशीलता एवं नैतिकता के बिना भौतिक धन बेकार है।'

चरित्र दो प्रकार का होता है—अच्छा और बुरा। सच्चरित्र ही समाज की शोभा है। निर्धन का धन है। जीवन-विकास का मूल है। जीवन जन्मजात नहीं होता, बनाया जाता है। इसके निर्माण का दायित्व वहन करती है शिक्षा। गाँधी जी के शब्दों में 'चरित्र शुद्धि ठोस शिक्षा की बुनियाद है।' इसलिए डॉ. डी. एन. खोसला का कहना है, 'शिक्षा का उद्देश्य सांवेगिक एवं नैतिक विकास होना चाहिए। एक अच्छा इंजीनियर या डॉक्टर बेकार है, यदि उसमें नैतिकता के गुण नहीं। कारण, चरित्र हीन ज्ञानी सिर्फ ज्ञान का भार ढोता है। वास्तविक शिक्षा मानव में निहित सद्गुण एवं पूर्णत्व का विकास करती है।'

सच्चाई तो यह है कि चारित्रिक विकास में ही शिक्षा के वास्तविक उद्देश्य निहित हैं। यदि शिक्षा मानवीय चरित्र का विकास करने में असफल रहती है, तो उसका उद्देश्य पूरा नहीं होता।

व्यवसाय का अर्थ है—'जीविका निर्वाह का साधन।' इसका अर्थ यह है कि शिक्षा में इतनी शक्ति होनी चाहिए कि वह 'अर्थकरी' हो अर्थात् शिक्षित व्यक्ति की रोजी-रोटी की गारण्टी ले सके। गाँधी जी के शब्दों में, 'सच्ची शिक्षा बेरोजगारी के विरुद्ध बीमे के रूप में होनी चाहिए।'

स्वतन्त्रता-पूर्व शिक्षा का उद्देश्य बाबूगिरी की नौकरी पाना था। उस समय भारत की आबादी कम थी और शिक्षित व्यक्ति को प्राय: नौकर मिल जाती थी। देश आजाद हुआ। जनसंख्या सुरसा के मुँह की तरह बढ़ने लगी और नौकरियाँ उसके अनुपात में चींटी की चाल से बढ़ीं। परिणामत: देश में शिक्षित बेरोजगारों की लंबी लाइन लग गई। तब व्यवसाय का दूसरा अर्थ लिया गया—'काम धंधा।' इसका अर्थ है—सामान्य शिक्षा के साथ-साथ सामाजिक, आर्थिक जीवन के लिए उपयोगी विधाओं, शिल्पों एवं व्यवसायों का ज्ञान प्राप्त करना। 'व्यवसाय के लिए शिक्षा' या 'व्यावसायिक शिक्षा' का लक्ष्य कुशल शिल्पी तैयार करना नहीं, वरन् विद्यार्थी में उद्योग-धन्धों के प्रति प्रेम और उनकी ओर झुकाव उत्पन्न करके शारीरिक श्रम के महत्त्व की अनुभूति कराना है। श्रम का प्रेमी अपनी जीविका कमा ही लेगा। इसलिए 'व्यवसाय के लिए शिक्षा' शिक्षा का ध्येय होना अनिवार्य है।

शिक्षा के ऊपर लिखे चारों उद्देश्य—ज्ञान प्राप्ति, संस्कृति, चरित्र तथा व्यवसाय के लिए—एकांगी हैं, स्वत: सम्पूर्ण नहीं। जीवन के लिए चाहिए 'जीने की कला' की शिक्षा। शिक्षा जीवन की जटिल प्रक्रिया और दु:ख, कष्ट, विपत्ति में जीवन को सुखमय बनाने की क्षमता और योग्यता प्रदान करे।

स्पैन्सर शिक्षा में एक व्यापक उद्देश्य अर्थात् सम्पूर्ण जीवन के सभी पक्ष में सम्पूर्ण विकास का समर्थन करता है। वह पुस्तकालीयता का खंडन करता है तथा परिवार चलाने,

सामाजिक, आर्थिक, सम्बन्धों को चलाने तथा भावनात्मक विकास करने वाली क्रियाओं का समर्थन करता है। इन क्रियाओं में सफलता के पश्चात् व्यक्ति आगामी जीवन के लिए तैयार हो जाता है।

डॉ. डी.एन. खोसला के अनुसार, 'समस्त शिक्षा कार्य से आरम्भ होनी चाहिए और वहीं समाप्त होनी चाहिए। कार्य ही पूजा है और व्यक्ति को इस पूजा के लिए तैयार होना चाहिए। जीवन एक कला है, जो शिक्षा सिखाती है।'

किसी व्यक्ति की निजी विशिष्ट क्षमताएं, गुण, प्रवृत्तियाँ आदि जो उसके उद्देश्यों, कार्यों, व्यवहारों आदि में प्रकट होती हैं और जिनसे उस व्यक्ति का सामाजिक स्वरूप स्थिर होता है, व्यक्तित्व है। व्यक्तित्व दो भाग में विभक्त है—(1) आन्तर और (2) बाह्य। आन्तर व्यक्तित्व मूलत: नैसर्गिक या प्राकृतिक होता है और आध्यात्मिक, दैविक तथा दैहिक शक्तियों का सम्मिलित रूप होता है। वह मनुष्य के अन्दर रहने वाली समस्त प्रकट तथा प्रच्छन्न प्रवृत्तियों और शक्तियों का प्रतीक होता है। बाह्य व्यक्तित्व इसी का प्रत्याभास मात्र होता है। फिर भी, लोक के लिए वही गोचर या दृश्य होता है। इससे यह सूचित होता है कि कोई व्यक्ति अपनी आंतरिक प्रवृत्तियों और शक्तियों को कहाँ तक कार्यान्वित तथा विकसित करने में समर्थ है या हो सका है। (मानक हिन्दी कोश, खंड पाँच, पृष्ठ 124)

महादेवी जी की धारणा है कि 'शिक्षा व्यक्तित्व के विकास के लिए भी है और जीवकोपार्जन के लिए भी। अत: उसका उद्देश्य दोहरा हो जाता है। स्वतंत्र भारत का उत्तरदायित्वपूर्ण नागरिक होने के लिए विद्यार्थी वर्ग को चरित्र की आवश्यकता थी, जो व्यक्तित्व विकास में ही सम्भव थी। जीवकोपार्जन की क्षमता सबका सामाजिक प्राप्य थी। दोनों अन्त:-बाह्य लक्ष्यों की उपेक्षा कर देने से शिक्षा एक प्रकार से समय बिताने का साधन हो गई। यह उपेक्षापूर्ण सत्य तब प्रकट हुआ जब विद्यार्थी ने शिक्षा के सब सोपान पार कर लिए।

(96) शिक्षा का महत्त्व

संकेत बिंदु—(1) व्यक्तित्व निर्माण में सहायक (2) नैतिक, मानसिक और शारीरिक दृष्टियों से स्वावलंबी बनाना (3) मानव जीवन के प्रमुख सोपान (4) काम और मोक्ष प्राप्ति में महत्त्वपूर्ण (5) जीवन को सही ढंग से जीने की योग्यता में।

'विद्याविहीन पशु' को ज्ञान का तृतीय नेत्र प्रदान कर विवेकशील बनाना, उसमें अच्छे-बुरे की पहचान उत्पन्न करना, कायदे-कानून की समझ प्रदान करना तथा जीवन में सर्वांगीण सफलता और सम्पन्नता प्रदान करने के लिए संस्कार और सुरुचि के अंकुर उत्पन्न कर उसके व्यक्तित्व निर्माण में ही शिक्षा का महत्त्व है।

सम्पूर्णानन्द जी के शब्दों में, 'मन और शरीर का तथा चरित्र के भावों के परिष्कार

में ही शिक्षा का महत्त्व है।' प्लेटो के विचार में 'शरीर और आत्मा में अधिक-से-अधिक सौन्दर्य और सम्भावित सम्पूर्णता का विकास सम्पन्न करने में ही शिक्षा का महत्त्व है।'

मानव-जीवन आद्योपांत कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि है। कौतूहल, विचित्रता और जटिलताओं से परिपूर्ण होने के कारण इसका पथ तमसाच्छन्न है। द्वन्द्व और संघर्ष ही इस रज:पूर्ण पथ की नियति है। इस नियति की विजय पर शिक्षा की महिमा टिकी है। शिक्षा मानव को विषय विशेष का ज्ञाता बनाने के अतिरिक्त नैतिक, मानसिक और शारीरिक, सभी दृष्टियों से कर्मठ, योग्य, सदाचारी, समर्थ तथा स्वावलम्बी बनाती है। डॉ. जान जी. हिबन के विचार में 'शिक्षा का महत्त्व परिस्थितियों का सामना करने की योग्यता उत्पन्न करना है।'

शिक्षा का महत्त्व मानव-जीवन के लिए वैसा ही है जैसे संगमरमर के टुकड़े से मूर्ति बनाने के लिए शिल्पकला का। फलत: शिक्षा केवल ज्ञान-दान नहीं करती, संस्कार और सुरुचि के अंकुरों का पालन भी करती है। डॉ. हरिशंकर शर्मा शिक्षा का महत्त्व 'मानवता का मार्गदर्शन; मन वचन-कर्म में शुचिता-समता लाना, तन-मन-आत्मा को विमल-बलिष्ठ बनाना तथा ज्ञान-विज्ञान का मर्म-महत्त्व बताने में' मानते हैं।

वस्तुत: अपने को जीवित रखने के लिए अपने वातावरण तथा उसकी सापेक्षता में निज को समझकर जीवन के अनुकूल कार्यों को करना और प्रतिकूल के निवारण में ही शिक्षा का महत्त्व है।

भारतीय मनीषियों ने मानव जीवन के चार सोपान माने हैं। ये हैं—धर्म, अर्थ, काम ओर मोक्ष। इनको पुरुषार्थ की संज्ञा से अभिहित किया गया है। इन चारों पुरुषार्थों पहला पुरुषार्थ है धर्म। जीवन में सफलतापूर्वक धर्म के निर्वहन में ही शिक्षा का महत्त्व है।

धर्म आत्मा और अनात्मा का, जीवात्मा और शरीर का विधायक है। संस्कार जीवात्मा और शरीर का विकास करता है। धर्म से मनुष्य में सद्गुणों के संस्कार उत्पन्न होते हैं। धैर्य, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध वृत्तियाँ पल्लवित होती हैं। नैतिकता का पदार्पण होता है। अत: सच्चे धर्म का ज्ञान उत्पन्न करने में ही शिक्षा का महत्त्व।

दूसरा पुरुषार्थ है अर्थ। अर्थ धन का पर्याय है। कार्लमार्क्स ने सच कहा है, 'मानव के सम्पूर्ण सामाजिक कार्यों के केन्द्र में अर्थ अवस्थित है।' धर्म का सेवन भी धन द्वारा होता है। धन भाग्य की गठरी है। रोजी-रोटी अर्जन का प्रतिफलन है। अत· शिक्षा का महत्त्व मानव में अर्थ अर्जित करने की योग्यता उत्पन्न करने में है। इसके लिए शिक्षा का व्यवसायीकरण होना चाहिए। व्यवसायिक-शिक्षा मानव की जीवकोपार्जन योग्य बनाएगी।

तीसरा पुरुषार्थ है, काम। काम का अर्थ है इच्छा। विविध इच्छाओं की पूर्ति और तज्जनित-आनन्द की प्राप्ति में शिक्षा का महत्त्व है। यही कारण है कि आज विद्या विभिन्न कलाओं में विकसित हुई है। ललित कलाओं (काव्य, संगीत, चित्र, मूर्ति और वास्तुकला) का उद्देश्य मन को आनन्द प्रदान करना है। मनुष्य के सभी काम भोग अथवा आनन्द में

परिसमाप्ति के लिए ही शुरू किए जाते हैं। शिक्षा का महत्त्व तभी है जब वह स्वस्थ आनन्द प्रदान करे, ताकि वह मानव के सांस्कृतिक विकास का साधन बन सके।

मोक्ष का अर्थ यदि 'मन की शांतिपूर्ण एक स्थिति-विशेष' लें तो मन का शांत रहना भी मनुष्य के आनन्द का बड़ा कारण है; सब झगड़ों का अन्त है। यदि 'हृदय की अज्ञान-ग्रन्थि का नष्ट होना ही मोक्ष' कहा जाए, तो हृदय की अज्ञानता दूर करने में ही शिक्षा का महत्त्व है। मोक्ष का अर्थ 'सभी प्रकार के बंधनों से मुक्ति हो', तो वह ज्ञान सुशिक्षा से ही सम्भव है। सुशिक्षा सत्य का ज्ञान कराएगी। इसीलिए भारतीय संस्कृति में ज्ञान को मनुष्य की तीसरी आँख (ज्ञानं तृतीयं मनुजस्य नेत्रम्) बताया गया है।

शिक्षा का महत्त्व इन चारों पुरुषार्थों द्वारा जीवन-जीने की योग्यता में है। धार्मिक शिक्षा से मानव में मानवीय गुणों का विकास होगा। सात्त्विक वृत्तियों का उदय होगा। जीवन में सत्-असत् की परख होगी। धन-उपार्जन की शिक्षा मानव को परिवार-पालन योग्य बनाएगी। धन कमाने के विविध ढंग बताएगी। समाज का कोई व्यक्ति नौकरी के लिए किसी का द्वार नहीं खट-खटाएगा। दर-दर मारा-मारा नहीं भटकेगा। अपने अर्जित ज्ञान, परिश्रम और पुरुषार्थ से धन कमा सकेगा। काव्य, संगीत, चित्र, मूर्ति और वास्तुकलाओं का चित्रण जीवन में आदान-प्रदान करेगा; उसके सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा करेगा। दूसरी ओर, ललित-कलाएँ धन-उपार्जन का श्रेष्ठ साधन बन गई हैं।

अनुचित-अनुपयोगी तथा व्यर्थ के बंधनों से मुक्ति दिलाकर शिक्षा मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करेगी।

संसार रूपी समुद्र में जीवन के सुचारु संचालन तथा मंगलमय जीवन के लिए शिक्षा पतवार है। जीवन को सर्वगुण-सम्पन्न और सफल समृद्ध करने तथा सत्, चित् और आनन्द प्राप्ति कराने में शिक्षा का महत्त्व है।

(97) व्यावसायिक-शिक्षा

संकेत बिंदु—(1) शिक्षा और व्यवसाय जीविका के दो पहिए (2) बाबू बनना मात्र उद्देश्य (3) व्यावसायिक शिक्षा का उद्देश्य (4) शिक्षा को व्यवसाय परक और व्यावहारिक बनाना (5) व्यावसायिक पाठ्यक्रमों की स्वीकृति।

शिक्षा और व्यवसाय जीविका-रूपी रथ के दो पहिए हैं। शिक्षा के बिना जीविकोपार्जन सम्भव नहीं, व्यवसाय बिना शिक्षा व्यर्थ है। अत: शिक्षा और व्यवसाय एक-दूसरे के पूरक हैं—मानवीय प्रगति के सम्बल हैं; राष्ट्रीय विकास के उपकरण हैं; आर्थिक उन्नति के परिचायक हैं।

प्राचीन युग में शिक्षा ग्रहण करने का उद्देश्य ज्ञानार्जन करना था। इसलिए सिद्धान्त-वाक्य बना—'ज्ञानं तृतीयं मनुजस्य नेत्रम् (ज्ञान मनुष्य का तृतीय नेत्र है।) उस समय शिक्षा केवल धनोपार्जन का माध्यम नहीं थी। हाँ 'विद्या अर्थकरी' होनी चाहिए, यह विचार

निश्चित ही था। जीवलोक के छह सुखों में 'अर्थकरी-विद्या' को भी एक सुख माना गया था।

समय ने करवट बदली। भारतीय जनता को अंग्रेजी के साथ ही आधुनिक विषय-विज्ञान, अर्थशास्त्र, वाणिज्य-शास्त्र आदि सिखाने का अभियान चला। लार्ड मैकाले-योजना की क्रियान्विति हुई। भारत में अंग्रेजी शिक्षण-संस्थाओं का जाल तो फैला, किन्तु वह जीवनयापन की दृष्टि से अयोग्य रहीं। मैट्रिकुलेट और ग्रेजुएट नौकरी की तलाश में आकाश-पाताल एक करने लगे। पढ़-लिखकर बाबू बनना मात्र शिक्षा का ध्येय बन गया। किसान का पुत्र बाबू बनकर कृपक जीवन से नाता तोड़ने लगा। कर्मकाण्डी पंडित का पुत्र बाबू बनकर अपने ही पिता को 'पाखण्डी' की उपाधि से विभूषित करने लगा। हाथ का काम करने में आत्महीनता का अनुभव होने लगा। परिणामत: वंश-परम्परागत कार्य ठुकरा दिए गए। गाँव के भोले-भाले मैट्रिकुलेट युवक को बाबूगिरी में स्वर्ग दिखाई देने लगा; उसकी प्राप्ति के लिए वह तड़पने लगा। इस प्रकार का शिक्षित युवक स्वयं तो प्रगति-पथ पर अग्रसर होना नहीं चाहता, न देश के उत्पादन में अपना योगदान देना चाहता है। उसमें न परिस्थितियों से संघर्ष करने की क्षमता है और न अपने पैरों पर खड़े रहने की योग्यता ही। अत्युत्तम प्राकृतिक साधनों के होते हुए भी कमजोर आर्थिक व्यवस्था का मूल कारण भी शिक्षित युवक वर्ग की उदासीनता ही है।

पिछले कुछ वर्षों से समाज की मान्यताओं, मूल्यों, विविध आवश्यकताओं, समस्याओं और विचारधाराओं में उल्लेखनीय परिवर्तन हुए हैं। इन परिवर्तनों के साथ समाज का सामंजस्य होना नितांत आवश्यक है। यह काम है शिक्षा का। इन परिवर्तनों के अनुरूप शिक्षा के स्वरूप, प्रणाली और व्यवस्था में परिवर्तन अनिवार्य है। यह परिवर्तन है शिक्षा-व्यवस्था को अधिक उपयोगी, व्यावहारिक तथा जीविकोपार्जन का माध्यम बनाना।

सन् 1919 में सेडलर-आयोग ने, 1948-49 में राधाकृष्णन् आयोग ने, 1952 में मुदालियर-कमीशन ने, 1964-66 में कोठरी-आयोग ने 1990 में राममूर्ति तथा 1992 में जनार्दन रेड्डी समिति ने शिक्षा का व्यवसायीकरण करने का सुझाव दिया।

'व्यावसायिक-शिक्षा' अथवा 'शिक्षा का व्यवसायीकरण' का अर्थ क्या है ? सामान्य शिक्षा के साथ-साथ सामाजिक-आर्थिक जीवन के लिए उपयोगी शिल्पों एवं व्यवसाय का ज्ञान प्राप्त करना 'शिक्षा का व्यवसायीकरण' है। इस शिक्षा का लक्ष्य कुशल शिल्पी तैयार करना नहीं, वरन् विद्यार्थी में उद्योग-धन्धों के प्रति प्रेम और उनकी ओर झुकाव उत्पन्न करके शारीरिक श्रम के महत्त्व की अनुभूति कराना है। यह शिक्षा जनतान्त्रिक भावना विकसित करने के साथ-साथ सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास करेगी। व्यक्ति की निहित शक्तियों का विकास करके उसे समाज का उपयोगी सदस्य बनाने में सफल होगी।

व्यावसायिक-शिक्षा व्यक्ति को समाज की वास्तविकता से परिचित कराएगी। समाज

के विकास में व्यक्ति की भूमिका का ज्ञान कराएगी। व्यावसायिक शिक्षा रोजगार पैदा नहीं करेगी, वह तो व्यक्ति को रोजगार प्राप्त करने अथवा स्वतन्त्र रूप से अपनी जीविका अर्जित कराने में सहायक होगी। व्यावसायिक शिक्षा से व्यक्ति का दृष्टिकोण व्यापक होगा। फलस्वरूप वह स्वाध्याय एवं स्वानुभव द्वारा उच्चतम उपलब्धियाँ प्राप्त करने में समर्थ होगा।

यदि हम राष्ट्र की विकासशीलता से अभीष्ट परिणाम चाहते हैं, तो सामान्य शिक्षा के साथ श्रम के महत्त्व को प्रमुख स्थान देना होगा। शारीरिक श्रम को बौद्धिक श्रम के समकक्ष रखना होगा। सुयोग्य, सुशिक्षित नागरिक तैयार करने होंगे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हमें अपनी शिक्षा को व्यवसायपरक एवं जीवनोपयोगी, व्यावहारिक तथा वास्तविकता के अनुरूप बनाना होगा। 'अब बुद्धि-विलास की शिक्षा का वह युग बीत गया, जबकि शिक्षा मनोरंजन का साधन मानी जाती थी। अब शिक्षा ज्ञानार्जन के साथ-साथ मानव को मानवीय गुणों से युक्त बनाने वाली होनी चाहिए, जिससे वह सभी प्राणियों का ममता की दृष्टि से विकास करने का प्रयास करे।'

व्यावसायिक शिक्षा की दृष्टि से आज देश में आई.आई.टी., तकनीकी शिक्षा, औद्योगिक प्रशिक्षण केन्द्र, कृषि विश्वविद्यालयों तथा वैज्ञानिक संस्थानों का जाल-सा बिछ रहा है। कम्प्यूटर प्रशिक्षण की व्यवस्था तो अनेक स्कूलों के पाठ्यक्रम का अंग बन गई है।

व्यावसायिक शिक्षा के प्रचार-प्रसार हेतु देशभर में 6486 स्कूलों में व्यावसायिक पाठयक्रमों की स्वीकृति दी जा चुकी है जिससे करीब 9.35 लाख विद्यार्थियों को लाभ होगा। यह संख्या + 2 स्तर में प्रवेश करने वालों की कुल संख्या का 11 प्रतिशत है।

छह मुख्य क्षेत्रों कृषि, व्यवसाय और वाणिज्य, इंजीनियरी और टेकनोलॉजी, स्वास्थ्य तथा चिकित्सा से संबंधित व्यवसाय; गृह-विज्ञान, मानविकी तथा अन्य क्षेत्रों में लगभग 150 व्यावसायिक पाठ्य-क्रम प्रारम्भ किए गए हैं। राष्ट्रीय फैशन टेक्नोलॉजी संस्थान के सहयोग से फैशन तथा परिधान निर्माण के पाठ्यक्रम चल रहे हैं।

देश में बढ़ती बेरोजगारी, युवाओं में जन्मती दुष्प्रवृत्तियाँ तथा उनका असामाजिक कृत्यों की ओर झुकाव देश को अराजकता की ओर धकेल रहा है। इसलिए अनिवार्य है कि हमारी शिक्षा का व्यवसाय के साथ सामंजस्य हो, संतुलन हो।

(98) सह-शिक्षा

संकेत बिंदु—(1) युवक-युवतियों का एक साथ पढ़ना (2) सह-शिक्षा के लाभ (3) प्राथमिक शिक्षा में अध्यापिका की भूमिका (4) सहशिक्षा के दुर्गुण (5) पाश्चात्य संस्कृति की ओर अग्रसर।

विद्यालय के एक ही कक्ष में एक ही श्रेणी में बालक-बालिकाओं, युवक-युवतियों

का साथ-साथ शिक्षा ग्रहण करना 'सहशिक्षा' है। पाठ्यक्रम, अध्यापक तथा कक्ष की एकता में छात्र-छात्राओं का शिक्षार्थ-गमन 'सहशिक्षा' है।

आर्य-समाज के प्रचार ने स्त्री-शिक्षा पर बल दिया तो अंग्रेजी-प्रचार ने सह-शिक्षा को प्रश्रय दिया। ज्यों-ज्यों भारत में पाश्चात्य संस्कारों का विकास होता गया, सहशिक्षा बढ़ती गई। परिणामत: आज का सभ्य-नागरिक प्राचीन रूढ़िगत विचारों से ग्रस्त होते हुए भी अपने बच्चों को सहशिक्षा दिलाने में कोई आपत्ति नहीं करता, उसे जीवन के विकास में बाधक नहीं मानता।

सहशिक्षा के अनेक लाभ हैं। सहशिक्षा से लड़कियां में नारी-स्वभाव सुलभ लज्जा, झिझक, पर-पुरुष से भय, कोमलता, अबलापन, हीनभावना किसी सीमा तक दूर हो जाती है। दूसरी ओर, युवक नारी के गुणों को अपना लेता है। उसकी निर्लज्जता, अक्खड़पन, अनर्गलता पर अंकुश लग जाता है और उसमें मृदुभाषिता, संयमित संभाषण, शिष्ट आचरण तथा नारी-स्वभाव के गुण विकसित होते हैं। युवक-युवतियों में भावों का यह आदान-प्रदान भावी जीवन में सफलता के कारण बनेंगे।

सहशिक्षा से शिक्षा-व्यवस्था में खर्च की बहुत बचत होती है। अलग-अलग कक्ष, अध्यापक तथा प्रबन्ध-व्यवस्था में जो दुहरा खर्च होता है, वह नहीं होता। दूसरे, इतिहास, भूगोल, गणित, कॉमर्स, चार्टर्ड एकाउन्टेंसी, कॉस्ट एकाउन्टेंसी, बिजनेस मैनेजमेंट, आयुर्विज्ञान, एल-एल.बी. आदि कक्षाओं में युवतियों की संख्या उँगली पर गिनने योग्य होती है। उनके लिए शिक्षा की अलग व्यवस्था करना शिक्षा को अत्यधिक महँगा बनाना है। तीसरे, कम विद्यार्थियों के लिए पृथक् व्यवस्था कर ही नहीं पाएंगे। चौथे, इन विषयों की अध्यापिकाएं भारत में नगण्य-सी हैं।

प्राथमिक-शिक्षा में अध्यापिका की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। परिवार से निकलकर विद्यालय के नए वातावरण में प्रवेश करने वाले शिशु के लिए अध्यापिका माता और शिक्षक का कर्तव्य निभाती है। यदि शिशु का विभाजन बालक या बालिका में करके पृथक्-पृथक् शिक्षा का आयोजन किया गया तो पुरुषों के अध्यापन में न वह सहृदयता होगी, न उनमें बालक की प्रवृत्ति-परिवर्तन के लिए सिद्धता होगी जो एक अध्यापिका में होती है।

सहशिक्षा छात्रों में प्रतिस्पर्धा लाती है। यहाँ छात्र-छात्राओं से और छात्राएँ छात्रों से आगे बढ़ने की चेष्टा करते हैं। यह स्वस्थ प्रतिस्पर्धा उनके अध्ययन, चिंतन, मनन को बलवती बनाती है।

सृष्टि गुण-दोषमयी है। फूल के साथ काँटे भी होते हैं। कल्याणकारी शिवत्व में संहार की नैसर्गिक शक्ति भी है। सहशिक्षा में गुण हैं, तो वह दुर्गुणों की जननी भी है।

आज के विषाक्त वातावरण में सहशिक्षा का सहपाठी भाई-बहन की भावना के कम और प्रेमी-प्रेमिका की भावना से अधिक ग्रस्त होता है। सहपाठी का लावण्य उसे आकर्षित करता है, आकर्षण स्पर्श के लिए प्रेरित करता है। स्पर्श आलिंगन-चुम्बन की ओर अग्रसर

होता है और अन्ततः छात्र कामवासना का शिकार होता है। न अध्ययन, न जीवन-विकास, उलटा चरित्र-पतन, विनाश की ओर गति।

सहशिक्षा में अध्ययन में चित्त अशांत रहता है। युवतियाँ युवकों से दबी-दबी रहती हैं। घुटन के वातावरण में जीती हैं। अध्ययनशील और लज्जालु छात्र-छात्राओं की छाया से भी कतराते हैं। ऐसी स्थिति में मन की एकाग्रचितता कहाँ? पढ़ाई की मन:स्थिति कहाँ? प्राध्यापक प्रवचन की ग्राह्यता कहाँ?

पाठ्य-क्रम तथा पाठ्य-पुस्तकों में कभी-कभी कुछ ऐसे प्रसंग आ जाते हैं, जो नैतिकता के मापदंडों के विपरीत होते हैं। सहशिक्षा में उन प्रसंगों को स्पष्ट कर पाना बहुत कठिन होता है। ऐसी परिस्थिति में प्रायः शिक्षक उन प्रसंगों की उपेक्षा कर जाता है या अस्पष्ट रहते देता है। इस प्रकार सहशिक्षा ज्ञानवर्धन में बाधक भी है।

आज का भारतीय, चाहे वह किसी भी आर्थिक स्तर पर जीवनयापन कर रहा हो, पाश्चात्य-संस्कृति को लपकने के लिए लालायित है। भारतीय-संस्कृति में उसे पिछड़ेपन की बू आने लगी है।

दूरदर्शन की कृपा, सरकार के सांस्कृतिक कार्यक्रमों के प्रोत्साहन देने तथा पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के भारतीय जीवन को प्रभावित करने के कारण सहशिक्षा की हिचक अब समाप्त हो रही है। युवक-युवती मिलन, घुट-घुट कर बातें करना, हँसी-मजाक करना, एक-दूसरे के घर बिना झिलक आना-जाना, सैर-सपाटे, शिक्षण-संस्थाओं द्वारा आयोजित 'टूर' पर जाना सामान्य-सी बात होती जा रही है।

पाश्चात्य संस्कृति जहाँ जीवन में चमक-दमक लाएगी, वहाँ आलिंगन-चुम्बन मूल्य हीन हो जाएंगे, विलास और वासना के मानदंड स्वतः बदल जाएंगे, तब सहशिक्षा किसी भी स्तर पर भारतीयता के विरुद्ध नहीं मानी जाएगी।

(99) प्रौढ़-शिक्षा/ राष्ट्रीय साक्षरता का प्रश्न

संकेत बिंदु—(1) प्रौढ़ शिक्षा का अर्थ (2) अंग्रेजी शासन में साक्षरता की कमी (3) प्रौढ़ शिक्षा का प्रारंभ (4) प्रौढ़-शिक्षा कार्यक्रमों की असफलताओं के कारण (5) लोगों में राजनीतिक चेतना।

तीस वर्ष से पचास वर्ष की अवस्था (वय) वाले स्त्री-पुरुष प्रौढ़ कहे जाते हैं। ऐसे निरक्षर या अशिक्षित लोगों को शिक्षा देना, उन्हें साक्षर (बनाना) प्रौढ़ शिक्षा है। निरक्षर, अर्द्धसाक्षर या विस्मृताक्षर प्रौढ़ों को पुनः शिक्षण देना भी प्रौढ़-शिक्षा है।

आज देश का लगभग 40 प्रतिशत,प्रौढ़ वर्ग निरक्षर है। इसलिए वह मानसिक दृष्टि से मन्द है, सामाजिक रूप से पिछड़ा है, धार्मिक रूप से अंध-विश्वासी है और राजनीतिक रूप से 'वोट' के महत्त्व से अनभिज्ञ है। परिणामतः वह उपहास और निरादर का पात्र और

शोषण का शिकार है। अत्यन्त भोला होने से वह धूर्तों के माया-जाल में जल्दी फँस जाता है।

भारत में अंग्रेजी-शासन की स्थापना से पूर्व भारत का प्रायः प्रत्येक नागरिक शिक्षित होता था। राष्ट्र में इसके लिए कुछ संस्थाएँ प्रचलित थीं। गाँव-नगरों में मन्दिरों में स्थापित पाठशालाएँ, मदरसे आदि बच्चों की उचित शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध करती थीं। इनके अतिरिक्त उच्च शिक्षा के लिए गुरुकुल और विश्वविद्यालय भी थे। एक अंग्रेज विद्वान् के मतानुसार भारत में साक्षरता का प्रतिशत विश्व में सबसे अधिक था।

अंग्रेजी-राज्य में पाठशालाओं का प्रारम्भिक स्वरूप नष्ट हुआ। अंग्रेजी शिक्षा पद्धति प्रारम्भ हुई। फलतः भारत का निम्न मध्यवर्ग तथा ग्रामीण जनता इससे वंचित रह गई या जानबूझकर वंचित कर दी गई। इस कारण निरक्षरता बढ़ी। यह इस सीमा तक बढ़ी कि आज विश्व के निरक्षर वयस्कों की सम्पूर्ण संख्या का आधे से अधिक भाग भारत में है।

भारत की जनता अशिक्षित रहे, इसमें अंग्रेजों का अपना हित था। कारण, भारतवासी यदि शिक्षित हो जाएगा तो कायदे-कानूनों को समझने लगेगा। अंग्रेजों की दासता से मुक्ति का प्रयास करेगा जो उन्हें वांछित न था।

अशिक्षित जनता में भी अनपढ़ स्त्रियों की संख्या पुरुषों की अपेक्षा बहुत अधिक थी। पता नहीं क्यों कन्याओं को पढ़ाना महत्त्वहीन माना जाने लगा। अपवाद स्वरूप कुछ स्त्रियाँ पढ़-लिखकर विदुषी बन गईं। महर्षि दयानन्द, राजा राममोहनराय, पण्डित श्रद्धाराम फिल्लौरी, भारतेन्दु हरिचन्द्र, पण्डित मदनमोहन मालवीय आदि समाज-सुधारकों ने स्त्री-शिक्षा पर बल दिया। आगे चलकर महात्मा गाँधी ने स्त्री शिक्षा के प्रचार-प्रसार पर जोर दिया। देश के स्वतन्त्र होने के बाद सन् 1951 में प्रथम जनगणना में भारत में शिक्षितों की संख्या 16.6 प्रतिशत थी।

देश में जब प्राथमिक और माध्यमिक स्कूलों का जाल-सा बिछ गया तो राष्ट्रीय सरकार का ध्यान उन अनपढ़ लोगों की ओर गया जिनकी आयु प्राथमिक स्कूलों में भरती होने के योग्य न थी या वे दिन में कमाई करने के कारण उन विद्यालयों में जा नहीं सकते थे। राष्ट्र की उन्नति और प्रगति में इस वर्ग का विशेष हाथ रहता है। अशिक्षित होने के कारण प्रौढ़ वर्ग का जीवन-जीने के मूल्यों से अपरिचित, सामाजिक गिरावट, आर्थिक दुर्दशा तथा राजनीतिक जागरूकता के अभाव में राष्ट्र की उन्नति में बाधक था। फलतः 2 अक्तूबर, 1978 को राष्ट्रपिता गाँधी के जन्मदिन से 'प्रौढ़-शिक्षा' का विधिवत् श्रीगणेश हुआ। इसके लिए छह सौ करोड़ रुपए का प्रावधान रखा गया।

राजकीय स्तर पर रात्रि पाठशालाएँ खुलीं, प्रौढ़ स्त्रियों के लिए दोपहर के खाली समय में पढ़ाने की योजना बनी। रात्रि हाईस्कूल तथा सीनियर-सेकेण्डरी स्कूल खोले गए। कॉलिजों में भी रात्रि-कक्षाओं की व्यवस्था की गई। धीरे-धीरे यह प्रौढ़-शिक्षा कार्यक्रम गति पकड़ने लगा।

सरकार ने कुछ स्वयंसेवी संस्थाओं का भी सहयोग इस योजना की कार्यान्विति में लिया। सभी राज्यों में प्रौढ़-शिक्षा केन्द्र प्रारम्भ हुए।

परिणाम सुखद निकले। शहरी क्षेत्र के अनपढ़ निवासियों ने इसमें ज्यादा रुचि दिखाई। परिणामत: शिक्षितों की संख्या शहरों में 70 प्रतिशत तक पहुँच गई। केरल प्रान्त में यह संख्या 10 प्रतिशत के लगभग है।

प्रश्न है अशिक्षित प्रौढ़ों में शिक्षा के प्रति उत्साह कैसे जागृत हो ? सूर्योदय से सूर्यास्त तक जी-तोड़ काम करने वाला किसान या मजदूर जब शाम को थका-हारा घर लौटता है, तो उसमें इतनी शक्ति और मानसिक शान्ति कहाँ रह जाती है, जो वह शिक्षा के लिए लालायित हो सके। इसलिए रात्रि पाठशालाओं में पढ़ाई का वातावरण ही नहीं बन पाता। दिल्ली प्राँत के 'नाइट-स्कूल' इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं। जहाँ 2-3 पीरियडों के बाद ही कक्षाएँ खाली नजर आती हैं।

दूसरे, साक्षरता-अभियान को रोजगारोन्मुख नहीं बनाया गया। अधिक प्रचार तो 'काम के बदले अनाज' का रहा। परिणामत: पढ़ने के इच्छुक प्रौढ़ों ने पढ़ने-लिखने की अपेक्षा दूसरी ओर ध्यान लगाया।

तीसरी ओर, इस वर्ग को पढ़ाने वाले की मन:स्थिति स्वस्थ, उत्साहप्रद एवं स्वयंस्फूर्त होनी चाहिए। उनके वातावरण में घुल-मिलकर एकात्मक होने की चेष्टा होनी चाहिए। यह तभी सम्भव है, जब वेतन अच्छा हो। यह केवल मात्र 1000 रुपये मासिक रखा गया, जो अत्यल्प है। दूसरी ओर, 50 प्रतिशत स्थान स्त्रियों के लिए सुरक्षित रखे गए। यह भी एक रुकावट बनी। कारण, शिक्षित महिलाएँ इतने थोड़े वेतन पर नहीं आतीं।

चौथी ओर, राजीव गाँधी के अनुसार निर्धारित राशि का 85 प्रतिशत तो नौकरशाही और लालफीताशाही ही खा जाती थी। परिणामत: उस राशि का 15% रुपया ही इस योजना की कार्यान्विति में खर्च होता था, जिसने 'ऊँट के मुँह में जीरा' मुहावरे को चरितार्थ किया है।

आज भारत का नागरिक जिन राजनीतिक स्थितियों से गुजर रहा है, उससे उसमें राजनीतिक चेतना जागृत हो रही है। आज का झुग्गी-झोंपड़ी वाला गरीब और सुदूर गाँव में रहने वाला व्यक्ति भी राजनीति के छल-छन्दों को, हथकण्डों को, उसके उतार-चढ़ाव को समझने लगा है। राजनीतिक चेतना ने उसे अपने बच्चों को पढ़ाने को विवश किया है। जब वह यह देखता है कि गाँव का कल का छोकरा आज का जज है, प्रोफेसर है, इंजीनियर है, मुख्यमंत्री है, केन्द्रीय सरकार को भी चलाता है तो उसका हृदय अपने लाडलों को भी इस पद पर देखने के स्वप्न लेने लगता है। यह स्वप्न उसे बच्चों को शिक्षित करने के लिए विवश करता है।

प्रौढ़-शिक्षा का भविष्य अब उज्ज्वल है। राजनीतिक चेतना और नई सरकार की नीयत प्रौढ़ों की नियति को बदलेगी।

(100) नैतिक-शिक्षा

संकेत बिंदु—(1) नीतियुक्त आचरण या व्यवहार (2) नैतिक आचरण सबसे श्रेष्ठ (3) नैतिक शिक्षा के आधार (4) नैतिक शिक्षा के अभाव का परिणाम (5) उपसंहार।

नीतियुक्त आचरण या व्यवहार जीवन को सरलता से सफलतापूर्वक तय करने का मार्ग है। जगत् के तमसाच्छन्न कष्टपूर्ण मार्ग से हटकर गुणाकर दिग्ज्योति से साक्षात्कार करने का साधन है। जीवन की वेदनाओं, पीड़ाओं, कष्टों को धैर्य के साथ हँसते-हँसते सह लेने का दिव्य संदेश है।

'नीयते जीव: आनन्द स्वरूपं प्रति यया सा नीति:। सात्विकी बुद्धि तथा नीत्या आचारिता संस्कृतम् वा इति नीतिकम्।' अर्थात् जिसके द्वारा जीव अपने तिरोहित आनन्द स्वरूप को प्राप्त कर लेता है वह सात्विक बुद्धि ही नीति है और उसकी प्रेरणा से आचरित कर्म ही नैतिक सिद्ध होता है।

आत्मा के सान्निध्य की अनुभूति से द्रवीभूत हृदय से निस्सृत, सात्त्विक बुद्धि से प्रेरित, देश, काल और निमित्त की परिस्थितियों के पुट से परिष्कृत; सत्य, अहिंसा, दान, दया आदि कर्मों में वर्तमान औचित्य के संचार का ज्ञान प्रदान करने वाली विद्या नैतिक-शिक्षा है। मानव को उचित-अनुचित का ज्ञान कराकर आदर्श नीति सम्मत आचरण की प्रेरणा देने वाली शिक्षा नैतिक-शिक्षा है।

नैतिक आचरण सुन्दर शरीर से श्रेष्ठ है। यह मूर्ति तथा चित्रकला की अपेक्षा उच्चकोटि का आनन्द देता है। यह कलाओं में सुन्दर कला है। सच्चाई यह है कि जिसने नैतिक शिक्षा को जीवन में उतार लिया, उसने ईश्वर को ही हृदय में मूर्तिमान् कर लिया। जिसने नैतिकता का दीपक बुझ जाने दिया, वह आचार और व्यवहार से अंधा हो गया। जीवन के संघर्ष में गिरने-पड़ने-टूटने को वह विवश हो गया।

मानव-मूल्यों की सफलता आचरण के लिए शाश्वत शिक्षा है—ब्राह्म मुहूर्त में उठो, शौचादि से निवृत्त होकर स्नान करो, देवोपासना करो, यज्ञ का अनुष्ठान, जप ध्यान करो, सत्य और मधुर वचन बोलो, संयमित जीवन बिताओ, पूज्य-व्यक्तियों का अभिवादन करो, सौम्यता, मित्रता तथा कृतज्ञता प्रकट करो।

राग-द्वेष ईर्ष्या को सँजोना, पर-नारी एवं पर धन का अपहरण, अशांत चित्त रहना, कृतघ्नता प्रकट करना अनैतिकता के द्योतक हैं। जीवन में संकट उत्पन्न करने के द्वार हैं।

सत्य, अहिंसा, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह और नीतियुक्त आचरण नैतिक शिक्षा के शाश्वत आधार हैं।

वाणी का संयम सत्य है। जिस वाणी में सत्य का निवास है, वही तेजस्विनी है। मधुमयी वाणी वशीकरण मंत्र है, सुखद सम्बन्धों की निर्मात्री है।

सत्य का प्राण अहिंसा है। मनसा, वाचा, कर्मणा कभी किसी को किसी प्रकार का दु:ख न पहुँचाना अहिंसा है। अहिंसा का पालक क्रोध को क्षमा से, विरोध को अनुरोध से, घृणा को दया से, द्वेष को प्रेम से और हिंसा को अहिंसा की भावना से जीतता है, वश में करता है।

अचौर्य मानसिक शांति का साधन है। पर-धन, पर-नारी, पर-द्रव्य, पर-सुख, पर-आनन्द की चोरी सत्याचरण के विपरीत है। चौर्य-जीवन के दु:खद पक्ष को उद्घाटित करता है, जिससे पद-पद पर जीवनयापन में कठिनाइयाँ आने लगती हैं।

अन्न के अन्तिम एवं सर्वोत्तम अंश वीर्य का संरक्षण ब्रह्मचर्य है। शरीर के प्रत्येक अवयव में जो तेज फूटता है और जो शक्ति आती है, उसका एकमात्र कारण ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य तप है। तप का अर्थ है द्वन्द्वों को सह लेना। तप के द्वारा शरीर स्ववशी बनकर सुरक्षित रहता है, तपस्वी बनता है।

शरीर या कुटुम्ब के लिए जितना आवश्यक हो, उससे अधिक अन्न, धन आदि स्वीकार न करना अपरिग्रह है। अपरिग्रह संतोष को जन्म देता है, त्याग का महत्त्व दर्शाता है। सुख के लिए अपरिग्रह अनिवार्य है।

नैतिकता के ये शाश्वत आधार देश, काल, परिस्थिति सापेक्ष हैं। व्यक्ति, समाज, देश तथा विश्व के परिप्रेक्ष्य में इनकी मान्यताएँ बदल जाती हैं। कूटनीतिक राज्याधिकारियों के लिए झूठ बोलना तथा मिथ्याप्रचार करना कर्तव्य समझा जाता है। दूसरों को धोखा देकर अधिक धन उपार्जन करना व्यापार का नियम है। धार्मिक संस्थाओं को अधिक धन देने वाला धर्मावतार कहलाता है, चाहे वह जीवन में व्यभिचारी, शोषक तथा पीड़क हो। राजनीति में झूठ, हिंसा, चौर्य, परिग्रह तथा काम सभी नैतिक आचरण में आते हैं।

आज का भारतीय-जीवन पतन की सीमा को छूने को आकुल है। काम और अर्थ की पूर्ति के लिए अनैतिक कार्य करने में उन्मत्त व्यक्ति के लिए शोषण, व्यभिचार, अनाचार, अत्याचार, भ्रष्टाचार, प्रवंचना, हत्या सब उचित हैं। भारतीय जीवन को इस स्थिति तक पहुँचाने के लिए नैतिक-शिक्षा का अभाव उत्तरदायी है। यदि पाठशालाओं में नैतिक-शिक्षा का ज्ञान कराया जाता, जीवन में नैतिक मूल्यों का सबक सिखाया जाता, तो भारतवासियों की यह दुर्दशा न होती।

आज का युवक पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति को स्वर्ग का द्वार समझता है। पश्चिम के रात्रि-क्लबों की धुँधली रोशनी में उसे परम ज्योति के दर्शन होते हैं। मधु के प्याले, एवं पर-स्त्री के सहवास-सुख में परमानन्द की प्राप्ति प्रतीत होती है। काँटे-छुरी के भोजन में रस मिलने लगता है। यह स्थिति क्यों आई ? कारण स्पष्ट है—हमने विद्यालयों में भारतीय जीवन के मान-दण्डों को नहीं समझाया, नैतिकता से जीवनयापन के गुणों को नहीं पढ़ाया।

धर्म और नैतिकता, दोनों अभिन्न हैं। प्रत्येक धर्म का आधार नैतिकता ही है, लेकिन थोड़ा-सा स्वार्थ आते ही धर्म का स्वरूप सम्प्रदाय में परिवर्तित हो जाता है। यही कारण

है कि सम्प्रदाय या धर्म में तो कोई कमी हो सकती है, परन्तु उनके नैतिक आधारभूत सिद्धांत एक ही हैं। कोई भी धर्म चोरी, ठगी, बुराई की आज्ञा नहीं देता। इसलिए धर्म-निरपेक्षता को रखते हुए भी पाठ्य-क्रम में नैतिक शिक्षा रखी जा सकती है।

नैतिक शिक्षा अर्थात् दुर्गणों का परित्याग कर सद्गुणों को ग्रहण कर विकास के शिखर की ओर सुप्रतिष्ठापित करने वाली विद्या। 'दूसरे शब्दों में सम्यक् उत्थान का मूल है शिष्टाचरण। शिष्टाचरण का आधार है शिक्षा। शिक्षा भी मूलत: शिष्ट आचरण का ही दिशा-निर्देश करती है। इस प्रकार शिक्षा और नीति का उद्देश्य एक ही है। जैसे शाखाओं, पत्रों, पुष्पों और फलों के विकास के लिए वृक्ष के मूल का स्वच्छ-स्वस्थ रहना अनिवार्य है, वैसे ही मानव-जीवन के प्रत्येक कार्यक्षेत्र को नैतिक-शिक्षा द्वारा स्वच्छ रखना अत्यावश्यक है। कारण यह है कि नीति-विहीन शिक्षा से भ्रष्ट-आचरण को अधिकाधिक-प्रश्रय मिलता है और ऐसा होने से मानव-जीवन का स्तर पशु समाज से भी निम्न हो जाएगा।' —डॉ. सीताराम झा 'श्याम'

यदि हम चाहते हैं कि भारतवासी जीवन-मूल्यों का आदर करना सीखें, धर्म, अर्थ और काम की पूर्ति नीति-शास्त्र के मार्गदर्शन में करें, लोकतन्त्र स्वस्थ रूप में चले, धर्म-निरपेक्षता भारत का धर्म बने, देश के विकास-कार्य ईमानदारी से प्रगति-पथ पर बढ़ें, भारत चहुँमुखी उन्नति कर यशस्वी हो तो शिक्षाविदों को नैतिक-शिक्षा को पाठ्यक्रम का एक अनिवार्य विषय बनाना होगा। प्रसिद्ध है, वाटरलू के युद्ध की विजय का श्रेय ऐटन के खेल के मैदान की शिक्षा है, उसी प्रकार भारत में नैतिकता का निर्माण विद्यालयों में नैतिक-शिक्षा की अनिवार्यता द्वारा ही सम्भव है।

(101) आधुनिक शिक्षा प्रणाली

संकेत बिंदु—(1) वर्तमान शिक्षा प्रणाली का इतिहास (2) वर्तमान शिक्षा प्रणाली की महत्त्वपूर्ण देन (3) नैतिक शिक्षा की उपेक्षा (4) शिक्षा प्रणाली की कमियाँ (5) उपसंहार।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली का इतिहास डेढ़ शताब्दी पुराना है। जब भारत परतन्त्र था, विदेशी शासकों ने अपने स्वार्थ के लिए अंग्रेजी की शिक्षा-पद्धति को भारत में प्रचलित किया था। इसका संस्थापक विदेशी शिक्षाविद् मैकाले था। यह शिक्षा-नीति भारतीय संस्कृति, परम्परा एवं राष्ट्रीय-जीवन के विपरीत थी। फलत: इससे शिक्षित भारतीय नकलची, दास-मनोवृत्ति के पोषक और स्वसंस्कृति के विरोधी थे, वे देशभक्ति की भावना से शून्य थे। परिणामत: भारत का शिक्षित-वर्ग विदेशी शासन की जड़ों को और भी सुदृढ़ करने का साधन बना। मैकाले चाहता भी यही था।

पराधीनता के युग में इस शिक्षा-प्रणाली के विरुद्ध बुनियादी तालीम, शांतिनिकेतन,

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय शिक्षा-प्रणाली तथा पाण्डिचेरी-आश्रम व्यवस्था ने राष्ट्र में देशभक्त उत्पन्न कर स्वातन्त्र्य की ज्योति प्रचण्ड करने का प्रयास किया, किन्तु आज स्वतन्त्रता-प्राप्ति के 54 वर्ष पश्चात् भी ब्रिटिशकाल से चली आई वही शिक्षा-पद्धति व्यापक रूप से भारत में प्रचलित है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली की महत्त्वपूर्ण देन है—(1) बाबू संस्कृति अर्थात् कुर्सी पर बैठकर काम करने की प्रवृत्ति और (2) नागरिक-संस्कृति अर्थात् नगरों तथा महानगरों में ही कार्य करने की रुचि। जिसका परिणाम यह हुआ एक ओर शिक्षित युवा-युवतियाँ कार्य से जी चुराने लगे और परिश्रम से कतराने लगे। दूसरी ओर, ग्राम-वासिनी भारतमाता का विकास जिस तेजी से होना चाहिए था, नहीं हो पाया। देश का इंजीनियर, डॉक्टर, कलाविद्, वैज्ञानिक बेरोजगारी की संख्या बढ़ा सकता है, पर गाँवों में नहीं जाता।

वर्तमान शिक्षा-पद्धति ने भारतवासियों को कहीं का नहीं छोड़ा। 'आए थे हरिभजन को, ओटन लगे कपास।' पिता अपने पुत्र को विद्यालय इसलिए भेजता है कि वह शिक्षित होकर सभ्य बने, किन्तु वह बनता है पढ़ा-लिखा बेकार। इतना ही नहीं, वह भ्रष्ट और दूषित चरित्र का बनता है। किसान का पुत्र विद्यालय में किसानी से नाता तोड़ने जाता है। बढ़ई का पुत्र विश्वविद्यालय में बढ़ईगिरी से रिश्ता तोड़ने जाता है। कर्मकांडी पण्डित अपने ही आत्मज से 'पाखण्डी' की उपाधि प्राप्त करने के लिए उसे विश्वविद्यालय में भेजता है। आज का शिक्षित युवक अपने वंश परम्परागत कार्य को करने के लिए तैयार नहीं। शिक्षित बेरोजगारी की संख्या देश में सुरसा के मुख की भाँति फैल रही है। मानो नौकरी ही शिक्षण की एकमात्र परिणति है।

नैतिकता जीवन का मूल है। नैतिकता का सम्बन्ध व्यक्ति की आस्था व निष्ठा से है। सम्प्रति, भारत में नैतिक-शिक्षा की उपेक्षा की जा रही है। अत: नैतिक भावना विहीन शिक्षा विद्यार्थियों में आस्था एवं श्रद्धा उत्पन्न नहीं कर पाती। वर्तमान युग में छात्रों की उच्छृंखलता और अराजकता की स्थिति प्रेम, वासना, मदिरा और ड्रग-सेवन की ओर बढ़ते कदम नैतिकता के अभाव रूपी बीज से उत्पन्न वृक्ष के कटु और विषाक्त फल हैं।

पता नहीं क्यों ? भारत के महान् राष्ट्र-भक्त प्रधानमंत्रियों ने शिक्षा को सदा प्राथमिकता और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थिति से वंचित ही रखा। परिणामस्वरूप शिक्षा के बजट को अनावश्यक और उसकी समस्याओं को बेकार समझा गया। परिणामत: 54 वर्ष में चार शिक्षा आयोगों की नियुक्तियाँ हुई। पहला विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग, दूसरा माध्यमिक शिक्षा आयोग और तीसरा और चौथा सम्पूर्ण शिक्षा-आयोग। इन आयोगों की नियुक्ति ही अव्यावहारिक थी। कारण, सुधार का कार्य प्राथमिक शिक्षा से होना चाहिए था, जबकि पहला आयोग विश्वविद्यालय-शिक्षा पर विचार करने के लिए नियुक्त किया गया। भला जब तक जड़ को नहीं सींचा जाएगा, तब तक पत्तों के सींचने से क्या लाभ होगा ?

पाठ्यक्रम में जो पुस्तकें निर्धारित की गई हैं, उनको देखने से लगता है कि हमारे

शिक्षाविद् बच्चों के मस्तिष्क में अनेक विषयों का अधकचरा ज्ञान भरना चाहते हैं, किसी विषय का पूर्ण ज्ञान नहीं, फलतः उनका बस्ता गधे का बोझ बन गया है।

तीसरे, गणित और विज्ञान की पढ़ाई अनिवार्य तो कर दी गई, किन्तु पाठ्यक्रम के अध्ययन के लिए सूक्ष्म प्रयोगशालाओं का निर्माण नहीं हुआ। परिणामतः प्रायौगिक विषय भी 'तोता-रटन्त' बनकर रह गए।

चौथे, प्रश्न-शैली की नवीनता और प्रश्नों की भरमार से विद्यार्थी को परीक्षा-भवन में चक्कर आने लगे। तीन घंटे में पेपर पढ़ना, प्रश्नों के उत्तर देना और लिखे उत्तरों का 'रिवीजन' एवरेस्ट पर चढ़ना सिद्ध हुआ। विद्यार्थी थोक के भाव फेल होने लगे।

पाँचवें, शिक्षा का व्यावसायीकरण अर्थाभाव, योग्य तथा प्रतिक्षित अध्यापकों के अभाव में कोढ में खाज सिद्ध हुआ।

सच्चाई तो यह है कि आज का शासक विद्यार्थियों की बढ़ती संख्या और तदनुकूल उचित व्यवस्था की पूर्ति की अक्षमता से खिन्न है। इसलिए नई शिक्षा पद्धति में प्रश्न-पत्रों की विचित्रता-जटिलता, पुस्तकों का भार, अधिक विषयों में पास होने की अनिवार्यता, एक ही भाषा के कोर और इलेक्टिव, दोनों लेने पर प्रतिबन्ध, विद्यार्थी को उच्च-शिक्षा से रोकने के 'पथरोधक' हैं।'

वर्तमान शिक्षा-पद्धति बालकों और युवकों में राष्ट्र-प्रेम की भावना भी उत्पन्न करने में असमर्थ है। सर्व-धर्म समभाव की दृष्टि प्रदान करने में असफल है। जीवन के विकास और साफल्य के लिए लंगड़ी है। जीवकोपार्जन की योग्यता उत्पन्न करने में असमर्थ है। देश के वर्तमान वातावरण और जीवन में एकरूपता या सामंजस्य लाने में असफल है और है चरित्र के निर्माण में सर्वथा अशक्त।

(102) शिक्षा का गिरता स्तर

संकेत बिंदु—(1) ब्रिटिश प्रतिरूप पर आधारित (2) शिक्षा का राजनीतिकरण व शिक्षा आयोग (3) शिक्षकों द्वारा उत्तरदायित्व की उपेक्षा (4) पाठ्य पुस्तकों के स्तर में कमी (5) राजनीतिक हस्तक्षेप और मूल्यांकन पद्धति।

शिक्षा मनुष्य को पूर्णत्व प्रदान करने का साधन एवं विकास का सोपान है। उसके भीतर मूलभूत या जन्मजात गुणों का विकास या प्रकटीकरण शिक्षा के बिना संभव नहीं है।

भारत की वर्तमान शिक्षा-प्रणाली ब्रिटिश प्रतिरूप पर आधारित है, जिसकी नींव 1835 में रखी गई थी। इसका उद्देश्य था शिक्षा से भारत में प्रशासन को बिचौलियों की भूमिका निभाने और दफ्तरी कार्य के लिए क्लर्क तैयार करना। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी शिक्षा का उद्देश्य 'बाबू संस्कृति' का विकास और वर्द्धन बना रहा, जो भारत की वर्तमान स्थिति के प्रतिकूल है। श्री राजनाथसिंह का तो कहना है, 'शिक्षा संस्थाएं आज ज्ञान का मंदिर होने

के स्थान पर अज्ञानता से उत्पन्न कलुष का केन्द्र बनकर मनुष्य को सींग-पूँछ विहीन पशु बनाने का काम कर रही हैं।' *(दैनिक जागरण 16.1.97)*

शिक्षा का स्तर गिर रहा है, इसका प्रमाण है नौकरियों में उत्तरोत्तर बढ़ता डिग्री-मूल्यांकन। स्वतंत्रता-काल में कलर्क की नौकरी के लिए 'मैट्रिकुलेट' होना पर्याप्त था। आज कम-से-कम बी.ए. होना चाहिए। प्राइमरी स्कूल में अध्यापक योग्यता थी मैट्रिक जे.वी., एस.वी. आज कम-से-कम बी.ए.-बी.एड चाहिए।

भारत का दुर्भाग्य रहा है कि यहाँ हर अच्छी शिक्षा-नीति राजनीति और नौकरशाही की चौखट पर सिर फोड़-फोड़ कर दम तोड़ती है। शिक्षा-मंत्री की विचारधारा अनुसार शिक्षा-नीति में कम्यूनिस्टीकरण, मुस्लिमीकरण या भगवाकरण की बू आती है। इसलिए विपक्ष नीति की दृष्टि से शिक्षा-योजना को नहीं देखता, वह तो विचारधारा के आधार पर शिक्षा-नीति की आलोचना करता है। नौकरशाही तो 85 प्रतिशत राशि को योजना के लागू होने में खा जाती है, डकार भी नहीं लेती। शेष 15 प्रतिशत राशि को लूट का माल समझ कर आवंटित करती है। इसमें भ्रष्टाचरण भी अपना भाग माँगता है। तब बची-खुची राशि से शिक्षा का उद्धार होगा, स्तर सुधरेगा अन्तरिक्ष-स्पर्श से कम नहीं।

शिक्षा-स्तर को उन्नत करने का पहला आयोग 1948-49 में 'राधाकृष्णन् आयोग' बना। उद्देश्य था विश्वविद्यालयीय शिक्षा का उद्धार। दूसरा आयोग 1952 में 'मुदालियर आयोग' बना माध्यामिक शिक्षा आयोग। उसके बाद अनेक शिक्षा-आयोग बने। इसमें पहले आयोग की नियुक्ति ही अव्यावहारिक थी। कारण, सुधार का कार्य प्राथमिक-शिक्षा से होना चाहिए, जबकि पहला आयोग विश्वविद्यालय शिक्षा पर विचार करने के लिए नियुक्त किया गया। जब तक जड़ को नहीं सींचा जाएगा, पत्ते, पुराण पल्लवित पुष्पित होंगे ही नहीं।

शेष शिक्षा-आयोगों ने 'सम्पूर्ण शिक्षा' पर विचार किया। उनकी सिफारिशों को किसी-न-किसी कारणवश लागू करने में कठिनाई उत्पन्न होती रही। 'शिक्षा का व्यवसायीकरण' करने की सिफारिश सर्वप्रथम कोठारी आयोग (1964-66) ने दी थी। उसके बाद तो सभी शिक्षा-आयोगों ने पूरी शक्ति और सर्वसम्मति से इस तत्त्व का समर्थन किया है। क्या 'व्यावसायिक-शिक्षा' आरम्भ हुई ? एक या दो प्रतिशत। ऊपर से औसत शिक्षकों की योग्यताएँ व्यावसायिक पाठ्य-क्रमों की शिक्षा देने के लिए अपर्याप्त रही है। परिणामत: आयोगों की सिफारिशों के लागू करने के अभाव में शिक्षा का स्तर गिरता गया।

अध्यापन का दायित्व होता है शिक्षक पर। असल में, वह ही शिक्षा-स्तर को उन्नत करने की रीढ़ है। वह चाहे तो शिक्षार्थी को शिक्षित कर सकता है और चाहे तो अपने अनपेक्षित व्यवहार से ज्ञान-विहीन छोड़ सकता है। सरकारी और सहायता प्राप्त स्कूलों में अधिकांश शिक्षक पीरियड में समय पर पहुँचकर पढ़ाने के विरुद्ध हैं। अनेक शिक्षक तो विद्यालय में हाजरी लगाने आते हैं; कक्षा, विद्यार्थी और अध्यापन से उनका कोई नाता नहीं।

स्वतंत्रतापूर्व के शिक्षक स्कूल या कॉलिज जाने से पहले अपनी 'स्टडी' (स्वाध्याय) करके चलते थे ताकि अध्यापन में कोई कठिनाई न आए तथा नए विचार उत्पन्न हों। आज का शिक्षक अपने को विषय का विशेषज्ञ समझता है, इसलिए 'स्वाध्याय' को बेकार मानता है। दूसरी ओर आज का शिक्षक विषय का विशेपज्ञ नहीं, भ्रांत द्रष्टा है। उसे अपने विषय की समझ ही नहीं है। अशुद्ध सहायक पुस्तकों पर जिनका ज्ञान आधारित होगा, 2 + 2 = 5 ही पढ़ाएंगे। ऐसी स्थिति में छात्र यह सोचते हैं कि शिक्षक के पढ़ाने में कुछ भी चुनौतीपूर्ण नहीं होता तो फिर स्कूल जाने का क्या लाभ?

पब्लिक स्कूलों में जहाँ शिक्षा-स्तर बहुत ऊँचा माना जाता है, वहाँ पुस्तकों का यह आलम है कि गधे के बोझ से कम बस्ता नहीं होता और कैसी-कैसी पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं, उसका एक उदाहरण ही पर्याप्त है—" **'कमल' हिन्दी भाषियों के लिए और 'जलज' संस्कृत भाषियों के लिए।**" जबकि कमल और जलज, दोनों संस्कृत-तत्सम शब्द हैं और हिन्दी में आम प्रयुक्त होते हैं। और आगे चलिए '**केवल मनुष्य के मुख से उच्चारित, रूप को ही हम भाषा कहते हैं।**' इसका अर्थ है, लिखित रूप को भाषा नहीं कहते।

अब जरा स्कूल पाठ्यक्रमों में करोड़ों रुपए खर्च करके वर्षों विद्वज्जनों की बैठकों के बाद जो पुस्तकें एन.सी.ई.आर.टी. तैयार करता हैं उनका आलम यह है—

(1) **असेम्बली में बम फैंकने के कारण '23 मार्च, 1931 को सरदार भगतसिंह, शिवराम, राजगुरु और सुखदेव को फाँसी दी गई।'** *(संचयिका भाग 2, पृष्ठ 133)*

(2) हिन्दी की 9 कक्षा के 'बी' पाठ्यक्रम में पुस्तक लगी हैं पूर्वा भाग 1 तथा कथा-कलश भाग 1। इसके मुख्य सम्पादक हैं—रामजन्म शर्मा और चन्द्रा सदायत। 25 अन्य हिन्दी विद्वानों की समिति ने इन पर कार्य किया है। स्तर है इन पुस्तकों का छठी श्रेणी का। इसे कहते हैं 'खोदा पहाड़, निकली चुहिया और वह भी मरी हुई।'

(3) आठवीं कक्षा की पाठ्य-पुस्तक है—सरस भारती भाग 3। उसमें से तीन पाठ हैं—(क) इब्राहिम गार्दी (कहानी) : वृन्दावनलाल वर्मा।

(ख) प्रियतम (कविता) : सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'।

(ग) क्या निराश हुआ जाए (निबन्ध) : हजारीप्रसाद द्विवेदी।

ये तीनों पाठ दसवीं कक्षा : बी कोर्स की पाठ्य-पुस्तक मानसी भाग-दो में भी हैं। अर्थात् आठवीं और दसवीं का स्तर एक है। धन्य है राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के हिन्दी विभाग की सोच को।

(4) बारहवीं इलेक्टिव में एक पाठ्य-पुस्तक है—मंदाकिनी भाग दो। उसमें एक ओर तो प्रसाद, निराला और अज्ञेय की क्लिष्ट कविताएँ हैं और दूसरी ओर नागार्जुन की 'बहुत दिनों बाद' पाँचवीं स्तर की कविता है।

शिक्षा के गिरते स्तर का एक कारण परीक्षा और मूल्यांकन पद्धति है। पाठ्य-क्रम से बाहर और स्तर से ऊँचे प्रश्न पूछकर लाखों परीक्षार्थियों के भविष्य को अंधकार में धकेलने में पेपर-सेटर को दया नहीं आती। 12वीं कक्षा में हिन्दी-साहित्य के इतिहास के प्रश्नों

के उत्तर देने में परीक्षार्थी क्या, अध्यापकों को भी पसीना आ सकता है, क्योंकि उनका स्तर एम.ए. का होता है।

भारत में शिक्षा-स्तर गिरने का एक प्रमुख कारण है—राजनीति का हस्तक्षेप। 'निजी स्वार्थ के लिए सभी कुकर्म करने वालों की जमात को आज 'नेता' के नाम से पहचाना जाता है।'—पत्रकार राजनाथ सिंह (दैनिक जागरण, 16.1.97) इन नेताओं के संरक्षण में पुष्पित और पल्लवित हैं, शिक्षा के कर्णधार। वे शिक्षा का स्तर पाताल में पहुँचाएं या देश-प्रतिभा की धारा को अवरुद्ध करें, इनके हितों को, उनकी नौकरी को आँच नहीं आएगी। कारण, नेता जी का वरद-हस्त उनके ऊपर है तथा 'सैयाँ भए कोतवाल तो डर काहे का।' अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के कुलपति महमुदुर्रहमान ने राजनीति से तंग आकर कहा था, 'वे भविष्य में किसी राजनीतिज्ञ को विश्वविद्यालय में नहीं बुलाएंगे।'

दूसरे, यदि वर्ग-विशेष या सिफारिश के स्थान पर योग्यता और प्रतिभा को महत्त्व देकर शिक्षक, शिक्षा-समिति तथा पाठ्य-क्रम निर्धारण समितियों के सदस्यों का चयन हो तो शिक्षा स्तर में निश्चित सुधार होगा।

(103) पुस्तकालय

संकेत बिंदु—(1) जिज्ञासा शांति का स्थल (2) ज्ञानार्जन का प्रमुख केंद्र (3) पुस्तकालय के प्रकार (4) पुस्तकालयों की प्राचीन परम्परा (5) व्यक्ति के ज्ञान का तीसरा नेत्र।

पुस्तकालय ज्ञान का आगार है। स्वस्थ मनोरंजन का चित्रपट है। व्यक्ति की जिज्ञासा की शांति का स्थल तथा बौद्धिक विकास एवं तृप्ति का आश्रय-स्थल है। शिक्षा, ज्ञान एवं विद्या का प्रचारक और प्रसारक है। बेकन के शब्दों में, 'पुस्तकालय ऐसे मन्दिरों की तरह हैं जहाँ प्राचीन संतों-महात्माओं के सद्‌गुणों से परिपूर्ण तथा निर्भ्रान्त पाखंड रहित अवशेष सुरक्षित रखे जाते हैं।'

एडीसन के विचार में पुस्तकालय की 'पुस्तकें महती प्रतिभाओं के द्वारा मानव जाति के लिए छोड़ी गई पैतृक सम्पत्ति है, जो पीढ़ी दर पीढ़ी को सौंपी जाने के लिए हैं, मानों वे अभी अजन्मे व्यक्तियों के लिए दिए गए ज्ञान का उपहार हों।'

ज्ञानार्जन के लिए माता सरस्वती के दो मंदिर हैं—(1) विद्यालय तथा (2) पुस्तकालय। विद्यालयों (शिक्षा केन्द्रों) में गुरु मुख से सुनकर विद्या अर्जित की जाती है और पुस्तकालय में अध्ययन और चिंतन-मनन द्वारा ज्ञानार्जन होता है। विद्या के मन्दिर में प्रविष्ट होने पर विद्यार्थी के मन में श्रद्धा और एकाग्रता का सम्भवत: अभाव हो, किन्तु पुस्तकालय रूपी मन्दिर में जाने वाले प्रत्येक में श्रद्धा तथा एकाग्रता का भाव होता है।

पुस्तकालय के दो भाग होते हैं—(1) वाचनालय तथा (2) पुस्तकालय। वाचनालय भारत के विभिन्न प्रदेशों से प्रकाशित प्रमुख दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक तथा मासिक पत्र-

पत्रिकाओं का पठन केन्द्र है। यह विश्व में दिन-प्रतिदिन घटनाओं की जानकारी देने वाला विश्व कोश (एनस्कलोपीडिया)-सम है। पुस्तकालय विभाग विविध विषयों और उनकी विविध पुस्तकों का भंडारगृह है। यहाँ प्राचीन अलभ्य, दुर्लभ तथा अप्रकाशित हस्तलिखित तथा टंकित पांडुलिपियों का विशाल-संग्रह प्राप्त होता जाता है। इन अलभ्य, दुर्लभ और अप्रकाशित पुस्तकों की त्रिवेणी में गोता लगाकर अध्येता को ज्ञान के मोती प्राप्त करने का सौभाग्य मिलता है।

पुस्तकालय चार प्रकार के होते हैं—(1) निजी पुस्तकालय व्यक्ति के शौक और पसंद की पुस्तकों का पुस्तकालय होता है। इसका उपयोग अत्यंत सीमित होता है। (2) विद्यालय, महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय के पुस्तकालय। इनका उपयोग इनके सदस्यों तक ही सीमित रहता है। फिर भी, विश्वविद्यालय-पुस्तकालय विभिन्न विषयों के प्रकाशित-अप्रकाशित शोधार्थियों की कृतियों का महा-समुद्र है। नवीन शोधार्थी के लिए ज्ञान का आश्रय-स्थल है, इच्छा की प्रसादी है तथा कर्म का कुरुक्षेत्र है। (3) संस्थागत पुस्तकालय बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ, औद्योगिक संस्थान, बैंक, क्लब, सरकारी कार्यालय अपनी-अपनी आवश्यकता और रुचि की पुस्तकें रखते हैं। इनसे उनके सदस्यों का मनोरंजन तथा जिज्ञासुओं की जिज्ञासा की शान्ति, दोनों उद्देश्य पूर्ण होते हैं। (4) सार्वजनिक पुस्तकालय। इन पुस्तकालयों से प्रत्येक नागरिक लाभ उठा सकता है।

भारत में पुस्तकालयों की परम्परा प्राचीन काल से ही मिलती है। यहाँ के नालन्दा, तक्षशिला और बल्लभी के पुस्तकालय विश्व-विख्यात हस्तलिखित पाण्डुलिपियों के रत्नागार थे। जिन्हें ज्ञान के बैरी मुगल बादशाहों ने निर्ममता से जलवा दिया। मुद्रण-कला के साथ भारत में पुस्तकालयों की लोकप्रियता बढ़ी। परतंत्र भारत ने पुन: अत्यन्त समृद्ध पुस्तकालय खड़ा किया भी तो अंग्रेजों की कृपा से वह लंदन में 'इंडिया हाउस' की शोभा बढ़ा रहा है। स्वतंत्र भारत में पुस्तकालयों का पुन: विकास शुरू हुआ। राज्य सरकारों के सहयोग से जिला पुस्तकालय स्थापित हुए। जैसे—दिल्ली में दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी तथा पटना की सिन्हा लाइब्रेरी। इन पुस्तकालयों की चलती-फिरती लाइब्रेरियाँ भी सुदूर ग्रामीण अंचलों में जाकर लोगों में पुस्तक-प्रेम उत्पन्न करती हैं। केन्द्रीय सरकार ने राजा राममोहन राय संस्थान, कलकत्ता की स्थापना कर पुस्तकालय प्रसार और प्रचार के कपाट खोले। दूसरी ओर कलकत्ता, बम्बई, मद्रास तथा दिल्ली में 'नेशनल लाइब्रेरी' स्थापित कर पुस्तकालयों में पुस्तक-कोश का मार्ग प्रशस्त किया। इन चारों लायब्रेरियों के लिए प्रत्येक प्रकाशक को अपनी प्रकाशित दो पुस्तकें बिना मूल्य भेजने का अनिवार्य प्रावधान है।

जिस प्रकार सिनेमा-घर के चित्रपट स्वस्थ मनोरंजन प्रदान करते हैं, उसी प्रकार पुस्तकालय की पुस्तकें जनता को मनोरंजन भी प्रदान करती है। पुस्तकालय से उपन्यास, कहानियाँ, कॉमिक्स, हास्य-व्यंग्य कथाओं की पुस्तकों का सर्वाधिक प्रयोग इसका प्रमाण है।

पुस्तकालय व्यक्ति के ज्ञान का तीसरा नेत्र खोलता है। तुलनात्मक अध्ययन का अवसर

प्रदान करता है। शोधार्थियों को अप्राप्य, अलभ्य और अप्रकाशित पुस्तकों के दर्शन करवाता है। विशिष्ट विषय में विशेष योग्यता चाहने वालों को उनकी वाँछित पुस्तकें प्रदान करता है। यह शंकालुओं की शंका का समाधान करता है, जिज्ञासुओं की जिज्ञासा शांत करता है। शिक्षा, ज्ञान एवं विद्या का प्रचार और प्रसार कर घर में बैठे-बैठे विद्वान् बनाता है।

पुस्तकालय जनता की सम्पत्ति है। लेखकों की धरोहर है। पाठक उसका ट्रस्टी (न्यासी) है। ट्रस्टी जैसे स्वामी नहीं होता, उसी प्रकार पुस्तकालय की पुस्तकों का पाठक पुस्तकों का स्वामी नहीं होता। इसलिए वह पुस्तकों से खिलवाड़ करने का अधिकारी नहीं है। पुस्तकों पर रेखाएं लगाना, उन्हें चिह्नित करना, पृष्ठ फाड़ना या उनसे चित्र काटना अमानत में खयानत है, धरोहर से विश्वासघात है। न्यासी के दायित्व की अवहेलना है।

पुस्तकालय विचारों के भव्य मंदिर हैं। विद्वानों और महालेखक-लेखिकाओं के मानसों को पाठकीय मानस में प्रतिबिम्बित करने के तेजस्वी मणि हैं। ज्ञान की ज्योति का प्रचंड प्रभाकर हैं। सत्य-शिव-सुन्दर के प्रदर्शक और मंत्र द्रष्टा हैं। आनन्द के प्रदाता हैं।

(104) शिक्षा का माध्यम मातृभाषा

संकेत बिंदु—(1) भाषा की समस्या (2) नई शिक्षा नीति में शिक्षा का माध्यम (3) क्षेत्रीय जनता के लिए रुचिकर (4) हिंदी और भारतीय भाषाओं को सम्मान (5) उपसंहार।

भारत जैसे बहुभाषीय विशाल देश में जहाँ अनेक समस्याएँ हैं, वहाँ भाषा भी एक समस्या है। देश के हर कोने के सदा यह शोर उठता रहता है कि हमारी अमुक भाषा है, हम अमुक भाषा को चाहते हैं और अधिकांश लोग अंग्रेज़ी को महत्त्व देते हैं। देश में प्रशासन की भाषा, राजभाषा, न्याय की भाषा आदि बिन्दुओं पर मतभेद रहता है और विभिन्न समस्याएँ भी भाषा को लेकर उत्पन्न होती हैं वहीं शिक्षा के माध्यम से प्रश्न पर भी मतभेद और समस्याएँ उभरकर सामने आती हैं। शिक्षा शास्त्रियों का मत है कि शिक्षा का माध्यम प्राथमिक स्तर से लेकर शोध स्तर तक मातृभाषा में होना चाहिए, इस प्रक्रिया से मातृभाषा का उत्थान तो होगा ही साथ ही राष्ट्रभाषा हिन्दी को भी बल मिलेगा।

यह सत्य है कि कुछ देशों में (जिनमें भारत भी शामिल हैं) अभी भी यहाँ बहुत समय से विदेशी भाषाएँ शिक्षा का माध्यम रही हैं, किन्तु यह आदर्श स्थिति नहीं कही जा सकती। विदेशी भाषा में मौलिक शोध सम्भव नहीं हो सकता, विदेशी चिन्तन से स्वयं के मौलिक चिन्तन की हत्या प्रायः हो जाती है, चिन्तन दब जाता है। यह स्थिति तकनीकी शिक्षा और विज्ञान में लागू होती है।

नयी शिक्षा नीति में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि अन्ततः सभी स्तर पर शिक्षा का माध्यम मातृभाषा (भारतीय भाषाएँ) होगा। शिक्षा नीति में यह भी स्पष्ट है कि अब तक

शिक्षा का माध्यम जो अंग्रेज़ी का है उसे तुरन्त हटाना तो उचित नहीं होगा लेकिन आने वाले समय में अंग्रेज़ी के प्रभाव को कम करने के लिए मातृभाषा का उपयोग किया जायेगा। विभिन्न ज्ञान शाखाओं की सामग्री का भारतीय भाषाओं में अनुवाद कराकर उच्च शिक्षा और शोध के माध्यम को सशक्त बनाया जायेगा।

मातृभाषा में शिक्षा दिये जाने का सर्वव्यापक लाभ होगा और इस प्रक्रिया से देशभर में साक्षरता का अनुपात बढ़ेगा। पिछले 30-40 वर्षों में इस दिशा में रचनात्मक कार्य हुआ भी है। राजकीय और सामाजिक प्रयत्नों के फलस्वरूप अब तक विज्ञान तथा अन्य विषयों पर हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में हज़ारों ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ है। यह कार्य इस बात का संकेत है कि हमारे शिक्षा शास्त्री भी मातृभाषा में शिक्षा की आवश्यकता को स्वीकार करते हैं। प्रत्येक राज्य में स्थापित अकादमियाँ प्राथमिक स्तर से लेकर उच्चशिक्षा तक के प्रत्येक विषय की पाठ्य सामग्री अपनी-अपनी मातृभाषा अर्थात् भारतीय भाषा में तैयार कराने में सलंग्न हैं। शिक्षा का माध्यम मातृभाषा में किये जाने के सन्दर्भ में देश के हर कोने से एक मौन क्रान्ति शिक्षा के माध्यम क्षेत्र में आ रही है, भले ही हमें इसका अहसास अभी नहीं हो पा रहा, किन्तु भविष्य आशापूर्ण लगता है।

मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाया जाना क्षेत्रीय जनता के लिए रुचिकर और आसान हो जायेगा। जिस भाषा का हम घर पर उपयोग करते है उसी भाषा में शिक्षा का पाना शिक्षार्थी के लिए हितकर होगा ही साथ ही उसके पढ़ने की रुचि को भी बल मिलेगा। मातृभाषा में जहाँ शिक्षा का महत्त्व होगा वहीं बोलियों के उत्थान का भी अवसर होगा। जैसे पंजाबी भाषा के अन्दर अनेक बोलियाँ हैं, उन्हें भी फलने-फूलने का अधिकार मिल जायेगा।

शिक्षा के इस क्षेत्र में शिक्षाविदों, शिक्षा शास्त्रियों के प्रयास से रचनात्मक कार्य हो रहे हैं और भविष्य में शिक्षा का स्वरूप उभरकर सामने आयेगा। वह समाज और देश के लिए सृजनात्मक होगा।

मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाये जाने से एक समस्या भी सामने आ सकती है। वह यह है कि माध्यमिक शिक्षा से लेकर उच्चशिक्षा तक (जब तक अंग्रेज़ी भाषा को मान्यता रहेगी) विद्यार्थी को त्रिभाषा को स्वीकार कर अध्ययन पूर्ण करना पड़ेगा। मातृभाषा, हिन्दी के साथ अंग्रेज़ी को भी माध्यम बनाना होगा। जब मातृभाषा में सभी पुस्तकों का लेखन हो जायेगा और छात्रों को उपलब्ध हो जायेंगी तब हमें अंग्रेज़ी की आवश्यकता न रहेगी।

विदेशों से आयात की गयी भाषा अंग्रेज़ी के अधिकार को समाप्त करने के लिए यह आवश्यक भी है कि शिक्षा का माध्यम मातृभाषा में हो। इस प्रक्रिया से देशभर की पन्द्रह भाषाओं को सम्मान तो मिलेगा ही साथ ही राष्ट्रभाषा हिन्दी को भी आगे बढ़ने का पर्याप्त अवसर मिलेगा। हमारा देश जिन क्षेत्रों में नये युग की उत्क्रान्ति हो रहा है उनमें शिक्षा ही नहीं भाषा भी प्रमुख है। विदेशी भाषा के स्थान पर भारतीय भाषाओं (मातृभाषा) को शिक्षा

का माध्यम बनाने का जो युगान्तकारी प्रयास हो रहा है, उसमें आज के शिक्षक वर्ग की ऐतिहासिक भूमिका का निर्वाह भी है। शिक्षा और भाषा की इस कठिनाई को दूर करने के लिए जो आधारशिला शिक्षा शास्त्रियों द्वारा रख दी जायेगी इतिहास में इसका विशेष उल्लेख रहेगा।

मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाया जाना ही राष्ट्रीय जागरण को नव प्राण देने के समान होगा, यही नहीं जब इसे सार्वजनिक रूप से सरकार द्वारा मान्यता दी जायेगी तो देश में इस प्रणाली का स्वागत किया जायेगा। अल्प समय में कोमल-मति बालकों को विविध प्रकार से मातृभाषा के द्वारा ही विविध प्रकार की उपयोगी जानकारी से अवगत कराया जा सकेगा। मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाये जाने से भले ही स्पर्धा में बैठे विद्यार्थियों में असमानता रहेगी मगर ज्ञान और भाषा के माध्यम से हर छात्र प्रतियोगिता के लिए स्वयं को पूर्ण रूप से उपयोगी पायेगा, क्योंकि मातृभाषा क्षेत्रीय भाषा तो होगी ही साथ ही राष्ट्रीय भाषा के ज्ञान में तो समरूपता होने के कारण छात्रों के मन की भावना समाप्त होगी। शिक्षा और ज्ञान के विस्तार के लिए शिक्षा का माध्यम मातृभाषा में उपयोगी रहेगा और सभी को उन्नति के अवसर में भी समानता रहेगी, देश के भविष्य के लिए यह हितकर और उन्नति-परक भी होगा।

परीक्षा

(105) परीक्षा के ये कठिन दिन

संकेत बिंदु—(1) परीक्षा का भूत और ज्वर (2) अनुचित तरीकों का प्रयोग (3) प्रश्न पत्र को लेकर आशंकित (4) परीक्षा को लेकर भय (5) आत्मविश्वास की आवश्यकता।

परीक्षा के दिन परीक्षार्थी के लिए बड़े कठिन होते हैं। इन दिनों परीक्षार्थी अपनी समस्त शक्ति अध्ययन की ओर केन्द्रित कर एकाग्रचित होकर सम्भावित प्रश्नों को कंठस्थ करने के लिए लगा देता है। ये दिन उसके लिए परीक्षा-देवी को प्रसन्न करने के लिए अनुष्ठान करने के दिन हैं; गृहकार्यों से मुक्ति, खेल-तमाशों से छुट्टी और मित्रों-साथियों से दूर रहने के दिन हैं।

परीक्षा परीक्षार्थी के लिए भूत है। भूत जिस पर सवार हो जाता है उसकी रातों की नींद हराम हो जाती है, दिन की भूख गायब हो जाती है और घर में सगे-सम्बन्धियों का आना बुरा लगता है। दूरदर्शन के मनोरंजक कार्यक्रम, मनपसन्द एपीसोड, चित्रहार आदि समय नष्ट करने के माध्यम लगते हैं।

परीक्षा के इन कठिन दिनों में परीक्षा-ज्वर चढ़ा होता है, जिसका तापमान परीक्षा-

भवन में प्रवेश करने तक निरन्तर चढ़ता रहता है और प्रश्न-पत्र हल करके परीक्षा-भवन से बाहर आने पर ही सामान्य होता है। फिर अगले विषय की तैयारी का स्मरण होते ही यह ज्वर 99, 100, 101 के क्रम से चढ़ना आरम्भ कर देता है। ज्वरग्रस्त परीक्षार्थी निरन्तर विश्राम न कर पाने की पीड़ा से छटपटाता है। परीक्षाज्वर से ग्रस्त परीक्षार्थी क्रोधी बन जाता है, चिन्ता 'दावा' बनकर उसके स्वास्थ्य को चौपट कर देती है।

वर्ष के प्रारम्भ से ही नियमपूर्वक अध्ययन न करने वाला परीक्षार्थी परीक्षा के इन कठिन दिनों में पवन-सुत हनुमान् की भाँति एक ही उड़ान में परीक्षा-समुद्र लाँघना चाहता है। वह सहायक पुस्तकों का आश्रय ढूँढ़ता है, गलत-सलत जो भी पुस्तक मिल जाए, उसे देवता समझकर पूजता है, विष को भी अमृत समझकर पी जाता है।

'डूबते को तिनके का सहारा।' परीक्षा के कठिन दिनों में कतिपय छात्र नकल का आश्रय लेना चाहते हैं, किन्तु नकल के लिए भी अकल की जरूरत है। नकल के लिए निरीक्षक की आँखों में धूल झोंकने की चतुराई चाहिए। निरीक्षक को लोभ-लालच देकर या धमकी से सुविधा प्राप्त करने की शक्ति चाहिए। फिर नकल के लिए किन-किन प्रश्नों के संकेत लिखने हैं, किन-किन प्रश्नों का पूरा उत्तर ही फाड़कर ले जाना है, यह निर्णय करने की योग्यता चाहिए। नकल की घबराहट में पढ़ा कुछ जाता है, लिखा कुछ जाता है। कंठस्थ उत्तर भी विस्मृत हो जाता है। कारण, आत्मविश्वास जो हिल जाता है।

परीक्षा के इन कठिन दिनों में परीक्षार्थी अहर्निश इस भय से ग्रस्त रहता है कि पता नहीं परीक्षा में क्या आएगा ? भय से वह अनेक कार्य करता है। वह अध्यापक की सहायता से सम्भावित प्रश्नों को छाँट लेता है, किन्तु वह जानता है परीक्षा मात्र संयोग है, प्रश्न-पत्र 'लाटरी' है—अनिश्चित और अविश्वसनीय। परीक्षक प्रश्न-पत्र के माध्यम से उसके भाग्य के साथ क्रूर परिहास कर सकता है। भय का एक कारण प्रश्नों का प्रचलित परम्परागत शैली से हटना भी है। यदि परीक्षक 'समाचार-पत्र' पर निबन्ध न पूछकर 'जन-जागरण और समाचार-पत्र', मद्य-निषेध न पूछकर 'मद्य-निषेध की अनिवार्यता,' 'परीक्षा' न पूछकर 'परीक्षा के ये कठिन दिन' पूछ बैठे, तो कुशल और योग्य परीक्षार्थी का मस्तिष्क भी चकरा जाता है, उसे मूर्च्छा आने लगती है। यदि पढ़ा हुआ, कंठस्थ किया हुआ प्रश्न आ गया, तो पौ-बारह हैं।

परीक्षा का समय तीन घंटे निश्चित होता है। इस अल्पावधि का एक-एक क्षण अमूल्य होता है। प्रश्न-पत्र को अच्छी तरह समझकर हल करना और भी कठिन होता है। किसी प्रश्न या प्रश्नों का उत्तर लम्बा लिख दिया तो अन्य प्रश्न छूटने का भय रहता है। उत्तर प्रश्नों के अनुसार न दिए तो अंकों की न्यूनता की आशंका रहती है। विचारों की अभिव्यक्ति में सुन्दरता न आई तो पिछड़ने का भय रहता है। विचारों को व्यक्त करने के लिए भाषा अनुकूल न बनी, तो भी गड़बड़ होने की आशंका होती है। सबसे बड़ी कठिनाई तो तब आती है, जब रटा हुआ उत्तर लिखते-लिखते दिमाग में द्वन्द्व मच जाता है। उस समय सूझ-बूझ का

दिवाला निकल जाता है। अत: रटे हुए उत्तर के स्मरणार्थ लिखे को दोहराने लगते हैं तो समय दबे-पाँच खिसकता जाता है।

परीक्षा के इन कठिन भयप्रद दिनों को साहसपूर्वक पार करने का अर्थ है सफलता का वरण करना। इसके लिए अनिवार्य है प्रारम्भ से ही एकाग्रचित्त होकर नियमित अध्ययन। प्रमादवश या अध्ययन के प्रति उपेक्षा भाव के कारण नियमित परिश्रम नहीं हो सका तो 'परीक्षा-तैयारी के अवकाश' में धैर्यपूर्वक और नियमित परिश्रम करो। बार-बार पढ़ने मे, सहायक पुस्तकों तथा अध्यापकों के सहयोग से कठिनाई दूर हो जाती है। वृन्द कवि ने कहा भी है, 'करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।'

परीक्षा के दिनों में आत्म-विश्वास को बनाए रखो। जो कुछ पढ़ा है, समझा है, कंठस्थ किया है, उस पर भरोसा करो। परीक्षा-भवन के लिए चलने से पूर्व मन को शांत रखो। कोई अध्ययन सामग्री साथ न लो, न कहीं से पढ़ने-देखने की चेष्टा करो। परीक्षा-भवन में प्रश्न-पत्र को दो बार पढ़ो। उन प्रश्नों पर चिह्न लगा लो, जिन्हें कर सकते हो। जो प्रश्न सबसे बढ़िया लिख सकते हो, उसे पहले लिखो। लिखने से पूर्व 'कथ्य' सोच लो। कथ्यों का विस्तार करते चलो। उत्तर लिखने के बाद उस उत्तर का पुन: पाठ करो। उत्तर को अंकों के अनुसार छोटा या बड़ा करना न भूलो। यदि कोई प्रश्न अत्यन्त कठिन है, तो उसे अन्त में करो। उस पर कुछ क्षण विचार करो। विचारोपरान्त जो समझ में आता है, उसे लिख दो। इससे परीक्षा के कठिन दिनों की पीड़ा से छुटकारा पा सकोगे।

कठिनाई को सरल बनाना या समझना मानव मन की दृढ़ता और विवेक पर अवलम्बित है। भय और आतंकपूर्ण होते हुए भी परीक्षा के कठिन दिन एकाग्रचित अध्ययन और सतत चेष्टा से आनन्दपूर्ण दिनों में परिणत किए जा सकते हैं।

(106) परीक्षा का भय

संकेत बिंदु—(1) व्यक्ति या व वस्तु का मूल्यांकन (2) योग्यता नापने का माध्यम (3) जीवन यात्रा को सुचारू रूप से चलाना (4) परीक्षा-भय को समाप्त करना (5) परीक्षा और भय का संबंध।

संस्कृत में परीक्षा शब्द की निष्पत्ति इस प्रकार है—परि (उपसर्ग) + ईक्ष् (धातु) + आ (टाप्)। व्युत्पत्ति है—'परित: सर्वत:, ईक्षणं-दर्शनम् एव परीक्षा।' अर्थात् सभी प्रकार से किसी व्यक्ति या वस्तु के अवलोकन अथवा मूल्यांकन को परीक्षा कहते हैं।

मनुष्य शरीर की पाँचों उँगलियाँ समान नहीं हैं, इसी प्रकार गुण, योग्यता और सामर्थ्य की दृष्टि से मानव-मानव में अंतर है। उसके ज्ञान, विवेक और कर्मठता में अंतर है। विश्व के विभिन्न अंगों के संचालन के लिए तदनुरूप योग्यता और सामर्थ्य सम्पन्न महापुरुष चाहिएँ। विश्व-जन को शिक्षित करने के लिए शिक्षा-शास्त्री चाहिएँ। विज्ञान से विश्व को आलोकित करने के लिए वैज्ञानिक चाहिएँ। विश्व-व्यवस्था स्थापनार्थ राजनीतिज्ञ-

कूटनीतिज्ञ चाहिएँ। व्यक्ति-विशेष में कार्य-विशेष के लिए गुण हैं या नहीं, पद की प्रामाणिकता और व्यवस्था का सामर्थ्य है या नहीं, इसकी जानकारी के लिए परीक्षा ही एकमात्र साधन है। दो-एक उदाहरणों द्वारा यह बात स्पष्ट हो जाएगी।

एक कक्षा में पैंतीस विद्यार्थी पढ़ते हैं। उनको शिक्षा देने वाले शिक्षक समान है। सभी को एक ही समय और निश्चित अवधि में शिक्षा मिलती है। किसी को अधिक नहीं, दूसरे की उपेक्षा नहीं। इन पैंतीस विद्यार्थियों में किसने कितनी शिक्षा ग्रहण की है, इसका पता कैसे लगाएँगे? उनकी परीक्षा लेकर।

दूसरी ओर योग्यता-क्रम निर्धारण करने के लिए भी 'परीक्षा' का माध्यम अपनाना पड़ेगा। प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ आदि स्थानों के निर्णय का निर्धारण बिना परीक्षा के असम्भव है। सौ रिक्त पदों की पूर्ति के लिए सहस्रों आवेदन-पत्र आए हैं। उनमें से सौ आवेदन-कर्ताओं का चयन कैसे करेंगे? माथे पर तो किसी की योग्यता, विशेषता अंकित है नहीं। बस, एक ही उपाय है—परीक्षा। पद के अनुकूल उनकी योग्यता, विशेषता, शालीनता, शिष्टता की जाँच करके क्रम निर्धारित करेंगे।

कालिदास कहते हैं *'हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकापि वा।'* (रघुवंश 1/10) अर्थात् सोने की शुद्धि या अशुद्धि अग्नि में ही देखी जाती है।

सम्भवजातक का कहना है—

जवेन वाजिं जानन्ति बलिवद्दं च वाहिए।
दोहेन धेनुं जानन्ति भासमानं च पंडितम्।

वेग से अच्छे घोड़े का पता चलता है। भार ढोने के सामर्थ्य से अच्छे बैल का, दूहने से अच्छी गाय का और भाषण से पंडित का। तुलसीदास जी के विचार में *'धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परिखिअहिं चारि।'* (रामचरित मानस 3/54)

जनसाधारण के जीवन का उद्देश्य है जीवनयात्रा को सुचारु रूप से चलाना। शिक्षा इस उद्देश्य प्राप्ति का निश्चित प्रामाणिक सोपान है। इसलिए वह सीढ़ी-दर-सीढ़ी शिक्षा की 'श्रेणियों' की परीक्षा उत्तीर्ण करता हुआ अपनी योग्यता अर्जित करता है। उस योग्यता के बल पर 'नौकरी' के द्वार खटखटाता है उसके लिखित या मौखिक अथवा दोनों प्रकार की परीक्षा का सामना करते हुए जीवन-जीने का जुगाड़ भिड़ाता है। अतः आज के युग में इन दोनों तत्त्वों को मुख्यतः 'परीक्षा' की परिभाषा में लेना चाहिए।

भय क्या है? वह मानसिक स्थिति जो किसी अनिष्ट या संकट-सूचक संभावना से उत्पन्न होती है और जिसमें प्राणी चिंतित और विकल होने लगता है, भय है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कहना है, 'किसी आती हुई आपदा की भावना या दुःख के कारण के साक्षात्कार से जो एक प्रकार का आवेगपूर्ण अथवा स्तम्भकारक मनोविकार होता है, उसी को भय कहते हैं। (चिंतामणि भाग 1 : 'भय')

परीक्षा-भय का भूत जब परीक्षार्थी पर सवार होता है तो दिन में तारे नजर आते हैं। रातों की नींद हराम हो जाती है। दूरदर्शन के मनोरंजन कार्यक्रमों में दुष्टदर्शन की मनहूस

शक्लें नज़र आती हैं। रात करवटें बदलते बीतती है, दिन घोंटे लगाने में जाता है। सहायक-ग्रंथों को हनुमान चालीसा की तरह रटता है। '*सभय हृदयँ बिनवति जेहि तेही*' करता है।

परीक्षार्थी अपना ध्यान केन्द्रित कर अध्ययन द्वारा परीक्षा के भय को तो पराजित करने की ठानता है, किन्तु परीक्षा का दूसरा भय उसके मन-मस्तिष्क को कचोटता रहता है। यदि कंठस्थ किए प्रश्न नहीं आए तो? परीक्षक ने प्रश्न-शैली में परिवर्तन कर दिया तो? यदि निर्दय प्रश्न-पत्र निर्माता ने क्लिष्ट प्रश्नों के अनेक राक्षसों को उपस्थित कर दिया तो? यदि पाठ्यक्रम से बाहर के प्रश्न पूछ लिए तो? यदि 'ओबजेक्टिव' (वस्तुनिष्ठ) के नाम पर प्रश्नों की संख्या हनुमान् की पूँछ की तरह लम्बी हुई तो?

परीक्षा-भय से मुक्ति परीक्षार्थी की सफलता की कुंजी है। प्रगति-पथ का प्रकाश स्तंभ है। उज्ज्वल भविष्य का उदीप्त सूर्य है। भयमुक्ति के उपाय हैं—(1) एकाग्रचित्त द्वारा नियमित अध्ययन (2) साहसपूर्ण आत्मविश्वास। इन दोनों उपायों से परीक्षा-भय सुषुप्त होगा, यदा-कदा जागृत होकर भयभीत नहीं करेगा। कठिन प्रश्न, दुरूह प्रश्न-शैली और अपठित की समस्या स्वस्थ मन में स्वतः हल हो जाएगी। कलम की नोक पर उनके उत्तर अनायास अवतरित होते जाएंगे।

परीक्षा और भय का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। चोली-दामन का साथ है। बिना भय के परीक्षा का अस्तित्व नहीं और बिना परीक्षा भय का निदान नहीं। महात्मा गाँधी जी का कहना है, 'भयभीत व्यक्ति स्वयं ही डरता हैं, उसको कोई डराता नहीं।' इसलिए भय का सामना निर्भीक होकर साहस से करके सफलता की दिव्य-ज्योति के दर्शन करो।

विद्यालय

(107) मेरा विद्यालय

संकेत बिंदु—(1) विद्यालय का सामान्य परिचय (2) विद्यालय की विशेषताएँ (3) विद्यार्थियों की प्रतिभा निखारना (4) भारत यात्रा और वार्षिकोत्सव (5) विद्यालय में कमियाँ।

मेरे विद्यालय का नाम है राष्ट्रीय विद्या मन्दिर। इसमें छठी से बारहवीं श्रेणी तक पढ़ाई होती है। यह सेण्ट्रल बोर्ड ऑफ सेकेण्डरी एजूकेशन, दिल्ली से सम्बद्ध हैं। इसमें लगभग 550 विद्यार्थी हैं, 20 अध्यापक हैं, दो क्लर्क हैं, 3 चपरासी, 2 माली, 2 सफाई कर्मचारी तथा वाटर-मैन हैं।

मेरे विद्यालय का भवन विशाल और सुन्दर है। श्रेणी कक्षों के अतिरिक्त प्राचार्य तथा क्लर्क रूम हैं। इनके अतिरिक्त एक बड़ा 'टीचर्स रूम' है तथा एक विशाल पुस्तकालय कक्ष भी है। स्वागत कक्ष, संगीत, आलेखन, इंडोरगेम, रैडक्रास, एन.सी.सी. के भी अलग-अलग कक्ष हैं। विद्यालय-भवन के साथ ही एक विस्तृत खेल का मैदान है।

विद्यालय की प्रथम विशेषता है विद्यालय का अनुशासन। विद्यालय का वातावरण अति शान्त है। कोई विद्यार्थी व्यर्थ में घूमता नहीं मिलेगा। कोई बाहरी आदमी अध्ययन के समय कक्षाओं के सामने से नहीं गुजर पाएगा। कोई कक्षा बिना अध्यापक के नहीं होगी। कोई अध्यापक ऐसा नहीं होगा जिसका 'पीरियड' हो और वह श्रेणी में न हो। वातावरण की यह विशिष्टता ही छात्रों को दत्तचित्त होकर अध्ययन की प्रेरणा देती है।

विद्यालय की दूसरी विशेषता है स्वच्छता। स्कूल आरम्भ होने से पूर्व प्रत्येक कमरा साफ होगा। शीशे दरवाजे साफ होंगे। कागज या रोटी का टुकड़ा, फलों या सब्जी के छिलके गैलरी में नहीं मिलेंगे। कूड़ा-करकट डालने के लिए स्थान-स्थान पर लगे 'डस्ट-बिन' रखे हैं। पेशाब-घर तथा शौचालय दुर्गन्ध रहित हैं।

विद्यालय की तीसरी विशेषता है शिक्षण। शिक्षण एक कला है। कलात्मक शिक्षण विद्याध्ययन का सरल उपाय है। औसत विद्यार्थी को भी योग्य बनाने की विशिष्ट शैली है। शिक्षक प्रतिदिन छात्रों का गृह-कार्य देखते हैं। मन्द बुद्धि छात्र-छात्राओं को विद्यालय अवकाश के बाद आधा घण्टा अतिरिक्त समय दिया जाता है। बोर्ड की परीक्षाओं से एक मास पूर्व डेढ़-डेढ़ घण्टे के दो अतिरिक्त पीरियड लगते हैं, जिनमें विद्यार्थी अपनी कमी को दूर करते हैं। यही कारण है कि हमारे विद्यालय का परीक्षा-परिणाम न केवल शत-प्रतिशत रहता है, अपितु 10-12 डिस्टिंकशन भी आती हैं।

विद्यालय की चौथी विशेषता शिक्षणेतर कार्य-कलाप हैं। इनमें वाद्यवृन्द तथा खेल-कूद का विशिष्ट स्थान है। हॉकी, क्रिकेट, फुटबॉल, बालीबाल, कबड्डी, खो-खो, जिमनास्टिक शिक्षा की विशिष्ट व्यवस्था है। अत्याधुनिक खेल सामान तथा अंशकालीन शिक्षक खेल-दक्षता और प्रवीणता के सम्बल हैं। यही कारण है, हमारा विद्यालय नगर के विद्यालयों की प्रतियोगिता और प्रान्तीय प्रतियोगिताओं की अनेक वैजयन्ती (शील्ड) जीतकर लाता है।

हमारे विद्यालय के वाद्यवृन्द का तो जवाब नहीं। 51 छात्र-छात्राओं की 'बैण्डटीम' का बहुरंगी गणवेश, वाद्यों की स्वर लहरी तथा धुनों की कलात्मकता श्रोताओं और दर्शकों को मन्त्र-मुग्ध कर देती है। गणतन्त्र दिवस की परेड में सम्मिलित होने पर हमारे वाद्यवृन्द को सदा प्रथम पुरस्कार प्राप्ति का गौरव मिलता है।

विद्यालय की शनिवार-सभा विद्यार्थी-प्रतिभा के कपाट खोलती है। जीवन और जगत् की विविधता की जानकारी देती है। विद्यार्थियों में छिपी वाक्-शक्ति को उद्घाटित करती है। एक ओर प्रति शनिवार वीडियो फिल्म द्वारा एक विषय-विशेष की जानकारी दी जाती है तो दूसरी ओर विद्यार्थी को कविता, कहानी, चुटकुला सुनाने के लिए प्रेरित किया जाता है। मास के अन्तिम शनिवार को अन्त्याक्षरी प्रतियोगिता, वादविवाद प्रतियोगिता अथवा सामान्य ज्ञान प्रतियोगिताएँ होती हैं। प्रथम, द्वितीय और तृतीय, इन तीन विजेता विद्यार्थियों को पुरस्कार से प्रोत्साहित किया जाता है।

वर्ष में एक बार प्राय: दिसम्बर-अवकाश में 100 विद्यार्थियों को भारत-यात्रा पर ले

जाया जाता है। इसमें विद्यार्थी भारतमाता की विविधता के दर्शन भी करते हैं और अपने सहपाठी की चित्तवृत्ति को और अधिक समझने का अवसर प्राप्त करते हैं।

विद्यार्थियों के प्रोत्साहन का दिन होता है—विद्यालय का वार्षिकोत्सव। इसमें विविध खेलों के श्रेष्ठ खिलाड़ियों, संगीत के वाद्य-यन्त्रों में दक्ष विद्यार्थियों तथा वार्षिक परीक्षा में आए प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय परीक्षार्थियों को पुरस्कार प्रदान किए जाते हैं। इस अवसर पर छात्र रंगारंग कार्यक्रम भी प्रस्तुत करते हैं, जिसमें गीत-संगीत, काव्य-पाठ, एकांकी-अभिनय प्रमुख होते हैं, जिसे देखकर दर्शक भाव-विभोर हो जाते हैं।

विद्यालय में वर्ष में एक बार शिक्षक-अभिभावक-दिवस भी मनाया जाता है। इसमें विद्यार्थियों के माता-पिता या संरक्षक एकत्र होते हैं। अभिभावकों के साथ छात्र भी विद्यालय की कमियों और सुधारों पर खुले मन से विचार करते हैं। उनके विचारों को ध्यान से सुना जाता है और यथासम्भव कार्यान्वित करने की चेष्टा की जाती है।

प्रभु की सृष्टि गुण-दोषमयी है। मेरे विद्यालय में भी लोगों को कुछ कमियाँ दीखती हैं। यहाँ प्रवेश पाना आकाश के तारे तोड़ लाने से कम नहीं। अपवाद छोड़ दें तो सिफारिश न किसी अधिकारी की चलती है, न धन की। योग्यता की दौड़ में जो जीत जाए, वह प्रवेश ले ले। दूसरे, विद्यालय के अनुशासन की कठोरता ने विद्यार्थियों का सैनिकीकरण-सा कर दिया है। परिणामत: विद्यार्थियों की सच्ची शिकायत की भी उपेक्षा होती रहती है। तीसरी ओर, विद्यालय के व्यय इतने अधिक हैं कि मध्यम वर्ग का विद्यार्थी इस पावन मन्दिर में प्रवेश की बात सोच ही नहीं सकता।

(108) विद्यालय में मेरा पहला दिन

संकेत बिंदु—(1) नए विद्यालय में प्रवेश (2) मध्यावकाश से पूर्व का समय (3) हिंदी-अध्यापिका से परिचय (4) अंतिम कालांश की अध्यापिका से बात (5) विभिन्न भाषाओं की पत्र-पत्रिकाएँ।

पिताजी का स्थानान्तरण भूपाल से दिल्ली हुआ था तो समस्त परिवार पिताजी के साथ ही दिल्ली स्थानान्तरित हो गया। पिता जी को सरकारी बंगला प्राप्त था, इसलिए आवास की कोई समस्या उत्पन्न न हुई। ग्रीष्मावकाश समाप्त होने के बाद केन्द्रीय विद्यालय में मुझे प्रवेश भी सहज ही मिल गया।

मैं आत्म-विश्वासपूर्वक कक्षा में प्रविष्ट हुआ और एक खाली डैस्क पर पुस्तकें रखकर प्रार्थना-स्थल की ओर चल पड़ा। मुझे यह तो पता था कि प्रार्थना में पंक्तियाँ कक्षानुसार बनती हैं, पर मेरी कक्षा की कौन-सी पंक्ति है, यह जानकारी मुझे न थी, इसलिए मैं अपनी ही कक्षा के एक छात्र के पीछे-पीछे जाकर पंक्ति में खड़ा हो गया।

प्रार्थना के पश्चात् विद्यार्थी अपनी-अपनी श्रेणियों में गए। मैं भी कक्षा में जाकर अपने

स्थान पर बैठ गया। प्रथम पीरियड शुरू हुआ। अंग्रेजी के अध्यापक आए। 'क्लास स्टैण्ड' हुई, बैठी। अंग्रेजी अध्यापक ने ग्रीष्मावकाश के काम के बारे में जानकारी ली। एक विद्यार्थी को कापियाँ इकट्ठी करने के लिए कहा। जब वह विद्यार्थी मेरे पास आया तो मैंने हाथ हिला दिया। उसने वहीं से कहा, 'सर, यह कापी नहीं दे रहा है।' शिक्षक ने डाँटते हुए पूछा तो मैंने बताया कि 'मैं आज ही विद्यालय में प्रविष्ट हुआ हूँ, इसलिए मुझे काम का पता नहीं था।'

इंग्लिश-सर का गुस्सा झाग की तरह बैठ गया। तब प्यार से पूछा, 'पहले कहाँ पढ़ते थे?' मैंने बताया कि मैं केन्द्रीय विद्यालय, भोपाल का छात्र हूँ। पिताजी की बदली होने के कारण दिल्ली आया हूँ।

इसी प्रकार चार पीरियड समाप्त हुए। अर्धावकाश हुआ। मैंने जान-बूझकर अपनी साथ वाले स्थान पर बैठे छात्र को चाय का निमन्त्रण दे डाला। वह तैयार हो गया। दोनों 'स्कूल कैंटीन' की ओर चले। रास्ते में परिचय हुआ। पता लगा, वह हमारे ही आवास-परिसर में रहता है। उसी से पता चला कि तीन अन्य सहपाठी भी उसी परिसर से आते हैं।

भाग्य की बात, चाय के स्टाल पर वे तीनों भी मिल गए। हम पाँच जनों ने चाय पी। गपशप की। एक-दूसरे के बारे में जानकारी ली। निश्चय किया कि कल से पाँचों स्कूल इकट्ठे आया करेंगे। चाय के दस रुपये मैंने दिए। दस रुपयों में पाँच साथी मिल गए तो मुझे लगा सौदा सस्ता है। बड़ा सुखद रहा मध्यान्तर।

घंटी बजी। कक्षाएँ पुनः आरम्भ हुईं। पहला पीरियड था हिन्दी अध्यापिका का। वे बड़ी काइयाँ थीं। प्रथम दृष्टि में ही उन्होंने मुझे ताड़ लिया। व्यंग्य से पूछा—'कौन हो तुम वसन्त के दूत?' मैं दो क्षण चुप रहा। अध्यापिका को लगा कि यह मूढ भट्टाचार्य कहाँ से टपक पड़ा? उन्होंने फिर प्रश्न दोहराया तो मैंने उत्तर दिया—मैं हूँ—'घन में तिमिर चपला की रेख, तपन में शीतल मन्द बयार।' अध्यापिका की आँखें फटी की फटी रह गईं। वे उठीं और मेरे पास आईं। उन्होंने मेरा सिर वक्ष से लगाया। चुम्बन लिया। आशीष दी। अपनी कुर्सी पर बैठकर उन्होंने अन्य छात्रों को बताया कि आज तुम्हारी कक्षा में एक अत्यन्त गुणी, चतुर, प्रत्युत्पन्नमति और अध्ययनशील विद्यार्थी ने प्रवेश किया है।

कक्षा में प्रायः प्रथम आने वाले एक अन्य चतुर छात्र से न रहा गया। उसे लगा कि कोई उसको चुनौती देने वाला पैदा हो गया है। उसने खड़े होकर अध्यापिका से पूछ लिया 'इसके उत्तर में क्या विशेषता थी?' अध्यापिका ने कहा, 'चावल पकाए जा रहे हों तो पतीली में से दो-चार चावलों को उठाकर देखा जाता है कि पके हैं या नहीं? मैंने वैसे ही मस्ती की मनःस्थिति में 'प्रसाद' की 'कामायनी' की पंक्ति से पूछ लिया था कि तुम कौन हो? इसने कामायनी के इसी पद की शेष पंक्तियों में उत्तर दे दिया। लगता है, इसे कामायनी कण्ठस्थ है। फिर उत्तर भी लाजवाब—'अन्धकार में बिजली और गर्मी की तपन में ठंडी

हवा के समान मैं हूँ।' बस, क्या था, कक्षा पर मेरी विद्वत्ता की छाप पड़ गई। मुझे लगा, विद्यालय में पहले ही दिन का मेरा प्रवेश सफल हो गया।

यथासमय घंटी बजती रही। पीरियड बदलते रहे। शिक्षक आते-जाते रहे। अन्तिम पीरियड आ गया। अध्यापिका आईं। स्थूल शरीर था उनका। टुनटुन की चर्बी भी शायद इन्होंने चुरा ली थी। आँखें ऐसी मोटी और डरावनी कि डाँट मारे तो छात्र-छात्राएँ काँप उठें। सुन्दर इतनी कि रेखा और माधुरी भी लज्जित हो जाएँ। वे आईं। क्लास का 'स्टैंड', 'सिट डाउन' हुआ। उन्होंने पहला प्रश्न किया, 'कौन है वह लड़का जो आज ही कक्षा में आया है ?' आते ही पहला वार मुझ पर। मैं मौन भाव से खड़ा हो गया। क्या नाम है ? कहाँ रहते हो ? माता कहाँ की रहने वाली हैं ? पिता किस पद पर हैं ? आदि-आदि। मैं प्रत्येक प्रश्न का उत्तर अर्ध-मुस्कान से देता रहा। जब पिता का पद सुना तो लगा जैसे भयंकर भूचाल आ गया हो। वे काँप-सी गईं। उनकी वाणी अवरुद्ध हो गई। पसीना छूटने लगा; पर वे जल्दी ही सहज हो गईं और अध्यापन में प्रवृत्त हो गईं। घंटी बजी। वह इस बात का संकेत थी कि अब अपने-अपने घर जाओ।

मैं अपने चारों साथियों से उन स्थूलांगी अध्यापिका की बातें करते विद्यालय के मुख्य द्वार से बाहर निकल रहा था कि उन्हें ही सामने खड़ी पाया। उनका पुनः दर्शन करके मैं कुछ घबरा-सा गया। उन्होंने इशारे से जब मुझे बुलाया तो लगा शेर ने बकरी को पास बुलाया हो। उन्होंने केवल इतना ही कहा, 'अपने पिताजी को मेरा नमस्कार कहना।'

विद्यालय से घर लौटा। मन प्रसन्न था। अपनी प्रतिभा का प्रथम-प्रभाव अध्यापकों और सहपाठियों पर डाल चुका था। पर 'टुनटुन' की 'पिताजी को नमस्ते' मेरे हृदय को कचोट रही थी। सायंकाल पिताजी कार्यालय से लौटे। बातचीत में मेरे प्रथम दिन की कहानी पूछी तो मैंने सोल्लास सुना दी और डरते-डरते अध्यापिका का 'नमस्कार' भी दे दिया। पिताजी हँस पड़े, हँसते ही रहे ! बाद में शान्त हुए तो बताया कि वे मेरे साथ पढ़ती थीं और हम दोनों एक ही मौहल्ले में रहते थे।

(109) विद्यालय का पुस्तकालय

संकेत बिंदु—(1) मानव विकास और प्रगति का साधन (2) पुस्तकालय की भीतरी साज-सज्जा (3) पुस्तकें विषयानुसार और अलग-अलग अलमारियाँ (4) शांत वातावरण और छात्रों के लिए सुविधा (5) विभिन्न भाषाओं की पत्र-पत्रिकाएँ।

पुस्तकालय मानव-जीवन के विकास तथा प्रगति का महत्त्वपूर्ण साधन है। इसमें विभिन्न विषयों पर अनेक श्रेष्ठ लेखकों द्वारा लिखित पुस्तकों का संग्रह होता है। ये पुस्तकें व्यक्ति की ज्ञान पिपासा को शांत करती हैं; अतः प्रत्येक माध्यमिक विद्यालय में पुस्तकालय का होना अनिवार्य है।

हमारे विद्यालय का पुस्तकालय विद्यालय की पहली मंजिल पर एक बड़े हॉल में स्थित है। यहाँ साठ-सत्तर अलमारियों में पुस्तकें रखी हुई हैं। पुस्तकों के अतिरिक्त विद्यालय में अनेक दैनिक, साप्ताहिक और मासिक पत्र-पत्रिकाएँ भी आती हैं। पुस्तकालय के बीचों-बीच तीन बड़ी मेजें हैं। एक मेज हिन्दी-अंग्रेजी दैनिक समाचार-पत्रों के लिए है। दूसरी, साप्ताहिक, पाक्षिक तथा मासिक पत्र-पत्रिकाओं के लिए है और तीसरी शिक्षकों के लिए है ताकि शिक्षकगण संदर्भग्रंथों का अध्ययन कर सकें। मेज के तीन ओर बैंच तथा कुर्सियाँ रखी हैं, जिन पर बैठकर विद्यार्थी तथा अध्यापक सरलता से पुस्तकें तथा पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ सकते हैं।

पुस्तकालय की बड़ी मेज के समीप एक साधारण मेज रखी है। यह पुस्तकालयाध्यक्ष की मेज है। मेज के ओर एक कुर्सी रखी है। यह पुस्तकालयाध्यक्ष के बैठने का स्थान है। कुर्सी के समीप एक रैक रखा है, जिसमें कुछ रजिस्टर रखे हैं। मेज के दाईं-बाईं ओर कुर्सियाँ रखीं हैं, जहाँ अध्यापक बैठ सकते हैं।

विद्यालय की दीवारों पर सुभाषित और सूक्तियाँ लिखी हुई हैं, जो अनजाने पाठकों के हृदयों को गुद्‌गुदाती हैं, श्रेष्ठ आचरण की प्रेरणा देती हैं।

अलमारियों में पुस्तकें विषय और विधा के अनुसार रखी हुई हैं। प्राय: प्रत्येक विषय की पृथक् अलमारी है। अलमारियों के कपाट शीशे के हैं। उन पर विषय या विधा का नाम अंकित है। जैसे—हिन्दी और अंग्रेजी भाषा की पुस्तकें, उपन्यास-कहानी, नाटक-एकांकी, कविता, निबंध आदि विधाओं में विभक्त हैं। इनके अतिरिक्त अन्य पुस्तकें भौतिकी, रसायन, जीव-विज्ञान, भूगर्भशास्त्र, अर्थशास्त्र, भारतीय अर्थशास्त्र, वाणिज्य सिद्धांत, बुक कीपिंग, ऐडवांस एकाउन्टेंसी, नागरिक-शास्त्र, भारतीय नागरिक-शास्त्र, गणित, ज्योमैट्री टिग्नोमैट्री आदि विषयों में विभक्त हैं।

प्रत्येक पुस्तक पर विषय, क्रम-संख्या तथा पुस्तकालय की पुस्तक संख्या अंकित हैं। प्रत्येक पुस्तक में एक कार्ड रखा है, जिसमें पुस्तक देने तथा वापिस लौटाने की तिथि लिखी जाती है। विलम्ब से पुस्तक लौटाने वाले को अर्थ-दण्ड देना पड़ता है।

एक विशिष्ट अलमारी कोश ग्रंथों की है। इसमें हिन्दी-हिन्दी, अंग्रेजी-हिन्दी, हिन्दी अंग्रेजी, उर्दू-हिन्दी के विभिन्न कोश हैं। साथ ही अनेक प्रकार के विज्ञान-कोश, मुहावरे-लोकोक्ति कोश, सूक्ति-कोश, साहित्यिक कोश रखे हैं। विशिष्ट अध्ययन के लिए अंग्रेजी तथा हिन्दी, दोनों भाषाओं में विश्व-कोश भी रखे हुए हैं।

तीन-चार अलमारियों के ऊपर रखी हैं दैनिक अखबारों की रद्दी तथा साप्ताहिक-मासिक पत्र-पत्रिकाओं के पिछले अंक। इन पर प्राय: धूल पड़ी रहती है।

हमारे विद्यालय के पुस्तकालय का वातावरण बड़ा शान्त है। पुस्तकालय में प्रवेश करने पर विद्यार्थी का हाथ तुरन्त किसी पत्र-पत्रिका अथवा पुस्तक पर उसी प्रकार जाता है, जैसे किसी मन्दिर में प्रवेश करने पर श्रद्धा से विभोर मानव देव-प्रतिमा के सम्मुख नतमस्तक हो जाता है।

सप्ताह में एक दिन हमारी कक्षा का एक पीरियड पुस्तकालय का भी होता है। इस पीरियड में हम पिछले सप्ताह ली हुई पुस्तक लौटाते हैं और कोई नई पुस्तकें लेते हैं। पुस्तकालय से हमें विभिन्न विषयों और विधाओं की पुस्तकें पढ़ने का अवसर मिलता है। जिसे हमारे ज्ञान में वृद्धि होती है।

हिन्दी के दैनिक समाचार-पत्रों में दैनिक जागरण, नवभारत टाइम्स, हिन्दुस्तान, जनसत्ता, राष्ट्रीय सहारा, पंजाब केसरी आदि आते हैं। अंग्रेजी के दैनिकों में हिन्दुस्तान टाइम्स, टाइम्स ऑफ इंडिया, इंडियन एक्सप्रेस, हिन्दू तथा पेट्रियोएट आते हैं। हिन्दी साप्ताहिकों में पाँचजन्य और इंडिया टुडे आते हैं, तो अंग्रेजी साप्ताहिकों में 'इंडिया टुडे' आर्गनाइजर का प्रमुख स्थान है। हिन्दी मासिकों में कादम्बिनी प्रमुख है। बच्चों की चार प्रमुख पत्रिकाएँ—पराग, नन्दन, देवपुत्र और बालभारती जैसी लोकप्रिय पत्रिकाएँ भी हमारे विद्यालय का पुस्तकालय मँगाता है। इनके अतिरिक्त खेलकूद तथा स्वास्थ्य संबंधी पत्रिकाएँ भी हमारे विद्यालय पुस्तकालय को सुशोभित करती हैं।

हमारे विद्यालय का पुस्तकालय स्वच्छ और सुन्दर है, पुस्तकों से समृद्ध है, पत्र-पत्रिकाओं से भरपूर है, अध्ययनशील वातावरण से सुगन्धित है। यह ज्ञान-विज्ञान का प्रसारक है और है मानसिक क्षुधा-शान्ति का साधन।

(110) विद्यालय में अनुशासन की आवश्यकता

संकेत बिंदु—(1) सुचारू रूप से संचालन अनुशासन पर (2) प्रशासनिक दृष्टि से (3) अध्यापकों का दायित्व (4) छात्रों का सहयोग (5) माता-पिता का दायित्व।

विद्यालयों में अनुशासन की उतनी ही आवश्यकता है, जितनी खेल और सेना में। सेना की थोड़ी-सी अनुशासनहीनता से राष्ट्र परतन्त्र हो सकता है और खिलाड़ी की अनुशासनहीनता से खेल में पराजय अवश्यम्भावी है, उसी प्रकार विद्यालयों की अनुशासनहीनता से विद्यालय का वातावरण बिगड़ता है छात्र अपने मानसिक असन्तोष को उच्छृंखल व्यवहार के द्वारा प्रदर्शित करेंगे। फलत: विद्यालय-भवन की तोड़-फोड़, सहपाठियों से अपशब्द प्रयोग, लड़ाई-झगड़ा एवं अध्यापकों से दुर्व्यवहार करेंगे। विद्यालय औपचारिक शिक्षा प्रदान करने का प्रमुख साधन है, यह भावना समाप्त हो जाएगी।

विद्यालयों का सुचारु रूप से संचालन अनुशासन पर ही निर्भर करता है। 'सुचारु रूप से संचालन' का तात्पर्य विद्यालय में ऐसी स्थिति बनाए रखना है, जिससे शिक्षा तथा शिक्षणेतर अनेकानेक कार्य-कलाप सुचारु रूप से चलते रहें। इसके लिए व्यवस्थापकों, अध्यापकों तथा विद्यार्थियों, सभी के सहयोग की आवश्यकता है। जेम्स रॉस ने लिखा है कि 'बहुत अच्छी व्यवस्था बुरा अनुशासन भी हो सकती है, परन्तु सच्चा अनुशासन सर्वदा अपने साथ व्यवस्था बनाए रखना है।'

प्रधानाध्यापक जो कि प्रशासनिक दृष्टि से विद्यालय की व्यवस्था के लिए उत्तरदायी होता है, की प्रशासनिक क्षमता, योग्यता, कार्य-दक्षता तथा व्यवहार-कुशलता पर ही विद्यालय के अनुशासन की प्राचीर खड़ी रह सकती है। वह आन्तरिक और बाह्य संघर्ष से विरत रहकर ही प्रशासनिक क्षमता और कुशलता उत्पन्न कर सकता है।

प्रशासनिक व्यवस्था सुन्दर होगी तो विद्यालय ठीक समय पर लगेगा, प्रार्थना में सभी विद्यार्थी और अध्यापक उपस्थित रहेंगे, पीरियड ठीक समय पर बजेंगे, अध्यापक अपने पीरियड में कक्षाओं में अध्यापन-कार्य करेंगे, न विद्यार्थी इधर-उधर घूमता मिलेगा, न कक्षाओं से बाहर अध्यापक। विद्यालय में 'पिन ड्राप साइलेंस' (पूर्णशान्ति) होगी। पढ़ने और पढ़ाने वाले, दोनों को आनन्द आएगा। यह आनन्द तभी प्राप्त होगा जब विद्यालय में अनुशासन होगा।

विद्यालय के अनुशासन की व्यवस्था का दूसरा दायित्व है अध्यापकों पर। अध्यापक राष्ट्र के संस्कृति रूपी उद्यान का चतुर माली है। वह छात्र के संस्कार की जड़ों में खाद देता है। अपने श्रम से सींच-सींचकर उन्हें महाप्राण बनाता है। इसके विपरीत यदि अध्यापक स्वयं संस्कार-रहित रहे, आचरण-हीनता प्रदर्शित करे, लोभ-लालचवश विद्यार्थियों से दुर्व्यवहार करे, तो व्यवस्था के प्रति विद्रोह उत्पन्न होगा, विद्यालय में अशान्ति होगी, पढ़ाई-लिखाई दिखावा मात्र होगी, ट्यूशनों की हुँडी भुनाई जाएगी, परीक्षा में पक्षपातपूर्ण अंक प्रदान किए जाएँगे।

विद्यालय में अनुशासन की तीसरी और मुख्य कड़ी है—विद्यार्थी। विद्यार्थी सहपाठियों की चुगली करके, उनकी वस्तुएँ चुराकर उनसे अपशब्द कहकर, मारपीट करके, गुरुजनों की आज्ञा का उल्लंघन करके, बिना कारण पीरियड छोड़ कर, गृहकार्य न करके, गुरुजनों के पीछे उनकी हँसी उड़ाकर, उनसे कुतर्क करके तथा परीक्षा में नकल करके विद्यालय के अनुशासन को भंग कर सकता है। अनुशासन आचरण के आन्तरिक स्रोत को स्पर्श करता है, विद्यार्थी के आवेगों व शक्तियों को विधानों के अधीन रखकर उच्छृंखलता को व्यवस्थित करता है। आन्तरिक दृढ़ता आ जाने पर विद्यार्थी का बाह्य आचरण भी स्वत: शुद्ध हो जाएगा। विद्यार्थी अनुशासन-प्रेमी बन जाएगा।

दुर्भाग्य से विद्यालयों की सुव्यवस्था को आज का राजनीतिज्ञ पसन्द ही नहीं करता। विपक्षी दल सत्ता-पक्ष को नीचा दिखाने के लिए विद्यार्थी-वर्ग का उपयोग करता है। परिणामस्वरूप नारेबाजी, विद्यालय की तोड़-फोड़, गुरुजनों के प्रति अनास्था का जन्म होता है। विद्यालय शिक्षा के केन्द्र न रहकर राजनीति के अखाड़े बन जाते हैं, जहाँ हड़ताल और विध्वंस को प्रोत्साहन मिलता है।

विद्यालय की सुचारु व्यवस्था में माता-पिता का दायित्व भी कम नहीं। विद्यार्थी को नियमित और समय पर स्वच्छ गणवेश और स्वस्थ मन से विद्यालय भेजना माता-पिता का कर्तव्य है। विद्यार्थी के आचरण पर तीखी नज़र रखना, विद्यार्थी में अनुशासन की भावना जाग्रत करेगा।

विद्यालयों में विद्यार्थी ठीक ढंग से अध्ययन कर पाएँ, एकाग्रचित्त हो शिक्षा-अर्जन कर सकें, उनमें संस्कार और सुरुचि के अंकुर प्रस्फुटित होकर पुष्पित और पल्लवित हो सकें तथा उनके शरीर और आत्मा का सौन्दर्य विकसित हो सके, इसके लिए विद्यालयों में अनुशासन की नितान्त आवश्यकता है।

प्रकृति स्वयमपि अनुशासन-बद्ध है। सूर्य-चन्द्र का उदय और अस्त, षड्ऋतु-परिवर्तन नियमबद्ध हैं। प्रकृति का अनुशासन संसार को जीवन दे रहा है। यदि प्रकृति अनुशासनहीनता प्रदर्शित करे, तो प्रलय हो जाए। उसी प्रकार ज्ञान-दान के स्रोत संस्कृति और सभ्यता के स्रोत ये विद्यालय अनुशासनहीन हो जाएँगे, तो विद्यार्थी का विकास अवरुद्ध हो जाएगा, भविष्य अन्धकारमय हो जाएगा और देश पतन के गर्त में गिर पड़ेगा।

(111) विद्यालय का वार्षिकोत्सव

संकेत बिंदु—(1) उन्नति और प्रगति का परिचायक (2) उत्सव की विभिन्न स्तरों पर तैयारी (3) उत्सव प्रारम्भ और मुख्य अतिथि का स्वागत (4) शारीरिक व्यायाम और नाटक प्रदर्शन (5) पुरस्कार वितरण समारोह।

सामाजिक जीवन में जो स्थान धार्मिक पर्वों का है, राष्ट्र के जीवन में स्वतन्त्रता दिवस, गणतन्त्र-दिवस, बाल-दिवस तथा गाँधी-दिवस का है, वही स्थान विद्यालय-जीवन में उसके वार्षिकोत्सव का है।

विद्यालय का वार्षिकोत्सव विद्यालय की उन्नति और प्रगति का परिचायक है। विद्यार्थी और अध्यापकों, दोनों के लिए यह हर्ष और उल्लास का पर्व है। विद्यार्थियों की प्रतिभा, योग्यता और कार्यकुशलता के मूल्यांकन का दिन है। योग्य और प्रतिभावान् विद्यार्थियों को पुरस्कृत और सम्मानित करने का दिन है। अपने श्रेष्ठ कार्यक्रम और प्रदर्शन द्वारा जनता का दिल जीतने का सु-अवसर है। इसलिए सभी शिक्षण संस्थाएँ चाहे वे विद्यालय हों या महाविद्यालय अपना वार्षिकोत्सव धूम-धाम से मनाती हैं।

वार्षिकोत्सव के लिए दिन का निश्चय भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से किया जाता है। कुछ संस्थाएं उस दिन अपना वार्षिकोत्सव मानती हैं, जिस दिन उनकी स्थापना हुई थी, तो कुछ संस्थाएँ किसी त्यौहार या पर्व के अवसर पर वार्षिकोत्सव आयोजन करती हैं। हमारे विद्यालय का वार्षिकोत्सव प्रतिवर्ष वसन्त-पंचमी के दिन मनाया जाता है।

उत्सव की तैयारी प्राय: वसन्त के एक मास पूर्व शुरू हो जाती है। विभिन्न समितियाँ गठित करके कार्य को विभाजित किया जाता है। जैसे—व्यवस्था कमेटी, पांडाल व्यवस्था समिति, प्रदर्शन कमेटी, खेल प्रतियोगिता कमेटी, बौद्धिक प्रतियोगिता कमेटी, स्वागत समिति आदि।

स्कूल समय में खेल मैदान में कहीं शारीरिक व्यायाम का सामूहिक अभ्यास हो रहा है तो कहीं लेजियम, कहीं डम्बल और बैंड के स्वर में एकरूपता लाने का प्रयत्न हो रहा

है; कहीं नाटक की तैयारी हो रही है, तो कहीं कवि-दरबार की। इस भाँति स्कूल का हर विद्यार्थी उत्सव की तैयारी में संलग्न रहता है।

वसन्त-पंचमी का दिन आया। उत्सव सायं चार बजे होना है और स्कूल के मैदान में चहल-पहल प्रातः से ही आरम्भ हो गई है। कहीं शामियाना ताना जा रहा है, कहीं नाटक के लिए मंच बनाया जा रहा है, कहीं दरियाँ बिछायी जा रही हैं।

तीन बजे से ही आमन्त्रित व्यक्तियों का आगमन आरम्भ हो गया है। प्रत्येक मेहमान के पास प्रवेश-पत्र है। वह अपने प्रवेश-पत्र में अंकित संख्या के अनुसार अपने स्थान पर बैठ जाता है। पंडाल में अध्यक्ष महोदय को आसन तक पहुँचाने के लिए बीचों-बीच एक मार्ग छोड़ा हुआ है। एक ओर मान्य अतिथि बैठे हैं, दूसरी ओर उत्सव में भाग लेने वाले विद्यार्थी पंक्तिबद्ध स्कूल-गणवेश में खड़े हैं। मार्ग पर लाल बजरी बिछी हुई बड़ी सुन्दर लग रही है। मार्ग के दोनों ओर माननीय अध्यक्ष के स्वागतार्थ एन.सी.सी. के छात्र खड़े हैं, जिनके हाथों में नकली बन्दूकें हैं।

ठीक चार बजे वार्षिकोत्सव के मनोनीत अध्यक्ष दिल्ली के उप-राज्यपाल महोदय पधारे। एन.सी.सी. बैंड की टीम ने उनका स्वागत किया। स्कूल के व्यवस्थापक और प्रधानाध्यापक महोदय ने अध्यक्ष की अगवानी की। अध्यक्ष की कुर्सी के साथ तीन और कुर्सियाँ बिछी हुई थीं—एक पर स्कूल के प्रबन्धक महोदय बैठे तथा दूसरी पर प्राचार्य जी तथा तीसरी पर अभिभावक संघ के अध्यक्ष। सर्वप्रथम प्रबन्धक महोदय ने अध्यक्ष जी का परिचय कराते हुए स्कूल के विद्यार्थियों और अध्यापकों की ओर से पुष्पमाला से उनका स्वागत किया।

विद्यार्थियों ने शारीरिक व्यायाम का प्रदर्शन किया। स्कूल के सौ विद्यार्थियों ने बैंड के साथ शारीरिक व्यायाम का प्रदर्शन किया। डम्बल, लेजियम और लाठी का प्रदर्शन तथा राष्ट्रीय छात्र-सैन्य दल की (एन.सी.सी.) टुकड़ी का पथ-संचलन देखते ही बनता था।

प्रदर्शन का अन्तिम कार्यक्रम है—नाटक और कवि-दरबार। श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' द्वारा लिखित 'स्वर्ग की झलक' नाटक का अभिनय आरम्भ हुआ। पात्रों की वेष-भूषा और मंच की सजावट देखते ही बनती है। एक दृश्य की समाप्ति और दूसरे दृश्य के आरम्भ के मध्य कवि-दरबार का आयोजन किया गया है। कविता पढ़ने वाले छात्रों की वेश-भूषा बिल्कुल उन्हीं कवियों जैसी है, जिनकी कविता वे पढ़ रहे हैं। सन्त कबीर मधुर वाणी में 'माया महा ठगनी हम जानी' सुनाते हैं, तो कवि शिरोमणि सूरदास आँखें बन्द किए तम्बूरा हाथ में लेकर बैठे हैं। उनके सामने एक बालक भगवान् कृष्ण बना बैठा है। इस प्रकार नाटक और कवि-दरबार का सम्मिलित कार्यक्रम तालियों की गड़गड़ाहट के साथ सम्पन्न हुआ।

तदनन्तर शारीरिक प्रदर्शनों में भाग लेने वाले सभी विद्यार्थी अतिथियों के सामने वाले मैदान में आकर शांतिपूर्वक बैठ गए। उसके बाद प्रधानाध्यापक ने विद्यालय की गत वर्ष की रिपोर्ट प्रस्तुत की। तत्पश्चात् पारितोषिक-वितरण आरम्भ हुआ। इसमें व्यक्तिगत खेलों

अन्त्याक्षरी, संगीत, कविता-पाठ तथा वार्षिक परीक्षा में प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय स्थान प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को पुरस्कृत किया गया। इसके अतिरिक्त सामूहिक खेल (हॉकी, फुटबाल आदि) तथा एकांकी प्रतियोगिता में प्रथम, द्वितीय आने वाली टीमें भी पुरस्कृत की गईं। पुरस्कार-वितरण समाप्त हुआ।

उसके बाद अध्यक्ष महोदय ने संक्षिप्त भाषण में विद्यार्थियों को परिश्रमपूर्वक पढ़ने-लिखने और शारीरिक-शिक्षण वाले कार्यक्रमों में भाग लेने की सलाह देते हुए अनुशासन का महत्त्व भी समझाया।

सबसे अन्त में प्राचार्य महोदय ने अध्यक्ष महोदय का और आमंत्रितों का धन्यवाद करते हुए कार्यक्रम समाप्ति की घोषणा की।

(112) विद्यालय में मेरा अन्तिम वर्ष कैसे बीता

संकेत बिंदु—(1) विद्यालय का अंतिम वर्ष (2) कार्य के प्रति लगन (3) अध्यापकों का सहयोग न मिलना (4) परीक्षा फॉर्म भरा जाना (5) विदाई समारोह का आयोजन।

विद्यालय का अन्तिम वर्ष अर्थात् प्रमाण-पत्र प्राप्ति के लिए अध्ययन का आखिरी साल। वर्ष का अर्थ 12 मास या 365 दिन होते हैं, किन्तु स्कूल का अन्तिम वर्ष 1 अप्रैल से 30 अप्रैल तक तथा 1 जुलाई से 31 जनवरी तक की अष्ट-मासिका अवधि में सीमित होता है। अष्ट-मासिका भी रक्षाबन्धन, दशहरा, दीपावली, ईद, बापू-जन्म-दिवस, बाल-दिवस, अध्यापक-दिवस, स्वतन्त्रता-दिवस, गणतन्त्र-दिवस, मासान्त-दिवस, सुरक्षित अवकाश, ऐच्छिक अवकाश, रविवारीय अवकाश, शरत्कालीन अवकाश एवं शीतकालीन अवकाश दिवसों को कम कर दें, तो इस अन्तिम वर्ष की अवधि पंचमासिका ही रह जाती है।

दसवीं की पढ़ाई, पाँच विषयों के विस्तृत पाठ्यक्रम, गधे के बोझ के समान पुस्तकों के भार और परीक्षा रूपी भूत के अज्ञात भय से युक्त यह अन्तिम वर्ष कैसे कटा? सच बताऊँ तो हँस पड़ोगे—

दो लड़कपन में बीत गए, दो अध्ययन के उन्माद में,
बचा एक मास बुढ़ापा
दिन को लगाते घोटे
रातों को जागते बीत गए।

मैं पढ़ाई की दृष्टि से न फिसड्डी हूँ और न प्रथम श्रेणी का छात्र। दैनिक स्कूल-कार्य करना, पाठ कंठस्थ करना, प्रश्नों को हल करना, मेरा स्वभाव है। 'लागी लगन छूटत नहीं, जीभ चोंच जरिए जाए'...मेरा यह स्वभाव इस अन्तिम वर्ष में भी यथावत् बना रहा, किन्तु विद्यालय व्यवस्था ने मेरे इस क्रम में विघ्न डालने में कोई कसर नहीं छोड़ी। 15 अगस्त

की तैयारी में लालकिले की दौड़, 26 जनवरी की तैयारी में नेशनल स्टेडियम की परेड, स्कूल वार्षिकोत्सव में पथ-संचलन-पूर्वाभ्यास, मेरे अध्ययन में ऐसे विघ्न डालते थे, मानों राक्षसगण ऋषियों के यज्ञ को विध्वंस कर रहे हों। मेरे लाख अनुनय-विनय करने पर भी मेरे अध्यापकों ने मुझ पर दया नहीं की।

न करें दया ? प्लाट्स का कथन है, 'संकट के समय धीरज धारण करना ही मानों आधी लड़ाई जीत लेना है।' धैर्य और परिश्रम का संयोग सफलता को चेरी बना देता है। ब्राह्म मुहूर्त में उठकर पाठ कंठस्थ करना शुरू कर दिया और 'गृहकार्य' के लिए सायंकालीन खेलों से विदाई ले ली। दिन का विश्राम कम नहीं किया, मन की शान्ति को भंग नहीं होने दिया।

प्रथम-सत्र बीता, अक्तूबर में पढ़ाई का जोर आया। हल्की-हल्की सुहावनी ठंड में पढ़ने का आनन्द द्विगुणित हुआ। अध्यापकों का उत्साह ठंडा होता चला गया। विद्यार्थी का हृदय पढ़ने को उत्सुक और अध्यापक अध्यापन से उदासीन। एक-एक पाठ को चींटी की चाल से पढ़ाते तो पाठ की प्रश्नावली को तूफान मेल की चाल से करवाते। कुछ भी पल्ले नहीं पड़ता। दिसम्बर आ गया, किन्तु पाठ्यक्रम समाप्त नहीं हुआ। जो पढ़ाया, घास काटी गई। कई अध्यापक तो कहते, 'इस सवाल का जवाब कुंजी में पढ़ लेना, इस प्रयोग की विधि 'गाइड' में देख लेना।'

मैं हताश और निराश। जो पढ़ाया, वह समझ में आया नहीं, जहाँ समझने की चेष्टा की, वहाँ अपवाद स्वरूप दो-चार बार को छोड़कर मिलीं शिक्षक की झिड़कियाँ। विद्यालय विद्या का मन्दिर लगने की बजाए, विद्या की मदिरा लगने लगा। कहावत सही सिद्ध हुई, 'जहाँ शैतान स्वयं नहीं पहुँच सकता, वहाँ मदिरा को भेज देता हैं।'

परीक्षा के लिए आवेदन-पत्र भरने से पूर्व 'टेस्ट' हुए। आधी कक्षा अनुत्तीर्ण। अंग्रेजी में मैं लुढ़क गया था। प्रिंसिपल साहब ने आकर चेतावनी दे दी, 'जो बच्चे टेस्ट में फेल हो गए हैं, उनका फॉर्म नहीं भरा जाएगा।' मुझे दिन में तारे नज़र आने लगे। एक वर्ष की बरबादी। मन सहम उठा, आँखों से अश्रु प्रकट हो गए। साथियों ने प्रिंसिपल साहब को मेरे रोने की बात बता दी। प्रिसिपल साहब गजेटेड ऑफिसरी के रौब में थे। बोले, 'फेल होने पर रोओगे नहीं, तो हँसोगे। सारे साल आवारागर्दी और अब रोना। तुम्हारी तो किस्मत में रोना ही लिखा है।'

दो-चार दिन बाद अंग्रेजी और गणित के अध्यापकों ने आश्वासन दिया कि फॉर्म सबके भरे जाएँगे। अतिरिक्त कक्षा लगाकर तुम्हारी कमजोरी पूरी की जाएगी। जनवरी मास में तुम्हें ठोक-पीट कर वैद्यराज बनाया जाएगा। मैं खुश हुआ। एक वर्ष की बरबदी रुकी। ऊपर से गुरुजनों द्वारा वैद्यराज बनाने का आश्वासन।

दो-चार दिन बीते। कक्षा में घोषणा हुई कि 'जो विद्यार्थी अंग्रेजी और गणित की एक्सट्रा क्लास अटेण्ड करना चाहते हैं, वे पाँच-पाँच सौ रुपये शीघ्र जमा करवा दें।'

अध्यापकों की दया, कृपा, करुणा, सहानुभूति का प्रसाद आर्थिक दण्ड। विवशता अभिशाप है, असहाय, दुर्बल, निर्बल का उपहास है। मरता क्या न करता? अतिरिक्त कक्षाओं का लाभ उठाया। यहाँ अध्यापकगण जरा प्रेम से पढ़ाते-समझाते थे। कठिनाई का स्नेहपूर्वक निवारण करते थे।

1 फरवरी आई। अध्ययन-अवकाश मिला। विद्यालय से विदाई ली। विदाई-समारोह हुआ। अध्यापकों ने चरित्र-निर्माण, देशभक्ति, राष्ट्रभक्ति के और न जाने क्या-क्या उपदेश दिए। आश्वासन दिया कि कोई बच्चा जब चाहे विद्यालय आकर अपने अध्यापक से समझ में न आने वाला प्रश्न समझ सकता है। मुझे आश्वासन में प्रवंचना लक्षित हुई।

(113) अध्यापक मेरा आदर्श है/ अध्यापक और आदर्श छात्र का आदर्श उसका अध्यापक/विद्यार्थी, विद्यालय और अध्यापक

संकेत बिंदु—(1) विद्यालय की भूमिका (2) आदर्श अध्यापक के गुण (3) प्राचीनकाल के आदर्श गुरु (4) मेरे आदर्श अध्यापक (5) उपसंहार।

ज्ञान और गुण, बुद्धि और विवेक, शिक्षा और अध्ययन, चरित्र और आदर्श की ही सम्मिलित राशि एक मनुष्य को मानवता के सोपान तक ले जाने में सहायक होती है। छात्र ये सभी गुण प्राप्त करने के लिए, अपने जीवन को आदर्शमय बनाने के लिए और अपने भविष्य को सुन्दर, सुखद और गरिमापूर्ण बनाने के लिए विद्यालय की शरण में जाकर विद्याध्ययन करता है ताकि वह जीवन में सदा सफलता की सीढ़ियाँ चढ़ने के योग्य बन सके। हमारे समाज शास्त्रियों ने बाल्यवस्था और किशोरावस्था इस ज्ञान अर्जन के लिए निर्धारित की है; क्योंकि व्यक्ति संसार में आकर अपने कर्त्तव्य का बोध करता हुआ सबसे पहले संसार के योग्य बने। अध्यापक द्वारा दी गयी शिक्षा ही छात्र को सदा योग्य बनाती है जिससे व्यक्ति एक सफल गृहस्थ, एक सम्पूर्ण पिता, एक अच्छा नागरिक और आदर्शवादी राष्ट्र निर्माता बने। प्रारम्भ में विद्यार्थी जीवन ही परिश्रम, लगन और एकनिष्ठ तपस्या साधना का जीवन होता है।

'एक साधे सब सधे, सब साधे सध जाये' की उक्तिपूर्ण तथा आदर्श के लिए हीं चरितार्थ होती है। ज्ञानियों ने तो यहाँ तक कह दिया है कि—सुखार्थी चेत् त्यज्ञेत् विद्या, विद्यार्थी चेत् त्यज्ञेत् सुखम अर्थात् विद्यार्थी जीवन में सुख चाहने वाला विद्या को त्याग दें और विद्या चाहने वाला सुख को त्याग दे। आदर्श अध्यापक जो विद्यार्थी का पूर्ण ध्यान रखे और विद्यार्थी को उसका पाठ्यक्रम तैयार कराता रहे, उसका यह क्रम एक आदर्श हो जाया करता है। अध्यापन कराना ही अध्यापक का मुख्य कार्य है। दूसरा क्रम यह है कि अध्यापक छात्र के अध्ययन पर तो ध्यान रखता ही रहे, साथ ही वह छात्र की स्वच्छता,

अनुशासन पर भी ध्यान रखे। आदर्श अध्यापक ही छात्र को प्रत्येक अच्छी बुरी आदतों, बुरी संगति से दूर रखने का भी प्रयास करें।

जो अध्यापक आदर्शवादी होगा वह अपने प्रत्येक बात के क्रियाकलाप पर ध्यान देगा और पढ़ाने और छात्र के मनोरंजन व खेल के साथ-साथ समय-समय पर टी.वी. देखने का भी क्रमानुसार ज्ञान कराता रहे। छात्र सत्य के साथ कितना झूठ बोलता है, इसका आभास भी आदर्श अध्यापक को होना अनिवार्य है।

अपने माता-पिता, अभिभावक के बाद प्रत्येक छात्र का आदर्श उसका अध्यापक ही होता है। प्राचीन काल में अध्यापक को गुरु कहा जाता था और विद्यालय के स्थान पर गुरुकुल हुआ करते थे, जहाँ छात्रों को शिक्षा प्रदान की जाती थी। चाहे राम हों या कृष्ण, नानक हो या बुद्ध या कोई अन्य महान् आत्माएँ, इन सभी ने अपने गुरुओं से शिक्षाएँ प्राप्त कर एक आदर्श स्थापित किया। कभी-कभी तो शिष्य गुरु से भी आगे निकल जाया करता है जिसका मुख्य कारण केवल अध्यापक का आदर्श होता है। इतिहास बताता है कि गुरु गोरखनाथ के गुरु मच्छेन्द्रनाथ थे, लेकिन गुरु मच्छेन्द्रनाथ से गोरखनाथ काफी आगे निकल गये थे। इसी सन्दर्भ में गोरखनाथ के शिष्य बाबा भैरव थे, जिन्होंने अपने गुरु से भी आगे बढ़कर माँ दुर्गा की परीक्षा ली थी और अन्त में माँ ने भैरों का वध कर भैरों को अमरता प्रदान की थी। इस घटना से यह सिद्ध होता है कि विद्यार्थी या शिष्य को गुरु या अध्यापक का आदर्श ही संसार में कुछ करने की प्रेरणा देता है।

भारतीय आदर्श विद्यालय में एक अध्यापक विद्याप्रकाश थे, जैसा नाम वैसा काम भी था उनका। उनकी कक्षा के 32 विद्यार्थी प्रथम द्वितीय और तृतीय श्रेणी में राज्य में अग्रणी रहे और एक विद्यार्थी तो पूरे क्षेत्र में सबसे आगे रहा। विद्याप्रकाश के एक छात्र जिसने बारहवीं कक्षा की परीक्षा दी उनका परीक्षा-परिणाम देखकर पूरा विद्यालय स्तब्ध रह गया, क्योंकि यह छात्र पूरे देश में प्रथम छात्र घोषित किया गया। उस छात्र ने गणित विषय में 99 अंक, अर्थशास्त्र में 90 प्रतिशत अंक प्राप्त कर अपना, अपने अध्यापक का, अपने विद्यालय का और अपने परिवार का नाम ऊँचा किया। इस छात्र ने बताया कि मैंने विद्याप्रकाश जो मेरे अध्यापक हैं उन्हें अपना आदर्श माना और मैंने मेहनत की। मुझे मेरी मेहनत का फल भगवान् ने दिया।

विद्या प्रकाश के बारे में सभी छात्रों का एक मत से यही कहना था कि वैसे तो विद्यालय के सभी अध्यापक अपनी जगह सही हैं, मगर जो व्यक्तित्व हमारे आदर्श अध्यापक विद्या-प्रकाश जी का है, वह अन्य किसी का नहीं क्योंकि विद्याप्रकाश जी ने हम सभी को अपने पुत्रों के समान प्रत्येक अच्छी बुरी-बात का ज्ञान कराया, कभी-कभी हमारे साथ हीं बैठकर खाना भी खा लेते थे, हमारे साथ खेलते भी थे, हमें घुमाने के लिये पिकनिक पर भी ले जाते थे, लेकिन विद्याप्रकाश जी पढ़ाई के साथ कोई रियायत नहीं करते थे। विद्याप्रकाश जी का कहना था कि यदि मेरी कक्षा का छात्र उन्नति करता है तो मुझे इतना हर्ष होता है कि जैसे मैंने स्वयं उन्नति की है। विद्याप्रकाश को सभी छात्र अपना आदर्श मानते थे क्योंकि

विद्याप्रकाश स्वयं आदर्शवादी थे। यह भी पता चला कि विद्याप्रकाश द्वारा पढ़ाये गये छात्रों में से कई छात्र अपनी मेहनत और भाग्य से जज, पुलिस कमिश्नर, आई.ए. एस. अधिकारी, तहसीलदार, उपायुक्त, खाद्य अधिकारी, बैंक मैनेजर और न जाने किस-किस पद पर विराजमान हैं।

कुर्त्ता-पायजामा पहनने वाले विद्याप्रकाश जी को पूरा विद्यालय, यहाँ तक कि विद्यालय के प्रधानाचार्य भी सम्मानपूर्वक उनका आदर करते थे। छात्र तो उनके चरण स्पर्श करके ही अपनी पढ़ाई प्रारम्भ किया करते थे। आदर्शवान् बनना और केवल आदर्श का नाम लेना इन दोनों बातों में अन्तर है, लेकिन यदि व्यक्ति प्रयास करे तो आदर्श स्थापित करने में कुछ भी तो खर्चा नहीं करना पड़ता। आदर्श केवल मन का विज्ञान है और विज्ञान कभी असफल नहीं होता।

युवा

(114) युवा-शक्ति

संकेत बिंदु—(1) राष्ट्र के प्राण और कर्णधार (2) युवाओं का गौरवशाली इतिहास (3) युवा-शक्ति पथ-भ्रष्ट (4) नैतिक मूल्यों का पतन (5) युवा-वर्ग का गलत प्रयोग।

युवा-शक्ति राष्ट्र का प्राण तत्त्व है। वही उसकी गति है, स्फूर्ति है, चेतना है, ओज है, और है राष्ट्र की प्रज्ञा। युवाओं की प्रतिभा, पौरुष, तप, त्याग और गरिमा राष्ट्र के लिए गर्व का विषय है। युवा-वर्ग का पथ, संकल्प और सिद्धियाँ राष्ट्रीय पराक्रम और प्रताप के प्रतीक हैं। उसकी शक्ति कालजयी है, अजर है, अमर है।

युवा शक्ति राष्ट्र की दूसरी पंक्ति है, कल की कर्णधार है जिसने देश का नेतृत्व करना है और अपनी शक्ति, सामर्थ्य और साहस से देश को परम-वैभव तक पहुँचाने का दायित्व स्वीकारना है।

युवा-शक्ति क्या है ? कठोपनिषद् ने उत्तर दिया, 'जिनकी ऊर्जा अक्षुण्ण, जिनका यश अक्षय, जिनका जीवन अंतहीन, जिनका पराक्रम अपराजेय, जिनकी आस्था अडिग और संकल्प अटल होता है, वह युवा है।' कोषकार ने कहा, '16 से 35 साल तक के युवाओं की ताकत' युवा-शक्ति है।

युवा-शक्ति की देश-सेवा, समाज-सेवा और विश्व कल्याण की कथाएँ इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों में अंकित हैं। युवा नचिकेता ने मृत्यु के अधिष्ठाता यमराज तक को झुका दिया। युवक सिद्धार्थ भरी जवानी में सत्य की खोज के लिए चल पड़ा। भारतीय

संस्कृति के पुनरुद्धारक शंकराचार्य 32 वर्ष की आयु में समग्र भारत को एकता के सूत्र में गुम्फित कर वेदान्त-दर्शन की विजय-पताका दिग्दिगंत में फहरा गये। 16 वर्ष का युवा शिवा अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध कमर कसकर खड़ा हो गया। वीर सावरकर, चाफेकर बंधु, मदनलाल धींगड़ा, चन्द्रशेखर 'आजाद', अशफाकुल्लाखाँ, भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव आदि कितने युवा थे जिनके अस्त्रों से अग्नि की ज्वालाएँ फूटीं थीं, ब्रिटिश-साम्राज्यवाद को भस्म करने के लिए। 23 वर्ष की आयु में आर्य भट्ट और 17 वर्षीय रामानुजम् ने गणित और ज्योतिष में जो चमत्कार किए, वे आज भी अद्वितीय हैं। केवल 14 वर्ष की अल्पायु में ही सन्त ज्ञानेश्वर ने श्रीमद्भगवद्गीता पर अपूर्व भाष्य लिखकर सबको चमत्कृत कर दिया।

पर, आज अधिकांश युवा-शक्ति पथ-भ्रष्ट हो रही है, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा राष्ट्रीय चरित्र के नाम पर वह शून्य है। स्वतन्त्रता के पश्चात् 'धर्म-निरपेक्षता' के नाम पर धर्म से परहेज की मनोवृत्ति पनपाई गई, पर धार्मिक उत्सवों में भाग लेने के लिए उकसाया गया। सत्ता-सुरक्षा के लिए खोखले मस्तिष्क वाले प्रशासनिक ढाँचे को जुटाया गया, जिसे मनचाहे ढंग से संचालित किया जा सके। बौद्धिक चिन्तनशील समाज के बदले चाटुकारों और पद-लोलुपों की वह भींड़ बटोरी गई, जिसने राजाओं-नवाबों के चारणों को भी नीचा दिखा दिया। सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक श्री अरुणा बूटा की धारणा है कि—

'टेलीविजन और इंटरनेट की दुनिया ने युवकों के लिए सूचनाओं का अम्बार लगा दिया है। इसलिए उनका आई.क्यू. अर्थात् बुद्धिलब्धि काफी ऊँचा होता है। इस 'हाई-फाई' सूचना तंत्र ने उनकी मौलिक कल्पना-शक्ति व तार्किक क्षमता को नष्ट किया है। वे स्थितियों से निबटने और विरोधी वातावरण में खुद को संतुलित रखने में अक्षम हैं। उनकी सहन-शक्ति कमजोर हुई है। वे जल्द होशो-हवास खो बैठते हैं। फलत: उसका संज्ञानात्मक विकास (कॉगनिटिव डेवलपमेंट) कम हो पाता है और मनोवेगपूर्ण व्यक्तित्व (इम्पल्सिव पर्सनॉल्टी) का स्वामी बन जाता है। उसके लिए उसकी मर्जी ही सब कुछ हो जाती है।

नैतिक मूल्यों से हीन आज का युवा सड़कों पर नारियों के आभूषण झटकता है, पुरुषों के पौरुष को चाकू और पिस्टल से चुनौती देता है। लूट मचाता है, चोरी करता है, बैकों में डाके डालता है। तत्त्वहीन आन्दोलन खड़े करता है, दूसरी ओर सुन्दरी नारी को संगिनी बनने को विवश करता है, उसके यौवन को लूटता है, उससे बलात्कार करता है। कई वर्ष पूर्व युवा-कांग्रेस के नागपुर-अधिवेशन में युवाओं के नंगे नाच से वेश्याओं तक का तोबा करना; मास्को के अन्तरराष्ट्रीय युवा-सम्मेलन में रूसी खोजी कुत्तों द्वारा होटल के बाहर झाड़ियों में युवा-युवतियों का नग्नावस्था में पकड़े जाना भारतीय युवा-शक्ति की विकृति का परिचायक है। आज का भारतीय युवक सिगरेट, शराब, भाँग, हेरोइन तथा अन्य नशीले पदार्थों में आत्मविस्मृत रहना चाहता है। नशा और यौन आनन्द चाबी भरे यंत्र की तरह और भी जल्द स्थिर हो जाते हैं और तब केवल शेष बचता है—'एक नपुंसक आक्रोश,

सभ्यता के प्रति, सभ्यता के समस्त अवदानों के प्रति, सभ्यता की सभी मर्यादाओं के प्रति। पलायन निषेध में आकर चुक जाता है।'

दूसरे विश्वयुद्ध के मध्य जन्मी पीढ़ी ने 1965 के दौर में विश्वभर में विद्रोह, बगावत की आवाज उठाकर विश्व की नींद हराम कर दी थी। उसके बाद की जन्मी पीढ़ी को ध्यान में रखकर संयुक्त राष्ट्र संघ ने 17 दिसम्बर, 1979 को अपने 38वें सत्र में 1985 वर्ष युवा-शक्ति को समर्पित किया, उसकी प्रगति, विकास तथा शांति के लिए।

1985 का युवा-वर्ष आया और पता नहीं कब बीत गया। उस अवसर पर राष्ट्रीय-अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलनों, घोषणाओं, प्रस्तावों, सांस्कृतिक कार्यक्रमों, सैर-सपाटों, मौज-मस्ती के क्षणों के अतिरिक्त युवा-वर्ग को क्या मिला? राष्ट्र-भक्ति, सांस्कृतिक-प्रेम और शिष्ट-सभ्यता की पावनज्योति से कितने युवा हृदय प्रज्वलित हो सके?

युवा-शक्ति समाज, धर्म, राष्ट्र और विश्व की अणु शक्ति है। इसका प्रयोग इसके परिणाम की पूर्व चेतावनी है। अणु का सदुपयोग मानव का कल्याण करेगा, दुरुपयोग विध्वंस और विनाश का ताण्डव रचेगा। सत्ताधिकारी यदि युवा-शक्ति के दिग्भ्रांत, दूषित तथा दुर्गन्धपूर्ण प्रवाह को नैतिकता, सुसंस्कृति तथा राष्ट्रीयता की ओर मोड़ पाए, तो वे राष्ट्र तथा विश्व में देवदूत सिद्ध होंगे, मसीहा बनकर पूजे पाएंगे।

(115) भारतीय-संस्कृति और युवक

संकेत बिंदु—(1) सभ्यता-संस्कृति से शून्य (2) भारतीय-संस्कृति के मूल आधार (3) आध्यात्मिकता और त्याग (4) पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति से प्रभावित (5) अनास्थावादी और भौतिकवादी युवा।

भारत का युवक भारतीय सभ्यता, हिन्दू धर्म तथा भारतीय सांस्कृतिक-चरित्र ज्ञान से शून्य है। कारण, उसमें सांस्कृतिक और नैतिक दृष्टि है ही नहीं। कहीं दृष्टि है तो मूल्य ज्ञान नहीं। दृष्टि और मूल्यों का सामंजस्य संवेदन से जन्मता है। राष्ट्रीय भावना और सामाजिक सम्बन्धों से, वस्तु-सत्य से जब-जब हमारा युवक पथभ्रष्ट हुआ, तब-तब उसकी सभ्यता और संस्कृति का धरातल खिसकता गया। जैसे-जैसे भारत के शासकों तथा प्रशासकों ने अपने सांस्कृतिक मूल्यों की अवहेलना की वैसे-वैसे भारत की युवा-शक्ति मानसिक स्तर पर भारतीय-संस्कृति के मान-दण्डों से आधारहीन होती चली गई।

भारतीय-संस्कृति का पहला मूल सूत्र है—'धर्मानुकूल आचरण।' इसे सदाचार भी कहते हैं। आज का युवक धर्माचरण से परहेज करता है। वह नित्यप्रति के कार्यव्यापार में सदाचरण का अर्थ विद्रोह और विध्वंस मानता है। वह धर्म-कार्य करता है, आत्मा को मारकर; लोक-दिखावे के लिए। उसे 'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, अतिथि देवोभव, आचार्य देवो भव' की कल्पना ही नहीं है। कल्पना है तो मातृ-द्रोह की। अतिथि नहीं, तिथि बताकर आने वाले मित्र या सखा (फ्रैण्डस्) के स्वागत-सत्कार की।

'आत्मा की ओर ले जाने वाले यावन्मात्र सद् विचार', भारतीय संस्कृति का दूसरा मूलाधार है। विद्रोह और विध्वंस अहं और स्वार्थ के पुंज युवा से आत्मोन्नति की बात करना पागलपन है। कारण, वह तो 'खाओ, पीओ और ऐश करो' के जीवन को ही जीवन मानता है।

वर्णाश्रम व्यवस्था और जन्मांतर (पुनर्जन्म) पर विश्वास भारतीय-संस्कृति का तीसरा आधार है। काका कालेलकर ने इस बात की पुष्टि करते हुए कहा है, वर्ण का आधार सांस्कृतिक है। वर्ण का प्रभाव बढ़ने से जाति का प्रभाव कम होता है। 'वर्ण की एकता शिथिल होने से जातियाँ फिर से जागृत होती हैं। जाति-जागृति अन्तत: संस्कृति पर चोट है।'

वेद, पुराण, रामायण, महाभारत तथा उपनिषद् और दर्शन शास्त्रों पर स्थिर विश्वास भारतीय-संस्कृति का चौथा मूलाधार है। ज्यों-ज्यों भारतीय युवक पर पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति का रंग चढ़ रहा है, त्यों-त्यों धार्मिक वाङ्मय से उसकी श्रद्धा हटती जा रही है।

कर्म और दायित्व भारतीय-संस्कृति का पाँचवा मूलाधार है। कर्म बिना जीवन की स्थिति असम्भव है, धर्म अधूरा है। जिस कर्म में ज्ञान का भाव नहीं, वह कर्म स्वार्थ से सना होने से व्यक्ति और समाज को और भी उलझन में डाल देता है। भारतीय युवक की उलझनें कर्म के प्रति अविश्वास प्रकट करती हैं। रही दायित्व की बात, वह दायित्व-विहीन है।

आध्यात्मिकता भारतीय-संस्कृति की प्राण है। निर्गुण और सगुण उपासना पद्धतियाँ उसके दो पथ हैं। सर्वव्यापक भगवत्सत्ता पर विश्वास उसका आधार है। मन इसका केन्द्र है और हृदय इसका आवास। सांस्कृतिक मन उदार, सहिष्णु तथा नूतन भावों का जागरूकता से स्वागत करता है। अनुशासन या अंकुश की अपेक्षा उच्च आदर्श, त्याग की भावना, निजी कर्म-प्रेरणा से अधिक द्रवित होता है। भारतीय युवा मन आध्यात्मिकता की चादर ओढ़े है, यह उसकी विवशता है, इसीलिए उसमें श्रद्धा, विश्वास, समर्पण दूर तक दिखाई नहीं देता।

त्याग भारतीय संस्कृति की दीप्त मणि है। 'तेन त्यक्तेन भुंजीथा' उसका आदर्श है। 'यत् किंचन्मनो व्यासंग कारकम्, तत्त्याज्यम्' (जो कुछ भी मन को फँसाने वाली चीजें हैं, उन उनका त्याग) की प्रेरणा है। और 'सर्वत्यागच्च निर्वाणम्' अर्थात् सर्वस्व का त्याग मोक्ष है। भारतीय युवक इन आदर्शों, प्रेरणा और कामनाओं का विरोधी है। वह अत्यधिक भोगमय जीवन का साक्षी है।

पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति की चकाचौंध के कारण हमारे समाज का यह हिस्सा, हमारे समाज से कट रहा है। श्री हरीश पाठक के शब्दों में, 'उसे घर से कटना, भागना, पलायन करना अच्छा लगता है और स्टार टीवी, ए टी एन के सितारे इसके सपनों में आते हैं। समाज से उनका कोई लेना-देना नहीं है। उनकी आँखों पर सन ग्लास या रे बेन चश्मे

होते हैं, उनके गले में आड़े-तिरछे लॉकिट जिसमें मेडोना तक की तस्वीर चिपकी रहती है, उनके पैरों में गुच्ची जूता, दायें कान में बाली, टी शर्ट पर 'कोबरा' या 'जेड' की आकृति, खाने में हेम्बर्गर या पिज्जा, पीने में कोल्ड कॉफी, वेनीला या संडे आइस्क्रीम, घूमने के लिए यामहा, होंडा या जिप्सी और शाम बिताने के लिए डिस्कोथिक की बुझती-जलती रोशनी, हालात यहाँ तक आ पहुँचे हैं कि मुंबई हो या दिल्ली, कलकत्ता हो या बंगलौर वहाँ के मूल निवासियों को उनके अपने शहर पराये लगने लगे हैं, क्योंकि यूरोप और अमरीकी संस्कृति की इस विगड़ी हुई नकल ने उन्हें अपनी ही जड़ों से काट दिया है।'

भारतीय युवा मन भारतीय संस्कृति से दूर, अनास्थावान् भौतिकवादी क्यों बन रहा है ? इसका दायित्व पूर्णतः शासन पर है। जैसे-जैसे दिग्भ्रान्त सत्ता ने अपने सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों को नष्ट किया वैसे-वैसे भारतीय युवक मानसिक स्तर पर आधारहीन होता चला गया। परिणामतः हमारे युवक पाश्चात्य सभ्यता-संस्कृति के रंग में रंगते चले गए। दूसरी ओर, धर्म-निरपेक्ष भारत में सर्वाधिक चोट हिन्दू-धर्म पर की गई। इतना ही नहीं हिन्दुत्व अर्थात् भारतीयता की बात साम्प्रदायिकता का लक्षण बना दी गई। इस तथाकथित साम्प्रदायिकता की विषाक्त-भावना से बचने के कारण भारतीय-संस्कृति उसके लिए अस्पृश्य बन गई। तीसरी ओर, अंग्रेजी शिक्षा और कान्वेण्ट पद्धति के विद्यालयों ने युवकों के आचार-विचार-व्यवहार को पाश्चात्य-संस्कृति तथा सभ्यता में दीक्षित कर दिया है। पाश्चात्य-संस्कृति की चकाचौंध से अशान्त, अतृप्त और खिन्न होकर जब युवक निराशा के तिमिर से भयभीत होता है तो लौटकर पुनः मातृ-संस्कृति की गोद में ही आश्वस्त होता है, सुख पाता है। आध्यात्मिकता का पीयूष ही उसके मृत प्राणों में नवजीवन का संचार करता है।

(116) आज का युवा वर्ग और भारत का भविष्य / राष्ट्र-निर्माण में युवा-पीढ़ी का सहयोग

संकेत बिंदु—(1) राष्ट्र के प्रतिदायित्व (2) भारतीय युवाओं का वैभवशाली अतीत (3) खेल व शिक्षा में योगदान (4) उद्योग और वाणिज्य के क्षेत्र में (5) पाखंडों और कुप्रथाओं को समाप्त करने में सहायक।

राष्ट्र-निर्माण में युवा पीढ़ी का सहयोग राष्ट्र के प्रति उसके दायित्व की अनुभूति का प्रमाण है। राष्ट्र की सुख-शान्ति समृद्धि और प्रगति में उसकी साझेदारी है। उसके द्वारा राष्ट्र-वन्दना है, राष्ट्र पूजा है। यह सहयोग उसके राष्ट्र-प्रेम, देश-भक्ति तथा मातृभूमि के प्रति सर्वस्व समर्पण की भावना को प्रकट करता है।

राष्ट्र के युवक भावी पीढ़ियों के न्यासी होते हैं। प्रायः राष्ट्र का प्रत्येक महान् कार्य युवकों के सहयोग के बिना अधूरा रह जाता है। कारण, निर्माण सदैव बलिदानों पर टिकता

है और जब तक निर्माण के लिए बलिदान की खाद नहीं दी जाती, तब तक विकास का भी अंकुर नहीं फूटता। बलिदान की भावना युवा पीढ़ी का शृंगार है। झाँसी की रानी, सुखदेव, भगतसिंह, राजगुरु, बिस्मिल, भगवती बाबू, चन्द्रशेखर 'आजाद', शचीन्द्र सान्याल जैसे सहस्रों युवकों ने जीवन उत्सर्ग कर राष्ट्र-निर्माण की पहली शर्त 'स्वतन्त्रता' का आह्वान् किया था।

जला अस्थियाँ बारी-बारी / छिटकाई जिनने चिंगारी।
जो चढ़ गए पुण्य वेदी/ पर लिए बिना गरदन का मोल ॥

—रामधारीसिंह 'दिनकर'

दूसरी ओर 1974 के आपत्काल ने जब राष्ट्र के राजनीतिक वातावरण को अन्धकारमय कर दिया गया था तब लाखों युवकों ने इन्दिरा जी की तानाशाही के विरुद्ध जेलें भर कर, जीवन की बलि देकर दूसरी आजादी के दर्शन कराए।

एक युवा शंकराचार्य ने देश में वैदिक-धर्म का प्रचार कर देश के चारों कोनों में चार मठ स्थापित कर देश को एकसूत्र में बद्धकर केवल 32 वर्ष की युवावस्था में ही शरीर त्याग दिया। सिद्धार्थ-गौतम ने युवावस्था में माया-मोह को त्याग कर जीवन में 'अहिंसा परमोधर्मः' की ध्वजा फहराई। भारतेन्दु ने तो कुल 35 वर्ष के जीवन में ही उनहत्तर रचनाएँ देकर हिन्दी-साहित्य का युग परिवर्तन कर दिया। श्रीनिवास रामानुजम् ने मात्र 31 वर्ष की आयु में गणित के क्षेत्र में 'भारतीय फैलो ऑफ रायल सोसायटी' का पुरस्कार जीता था। युवा-संन्यासी विवेकानन्द ने तो अध्यात्म के प्रचार से विदेशियों को अध्यात्म का मतवाला बना दिया था। इन युवा-देश-भक्तों के राष्ट्र-निर्माण के विविध क्षेत्रों में सहयोग के लिए राष्ट्र इनका चिर कृतज्ञ रहेगा और सदा इन पर गर्व करेगा। वास्तव में ये युवा भारत के गौरव थे।

खेल क्षेत्र तो है ही युवा पीढ़ी का। यह राष्ट्र की शक्ति और वीरता का परिचायक है। खेल क्षेत्र में पी.टी. उषा, कणम मल्लेश्वरी, वेद पाठक, मुक्के बाज गुरुचरण, शाइनी विल्सन, लिंबाराम, पप्पू यादव, कपिलदेव, सोमा दत्ता, सत्यपाल, सचिन तेंदुलकर, शतरंज के खिलाड़ी आनन्द विश्वनाथन, टेनिस के खिलाड़ी महेश भूपति तथा पेस की जोड़ी आदि खिलाड़ियों ने जो योगदान दिया है वह अपूर्व और अद्भुत है। यदि भारतीय खेल टीमें नवीनतम टेक्नीक से शिक्षण लें, राजनीति के कूट-चक्र को तोड़कर राष्ट्रीय चयन नीति से खिलाड़ी एशियाड, ओलम्पिक या अन्य विश्व प्रतियोगिताओं में उतरें तो वे निश्चय ही स्वर्ण-पदक जीतकर राष्ट्र के गौरव को बढ़ाएँगे। यह भी राष्ट्र-निर्माण की एक शैली है।

युवा क्या नहीं कर सकते ? यदि युवा शिक्षाविद् देश में जीवनोपयोगी शिक्षा को महत्त्व दे सकें; युवा शिक्षक निष्ठापूर्वक शिष्यों के अध्यापन में रुचि लें, युवा साहित्यकार राष्ट्रोत्थान के गीतों और लेखों से देशवासियों में राष्ट्रीयता के बीज बो सकें; यदि युवा डॉक्टर अपनी आय से अधिक मरीज के मर्ज को दूर करने का प्रण कर सकें; यदि युवा

कृषक आधुनिक उपकरणों से सघन खेती में जुट जाएँ तो यह राष्ट्र-निर्माण में युवा पीढ़ी का चिरस्मरणीय सहयोग होगा। इससे राष्ट्र विकसित-राष्ट्रों की श्रेणी में शीघ्र खड़ा दिखाई देगा।

यदि युवा पीढ़ी सहकारिता में ईमानदारी से विश्वास प्रकट करे तो सहकारी समितियाँ, सहकारी बैंक, सहकारी उद्योग राष्ट्र के रूप को ही बदल सकते हैं। कृषि में, विपणन में, भंडारण में तथा अन्य कार्यक्रमों में संवर्द्धन ला सकेंगे। कुटीर-उद्योगों को प्रोत्साहन मिल सकेगा। डेरी अर्थात् दुग्धोत्पादन, मात्स्यकी, कुक्कुट-पालन तथा श्रमिक समितियाँ राष्ट्रीय विकास की सोपान बनेंगी।

उद्योग और वाणिज्य क्षेत्र राष्ट्र के आर्थिक निर्माण की आधारशिला हैं। युवा पीढ़ी देश में इनका जाल बिछाकर राष्ट्र-निर्माण में तीन प्रकार सहयोग दे सकती है—(1) आर्थिक उन्नति, (2) बेरोजगारी में कमी, (3) निर्यात द्वारा राष्ट्र की अर्थव्यवस्था में सुधार।

विज्ञान का क्षेत्र युवा वैज्ञानिकों से नए-नए आविष्कारों की अपेक्षा करता है। इससे जन-जीवन सरल और सुखी बनेगा।

इसी प्रकार अभिनय, संगीत तथा गायन के क्षेत्र में युवा-पीढ़ी अपनी कलाप्रतिभा-प्रदर्शन कर राष्ट्र के भाल को उन्नत करते हुए जनता को स्वस्थ मनोरंजन प्रदान कर सकती है। पर शर्त यह है कि इस क्षेत्र में वे यूरोप की भौंड़ी नकल न करें।

भारतीय समाज अनेक पाखंडों और कुप्रथाओं से ग्रस्त है। युवा-पीढ़ी यदि कमर कसकर दहेज न लेने की कसम खा ले; ऊँच-नीच के भेद-भाव को हृदय से निकाल दे; नारी के शोषण; उत्पीड़न और बलात्कार का प्रबल विरोध करे; चोरी, छीना-झपटी का प्रतिरोध करे, रूढ़िग्रस्त परम्पराओं और अहितकर प्रथाओं का विरोध करे तो यह राष्ट्र और समाज-निर्माण में पुनीत सहयोग होगा।

आक्रोश और आन्दोलन, हड़ताल और राष्ट्रीय सम्पत्ति की क्षति आज के युवा पीढ़ी की दुर्बलता है। इसलिए जैनेन्द्र ने कहा, 'युवकों का उत्साह ताप बन कर न रह जाए। यदि उसमें तप भी मिल जाए तो और अधिक निर्माणकारी हो सकता है।'

(117) युवा-पीढ़ी और रचनात्मक कार्य

संकेत बिंदु—(1) युवा-पीढ़ी और रचनात्मक कार्य का संबंध (2) मानवीय और रचनात्मक गुण अपनाकर (3) रूढ़ियों और अंधविश्वासों का विरोध (4) समाज और राष्ट्र के लिए रचनात्मक कार्य (5) रचनात्मक कार्यों के अभाव में राष्ट्र निर्माण असंभव।

अठारह वर्ष से चालीस वर्ष तक की वय का सारा जनसमुदाय युवा-पीढ़ी या युवा-वर्ग है। उद्यमपूर्वक किया हुआ कार्य, कृति का उचित प्रस्तुतीकरण, कार्य का ठीक अनुष्ठान करना, ध्यानपूर्वक कार्य का उपाय करना या युक्ति लगाना तथा किसी चीज का अच्छी

तरह और सुन्दर रूप में निर्माण करना रचनात्मक कार्य है। युवकों द्वारा अपने को देश की भावी पीढ़ी के न्यासी मानते हुए समाज, धर्म तथा राष्ट्र-हित में उद्यमपूर्वक श्रेष्ठ एवं सुन्दर निर्माण करना, उनका रचनात्मक कार्य है।

युवा-पीढ़ी और रचनात्मक कार्य का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। इंग्लैंड के प्रसिद्ध प्रधानमंत्री डिजराइली तो यह मानते हैं कि 'प्राय: प्रत्येक महान् कार्य युवकों द्वारा किया गया है।' कारण, यह पीढ़ी भावनाओं का पुंज है। इसके हृदय से उदारता, कर्मण्यता, सहिष्णुता, अदम्य साहस और अखिल उत्साह-स्रोत पूर्ण वेग से बहता है, जो अपने ताप और तप से रचनात्मक कार्य की सिद्धि करता है।

युवा पीढ़ी अपने अन्दर मानवीय गुणों को ग्रहण कर, स्वच्छ सामाजिक जीवन अपनाकर, धार्मिक छल-प्रवंचना, अंध-विश्वास, सम्प्रदायवाद से बचकर राजनीतिक मुखौटों को हटाकर, 'स्व' का विकास करे तो यही उसका महान् रचनात्मक कार्य होगा। कारण, उसके हृदय का पावित्र्य तथा चरित्र की उज्ज्वलता उसे रचनात्मक कार्य के प्रति समर्पण तथा कुछ कर गुजरने की महत्त्वाकांक्षा को शक्ति प्रदान करेगी। परिणामत: वह विघटनकारी कार्यों से बचेगा, भ्रष्ट-आचरण से घृणा करेगा। उग्रवाद का डटकर मुकाबला करेगा। निराशाजनित अकर्मण्यता से दूर रहेगा।

रचनात्मक कार्य घर से आरम्भ होता है। घर का कूड़ा बाहर न फेंकना, थूक और पीक से सड़कों को न सड़ाना, फलों के छिलके और चाट-पकौड़ी के दोने सड़क-गली में न फेंकना, पड़ोस में ताक-झाँक न करना, उनके व्यक्तिगत जीवन में दखल न देना पारिवारिक दृष्टि से रचनात्मक कार्य है।

घर से निकल कर हम समाज में प्रवेश करते हैं। बसों तथा अन्य वाहनों में प्रवेश के समय तथा मेलों-उत्सवों तथा सिनेमा के टिकट-घर पर ठेलमठेल न करना, बस में महिलाओं के लिए आरक्षित सीट पर महिला के अधिकार की रक्षा करना, जेबकतरे को पकड़ने में सहयोग तथा स्त्रियों से छेड़छाड़ और उनके उत्पीड़न का विरोध करना, सामाजिक रचनात्मक कार्य हैं। इसी प्रकार रेडियो और टी.वी. के स्वर को मन्द रखकर पड़ोसियों के लिए सिर-दर्द उत्पन्न न करना भी रचनात्मक कार्य है। पड़ोस-या मौहल्ले में किसी दुस्साहसी असामाजिक तत्त्व के घुसने, चोरी-लूटपाट या मारने-पीटने की भनक मिल जाने पर तुरन्त पुलिस को टेलीफोन करने या शोर-मचाकर जनता को इकट्ठा करके असामाजिक तत्त्वों से निबटना भी रचनात्मक कार्य है।

परिवार को नियोजित रखकर तथा दहेज-प्रथा का विरोध करके युवा पीढ़ी जो रचनात्मक कार्य करेगी, वह न केवल समाज के लिए, अपितु राष्ट्र के लिए परम कल्याणकारी होगी।

धर्म के आडम्बरों और पाखंडों का विरोध, अंधविश्वासों का खंडन; कब्रों, पीर-फकीरों की पूजा का विरोध; व्यर्थ के कर्मकांड पर अविश्वास; सर्वपंथ समादर, पूजा-

स्थलों के प्रति पवित्र भावना और व्यवहार धार्मिक रचनात्मक कार्य हैं। धार्मिक कर्मों की सरेबाजार आलोचना, अपने पूज्य देवी-देवताओं की निन्दा तथा धार्मिक आस्थाओं पर होनें वाले प्रहारों से धर्म की रक्षा करना भी धार्मिक रचनात्मक कार्य हैं।

आर्थिक दृष्टि से अनावश्यक वस्तु न खरीदना; घरेलू चीजों का अत्यधिक संग्रह न करना; घरेलू उत्सवों-पर्वों, विवाह आदि संस्कारों में घर-फूँक तमाशा न देखना, युवा पीढ़ी का रचनात्मक कार्य होगा।

उद्योग राष्ट्र के आर्थिक-जीवन के प्राण हैं। औद्योगिक संस्थाओं में आन्दोलन और हड़ताल का मार्ग छोड़कर निष्ठापूर्वक कार्य करके उत्पादन बढ़ाने में युवा पीढ़ी का रचनात्मक सहयोग माना जाएगा। अपने उत्पादनों को विदेशों में निर्यात करके देश की समृद्धि में युवा-उद्यमियों का कार्य देश-निर्माण में रचनात्मक सहयोग माना जाएगा। इतना ही नहीं, आय की दृष्टि से अत्यन्त लाभप्रद, फैशनेबल और महँगी चीजों के उत्पादन को प्रमुखता तथा प्राथमिकता न देना भी उनका रचनात्मक कार्य है।

युवा-वैज्ञानिक समाज और राष्ट्र-हित के लिए रचनात्मक दृष्टिकोण लेकर नए-नए अनुसंधान करें, लाभकारी नए आविष्कारों को जन-जन तक पहुँचाएँ, यही उनका रचनात्मक कार्य माना जाएगा। युवा डॉक्टर गाँवों-कस्बों में जाकर, निर्धन-अशक्त-रोगियों का उपचार करें तो उनका कार्य रचनात्मक कार्य समझा जाएगा। रोगी का यथा-योग्य उपचार और उनसे सद्-व्यवहार डॉक्टर का रचनात्मक कार्य होगा।

कृषक हमारे अन्नदाता हैं। युवा कृषक यदि निष्ठापूर्वक नई वैज्ञानिक शैली से अपनी कृषि-उपज को बढ़ाएंगे, उसको उचित दामों में बाजार में प्रस्तुत करेंगे, उसको देश के विभिन्न क्षेत्रों तक पहुँचाने में सफल होंगे तो यह उनका कार्य रचनात्मक-कार्य की श्रेणी में ही आएगा।

युवा-पीढ़ी के रचनात्मक कार्यों के अभाव में राष्ट्र-निर्माण अपंग है, अधूरा है। कारण, निर्माण को चाहिए उदात्त गुणों की उपजाऊ धरती; साहस और शक्ति की खाद तथा त्याग और बलिदान का बीज। वह केवल युवा-पीढ़ी ही दे सकती है। देश की स्वतन्त्रता और आपत्कालीन संवैधानिक सुविधाओं के अपहरण से मुक्ति युवा-शक्ति के रचनात्मक कार्यों का ही परिणाम है। विघटनकारी तत्त्वों का मुकाबला तथा विषाक्त राजनीतिक मुखौटों को युवा-शक्ति ही उतार सकती है।

जीवन और जगत् के प्रत्येक क्षेत्र में यदि किसी ने सुख, शान्ति और सौन्दर्य की त्रिवेणी बहाई है, तमसाच्छन्न पृथ्वी में अंधकार को चीर कर दिव्य ज्योति से साक्षात्कार करवाया है, प्रकृति के रहस्यों को उजागर कर उसे कल्प-वृक्ष बनाया है तो इन सभी का श्रेय युवा पीढ़ी के रचनात्मक कार्यों को ही है। विश्व आज उसके कार्यों पर गर्व करता है और मानव-मात्र उनके प्रति कृतज्ञता अर्पित करता है।

(118) युवा पीढ़ी और फैशन

संकेत बिंदु—(1) एक-दूसरे के बिना अधूरे (2) प्राचीन काल में फैशन का स्वरूप (3) फैशन आधुनिकता का पर्याय (4) बालों और परिधानों का अलग-अलग रूप (5) फैशन का अतिचार नुकसानदायक।

युवा-पीढ़ी और फैशन का सम्बन्ध परस्पर प्रेमी और प्रेमिका का-सा है। एक-दूसरे के बिना दोनों विकल हैं, विह्वल हैं। दोनों में शरीर और प्राणों का सम्बन्ध है। कारण, फैशन रूपी प्राणों के बिना युवा-पीढ़ी का शरीर शव के समान है। युवा-पीढ़ी का फैशन के पीछे अन्धी दौड़ लगाना फैशन-प्रेम का ही परिचायक तो है।

फैशन तो युवा-पीढ़ी पर ही सजता है, फबता है। उसके सौन्दर्य को द्विगुणित करता है, उनके बाह्य व्यक्तित्व की वृद्धि करता है। उन्हें आकर्षक और ईर्ष्या का केन्द्र-बिन्दु बनाता है। देखने वालों के हृदय की धड़कनों को तेज करता है। उन्हें आहें भरने को विवश करता है। इसके विपरीत बूढ़े-बूढ़ियों के फैशन पर तो फबती कसी जाती हैं। उनका मजाक उड़ाया जाता है। 'बूढ़ा बैल रेशम की नाथ', 'बूढ़े हुए तो क्या हुआ, नखरा तिल्ला उतने ही' तथा 'बूढ़ी घोड़ी लाल लगाम' जैसी कहावतों से व्यंग्य किया जाता है।

फैशन क्या है ? बनाव-शृंगार तथा परिधान की विशिष्टता फैशन है। समाज के सम्मुख नये डिजाइन के वस्त्रों, गहनों, केश विन्यास आदि से आत्म-प्रदर्शन फैशन है। रहन-सहन, बनाव-शृंगार तथा परिधान की नवीन रीति फैशन है। आलिवर बेंडेल होल्म्स के अनुसार, 'फैशन तो कला के सजीव रूपों में तथा सामाजिक व्यवहार में देखने का प्रयत्न मात्र है। ' हैनरी फील्डिंग के मत से, 'यह न केवल वेश-भूषा और मनोरंजन का स्वामी है, अपितु राजनीति, कानून, धर्म, औषध तथा गम्भीर प्रकार की अन्य बातें भी इसके अन्तर्गत आती हैं।'

अपने को सुन्दर रूप में प्रदर्शित करने की प्रवृत्ति युवा-पीढ़ी में आदिकाल से चली आई है। अन्तर इतना ही है कि प्राचीनकाल में युवा-वर्ग को अपने विद्यार्थी जीवन-पर्यन्त अर्थात् 25 वर्ष की आयु तक शृंगार-मोह त्यागना पड़ता था। दूसरी ओर प्राचीन युवतियाँ विवाह के समय से ही सोलह-शृंगारों से अपने को सज्जित करके गर्व अनुभव करती थीं। रम्भा, मेनका, उर्वशी आदि अप्सराएँ ही नहीं, शकुन्तला, सीता, पांचाली जैसी भगवतियों की विविध शृंगार-प्रियता से संस्कृत और हिन्दी-साहित्य भरा पड़ा है। अजन्ता, एलोरा की गुफाएँ, खजुराहों के मन्दिर तथा प्राचीन स्थापत्य-कलाओं के नमूने प्राचीन शृंगार-शैली के जीवन्त प्रमाण हैं। दूसरा अन्तर शृंगारविधि का है। प्राचीन काल में [illegible] तथा विभिन्न स्वर्णालंकारों द्वारा शृंगार होता था, जबकि आज फैशन की अनेकानेक नवीन विधियाँ उपलब्ध हैं।

परिवर्तन प्रकृति का नियम है, उसी में सृष्टि का सौन्दर्य-निहित है। फैशन का परिवर्तन

भी प्रकृति का क्रम है, जिसमें नयी पीढ़ी की सौन्दर्य पिपासा झलकती है और आधुनिकता विरोधियों के लिए आश्चर्य। इटली के कवि दाँते का मत है, 'मनुष्य के रीति-रिवाज और फैशन शाखाओं पर लगी पत्तियों के समान बदलते रहते हैं। कुछ चले जाते हैं और दूसरे आ जाते हैं।' आस्कर वाइल्ड इस परिवर्तन में विवशता देखते हैं। उनका कहना है, 'फैशन कुरूपता का एक प्रकार है, जो इतना असाध्य है कि हमें उसे छह महीने में बदल देना होता है।'

आज की युवा-पीढ़ी आधुनिक सभ्यता की पुजारी है। फैशन आधुनिक-सभ्यता का पर्याय है। कारण, 'सौन्दर्य' के प्रति सोच और चाह ही तो आधुनिक सभ्यता है। फैशन की सोच और चाह तेजी से बदलाव का श्रेय पाश्चात्य सभ्यता, सिनेमा, दूरदर्शन तथा राष्ट्रीय-अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर होने वाले व्यापार को है। जहाँ फैशन के नित नए शोध किए जाते हैं और नित-नए प्रयोग होते हैं।

'फैशन' अब एक शहर, प्रांत या देश तक ही सीमित नहीं रह गया है। विश्व-स्तर पर उसका मूल्यांकन होने लगा है। इसलिए खुले मंच पर 'फैशन परेड' पेशा बन गया है। दूरदर्शन पर नियमित रूप से इसका प्रदर्शन विश्व में प्रस्तुत डिजाइन का स्थापन ही तो है।

दूसरी ओर, नगर, सुन्दरी, प्रांत-सुन्दरी, राष्ट्र-सुन्दरी तथा विश्व-सुन्दरी प्रतियोगिता क्या हैं? 'फैशन' का युवतियों के समर्पण का मूल्यांकन ही तो है। जिससे न केवल उन्हें यश ही मिलता है, अपितु उनके लिए समृद्धि का द्वार भी खुलते हैं।

परिधान का एक-सा रंग (मैचिंग) होना आज के युवा-फैशन का अंग है। आज के युवा-वर्ग की पेंट-कमीज, कुर्ता पजामा से लेकर जूते चप्पल तक तथा युवती के साड़ी-ब्लाउज, पेटीकोट, स्कर्ट, चूड़ी, बिन्दिया, बालियाँ तथा जूते एक रंग के होंगे। युवा माइकल जैक्सन जैसी पतलून पहनेंगे—यानी टखनों से कुछेक इंच ऊँची। कमीज ढीली-ढाली होगी। युवतियाँ स्कर्ट या जीन्स पर पत्ते भर की टॉप पहनना पसन्द करती हैं ताकि थोड़ा भी हाथ उठे तो मैडोना की तरह जिस्म की एक झलक सामने वाले को मिल जाए। कानों की बालियाँ बड़ी और लटकती होंगी। जूते नाइक के मुकाबले रीबॉक के होंगे और होगा आँखों पर रेबेन का गोगल्स।

बालों को मेंडोना जैसी बनाने के लिए ब्लीज करवाना, आलू रखकर अथवा नकली बालों से उनको अलंकृत करना, आँखों में आई-लाइनर और आई-शैडो लगाना, नये-नये डिजाइन के वस्त्र जिनमें वक्ष और उदर स्पष्ट चमकते हों, 'सौंदर्य-गृह' (ब्यूटी पार्लर) से चेहरे का 'मेकअप' करवाना, सौन्दर्य-प्रसाधनों की सहायता से मुख का शृंगार करना, आज की युवती का फैशन के प्रति पूर्णतः समर्पण है।

फैशन के अतिचार से मुक्ति असम्भव है। इसलिए थोरो ने सही कहा है, 'हर पीढ़ी पुराने फ़ैशनों पर हँसती है, लेकिन नशों का अनुसरण धार्मिक जैसी कट्टरता से करती है।' जार्ज बर्नार्डशॉ के शब्दों में, सच्चाई तो यह है, 'अन्ततः फैशनें उत्पन्न की गई महामारियाँ हैं।'

युवा-वर्ग का फैशन के प्रति मोह उनकी प्रकृति के अनुकूल व्यक्तित्व के प्रदर्शन और अहं की पूर्ति के लिए जरूरी है; कैरियर (भविष्य) और समृद्धि के लिए अनिवार्य है। जब इसमें 'अति' जुड़ती है तो वैभव का भस्मासुर बनकर उनसे तन-तन और चरित्र के ह्रास का 'कर' वसूलती है।

(119) बेरोजगारों का दानव बने रहेंगे हम रहेंगे/ युवा पीढ़ी और बेकारी

संकेत बिंदु—(1) बेकारी की समस्या के कारण (2) अहंभाव और आकांक्षाओं के कारण (3) सरकार की गलत नीतियाँ (4) भ्रष्टाचार का विषाक्त वातावरण (5) वर्तमान शिक्षा प्रणाली।

देश की अनेक विकट समस्याओं में बेकारी की समस्या भी प्रमुख है। इसमें भी विशेष है युवा वर्ग की बेकारी। इसके अनेक कारण हैं। युवा वर्ग की बेकारी का प्रथम कारण है—निरन्तर बढ़ती हुई देश की जनसंख्या।

इस जनसंख्या वृद्धि का पूर्णत: दोष उस निम्न वर्ग के युवा-समाज का है, जो दो समय की रोटी का जुगाड़ भी नहीं कर पाता। झुग्गी-झोपड़ियों में वह कठिनाई से सिर छिपाता है। फिर भी उनकी संतान-वृद्धि का क्रम चलता रहता है। इसके विपरीत आज के शिक्षित युवा-दम्पती जनसंख्या-नियंत्रण में विश्वास करते हैं और अधिक सन्तान से गुरेज करते हैं।

जनसंख्या वृद्धि का दूसरा कारण वह समाज है, जो विदेशों से भागकर लाखों की संख्या में भारत आता है। इनके लिए न पुनर्वास की व्यवस्था है और न रोजगार का प्रबन्ध ही। जहाँ किसी सड़क के किनारे, किसी नहर या नाले के किनारे, किसी खाली भूमि पर सुविधा देखी, वहीं यह समाज डेरा डाल लेता है। इनके लिए रोजगार कहाँ? पर बेकारों में गिनती तो है।

शहरी-शिक्षित युवा वर्ग अपने अहं भाव और आकांक्षाओं के कारण ज्यादा बेकार है। वह सफेद पोश बनकर मेज-कुर्सी पर बैठकर बाबू गिरी करना चाहता है पर उसके लिए इतने कार्यालय (सरकारी, अर्द्ध सरकारी या निजी) हैं कहाँ? फिर भारत में न तो इतने उद्योग-धंधे हैं, जो सबको किसी-न-किसी काम में खपा लें, न राजकीय योजनाएँ हैं, जिनसे युवकों को आजीविका मिले। राजकीय योजनाएँ चलती हैं अर्थ-तंत्र की धुरी पर, किन्तु भारत की आर्थिक दशा पहले ही शोचनीय है।

उच्च-वर्गीय युवा-वर्ग का अहंभाव और सामाजिक प्रतिष्ठा उसे श्रम का काम करने की आज्ञा नहीं देती और उसकी उच्च-आकांक्षाएँ उसे कच्ची-पक्की, छोटी-मोटी, ऐरीगैरी नौकरी करने नहीं देती। वह बेचारा हर रोज 'रोजगार' सम्बन्धी विज्ञापन देखता है, आवेदन

करता है, साक्षात्कार देता है और 'रिजक्ट' होकर युवा-बेकारों की पंक्ति में खड़ा हो जाता है।

युवा-वर्ग की बेकारी की दोषी सरकार की गलत-नियोजन नीतियाँ भी हैं। स्कूलों में अध्यापकों के, दफ्तरों में क्लर्क और आफिसर्स के, कोर्टों में जजों के, पुलिस में सिपाहियों के, फौज में सैनिकों के, तकनीकी संस्थानों में तकनीशियन और वैज्ञानिकों के अनेक पद वर्षों खाली पड़े रहते हैं। सरकारी अधिकारियों की कुंभकर्णी निद्रा, प्रमाद, आलस्य या लाल फीताशाही के कारण इन पदों को भरा ही नहीं जाता। दूसरी ओर, यही अधिकारी कर्मचारियों की सेवा-निवृत्ति पर उनके खाली पदों को भरने में अनावश्यक विलम्ब करते हैं। इससे बेकारी तो बढ़ती ही है, बेरोजगार युवा-वर्ग में असन्तोष, अकुलाहट, क्षोभ और विद्रोह भी जन्मता है।

तीसरी ओर, युवा वर्ग में बेकारी का कारण राजकीय नौकरियों में वर्ग-भेद है। वहाँ अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति, पिछड़ा वर्ग तथा आदिवासियों के लिए स्थान सुरक्षित हैं। आज सरकारी और अर्द्ध सरकारी कार्यालयों में सहस्त्रों स्थान इसलिए खाली हैं कि 'एस.सी.' उस पद के अनुकूल मिलते नहीं और अन्य जाति वालों को रख नहीं सकते। परिणामतः सरकार की इस पक्षपात पूर्ण नीति के कारण भी युवा-वर्ग में बेकारी बढ़ रही है।

साहसी और उत्साही एक ऐसा युवा-वर्ग भी है, जो निजी व्यवसाय, उद्योग या कारखाना लगाकर अपने को बेकारों की गणना में नहीं लाना चाहता, पर देश के वर्तमान भ्रष्टाचार के विषाक्त वातावरण में हताश हो वह बेकार रह जाता है। कारण, दुकान के लिए चाहिए 'पगड़ी', उद्योग और कारखाने के लिए चाहिए धन। ये दोनों उसकी पहुँच से बाहर रह जाते हैं। बैंक या सहकारी-संस्थाओं से ऐसे छोटे व्यापारियों को कर्ज मिल जाए, यह उनके प्रावधानों में है नहीं। कारण, कागजी खाना-पूरी और शर्तें ऐसी जटिल होती हैं, जिन्हें पूरा करना उसकी सामर्थ्य से बाहर होता है।

युवा-वर्ग की बेकारी का एक मुख्य कारण वर्तमान भारतीय शिक्षा-प्रणाली भी है। यहाँ की शिक्षा-प्रणाली गत डेढ़ सौ वर्षों से 'बाबू' बनाने की मशीन बनी हुई है। 12 वर्ष, 15 वर्ष या 17 वर्ष शिक्षा रूपी चक्की में पिसने के बाद जो कुछ पिस कर निकलता है, वह स्वाभिमान शून्य 'बाबू' रूपी आटा ही होता है। वह ऐसे काम चाहेगा जिसमें वस्त्रों पर शिकन न आए, धब्बे न लगें, उसके झूठे स्वाभिमान को ठेस न पहुँचे, कलम और जीभ से काम चले। 'खाली स्थानों' की पहले ही दुर्दशा है तो इस नव-बाबू वर्ग को कहाँ खपाया जाए?

उपाय है—वर्ग, वर्ण तथा जाति भेद की नीति को त्यागकर समस्त भारत के सरकारी कार्यालयों, अर्द्ध सरकारी कार्यालयों के रिक्त स्थानों को तुरन्त भरा जाए। कोई स्कूल बिना शिक्षक के, कोई दफ्तर बिना बाबू के और कोई न्यायालय बिना न्यायविद् के नहीं रहना चाहिए।

युवा-वर्ग की बेकारी दूर करने के कुछ उपाय हैं—शिक्षा में व्यावसायिक-शिक्षण की अनिवार्यता। कम से कम द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण होने की अनिवार्य शर्त। युवा-वर्ग को लघु उद्योग, व्यवसाय या कारोबार शुरू करने में बैंकों को आर्थिक सहयोग (सहायता) की नीति में लचीलापन। इससे बेकारी की समस्या कुछ सुलझ सकती है।

(120) युवा-असंतोष : कितना लाभकर, कितना हानिकर

संकेत बिंदु—(1) युवावर्ग का असंतोष (2) राष्ट्र के लिए अभिशाप (3) भारत की राजनीति जिम्मेदार (4) साम्प्रदायिक दंगों के कारण (5) राष्ट्र के विकास में बाधक।

युवा वर्ग में संतोष का अभाव ही युवा-असंतोष कहलाता है। वह स्थिति जिसमें किसी काम, वस्तु या उद्देश्य से युवा वर्ग का मन नहीं भरता, या उसे वह पर्याप्त नहीं जान पड़ता, तब उसका खिन्न या रुष्ट होना ही युवा-असंतोष है।

युवाओं के असन्तोष में जोश होता है, बल होता है, साहस होता है, आत्मविश्वास होता है। इसीलिए उसकी परिणति सफलता में होती है। असफलता का शब्द उसके कोश में है ही नहीं। इसलिए ब्रिटेन के विख्यात प्रधानमंत्री डिजरायली ने कहा था, 'Almost everything that is great has been done by youth.' अर्थात् प्रत्येक महान् कार्य युवकों द्वारा किया गया है।' और उसे कार्य-प्रेरणा उसके अन्त:करण के असन्तोष ने दी है।

युवा-असन्तोष आग की चिंगारी की तरह फैलता है। उसकी जवानी उस असन्तोष को भड़काने में घी काम करती है। मृत्यु से निडरता, उसके असन्तोष को ज्वालामुखी की तरह भड़काता है। मंडल-आयोग के प्रति युवाओं के असन्तोष ने ही कतिपय युवाओं को आत्म-दाह जैसे दु:साहस पूर्ण कार्य के लिए प्रेरित किया, जिसने राष्ट्र-हृदय को हिला दिया। फलत: सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को भी मंडल-आयोग की रिपोर्ट को तत्काल लागू करने पर रोक लगानी पड़ी।

युवा-असन्तोष फूटना जानता है, भड़कना जानता है, सर्वस्व अर्पण करना जानता है, पर झुकना कम जानता है। परतंत्रता के विरुद्ध युवा असन्तोष ही था, जो आन्दोलन का प्राण बनकर उसे शक्ति प्रदान करता रहा। आपत्काल में इन्दिरा-तानाशाही को झुकाने में युवा-असन्तोष ही मुख्य कारण था।

युवा-असन्तोष जब अपने उद्देश्य में सफल नहीं होता, तब वह अपने समाज और राष्ट्र के लिए अभिशाप बनता है। समाज-द्रोही बन समाज का अहित करता है। आतंकवादी बन राष्ट्र का ध्वंस करता है। अपनी आत्मा को अभिशप्त करता है तो सुरा-सुन्दरी में डूब जाता है। कश्मीर, असम, आन्ध्र, बिहार आदि प्रदेशों का आतंकवाद वहाँ के युवा-असन्तोष की निराशात्मक स्थिति का परिणाम है। सुरा-सुन्दरी का प्रेम, ड्रग्स का प्रयोग, अपहरण,

बलात्कार का चसका, विद्रोह प्रवृत्ति युवा-असन्तोष की निराशा से उत्पन्न नियति ही तो है।

युवा-असन्तोष का मुख्य कारण आज भारत की राजनीति है। जब युवक देखता है कि कॉलिज में 70 प्रतिशत अंक वाले को प्रवेश नहीं मिलता और 30 प्रतिशत अंक वाला शान से प्रवेश पाता जाता है; जब वह देखता है कि सेवा में नियुक्ति योग्यता पर नहीं होती अपितु वह कुछ लोगों की पैतृक सम्पत्ति बन जाती है, जब वह देखता है कि बेईमानी से अर्थ, यश और सत्ता की प्राप्ति होती है, जब वह देखता है कि जीवन-मूल्यों को समाज-सुधारकों तथा आदर्श-पुरुषों द्वारा रौंदा जा रहा है, तो उसका हृदय विद्रोही बन जाता है। यह विद्रोह ही दूसरे शब्दों में असन्तोष है।

युवा-असन्तोष यदि अपने वर्ग, समाज अथवा राष्ट्र के हितार्थ है तो लाभप्रद है, यदि निजी स्वार्थों से प्रेरित है, समाज और राष्ट्र के अहित की प्राचीर पर खड़ा है तो हानिकर है। युवा असन्तोष यदि न्याय और सत्य की आधारशिला पर प्रतिष्ठित है तो वह लाभकर है। इसके विपरीत वह क्षुद्र स्वार्थों और महत्त्वाकांक्षाओं का भिति पर स्थित है तो वह हानिकर है।

पराधीनता के दिनों में ब्रिटिश-सत्ता के विरुद्ध युवा-असन्तोष के कारण सहस्रों युवकों ने पढ़ाई बन्द कर दी, नौकरी छोड़ दी, विदेशी परिधान का बहिष्कार किया। सन् 1942 के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में युवा-असन्तोष राजकीय सम्पत्ति के विध्वंस, लूट और बगावत में परिणत हुआ। यह असन्तोष अंग्रेजी-सत्ता के विरुद्ध था, इसलिए लाभकर था, क्योंकि इसमें राष्ट्र-हित निहित था।

इसके विपरीत सन् 1946-47 में कट्टर साम्प्रदायिक भावना के कारण मुस्लिम युवकों में असन्तोष फूटा। उस असन्तोष में लाखों हिन्दू मारे गए, वे घर-बार छोड़कर दर-दर की ठोकरें खाने को विवश हुए, अरबों की सम्पत्ति स्वाहा हुई। इसमें जातीय-स्वार्थ था, जिससे भारत का विनाश हुआ, इसलिए यह हानिकारक सिद्ध हुआ। भारत-विभाजन युवा-मुस्लिम असन्तोष का विषफल ही तो था।

जब सत्ताधारी सत्ता के मद में चूर होकर विवेक-शून्य हो जाते हैं, तब वे अपनी सूझ-बूझ, विचार-निर्णय को ईश्वरीय आदेश के समान सत्य मानते हैं, तब युवा-असन्तोष उनके उन झूठे मुखौटों को नोचता है। उनकी कथनी और करनी की दुमुँही चाल का परदा फास करता है। राष्ट्र-जीवन का यथार्थ-पथ दर्शाता है। तब युवा असन्तोष लाभकर कहलाएगा। सत्ता के विरुद्ध विद्रोह होते हुए भी वह देश-भक्ति की पहचान होगा। आपत्काल का युवा-असन्तोष भारत के लिए कितना लाभकर रहा, इसके वर्णन से इतिहास के पृष्ठ रंगे पड़े हैं। स्वयं को 'भारत-माता' मानने वाली इन्दिरा का पतन भारत के लिए वरदान बना।

इसी प्रकार का दूसरा उदाहरण पिछले दशक का असम युवा-असन्तोष था। इसमें अपने प्रदेश के विकास और समृद्धि की भावना थी, पर था यह भी स्व-सत्ता के विरुद्ध। प्रदेश का हित होने के कारण यह लाभकर सिद्ध हुआ। परिणामतः पाँच वर्ष के लिए शासन

ही युवा-असन्तोष के नेताओं ने सम्भाल लिया। इसके विपरीत कश्मीर, त्रिपुरा, बिहार, नक्सलवादी, बोड़ो असन्तोष वर्ग-विशेष के हितार्थ है। उनके अपने सम्पूर्ण प्रांत तथा भारत के लिए घातक है। इसलिए यह हानिकर है।

दूसरी ओर, जब युवा वर्ग परीक्षा स्थगित करने, नकल करने, फीस कम करने, बस-रेल किराए कम करने, स्वच्छन्द आचरण करने, शराब और ड्रग्स में मद-मस्त होने के लिए अपना असन्तोष प्रकट करे तो यह न केवल उनके लिए अपितु समाज और राष्ट्र के लिए हानिकर होगा।

युवा-असन्तोष का लाभकर या हानिकर होना उमके आचरण और उद्देश्य की सफलता पर निर्भर करता है। नेपाली युवकों का प्रजातंत्र के निमित असन्तोष सफल रहा, परिणामत: लाभकर सिद्ध हुआ। प्रजातंत्र-प्रणाली लागू करने के उद्देश्य से चीन में युवा असन्तोष सैनिक बल द्वारा दबा दिया गया तो वह उनके अपने तथा चीन राष्ट्र के लिए हानिकारक सिद्ध हुआ।

(121) 18 वर्ष में मताधिकार का औचित्य

संकेत बिंदु—(1) पहली बार मतदान (2) मतदान की आयु का 18 वर्ष होना (3) छात्रों का सक्रिय राजनीति में योगदान (4) छात्रों द्वारा राजनीति का उपयोग (5) उपसंहार।

आज़ादी के बाद 26 जनवरी 1950 को भारत में संविधान लागू हुआ और इस दिन को गणतंत्र दिवस के नाम से जाना गया। डॉ. भीमराव अंबेडकर विश्व विख्यात विधिवेत्ता थे। भारत के संविधन की रूपरेखा तैयार करने में उन्होंने अथक प्रयास किया। भारतीय शासनतंत्र को प्रजातांत्रिक रूप देने में संविधान सभा के सभी सदस्य सहमत थे। इससे यह स्पष्ट है कि देश में जहाँ भिन्न भाषाएँ, भिन्न धर्म-वर्ग निवास करते हैं, प्रजातांत्रिक शासन व्यवस्था के साथ ही समन्वय रखा जा सकता है। इस व्यवस्था में देश के प्रत्येक व्यक्ति को देश में सरकार बनाने का अपना योगदान देने का अवसर मिला। 21 वर्ष के ऊपर के आयु के व्यक्ति बिना किसी भेदभाव के निर्वाचन में अपना मत देने का अधिकार रखता है और इसी मतदान प्रक्रिया से भारत में सरकार का गठन हुआ।

सन् 1952 में स्वतंत्र भारत का पहला चुनाव देश में सम्पन्न हुआ और इस चुनाव में लगभग 45.7 प्रतिशत मतदान हुआ। 1957 के चुनाव में 47.7 प्रतिशत, 1962 के चुनाव में 55.4 प्रतिशत, 1967 में 61.3 प्रतिशत, 1971 में 55.3 प्रतिशत, 1977 में 60.5 प्रतिशत, 1980 में 57 प्रतिशत, 1984 में 48.1 प्रतिशत रहा।

देश के तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी ने मतदान का प्रतिशत बढ़ाने और अपनी पार्टी की प्रभुसत्ता बनाये रखने के लिए वर्ष 1989 में लोकसभा में एक बिल पास कराया

जिसमें 18 वर्ष के लोगों को भी मतदान में सम्मिलित किया गया। लेकिन 1989 के चुनावों में मतदान का प्रतिशत 36.6 ही रह गया।

कल तक तो विश्वविद्यालय के छात्र ही जिनकी आयु 21 वर्ष होती थीं मतदान में भाग ले सकते थे और अब मतदान की आयु सीमा 18 वर्ष हो जाने से स्कूल-कॉलेज के छात्र भी मतदान में भाग लेने के अधिकारी हो गये। सरकार ने कुछ भी सोचा हो अगर परिणाम इसके विपरीत हुआ। एक तो मतदान का प्रतिशत पहले की अपेक्षा जबकि बढ़ना चाहिए था दूसरे स्कूलों-कॉलेजों के छात्रों में भी राजनीति ने खुलकर प्रवेश किया। यही नहीं छात्रों की पढ़ाई का प्रतिशत भी गिरा।

दूसरी ओर राजनीति के प्रबल रंग से प्रभावित होकर छात्र सड़कों पर भी आये परिणामस्वरूप किसी-न-किसी विवाद को लेकर देश की संपत्ति को हानि हुई। 1989 से अब तक के यदि कार्यकाल को देखा जाये तो विद्यार्थी वर्ग ने राजनीति में सक्रिय भाग लिया। इसी काल में आंदोलन भी अधिक हुए, तोड़फोड़ की घटनाएँ, आगजनी, पत्थरबाजी, इसी खुली राजनीति का परिणाम ही कहा जा सकता है।

मेरे विचार से यदि सरकार 18 वर्ष की आयु के व्यक्ति को मताधिकार के योग का अधिकार न देती तो संभवत: मंडल आयोग के विरोध में छात्रों का आत्मदाह व्यापक स्तर न होता। यह इसलिए संभव हुआ क्योंकि छात्र ने यह जान लिया कि उनके पास सरकार बनाने और सरकार हटाने का अधिकार आ गया है। वर्ष 1991 के चुनावों में छात्रों ने अपनी राजनीति का खुले रूप से उपयोग किया। इस प्रक्रिया से छात्रों की जो पढ़ाई की हानि हुई इसका अनुमान शायद ही किसी ने लगाया हो। नेता बन जाना तो हर व्यक्ति के लिए आसान होता है मगर योग्य व्यक्ति बनकर स्वयं को स्थापित करना जीवन की कसौटी माना जाता है। कक्षा 11 से 12 के छात्र जब अपने मताधिकार की बात कहता है तो मानो ऐसा लगता है कि जैसे उसने कोई 'अल्लादीन का चिराग' प्राप्त कर लिया हो। छात्र जब राजनीति की बात करता है तो वह यह भूल जाता है कि वह इस देश का भावी निर्माता भी है, देश की उन्नति का वह सहायक भी है।

18 वर्ष में मताधिकार का क्या औचित्य है, सरकार ने किस समझ का इसमें परिचय दिया है, यह समझ में बात नहीं आई। इस संदर्भ में तो केवल यहीं कहा जा सकता है कि तत्कालीन सरकार ने मतदान के प्रतिशत को ऊपर उठाने का प्रयास किया होगा और दूरगामी परिणामों पर ध्यान शायद नहीं दिया गया। यदि विद्यार्थी को राजनीति से दूर रखा जायेगा तो यह देश ओर विद्यार्थी दोनों के लिए ही हितकर होगा ऐसा मेरा अपना विचार है। अन्यथा कक्षा 11 व 12 का छात्र पढ़ने में कम राजनीति में अधिक रुचि होगी, जिसके भयंकर परिणाम भी देश के सामने आने लगेंगे।

(122) शिक्षित वर्ग और बेरोजगारी/ बेकार घूमता शिक्षित युवा वर्ग / डिग्री प्राप्त युवा और बेरोजगारी/ हाथ में डिग्री, पर काम नहीं है

संकेत बिंदु—(1) शिक्षित युवा हताश व निराश (2) बेकारी राष्ट्र के माथे पर कलंक (3) दोषपूर्ण सरकारी व्यवस्था (4) सरकारी योजनाएँ कारगर नहीं (5) उपसंहार।

कितनी आकांक्षा लेकन अपने जीवन के प्रत्येक स्वप्न को साकार करने के लिए, अपने जीवन को उभारने, निखारने और सँवारने के लिए, मन में भविष्य को उज्ज्वल बनाने की अनेक योजनाओं को सँजोये जब देश का एक युवा कॉलेज से डिग्री प्राप्त करता है तो पता नही मन में जीवन के प्रति कितने रंगीन सपने, प्यारे से अरमान होते हैं। इंजीनियर, डॉक्टर, वैज्ञानिक, प्रक्तता, वक्ता, अधिवकता आदि अनेक विषयों की डिग्रियाँ हाथ में लिए नवयुवक अपने जीवन की नवीन प्रभात को निहारते हुए विद्यालय को छोड़कर जब अपने वास्तिवक जीवन में प्रवेश करते हैं तो स्थितियाँ देखकर आज का युवा हतप्रभ-सा रह जाता है।

जीवन को नये सिरे से प्रारम्भ करने के लिए अपने हाथ में डिग्री लेकर जब युवा जीविका के क्षेत्र में प्रयास करता है तो लगभग निराशा ही हाथ लगती है। क्योंकि एक ओर बेकारी अपना मुँह फैलाये खड़ी है और दूसरी ओर भ्रष्टाचार का कद काफी ऊँचा होने लगता है, तब इन बेकारी और भ्रष्टाचार के इन पत्रों में डिग्रीधारी युवक फँस जाता है। 'इधर कुआँ-इधर खाई' की कहावत ही सामने खड़ी दिखाई देती है।

1947 में देश स्वतंत्र हुआ, तब से अब तक देश ने प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति की है, मगर नौकरियाँ देने के मामले में देश पिछड़ गया है। उच्च शिक्षा प्राप्त युवा वर्ग नौकरी के लिए भटकता है और नौकरी है कि वह हनुमान् की पूँछ की भाँति हाथ में आने से घबराती-सी लगती है। वैसे हमारे देश में केवल उन्नति और प्रगति के नाम पर भ्रष्टाचार, घोटाले, अनेक काण्डों को तो अवसर अधिक प्राप्त हुआ है मगर जीविका उपार्जन के साधन प्रायः गौण ही होते चले गये हैं। युवा वर्ग के हाथ में उच्चशिक्षा की डिग्री तो है मगर हाथ में काम नहीं है, कैसी विडम्बना है कि एक बालक ने अपना पेट काटकर शिक्षा प्राप्त की, डिग्री प्राप्त की और जब जीवन के व्यावहारिक क्षेत्र में जीविका की तलाश में निकला तो हाथ में निराशा ही लगी? यह हमारे देश की व्यवस्था का दोष है कि देश की सरकार ने अभी तक उच्च शिक्षा प्राप्त छात्र वर्ग के लिए नौकरियों का प्रबंध नहीं किया। बेकारी की समस्या आज देश के माथे पर एक कलंक के समान है। बेरोजगारी देश की आर्थिक व

सामाजिक दशा की अवनति का प्रतीक है, क्योंकि बेकारी देश में अराजकता बढ़ाती है और बेरोजगारी देश, समाज और व्यक्ति के लिए घातक है। एक अर्थशास्त्री ने इस संबंध में अपना मत व्यक्त करते हुए कहा है, "नौकरी लगी तो डिग्री, डिग्री कहलाती है नहीं तो हाथ में पकड़ी डिग्री, बिगड़ी बन जाती है।"

यदि देश के अपराध के ग्राफ पर ध्यान दें तो पिछले कई दशकों से अपराध के क्षेत्र में शिक्षित व्यक्तियों का प्रवेश देश की व्यवस्था पर प्रश्न चिह्न लगाता है। देश में बढ़ रहे अपराधों में लूट, डकैती, मारपीट, हत्या, अपहरण, बलात्कार जैसे घिनौने कृत्यों में डिग्रीधारी युवकों का प्रतिशत भी कम नहीं है। शिक्षित डिग्रीधारी युवक अगर अपराध की दुनिया में प्रवेश करता है तो इसमें दोष हमारी सरकार और सरकारी व्यवस्था का है।

नौकरी पाने के क्षेत्र में आज हर कुर्सी की कीमत निर्धारित हो गयी है, पुलिस के सिपाही की नौकरी की कीमत एक लाख रुपये तक माँगी जाती है, यही हाल सेना में नौकरी का है। कोई भी सरकारी कार्यालय चाहे राज्य सरकार पर हो या भारत सरकार का, किसी भी कार्यालय में नौकरी नीलाम होती है। देश के नेता जब स्वयं भ्रष्ट हैं तो वह अफसरों की भ्रष्टता पर अंकुश क्यों लगाने लगे? नौकरी के क्षेत्र में चाहे इंजीनियर हो या डॉक्टर, वैज्ञानिक हो या अध्यापक, जब लाखों रुपये रिश्वत में कुर्सी नीलाम होती है तो योग्य व्यक्ति नौकरी पाने के लिए पिछड़ जाता है और पैसे के बल पर अयोग्य उस कुर्सी को खरीद लेता है। यही कारण है कि आज के इस समय में लाखों डिग्रीधारी युवक बेरोजगारी की मार झेल रहे हैं, फिर 'मरता क्या न करता' वाली कहावत चरितार्थ होती है तथा अपराध को बढ़ावा मिलता है।

विडम्बना यह है कि सरकार सांसदों और विधायकों का (जो अधिकांश अँगूठा छाप होते हैं) पेट भरने के लिए उनके वेतन में वृद्धि साथ अनेक सुविधाएँ देने के कानून तो बनाती है मगर आजादी के साठ वर्षों में किसी भी सरकार ने उच्चशिक्षा प्राप्त डिग्रीधारी युवकों के लिए आज तक जीविका उपार्जन की कोई योजना नहीं बनायी। अगर सरकार के पास कोई योजना नहीं है तो सरकार को चाहिए कि उच्चशिक्षा के सभी संस्थान बंद करा दें, इससे न उच्चशिक्षा के संस्थान होंगे और युवकों का डिग्रियाँ मिलेंगी फिर न समस्या होगी और न ही कोई समाधान ही खोजना पड़ेगा।

सरकारी स्तर पर स्वरोजगार की घोषणाएँ होती हैं, साथ ही यह भी स्वप्न दिखाया जाता है कि पढ़े लिखे व्यक्तियों को सरकार ऋण देती है। मगर वास्तविकता तो यह है कि ऋण भी केवल नेताओं और मंत्रियों के निकटवर्ती लोगों को ही मिलता है। ऋण के आँकड़े उठाकर यदि देखे जायें तो बिना मंत्री या नेता की सिफारिश के शायद एक प्रतिशत शिक्षित डिग्राधारी को ऋण नहीं मिला होगा।

समाज के अर्थ शास्त्रियों, समाज शास्त्रियों को इस विषय में पहल करने की आवश्यकता है, सरकार पर दबाव बनाया जाये और ऐसा प्रावधान या प्रारूप तैयार कराया जाये जिससे उच्चशिक्षा प्राप्त डिग्रीधारी को या तो सरकार नौकरी दे, या उसके अपनी

जीविका चलाने के लिए बिना किसी नेता या मंत्री की सिफारिश के ऋण उपलब्ध कराया जाये, तभी देश का भविष्य सुरक्षित रह सकता है और उच्चशिक्षा प्राप्त व्यक्ति अपनी जीविका चलाने में सक्षम हो सकता है। जब तक सरकार इस विषय में गंभीरता से नहीं सोचती। तब तक इस समस्या का कोई समाधान नहीं खोजा जाता, जब तक यह बेकारी और बेरोजगारी की समस्या का धुन सारे राष्ट्र को खोखला कर देता। समय रहते इस समस्या का समाधान आना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है।

(123) मोबाइल के लाभ भी, हानियाँ भी / आज की युवा पीढ़ी और मोबाइल

संकेत बिंदु—(1) मोबाइल का आविष्कार नई क्रांति (2) मोबाइल का सौंदर्यीकरण (3) मोबाइल और विद्यार्थी (4) युवा वर्ग पथभ्रष्ट (5) उपसंहार।

'चल चला चल, फकीरा चल चला चल' यह गीत एक फिल्म में आया और जीवन का लगभग अर्थ ही बदलने लगा। देश में आज अधिकांश-व्यक्तियों के पास प्राय: 'मोबाइल' देखने को मिल जाता है, मोबाइल का हिन्दी में अर्थ है—'चलता हुआ' या 'चल चला चल।' वैसे मोबाइल का आविष्कार व्यापारी वर्ग के लिए मुख्य रूप से हुआ, किसी व्यक्ति से तुरंत सम्पर्क किया जा सके, क्योंकि दूसरा टेलीफ़ोन तो केवल घर और कार्यालय या फैक्ट्री की मेज़ों पर सजा रहता है और अमुक व्यक्ति से सम्पर्क में कठिनाई होती थी। इस सुविधा को ध्यान में रखकर वैज्ञानिकों ने 'मोबाइल' नामक यंत्र का अविष्कार कर समाज में एक नयी क्रांति का सूत्रपात किया।

'मोबाइल' को कुछ व्यक्तियों ने 'वाणीयंत्र', 'चलभाषा' का नाम भी दिया, मगर आम जन-साधारण में मोबाइल ही लोकप्रिय हुआ। मोबाइल का लाभ इतना हुआ कि दूर गये व्यक्ति से जब चाहें तब सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है और अपनी समस्या का समाधान हो जाता है। व्यापारी वर्ग, आमजन, साधारण वर्ग, अधिकारी वर्ग, नेता वर्ग, विद्यार्थी वर्ग इस मोबाइल सेवा से लाभान्वित हुआ है।

वर्तमान में मोबाइल का सौंदयीकरण हुआ है। बहुरंगी और कैमरा युक्त मोबाइल भी अब जनता के हाथों में है। यह भी देखा गया है कि मोबाइल में 'एफ. एम.' रेडियो, कैल्कुलेटर, कैमरा आदि अनेक क्रियाएँ आ गयी हैं और मोबाइल अधिक सुविधाजनक हो गया है। मोबाइल के लिए देश में एअरटेल; हच, टाटा, डॉलफिन, रियालन्स, गरुड़ आदि अनेक कम्पनियाँ काम कर रही हैं। कुछ कम्पनियों ने फोन आने की जीवन भर की सुविधा 'इनकमिंग' की योजना लागू कर मोबाइल को जन-जन की पहुँच के लिए अधिक लोकप्रिय बना दिया है। देश-विदेश में कहीं भी मोबाइल के माध्यम से बात की जा सकती है।

मोबाइल सेवा एक जो सबसे बड़ा लाभ हुआ है कि तारों के झंझट से मुक्ति मिल

गयी है; अब न तार कटने का खतरा, न फ़ोन खराब होने का डर। बिना तार के मोबाइल हर समय काम करता है, जब चाहो अपने परिचित मित्र से बात कर लो, मोबाइल में यह सुविधा उपलब्ध है। मोबाइल व्यापारी, अधिकारी या अन्य कामकाजी के हाथ में कार्य क्षमता के अनुसार सही है और इसका प्रयोग भी उपयोगी है, लेकिन असमाजिक तत्त्वों ने मोबाइल का उपयोग गलत कार्य के लिए कर दिया है, यह काम समाज के लिए हानिकारक है। यही नहीं आज की युवा पीढ़ी ने तो केवल मोबाइल को मन बहलाने का साधन बनाकर समाज में विषैलापन फैलाने का जो घिनौना कार्य किया है, वह समाज के माथे पर कलंक है।

विज्ञान ने समाज के उत्थान के लिए और निरन्तर प्रगति के लिए फ़ोन के क्षेत्र में एक नयी क्रान्ति मोबाइल के माध्यम से जो दी है उसका समाज ने और देश के युवा वर्ग ने गलत प्रयोग कर मोबाइल को ही बदनाम कर दिया है। मोबाइल की एस. एम. एस. प्रक्रिया के माध्यम से विद्यालय का छात्र वर्ग अश्लीलता के नये सोपान पार कर रहा है, यहाँ प्रश्न यह भी उठता है कि विद्यालय के छात्र वर्ग के हाथ में मोबाइल का क्या औचित्य है, छात्र-वर्ग कोई व्यापार या व्यवसाय तो कर नहीं रहा केवल विद्याध्ययन के; फिर उसे मोबाइल जैसे उपकरण की क्या आवश्यकता आ पड़ी ? यह अभिभावक भी इसके लिए दोषी हैं जिन्होंने किशोर को शीघ्र युवा होने का प्रोत्साहन दे दिया। यदि ऐसा नहीं है तो फिर विद्यालय के एक छात्र द्वारा अपनी सहपाठी छात्रा के अश्लील चित्रों का अपने मित्रों के मोबाइल पर प्रसारण किस सभ्यता को उजागर करता है ?

प्रश्न उठता है कि मोबाइल द्वारा इस प्रकार की विकृत मानसिकता की व्यवस्था का जिम्मेदार कौन है ? मानव, समाज, नेता, शासक वर्ग का छात्र या अभिभावक या अध्यापक ? यह सच है कि इस प्रकार की क्षणिक मानसिक सन्तुष्टि के लिए या थोड़े से पैसों के लालच में हम किसी की बहन-बेटी की इज़्ज़त बेचने में संकोच नहीं करते, किन्तु यदि सोचा जाये कि वह बहन-बेटी हमारी अपनी भी तो हो सकती है !

युवा छात्र वर्ग के अतिरिक्त समाज के अन्य युवा वर्ग के हाथों में आया हुआ मोबाइल तो कब क्या गुल खिला दे, यह कल्पना भी सहज की जा सकती है। प्राचीनकाल में देश का युवा वर्ग देश का कर्णधार कहा जाता था। देश के युवा वर्ग ने ही अपनी स्वच्छ मानसिकता के बल पर देश को स्वाधीन कराया, मगर तब यह मोबाइल वाली संस्कृति हमारे देश में नहीं थी। अब मोबाइल संस्कृति के आने जाने से देश का युवा वर्ग और विद्यालय का छात्र वर्ग अपने लक्ष्य से भटक गया है, वह अपने दायित्व के निर्वाह से भी विमुख-सा हो गया लगता है।

आज यदि देखा जाये तो हाथ में मोबाइल लेकर देश की युवा पीढ़ी पथभ्रष्ट हो रही है और यह युवा वर्ग की मानसिक कुंठाओं का ही परिणाम है, क्योंकि आज का बालक शीघ्र युवा होने की चाह लिए बैठा है। देश के छोटे-छोटे बच्चों के हाथों में मोबाइल को नहीं कैमरे जैसी चीज़ें विनाश की पराकाष्ठा है। एक विनाश जो आणविक है, परमाणु

तकनीक आदि भौतिकता भी देन है, जिससे बस्ती, घर, मानव सुरक्षित होते हैं मगर मन और बुद्धि का विनाश हो जाता है, मन में कुंठा प्रबल होती है और सोचने की क्षमता शून्य होने लगती है और मन केवल वासना के अतिरिक्त और कुछ सोच नहीं पाता। यदि मोबाइल इस दिशा में इतना उन्नत न होता तो सम्भवत: युवी पीढ़ी पथ-भ्रष्ट न हो पाती।

मोबाइल को केवल विशेष कार्य में प्रयोग में लाना तो हितकर है, मगर असमाजिक गतिविधियों में मोबाइल का प्रयोग व्यक्ति, समाज के लिए हानिकारक ही कहा जायेगा। हमें विज्ञान की इस उपलब्धि से लाभ लेना चाहिए और सम्भव हो सके तो इस मोबाइल के दुरुपयोग से स्वयं को बचाकर रखा जाये।

जीवन-मूल्य

(124) अंधविश्वास

संकेत बिंदु—(1) अंधविश्वास का अर्थ और परम्परा (2) शिक्षित लोगों में अंधविश्वास (3) विश्वास और अनुभव की कसौटी पर खरा न उतरना (4) तांत्रिकों और पाखंड़ियों द्वारा शोषण (5) राजनीतिज्ञों द्वारा स्वार्थ सिद्धि।

बिना सोचे-समझे किया जाने वाला विश्वास अथवा स्थिर किया हुआ मत अंधविश्वास है। किन्हीं परम्परागत रूढ़ियों, किन्हीं विशिष्ट धर्माचार्यों के उपदेशों अथवा किसी राजनीतिक सिद्धांत के प्रति विवेक-शून्य धारणा अंधविश्वास है। ऐसे सुदृढ़ विश्वास जिनका प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा समर्थित होना या न होना व्यर्थ रहता है, अंधविश्वास है। अज्ञान-जनित अविवेकपूर्ण भय तथा पारलौकिक शक्तियों को भोलेपन के साथ स्वीकार करना अंधविश्वास है। इसी प्रकार विज्ञान की कसौटी पर खरी न उतरती आस्थाएँ अंधविश्वास हैं।

अंधविश्वास की परम्परा विश्व-व्यापी है। प्राय: लोग मान लेते हैं कि भारत में अन्य देशों की तुलना में ज्यादा अंधविश्वासी हैं, पर यह एक भ्रामक धारणा है। अंधविश्वास प्रत्येक समाज और प्रत्येक देश में है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी की दृष्टि से अति विकसित देशों में भी इसका खूब प्रचलन है। जिन बाबाओं, भगवानों और तांत्रिकों में भारतीय समृद्ध वर्ग के लोग, राजनीतिज्ञ और कूटनीतिज्ञ आस्था रखते हैं, उन्हीं में पश्चिम के औद्योगिक समाज की भी आस्था स्पष्ट दिखती है।

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के प्रो. हरवंश मुखिया का कहना है, 'अक्सर यह मान लिया जाता है कि अशिक्षित लोग अंधविश्वासों में ज्यादा यकीन करते हैं, जबकि

शिक्षित लोग अधिक विवेकपूर्ण और तर्कसंगत होते हैं। यह एक भ्रामक स्थापना है। उच्च शिक्षा प्राप्त लोगों के बीच भी अंधविश्वास न केवल प्रचलित हैं, बल्कि ऐसे लोगों की आस्था भी इनमें ज्यादा है। चन्द्रास्वामी, बालयोगेश्वर या महेश योगी इसी तबके में सांस्कृतिक नायक बने हुए हैं। अब तो चमत्कारी बाबाओं की धाक इस बात पर निर्भर करने लगी है कि विदेशों में उनकी कितनी मान्यता है।

अनिल स:गोपाल का मत है, 'अनेक सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक अपने निजी जीवन में घोर अंधविश्वासों में लिप्त रहते हैं। ये वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशालाओं में तर्क के आधार पर प्रयोग करते हैं। चूँकि सत्य की खोज में तर्क एक प्रमुख औजार है, किन्तु प्रयोगशाला के बाहर वही वैज्ञानिक आस्थाओं, कर्मकांडों और अन्य नाना प्रकार की गैर तार्किक परिस्थितियों में जीते हैं।'

विश्वास, सत्य और अनुभव जीवन के सम्बल हैं। ये तीनों एक-दूसरे पर निर्भर हैं और एक-दूसरे के अस्तित्व के लिए जरूरी भी हैं। बिना विश्वास के अनुभव नहीं होता और अनुभव सिद्ध हुए बिना किसी बात या तत्त्व को सत्य नहीं मानते। इस प्रकार सत्य और अनुभव के मूल में विश्वास ही है। विश्वास पर ही यह जीवन टिका है। यह मनुष्य की दुर्बलता भी है और शक्ति भी। जब विश्वास अनुभव की कसौटी पर खरा नहीं उतरता तो वह अंधविश्वास और पाखण्ड हो जाता है।

मानव जीवन में ऐसे क्षण आते रहते हैं, जब वह अपने आपको असहाय, अकेला, निराश और असहज पाता है। ऐसे में उसे अपने आप से बाहर निकल कर सहारा ढूँढना पड़ता है और उस सहारे के प्रति विश्वास का ताना-वाना बुनना पड़ता है, चाहे वह छलावा ही क्यों न हो? इसी प्रक्रिया में विश्वास, अंधविश्वास और मिथक जन्म लेते हैं।

जादू-टोनों पर विश्वास तो और भी भयंकर स्थिति है। बीमारी में ओझाओं, गुनियों एवं मन्त्र फूँकने वालों को बुलाना, गंडे-ताबीज पर आस्था और पोए-पीर-पूजा में श्रद्धा वैज्ञानिक प्रगति का घोर अपमान है। इनसे लाखों पाखण्डियों को आश्रय मिलता है, जिनमें साधना का बल नहीं, ज्ञान की ज्योति नहीं, ब्रह्मचर्य का तेज और सात्त्विकता नहीं।

श्री गिरीश्वर मिश्र की धारणा है, 'प्राय: अंधविश्वासों का जन्म और प्रचलन जीवन की अनबूझ पहेली जैसी स्थिति में नियंत्रण करने के लिए होता है। जब मनुष्य को कोई उचित मार्ग दिखाई नहीं पड़ता तो अंधकार में छटपटाहट से उभरने और बचने के लिए जीने का बहाना ढूँढना पड़ता है। अंधविश्वास ऐसे ही बहानों के बलबूते गढ़े जाते हैं, जीवित रहते हैं और आदमी की जिन्दगी में अहम् भूमिका निभाते हैं।'

दूसरी ओर 'औद्योगीकीकरण, नगरीकरण और पश्चिमीकरण को सर्वथा सुरक्षित मानते हुए सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन की जो प्रक्रिया शुरू हुई, उसने हमारे मूल्यों, वरीयताओं, आदर्शों और उनसे जुड़े विश्वासों को झकझोर कर रख दिया है। हमारी प्राथमिकताएं बदल गई हैं और साथ ही साथ हमारे विश्वास भी। पर यह सब अपरिहार्य सामाजिक-ऐतिहासिक दबावों के बीच हुआ, न कि परीक्षा के उपरांत या सोच-विचार

कर। इस स्थिति का परिणाम यह हुआ कि हम एक अस्पष्ट, संदिग्ध और संशयग्रस्त जीवन जीने के लिए अभिशप्त हो गये। जीवन में छल-छद्म, प्रपंच और आडम्बर प्रधान होते गये। साझेदारी और परस्पर भरोसे के स्थान पर दंभ और अहंकार का वर्चस्व बढ़ता गया। तब विश्वास का स्थान अंधविश्वास ने लिया और सामाजिक जड़ता विविध रूपों में प्रकट होने लगी।'

श्री गिरीश्वर मिश्र के शब्दों में, 'आज बौद्धिकता के प्रबल आग्रह की जमीन में भी सत्य, शिव, सुन्दर की दुहाई देने वाले देश में, सत्य की अनुभूति की जिज्ञासा करने वाले नचिकेता के देश में अब कोरे विश्वास, खोखले विश्वास, अनुभव को मुँह चिढ़ाते विश्वास चारों ओर चुनौती दे रहे हैं। उनकी चुनौती तो कोई नहीं स्वीकारता। हाँ, उन्हें हथियार बनाकर या ढाल बनाकर अपना उल्लू जरूर सीधा करने की कोशिश होती रहती है। विश्वास राजनीतिक दाँव-पेंच का हथकंडा हो चला है।'

मध्य-युग में एक साहसी संत ने व्यर्थ की रूढ़ियों, लोकाचारों और क्षुद्र-विचारों का न केवल विरोध किया, अपितु व्यंग्य की धार से काटा भी। इस संत का नाम है कबीर। उदात्त भविष्य के इस महानायक ने हिन्दू और मुसलमानों के अंधविश्वासों की एक साथ खिल्ली उड़ाई है।

पत्थर पूजे हरि मिलें, तो मैं पूजूँ पहार।
ताते घर की चकिया भली, पीस खाय संसार॥

× × ×

मुल्ला मुनारे क्या चढ़हि, साईं न बहरा होय।
जो कारण तू बाँग देहि, दिल ही भीतर जोय॥

वर्तमान समाज को आज फक्कड़ कबीर चाहिए जो न केवल भारत को अंधविश्वास, नकारात्मक रूढ़ियों और अहितकर लोकाचारों से मुक्ति दिला सके, बल्कि सम्पूर्ण विश्व तार्किक सत्य, अनुभव और विश्वास पर जी सके।

(125) अध्ययन

संकेत बिंदु—(1) अध्ययन का महत्त्व (2) दार्शनिकों के विचार (3) अध्ययन से विवेक का जन्म और भय का अंत (4) अलौकिक ज्ञान और आनंद का स्रोत (5) अध्ययन सामग्री के अनन्त रूप।

किसी विषय के सब अंगों अथवा गूढ़ तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए, समझने के लिए और उस पर मनन करने के लिए अध्ययन का महत्त्वपूर्ण योगदान है। जैसे—'दर्शन' को समझने में दर्शन-शास्त्र के अध्ययन का महत्त्व है। किसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए किसी विषय की सब बातों का ज्ञान, उपयोग, परिणाम, प्रभाव, मूल्य आदि की दृष्टि से औरों से बढ़कर समझे जाने में अध्ययन का महत्त्व है। जैसे—समाज की आर्थिक स्थिति

का उपयोग, परिणाम, प्रभाव और मूल्य की दृष्टि से अर्थशास्त्र और वाणिज्य के अध्ययन का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

अध्ययन से कुचिंताएँ मिट जाती हैं। संशय रूपी पिशाच भाग जाते हैं। मन में सद्‌भाव जाग्रत होकर परम शांति प्राप्त होती है। मनुष्य का मस्तिष्क परिष्कृत और हृदय सुसंस्कृत तथा मनोवृति उन्नत होती है।

दार्शनिक लेखक बेकन का विचार है, 'इतिहास का अध्ययन मनुष्य को बुद्धिमान् बनाता है। कविता वाग्विदग्ध बनाती है। गणित सूक्ष्म-चिन्तक बनाता है। विज्ञान गम्भीर-विचारक बनाता है। नीति-शास्त्र भी गंभीर बनाता है। तर्कशास्त्र और वक्तृत्व-कला तर्क-निपुण बनाती है।'

शरीर को पुष्ट करने के लिए जैसे संतुलित आहार की आवश्यकता होती है, वैसे ही मस्तिष्क के विकास के लिए विभिन्न विषयों के अच्छे साहित्य का अध्ययन आवश्यक है। जितना ही हम अध्ययन करते हैं, उतना ही हमको अपने अज्ञान का आभास होता जाता है और अपनी अनभिज्ञता का बोध होता है। इसीलिए बेकन का सुझाव है 'अध्ययन खंडन और असत्य सिद्ध करने के लिए न करो, न विश्वास करके मान लेने के लिए करो, बल्कि मनन और परिशीलन के लिए करो।'

सिसरो का मत है कि 'प्रकृति की अपेक्षा अध्ययन से अधिक मनुष्य श्रेष्ठ बने हैं।' डॉ. जानसन का कहना भी यही है, 'दूसरी वस्तुएँ बल से छीनी जा सकती हैं अथवा धन से खरीदी जा सकती हैं, किन्तु ज्ञान के कपाट केवल अध्ययन से ही खुलते हैं।'

अध्ययन भय की औषध है। प्रेम और प्रकाश की दृष्टि है। अज्ञान को दूर करने का साधन है। सत्य का साक्षात्कार करवाने का माध्यम है। आनन्द, अलंकरण और योग्यता की पृष्ठ-भूमि है।

अध्ययन विवेक का जनक है, जो सभी प्रकार के कर्तव्यों में हमारा पथ-प्रदर्शन करता है। वह नीर-क्षीर की बुद्धि जागृत करता है। जीवन में सौन्दर्य बिखेरता है, व्यक्ति को पराक्रमी बनाता है।

अध्ययन का महत्त्व बताते हुए श्री कुलदीप नारायण लिखते हैं—(अध्ययन से) 'विविध विषयों की जानकारी होती है, अनुभव बढ़ता है। मनुष्य सभ्य और सुसंस्कृत होता है। समाज में प्रशंसा होती है, आदर-मान प्राप्त होता है। व्यक्तित्व उन्नत होता है। उचित-अनुचित का ज्ञान होता है। मानसिक विकास होता है। आंत्मसंतोष तथा सुख की प्राप्ति होती है। मनोरंजन और मानसिक परिष्कार होता है। उच्च-पद को ग्रहण कराता है। लोक में तो व्यक्ति का साथ देता है, परलोक में भी उसका साथी बनता है।'

विश्व के विविध वाङ्मय, दर्शन-शास्त्र, विचारधाराएँ, सिद्धांत, साहित्य, कला, संस्कृति, ज्ञान-विज्ञान अध्ययन के ही परिणाम हैं। इस परिणाम को ग्रहण करने के लिए भी अध्ययन की ही आवश्यकता है। अध्ययन के लिए चाहिए एकांत और एकाग्रचित्तता। एकांत में एकाग्रचित होकर जी चाहे तो वाल्मीकि के तपोवन में विचरिए या कालिदास

के मेघ के साथ अलकापुरी का आनन्द लूटिए। चाहे सूर के पदरूपी पंकजों पर भ्रमर बनकर मँडराते रहिए। चाहे तुलसी के 'मानस' में डुबकी लगाइए। चाहे शेक्सपियर के नाटकों में मानव-प्रकृति को तलाशिए या मिल्टन की ज्ञान-गंगा में अवगाहिए। अगणित ग्रन्थों के महोदधि में जितना-जितना गहरा पैठ सको, उतने ही मोती निकालते जाइए।

अध्ययन अलौकिक आनन्द का स्रोत है, जिसका वर्णन वाणी नहीं कर सकती। वह तो हृदय में अनुभव करने की वस्तु है। त्रैलोक्य का सौन्दर्य और तीनों लोकों की सम्पदा उसके अन्तर्गत ही रहती है। स्वाध्याय के आनन्द-लोक में सत् और चित् का जब योग होता है तो सच्चिदानन्द की प्राप्ति होती है।

वर्तमान वैज्ञानिक युग में अध्ययन-सामग्री अनन्त है। सैंकड़ों समाचार-पत्र, सहस्रों पत्र-पत्रिकाएँ तथा पुस्तकों का तो अथाह भंडार भरा है, व्यक्ति किसका अध्ययन करे किसे छोड़े ? वेंटवर्थ डिल्लन समझाते हैं, 'Choose an author as you Choose a friend.' अर्थात् जैसे मित्र का चयन करते हैं, उसी प्रकार लेखक का भी चयन करें। आचार्य चाणक्य सलाह देते हैं—

अनन्तशास्त्रं बहुलाश्च विद्याः, अल्पश्च कालो बहुविघ्नता च।
यत्सारभूतं तदुपासनीयं, हंसो यथा क्षीरमिवाम्बु मध्यात्॥

शास्त्र अनेक हैं, विद्याएं भी बहुत हैं, समय थोड़ा है, विघ्न भी वहुत हैं। अतएव जैसे हंस जल मिश्रित दूध में से दूध को ही ले लेता है, उसी प्रकार जो कुछ सार भूत हो, उसी को ग्रहण कर लेना चाहिए।

स्थानांग (प्राकृत ग्रंथ) का कहना है—

चत्तारि ए अवायणिज्जा
अविणीए, विगइपडिबद्धे, अविओसितपाहुडे, माई।

चार व्यक्ति शास्त्र-अध्ययन के अयोग्य हैं—अविनीत, चटोरा, झगड़ालू और धूर्त।

मानव-मन में ज्ञान की ज्योति जगाकर उसे विवेकशील बनाने में अध्ययन का महत्त्व है। मानव सत्य का साक्षात्कार कर जीवन में सत्, चित् और आनन्द की उपलब्धि कर सके, इसलिए अध्ययन महत्त्वपूर्ण है।

(126) अनुशासन

संकेत बिंदु—(1) व्यवस्था का सृजन और अनुसरण (2) मानवीय गुणों का विकास और शालीनता (3) दुष्प्रवृतियों का त्याग और सद्प्रवृतियों को ग्रहण करना (4) स्वतंत्रता और अनुशासन (5) अनुशासनहीनता बुराइयों और कुरीतियों का घर।

जीवन में व्यवस्था का अनुसरण करना 'अनुशासन' है; सम्बन्धित नियमों का पालन अनुशासन है; अपने को वश में रखना अनुशासन है। नियमानुसार जीवन के प्रत्येक कार्य करना जीवन को अनुशासन में रखना है।

व्यवस्था ही सृजन का मुख्य आधार है। सूर्य, चन्द्र, वायु, पृथ्वी, सभी अपने-अपने नियमानुसार चलते हैं। इनके परिभ्रमण में जरा-सा भी अनुशासन भंग हो जाए, तो प्रलय मच जाएगी। चौराहे पर खड़ा ट्रैफिक-पुलिस का सिपाही अनुशासन का प्रतीक है। उसकी आज्ञा के उल्लंघन का अर्थ होगा—यातायात में आपा-धापी, दुर्घटनाएँ और परिणामत: यातायात में अवरोध।

जीवन का नियंत्रण बाहरी भी होता है और आन्तरिक भी। बाहरी अनुशासन अर्थात् विवशतावश अनुशासन में रहने की बाध्यता। मन जिसको स्वीकार न करे, ऐसा अनुशासन। वस्तुत: वह अनुशासन नहीं, बेबसी है। आपत्काल की बेबसी का स्मरण कर आज भी आत्मा काँप उठती है। असली अनुशासन तो वह है, जिसके लिए हमारा हृदय हमें स्वयं प्रेरित करता है।

अनुशासन से दैनिक जीवन में व्यवस्था आती है। मानवीय गुणों का विकास होता है; नियमित कार्य करने की क्षमता, प्रेरणा प्राप्त होती है और उल्लास प्रकट होता है। कर्तव्य और अधिकार का समुचित ज्ञान होता है। अनुशासन जीवन में रस उत्पन्न करके उसका विकास करता है। उन्नति का द्वार है अनुशासन। परिष्कार की अग्नि है अनुशासन जिससे प्रतिभा-योग्यता बन जाती है।

अनुशासन स्वभाव में शालीनता उत्पन्न करता है; शिष्टता, विनय और सज्जनता की वृद्धि करता है; शक्ति का दुरुपयोग नहीं होने देता। नियंत्रण पाकर शक्ति संगठित होती है और अपना प्रभाव दिखाती है। इससे व्यक्तिगत जीवन उन्नत होता है।

भोजन में अनुशासन शरीर को स्वास्थ्य प्रदान करता है। वस्त्र-परिधान में अनुशासन अर्थात् वस्त्रों को ऋतु के अनुसार अनुकूलता शरीर को नीरोग रखती है। इन्द्रियों पर अनुशासन जीवन को महान् बनाता है।

आदर्श जीवन की प्राप्ति के लिए दुष्प्रवृत्तियों के त्याग के प्रयास और सद्वृत्तियों के ग्रहण के अभ्यास का दूसरा नाम है अनुशासन। मन, वचन और कर्म के संयम से जो व्यक्ति मन पर नियंत्रण कर सकता है, उसके वचन और कर्म स्वत: अनुशासित हो जाते हैं। उनमें पवित्रता आ जाती है। यही बात वाणी और कर्म की है। वाणी का अनुशासन मन और कर्म, दोनों को निर्मल बनाने में सहायक होता है और कर्म की पवित्रता वाणी में ओज और मन में पुण्य की भावना उत्पन्न करती है।

किसी कार्य के प्रति एकाग्रता, ध्यान अथवा साधना अनुशासन पर ही अवलम्बित है। कभी-कभी साधना करते-करते इन्द्रियाँ मन का शासन स्वीकार नहीं करतीं, बेकाबू हो जाती हैं। इन मनचली स्थिति में दृढ़ता जाती रहती है, काम की पकड़ ढीली हो जाती है, आनन्दप्रद सफलता नहीं मिल पाती। यहाँ आकर गीता हमें उपदेश देती है—'बार-बार प्रयत्न करने का।' और अन्त में हम अनुशासन की चरम सीमा प्राप्त कर लेंगे, जहाँ कार्य, विचार और शब्द नपे-तुले रूप में सम्मुख आएँगे।

कुछ लोग अनुशासन को स्वतन्त्रता में बाधक मानते हैं। ऐसा सोचना तथ्य को जुठलाना है। अनुशासन में भी नियन्त्रण रहता है और स्वतन्त्रता में भी। नियन्त्रण दोनों में है। स्वतन्त्रता

का अर्थ है—स्वयं अपना नियन्त्रण। अपने पर नियन्त्रण रखना भी एक प्रकार का अनुशासन है। स्वतन्त्रता जहाँ अपने अधिकार की रक्षा करती है, वहाँ दूसरों के अधिकारों को भी उतना ही अवसर प्रदान करती है। अत: स्वतन्त्रता जहाँ अनुशासनहीन हो जाती है, नियम-पालन की सीमा तोड़ देती है, वहाँ स्वच्छन्दता आ जाती है। आप वर्षा से बचाव के लिए छाता लेकर पटड़ी पर चल रहे हैं। ठीक है, आप वर्षा से अपने बचाव के लिए स्वतंत्र हैं, किन्तु यदि आप छाते से क्रीडा करें तो यह स्वच्छन्दता होगी। कारण, आपकी अनुशासनहीनता से छाता पटड़ी पर चलते किसी व्यक्ति की आँख में लग सकता है, या शरीर के किसी भाग को चोट पहुँचा सकता है।

छात्र-जीवन की अनुशासनहीनता में विद्यार्थी भस्मासुर की भाँति अपना ही सर्वस्व स्वाहा कर लेता है। कारण, मन की रोषपूर्ण और विनाशकारी प्रवृत्ति उसके अध्ययन में बाधक होती है। पारिवारिक-जीवन की अनुशासनहीनता कलह को जन्म देती है। कलह अशांति की जननी है। अशांति सुख-समृद्धि का शत्रु है। सुख-समृद्धि का अभाव पारिवारिक जीवन का विनाश करता है। अनुशासनहीन समाज में बुराइयाँ, कुरीतियाँ तथा कुप्रथाएँ घर कर लेती हैं। नैतिक गुणों का ह्रास होगा तो परस्पर सहयोग, सद्भाव और सह-अस्तित्व की भावना लुप्त होगी। समाज अवनति के गर्त की ओर तीव्रता से बढ़ेगा। विनाश के महासमुद्र में डूबने को तत्पर रहेगा। राष्ट्र की अनुशासनहीनता तो अति हानिकर है। राष्ट्रीय-जीवन में अनुशासनहीनता राष्ट्र के प्रति शत्रुता है। राष्ट्रीय जीवन को विषाक्त करने का माध्यम है। परतन्त्रता को निमन्त्रण देने वाला है; राष्ट्र को विनाश के गड्ढे में धकेलने का दुष्कृत्य है।

जीवन में अनुशासन-पालन न केवल आवश्यक ही है, अपितु अनिवार्य भी है। अनुशासित रूप में चलने पर ही जीवन की सफलता आधारित है। जहाँ अनुशासन नहीं, वहाँ सफलता नहीं, समृद्धि नहीं, विकास नहीं। तभी तो महाभारत युद्ध से पूर्व अर्जुन ने भगवान् श्री कृष्ण से कहा था—'शाधि मां त्वां प्रपन्नम्'। (प्रभो! मैं आपकी शरण में हूँ, मुझे अनुशासित कीजिए।)

(127) अहिंसा

संकेत बिंदु—(1) शास्त्रों में अहिंसा की व्याख्या (2) अहिंसा के लक्षण (3) अहिंसा के विविध सोपान (4) अहिंसा का बीजारोपण (5) गाँधी जी का अहिंसा सिद्धांत।

शास्त्रों में अहिंसा को पंच यमों में से एक माना गया है। किसी प्राणी का अकारण घात न करना या किसी को किसी भी प्रकार पीड़ा न पहुँचाना अहिंसा है। अहिंसा सत्य का प्राण है, स्वर्ग का द्वार है, जगत् की माता है, आनन्द का अजस्र स्रोत है, उत्तम गति है, शाश्वत श्री है और है मानव-मात्र के लिए परम धर्म।

इसलिए महर्षि दयानन्द कहते हैं, 'मनसा, वाचा, कर्मणा, किसी को किसी प्रकार का दु:ख न पहुँचाओ। क्रोध को क्षमा से, विरोध को अनुरोध से, घृणा को दया से, द्वेष को प्रेम से और हिंसा को अहिंसा की प्रतिपक्ष भावना से जीतो।'

मलूकदास कहते हैं—

पीर सबन की एक सी मूरख जानत नाहिं।
काँटा चुभें पीर है, गला काटि को खाई॥

गुरुनानक इसी बात का समर्थन करते हुए कहते हैं—

क्या बकरी क्या गाय है, क्या अपनो जाया।
सबको लोहू एक है, साहिब फरमाया।
पीर पैगम्बर औलिया, सब मरने आया।
नाहक जीव न मारिये, पोषण को काया॥

प्रभु राम का असुर संहारार्थ युद्ध, योगेश्वर कृष्ण का 'विनाशाय च दुष्कृताम्' महाभारत युद्ध, शिवाजी का हिन्दू रक्षार्थ मुगलों पर आक्रमण, क्रांतिकारियों का स्वातन्त्र्य प्राप्ति के लिए सशस्त्र विद्रोह, पवित्र 'स्वर्ण मन्दिर' में सैनिक कार्यवाही, सब अहिंसा की सीमान्तर्गत हैं। जैन महामुनि उमा स्वाति जी के 'तत्त्वार्थ सूत्र' का प्रस्तुत सूत्र इसका समर्थन करता है। 'प्रमत्त योगात् प्राण व्यरोपणं हिंसा'—'प्रमत्तयोग' हिंसा है। शांत, सुविचारित, कल्याणार्थ हिंसा भी अहिंसा ही है।

कायरता, भीरुता, दुर्बलता, नपुंसकता, परिस्थितियों से साक्षात्कार का अभाव, मनोबल की हीनता के नाम पर समर्पण अहिंसा नहीं। यह अहिंसा का ढोंग है, प्रदर्शन है, प्रवंचना है। आततायी लोगों के अत्याचार सहन करना, प्रतिकार या प्रतिरोध न करना अहिंसा नहीं। धर्म विरोधी आचरण अहिंसा नहीं। असामाजिक तत्त्वों के अनाचार को सहना अहिंसा नहीं। भारत-विभाजन इसी प्रवंचनामयी अहिंसा का दुष्परिणाम है। उग्रवाद के आगे अहिंसात्मक समर्पण अहिसा का ढोंग ही तो है। दिनकर जी का यह कथन, '**क्षमा शोभती उस भुजंग को, जिसके पास गरल है,**' सच्ची अहिंसा के लक्षण प्रस्तुत करता है। अत: अहिंसा वीरता का भूषण है तो कायर के भाल का कलंक।

ईर्ष्या-द्वेष से रहित, लोभ-लालच, स्वार्थ से ऊपर उठकर, सौम्य व्यवहार, मधुर तथा हितकर वचन पर-पीड़ा हरण अहिंसा के विविध सोपान हैं। राज्य के स्थान पर वनवास मिलने पर विमाता कैकेयी के प्रति श्रीराम का लेशमात्र भी मन में विपरीत न सोचना, द्वारिकाधीश श्रीकृष्ण का दीन-दरिद्र मित्र सुदामा का सेवा-सत्कार, युधिष्ठिर के यज्ञ में श्रीकृष्ण का जूठी पत्तल उठाने का कर्म, शत्रु-वर्ग की नारी को माँ कहकर, सुरक्षित लौटा देने वाले छत्रपति शिवाजी का कार्य 'अहिंसा' के जीवन्त रूप हैं।

इसके विपरीत 'पत्नी से कठोर व्यवहार करना. उसके प्रति अप्रामाणिक हो जाना, बच्चों से उपेक्षापूर्ण व्यवहार करना; उनके स्वास्थ्य, शिक्षा, शील आदि की चिन्ता न करना, भृत्यों (नौकरों) से तुच्छता का व्यवहार, पड़ोसी से लड़ाई, मित्रों से प्रवंचना, निर्धनों का

उत्पीड़न, वृद्ध और रोगियों की सेवा न करना, अधिकार या पद का दुरुपयोग करना, किसी को झूठी आशा दिलाकर धोखा करना, ये सब हिंसा के विविध प्रकार हैं। विश्व-युद्ध की अपेक्षा ये अधिक भयानक हैं।' (डॉ. प्र.ग. सहस्रबुद्धे, जीवन मूल्य : भाग 1)

वैदिक युग की कामना 'सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः ' अहिंसा की सुदृढ़ नींव है। राम और कृष्ण-युग में 'विनाशाय च दुष्कृताम्' अहिंसा का बीजारोपण हैं। बौद्ध और जैन युग अहिंसा का यौवन-काल था, जिसमें न केवल भारत, अपितु विदेशी भी अहिंसा की दीक्षा में दीक्षित हुए। मुगलों की परतन्त्रता में संत युग का आविर्भाव हुआ। सूर, तुलसी, नानक, मीरा आदि सन्तों ने अहिंसा की ज्योति को प्रदीप्त रखा। आधुनिक युग में महात्मा गाँधी को अहिंसा का देवता माना गया। इस प्रकार भारत अहिंसा की जन्म-भूमि, कर्म-भूमि तथा प्रेरणा भूमि है।

गाँधी जी की अहिंसा विभिन्न रूपा थी, विरोधाभासमूलक थी। इसमें सत्य का आग्रह था, आत्मा की आवाज थी, किन्तु देश को इस प्रयोग की बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ी। एक ओर चौरा-चौरी सत्याग्रह के मामूली से अहिंसात्मक रूप से गाँधी जी ने आन्दोलन वापिस लेकर हिंसा के प्रति विरोध प्रकट किया, तो सन् 1942 के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में कांग्रेसियों ने इतनी भयंकर हिंसा की कि बिहार का कोई स्टेशन भस्म होने से बचा नहीं, फिर भी वे मौन रहे। तीसरी ओर उन्होंने अली बन्धुओं के साथ मिलकर अफगानिस्तान को भारत पर आक्रमण करने के लिए प्रेरित किया। शायद इसीलिए गाँधी जी ने कहा, 'अहिंसा का मार्ग तलवार की धार पर चलने जैसा है, जरा-सी गफलत हुई कि नीचे गिरा। देहधारी के लिए उसका सोलह आने पालन असम्भव है।'

अहिंसा मन में शान्ति, हृदय में उत्साह और जीवन में सफलता का पथ प्रशस्त करती है। राष्ट्र को सुखी-समृद्ध एवं विकासवान् बनाती है। संसार में शान्ति, भौतिक उन्नति तथा मानवता की महानता को प्रेरित करती है। 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' का चिन्तन जागृत कर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का स्वप्न साकार करती है एवं आनन्द के अजस्र स्रोत को प्रवहमान रखती है।

(128) आत्म-हत्या

संकेत बिंदु—(1) पहले दर्जे की कायरता (2) आत्महत्या के अनेक कारण (3) उपभोक्ता संस्कृति और निराशा (4) आत्महत्या के 16 प्रमुख कारण (5) आत्महत्या और इच्छा मृत्यु में अंतर।

अपने हाथों अपना वध कर देना आत्म-हत्या या आत्मघात है। दूसरे शब्दों में, अपने प्राण जान-बूझकर अपने हाथों नष्ट करना आत्म-हत्या है। मानसिक तनाव में प्रभु इच्छा के विरुद्ध किन्हीं भयंकर कष्टों को न सह सकने पर अत्यधिक ऊँचे पर्वत, या भवन से छलांग लगाकर या गले में फंदा लगाकर मृत्यु को वरण करना आत्म-हत्या है।

आत्म-हत्या का निर्णय मनुष्य सर्वथा असह्य वेदना के क्षण में ही लेता है। मृत्यु का चुनाव वह इसलिए करता है कि क्योंकि उसका अपनी शर्तों पर सुख और शांतिपूर्ण जीवन जीना असंभव हो गया है। वह जीना तो चाहता है, पर उसकी दृष्टि में उसके लिए कोई मार्ग शेष रह नहीं जाता। इसलिए आत्म-हत्या मानवीय कर्म नहीं, बल्कि जीवन की विफलता है। दु:साहसपूर्ण होने पर पहले दर्जे की कायरता है।

'आत्म-हत्या के कारण अनेक हो सकते हैं, किन्तु प्रमुख कारण है ईश्वर का निषेध। जब मनुष्य ईश्वर से जुड़ा हो तो वह आत्म-हत्या करने के बारे में सोच भी नहीं सकता। ईश्वर की मृत्यु के बाद मनुष्य इस पूरे ब्रह्माण्ड में अकेला हो गया, दूसरी ओर आधुनिक जीवन-व्यवस्थाओं ने उसे और भी अकेला कर दिया। अत: जिनकी संवेदनशीलता नष्ट नहीं हो पाई, वे सोचने लगे कि जीवन कितनी ऊलजलूल चीज है। यह सवाल सार्थक है या निरर्थक, यह सवाल भी दरअसल, महत्त्वाकांक्षी चित्त से ही पैदा होता है। उसे हर चीज का कुछ न कुछ अर्थ चाहिए। जीवन का उस तरह कोई अर्थ नहीं हो सकता, क्योंकि यह कोई क्रिया नहीं है, यह तो एक स्थिति है। जब व्यक्ति का चिंतन नकारात्मक हो जाता है तो वह आत्म-हत्या करने की बात सोचने लगता है।' (पत्रकार राजकिशोर)

प्रख्यात मनोवैज्ञानिक जुंग ने अपने परीक्षणों में पाया था कि नास्तिकों में आत्म-हत्या की दर सबसे ज्यादा होती है। उसका निष्कर्ष था कि धर्म व्यक्ति को समुदाय के साथ एक निश्चित भावनात्मक रिश्ते में बाँधता है, वह उसे अकेला और निराश होने से रोकता है, जीवन का एक बृहत्तर लक्ष्य उसके सामने प्रस्तुत करता है इसलिए धार्मिक आस्थाओं के व्यक्ति अपेक्षाकृत कम आत्मघात करते हैं।

दूसरी ओर विभिन्न कारणों से जब मानव के लिए जीवन बोझ बनता जा रहा हो और आत्मा अत्यन्त निर्बल हो जाए तो हताशा या निराशा की स्थिति व्यक्ति को घेर लेती है। वह अपेक्षाकृत अपने को अधिक अधीर महसूस करता है। मामूली-सा भी झटका उसे आत्म-हत्या का मार्ग प्रशस्त करता है।

तीसरी ओर, औद्योगीकरण के साथ-साथ बढ़ती है उपभोक्ता संस्कृति। लालची प्रवृत्ति, गतिशीलता एवं संवेदनशीलता उपभोक्ता संस्कृति की देन है। परिणामत: व्यक्ति को निरन्तर मानसिक-तनाव में जीना पड़ता है। इसी तनाव के दो ही दु:खद परिणाम हैं—(1) दिल का दौरा (2) आत्म-हत्या की ओर प्रेरित होना।

विश्व कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर का विचार है कि 'लोगों के एक-दूसरे के नजदीक रहते हुए भी लगातार मानवीय मूल्यों की अपेक्षा करना आत्म-हत्या की निश्चित प्रक्रिया है।'

समाज-शास्त्री महावीर 'अधिकारी' का विचार है, 'हत्या से भी बड़ा अपराध आत्म-हत्या को माना गया है, इसलिए कि इससे हर जीने वाले का जीवन पर से विश्वास उठने लगता है और शायद इसलिए भी कि आत्म-हत्या करने की इच्छा उस मन:स्थिति में पैदा होती है जब आदमी अपने गुनाह के प्रति प्रायश्चित की अग्नि में तपकर जीने के लिए सर्वथा उपयुक्त होकर भी जीवन का अंत करना चाहता है।'

'एक्सीडेंटल डेथ्स एंड स्यूसाइड्स इन इंडिया 1999' के अनुसार आत्म-हत्याओं के 16 कारण हैं—

(1) परीक्षा में असफलता (2) ससुराल-पक्ष के साथ लड़ाई-झगड़ा (3) पति-पत्नी के बीच तनाव (4) गरीबी (5) प्रेम से संबंधित मामले (6) उन्माद (7) सम्पत्ति को लेकर विवाद (8) असाध्य रोग (9) बेरोजगारी (10) दीवालियायन अथवा आर्थिक स्थिति में अचानक बदलाव (11) प्रियजन की मृत्यु (12) सामाजिक प्रतिष्ठा में गिरावट (13) दहेज विवाद (14) अवैध गर्भधारण (15) अज्ञात और (16) अन्य कारण।

इसी विवरणिका में आत्म-हत्या के लिए अपनाए गए 11 साधनों का भी उल्लेख है। ये हैं—

(1) रेलवे लाइन से कटकर (2) मशीन से कटकर (3) अग्नि, शस्त्र और हथियारों से (4) विष खाकर (5) आग लगाकर (6) पानी में डूबकर (7) फाँसी लगाकर (8) ऊँचे स्थान से कूद कर (9) नींद की गोली खाकर (10) बिजली का तार पकड़कर तथा अन्य साधनों से आत्मघात करना।

इसी विवरणिका के अनुसार आत्म-हत्या की वजहों पर नज़र डाली जाए तो सबसे ज्यादा आत्महत्याएं (करीब 11.1 प्रतिशत) उन लोगों ने कीं, जो किसी न किसी असाध्य रोग (ड्रेडफुल डीजीज) के शिकार थे। सास-ससुर से झगड़े के चलते 6.9 प्रतिशत लोगों ने आत्महत्याएं की। 5.8 प्रतिशत आत्महत्याएं पति-पत्नी विवाद और 4.1 प्रतिशत आत्महत्याएं प्रेम-संबंधों में आयी दरारों के चलते हुईं। सबसे अधिक लोग जहर खाकर मरे। फाँसी लगाकर, पानी में डूबकर, जलकर और रेल से कटकर मरने वालों की संख्या भी काफी रही।

इच्छा मृत्यु में व्यक्ति जब चाहता है तभी प्राण विसर्जित करता है, किन्तु आत्म-हत्या और इच्छा मृत्यु दोनों में अन्तर है। 'आत्मा-हत्या' जीवन की विफलता है और 'इच्छा मृत्यु' जीवन की सफलता, प्रसन्नता और उत्सर्ग की सूचक है। प्रभु श्रीराम ने सरयू में जल समाधि लेकर जीवन उत्सर्ग किया। 'भीष्म' ने उत्तरायण होने पर ही स्वेच्छा से मृत्यु का आलिंगन किया। विष का प्याला पीकर मीरा कृष्णमय हो गई। राजपूत नारियों ने 'जौहर' की चिता में जलकर अपने जीवन को धन्य किया। 'सती' होकर अनेक नारियाँ पति का साथ निभाती हैं।

'आत्म-हत्या' करके मरने के लिए प्रस्तुत होना, भगवान् की अवज्ञा है। जिस प्रकार सुख-दु:ख उसकी देन हैं, उन्हें मनुष्य झेलता है, उसी प्रकार प्राण भी उसकी धरोहर हैं।

—जयशंकर प्रसाद (राज्यश्री. पृष्ठ 56)

(129) दैव-दैव आलसी पुकारा/आलस्य

संकेत बिंदु—(1) मानसिक और शारीरिक शिथिलता (2) आलस्य और सफलता का नाता (3) विद्वानों और संतों द्वारा निंदा (4) आलस्य के दुष्परिणाम (5) आलसी और परिश्रमी में अंतर।

दुनिया में हाथ-पैर हिलाना नहीं अच्छा।
मर जाने पै उठके कहीं जाना नहीं अच्छा।।
बिस्तर पर मिसले सोच पड़े रहना हमेशा।
बन्दर की तरह धूम मचाना नहीं अच्छा।।
धोती भी पहनै जबकि कोई गैर पिन्हादे।
उमरा को हाथ-पैर चलाना नहीं अच्छा।।

—भारतेन्दु (भारतेन्दु नाटकावली, पृष्ठ 612)

ऐसी मानसिक या शारीरिक शिथिलता जिसके कारण किसी काम को करने में मन नहीं लगता आलस्य है। कार्य करने में अनुत्साह आलस्य है। सुस्ती और काहिली इसके पर्याय हैं। संतोष की यह जननी है, जो मानवीय प्रगति में बाधक है। वस्तुतः यह ऐसा राजरोग है, जिसका रोगी कभी नहीं सँभलता। असफलता, पराजय और विनाश आलस्य के अवश्यम्भावी परिणाम हैं।

श्री कौटिल्य का कथन है—

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थ महान् रिपुः।
नास्त्युद्यमसमो बन्धुः कृत्वा यं नावसीदति॥

आलस्य मनुष्य के शरीर में रहने वाला सबसे बड़ा शत्रु है। उद्यम के समान मनुष्य का कोई बंधु नहीं है, जिसके करने से मनुष्य दुःखी नहीं होता। यजुर्वेद तो एक पग और आगे बढ़कर कहता है, 'भूत्यै जागरणम् अभूत्यै स्वप्नम्।' जागना (उद्यम) ऐश्वर्यप्रद है और सोना (आलस्य) दरिद्रता का मूल है। ऐत्तरेय ब्राह्मण पड़े-पड़े सोते रहने को ही कलियुग मानता है, 'कलिः शयानो भवति।'

आलसियों का सबसे बड़ा सहारा 'भाग्य' होता है। उन लोगों का तर्क होता है कि 'होगा वही जो राम रचि रखा।' प्रत्येक कार्य को भाग्य के भरोसे छोड़कर आलसी व्यक्ति परिश्रम से दूर भागता है। इस पलायनवादी प्रवृत्ति के कारण आलसियों को जीवन में सफलता नहीं मिल पाती। वस्तुतः आलस्य और सफलता में 3-6 का नाता है।

बिना परिश्रम के तो शेर को भी आहार नहीं मिल सकता। यदि वह आलस्य में पड़ा रहे, तो भूखा ही मरेगा। कहा भी है—

उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः।।

इस उक्ति से यह तथ्य तो स्पष्ट हुआ ही है कि परिश्रम से ही कार्य सिद्ध होते हैं।

साथ ही एक और तथ्य पर भी प्रकाश डाला गया है कि केवल खयाली पुलाव पकाने से, शेखचिल्ली की तरह कोरी कल्पनाएं करने से, जीवन में सफलता नहीं मिल सकती। पड़े-पड़े हवाई महल बनाना यह करूँगा, वह करूँगा, तब ऐसा होगा, वैसा होगा, इस प्रकार सोचते रहना, आलसियों का स्वभाव होता है। सोचते-सोचते ही वे समय नष्ट कर देते हैं और कार्य कुछ होता नहीं।

आलस्य की भर्त्सना सभी विद्वानों, संतों, महात्माओं और महापुरुषों ने की है। स्वामी रामतीर्थ ने आलस्य को मृत्यु मानते हुए कहा, 'आलस्य आपके लिए मृत्यु है और केवल उद्योग ही आपका जीवन है।' संत तिरुवल्लुवर कहते हैं, 'उच्च कुल रूपी दीपक, आलस्य रूपी मैल लगने पर प्रकाश में घुटकर बुझ जाएगा।' संत विनोबा का विचार है, 'दुनिया में आलस्य बढ़ाने सरीखा दूसरा भयंकर पाप नहीं है।' विदेशी विद्वान् जैरेमी टेरल स्वामी रामतीर्थ से सहमति प्रकट करते हुए कहता है 'आलस्य जीवित मनुष्य को दफना देता है।'

दैनन्दिन जीवन में आलस्य के दुष्परिणाम हम देखते हैं, भुगतते हैं। प्रात: बिस्तर छोड़ने के आलस्य में विद्यालय या तो विलम्ब से पहुँचते हैं या फिर बिना स्नान किए, यों ही हाथ-मुँह पोंछकर पागलों की तरह भागना पड़ता है। स्कूल का कार्य करने में आलस्य किया तो दण्डस्वरूप डैस्क पर खड़े होने की सजा भोगनी पड़ती है।

आलस्य के दुष्परिणाम केवल विद्यार्थी-जीवन में भोगने पड़ते हों, ऐसी बात नहीं। जीवन के सभी क्षेत्रों में उसके कड़वे घूँट पीने पड़ते हैं। शरीर को थोड़ा कष्ट है, आलस्यवश उपचार नहीं करवाते। रोग धीरे-धीरे बढ़ता जाता है। जब आप डॉक्टर तक पहुँचते हैं, तब तक शरीर पूर्ण रूप से रोगग्रस्त हो चुका होता है, रोग भयंकर रूप धारण कर चुका होता है।

खाने की थाली आपके सामने है। खाने में आप अलसा रहे हैं, खाना अस्वादु बन जाएगा। घर में कुर्सी पर बैठे-बैठे छोटी-छोटी चीज के लिए बच्चों को तंग कर रहे हैं, न मिलने या विलम्ब से मिलने पर उन्हें डाँट रहे हैं, पीट रहे हैं, घर का वातावरण अशांत हो उठता है—केवल आपके थोड़े से आलस्य के कारण। इस कारण आलस्य सारे अवगुणों की जड़ है। चेस्टर फील्ड इसे 'मूर्खों का अवकाश दिवस' मानते हुए 'दुर्बल मन वालों का एकमात्र शरणदाता मानता है।'

'आलस्य में दरिद्रता का वास है। आलस्य परमात्मा के दिए हुए हाथ-पैरों का अपमान है। आलस्य परतन्त्रता का जनक है। इसीलिए देवता भी आलसी से प्रेम नहीं करते'

(ऋग्वेद)।

आलसी मनुष्य सदा ऋणी और दूसरों के लिए भार-रूप रहता है, जबकि परिश्रमी मनुष्य ऋण को चुकाता है तथा लक्ष्मी का उसके यहाँ वास होता है। आलस्य निराशा का मूल है और उद्योग सफलता का रहस्य। उद्यम स्वर्ग है और आलस्य नरक। आलस्य सब कामों को कठिन और परिश्रम सरल कर देता है।

पाश्चात्य विद्वान् रस्किन ने चेतावनी देते हुए लिखा है, 'आलसियों की तरह जीने से समय और जीवन पवित्र नहीं किये जा सकते।' अत: आलस्य को अपना परम शत्रु समझो और कर्तव्य-परायण बन परिस्थिति का सदुपयोग करते हुए उसे अपने अनुकूल बनाओ। कारण, कार्य मनोरथ से नहीं, उद्यम से सिद्ध होते हैं। जीवन के विकास-बीज आलस्य से नहीं, उद्यम से विकसित होते हैं।

(130) कर्तव्य-परायणता

संकेत बिंदु—(1) चित की शांति और आत्मसुख का मंत्र (2) अवसर के अनुकूल कार्य (3) स्वैच्छिक कर्त्तव्य के प्रकार (4) महापुरुषों की कर्त्तव्यपरायणता (5) आज का युग कर्त्तव्य-विमुखता का कलंकित युग।

ऐसा काम जो किया जाने के योग्य हो, उसमें निरत रहना कर्तव्य-परायणता है। ऐसा काम जिसे पूरा करना अनिवार्य और परम धर्म हो उसमें निरन्तर संलग्न रहना कर्तव्य-परायणता है। ऐसा कृत्य जिसे सम्पादित करने के लिए व्यक्ति विधान या शासन द्वारा बंधा हो, उसे पूर्ण रूपेण पालन करना कर्तव्य-परायणता है।

कर्तव्य-परायणता चित्त की शांति का मूल मंत्र है। आत्म-सुख का सोपान है। जीवन की उन्नति तथा प्रगति का साधन है। मंगलमय भविष्य का द्वार खोलने वाली, कीर्ति को भुवन व्यापिनी और चरित को सुर-वन्द्य बनाने वाली है।

सृष्टि में मनुष्य का अवतरण कुछ करने के लिए हुआ है और उसे करने में निरत रहना ही कर्तव्य परायणता है। जीवन में कार्य करने के अवसर नित्य ही आते हैं। अवसरानुकूल जो करणीय है, वही कर्तव्य कहलाता है। शरत्चन्द्र कहते हैं, 'कर्तव्य कोई ऐसी वस्तु नहीं, जिसको नाप-जोखकर देखा जाए।' डॉ. सम्पूर्णानन्द का कथन है, 'जो काम अभेद भावना की ओर ले जाता है, वह सत्कर्म है, कर्तव्य-करणीय है।' टालस्टाय कहते हैं, 'ईश्वर शांति चाहता है और ईश्वर की इच्छा के अनुसार चलना मनुष्य का परम कर्तव्य है।' गाँधी जी का विचार है, 'बैर लेना या करना मनुष्य का कर्तव्य नहीं है, उसका कर्तव्य क्षमा है।' विनोबा के विचार में 'मानव की सेवा करना मानव का सर्वप्रथम कर्तव्य है।'

कर्तव्य का विभाजन दो रूपों में कर सकते हैं—(1) जन्म लेने के कारण जो हमारा धर्म है और (2) जिनका भार हमने स्वयं अपने ऊपर लिया है।

जन्म लेने के कारण माता-पिता, समाज, स्वधर्म और स्वराष्ट्र के प्रति जो करणीय कर्म हैं, वे जन्मत: कर्तव्य की कोटि में आते हैं। इन पाँचों के प्रति कर्तव्य की अवहेलना करने वालों के लिए मैथिलीशरण गुप्त की यह सूक्ति चरितार्थ होती है, *'वह नर नहीं, नर पशु निरा है और मृतक समान है।'*

स्वेच्छिक कर्तव्य में विद्याध्ययन, विवाह, संतानोत्पत्ति, मानव-सेवा आदि आते हैं। विद्याध्ययन प्रत्येक व्यक्ति के लिए उचित है, परन्तु यही विद्यार्थी का परम कर्तव्य है।

गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने पर पत्नी तथा संतान का पालन-संवर्द्धन मानव का अपरिहार्य कर्तव्य है। भूखे को भोजन, गिरते को सम्बल, दुःख-दर्द, कष्ट-पीड़ा में सहयोग आदि देना तथा मानव-सेवा कर्तव्य हैं। इन्हें करना ही कर्तव्य-परायणता है।

कर्तव्य-परायणता का अपना एक आनन्द है, उल्लास है। व्यक्ति का जीवन उसके कर्तव्य में खो जाता है। कष्ट-कठिनाई, प्रतिरोध-प्रतिकार उसके लिए अचिंतनीय बन जाते हैं। उसकी प्रेरणा परमात्मा की अंतर्ध्वनि बन जाती है। समरसता की अपूर्व स्थिति उसकी हो जाती है।

परिवार के प्रति कर्तव्य-निर्वाह में अहर्निश संलग्न परिवार का मुखिया, संतान-संवर्द्धन में सदैव चिंतित माता-पिता का मन, शिष्यों के शिक्षण में आत्म-विभोर गुरु, मानव-सेवा में लगा महामानव नित्य सुख में स्थित रहता है। उसके लिए प्रसाद जी के शब्दों में, *'चेतनता एक बिलसती / आनन्द अखंड घना था।'*

कर्तव्य की कठोरता भी बड़ी विलक्षण है। इस कठोरता-क्रूरता की भावनाओं को वही समझता है कि उसे जिन भावनाओं से प्रेरित होकर वैसा करना पड़ा था। अतः कर्तव्य जो न करा दे, कम है।

सती शिरोमणी, निरपराध, गर्भवती भगवती सीता के परित्याग का श्रीराम का आदेश उनकी कर्तव्य-परायणता का (अर्थात् लोकाराधन का) अद्भुत उदाहरण है। हृदय पर वज्र रखकर ही यह आदेश उनके मुख से निकला होगा। सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र का अपनी ही पत्नी से अपने ही आत्मज की अन्त्येष्टि के लिए श्मशान-कर माँगना, कितनी निर्मम कर्तव्य-परायणता है। सरदार पटेल न्यायालय में बहस कर रहे थे। तभी उन्हें उनकी पत्नी की मृत्यु का तार मिला। तार पढ़कर जेब में रख लिया और उसी गम्भीरता से बहस जारी रखी। अपने मुवक्किल को मुकद्दमे में जिताना उनका पहला कर्तव्य था। यहाँ कर्तव्य के सम्मुख भावना पराजित हो गई।

धर्म के दीवानों की कर्तव्य-परायणता देखिए। महर्षि दधीचि ने देवताओं की आर्त प्रार्थना सुनकर अपनी अस्थियों का दान कर मृत्यु का आलिंगन कर लिया। गुरु गोविन्द सिंह के दो पुत्र दीवार में चुनावा दिए गए, पर इस्लाम धर्म स्वीकार नहीं किया। धर्मवीर हकीकतराय ने अपनी गर्दन कटवाना स्वीकार किया, किन्तु यवन धर्म स्वीकृत नहीं किया। स्वधर्म की रक्षा के लिए जीवन की आहुति देना उनका कर्तव्य था।

बीसवीं सदी का अन्तिम चरण कर्तव्य-विमुखता का कलंकित इतिहास है। माता-पिता, गुरुजन का अनादर, अपमान आदि कर्तव्य विमुखता है, धर्म तथा समाज के प्रति आत्मघाती द्रोह है। मातृभूमि के प्रति छल-कपट, प्रपंच तो नेताओं के रक्त का कैंसर है। निजी सुख, परिवार-समृद्धि, दल हित से ऊपर उठकर यदि भारतीय नेता सोचते, सोच को क्रियान्वित करते, नियति नहीं, अपनी नीयत को ठीक रखते तो भारत में सामाजिक-विपन्नता, आर्थिक दुर्दशा, राजनीतिक शून्यता, पारिवारिक विद्रोहात्मकता, धार्मिक अपमानजन्य अश्रद्धा जो आज है, वह न होती।

कर्तव्य जीवन का अनिवार्य अंग है। इसमें परायण होने में ही समझदारी है, सुख है। मायावी संसार से जूझने, संघर्ष करने तथा अग्नि-परीक्षा में सफल होने का महामंत्र है, दिव्य अस्त्र है। उच्चचरित्र तथा उज्ज्वल भविष्य का परिचय-पत्र है। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, 'हमारी उन्नति का एकमात्र उपाय है कि हम पहले वह कर्तव्य करें, जो हमारे हाथ में है और इस प्रकार धीरे-धीरे शक्ति संचय करते हुए क्रमशः हम सर्वोच्च अवस्था को प्राप्त कर सकते हैं।'

(131) चरित्र-बल

संकेत बिंदु—(1) व्यक्ति का चाल-चलन और मानवीय गुण (2) मानवीय गुणों के अंकुर (3) आपदाओं, कष्टों और रोगों पर विजय प्राप्ति (4) समाज की पूँजी (5) चरित्र-बल के अभाव में समाज।

व्यक्ति का आचरण या चाल-चलन चरित्र कहलाता है। शक्ति का कार्यकारी रूप बल है। आचरण और व्यवहार में शुद्धता रखते हुए दृढ़ता से कर्तव्य-पथ पर बढ़ते रहना चरित्र-बल है। व्यक्तित्व की निश्छल-स्वाभाविक प्रस्तुति चरित्र-बल है। यूनानी साहित्यकार प्लूटार्क के शब्दों में 'चरित्र-बल केवल सुदीर्घकालीन स्वभाव की शक्ति है।'

चरित्र-बल ही मानवीय गुणों की मर्यादा है। स्वभाव और विचारों की दृढ़ता का सूचक है। तप, त्याग और तेज का दर्पण तथा सुखमय सहज जीवन जीने की कला है। आत्म-शक्ति के विकास का अंकुर है। सम्मान और वैभव प्राप्ति की सीढ़ी है।

चरित्र-बल अजेय है, भगवान् को परम-प्रिय है और है संकट का सहारा। उसके सामने ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ तक तुच्छ हैं। वह ज्ञान, भक्ति और वैराग्य से परे है। विद्वत्ता उसके मुकाबले कम मूल्यवान् है। चरित्रवान् की महत्ता व्यक्त करते हुए शेक्सपियर लिखते हैं, 'उसके शब्द इकरारनामा हैं। उसकी शपथें आप्तवचन हैं। उसका प्रेम निष्ठापूर्ण है। उसके विचार निष्कलंक हैं। उसका हृदय छल से दूर है, जैसा स्वर्ग पृथ्वी से।'

चरित्र में जब मानवीय गुणों—प्रेम, दया, उपकार, सेवा, विनय, कर्तव्य और शील के अंकुर उत्पन्न होते हैं तो चरित्र-बल की नींव पड़ती है। ज्ञान जब आचरण में व्यक्त होता हुआ स्थायित्व ग्रहण करता है तो चरित्र-बल का निर्माण होता है। जीवन की आकस्मिक और अवांछित घटनाएँ मानव-हृदय को जब आन्दोलित करती हैं तो उनके प्रतिशोध, प्रतिरोध में जो संकल्प-तत्त्व स्वतः स्फुरित होता है, उससे चरित्र-बल का निर्माण होता है।

सच्चाई तो यह कि अन्य गुणों का विकास एकान्त में भली-भाँति संभव है, पर चरित्र-बल के उज्ज्वल विकास के लिए सामाजिक-जीवन चाहिए। सामाजिक-जीवन ही उसके धैर्य, क्षमा, यम-नियम, अस्तेय, पवित्रता, सत्य एवं इन्द्रिय-निग्रह की परीक्षा भूमि है।

कठिनाइयों को जीतने, वासनाओं का दमन करने और दुःखों को सहन करने से चरित्र-बल शक्ति-सम्पन्न होगा। उस शक्ति से दीप्त हो चरित्र-बल अपने व्यक्तित्व का उज्ज्वल रूप प्रस्तुत करेगा।

चरित्र-बल के उज्ज्वल-पक्ष को प्रस्तुत करने के लिए 'दिनकर' जी कहते हैं, *'नर का गुण उज्ज्वल चरित्र है, नहीं वंश, धन धाम।'* वसुदेव ने नहीं, उनके पुत्र वासुदेव कृष्ण ने चरित्र-बल पर महाभारत के युद्ध में पाडवों को विजयश्री प्राप्त कराई। राजा शुद्धोदन ने नहीं, उनके पुत्र गौतम ने बुद्ध बनकर अपने चरित्र-बल से संसार को झुकाया।

जीवन में आई आपदाओं-विपदाओं, कष्ट-क्लेशों, रोग-शोक को सरलता, सुगमता और बिना मनोबल गिराए विजय प्राप्ति का महान् गुर है चरित्र-बल। गर्भवती भगवती सीता ने चरित्र-बल पर ही अपना विपत्काल सहर्ष काटा। छत्रपति शिवाजी ने औरंगजेब की जेल में रुदन नहीं किया। दो आजीवन कारावासी स्वातंत्र्यवीर सावरकर ने अंडमान की जेल में काव्य-सृजन कर चरित्र बल की तेजस्विता से कष्ट-क्लेश को पछाड़ा।

'शेष-प्रश्न' में शरत्चन्द्र कहते हैं, 'समाज के प्रचलित विधि-विधानों के उल्लंघन का दुःख सिर्फ चरित्र-बल और विवेक-बुद्धि के बल पर ही सहन किया जा सकता है।' ईसा मसीह ने क्रास पर चढ़ने की पीड़ा सही, बंदा बैरागी ने गर्म लौह-शलाकाओं के दागों को झेला, भाई मतिदास ने आरे से शीश चिरवाने की असह्य वेदना सही। शचीन्द्र सान्याल ने भूख-हड़ताल में मृत्यु का वरण कर लिया। यह सहन-शक्ति प्राप्त हुई चरित्र-बल से। यही कारण है कि वीरों के चेहरों को अवसाद की पीड़ा ने कलंकित नहीं किया।

स्वामी विवेकानन्द का मत है कि 'चरित्र-बल ही कठिनाई रूपी पत्थर की दीवारों में छेद कर सकता है।' स्वयं स्वामी विवेकानन्द ने अपने चरित्र-बल से शिकागो-यात्रा की कठिनाई न केवल पार की, अपितु विश्व में वैदिक-धर्म-ध्वजा को फहराया। महात्मा गाँधी के चरित्र बल ने क्रूर अंग्रेजी सत्ता की प्राचीर में छेद ही नहीं किया, उसको ध्वस्त ही कर दिया। लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने अपने चरित्र बल पर इन्दिरा गाँधी के आपत्काल में सेंध ही नहीं लगाई, उसके लाक्षागृह को जलाकर भस्म ही कर दिया।

काका कालेलकर का मत है 'लोगों के चारित्र्य-बल की सम्पत्ति ही किसी समाज की पूँजी होती है।' समाज उससे गौरवान्वित होता है। इतिहास उसे स्वर्णाक्षरों में अंकित कर अजरता-अमरता प्रदान करता है।

'पथिक' काव्य में रामनरेश त्रिपाठी लिखते हैं—*'अरि को वश में करना चरित्र से; शोभा है सज्जन की।'* अपने शुद्ध-निश्छल आचरण द्वारा शत्रु को भी वश में कर लेना चरित्र-बल का अद्भुत गुण है। हिंसा के परम उपासक महाराज अशोक अपने सिद्धान्त-विरोधी भगवान् बुद्ध के चरित्र-बल के सम्मुख उनके चरणों में नतमस्तक हुए। नन्द वंश का महामात्य और चाणक्य का विरोधी अमात्य 'राक्षस' भी अन्ततः आचार्य चाणक्य के चरित्र-बल के सम्मुख नत-मस्तक हुआ।

चरित्र बल के अभाव में मानव सांसारिक कष्टों, विपदाओं के सामने घुटने टेकता है।

बेपैंदी के लोटे के समान जीवन की अस्थिरता को झेलता है। अपनी आत्मा को बेचकर आत्म-हीनता पूर्ण दयनीय जीवन जीता है। सम्मान-सत्कार उससे दूर भागते हैं। यश-कीर्ति उससे घृणा करते हैं। उसका जीवन-मृत्यु तुल्य है। इसलिए दाग कहते हैं—

संभल कर जरा पाँव रखिए जमीं पर।
अगर चाल बिगड़ी तो बिगड़ा चलन भी।

चरित्र-बल मानव-जीवन की पूँजी है। विद्या के समान जितना इसको खर्च करेंगे, समाज और राष्ट्र कार्य में अर्पित करेंगे, उतना ही चरित्र-बल बढ़ेगा। इस पूँजी के रहते व्यक्ति सांसारिक सुख से निर्धन नहीं हो सकता है और ऐश्वर्य से वंचित नहीं रह सकता।

(132) देश-प्रेम

संकेत बिंदु—(1) देश-प्रेम की व्याख्या (2) महापुरुषों के विचार (3) राष्ट्रीयता के अनिवार्य तत्त्व (4) देश-प्रेम के अनेक रूप (5) देश-द्रोही और देश-प्रेमी में अंतर।

देश के प्रति मन में होने वाला कोमल भाव जिसे वह बहुत अच्छा, प्रशंसनीय तथा सुखद समझता है, देश-प्रेम है। देश के साथ अपना घनिष्ठ संबंध बनाए रखने की चाहना देश-प्रेम है। स्वार्थ-रहित तथा देश के सर्वतोमुखी कल्याण से ओत-प्रोत भाव देश-प्रेम है। देश के प्रति अंत:करण को अत्यंत द्रवीभूत कर देने वाले और अत्यधिक ममता से युक्त अतिशय अथवा प्रचंड भाव को देश-प्रेम कहते हैं।

देश-प्रेम शाश्वत शोभा का मधुवन है। उर-उर के हीरों का हार है। हृदय का आलोक है। कर्तव्य का प्रेरक है। जीवन-मूल्यों की पहचान है। जीवन-सिद्धि का मूल-मंत्र है। रामनरेश त्रिपाठी देश-प्रेम को इन शब्दों में प्रतिपादित करते हैं—

देश-प्रेम वह पुण्य क्षेत्र है / अमल असीम त्याग से विलसित।
आत्मा के विकास से जिसमें / मनुष्यता होती है विकसित।।

प्रश्न उठता है, देश से प्रेम क्यों हो? इसका उत्तर देते हुए स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, 'भारत मेरा जीवन, मेरा प्राण है। भारत के देवता मेरा भरण-पोषण करते हैं। भारत मेरे बचपन का हिंडोला, मेरे यौवन का आनन्दलोक और मेरे बुढ़ापे का बैकुंठ है।'

मैथिलीशरण गुप्त तर्क देते हैं—

मेरी ही यह देह, तुझी से बनी हुई है।
बस तेरे ही, सुरस-सार से सनी हुई है।।

इतना ही नहीं,

जिसकी रज में लोट-लोट कर बड़े हुए हैं।
घुटनों के बल सरक-सरक कर खड़े हुए हैं।।

महात्मा गाँधी कहते हैं, 'मैं देश-प्रेम को अपने धर्म का ही एक हिस्सा समझता हूँ। देश प्रेम के बिना धर्म का पालन पूरा हुआ, कहा नहीं जा सकता।' (इंडियन ओपनियन)

श्रद्धेय अटलबिहारी वाजपेयी देश-प्रेम का कारण बताते हुए लिखते हैं—'यह वन्दन की भूमि है, अभिनन्दन की भूमि है। यह तर्पण की भूमि है, यह अर्पण की भूमि है। इसका कंकर-कंकर शंकर है, इसका बिन्दु-बिन्दु गंगाजल है। हम जिएंगे तो इसके लिए, मरेंगे तो इसके लिए।' (कुछ लेख, कुछ भाषण : पृष्ठ 5)

प्रश्न उठता है देश-प्रेम का आलम्बन क्या है? आलम्बन है देश की सम्पूर्ण भूमि, सकल प्रकृति तथा सचेतन प्राणी, जिसमें मानव के अतिरिक्त पशु-पक्षी भी सम्मिलित हैं।

जब देश-प्रेम का दिव्य रूप प्रकट होता है तब आत्मा में मातृभूमि के दर्शन होते हैं। स्वामी रामतीर्थ लिखते हैं, 'मेरी वास्तविक आत्मा सारे भारतवर्ष की आत्मा है। जब मैं चलता हूँ तो अनुभव करता हूँ सारा भारतवर्ष चल रहा है। जब मैं बोलता हूँ तो मैं मान करता हूँ कि यह भारतवर्ष बोल रहा है। जब मैं श्वास लेता हूँ, तो महसूस करता हूँ कि यह भारतवर्ष श्वास ले रहा है। मैं भारतवर्ष हूँ।' (रामतीर्थ ग्रंथावली भाग 7, पृष्ठ 126)

देश-प्रेम का भाव राष्ट्रीयता का अनिवार्य तत्त्व है, देश-भक्ति की पहचान है। इहलोक की सार्थकता का गुण है और मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग में निश्चित स्थान की उपलब्धि है। संस्कृत का सूक्तिकार तो जन्मभूमि को स्वर्ग से भी बढ़कर महान् मानता है—

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।

सरदार पटेल का कहना है, 'देश की सेवा (देश-प्रेम) में जो मिठास है, वह और किसी चीज में नहीं।' (सरदार पटेल के भाषण, पृष्ठ 259)

कथाकार प्रेमचन्द की धारणा थी, 'खून का वह आखिरी कतरा जो वतन की हिफाजत में गिरे दुनिया की सबसे अनमोल चीज है।' (गुप्तधन भाग 1)

महर्षि अरविन्द तो देश-प्रेम में विश्व बंधुत्व के दर्शन करते हुए कहते हैं— 'देश-प्रेम तो मानवता के लक्ष्य विश्व-बंधुत्व का ही एक पक्ष है।' (नेशनल वर्चूज निबंध से)

देश-प्रेमी का नाम इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों में लिखा जाता है। देश उसकी पुण्यतिथि पर उसे श्रद्धांजलि अर्पित कर अपने को गौरवान्वित अनुभव करता है।

शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले।
वतन पर मिटने वालों का यही बाकी निशां होगा।

देश-प्रेम के अनेक रूप हैं। देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक उन्नति में सहयोग देना देश-प्रेम का परिचायक है। देश की सुरक्षा में अपने को अर्पित करना देश-प्रेम है। साम्प्रदायिक सद्भाव और परस्पर सर्वधर्म समभाव को बनाए रखना देश-प्रेम है। देश को प्रदूषण से मुक्त रखने का दायित्व निभाना देश-प्रेम है। ग्राम, नगर की शुचिता बनाए रखना देश-प्रेम है। असामाजिक कृत्यों से दूर रहना, अधार्मिक कर्मों से घृणा करना, राजनीति के छल-छद्म को दूर से ही प्रणाम करना देश-प्रेम है। सार्वजनिक स्थानों पर देश-निन्दा तथा नेताओं की अनर्गल आलोचना से बचना देश-प्रेम है। सेवाकाल में अपने दायित्व में

प्रमाद न कर उसे पूर्ण करना देश-प्रेम है। अपनी लेखनी से देश-हित को प्रश्रय देना साहित्यकार का देश-प्रेम है। देश-निर्माण के लिए अपनी कला के उपयोग में कलाकार का देश-प्रेम है।

धन, धर्म, जाति तथा सम्प्रदाय से ऊपर उठकर मतदान करना देश-प्रेम है। नागरिकों के मन से अंधविश्वास दूर हटाना देश-प्रेम है तो अवांछित और दूषित संस्कारों और परम्पराओं से मुक्ति का प्रयत्न देश-प्रेम है।

आज के भारत में देश-प्रेमी या देश-द्रोही की पहचान आसान नहीं रही। यहाँ तो राणा प्रताप की जय-जय की जगह अकबर की जय-जय, देश को लूटकर खाने वाले परम देशभक्त और चरित्र-हीनता की ओर धकेलने वाले 'भारत-रत्न' हैं। देशहित के लिए जीवनभर तन को तिल-तिल गलाने वाले परम साम्प्रदायिक और जातिवाद के परम पक्षधर धर्मनिरपेक्षता के अवतार बने हैं। विदेशी भाषा अंग्रेजी को महारानी और राष्ट्रभाषा हिन्दी को दासी मान नाक-भौंह सिकोड़ने वाले राष्ट्रीय हैं। जब यह मन का कालुष्य धुलेगा तो देश-प्रेमी की जय-जय कार और देश-द्रोही की धिक्कार होगी।

अब न चलेगा राष्ट्र प्रेम का गर्हित सौदा।
यह अभिनव चाणक्य न फलने देगा विष का पौधा॥

—अटलबिहारी वाजपेयी

(133) देश-भक्ति

संकेत बिंदु—(1) राज्य भक्ति और देश भक्ति में अंतर (2) देश-भक्ति का व्यापक क्षेत्र (3) देशभक्तों के देश भक्ति पूर्ण कार्य (4) महान पुरुषों का विभिन्न क्षेत्रों में योगदान (5) राष्ट्र-भक्त और राष्ट्र-द्रोही में अंतर।

भक्ति का मूलाधार है प्रेम। देश के प्रति प्रेम नहीं है तो भक्ति कैसी ? यदि किसी देश-वासी में देश के प्रति प्रेम नहीं तो समझना चाहिए उसकी देश-भक्ति भी उसी सीमा तक विभक्त है। देश भक्ति पारिश्रमिक देकर नहीं करवाई जा सकती। देश-भक्ति वही कर सकता है, जिसके मन में देश के लिए सच्चा प्यार होगा। देश-भक्ति भावना पर आधारित है, पैसे पर नहीं।

राज्य-भक्ति और देश-भक्ति में अन्तर है। राज्य-भक्ति सदा देश-भक्ति नहीं हो सकती। मुगलिया तथा गुलाम भारत में अंग्रेजी सत्ता के प्रति राज्य-भक्त लोगों की सेवा देश-भक्ति नहीं कहा जा सकती। उसी प्रकार वर्तमान काल में शासन के राष्ट्र-विरोधी कार्यों के समर्थकों को देश-भक्त के गौरव से अलंकृत नहीं किया जा सकता। आपत्काल के समर्थकों, सत्ता में विद्यमान शासक की हाँ में हाँ मिलाने वाले चापलूसों, सत्ता की छत्रछाया में पनपते अराष्ट्रीय कृत्यों के सहयोगियों को राज-भक्त कह सकते हैं, राष्ट्र-भक्त नहीं।

लाला हरदयाल जी का कहना है कि देश-भक्ति में 'त्याग को लाभ, गरीबी को अमीरी और मृत्यु को जीवन समझा जाता है। मैं तो ऐसे और पवित्र पागलपन का प्रचार करता हूँ। पागल! हाँ, मैं पागल हूँ। मैं खुश हूँ कि मैं पागल हूँ।'

देश-भक्ति या राष्ट्र-भक्ति का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। राष्ट्र पर आई विपत्ति में प्राणोत्सर्ग करना ही देश-भक्ति की कसौटी नहीं। विद्यार्थी के लिए विद्यालय, महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय का अनुशासन-पालन देश-भक्ति है तो अध्ययन के प्रति समर्पण देश-भक्ति की पहचान। युवा-युवती समाज से द्रोह करते हैं तो वह देश-भक्ति नहीं। नकली दस्तावेज तथा मुद्रा तैयार करना तथा व्यापार में लोभ-वश जनहित विरुद्ध कार्य करना देश-भक्ति के विरुद्ध है। मिलावट करना, नकली तथा तस्करी की चीजें बनाना-बेचना देश के साथ द्रोह है।

भारत की सभ्यता और संस्कृति, पर्व और उत्सव, स्वस्थ परम्परा और रूढ़ियों, मर्यादा और मूल्यों का सम्मान करना देश-भक्ति है तो इनसे बगावत देश-द्रोह।

प्रभु राम देश को असुर संस्कृति से रक्षार्थ युद्ध रत रहे। श्रीकृष्ण साधुओं के परित्राण के लिए जीवन-पर्यन्त सक्रिय रहे। महाराणा प्रताप जंगलों की खाक छानते रहे। छत्रपति शिवाजी आजन्म मुगलों से टक्कर लेते रहे। रानी लक्ष्मीबाई तथा तात्याटोपे ने अंग्रेजी सत्ता से युद्ध करते हुए जीवन उत्सर्ग कर दिया।

विश्ववंद्य बापू अहिंसात्मक पद्धति से तो शहीद चंद्रशेखर 'आजाद', भगतसिंह, सुखदेव आदि क्रांति द्वारा अंग्रेजी सत्ता को चुनौती देते रहे। वीर सावरकर तो अंग्रेज की कैद से छूटने के लिए जलयान से समुद्र में कूद पड़े। सुभाषचन्द्र बोस ने विदेशों में जाकर, सेना संगठित कर ब्रिटिश-भारत पर सशस्त्र-आक्रमण ही कर दिया था। कहाँ तक गिनाएँ इन देशभक्तों की सुकृत्यों को।

दूसरी ओर लेखकों के एक वर्ग ने राष्ट्र-भक्ति के चरणों में पुष्पित जीवन-सुमन अर्पित कर राष्ट्रीय जीवन में उत्साह, उमंग और प्रेरणा भर दी। इसके लिए सर्वश्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, महावीरप्रसाद द्विवेदी, जयशंकर प्रसाद, प्रेमचन्द, रामधारीसिंह 'दिनकर' रामनरेश त्रिपाठी, मैथिलीशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान, माखनलाल चतुर्वेदी, स्वातंत्र्यवीर सावरकर आदि शीर्ष देश-भक्त लेखकों का पुण्य स्मरण कराया जा सकता है।

सामाजिक-धार्मिक क्षेत्र में स्वाभिमान-जागृति का जो कार्य महर्षि दयानन्द, महर्षि विवेकानन्द, डॉ. केशवबलिराम हेडगेवार, माधव सदाशिव गोलवलकर, गीता-प्रेस गोरखपुर के संस्थापक हनुमान् प्रसाद पोद्दार ने किया है, वह देश-भक्ति की अद्भुत मिसाल है।

इनके अतिरिक्त वैज्ञानिक, आर्थिक, शैक्षणिक, कला, सांस्कृतिक आदि अनेक क्षेत्र हैं, जिनके माध्यम से अनेक महापुरुषों ने अपनी देश-भक्ति का परिचय दिया है और दे रहे हैं।

दुर्भाग्य से भारत में आज हर चीज राजनीति के कुचक्र में पिस रही है। देश-भक्ति भी इससे नहीं बची है। गीत यहाँ राष्ट्र-भक्ति के गाए जाते हैं, कार्य देश-द्रोह के होते हैं। देश का चरित्र रसातल को चला जा रहा है, स्वार्थ राष्ट्र-भक्ति पर हावी है।

15 अगस्त 1947 को हम मातृभूमि के विभाजन का पाप करते हैं; कश्मीर का २/५ भाग पाकिस्तान को, तिब्बत चीन को, कच्चा टीबू द्वीप श्रीलंका को तथा तीन बीघा क्षेत्र बंगला देश को प्रदान कर राष्ट्र का अंग-भंग करके भी परम देश-भक्त कहलाते हैं। भ्रष्ट, साम्प्रदायिक तथा समाज-विरोधी कार्य करने वाले नेता राष्ट्र के कर्णधार बनते हैं। विदेशी सभ्यता और संस्कृति को ओढ़ने वाले, अपनाने वाले उसमें तद्रूप हो रहने वाले राष्ट्र-भक्त हैं तथा देश-हित कार्य करने वाले, राष्ट्र-हित सर्वस्व अर्पण करने वालों को 'राष्ट्र-द्रोही' का तमगा प्रदान किया जाता है। स्पष्टतः भारत में देश-भक्ति की व्याख्या ही विकृत हो गई है।

आज देश को शुद्ध देश-प्रेम, राष्ट्र-भक्ति तथा मातृ-भक्ति की अत्यन्त आवश्यकता है। केवल ऊँचे-ऊँचे नारों से 'भारत माता की जय' नहीं होगी। 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा' गाने से और 'सुजलां सुफलां मलयज शीतलाम्, मातरं बन्दे' के बारम्बार उच्चारण से देश-भक्ति प्रकट नहीं होगी। इसके लिए तो संकीर्ण स्वार्थभाव को त्यागकर राष्ट्र-हित के कार्य करने की आवश्यकता है। प्रसाद जी की इन पंक्तियों को सदा स्मरण रखें—

जिएँ तो सदा इसी के लिए, यही अभिमान रहे, यह हर्ष।
निछावर कर दें हम सर्वस्व, हमारा प्यारा भारतवर्ष।।

(134) देश-सेवा

संकेत बिंदु—(1) देश के लिए कार्य (2) देश सेवा के रूप (3) स्वतंत्रता-संग्राम के देश-प्रेमी (4) देश-सेवा के उदाहरण (5) जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में देश-सेवा।

देशोपयोगी विषय, वस्तु, कार्य आदि में रुचि होने के कारण उसके हित, वृद्धि, उन्नति आदि के लिए किया जाने वाला काम देश-सेवा है। धन-सम्पत्ति, शारीरिक सुख और मान, बड़ाई और प्रतिष्ठा आदि को न चाहते हुए; ममता, आसक्ति और अहंकार से रहित होकर तन, मन या धन के द्वारा देश-हित में कार्य करना देश-सेवा है। देशवासियों के हित के लिए किया जाने वाला प्रत्येक कार्य देश-सेवा है।

देश-सेवा का क्षेत्र विस्तृत है, विशाल है। राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, वैज्ञानिक, औद्योगिक, शैक्षणिक, प्रशासनिक, तकनीकी, लेखकीय, सम्पादकीय, प्रकाशकीय, प्रचारकीय, चिकित्सकीय, क्रीडा आदि दृष्टि से देश की उन्नति करना देश-सेवा है।

देश-सेवा के दो रूप हैं—(1) स्वार्थ जनित सेवा और (2) व्रती सेवा। स्वार्थ-हित

देश सेवा लज्जाजनक है। देश के साथ प्रवंचना है। स्वार्थी व्यक्ति कब देश को धोखा दे जाए, उसे परतंत्रता की बेड़ी पहना दे, कह नहीं सकते। विद्वान् लोग इसे कुत्ते की वृत्ति कहते हैं। उसके सेवा रूपी दीपक से केवल लपट और कालिमा ही पैदा होती है। जब वह बोलता है तो लगता है शैतान भी धर्म-ग्रंथ उद्धृत कर सकता है। काका 'हाथरसी' के शब्दों में उसका सिद्धांत है—

गीत गाओ त्याग के, चर्चा करो परमार्थ पर।
घूम-फिर कर अंत में आ जाइए निज स्वार्थ पर॥

व्रती-सेवा (अर्थात् मिशनरी भाव से सेवा) गौरव का प्रतीक है। देश के भाग्य पर जगमगाता तिलक है। इतिहास उस पर गर्व करता है और देशवासी उसकी जयन्ती और पुण्यतिथि मनाकर श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। अपने रक्त के एक-एक बिन्दु को देश-सेवा की भेंट चढ़ाता तो है तो आत्म तेज से देश की रक्षा करता है। वह झुकना नहीं, टूटना जानता है।

भारत को दासता की शृंखलाओं से मुक्त कराने के लिए देश-सेवा में तत्पर लाखों ने जेल की सीखचों में अपना जीवन सड़ाया। घर-परिवार को बरबादी के अग्निपथ पर छोड़ दिया। पुलिस की लाठी खाईं, अंग-विहीन हुए। लाखों लाठी-गोलियाँ खाकर शहीद हुए। जो क्रांतिपथ पर बढ़े उन्होंने देश-सेवा के मूल्यों से दीक्षित होकर पूर्ण वैरागी की तरह, संन्यास-जीवन के कठोर संयम द्वारा कर्मयोग के साधना-मार्ग द्वारा सारे दर्शन-शास्त्र के तात्त्विक निचोड़ को अपने जीवन में आत्मसात् कर लिया। लक्ष्य की पूर्ति के लिए निज प्राणों की पूर्णाहुति देने में अपने जीवन की सार्थकता समझी। कठोर अत्याचार, हृदय विदारक विक्षिप्त कर देने वाली असह्य पीड़ाजनक मार को हँस-हँसकर झेल गए। आजीवन कारावास भुगता या फाँसी के फंदे को चूमकर सेवा-व्रती कहलाए।

महान् कार्यों में देश-सेवा निहित है, ऐसा नहीं। छोटे-छोटे कार्यों में भी देश-सेवा के भाव निहित हैं। फलों के छिलके तथा घर का कूड़ा सार्वजनिक स्थान पर न फेंककर, सार्वजनिक स्थान को गंदा न करके, उत्सवों, मेलों, रेलों बसों में ढेलमठेल न करने वाले परोक्ष रूप से देश के सौन्दर्य को बढ़ाते हुए उसकी सेवा कर रहे हैं।

सरदार पटेल के विचार में, 'देश की सेवा करने में जो मिठास है, वह और किसी चीज में नहीं।' महात्मा गाँधी का मत है, 'जिन्होंने अपनी देह को देश-सेवा में ही जीर्ण कर दिया, वे देहपात होने पर जन-मन से विस्मृत नहीं हो सकते। कभी नहीं मर सकते।'

यह देश-सेवा का ही पुरस्कार है कि मोहनदास कर्मचंद गाँधी विश्व-वंद्य 'बापू' बने। पं. जवाहर लाल नेहरू 'शांति दूत' कहलाए। रवीन्द्र नाथ ठाकुर (साहित्य) सुब्रह्मण्यम चंद्रशेखर तथा चन्द्रशेखर वैंकटरमण (भौतिक-साहित्य) हरगोविन्द खुराना (चिकित्सा), मदर टेरेसा (दीन-दुःखियों की सेवा) तथा अमर्त्यसेन (अर्थशास्त्र) ने अपने-अपने क्षेत्रों में जो सेवा की, उस पर न केवल राष्ट्र ने अपितु विश्व ने 'नोबल पुरस्कार' से सम्मानित कर श्रद्धा के फूल चढ़ाए।

भारत-सरकार महान् देश-सेवियों को भारत-रत्न, पद्मविभूषण, पद्मभूषण तथा पद्मश्री से सम्मानित कर कृतज्ञता अर्पित करती है। साहित्य-सेवियों को साहित्य-अकादमी पुरस्कार, ज्ञानपीठ पुरस्कार, सरस्वती सम्मान आदि अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया जाता है। सिनेमा के क्षेत्र में दादा साहेब फाल्के पुरस्कार से सम्मानित कर कलाकारों की सेवाओं को सराहा जाता है। प्रधानमंत्री श्रम पुरस्कार के अन्तर्गत श्रम रत्न, श्रम भूषण, श्रमवीर तथा श्रम श्री के पुरस्कार से श्रम-जीवियों का उत्साहवर्धन किया जाता है। कला व संगीत के क्षेत्र में संगीत नाटक अकादमी के अन्तर्गत नृत्य और रंगमंचीय कलाकारों को पुरस्कार तथा सम्मान प्रदान किए जाते हैं।

देश ईश्वर की साक्षात् प्रतिमा है। उसकी अर्थात् देशवासियों की सेवा ईश्वरीय सेवा है। सेवा-धर्म का यथार्थ अनुष्ठान करने से संसार का बंधन सुगमता से छिन्न हो जाता है। देश-सेवा के मार्ग में विघ्न-बाधाएं आएंगी हीं, किन्तु हमें शपथ लेनी होगी—

विपदाएं आती हैं आएं, हम न रुकेगें, हम न रुकेंगे।
आघातों की क्या चिंता है, हम न झुकेंगे, हम न झुकेंगे।।
—अटलबिहारी वाजपेयी ('मेरी इक्यावन कविताएं, पृष्ठ 78)

(135) परिश्रम

संकेत बिंदु—(1) मानसिक और शारीरिक श्रम (2) बिना परिश्रम के सुख और आनंद नहीं (3) विकसित सभ्यता और मानव श्रम का परिणाम (4) सफलता का रहस्य (5) मानसिक और शारीरिक शक्तियों का विकास।

कठिन, बड़ा या दुस्साध्य काम करने के लिए विशेष रूप से तथा मन लगाकर किया जाने वाला मानसिक या शारीरिक श्रम, परिश्रम है। कोई ऐसा शारीरिक या मानसिक काम जिसे निरन्तर कुछ समय तक करते-करते शरीर में शिथिलता आने लगती है, परिश्रम है।

'आत्मा परिश्रमस्य पदमुपनीत' अर्थात् परिश्रम से ही आत्म-साक्षात्कार होता है। परिश्रम जीवन का आधार है। परिश्रम से स्वास्थ्य बनता है और स्वास्थ्य से सन्तोष उत्पन्न होता है। अत: 'श्रम एव जयते', परिश्रम की सदा विजय होती है। परिश्रम उज्ज्वल भविष्य का जनक है; परिश्रम देवता है और है सफलता का मूल एवं कुंजी।

ऋग्वेद का कथन है, 'न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवा:' (4/33/11) बिना परिश्रम किए देवों की मैत्री नहीं मिलती। ऐतरेय ब्राह्मण कहता है, 'नानाश्रान्ताय श्री रस्ति।' (7/15) श्रम न करने वाले को शोभा या लक्ष्मी नहीं मिलती। एडीसन का कहना है, 'There is nothing truly valuable which can be purchesed without pains & Labour'. अर्थात् कोई भी मूल्यवान् वस्तु कष्ट और परिश्रम के बिना खरीदी नहीं जा सकती।

कहावत प्रसिद्ध है, बिना परिश्रम के सुख और आनन्द नहीं मिलते। रामधारीसिंह 'दिनकर' का कहना 'जिन्दगी के असली मजे उनके लिए नहीं जो फूलों की छाँह के नीचे

खेलते और सोते हैं। बल्कि फूलों की छाँह के नीचे जीवन का कोई स्वाद छिपा है तो वह भी उनके लिए है—जो दूर रेगिस्तान से आ रहे हैं, जिनका कंठ सूखा हुआ है, ओंठ फटे हुए हैं और सारा बदन पसीने से तर है।'

परिश्रम चुम्बक है। सब प्रकार की सुख-समृद्धि उसके आकर्षण में स्वयमेव खिंचती चली आती है। इसीलिए त्रिकाल सत्य घोषित हुआ कि 'परिश्रमी के घर के द्वार को भूख दूर से ताकती है, पर भीतर प्रवेश नहीं कर पाती। परिश्रम की पूजा करने वाला कदापि निराश नहीं होता।'

सृष्टि के आदि से अद्यतन काल तक विकसित सभ्यता मानव के परिश्रम का ही परिणाम तो है। पाषाण युग से वर्तमान विज्ञान युग तक की वैभव-सम्पन्नता की लम्बी यात्रा परिश्रम की सार्थकता की एक ऐसी गाथा है, जो विश्व को पग-पग पर श्रम-प्रेरणा की प्रसादी बाँट रही है।

अमेरिका, रूस, चीन, जापान, इजरायल, फ्रांस, स्विट्‌जरलैण्ड आदि देशों की उन्नति की नींव परिश्रम के स्वेद-बिन्दुओं से सिंचित है। वहाँ के निवासियों के सतत एवं निष्ठापूर्ण परिश्रम ने ही उनके राष्ट्र को विश्व के शीर्षस्थ राष्ट्रों में ला बिठाया है।

द्वितीय महायुद्ध में क्षतिग्रस्त रूस, ग्रेट-ब्रिटेन तथा जापान; आर्थिक और मानसिक रूप में जर्जर कल का चीन एवं स्थान-भ्रष्ट इजरायल पलक झपकते विश्व की महती शक्ति कैसे बन गए? एक ही उत्तर है—परिश्रम की कृपा से। 'परिश्रम ही पूजा है, परिश्रम ही परमेश्वर है', इस सिद्धान्त को अपनाने से।

तप शब्द श्रम का ही पर्याय है। किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए किए गए श्रम को 'तप' कहते हैं। तब से नहुष इन्द्रासन का अधिकारी बना; रावण लंकेश्वर बना; बार-बार हारने वाला अब्राहम लिंकन अन्तत: अमेरिका का राष्ट्रपति बना।

तप बल रचइ प्रपंचु विधाता। तपबल विष्णु सकल जग त्राता।
तपबल संभु करहि संघारा। तपबल सेषु धरहिं महि भारा॥

गोस्वामी तुलसीदास द्वारा कथित तप परिश्रम ही तो है।

परिश्रम से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। परिश्रमहीन, आलसी, भाग्यवादी, निराश व्यक्ति से लक्ष्मी ऐसे दूर भागती है, जैसे युवा पत्नी वृद्ध पति से। लक्ष्मी के बिना सांसारिक सुख दुर्लभ है। यदि जगत् में ही स्वर्ग सम आनन्द लेना है तो परिश्रम का आलिंगन अनिवार्य है।

जीवन की दौड़ में श्रम करने वाला विजयी रहता है। पढ़ाई में परिश्रम करने वाला छात्र परीक्षा में पास होता है। नौकरी करने वाला कर्मचारी और व्यापार वाले करने व्यापारी की उन्नति का मूल उसके परिश्रम में निहित है। सफलता का रहस्य परिश्रम के रूप में है, ध्येय की दृढ़ता में है। बिड़ला, टाटा का वृहद्-उद्योग-संसार उनके परिश्रम की मुँह बोलती मूर्ति हैं। परिश्रम के बिना भाग्य भी सफल नहीं होता है।

परिश्रम से शारीरिक तथा मानसिक शक्तियों का विकास होता है; कार्य में दक्षता आती

है, जीवन में आत्म-विश्वास जागृत होता है, जो सफलता का मुख्य रहस्य है, पराक्रम का सार है, भावी उन्नति का प्रमुख सोपान है।

परिश्रम से जी चुराना अर्थात् अकर्मण्यता विनाश की पगडंडी है, मृत्यु का द्वार है। महाभारत में वेदव्यास जी ने लिखा है, 'अकर्मण्य व्यक्ति सम्मान से भ्रष्ट होकर घाव पर नमक छिड़कने के समान असह्य दु:ख भोगता है।' गाँधीजी ने अकर्मण्य को चोर बताया है, 'जो कर्म किए बिना भोजन करते हैं, वे चोर हैं।' अत: सदा परिश्रमशील बनो। कहा भी है—

उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।
नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः॥

(136) परोपकार

संकेत बिंदु—(1) स्वार्थ निरपेक्ष और दूसरों के हितार्थ (2) प्रकृति, देवताओं और महापुरुषों द्वारा परोपकार (3) परहित सरिस धर्म नहिं भाई (4) सज्जनता और सहानुभूति का द्योतक।

स्वार्थ-निरपेक्ष, किन्तु दूसरों के हितार्थ किया गया कार्य परोपकार है। परपीड़ा-हरण परोपकार है। पारस्परिक विरोध की भावना घटाना, प्रेमभाव बढ़ाना परोपकार है। दीन, दु:खी, दुर्बल की सहायता परोपकार है। आवश्यकता पड़ने पर नि:स्वार्थ भाव से दूसरों को सहयोग देना परोपकार है। मन, वचन, कर्म से परहित साधन परोपकार है।

परोपकार में प्रवृत्त रहना जीवन की सफलता का लक्षण है। (जीवितं सफलं तस्य य: परार्थोद्यत: सदा।) व्यास जी के कथनानुसार 'परोपकार: पुण्याय' अर्थात् परोपकार से पुण्य होता है। परोपकार करने का पुण्य सौ यज्ञों से बढ़कर है। आचार्य चाणक्य मानते हैं, कि 'जिनके हृदय में सदा परोपकार करने की भावना रहती है, उनकी विपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं और पग-पग पर सम्पत्ति प्राप्त होती है।'

सूर्य की किरणें जगत् को प्रकाश और जीवन प्रदान करती हैं। चन्द्रमा अमृत की वर्षा करता है। वृक्ष मानव-मात्र के लिए फल प्रदान करते हैं। खेती अनाज देती है। सरिताएँ जल अर्पित करती हैं। वायु निरन्तर बहकर जीवन देती है। समुद्र अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति वर्षा रूप में जन-कल्याण के लिए समर्पित करता है। इस प्रकार प्रकृति के सभी तत्त्व पर-हित के लिए समर्पित हैं, इनका निजी स्वार्थ कुछ नहीं।

भगवान् शंकर ने देव-दानव कल्याणार्थ विष-पान किया। महर्षि दधीचि ने देवगण की रक्षार्थ अपनी हड्डियाँ दान कर दीं। दानवीर कर्ण ने अपने कवच-कुंडल विप्र रूपधारी इन्द्र को दान दे दिए। राजा शिवि ने कबूतर की प्राण-रक्षा के लिए अपना अंग-अंग काट कर दे दिया। राजा रन्तिदेव ने स्वयं भूखे होते हुए भी अपने भाग का भोजन एक भूखे ब्राह्मण को दे दिया। ईसामसीह सूली पर चढ़े। सुकरात ने जहर पी लिया। भारत की एकता और

अखंडता के लिए डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी कश्मीर में जाकर बलि हुए। महात्मा गाँधी जनहित के लिए संघर्ष करते रहे। आचार्य विनोबा भावे दरिद्र-नारायण के लिए भूदान माँगते रहे। मदर टेरेसा ने दीन-दुःखियों की सेवा में अपने यौवन की बलि चढ़ा दी। तुलसीदास का कथन है—'परहित सरिस धर्म नहिं भाई।' उन्होंने हिन्दू जाति, धर्म और संस्कृति के लिए सर्वस्व-न्यौछार कर अपना धर्म निभाया। उनका 'मानस' हिन्दू जाति का रक्षक कवच बन गया, धर्म-प्रेरक बन गया, मोक्ष-मार्ग का पथ-प्रदर्शक बन गया।

परोपकार करते हुए कष्ट तो सहना ही पड़ता है, परन्तु इसमें भी परोपकारी को आत्म संतोष और विशेष सुख मिलता है। किरांतार्जुनीय में कहा गया है, 'परोपकार में लगे हुए सज्जनों की प्रवृत्ति पीड़ा के समय भी कल्याणमयी होती है।' माँ कष्ट न उठाए, तो शिशु का कल्याण नहीं होगा। वृक्ष पुराने पत्तों का मोह त्यागें नहीं, तो नव-पल्लवों के दर्शन असम्भव हैं।

परोपकार करने से आत्मा प्रसन्न होती है। परोपकारी दूसरों की सहानुभूति का पात्र बनता है। समाज के दीन-हीन पीड़ित वर्ग को जीवन का अवसर देकर समाज में सम्मान प्राप्त करता है। समाज के विभिन्न वर्गों में शत्रुता, कटुता और वैमनस्य दूर कर शांति दूत बनता है। धर्म के पथ पर समाज को प्रवृत्त कर 'मुक्तिदाता' कहलाता है। राष्ट्र-हित जनता में देश-भक्ति की चिंगारी फूँकने वाला 'देश-रत्न' की उपाधि से अलंकृत होता है।

उपकार से कृतज्ञ होकर किया गया प्रत्युपकार परोपकार नहीं। वह सज्जनता का द्योतक हो सकता है। उपकार के बदले अपकार करने वाला न सज्जनता से परिचित है, न परोपकार से। इनसे तो पशु ही श्रेष्ठ हैं, जिनका चमड़ा मानव की सेवा करता है। भगवान् सूर्य की आत्मा कितनी निर्मल है। धरती के जल को कर रूप में जितना ग्रहण करते हैं उसको हजार गुना बनाकर वर्षा के रूप में धरती के कल्यार्थ लौटा देते हैं। उपकार करके प्रत्युपकार की आशा न रखना, 'नेकी कर दरिया में डाल देना' परोपकार की सच्ची भावना है।

आज परोपकार के मानदंड बदल गये हैं; परिभाषा में परिवर्तन आ गया है। धार्मिक नेता धर्म के नाम पर मठाधीश बन स्वर्ण-सिंहासन पर विराजमान हैं। सामाजिक नेता समाज को खंड-खंड कर रहे है। राजनीतिक नेता 'गरीबी हटाओ' के नाम पर अपना घर भर रहे हैं। बाढ़ पीड़ितों के दान से अपना उद्धार कर रहे हैं। 'अन्त्योदय' के कार्यक्रम से गरीबों का अन्त कर रहे हैं।

रेल के डिब्बे में लेटा हुआ यात्री जब बाहर खड़े यात्री को कहता है 'आगे डिब्बे खाली पड़े हैं', तो वह कितना उपकार करता है ? जब सड़क पर खड़े दुर्घटनाग्रस्त असहाय व्यक्ति से जनता मुख मोड़कर आगे बढ़ जाती है, तो उपकार की वास्तविकता का पता लगता है। आग की लपटों से बचे घर या दुकान के सामान को दर्शक उठाकर ले जाते हैं, तो परोपकार की परिभाषा समझ में आती है। इसीलिए शास्त्रों का कथन है—'जिस शरीर से धर्म न हुआ, यज्ञ न हुआ और परोपकार न हो सका, उस शरीर को धिक्कार है, ऐसे शरीर को पशु-पक्षी भी नहीं छूते।' कबीर ऐसे व्यक्तियों को धिक्कारते हुए कहते हैं—

'बड़ा हुआ तो क्या हुआ जैसे पेड़ खजूर।
पंछी को छाया नहीं, फल लागत अति दूर॥'

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने परोपकार और परोपकारी भावना की कैसी सुन्दर व्याख्या की है—

मरा वही नहीं कि जो जिया न आपके लिए।
वही मनुष्य है कि जो, मरे मनुष्य के लिए॥

(137) पर्वतारोहण

संकेत बिंदु—(1) अत्यन्त साहसपूर्ण कार्य (2) पर्वतारोहण पर जाने के लिए आवश्यक वस्तुएँ (3) पर्याप्त प्रशिक्षण, श्रम और साधन (4) पर्वतारोहण का प्रारम्भ (5) विभिन्न पर्वतारोही अभियान।

पर्वतारोहण व्यक्ति की अत्यन्त साहसपूर्ण अभिरुचि है। जान-बूझकर मृत्यु-देवता से टक्कर लेने की प्रबल इच्छा है। प्रकृति की चुनौती को स्वीकार करने का अदम्य उत्साह है। जीवन और जगत् की खाई को पार करने की अनोखी धुन है। भयंकर तूफान से जूझने का व्यसन है।

पर्वतारोहण अत्यन्त दुस्साहसपूर्ण, बहुत महँगा और सामूहिक एकता पर निर्भर होता है। यह इच्छा बिना साथियों के पूर्ण नहीं हो सकती। आधुनिक यन्त्र, साज-समान, लाव-लश्कर के बिना पर्वतारोहण करना क्षितिज के पार पहुँचने की कल्पना के समान है।

पर्वतारोहण का अर्थ शिमला, मंसूरी, दार्जिलिंग या कश्मीर की पक्की सड़कों की चढ़ाई नहीं। पर्वतारोहण का अर्थ ऐसे पर्वतों पर चढ़ाई है, जहाँ विधिवत् मार्ग न हों, संकरी और टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियाँ भी न हों, पथ में वृक्ष, लता-गुल्म और घास न हो, मीलों तक पानी न मिले। ऊँचे-ऊँचे पहाड़ मार्ग रोके खड़े हों, बर्फीली चोटियाँ पर्वतारोहण के शौक को चुनौती देती हों। जैसे एवरेस्ट या नन्दादेवी पर्वत पर आरोहण।

पर्वतारोहण करने के लिए मौसम वैज्ञानिक चाहिएं, जो मौसम का अनुमान लगा सकें। भूगोल-वेत्ता-चाहिएँ, जो पहाड़ पर चढ़ने का मार्ग-दर्शन कर सकें। पर्वत पर हवा का दबाव कम हो जाता है, इसके लिए ऑक्सिजन गैस के सिलैंडर चाहिएं। हवा, पानी और बर्फ से सुरक्षा के लिए विशिष्ट वस्त्र और विशेष प्रकार के जूते चाहिएं। संदेश-प्रेषण का यंत्र चाहिए। भोजन रखने के डिब्बे चाहिएं। भोजन पकाने के लिए चूल्हा और अकस्मात् अहित होने पर दवाइयाँ चाहिएं। बर्फ काटने की कुल्हाड़ी, फावड़े और ऊपर चढ़ने के लिए रस्सी तथा खूँटियाँ चाहिएं। निवास और विश्राम के लिए तम्बू तथा पहाड़ के नक्शे चाहिएं। इस सारे सामान को ढोने लिए प्रशिक्षित कुली चाहिएं। कम महत्त्व की वस्तुओं में कैमरा या फोटोग्राफर चाहिए।

पर्वतारोहण के लिए कितना मानव- श्रम, कितनी साधन-सामग्री और कितने प्रशिक्षण

की आवश्यकता है, इसका अनुमान तो उक्त विवरण से लग गया, किन्तु उस पर कितना खर्च आएगा, यह कल्पनातीत है, हिसाब जोड़ें तो लाखों में पड़ता है।

18 मई, 1921 से अब तक पर्वतारोहण करने में कितने साहसियों ने हिमसमाधि ली, कितने हिम में मार्ग-भ्रष्ट होकर सदा-सदा के लिए वहाँ सो गए, कितनों को तूफानी-बर्फीली हवाएँ उड़ाकर पर्वतारोहण का मजा चखा गईं। देवतात्मा हिमालय पूछ बैठा, 'क्या तुम भी पाण्डवों की भाँति आत्मसमर्पण करने आए हो?'

पर्वतों में मार्ग ढूँढना, बर्फ काट-काटकर मार्ग बनाना, बर्फ में कील गाड़ना, रस्से के सहारे ऊपर चढ़ना, बर्फीली हवाओं का सामना करना, स्थान-स्थान पर पड़ाव डालना, तम्बू गाड़ना, भोजन तैयार करना, विश्राम करना, रात्रि के भयंकर अन्धकार की चुनौती स्वीकार करना, अकस्मात् हिम-खंड गिरने पर सर्वनाश की कल्पना से भी विचलित न होना, तेज वर्षा और बर्फीली आँधी आने पर अपना, अपने साथियों तथा सामान का बचाव कर पाना बहुत जीवट का काम है, आत्म-विश्वास संजोये रखने का धैर्य है और है मृत्यु की चुनौती का वीरता से प्रतिकार करना। कारण, बर्फ पर चढ़ाई अत्यन्त जोखिम की चढ़ाई है।

पर्वतारोहण का कार्य सन् 1857 में अल्पाइन क्लब की स्थापना से आरम्भ हुआ। सन् 1907 में इस क्लब की ओर से मिस्टर मऊ पहले पर्वतारोही चुने गए, किन्तु भारत-सरकार की अनुमति के अभाव में यह प्रस्ताव स्थगित कर दिया गया। 28, मई, 1921 को जनरल सर चार्ल्स ब्रूस के नेतृत्व में पर्वतारोहियों की पहली टोली हिमालय पर एवरेस्ट आरोहण के लिए गई। इस टोली ने चार मास में हिमालय के कुछ रहस्यों का पता लगाया। इसके बाद तो विभिन्न राष्ट्र अपने-अपने ढंग से हिमालय को पराजित कर आरोहण करने लगे। दस बार आरोहण-योजनाएँ असफल हुईं। अन्तत: 29 मई, 1953 के दिन कर्नल हंट के नेतृत्व में स्वयं कर्नल हंट और शेरपा तेनसिंह ने मध्याह्न साढ़े ग्यारह बजे एवरेस्ट पर मानव-पग रख दिए। बीस मिनट तक एवरेस्ट-शिखर पर रहने वाले ये प्रथम पर्वतारोही थे।

इसी प्रकार नीलकंठ शिखर के आरोहण का प्रारम्भ सन् 1913 में ब्रिटिश पर्वतारोही श्री मीड ने किया। उसके पश्चात् 1937, 47, 51 में पर्वतारोही योद्धाओं ने भगवान् शंकर के मस्तक को स्पर्श करने का दुस्साहस किया, किन्तु वे असफल रहे। सन् 1959 में पहला भारतीय पर्वतारोह दल एअर वायस मार्शल एस.एन. गोयल के नेतृत्व में गया। दूसरा दल सन् 1961 में गया। इसे हिमालय-पर्वतारोहण प्रशिक्षण विद्यालय दार्जिलिंग ने सत्ताईस वर्षीय कप्तान नरेन्द्रकुमार के नेतृत्व में भेजा था। अकस्मात् हिम-वर्षा हो गई। दल का साहस टूट गया, किन्तु श्री ओ.पी. शर्मा विचलित नहीं हुए और दो शेरपाओं के साथ मौत से खेलते हुए शेष 440 फुट की चढ़ाई चढ़ गए। पाँच बज चुके थे, अन्धकार छा गया था, फिर भी उन्होंने नीलकंठ भगवान् की पूजा की। तीनों वीरों ने नीलकंठ की चोटी पर खड़े रात बिताई।

पर्वतारोहण अत्यन्त साहस, शौर्य, धैर्य तथा सहनशीलता का परिचायक है। यह बिना प्रशिक्षण पूरा नहीं हो सकता। प्रशिक्षण के बाद भी बिना टीम-टोली के, बिना टीम-स्प्रिट के तथा बिना उपकरण और साधनों के पर्वतारोहण स्वप्न बनकर रह जाता है।

(138) भाग्य और पुरुषार्थ

संकेत बिंदु—(1) भाग्य और पुरुषार्थ का अर्थ (2) जीवन की सफलता-असफलता भाग्य पर निर्भर (3) भौतिकतावादी सुख पुरुषार्थ की देन (4) पुरुषार्थ और भाग्य एक-दूसरे के पूरक (5) उपसंहार।

अदृश्य की 'लिपि' भाग्य है और लक्ष्य पूरा करने के लिए अपनी समस्त शक्तियों द्वारा परिश्रम करना 'पुरुषार्थ' है। भाग्य शरीर है, पुरुषार्थ शरीर में अन्तर्निहित शक्ति-तत्त्व है, जो भाग्य को प्रत्यक्ष करता है। योग वाशिष्ठ में कहा गया है, 'पूर्वकृत पुरुषार्थ के अतिरिक्त भाग्य और कुछ नहीं है।' (प्राक्स्व धर्मेतराकारं दैवं नाम विद्यते।)

'अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम', इस सिद्धान्त को मानने वाले भाग्य को बलवान् मानकर पुरुषार्थ को निरर्थक मानते हैं। वे कार्य में असफलता मिलने पर भाग्य को ही दोष देते हैं। उनका सिद्धान्त वाक्य है, 'भाग्यहीन खेती करे, बैल मरैं या सूखा पड़े!'

भर्तृहरि कहते हैं, 'करील वृक्ष में यदि पत्ते नहीं हैं, तो वसन्त का क्या दोष? उल्लू यदि दिन में नहीं देख पाता, तो सूर्य का क्या दोष? स्वाति नक्षत्र में वर्षा का जल यदि पपीहे के मुख में नहीं पड़ता, तो मेघ का क्या दोष? विधाता ने जो भाग्य में लिख दिया है, उसे कौन मिटा सकता है?'

भगवान् शंकर की पत्नी पार्वती अन्नपूर्णा हैं, जो तीनों लोकों को अन्नदान कर सबका पालन करती हैं, फिर भी शंकर हाथ में कपाल लिए भिक्षा माँगते फिरते हैं, यह भाग्य की ही तो विडम्बना है।

महाकवि तुलसीदास ने ***'हँसि बोले रघुवंश कुमारा। विधि का लिखा को मेटनहारा'***, कहकर भाग्य को बलवान् माना है। हरिवंश पुराण तो यहाँ तक मानता है 'दैवं पुरुषकारेण न शक्यमति वर्तितुम्' (विष्णु पर्व 28/4) अर्थात् पुरुषार्थ से भाग्य के विधान का उल्लंघन नहीं किया जा सकता।

भाग्यवादी 'भाग्यं फलति सर्वत्र, न हि विद्या न च पौरुषम्' का उद्‌घोष करते हुए प्रमाण रूप में समुद्रमंथन का दृष्टांत देते हैं, जिसमें विष्णु को लक्ष्मी और शंकर को पान करने के लिए विष प्राप्त हुआ था। उनका यह भी तर्क है कि एक ही क्षेत्र में समान परिश्रम करने पर भी दो व्यक्तियों को भिन्न-भिन्न फल क्यों प्राप्त होता है? एक भाग्य की अनुकूलता से लखपति बन जाता है, जबकि दूसरा दु:ख-सागर में डूबा रहता है। अत: जीवन की सफलता-असफलता भाग्य पर ही निर्भर करती है।

इसके विपरीत पुरुषार्थ के समर्थकों का दृष्टिकोण कुछ और ही है। उनका कहना है कि 'अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम', इस उक्ति को उद्धृत करते समय भाग्यवादी यह भूल जाते हैं कि उद्यम करने से ही कार्य सिद्ध होते हैं, केवल मन में इच्छा करने से नहीं। क्योंकि 'नहिं सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगा:'। सिंह यदि शिकार को पकड़ने का उद्यम न करे और पक्षी गगन में घूमकर अपना आहार तलाश न करें, तो भूखे मर जाएँ।

पुरुषार्थ का आशय है निरन्तर साहस और लगन से बिना थके कार्य करने में कटिबद्ध रहना। पुरुषार्थ से ही मनुष्य ने पृथ्वी को पृथु की भाँति दुह डाला है, जिससे मानव ने पृथु की भाँति न केवल सस्य ही प्राप्त किया अपितु तेल, कोयला, लोहा, टीन, एल्युमिनियम आदि धातुओं को भी प्राप्त किया है, जो शक्ति के महान् स्रोत हैं। सागर की छाती पर चढ़कर चक्कर लगाने वाले जलयान तथा आकाश में उड़ने वाले विमान पुरुषार्थ-बल के प्रतीक हैं। चन्द्रलोक, शुक्रलोक और मंगललोक की खोज पुरुषार्थ का जीता-जागता पुरस्कार है। विज्ञान द्वारा प्रदत्त सुख, सम्पन्नता, ऐश्वर्य मानवीय पुरुषार्थ का ही तो पुरस्कार हैं।

स्वामी शंकराचार्य पुरुषार्थहीन मानव को जीते जी मरा हुआ मानते हैं। संस्कृत के प्रसिद्ध नाटककार भारवि का कथन है, 'पुरुषार्थहीन पुरुष को विपत्तियाँ आक्रान्त कर लेती हैं। विपत्तियों से आक्रान्त होने पर उसकी भावी उन्नति रुक जाती है, उसका गौरव नष्ट हो जाता है।' महाभारत की धारणा है कि 'जो पुरुषार्थ नहीं करते, वे धन, मित्र-वर्ग, ऐश्वर्य, उत्तम-कुल तथा दुर्लभ लक्ष्मी का उपयोग नहीं कर सकते। गीता का सार भी यही है, 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।' यहाँ कर्म का तात्पर्य पुरुषार्थ ही है।

पुरुषार्थ के बल पर जीव जीवन धारण करता है, जिससे संसार-चक्र चलता है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, इन चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति ही जीवन का लक्ष्य है। परिश्रम या उद्योग से प्राप्त होने के कारण ही इन्हें पुरुषार्थ नाम दिया गया है। महाभारत के अनुसार 'किया हुआ पुरुषार्थ ही भाग्य का अनुकरण करता है, किन्तु पुरुषार्थ न करने पर भाग्य किसी को कुछ नहीं दे पाता।'

भारतीय मनीषी मानते हैं कि कर्म भी भाग्य का एक रूप है। (पूर्व जन्म कृतं कर्म तद्दैवमिति कथ्यते) मानव जो कर्म करता रहता है, वह कर्म का वह रूप है, जिसको क्रियमाण कहा जाता है। यह संचित होता रहता है। ईश्वरीय व्यवस्था के अनुसार मनुष्य के कर्मों का कुछ अंश भाग्य बन जाता है। अत: वेदव्यास जी ने महाभारत में कहा, 'कर्म समायुक्तं दैवं साधु विवर्धते' (अनुशासन पर्व 6/43) अर्थात् पुरुषार्थ का सहारा पाकर ही भाग्य भलीभाँति बढ़ता है। उनका यह भी कहना है कि 'जैसे बीज खेत में बोए बिना निष्फल रहता है, उसी प्रकार पुरुषार्थ के बिना भाग्य भी सिद्ध नहीं होता।' (महाभारत, अनुशासन पर्व 6/7)। शुक्रनीति इसका समर्थन करते हुए कहती है, 'अनुकूले यदा दैवे क्रियाऽल्पा सुफला भवेत्।' (1/57) अर्थात् जब भाग्य अनुकूल रहता है, तब थोड़ा भी पुरुषार्थ सफल हो जाता है। इसलिए पुरुषार्थ किए बिना भाग्य का उत्कर्ष नहीं हो सकता।

महाकवि तुलसीदास ने इस बात की पुष्टि करते हुए लिखा है—'कर्मप्रधान विश्व रचि राखा, जो जस करहि सो तस फल चाखा।'

संस्कृत में एक सूक्ति है, 'उद्योगिनं पुरुसिंहमुपैति लक्ष्मी:' वस्तुत: सम्पत्ति और सफलता पुरुषार्थी के आंचल की वधू हैं। पसीने की कमाई का मूल्य पारितोषिक रूप में अवश्य मिलता है। खेत पुरुषार्थ है, भाग्य बीज है। जिस प्रकार खेत और बीज के संयोग से ही अनाज पैदा होता है, उसी प्रकार पुरुषार्थ और प्रारब्ध (भाग्य) के संयोग से ही जीवन सफल हो सकता है। योगवाशिष्ठ में चेतावनी देते हुए कहा गया है, 'बुद्धिमान् नियति का सम्बल लेकर पुरुषार्थ का त्याग न करें; क्योंकि नियति भी पुरुषार्थ रूप से ही नियामक होती है।'

(139) मित्रता महातरु की छाया, शीतल कर देती है काया /मित्रता

संकेत बिंदु—(1) विद्वानों की राय में मित्रता (2) मित्रता बिना संसार शून्य (3) विद्वज्जनों और दुष्टों की मित्रता में अंतर (4) आज की स्वार्थी मित्रता (5) सच्ची मित्रता।

मित्र होने का धर्म या भाव मित्रता है। सुख-दु:ख का समझौता मित्रता है। अरस्तु के शब्दों में, 'मित्रता का अर्थ है, दो शरीरों में रहती एक आत्मा।' प्रसिद्ध विचारक बेकन के अनुसार, 'जिसकी उपस्थिति में दु:ख आधा हो जाए और सुख दुगना हो जाए' वह मित्रता है।

श्री डिजरायली के विचार में 'मित्रता दैवी देन है और मनुष्य के लिए अत्यन्त बहुमूल्य वरदान।' 'दिनकर' जी के शब्दों में—

मित्रता बड़ा अनमोल रतन। कब इसे तोल सकता है धन।

—चक्रवाल, पृष्ठ 270

मैत्री की बड़ी सुखद छाया। शीतल हो जाती काया। **—रश्मिरथी**

आचार्य शुक्ल मानते हैं, 'सच्ची मित्रता में उत्तम से उत्तम वैद्य की-सी निपुणता और परख होती है। अच्छी से अच्छी माता का-सा धैर्य और कोमलता होती है।'

मित्रता को आँखों को ज्योतित करने वाला रसायन और हृदय के आह्लाद का जनक कहा गया है। उसमें शिव के समान आत्म-त्याग तथा बोधिसत्त्व-सदृश सर्वस्व समर्पण की भावना निहित रहती है।

मित्रता के बिना संसार शून्य है। यह मायावी संसार को प्रेमपूर्वक सहज भोगने का एक माध्यम है। घर में धन-धान्य और समस्त ऐश्वर्य विद्यमान हों, पर पति-पत्नी में मित्रता न हो तो वह ऐश्वर्य भी कष्टदायक बन जाता है। घोर गोपनीय बात, अत्यन्त कठिन

संकटपूर्ण परिस्थिति और अपार प्रसन्नता में मनुष्य सगे-सम्बन्धियों का साथ छोड़ सकता है, किन्तु मित्र का नहीं। राज द्वार से श्मशान तक में भी मित्रता अटूट रहती है। द्रोह, छल, कपट मन में आता नहीं, प्राण देकर मित्रता का निर्वाह करता है। मित्रों में परस्पर विश्वास की भावना अधिक रहती है।

प्रकारान्तर से कविवर रहीम मित्र की पहचान इन शब्दों में करते हैं— *'विपत्ति कसौटी जे कसे, तेई सांचे मीत।'* तुलसीदास जी इससे भी एक पग आगे बढ़कर कहते हैं, *'जे न मित्र दुःखहोहिं दुखारी, तिनहिं बिलोकत पातक भारी।'*

परस्पर विश्वास में बद्ध भाव वालों की मित्रता संभव है। विष्णु शर्मा के अनुसार 'समान शील व्यसनेषु सख्यम्।' (पंचतंत्र 1/305) समान शील और व्यसन वालों में मित्रता होती है। दूसरे शब्दों में सम्मान शील, आयु, विद्या, जाति, व्यसन और वृत्ति वाले लोगों में साथ रहने से मित्रता होती है। एक-दूसरे का उपकार भी मित्रता का कारण होता है। सावरकर जी की धारणा है कि 'मित्रता उन्हीं में हो सकती है, जिनमें शक्ति की भी समानता है।' (हिन्दू पद पादशाही, भूमिका) सहपाठी, सह खिलाड़ी, सहकर्मी, सहयात्री, सहभ्रमणकर्ता, सहभोजी भी मित्रता के कारण बन जाते हैं। वृन्द जी के अनुसार—

प्रकृति मिले मन मिलत है, अनमिलते न मिलाए।
दूध दही ते जमत है, काँजी ते फटि जाए॥

विद्वज्जनों के साथ मित्रता प्रारम्भ में मंद-मंद, मध्य में समरस और अंत में अत्यन्त स्नेहमयी हो जाती है। सज्जनों की मित्रता नदी के समान प्रारम्भ में क्षीण, मध्य में गंभीर तथा पद-पद पर विस्तार पाने वाली होती है। वह प्रारम्भ होकर कभी समाप्त नहीं होती। जातक के अनुसार— *न सन्यवस्मा परिमित्थ संय्यो। यो सन्थवो सप्पुरिसेन होति।* **(सन्थव जातक)** अर्थात् सत्पुरुष में जो मित्रता होती है, उस मित्रता से बढ़कर श्रेष्ठ कुछ नहीं है। तमिल कवि तिरुवल्लुवर के अनुसार, 'बुद्धिमानों की मित्रता बढ़ते हुए बालचंद्र के समान तथा मूर्खों की मित्रता घटते हुए पूर्ण चन्द्र के समान होती है।

वस्तुतः मित्रता वह बेल है जो स्नेह, सहिष्णुता, सहायता और सहानुभूति का जल पाकर बढ़ती है और जिसमें स्वर्णिम उल्लास के फूल लगते हैं। दीन-दुःखी, दरिद्र-दुर्बल विप्र सुदामा की मैत्री द्वारिकाधीश भगवान् श्रीकृष्ण के स्नेह, सहिष्णुता, सहृदयता एवं सहानुभूति के कारण कितनी पल्लवित हुई, वह अनिर्वचनीय ही है।

मंजिले हस्ती में दुश्मन को भी अपना दोस्त कर।
रात हो जाए तो दिखलावे, तुझे दुश्मन चिराग॥

—ख्वाजा हैदर अली 'आतिश'

'निज समान सों कीजिए, ब्याह, बैर और प्रीति' कहकर किसी पंडित ने किसी समय में उपदेश दिया होगा, किन्तु वर्तमान काल में यह अव्यवहार्य है, असंगत है। राजनीति में तो यह सर्वथा असम्भव है। यहाँ दो परस्पर विरोधी विचारधारा के राष्ट्र रूस और अमेरिका मित्रता का हाथ बढ़ा सकते हैं तो साम्राज्यवाद के कट्टर शत्रु चीन के शासक 'निक्सन की

जय' के गगनभेदी नारों से अपनी मित्रता प्रकट कर सकते हैं। भाजपा को 'साम्प्रदायिक' मानकर गाली देने वाले अनेक राजनीतिक दल, आज भाजपा के साथ मिलकर न केवल चुनाव लड़ते हैं, अपितु देश-संचालन में उसके भागीदार भी बने हैं। वस्तुत: ऐसी मैत्री के लिए तुलसीदास ने बहुत सुन्दर कहा है—*'स्वारथ लागि करैं सब प्रीती।'*

सच्चाई यह है कि 'पानी पीजे छानकर, मित्र कीजे जानकर।' पहले परिचय फिर घनिष्ठता, तत्पश्चात् मित्रता। जीवन में परिचय सहस्त्रों से हो सकता है, घनिष्ठता सैकड़ों से हो सकती है, किन्तु मित्रता दो-चार से ही सम्भव है। मित्रता का सम्बन्ध स्थापित करने से पूर्व उसके गुणावगुण की परख अनिवार्य है। अत: मित्रता गाँठने में शीघ्रता नहीं करनी चाहिए। बल्कि धीरे-धीरे चलने में ही कल्याण है। चाणक्य ने मित्रता की सुदृढ़ता के लिए चेतावनी देते हुए कहा है, 'यदि दृढ़ मित्रता चाहते हो तो मित्र से बहस करना, उधार लेना-देना और उसकी स्त्री से बातचीत करना छोड़ दो।' यही तीन बातें बिगाड़ पैदा करनी हैं। इसके विपरीत ड्यूमाज का कथन है कि 'मनुष्य जो स्वयं करे उसे भूल जावे और दूसरे से ले उसे सर्वदा याद रखे, मित्रता का यही मूल है।'

(140) मृत्यु

संकेत बिंदु—(1) जीवन का सबसे बड़ा सच (2) विभिन्न धर्म ग्रंथों के अनुसार मृत्यु का अर्थ (3) आत्मज्ञानी के लिए मृत्यु प्रभु का निमंत्रण (4) पुनर्जन्म का साधन और मृत्यु के प्रकार (5) उपसंहार।

मृत्यु सबसे बड़ा सच है। वह कोई बहाना स्वीकार नहीं करती। अपनी छाया की भाँति मृत्यु प्राणी का साथ छोड़ती नहीं। इसलिए कालिदास कहते हैं, *'मरणं प्रकृति: शरीरिणां'* (रघुवंश 8/87) शरीरधारियों के लिए मरना स्वाभाविक है। अश्वघोष लिखते हैं, 'सत्यां प्रवृतौ नियतश्च मृत्यु: तत्रैव मग्ना यत एव भीता: (बुद्धचरित 7/23) प्रवृत्ति होने पर मृत्यु निश्चित है। वे जिससे डरते हैं, उसी में डूबते हैं। शेख फरीद के शब्दों में 'जिदु बहूटी मरणु वर, लै जासी परणाई।' जीवन-वधू को मरण-वर ब्याह कर ले जाएगा।

कीट्स के शब्दों में 'Death is life's high meed.' मृत्यु जीवन का पारितोषिक है।' जहूरद्दीन हातिम कहते हैं, *'फकीरों से सुना है हमने हातिम / मजा जीने का मर जाने में देखा।'* महादेवी वर्मा लिखती हैं—*'अमरता है जीवन का हास / मृत्यु जीवन का चरम विकास।'* काजी नजरूल इस्लाम की मान्यता है, 'हमारी मृत्यु हमारे जीवन का इतिहास लिखती है।' प्रसाद जी लिखते हैं—

मृत्यु, अरी चिर निद्रे! तेरा / अंक हिमानी-सा शीतल।

(कामायनी, चिंतासर्ग)

भागवत के अनुसार 'मृत्यु जन्मवतां वीर देहेन सह जायते' तो गीता के अनुसार 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु:।' जो पैदा हुआ है, वह मरेगा अवश्य। जो उत्पन्न नहीं हुआ, उसका

विनाश कैसा ? अत: जन्म लेने वाले की मृत्यु शाश्वत सत्य है। वाल्मीकि रामायण के अनुसार, 'मृत्यु साथ ही चलती, वह साथ ही बैठती है और सुदूरवर्ती पथ पर भी साथ-साथ जाकर साथ ही लौट आती है।' कविवर रवीन्द्र की धारणा है कि, 'मृत्यु का फव्वारा जीवन में स्थिर जल पर नर्तन करता है।' वृद्ध मनुष्य मृत्यु के पास जाते हैं, लेकिन युवकों के पास मृत्यु स्वयं आती है। दूसरी ओर, देवगण जिसे प्यार करते हैं, वह मृत्यु की गोद में जल्दी सोता है। वस्तुत: जीवन की चलती हुई तस्वीर के लिए मृत्यु ही एक समुचित चौखट है।

मृत्यु परिहास भी करती है। किसी दुर्घटना या भयंकर व्याधि में फँसे हुए किसी मनुष्य को देखकर लगता है कि वह इस अपार कष्ट, मर्मांतक पीड़ा, असह्य वेदना में काल का ग्रास हो जाएगा, किन्तु वह बच जाता है और स्वस्थ होकर हँसते-हँसते उठ बैठता है। लोकनायक जयप्रकाश की मृत्यु का समाचार (झूठा) सुनकर संसद् भी रो पड़ी, किन्तु वे शय्या पर लेटे काल की असमर्थता पर हँस रहे थे। दूसरी ओर अनेक बार ऐसा भी होता है कि आज ही किसी मुग्धा, रूप-गर्विता की माँग में सिन्दूर भरा गया और कल काल के क्रूर हाथों से पोंछ दिया गया। इधर जननी ने चिर साध पूरी कर शिशु को जन्म दिया, उधर वह चिरनिद्रा में सो गई। अपने शिशु को छाती से भी न लगा सकी, उसका कोमल व भोला मुखड़ा भी न देख सकी।

मृत्यु सदा दु:खदायिनी हो, ऐसा नहीं। परतन्त्र, बंधक, यंत्रणा-ग्रस्त, भूख-प्यास से पीड़ित, अभाव-ग्रस्त जीवन, दुष्ट नारी के पति, कपटी मित्र के साथी और सर्प-युक्त घर में रहने के कारण प्रतिदिन मरने वालों के लिए मृत्यु स्वतन्त्रता का द्वार है। असाध्य रोग से ग्रस्त, पीड़ा से क्षण-क्षण कराहने वाले व्यक्ति के लिए मृत्यु वरदान है। उस कष्ट से सदा के लिए मुक्ति देने वाली है।

मानव आत्म-ज्ञान के अभाव में मृत्यु से डरता है। मृत्यु के कुछ समय पूर्व स्मृति स्पष्ट हो जाती है। जन्म-भर की घटनाएँ, कर्म-अकर्म चलचित्रवत् अन्त:चक्षुओं के सामने एक-एक कर आते हैं। 'अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश रूपी क्लेशों पर व्यक्ति सिर धुनता है। महाकाल की छाया जीवन-फल का विश्लेषण मृत्यु को भयावह बना देते हैं। मृत्यु-दृश्य महान् कारुणिक बन जाता है।'

आत्मज्ञानी के लिए मृत्यु प्रभु का निमंत्रण है। वह इस निमन्त्रण से डरता नहीं उलटा अधरों पर मुस्कान लिए उसका स्वागत करता है। उनकी मृत्यु मुक्ति का द्वार बनती है। भगवान् राम ने सरयू में समाधि ली। आधुनिक युग के महान् समाज सुधारक महर्षि दयानन्द ने समाधि में जीवन पुष्प प्रभु के चरणों में अर्पित कर दिया। भूदान के प्रणेता संत विनोबा भावे ने मृत्यु का किस धैर्य से आह्वान किया।

देश प्रेमी, ध्येय के प्रति समर्पित जीवन, वीर-आत्माएँ हँसकर मृत्यु को ललकारते हैं। उनके लिए मृत्यु पुनर्जन्म का साधन है, अधूरे कार्यों की पूर्ति के लिए प्रभु इच्छा का प्रसाद है। वीर अभिमन्यु ने चक्रव्यूह में वीरगति प्राप्त की। बालक हकीकतराय और गुरु

पुत्रों ने मुस्लिम धर्म स्वीकार न कर प्राण-त्याग किये। क्रांतिकारी वीर आत्मा को अमर मानकर हँसते हुए फाँसी के फन्दे को चूमने के लिए मचल उठे।

मृत्यु का विश्लेषण पाँच प्रकार से किया जाता है—साधारण मृत्यु, अकाल-मृत्यु, आत्म-हत्या, उत्सर्ग तथा समाधिस्थ अवस्था।

साधारण मृत्यु प्रकृति के नियम का पालन मात्र है। रोग आदि मृत्यु के बहाने पका फल वृक्ष पर स्थिर नहीं रहता।

आकस्मिक और युवा-मृत्यु अकाल मृत्यु है। आकस्मिक दुर्घटना तथा अचानक हिंसक पशु आक्रमण से युवा-मृत्यु अकाल मृत्यु है। शास्त्रों ने इसे माता-पिता के पापों का दण्ड माना है।

कृत्रिम बहानों से प्राणों को शरीर से पृथक् कर देना ही. क्लेशकारी है। ऐसी मृत्यु आत्म-हत्या कहलाती है। आत्म-हत्या जीवन में घोर निराशा की प्रतिक्रिया है, कायरता की द्योतक है। प्रभु ऐसे आत्म-निवेदन को स्वीकार नहीं करते। आत्म-हत्या करने वाले शरीर की छटपटाहट से तो मुक्ति पा लेते हैं, किन्तु आत्मा की भटकन उन्हें और तड़पाती है।

देश, समाज, धर्म तथा मानव हित जीवन-अर्पण उत्सर्ग है। ऐसे वीर संघर्ष और युद्ध में जीवन की बलि चढ़ाकर वीरगति को प्राप्त करते हैं। ऐसी गौरवपूर्ण मृत्यु पर देवगण पुष्प-वर्षा करते हैं। उनकी चिता पर प्रति वर्ष मेले लगते हैं।

स्वेच्छा से इहलोक का विसर्जन मोक्ष का सोपान है। मन और प्राण को वश में कर समाधिस्थ अवस्था में योगी मृत्यु से साक्षात्कार करते हैं। प्रभु चिन्तन में लीन होते हैं। दीन-दुनिया से बेखबर होते हैं। उनकी अन्तिम साँस अपने अमरत्व पर गर्व करती है।

मृत्यु प्राणों का शरीर से विसर्जन है। अतः निष्प्राण शरीर शव है, अपवित्र, अस्पृश्य और भयजनक है। घर से निकाल बाहर करने की वस्तु है। उसकी जल में समाधि या अग्नि-समर्पण ही श्रेष्ठतम अन्त्येष्टि है।

नश्वर यह सारा अग-जग / नश्वर यह मेरा तन है।
है अर्थ जन्म का मरना / संसृति का लक्ष्य निधन है।

(श्यामनारायण पाण्डे : जौहर)

(141) वीरता

संकेत बिंदु—(1) बलवान और साहसी होने का भाव (2) यश की प्रेयसी (3) वीरता के अनेक क्षेत्र (4) वीरता के चार गुण (5) उपसंहार।

यथेष्ट बलवान् और साहसी होने का धर्म या भाव वीरता है। विकट परिस्थिति में भी आगे बढ़कर धैर्य और साहसपूर्वक अपने कर्तव्य का पालन करना वीरता है। किसी काम में अन्य लोगों से बहुत बढ़कर होना वीरता है। जैसे—दानवीर या धर्मवीर। किसी काम में बहुत निष्णात होना भी वीरता है। जैसे—वाग्वीर।

एमियल के शब्दों में —'भय पर आत्मा की शानदार विजय ही वीरता है।' सरदार पूर्णसिंह के शब्दों में, 'अपने आपको हर घड़ी और हर पल महान् से महान् बनाने का नाम वीरता है।' ('सच्ची वीरता' : निबन्ध)। 'प्राणों का मोह त्याग करना सच्ची वीरता का रहस्य है।' —जयशंकर प्रसाद (चंद्रगुप्त : द्वितीय अंक)। 'आत्म-विश्वास वीरता का सार है।' —एमर्सन। मैं शक्ति केन्द्र हूँ। मेरी पराजय नहीं हो सकती। यह संकल्प वीरता का सम्बल है।

धर कर चरण विजित शृंगों पर झंडा वही उड़ाते हैं।
अपनी ही उँगली पर जो खंजर की जंग छुड़ाते हैं॥

—रामधारीसिंह 'दिनकर' (चक्रवाल ; पृष्ठ 54)

'वीरता उन्माद नहीं है, वह आँधी नहीं है, जो उचित-अनुचित का विचार न करती हो। केवल शस्त्र-बल पर टिकी हुई वीरता बिना पैर की तेजी है। उसकी दृढ़ भीति है, 'न्याय।'—जयशंकर प्रसाद (स्कंदगुप्त : द्वितीय अंक) प्रकारान्तर से लक्ष्मी नारायण मिश्र ने भी यही बात कही है, 'बिना विवेक के वीरता महासमुद्र की लहरों में डोंगी सी डूब जाती है। दम्भ करने का स्वभाव कायर का है और वीरता विनय में भी आगे रहती है। (चक्रव्यूह) गाँधी जी के विचार में, 'बहादुरी का अर्थ उद्दण्डता नहीं। जो अपनी शक्ति से दूसरों को कुचलता है, वह बहादुर नहीं।' (नवजीवन. 16 जनवरी 1921)। श्यामनारामण पाण्डेय कहते हैं।

अरि को धोखा देना, शूरों की रीति नहीं है। **(हल्दी घाटी)**

वीरता यश की प्रेयसी है। जीवन में महान् कार्य करने की प्रेरक शक्ति है। वसुन्धरा को भोगने की कामना है। काम, क्रोध, लोभ, मोह वृत्तियों की विनाशक है। सत्य, शक्ति और संकल्प की पवित्र त्रिवेणी के दर्शन वीरता में होते हैं।

केवल शक्ति प्रदर्शन वीरता नहीं। वीरता के अनेक क्षेत्र हैं। महाभारत कालीन कर्ण और इतिहास प्रसिद्ध भामाशाह दानवीर थे। महर्षि दधीचि और राजा शिवि के शरीर- दान की वीरता भी इतिहास में चिरस्मरणीय है। राजपूतों में प्रचलित जौहर प्रथा वीरता के दिव्य रूप का प्रतीक है। धर्मवीर बाल हकीकत राय का बलिदान, गुरुपुत्रों के दीवार में चुने जाने की दृढ़ता, धर्म-वीरता के ओजस्वी उदाहरण हैं।

विधि-वेत्ता तथा कूटनीतिज्ञ वाग्वीरता के लिए प्रसिद्ध हैं। दीन-दु:खी और रोगी सेवा के लिए नाइटेंगिल और मदर टेरेसा वीरता की अद्‌भुत प्रतिमा हैं। महात्मा गाँधी, ईसामसीह, सुकरात, मीरा सत्य-वीरता की जीवन्त मूर्ति हैं, जो सत्य के लिए अपने मार्ग से विचलित नहीं हुए।

आत्म-बल तथा मानसिक प्रेरणा से अनुप्राणित शक्ति का नाम वीरता है। वीरता का मुख्य आधार है उत्साह। उत्साह मनुष्य को कठिन कार्य करने की प्रेरणा देती है। उत्साह के सहारे ही मानव हिमालय की सबसे ऊँची चोटी एवरेस्ट को रौंद सका, अन्य अनेक गिरि-शृंगों को पददलित कर सका, चन्द्रलोक पर झंडा गाड़ सका। वह वहाँ पर स्थायी निवास के लिए प्रयत्नशील है एवं मंगल-लोक की पूर्ण विजय को आतुर हो उठा है।

वीरता जहाँ नहीं, वहाँ पग-पग पर मरण है, स्वार्थ का वर्चस्व है और है पुण्य का क्षय।

वीरता जहाँ पर नहीं, पुण्य का क्षय है।
वीरता जहाँ पर नहीं, स्वार्थ की जय है।

—रामधारीसिंह 'दिनकर' (परशुराम की प्रतीक्षा, पृष्ठ 4)

वीरता का प्रथम गुण है, आत्म-विश्वास। आत्म-विश्वास के आगे विघ्न-बाधाएँ टिकती नहीं, रुकती नहीं। महाराज रणजीत सिंह ने उमड़ती हुई अटक नदी को पार करने के लिए अपना घोड़ा नदी में उतार दिया, तो कहते हैं कि नदी सूख गई थी। इसी प्रकार जब नेपोलियन को सेनाएँ एल्प्स पर्वत को पार करने में असमर्थ हो रही थीं, तभी वीर ने दृढ़ निश्चय के साथ कहा—'एल्प्स है ही नहीं।' और देखते ही देखते उसकी सेना एल्प्स पर्वत को रौंदती हुई पार हो गई। सचमुच एल्प्स उनके सामने से हट गया था।

वीरता का दूसरा गुण है, साहस। संकट में साहस का होना आधी मंजिल तय कर लेना है क्योंकि वह अवसर के साथ-साथ बढ़ता है। फिर, भाग्य भी साहसी का साथ देता ***वीरता का तीसरा गुण है निर्भयता। शुचिता निर्भीक होती*** है और भलाई कभी नहीं डरती। फिर मनुष्य निर्मित संकटों से भय क्यों? भयाक्रांतता और वीरता में छत्तीस (3-6) का संबंध है। भयाक्रांत को छोटा भय भी भूत लगता है और वीरता के सम्मुख भय आत्म-समर्पण करता है।

छीनता हो स्वत्व कोई, और तू / त्याग तप से काम ले यह पाप है।
पुण्य है विच्छिन्न कर देना उसे / बढ़ रहा तेरी तरफ जो हाथ है।।

—दिनकर (कुरुक्षेत्र, द्वितीय सर्ग)

वीरता का चौथा गुण है धैर्य। धैर्य वीरता का धन है, विपत्ति पार करने का हेतु है, कार्यसिद्धि की निश्चितता का सेतु है और है दृढ़ता का प्रतीक।

वीरता का पाँचवा गुण है ध्येय के प्रति निष्ठा। निष्ठाहीन वीरता 'बढ़ी बहादुरी से पीछे हटती सेना' का पर्याय है। निष्ठा का संशय आत्मविश्वास का हिलना, साहस का विसर्जन, भय का प्रवेश और धैर्य का विचलन है।

विश्व-सभ्यता के बदलते प्रतिमानों में वीरता का रूप भी बदल गया। अब तक जहाँ शारीरिक शक्ति और अस्त्र-शस्त्र सम्पन्नता को ही वीरता माना जाता था, वहाँ अब त्याग, तप और नीति के क्षेत्रों में अलौकिक साहस दिखाने वालों की वीरता की दाद दी जाने लगी है। कमरे में बैठे-बैठे युद्ध-संचालन, सभाओं में धुआँधार लच्छेदार भाषण, सत्याग्रह और अनशन करने वालों के कार्य वीरता के अंतर्गत आने लगे हैं। लेखन-वीरों की उत्पत्ति इसी बदलते युग की देन है। ऐसे लेखकों के लेखों और कविताओं में वीरता उमड़ी पड़ रही है, किन्तु व्यक्तिगत रूप में वे बिल्ली की म्याऊँ से भी डरते हैं।

कायर व्यक्ति आत्मबल रहित होता है, स्वाभिमान शून्य होता है, पग-पग पर हानि उठाता, मृत्यु की छाया में जीता है। जबकि वीर पुरुष आत्मबल से तेजस्वी, स्वाभिमान

और पौरुषयुक्त होता है। वह जीवन को वीरता से भोगता है। यही स्थिति राष्ट्रों पर घटित होती है। अत: मानव तथा राष्ट्र के जीवन में वीरता का वही स्थान है, जो मानव-शरीर में रीढ़ की हड्डी का है।

लगा दे आग न दिल में तो आरज़ू क्या है ?
न जोश खाए जो गैरत से वह लहू क्या है?
—ब्रजनारायण 'चकबस्त' (सुबह वतन, पृष्ठ 98)

(142) शिष्टाचार

संकेत बिंदु—(1) उचित व्यवहार और आचरण (2) वाणी और व्यवहार में विनम्रता (3) जीवन के अलग-अलग क्षेत्रों में शिष्टाचार (4) अनुशासन-शिष्टाचार की परख (5) शिष्टाचार नियमों का पालन।

शिष्टतापूर्ण आचरण और व्यवहार शिष्टाचार है। शिष्ट व्यक्तियों का आचार, व्यवहार तथा सदाचार शिष्टाचार है। बुद्धिमान् व्यक्तियों का आचरण शिष्टाचार है। ऐसा आचरण जो साधारणतया एक सामाजिक प्राणी से अपेक्षित हो, शिष्टाचार है। ऊपरी और दिखावटी व्यवहार शिष्टाचार है। आवभगत तथा आदर-सत्कार शिष्टाचार है।

शिष्टाचार मनुष्य में मानवीय गुणों का विकास करता है। मानसिक तनाव से मुक्ति और दैनिक जीवन के कार्य-सम्पादन में कष्ट-कठिनाइयों को कम करता है। जीवन में सुख, शांति और सौन्दर्य बखेरता है। शिष्टाचारी सर्वत्र आदर, सत्कार और सम्मान का पात्र बनता है। समाज उसे भद्र और कुलीन मानता है।

विनम्रता शिष्टाचार का अनिवार्य गुण है। वाणी और व्यवहार की विनम्रता शिष्ट आचरण की पहली पहचान है। हित, मित, मृदु और विचारपूर्वक बोलना वाणी का विनय है। अथर्ववेद का ऋषि कामना करता है, 'जिह्वा अग्रे मधु मे जिह्वा मूले मधूदकम्।' (1/34/2) अर्थात् मेरी जीभ के अग्र तथा मध्य भाग में मधुरता रहे। वेदव्यास जी महाभारत के उद्योग-पर्व में वाणी की चार विशेषताएं बताते हुए लिखते हैं—

अव्याहृतं व्याहृताच्छ्रेय आहु:, सत्यं वदेद् व्याहृतं तद् द्वितीयम्।
प्रियं वदेद् व्याहृतं तत् तृतीयं, धर्मं वदेद् व्याहृतं तच्चतुर्थम्॥
(उद्योग पर्व 36/12 तथा शांतिपर्व 299/28)

(1) व्यर्थ बोलने की अपेक्षा मौन रहना। (2) सत्य बोलना (3) प्रिय बोलना (4) धर्म बोलना वाणी की उत्तरोत्तर श्रेष्ठता है।

असत्य, चुगली, कठोर वचन, पर निन्दा तथा बकवास से बचना चाहिए। कटु वचन मनुष्यता का शत्रु है। कटु वचन का बाण हृदय से कभी निकलता नहीं और उसका घाव कभी भरता नहीं। झूठ के पाँव नहीं होते, इसलिए उस पर कोई विश्वास नहीं करता। तुलसी तो कहते हैं, ***'नहीं असत्य सम पातक पुंजा।'*** (रामचरित मानस 2/28/3)। निन्दा और बकवास, दोनों उपहास के पात्र हैं। इसलिए कबीर कहते हैं—

ऐसी वाणी बोलिए मन का आपा खोय।
अपना तन शीतल करे, औरन को सुख होय॥

व्यवहार और आचरण सिद्धांत के मूल तत्त्व है। इन्हीं के कारण लोग मित्र और शत्रु होते रहते हैं। उदार रहना, कृपा करना, समानता का निर्वाह व्यवहार की कसौटी है।

वाणी और व्यवहार के दो-चार उदाहरण पर्याप्त होंगे। संबोधन में 'हाँ' या 'नहीं' के स्थान पर 'हाँ जी', 'नहीं जी' शिष्ट आचरण है। जब दो व्यक्ति परस्पर बात कर रहे हैं तो बीच में टोकना या बोलना नहीं चाहिए। क्रोधपूर्ण बात में भी कटु और कर्कश शब्दों से बचना चाहिए।

बस स्टॉप हो या टिकट-घर की खिड़की, लाइन को तोड़ना अशिष्टता हैं। इसी प्रकार बस में प्रवेश की सीढ़ियां पर खड़ा होना अशिष्टता है। आरक्षित महिला सीटों पर कब्जा जमाना अशिष्टता है। सीट पर पैर रखकर बैठना अशिष्टता है।

भोजन करते समय मुँह से चप-चप की आवाज करना अशिष्टता है। पंक्ति में भोजन कर रहे हों तो पंक्ति से पहले उठना अशिष्टता है। मना करने पर भी थाली में रोटी, रायता, सब्जी डालना अशिष्टता है।

नाम के उच्चारण या लिखने में नाम से पूर्व श्री, श्रीमती, श्रीमान्, श्रीयुत लगाना तथा अंत में 'जी' प्रयोग शिष्ट-आचरण है। कृतज्ञ होने पर 'धन्यवाद' करना, आभार व्यक्त करना शिष्टता है।

व्यक्ति अपना जीवन अपनी सुविधा तथा शैली के अनुसार जीता है। उसमें आर्थिक स्थिति, सामाजिक परम्पराएं और पीढ़ी-दर-पीढ़ी रूढ़िगत संस्कारों का प्रभाव भी रहता है। उसके जीवन में दखल देना और दैनन्दिन जीवन में हस्तक्षेप करना अशिष्टता है। उदाहरण रूप में—बहिन जी, आप साग-सब्जी में बहुत मिर्चे डालती हैं। आपके पति-देव काम से लौटते ही टी.वी. का स्विच क्यों ऑन करते हैं? आपके बच्चे जमीन पर क्यों सोते हैं? आप सपरिवार हर रविवार कहीं बाहर घूमने क्यों जाते हैं? आपकी बड़ी लड़की बन ठन कर क्यों निकलती है? ये सब बातें अशिष्टता के चिह्न हैं। ऐसी हस्तक्षेप भरी बातें प्रायः कलह का कारण बन जाती हैं।

अनुशासन जीवन का प्राण है, परिष्कार की अग्नि है जिससे प्रतिभा योग्यता बन जाती है। शिष्टाचार की परख है, जिससे सभ्यता का जन्म होता है। जीवन के हर क्षण, हर परिवेश, हर परिस्थिति में अनुशासन शिष्ट आचरण की पहचान बनता है। सड़क के बाईं और वाहन चलाना अनुशासन है। सड़क पर नहीं, पटड़ी पर चलना शिष्टता की पहचान है। दूसरों की जीवन में हस्तक्षेप न करना तथा सामाजिक, संस्थागत नियमों का पालन करना शिष्टाचरण का परिचायक है। मंदिर, मठ, गुरुद्वारे में जूता उतारकर जाना धर्म-स्थलों का अनुशासनात्मक शिष्टाचार है। राष्ट्र-ध्वज के चढ़ते-उतरते तथा राष्ट्र-गान के गायन के समय स्तब्ध खड़े रहना अनुशासित शिष्ट आचरण है। सार्वजनिक स्थानों पर थूकना, पान की पीक, फलों के छिलके या रद्दी कागज फेंकना अशिष्टता है।

नियमों के विरुद्ध कार ड्राइव करना, नशे की मौज-मस्ती में वाहन को तेज चलाना, दूसरों की जान-माल और इज्जत पर खेलना, देवी-देवताओं का मखौल उड़ाना, अनाप-शनाप बकना, लड़ने-मरने को तैयार रहना वर्तमान युग के शिष्ट (?) आचरण हैं। 'Eat Drink & Be marry' अर्थात् खाओ, पीओ और मौज करो जीवन का सिद्धान्त है। इस सिद्धांत वाक्य के अनुसार व्यवहार शिष्टाचरण है। इस ध्येय प्राप्ति के लिए हर कार्य और कर्म शिष्टाचारिक नियमों का पालन है। वस्तुत: यह शिष्टाचार नहीं, अशिष्टता है।

वाणी और व्यवहार की विनम्रता शिष्टाचार को पुष्पित करते हैं। सामाजिक, धार्मिक तथा वैधानिक नियमों का पालन शिष्टाचार को पल्लवित करते हैं। अनुशासन शिष्टाचार को अलंकृत करता है तो आत्म-संयम शिष्टाचार को सुगंधमय वातावरण प्रदान करता है। ये सब मिल कर शिष्टाचारपूर्ण जीवन की झोली में सुख, शांति और ऐश्वर्य की वर्षा करते हैं।

(143) श्रम का महत्त्व

संकेत बिंदु—(1) श्रम और महत्त्व का अर्थ (2) विभिन्न महापुरुषों और ग्रंथों के अनुसार श्रम (3) विकसित सभ्यता और महाशक्ति बनने में श्रम का महत्त्व (4) श्रम से लक्ष्य और लक्ष्मी की प्राप्ति (5) शारीरिक और मानसिक शक्तियों का विकास।

जिस कार्य से शरीर पूरी तरह थक जाए, वह ही 'श्रम' है। अर्थ, उपयोग, परिणाम, प्रभाव, मूल्य की दृष्टि से अन्य से बढ़कर माना या समझे जाना तत्त्व 'महत्त्व' है। इस प्रकार श्रम के महत्त्व से तात्पर्य हुआ—शरीर को थका देने वाले कार्य का मूल्य और प्रभाव, उपयोग और परिणाम सर्वाधिक होता है। श्रम की श्रेष्ठता, शक्तिमता, ऐश्वर्य तथा उन्नयन अतुलनीय है।

श्रम-साध्य पसीना मोती की बूँद बनता है। —अमृतलाल नागर (एकदा नैमिषारण्ये, पृष्ठ 439) श्रम प्रेम को प्रत्यक्ष करता है।—जिब्रान (जीवन संदेश, पृष्ठ 39) श्रम करने वाला मनुष्य प्रगाढ़ और मधुर निद्रा का आनन्द लेता है। श्रम से स्वास्थ्य और स्वास्थ्य से संतोष उत्पन्न होता है। इसलिए श्रमी का चेहरा श्रम के गर्व से दीप्त होकर सुन्दर लगता है।

श्रम करने से ही कार्य सिद्ध होते हैं, केवल मनोरथ करने से नहीं। जैसे कि सोते हुए सिंह के मुख में मृग अपने आप प्रवेश नहीं करता।

उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगा॥ —हितोपदेश

महात्मा गाँधी का विचार है, 'श्रम पूँजी से कहीं श्रेष्ठ है। मैं श्रम और पूँजी का विवाह करा देना चाहता हूँ। वे दोनों मिलकर आश्चर्यजनक काम कर सकते हैं।' (सर्वोदय, पृष्ठ

114) इतना ही नहीं, विचारपूर्वक किया हुआ श्रम उच्च-से-उच्च प्रकार की समाज-सेवा है। (शरीर श्रम, पृष्ठ 29)

ऋग्वेद का मत है, 'मनुष्य अपने ध्येय को श्रम और तप से ही प्राप्त कर सकता है।' (5/44/8) ऋग्वेद के समर्थन में होमर कहता है, ' 'Labour Conquers all things.' श्रम सभी पर विजयी होता है। सफोक्लीज भी इसी बात का समर्थन करते हुए कहता है, 'Without Labour nothing prospers. बिना श्रम के कोई भी उन्नति नहीं कर सकता। इसलिए कहा गया 'श्रम एव जयते', श्रम की सदा विजय होती है।

श्रम प्रभु का वरदान है। इसीलिए ऋग्वेद कहता है, 'न मृधा श्रान्तं यदवन्ति देवा:।' (संहिता 1/179/3) और 'न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवा:' (4-33-11), जो श्रम नहीं करते उसके साथ देवता मित्रता नहीं करते। हजरत मोहम्मद वेदवाणी का समर्थन करते हुए कहते हैं—'जो समर्थ और सक्षम होते हुए भी अपने लिए अथवा दूसरों के लिए काम नहीं करता, उस पर परमेश्वर की कृपा-दृष्टि कभी नहीं होगी। (इस्लाम और नीतिशास्त्र, पृष्ठ 58) इतना ही नहीं ' श्रम करके ईमान के साथ गुजारा करने वाले लोग परमेश्वर को बहुत प्रिय हैं। (इस्लाम और नीतिशास्त्र, पृष्ठ 59)

श्रम चुम्बक है। सब प्रकार की सुख-समृद्धि उसके आकर्षण में स्वयमेव खिंचती चली जाती है। थाली में रखा भोजन स्वयं मुँह में नहीं चला जाता। इसीलिए त्रिकाल सत्य घोषित हुआ कि श्रमी के घर के द्वार को भूख दूर से ताकती है, पर भीतर प्रवेश नहीं कर पाती।

सृष्टि के आदि से अद्यतन काल तक विकसित सभ्यता मानव के श्रम का ही परिणाम तो है। पाषाण युग से वर्तमान विज्ञान युग तक की वैभव सम्पन्नता की लम्बी यात्रा श्रम की सार्थकता की एक ऐसी गाथा है, जो विश्व को पग-पग पर श्रम-प्रेरणा की प्रसादी बाँट रही है।

अमेरिका, रूस, चीन, जापान, इजरायल, फ्रांस, स्विट्जरलैण्ड आदि देशों की उन्नति की नींव श्रम के स्वेद-बिन्दुओं से सिंचित है। वहाँ के निवासियों के सतत एवं निष्ठापूर्ण परिश्रम ने ही उनके राष्ट्र को विश्व के शीर्षस्थ राष्ट्रों में ला बिठाया है।

द्वितीय महायुद्ध में क्षतिग्रस्त रूस, ग्रेट-ब्रिटेन तथा जापान; आर्थिक और मानसिक रूप से जर्जर कल का चीन एवं स्थान-भ्रष्ट इजरायल पलक झपकते विश्व की महती शक्ति कैसे बन गए? एक ही उत्तर है—श्रम की कृपा से। 'परिश्रम ही पूजा है, श्रम ही ईश्वर है', इस सिद्धान्त को अपनाने से। विश्व के सात महान् आश्चर्य परिश्रम की महत्ता के द्योतक हैं। हजारों-लाखों श्रमिकों की निरन्तर सेवा, त्याग, बलिदान की अकथनीय, अलुप्त कहानी है, जो महान् आश्चर्यों के सौन्दर्य-दर्पण में अन्त:चक्षुओं से देखी जा सकती है, अन्तरात्मा से सुनी जा सकती है।

तप श्रम का ही पर्याय है। किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए किए गए श्रम को 'तप' कहते हैं। तप से नहुष इन्द्रासन का अधिकारी बना; रावण लंकेश्वर बना; बार-बार हारने वाला अब्राहम लिंकन अन्तत: अमेरिका का राष्ट्रपति बना।

तप बल रचइ प्रपंचु विधाता। तपबल विष्णु सकल जग त्राता।
तपबल संभु करहिं संघारा। तपबल सेषु धरहिं महि भारा॥—तुलसी

श्रम से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। श्रमहीन, आलसी, भाग्यवादी, निराश व्यक्ति से लक्ष्मी ऐसे दूर भागती है, जैसे युवा पत्नी वृद्ध पति से। लक्ष्मी के बिना सांसारिक सुख दुर्लभ है। यदि जगत् में ही स्वर्ग-सम आनन्द लेना है तो परिश्रम का आलिंगन अनिवार्य है।

जीवन की दौड़ में परिश्रम करने वाला विजयी रहता है। पढ़ाई में परिश्रम करने वाला छात्र परीक्षा में पास होता है, सीढ़ी-दर-सीढ़ी माँ शारदा के मंदिर की ओर अग्रसर होता है। नौकरी करने वाला कर्मचारी और व्यापार वाले करने व्यापारी की उन्नति का मूल उसके परिश्रम में निहित है। सफलता का रहस्य परिश्रम के रूप में है, ध्येय की दृढ़ता में है। बिड़ला, टाटा का बृहद्-उद्योग-संसार उनके श्रम की मुँह बोलती मूर्ति है।

श्रम से शारीरिक तथा मानसिक शक्तियों का विकास होता है, कार्य में दक्षता आती है, जीवन में आत्म-विश्वास जागृत होता है, जो सफलता का मुख्य रहस्य है, पराक्रम का सार है, भावी उन्नति का प्रमुख सोपान है।

श्रम से जी चुराना अर्थात् अकर्मण्यता विनाश की पगडंडी है, मृत्यु का द्वार है। महाभारत में वेदव्यास जी ने लिखा है, 'अकर्मण्य व्यक्ति सम्मान से भ्रष्ट होकर घाव पर नमक छिड़कने के समान असह्य दुःख भोगता है। गाँधी जी ने अकर्मण्य को चोर बताया है, 'जो कर्म किए बिना भोजन करते हैं, वे चोर हैं।'

परिश्रम की पूर्णता सतत क्रमशीलता में है, ध्येय के प्रति निष्ठापूर्ण साधना में है, मन-मस्तिष्क को एकाग्रचित करने में है। जीवन को पूर्णतः ध्येय के प्रति समर्पित करने में है।

(144) संघटन

संकेत बिंदु—(1) संघटन की परिभाषा (2) संघटन अपार और अपूर्व शक्ति का रूप (3) संघटन के विभिन्न आधार (4) संघटन के अनेक कारण (5) उपसंहार।

किसी विशिष्ट वर्ग, क्षेत्र या राष्ट्र के लोगों का मिलकर एक इकाई का रूप धारण करना, जिसमें वे सामूहिक रूप से अपने हितों की रक्षा कर सकें, संघटन कहलाता है। बिखरी शक्तियों का एकजुट होकर किसी कार्य के लिए तैयार होना संघटन है।

प्राचीन युग में शक्ति का केन्द्र कभी तपस्या, कभी ज्ञान और कभी त्याग रहा है। वर्तमान काल में शक्ति का केन्द्र संघ अर्थात् संघटन है। महाभारत में लिखा है, 'संघे शक्तिः युगे युगे।' वैदिक ऋषि ने भी मिलकर चलें, मिलकर बोलें का उपदेश दिया है।

संगच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।

—ऋग्वेद (10/191/2)

हे मुनष्यो! आप लोग परस्पर अच्छी प्रकार मिलकर रहो। परस्पर मिलकर प्रेम से बातचीत करो। आप लोगों के चित्त एक समान होकर ज्ञान प्राप्त करें।

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥

—ऋग्वेद (90/191/4)

आप लोगों का संकल्प, निश्चय और भाव-अभिप्राय एक समान रहें। आप लोगों के हृदय एक समान हों। आप लोगों के मन समान हों, जिससे आप लोगों का परस्पर का कार्य सर्वत्र एक साथ अच्छी प्रकार हो सके।

संघटन या एकता में अपार बल है। परिवार संघटित रहेगा तो श्री और ऐश्वर्य की वृद्धि होगी। समाज-संघटित होगा तो प्रगति-पथ पर अग्रसर होगा। राष्ट्र-संघटित होगा तो विश्व में अपना भाल गर्व से दीप्त कर सकेगा। भारत में परिवारों के विकास एवं व्यक्तियों की प्रगति में परिवार का सहयोग तथा विघ्नबाधाओं को मिल-जुलकर झेलने की प्रवृत्ति हमारी श्री-समृद्धि का कारण रही है।

शरीर विभिन्न अवयवों का संघटित रूप है। क्या अद्‌भुत संघटन है शरीर का! काँटा पैर में चुभता है, वेदना मस्तिष्क में होती है, और हाथ शत्रु-कंटक के मर्दन को तुरन्त दौड़ पड़ते हैं। मधुमक्खियाँ संघटन का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। वे मिलजुलकर मधु संचय करती हैं, जरूरत पड़ने पर शत्रु पर सामूहिक आक्रमण करती हैं।

संघटन में अपूर्व शक्ति है। एक और एक मिलकर ग्यारह होते हैं। मामूली तिनकों को मिलाकर जब रस्सा बन जाता है तो वह मदमस्त हाथी को बाँधने में सक्षम होता है। (तृणैः गुणत्वमापन्नैः बध्यन्ते मत्त दन्तिनः) पानी की अकेली बूँद अग्नि में पड़कर स्वयं को नष्ट कर लेती है, किन्तु जल की अनन्त बूँदें धारा रूप लेकर प्रचंड अग्नि को भी शांत कर देती हैं। अग्नि की एक चिंगारी को फूँक मारकर बुझा दिया जाता है, किन्तु उसकी संघटित ज्वाला से विशाल भवन स्वाहा जो जाते हैं।

महाभारत के उद्योगपर्व में महर्षि वेदव्यास लिखते हैं—

महानपि एकजो वृक्षो बलवान् सुप्रतिष्ठितः
प्रसह्य एव वातेन सस्कन्धो मर्दितं क्षणात्।
अथ ये संहिता वृक्षाः संघशः सुप्रतिष्ठिताः
ते हि शीघ्रतमान् वातान् सहन्तेऽन्योन्य संश्रयात्। (36/62-63)

अकेला वृक्ष महान्, बलवान् और सुदृढ़ होने पर भी वायु के द्वारा बलपूर्वक स्कन्ध सहित उखाड़ कर फेंका जा सकता है, परन्तु जो वृक्ष मिलकर संघटित रूप से रहते हैं, वे एक दूसरे के आश्रय से तीव्र आँधी को सरलता से सह लेते हैं।

संघटन के चार विभिन्न आधार हैं—जातीयता, भौगोलिक सीमाएँ, व्यावसायिक क्षेत्र तथा मानसिकता। विभिन्न राष्ट्रों और विभिन्न भाषाओं के बोलने वाले यहूदी जातीयता के कारण एकता के सूत्र में बद्ध हैं। राष्ट्रों की निजी-एकता भौगोलिक सीमाओं का कारण

है। व्यापार-विशेष के हित-चिन्तन, समृद्धि और प्रगति व्यावसायिक एकता पर आधारित हैं। मानसिक एकता धार्मिकता की पृष्ठभूमि है। विश्व हिन्दू परिषद्, विश्व मुस्लिम सम्मेलन, विश्व ईसाई एकता इसके प्रमाण हैं।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से संघटन के तीन आधार हैं—(1) आतंक, (2) प्रलोभन (3) अहंकार। पीड़ित वर्ग, समाज, दल, पीड़ा-निवारणार्थ संघटित होते हैं। अंग्रेजों की दासता के विरुद्ध तथा विधर्मियों द्वारा हिन्दू समाज को अपमानित किये जाने के विरुद्ध राष्ट्रीय स्वयंसेवक-संघ का जन्म हुआ, विकास हुआ और वह प्रचण्ड शक्ति सिद्ध हुआ। इन्दिरा के आतंक के विरुद्ध 1977 में अपनी-अपनी ढफली बजाकर अपना-अपना राग सुनाने वाले विरोधी दल एक जुट हुए। इन संघटनों के मूल में इंदिरा का आतंक था। जैसे ही आतंक समाप्त हुआ उनमें बिखराव शुरू हुआ। 1999 के 13वें लोकसभा चुनाव में अनेक दल संघटित भाव से श्री अटलबिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में चुनाव लड़े तो विजयी होकर सत्तारूढ़ हुए।

प्रलोभन संघटन का दूसरा मनोवैज्ञानिक कारण है। व्यापारिक संघटन, कर्मचारी यूनियनें, सत्ता-सुख के लिए दल-बदल, सब प्रलोभन के संघटन हैं। जहाँ प्रलोभन को आँच आई, संघटन विभक्त हुआ। एक ही व्यापार की विभिन्न परिषदें कर्मचारियों की अनेक यूनियनें, इसका प्रमाण हैं।

राजनैतिक और धार्मिक संघटन अहं के प्रमाणित दस्तावेज हैं। 'इन्दिरा-काँग्रेस' श्रीमती सोनिया गाँधी के अहं का पोषक है, तो श्री लालूप्रसाद यादव के अहं का रूप है उनका राष्ट्रीय जनता दल। सभी धर्मों में विद्यमान पथ, मठ, गद्दियाँ किसी न किसी धार्मिक नेता के अहं का ही प्रतीक तो हैं।

शासन की दृष्टि से विश्व दो संघटनों में विभक्त है—(1) लोकतंत्र, (2) अधिनायकवाद। लोकतंत्र का प्रतिनिधित्व अमेरिका करता है, तो अधिनायकवाद का चीन और पाकिस्तान। लोकतंत्र में विद्या, चरित्र, प्रतिभा की आवश्यकता नहीं, बहुसंख्यक को संघटित करने में ही सिद्धि है। अधिनायकवाद में पाशविक चरित्र ही नेता बनता है। उसका संघटन आतंक के सहारे जीवनयापन करता है।

सच्चा संघटन त्याग की भूमि पर ही इस्पात की-सी दृढ़ प्राचीर खड़ी कर सकता है और नेता के अहं को निराश्रित करके ही फल-फूल सकता है, उपनेताओं के प्रलोभन को संकुचित कर सुख की साँस ले सकता है। सदस्यों के प्रति मंगलकामना रखकर प्रगति-पथ पर अग्रसर हो सकता है। कठोपनिषद् में संघटन की रथ से उपमा देते हुए यमराज नचिकेता को समझाते हैं—'इन्द्रियाँ घोड़े हैं, मन लगाम है, बुद्धि सारथी है और आत्मा रथ का स्वामी है। घोड़ों को लगाम के अधीन रहना चाहिए। लगाम को सारथी के और सारथी को मालिक के।' संघटन का यही मूल मन्त्र है। संघटन ही परिवार, समाज तथा राष्ट्र की उन्नति और विकास का साधन है। 'संहतिः कार्य साधिका' इसीलिए कहा गया है।

(145) सच्चरित्रता

> **संकेत बिंदु**—(1) चरित्र की श्रेष्ठता (2) सच्चरित्रता के लक्षण (3) सच्चरित्रता का निर्माण (4) इतिहास में चरित्रवान महापुरुषों की गाथाएँ (5) आचर ही सबसे बड़ा धर्म।

चरित्र की श्रेष्ठता का नाम 'सच्चरित्रता' है। श्रेष्ठ और शुभाचरण का पर्याय सच्चरित्रता है। सत्यवादिता, दयालुता, निष्कपटता, ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सदाचार, निर्भयता, शुचिता, सन्तोष, तप और दान सच्चरित्रता के लक्षण हैं। सदाचारी जीवन की व्याख्या, उपयोगिता तथा अनिवार्यता सिद्ध करना सच्चरित्रता का मूल है।

सच्चरित्रता मानव की श्रेष्ठता की कसौटी है। जीवन की शान्ति के लिए अमूल्य वस्तु है। सत्पुरुषों का भूषण है। दीर्घायु, मनोवांछित सन्तान तथा अक्षय धन प्राप्ति का माध्यम है। व्यक्ति के अमंगल की नाशक है।

सच्चरित्रता मनुष्य के लिए सर्वश्रेष्ठ सम्पत्ति है। संसार के अन्य सद्गुणों में सर्वोत्तम है, सर्वोच्च है। उसके सामने सब ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ तुच्छ हैं।

सच्चरित्रता मनुष्य रूपी वृक्ष का सुन्दर सुगन्धित पुष्प है। सुन्दर सुगन्धित पुष्प के समान ही उदात्त चरित्र सबको अपनी ओर आकृष्ट करता है और सबको प्रसन्नता प्रदान करता है।

सच्चरित्रता मनुष्य की आत्मा को सुसंस्कृत करती है। विचारों, भावनाओं और संकल्प को दृढ़ एवं मंगलकारी बनाती है। सुख, सन्तोष और शान्ति प्रदान करती है। लोग सच्चरित्र व्यक्ति का अनुकरण करने के लिए लालायित रहते हैं।

सच्चरित्रता से मानव में शूरता, वीरता, धीरता, निर्भयता आदि गुण स्वतः आ जाते हैं, सुन्दर स्वास्थ्य और सुबुद्धि का विकास होता है। कठिन से कठिन कार्य में सफलता प्राप्त होती है।

मनुस्मृति में मानसिक, वाचिक तथा शारीरिक दस पापों से मुक्ति सच्चरित्रता के लक्षण बताए गए हैं। दस पाप ये हैं—(1) पराया धन अन्याय से लेने की चिन्ता, (2) मन से निषिद्ध कर्म करने का ध्यान, (3) 'परलोक नहीं है, यह शरीर ही आत्मा हैं', ऐसा मिथ्या आग्रह, (4) अप्रिय बोलना, (5) असत्य भाषण करना, (6) पीठ पीछे किसी की बुराई करना, (7) सत्य न होने पर भी बिना प्रयोजन बोलना, (8) बिना दिया हुआ धन लेना, (9) विधि रहित हिंसा, (10) पर-स्त्री-संग। इन पापों से रहित सदाचारी के चरणों में संसार की विभूति, बल, बुद्धि, वैभव लोटेंगे।

उत्तम चरित्र निर्धन का धन है। कठिनाइयों को जीतने, वासनाओं का दमन करने और दुःखों को सहन करने से ही चरित्र उच्च, सुदृढ़ और निर्मल होता है, अन्य गुणों का विकास एकान्त में होता है, किन्तु सच्चरित्रता का निर्माण संसार के भीषण कोलाहल में होता है।

चरित्र-शुद्धि ठोस शिक्षा की बुनियाद है। अत: बर्टल के शब्दों में, 'चरित्र एक ऐसा हीरा है, जो हर किसी पत्थर को घिस सकता है।' बोर्डमैन सच्चरित्रता का फल वर्णित करते हुए लिखते हैं—'कर्म को बोओ और आदत की फसल को काटो, आदत को बोओ और चरित्र को काटो; चरित्र को बोओ और भाग्य को काटो।'

सद्गुण और प्रसन्नता माँ-पुत्री हैं। सम्मान सद्गुण का पुरस्कार है। धम्मपद के अनुसार 'पुष्पों' की सुगन्ध वायु के विपरीत नहीं जाती, किन्तु सद्गुणों की सुगन्ध सभी दिशाओं में व्याप्त हो जाती है।' अत: सद्गुण क्षणभर के लिए लज्जित किया जा सकता है, किन्तु मिटाया नहीं जा सकता।'

महर्षि वाल्मीकि का कथन है, 'श्रेष्ठ पुरुष दूसरे पापाचारी प्राणियों के पाप को ग्रहण नहीं करता। उन्हें अपराधी मानकर उनसे बदला नहीं लेना चाहता। इस उत्तम सदाचार की सदा रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि सदाचार ही सत्पुरुषों का भूषण है।'

चरित्रवान् महापुरुषों की गाथाएँ इतिहास के पन्नों में स्वर्णाक्षरों में अंकित हैं। चरित्र बल के कारण प्रभु राम महाप्रतापी राक्षसराज रावण से लोहा लेने में समर्थ हुए। वन-वन भटकते पांडव सुघटित कौरव-सेना को ललकार सके। भीष्म पितामह चरित्रबल के कारण इच्छा मृत्यु प्राप्त करते हैं, वीर वंदा वैरागी के सामने उसके पुत्र का वध कर उसके कलेजे को उसके मुँह पर मारा जाता है, पर वह आह तक नहीं भरता। कर्ण के शरीर पर जन्म से ही दिव्य कवच-कुण्डल थे। उनसे वह अजेय था। इन्द्र कर्ण से विप्र-वेश में कवच-कुण्डल की भीख माँगते हैं। उनके छद्मरूप को पहचानते हुए भी कर्ण कवच-कुण्डल उतारकर चरित्र की मर्यादा रखते हैं। छत्रपति शिवाजी लूट के माल में प्राप्त यवन-रमणी को ससम्मान लौटा देते हैं। महाराणा प्रताप ने जीवन में कष्ट और विपत्तियाँ सहन कीं, किन्तु मुगलों की दासता स्वीकार नहीं की। बालक वीर हकीकत राय और गुरु गोविन्दसिंह के दो पुत्रों ने हँस-हँसकर जीवन अर्पित कर दिया, किन्तु इस्लाम धर्म स्वीकार नहीं किया।

'आचार: परमो धर्म:' अर्थात् आचार ही सबसे बड़ा धर्म है। 'आचारहीनं न पुनन्ति वेदा:'—आचारहीन मनुष्य को वेद भी पवित्र नहीं कर सकते। अंग्रेजी की कहावत है, 'अगर मनुष्य का धन नष्ट हो गया तो उसका कुछ भी नष्ट नहीं हुआ, स्वास्थ्य नष्ट हुआ तो कुछ नष्ट हुआ और यदि चरित्र नष्ट हो गया तो उसका सब कुछ नष्ट हो गया।' चरित्रहीन साधु, सन्त, महात्मा तथा राजनीतिज्ञ के उपदेशों का प्रभाव नहीं होता। जैसे चमकहीन मोती का कोई मूल्य नहीं, उसी प्रकार सच्चरित्रता के अभाव में मानव किसी काम का नहीं। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में—

'खलों को कहीं भी नहीं स्वर्ग है। भलों के लिए तो यहीं स्वर्ग है।
सुनो स्वर्ग क्या है? सदाचार है। सदाचार ही गौरवागार है।'

(146) सुसंगति से सुख उपजे, कुसंगति सुख जाय/सत्संगति

संकेत बिंदु—(1) सत्संगति का अर्थ (2) मानव-जीवन पर प्रभाव (3) संगति के रूप (4) अच्छी संगति से मानव का उद्धार (5) सत्संगति से मानव जीवन के पाप समाप्त।

सज्जनों के साथ उठना-बैठना सत्संगति है। साधु-महात्माओं या धर्मनिष्ठ व्यक्तियों की संगति और धर्म-चर्चा करना सत्संगति है। योगवाशिष्ठ के अनुसार 'पूर्ण महात्मा और सज्जनों के साथ को ही सत्संगति कहते हैं।'

सत्संगति सच्चरित्रता के निर्माण की पृष्ठभूमि है। गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है—*'सठ सुधरहि सत्संगति पाई। पारस परसि कुधातु सुहाई।'* पारस के स्पर्श से जैसे लोहा स्वर्ण बन जाता है, सत्संगति से दुष्ट मनुष्य भी सुधर जाता है। साधारण कीड़ा भी फूलों की संगति से बड़े-बड़े देवताओं और महापुरुषों के मस्तक पर चढ़ जाता है।

सत्संगति दो शब्दों का योग है—सत् + संगति। यहाँ 'सत्' शब्द 'संगति' का विशेषण है। संगति 'सम् + गति' का संधि रूप है। जिसका अर्थ है समानगति अर्थात् एक साथ रहना, उठना-बैठना, विचार-विमर्श करना।

संगति का प्रभाव मानव-जीवन पर अवश्य पड़ता है। कहावत प्रसिद्ध है—खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग बदलता है। 'ज्यों पलास संग पान के, पहुँचे राजा हाथ।' 'कीट चढ़े सुरसीस पर, पुष्पमाल के संग।' पारस के छूते ही लोहा स्वर्ण बन जाता है। गंधी की दुकान पर बैठने मात्र से सुगन्ध का आनन्द मिलता है जबकि काजल की कोठरी में कितना भी सावधान रहे, काजल की लीक तो लग ही जाती है। वर्षा की एक बूँद का विभिन्न पदार्थों से संगति होने का परिणाम दर्शाते हुए सूरदास कहते हैं—

सीप गयो मोती भयो कदली भयो कपूर
अहिमुख गयो तो विष भयो, संगत के फल सूर।

जब संगति का प्रभाव अनिवार्य है तो क्या संगति से बचा नहीं जा सकता? इसका उत्तर 'न' में होगा। कारण, मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह समाज की उपेक्षा करके लोक में जी नहीं सकता। इसलिए संगति मानव-जीवन की पहचान बनी।

संगति के दो रूप हैं—कुसंगति तथा सत्संगति। कुसंगति अर्थात् बुरे लोगों की संगति और सत्संगति अर्थात् सज्जनों की संगति। कुसंगति का प्रभाव कितना तीव्र होता है, इसके लिए लोकोक्ति प्रसिद्ध है, 'घोड़ों को गधों के अस्तबल में बाँध दीजिए, कुछ नहीं तो वे दुलती मारना जरूर सीख जाएँगे।' गंगा जब समुद्र का संग करती है तो अपनी महत्ता, यश और पावनता खो देती हैं। केले और बेर का साथ देख लीजिए—

मारी मरे कुसंग की केरा के ढिग बेर।
वह हाले वह अंग चिरे, विधिना संग निबेर।।

इतना ही नहीं दुर्जन के संग के कारण मनुष्य को पग-पग पर मानहानि सहनी पड़ती है। लोहे के संग से अग्नि भी हथौड़े के द्वारा पीटी जाती है। भगवती सीता का हरण तो रावण ने किया, परन्तु बन्धन में पड़ना पड़ा समुद्र को। कारण, उस पर पुल बाँधा गया। फिर दुर्जन साथ और आश्रय देने वाले का कौन-सा अपकार नहीं करता?

काँच भी कंचन का संग पा जाने पर मरकत मणि की शोभा प्राप्त कर लेता है। गलियों का पानी गंगाजी में मिलने पर गंगा के रूप में ही वंदित होता है। तुलसी कहते हैं—*'मज्जन फल पेखिअ तत्काला, काक होहिं पिक बकउ मराला।'* वृन्द कहते हैं—*'सब ही जानत बढ़त है, वृच्छ बराबर बेल।'* पुष्प के संग रहने से मिट्टी के कणों में भी सुगंधि आने लगती है। वाल्मीकि के मत से सत्संगति के कारण मृत्यु भी उत्सव जैसी हो जाती है और आपत्ति भी सम्पत्ति के समान प्रतीत होने लगती है।

भगवान् राम के सत्संग से वानर और रीछ संस्कृति के अनुयायी तर गए। योगेश्वर कृष्ण की संगति से निराश-हताश अर्जुन महाभारत युद्ध का विजेता बना। घोर कलियुग में बालक रामबोला स्वामी नरहर्यानन्द के सत्संग से तुलसी बना। स्वामी विरजानन्द की संगति से मूलशंकर 'दयानन्द' बने। रत्नाकर वाल्मीकि बने। ठीक भी है—*'बिनु सत्संग विवेक न होई'* तथा *'सठ सुधरहि सतसंगति पाई।'*

भवभूति कहते हैं, 'सत्संगजामि निधनान्यपि तारयन्ति।' अर्थात् सत्संग में होने वाला मरण भी मनुष्य का उद्धार कर देता है।' ऋग्वेद का कथन है, 'देवो देवेभिरागमत्' (1/1/5) अर्थात् परमेश्वर विद्वानों की संगति से प्राप्त होता है।

सत्संगति का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए गुरु गोविन्द सिंह लिखते हैं—
जो लोग श्रेष्ठ लोगों की शरण लेते हैं, उनकी क्या चिंता करनी? जैसे दाँतों से घिरी जीभ भी सुरक्षित रहती है, उसी प्रकार गुरुभक्त लोग भी दुष्टों और दुर्भाग्य से सुरक्षित रहते हैं।

गर्ग संहिता कहती है, 'गंगा पाप का, चन्द्रमा ताप का तथा कल्पवृक्ष दीनता के अभिशाप का अपहरण करता है, परन्तु सत्संग पाप, ताप और दैन्य, तीनों का तत्काल नाश कर देता है।' इसीलिए महापुरुषों का सत्संग समस्त उत्कृष्ट अमूल्य पदार्थों का आश्रय, कल्याण और सम्पत्ति का हेतु तथा समस्त उन्नति का मूल कहा गया है। तुलसी ने सच ही कहा है, *'सतसंगति मुद मंगल मूला, सोइ फल सिधि सब साधन फूला।'*

मानव जीवन की आकांक्षा रहती हैं—इहलोक में सुख, शान्ति, समृद्धि एवं ऐश्वर्य-भोग तथा देहान्त के अनन्तर स्वर्ग-प्राप्ति। यह तभी सम्भव है, जब व्यक्ति लौकिक जीवन में सत्संगति का वरण करे।

अपने से हीन व्यक्ति के संग से मनुष्य हीन हो जाता है। बराबर वाले के संग से ज्यों का त्यों बना रहता है। श्रेष्ठ पुरुषों के संग से शीघ्र ही मनुष्य का उदय तथा विकास हो जाता है। अतः व्यक्ति को सदा श्रेष्ठ पुरुषों का ही संग करना चाहिए।

(147) समय किसी की प्रतीक्षा नहीं करता / समय का सदुपयोग

संकेत बिंदु—(1) बिना विलम्ब और यथा-समय कर्म (2) समय की उपेक्षा करने वाले दुखी (3) प्रकृति, समय के सदुपयोग की गुरु (4) प्रत्येक कार्य के समय निश्चित (5) गाँधीजी और नेहरू जी प्रेरणा स्रोत।

अपने कर्तव्य कर्म को बिना विलम्ब यथा-समय करना ही समय का सदुपयोग है। जिस समय जो कार्य करना अपेक्षित है, उस समय वही कार्य करना समय का सदुपयोग है। परिस्थिति और परिवेश को समझ कर अपना कार्य सिद्ध करना समय का सदुपयोग है।

योग वाशिष्ठ का कथन है—

कार्यमण्वपि काले तु कृतमेत्युपकारताम्।
महानत्युकारोऽपि रिक्ततामेत्यकालतः॥

अर्थात् ठीक समय पर किया हुआ थोड़ा-सा भी कार्य बहुत उपयोगी होता है और समय बीतने पर किया हुआ महान् उपकार भी व्यर्थ हो जाता है। अंग्रेज दार्शनिक बेकन ने भी कहा, 'समय का उचित उपयोग, समय की बचत है।' समय का सदुपयोग सफलता की कुंजी है, सुशीलता का चिह्न है, प्रगति का लक्षण है, श्रेष्ठ स्वभाव का परिचायक है और है शुभ जीवन तथा लक्ष्मी का अक्षय भण्डार।

'जीवेम शरदः शतम्' अर्थात् सौ वर्ष तक हम जीएं की कामना करके वैदिक ऋचाओं में जीवन की सीमा बाँध दी है, पर सौ वर्ष की आयु तो गिनती में गिनने योग्य लोग ही प्राप्त कर पाते हैं। आज की औसत आयु सत्तर वर्ष है। लीजिए, ३० वर्ष जीवन में वैसे ही कम हो गए। इधर, काल देवता अपनी इच्छा का स्वामी है। उसकी जब इच्छा होती है, वह ले जाता है। औसत आयु की भी प्रतीक्षा नहीं करता। इसलिए जीवन में अपने दायित्व की उचित पूर्ति के लिए समय का सदुपयोग नितांत आवश्यक है। दूसरे शब्दों में, जीवन की सफलता का रहस्य समय के सदुपयोग में ही छिपा है।

जो व्यक्ति दिनचर्या का सदुपयोग करने में अर्थात् व्यायाम, भोजन और विश्राम में ढील दिखाएगा उसे रोग चित कर देगा। जिस व्यक्ति ने समय और परिस्थिति को पहचानते हुए भी उसकी उपेक्षा की अर्थात् उचित समय पर कर्तव्य-कर्म न किया, वह नष्ट हो गया। कारण, समय की उपेक्षा करने वालों को समय स्वयं नष्ट कर देता है। नेपोलियन का सेनापति ग्रूसी युद्ध क्षेत्र में केवल पाँच मिनट देर से आया। बस, युद्ध का पासा ही पलट गया। नेपोलियन पराजित हो चुका था।

कार्यों के लिए नियत किये गए समय पर यदि वे न किये जायें तो पछताना पड़ता हैं। संस्कृत के एक सुभाषित में कहा है—

प्रथमे नार्जिता विद्या द्वितीये नार्जितं धनम्।
तृतीये नार्जितं तपः चतुर्थे किं करिष्यति॥

जिसने प्रथमावस्था में (बाल्यावस्था में) विद्या नहीं पढ़ी, द्वितीयावस्था में (यौवन में) धन न कमाया और तृतीय अवस्था (प्रौढ़ावस्था में) तप न किया, वह चतुर्थावस्था में (बुढ़ापे में) क्या करेगा?

अंग्रेजी में एक कहावत है, 'Strick when the iron is hot.' अर्थात् लोहा जब गर्म हो तभी चोट कीजिए, अन्यथा प्रभाव शून्य हो जाएगा। प्रकारान्तर से यही समय का सदुपयोग है। केकैयी ने वर माँगने के लिए सु-अवसर चुना तो उसे वर प्राप्त हुए। कृष्ण तो समय के सदुपयोग के महान् द्रष्टा थे। उन्होंने पार्थ से कहा, 'देख अभी दिन शेष है,' परिणामतः जयद्रथ-वध हो गया। कर्ण का पहिया भूमि में धँसा है, 'चला बाण।' कर्ण धराशायी हो गया। दुर्योधन का शरीर माँ के आशीर्वाद से वज्रसम है। अतः हे भीम, तू उसका कुछ नहीं बिगाड़ पाएगा, इसलिए जंघा तोड़। जंघा टूटी और दुर्योधन गिर गया। पांडवों की महाभारत-विजय समय के सदुपयोग का प्रत्यक्ष उदाहरण है।

प्रकृति समय के सदुपयोग की गुरु है। ब्राह्म मुहूर्त सैर और व्यायाम का निमंत्रण देता है; प्रातःकाल कर्मक्षेत्र की तैयारी के लिए प्रेरित करता है। मध्याह्न कर्म में निष्ठापूर्वक जुटने का आह्वान करता है। सायंकाल मनोरंजन की प्रेरणा देता है तो रात्रि सुख स्वप्नों में खोने को लालायित करती है। ग्रीष्म तेज का, वर्षा जल का तथा शरद् शरीर की पुष्टि करके लाभ उठाने का समय है। पुष्प कहते हैं, हम विकसित हैं, फल कहते हैं हम पक चुके हैं, साग-सब्जियाँ कहती हैं, हम पूर्ण यौवन को प्राप्त हैं, हमें तोड़ने का यही उचित समय है। इस समय का सदुपयोग करो, नहीं तो पछताओगे। गया वक्त फिर लौटकर आता नहीं। प्रकृति कहती है, उचित समय पर उचित काम करो तो जीवन में आनन्द की स्रोतस्विनी बहेगी। जो बीत गया सो बीत गया। शेष जीवन को ही लक्ष्य में रखते हुए प्राप्त अवसर को परखो, समय का मूल्य समझो।

हर काम के लिए एक समय और हर समय के लिए एक काम निश्चित होना चाहिए। कोई कार्य असमय नहीं करना चाहिए। जिन लोगों के काम करने का कोई निश्चित समय नहीं होता, जब चाहे खाएँ, जब चाहे सोएँ, वे लोग कायर और निरुद्यमी बन जाते हैं। जो प्रत्येक कार्य के लिए अपना समय निश्चित कर लेते हैं, वे न तो खाली बैठते हैं और न उन्हें कोई काम भूलता ही है। दूसरे, इससे आदमी का मन बुरी बातों की ओर भी नहीं जाता। जो लोग निठल्ले बैठते हैं, उनके मन में बुरी-बुरी बातें सूझती हैं। कहावत भी है—'खाली दिमाग शैतान का घर।'

जो लोग यह शिकायत करते हैं कि उन्हें समय नहीं मिलता, वे अपने आलस्य को छुपाते हैं। वस्तुत वे स्वयं को धोखा देते हैं। समय चोर की भाँति चुपके से दबे पाँव निकल जाता है। यदि हमने प्रत्येक कार्य निश्चित समय पर परिश्रम से किया, तो अन्य कार्यों के लिए हमारे पास अवश्य समय निकल आएगा।

नेहरूजी और गाँधीजी बहुत व्यस्त रहते थे। इतने पर भी नेहरूजी ने दैनिक व्यायाम और ढेर सारी फाइलों को रोजाना निबटाने का काम कभी नहीं छोड़ा। गाँधी जी प्रात:कालीन भ्रमण, अखबार में लेख लिखना और चिट्ठियों का जवाब देने का समय निकाल लेते थे। प्रतिदिन प्रार्थना-सभा में भाग लेना तो उनसे मृत्यु-पर्यन्त न हटा।

समय का सदुपयोग करने का एक ही सरल उपाय है—समय का नियोजन। समय के नियोजन के लिए समय-तालिका बनाइए। उसका दृढ़ता और निष्ठा से पालन कीजिए। क्योंकि निर्धारित समय पर निश्चित काम करने में ही जीवन-सफलता का रहस्य है।

(148) समाज-सेवा

> **संकेत बिंदु**—(1) मनुष्य के उदात्त गुणों को जगाना (2) समाज सेवा के विविध रूप (3) महापुरुषों द्वारा समाज सेवा (4) ईश्वर-भक्ति से उच्च एवं श्रेष्ठतर (5) समाज सेवा का व्यापक क्षेत्र।

धन-सम्पत्ति, शारीरिक-सुख और मान प्रतिष्ठा आदि को न चाहते हुए, ममता, आसक्ति और अहंकार से रहित होकर मन, वाणी, शरीर अथवा धन के द्वारा जनता-जनार्दन के हित में रत होकर उसे सुख पहुँचाना, उसकी हित बुद्धि और उन्नति की चेष्टा समाज-सेवा है। श्री सम्पूर्णानन्द जी के शब्दों में 'संघर्ष की भावना को प्रश्रय न देकर मनुष्य के उदात्त गुणों को जगाना ही समाज की सेवा है।'

'समाज' शब्द बहुत व्यापक है। कोश के अनुसार जन-समुदाय को समाज की संज्ञा से पहचाना जाता है। एक प्रदेश-भूखंड में रहने वाले लोग, जिनमें सांस्कृतिक एकता हो, समाज कहलाता है। श्री पु. ग. सहस्त्रबुद्धे की मानना है कि 'जब पूर्व परम्पराओं का एक अभिमान होता है, वर्तमान सुख-दु:ख तथा भविष्यकाल की आशा-आकांक्षा और ध्येय की दिशा एक होती है, तब वह लोक-समूह 'समाज' कहलाने लगता है।'

विशाल मानव-समाज दु:ख-सुख का संगम है। कष्ट-पीड़ा तथा वैभव का आगार है। इसमें हा-हाकार की चीत्कार है, तो शान्तिपूर्ण जीवन की समरसता भी है, भूख से बिलबिलाता शैशव और यौवन है तो ऐश्वर्यमय जीवन का भोग भी है। शारीरिक मानसिक-आर्थिक पीड़ा है, तो सुख के संपूर्ण साधन भी हैं। प्रसाद जी इस विषमता के सत्य को प्रकट करते हुए कहते हैं—

विषमता की पीड़ा से व्यक्त / हो रहा स्पंदित विश्व महान्।
यही दु:ख विकास का सत्य / यही भूमा का मधुमय दान॥

समाज के दु:ख-दर्द, कष्ट-वेदना, अभाव-अशिक्षा, अत्याचार को दूर करना समाज-सेवा के विविध रूप हैं। सृष्टि के आदि से आज तक सहस्रों लोगों ने समाज-सेवा में अपने जीवन का क्षण-क्षण समर्पित कर दिया। वे बिना लोभ-लालच, आशा-आकांक्षा, इच्छा-लालसा के समाज-कार्य में लीन हो गए, तद्रूप हो गए। शंकराचार्य ने बत्तीस वर्ष की अल्पायु

में समाज-हित के लिए भारत के चार कोनों में चार मठ स्थापित किए। भगवान् बुद्ध ने समाज को अहिंसा का पाठ पढ़ाया।

इस युग के महात्मा श्री मोहनदास कर्मचन्द गाँधी ने अछूतोद्धार का पुण्य व्रत लिया, तो उनके ही शिष्य सन्त विनोबा भावे ने भूदान, ग्रामदान, श्रमदान की ज्योति जलाई। मदर टेरेसा के जीवन का कण-कण असहाय, पीड़ित-समाज की सेवा में अर्पित हुआ। महात्मा हंसराज ने ज्ञान के स्रोत डी.ए.वी. शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना की। हनुमानप्रसाद जी पोद्दार ने 'गीता-प्रेम' के माध्यम से आध्यात्मिकता का अनन्त कोष समाज को प्रदान किया।

बिड़ला-बंधुओं ने दिव्य-देवालय स्थापित कर जन-जन में श्रद्धा-स्रोत प्रवाहित किए। अनेक विद्यालयों और महाविद्यालयों की स्थापना कर अज्ञानाधकार को मिटाने में योगदान दिया। उनके द्वारा नगर-नगर, ग्राम-ग्राम, स्थान-स्थान पर स्थापित धर्मशालाएँ, सभागार, आदि समाज-कल्याण के देवालय ही हैं।

आजन्म ब्रह्मचर्य-व्रत लेकर समाज-सेवा के प्रति समर्पित राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, आर्य-समाज, सनातन धर्म, जैन, बुद्ध, ईसाई धर्म, रामकृष्ण परमहंस आश्रम के लाखों प्रचारक अहर्निश निःस्वार्थ भाव से समाज-सेवा रूपी यज्ञ में अपनी आहुति डाल रहे हैं।

समाज-सेवा कठिन व्रत है, कठोर तपस्या है, कष्टप्रद कार्य है, कंटकाकीर्ण मार्ग है। महर्षि व्यास का कथन है—'सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः।' तुलसी ने भी कहा है, *'सेवाधर्म कठिन जग जाना।'* अपमान, ग्लानि, कटूक्ति, आरोप तथा लांछन इसके प्रतिफल हैं। महर्षि दयानन्द ने जीवन में कितने अपमान सहे, कटूक्तियाँ सहीं, विष तक का पान किया। महान् संघटक डॉ. हेडगेवार और श्री गुरुजी के शरीर को निरन्तर प्रवास, भाषण, बैठकों और चिन्तन के कारण व्याधियों ने दबोच लिया था। स्वामी विवेकानन्द की अमरीका-यात्रा अर्थाभाव की असह्य पीड़ा से भरी थी।

समाज-सेवा का स्थान ईश्वर-भक्ति से उच्च एवं श्रेष्ठतर है। ईश्वर-भक्ति 'स्व' की उन्नति (आत्मिक उन्नति) एवं मोक्ष-प्राप्ति का साधन है, जबकि समाज-सेवा जनता की जो कि जनार्दन का ही रूप है, आराधना है। जीवन की सफलता है। वेदव्यास जी ने कहा, 'जीवितं सफलं तस्य यः परार्थोद्यतः सदा' अर्थात् उसी का जीवन सफल माना जाता है, जो सदा परोपकार में प्रवृत्त रहता है। तेलुगु के भक्त कवि रामदास का तो मानना है, 'मानव की सेवा करो तो भगवान् की अर्चना करने की आवश्यकता नहीं है।' यही बात साईं बाबा कहते हैं 'सेवा करने वाला हाथ स्तुति करने वाले ओठों की अपेक्षा अधिक पवित्र है।'

'हरि-अनंत हरि-कथा अनन्ता' के समान समाज-सेवा का क्षेत्र भी अनन्त है, व्यापक है। भिक्षुक को भीख देना, भूखे को भोजन देना, नंगे को वस्त्र देना, लूले-लँगड़े की सहायता करना, अंधे को राह दिखाना, समाज की सेवा के लघुतम रूप हैं। इसी प्रकार धर्मशाला बनवाना, निःशुल्क अस्पताल खोलना, अनाथालय, वृद्धाश्रम चलाना, विद्यालयों की स्थापना करवाना, प्याऊ लगाना आदि भी समाज-सेवा के ही कार्य हैं।

'समाज-सेवा छोटी हो या बड़ी, इसकी कीमत नहीं है। किस भावना से, किस दृष्टि

से वह की जा रही है, उसकी कीमत है।'—विनोबा (लोकनीति पृष्ठ 216) 'अगर समाज को विश्वास हो जाए कि आप उसके सच्चे सेवक हैं, आप उसका उद्धार करना चाहते हैं, आप निःस्वार्थी हैं, तो वह आपके पीछे चलने को तैयार हो जाता है।'—प्रेमचंद (सेवा सदन, पृष्ठ 52) पर आज तो समाज-सेवा ख्याति लाभ करने, धन बटोरने और स्वार्थ सिद्धि का माध्यम बन गया है।

इतने में ही स्वार्थ पूर्ति होती तो कोई बात नहीं, आज का समाज-सेवी तो समाज द्वारा दिए दान में से भी अपना भाग रखकर समाज-सेवी कहलवाना चाहता है।

रोना है तो इसका कोई नहीं किसी का।
दुनिया है और मतलब, मतलब है और अपना।

(149) स्वावलम्बन (आत्म-निर्भरता)

संकेत बिंदु—(1) स्वावलम्बन का अर्थ (2) स्वावलम्बन के उदाहरण (3) मानवीय गुणों को स्थापित करना (4) आत्मनिर्भरता, स्वावलम्बियों की आराध्य देवी (5) स्वावलम्बी मनुष्य समाज तथा राष्ट्र का जीवन।

स्वावलम्बन का अर्थ है आत्म-निर्भरता; पर आत्म-निर्भरता का अर्थ यह कदापि नहीं कि प्रत्येक कार्य व्यक्ति स्वयमेव करे। झाड़ू-बुहारी से लेकर, रोटी पकाने तक, कपड़े धोने से लेकर, दफ्तर की ड्यूटी भुगताने तक एक ही व्यक्ति मरे-पचे। न ही स्वावलम्बन का अर्थ पर-बुद्धि, योग, ज्ञान, बल शक्ति की उपेक्षा है। यह तो आत्म-विश्वास का खंडन है, आत्मबल का दुरुपयोग है, आत्मनिर्भरता की अशुद्ध व्याख्या है। वस्तुतः आत्म-विश्वास के बल पर कार्य को निरन्तर गति देना स्वावलम्बन है। निज, समाज तथा राष्ट्र की आवश्यकताओं की पूर्ति की क्षमता उत्पन्न करना स्वावलंबन है। व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र में आत्मविश्वास की भावना होना, स्वावलम्बन की प्रतीक है।

स्वालम्बन व्यक्ति, समाज, राष्ट्र के जीवन में सर्वांगीण सफलता-प्राप्ति का महामन्त्र है। जीवन का आभूषण है। कर्तव्य शृंखला की प्रथम कड़ी है। वीरों तथा कर्मयोगियों का इष्टदेव है। सर्वांगीण उन्नति का आधार है।

प्रभु का मुँह और हाथ देने का तात्पर्य है—स्वावलम्बनी बनो। अपना काम अपने हाथ से करो। अपने हाथ की कमाई खाओ। आत्म-निर्भर बनकर हार्दिक आनन्द की प्राप्ति करो।

पेड़-पौधे, पशु-पक्षी स्वावलम्बन के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। सूर्य से प्रकाश, चन्द्रमा से रस, आकाश या भूमि से जल प्राप्त कर पेड़-पौधे स्वतः बढ़ते जाते हैं। वे प्रकाश, रस तथा जल के लिए सूर्य, चन्द्रमा तथा मेघ की खुशामद नहीं करते। उनके सामने दाँत नहीं निपोरते, बगलें नहीं झाँकते, गण्डा या तावीज नहीं बाँधते।

पशु तथा पक्षी-शावक जरा से बड़े हुए नहीं कि निकल पड़े अपना चारा स्वयं खोजने।

चींटी-जैसा नन्हा-सा जीव भी स्वावलंम्बन का महत्त्व समझता है। इसी से प्रेरित होकर एक शायर परमुखापेक्षी मानव, समाज तथा राष्ट्र की मूर्खता पर रो उठा—

जो हुआ मोहताज गैरों का, वो कब इन्सान है।
वो है हैवानों से बदतर, चूँकि वो नादान है॥

राजस्थानी में एक कहावत है—'काम सुधारो तो अंगे पधारो।' अर्थात् यदि अपना काम सुधारना है, तो किसी के अधीन न रहकर उसे स्वयं करो। दूसरे शब्दों में—'स्वावलम्बी बनो।' भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा है—'स्वे-स्वे कर्मण्यभिरत: संसिद्धिं लभते नर:।' जो व्यक्ति अपने कर्म के पालन में तत्पर रहता है, उसे ही सिद्धि (सफलता) प्राप्त होती है। कहावत भी प्रसिद्ध है—'आप काज महाकाज।' एकलव्य स्वयं के प्रयास से धनुर्विद्या में प्रवीण बना, निपट दरिद्र बालक लालबहादुर भारत का प्रधानमंत्री बना, साधारण परिवार में जन्मा जैलसिंह स्वावलम्बन के सहारे ही भारत का राष्ट्रपति बना। मध्यवर्गीय अध्यापक पुत्र अटलबिहारी वाजपेयी आज भारत का प्रधानमंत्री है।

जैसे अलंकार काव्य की शोभा बढ़ाते हैं, सूक्ति भाषा को चमत्कृत करती है, गहने नारी के सौन्दर्य को द्विगुणित करते हैं, इसी प्रकार स्वावलम्बन मानव में अनेक गुणों की प्रतिष्ठा करता है, उन्हें चमकाता है। आत्मसम्मान, आत्मविश्वास, आत्मबल, आत्मनिर्भयता, आत्मरक्षा, साहस, सन्तोष, धैर्य आदि गुण स्वावलम्बन के सहोदर हैं। महात्मा गाँधी स्वावलम्बन के जीवन्त उदाहरण थे। आवश्यकता पड़ने पर वे किसी भी काम से झिझके नहीं, हिचके नहीं। अपने हाथों से खाना बनाया तो कपड़े भी धो लिए। बीमार का शौच भी साफ कर दिया, तो वमन युक्त वस्त्र भी बदल दिए।

स्वावलम्बन के महत्त्व से अपरिचित, दूसरों का मुँह ताकने वाले अपने कर्तव्य का पालन नहीं कर पाते। ऐसे लोग मोह को बढ़ाकर, तृष्णा को उत्पन्न कर अपनी स्थिति दयनीय तथा कृपण बना लेते हैं। कार्पण्य दोष से जिसका स्वभाव उपहत हो जाता है, उनकी दृष्टि म्लान हो जाती है। इस म्लान, अंधकारपूर्ण दृष्टि से भगवान् को भी भय लगता है। प्रभु तो उन्हीं की सहायता करते हैं, जो अपनी सहायता स्वयं करते हैं। स्वावलम्बी को ही प्रभु का वरदान प्राप्त होता है।

आत्म-निर्भरता स्वावलम्बियों की आराध्य देवी है। इस देवी की उपासना से उनका आलस्य अन्तर्धान हो जाता है, भयभीत होकर भाग जाता है, कायरता नष्ट हो जाती है, संकोच समाप्त हो जाता है, आत्मविश्वास उत्पन्न होता है, आत्मगौरव जागृत होता है। स्वावलम्बी व्यक्ति कष्टों और बाधाओं को रौंदता हुआ कंटकाकीर्ण पथ पर निर्भीकतापूर्वक आगे बढ़ता है। ऐसे ही कर्मवीरों के सम्बन्ध में कविवर 'हरिऔध' ने कहा है—

पर्वतों को काटकर सड़कें बना देते हैं वे,
सैकड़ों मरुभूमि में नदियाँ बहा देते हैं वे।
आज जो करना है कर देते हैं उसको आज ही,
सोचते, कहते हैं जो कुछ कर दिखाते हैं वही।

टाटा, बिड़ला, सिंघानिया, डालमिया, खेतान, मोदी, अम्बानी न जाने कितने स्वावलम्बियों ने केवल स्वयं को समृद्ध किया, अपितु राष्ट्र को औद्योगिक सम्पन्नता प्रदान कर विश्व-प्रांगण में भारत का भाल ऊँचा किया। अनेक महान् वैज्ञानिकों ने अन्तरिक्ष प्रौद्योगिकी (टेक्नोलॉजी) के रूप में भारत को विश्व के महान् राष्ट्रों की पंक्ति में लाकर खड़ा कर दिया। डॉ. अब्दुल कलाम तथा सुब्रह्मण्यम् जैसे वैज्ञानिकों ने परमाणु बम का सफल परीक्षण कर भारत को परमाणु-सम्पन्न राष्ट्र होने का गौरव प्रदान कराया। डॉ. इकबाल ने इसी तथ्य को प्रस्तुत करते हुए कहा है—

खुदी को कर बुलन्द इतना कि हर तकदीर से पहले।
खुदा बन्दे यह पूछे, बता तेरी रजा क्या है?

ऐसे महाप्रचण्ड शक्तिसम्पन्न स्वावलम्बी मनुष्य समाज तथा राष्ट्र का जीवन हैं। 'वे प्राण ढाल देते हैं जिन्दगी में, मन ढाल देते हैं, जीवन रस के उपकरणों में। कठोर भूतल को भेदकर, पाताल की छाती चीरकर अपना भोग्य संग्रह प्राप्त करते हैं; वायुमण्डल को चूसकर, झंझा-तूफान को झेलकर अपना प्राप्य वसूल करते हैं। आकाश को चूसकर, अवकाश की लहरी में झूमकर उल्लास खींचते हैं।' ऐसे स्वावलम्बियों की प्रशंसा में कवि का कथन है—*'स्वावलम्बन की एक झलक पर न्यौछावर कुबेर का कोष।'*

स्वावलम्बन आत्म-निर्भरता का परिचायक है; व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र के लिए बल, गौरव एवं उन्नति का द्वार है। सुख, शान्ति तथा सफलता का प्रदाता है और है शौर्य, शक्ति तथा समृद्धि का साधन।

(150) जीवन-प्रवाह/मनुष्य का प्रवाहमान जीवन/ यात्रा अपने भीतर की

संकेत बिंदु—(1) जीवन की शैली और गति (2) अशान्त मन के साथ समझौता (3) अतृप्ति और भूख का गुण विकास हेतु (4) असुरक्षा की भावना (5) उपसंहार।

जीवन की एक शैली है। जीवन की एक अपनी गति है—रफ्तार है। जीवन स्वयं एक प्रवाह है जो अपने गन्तव्य की ओर अनवरत बह रहा है, परन्तु मनुष्यों ने इसे अपनी गति दे दी है। इस पर अपने मन का आवरण चढ़ा दिया है जिसने जीवन की स्वतन्त्रता पर प्रश्न चिह्न लगा दिया है।

अब प्रश्न जीने का हो गया है—अब जीने के लिये प्रयास करना पड़ रहा है। अब आदमी जीना चाहता है—उस जीने की चाह ने मनुष्य को वैज्ञानिक बना दिया है। बुद्धिजीवी बना दिया है। सम्भवतः मनुष्यों की इस माँग ने मनुष्यों को गुलाम बना दिया है। इच्छाओं की पराधीनता, इच्छाओं के विकास के कारण मन वैज्ञानिक बनकर व्यक्तित्व का पुजारी

बन गया है और यही रोगों के विकास का कारण बन गया। नीरोगी तन का नीरोगी मन का तनाव युक्त होना—आपदाओं के घर बनाने का कारण संसार की माँग बन गई और प्रेम-आनन्द-सुखमय जीवन का जो दुर्लभ खजाना था—वह शान्ति अशान्ति में बदल गई।

अशान्त मन के साथ समझौता कर अशान्त मन को समझाने के लिये मनुष्यों ने जो कुछ भी खोजा वह उसका विज्ञान बन गया। परावर्तन को अनुकूलता की दिशा दे दी गई। आवर्तन की क्रियाशीलता का राज जानकर इसे अपनी दिशा देने की कोशिश की गई।

प्राकृतिकता-स्वाभाविकता में अस्वाभाविकता का जन्म हुआ। मूल दिशा मूल लक्ष्य को दिशा विहीनता मिली जीवन एक प्रश्न बनकर रह गया। प्रेम मनुष्य की सम्पदा है। आनन्द जीवन की स्थिति है। भोग क्रिया है—भोग स्वाभाविकता है—संरचना की—काम जननी है—काम सृजन की प्रक्रिया है—काम एक माँग है जरूरत है—काम जरूरी है—एक Need है—हो जाने का—यह हो जाता है—घटता है—पर इसे घटाने का उपाय खोज लिया है मनुष्ये ने। स्वाभाविकता को दबाकर अपनी चाह की चादर ओढ़ ली।

काम सृजन तो था ही—काम विकास की जननी तो थी ही—काम आनन्द का एंहसास तो था ही—परंतु मनुष्यों की माँग के कारण काम भोग बन गया—आसक्ति बन गया और आनन्दमय काम तनाव का कारण बन गया।

जिस सुख की चाह में आज मानव भटक रहा है—उस सम्पदा का मालिक तो वह पहले से ही था—वह आनन्द—वह शान्ति तो उसे पहले से ही प्राप्त है। परन्तु वह अब इससे भाग रहा है—दूर होता चला गया है।

चाह-भूख-अतृप्ति यह गुण विकास हेतु-जागरण हेतु थे—इनमें मनुष्यों की ऊर्जाओं को नयी दृष्टि देने का रास्ता था। पर यह रोग का कारण बन गया—यह गुलामी का कारण बन गया—क्योंकि मनुष्य की अपनी सम्पन्नता ने इसे महान् बना दिया। जीना और जीवन का ध्येय पथ था—वह मन का सम्मान का राग का द्वेष का कारण बन गया।

मनुष्य था ही मनुष्य क्योंकि मन को लेकर वह आया था। मनुष्य पशु नहीं था—वह तो उसे छोड़कर आ गया था। उसे छोड़ने में मनुष्य की स्वभाविकता थी—मन का व्यसन नहीं था। परन्तु मनुष्य पशुता का पुनः साथी बन गया। अपनी यात्रा के पथ पर जहाँ-जहाँ पड़ाव देकर आया था—उन सभी स्मृतियों को मनुष्य ने परावर्तन कर अपना गुण बना लिया—शान्त नगरी अशान्त हो गई।

सीमाओं का अतिक्रमण हुआ—जीवन जीने की शैली में बदलाव आया—जीवन ऊर्जाएँ आपस में संघर्ष करने लग गईं। जीवन-धारा को गन्तव्य की ओर ले जाने में काल बँट गया। वह काल-काल बन गया। जीवन-कला काम-कला बनकर रह गई। दिशाविहीन मानव इन सभी आपूर्तियों की पूर्ति में ही रह गया। अपने ही घर का रास्ता भूल गया। अपने ही खजाने को खो दिया गया और अपने खजाने की खोज में भागता रह गया।

यात्राएँ अनेक हो गईं। मार्ग अनेक बन गए, लक्ष्यविहीन यात्राएँ इच्छाओं में अधीन हो गईं। मानव खुद की खोज में खोकर खुद की पूजा में लग गया। काम ने अभिमान का

रूप ले लिया। काम ने पहचान का रूप ले लिया—काम ने पूजा का रूप ले लिया—प्रेम जो जीवन था—जीवन जो परमात्मा था—वह प्रेम प्यार बनकर रह गया। मनुष्य स्वयं में एक प्रश्न बनकर रह गया। मनुष्य स्वयं अपनी कृतियों का गुलाम बनकर रह गया।

उसकी आज़ादी छिन गई। उसकी स्वतन्त्रता नहीं रही। आज़ादी एक माँग बनकर रह गई। मनुष्य को आज़ादी की खोज के लिये लड़ना पड़ा। यह एक ऐसा संघर्ष का साधन बन गया जिससे मनुष्य-मनुष्य का दुश्मन बन गया।

सीमाएँ बन गईं—जातियाँ बन गई—पंथ बन गए—भिन्न-भिन्नताएँ आ गईं—समाज बन गया। उनमें अपने-अपने नियम और आचार संहिताएँ बन गईं। आदमी का मन मालिक बन बैठा। बेचैनी का जन्म हुआ विचारों का प्रवाह बन गया। नियम और कानून बने, स्वतन्त्राएँ, व्यवस्थाएँ परिस्थितियों की दास बनकर रह गईं। सीमाओं ने महत्त्व बना लिया। सीमाओं की सुरक्षा, समाज की सुरक्षा, मर्यादा की सुरक्षा के लिये जीवन बलिदान होने लगा।

असुरक्षा की भावनाओं ने मनुष्य को मनुष्य का दुश्मन बना दिया। इस समाप्त न लेने वाली मानव की कृति ने मानव को मानव से दूर कर दिया। प्रेम ने नफरत को प्रोत्साहित कर दिया। प्रेम ने स्वार्थ प्रेम की चादर ओढ़ ली। प्रेम समझौता बन गया। प्रेम पूजा और प्रार्थना नहीं रह गया। प्रेम समर्पण नहीं रह गया। प्रेम उपयोग की वस्तु हो गई। जो होता था उसे किया जाने लगा। मनुष्य के हृदय ने दरवाजे बन्द कर दिये मन सम्राट् बन गया। नौकर मालिक बन बैठा। आजादी गई पराधीनता मनुष्य का गुण बन गई।

मर्यादाएँ व्यापार बन गईं—मर्यादाएँ चिह्न बन गईं—परिचय देने का। उपासकों, साधकों, तपस्वियों, योगियों, आचार्यों ने मर्यादा को अपनाकर सत्य को छोड़ दिया। जीवन एक कलाकार बनकर रह गया जीने के लिए साध्य महत्त्वपूर्ण बन गए जीना एक बहाना बन गया। मन ने अनेकों बहाने खोजकर जीने के माध्यम को जीने से महत्त्वपूर्ण बना दिया। सम्मान अभिमान स्वाभिमान के लिये स्वयं को मार देना मनुष्य ने स्वीकार कर लिया। आत्महत्याएँ प्रकृति की स्वाभाविकता पर एक आघात बनकर रह गई।

सत्य घुटता गया असत्य आडम्बर बढ़ता गया। शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध गन्दे हो गए। प्राकृतिक तत्त्वों में भी मनुष्यों ने मिलावट कर दी। ऋतुओं में बदलाव आ गया। समय असमय वृष्टि अतिवृष्टि होने लगी। अग्नि भी क्रोधित होने लगी। पवन भी अपना आक्रोश दिखाने लगा, पानी भी क्रोध करने लगा। आकाश की गतिविधियाँ असन्तुलित होने लगीं। फिर देह कहाँ से क्या जाएगा। फल-पेड़-पौधे की पैदाइश में फर्टिलाइजेशन आ गए तो मन को एवं तन को भी फर्टिलाइजेशन ही मिला।

विकास के पथमार्गी मनुष्य ने अपने ही जीवन पथ पर इतनी परेशानियों-उलझनों की दीवार दें, चट्टानें, रुकावटें पैदा कर दीं कि वह स्वयं भी भयभीत हो गया।

(151) अनुशासन और जीवन

संकेत बिंदु—(1) जीवन का महत्त्वपूर्ण पहलू (2) जीवन में सद्व्यवहार की भावना (3) अनुशासन के बिना जीवन (4) प्रकृति के अन्य जीवों में अनुशासन (5) उपसंहार।

जीवन का यदि कोई महत्त्वपूर्ण पहलू है, तो वह अनुशासन है। अनुशासन के बिना जीवन मूल्यहीन हो जाता है। हमें अपने जीवन में हर सम्भव अनुशासन को बनाये रखना है, तभी हम सबका जीवन सार्थक है वरना नरक से भी भयंकर हो जाता है जीवन अनुशासन के बिना।

अनुशासन में जीवन हो तो, जीवन रसमय हो जाये।
हर मानव का पूरा जीवन, 'रत्नम्' सुखमय हो जाये॥

अनुशासन का अर्थ, शासन को मानना है, घर में माता-पिता, स्कूल में अध्यापक ही अनुशासन की शिक्षा देते हैं। जीवन के चहुँमुखी विकास के लिए मानव का अनुशासन में रहना अनिवार्य है। अनुशासन से जीवन में ज्ञान, विनम्रता, शालीनता सभ्यता और संयम आता है।

अनुशासन जीवन में आये, जीवन में अनुशासन हो।
जीवन सुखद मनोहर बनता, हर मन में अपनापन हो॥

अनुशासन से ही हमें जीवन में, खान-पान, उठने-बैठने, बातचीत छोटे-बड़ों से व्यवहार करने का ढंग आता है। जीवन में अनुशासन ही सुख-समृद्धि के साथ-साथ लोक-कल्याण की भावना को भी बल प्रदान करता है। अनुशासन ही हमें कर्त्तव्य परायणता का बोध कराकर जीवन को सुखमय, सार्थक बनाने में सहायक होता है। यदि जीवन में अनुशासन न होता तो हर मनुष्य का जीवन अलग-अलग होता और कोई भी मनुष्य उन्नति न कर पाता। अनुशासन के बिना जीवन का कोई मूल्य नहीं है। अनुशासन ही मानव जीवन का उच्च शिखर तक पहुँचने में सहायक बनता है। अनुशासन के बिना किया गया हर कार्य अपमान का कारण बन सकता है, इसीलिए जीवन में अनुशासन का होना महत्त्वपूर्ण बताया गया है।

जो अनुशासन हीन बना दे, वह अभिवादन बदलो तुम।
जीवन का जो मूल्य घटा दे, वह अपनापन बदलो तुम॥

अनुशासन के बिना जीवन को 'शव' के समान ही कहा जायेगा। जीवन में यदि अनुशासनहीनता आ जाये तो हमें उस कारण को, शीघ्र ही बदलने प्रयास करना चाहिए क्योंकि अनुशासनहीनता से राष्ट्र व समाज में मानव के अपने जीवन में अशान्ति, अराजकता, मनमानेपन का जन्म होता है। जो न तो मानव के अपने जीवन के लिए और न ही समाज

के लिए लाभदायक हो सकता है और न ही अपने राष्ट्र के लिए लाभदायक हो सकता है। अनुशासनहीनता से हर प्रकार की अशान्ति, देश में अराजकता का फैलाव होता है और अनुशासन से देश व समाज में अपनापन आता है, भाईचारे की भावना समाज में व मानवमन आती है।

अनुशासन का पर्व सुखद—सा, मिलकर आओ मना लें।
जो अनुशासनहीन है 'रत्नम्', उन्हें तनिक समझा दें॥

आकाश में उड़ते हुए पक्षियों को यदि हम देखें तो वह कतार बनाकर अनुशासन के साथ गगन में उड़ते हुए कितने अच्छे लगते हैं, मानो किसी नदी की मोहक धारा आकाश में टाँग दी गई हो। यदि हम चींटियों को देखें तो वह कितने अनुशासन में कतार बनाकर धरती पर, दीवारों पर चलती है जैसे किसी चित्रकार ने जीवन का चित्र बना दिया हो। जबकि यह सत्य है कि चीटिंयों की आँखें नहीं होतीं, फिर भी वह अनुशासन का पालन कितने अच्छे ढंग से करती हैं, अनुशासन के कारण ही चीटिंयाँ अपने हृदय तक पहुँचती हैं जो समाज के प्राणी के लिए अनुशासन की एक सफल प्रेरणा ही कहा जा सकता है।

सेना के जवान जब अभ्यास करते हैं तो उनमें अनुशासन की सुन्दर झलक देखने को मिलती है। सैनिकों के पैर और हाथ एक साथ उठते हैं, जीवन को गति प्रदान करते हैं। गणतन्त्र दिवस की परेड में सेना का प्रदर्शन देखा जा सकता है। युद्ध के समय में भी देश का सैनिक अनुशासन में रहकर शत्रु पर हमला करता है। स्कूल में प्रार्थना के समय छात्रों में अनुशासन की झलक देखने को मिलती है। माता-पिता और अध्यापक यदि चाहें तो सारे मानव समाज में अनुशासन का साम्राज्य लाया जा सकता है और देश में छाये भय के वातावरण को अनुशासन से समाप्त किया जा सकता है। अनुशासन का जीवन में उतना ही महत्त्व है जितना जीवन में रोटी का। अनुशासन के बिना जीवन पंगु-सा बनकर रह जाता है। अनुशासन के बिना मनुष्य की समाज में प्रतिष्ठा, मान-मर्यादा भी प्राय: समाप्त-सी हो जाती है। अनुशासन सबसे पहले हमें घर से ही सीखने को मिलता है। अनुशासनहीन बालक को समाज में मूर्ख, धूर्त, चालाक और बदमाश तक बताया जाता है। अनुशासनहीन प्राणी को समाज का कलंक तक कह दिया जाता है। अनुशासन से जीवन में रोचकता आती है और अनुशासन से ही सम्पूर्ण मानव समाज का विकास भी जीवन में सम्भव हो जाता है और अन्त में—

अनुशासन जीवन में लाने का संकल्प उठा ले।
सकल राष्ट्र में अनुशासन का 'रत्नम्' दीप जला लें॥

सूक्तियाँ

(152) अधजल गगरी छलकत जाए

संकेत बिंदु—(1) सूक्ति का अर्थ (2) अल्पज्ञ और अज्ञानी अपने ज्ञान का प्रदर्शन बढ़-चढ़कर (3) आज का हिन्दी-साहित्य सूक्ति का पर्याय (4) संसद, मेडिकल और धर्म की अधजल गगरी (5) उपसंहार।

आधी भरी गगरी का जल छलकता ही नहीं, शोर भी मचाता है। 'सम्पूर्ण कुम्भो न करोति शब्दम्। अर्धोघटो घोष मुपैति नूनम्।' आधी गगरी में पानी हिल-हिल कर अपनी ध्वनि से अपने अस्तित्व का बोध भी कराता है, जबकि आकंठ भरी गगरी का छल छलकेगा, पर शोर नहीं मचाएगा। विद्वान्, सुसंस्कृत, सुसभ्य मानव जलपूर्ण गगरी के समान गंभीर, शांत होते हैं, जबकि अल्पज्ञ, अज्ञानी, चंचल और समाजद्रोही तत्त्व अधजल गगरी के समान दिखावा करेंगे, अपने अस्तित्व की अनुभूति कराएँगे।

सबल आत्मा भरी गगरी है, जो स्वतः छलकती है। निर्बल आत्मा अपनी आन्तरिक शान्ति को तिल-तिल जलाकर प्रदर्शित करती है। *'होई विवेक मोह भ्रम भागा'* पूर्ण जल-युक्त गगरी की पहचान है। मोह-भ्रम से युक्त अल्प-विवेकी अपने पराक्रम का दिखावा करता है। 'बुद्धि' जल पूर्ण गगरी के समान 'बुद्धिमान्' में अपना अस्तित्व प्रकट करती है।

अल्पज्ञ और अज्ञानी अपने ज्ञान का प्रदर्शन बढ़-चढ़ कर करते हैं। सड़क छाप ज्योतिषी अपने को ज्योतिषाचार्य कहेगा। पटरी पर दवा बेचने वाला अपने को डॉक्टर का बाप बताएगा, धन्वन्तरी का पट-शिष्य बताएगा। घर-घर आशीर्वाद बाँटते साधु अपने 'स्वाद' का प्रदर्शन करेंगे। कविता की पहचान से अनभिज्ञ पर रंग-मंच पर गला-फाड़ सफल कवियों पर 'अज्ञेय' जी ने अधजल गगरी के छलकने का प्रतीक रूप में कैसा सुन्दर चित्रण किया है—

किसी को
शब्द हैं कंकड़
कूट लो, पीस लो
छान लो, डिबिया में डाल लो
थोड़ी-सी सुगंध दे के
कभी किसी मेले के रेले में
कुंकुम के नाम पर निकाल दो।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने निबन्ध 'अद्भुत अपूर्व स्वप्न' में विद्यालय के अध्यापकों की विशेषताओं द्वारा 'अधजल गगरी छलकत जाए' पर तीव्र व्यंग्य किया है। विद्यालय के पाँचों पंडित अध्यापक 'यथानाम तथा गुण' के अनुसार किस सुन्दरता से छलकते हैं, जरा देखिए।

मुग्धमणि जी—नाम के अर्थ के अनुसार ही छात्रों को मुग्ध कर देने वाले मूर्ख को विद्वान् और विद्वान् को मूर्ख बनाने वाले थे। **पाखंडप्रिय जी**—धार्मिक पाखंड फैलाने में निपुण थे। **प्राणान्तक वैद्यराज**—औषध देकर रोगी के प्राणहरण करने में दक्ष थे। **लुप्तलोचन ज्योतिषाभरण**—स्वयं अन्धे थे, पर अपने को नवीन तारों के ज्ञाता मानते थे। वे ज्योतिष के प्रकाश के स्थान पर अन्धकार फैलाने में ही पटु थे। **शीलदावानल नीति-दर्पण**—अपने नाम के ही अनुरूप शील- सदाचार को भस्म करके दुराचार और अन्याय का प्रशिक्षण देने वाले थे।

आज का हिन्दी-साहित्य अधजल गगरी छलकत जाए का सुन्दर उदाहरण है। आज साहित्य के नाम पर बहुत अनाप-शनाप लिखा जा रहा है। हर 'अधजल' साहित्यकार प्रकाशित रचना की 'गगरी' में छलक रहा है। जिसमें तुक नहीं, लय नहीं, छंद नहीं, पंक्तियों की एकरूपता नहीं, भाव का गाम्भीर्य नहीं, अभिव्यक्ति की क्षमता नहीं, फिर भी वह कविता है। कहानी ने तो नई कहानी, अ-कहानी, संचेतन कहानी, पता नहीं कितनी चादरें ओढ़ी हैं। कथ्य नहीं, शिल्प नहीं, रोचकता नहीं फिर भी उपन्यास धड़ाधड़ छप रहे हैं। छपना तो अधजल गगरी का छलकना है, किन्तु जब ये पुरस्कृत होते हैं, तो लगता है अधजल गगरी के छलकन को ही श्रेष्ठ प्रमाणित किया जा रहा है। ये ही अधजल के प्रतीक पंडित, स्वनाम धन्य साहित्यकार जब हिन्दी समितियों के अध्यक्ष तथा सम्मानीय सदस्य बनते हैं तो उस 'गगरी' के 'जल' को इतना छलकाते हैं कि हिन्दी-शिक्षकों को नानी-दादी याद आ जाती है और विद्यार्थियों की योग्यता पर प्रश्न-चिह्न लग जाता है। हिन्दी पाठ्य-पुस्तकें 'अशुद्ध छपें', यह इनकी नैतिक विजय है। उसकी सामग्री बेशक 'कूड़ा' हो पर उसमें चहते चौकड़ी मारकर बैठे हैं। वर्ष के बीच में पाठ्यक्रम बदल देना, अधिकार का दुरुपयोग है।

संसद् और विधानसभाओं के मान्य सदस्यों की अधजल-गगरी जब छलकती है तो संसद् रूपी गगरी में तूफान उठता है। वक्तृत्व चातुर्य का स्थान गाली-गलौच; तर्क का स्थान वितंडावाद और नारे बाजी; गरिमा का स्थान हाथा-पाई लेता है। यह अधजल इतना उछलता है कि नियंत्रण तथा अनुशासन पीठासीन अध्यक्ष के सामने उसकी औकात पूछ रहे होते हैं।

धर्म की अधजल गगरी छलकती है तो लोग चौराहों तथा कब्रों को पूजते हैं। मिट्टी के ढेले में गणेश जी के दर्शन करते हैं। गेरुए वस्त्र पहने हर ढोंगी में महान् साधु की आत्मा के दर्शन करते हैं। माँस का भक्षण करने वाले अहिंसा में विश्वास व्यक्त करते हैं। सामाजिक मान-सम्मान में जब अधजल गगरी छलकती है तो 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' की झड़ी लग जाती है। नैतिकता नग्नता का रूप लेती है और नग्नता फैशन का। जातिवाद का सूर्य गर्व से चमकता है तो छुआ-छूत का चन्द्रमा अपनी शीतलता में अग्नि बरसाता है। राष्ट्रपिता की मिट्टी पलीद होती है और वह शैतान की औलाद कही जाती है।

आज का भारत उस 'गगरी' का प्रतीक है जिसके मंत्रीगण अपने 'अधजल जैसे' ज्ञान

से भारत के भाल को छलका रहे हैं। विश्व प्रांगण में गिरती प्रतिष्ठा, विश्व-शक्ति का भारतीय नीति पर दबाव, भारत की मृत प्राय: नैतिकता, अरबों रुपयों के उधार में उपजी आर्थिक विपन्नता; विदेशी पूँजी, विदेशी संस्कृति तथा सभ्यता का बढ़ता वर्चस्व; प्रांतीय सरकारों की अस्थिरता तथा कानून और अनुशासन की हीनता तथा महँगाई की मार से जब भारतवासी सुबक-सुबक कर रोता है और अपने विभाग के विशेषज्ञ मंत्री उज्ज्वल स्वप्नों के स्वर्णिम क्षितिज दिखाते हैं तो बुद्धिमान्, पंडित और ज्ञानी भारतवासी, प्रौढ़ और चतुर राजनीतिज्ञ को भी मानना पड़ता है कि अधजल गगरी छलकती ही है।

अधजल गगरी का छलकते जाना उसका स्वभाव है, उसकी प्रकृति है। प्रकृति में परिवर्तन कठिन ही नहीं असम्भव है। (अतीत्य हि गुणान् सर्वान् स्वभावो मूर्ध्नि वर्तते।) नीम के साथ गुड़ खाने पर भी नीम अपने स्वभाव को प्रकट करता ही है, इसी प्रकार ओछा और छोटा आदमी दिखावा करेगा ही।

(153) अपने लिए जिए तो क्या जिए

संकेत बिंदु—(1) सूक्ति का तात्पर्य (2) गाँधी जी, सुभाष जी और इंदिरा जी के विचार (3) महापुरुषों, नेताओं और गुरुओं के जीवन-निष्कर्ष (4) परोपकार जीवन की सार्थकता (5) उपसंहार।

सूक्ति का तात्पर्य है कि केवल आत्म-हित जीवन बिताना जीने की सुन्दर शैली नहीं है। जीवन-यात्रा को अपनी ही परिधि तक सीमित रखने में जीवन का आनन्द कहाँ? 'मैं और मेरा' के दृष्टिकोण से जीवन जीना व्यर्थ है? स्वार्थमय जीवन को जीवन की संज्ञा नहीं दी जा सकती।

अपना-अपना राग अलापना, अपना उल्लू सीधा करना, अपनी खाल में मस्त रहना, अपने पन पर आना तथा अपनी-अपनी पड़ने में अपने लिए जीने की झलक दृष्टिगोचर होती है। इस प्रकार का जीवन कोई उच्च जीवन नहीं।

'अपने लिए जिए' से सूक्तिकार का भाव यह भी हो सकता है कि 'स्वार्थ पूर्ण जीवन निकृष्ट जीवन है।' प्रश्न उठता है इस जगत् में नि:स्वार्थ है कौन? तुलसीदास जी ने कहा है—

सुर नर मुनि सब कै यह रीति। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीति॥

× × ×

जेहि तें कछु निज स्वारथ होई। तेहिं पर ममता कर सब कोई॥

शेक्सपीयर की तो यहाँ तक धारणा है कि, 'The devil can cite scripture for his purpose.' अर्थात् अपने प्रयोजन के लिए तो शैतान भी धर्म-ग्रन्थ उद्धृत कर सकता है। कुछ लोगों ने तो श्रीराम और श्रीकृष्ण को भी स्वार्थी सिद्ध करने में कमी नहीं रखी। उनके विचार में राम ने तो आदर्श राज्य की परिकल्पना प्रस्तुत करने के लिए ही गर्भवती पत्नी

को त्याग दिया था। क्या यह उनका स्वार्थ नहीं कहाँ जाएगा ? कृष्ण ने तो 'विनाशाय च दुष्कृताम्' की इच्छा को पूर्ण करने के लिए कितने ही शूरवीर योद्धाओं को छल से मरवा दिया था।

अपने लिए अर्थात् अपने परिवार के लिए 'जिए' से यह मंतव्य तो नहीं कि परिवार की सुख-समृद्धि हेतु जीवन जीने में जीवन नहीं है। परिवार-निर्माण भी एक पुरुपार्थ है। पुरुषार्थ करना व्यक्ति का कर्तव्य है। अपने परिवार की सुख-समृद्धि के लिए तथा संतान के उज्ज्वल भविष्य के लिए जीवन जीने में क्या असंगति है ?

तब प्रश्न उठता है कि किसके लिए जीया जाए, जिसमें जीवन की सार्थकता हो। माता को राँची में लिखे पत्र में नेताजी सुभापचन्द्रबोस ने 'धर्म और देश के लिए जीने को ही यथार्थ में जीना माना है।' एक अन्य स्थान पर सुभाप बाबू ने 'लड़ने में' जीवन की सार्थकता माना है। गाँधी जी के विचार में 'पारमार्थिक भाव से जीव मात्र की सेवा में' जीवन की सार्थकता है। इन्दिरा गाँधी के विचार में, 'महान् ध्येय के लिए ज्ञान और न्याययुक्त समर्पण में' जीवन की सार्थकता है। प्राकृत भापा के अंगुत्तरनिकाय के अनुसार, 'श्रद्धा, शील, लज्जा, संकोच, श्रुत (ज्ञान), त्याग और बुद्धि, ये सात धनों से जो धनी है', उसी का जीवन सफल है। धरनीदास के विचार में *'जा के उर अनुराग ऊपजो, प्रेम पियाला पिया'* में जीवन की सार्थकता है। दादा धर्माधिकारी के विचार में 'सबके जीवन को सम्पन्न बनाने में जीवन की सार्थकता है। अज्ञेय के शब्दों में 'जिन मूल्यों के लिए जान दी जा सकती है, उन्हीं के लिए जीना, सार्थक है।' आध्यात्मिक गुरुओं के मत से, प्रभु चिन्तन और समर्पण में ही जीवन की सार्थकता है।

जीवन की सार्थकता के प्रति प्रकट किए गए ये विचार महापुरुषों, नेताओं, गुरुओं के जीवन-निष्कर्ष हैं। उनकी आत्मा की आवाज हैं, किन्तु हैं ये विविध, अनेक रूप हैं। जीवन में किसको अवतरित करें, किसे छोड़ें ? किसका अनुसरण करें, किसका परित्याग ?

'जिए' अर्थात् जीवन शब्द में ही जीवन जीने की शैली, अन्तर्हित है। 'वह तत्त्व, पदार्थ या शक्ति जो किसी दूसरे तत्त्व, पदार्थ या शक्ति का अस्तित्व बनाए रखने के लिए अनिवार्य अथवा उसे सुखमय रखने के लिए परम आवश्यक हो', जीवन है। (मानक हिन्दी कोश : खंड दो, पृष्ठ 372) जैसे जल ही सब प्राणियों का जीवन है। इसी प्रकार धैर्य, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, बुद्धि, विचार, सत्य, अक्रोध, ममता, दया, मधुरता आदि तत्त्व जीवन के प्राण हैं। अपने जीवन में इन आत्म-तत्त्वों की उज्ज्वलता और विकास में ही जीवन की सार्थकता है।

'वह तत्त्व जिसके वर्तमान होने पर किसी दूसरे तत्त्व में यथेष्ट ऊर्जा, ओज आदि अथवा यथेष्ट वांछित प्रभाव उत्पन्न करने या फल दिखाने की शक्ति दिखलाई देती है', जीवन है। (मानक हिन्दी कोश : खंड दो, पृष्ठ 373) अपने जीवन की ऊर्जा और ओज से दूसरे के जीवन को प्रकाशमान् करने, यशस्वी बनाने में जीवन की सार्थकता है। इसे 'परोपकार' की संज्ञा भी दी जा सकती है। परोपकारमय जीवन में भी जीवन की सार्थकता है।

जीवन-जीने के कुछ सिद्धांत होते हैं, जीवन-मूल्य होते हैं। सामयिक अनुकूलता-प्रतिकूलता, उपयुक्तता-अनुपयुक्तता का निर्णय करके जीवन के ज्ञान और उसके क्रियात्मक प्रवाह के साथ इन सिद्धांतों और मूल्यों को बहने देने में ही जीने की उत्कृष्टता का निदर्शन है।

'अपने लिए जिए' में से यदि 'अति' को निकाल कर जीवन को समन्वयवादी बना लें तो जीवन जीने का आनन्द ही भिन्न है। अति अभिमानी होने से रावण मारा गया। अति उदारता से बलि का विनाश हुआ। अति गर्व के कारण दुर्योधन नष्ट हुआ। अति संघर्षण से चंदन में भी अग्नि प्रकट हो जाती है।

महादेवी जी के शब्दों में, 'वास्तव में जीवन सौंदर्य की आत्मा है. पर वह सामंजस्य की रेखाओं में जितनी मूर्तिमत्ता पाता है, उतनी विपमता में नहीं।' सामंजस्यपूर्ण स्थिति में 'व्यक्तिगत सुख विश्व-वेदना में घुल कर जीवन को सार्थकता प्रदान करता है और व्यक्तिगत दुःख विश्व के सुख में घुल कर जीवन को अमरत्व।' (रश्मि की भूमिका)

जीवन के इस समन्वयात्मक जीवन-शैली का सुपरिणाम दर्शाते हुए प्रसाद जी लिखते हैं—

संगीत मनोहर उठता / मुरली बजती जीवन की।
संकेत कामना बनकर / बतलाती दिशा मिलन की।।

(154) अहिंसा परमो धर्मः

संकेत बिंदु—(1) अहिंसा धर्म का मूल (2) परम का अर्थ (3) ऋग्वेद की दृष्टि में अहिंसा (4) व्यक्ति के जीवन में अहं का महत्त्व (5) उपसंहार।

'अहिंसा परमो धर्मः' शास्त्रीय वचन है। यह योग-शास्त्र के पाँच यमों में से एक है। तुलसी ने भी 'मानस' के उत्तरकाण्ड में *'परम धर्मश्रुति विदित अहिंसा'* कहकर इसका अनुमोदन किया है। इस वैदिक (शास्त्रीय) मान्यता को जैन मत ने अपने पंच महाव्रतों में स्थान दिया है तो बौद्ध मत ने अपने सम्यक्-संकल्प का मुख्य अंग मानकर इसको स्वीकृति दी है।

स्कंद पुराण के अनुसार अहिंसा धर्म का मूल है, अतः यह सर्वश्रेष्ठ धर्म है। योग-दर्शन में अहिंसा को धर्म के आवश्यक अंग के रूप में स्वीकारा है। महाकाव्य-काल तथा पुराण-काल में अहिंसा का व्यवहार सर्वश्रेष्ठ धर्म के रूप में हुआ है। अहिंसा के परमधर्म रूप का उल्लेख महाभारत में भी हुआ है।

'धारयति इति धर्मः' अर्थात् जो धारण करता है, वह धर्म है। 'धार्यते अनेन इति धर्मः', जिसके द्वारा धारण किया जाता है, वह धर्म है। 'मन, वचन, कर्म से किसी को पीड़ा न देना' धारण करने योग्य तत्त्व है। क्योंकि 'पर पीडनम्' को 'पापाय' कहा है। इसलिए अहिंसा परम धर्म है। 'परम' इसलिए है क्योंकि अहिंसा ईश्वर के दर्शन का सरल उपाय

है। गाँधी जी कहते हैं, 'अहिंसा में सत्येश्वर (अर्थात सत्य रूपी परमात्मा) के दर्शन करने का सीधा और छोटा-सा मार्ग दिखाई देता है।'

'अहिंसा एक कला है। उसमें आत्यन्तिक अनाग्रह अपेक्षित होता है और अपने से अधिक अन्य की सत्ता को सम्मान में रखा जाता है। सत्य के आग्रह के विपक्ष में इस नितान्त अनाग्रह को अहिंसा कहेंगे।' जैनेन्द्र जी के इन विचारों में 'अपने से अधिक अन्य की सत्ता के सम्मान' पर बल है। यह वृत्ति जब प्राणी का स्थायी मूलभूत और विशेषता बन जाती है तो वह धर्म का स्वरूप ले लेती है। यदि अहिंसा परिपूर्ण हो और साथ ही सत्य के आग्रह को भी सम्पूर्ण रखा जा सके तो जैनेन्द्र जी का विश्वास है कि इसमें जीवन का समग्र आदर्श प्रस्तुत हो सकता है। दूसरे शब्दों में, अहिंसा की परम- धर्मता की पुष्टि है।

ऋग्वेद में धर्म को उन्नायक (ऊँचा उठाने वाला) तथा समपोषक (प्राण तत्त्व का पालन पोषक करने वाला) तथा 'सुबुद्धि द्वारा निश्चित सिद्धांत' माना गया है। रजनीश कहते हैं 'अहिंसा स्वयं के शरीर से ऊपर उठना है। जो शरीर में घिरा रह जाता है, वह हिंसा से मुक्त नहीं हो सकता।' आद्य शंकराचार्य ने हिंसा से मुक्ति को स्वर्ग प्रदाता माना है। स्वर्ग चाहना या मोक्ष प्राप्ति मानव जीवन की चरम आकांक्षा है। इस प्रकार अहिंसा द्वारा मोक्ष का सोपान सिद्ध होना अहिंसा के परम धर्म का मूल्यांकन है।

सामाजिक क्षेत्र में नियम, विधि, व्यवहार आदि के आधार पर नियत या निश्चित वे सब काम या बातें जिनका पालन समाज के अस्तित्व के लिए आवश्यक होता है, और जो प्राय: सर्वत्र सार्वजनिक रूप से मान्य होती हैं, धर्म है। धर्म की इस परिभाषा के अन्तर्गत कोशकार रामचन्द्र वर्मा अहिंसा, दया, न्याय, सत्यता का आचरण मनुष्य मात्र का धर्म मानते हैं। (मानक हिन्दी कोश भाग 3 : पृष्ठ 158) कारण, अहिंसा सामाजिक धर्म बनकर 'सर्वे भवन्तु सुखिन:, सर्व संतु निरामया:' को चरितार्थ करती है। यहाँ आकर अहिंसा का परम धर्म रूप दिव्य होता है, दीप्त होता है।

व्यक्ति के जीवन में 'अहं' का विशेष महत्त्व है, क्योंकि यह व्यक्तित्व का परिचायक है। दूषित अहं व्यक्ति के पतन का कारण है। आचार्य रजनीश की धारणा है, 'अहिंसा है निरहंकार जीवन। अहंकार में ही सारी हिंसा छिपी है। अहम् केन्द्रित जीवन ही हिंसक जीवन है। अहम् जहाँ जितना घनीभूत है, वहाँ 'अहं' के प्रति उतना ही विरोध और शोषण भी होगा। इसलिए मेरी दृष्टि में अहिंसा मूलत: अहंकार के विसर्जन से ही फलित होती है। जैसे पदार्थ के अणु-विस्फोट से अनन्त-शक्ति पैदा होती है, ऐसे ही अहम् के टूटने से भी होती है। उस शक्ति का नाम है प्रेम।' प्रेम ही अहिंसा है, जो जीवन में धर्म के सत्, चित् और आनन्द रूप में दर्शन करवाती है।

अहिंसा के परम धर्म रूप में दर्शन करने हैं तो श्रीराम का जीवन देखिए। राज्य नहीं, वनवास भेजने वाली माता कैकेयी के प्रति मन, वचन, कर्म से लेशमात्र भी पीड़ा न पहुँचाने का संकल्प, अहिंसा का ज्वलंत धर्म है। 'सीस पगा न झगा तन में; धोती फटी-सी लटी दुपटी अरु, पाँय उपानहु को नहिं सामा' वाला दीन- दरिद्र सुदामा जब द्वारकाधीश कृष्ण

से मिलता है तो जिस मैत्री धर्म का पालन कृष्ण करते हैं उसमें प्रेम रूपी अहिंसा के दिव्य दर्शन होते हैं। विजय अवसर पर किसी सेना नायक द्वारा लाई गई पर-सुन्दरी को 'माँ' कहकर सुरक्षित लौटाने में शिवाजी ने 'अहम्' का जो विसर्जन किया उसमें शिवा के 'सत्कार' रूपी अहिंसा धर्म की छवि निखरती है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार 'व्यवस्था या वृत्ति जिससे लोक में मंगल का विधान होता है, अभ्युदय की सिद्धि होती है, उसे धर्म कहते हैं। यही व्यक्तिगत सफलता जिसे 'नीति' कहते हैं, सामाजिक आदर्श की सफलता का साधक होकर धर्म हो जाता है।' जब यह अभ्युदय की सिद्धि और सामाजिक सफलता संशय रहित सर्वोत्तम को चिह्नित करती है तो 'परम धर्म' संज्ञा से विभूषित होती है। अहिंसा जब 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' का चिन्तन जागृत कर 'सर्व भूतेषु कल्याणेषु' को स्वप्न साकार करती है तो जीवन में आनन्द का अजस्र स्रोत प्रवहमान हो उठता है। यही 'अहिंसा परमोधर्मः' की मंगलमयी परिणति है, चरितार्थता है, सार्थकता है।

(155) आज की बचत, कल का सुख

संकेत बिंदु—(1) सूक्ति की व्याख्या (2) धन ही सब कार्यों की सफलता का माध्यम (3) धन बिना जीवन (4) भारत सरकार द्वारा बचत के लिए प्रोत्साहन (5) बीमा योजनाओं में बचत।

आवश्यक व्यय के बाद बची रहने वाली धन-राशि 'बचत' है। आज के दिन के बाद आने वाला समय 'कल' है। वह प्रिय अनुभूति जो अनुकूल या अभीप्सित वातावरण या स्थिति की प्राप्ति पर होती है, 'सुख' है। इस प्रकार सूक्ति का अर्थ हुआ—अपने अत्यावश्यक दैनन्दिन व्यय के बाद जितनी धन-राशि की बचत हम करेंगे, उससे भविष्य में आर्थिक, मानसिक तथा शारीरिक कष्टों से मुक्ति मिलेगी और अपेक्षित सुविधाएं प्राप्त होंगी।

अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि लांगफैलो ने कहा है, 'भविष्य कैसा भी सुखमय हो, उस पर विश्वास न करो।' कारण भविष्य को भगवान् ने बड़ी सावधानी से छिपाया है और उसे आशामय बनाया है। मैथिलीशरण गुप्त ने निम्न शब्दों में इसकी पुष्टि की है—

भविष्य का दृश्य आता। हा क्या दिखा के विधि क्या दिखाता।

इस अनिश्चित भविष्य को सुखमय बनाने के लिए वाल्मीकि रामायण कहती है, 'शुभ के इच्छुक के द्वारा भविष्य के लिए उपाय करना ही होगा। अन्यथा तुम्हारा पतन निश्चित है।' दूसरे, 'भविष्य का तुच्छ अनुचर केवल अतीत का स्वामी है। अतः जो भविष्य को सुखमय बनाना चाहते हैं, उन्हें वर्तमान में समझ-बूझकर चलना चाहिए।'

भविष्य को सुखमय बनाने के लिए धन चाहिए। कारण, धन ही सब कार्यों और सफलताओं का माध्यम है। नियमित जीवन में धन प्राप्ति कैसे हो ? इसके लिए नीतिवान्

चाणक्य का कथन है—'एक-एक विन्दु से जैसे धीरे-धीरे घड़ा भर जाता है, उसी प्रकार धन का भी थोड़ा-थोड़ा संचय करने से विशाल संग्रह हो जाता है।'

जलबिन्दु निपातेन क्रमशः पूर्यते घटः।
सहेतुः सर्व विद्यानां धर्मस्य धनस्य च॥

संचय के महत्त्व के सम्बन्ध में किसी कवि ने कहा है—

पैसे सात कमाय कर, खर्च करेगा पाँच।
सदा सुरक्षित वह रहे, कभी न आवे आँच॥

हारी-वीमारी है, मौत-गमी है, अकस्मात् कोई दुर्घटना हो जाती है, बच्चों की शिक्षा-दीक्षा है, विवाह अथवा मंगल कार्य है—इन सब आने वाले 'सु' और 'कु' अवसरों पर सरलतापूर्वक विजय पाने के लिए आवश्यक है कि आपने कुछ बचत करके पैसा इकट्ठा किया हो।

यदि आपके पास पैसा न होगा तो आने वाले कल के अच्छे और बुरे अवसरों पर आप दूसरों का मुँह ताकते रह जाएँगे। किस्मत को कोसेंगे। इधर-उधर से कर्ज उठाने के लिए दस के आगे नाक रगड़ेंगे। अपमानित होंगे। ब्याज का बोझ सिर पर उठाएँगे। मूल और सूद चुकाने के लिए विवशतावश घर के बजट में कटौती करेंगे। बजट में कटौती से घर में कलह होगी। जीवन नरक बन जाएगा। बचत के सम्बन्ध में किसी कवि की ये पंक्तियाँ मानव के लिए उचित चेतावनी हैं—

सकल धन संग्रह करै, आवे कोई दिन काम।
समय परे पै ना मिले, माटी खर्चे दाम॥

इसी प्रकार सावधानी बरतने के लिए श्री मैथिलीशरण गुप्त कहते हैं—

मितव्ययी हो, कृपण न आर्य।
नहीं अपव्यय है औदार्य॥

अत: जो बचत कल विवशतावश करनी है, वह यदि आज ही से आरम्भ करें, तो कल निश्चिय ही सुखमय होगा, उन्नत होगा, आनन्दमय होगा।

आज के युग में बचत की प्रवृत्ति न केवल व्यक्ति के लिए लाभप्रद है, देश के विकास और खुशहाली का माध्यम भी है। ज्यादा खर्च करना वस्तुओं की माँग बढ़ाना है। माँग से व्यापारी-वर्ग में संग्रह की प्रवृत्ति बढ़ेगी। संग्रह की प्रवृत्ति से बाजार में वस्तुओं की प्राप्ति में कठिनाई होगी। इस प्रकार आपकी माँग महँगाई को निमंत्रित करेगी, जो जन का अहित कर राष्ट्र की अर्थव्यवस्था पर कुप्रभाव डालेगी।

अत: भारत-सरकार बचत के लिए युद्ध-स्तर पर कार्य कर रही है। दैनन्दिन रेडियो, टेलीविजन, इन्टरनेट और समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं में विज्ञापन द्वारा जनता में बचत की प्रवृत्ति बढ़ा रही है। भारतीय यूनिट ट्रस्ट, आई.सी.आई.सी.आई., जीवन बीमा निगम, डाक घर; बैंक तथा सहकारी बैंक, नॉन बैंकिग फाइनेंशल कम्पनीज आदि राजकीय तथा सार्वजनिक संस्थाएं अपनी अनेक बचत योजनाओं के लिए द्वारा जनता में बचत प्रवृत्ति

को प्रोत्साहन दे रही हैं। कार्यालयों में काम करने वाले सभी वर्गों के कर्मचारियों तथा औद्योगिक संस्थानों में काम करने वाले श्रमिकों के लिए 'भविष्य-निधि' योजना बचत का अनिवार्य रूप है।

जीवन बीमा योजना में बचत से एक महत्त्वपूर्ण लाभ और भी है। इस योजना के अन्तर्गत आपने चाहे एक या दो ही किश्तें दी हों, आपकी यदि मृत्यु हो जाती है तो बीमा-राशि का पूरा धन आपके परिवार को मिलेगा। यह राशि परिवार की आर्थिक-मुक्ति में सहायक सिद्ध होगी।

इसी प्रकार की अन्य अनेक योजनाओं द्वारा बचत करके हम अपना भविष्य उज्ज्वल बना सकते हैं। अत: मानव को आज बचत करके अपने कल को सुखमय बनाना चहिए। कहा भी गया है—'सञ्चयी नावसीदति।' अर्थात् संचय करने वाला कभी दु:खी नहीं रहता।

(156) आलस्य : सबसे बड़ा शत्रु

संकेत बिंदु—(1) मानसिक और शारीरिक शिथिलता (2) राक्षसीवृति की पहचान (3) मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु (4) साहित्यकारों की दृष्टि में आलस्य (5) उपसंहार।

ऐसी मानसिक या शारीरिक शिथिलता जिसके कारण किसी काम को करने में मन नहीं लगता, आलस्य है। तन-मन की उत्साह हीनता आलस्य है। प्रयत्न और परिश्रम से जी चुराना आलस्य है।

अब देखना है कि आलस्य सबसे बड़ा शत्रु क्यों है ? आलस्य दु:ख, दारिद्र्य, रोग-शोक, पराजय-पराभव, परावलम्बन-परतंत्रता, अगति-अवनति का जनक है। आलस्य सरल कार्य को कठिन, ग्राह्य को अग्राह्य, सुलभ को दुर्लभ तथा सफल को असफल बना देता है। आलस्य के रहते प्रज्ञा विकास तथा ज्ञानवर्धन का प्रश्न ही नहीं उठता। कार्लाइल का कहना है, 'एक-मात्र आलस्य में ही निरन्तर निराशा रहती है।' स्परजन का विचार है, 'आलस्य सारे अवगुणों की जड़ है।' संत तिरुवल्लुवर की मान्यता है, 'आलस्य में दरिद्रता का वास है।' शायद इसीलिए भर्तृहरि ने नीतिशतक (श्लोक 87) में लिखा है, 'आलस्यो हि मनुष्याणां शरीरस्थो महा रिपु:।' अर्थात् आलस्य मनुष्य के शरीर में रहने वाला घोर शत्रु है। आलसियों का सिद्धान्त है—

मर जाना पै उठके, कहीं जाना नहीं अच्छा।
उमरा को हाथ-पैर, चलाना नहीं अच्छा।
फाकों से मरिए पर, न कोई काम कीजिए।
सिजदे से गर बहिश्त मिले, दूर कीजिए।

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (नाटकावली)

सन्त मलूकदास भी कहते हैं, ***'अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम। दास मलूका कह गये सबके दाता राम।'*** पर जरा सोचिए अजगर पड़े-पड़े मिट्टी ही तो खाता रहता है;

इसलिए उसका जीवन धूल चाटता है। पर कौन कहता है 'पंछी करे न काम ?' उषाकाल में ही सदैव उठकर चहचहाना क्या आलस्य को ढकेलना नहीं ? दाने-दाने को चुगकर खाते हुए फुदकते फिरना स्फूर्ति के झूले में झूलना नहीं तो क्या है ? फल-मूलादि खाकर जीवन की संतुष्टि क्या ऋषि-जीवन की सात्त्विकता से कम है ?

आलस्य राक्षसीवृत्ति की पहचान है। 'कुम्भकर्णी निद्रा' कहावत इसीलिए बनी। इसीलिए जीवन में दैत्य सदा पराजित रहे। कुम्भकर्ण, मेघनाद, रावण न केवल पराजित हुए, मारे भी गए। अर्जुन 'गुडाकेश' था। उसने निद्रा (अर्थात् आलस्य) को अपने वशीभूत कर रखा था। जब श्री राम और भगवती सीता वन में विश्राम करते थे तो लक्ष्मण धनुषबाण चढ़ाए, वीरासन पर बैठे उद्ग्रीव दृष्टिगोचर होते थे।

स्वास्थ्य के लिए प्रातःकाल की शुद्ध वायु परम आवश्यक है। पर आलसी अपनी चारपाई पर पड़ा रहता है और प्रातः की पावन पवन से वंचित रह जाता है ! भ्रमण और व्यायाम के अभाव में रोगग्रस्त हो जाता है। समय पर कार्य न करने से फिसड्डी रह जाता है। आलसी कर्मचारी दफ्तर में मक्खियाँ मारता है और कर्मयोगी उसी का बॉस बन जाता है। आलसी विद्यार्थी परीक्षा में अनुत्तीर्ण होता है तो उद्यमी छात्र सफलता को गले लगाता है। इस प्रकार आलस्य मनुष्य का शत्रु बन उसकी प्रगति या उन्नति का अवरोधक बनता है।

आलस्य मनुष्य का शत्रु बन उसकी इच्छा-शक्ति का ह्रास करता है। इच्छा-शक्ति का ह्रास मन के विश्वास को डगमगा देता है। आलसी को छोटे-से-छोटा काम भी पहाड़-सा लगता है। वह भाग्यवादी बन जाता है। वह नहीं सोचता, 'न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः।' अर्थात् सिंह जैसे पुरुषार्थी के मुँह में पशु स्वयमेव भक्ष्य बनकर नहीं प्रविष्ट होते। वह भूल जाता है कि देवता भी आलसी से प्रेम नहीं करते। (न सुप्ताय स्पृहयन्ति देवा : ऋग्वेद)

महादेवी कहती हैं, 'जीवन जागरण है, सुषुप्ति नहीं, उत्थान है, पतन नहीं। पृथ्वी के तमसाच्छन्न अंधकारमय पथ से गुजर कर दिव्य-ज्योति से साक्षात्कार करना है।' श्री कृष्ण के कर्मयोग का उपदेश महान् शत्रु आलस्य पर विजय की पताका फहराना है।

डॉ. जानसन इस शत्रु के मर्दन का उपाय बताते हैं, 'यदि आप आलसी हैं तो अकेले मत रहिए, यदि आप अकेले हैं तो आलसी मत बनिए।'

पर साहब, कवियों ने तो इस अलसता में भी जीवन देखा है—

प्राची के अरुण मुकुर में सुन्दर प्रतिबिम्ब तुम्हारा।
उस अलस उषा में देखूँ, अपनी आँखों का तारा॥ (प्रसाद : आँसू)

× × × ×

नक्षत्र कुमुद की अलस माल।
वह शिथिल हँसी का सजल जाल।
जिसमें खिल खुलते किरण पात॥ *(प्रसाद : लहर)*

पर कवियों की कल्पना को छोड़ आलस्य-शत्रु को दूर भगाइए और उद्यम में लग जाइए। क्योंकि '**नास्त्युद्यमसमो बन्धुः कृत्वा यं नावसीदति**' अर्थात् उद्यम के समान कोई हितचिन्तक बन्धु अन्य नहीं है। उद्यम करने से मनुष्य दुःखी नहीं होता।

(157) एकता में बल है

संकेत बिंदु—(1) उद्देश्य और विचार में एकता (2) एकता और बल के उदाहरण (3) विभिन्न संगठन एकता के प्रतीक (4) एकता के अभाव के कारण देश गुलाम (5) उपसंहार।

एक होने की अवस्था या भाव एकता है। उद्देश्य, विचार आदि में सब लोगों का मिलकर एक होना एकता है। एक के लिए सब और एक सबके लिए एक, एकता की पहचान है।

अथर्ववेद एकता की पहचान कराते हुए लिखता—'समानो मंत्रः समितिः समानी। समानं व्रतं सहचित्तमेषाम्।' तुम्हारे विचार, तुम्हारी समिति, तुम्हारे कर्म और तुम्हारे मन समान हों।'सं वः पृच्यन्तां तन्वः मनांसि समुव्रता।' तुम्हारे शरीर मिले रहें, तुम्हारे मन मिले रहें और तुम्हारे कर्म भी परस्पर मिल-जुल कर होते रहें। (6/74/1)

जलती हुई लकड़ियाँ अलग-अलग होने पर धुआँ फेंकती हैं और एक साथ होने पर प्रज्वलित हो उठती हैं। पानी की एक बूँद यदि आग में पड़ जाए तो अपना अस्तित्व खो बैठती है, पर यदि हजारों बूँदें मिलकर आग पर पड़ें तो उसे बुझा देती है। तुच्छ फूस के तिनकों से बनी रस्सी से प्रबल हाथी बंध जाते हैं और शेर भीगी बिल्ली बन जाता है। बालू रेत और सीमेंट के कण की क्या सत्ता? परन्तु एकता के प्रभाव से बनी दीवार चट्टान के तरह अटूट हो जाती है। कहना असंगत न होगा, यदि चिड़ियाँ एका कर लें तो शेर की खाल खींच सकती हैं। एक चींटी एक फूँक में हनुमान्-कूद का स्वाद लेती है, पर वे सब मिलकर आक्रमण करें तो विषधर भी दम तोड़ देता है।

हाथ की पाँच उंगलियाँ 'एकता में बल है' का प्रमाण हैं। कोई छोटी है, कोई बड़ी—सभी असमान। लेकिन हाथ से किसी चीज को उठाना है तो पाँचों इकट्ठा होकर उठाती हैं। इस प्रकार पाँचों उँगलियों के सहयोग से हाथ काम करता है। इसमें से एक भी छूट जाए अथवा असहयोग कर बैठे तो कार्य में बाधा पड़ती है।

विचार और उद्देश्य की एकता के कारण आज इस्लाम धर्म विश्व पर शासन करता है। कुरान पर अगाध श्रद्धा उसका बल है। धर्म, धर्म-ग्रंथों तथा पैगम्बरों के प्रति आलोचकों के मुँह पर ताले लगाकर, उन्हें आतंकित कर, वश में रखने में उनकी एकता प्रकट होती है। 'द सेटेनिक वर्सेज' के विरुद्ध सलमान रुश्दी को मौत का फरमान सुनाना, 'मुहम्मद' नामक कहानी के बाल नायक को लेकर कर्णाटक में उथल-पुथल मचाना, मुस्लिम

महिलाओं के लिए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को राजीव सरकार से बदलवाना मुस्लिम समुदाय की एकता के मुँह बोलते उदाहरण हैं।

विभिन्न संगठन 'एकता में बल' के प्रतीक हैं। मजदूर एकता संगठन, बैंक कर्मचारी एकता संगठन, राजकीय कर्मचारी एकता संगठन, रेल पॉर्टर, चालक, स्टॉफ संगठन, वाहन कर्मचारी एकता संगठन आदि इतने शक्तिशाली संगठन हैं कि जो जब चाहें संसार की गति को रोक सकते हैं। पहिया जाम करके यातायात को अवरुद्ध कर सकते हैं। बैंक में हड़ताल करके एक दिन के करोड़ों रुपए के लेन-देन पर विराम-चिह्न लगा सकते हैं।

एक ओर संयुक्त राष्ट्र-संघ विश्व शक्तियों की एकता का परिचायक है तो दूसरी ओर विश्व के सौ तटस्थ राष्ट्रों की अपनी शक्ति है। अफ्रीकी राष्ट्र एकता के बल पर विश्व को आकर्षित कर रहे हैं, तो ब्रिटिश-किंगडम के राष्ट्र अपने ऐक्य से लाभान्वित हो रहे हैं।

जिस परिवार, समाज, दल या राष्ट्र में लोग अपना-अपना राग आलापेंगे, अपनी डेढ़ ईंट की मस्जिद अलग-अलग बनायेंगे, अपने स्वार्थ-वश भेद बुद्धि पैदा करेंगे, तो निश्चय ही वहाँ अकेला चला भाड़ नहीं फोड़ सकेगा। एकता के अभाव और पारस्परिक फूट के कारण सदा ही हानि उठानी पड़ती है। भारतेन्दु बाबू ने सच कहा है—

जग में घर की फूट बुरी
घर की फूट से बिनसाई सुबरन लंक पुरी।
फूटहि सो जयचन्द बुलायो, यवनन भारत धाम,
ताको फल अब लौं भोगत, सब आरज होई गुलाम।

हिन्दू राजा--महाराजाओं की फूट के परिणामस्वरूप देश यवनों का गुलाम बना। मुगल बादशाहों की फूट के कारण, देश पर मुट्ठी पर अंग्रेजों का राज्य हो गया। विपक्ष की फूट के कारण कांग्रेस चार शताब्दी तक भारत पर निरंकुश राज्य करती रही। सृष्टि का आदिम, सभ्य, सुसंस्कृत तथा सम्पन्न हिन्दू-धर्म फूट के कारण निरन्तर पराजय और प्रतिगति के कारण ह्रासमान है। हिन्दू-धर्म की सांस्कृतिक-एकता भी बलहीन होकर इतिहास के पृष्ठों में समा गई है।

महाभारत में वेदव्यास जी कहते हैं,

न वै भिन्ना जातु चरन्ति धर्मं। न वै सुखं प्राप्नुवन्तीह भिन्ना।
न वै भिन्ना गौरवं प्राप्नुवन्ति। न वै भिन्ना प्रशमं रोचयन्ति॥

(उद्योग पर्व : 36/56)

'जो परस्पर भेद-भाव रखते हैं, वे कभी धर्म का आचरण नहीं करते। वे सुख भी नहीं पाते। उन्हें गौरव प्राप्त नहीं होता तथा उन्हें शांति की वार्ता भी नहीं सुहाती।'

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की मान्यता है कि 'भेद और विरोध ऊपरी हैं। भीतर मनुष्य एक है। इस एक को दृढ़ता के साथ पहचानने का प्रयत्न कीजिए। जो लोग भेदभाव को पकड़कर ही अपना रास्ता निकालना चाहते हैं, वे गलती करते हैं।' (अशोक के फूल)

हरिकृष्ण 'प्रेमी' तो एकता के बल में विश्वास प्रकट करते हुए कहते हैं—'वे सब, जिन्हें समाज घृणा की दृष्टि से देखता है, अपनी शक्तियों को एकत्र करें तो इन महाप्रभुओं और उच्च वंशाभिमानियों का अभिमान चूर कर सकते हैं।' (प्रतिशोध)

सरदार पटेल कहते हैं, 'अब जात-पाँत, ऊँच-नीच तथा सम्प्रदाय के भेदभाव भूलकर सब एक हो जाओ। मेल रखिए और निडर बनिए।'

यदि मानव मन में एक के लिए सब और सबके लिए एक की भावना उदित हो जाए तो वह व्यक्ति हो या परिवार, समाज हो या राष्ट्र, गर्व और गौरव से उन्नत भाल होकर जीवन को सुन्दरता से जी सकेगा। जीवन के सुखों को भोग सकेगा।

(158) औरों को हँसते देखो मनु / हँसो और सुख पाओ।

संकेत बिंदु—(1) व्यक्तिगत स्वार्थ मनुष्य का विनाशक (2) कवि प्रसाद का उदाहरण (3) अशांत मन जीवन के लिए अभिशाप (4) वैमनस्य ज्ञान का दम्भ (5) सुख-प्राप्ति के रहस्य।

प्रसाद जी की कामायनी का मनु जीवन में वैयक्तिक सुख को सर्वोपरि मानते हुए श्रद्धा से कहता है, 'क्या संसार में वैयक्तिक सुख तुच्छ है? इस क्षणिक जीवन के लिए तो यह अपना सुख ही सब कुछ है।' इस पर श्रद्धा कहती है, 'व्यक्ति को सुख प्राप्त करना चाहिए, किन्तु सब कुछ अपने में ही सीमित करके कोई व्यक्ति कैसे सुख पा सकता है? यह एकांत स्वार्थ तो अत्यन्त भयंकर है। व्यक्तिगत स्वार्थ मनुष्य का विनाशक है, उससे कभी किसी का विकास नहीं होता। जीवन को सुखी बनाने का सर्वश्रेष्ठ ढंग यह है—

औरो को हँसते देखो मनु / हँसो और सुख पाओ।
अपने सुख को विस्तृत कर लो / सबको सुखी बनाओ॥

(कामायनी : कर्म सर्ग)

हे मनु! संसार में अपने जीवन को सुखमय बनाने की शैली यह है कि तुम ऐसे कार्य करो, जिससे दूसरे प्रसन्न हों तथा तुम्हें भी प्रसन्नता प्राप्त हो और इस प्रसन्नता से तुम्हें भी सुख मिलेगा। इस प्रकार निरन्तर सत्कर्म करते हुए दूसरों को प्रसन्न बनाते हुए तुम अपने सुख का विस्तार करो और संसार के दूसरे प्राणियों को भी सुखी बनाने का प्रयत्न करो।

व्यक्ति और समाज के संबंधों के विषय में प्रसाद जी की स्पष्ट धारणा है कि व्यक्ति समाज का अंग है। समाज के कल्याण के बिना व्यक्ति-कल्याण की कल्पना ही नहीं की जा सकती। मनुष्य का कर्तव्य है कि अपने 'मैं' का विस्तार कर समाज के 'हम' में विलीन कर दे।

पुष्पकली का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए प्रसाद जी लिखते हैं—'यदि किसी उपवन

की समस्त अविकसित कलियाँ सारी सुगन्ध को अपनी पंखुड़ियाँ में ही बन्द करके पड़ी रहें और विकसित होकर मधुर-मकरंद की बूँदों से तनिक भी सरस न हों तो वे मुरझाकर पृथ्वी पर गिर जाएंगी। इस प्रकार वे सुगंधानुभूति से न केवल स्वयं वंचित रहेंगी, अपितु वातावरण को भी सुगंधित नहीं कर पाएंगी। पृथ्वी पर सर्वत्र फैलकर आनन्द और हर्ष बढ़ाने वाली मधुर सुगंध कहीं भी नहीं मिल सकेगी। इसी प्रकार जो मनुष्य समस्त सुखों को अपने तक सीमित करके पड़ा रहेगा, वह न तो स्वयं सुखी रह पाएगा और न उसके इस कार्य में दूसरों को सुख मिलेगा। हाँ, कलियों की भाँति मुरझाकर, दुःखी होकर इसी संसार में विलीन हो जाएगा।'

दूसरी ओर, यदि व्यक्ति समस्त फूलों को संग्रहीत कर एकांत में बैठकर सुगंध का आनन्द लेना चाहे और शेष फूलों का विकास अवरुद्ध हो जाए तो वह क्षणिक सुख तो प्राप्त कर सकता है, निरन्तर या सदैव सुख नहीं। इसी प्रकार मनुष्य दूसरों के सुख की उपेक्षा कर समस्त सुखों का एकांत में बैठकर सुख भोगना चाहे तो दूसरों की प्रसन्नता नष्ट हो जाएगी। वे सुखी नहीं रह सकेंगे। उनकी पीड़ा और व्यथा के कारण व्यक्ति का एकांत-सुख भी सुख न रहेगा।

समस्त प्राणी प्रसन्न रहें, दूसरों पर भी स्नेह रखें, समस्त प्राणियों का कल्याण हो, सभी निर्भय हों। किसी को कोई भी शारीरिक या मानसिक कष्ट न हो। समस्त प्राणी सबके प्रति मित्रभाव के पोषक हों। जो मुझसे प्रेम करता है, उसका संसार में सदा कल्याण हो और जो मेरे प्रति द्वेष रखता है, उसका भी सदा कल्याण ही हो।' इसके विपरीत औरों को हँसते देखकर, सुखी और प्रसन्न देखकर यदि मानव ईर्ष्या और द्वेष करेगा, वैमनस्य पालेगा, कुढ़ेगा-जलेगा तो मन में चाहे वह प्रसन्न हो ले, किन्तु यह क्षणिक सुख स्वयं के जीवन को क्षतिग्रस्त करेगा। मन को अशांत करेगा। रात की नींद उड़ाएगा और दिन की कार्यशीलता खंडित करेगा। अशांत मन जीवन के लिए अभिशाप है।

स्वेट मार्टेन की धारणा है, 'मानव-मन में द्वेष जैसी भयंकरता उत्पन्न करता है, वैसी कोई दूसरी वस्तु नहीं करती।' विदुर जी का मत है, 'जिनका हृदय द्वेष की आग में जलता है, उन्हें रात में नींद नहीं आती।' वेदव्यास जी का कहना है कि 'द्वेषी को मृत्यु-तुल्य कष्ट भोगना पड़ता है।'

वैमनस्य ज्ञान का दम्भ है। कुलनाश के लिए बिना लोहे का शस्त्र है। वैमनस्य करने वाले व्यक्ति क्रोध में क्या-क्या नहीं कर डालते। इसलिए धम्मपद उपदेश देता है, 'यहाँ संसार में वैमनस्य से वैर कभी शांत नहीं होता, अवैर से ही शांत होता है, यही सनातन धर्म है।' अतः हे मानव! अपने को प्रसन्न और सुखी रखने के लिए दूसरों के प्रति वैर-भाव को तिलांजलि दे।

इसलिए दूसरों के प्रति कुत्सित भावना त्याग कर अपने 'अहं' को, 'मैं और मेरे पन' के भाव को समाज में विसर्जित कर दे, 'हम' में विलीन कर दे। इस प्रकार प्रसाद जी नितान्त 'अहं' मूलक वैयक्तिकता का निषेध और स्वस्थ सामाजिकता का समर्थन कर रहे हैं।

इस प्रकार प्रसाद जी ने सुख-प्राप्ति के रहस्य को प्रकट किया है। दूसरों को सुखी-सम्पन्न देखकर ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य न करो, उल्टा उनके आनन्द-प्रसन्नता, हर्षोल्लास में तुम भी उनका साथ दो। उनकी प्रसन्नता से अपने चेहरे को खिलाओ। इस प्रकार जब तुम्हारा सुख दूसरों के साथ 'शेयर' (सहभागिता) करेगा तो निश्चय ही तुम्हारा सुख बढ़ेगा। यदि कहीं दुःख-दैन्य, कष्ट-पीड़ा, निराशा-हताशा है तो तुम उसमें भी उनका साथ दो। तुम्हारी हँसी उनकी व्यथित मानसिकता को स्वस्थ करेगी और जन-जन को सुखी बनाएगी।

इस विधि सुख प्राप्ति का व्यक्तिगत लाभ यह होगा, *'संगीत मनोहर उठता, मुरली बजती जीवन की।'* सामाजिक दृष्टि से *'प्रतिफलित हुई सब आँखें, उस प्रेम ज्योति विमला से'* की परिणति होगी। विश्वबंधुत्व की दृष्टि से, *'चेतना एक विलसती, आनन्द अखंड घना था'* का वातावरण बनेगा। और प्रकृति भी प्रसन्न होगी।

मांसल-सी आज हुई थी, हिमवती प्रकृति पाषाणी।
उस लास रास में विह्वल, थी हँसती-सी कल्याणी।।

(कामायनी : आनन्द सर्ग)

(159) करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान

संकेत बिंदु—(1) अभ्यास से मूर्ख भी ज्ञानी और सिद्ध (2) चित्तवृतियों का निरोध (3) अभ्यास से प्रतिभा उत्पन्न (4) अभ्यास के द्वारा अनेक महान विभूतियों का जन्म (5) अभ्यास सिद्धि का साधन और विकास का मार्ग।

निरन्तर अभ्यास से मूर्ख, अनाड़ी तथा असिद्ध व्यक्ति भी समझदार, चतुर, कुशल, निपुण, सिद्ध, प्रवीण तथा सुविज्ञ बन जाता है। बार-बार रस्सी के आने-जाने से कठोर शिला पर निशान पड़ जाते हैं। निरन्तर रगड़ने पर काठ से अग्नि उत्पन्न हो जाती है। निरन्तर तीव्र गति से बहने वाली नदियाँ चट्टानों को भी तोड़ डालती हैं। निरन्तर पृथ्वी खोदने से जल मिल जाता है। बट्टे की रगड़ से पत्थर की सिल भी चिकनी हो जाती है। पाषाण धीरे-धीरे घिस कर चूर्ण बन जाता है। कूदते-कूदते आदमी नचनिया हो जाता है। धौंकनी से धधक-धधक कर काला कोयला भी धीरे-धीरे लाल अंगारा बन जाता है। ऐसे ही जो सुजान हैं, वे अभ्यास से विषय-विशेष में पारंगत हो जाते हैं। जो पारंगत हैं वे कलाकार बन जाते हैं। जो कलाकार हैं, वे सिद्ध गुरु की दीप्ति से दमक उठते हैं।

अभ्यास से चित्तवृत्तियों का निरोध होता है। चंचल मन वश में होता है। (अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते : गीता 6/35) चित्तवृत्तियों के निरोध से मन वश में होकर अभ्यास में प्रवृत्त होता है, जिससे आत्मबल प्राप्त होता है। आत्मबल की प्राप्ति सफलता की परिचायक है। जड़मति के सुजान होने की साक्षी है।

योगवासिष्ठ कहता है, 'निरन्तर अभ्यास से किसी विषय का अज्ञ उस विषय का ज्ञाता हो जाता है।' बोधिचर्यावतार में कहा गया है, 'कोई ऐसी वस्तु नहीं, जो अभ्यास करने

पर दुष्कर है।' बेकन कहते हैं, 'मनुष्य मात्र में बुद्धिगत ऐसा कोई दोष नहीं है, जिसका प्रतिकार उचित अभ्यास के द्वारा न हो सकता हो।' संत ज्ञानेश्वर कहते हैं, 'अभ्यास से कुछ भी सर्वथा दुष्प्राप्य नहीं है।' संत तुकाराम की धारणा है, 'अभ्यास के बिना साध्य की प्राप्ति हो, यह संभव नहीं है।'

अभ्यास कभी निरर्थक नहीं जाता, निष्फल नहीं होता। कारण, अभ्यास से प्रतिभा उत्पन्न होती है। बोपदेव संस्कृत और प्राकृत के बहुत बड़े विद्वान् हुए हैं। उनका संस्कृत और प्राकृत का तुलनात्मक व्याकरण 'प्राकृत सर्वस्वसार' महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। वे आरम्भ में निरे मूर्ख थे। पढ़ने में मन नहीं लगता था। गायें चराते थे। एक दिन कुएँ पर मिट्टी के घड़े द्वारा पत्थर पर पड़े गड्ढे को देखकर उन्हें प्रेरणा मिली। वे पढ़ाई में लग गए। परिणामस्वरूप वे परम विद्वान् हुए। कालिदास की कहानी कौन नहीं जानता? जिस डाल पर बैठे थे, उसी को काट रहे थे। विदुषी पत्नी ने उनकी मूर्खता को जानकर उन्हें घर से बाहर निकाल दिया। आगे चलकर अभ्यास और परिश्रम के द्वारा वे संस्कृत के श्रेष्ठ कवि और नाटककार बने। महर्षि वाल्मीकि पहले रत्नाकर नामक व्याध थे, पर ऐसी साधना की कि उनके शरीर पर मिट्टी एकत्रित हो गई, उनमें दीमकों ने बिल बना ली। वे वाल्मीकि बनकर राम-कथा के प्रणेता और आदि कवि बने। भील बालक एकलव्य निरन्तर अभ्यास से अर्जुन से भी श्रेष्ठ धनुर्धर बन गया।

प्राचीन काल में लोग इष्ट सिद्धि के लिए तप किया करते थे। तप क्या है? मन को वश में करके सिद्धि की ओर एकाग्र करना। यह अभ्यास का ही पर्याय है। निरन्तर अभ्यास का परिणाम था कि लंकापति राक्षसराज रावण को ब्रह्मा जी से वरदान प्राप्त हुआ। धर्नुधर अर्जुन देवराज इन्द्र से अमोघ अस्त्र ले आया। भीष्म पितामह ने भी अभ्यास साधना से ही मृत्यु को अपनी इच्छा का दास बना लिया था।

निरन्तर अभ्यास नीरस नहीं होता। एकाग्र-चित्तता से अभ्यास कभी उकताहट पैदा नहीं करता। अभ्यास तो आनन्द का स्रोत है। न्यूटन सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक हुआ है। वह अपने प्रयोग में तल्लीन रहता था, उसकी नौकरानी खाना रख जाती थी। एक दिन उसके खाने को कुत्ता खा गया, जब वह भोजन करने गया तो प्लेट पर कुछ हड्डियाँ मात्र थीं। उसने समझा कि उसने पहले ही खा लिया है। वह फिर काम पर लग गया। इसी का नाम है लगन, यही है विद्याभ्यास।

शिक्षा और कला, दो ऐसी विद्याएँ हैं, जिनके दरबार का प्रहरी बड़ा कठोर है। बिना सतत अभ्यास का प्रवेश-पत्र देखे वह किसी को भीतर घुसने नहीं देता। तुमने अध्ययन और अभ्यास किया है तो कला के भंडार से मोती चुनने देगा, अन्यथा धक्का देकर बाहर निकाल देगा। लता मंगेशकर अभ्यास के बल पर विश्व प्रसिद्ध गायिका बनीं। पी.टी. उषा श्रेष्ठ धाविका बनीं। सोमा दत्त तीरंदाज बनीं। राजकपूर भारत का सबसे बड़ा 'शोमैन' बना। शंकराचार्य 16 वर्ष की अल्पायु में वेद-शास्त्रों के पंडित बने। स्लेट पर काव्य-रचना कर-करके मिटाने वाला युवक मैथिलीशरण गुप्त भारत का राष्ट्रकवि बना।

मनु स्मृति कहती है—'बार-बार कार्य नष्ट होने पर भी कार्य को बार-बार करता रहे, क्योंकि निरंतर करने वाले को विजयश्री निश्चित ही मिलती है।' कन्फ्यूशस कहते हैं, 'हमारा महान् गौरव कभी न गिरने में नहीं, अपितु जब भी गिरें हर बार उठने में है।' संत तिरुवल्लुवर का कथन है, 'सौभाग्य न होना किसी के लिए दोष नहीं है। समझकर सतत प्रयत्न न करना ही दोष है।'

संसार के महापुरुषों, वैज्ञानिकों, तपस्वियों की उपलब्धियाँ और सफलताएँ उनके सतत अभ्यास का ही सुपरिणाम हैं। केवल मनोरथ से सिद्धि प्राप्त होती तो सोते हुए सिंह के मुँह में मृग स्वयमेव प्रवेश कर जाता। विलिएम एडवर्ड हिक्सन की कविता है—

It as first don't succeed
Try-try-try again.

अभ्यास सिद्धि का साधन है। यह विकास का मार्ग प्रशस्त करता है। सुप्त प्रतिभा जाग्रत करता है। श्री और ऐश्वर्य की प्राप्ति करवाता है। यश का मुकुट बाँधता है। अत: निरन्तर अभ्यास करते जाओ। इसलिए तो कहा गया है—

करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात तैं सिल पर परत निसान॥

(160) कर्म फले तो सब फले

संकेत बिंदु—(1) सूक्ति का भावार्थ (2) कर्म का फल अवश्य मिलता है। (3) पाप और पुण्य कर्म बीज के प्रकार (4) महापुरुषों के कर्म फल का विश्व को लाभ (5) उपसंहार।

'कर्म फले तो सब फले' सूक्ति का भाव है—किसी काम या बात का शुभ परिणाम प्रकट होगा तो उससे सम्बन्धित सभी अंग, अंश, लाभान्वित होंगे। यदि हमारे कर्म उपयोगी और लाभदायक सिद्ध होंगे (फले) तो उससे सभी सफल मनोरथ होंगे। हमारे कर्म सार्थक होंगे, तभी हमारी इच्छा या कामना पूर्ण होगी। धार्मिक कृत्यों का अनुष्ठान (कर्मकाण्ड) यदि शुभ होगा तो उससे जीवन फलेगा, फूलेगा। पूर्वजन्म के लिए कर्मों का फल (कर्म) जब शुभ-फल देगा तो शरीर और आत्मा सम्पूर्ण रूप में लाभान्वित होंगे। धंधा अर्थात् व्यवसाय (कर्म) जब उन्नति करेगा तो उसके लाभ से सम्पूर्ण भागीदार (जन) अपना विकास करेंगे।

कर्म का फल अवश्य मिलता है। तुलसी इसका समर्थन करते हुए लिखते हैं, *'करई जो करम पाव फल सोई।'* वेदव्यास जी की धारणा है, *'कृतं फलति सर्वत्र नाकृतं भुज्यते क्वचित्।'* (सर्वत्र कर्म ही फल देता है. बिना किए कर्म का फल नहीं भोगा जाता।) अध्यात्मोपनिषद् इसका समर्थन करते हुए कहता है, 'ज्ञान का उदय होने पर भी प्रारब्धकर्म अपना फल बिना दिए नष्ट नहीं होता है, जैसे लक्ष्य को उद्दिष्ट कर छोड़ा गया बाण अपना फल बिना दिए नहीं रहता।'

एक व्यक्ति चौर्य-कर्म करता है, उसका फल उसे अवश्य मिलता है। पकड़े जाने पर पिटाई और कारावास, न पकड़े गये तो चुराई-सम्पत्ति का स्वामित्व। विद्यार्थी विद्यालय जाता है। वह पाठ पढ़ता है, अध्ययन करता है। उसका फल उसे मिलता है—ज्ञानवर्धन। यदि वह पढ़ने से जी चुराता है तो उसके फलस्वरूप उसे मिलती है—मूर्खता। शिवाजी ने औरंगजेब की जेल से भागने का कर्म किया, फल रूप में मिली स्वतंत्रता। बहादुरशाह 'जफर' ने पलायन में निष्क्रियता दिखाई तो फल मिला कारावास और दैन्य जीवन। इसलिए शेक्सपियर का कहना है, किए हुए कर्म को मिटाया नहीं जा सकता।' (What is done can not be undonc.) श्री हर्ष तो यहाँ तक कहते हैं, 'कर्म क: स्वकृतमत्र न भुंक्ते।' अर्थात् इस जगत् में कौन अपने कर्म का फल नहीं भोगता है ?

कर्म का फल निश्चित रूप से मिलता है, किन्तु वह फलेगा, शुभ फल देगा, कर्ता के लिए लाभदायक होगा ? उससे उसके मनोरथ सफल होंगे, यह निश्चित नहीं। जब वह फलेगा नहीं 'तो सब फले' की स्थिति आएगी नहीं। 'फल' का सिद्धान्त है, 'यथा बीजं तथा निष्पति: ' जैसा बीज वैसा फल। जैसा किया हुआ कर्म, वैसा ही उसका भोग। प्रसाद जी 'कामायनी' में स्वीकारते हैं, ***'कर्म का भोग, भोग का कर्म।'*** तुलसी ने प्रकारान्तर से यह कहा है— ***कठिन करम गति जान विधाता। सो शुभ-अशुभ सकल फल दाता।'*** रहीम तो प्रश्न कर उठे— ***'बोवे पेड़ बबूल का, आम कहाँ ते खाए।'***

कर्म-बीज दो प्रकार के हैं—पाप और पुण्य। जिस कार्य में निज आत्मा, समाज, राष्ट्र तथा मानवता का पतन हो, वह पाप है और जिन कार्यों से इन चारों का उत्थान हो, वह पुण्य है। पाप बीज में स्वार्थ होता है, अहंकार और अभिमान होता है और होता है मन में कालुष्य। इसलिए उसका फल विनाशकारी होता है, पतनकारी होता है। जबकि पुण्यबीज में मन का 'सब फलते' नहीं, पुण्य कर्म में 'सब फले' की शक्ति होती है। इस विवेचन से यह बात स्पष्ट हुई कि पुण्य कर्म ही फलते हैं और उसके फलने से सबको लाभ पहुँचता है। सबकी मन:कामना पूरी होती है।

भगवान् बुद्ध के कर्म-फले तो विश्व मानवता ने अहिंसा का प्रसाद पाकर अपने को धन्य समझा। आदि शंकराचार्य ने चार मठों की स्थापना का पुण्यकर्म किया तो हिन्दू-समाज फला-फूला। शिवाजी ने मदांध मुगल बादशाह औरंगजेब के विरोध का पुण्य कार्य किया तो हिन्दू पद पादशाही की स्थापना से हिन्दू-समाज गौरवान्वित हुआ। लाखों वीरों ने जेल-यातना के कष्ट सहकर तथा जीवन न्यौछावर करके जो पुण्य-कर्म किया, उसका फल सब भारतवासियों ने स्वाधीन होकर भोगा। महर्षि दयानन्द, स्वामी विवेकानंद, महर्षि अरविंद, राजा राममोहन राय ने समाज-सुधार का जो पुण्य-कर्म किया, उससे सम्पूर्ण हिन्दू समाज लाभान्वित हुआ। डॉ. हेडगेवार के पुण्य कर्मों का फल हिन्दू-समाज को राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ रूपी संगठित-शक्ति वरदान रूप में मिली, जिससे हिन्दू, हिन्दी, हिन्दुस्थान, तीनों फल रहे हैं।

वर्तमान काल 'कलियुग' का है। कलियुग में देवताओं में देवत्व नहीं रह गया। साधु-

जन भी कपट-पटु हो गए। लोग मिथ्यावादी हो गए। मेघ असमय बरसने और कम जल देने लगे। लोग नीचों का संग पसंद करने लगे। राजा दुष्ट हृदय के हो गए। लोग नष्ट-भ्रष्ट हो रहे हैं, फिर भी विश्व में 'सब फले' की सार्थकता दिखाई देती है। विज्ञान की कृपा से भौतिक सुखों के अंबार लगे हैं। तब यह कहना कि कलियुग में पाप फलता है, पुण्य निष्फल होता जा रहा है, कहाँ तक संगत है ?

भौतिक-सुख विज्ञान-कर्म की प्रसादी है। इसमें मानव-हित की कामना है, इसलिए यह पुण्य-कर्म है। ऐसे जन जिनके शोषण, पीड़न, व्यभिचार, बलात्कार तथा समाज-राष्ट्र-विरोधी कर्मों को हम पाप मानते हैं, उनको फलते-फूलते देखकर और उनके कारण सहस्रों-लाखों को लाभान्वित देखते हैं तो कहते हैं पाप भी फलता है। हम यह भूल जाते हैं कि अपने प्रारब्ध का फल भोगने के लिए उन्होंने यह जन्म मिला है। अपने संचित कर्म के कारण व श्रेष्ठी हैं, नेता हैं, विशिष्ट व्यक्ति हैं। उद्योगपति बनकर सहस्रों लोगों की रोजी-रोटी जुटाते हैं। नेता बनकर समाज, धर्म और देश का उत्थान कर रहे हैं। क्रियमाण कर्म (जो वर्तमान में करते हैं) उसका उनको दंड मिलता ही है। इन सबसे ऊपर पाप और पुण्य का निर्णय मन की भावना करती है। जिस प्रकार वक्ष से लगाते समय पत्नी और पुत्री में भावनान्तर रहता है, उसी प्रकार इन दुष्कर्मों के पीछे भी उनके मन की चेतना है। वे शोषण, पीड़न, व्यभिचार में भी जन-कल्याण के दर्शन करते हैं, क्योंकि उद्योग या समाज का संचालन साधुता से नहीं किया जा सकता।

कर्म वह है जो फले, निष्फल न रहे। उसी कर्म के फलने में सार्थकता है, जिससे सर्वहित हो, जिसमें 'सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे संतु निरामयाः' की कामना हो।

(161) कर्म ही पूजा है

संकेत बिंदु—(1) कर्म ही पूजा का अर्थ (2) कर्म का सम्बन्ध सभी प्राणियों से (3) कर्म सिद्धि और अमरतत्त्व का द्वार (4) मानव जीवन का लक्ष्य-मोक्ष प्राप्ति (5) कर्म ईश्वर का रूप।

जल, अक्षत, फल, गंध, पुष्प, धूप, दीप तथा नैवेद्य से देवताओं का अर्चन करना पूजा कहलाता है। इसी प्रकार देवी-देवताओं के प्रति विनय, श्रद्धा और समर्पण भाव प्रकट करने वाला कार्य भी पूजा है। सन्त महात्माओं का और गुरुजनों का अत्यधिक या यथेष्ट आदर-सत्कार पूजा है। यों तो पूजा के विविध अर्थ हैं, किन्तु लोक में किसी अधिकारी या कर्मचारी को प्रसन्न और संतुष्ट करने के लिए दिया जाने वाला कोई उपहार भी 'पूजा' कहा जाता है। किसी को मारने-पीटने या दंडित करने की क्रिया को भी व्यंग्य में 'पूजा' कहते हैं।

सूक्तिकार इन सबको नकारता हुआ कहता है, पूजा तो 'कर्म' करना ही है। 'ही'

निपात जोड़कर वह अपने कथन की दृढ़ता और निश्चितता सूचित करता है। 'कर्म ही' अर्थात् निश्चित रूप से 'कर्म' करना ही ईश्वर का अर्चन, पूजन है। सत्य साईं बाबा इसका समर्थन करते हुए कहते हैं, 'कर्म ही पूजा है और कर्तव्य-पालन भक्ति है।' अपनी 'प्रियतम' कविता में निराला जी पूजा अर्थात् ईश-स्मरण से अधिक कर्म को महत्त्व देते हैं। 'पुजारी, मन, पूजन और साधन' कविता में विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर कहते हैं—

'ध्यान पूजा को किनारे रख दे,
उनके साथ काम करते हुए पसीना बहने दे।'

अर्थात्, हे मानव! तू कर्ममय जीवन स्वीकार कर, उसमें ही तेरी मुक्ति है।

कर्म क्या है? जीवन की साधारण क्रिया या शरीर की चेष्टा कर्म है। प्राणियों के द्वारा पूर्व जन्मों में किए हुए ऐसे कार्य जिनका फल इस समय भोग रहा है और आगे चलकर भोगेगा, कर्म हैं। वे कार्य जिन्हें पूरा करना धार्मिक दृष्टि से कर्तव्य समझा जाता है, कर्म हैं। धार्मिक क्षेत्र में ऐसे कार्य जिन्हें करने का शास्त्रीय विधान हो, कर्म हैं। ऐसे सब कार्य जो किसी को स्वत: तथा स्वाभाविक रूप से सदा करने पड़ते हैं, कर्म हैं।

जैसे धूप और छाया नित्य-निरन्तर परस्पर सम्बद्ध हैं, वैसे ही कर्म सभी प्राणियों से सम्बद्ध है। यह पंच भौतिक शरीर कर्म के वश में है। कर्म शक्ति से संसार परिचालित होता है। कर्म के नियम के अनुसार सृष्टि की रचना होती है। कर्म के वशीभूत होकर जीव नाना योनियों में भ्रमण करता है। अत: बिना कर्म के मनुष्य जीवित ही नहीं रहता।

कर्म तप है। साक्षात् गुरु और परमेश्वर है। सिद्धि और अमृतत्व का द्वार है। विष्णु के सालोक्यादि चारों लोकों की प्राप्ति का साधन है। देवत्व, मनुष्यत्व, राजेन्द्रत्व, शिवत्व तथा गणेशत्व आदि कर्म के फलस्वरूप ही प्राप्त होते हैं। मुनीन्द्रता, तपस्विता, क्षत्रियत्व, वैश्यत्व, म्लेच्छत्व, जंगमत्व, शैलत्व, राक्षसत्व, किन्नरत्व, वृक्षत्व, पशुत्व, क्षुद्रजन्तुत्व, कृमित्व, दैत्यत्व, दानत्व तथा असुरत्व की प्राप्ति में भी कर्म ही प्रधान है। इसलिए भर्तृहरि कहते हैं—'**नमस्तेभ्य: कर्मेभ्यो विधिरपि न येभ्य: प्रभवति।**' अर्थात् हम उन कर्मों को नमस्कार करते हैं, जिन पर विधाता का भी वश नहीं चलता।

महाभारत के शांतिपर्व (12/16) में वेदव्यास जी कहते हैं 'अभिमानकृतं कर्मनैतत् फलवदुच्यते।' अर्थात् अभिमानपूर्वक किया गया कर्म सफल नहीं होता। पं. दीनानाथ 'दिनेश' जी के मतानुसार कर्म का तप तभी सिद्धि प्राप्त करेगा 'जब कर्मपन का अभिमान न आए, कर्म का बोझ मन और बुद्धि को न झुकाए, उमंग और उत्साह के हाथ-पैर न टूटें, प्रसन्नता न कुम्हलाए, आत्मा सदा हँसता-खेलता रहे और सर्वत्र आनन्दमय ब्रह्म का दर्शन हो।' विनोबा जी की धारणा तो यहाँ तक है, 'कोई भी कर्म जब इस भावना से किया जाता है कि वह परमेश्वर का है तो मामूली होने पर भी पवित्र बन जाता है।

(गीता प्रवचन, पृष्ठ 133)

महाकवि जयशंकर प्रसाद कर्म के लौकिक महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं—

कर्म का भोग, भोग का कर्म।
यही जड़ का चेतन आनन्द॥ (कामायनी : श्रद्धा सर्ग)

मानव जीवन का लक्ष्य है मोक्ष-प्राप्ति। सांसारिक आवागमन से मुक्ति। जीवन में सत्, चित् और आनन्द की प्राप्ति। इन सबके लिए मनुष्य ईश्वर की पूजा करता है, देवार्चन करता है। व्रत, तप और साधना से ईश्वर से एकात्मता स्थापित करता है। मंदिर, मठ, तीर्थ तथा पूज्य प्रतीकों के दर्शन कर कृतार्थता अनुभव करता है। यह तभी सम्भव है, जब उसमें 'कर्म' निहित हो। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के शब्दों में—

कर्महीनता मरण कर्म कौशल है जीवन।
सौरभ रहित सुमन समान है कर्महीन जन॥

स्व कर्तव्य या स्वधर्म रहित पूजन व्यर्थ है, निष्फल है। घायल, दुःख-दर्द, कष्ट-पीड़ा में पड़े या बूढ़े माता-पिता की सेवा-कर्म को त्याग, मन्दिर-मठ पूजन से परमेश्वर भी प्रसन्न होने वाले नहीं। बिना अध्ययन रूपी कर्म के केवल परमेश्वर-पूजा से परीक्षार्थी उत्तीर्ण होने वाला नहीं। नौकरी के समय में 'भजन' में समय बिताने से सेवा-निवृत्ति ही पल्ले पड़ेगी, पदोन्नति नहीं।

कर्म स्वतः ईश्वर रूप है। छोटे-से-छोटा कर्म भी परमात्मा को अर्पित पुष्प है। विनय, श्रद्धा, समर्पण आदि सद्गुणों का उद्गम है। जड़ जीवन में चेतनता का गुर है और है कर्म स्वतः परमेश्वर की उपासना, ईश की अर्चना और जगत्-नियंता की पूजा। इसीलिए अथर्ववेद का ऋषि कामना करता है, 'मेरी बुद्धि कर्मों की ओर अग्रसर हो।' यजुर्वेद का ऋषि, 'इस लौक में कर्म करते हुए सौ वर्ष तक जीवित रहने की कामना करता है।' (कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समाः)

वर्तमान वैज्ञानिक प्रगति तथा भौतिक समृद्धि का आधार कर्म रूप में प्रकृति की पूजा है। पूजा से प्रसन्न प्रकृति ने अपने गुप्त भंडार और सुख-समृद्धि के द्वार प्राणी मात्र के लिए खोल दिए। अतः कर्म रूपी ईश्वर की पूजा करके अपने जीवन में सत्, चित् और आनन्द की अजस्र स्रोतस्विनी प्रवाहित करनी चाहिए। इसी में जीवन का मंगलमय वरदान निहित है।

(162) कल करे सो आज कर, आज करे सो अब

संकेत बिंदु—(1) सूक्ति का अर्थ (2) गाँधी जी के शब्दों में (3) समय पर किए गए कार्य का महत्त्व (4) कबीर का कथन प्रासंगिक (5) उपसंहार।

'कल' अर्थात् आज के बाद या भविष्य में आने वाला कोई अनिश्चित दिन या समय। 'आज' अर्थात् जो दिन इस समय चल रहा है, उसी दिन। अब अर्थात् प्रस्तुत क्षण में, इस समय।

इस प्रकार इस सूक्ति का अर्थ हुआ—यदि (आपको) कोई काम करना है तो उसे

अनिश्चित दिन या समय के लिए मत टालो, बल्कि उस कार्य को उसी दिन कर लो, जिस दिन मन में विचार उत्पन्न हुआ हो। यदि किसी कार्य को आज करना है तो उसी क्षण करो, जिस क्षण वह विचार करने की बात मन में आई हो।

कबीर के इस विचार के विरोध में महात्मा गाँधी का कहना है, 'पुरुषार्थ परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाने में है।' बायरन (Byron) गाँधीजी की बात का समर्थन करते हुए कहता है, 'Men are the sport of circumstances, when the circumstances seem the sport of men.' अर्थात् मनुष्य परिस्थितियों की क्रीडा है, जबकि परिस्थितियाँ ही मनुष्य की क्रीडा मालूम पड़ती हैं। डिजराइली (Disraeli) का तो विश्वास है, 'Man is not the creature of cirumstances, cirumstances are the creatures of men.' अर्थात् मनुष्य परिस्थितियों का दास नहीं है, परिस्थितियाँ मनुष्य की दास हैं। आर्थर वेनेजली परिस्थितियों की मजाक उड़ाता हुआ कहता है, 'Being born in a stable does not make a man a horse.' अस्तबल में जन्म लेने से कोई मनुष्य घोड़ा नहीं हो जाता। विश्व के सभी महापुरुष विषम परिस्थितियों की अग्नि-परीक्षा में तपकर ही कुन्दन बने हैं।

अत: 'पल में प्रलय होएगी' की बात प्रकृति के नियम के विपरीत है और जगत्-नियन्ता की इच्छा के विरुद्ध है।

प्रश्न है कार्य में सफलता का सिद्धांत। 'नहि प्रतिज्ञामात्रेण अर्थ सिद्धि:' प्रतिज्ञा मात्र से अर्थ-सिद्धि नहीं हो जाती और न ही जान लेने मात्र से कार्य की सिद्धि हो जाती है। (न नाण मित्तेण कज्जनिष्पती : भद्रबाहु) कार्य की सफलता के लिए चाहिए विषय का पूर्ण ज्ञान, एकाग्रता, निरन्तर अभ्यास तथा कार्य के प्रति समर्पण। उत्साह, सामर्थ्य मन में हिम्मत न हारने के गुण कार्य की सिद्धि को निश्चित करते हैं।

वस्तुत: महत्त्व है समय पर किए कार्य का। strick when the iron is hot गर्म लोहे पर चोट करने का लाभ है। 'का वर्षा जब कृषि सुखाने।' वृन्द कहते हैं, 'प्रत्येक कार्य समय पर होता है, इसलिए उतावली नहीं करनी चाहिए। कार्य उसी का सिद्ध होता है, जो समय का विचार कर कार्य करता है। वह खिलाड़ी कभी नहीं हारता जो दाँव विचार कर खेलता है।' कृष्ण अर्जुन को कहते हैं, 'उठ और जयद्रथ का वध कर। देखो अभी दिन शेष है।' अर्जुन ने आँखें खोलीं। सूर्य भगवान् को नमस्कार कर वाण गाँडीव पर चढ़ा दिया। जयद्रथ मारा गया।

क्या इसका अर्थ यह है कि कबीर का कथन असत्य, अव्यावहारिक और असंगत है। नहीं, कदापि नहीं। कबीर तो साधु-संत थे। प्रभु नाम का स्मरण करते और धर्म का उपदेश देते थे। प्रभु नाम का स्मरण करने, ध्यान लगाने, सत्संग का लाभ उठाने की प्रेरणा देते थे। लौकिक धंधों और मायावी विलास में डूबा मनुष्य इस ओर ध्यान ही नहीं देता था। कबीर के आग्रह पर वह साफ इंकार तो नहीं कर पाता, किन्तु आजकल-आजकल की बात कहकर टाल-मटोल करता था।

आज कहै हरि कालिह भजौंगो, कालिह कहै फिरि कालिह।
आज ही कालि करंतड़ा औसर जासि चालिह।। (कबीर)

× × × ×

कुछ इशारा जो किया हमने मुलाकात के वक्त।
टालकर कहने लगा दिन है अभी, रात के वक्त।। (इंशा अल्ला ख़ाँ)

बुद्धिमान् बनने के लिए आगामी कल तक टालमटोल मत करो। हो सकता है कि तुम्हारे लिए कल का सूर्य कभी उदित न हो। (पल में परलय होयगी, बहुरि करैगो कब!)

कबीर मानव को समझाते हैं—तू इसी प्रकार आजकल-आजकल करता रहा, प्रभु नाम-स्मरण नहीं कर सका तो याद रख मृत्यु (प्रलय का एक अर्थ: मानक हिन्दी कोश खंड 3, पृष्ठ 634) तो तुमसे पूछ कर आएगी नहीं। वह न मानव की स्थिति का ध्यान रखती है, न उसकी आयु का। उसे तो 'हत्या सेती काम। बूढ़ा मरे या जवान।' 'न जाने कित मारिहै, क्या घर क्या परदेश।' एक ही झपट्टे में बाज जैसे बटेर को मार डालता है वैसे ही मृत्यु भी तेरे जीवन को हर लेगी। तू प्रभु-स्मरण बिना काल का ग्रास बन जाएगा।

म्रियमाण मरता है, बहाना ढूँढ लेता काल है।

(श्यामनारायण पांडेय : तुमुल)

'कल करे सो आजकल, आज करे तो अब' कबीर जी का वचन है, पर वेदव्यास जी ने महाभारत में तो बहुत पहले ही लिख दिया था—

अद्यैव कुरु यच्छ्रेयो मा त्वां कालोऽत्यगादयम्। (शांतिपर्व 175/14)

जो कल्याणकारी कार्य हो, उसे आज ही कर डालिए। वे आगे लिखते हैं—

श्वः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्णिकम्।
नहि प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य न वा कृतम्॥ (शांतिपर्व 175/15)

कल किया जाने वाला कार्य आज पूरा कर लेना चाहिए। जिसे सायंकाल करना है, उसे प्रातः ही कर लेना चाहिए; क्योंकि मृत्यु यह नहीं देखती इसका काम अभी पूरा हुआ या नहीं।

शष्पाणि विचिन्वन्तमन्यत्र गत मानसम्।
वृकीवोरणामासाद्य मृत्युरादाय गच्छति।। (शांतिपूर्व 175/13)

जैसे घास चरते हुए भेड़ों के पास अचानक व्याघ्री पहुँच जाती है और उसे देखकर दबोच लेती है, उसी प्रकार मनुष्य का मन जब दूसरी ओर लगा होता है, उस समय सहसा मृत्यु आ जाती है और उसे लेकर चल देती है।

[महाभारत : पंचम खंड (शांतिपूर्व), पृष्ठ 4872. गीताप्रेस. गोरखपुर]

नर देह ईश्वर ने दिया है, मोक्ष का यह द्वार है।
नर जन्म कर लीजिए सफल, ईश्वर भजन ही सार है।।

भोले बाबा—(वेदांत छंदावली भाग 3)

(163) गया वक्त फिर हाथ आता नहीं

संकेत बिंदु—(1) सूक्ति का भावार्थ (2) महापुरुषों के विचार (3) इतिहास सबसे बड़ा गवाह (4) बीते हुए समय की क्षतिपूर्ति संभव नहीं (5) व्यक्ति को समय का सदुपयोग करना चाहिए।

जिस प्रकार मुँह से निकली बात, कमान से छूटा तीर, देह से निकली आत्मा, बीता हुआ बचपन, गुजरी हुई जवानी, नक्षत्र लोक से टूटे तारे, शाखा से टूटी टहनी, पेड़-पौधों से झड़े हुए पत्ते, फल और फूल कभी नहीं लौटते, उसी प्रकार बीता हुआ समय कभी नहीं लौटता।

समय का किसी के साथ बन्धुत्व, मित्रता अथवा जाति-बिरादरी का सम्बन्ध नहीं, जो उसे जोर देकर लौटाया जा सके। उस पर किसी का पराक्रम भी नहीं चलता। करोड़ों स्वर्ण मुद्राओं का कमीशन और रिश्वत उसके सम्मुख तुच्छ हैं। उसका कोई 'बॉस' नहीं, जिसका वह दबाव माने। उसका कोई गुरु नहीं, जिसका आदेश वह शिरोधार्य करे। अथर्ववेद में सच कहा है—काल (समय) विश्व का स्वामी है। (कालो हि सर्वस्येश्वरः)

भाई वीरसिंह कहते हैं, 'लंघ गया न मुड़के औंवदा' (एक बार जो बीत गया, वह फिर लौटकर नहीं आएगा।) वर्जिल कहते हैं, 'समय पुनः वापस न आने के लिए उड़ा जा रहा है।' स्वयम्भूदेव पूछते हैं, 'गय दियहा कि एन्ति पडीवा' अर्थात् गए हुए दिन क्या फिर लौटकर आते हैं ? महात्मा गाँधी जी कहते हैं, 'एक भी मिनिट जाता है, तो वापिस कभी नहीं आता।' शंकर कृप चेतावनी देते हैं, 'समय रूपी अमृत बहता जा रहा है। संभव है प्यास बुझाने का अवसर तुम्हें न मिले।' उर्दू के शायर दाग इस न लौटने वाले समय पर दुःख और निराशा भरे शब्दों में कहते हैं—

गुजर गए हैं जो दिन फिर न आएँगे हरगिज।
कि एक चाल फलक हर बरस नहीं चलता।।

वेद का कथन है—काल (समय) अश्व है। यह अजर और भूरिवीर्यवान् है, पर इसके मुख में सात रश्मियाँ रूपी रासें भी लगी हुई हैं। यदि ये रासें सवार के हाथ से निकल गईं तो यह समय रूपी अश्व भी सवार के हाथ से निकल जाएगा। लौटकर नहीं आएगा।

मैथिलीशरण गुप्त का भी यही प्रश्न है—

हा दैव! अब वै दिन कहाँ हैं और वे रातें कहाँ ?
है काल की घातें कि कल की आज हैं बातें कहाँ ?

समय रहते वर्षा नहीं हुई तो खेती बरबाद हो जाती है। समय निकलने के बाद वर्षा ने दर्शन दिए तो क्या लाभ? *'का वर्षा जब कृषि सुखाने, समय चूकि पुनि का पछिताने।'* आप को ट्रेन पकड़नी है, आप समय पर स्टेशन नहीं पहुँचे। गाड़ी निकल गई, वह आपके लिए लौटकर नहीं आएगी। इन्टरव्यू देने लेट पहुँचे हैं। नियुक्तियाँ घोषित हो गईं। आप नौकरी से वंचित रह गए।

इतिहास इस प्रकार के उदाहरणों से भरा है, जहाँ समय निकलने की सोच ने विफलता का मुख दिखाया। द्वितीय विश्व-युद्ध में हिटलर की पराजय का कारण विलम्ब से सैनिक सहयोग मिलना था। जब सहायता पहुँची तब तक हिटलर बंदी बना लिया गया था। नैपोलियन का सेनापति ग्रूशी पाँच मिनिट देर से पहुँचा तो तब तक नेपोलियन हार चुका था। रूस में श्री लालबहादुर शास्त्री को समय पर 'मेडीकल एड' मिल जाती तो वे बच सकते थे। तात्या टोपे रानी लक्ष्मीबाई के समय पर सैनिक सहयोग न दे सका, परिणामत: रानी को झाँसी का किला छोड़ना पड़ा।

परन्तु 'बच्चन' बीते हुए कल पर पछतावा नहीं करते, उसके लौटने की प्रतीक्षा नहीं करते, उसके लिए खोजते नहीं फिरते। वे तो कहते हैं—*'जो बीत गई तो बात गई।'* इसलिए *'बीती ताहि बिसार दे, आगे की सुधि लेई।'*

सत्ययुग बीता, त्रेता बीता, द्वापर बीता, पर लौटकर कोई नहीं आया। राम राज्य बीता, पर लौटकर उसके दर्शन नहीं हुए। गीता की वाणी श्रीकृष्ण के मुख से अर्जुन के अतिरिक्त महाभारत के पश्चात् कोई नहीं सुन सका। कारण, अतीत को वर्तमान बनाना न नर के वश में है, न दैव के।

सच तो यह है कि पुत्र न होने पर दत्तक-पुत्र से वंश चलाया जा सकता है, चरित्र का पतन होने पर पुन: चरित्रवान् बना जा सकता है, घाटा होने पर लाभ अर्जित किया जा सकता है, मृत्यु के मुँह से भी एकबार निकला जा सकता है, पर आज तक ऐसी कोई घड़ी नहीं बनी जो बीते हुए समय को वापिस कर दे, बीते हुए घण्टों को पुन: बजा दे।

कहना पड़ेगा समय सबसे महान् है—परमात्मा से भी, जगत् नियन्ता से भी और प्रकृति से भी। भक्ति, तप, साधना आदि साधनों से परमात्मा को तो प्रसन्न करके बुलाया जा सकता है, किन्तु कोटि उपाय करने पर भी बीता हुआ समय नहीं बुलाया जा सकता।

अत: व्यक्ति को जो समय मिले, उसका सदुपयोग करना चाहिए। जैसे समय पर बोया बीज उचित फल देता है, वैसे ही समय पर किया गया कार्य भी उचित फल प्रदान करता है। अन्यथा कार्य की असफलता के कारण व्यक्ति को निरन्तर पश्चात्ताप की आग में जलना पड़ता है।

(164) जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी प्यारी हैं

संकेत बिंदु—(1) संसार में सर्वोच्च पर (2) जननी का मातृत्व रूप संसार की सबसे बड़ी साधना (3) मनुष्य पर अनेक उपकार (4) पद्म पुराण के अनुसार स्वर्ग की विशेषताएँ (5) उपसंहार।

लंका की समृद्धि और सौन्दर्य को देखकर लक्ष्मण ने श्री राम से कहा, 'क्यों न हम लंका को अपनी राजधानी बना लें।' इस पर श्री राम ने कहा—'अपि स्वर्णमयी लंका न मे लक्ष्मण रोचते। जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।' हे लक्ष्मण! लंका भले ही

स्वर्णमयी है, फिर भी मुझे वह रुचती नहीं, क्योंकि जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी श्रेष्ठ होती हैं। जन्म.देने के कारण ही माँ 'जननी' कही जाती है तो जिस भूमि पर हम जन्म लेते हैं, जिसके अन्न-जल से हमारा पोषण होता है; वह जन्मभूमि कहलाती है।

जननी जन्म देकर इहलोक के दर्शन कराती है, इसलिए संसार में उसका पद सर्वोच्च है। 'भूमेः गरीयसी माता' (माँ भूमि से भी बड़ी है।) इसीलिए कहा गया है। भास के शब्दों में मनुष्य के लिए तो माता अवश्य ही देवताओं की भी देवता है। (माता किल मनुष्याणां देवतानां च दैवतम्) जन्मभूमि के अन्न और जल से हमने जीवन पाया है। उसकी सभ्यता और संस्कृति ने हमें जीवन मूल्यों का ज्ञान दिया है, इसलिए वह पूज्य है। स्वर्ग की भावना मृत्यु के उपरांत सुख-शांति के निवास की कल्पना है। जीवन में पुण्यात्मा बनने की प्रेरणा नहीं, इसलिए वह जननी और जन्मभूमि से श्रेष्ठतर नहीं।

मुंशी प्रेमचन्द के शब्दों में 'जननी का मातृत्व रूप संसार की सबसे बड़ी साधना, सबसे बड़ी तपस्या, सबसे बड़ा त्याग और सबसे महान् विजय है।' दूसरी ओर, जगत् में पालन-पोषण, क्रीडाकर्म तथा उपसंहार का सम्पूर्ण श्रेय मातृभूमि को है, इसलिए वह पुण्यमयी है। स्वर्ग काल्पनिक जीवन में सुख और ऐश्वर्य का आधार हो सकता है, इसलिए वह जीवन की आवश्यकता है, पर न वह माता और मातृभूमि के समान पूज्य है और न ही महान्।

जन्म देने के बाद माता अपने अमृतमय दूध से बालक का पालन-पोषण करती है। इसलिए उसके दूध का मूल्य नहीं चुकाया जा सकता। वह वाणी देकर बालक के ज्ञान का मार्ग प्रशस्त करती है। इसलिए वह आचार्यों और पिता से भी बड़ी मानी गई, सर्वश्रेष्ठ गुरु समझी गई।

माता के समान ही मातृभूमि के भी मनुष्य पर अनेक उपकार हैं। अतः वह परम श्रेष्ठ है, वन्दनीया है। मातृभूमि की कृपा का वर्णन करते हुए राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त लिखते हैं, 'हे मातृभूमि! तुम क्षमामयी हो, इसलिए अपने पुत्रों के अपराधों को बिना किसी दंड दिए छोड़ देती हो। तुम दयामयी हो, इसलिए दुःखियों और पीड़ितों के कष्ट, दुःख दूर करने में प्रवृत्त रहती हो। क्षेममयी हो, इसलिए विपत्ति, संकट, हानि में प्राणी की रक्षा करती हो। तुम सुधामयी हो, इसलिए अमृत के समान जीवन (जल) प्रदान करती हो। तुम वात्सल्यमयी हो, इसलिए प्राणी पर अपार स्नेह बरसाती हो। तुम प्रेममयी हो, इसलिए प्राणी से प्रीति करती हो। विभवशालिनी हो, इसलिए प्राणी पर धन-सम्पत्ति और ऐश्वर्य लुटाती हो। तुम विश्वपालिनी हो, इसलिए प्राणिमात्र का पालन-पोषण करती हो। तुम दुःख हर्त्री हो, इसलिए प्राणि के आधिदैविक, आधिभौतिक तथा आधिदैहिक दुःखों को दूर करती हो। भयनिवारिणी हो, अतः अनिष्ट या संकट-सूचक सम्भावना से उत्पन्न स्थिति में प्राणी को चिन्तित और विकल नहीं होने देतीं। तुम शांतिकारिणी हो, अतः प्राणी के मन में उत्पन्न उपद्रव, क्रोध, उग्रता का दमन करती हो। सुखकर्त्री हो, इसलिए प्राणी के अनुकूल या अभीप्सित वातावरण बनाती हो। जिस पर मनुष्य अपना सर्वस्व अर्पण करने को प्रस्तुत हो, उससे बढ़कर दूसरी क्या श्रद्धास्पद वस्तु हो सकती है?

स्वर्ग में क्या है ? लोग स्वर्ग की कामना क्यों करते हैं ? यह भी जान लेना चाहिए। पद्म-पुराण के भूखंड अध्याय में स्वर्ग की विशेषताओं का वर्णन इस प्रकार है—

स्वर्ग में अत्यन्त रमणीय नन्दनवन है, वहाँ कल्पवृक्ष आदि हैं, जो सब कामनाओं की पूर्ति करने वाले हैं। वहाँ अद्भुत प्रकार के रस और आनन्द हैं। सुन्दर विलास भवन हैं। चन्द्रमंडल के समान श्वेत परिच्छदों से युक्त स्वर्ण निर्मित रम्भाएँ हैं। वहाँ सब प्रकार की इच्छाओं की पूर्ति होती है। सुख और दु:ख, दोनों से अमर है। वहाँ न रोग है, न शोक है, न जरा (बुढ़ापा) है, न मृत्यु है। न गर्मी है न सर्दी है। न वहाँ किसी को भूख सताती है और न प्यास व्याकुल करती है। न वहाँ किसी को किसी प्रकार की ग्लानि होती है। पुण्यकर्मा प्राणी ही वहाँ जाकर सुखपूर्वक विचरण करते हैं।

पर यह सब कुछ तो मरणोपरांत है। स्वर्ग की आशा करना बगल का छोड़कर पेट के पुत्र की आशा करना है; पर माता और मातृभूमि तो प्रत्यक्ष हैं। इनका अहसान जन्म से लेकर मृत्यु तक पग-पग पर हमें दिखाई देता है। अत: ये दोनों स्वर्ग से महान् हैं।

हजरत मोहम्मद माता को स्वर्ग से अधिक महत्ता प्रदान करते हैं—"तेरा स्वर्ग तेरी माँ के पैरों के तले है। मातृभूमि की सेवा में तेरा 'बहिश्त' है।"

जिस जन्मभूमि पर आकर जन्म लेने के लिए स्वर्ग के निवासी देवता भी जननी के गर्भ से जन्म पाने के लिए तरसते हों, वह जननी और जन्मभूमि निश्चित ही श्रद्धास्पद होगी, स्वर्ग से श्रेष्ठ होगी और पूज्य होगी।

'जननी' शब्द वह समुद्र तट है जिसके पीताश्रम पर सभी आत्माओं को आश्रय मिलता है। जन्मभूमि वह विशाल सागर है, जिसमें डुबकी लगाकर आत्मा जीवन जीने की शैली तथा सभ्यता और संस्कृति का दामन पकड़ती है। इसलिए दोनों का महत्त्व है। इनके सम्मुख स्वर्ग फीका है। उर्दू कवि दाग के शब्दों में—*'ऐसी जन्नत को क्या करे कोई ?'*

(165) जब आवे संतोष धन, सब धन धूरि समान

संकेत बिंदु—(1) सूक्तिकार का मत (2) सुख की जननी संतोष (3) अत्यधिक धन दुख का कारण (4) संतोष साम्राज्य से भी बढ़कर (5) संतोष का फल मीठा और लाभदायक।

सूक्तिकार संतोष को ही परम धन मानकर इस विचार को प्रकट करता है कि इस धन के सम्मुख अन्य सभी धन धूल के समान अत्यन्त तुच्छ, हीन तथा उपेक्ष्य हैं। वह केवल रुपया-पैसा को ही धन नहीं मानता, अपितु यथेष्ट मात्रा में गऊ, हाथी, घोड़े होने को भी धन मानता है और बहुमूल्य पत्थर, माणिक्य, लाल को भी धन स्वीकारता है—*'गोधन, गजधन, बाजिधन और रतनधन खान।'*

संतोष क्या है ? वह मानसिक अवस्था, जिसमें व्यक्ति प्राप्त होने वाली वस्तु को पर्याप्त समझता है और उससे अधिक की कामना नहीं करता, संतोष है। महोपनिषद् के

मत में 'अप्राप्य वस्तु के लिए चिंता न करना, प्राप्त वस्तु के लिए सम रहना संतोष है।' कबीर का कथन है—

चाह गई चिंता मिटी, मनुवा बेपरवाह।
जिसको कछु न चाहिए सोई साहंसाह।।

जो चाहना, चिंता को छोड़कर, कामना रहित है, वही संतुष्ट है। *'बिन संतोष न काम नसाहिं'* कहकर तुलसी भी कामना के नाश का कारण संतोष को ही मानते हैं। सारांशत: जो प्राप्त है, उसमें सम रहना, जो प्राप्त नहीं है उसकी चिंता न करना तथा कामना-तृष्णा का त्याग ही संतोष है। इस प्रकार संतोष एक ऐसी आनन्दमय और आध्यात्मिक संतुलित दशा का नाम है, जो शांत-सरोवर के अचल जल के समान निर्विकार रहती है। बड़े से बड़े आघात पर भी जिसमें हलचल या उथल-पुथल पैदा नहीं होती।

जीवन की चाहना क्या है? जीवन को सुख-पूर्वक भोगने की लालसा। सुख का निवास मन है। मन से आदमी सुख महसूस करता है। यही कारण है धनवान् अन्त:करण से दु:खी है और निर्धन धन-हीन होते हुए भी सुखी है। कारण, जो कुछ उसे मिल जाता है, जितने से वह सांसारिक भोग-सुख पाता है, उसी से संतुष्ट है, प्रसन्न है, सुखी है।

'सर्वे गुणा: कांचनमाश्रयन्ते' कहकर संसार के सभी गुणों का वास सुवर्ण अर्थात् धन में बताया गया है। उसे धन की गठरी बताया है, धर्माचरण का कारण माना है। उन्नति का पथ प्रशस्त करने वाला माना गया है। पूजनीय तथा वंदनीय समझा जाता है। पर 'न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्य:', अर्थात् धन से मनुष्य कभी तृप्त नहीं हुआ। अतृप्ति से इन्द्रियाँ बे-लगाम घोड़े की तरह भागती हैं। बे-लगाम इन्द्रियाँ मनुष्य के अन्तर्द्वन्द्व को तीव्र कर हृदय को अशांत करती हैं। अशांत हृदय में सुख कैसा? (अशान्तस्य कुत: सुखम्) सुख के अभाव में जीवन नरक है। सुख की जननी है संतोष। 'संतोषं परमं सुखम्।'

बहुमूल्य धन-सम्पत्ति का स्वामी, कोठी-कार और अतुल निधि का मालिक, भौतिक ऐश्वर्य का अधिकारी स्वभावत: निन्नानवे के फेर में रहता है। वह लखपति से करोड़पति और करोड़पति से अरबपति बनने के लिए अहर्निश चिंतित रहता है। कुछ और अधिक, कुछ और ज्यादा की मृग-तृष्णा में वह व्याकुल रहता है। इसी कारण उसकी नींद मारी जाती है। भूख घटती जाती है। दवाई के सहारे काया जीती रहती है। जो धन उसे सुख न पहुँचा सके, काया की अस्वस्थता उसे धर्माचरण से दूर करे, वह धन तुच्छ है। इसके मुकाबले उस व्यक्ति का जीवन अधिक सुखी है जो अपनी कामनाओं और तृष्णाओं को मर्यादित किये है। कारण, उसका धन तो संतोष है। जिसके सम्मुख और धन तुच्छ हैं।

दूसरी ओर यह नैसर्गिक सत्य है कि रुपया और पैसा, हीरा और मोती, स्त्री और भोजन, काम और कीर्ति रूपी धन से प्राणी अतृप्त रहकर चले गए। उनकी तृष्णा मिटी नहीं। प्रसाद का मनु भी कह उठता है—

अरी उपेक्षा भरी अमरते, री अतृप्ति निर्बाध विलास।
द्विधा रहित अपलक नयनों की, भूल भरी दर्शन की प्यास।।

इस प्यास में, तृष्णा में, कामना में अपेक्षापूर्ण अमरता में छटपटाहट है, अकुलाहट है, वेदना है। पर संतोष का धनी व्यक्ति तृष्णा की नदी को सहज ही पार कर देवराज इन्द्र के नन्दन-वन में भ्रमण करता है।

धन की चरमशक्ति है साम्राज्य। पर संतोष साम्राज्य से भी बढ़कर है। इसलिए शेक्सपीयर कहता है, मेरा मुकुट मेरे हृदय में है। मेरा मुकुट न हीरों से जड़ित है और न रत्नों से। मेरे मुकुट का नाम है संतोष। संतोष ही हमारी सर्वोत्तम सम्पत्ति है। (My crown is called content, our content is best having.)

संतोष का गुण है—*'रूखी सूखी खाय के ठंडा पानी पीव। देख पराई चूपड़ी मत ललचाए जीव'*, या तुलसी के शब्दों में *'जाहि बिधि राखे राम वाहि बिधि रहिए।'* भागवत का भी यह कथन है—'यथा देश, यथा काल, यथा भाग्य जो मिल जाए उसी से संतोष करना चाहिए।' कारण, जो भी घटित होता है, उससे मैं संतुष्ट हूँ क्योंकि मैं जानता हूँ कि परमात्मा द्वारा चयन मेरे चयन से अधिक श्रेष्ठ है।' —एपिक्टेरस (यूनानी दार्शनिक) जातक भी कहते हैं—'जो मिले उससे संतुष्ट रहना चाहिए। अति लोभ करना पाप है।' ईरान के फारसी कवि हापिज भी इसी का समर्थन करते हैं, 'जो कुछ तुझे मिल गया है, उसी पर संतोष कर और सदैव प्रसन्न रहने की चेष्टा करता रह।'

संतोष रूपी धन का वृक्ष कड़ुआ है, तथापि इसका फल मीठा और लाभदायक है। शेखशादी ने गुलिस्ताँ में यही बात कही है; 'दिनों के फेर से तू खट्टा होकर मत बैठ, क्योंकि संतोष रूपी अमृत से संतुष्ट मनुष्य के लिए सतत सुख और शांति के द्वार सदा खुले रहते हैं।' स्वामी भजनानन्द जी की तो मान्यता है 'जैसे हरा चश्मा लगा लेने से सभी वस्तुएँ हरी-हरी ही दीखती हैं, उसी प्रकार संतोष धारण कर लेने पर सारा संसार आनन्द रूप ही दिखाई पड़ता है।'

संतोष रूपी धन जिसके पास है उसकी आँखों की ज्योति में चमक होती है। स्वास्थ्य की लाली उसके कपोलों पर फूटती रहती है। कमल के समान उसका बदन खिला रहता है। चाँदनी-सी मुस्कराहट उसके अरुणाधर पर खेलती रहती है। उसके अंग-अंग में स्फूर्ति रहती है और भाल दीप्त रहता है। संस्कृत का एक सुभाषित है—

संतोषामृत तृप्तानां यत्सुखं शान्त चेतसाम्।
कुतस्तद्धन लुब्धानामितश्चेश्च धावताम्॥

संतोष रूपी अमृत से तृप्त शान्तचित्त व्यक्तियों को जो सुख प्राप्त है, वह धन के लोभ में इधर-उधर भटकने वालों को कहाँ प्राप्त हो सकता है।

(166) ज़हाँ चाह वहाँ राह

संकेत बिंदु—(1) मानव की अनन्त इच्छाएँ (2) चाह जीवन के उत्कर्ष का द्वार (3) महान् संकल्प ही महान फल का जनक (4) महापुरुषों व विद्वानों की चाह (5) उपसंहार।

ऐसा मनोवेग जो मनुष्य को कोई ऐसी वस्तु प्राप्त करने के लिए प्रेरित करता है, जिससे उसे संतोष या सुख मिल सकता हो, उसकी प्राप्ति में बाधक तत्त्वों के निवारणार्थ वह मार्ग निकाल ही लेता है। प्रेमपूर्वक किसी को चाहने की अवस्था में उत्पन्न बाधाओं को दूर करने के लिए पथ निकल ही आता है। किसी कार्य को करने के लिए जब मनुष्य कटिबद्ध हो जाए तो उसे सम्पन्न करने के लिए कोई न कोई उपाय वह ढूँढ ही लेता है।

मानव की चाह (कामना) आकाश के समान अनन्त है। ऋग्वेद इस अनन्त चाह का समर्थन करते हुए कहता, 'पुलुकामो हि मर्त्यः' अर्थात् मनुष्य विभिन्न कामनाओं, चाहों से घिरा रहता है। मनु-स्मृति तो एक पग आगे बढ़ाते हुए कहती है कि 'मनुष्य जो कुछ करता है, वह, सब इच्छा (चाह) के कारण है (तत्तत् कामस्य चेष्टितम्)। महाकवि कालिदास कुमारसम्भव (5/64) में इसी बात का समर्थन करते हैं, 'मनोरथानामगतिर्न विद्यते' (कामनाओं की कोई सीमा नहीं) अर्थात् कामनाएँ कभी समाप्त नहीं होतीं।

महाकवि प्रसाद कामायनी में कहते हैं—

प्यासा हूँ मैं अब भी प्यासा हूँ, संतुष्ट ओघ से मैं न हुआ।
आया फिर भी वह चला गया, तृष्णा को तनिक न चैन हुआ॥

मनुष्य जीवन में चाह क्यों? इच्छा क्यों? कामना क्यों? क्योंकि पशु और मानव में विवेक-तत्त्व का अंतर है। मानव, मानव इसलिए है कि वह सोचता है, समझता है, चिंतन-मनन करता है। यह सोच-समझ, चिंतन-मनन ही चाह को, मनोरथ विशेष को जन्म देता है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी कहते हैं, 'आंतरिक प्रवृत्तियों का मंगलमय सामंजस्य बाहर मनोरथ-सौन्दर्य के रूप में प्रकट होता है।' (चारु चन्द्रलेख) सच्चाई यही है कि चाह जीवन के उत्कर्ष का द्वार खोलती है, सुख-सौभाग्य की वर्षा करती है और मंगलमय जीवन का अभयदान देती है।

प्रत्येक नवयुवक की चाह है कि विश्व-सुन्दरी या सिने जगत् की अप्सरा उसकी बीबी हो। हर व्यक्ति की चाह है कि संसार की समस्त समृद्धि और सम्पूर्ण ऐश्वर्य उसके चरणों में पड़े हों। हर धार्मिक प्रवृत्ति व्यक्ति की चाह है कि 'देहान्ते तव सान्निध्यम्' (मोक्ष) प्राप्त हो। हर सामाजिक व्यक्ति की चाह है कि समाज में प्रभु रूप के दर्शन हों। हर राजनीतिक की चाह है कि राष्ट्र का प्रधानमंत्री मैं ही बनूँ। यह असम्भव है। बहादुरशाह 'जफर' रोकर कहते हैं—

कह दो इन हसरतों से कहीं और जा बसें।
इतनी जगह कहाँ है, दिले दागदार में॥ (दर्द ए दिल)

तब यह कहना कि जहाँ चाह है, वहाँ राह निकल आती है असत्य है, शेख चिल्ली की कल्पना है, जीवन में कभी नहीं पूरी होने वाली मुराद है। इमली के पेड़ पर बारात का डेरा डालना है। शेर का सुईं की नोंक से निकल जाता है।

प्रेमचन्द जी कहते हैं, 'हाय रे मनुष्य के मनोरथ (चाह)! तेरी भित्ति कितनी अस्थिर है। बालू की दीवार तो वर्षा में गिरती है, पर तेरी दीवार तो बिना पानी-बूँद के ढह जाती

है। आँधी में दीपक का कुछ भरोसा किया जा सकता है, पर तेरा नहीं।' इसी अविश्वास के क्षणों में यह सम्भव भी है। 'चाह' की व्याख्या की तो पहली शर्त है मनोवेगों की प्रेरणा, दूसरी शर्त है संतोष और सुख। ये शर्तें पूरी होंगी तो राह निकल आएगी। संतोष और सुख के प्राप्त्यर्थ जब मनोवेग प्रेरित होंगे तो मन में प्रबल इच्छा शक्ति जागृत होगी और वह दृढ़ संकल्प धारण करेगा। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का कहना है, 'महान् संकल्प ही महान् फल का जनक होता है।' (चारु चंद्रलेख)। कहावत भी प्रसिद्ध है, जिन खोजा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ। 'गहरे पानी पैठ' अर्थात् घोर प्रयत्न कर।

छत्रपति शिवाजी की चाह थी औरंगजेब की कैद से भाग निकलने की। राह निकली, मिठाई के टोकरे में छुपकर निकल भागे। घर में कैद सुभाषचन्द्र बोस की चाह थी ब्रिटिश हकूमत के विरुद्ध जंग छेड़ने की। राह निकली, पठान वेश में घर से निकले और 'आजाद हिन्द फौज' का निर्माण कर ब्रिटिश राज्य पर सशस्त्र आक्रमण करने में सफल हुए। ऊधम सिंह की चाह थी जलियाँवाला बाग के हत्यारे जनरल डायर से बदला लेने की। वह ब्रिटेन गए और लंदन में जाकर उसे गोली मार दी। वीर सावरकर की चाह थी काले पानी की जेल में काव्य-रचना करने की। काल कोठरी की दीवारों पर लिख-लिखकर, राह निकाली।

मूर्ख कालिदास की चाह थी, पत्नी से अपने गृह निष्कासन का बदला लेने की। राह निकली, संस्कृत-साहित्य-शिरोमणि बन पत्नी को आश्चर्यचकित कर दिया। पत्नी पर सर्वाधिक आसक्त रामबोला रत्नावली के धिक्कारमय कथन को साकार करने की चाह लेकर ससुराल से निकला। राह निकली। तुलसीदास बन वह न केवल स्वयं राममय बना, अपितु समस्त हिन्दू-जगत् को 'सीयाराम मय' बना दिया। पति-प्रेम से ऊब कर महादेवी वर्मा का मन साहित्य-सर्जन की चाह करने लगा। राह निकली। छायावाद-रहस्यवाद की स्तम्भ बनकर वे साहित्याकाश में चमकीं।

कोशकार ने 'प्रेम या स्नेहपूर्वक किसी को चाहने की अवस्था या भाव' को भी 'चाह' की संज्ञा दी है। जब व्यक्ति अपने प्रेमी की चाहना करता है तो राह निकल आती है। प्रेमी-प्रेमिका का मंगलमय मिलन हो जाता है। पार्वती की चाह थी शिव को पति के रूप में वरण करने की। तप के मार्ग (राह) से उसने भगवान् शंकर को पति रूप में प्राप्त कर लिया। सीता की चाह थी श्री राम के गले में वरमाला डालने की। नरेशों की असफलता और श्री राम के पराक्रम से राह निकली और *'सीय जयमाल राम उर मेली।'* 'चाह' का कोशगत अर्थ है, 'इच्छा, लालसा' (बृहत् हिन्दी कोश) पर उसकी व्याख्या है, 'वह मनोवेग जो मनुष्य को कोई ऐसी वस्तु प्राप्त करने के लिए प्रेरित करता है, जिससे उसे संतोष या सुख मिल सकता हो।' (मानक हिन्दी कोश : दूसरा खण्ड) यह व्याख्या स्वत: 'राह' का मार्ग प्रशस्त करती है। मन की कामना पूर्ण कर आत्म-सुख का सर्जन करती है।

(167) जहाँ सुमति तहँ सम्पत्ति नाना

संकेत बिंदु—(1) सुबुद्धि और कुमति की व्याख्या (2) सुमति का महत्त्वपूर्ण स्थान (3) सुमति महान उद्योगपतियों और भवन निर्माताओं का पथ प्रदर्शक (4) जहाँ सुमति वहाँ सुख-शांति (5) उपसंहार।

श्री रामचरितमानस (5/40/3) में विभीषण जी अपने अग्रज लंकेश रावण को समझाते हुए कहते हैं, 'हे नाथ! पुराण और वेद ऐसा कहते हैं कि सुबुद्धि और कुबुद्धि सबके हृदय में रहती है। जहाँ सुबुद्धि है, वहाँ नाना प्रकार के धन दौलत, संपत्ति, ऐश्वर्य, वैभव तथा सुख की स्थिति रहती है और जहाँ कुबुद्धि है, वहाँ परिणाम में विपत्ति रहती है।

मति अर्थात् बुद्धि। जानने, समझने और विचार करने की शक्ति का नाम मति है। यह मन की अंत:करण की निश्चयात्मिका वृत्ति है। इसके दो रूप हैं—कुमति और सुमति।

पाप का समर्थन करने वाली बुद्धि कुमति है। पर-पीड़ा प्रदात्री बुद्धि कुमति है। अंध स्वार्थमयी वृत्ति कुमति है।

श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं—'जो बुद्धि धर्म को अधर्म मानकर सब बातों में विपरीत निर्णय करती है, उसको तामसी बुद्धि अर्थात् कुमति कहते हैं।

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी॥

अच्छी बुद्धि, तर्कसंगत समझ, श्रेप्ठ स्वभाव या उचित कामना सुमति है। ज्ञान और सौंदर्य से युक्त बुद्धि सुमति है। श्रेष्ठ ज्ञान या उत्तम बोध प्राप्त करने और निश्चय विचार करने की शक्ति सुमति है। उदाराशयता तथा देवानुग्रह सुमति है।

जीवन में सुमति का ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। अथर्ववेद का ऋषि प्रार्थना करता है, 'हे प्रभु! जिन्हें मैं देखता हूँ और जिन्हें नहीं देखता हूँ, उन सबके प्रति मुझमें सुमति उत्पन्न करो।' गाँधी जी भी दैनन्दिन प्रार्थना में कहते थे, 'सबको सन्मति दे भगवान्।'

वेदव्यास जी सुमति को विजय का मूल मानते हैं तो राजशेखर उसे सम्पूर्ण कामनाओं की पूर्ति करने वाली कामधेनु कहते हैं (शुद्धा हि बुद्धिः किल कामधेनुः) इसीलिए तुलसी कहते हैं, ***'जहाँ सुमति तहँ सम्पत्ति नाना।'*** अर्थात् जहाँ सुमति है, वहाँ धन-दौलत, जमीन-जायदाद, ऐश्वर्य-वैभव तथा सुख और शांति, अभ्युदय और समृद्धि, सिद्धि और लाभ की नाना सम्पत्ति है।

विभीषण ने स्वयं इस कथन के अनुसार आचरण किया तो उसे प्रभु श्रीराम की शरण ही नहीं मिली, अपितु स्वर्णमयी लंका का राज्य भी प्राप्त हो गया। वह लंका की सम्पत्ति का स्वामी बन गया। भौतिक-सुखों से सम्पन्न हुआ। ऐश्वर्य और वैभव उसका चरण चुम्बन करने लगे।

श्री राम ने सुमति के बल से अस्त्र-शस्त्र तथा सेना-सहित सुग्रीव का सहयोग प्राप्त

किया, अपहृता भार्या की खोज की तथा महाबली राक्षसराज रावण को परास्त कर सीता रूपी सम्पत्ति प्राप्त की। महाभारत युद्ध में पाण्डव-विजय का सम्पूर्ण श्रेय श्री कृष्ण की सुमति को जाता है। मगधवंश के नाश और चन्द्रगुप्त की विजय में चाणक्य की सुमति ही तो थी। दूर क्यों जाएं, एक बार महानिर्वाचन में पराजित, अपने ही साथियों द्वारा तिरस्कृत और अपमानित इन्दिरा गाँधी अपनी सुमति के कारण दूसरी बार पुनः भारत की प्रधानमंत्री बनीं।

धन-रूपी लक्ष्मी का वरण करने वाले महान् उद्योगपति, भवनों के निर्माण करने वाले भवननिर्माता, वैज्ञानिक उपलब्धियों और विभिन्न क्षेत्रों में कीर्तिमान स्थापित करने वाले वैभवशाली-जन अपनी सुमति के कारण ऐश्वर्य युक्त हुए। सुमति उनका पथ-प्रदर्शन करती रही तथा प्रज्ञा और विवेक उनके मार्ग के काँटे बुहारते रहे।

मानव-जीवन में दुःख-पीड़ा, कष्ट-क्लेश, विघ्न-बाधाएँ उपस्थित होती रहती हैं। मायावी जीवन का यह अनिवार्य अभिशाप है। इस शाप से मुक्ति के लिए सज्जन अपनी बुद्धि को सुमति के पारस पर रगड़ता है। क्रोध, अभिमान, आलस्य, लज्जा, उद्दंडता, अहं, अधर्म तथा असत्य से दूर रहता है। अन्तर्मन में चिंतन-मनन करता है। प्रज्ञा और विवेक का आश्रय लेता है। वह एक पाँव उठाता है तो दूसरे को स्थिर रखता है। इस प्रकार प्रथम चरण में सफलता प्राप्त किए बिना दूसरा चरण नहीं उठाता।

पारिवारिक सुख-शांति को ही लें। जिस परिवार में आपा-धापी, अहं का पोषण, परस्पर धोखा और प्रवंचना, कलह और क्लेश, अनुचित प्रेम और कामेच्छा का वर्चस्व होगा, दूसरे शब्दों में जहाँ कुबुद्धि का साम्राज्य होगा, वह परिवार सुख-शांति से कोसों दूर होगा। जहाँ परस्पर विश्वास होगा, एक दूसरे की भावनाओं का आदर होगा, सम्मान और स्नेह होगा, अर्थात् जहाँ सुमति का राज्य होगा, वहाँ सुख-शांति अभ्युदय, उन्नति तथा यश और कीर्ति उनके यहाँ डेरा डाल कर बैठेंगे। किसी ने ठीक कहा है—

कुमति कुजन जेहि घर व्यापै, सुमति सुहागिन जाय विलाय।

सुमति सुहागिन के हटते ही कुमति कुलच्छिनी मनुष्यों को ऐसे कार्यों के लिए प्रेरित करती है, जो मनुष्य को दुःख देने वाले होते हैं। तुलसी ने भी कहा है—

जाको विधि दारुण दुःख देई, ताकि मति पहले हरि लेई।

यहाँ मति हरने का अर्थ है, सुमति का हरण तथा कुमति का प्रादुर्भाव।

भारत की वर्तमान विषम स्थिति में जहाँ राजनीति अपना नंगा नाच दिखा रही हो, कानून और व्यवस्था की अस्थिरता ने जीना हराम कर दिया हो, भ्रष्टाचरण और अनैतिकता ने जीवन-मूल्यों को पैरों तले रौंद दिया हो, वहाँ सुख-शांति, सुरक्षा से जीने के लिए, भौतिक सुखों से धनी बनने के लिए, यश और ऐश्वर्य को गले लगाने के लिए वर्तमान विषयों का मनन करने वाली सुमति का आलिंगन करना होगा। भविष्यदर्शिनी अथवा दूरदर्शिनी प्रज्ञा से प्रेम करना होगा। नीर-क्षीर विवेक-बुद्धि का स्नेह अर्जित करना होगा।

(168) जीओ और जीने दो

संकेत बिंदु—(1) जीवन की सार्थकता (2) जीवन में सम्पूर्ण आयु जियो (3) ईर्ष्या- द्वेष और निंदा द्वारा जीना दूभर (4) जीवन का आनंद जियो और जीने दो (5) जीवन की श्रेष्ठ कला।

हम जीवन को जिस सुख और आनन्दमय शैली में जीना चाहते हैं, उसका अधिकार दूसरों को भी दें, यही जीवन जीने की अर्थपूर्ण कला है। अपने लाभ के लिए, दूसरों को हानि न पहुँचाएं इसी में जीवन की सार्थकता है। हम अपने जीवन को आनन्द से परिपूर्ण करें, किन्तु उसके लिए दूसरों को दैहिक तापों में न घसीटें, इसी में जीवन की सार्थकता है। इस सूक्ति का समर्थन करते हुए दादा धर्माधिकारी कहते हैं, 'हमारा परम मूल्य जीवन है। जीवन को सम्पन्न बनाना है। सबके जीवन को सम्पन्न बनाना है।'

महापुरुषों ने जीवन की सार्थकता को विभिन्न रूपों में देखा है। कविवर वृन्द जीवन की सार्थकता ***'जैसी चले बयार तब, तैसी दीजे ओट'*** में मानते हैं। प्रसाद जी का मत है कि 'जीवन तो विचित्रता और कौतूहल से भरा होता है। यही उसकी सार्थकता है।' जैनेन्द्र जीवन की सार्थकता चलते रहने में मानते हैं। महात्मा गाँधी की धारणा है, 'जीवन का सच्चा ध्येय ही जीवन की सार्थकता है।' निराला जी ***'राग-विराग से जीवन जगमग'*** कहकर जीवन की सार्थकता को प्रकाशित करते हैं। सुभाषचन्द्र बोस 'धर्म और देश के लिए जीवित रहने में' जीवन की सार्थकता देखते हैं। 'अज्ञेय' की धारणा है, 'जिन मूल्यों के लिए जान दी जा सकती है, उन्हीं के लिए जीना सार्थक है।'

अथर्ववेद का कथन है, 'सर्वमायुर्नयतु जीवनाय।' अर्थात् अपने जीवन में सम्पूर्ण आयु जियो। परन्तु प्राणी जिस दिन से जन्म लेता है सुख-दुःख, जय-पराजय, कष्ट-पीड़ा, राग-द्वेष, लोभ-माया, विघ्न-बाधाएँ उसका पीछा करते चलते हैं। इनसे छुटकारा पाने के प्रयत्न में आदमी स्वार्थी बन जाता है। स्वार्थ में अंधा होकर वह दूसरों के जीवन का अधिकार छीनना चाहता है। इन्दिरा जी ने अपनी गद्दी बचाने के लिए भारत को आपत् काल में धकेल कर भारतवासियों का जीना हराम कर दिया। भारत की उदारवादी आर्थिक नीतियों ने महँगाई का वह कहर बरसाया कि मध्यवर्गीय भारतवासी रो-रोकर जीवन जी रहा है। इसी स्थिति पर प्रसाद जी ने ठीक ही कहा है—

क्यों इतना आतंक ठहर जा ओ गर्वीले।
जीने दे सबको फिर तभी सुख से जी ले॥

यही दशा व्यक्तिगत जीवन में है। हम अपने घर का कूड़ा करकट मकान के बाहर फेंक देते हैं, जिससे पड़ोसी और पथिकों को कष्ट होता है। हम अपने टेलीविजन की ध्वनि तेज कर देते हैं, जिससे न केवल घर में रहने वालों को कष्ट होता है, बल्कि पड़ोसियों

का जीना भी दूभर कर देते हैं। हम पर-निन्दा में इतने कुशल हैं कि अपने साथियों को घृणा का पात्र बना देते हैं। ऐसा करके हम आत्म-सुख का अनुभव करते हैं, किन्तु सच्चाई यह है कि ईर्ष्या-द्वेष ने हमारा अपना जीवन दूभर कर रखा है। दिन को चैन नहीं, रात को नींद नहीं।

एक व्यक्ति की दुष्टता से किसी की पुत्री का विवाह संबंध टूट गया। जिसने संबंध तुड़वाया था, वह अत्यन्त प्रसन्न। जिसकी पुत्री का संबंध टूटा है, वह अत्यंत दु:खी। कहाँ बरदास्त है हमें दूसरे का सुख, दूसरों के जीवन की खुशी। किसी केस में फँसाने पर हम उसका दायित्व दूसरों के मत्थे मढ़ देते हैं। वह जेल की हवा खाता है, उसके परिवार पर दु:खों का पहाड़ टूट पड़ता है और हम अपनी चातुरी पर प्रसन्न होते हैं।

जीवन का आनन्द ईर्ष्या-द्वेष में नहीं, जीवन का सुख पर-पीड़ा में नहीं, जीवन का कल्याण राग-विराग में नहीं, जीवन का आनन्द है 'जियो और जीने दो' में। 'सर्वेभवन्तु सुखिनः सर्वे संतु निरामयाः' में है। ***'स्वयं हँसो मनु, जग को हँसता देखो'***में है।

यह तभी संभव है जब मनुष्य में सहिष्णुता होगी, संतोष होगा, समन्वय की विराट् चेष्टा के लिए वह प्रयत्नशील होगा। इसके लिए मन का संयम करना होगा, समय आने पर झुकना होगा, दूसरों की सुविधा और दूसरों को निभाने के लिए समझौता करना होगा, उसके लिए राह छोड़नी होगी। बंधन में सौन्दर्य, आत्म दमन में सुरुचि और बाधाओं में माधुर्य के दर्शन करने होंगे। मन में कुत्सा, ईर्ष्या, जलन के लिए कोई स्थान नहीं होगा। तब ही हम 'जीने दो' की सार्थकता चरितार्थ कर पाएंगे।

दूसरों को 'जीने दो' का प्रथम सिद्धांत है 'जीओ'। जब तक व्यक्ति स्वयं स्वस्थ और सुखमय जीवन नहीं जीएगा तब तक दूसरों को 'जीने दो' की सोच बेमतलब है। जिसके घर दाने नहीं, वह क्या दान देगा? जो अशिक्षित है, वह क्या शिक्षा देगा? जो नंगा है, वह क्या निचोड़ेगा? जिसे हँसना नहीं आता, वह दूसरों को हँसाएगा क्या? इसलिए प्रथम उपादान है स्वयं का मंगलमय जीवन। महादेवी वर्मा 'जीओ' में ही 'जीने दो' का रहस्य प्रकट करती हुई लिखती हैं, 'व्यक्तिगत सुख विश्व वेदना में घुलकर जीवन को सार्थकता प्रदान करता है और व्यक्तिगत दु:ख विश्व के सुख में घुलकर जीवन को अमरत्व।'

'जीओ और जीने दो' जीवन जीने की श्रेष्ठ कला है। जीवनयापन की सुन्दर शैली है। जीवन की प्रतिकूलता में भी आनन्द लेने का रहस्य है।

सब पाप पुण्य जिसमें जल-जल, पावन बन जाते हैं निर्मल।
मिटते असत्य से ज्ञान लेश। समरस अखंड आनन्द वेश॥

—कामायनी (प्रसाद)

(169) जो तोको काँटा बुवै ताहि बोई तू फूल

संकेत बिंदु—(1) कबीरदास की सूक्ति का भाव (2) ईर्ष्या, द्वेष और वैर जन्मजात प्रवृत्तियाँ (3) सफलता तो भाग्य के विधान पर अवलम्बित (4) प्रतिशोध एक जंगली न्याय (5) उपसंहार।

कबीरदास सच्चे प्रभु भक्त थे। मानव-प्रेमी थे। ईर्ष्या-द्वेष, बैर-भाव उन्हें छू तक नहीं गया था। इसलिए उन्होंने मानव को उपदेश देते हुए कहा—

हे मानव! यदि तेरी सफलता, उन्नति, प्रगति या शुभ काम में कोई भी व्यक्ति बाधा या विघ्न खड़ा करे अथवा बहुत अधिक शत्रुता का भाव रखे या वैसा व्यवहार करे तो भी तुझे उसके प्रति नम्र रहना चाहिए, सद्भाव रखना चाहिए, मधुर व्यवहार करना चाहिए।

इसी दोहे की अगली पंक्ति में इसका कारण बताते हुए कबीर जी कहते हैं—

तो को फूल को फूल हैं, वाको है तिरसूल।

तेरी नम्रता, सद्भाव और मधुरता तेरे जीवन में सुगंध भरेगा। तेरे पाप समूह को नष्ट करके पुण्य को बढ़ाएगा तथा पुष्कल (प्रचुर) अर्थ प्रदान करेगा। जबकि यही मानवीय व्यवहार उसके जीवन के दैहिक, दैविक तथा भौतिक तापों में वृद्धि करेगा। उसकी आत्मा को त्रिशूल के समान बेधकर अशांति उत्पन्न करेगा।

ईर्ष्या, द्वेप, वैर, निन्दा, अहं आदि जन्मजात प्रवृत्तियाँ हैं, जो जन्म से मृत्यु तक मनुष्य का पीछा नहीं छोड़तीं। इसका मूल कारण है, मन की हीनता और हृदय की दुर्बलता। यह हीनता और दुर्बलता ही प्रतिशोध के लिए प्रेरित करती हैं। अहर्निश उसे बदला लेनी की आग में तड़पाती हैं।

प्रश्न उठता है कि क्या हमें ईंट का जवाब पत्थर से नहीं देना चाहिए? काँटे बोने वाले को मुँह तोड़ जवाब नहीं देना चाहिए। काँटे को काँटे से नहीं निकालना चाहिए। रहीम जी कहते हैं—

खीरा सिर से काटिए, मलियत नमक लगाए।
रहिमन कड़ुवे मुखन को, चहियत यहै सजाय।।

प्रभु श्रीराम काँटा बोने वाले महाप्रतापी रावण को शूल न देते तो क्या वे भगवती सीता को प्राप्त कर सकते थे? 'सूच्यग्रं नैव दास्यामि बिना युद्धेन केशव' का उद्घोष करने वाले दुर्योधन को यदि पाण्डव युद्धभूमि में न ललकारते तो क्या वे चक्रवर्ती सम्राट् बन सकते थे? यदि छत्रपति शिवाजी औरंगजेब की शठता का उत्तर शठता से न देते तो क्या 'हिन्दू पद पादशाही' की स्थापना सम्भावित थी। महात्मा गाँधी जन्मभर अहिंसा रूपी अस्त्र से अंग्रेज सरकार से संघर्ष करते रहे, 'ताहि बोई तू फूल' को मानते रहे, किन्तु '1942 के आन्दोलन' ने जब 'करो और मरो' को चरितार्थ किया, फूल नहीं, शूल से अंग्रेजों के सुदृढ़ किले को तोड़ा, तभी उन्हें सफलता मिली।

क्या शूल में सफलता निश्चित है ? सफलता तो भाग्य के विधान पर अवलम्बित है। (दैव विधानमनुगच्छति कार्य सिद्धि : भास) गीता का महामंत्र है, 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'। क्या बुराई है, कर्म करने में। सिंह यदि दहाड़ नहीं मारेगा तो उससे अन्य पशु डरेंगे क्यों ? फिर बिल्ली खाएगी नहीं तो गिरा अवश्य देगी। इतना ही नहीं, काँटा बोने वाले को इतना तो पता चल जाएगा कि तेरा प्रतिशोध हो रहा है। अगर तू नहीं बाज आया तो दूसरे का काँटा तेरे काँटे को निकालेगा नहीं तो जख्मी तो कर ही देगा। महाराणा प्रताप को स्वातंत्र्य समर में विजय नहीं मिली, किन्तु मुगल-सम्राट् अकबर को दिन में तारे तो दिखा ही दिए। सुभाषचन्द्र बोस की आजादहिंद फौज भारत स्वतंत्र करवाने में सफल नहीं हुई, किन्तु अंग्रेज साम्राज्य की चूलें तो हिला ही दीं। डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी धारा 370 हटवा तो नहीं सके, किन्तु शेरे कश्मीर कहलाने वाले शेख अब्दुल्ला को एक बार तो जेल के सींखचे दिखा ही दिए।

अपने को मानवतावादी मानने वाले तथाकथित बुद्धिजीवी प्रतिकार, प्रतिशोध के विरुद्ध हैं। उनकी धारणा है कि वैर से वैर बढ़ता है। कटुता से कटुता बढ़ती है। मानव प्रतिशोध में पागल हो जाता है। रात की नींद, दिन का चैन हराम हो जाता है। कभी-कभी तो कटुता दावाग्नि बन पूरे परिवार को डस लेती है।

बेकन कहते हैं, 'Revenge is a kind of wild justic.' अर्थात् प्रतिशोध एक प्रकार का जंगली न्याय है। इसलिए इसके त्याग में ही भलाई है। स्वामी शिवानन्द का मानना है कि काँटा बोने वाला स्वयं पीलिया रोग से ग्रस्त हो जाता है। शेख शादी कहते हैं, 'ईर्ष्यालु मनुष्य स्वयं ही ईर्ष्या से जला करता है। उसे और जलाना व्यर्थ है।' हरिशंकर परसाई भी मानते हैं कि 'अपनी अक्षमता से पीड़ित वह बेचारा दूसरे की सक्षमता के चाँद को देखकर सारी रात श्वान जैसा भौंकता है। उसे दण्ड देने की जरूरत नहीं। वह बेचारा स्वयं दंडित होता है। वह जलन के मारे सो नहीं पाता।' कबीर ने भी पूर्वोक्त सूक्ति अपनी 'सन्तई' के कारण ही कही है। सन्तों को यह बात शोभित होती है।

महर्षि दयानन्द ने भी विष देने वाले जगन्नाथ रसोइए को क्षमा ही नहीं किया, आर्थिक सहयोग देकर पलायन में भी मदद की। काँटा बोने वाले मुगलों की शहजादी हाथ लगने पर छत्रपति शिवाजी ने न केवल माँ कहकर संबोधित किया, उल्टा उसे ससम्मान लौटा भी दिया। जिन अंग्रेज़ों की हमने लगभग 200 वर्ष गुलामी सही, अत्याचार-अनाचार सहे, भारत स्वतंत्र होने पर कांग्रेस ने उन्हीं के प्रतिनिधि लार्ड माउण्टबेटन को भारत का वायसराय नियुक्त कर दिया।

महात्मा विदुर कहते हैं, 'जिनका हृदय बैर या द्वेष की आग में जलता है, उन्हें रात में नींद नहीं आती।' काँटा बोने वालों का मन, ईर्ष्या, द्वेष, बैरभाव आदि दूषित भयंकरता उत्पन्न करता है। उसका विवेक नष्ट हो जाता है। अपने मन के अंधकार में दूसरे का प्रकाश असह्य हो उठता है। विनोबाजी का विचार है कि इस प्रकार की द्वेष बुद्धि को हम द्वेष से नहीं मिटा सकते, प्रेम की शक्ति से ही उसे मिटा सकते हैं।' धम्मपद में भी ऐसे ही विचार प्रकट किए हैं—

न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीह कुदाचन।
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो॥ (1/5)

अर्थात् संसार में बैर से बैर कभी शांत नहीं होता, अबैर से ही शांत होता है, यही सनातन धर्म है। कविवर रहीम के शब्दों में—

प्रीति रीति सब सो भली, बैर न हित मित गोत।
रहीमन याही जनम में, बहुरि न संगति होत॥

(170) तुलसी असमय के सखा धीरज, धर्म, विवेक

संकेत बिंदु—(1) विपत्ति के समय धैर्य, धर्म और विवेक के काम (2) धैर्य मन का गुण और शक्ति (3) असमय में धीरज मित्र (4) विवेक असमय के कारणों का निवारण (5) उपसंहार।

तुलसीदास जी का मत है कि धीरज, धरम और विवेक बुरे समय के मित्र हैं। अत: विपत्ति पड़ने पर मनुष्य को धैर्य, धर्म और विवेक से काम लेना चाहिए। प्रकृति-सत्य भी यही है कि मन की शान्ति, कर्त्तव्य के प्रति निष्ठा और विवेक ही दुर्दिन में मित्र होते हैं। दूसरी ओर, मानव के धैर्य, धर्म और विवेक की परीक्षा भी असमय में ही होती है।

असमय क्या है ? विपत्तिकाल, कुसमय, बुरा वक्त, दुर्दिन, अनुपयुक्त समय या स्थिति ही असमय है। असमय तो वस्तुत: मनुष्य के लिए वरदान है। कारण, यह अनुभव प्राप्त करने और आत्म-निरीक्षण करने का श्रेष्ठकाल है। मन:स्थिति की सच्ची परख का समय है। शायद इसीलिए शैक्सपीयर ने कहा है 'Sweet are the uses of adversity' अर्थात् विपत्ति के लाभ मधुर होते हैं। रहीम ने भी कहा—

रहिमन विपदा हूँ भली, जो थोड़े दिन होय।
हित अनहित या जगत में जानि-परत सब कोय॥

पर असमय भयावह भी होता है। इसमें सुख-शान्ति काफूर हो जाती है। मन भी उद्विग्न, विकल, विचलित और व्यग्र रहता है। धीरज, धर्म, मित्र, नारी और विवेक की तो बात ही क्या मानव की अपनी छाया भी साथ छोड़ देती है। आतिश का शेर है—

होता नहीं है कोई बुरे वक्त का शरीक।
पत्ते भी भागते हैं, खिंजा में शजर से दूर॥ (शजरवृक्ष)

इतना ही नहीं असमय में तो 'गए थे नमाज पढ़ने, रोजे गले पड़ गए' वाली स्थिति हो जाती है।

धैर्य मन का वह गुण है या शक्ति है जिसकी सहायता से मनुष्य असमय पड़ने पर विचलित नहीं होता, व्यग्र नहीं होता। घबराहट या विकलता उसे स्पर्श नहीं करती। वह शान्ति से विपत्ति टलने की प्रतीक्षा करता है। गाँधी जी जलयान में विदेश जा रहे थे। समुद्र में तूफान आया। सब यात्री साक्षात् मृत्यु को देख रोने-पीटने लगे पर गाँधी जी स्थिर चित्त रहे। तूफान चला गया, पर छोड़ गया विदेशियों पर गाँधी का प्रभाव।

नत्थूराम गोडसे की फाँसी का समय आया। गार्ड ने तैयारी का आदेश दिया। वे स्नान से पूर्व दाढ़ी बनाने लगे तो गार्ड ने कहा, 'अब इसका क्या लाभ ?' गोडसे ने कहा, 'यह मेरा दैनिक कर्म है, इसे न करके धैर्य से विचलित हो जाऊँगा।' श्रीराम ने सीता की खोज के लिए धैर्य से काम लिया। पाँडव युद्ध टालने के लिए संधि-प्रस्तावों रूपी धैर्य को प्रस्तुत करते रहे। मीरा ने हँसते-हँसते विष का प्याला पी लिया और उसके धीरज ने उसे अमर कर दिया।

वाल्मीकि का कहना है कि 'शोक में, आर्थिक संकट में अथवा प्राणान्तकारी भय उपस्थित होने पर जो अपनी बुद्धि से दुःख निवारण के उपाय का विचार करते हुए धैर्य धारण करता है, उसे कष्ट नहीं उठाना पड़ता।' ठीक भी है Haste makes waste 'हड़बड़ी में गड़बड़ी' स्वाभाविक है। 'झटपटक की घानी, आधा तेल आधा पानी।' उतावला घोड़ा और बावला सवार गिरते हैं। गरम-गरम चाय मुँह को जला देती है। इसलिए तुलसी ने ठीक ही कहा है असमय में धीरज मित्र है, साथ निबाहने वाला सिद्ध सखा है।

धर्म क्या है ? कर्तव्यों और सिद्धान्तों का पालन। मान्यताओं, आस्थाओं और विश्वास से विचलित न होना धर्म है। वेदव्यास जी कहते हैं, 'धर्मो रक्षति रक्षित:' अर्थात् हमसे रक्षित धर्म ही हमारी रक्षा करता है। डॉ. राधाकृष्णन् कहते हैं, 'धर्म में ही जीवन शक्ति है और धर्म की दृष्टि ही जीवन-दृष्टि है।' धर्म जीवन-शक्ति इसलिए है कि 'धर्म से मानव-चरित्र में अटल बल प्राप्त होता है'—स्वामी रामतीर्थ।

चरित्र के इस अटल बल रूपी धर्म के कारण बनवास के असमय में भी श्रीराम रावण को पराजित कर सके। पाँडव अपने अज्ञातवास के घोर असमय को विवेक से काट सके। शिवाजी औरंगजेब की कठोर कारा से निकल पाए। सुभाष सशस्त्र सैनिक-आक्रमण करने में सफल हुए। आपत्काल में लाखों देशभक्त इन्दिरा के अत्याचार के सम्मुख झुके नहीं, टूटे नहीं, फलत: विजय को वरण कर सके।

विवेक क्या है ? सत्य का ज्ञान विवेक है सद्विचार की योग्यता विवेक है। अन्त:करण की वह शक्ति जिसमें मनुष्य यह समझता है कि कौन-सा काम अच्छा है या बुरा अथवा करने योग्य है या नहीं, विवेक है।

विवेक असमय के कारणों का निवारण करता है। प्रतिकूल स्थिति को अनुकूल बनाता है। कष्टदायक तत्त्वों को लाभप्रद स्थिति में परिणत करता है। हारी हुई बाजी को जिताता है। कंटक-मुकुट को पुष्प-मुकुट में बदलता है। श्रीराम विवेक से काम न लेते तो सीता जी की प्राप्ति असम्भव थी। पाँडव यदि विवेक से काम न लेते विजयश्री उनका चरण न चूमती। शिवाजी यदि विवेक से काम न लेते तो जीवन-भर जेल में सड़कर मर जाते।

इतिहास साक्षी है। कुसमय पड़ा इन्दिरा गाँधी पर। वे हारी, उनकी कांग्रेस हारी। पार्टी के दो टुकड़े हो गए। उन पर अनगिनत इलजाम लगने लगे। अभियोगों से वे अपमानित होने लगीं। उन्होंने तुलसी के वचन का पालन किया। धीरज, धर्म, विवेक को सखा बनाया। धैर्य से दुर्दिन का सामना किया। अपने धर्म अर्थात् कर्तव्य से विचलित नहीं हुई, विवेक

को साथी चुना। इन्दिरा जी विपत्तिरूपी अग्नि-परीक्षा में सफल हुईं। 'असमय के सखा धीरज धर्म विवेक' ने इन्दिरा जी को जमीन से उठाकर पुन: भारत के प्रधानमन्त्री के सिंहासन पर बिठा दिया। अनादर और अपमान के स्थान पर सुयश-सुकीर्ति की सुगंधित माला पहनाई।

अत: विपत्ति पड़ने पर, असमय आने पर कभी भयभीत नहीं होना चाहिए, अपितु, धैर्य, धर्म और विवेक रूपी सखाओं की सहायता से विपत्ति-सागर को पार करने का प्रयत्न करना चाहिए।

(171) दया धर्म का मूल है

संकेत बिंदु—(1) मन में उठने वाली सात्विक भावना (2) दया के अनेक रूप (3) महापुरुषों द्वारा दया के उदाहरण (4) मूर्खता और अज्ञान से की गई दया तामसी (5) उपसंहार।

मन में स्वत: उठने वाली वह मानवोचित्त सात्विक भावना या वृत्ति जो दु:खियों और पीड़ितों के कष्ट, दु:ख आदि दूर करने में प्रवृत्त करती है, दया है। मन का दु:खपूर्ण वेग, जो किसी को दूसरे का कष्ट दूर करने की प्रेरणा देता है 'दया' है। जाबाल दर्शनोपनिषद् के अनुसार समस्त प्राणियों को अपने ही समान समझकर उनके प्रति मन, वाणी और शरीर द्वारा आत्मीयता का अनुभव करना 'दया' है। पुराण-साहित्य में समस्त भूतों को आत्मवत् समझकर समदृष्टि रखते हुए व्यवहार करने अथवा सब प्राणियों पर अनुग्रह करने को 'दया' कहा गया है। सन्त तुकाराम के शब्दों में 'प्राणियों का पालन और दुष्टों का संहार, इसी का नाम दया है।'

सामाजिक कर्तव्य जिसका पालन समाज के अस्तित्व या स्थिति के लिए आवश्यक होता है और जो प्राय: सर्वत्र सार्थक रूप में मान्य होता है, धर्म है। जैसे, दया का आचरण मनुष्य का धर्म है। लौकिक क्षेत्र में वे सब कर्म तथा कृत्य जिनका आचरण या पालन किसी विशिष्ट स्थिति के लिए विहित हो, धर्म है। जैसे, पशु पर दया दर्शाना मानव का धर्म है। ऋषि, मुनि या आचार्य द्वारा निर्दिष्ट वह कृत्य जिससे पारलौकिक सुख प्राप्त है, धर्म है।

'दया धर्म का मूल है' का अर्थ हुआ—मन, वाणी और शरीर द्वारा दूसरों के दु:ख, कष्ट, पीड़ा आदि में आत्मीयता का भाव अनुभव कर, उन्हें दूर करने की प्रवृत्ति लौकिक और सामाजिक दृष्टि से मान्य होने के कारण धर्म है और पारलौकिक सुख प्राप्ति का आधार तत्त्व है।

यह सूक्ति तुलसीदास जी के दोहे से उद्धृत है। पूरा दोहा इस प्रकार है—

दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान।
तुलसी दया न छोड़िए, जब लगि घट में प्राण।।

तुलसीदास जी ने ही सर्वप्रथम इस तत्त्व-ज्ञान को प्रसारित किया हो, ऐसा नहीं है। चाणक्य नीति में लिखा है, 'दया धर्मस्य जन्मभूमिः' अर्थात् दया ही धर्म की जन्मभूमि है। महात्मा कबीर के विचार इस प्रकार हैं—

जहाँ दया तहँ धर्म है, जहाँ लोभ तहँ पाप।
जहाँ क्रोध तहँ काल है, जहाँ क्षमा तहँ आप।।

प्यासे को पानी पिलाना, भूखे को भोजन देना, नंगे को वस्त्र देना, निराश्रित को आश्रय देना दया के रूप हैं। अंधे को मार्ग तय करने में सहयोग देना दया का रूप है। चींटी, कबूतर, चिड़िया, कुत्ते-बिल्ली आदि पशु-पक्षियों को चुग्गा देना तथा जल का प्रबन्ध करना दया-कर्म हैं। गिरते को सम्बल देना, दुर्घटना में घायल प्राणी या प्राणियों की पीड़ा को महसूस कर सहयोग देना (पुलिस को सूचित करना, अस्पताल पहुँचाना आदि) दया का लक्षण है।

सूखा, भूकम्प, बाढ़ आदि प्राकृतिक आपदाओं से ग्रस्त जन-समुदाय के दुःख-पीड़ा को देखकर व्याकुलतावश तन, मन, धन से सहयोग देना, दिलवाना दया का विशाल रूप है।

पशु-बलि के लिए तत्पर पशु को देखकर गौतम बुद्ध का हृदय व्याकुल हो उठा। उन्होंने पशु के स्थान पर अपना शीश प्रस्तुत कर दिया। महाराजा शिवि ने तो कपोत-रक्षार्थ अपना अंग-अंग काटकर प्रस्तुत कर दिया। महर्षि दयानन्द ने उनके दूध में विष मिलाने वाले रसोइए को न केवल भागने में मद्द दी, अपितु आर्थिक सहयोग भी दिया। अमरीका के राष्ट्रपति अब्राहिम लिंकन ने संसद् जाते हुए मार्ग में एक सूअर को दलदल में फँसे-तड़पते देखा तो शाही परिधान में ही दलदल में कूद पड़े और सूअर की प्राण-रक्षा की। गोदावरी नदी के तट पर धूप से तप्त रेत पर पड़ी कन्या का चीत्कार सुनकर संत एकनाथ का हृदय पिघला और वे उसे उठाकर घर लाए। नहलाया, खिलाया-पिलाया और उसके घर पहुँचा आए।

दया धर्म का मूल तब तक है, जब तक प्राणी दया का पात्र है। अपात्र पर दया हत्या का रूप ले लेती है। शेक्सपीयर का कथन है, 'Murcy but murders, pardening those that kill.' (रोमियो एण्ड जूलियट, 3/1) अर्थात् हत्यारों को क्षमा करके दया हत्या ही करती है। स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने भी ऐसा ही कहा है, 'जब-तब, जहाँ-तहाँ, जिस-तिस पर दया नहीं करनी चाहिए। दया दिखाने की भी एक सीमा है। देश, काल, पात्र के अनुसार ही दया दिखाना उचित है।' शेखशादी ने तो एक कदम आगे बढ़कर लिखा है, 'बुरों पर दया करना भलों पर अत्याचार है।' महाराज पृथ्वीराज चौहान ने मोहम्मद गौरी पर दया दर्शा कर सतरह बार जीवन-दान दिया। परिणाम क्या हुआ? वे न केवल गौरी के हाथों मारे गए अपितु भारत में हिन्दू-साम्राज्य का भी अंत हो गया।

'मूर्खता व अज्ञान से, सारासार विवेक न करते हुए की गई दया तामसी दया है। आलसी और फोकटे लोगों को खिलाना तामसी दया है। साँप, बिच्छू, बाघ, सिंह आदि हिंस्र प्राणियों

को न मारना तामसी दया है। प्रवृत्ति से चोर, लुच्चे, हत्यारे मनुष्यों को दण्ड न देना तामसी दया है। समाज, राष्ट्र अथवा धर्म के लिए विघातक शत्रु का दमन न करना तामसी दया है। तात्पर्य, दया का वास्तविक अर्थ न समझकर अनुग्रह करने की भावना से किया गया दया का कार्य तामसी दया कहलाता है।'

'दया-बुद्धि का प्रदर्शन करना अथवा दया का व्यापार करना राजसी दया है। नाम हो, कीर्ति मिले, प्रसिद्धि हो, इसलिए रुग्णालयों को बड़े-बड़े दान दिये जाते हैं। अनाथालय चलाने अथवा गोशाला बनवाने के पीछे अनेक लोगों का इसी प्रकार का हेतु रहता है। दया करते हुए लोग अपने को देखें, अपने को दयालु एवं धार्मिक कहें, अपने चित्र छपें, इस प्रकार लोकेषणा के उद्देश्य से की गई दया राजसी दया होगी।

'नि:स्वार्थ बुद्धि से, व्यापक दृष्टि से लोककल्याण हेतु परिश्रम करना सात्विक दया है। अपना नाम हो, अधिकार-पद मिले अथवा स्वर्ग में स्थान मिले, इस प्रकार की कोई भी अभिलाषा मन में न रखकर इतरजनों की सहायता करना यथार्थ में सात्विक दया कहलाती है।' ***(जीवन मूल्य भाग 1, पृष्ठ 189-190)***

जरूरत मंद सात्विक पात्र की कष्ट-पीड़ा, दु:ख-दर्द के प्रति मन की व्याकुलता से उत्पन्न दु:खकातरता तथा पीड़ाहरण की प्रवृत्ति और प्रेरणा से सिक्त दया धर्म का मूल तत्त्व बन जाएगी। अपात्र के प्रति दया, स्वार्थ के वशीभूत दया, यश, कीर्ति, लोकेषणा से प्रेरित दया धर्म का मूल नहीं हो सकती।

शेक्सपीयर दया को परमात्मा का निजी गुण मानता है। (Murcy is an atriibute to God himself) इस परमात्म-गुण को अपने अन्त:करण में विकसित कर मानव धर्म-ध्वजा फहराते हुए 'देहान्ते तव सान्निध्यं' की आकांक्षा को पूर्ण कर सकता है।

'दया के समान न धर्म है, न दया के समान तप है, न दया के समान दान है और न दया के समान दान है और न दया के समान कोई सखा है। जो मनुष्य दु:खी जीवों का उद्धार करता है, वही संसार में सुकृती—पुण्यात्मा है। उसको नारायण के अंश से उत्पन्न समझना चाहिए। हम लोगों की ऐसी धारणा है कि मनुष्य आर्त प्राणियों के दु:ख दूर करने पर वह सुख प्राप्त करता है, जिसके सामने स्वर्ग तथा मोक्ष सम्बन्धी सुख भी कुछ नहीं है।'

(172) दादा बड़ा न भैया, सबसे बड़ा रुपैया

संकेत बिंदु—(1) रुपए का महत्त्व सर्वोपरि (2) धन ही बल का आधार (3) धन के आने पर अभिमान (4) धन का कमाल (5) उपसंहार।

इस मायावी संसार में रुपए का महत्त्व सर्वोपरि है। रुपया अर्थात् धन। रुपया धन का मूर्त रूप है, क्योंकि वह विनिमय का साधन है। उसी से विविध वस्तुओं की प्राप्ति होती है। अपने से बड़ों का सम्मान और बराबर वालों का आदर रुपए के सम्मुख गौण है। यही

कारण है कि रिश्ते-नाते भी अर्थ की सत्ता के इर्द-गिर्द घूमते हैं। गरीब रिश्तेदारी में कौन जाकर खुश होता है? गिरधर कविराय कहते हैं—

साईं सब संसार में मतलब का व्यौहार।
जब लगि पैसा गाँठ में, तब लगि ताकौ यार॥
तब लगि ताको यार यार संग ही संग डोले।
पैसा रहा न पास यार मुख सों नहिं बोले॥

आज धन का लोभी मनुष्य माता की निन्दा करता है, पिता का सम्मान नहीं करता, भाई से बात नहीं करता, नौकरों पर क्रोध करता है, पत्नी का भोग्य वस्तु से अधिक मूल्य नहीं समझता। पुत्र तथा पुत्रियों के लिए उसके पास समय नहीं, क्योंकि रुपया उनके रिश्तों में दीवार बनकर खड़ा है। वह धन के वश में है। धन के स्रोत के वश में है। फिर परिवार का सम्मान क्यों करे?

कहते हैं धन से मोह बढ़ता है। इससे कृपणता, दर्प, अभिमान, भय और उद्वेग आते हैं। महाभारत में इन्हें देहधारियों के लिए धन-जनित दु:ख माना गया है। महाभारत काल में वेदव्यास जी के विचार संगत होंगे, किन्तु कृपणता, दर्प, अभिमान और उद्वेग तो आज के धनी के सौभाग्य-चिह्न हैं। रही भय की बात, वह तो उन रिश्तेदारों से रहता ही दूर है, जो उनके धन पर ऐसे मँडराते रहते हैं; जैसे मांस पर चील। क्योंकि मांस सुरक्षित है, इसलिए चील को लगता है कि यहाँ हमें कुछ भी नहीं मिलने वाला।

रुपये या धन का महत्त्व बहुत अधिक है। धन ही बल का सबसे बड़ा आधार है। धन के प्रताप से मूर्ख भी पंडितों के समान आदर पाता है। इतना ही नहीं तो धन ही प्रभुता (सत्ता) का मूल है। भर्तृहरि के 'नीति शतक' का एक श्लोक है—

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः, स पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः, सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति॥

अर्थात् धन में सब गुण निहित है। संसार में धनी ही कुलीन, पंडित, ज्ञानी, गुणी, वक्ता और सुन्दर माना जाता है।

सम्भवत: इसी कारण लोग आज निजी सम्बन्धों को भी तिलांजलि देकर धन को महत्त्व देते हैं। स्वार्थी संसार में बाप और भैया का सम्मान धन के कारण रह गया है, अन्यथा ये अपमानित होते हैं। सर्व गुण सम्पन्न होने पर भी निर्धन इसी कारण तिरस्कार का पात्र बनता है।

फिर प्रश्न यह है कि धन आने पर धनी रिश्तेदारों को, सगे सम्बन्धियों को सम्मान क्यों दे? वे आएंगे तो स्वार्थवश, वे मिलेंगे तो चापलूसी करेंगे, वे बात करेंगे तो अनर्गल। क्यों? क्योंकि वे धनी के स्टेटस (बड़प्पन) को नहीं समझते, उसके मिलने-जुलने वालों के स्तर को नहीं पहचानते, वे उसके समय की कीमत नहीं जानते?

धन का अभिमानी किसी का सम्मान नहीं करता, किसी को इज्जत नहीं देता, आदर से बैठाता नहीं, चाय को पूछता नहीं। यह सब कुछ सम्भव है। सुकरात कहते हैं, 'अच्छा

सम्मान पाने का मार्ग यह है कि जो तुम प्रतीत होने की कामना करते हो, वैसा बनने का प्रयास करो।' सरदार वल्लभभाई पटेल तो स्पष्ट रूप से कहते हैं, 'मान-सम्मान किसी के देने से नहीं मिलते, अपनी-अपनी योग्यतानुसार मिलते हैं।'

किंवदन्ती है कि एक बार एक बाप अपने सादे वस्त्रों में अपने ऑफीसर बेटे से मिलने गया। निजी सचिव ने उसे अन्दर भेज दिया। बेटे के पास कुछ लोग बैठे थे। उसने जब बाप का रूप देखा तो उसे लज्जा आई, उसने उन्हें केबिन में भेज दिया। जब पास बैठे लोगों ने परिचय पूछा तो कह दिया—'गाँव का मुँह लगा नौकर है।' अब वह बाप तो कहेगा ही कि बेटे की आँख पर धन की, बड़प्पन की पट्टी बंध गई है जो बाप को नहीं पहचानता।

रिश्तेदारों की स्थिति देखिए। आपके पास पद है, पैसा है सम्मान है, आप किसी का काम कर देते हैं या करवा देते हैं तो वह ढिंढोरा पीट-पीटकर आपकी इतनी प्रशंसा करेगा कि सौ रिश्तेदार और काम के लिए खड़े होंगे। खड़ी कर दी न मुसीबत। और आर्थिक सहायता कर दी तो लौटाने का नाम नहीं। माँग लिया तो यही कहेंगे इसकी निगाह में तो 'बाप बड़ा न भैया, सबसे बड़ा रुपैया' ही है।

बीसवीं सदी या कलियुग को स्वार्थ-युग की संज्ञा दी है। तुलसी भी कहते हैं, 'सुर नर मुनि सब कै याही रीति, स्वारथ लागि करत सब प्रीति।' इसलिए यदि कोई धनी स्वार्थवश अपने को महत्त्व देता है तो इसमें उसका दोष क्या? वह तो 'सब कै यह रीति' पर आचरण कर रहा है।

संस्कृत की एक लोकोक्ति है—'योग्यं योग्येन योजयेत्।' अर्थात् योग्य का योग्य के साथ सम्बन्ध उत्तम होता है। योग्यता का अर्थ समान धर्मी या पद भोगना नहीं है, अपितु काबलीयत है, पात्रता है। यदि सम्बन्धी चाहे दूर के हों या समीप के अपने को धनी, ऐश्वर्यवान्, श्री सम्पन्न व्यक्ति के अनुकूल होने के भाव पैदा करेंगे तो 'दादा बड़ा न भैया, सबसे बड़ा रुपया' की कहावत झूठी पड़ जाएगी। अन्यथा तो धन की महत्ता, विलक्षणता, शक्ति तथा सामर्थ्य के सम्मुख भाई-बहन, पिता-पितामहः, बड़े-बुर्जुग का रिश्ता मृत-प्राय है। गीता में कृष्ण की भाँति धन भी मानो पुकार-पुकार कर कह रहा है—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

अरे! तू कुछ भी उचित-अनुचित कर मैं तुझे थाने से, कचहरी से यहाँ तक कि फाँसी से भी छुड़ा लाऊँगा।

(173) नर हो, न निराश करो मन को

संकेत बिंदु—(1) सूक्ति का अर्थ (2) निराशा का अर्थ जीवन से प्रसन्नता (3) निराशा पवन का कारण लुप्त होना (4) आशा की अराधना निष्फल नहीं होती (5) मन हार गया तो पराजय संभव।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की कविता 'कुछ काम करो' की यह शीर्ष पंक्ति है— *'नर हो, न निराश करो मन को।'* गुप्त जी मनुष्यों को संबोधित करते हुए कहते हैं कि हे मानव! तुम इस जग को स्वप्न अर्थात् अस्तित्वहीन न समझो। प्रभु ने तुम्हें दो हाथों का दान इसलिए दिया है कि तुम वांछित वस्तु को प्राप्त कर सको। परिश्रम से अपने योग्य गौरव को प्राप्त कर सको, सुख भोग सको। जगदीश्वर के जन होने के नाते तुम्हारे लिए दुर्लभ कुछ नहीं है। अपना मार्ग स्वयं प्रशस्त करो। इसके लिए उपलब्ध साधनों का प्रयोग करो। निज गौरव का ज्ञान रखते हुए, स्वाभिमान का ध्यान रखते हुए तथा मान को रखते हुए काम करो। सु-अवसर को हाथ से न जाने दो। उठो! मन में निराशा को स्थान न देते हुए कुछ काम करो। काम करने में ही जन्म की सार्थकता और यशस्विता है।

शक्ति के संचित कोश का नाम नर है तो निराशा निर्बलता का चिह्न है। यह परस्पर विरोध किसलिए? नर और निराशा का 6-3 का सम्बन्ध क्यों? यह तो नर के लिए लज्जा की बात है, जीवन से हार मान लेने की कुंठा है। कुंठा का उत्पत्ति स्थान है मन। मन क्या है? प्राणियों के अन्त:करण का वह अंश, जिससे वे अनुभव, इच्छा-बोध, विचार और संकल्प-विकल्प करते हैं, मन है। मन उन शक्तियों का मूल है जिसके द्वारा हम सब काम करते हैं, सब बातें जानते हैं, याद रखते हैं, सोचते-समझते हैं। मनन मन का धर्म है। मनन करने से तो मनुष्य 'मनुष्य' है, (मननात् मनुष्यः) अन्यथा मनुष्य नाम की सार्थकता ही कहाँ है?

ऐसी महत्त्वपूर्ण शक्ति को अर्थात् मन को निराश करने का अर्थ है जीवन से प्रसन्नता का लुप्त होना, पग-पग पर मृत्यु ही दिखाई देना। कारण, निराशा पतनोन्मुखी प्रवृत्ति है। इसलिए मन जब निराश होता है तो दृष्टि नकारात्मक तत्त्वों से विकृत हो जाती है और व्यापक दृष्टि के अभाव में भी (वस्तुपरक न होने के कारण) केवल आत्मलीन होकर रह जाती है। ऐसी ही स्थिति में बहादुरशाह 'जफर' रो उठे—

मेरी घुट-घुट के हसरतें मर गईं।
मैं उन हसरतों का मजार हूँ॥

इसलिए गुप्त जी कहते हैं कि मन में निराशा को मत आने दो। फिर नर के लिए निराशा शोभाजनक नहीं। कारण, पुरुष तो पुरुषार्थ का प्रतीक है।

निराशा पतन का कारण है और यह स्थिति आत्मविश्वास के अभाव में जाग्रत होती है। कारण, जब मनुष्य स्वयं आत्म-विश्वास खो बैठता है तो उसके पतन का सिरा खोजने पर भी नहीं मिलता। किन्तु पुरुषार्थी-मन पतित होकर भी नहीं हारता। कारण, वह जानता है कि जितनी बार उसका पतन होगा, उतनी बार उसे उठने का अवसर प्राप्त होगा। इसलिए वह आत्मविश्वास को हिलने नहीं देता। ऋषियों के शाप से नहुष स्वर्ग से च्युत हो गया, पर उसने मन में निराशा न आने दी। उसने कहा—'फिर भी उठूँगा और बढ़के रहूँगा मैं।' आत्मविश्वास बढ़ाने की विधि बताते हुए डेल कारनेगी लिखते हैं, 'तुम वह काम करो, जिसे तुम करते हुए डरते हो। इस प्रकार ज्यों-ज्यों तुम्हें सफलता मिलती जाएगी, तुम्हारा आत्मविश्वास बढ़ता जाएगा। इसलिए हे नर! तू मन को आशा से पूर्ण कर।'

गाँधी जी कहते हैं, 'आशा अमर है, उसकी आराधना कभी निष्फल नहीं होती।' स्वेटमार्डेन लिखते हैं, 'आशा हमारी शक्तियों को न केवल जाग्रत करती है, अपितु दुगना-तिगुना बढ़ा देती है।' गेटे कहता है, 'प्रत्येक वस्तु के सम्बन्ध में निराश होने की अपेक्षा आशावान् होना बेहतर है।' इसीलिए यजुर्वेद की प्रार्थना पंक्ति है, 'अस्माकं संत्वाशिष सत्याः न संत्वाशिषः।' अर्थात् हम आशावादी बनें, हमारी आशाएँ सफल हों।

हिन्दी की एक सूक्ति है, 'मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।' इससे भी यही शिक्षा मिलती है कि मन यदि हार गया तो पराभव होगा ही। यदि मन में विजय का संकल्प रहा तो जीत निश्चित है। इतिहास प्रसिद्ध घटनाएं इसका प्रमाण हैं—नैपोलियन की सेना ने आल्प्स-पर्वत को देखकर आगे बढ़ने से इंकार कर दिया तो वह सैनिकों को ललकारते हुए आगे बढ़ता गया। आल्प्स पर्वत नैपोलियन से पराजित हुआ। यही परिस्थिति महाराजा रणजीतसिंह के सम्मुख उपस्थित हुई। अटक नदी की उफनती जलधारा को देखकर सेना ठिठक गई तो महाराजा रणजीतसिंह स्वयं आगे बढ़े और अपने घोड़े को नदी में डाल दिया। अटक की धारा परास्त हुई और सेना अटक के पार पहुँच गई। माखनलाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा' दृढ़ संकल्प के लिए आह्वान करते हुए कहते हैं—

विश्व है असि का नहीं, संकल्प का है।
हर प्रलय का कोण, काया कल्प का है॥

अतः मैथिलीशरण गुप्त ने उचित ही कहा है—

प्रभु ने तुमको कर दान किए, सब वांछित वस्तु-विधान किए।
तुम प्राप्त करो उनको न अहो, फिर है किसका यह दोष कहो?
समझो न अलभ्य किसी धन को, नर हो, न निराश करो मन को।

(174) निन्दक नियरे राखिए, आँगन कुटी छवाय

संकेत बिंदु—(1) ईर्ष्या मानव का प्राकृतिक गुण (2) हरिशंकर परसाई द्वारा निन्दकों की श्रेणियाँ (3) निंदा से अंह को चोट (4) निंदा दोषों की निवृति में सहायक (5) निन्दक का जीवन में महत्त्व।

पर-दोषों की चर्चा करना निन्दा है। किसी व्यक्ति या वस्तु के दोष-कथन को निंदा कहा जाता है। वायु पुराण (59/101) के अनुसार 'केवल दोष प्रदर्शनपूर्वक दूसरे के वाक्यों की भर्त्सना करना अथवा स्पष्ट शब्दों में निन्दा करना निंदा कहलाता है। परनिंदा करने वाला निन्दक कहलाता है।

ईर्ष्या मानव का एक प्राकृतिक गुण है। अतः वह दूसरों के उत्कर्ष को देखकर जलता है। अपने अंदर हीनता और कमजोरी महसूस करता है। वह अपनी हीनता और कमजोरी को पर-निन्दा द्वारा दूर करता है। दूसरों की निन्दा कर वह ऐसा महसूस करता है कि वे सब निकृष्ट हैं और वह उनसे अच्छा है। शेक्सपीयर की तो यह धारण है कि, 'Be thou

as chaste as ice, as pure as snow, thou shalt not escape Calumny.' (हेमलेट, 3/1) तुम बर्फ के समान विशुद्ध रहो और हिम के समान पवित्र तो भी लोक-निन्दा से नहीं बच सकते।

हिन्दी के सुप्रसिद्ध व्यंग्य लेखक हरिशंकर परसाई ने निन्दकों की तीन श्रेणियाँ मानी हैं—

(क) निर्दोष मिथ्यावादी निन्दक—ये स्वभाव तथा प्रकृति के वशीभूत झूठ बोलते हैं। इनके मुख से सहज रूप में, बिना किसी प्रयोजन के झूठ ही निकलता है। इनके पास दूसरों के दोषों का 'कैटलॉग' होता है।

(ख) मिशनरी निन्दक—बिना किसी राग-द्वेष के अहर्निश पवित्र भाव से परनिन्दा में लीन रहने वाले मिशनरी निन्दक होते हैं। निन्दा इनके लिए 'टॉनिक' है। प्रसंग आने पर वे अपने बाप की पगड़ी भी उसी आनन्द से उछालते हैं, जिस आनन्द से अन्य लोग दुश्मन की।

(ग) ईर्ष्या-द्वेष से प्रेरित निन्दक—इस प्रकार के निन्दक अपनी हीनता और कमजोरी को छिपाने तथा अहम् की तुष्टि के लिए दूसरों की निन्दा करते हैं। ये लोग अहर्निश जलते रहते हैं। अपनी अक्षमता से पीड़ित ये बेचारे दूसरे की क्षमता को कोसते रहते हैं।

व्यक्ति अपनी निन्दा सुन नहीं पाता, कारण निन्दा से उसके अहं को ठेस लगती है। मन दु:खी होता है, अत: वह निंदक से बचता है, उससे दूर रहने की चेष्टा करता है। स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती इस प्रवृत्ति के विपरीत कहते हैं, 'अगर कोई तुम्हारी निन्दा करे तो तुम्हें प्रसन्न होना चाहिए, क्योंकि निन्दा करके वह तुम्हारा हाथ अपने ऊपर ले रहा है।' परसाई जी निन्दक से मिलने में कोई बुराई नहीं समझते, पर वे चेतावनी भी देते हैं, 'छल का धृतराष्ट्र जब आलिंगन करे तो पुतला आगे बढ़ाना चाहिए।' शेक्सपीयर भी चेतावनी भरे शब्दों में कहता है, 'Take each man's censure, but reserve the Judgment.' अर्थात् प्रत्येक की निन्दा सुन लो, परन्तु अपना निर्णय व्यक्त न करो।' तुलसीदास जी निन्दक को क्षमा का पात्र मानते हैं।

मानपुरी महाराज तो निन्दक के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए कहते हैं—

निन्दक दुर्जन की बलिहारी।
आगे पीछे देवे गारी, निर्मल काया होय हमारी॥

कबीर का संत-हृदय तो इससे भी बढ़कर कहता है—

निन्दक नियरे राखिए आँगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करे सुभाय॥

वस्तुत: मानव दोष-पूर्ण अस्थि पुंज है। दोषों से मुक्ति चित्त-शुद्धि का माध्यम है। जगत् में प्राय: मानव अपने दोष नहीं देख पाता। अन्तर्मन में झाँकने और कर्तव्य पर पुनर्विचार करने, ऊँच-नीच का चिन्तन करने का आज के व्यस्त जीवन में मानव के पास अवकाश ही कहाँ है ? फिर दोषों की निवृत्ति कैसे हो ? इसकी पूर्ति करता है निन्दक।

जिस प्रकार माली बगीचे से झाड़-फूँस निकालकर पेड़-पौधों को पनपने का सुअवसर देता है, उसी प्रकार निन्दक पर-दोषों की चर्चा करके, उस व्यक्ति विशेष के दोषों का भान उसे करा देता है। जैसे घोड़ा चाबुक लगने पर एक बार सहमता है, उसी प्रकार मानव-मन आरोपित दोषों पर एक बार चिन्तन करने पर विवश होता है। वह हृदय-मंथन करता है। चित्त-शुद्धि का एक स्वर्ण अवसर उसको प्राप्त होता है।

अत: कबीरदास जी ने ऐसे शुभेच्छु व्यक्तियों को अपने समीप ही रखने की सलाह दी है, ताकि पानी और साबुन के बिना वह आपके स्वभाव को निर्मल कर दे। किन्तु प्राय: होता यह है कि हम अपने दोषों को सुनकर क्रोधित हो जाते हैं और निन्दक की अपशब्दों या निन्दनीय शब्दों से भर्त्सना कर डालते हैं। कारण, मानव की यह दुर्बलता है कि वह अपनी बुराई सुन ही नहीं सकता। वस्तुत: यह भयंकर स्थिति है। अपनी निन्दा सुनकर अपनी मन:स्थिति विचलित कर लेना मानवता का लक्षण नहीं। इसलिए तो महर्षि वेदव्यास ने महाभारत के आदि पर्व में लिखा है, 'जो मनुष्य अपनी निन्दा सह लेता है, उसने मानो सारे जगत् पर विजय प्राप्त कर ली।'

अध्ययन की कमी का ज्ञान अध्यापक करा सकता है, शरीर के रोग का भान डॉक्टर या वैद्य करा सकता है, मशीन की खराबी का कारण मैकेनिक बता सकता है, पेड़-पौधों के विकास रुकने का कारण माली बता सकता है, परन्तु मानव के स्वभाव की कमियों का दिग्दर्शन कौन कराए? सन्त-महापुरुष सामाजिक और समूह रूप में मानव के सत्पथ की चर्चा करते हैं, धार्मिक ग्रंथ और सांस्कृतिक पुस्तकें भी मानव-कल्याण का सामूहिक चिन्तन करती हैं, तब व्यक्ति-विशेष के दोषों की शिल्य-क्रिया कौन करे? 'निन्दक' इस भार को वहन करता है। 'निन्दक' इस कार्य को पुण्यकर्म समझ कर बिना पारिश्रमिक लिए पूर्ण करता है। वह मेरी-तेरी, उसकी निन्दा कर मेरे-तेरे, उसके अवगुणों की शल्य-क्रिया करता है। अत: जीवन में जो महत्त्व अध्यापक, गुरु, डॉक्टर या वैद्य का है, वही महत्त्व निन्दक का है। अत: उसे समीप रखने में ही जीवन की सार्थकता है।

निन्दा की मानवीय प्रवृत्ति से अपने जीवन को कलुपित होने से बचाने का सहज और सुलभ उपाय है कि निन्दक को समीप रखो, ताकि वह आपके स्वभाव की कमियों को आप पर बार-बार प्रकट करता रहे और आप इसके लिए उसका धन्यवाद करते हुए अपने स्वभाव में क्रमश: परिवर्तन कर सको, अपने दोषों को त्याग सको।

समीप रहने वाला मानव अपने पड़ोसी की निन्दा करने से घबराता भी है। कारण, पड़ोसीपन के दैनन्दिन व्यवहार के कारण जो प्रेम उत्पन्न होता है, उससे उसमें बुराई भी अच्छाई लगने लगती है। बुराई और अच्छाई को परखने का कोई निश्चित मापदंड तो है नहीं! वह तो मानव का अपना सोचने का दृष्टिकोण ही है। इस प्रकार निन्दक को समीप रखकर हम उसका हृदय-परिवर्तन भी कर सकते हैं। इससे बढ़कर मानव-सेवा और क्या हो सकती है?

निंदक दूरी न कीजिए, दीजे आदर मान।
निरमल तन-मन सब करै, बकि बकि आनहिं आन॥ —कबीर

(175) निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल

संकेत बिंदु—(1) निजभाषा का अर्थ-हिंदी (2) संपूर्ण भारत में हिन्दी का अनिवार्य प्रयोग (3) हिंदी की उन्नति सब उन्नति का मूल (4) भाषा मानव मस्तिष्क की प्रयोगशाला (5) राष्ट्र की वैज्ञानिक और औद्योगिक उन्नति प्रगति के साक्ष्य।

अपने देश की भापा के विकास और प्रचार-प्रसार की दृष्टि से आगे बढ़ने में ही देश की उन्नति और महिमा है। यह एक ध्रुव सत्य है। इसकी अवहेलना से राष्ट्र-विकास का तो प्रश्न ही नहीं उठता, उलटा देश की उन्नति अवरुद्ध हो जाएगी। प्रगति के पग रुक जाएँगे।

निज भाषा का अर्थ मातृभाषा नहीं है। कारण, प्रान्तीय भाषाओं की उन्नति से प्रांतीय सभ्यता, संस्कृति और साहित्य की उन्नति होगी, किन्तु सम्पूर्ण देश की नहीं। भारत के 25 स्वशासित प्रांत तथा 7 केन्द्रशासित प्रांत जब अपनी-अपनी भाषा की उन्नति में सर्व-उन्नति का फल देखना चाहेंगे, तो भारत 32 भागों में विभक्त होगा और प्रत्येक प्रांत स्वतन्त्र राष्ट्र। अत: 'निज भाषा' की यह व्याख्या संकीर्णता पूर्ण तथा विघटनकारी होगी।

निज भाषा का अभिप्राय भारत देश की भाषा से है। भारत देश की भाषा है—हिन्दी। नागरी लिपि में लिखी जाने वाली खड़ी बोली ही हिन्दी है। खड़ी बोली हिन्दी के विकास से तात्पर्य है कि उसकी इतनी शक्ति बढ़े की वह वात्सल्य, करुणा, ईश्वरानुभूति, अलौकिक अनुभूति, क्रोध, ईर्ष्या, जुगुप्सा आदि भावों तथा देश और प्रकृति के भिन्न-भिन्न विचारों को व्यक्त करने में पूर्णतः समर्थ हो। दूसरी ओर, वैज्ञानिक तकनीकी, प्रौद्योगिक, राजनीतिक, कानूनी, विभिन्न कलाओं तथा प्रशासनिक भावों को अभिव्यक्त करने में सक्षम हो। तीसरी ओर, उसका साहित्य इतना विकसित हो कि न केवल काव्य तथा गद्य-विधाओं (उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी, निबन्ध, संस्मरण, जीवनी) में पुस्तकें छपें, अपितु देश-विकास के प्रत्येक क्षेत्र से वैज्ञानिक, तकनीकी, औद्योगिक, कानूनी, राजनीतिक, कला, प्रशासनिक आदि से सम्बद्ध पुस्तकें उपलब्ध हों।

निज भाषा उन्नति से दूसरा अभिप्राय स्व-भापा के प्रचार-प्रसार से है। खेद का विषय है कि अभी तो सम्पूर्ण भारत में ही हिन्दी का प्रचार-प्रसार नहीं है। इतना ही नहीं, राजनीतिज्ञों की कृपा (?) के कारण भाषा की दृष्टि से भारत दो भागों में बंट गया है—हिन्दी भाषी प्रांत तथा अहिन्दी भाषी प्रांत। देश में हिन्दी का प्रचार-प्रसार बढ़े इसके लिए देश कृत्रिम तथा राजनीतिक-विभाजन को समाप्त करना होगा। राष्ट्र-भाषा के रूप में सम्पूर्ण भारत में हिन्दी का प्रयोग अनिवार्य करना होगा। हिन्दी साहित्य की बहुचर्चित और अमूल्य पुस्तकों के पाठक सम्पूर्ण भारत में तैयार करने होंगे तथा इनका अनुवाद प्रांतीय भाषाओं में उपलब्ध कराना होगा।

राजकीय कार्यों में अपवाद रूप में जहाँ हिन्दी-शब्दावली सक्षम नहीं है, अंग्रेजी

शब्दावली को स्वीकार करते हुए प्रशासन में हिन्दी की अनिवार्यता घोषित करनी होगी। राजकीय पदोन्नतियों में हिन्दी की परीक्षा का उपाधि-पत्र (प्रमाण-पत्र नहीं) भी एक अनिवार्य शर्त हो। साथ ही, 'पब्लिक स्कूल-परम्परा' को जड़मूल से समाप्त करना होगा तथा दैनिक जीवन में हिन्दी-व्यवहार को प्राथमिकता देनी होगी।

हिन्दी की उन्नति 'सब उन्नति का मूल' कैसे है ? हिन्दी के विकास तथा प्रचार-प्रसार में देश की प्रगति और महिमा के बीज कैसे छुपे हैं ?

महावीरप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं, 'अपने देश, अपनी जाति का उपकार और कल्याण अपनी ही भाषा के साहित्य की उन्नति से हो सकता है।' महात्मा गाँधी कहते हैं, 'अपनी भाषा के ज्ञान के बिना कोई सच्चा देशभक्त नहीं बन सकता। समाज का सुधार अपनी भाषा से ही हो सकता है। हमारे व्यवहार में सफलता और उत्कृष्टता भी हमारी अपनी भाषा से ही आएगी।' कविवर बल्लतोल कहते हैं, 'आपका मस्तक यदि अपनी भाषा के सामने भक्ति से झुक न जाए तो फिर वह कैसे उठ सकता है।' अज्ञेय जी कहते हैं, 'किसी भी समाज को अनिवार्यतः अपनी भाषा में ही जीना होगा। नहीं तो उसकी अस्मिता कुण्ठित होगी ही होगी और उसमें आत्म-बहिष्कार के विचार प्रकट होंगे।'

किसी राष्ट्र की संस्कृति उस राष्ट्र की आत्मा है। राष्ट्र की जनता उस राष्ट्र का शरीर है। उस जनता की वाणी राष्ट्र की भाषा है। डॉ. जानसन की धारणा है, 'भाषा विचार की पोशाक है।' भाषा सभ्यता और संस्कृति की वाहन है ओर उसका अंग भी। माँ के दूध के साथ जो संस्कार मिलते हैं और जो मीठे शब्द सुनाई देते हैं, उनके और विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय के बीच जो मेल होना चाहिए वह अपनी भाषा द्वारा ही सम्भव है। विदेशी भाषा द्वारा संस्कार-रोपण असम्भव है। अतः निज भाषा उन्नति से ही देश की सांस्कृतिक उन्नति सम्भव है। आज के 'मम्मी, डैड, अंकल, आंटी' की संस्कृति बालकों पर विदेशी भाषा का भारतीय-संस्कृति पर आक्रमण ही तो है।

कालरिज कहते हैं, 'भाषा मानव-मस्तिष्क की वह प्रयोगशाला है, जिसमें अतीत की सफलताओं के जय-स्मारक और भावी सफलताओं के लिए अस्त्र-शस्त्र, एक सिक्के के दो पहलुओं की तरह साथ रहते हैं।' इसका अर्थ है कि भाषा के द्वारा ही प्राचीन गौरव अक्षुण्ण रहता है और उज्ज्वल भविष्य के बीज उसमें निहित रहते हैं। भारत के प्राचीन गौरव की महिमा को जीवित रखने के लिए विश्व में उसकी विजय-पताका फहराने के लिए हिन्दी की उन्नति अनिवार्य है।

राष्ट्र की वैज्ञानिक तथा औद्योगिक उन्नति और प्रगति के साक्ष्य हैं—जापान और अमेरिका। अमेरिका वैज्ञानिक दृष्टि से और जापान औद्योगिक प्रगति से विश्व में सर्वोच्च शिखर पर आसीन हैं। इन दोनों को अपनी-अपनी भाषा पर गर्व है। ये अपनी-अपनी भाषा द्वारा राष्ट्र को यश प्रदान कराने में गौरव अनुभव करते हैं। जीवन के कुछ क्षेत्रों में हिन्दी अभी अक्षम है, पर विश्वास रखिए, जब उसका आम प्रचलन होगा तो हिन्दी भाषा का शरीर दुरुस्त, उसकी सूक्ष्माति-सूक्ष्म नाड़ियाँ तैयार हो जाएँगी एवं नसों में रक्त प्रवाह और

हृदय में जीवन स्पन्दन पैदा हो जाएगा, तब भारत में हिन्दी का यौवन वसन्त की नई कल्पनाएँ करता हुआ उन्नति के नए-नए मार्ग खोलेगा। अतः भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का यह कथन सत्य है—

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटे न हिय को सूल॥

(176) निर्धनता : एक अभिशाप

संकेत बिंदु—(1) निर्धन के लिए अभिशाप (2) निर्धनता कलह का कारण (3) निर्धनता से लज्जा और चिंता उत्पन्न (4) निर्धनता मृत्यु से भी बुरा (5) उपसंहार।

निर्धनता स्वयं में एक पाप है, भर्त्सना और धिक्कार योग्य है, अनिष्ट कामना के उद्देश्य से किए जाने वाले कथन का रूप है, इसलिए यह भयंकर अभिशाप है।

निर्धनता निर्धन के लिए अभिशाप है, किन्तु निर्धन कौन है ? जिसकी आर्थिक स्थिति शोचनीय है, क्या वही निर्धन है ? जिसके पास खाने के लिए अन्न पहनने के लिए कपड़े तथा रहने के लिए झोंपड़ी नहीं है, क्या वही गरीब है ? नहीं। डिनियल का कहना है, 'वह गरीब नहीं है, जिसके पास कम धन है वरन् गरीब वह है, जिसकी अभिलाषाएँ बढ़ी हुई हैं।' संस्कृत की एक सूक्ति भी इसी का समर्थन करती हुई कहती है—स तु भवति दरिद्रः यस्य तृष्णा विशाला।' ब्रूएयर का कथन है; 'गरीब वह है, जिसका व्यय आय से अधिक है।' जार्ज बर्नाडशा मानते हैं कि 'सबसे बड़ी बुराई तथा निकृष्टतम अपराध निर्धनता है।' ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार, 'जिस-जिस घर में पति-पत्नी एक-दूसरे के प्रति समभाव नहीं रखते, वहीं दरिद्रता का निवास है। जो पुत्रहीन है उसका कुल निर्धन है। जिसका हार्दिक मित्र नहीं, उसका जीवन निर्धन है। जो भूखे हैं, उसके लिए दसों दिशाएँ निर्धन हैं।' दण्डी के अनुसार, 'अवज्ञा जिसकी बहन है, वह दारिद्र्य है।' एमर्सन निर्धनता के सत्य का उद्घाटन करते हुए कहते हैं—'अपने को निर्धन अनुभव करने में ही निर्धनता है।' वे सब विचार अपने स्थान पर ठीक हैं, किन्तु सामान्यतः निर्धन वही है, जिसके पास धन (रुपया, पैसा, सोना, चाँदी या पर्याप्त अन्न तथा अन्य अचल सम्पत्ति) नहीं है।

निर्धनता की परिभाषा कुछ भी करो, पर है वह एक अभिशाप ही। कविवर नरोत्तमदास सुदामा की निर्धनता का चित्रण करते हुए लिखते हैं ***'सीस पगा न झगा तन में।'*** × × ***'धोती फटी और लटी दुपटी अरु, पाय उपानहु की नहिं सामा।'*** और घर का हाल यह है, ***'या घर ते कबहूँ न गयो पिय, टूटो तवा अरु फूटी कठौती।'*** तो तुलसी कवितावली के उत्तरकाण्ड में निर्धनता का चित्रण करते हुए कहते हैं—***'बारे ते ललात-बिललात द्वार-द्वार दीन, जानत हौं चारि फल चारि ही चनन को'*** (चने के चार दानों को ही वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के चार पल समझता था) विद्यापति तो कहते हैं, ***'बारि विहीन सर केओ नहि पूछ।'*** दीनदयालगिरि तो एक पग आगे बढ़ाते हुए लिखते हैं—

लखि दरिद्र को दूर तें, लोग करें अपमान।
जाचक जन ज्यों देखि के, भूखत हैं बहु स्वान॥

निर्धनता कलह का कारण है। मित्रों को अलग करने का मूल है और है प्राणनाशक रोग। भास के मत से 'निर्धनता मनुष्य के लिए उच्छ्वासयुक्त मरण है।' अरस्तू की दृष्टि में, 'निर्धनता क्रांति और अपराध की जननी है।' हैजलिट के अनुसार, 'निर्धनता विनम्रता की परीक्षा और मित्रता की कसौटी है।'

संस्कृत नाटक 'मृच्छकटिक' में नाट्यकर्ता शूद्रक निर्धनता को सभी विपत्तियों की जड़ मानते हुए लिखते हैं—

निर्धनता से लज्जा आती है। लज्जित मनुष्य तेजहीन हो जाता है। तेजहीन लोक से तिरस्कृत होता है। तिरस्कार से ग्लानि की प्राप्ति होती हैं। ग्लानि होने पर शोक उत्पन्न होता है। शोकातुर होने पर बुद्धि क्षीण हो जाती है और बुद्धि रहित होने पर मनुष्य नाश को प्राप्त होता है। वे आगे लिखते हैं,

निर्धनता मनुष्य में चिंता उत्पन्न करती है, दूसरों से अपमान करवाती है, शत्रुता उत्पन्न करती है, मित्रों से घृणा का पात्र बनाती है और आत्मीय जनों से विरोध कराती है। निर्धन व्यक्ति को घर छोड़कर चले जाने की इच्छा होती है, उसे स्त्री से भी अपमान सहना पड़ता है। शोकाग्नि हृदय को एक बार ही जला नहीं डालती, अपितु संतप्त करती रहती है। दैववश निर्धनता पर उनकी टिप्पणी है, 'दैववश मनुष्य जब दरिद्रता को प्राप्त होता है तब उसके मित्र भी शत्रु हो जाते हैं, यहाँ तक कि चिरकाल से अनुरक्त जन भी विरक्त हो जाते हैं।'

दरिद्रता के कारण पुरुष के बंधुजन उसकी वाणी में विश्वास नहीं करते, उसकी मनस्विता हँसी का विषय बन जाती है। शीलवान् की शांति भी मलीन हो जाती है, बिना शत्रुता के ही मित्र विमुख हो जाते हैं। आपत्तियाँ बड़ी हो जाती हैं। जो पाप-कर्म अन्य लोगों द्वारा किया होता है, उसे भी उसी का किया हुआ मानने लगते हैं।

निर्धनता में मन:कामनाएँ भी उठ-उठकर विलीन होती रहती है। इसलिए तुलसी कहते हैं, ***'नहिं दारिद सम दुःख जग माहीं।'*** क्षेमेन्द्र ने तो 'दारिद्र्यं मरणं लोके' कहकर संसार में शरीरधारियों की दरिद्रता को मृत्यु माना है। हितोपदेश तो इसे मृत्यु से भी बुरा मानता है, क्योंकि 'अल्पक्लेशेन मरणं दारिद्र्यमतिदु:सहम्।' अर्थात् मरण में थोड़ा कष्ट होता है जबकि दारिद्र्य अति दु:सह होता है।

महाभारत के रचयिता वेदव्यास की धारणा है, 'धन का अभाव ही मनुष्य का वध है। कारण, मोह के वशीभूत होकर वह क्रूरता पूर्ण कर्म करने लगता है। परिणामत: उसकी सारी क्रियाएँ छिन्न-भिन्न हो जाती हैं।'

वस्तुत: गरीबी एक अभिशाप है, जहाँ भाई का नाता भी 'पोजीशन' (आर्थिक स्थिति) की मर्यादाओं में बँधा है, जहाँ श्रद्धा-भक्ति यहाँ तक कि जीवन-संगिनी पत्नी के प्रेम की भी कीमत है। इसीलिए महर्षि अरविन्द की मान्यता है, 'निर्धनता का होना एक अन्यायपूर्ण तथा कुव्यवस्थित समाज का प्रमाण है और हमारी सार्वजनिक दानशीलता केवल एक डाकू के विवेक का प्रथम और धीमा जागरण है।'

(177) परहित सरिस धर्म नहीं भाई

संकेत बिंदु—(1) निस्वार्थ कार्य परहित (2) शारीरिक शक्ति और सहनशीलता (3) परहित समान दूसरा धर्म नहीं (4) परोपकार के लिए स्वयं को कष्ट (5) परहित विविध रूपी।

रामचरितमानस में श्री राम भरत की विनती पर साधु-असाधु का भेद बताने के बाद कहते हैं—'*परहित सरिस धर्म नहीं भाई*' और '*पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।*' (7/41/1) अर्थात् परहित के समान अन्य कोई श्रेष्ठ धर्म नहीं है और पर-पीड़ा सम अन्य कोई निम्न पाप नहीं है।

स्वार्थ-निरपेक्ष रहकर दूसरों के हितार्थ कार्य करना परहित है। पर-पीड़ाहरण परहित है। पारस्परिक विरोध की भावना घटाना और प्रेम भाव बढ़ाना परहित है। दीन, दुःखी, दुर्बल की सहायता परहित है। आवश्यकता पड़ने पर निःस्वार्थ भाव से दूसरों को सहयोग देना परहित है। मन, वचन और कर्म से समाज का मंगल साधन परहित है।

'परहित सरिस धर्म नहीं' का अर्थ हुआ—परहित (परोपकार) ही इस लोक में सर्व-सुख तथा सर्व उन्नति का कारण है और मृत्यु होने पर आवागमन से छुटकारा प्राप्त करने का साधन है।

परहित से व्यक्ति में सक्रिय शारीरिक शक्ति बनी रहती है। शरीर बलवान् होकर अपराजेयता को प्राप्त होता है। सहनशील होने से वह अशांत नहीं होता। धैर्य उसे विचलित नहीं होने देता। बल उसमें कुछ कर सकने का सामर्थ्य उत्पन्न करता है। वचन-परिपालन से उसमें आत्मविश्वास जागृत होता है। परिणामस्वरूप परहित से श्री की समृद्धि होती है। सुखपूर्वक लौकिक जीवन में उन्नति करता हुआ व्यक्ति अन्त में इन्द्रियों को वश में रखते हुए प्राण त्याग कर जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त होता है।

हर्ष कहते हैं, 'एक सूर्य ही धन्य है, जिसका प्रयास परहित करने में है।' चन्द्रमा परहित निरत होकर जगत् को शीतलता प्रदान कर अपना धर्म निबाहता है। मेघ परहित बरस कर जगत् का पोषण करते हैं। लताएँ और वृक्ष परहित के लिए फलते हैं। नदियाँ परहित बहती हैं। गौएं परहित अमृतमय दूध देती हैं। कालिदास कहते हैं, 'वृक्ष अपने सिर पर तीव्र धूप को सहन करता है और अपनी छाया से अपने आश्रितों के सन्ताप दूर करता है।' वायु निरन्तर बहकर जीवन देती है। समुद्र अपने रत्न परहित लुटाता है। प्रकृति का कण-कण परहित समर्पित है, वह स्वार्थ से ऊपर है।

'असुर विनाश' श्री राम का धर्म था। 'परित्राणाय साधूनाम्' तथा 'विनाशाय च दुष्कृताम्' कहकर योगेश्वर श्री कृष्ण ने अपना धर्म पहचाना। सिख गुरुओं ने हिन्दू धर्म की रक्षा को धर्म माना। 'हिन्दुअन की लाज' रखना ही शिवाजी ने अपना धर्म माना। जन-सेवा को गाँधी जी ने अपने अभ्युदय का सम्बल माना। तुलसी ने हिन्दू जीवन की व्याख्या

में सर्वोच्च कल्याण के दर्शन किए। स्वामी विवेकानन्द ने दीन-दुखियों, पीड़ितों की सेवा में जीवन की कृतार्थता मानी। ये महापुरुष परहित को धर्म समझकर जीवन-भर कार्य करते रहे। इसीलिए ऋद्धि-सिद्धि इनके चरण चूमती रही। यश और कीर्ति इनके पीछे दौड़ती रही। परलोक में मोक्ष का द्वार उनके स्वागत में खुला रहा।

परहित के समान दूसरा धर्म अर्थात् कर्तव्य भी नहीं है। प्यासे को पानी पिलाना, भूखे को भोजन कराना, अंधे को मार्ग दर्शाना, नंगे को वस्त्र देना, दरिद्र के दुःख दूर करना, पीड़ित की पीड़ा हरना, पतित को पावन करना, अशांत को शांति देना मानव के सहज धर्म हैं। हरिऔध जी प्रियप्रवास में लिखते हैं—

विपत्ति से रक्षण सर्वभूत का, सहाय होना असहाय का।
उबारना संकट से स्वजाति का, मनुष्य का सर्वप्रधान धर्म है॥

'परोपकारः पुण्याय' कहकर व्यास जी ने परहित को ही धर्म माना। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः' की कामना करके ऋषि-मुनियों ने परहित को धर्म माना। 'परोपकाराय सतां विभूतयः' कहकर भर्तृहरि ने परहित में धर्म के चरम लक्ष्य के दर्शन किए। मैथिलीशरण गुप्त ने *'मनुष्य है वही जो मनुष्य के लिए मरे'* कहकर परहित में धर्म के कर्तव्य और कृतार्थता को समझा।

परोपकार को धर्म समझने का अर्थ कंटकाकीर्ण मार्ग पर चलकर अपने तन-मन को कष्टों की अग्नि में झुलसाना है। फूलों की सेज त्याग कर कांटों की चुभन से प्यार करना है। दुःख में सुख के, पीड़ा में शांति के, कष्ट में आनन्द के, त्याग में सच्चिदानन्द के तथा बलिदान में मोक्ष के दर्शन करना है। ईसामसीह का सूली पर चढ़ना, सुकरात का जहर पीना, दधीचि का अस्थि-दान, राजा शिवि का अपने शरीर का मांस दान करना, दयानन्द का विषपान और शहीदों का बलिदान परहित धर्म-पालन में सच्चिदानन्द की प्राप्ति ही तो है।

परहित विविध रूप वाला है। व्यक्तिगत रूप में मनुष्य यज्ञ, अध्ययन, दान, तप, सत्य, क्षमा, मन और इन्द्रियों का संयम तथा लोभ-त्याग द्वारा परहित का धर्म निबाह सकता है। ऋषि-मुनियों का जीवन इसका उदाहरण है। 'धर्मो रक्षति रक्षितः' को सिद्धान्त वाक्य मान कर धर्म-रक्षाहित अपना जीवन बिता सकता है। साधु-संन्यासी इसके उदाहरण हैं। समाज में फैली कुरीतियों, कुप्रथाओं, अन्ध-विश्वासों को दूर करके मनुष्यों को सचेत करने में धर्म की कृतार्थता मान सकता है। महर्षि दयानन्द और डॉ. हेडगेवार इसके उदाहरण हैं। राष्ट्र-हित को ही धर्म समझने वाले अपने जीवन को मोक्ष की प्राप्ति का अधिकारी मान सकते हैं।

परहित में धर्म के दर्शन करने वाले लोग सैकड़ों यज्ञों से प्राप्त पुण्य से भी अधिक पुण्य लाभ करते हैं। वे इहलोक में सुख, शांति, ऐश्वर्य तथा यश अर्जित करते हैं। तुलसी के वचन इसके प्रमाण हैं— *'परहित बस जिन्ह के मन माही, तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं।'* ऐसे लोग अनचाहे में यश के भागी होते हैं। *'परहित लागि तजहिं जो देही। सन्तत संत प्रशंसहि तेही।'* राम, कृष्ण, दयानन्द, विवेकानन्द आदि सैकड़ों महापुरुष इसके उदाहरण हैं। वे मृत्यु की वेदना को हँसते हुए सहकर मोक्ष के भागी बनते हैं।

(178) पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं

संकेत बिंदु—(1) सूक्ति का अर्थ (2) पराधीनता तो विवशता है (3) काममना मानव की शाश्वत साथी (4) विवशता में सुख नहीं (5) मानव अपनी प्रकृति के कारण पराधीन।

रामचरितमानस में शिव-पार्वती के विवाह का प्रसंग है। पार्वती को बिदा करते समय माता मेना जी ने पहले तो पार्वती को शिक्षा दी, फिर वचन कहते-कहते उनके नेत्रों में जल भर आया। कन्या को छाती से लगाते हुए बोलीं, '*कत बिधि सृजीं नारि जग माहिं। पराधीन सपनेहुँ सुख नाहिं।*' क्योंकि उन्हें लगा कि अब पार्वती को पति के अधीन रहना होगा।

'पराधीन सपनेहु सुख नाहीं' के पूर्व जब तुलसी ने '*कत बिधि सृजीं नारि जग माहिं*' जोड़ा, तो लगता है संतान-हीन तुलसी भी उमा की बिदाई पर रो पड़े। स्त्री तो सदा पराधीन रहती ही है। 'पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने। वार्द्धक्ये तु सुतो रक्षेत्, न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति।' मनुजी कहते हैं—कन्या बालपन में माता-पिता के अधीन है, वे जहाँ चाहें विवाह करें। युवती हुई, विवाहोपरान्त पति के अधीन हो गई। बूढ़ी हुई, अधीनता बदल गई। वह पुत्रों के अधीन हो गई। शकुन्तला की बिदाई पर उसके पालनकर्ता पिता महर्षि कण्व भी रो पड़े थे। 'पता नहीं शकुन्तला को सुख मिलेगा भी या नहीं।'

पराधीनता तो एक विवशता है। पर मनुष्य इसके बिना मनुष्यता प्राप्त कर ही नहीं सकता। पराधीनता उसका आजन्म पल्ला नहीं छोड़ती। इसीलिए जन्म लेते ही शिशु रोता है, पराधीनतामय भावी जीवन जीने के लिए विलाप करता है। उसका शैशव माता के आश्रय में बीता। किशोर हुआ पिता के संरक्षण में रहा। ज्ञान प्राप्ति के लिए गुरु की आज्ञा-आदेश का पालन किया। विवाह हुआ तो पत्नी की इच्छाओं पर नाचा। संतान हुई तो उसके पालन-पोषण में खोया। उदरपूर्ति के लिए नौकरी की तो बॉस (वरिष्ठ अधिकारी) की गुलामी झेली। व्यापारी बना तो पद-पद पर गर्व-गौरव ने धोखा दिया। वार्द्धक्य आया तो स्वप्न चूर-चूर हुए। तन की दासता झेली।

इस प्रकार मनुष्य काल की शाश्वत पराधीनता ओढ़े हुए है। वाल्मीकि इस विचार का समर्थन करते हुए लिखते हैं—

नात्मनः कामकारो हि पुरुषोऽय मनीश्वरः।
इतश्चेतश्चैनं कृतान्तः परिकर्षति॥

मनुष्य अपनी इच्छा के अनुसार कुछ नहीं कर सकता। वह पराधीन होने के कारण असमर्थ है। दैव उसे उधर-उधर खींचता रहता है।

काल की प्रिया है कामना। कामना प्रत्येक मानव की शाश्वत साथी है। योग्य, विद्वान् होने की अभिलाषा, संतान होने पर उसके उज्ज्वल भविष्य की अभिलाषा। धन-सम्पत्ति और वैभव की कामना, लोकेषणा की चाह और अंत में मुक्ति की इच्छा। सारा जीवन इस

कालप्रिया इच्छा के पराधीन है। जब तक कामना है, तब तक सुख के दर्शन स्वप्न में भी नहीं होंगे। गीता में भगवान् कृष्ण कहते हैं—

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमाँश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधि गच्छति।।

अर्थात् जो मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओं को त्यागकर निःस्पृह हो जाता है, ममता तथा अहंकार छोड़ देता है, वही शान्ति पाता है।

वियोगी हरि ने पराधीनजन की परिभाषा करते हुए लिखा है—

पर भाषा, पर भाव, पर भूषण, पर परिधान।
पराधीन, जन की अहै, यह पूरी पहचान।।

केवल मुगल या ब्रिटिशदासत्व काल के भारत पर ही नहीं आज के स्वतंत्र भारत भी पर यह परिभाषा सटीक ठीक उतरती है। 'स्वतंत्र' होते हुए भी हम परतंत्र हैं—पर-भाषा (अंग्रेजी) के कारण, पर-भाव (पाश्चात्य संस्कृति) के कारण, पर भूषण (विदेश जीवन-मूल्य) के कारण तथा पर-परिधान (विदेशी पहनाना व सभ्यता) के कारण।

पराधीनता में रहता हुआ व्यक्ति कई बार उसे ही वास्तविक मानता हुआ 'पर' में इतना आसक्त हो जाता है कि 'स्व' को भूल जाता है। पिजरे में बंद रहने का अभ्यस्त पक्षी द्वार खुला होने पर कुछ क्षण बाहर रहने का आनन्द तो लेना चाहेगा, पर लौटकर पिंजरे में स्वतः आएगा। पराधीनता का परिसर न छोड़ना उसकी विवशता है। विवशता में सुख कहाँ, सुखद कल्पनाएँ कहाँ? आज का भारत सहस्रों वर्षों की दासता के कारण 'स्व' को भूल गया। ***'जैसे उड़ि जहाज को पंछी पुनि जहाज पै आवै'*** के अनुसार—लौट-लौट कर विदेशी सभ्यता-संस्कृति और भाषा के 'पर' को आत्मसात् कर रहा है।

पंखों की उड़ान में उड़ते पक्षी, पंख फैलाकर नाचते मयूर, घन-घटाओं में उड़ते श्वेत बगुले, चौकड़ी भरते हिरण, मस्ती में झूमते हाथी, निर्भीकता से विचरते सिंह, स्वच्छन्द गति से बहते झरने, उन्माद में उमड़ता उदधि 'स्व' में सुख, सौन्दर्य और स्वप्निल जीवन के प्रतीक हैं। स्वाधीन जीवन दिन में सुख और स्वप्न में चैन का स्मरण करवाते हैं।

मानव पशु-पक्षी की-सी स्वतंत्र चेतना साकार रूप में ग्रहण नहीं कर सकता। करेगा तो वह उसकी उच्छृंखलता होगी। कारण, मनुष्य सामाजिक प्राणी है। समाज के नियम विधान से बद्ध है। परिवार, समाज, राष्ट्र के प्रति उसके कुछ दायित्व हैं। उन दायित्वों को निभाने में ही जीवन की सार्थकता है।

अधीनता के 'पर' में दुःख है, कष्ट है, पीड़ा है, जीवन मूल्यों की अवहेलना है, सुख शांति का तिरोभाव है, भविष्य की सुनहरी कल्पनाओं की अपंगता है। जीवन के बोझ की पग-पग की पीड़ा की प्रताड़ना है। यदि इस अधीनता में 'स्व' की अनुभूति उपजे तो जीवन में प्रकाश है, प्रगति है, समृद्धि है, यशस्विता है, गौरव है। शिवाजी औरंगजेब की कैद में 'पर-अधीन' होते हुए 'स्व-अधीनता' का भाव लिए थे। इसी भाव ने उन्हें कैद से मुक्ति दिलाई। इन्दिरा जी के आपत्काल में पराधीन भारतवासी अन्याय-अत्याचार सहते

हुए भी 'स्व' से विमुख नहीं हुए। इस 'स्व' के तेज से भारत का भाग्य पलटा। आपत्काल मिटा, इन्दिरा शासनच्युत हुईं।

मानव अपनी प्रकृति के कारण पराधीन है। परिवार में समाज और राष्ट्र का घटक होने के नाते परवश है। समाज राष्ट्र पर और राष्ट्र समाज पर आश्रित है। विश्व का हर राष्ट्र आज दूसरे राष्ट्र पर आश्रित है। यह पर-आश्रय, परवशता, विवशता 'सपनेहुँ सुख नाहीं' अगर होती तो जगती जड़ हो जाती। काल की गति अवरुद्ध हो जाती। इस 'पर' में कर्म और कर्तव्य का 'स्व' छिपा है। संसार को हँसते देखने की मंगल-भावना छिपी है। इसीलिए इस मंगलमय 'पर' में जीवन का सत्, चित और आनन्द है और 'स्व' के अभाव में 'सपनेहु सुख नाहिं' की सत्य सार्थकता।

(179) परिश्रम सफलता की कुंजी है

संकेत बिंदु—(1) मानसिक और शारीरिक श्रम (2) सफलता के सिद्धांत (3) भाग्य और सफलता (4) परिश्रम सुख-समृद्धि का कारण (5) इतिहास और पुराण में परिश्रम के उदाहरण।

मन लगाकर किया जाने वाला मानसिक अथवा शारीरिक श्रम परिश्रम है। मन और बुद्धि के संयोग से ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों का यथासम्भव उपयोग परिश्रम है। सफल होने की अवस्था या भाव का नाम सफलता है। दूसरे शब्दों में कार्य की सिद्धि सफलता है। परिश्रम उद्देश्य की सिद्धि का सरल साधन (कुंजी) है।

'परिश्रम सफलता की कुंजी है', कथन का तात्पर्य है कि मानसिक-शारीरिक श्रम उद्देश्य सिद्धि का सरल साधन है। प्रतिभा जागृत करने का उपाय है, उन्नति का द्वार है, प्रगति का सोपान है, यश का मेरुदण्ड है। कारण, 'नहि प्रतिज्ञामात्रेण अर्थ: सिद्धि:' (अर्थात् प्रतिज्ञा मात्र से ही अर्थ सिद्धि नहीं हो जाती) और 'न जाण मत्रेण कज्जनिप्पत्ती' (जान लेने मात्र से कार्य की सिद्धि नहीं हो जाती।) हितोपदेश ने इस बात का समर्थन करते हुए कहा कि केवल इच्छा मात्र से कार्य पूर्ण नहीं होते। यदि यह सम्भव होता तो सोते हुए सिंह के मुख में पशु स्वयमेव प्रवेश कर जाते।

सफलता रूपी ताले को खोलने के लिए चाहिए परिश्रम रूपी कुंजी। स्वामी रामतीर्थ का विचार है, 'सफलता का पहला सिद्धांत है, 'काम, अनवरत काम' अर्थात् निरन्तर परिश्रम। हेनरी सी. क्रेक ने स्वामी रामतीर्थ का समर्थन करते हुए कहा—'सफलता का कोई रहस्य नहीं। वह केवल अति परिश्रम चाहती है।' ***'करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान'*** यह सूक्ति परिश्रम से सफलता पाने का दस्तावेज है। महाकवि भास का निष्कर्ष है, 'यत्नै: शुभा पुरुषता भवतीह नृणाम्' अर्थात् अच्छे प्रयत्नों से पुरुषों की पुरुषता सिद्ध होती है। अच्छे प्रयत्न अर्थात् सतत परिश्रम और पुरुषों की पुरुषता का अर्थ है मनोवांछित सफलता। कथा सरित्सागर में सोमदेव परिश्रम की सफलता पर विश्वास व्यक्त करते हुए

कहते हैं—'धीर पुरुष उद्यम प्रारम्भ करने के अनन्तर असफल नहीं लौटते।' गीता में कृष्ण ने हताश अर्जुन को समझाते हुए कहा—'माम् अनुस्मर युद्ध्य च।' मेरा स्मरण करो और युद्ध करो। यहाँ युद्ध परिश्रम का प्रतीक बना। सी.डब्ल्यू. बेन्डेल का कथन है, 'जीवन में सफलता पाना प्रतिभा है और यह अवसर की अपेक्षा एकाग्रता और निरन्तर परिश्रम पर कहीं अधिक अवलम्बित है। इस प्रकार महापुरुषों की वाणी ने यह प्रेरणा दी कि जीवन में श्रम को अपनाओ, परिश्रम की पूजा करो, क्योंकि यह मनुष्यों के सिर पर सफलता का सेहरा बाँधती है।

भाग्यवादी परिश्रम को सफलता की कुंजी नहीं मानते। उनका विचार है—'भाग्यं फलति सर्वत्र, न विद्या न च पौरुषम्।' उनका दृढ़ विश्वास है, 'भाग्यहीन खेती करे, बैल मरे या सूखा पड़े।' वेदव्यास जी ने महाभारत में इसकी पुष्टि करते हुए, 'दैवं पुरुषकारेण को निवर्तयितुमुत्सहेत्।' भाग्य को पुरुषार्थ के द्वारा कौन मिटा सकता है ? बाणभट्ट ने कादम्बरी में लिखा है—'न हि शक्यं दैवमन्यथा कर्तुमभियुक्तेनापि' अर्थात् परिश्रमी भी भाग्य को नहीं पलट सकता। तुलसी ने कहा, *'विधि का लिखा को मेटन हारा।'* क्या यह सच नहीं कि श्रीराम और अयोध्या के प्रजाजन का उद्यम भाग्य के आगे व्यर्थ हो गया, जब उन्हें राज-मुकुट के स्थान पर वनवास मिला। चौधरी देवीलाल बाकायदा प्रधानमंत्री चुने जाकर भी प्रधानमंत्री का मुकुट न पहन सके।

यह सही है कि परिश्रम के साथ भाग्य भी सफलता का एक उपकरण है। पर यह भी सही है कि मानव का परिश्रम उसका भाग्य बनकर गुण के समान उसे अपने अभीप्सित स्थान पर ले जाता है। वेदव्यास जी ने इस बात का समर्थन करते हुए कहा, 'न दैवमकृते किंचित् कस्यचिद् दातुमर्हति।' अर्थात् दैव (भाग्य) किसी व्यक्ति को बिना पुरुषार्थ (परिश्रम) कुछ नहीं दे सकता। इतना ही नहीं परिश्रम का सहारा पाकर ही भाग्य भली-भाँति बढ़ता है। (कर्म समायुक्तं दैवं साधु विवर्धते—व्यास।')

विद्यार्थी परिश्रम करता है, वह परीक्षा में सफल होता है। व्यापारी अहर्निश पुरुषार्थ करता है, लक्ष्मी उसकी दासी बनती है। कारीगर जब परिश्रम करता है तो सफलता उद्योग के चरण चूमती है। वैज्ञानिक जब परिश्रम करता है तो जल, थल को दुह डालता है और नभ में भी अपनी विजय पताका फहरा देता है। वह सफलता में पाता है—मानव जीवन का सौन्दर्य।

दैनन्दिन जीवन में ही हम देखते हैं, परिश्रमी परिवार सुख-समृद्धि की ओर पग बढ़ाता है और आलसी तथा परिश्रम से जी चुराने वालों का मुँह कुत्ता चाटता है। टाटा, बिड़ला, सिंहानिया, श्रीराम क्या थे ? निरन्तर परिश्रम ने उनकी झोली को इतना भर दिया कि झोली छोटी पड़ गई। यह परिश्रम का प्रसाद है कि आज नवधनाढ्यों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है और भारत औद्योगिक दृष्टि से समृद्ध देश बनता जा रहा है।

परिश्रम द्वारा सफलता वरण करने वालों के उदाहरणों से इतिहास और पुराणों के पृष्ठ भरे पड़े हैं। अल्पायु में ही चार मठों की स्थापना कर पाने में आद्यशंकराचार्य का परिश्रम

ही प्रमुख साधन था। अल्पायु में हिन्दी-साहित्य की दिशा-परिवर्तन का श्रेय प्राप्त करने वाले भारतेन्दु का तप उनकी सफलता का द्योतक बना। मृत्यु के अन्तिम क्षण तक सरस्वती की उपासना रूपी परिश्रम करने वाले प्रेमचन्द को माँ सरस्वती ने कथा साहित्य का प्रवर्तक और 'उपन्यास सम्राट्' के वरदान से उनकी सफलता को अंकित किया। अकेले डॉ. हेडगवार ने अपने तप-बल से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की सिद्धि प्राप्त की। दीन-हीन लालबहादुर को राजनीतिक तप-बल के पुरस्कार रूप में मिला प्रधानमंत्री पद।

श्रम मानसिक हो या शारीरिक, सामान्य हो या असामान्य, उसका सुफल अवश्य मिलता है। ठीक भी है जो सागर में उतरते हैं, वे मोती जमा करते हैं।' जिन ढूँढा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ।' जो छिछले पानी वाले किनारे पर ठहरते हैं, उन्हें शंख और सीप ही हाथ लगते हैं। अत: सत्य है कि परिश्रम ही सफलता की कुंजी है।

(180) परिश्रम सफलता का मूल है

संकेत बिंदु—(1) मानसिक और शारीरिक श्रम के बिना सिद्धि असंभव (2) दैनिक कार्यों परिश्रम का महत्त्व (3) महाकवि अश्वघोष के शब्दों में सफलता (4) उत्साह, साहस और सामर्थ्य परिश्रम के बिना निरर्थक (5) उपसंहार।

कोई कठिन, बड़ा या दुसाध्य काम करने के लिए विशेष रूप से तथा मन लगाकर किया जाने वाला मानसिक या शारीरिक श्रम परिश्रम है। कार्य, जिसका उद्दिष्ट फल या परिणाम प्राप्त होने का भाव सफलता है। दूसरे शब्दों में प्राप्त होने वाली सिद्धि सफलता है। मूल का अर्थ है—जड़, नींव, कारण या उत्पादक तत्त्व।

सूक्तिकार का कहना है कि यदि तुम किसी भी कार्य में सफलता चाहते हो तो मानसिक या शारीरिक श्रम के बिना उसकी सिद्धि असम्भव है। संस्कृत की एक सूक्ति है, 'नहि प्रतिज्ञामात्रेण अर्थसिद्धि:,' अर्थात् प्रतिज्ञा मात्र से अर्थ सिद्धि नहीं हो जाती।

बात सही भी है, 'न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगा:' (हितोपदेश)। सोते हुए सिंह के मुँह में पशुगण स्वमेव प्रवेश नहीं कर जाते। हाथ के श्रम बिना थाली का भोजन भी मुँह में नहीं जाता। बिना अध्ययन के परीक्षार्थी पास नहीं हो सकता। बिना मानसिक चिन्तन के परिश्रम की युक्ति नहीं सूझती और बिना शारीरिक परिश्रम के युक्ति कार्यान्वित नहीं होती।

दैनन्दिन कार्यक्रमों में परिश्रम के महत्त्व से यह बात और भी स्पष्ट हो जाएगी। भोजन जीवन के लिए अनिवार्य तत्त्व है। भोजन प्राप्ति कैसे होगी? जब गृहिणी भोजन बनाकर देगी। गृहिणी भोजन कैसे बनाएगी? जब वह आटा गूँथेगी, चपाती तवे पर सकेगी, साग काटेगी, उसे कुकर या पतीली में बनाएगी? थाली में परोसेगी। भोजन प्राप्ति के मूल में है गृहिणी का परिश्रम।

सृष्टि मानव संसार के रूप में बदली, मनु और शतरूपा (श्रद्धा) के तप से। भूमि कठोर थी, उस पर जीवन जीना कष्टपूर्ण कार्य था। इसको सुख दाता, शांति दाता तथा जीवनदाता किसने बनाया ? महाराज पृथु ने। उन्होंने ही सर्वप्रथम भूमि को समतल किया। नगर, ग्राम, पुर बसाये तथा दुर्ग बनवाये। उनकी देन की पृष्ठभूमि में है, उनका तप। उनका शारीरिक-मानसिक परिश्रम।

विश्व-संचालन अपने आप में एक समस्या बनी। इसके लिए नियम निर्धारित हुए। स्मृतियाँ बनीं, संविधान की रचना की गई। राजनीतिज्ञों के परिश्रम से संसार-संचालन के सूत्र प्रकाशित हुए।

इस तरह तय की हैं हमने मंजिलें।
गिर गए, गिरकर उठे, उठकर चले॥

सफलता के मूल में परिश्रम की महत्ता को प्रकट करते हुए महाकवि अश्वघोष लिखते हैं— **(सौंदरनंद 16/17)**

यदि उत्साह नहीं छोड़ने वाला मनुष्य, पृथ्वी खोदता ही रहता है तो उसे पानी मिल ही जाता है। निरन्तर रगड़ने पर काठ से अग्नि प्रकट हो ही जाती है। योग-साधना में लगे रहने वाले व्यक्ति अपने परिश्रम का फल अवश्य ही पाते हैं और निरन्तर बहने वाली नदियाँ चट्टानों को तोड़ ही डालती हैं।

अश्वघोष के इस कथन में परिश्रम की सफलता के प्रति कितना अटूट आत्मविश्वास है। इसीलिए स्वामी रामतीर्थ लिखते हैं, 'Work, ever performing work, is the first principle of success.' अर्थात् सफलता का पहला सिद्धान्त है काम—अनवरत काम। यहाँ काम परिश्रम का पर्यायवाची है। एच.सी. क्रैक (H.C. Craik) कहते हैं, 'There is no secret about success . Success simply calls for hard work.' अर्थात् सफलता का कोई रहस्य नहीं है।

उत्साह, सामर्थ्य, साहस, समय की पहचान, धैर्य, अध्यवसाय तथा ध्येय के प्रति निष्ठा भी तो परिश्रम के बिना सार-हीन हैं। अपरिश्रम अर्थात् आलस्य जीवित मनुष्य को दफना देता है। जैरेमी टेलर (Jeremy Tayler) का यह कथन सत्य है, 'Idleness is the burial of a living man.' इसलिए उत्साह में अपौरुषेयता, धैर्य में अकर्मण्यता, साहस में सुस्ती, धैर्य में आलस्य, निष्ठा में परिश्रमहीनता सफलता को स्पर्श भी नहीं करने देगी।

रही बात देवाश्रय की। यह तो भाग्यवादियों की सोच है, 'भाग्यं फलति सर्वत्र, न हि विद्या न च पौरुषम्।' इस प्रकार की धारणा का खण्डन करते हुए योगवाशिष्ठ में लिखा है, 'बुद्धिमान् नियति का सम्बल लेकर पुरुषार्थ का त्याग न करें, क्योंकि नियति भी पुरुषार्थ रूप से ही नियामक होती है।'

एक अन्य सुभाषित में कहा गया है—

यथा ह्येक्येन चक्रेण न रथस्य गतिर्भवेत्।
एवं पुरुष कारेण विना दैवं न सिद्ध्यति॥

अर्थात् जैसे एक पहिए से रथ नहीं चल सकता, ऐसे ही पुरुषार्थ के बिना भाग्य भी नहीं फलता।

सृष्टि रचना के समय परमेश्वर ने जब मनुष्य प्राणी का निर्माण किया तो उसे दो हाथ भी दिए, ताकि मनुष्य अपने दोनों हाथों से परिश्रम कर सके। इनके द्वारा लक्ष्य को प्राप्त कर जीवन में सफलता का वरण कर सके। अथर्ववेद में कहा भी है, 'कृतं मे दक्षिणे हस्ते, जयो मे सव्य आहितः। (7-52-8) अर्थात् मेरे दाहिने हाथ में कर्म (पुरुषार्थ) है और सफलता बाएँ हाथ में रखी हुई है। इसलिए परिश्रम को सफलता का मूल न मानना दो हाथों का अपमान है, परम शक्तिमान् प्रभु की शरीर रचना पर कलंक है।

मूल अर्थात् जड़। जड़ पृथ्वी के नीचे रहकर, अदृश्य रहकर, पेड़-पौधों का पोषण करती है। शूद्रक ने मृच्छकटिक में कहा भी है, 'मूले छिन्ने कुतः पादपस्य पालनम्।' जड़ कट जाने पर वृक्ष का पालन कैसा? उसी प्रकार परिश्रम भी सफलता का मूल बनकर, उत्पादक तत्त्व बनकर उसको पुष्पित और पल्लवित और फलवान् करता है तथा कर्ता फल का भोक्ता बनता है। अतः कार्य की सफलता में परिश्रम का अवलम्बन अनिवार्य है।

(181) प्रेम का पंथ निराला

> **संकेत बिंदु**—(1) जीवन का अद्भुत तत्त्व (2) प्रेम में समर्पण और आत्म-त्याग (3) प्रेम के अलग-अलग रूप (4) प्रेम और बेवफाई का चोली-दामन का साथ (5) प्रेममार्ग की गलियाँ अनेक।

प्रेम जीवन का एक अद्भुत तत्त्व है और उसका मार्ग भी विचित्र है। प्रेम का आचार-व्यवहार और उसकी शैली भी अनोखी है। उसकी साधना-पद्धति ऐकांतिक है। इसीलिए प्रसाद जी प्रेम-पथिक को सचेत करते हुए कहते हैं—

पथिक! प्रेम की राह अनोखी भूल-भूलकर चलना है।
घनी छाँह है जो ऊपर, तो नीचे कांटे बिछे हुए।।

प्यार महज एक इन्टरव्यु (साक्षात्कार) है। जिसमें परीक्षा कोई दे और पास कोई और हो। मुक्तिबोध कहते हैं, 'प्यार जितना भी उँडेलता हूँ, भर-भर फिर आता है।' त्रिलोचन का अनुभव कुछ और ही है, 'गीत कहीं कोई गाता है, गूँज किसी उर में उठती है।' उर्दू शायर को तो प्रेम की पाठशाला की परिपाटी ही अनूठी लगी—

मकतबे इश्क का दस्तूर निराला देखा।
उसको छुट्टी न मिली, जिसने सबक याद किया।।

प्रेम मूर्खों की बुद्धिमता है और बुद्धिमानों की मूर्खता। कारण प्रेम अंधा होता है। प्रेमी-जन उन मूर्खताओं को नहीं देख सकते, जिनको वे स्वयं करते हैं। ग्रेट ब्रिटेन के राजकुमार ने प्रेमिका के लिए राज-सिंहासन छोड़ दिया। महात्मा बुद्ध ने अम्बपाली का भोजन स्वीकार किया और लिच्छवी वंश के राजकुमारों का भोजन-निमन्त्रण ठुकरा दिया। आज सहस्रों

युवक-युवतियाँ इस मूर्खता में अपना जीवन नष्ट कर रहे हैं। कारण, प्रेम उपचारहीन रोग है।

प्रेम समर्पण चाहता है। वह परिणाम की चिन्ता नहीं करता। उसमें आत्म-त्याग है, दिखावा नहीं; ममत्व का विस्मरण है; चित्त की निर्मलता है। इसीलिए प्रसाद जी कहते हैं—

प्रेम यज्ञ में स्वार्थ और कामना का हवन करना होगा।

लैला-मजनू, शीरीं-फरहाद, हीर-राँझा के प्रेमी हृदयों में स्वर्गीय ज्योति का निवास था। श्रीमती एनी बीसेन्ट और बर्नाड शॉ का प्रेम, सुमित्रानन्दनपन्त और तारा पांडे का प्रेम, गेटे और चार्लोट का प्रेम स्वार्थ शर्तों में टूट गया। कविवर घनानन्द तो सुजान से शिकायत करते ही रह गए—

अति सूधो सनेह को मारग है, यहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
कहो कौन धौं पाटी पढ़े हो लला, मन लेहु पे देहु छटाँक नहीं।।

प्रेम का पंथ भी क्या विचित्र है। प्रेमी-प्रेमिका प्यार करते हैं और गाँठ दुर्जनों के हृदय में पड़ती है। महाकवि बिहारी ने कहा है—

दृग उरझत टूटत कुटम जुरत चतुर चित प्रीति।
परत गांठ दुरजन हिये दई नई यह रीति।।

वियोग में प्रेम तीव्र होता है और संयोग में पुष्ट। अनुराग किसी से होता है, विवाह कहीं और। कहीं निगाहें होती हैं, कहीं इशारे। मोहन राकेश, 'अज्ञेय' और अमृता 'प्रीतम' प्रेम के अमर दीप हैं। शायद इसीलिए टामस मूर का कथन है—'जिससे मैं प्रेम करता हूँ, उससे मुझे विवाह नहीं करना है और जिससे मेरा विवाह होना है, उससे मैं प्रेम नहीं कर सकता।' कविवर पंत भी कहते हैं—

न जाने नक्षत्रों से कौन, सन्देशा मुझे भेजता मौन।

दूसरी ओर ऐसे भी शूरवीर हैं जो प्रेम को विवाह का अमृतकुंड मानते हैं। शाश्वत शोभा का मधुवन पाते हैं। उसमें जाति, धर्म, सम्प्रदाय और भौगोलिक सीमा टूट जाती है। सुजान के शब्दों में—*'प्रीति की रीति में लाज कहा, लखि है सब सौं बड़ नेह को नातो।'* सुनीलदत्त और नरगिस, शर्मिला टैगोर और नवाब पटौदी, इन्दिरा गाँधी और फिरोज, राजीव और सोनिया इसी प्रकार के प्रेम-विवाह के जीवन्त उदाहरण हैं।

प्रेम और बेवफाई का चोली-दामन का साथ है। इस बेवफाई में शरीर की विच्छिन्नता है, दर्शन का अभाव है, न मिलने की मजबूरी है, पर बिल्वमंगल सूर के शब्दों में, *'हृदय तें जब जाओगे, सबल समझूँगो तोय।'* जिगर मुरादाबादी को तो यह पीड़ा है—*'भूलते हैं उन्हें वह याद आए जाते हैं।'* और प्रसाद जी कहते हैं—*'छलना थी, तब भी मेरा / उसमें विश्वास घना था।'* जिया कहते हैं—

राजे दिल है पूछते और बोलने देते नहीं।
बात मुँह पै आ रही है, लब हिलाना है मना।।

और गालिब तो प्रेम में 'बेचारे' बनकर रह गए—

इश्क ने गालिब निकम्मा कर दिया।
वरना हम भी आदमी थे काम के॥

प्रेम किया नहीं जाता, हो जाता है। शेक्सपीयर के शब्दों में—'प्रेम भाग्य के वश में है।' क्योंकि यह शरीर का नहीं, आत्मा का मिलन है। प्रतिदान नहीं; सर्वस्व समर्पण है, कहते हैं लहसुन की गंध और प्रेम की गंध छुपाए नहीं छुपती। भारतेन्दु कहते हैं—'*छिपाए छिपत न नैन लगे*' और '*छिपत न कैसेहु प्रीति निगोड़ी अन्त जात सब जानि।*' क्योंकि—

बैठत उठत सयन सोवत निसि चलत-फिरत सब ठौर।
नैनत तें वह रूप रसीलो टरत न इक पल और॥

और बिहारी की नायिका तो '*भरे भौन में नैनन ही सों बात*' करती है।

प्रेम वसन्त का समीर है, जब शिथिल होता है तो ग्रीष्म की लू बनकर मृत्यु की-सी यन्त्रणा देता है। तड़पाता है, रुलाता है, न मरने देता है, न जीने देता है। कारण इस असाध्य रोग का कोई निदान भी नहीं। प्रसाद जी तो कहते हैं—

जल उठा स्नेह, दीपक-सा, नवनीत हृदय था मेरा।
अब शेष धूम-रेखा से, चित्रित कर रहा अँधेरा।।

किन्तु महादेवी तो इस चिर-विरह में ही जीवन को धन्य मानती हुई कहती हैं—'*मिलन का मत नाम लो, मैं चिर विरह में रहूँ।*'

प्रेम के इस अद्भुत मार्ग की गलियाँ भी अनेक हैं। स्नेह, अनुराग, प्रणय, प्रीति, वासना इसके पंथ हैं जो हृदय को आत्मा से मिलाते हैं। प्रेमी को प्रेमिका तक पहुँचाते हैं। आँखों को चार करते हैं। दो शरीर में एक प्राण का संचार करते हैं। जिसकी प्रतीक्षा में ही मजा है। टीस में भी मिठास हैं। विरह में आनन्द है और संयोग में '*संगीत मनोहर उठता, मुरली बजती जीवन की।*'—प्रसाद

(182) फैशन परिवर्तन का दूसरा नाम

संकेत बिंदु—(1) फैशन और परिवर्तन की व्याख्या (2) आकर्षक दिखने की चाह मानव की प्रकृति (3) आधुनिक युग में जीवन की सोच में परिवर्तन (4) फैशन समाज के सोच और परिवर्तन का नाम (5) उपसंहार।

बनाव-शृंगार तथा परिधान की विशिष्टता फैशन है। समाज के सम्मुख आत्म-प्रदर्शन करना फैशन है। पहनावे में बदलाव का उल्लास फैशन है। अभिरुचि में बदलाव का नाम फैशन है। फैशन डिजाइनर लबना एडम के अनुसार 'अलग दिखने की चाह का नाम फैशन है।'

परिवर्तन प्रकृति का नियम है, उसी में सृष्टि का सौन्दर्य निहित है। फैशन का परिवर्तन उसका स्वभाव है। इटली के कवि दाँते का मत है, 'मनुष्य के रीति-रिवाज और फैशन

वृक्ष-शाखाओं की पत्तियों के समान बदलते रहते हैं। कुछ चले जाते हैं और दूसरे आ जाते हैं।' आस्कर वाइल्ड इस परिवर्तन में विवशता देखते हैं। उनका कहना है, 'फैशन कुरूपता का एक प्रकार है, जो इतना असाध्य है कि हमें छह महीने में बदल देना होता है।'

महत्त्वपूर्ण बनने की लालसा और आकर्षक दीखने की चाह मानव की प्रकृति है। इसके लिए औरों से अलग दीखना जरूरी है। आप औरों से अलग तरह के कपड़े पहनेंगे, आपका खानपान भी औरों से अलग होगा। आपके घर की साज-सज्जा औरों से अलग होगी तभी आप समाज में विशिष्ट स्थान बना पाएंगे और आपकी गतिविधियाँ लोगों के आकर्षण का केन्द्र बनेंगी। यह चाह फैशन का मार्ग प्रशस्त करती है। जब एक फैशन-शैली जन सामान्य द्वारा अपना ली जाती है तो फिर नए की तलाश होती है। इसी के साथ शुरू होती है फैशन परिवर्तन की एक शृंखला जो निरन्तर चलती रहती है। इसीलिए सोनाली बेन्द्रे यह मानती है कि 'आजकल फैशन दशक में नहीं, महीनों में बदल रहे हैं।'

फैशन केवल परिधान तक ही सीमित नहीं, वह रहन-सहन, चाल-ढाल, बोल-चाल, लोक-व्यवहार, 'मेकअप', 'फिनिशिंग' आदि रूपों में फैला हुआ है। देवानन्द के उच्चारण की शैली, दिलीप कुमार के केश तथा राजकपूर की 'शो मेन शिप' और कुछ नहीं, फैशन ही हैं। 'फोलो' (अनुकरण) करने का सिद्धान्त इसके विकास का आधार है और 'होड़' इसका मूल मंत्र।

आधुनिक युग में जीवन की हर सोच में तेजी से बदल आ रही है। आज जो सुन्दर है, कल वह कुरूप हो जाता है। सादा-जीवन और उच्च विचार वाले अब भड़कीले जीवन में उच्च-जीवन के दर्शन करते हैं। फिर सादगी के तौर पर सुघड़ और शालीन दिखने का प्रयत्न भी एक प्रकार का फैशन ही है।

कभी शांति पूर्ण जीवन जीने का फैशन था। आज तेज संगीत सुनना, मोटर साइकिल या कार पर तेज गति से चलना, रिबॉक जूते पहनना, बारमूडा, शाट्स, टाइट्स पहनना, रंग-बिरंगे टैट्ज का प्रयोग करना आज के नवयुवक का फैशन है। औपचारिकता उसे काटती है और परिपाटी-पालन उसे पीड़ा पहुँचाता है। उसे खुली सहज अनौपचारिकता चाहिए। उसकी इस रुचि ने ही फैशन को 'कैजुअल लुक' दिया।

फैशन समाज के परिवर्तन और सोच का नाम है। पहले नारियाँ साड़ी पहनतीं थीं, जिसमें वक्ष से नीचे का नंगापन एक फैशन था। फिर सलवार-कुरता चला, जिसमें सम्पूर्ण देह ऐसी ढकी की शरीर का बाल भी दिखाई न दे। समाज की सांच बदली, अब वक्ष के नीचे के साथ वक्ष तथा कमर का कुछ भाग तथा हाथों की नग्नता फैशन बन गई। अब तो 'औरों से कुछ हटकर दीखने' की लालसा में कुछ 'सरटेन आइडिया' लेकर महिलाएँ ड्रेस डिजाइनर के पास जाती हैं।

जहाँ युवती शालीनता में आँखें नीची, सिर ढके सहमे -सहमे चलती थी, आज चोली-जिंस या स्कर्ट पहने, मेकअप किए, फर्राटे की अंग्रेजी बोलती, सिगरेट के कश लेती प्रेमी का चुम्बन लेती-देती नज़र आती हैं।

फैशन डिजाइनर पियरे कार्डिन फैशन को कल्पनाशीलता व व्यावसायिकता का संगम मानते हैं। उसके अनुसार 'फैशन आज की आवश्यकता है। यदि आज फैशन को नकारते हैं तो मानवीय विकास के पूरे सिलसिले को नकार देते हैं।' वह वक्त गया जब घर में एक थान से सभी सदस्यों के कपड़े सिलाए जाते थे। आज हर व्यक्ति चाहे वह पुरुष हो या महिला, बूढ़ा हो या जवान, प्रौढ़ हो या बालक अपने पहनावे के प्रति सतर्क है। इसी मानसिकता के कारण आजकल बच्चों के लिए किड्स कैंप खुल गए हैं। किशोरों के लिए टीन एज शो रूम हैं। पुरुष-महिला परिधानों के शो रूम तो अजायबघर से कम दिखाई नहीं देते।

बदलते फैशन के प्रति प्रत्येक व्यक्ति आकृष्ट हो रहा है और वह उसे किसी न किसी रूप में ओढ़ लेने को लालायित है। फैशन के शीघ्र परिवर्तन का श्रेय स्टेज कलाकार, नर्तक, गायक, फैशन मॉडल , नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ फैशन टेकनालाजी तथा प्राइवेट एक्सपर्ट्स को है। जो नया फैशन समाज में 'इन्ट्रोड्यूस' होता है, वह फिल्मों द्वारा उन लोगों तक पहुँच जाता है, जो इसके नवीन स्पर्शों से अछूते होते हैं। फैशन शो का आयोजन, दूरदर्शन पर इसके कार्यक्रम प्रसारण के शीघ्रगामी माध्यम हैं।

नए रूप और नए विधान में व्यक्तित्व का प्रस्तुतीकरण मानव की शाश्वत चाह है। दूसरों को प्रभावित करना, सम्मोहित करना उसकी लालसा है। अपने को स्मार्ट और जीवन्त दिखना उसकी चिरन्तन मनोकामना है। यह बिना परिवर्तन के सम्भव नहीं। कारण, केवल 'लुक' के लिए नकल करने से आकर्षण समाप्त हो जाता है। थोरो (वाल्डेन) के शब्दों में 'हर पीढ़ी पुराने फैशनों पर हँसती है।' इसलिए नई-नई कल्पनाओं ने, नए-नए विचारों ने व्यक्तित्व को और अधिक आकर्पक बनाया, वह फैशन बन गया और परिवर्तन फैशन की नियति बन गई।

(183) बिन पानी सब सून

संकेत बिंदु—(1) रहीम जी के दोहे का अर्थ (2) प्राणियों का जीवन पानी (3) जल ही जल का कारण (4) जल के कारण तीर्थ और व्यापार केंद्र (5) पानी के विना साहित्य और संस्कृति अधूरी।

रहीम जी का दोहा है—

रहिमन पानी राखिए बिन पानी सब सून।
पानी बिना न ऊबरे, मोती, मानुस, चून॥

यहाँ 'पानी' शब्द श्लिष्ट है। रहीम जी ने इस दोहे में 'पानी' के एक साथ तीन अर्थ लिए हैं—मोती के प्रसंग में किसी पदार्थ का वह गुण जिसके फलस्वरूप उसमें किसी तरह की आभा, चमक या पारदर्शकता आती है। मनुष्य के प्रसंग में मान, प्रतिष्ठा, इज़्ज़त तथा मनुष्य में होने वाला अभिमान, वीरता या ऐसा ही कोई तत्त्व या भावना। चून के प्रसंग में

गुणयुक्त वह तरल पदार्थ जिसके योग से दूसरी चीज में गुण या तत्त्व सम्मिलित किया जाता है अथवा किसी प्रकार का प्रभाव उत्पन्न किया जाता है।

मोती में पानी (कान्ति या चमक) न हो तो, उसका कोई मूल्य नहीं। इसी प्रकार मानप्रतिष्ठा के अभाव में मनुष्य का कोई मूल्य नहीं तथा जल और चून (चूर्ण, आटा) दोनों के गुण-तत्त्वों के मिश्रण से ही चून भोजन योग्य बनता है। 'चून' का अर्थ यदि 'चूना' लिया जाए तो वह भी पानी के बिना खिलता नहीं। पानी में डालने से ही उसकी धवलता बढ़ती है।

पानी तो प्राणियों का जीवन है। वनस्पतियों के पालन-पोषण तथा वर्धन के लिए अनिवार्य तत्त्व है। इसलिए संस्कृत में पानी को 'जीवन' कहा गया है। आयुर्वेद-ग्रंथ 'भाव प्रकाश' में तो यहाँ तक कहा है, 'जीवनं जीविनां जीवो जगत् तन्मयम्।' अर्थात् पानी प्राणियों का जीवन है और सारा संसार ही जलमय है। यजुर्वेद में तो जल-देव से कामना की गई है—'हमें इच्छित सुख देने के लिए जल कल्याणकारी हो। हमारे पीने के लिए सुखदायी हो। हमें सुख-शान्ति देते हुए जल-प्रवाह बहे।'

जल नहीं होगा तो मानव अपने शरीर की शुद्धि कैसे करेगा? प्राणी प्यास कैसे बुझाएगा? भोजन कैसे पकाएगा? व्यंजन कैसे बनाएगा। रोगों को दूर कैसे करेगा? उसका जीवन-मरण का साक्षी कैसे होगा? इतना ही नहीं, मृत्यु के पश्चात् अस्थियों के पावन नदियों में विसर्जन के अभाव में मृतात्मा देह की आसक्ति से मुक्ति कैसे प्राप्त करेगा? तब रहीम के दोहे की सार्थकता पता चलेगी, 'पानी के बिना सब शून्य है, व्यर्थ है।'

जल नहीं होगा तो वन-उपवन की विकास-क्षमता समाप्त हो जाएगी। वनस्पति पुष्पित-पल्लवित नहीं होगी। खेती उपज नहीं देगी। सर्वत्र सूखे का ताण्डव होगा। भूमि अनुर्वर होगी, सस्य-श्यामलता से विहीन होगी।

जल ही जल का कारण है। जल नहीं होगा तो सर्दी में बर्फ नहीं बनेगी। बर्फ नहीं बनेगी तो गर्मियों में वह पिघलेगी कैसे? जब बर्फ पिघलेगी नहीं तो गर्मियों में नद-नदियाँ, सूखे रह जाएँगे। दूसरी ओर, गर्मी के प्रभाव से जल भाप बनकर ऊपर उठता है, मेघों का रूप लेता है और पृथ्वी तथा पृथ्वीवासियों की तृष्णा शांत करता है। जब जल नहीं होगा तो मेघ नहीं होंगे तो वर्षा नहीं होगी। वर्षा नहीं होगी तो प्रकृति का रोम-रोम निदाध से जल उठेगा और सर्वत्र सूनापन व्याप्त हो जाएगा।

जल मनोरंजन का साधन भी है। तैराकी, नौका-विहार, नौका-दौड़, जल-क्रीडा आदि जल द्वारा मानव का रंजन करते हैं। विश्व-प्रतियोगिताओं के आयोजनों द्वारा मानव मन रंजन की स्वस्थ ऊर्जा प्राप्त करता है। उन्नति और प्रगति का मार्ग प्रशस्त करता है। यदि जल ही न होगा तो सब सूना रह जाएगा।

जल के कारण नदियाँ हैं, नदियों के तट पर विद्यमान तीर्थ हमारी श्रद्धा के केन्द्र हैं, अध्यात्म की तपोभूमि हैं, ज्ञान-ज्योति प्रज्ज्वलित करने के नेत्र हैं और पापों को प्रक्षालित कर पुण्य प्रदान करने के स्रोत हैं। जल के बिना अध्यात्म की स्रोतस्विनी शुष्क हो जाएगी।

जल व्यापार का साधन भी है, व्यापार-वृद्धि का कारण है। लाखों टन सामान और जन जल-मार्ग से एक स्थान से दूसरे स्थान, एक नगर से दूसरे नगर और एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्रों में जाते हैं। अगर जल नहीं होगा तो व्यापार और यात्रा का यह साधन अवरुद्ध हो जाएगा, जो शून्यता उत्पन्न करेगा।

अब, जरा पानी के पर्यायवाची अर्थों से उत्पन्न 'सून' (शून्य) पर विचार कर लें। पुरुष के वीर्य या शुक्र को भी पानी कहते हैं। वीर्य से शरीर में बल और कांति आती है। चरम धातु होने से इसमें संतान-उत्पत्ति की शक्ति होती है। यदि यह वीर्य ही न होगा, तो सृष्टि में मानव-उत्पत्ति समाप्त हो जाएगी और विश्व जन से 'सून' हो जाएगा।

'पौरुष' मान-प्रतिष्ठा आदि के विचार से मनुष्य में होने वाले अहं, अभिमान, वीरता या ऐसी ही कोई भावना को 'पानी' कहते हैं। इसलिए कहावत प्रसिद्ध है, 'ऐसा आदमी किस काम का, जिसमें कुछ भी पानी न हो।'

पानी का साहित्यिक मूल्य भी है। पानी पर मुहावरे और लोकक्तियों ने भाषा को चमत्कृत किया है, अलंकृत किया है, सौन्दर्यमय बनाया है, उसे प्रभावोत्पादन शक्ति प्रदान की है। यदि 'पानी' न होगा तो भाषा का पानी ही उतर जाएगा।

पानी न होता तो उसके बिना हिमालय की शोभा, सुषमा और मूल्य कम हो जाते। कारण, हिमालय का हिम तथा उससे नि:सृत नदी-निर्झर ही तो जल के मुख्य स्रोत हैं। भारत में भागीरथ के प्रयत्न से गंगा माता का अवतरण हुआ है, वह नहीं होता। गंगा के अभाव में बेचारे भागीरथ के साठ सहस्र पूर्वजों का उद्धार न हो पाता। प्रभु राम, स्वामी रामतीर्थ तथा संन्यासीगण जल में समाधि नहीं ले पाते। पानी के अभाव में कृष्ण यमुना-तट पर रासलीला न कर पाते। पवित्र नदियों में पर्वों का स्नान न हो पाता। कुंभ, महाकुंभ न जुड़ पाते। जल के बिना भारतीय-संस्कृति के अमरत्व पर शून्य की कालिख छा जाती।

इसलिए रहीम जी ने सत्य ही कहा है, 'बिन पानी सब सून।' सून अर्थात् शून्यता या अभाव परिचायक है जीवन के तम का, जगती के विनाश का, संस्कृति और सभ्यता के ह्रास का।

(184) बिन साहस के जीवन फीका

संकेत बिंदु—(1) साहस के बिना जीवन फीका (2) साहसिक कार्यों की इतिहास में भरमार (3) जीवन में कायरता का स्थान निम्न (4) जीवन की चुनौतियों को स्वीकारना (5) साहसपूर्ण जीवन में स्वाभिमान युक्त गौरव।

साहस क्या है ? मन की दृढ़ता और शक्ति का वह गुण या तत्त्व जिसके फलस्वरूप मनुष्य बिना किसी भय या संकोच के कोई बहुत कठिन, जोखिम भरा काम करने में प्रवृत्त होता हो।

'बिन साहस के जीवन फीका' अर्थात् हिम्मत के अभाव में मानव-जीवन सौन्दर्यहीन, पराक्रम रहित तथा व्यक्तित्व की प्रभा से वंचित रहता है। राजस्थानी कवि कृपाराम का कहना है, 'हिम्मत से रहित पुरुष का रद्दी कागज के समान कोई आदर नहीं करता।' राष्ट्र कवि श्री रामधारीसिंह 'दिनकर' ने इसी सूक्ति की सोच पर लिखा है, 'जिन्दगी के असली मजे उनके लिए नहीं हैं जो फूलों की छाँह के नीचे खेलते और सोते हैं। जिन्हें आराम आसानी से मिल जाता है, उनके लिए आराम ही मौत है।' जेम्स मैथ्यबेरी का भी कथन है, 'All goes if courage goes.' अर्थात् साहस गया तो सब कुछ गया। 'कृष्णायन' काव्य में द्वारकाप्रसाद मिश्र यही कहते हैं, *'साहस तजत मानिजन नाहिं।'* संस्कृत की एक सूक्ति है—*न साहसमनारुह्य नरो भद्राणि पश्यति। 'साहस जहँ सिद्धि तहँ होई।'*

मेरा पथ, मेरे पैरों की बाट निहारा करता है।
मेरा साहस, काँटों का व्याघात बुहारा करता है।। —जैन मुनि बुद्धमल्ल

प्यास में ही पानी का आनन्द है। भूख में भोजन का स्वाद है। परिश्रमोपरान्त ही विश्राम का सुख है। प्रेय से श्रेय की ओर बढ़ने में ही उत्थान है और जिन्दगी का शौर्य साहस में ही निहित है। कथासरित्सागर में सोमदेव पूछते हैं, 'प्राप्यते किं यशः शुभ्रम्-अनंगीकृत्य साहसम्?' अर्थात् क्या साहस को स्वीकार किए बिना कहीं शुभ्रयश प्राप्त होता है?

साहस के बल पर ही श्रीराम अजेय-शत्रु महाबलशाली रावण को पराजित कर निज जीवन को पराक्रम से दीप्त कर सके। महाभारत में कृष्ण पाण्डवों को विजयश्री दिलवाकर स्वयं कांतिप्रद बन सके। साहस के बल पर ही आचार्य चाणक्य नन्द के महामंत्री 'राक्षस' से टकरा सके। कोलम्बस नई दुनिया की खोज कर सका। नेपोलियन विश्व को चुनौती दे सका। लूथर पोप का विरोध कर सका। छत्रपति शिवाजी 'हिन्दू पद पादशाही' की स्थापना कर सके। महाराणा प्रताप मुगलों से टकरा कर जीवंत इतिहास-पुरुष बन सके। लोकनायक जयप्रकाश लौहललना इन्दिरा गाँधी को नीचा दिखा सके। हिन्दू वीर रामजन्मभूमि के कलंक को धो सके। वैज्ञानिक अंतरिक्ष के रहस्यों को चीर सके। कहाँ तक गिनाएं साहसी वीरों के शौर्य की गाथाएं? वे राम-कथा की तरह अनन्त है, जिन पर विश्व अपने श्रद्धा सुमन चढ़ाकर अपनी कृतज्ञता अर्पित करता है।

ये सभी वीर पुरुष साहस प्रकट करने के कारण इतिहास-पुरुष बने। इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों में इनका नाम अंकित हुआ। यदि ये शौर्य प्रकट न करते तो इतिहास के कूड़ेदान में इनका स्थान होता। इनका स्वयं का जीवन दीप्त नहीं, फीका होता।

जीवन जीने की एक शैली है—कायरतापूर्ण जीवन। जीवन के उतार-चढ़ाव को चुपचाप सहन करते जाना। कोई विरोध नहीं, कोई प्रतिकार नहीं। वहाँ न तो जीत हँसेगी और न हार के रोने की आवाज सुनाई देगी। पड़ोसी तुम्हारे द्वार पर कूड़ा डाल देता है, तुम प्रतिकार नहीं करते। पड़ोसी बच्चे खेलने के बहाने यदा-कदा तुम्हारी चीजें उठा लेते हैं, तुम डाँटते नहीं। गली-बाजार में आपकी इज्जत उछलती है, आप चुपचाप सह लेते हैं। क्यों? आपके मन में भय है? भय जब स्वभाव का अंग हो जाता है तो वह कायरता कहलाता

है। कायरता का जीवन मरण-सम है। मरण-सम जीवन में आनन्द कहाँ, सरसता कहाँ, जीवन का सौन्दर्य कहाँ। हुतात्मा क्रांतिकारी अशफाकउल्ला खाँ का कहना है—

बुजदिलों को ही सदा मौत से डरते देखा।
गो कि सौ बार उन्हें रोज मरते ही देखा॥

जीवन जीने की दूसरी शैली है—जीवन की चुनौतियों को स्वीकार करना। पारिवारिक-जीवन में नित्य नई समस्याएँ आती हैं। सामाजिक जीवन में चोरी, डाके, अभद्र व्यवहार, शीलहरण तथा भ्रष्ट-आचरण की उलझने हैं। धार्मिक जीवन में पाखण्ड और पोप लीला का आक्रमण है। नौकरी में उन्नति के लिए प्रतियोगिता-परीक्षा का प्रश्न है। व्यापार में प्रगति के लिए आर्थिक कठिनाइयाँ हैं। आप इन चुनौतियों को स्वीकार करते हैं। पूरी शक्ति से भयरहित हो संघर्ष करते हैं। दिनकर जी का कहना है, 'जिन्दगी से, अंत में, हम उतना ही पाते हैं, जितनी कि उसमें पूँजी लगाते हैं।' यह पूँजी लगाना, जिन्दगी के संकटों का सामना करना है। उसके उस पन्ने को पढ़ना है जिसके सभी अक्षर फूलों से नहीं, कुछ अंगारों से भी लिखे हैं।'

स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में 'इस संघर्ष में यदि मृत्यु भी आती है तो आने दो। हम चौपड़ का पाँसा फेंकने के लिए कृतसंकल्प है। यहाँ समग्र धर्म है।' यदि पराजय होनी है तो खलील जिब्रान के शब्दों में, 'पराजय! मेरी पराजय! मेरी न मिटने वाली हिम्मत! मैं और तू मिलकर तूफान के साथ कहकहे लगाएंगे।' वर्जिल का मानना है कि साहसी व्यक्ति की संघर्ष में विजय निश्चित है, क्योंकि भाग्य भी साहसी का साथ देता है। सच्चाई भी यही है कि जो लोग पाँव भीगने के भय से पानी मे बचते हैं, समुद्र में डूब जाने का डर उन्हीं के लिए है। लहरों में तैरने का जिन्हें अभ्यास है, वे मोती लेकर बाहर आते हैं।

साहसपूर्ण जीवन से स्वाभिमानयुक्त गौरव जागृत होगा, सम्मानपूर्ण अहं प्रकट होगा, व्यक्तित्व की प्रभावकारी आभा दीप्त होगी। सफलता चरण चूमेगी। प्रकृति भाग्य सँवारेगी। शत्रु भी छेड़ते हुए दस बार सोचेगा। जीवन का आनन्द जीवन की सम्पूर्ण जड़ता मिटा देगा। बीसवीं शताब्दी की अन्तिम दशक के भारतीय युवक-युवतियों का जीवन साहस का प्रत्यक्ष उदाहरण है। जो निर्भयता उनके जीवन में समाई है, जीवन से जूझने का जो उत्साह उनके अहं में प्रकट होता है, वही उनको जीवन के मजे लूटने को प्रस्तुत करता है।

जीवन उनका नहीं युधिष्ठिर, जो उससे डरते हैं।
वह उसका जो चरण रोप, निर्भय होकर लड़ते हैं॥

—रामधारीसिंह 'दिनकर'

(185) बिनु सत्संग विवेक न होई

संकेत बिंदु—(1) दोहे का भावार्थ (2) विवेक का आधार ज्ञान (3) ज्ञान का विकास विवेक (4) शास्त्रों का पठन, अध्ययन और मनन विवेक का द्वार (5) उपसंहार।

रामचरित मानस के बालकाण्ड के आरम्भ में तुलसी सत्संग की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं, *'विनु सत्संग विवेक न होई, राम कृपा बिनु सुलभ न सोई।'* इसका भाव यह है कि सद्‌विचार की योग्यता, सत्य ज्ञान, विवेचन और विचारणा, विचार-विमर्श और गवेषणा, भले-बुरे की पहचान, वस्तुओं में उनके गुणानुसार भेद करने की शक्ति, दृश्यमान जगत् तथा अदृश्य आत्मा में भेद करने की शक्ति, माया या केवल बाह्य रूप से वास्तविकता को पृथक् करने की शक्ति, सत्संग के बिना प्राप्त नहीं होती।

सत्संग क्या है ? साधु-महात्मा या धर्मनिष्ठ व्यक्ति के साथ उठना-बैठना और धर्म-सम्बन्धी बातों की चर्चा करना सत्संग है। उस समाज या जन-समूह की संगति करना जिसमें कथा-वार्ता या प्रभु नाम का पाठ होता है, सत्संग है। सज्जनों के साथ उठना-बैठना भी सत्संग है। तुलसी ने सत्संग का अर्थ संत-मिलन और उनके दर्शन, कथा, वार्त्ता आदि के श्रवण में लिया है। जैसे—उत्तर काण्ड में जब सनकादि जी भगवान् श्रीराम के दर्शनार्थ उपवन आते हैं, उस समय भगवान् कहते हैं—

आजु धन्य मै सुनहु मुनीषा। तुम्हारे दरस जाहि अघ खीसा।
बड़े भाग पाइअ सत्संगा विनहि प्रयास होय भव भंगा।।

यहाँ सन्त-दर्शन मात्र को सत्संग कहा है।

विवेक का आधार है ज्ञान। ज्ञान है कुछ जानने, समझने आदि की योग्यता। किसी बात या विषय के सम्बन्ध में होने वाली वह तथ्यपूर्ण, वास्तविक और संगत जानकारी जो अध्ययन, अनुभव , निरीक्षण, प्रयोग आदि के द्वारा प्राप्त होता है, ज्ञान है। आध्यात्मिक और धार्मिक क्षेत्रों में, आत्मा औरं परमात्मा के पारस्परिक संबंध, वास्तविक स्वरूप आदि और भौतिक संसार की अनित्यता, नश्वरता आदि से संबंध की होने वाली अनुभूति, जानकारी या परिचय जो आवागमन के बंधन से छुड़ाकर मुक्ति या मोक्ष देने वाला माना गया है, ज्ञान है। ज्ञान प्राप्त करने और निश्चय विचार आदि करने की शक्ति है बुद्धि। सारांशतः बुद्धि के द्वारा ज्ञान प्राप्त होता है और ज्ञान से विवेक उत्पन्न होता है।

आयु बढ़ने से, यश फैलने से, बार-बार प्रश्नों को पूछने से, गुरु और विद्वज्जनों के सान्निध्य से, चिंतन-मनन करने से, बुद्धिमान् लोगों से संलाप करने से, मन में प्रेम-भाव बढ़ाने से, अनुकूल स्थान में वास करने से, पढ़ने-लिखने तथा भ्रमण करने से बुद्धि उसी प्रकार विकसित होती है, जिस प्रकार सूर्य की किरणों से कमलों का समूह।

विकसित बुद्धि से जब मनुष्य अध्ययन, अनुभव, निरीक्षण और प्रयोग के द्वारा तथ्यपूर्ण, वास्तविक और संगत जानकारी के लिए चिंतन-मनन करता है तो उसका ज्ञान व्यापकत्व की ओर बढ़ता है। धर्म और अध्यात्म के क्षेत्र में शास्त्रों का अध्ययन, मनन तथा चिंतन, उपासना-साधना तथा सत्संगति ज्ञान का वर्धन करती है। ज्ञान का विकास ही विवेक है।

इसलिए तुलसी जी का यह कहना 'बिनु सत्संग विवेक न होई' विवेक-विकास की दृष्टि से एकांगी है। दूसरी ओर, जब वे दर्शन-मात्र की सत्संगति से विवेक जागृत होता

है, बताते हैं तो बात गले नहीं उतरती। कारण, परम श्रद्धेय शंकराचार्यों, महामंडलेश्वरों तथा ज्ञानी संतों के दर्शन लाखों हिन्दू करते हैं, पर वे तो विवेकी नहीं हो पाते। हाँ, जब वे सत्संग का अर्थ संतों का साथ मानते हैं तथा उनके साथ रहकर हरिकथा श्रवण करते हैं, तो निश्चय ही उनमें विवेक की जागृति होती है। इसी प्रकार संत-समागम के ज्ञान से विवेक के कपाट भी खुलते हैं। महर्षि नारद की संगति से रत्नाकर का विवेक जागृत होना और गौतम बुद्ध के संग से अंगुलिमाल में विवेक जागृत होना इसके प्रमाण हैं।

धार्मिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में शास्त्रों का पठन, अध्ययन, चिंतन और मनन भी विवेक के द्वार खोलता है। उसकी ओर तुलसी ने संकेत तक नहीं किया। तुलसी शब्द-सागर (कोश) में सत्-संगति के लिए अच्छी संगति तथा अच्छों का संग अर्थ दिए हैं। उदाहरण रूप में मानस की यह चौपाई उद्धृत की गई है—*'सत संगति संसृति कर अंता।'* (पृष्ठ 442) अच्छी संगति में शास्त्रों की संगति भी आ जाती है।

धर्म तो जीवन का एक पुरुषार्थ है। शेष रहते हैं—अर्थ, काम, और मोक्ष। क्या सत्संग का इन क्षेत्रों में विवेक जागृत करने की शक्ति है? इसका उत्तर देते हुए महर्षि वेद व्यास जी लिखते हैं—

तुलयाम लवेनापि, न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
भगवत्संगि संगस्य, मर्त्यानां किमुताशिषः॥

यदि भगवान् में आसक्त रहने वाले लोगों का क्षणभर भी संग प्राप्त हो, तो उससे स्वर्ग और मोक्ष तक की तुलना ही नहीं कर सकते, फिर अन्य अभिलषित पदार्थों की तो बात ही क्या? 'क्षण भर के संग' से अभिलषित पदार्थों की प्राप्ति मात्र अंधविश्वास है। कारण, तर्क से यह असिद्ध है। भवभूति उत्तर-रामचरित में कहते हैं, 'सत्संगजानि निधनान्यपि तारयन्ति' अर्थात् सत्संग से उत्पन्न मरण भी मनुष्य का उद्धार कर सकता है। इसमें भी मोक्ष पुरुषार्थ के विवेक चक्षु खुलते हैं। फिर भी रह जाते हैं—अर्थ और काम। जब मनुष्य सत्संग से धर्म और मोक्ष के प्रति विवेक जागृत होता है तो अर्थ और काम तो मोक्ष प्राप्ति के दूसरे-तीसरे सोपान हैं। इनके प्रति विवेक स्वतः उद्भूत होता है।

'बिनु, सत्संग विवेक न होई' के 'सत्संग' का व्यापक अर्थ लें तो इसकी सत्यता में संदेह नहीं रहता, किन्तु जब विवेक उत्पन्न होने के व्यापक कारणों में जाते हैं तो लगता है भक्तेतर-जनों पर इसकी पुष्ट नहीं हो पाती।

(186) मजहब नहीं सिखाता, आपस में बैर रखना

संकेत बिंदु—(1) भारत की महिमा और मानवतावाद का वर्णन (2) हिंदुओं और मुसलमानों में टकराव (3) इस्लाम धर्म का परिचय (4) मुस्लिम धर्मावलम्बियों में टकराव (5) उपसंहार।

उर्दू कवि 'इकबाल' की यह क़ाव्य-पंक्ति उनकी देशप्रेम सम्बन्धी उस कविता से उद्धृत है, जिसमें वे भारत की महिमा का गान करते हुए कहते हैं—

सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा।
हम बुलबुलें हैं इसकी यह गुलिस्तां हमारा।।

इसी कविता में उन्होंने कहा है—

मजहब नहीं सिखाता, आपस में बैर रखना।
हिन्दी हैं हम वतन हैं, हिन्दोस्ताँ हमारा।।

इकबाल प्रारम्भ में मानवतावाद के उपासक थे। धर्म-भिन्नता के कारण भारतवासियों का परस्पर टकराना वे अच्छा नहीं समझते थे।

किन्तु दूसरी ओर वे मजहब को महत्त्व देते हुए लिखते हैं—

हमने यह माना कि मजहब जान है इन्सान की।
कुछ इसी के दम से कायम शान है इंसान की।। (बांगेदरा)

इसका अर्थ यह है कि डॉ. इकबाल प्रत्येक भारतवासी को अपने-अपने धर्म (पंथ) पर गर्व करने की बात भी कहते हैं। अपने मजहब (पंथ) पर गर्व रखते हुए भी मजहब के नाम पर बैर न रखना उनके महान् विचारों के द्योतक हैं।

भारत में तीन धर्मों के मानने वाले प्रमुख हैं—हिन्दू धर्म, इस्लाम धर्म तथा ईसाई धर्म। हिंन्दूधर्म भारत का सनातन धर्म है जबकि अन्य दोनों भारत के मूल धर्म नहीं है। इस्लाम का आगमन सातवीं शताब्दी तथा ईसाइयत का आगमन सत्रहवीं शताब्दी में हुआ है। अत: हिन्दू और मुसलमान परस्पर टकराते रहते हैं, जबकि ईसाई-धर्म टकराहट में नहीं शान्तिपूर्वक धर्म-परिवर्तन में विश्वास रखता था, पर अब उसने भी टकराहट का रास्ता अपना लिया है।

डॉ. इकबाल की उक्त सूक्ति के बावजूद भारत में धर्म के नाम पर खून की नदियाँ बहीं। भारत-राष्ट्र का विभाजन भी मजहब के नाम पर हुआ। लाखों घर बरबाद हुए। कत्लेआम हुआ। अरबों रुपयों की सम्पत्ति स्वाहा हुई। यह सब क्यों हुआ? उनके ही धर्मावलम्बियों ने उनकी बात मानने से इन्कार क्यों कर दिया? और तो और इकबाल ने अपनी इस बात को स्वयं ही झुठला दिया, जब वे कट्टर मुस्लिमलीगी बनकर पाकिस्तान में बस गए और पाकिस्तान के गुण गाने लगे।

सच्चाई तो यह है कि इकबाल जिस धर्म के मानने वाले थे वह है इस्लाम धर्म। इस्लाम धर्म पैगम्बर हजरत मुहम्मद द्वारा प्रतिपादित मजहब या संप्रदाय है। 'कुरान' उसका पवित्र ग्रंथ है। कुरान में एक शब्द आया है काफिर। काफिर वह है जो कुरान में वर्णित अल्लाह को नहीं मानता और केवल उसी अल्लाह की इबादत नहीं करता। काफिर की सजा है, 'उनके सिर धड़ से अलग कर दो, जब तक वे पूरी तरह आत्मसमर्पण न करें दें।' यही शान्ति का एकमात्र उपाय है, 'जब हरेक व्यक्ति इस्लाम कबूल कर लेगा, तो अपने आप सर्वत्र शान्ति का साम्राज्य हो जाएगा।' (पवित्र आयतें)

यही कारण है कि इस्लाम में सहिष्णुता को स्थान नहीं है। यदि कर्नाटक का 'एशियावीक' अखबार 1986 में ऐसी कहानी छापता है, जिसमें नायक बालक का नाम

मुहम्मद है तो हिन्दू-मुस्लिम झगड़ा होता है। सलमान रुश्दी यदि इंग्लैण्ड में बैठकर पवित्र आयतों के विरुद्ध तथा तसलीमा नसरीन बंगलादेश में रहकर एक कल्पित उपन्यास लिखते हैं तो उन्हें मौत का फरमान सुनाया जाता है।

मुस्लिम त्यौहारों में सबसे बड़ा त्यौहार है 'ईद-उल-जुहा।' 'इसे बकरीद भी कहते हैं। बक़र का अर्थ है गाय या बैल। इस दिन खुदा के नाम पर गाय या बैल की कुर्बानी होती है।' (भारतीय मुस्लिम त्यौहार और रीतिरिवाज, डॉ. माजदा असद, पृष्ठ 24) कुर्बानी के पशु की विशेषताएँ बतलाते हुए डॉ. माजदा असद लिखती हैं—'दो वर्ष की अवस्था की गाय-बैल। × × अन्धे, काने, लंगड़े, दुर्बल और मरियल पशु का उपयोग कुर्बानी के लिए नहीं किया जा सकता।' (पृष्ठ 26-27)

हिन्दुओं में गाय को अत्यन्त पवित्र और माता माना जाता है। उसे काटना वह बर्दाश्त नहीं कर सकते, तब हिन्दू और मुस्लिम मजहबों में ही बैर पड़ गया। तब इकबाल साहब का यह कहना, 'मजहब नहीं सिखाता, आपस में बैर करना', धर्मों की प्रकृति और प्रवृत्ति से मेल नहीं खाता।

जरा गहराई में जाएँ तो इस काव्य-पंक्ति का अर्थ समझ पाएँगे। मुस्लिम-धर्मावलम्वी आपस में टकराते थे। आपसी टकराहट को न कोई धर्म बर्दाश्त करता है, न पैगम्बर। मुहम्मद के जमाने में अरबी और अजमी टकराते थे तो आज भी अरबी और इराक-ईरान टकराते हैं। शिया और सुन्नी तो जहाँ भी हैं, वहाँ एक-दूसरे को सुहाते नहीं। खानदानी दुश्मनों जैसा व्यवहार होता है—एक-दूसरे से। ऐसे लोगों के लिए खुद हजरत मुहम्मद ने अपनी मृत्यु से पूर्व एक ऐतिहासिक भाषण में कहा था, 'अरबी की अजमी पर और अजमी की अरबी पर कोई बड़ाई नहीं। तुम सब आदमी की सन्तान हो। मुसलमान आपस में भाई-भाई हैं।' (पैगम्बर हजरत मुहम्मद : जीवन और मिशन, डॉ. इकबाल अहमद, पृष्ठ 16)

कुरान की आयत (4/150-151) का भी यह कहना है कि 'और जो लोग खुदा और उसके पैगम्बर पर ईमान लाएँगे और आपस में कोई भेदभाव नहीं करेंगे, उनको अन्त में इसका पुरस्कार मिलेगा।'

यही बात शायर इकबाल कहते हैं 'मजहब नहीं सिखाता, आपस में बैर रखना।' और इस प्रकार वे अपने पैगम्बर हजरत मुहम्मद और पवित्र आयतों की हिदायतों को ही दोहरा रहे हैं।

अब सवाल उठता है, उन्होंने आगे यह क्यों लिखा, 'हिन्दी हैं हम वतन हैं, हिन्दोस्तां हमारा।' 'हिन्दी' का अर्थ है—'हिन्दुस्तान का रहने वाला, हिन्दुस्तानी।' (उर्दू हिन्दी कोश : मुस्तफा खाँ 'मुद्दाह') इस प्रकार इस काव्य-पंक्ति का अर्थ हुआ—हम सब हिन्दुस्तान के रहने वाले हैं और हिन्दुस्तान ही हमारा वतन है। जरा सोचिए, यदि भारत के मुसलमान अपने को हिन्दुस्तानी नहीं कहते तो हिन्दुस्तान के बँटवारे के हकदार कैसे बनते?

(187) मत व्यथा अपनी सुना तू, हर पराई पीर रे

संकेत बिंदु—(1) कविता की पंक्ति का अर्थ (2) दुख भोगने की विवशता (3) आत्म-कथा ही आत्म-दर्शन का माध्यम (4) परोपकार में प्रवृत्त रहना जीवन की सफलता (5) जीवन का अंत लक्ष्य मोक्ष।

श्री देवराज 'दिनेश' अपनी 'हाथ की रेखा मिटा दे' कविता की इस पंक्ति में मानव को यह संदेश देना चाहते हैं कि उसे अपनी उग्र मानसिक या शारीरिक पीड़ा को जन-जन को सुनाकर सहानुभूति प्राप्त करने की बजाए दूसरों के कष्ट, दु:ख, वेदना से कातर होकर, उनकी पीड़ा के हरण की चेष्टा करनी चाहिए।

'मत व्यथा अपनी सुना', क्यों ? सम्भव है, कुछ लोग, कुछ देर तुम्हारी पीड़ा या व्यथा को ध्यानपूर्वक सुन लें, पर वे उसके हरण की ओर ध्यान देंगे इसका विश्वास नहीं किया जा सकता, क्योंकि *'दिल बहलाने को लोग सुनते हैं, दर्दे दिल दास्तान है गोया'* अकबर इलाहबादी के शब्दों में कुछ सुनते-सुनते ऊबने पर वे हँसी उड़ाएंगे। मजाक करेंगे। उसे हास-परिहास का विषय बनाएंगे, पर उनके अन्त:करण में करुणापूर्ण भावना जागृत होगी, यह नितांत असम्भव है। रहीम ने भी यह कहा है—

रहिमन निज मन की विथा, मन ही राखो गोय।
सुनि अठिलैहैं लोग सब, बाँटि न लैहैं कोय॥

अकबर इलाहबादी के शब्दों में—

खुदा की शान वह मेरा तड़पना दिल्लगी समझे।
किसी की जान जाती है, किसी का जी बहलता है।।

अपनी व्यथा न कहने में दु:ख भोगने की विवशता तो रहती है पर सुख के मूल्य का ज्ञान भी तभी होता है। महादेवी जी व्यथा सहने का अर्थ पीड़ा का सुख में स्वत: परिवर्तन मानती हैं—*'पीड़ा की अन्तिम सीमा, दु:ख का फिर सुख हो जाना।'* गालिब की धारणा है कि इससे मुश्किलें सरल हो जाती हैं—

रंज से खगार हुआ इन्सां तो मिट जाता है रंज।
मुश्किलें मुझ पर पड़ीं इतनी कि आसां हो गईं।।

इसलिए जयशंकर प्रसाद कहते हैं कि अभिशाप को प्रभु का वरदान मानकर व्यथा सहने में ही सुख है—

जिसे तुम समझे हो अभिशाप, जगत की ज्वालाओं का मूल।
ईश का वह रहस्य वरदान, कभी मत जाओ इसको भूल॥

देवराज 'दिनेश' दूसरी ओर मानव को समझाते हैं—'हर पराई पीर रे।' दूसरे की पीड़ा हरने में, सबसे बड़ा लाभ तो अपनी व्यथा की विस्मृति ही है। दूसरी ओर, जब पर पीड़ा से दृष्टि मिलती है तो आत्म-व्यथा ही आत्म-दर्शन का माध्यम बन जाती है। आत्म-दर्शन आत्मा की आनन्दमय परिणति है।

नरसी मेहता का एक प्रसिद्ध गीत है, जो गाँधी जी को परमप्रिय था—

वैष्णव जन तो तेने कहिए, जे पीर पराई जाणे रे।
पर दुःखे उपकार करे जे, मन अभिमान न आणे रे॥

गाँधी जी की मान्यता थी कि पराई पीर जानने वाला, समझने वाला ही सच्चा वैष्णव है। दूसरी ओर, उनका कहना था पर-पीर हरण पर मन में अभिमान नहीं आना चाहिए। कारण, अभिमान पर-पीर हरण के आत्म-सुख को नष्ट कर देता है।

इसका लाभ बताते हुए 'दिनेश' जी लिखते है, *'और तेरी पीर तेरे हित बनेगी तीर।'* अर्थात्—'पराई पीर हरना' परोपकार है और परोपकार में प्रवृत्त रहना जीवन की सफलता का लक्षण है। (जीवितं सफलं तस्य यः परार्थोद्यतः सदा) वेद व्यास जी के कथनानुसार 'परोपकारः पुण्याय' अर्थात् परोपकार से पुण्य होता है। परोपकार करने का पुण्य सौ यज्ञों से बढ़कर है। चाणक्य यह मानते हैं, 'जिनके हृदय में सदा परोपकार करने की भावना रहती है उनकी विपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं और पग-पग पर सम्पत्ति प्राप्त होती है।' हरबर्ट का विचार है कि 'परोपकार करने की एक खुशी से दुनिया की सारी खुशियाँ छोटी हैं। एच. डब्ल्यू वीवर एक पग और बढ़ाते हुए कहते हैं, 'परोपकार का प्रत्येक कार्य स्वर्ग की ओर एक कदम है।'

अपनी व्यथा-कथा न सुनाकर जन-जन की पीड़ा हरने वालों में पवनसुत हनुमान् से लेकर महर्षि दधीचि, महात्मा गाँधी, विनोबा भावे, जयप्रकाशनारायण, डॉ. हेडगेवार, माधव सदाशिव गोलवलकर 'गुरु जी', मदर टेरेसा, साध्वी ऋतम्भरा आदि सहस्रों जन हैं। पर-पीड़ा हरण में आए कष्टों को शंकर बन विष समान पी लिया पर स्व-पीड़ा को व्यक्त नहीं किया।

पर-पीड़ा हरण में तुलसी *'परहित सरिस धर्म नहिं भाई'* मानते हैं तो संस्कृत सूक्ति इसे सौ यज्ञों से भी बढ़कर पुण्य मानती है। 'परोपकरणं पुण्यं क्रतुशतैः समम्' ज्ञानी लोग इसमें 'परम सुख' की अनुभूति प्राप्त करते हैं।

जीवन का अन्तिम और चरम लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति है। मोक्ष प्राप्ति के लिए मृत्यु पर अधिकार करना होता है। मृत्यु पर अधिकार तभी संभव है, जब मनुष्य दुःख-सुख, राग-द्वेष से ऊपर उठकर पर-पीर-हरण में जीवन की सार्थकता ढूँढेगा। इसलिए जीवन की सफलता तथा मृत्यु का प्रसन्नता से स्वागत करने के लिए मानव को 'मत व्यथा अपनी सुना तू, हर पराई पीर' के आदर्श को अपनाना चाहिए और सत्याचरण के पथ का पथिक बनना चाहिए।

(188) मनुष्य है वही कि जो मनुष्य के लिए मरे

संकेत बिंदु—(1) सूक्ति का भावार्थ (2) मनुष्य कौन की परिभाषा (3) भारतीयों की सोच पश्चिमी संस्कृति के अनुरूप (4) मनुष्य सामाजिक प्राणी (5) उपसंहार।

'मनुष्य है वही कि जो मनुष्य के लिए मरे', कहकर मैथिलीशरण गुप्त ने मनुष्य की व्याख्या प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। उनकी दृष्टि में मनुष्य वह है जो दूसरों की बात

या काम को आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण मानते हुए उसके लिए सब प्रकार के कष्ट भोगने या त्याग करने के लिए प्रस्तुत हो।

कोशकार रामचन्द्र वर्मा ने कहा 'जरायुज जाति का एक स्तनपायी प्राणी, जो अपने मस्तिष्क या बुद्धिबल की अधिकता के कारण, सब प्राणियों से श्रेष्ठ है, मनुष्य है।' पर महाकवि भर्तृहरि कहते हैं— 'जिनमें विद्या, तप, दान, ज्ञान, शरीर, गुण, धर्म कुछ भी नहीं है, वे मृत्युलोक में पृथ्वी का भार बने हुए प्राणी मनुष्य रूप में पशु ही हैं।' (नीतिशतक: 13) स्वयम्भूदेव भर्तृहरि से आगे बढ़ गए। उन्होंने कहा, 'निर्गुण, व्रतहीन और धरती का भार-सदृश मनुष्य का उत्पन्न होना ही ठीक नहीं। (पउम चरिउ 74/12)। गुप्त जी ने ही अन्यत्र ऐसे मनुष्य को मनुष्य मानने से इंकार कर दिया—

जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं, नर पशु निरा है और मृतक समान है।।

सर टामस ब्राउन कहते हैं, सच्चाई तो यह है कि ऐसा मनुष्य 'भस्मीभूत होने पर भव्य लगता है और कब्र में शानदार।'

प्रश्न उठता है कि मनुष्य कौन है ? निराला कहते हैं 'मनुष्य की जाँच उसकी मनुष्यता और उत्कर्ष से होती है।' (प्रबन्ध पद्म) दादा धर्माधिकारी ने उत्तर दिया, 'जो दूसरों को अपने जैसा देखता है, उसका नाम इन्सान है।' (सर्वोदय दर्शन) हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी निराला की जाँच कसौटी को मानते हुए धारणा बनाई, 'मनुष्य इसलिए मनुष्य है कि उसमें मनुष्यत्व धर्म है।' (कुटज) सत्यार्थ प्रकाश में महर्षि दयानन्द ने इसी मनुष्यत्व धर्म का समर्थन करते हुए कहा, 'मनुष्य उसी को कहते हैं जो मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख-दु:ख और हानि-लाभ को समझे।' हरिकृष्ण 'प्रेमी' ने तो गुप्त जी की काव्य-पंक्ति का ही गद्य-अनुवाद करते हुए कहा, 'मनुष्य वह है, जो दूसरे के लिए कष्ट सहे, आवश्यकता पड़ने पर प्राण भी दे दे।' (अमर आन)

महर्षि दयानन्द, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि सभी विचारकों ने 'पर-हित' पर जोर दिया है। उसी को मनुष्य की व्याख्या का मूल आधार माना है। गुप्त जी ने भी इस पर-हित को 'जो मनुष्य के लिए मरे' कहकर अपने विचार प्रकट किए हैं।

पाश्चात्य संस्कृति और सभ्यता ने शिक्षित भारतीयों के मस्तिष्क पर जबरदस्त आक्रमण करके उनके दिल पर कब्जा कर लिया है। इस आक्रमण का प्रभाव स्वातंत्रता से पूर्व नगण्य था, किन्तु कांग्रेसी सत्ता ने इसे प्रोत्साहित कर, पोषित कर भारतीयों की भारतीय-सोच को ही बदल दिया है। परिणामत: 'मानवता' की आधारभूत विशेषता 'पर दु:ख कातरता' भारतीय-हृदयों से लुप्त हो गई है। 'निज', 'निजत्व' के परिवेश ने 'अपनत्व' को ग्रस लिया है। सहानुभूति-संवेदना जैसे मानवीय गुण पाश्चात्य संस्कारों पर बलि हो गये। किसी की जेब कटती हो, दूसरे देखते हुए भी आँख मीच लेंगे। पड़ोसी या मित्र बीमार है, उसकी सूचना भी अनसुनी कर देंगे।

सच्चाई तो यह है कि यह प्रकृति की गलती नहीं, मानव की बदलती सोच का परिणाम है। वरना भारतीय संस्कृति ने तो 'परोपकार' भावना को माँ के दूध के साथ सिखाया है। ऋषि-मुनियों ने अपना जीवन उत्सर्ग करके उसे उदाहरण रूप में भी प्रस्तुत किया है। भगवान् शंकर ने देव-दानव कल्याणार्थ विष-पान किया। महर्षि दधीचि ने देवगण की रक्षार्थ अपनी हड्डियाँ दान कर दीं। राजा शिवि ने कबूतर की प्राण रक्षार्थ अपना अंग-अंग काट कर दे दिया।

वर्तमान जीवन में इस मानवीय गुण को लुप्त होते देख राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी की वेदना इन शब्दों में फूट-पड़ी—*'मनुष्य है वही कि जो मनुष्य के लिए मरे।'* 'मनुष्य के लिए मरे' कहने से तात्पर्य मृत्यु को प्राप्त होना या बलिदान देना नहीं है। बल्कि व्यावहारिक क्षेत्र में इसका अर्थ होगा—'दूसरों की सहायतार्थ स्वत: प्रेरणा से कष्ट भोगने और त्याग करने को भी प्रस्तुत होना।'

गुप्त जी समझते हैं कि पाश्चात्य चिंतन ने चाहे आदमी को परिवार छोड़कर इकाई में प्रतिष्ठित किया है, किन्तु आदमी है तो मूलत: सामाजिक प्राणी। अड़ोस-पड़ोस, मित्र-परिचित, बंधु-बान्धवों के बिना वह जी नहीं सकता। सुख-संतोषमय स्वस्थ जीवनयापन कर नहीं सकता। कारण, मानव जीवन संघर्ष, कष्ट-पीड़ा, आपत्ति-विपत्ति, दु:ख-दर्द का सम्मिलित रूप है। अकेला मानव न सुख भोग सकता है, न दु:ख झेल सकता है। भोगने की चेष्टा करेगा तो पागल हो जाएगा।

मनुष्य की यह पहचान (जो मनुष्य के लिए मरे) कराते हुए गुप्त जी का एक प्रच्छन्न उद्देश्य भी रहा है। वह उद्देश्य है 'मानव की मुक्ति'। मानव-मुक्ति का मार्ग है प्रभु की शरणागति। प्रभु की शरणागति का श्रेष्ठ मार्ग है—समाज-सेवा, मानव-सेवा। कारण, मानव और समाज प्रभु का रूप हैं। इसलिए मानव सेवा परमात्म-सेवा है। जिस प्रकार कठोर तप, व्रत, ध्यान-धारणा से मनुष्य ईश्वर का सानिध्य प्राप्त करने की चेष्टा करता है, उसी प्रकार दूसरों के हितार्थ कष्ट-पीड़ा तथा दु:ख-दर्द सहकर ही जीवन सफल बना सकता है। महर्षि अरविन्द ने भी कहा है, 'जीवन में ईश्वर को अभिव्यक्त करना ही मानव का मानवत्व है।'

'मनुष्य के लिए मरे' कहने में गुप्त जी का एक तर्क और भी रहा होगा। सामर्थ्य और शक्ति-सम्पन्नता में सहायता करना, सहयोग देना उपकार करना सरल है, किन्तु सीमा और सामर्थ्य से ऊपर उठने की असमर्थता तथा विघ्न बाधाओं की चिंता में आदमी झिझक जाता है, पग पीछे हटा लेता है। जबकि दु:खी मानव को सबसे ज्यादा सेवा की जरूरत उसी समय है। मैथिलीशरण गुप्त कहते हैं मनुष्यत्व की सच्ची पहचान तो तभी है जब दूसरों के लिए इतना अधिक कष्ट या दु:ख भोगना पड़े, चिन्तित या परेशान रहना पड़े कि शरीर का अंत हो जाने की नौबत आ जाए या स्वयं के लिए मरणासन्न स्थिति उत्पन्न हो जाए तो भी संघर्ष के लिए प्रस्तुत रहे।

प्रभु प्रदत्त इस जीवन की कृतार्थता का, समाज-ऋण से उऋण होने का तथा 'देहान्ते तव सान्निध्यं' का एक ही मार्ग है—'मनुष्य मनुष्य के लिए मरे।'

(189) मन के हारे हार है, मन के जीते जीत

संकेत बिंदु—(1) मन की अस्थिरता हार और एकाग्रता जीत (2) मन कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय से मुक्त (3) क्रियाएँ ज्ञान के अनुरूप न होने से भारत की दुर्दशा (4) मन के हारे हार की व्याख्या (5) उपसंहार।

मन की अस्थिरता मन की हार है और मन की एकाग्रता मन की जीत है। मन की अस्थिरता अर्थात् मन की चंचलता, ध्यान परिवर्तन। मन की एकाग्रता अर्थात् मन की सभी वृत्तियों की एक ही विषय में स्थिरता या दत्तचित्तता। पाठ याद करने बैठे हो, मन चंचल हो उठा, पहुँच गया दूरदर्शन के चित्रहार में। मन का हरण पाठ याद होने ही नहीं देगा। पाठ याद न होने का कारण मन की हार है। इसके विपरीत यदि मन की समग्र शक्ति को पाठ याद करने में लगा दिया तो पाठ निश्चित ही याद होगा। अर्जुन भी मछली की आँख का निशाना तभी लगा सका था, जब मन एकाग्र हो गया था। पाठ याद होना या मछली की आँख का भेदन मन की जीत है।

मन में विकल्प होना, मन का किसी निश्चय पर न पहुँचना, निराश हो जाना, हार है और संकल्प पर दृढ़ रहना मन की जीत। मन में 'यह या वह' की स्थिति बन जाने से संदेह उत्पन्न हो जाता है। शेक्सपीयर के अनुसार, 'संदेह हृदय में भय उत्पन्न करता है, जिससे हमें जिस पर विजय प्राप्त करने का पूरा भरोसा होता है, उसी के आगे नत-मस्तक होना पड़ता है।' हजरतबल दरगाह (कश्मीर) में केन्द्रीय-सत्ता के विकल्प-मन के कारण ही भारत सरकार को आतंकवादियों के आगे नतमस्तक होना पड़ा। कोई कार्य करने का मन में होने वाला निश्चय 'संकल्प' है। जब नैपोलियन की सेना ने आल्प्स-पर्वत को दुर्लंघ्य मान पर उस पर चढ़ने से इंकार कर दिया तो वह स्वयं सैनिकों को ललकारते हुए आगे बढ़ा। उसने कहा-आल्प्स है ही नहीं। बस, आल्प्स-पर्वत नैपोलियन के संकल्प से पराजित हो गया। यही परिस्थिति महाराज रणजीतसिंह के सम्मुख उपस्थित हुई। अटक नदी की उफनती जलधारा को देखकर उनकी सेना ठिठक गई। महाराजा रणजीतसिंह यह कहते हुए कि—

'सबै भूमि गोपाल की यामें अटक कहा?
जाके मन में अटक है, सोई अटक रहा॥

स्वयं आगे बढ़े और अपने घोड़े को नदी में उतार दिया। अटक-नदी परास्त हुई। सेना अटक के पार हुई। महाराजा रणजीतसिंह की विजय उनके दृढ़ संकल्प की विजय थी, मन के जीतने के कारण उनकी यह जीत थी।

स्मरण-शक्ति के अभाव में मानव दर-दर पराजय का मुख देखता है। परीक्षा में कमजोर स्मरण-शक्ति 'असफलता' का मुँह देखती है। पराजित मन से राष्ट्रीय चिंतन-मनन के कारण विश्व में भारत का तिरस्कार हो रहा था, किन्तु आज सबल मन के कारण (मन के जीतने से) वह विश्व राष्ट्रों में सम्मान का अधिकारी माना जाने लगा है।

मानसिक कार्यशक्ति की प्रचण्डता के कारण अमेरिका जीत दर जीत का वरण करता हुआ 'विश्व सम्राट्' बनने की चेष्टा कर रहा है। शक्ति की तीव्रता के बल पर ही मानव पग-पग पर विजयश्री का वरण करता है। स्वस्थ मन से चिंतन-मनन के कारण ही पाश्चात्य राष्ट्र उन्नति और समृद्धि का आलिंगन कर रहे हैं।

वैशेषिक दर्शन ने मन को उभयात्मक कहा है अर्थात् मन कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय, दोनों के गुणों से युक्त है। इसका अर्थ यह हुआ कि कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय का भेद ही 'हार' है और दोनों गुणों का मिलन जीत है। कामायनी के 'रहस्य' सर्ग में ज्ञान और कर्म की विभिन्नता पर 'मन के हारे हार है' बात का समर्थन करते हुए प्रसाद जी लिखते हैं—

ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है, इच्छा क्यों पूरी हो मन की।
एक दूसरे से न मिल सके, यही विडम्बना है जीवन की।।

वर्तमान भारत की दुर्दशा का पूर्ण ज्ञान हमारी सत्ता को है, किन्तु क्रियाएँ ज्ञान के अनुरूप न होने से भारत की दुर्दशा होती जा रही है। यह भारतीय मन के हार के कारण हार है। दूसरी ओर पाश्चात्य राष्ट्र ज्ञान के अनुरूप क्रिया कर रहे हैं, वे विश्व में अपनी विजय पताका फहरा रहे हैं। यह उनके मन की जीत की जीत है। मन ही हार (अस्थिरता) के कारण दसियों वर्षों से भारत का परमाणु परीक्षण रुका हुआ था, पर प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने मन की दृढ़ता प्रकट की तो पोखरण में परमाणु परीक्षण हो गया। विश्व के विकसित राष्ट्रों ने डराया भी तो उनकी परवाह न की। अन्ततः वे झुके और अब भारत का सम्मान करने लगे हैं। है न मन के जीते जीत।

'मन के हारे हार है' की व्याख्या करेंगे तो कहेंगे, मन के हारने से ही हार होगी। मन की हार है मन के बल की क्षींणता अर्थात् मनोबल का टूटना हार है। 'मन के जीते जीत' का तात्पर्य होगा 'मनोबल की तेजस्विता'। मनोबल ऊँचा है तो जीत चरण चूमेगी। देश स्वातन्त्र्य के समय कांग्रेसी नेताओं ने मुस्लिम लीग की कूटनीति के सम्मुख मानसिक हार मान ली थी, मनोबल टूट गया था। जिसका परिणाम हुआ भारतमाता का अंग-विभाजन, देश का बँटवारा। उसके विरुद्ध अनेक आपत्तियों-विपत्तियों को सहते हुए भी मुस्लिमलीग का मनोबल बना रहा। उसकी जीत हुई। वह पाकिस्तान ले मरी।

द्वितीय विश्व-युद्ध में जापान प्रायः टूट चुका था, किन्तु उसका मनोबल नहीं टूटा था। इस मनोबल के बल पर टूटा हुआ जापान पुनः विश्व की महती शक्ति बन गया। महादेवी के शब्द, **'हार भी तेरी बनेगी, मानिनी जय की पताका'**, सच सिद्ध हुए।

अर्जुन युद्ध लड़ने से पूर्व मानसिक दृष्टि से पराजित हो गया था, क्योंकि वह मन से हार चुका था। दूसरी ओर, भीष्म पितामह मृत्यु-शैया पर लेटे हुए भी इच्छा-शक्ति से मृत्यु को रोके हुए थे। यह इच्छा-शक्ति मन की शक्ति थी। इसलिए वे शरशय्या पर पड़े हुए भी जीवित थे। 'मन के जीते जीत' को चरितार्थ कर रहे थे।

जीवन की अनिवार्य स्थिति है—हार और जीत। दोनों का सम्बन्ध मनुष्य के मन से है। जहाँ मन की शक्ति सबल होगी, वहाँ जीत होगी। जहाँ मन की शक्ति क्षीण होगी, वहाँ

पराजय होगी। मन की शक्ति तन को शक्ति प्रदान करती है, साहस का प्रणयन करती है, आशा को बलवती बनाती है, 'हारिए न हिम्मत' का उपदेश देती है, संकल्प को दृढ़ निश्चय में ढालकर हार को भी जीत में बदल देती है। संस्कृत सूक्ति भी है—

'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो: ।'

(190) मृत्यु : एक अज्ञात रहस्य

संकेत बिंदु—(1) मृत्यु अवश्यभावी (2) परोपकार की प्रतिमा का अंत असामान्य क्यों (3) मृत्यु के विभिन्न रूप (4) कष्टदायक अंत महापुरुषों के जीवन का (5) उपसंहार।

जिसने जगत् में जन्म लिया है, वह मृत्यु का वरण करेगा ही, चाहे वह 'परित्राणाय साधुनाम्, विनाशाय च दुष्कृताम्' के उद्देश्य से भूतल पर अवतरित होने वाला स्वयं भगवान् ही क्यों न हों। भू लोक को मर्त्यलोक इसीलिए कहा जाता है कि यहाँ का प्रत्येक पंच भौतिक शरीर धारी जीव मरण-धर्मा है।

प्रश्न उठता है कि जब देवता-स्वरूप अवतारी पुरुष भी मृत्यु का आह्वान करते हैं, हिमानी से शीतल मृत्यु अंक में पूर्ण परमानंद की प्राप्ति की चाहना में स्वयं अपनी सचेतन काया को त्यागते हैं तो किस कारण? वे मृत्यु का वरण क्यों करना चाहते हैं? मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाने वाले श्री राम ने सरयू में समाधि ली। पाँडवों ने महाभारत-विजय के सर्वनाश को सहकर भी राज्य किया, किन्तु अंत में देवतात्मा हिमालय की गोद में जाकर शरीर-विसर्जन हेतु हिम में अपने को गला दिया। स्वामी रामतीर्थ ने गंगा में समाधि लगाकर शरीर विसर्जित किया। आचार्य विनोबाभावे और ज्योतिष्पीठ के जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी कृष्ण बोधाश्रम जी अन्न-जल त्याग कर मृत्यु का आलिंगन करने को विह्वल हो उठे। जबकि उनके लिए कोई ऐसी विवशता नहीं थी, जिसके कारण ईसा मसीह को शूली पर चढ़ना पड़ा और सुकरात को विष पीना पड़ा।

दूसरा प्रश्न उठता है कि जिसका जीवन परोपकार की प्रतिमा हो, उसका अन्त असामान्य रूप में क्यों होता है? सोलह कला संपूर्ण, गीता के प्रवक्ता, योगेश्वर श्रीकृष्ण का शरीरांत व्याध के तीर से हुआ। अहिंसा के मंत्र द्रष्टा गौतम बुद्ध की मृत्यु माँस-भक्षण से हुई। महान् समाज सुधारक, वैदिक वाङ्मय के प्रचारक महर्षि दयानन्द को विषयुक्त दुग्ध ने धरा से छीन लिया। विश्ववंद्य बापू (महात्मा गाँधी) को मत-भिन्नता का अभिशाप झेलते हुए गोली का शिकार होना पड़ा।

तीसरा प्रश्न तब उठता है कि जब पापी भ्रष्टाचारी भोगासक्त नराधम तो 'हार्ट-अटेक' के एक झटके में, अत्यल्प वेदना में प्राण त्याग देते हैं, किन्तु जीवन-भर समाज-सेवा करने वाले परोपकारी पुरुष रोग से लड़ते हुए, हृदय दहलाने वाली असह्य पीड़ा सहन करते हुए

प्राण विसर्जित करते हैं। स्वामी रामकृष्ण परमहंस को जीवन के अन्तिम दिनों में मर्मान्तक शारीरिक कष्ट सहना पड़ा। गीता-प्रेस, गोरखपुर के प्राण श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार के (जिन्हें स्नेह और आदरवश लोग 'भाई जी' कहते थे) प्राण उदर-शूल की मर्मान्तक पीड़ा के अटके रहे। श्रद्धालु इस भयावह स्थिति पर रोते रहे और अन्त में 'एक हिचकी आई, मुँह से रक्त का एक कुल्ला निकला और श्री भाई जी चिर निद्रा में सो गए... ...भगवान् की नित्य लीला में लीन हो गए।' (भाई जी : पावन स्मरण, पृष्ठ 512) क्या भाई जी के सेवा-समर्पण में कहीं कुछ दोष था?

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के द्वितीय सरसंघचालक परम पूजनीय श्री माधव सदाशिवराव गोलवलकर का (श्रद्धा से जिन्हें 'गुरु जी' संज्ञा से संबोधित किया जाता था) सम्पूर्ण जीवन समाज-सेवा में बीता। सच्चाई तो यह है कि उन्होंने समाज-सेवा को ईश्वर-सेवा मानकर उसकी उपासना की थी। उनकी मृत्यु 'कैंसर' जैसे असाध्य रोग, मन और आत्मा को झकझोर देने वाली पीड़ा से हुई। 'सायंकाल का समय। संध्या-वंदन के लिए हाथ-मुँह धोए और फिर उठ न सके।' क्या उनकी वंदना प्रभु के लिए चुनौती थी?

प्रश्न उठता है कि क्या धरा को रामराज्य प्रदान करने वाले प्रभुराम को यह धरा रुचिकर नहीं लगी? धर्म-संस्थापनार्थ जीवन की उद्देश्य पूर्ति का यही प्रायश्चित था कृष्ण के लिए? समाज को ईश्वर-रूप मानकर उसकी पूजा करने वालों को पीड़ा का विषपान करने की बाध्यता का पुरस्कार ही नियति का प्रसाद है? क्या 'भाई जी' की मर्मान्तक पीड़ा वेदव्यास जी के 'धर्मो रक्षति रक्षितः' वचन को झुठलाती नहीं? जीवनभर समाज रूपी प्रभु वंदना में समर्पित जीवन में पग-पग पर परीक्षा देते हुए भी अन्तिम समय मोक्ष-परीक्षा का यह प्रश्न-पत्र इतना क्लिष्ट क्यों, जिसमें शरीर ही नहीं आत्मा भी विचलित हो जाए? तुलसीदास कहते हैं, *'जीवन कर्मवश दुःख-सुख भागी।'* दूसरी ओर वे कहते हैं, *'कर्म प्रधान विश्व रचि राखा, जो जस करइ सौ तस फलु चाखा।'* स्वयं गोस्वामी तुलसीदास को जीवन के अन्तिम दिनों में मर्मान्तक बाहुपीड़ा सहनी पड़ी। प्रश्न उठता है, क्या इन महापुरुषों के कर्म सुकर्म नहीं थे, जो दुःख भागी बने।' गीता कहती है, 'असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः।' अर्थात् जो फल की अभिलाषा छोड़कर कर्म करते हैं उन्हें अवश्य मोक्ष-पद प्राप्त होता है।' तो क्या इनके कर्म अभिलाषा युक्त थे? नहीं, ऐसा सोचना भी पाप है।

प्रभु की इस लीला को, मृत्यु के तांडव-नृत्य के रहस्य को, प्रकृति के इस द्वंद-विधान को, जगन्नियंता की क्रीडा ही मान सकते हैं, जिसका भेद पाना मनुष्य के वश में नहीं है। हाँ, कोई 'कठोपनिषद्' का नचिकेता हो तो सम्भव है, मृत्यु के रहस्य को पा सके।

(191) लड़का लड़की एक समान

संकेत बिंदु—(1) सूक्ति का अर्थ (2) लड़का-लड़की में भेदभाव प्रकृति-जन्म (3) माता-पिता की विकृत मानसिकता (4) लड़की को बोझ समझना (5) महिलाएँ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में।

जनसंख्या वृद्धि को अवरुद्ध करने का यह एक नारा है 'लड़का लड़की एक समान' अथवा जिन दम्पतियों के यहाँ केवल लड़कियाँ ही जन्म लेती हैं, उनको धैर्य तथा सांत्वना देने का यह एक घोष भी है। जो परिवार लिंग-भिन्नता के कारण अपनी संतानों में भेद-भाव बरतते हैं, अर्थात् लड़की की अपेक्षा लड़के को अधिक महत्त्व देते हैं, उनके लिए एक उपदेश-वाक्य है।

लड़के के जन्म पर परिवार में खूब-खुशियाँ मनाई जाती हैं और लड़की के जन्म पर अवसाद-सा छा जाता है। विष्णु शर्मा ने 'पंचतंत्र' में 'पुत्रीति जाता महतीति चिन्ता' कहकर मन खराब किया तो कवि उस्मान का हृदय 'चित्रावली' में रो उठा, *'जब ते दुहिता ऊपनी, सतत हिए उतपात।'* लड़का परिवार का दुलारा कहलाता है, पुत्री पराया धन है। महाकवि कालिदास ने 'अर्थो हि कन्या परकीय एव' कहकर इसी बात का समर्थन किया है। लड़का मस्तिष्क प्रधान होता है, लड़की हृदय प्रधान। लड़का पितृऋण से उऋण होने का साधन है तो लड़की परिवार को ऋणी बनाती है। लड़का जन्मत: स्वतंत्र है और लड़की परतंत्र। इसलिए लड़का सबल है, लड़की अबला है। लड़का कमा कर लाएगा, इसलिए घर की सम्पन्नता का सूचक है और लड़की घर से बहुत कुछ लेकर जाएगी, इसलिए विपन्नता का कारण है, तब लड़का-लड़की एक समान कैसे?

लड़का-लड़की में असमानता प्रकृति-जन्य है, उसकी अनदेखी कर, मानवीय दृष्टि से समान समझना, यह मनुष्य का धर्म है। सामाजिक और राष्ट्रीय उन्नति का अनिवार्य कर्म है। समानता के धर्म और कर्म के अभाव में सामाजिक और कौटुम्बिक जीवन विपाक्त होगा। सच्चे धर्म का ह्रास होगा।

लड़के को उच्च, उच्चतर शिक्षा देने का मन बनाना और लड़की की माध्यमिक, उच्च माध्यमिक शिक्षा तक को बहुत समझना विषमता का प्रथम चरण है। इसका कारण है—माता-पिता की यह सोच कि लड़की ने तो चूल्हा ही फूँकना है, नौकरी थोड़ी करनी है। मानो नौकरी करना ही जीवन का अंतिम लक्ष्य हो। परिणामत: लड़की अर्ध-शिक्षित रह जाती हैं। गाँवों में तो आज भी बहुत-सी कन्याएं पाठशाला नहीं जा पातीं। फलत: उनके मन, मस्तिष्क तथा चारित्रिक गुणों का विकास नहीं हो पाता। परिणामत: उनमें शुरू से ही आत्महीनता की ग्रन्थि विकसित हो जाती है और वे समाज-विकास में सहायक नहीं हो पातीं।

लड़के और लडकी को व्यावहारिक शिक्षा देने में अंतर करना, माता-पिता की

मानसिक विषमता है। लड़के को लड़की की अपेक्षा खान-पान-परिधान में अधिक और श्रेष्ठ सामग्री देना; लड़के-लड़की की लड़ाई में लड़की को डाँटना, झिड़कना; घर के काम-काज में लड़की को ही अधिक रगड़ना; समय-असमय लड़की में हीनता की भावना को दर्शाना विषमता के परिचायक हैं। लड़की के जोर से बोलने, ठहाके मार कर हँसने, समवयस्क बालक-बालिकाओं से अधिक मेल मिलाप को लोक-व्यवहार-विरुद्ध करार दिया जाता है। जबकि लड़के इस प्रकार के व्यवहार के लिए स्वच्छंद रहते हैं। इस विषमतापूर्ण व्यवहार का परिणाम यह होता है कि लड़कियों में शुरू से ही आत्महीनता का भाव पैदा हो जाता है। आत्महीनता का भाव अंधकारमय·जीवन का मार्ग खोलता है। कारण, 'हीनता सभी पापों की जड़ है।'—सेजरे पाबेसे (All sins have their origin in a sense of Inferiority.)

अभिभावकों की मानसिक विषमता का एक बड़ा कारण है, लड़की को 'बोझ' समझना। 'बोझ' इसलिए कि विवाह के अवसर पर लड़की कुछ लेकर जाएगी। उसके लिए अच्छे घर और वर की तलाश में मारे-मारे फिरना पड़ेगा। लोगों की बातें और रिश्तेदारों के व्यंग्य सुनने पड़ेंगे। ससुराल वालों के नखरे सहने पड़ेंगे। लड़की कब सयानी होगी, कब विवाह-योग्य होगी, परन्तु उसका भूत माता-पिता के मन को उसके जन्म समय से ही सताता रहता है। इसी बोझ को हल्का करने के चक्कर में लड़के की अपेक्षा लड़की के विवाह को प्राथमिकता देते हैं। बोझ को हल्का करने में पक्षपातपूर्ण व्यवहार असंगत है। कारण, नियति समय पर सब काम स्वत: करवा देती है। और समय पर चिंतन विजयश्री का द्वार खटखटाता है। फिर बोझ तो पुत्र वधू को देखने में भी है। पुत्र-वधू की मानसिकता समझने में है, उसके साथ ठीक व्यवस्थित होने (एडजेस्टमेंट) का भय है। बोझ तो बोझ ही है, फिर उसके कारण विषमता क्यों?

आज सहस्रों नहीं, लाखों लड़कियाँ, किशोरियाँ, युवतियाँ तथा नारियाँ राष्ट्र-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अध्यापन से लेकर मेडीकल सेवा तक में, पुलिस से लेकर सेना तक में, कार ड्राइवर से लेकर हवाई उड़ान तक में, जासूसी से लेकर मनोरंजन तक में, धर्म से लेकर राजनीति तक में, समाज-सुधार से लेकर न्यायालयों में कार्यरत हैं। अपनी योग्यता, दक्षता तथा चातुर्य से वे भारत की संघीय व्यवस्था को सुचारु संचालन देने में जुटी हैं। घर-गृहस्थी की आर्थिक दशा सँवारने में योग दे रही हैं। सबसे अधिक वे लड़के-लड़की की समानता की पक्षधर बन उनका भविष्य उज्ज्वल बनाने में लगी हैं।

'बरछी, ढाल, कृपाण, कटारी उसकी यही सहेली थी', वाली वीरांगना लक्ष्मीबाई, अँग्रेजी काव्य की रचयित्री सरोजिनी नायडू, हिन्दी की महाकवयित्री महादेवी वर्मा, सुभद्राकुमारी चौहान; विपक्ष और विदेशों को ललकारने वाली इन्दिरा गाँधी, क्रीड़ा के मैदान में प्रतिस्पर्धी को धूल चटाने वाली उड़नपरी पी.टी. उषा, पुलिस में शौर्य की प्रतीक किरण बेदी, कला के क्षितिज को छूनेवाली मीनाकुमारी, वैजयन्ती माला, वहीदा रहमान यदि विषमता के वातावरण में पली होतीं, उन्हें आगे बढ़ने का सु-अवसर नहीं मिला होता तो

क्या वे भारत के इतिहास में अपना नाम अंकित करा पातीं ? कदापि नहीं। वे प्रेमचंद के 'निर्मला' उपन्यास की नायिका निर्मला के समान घुट-घुट कर मर जातीं।

आज भारत राष्ट्र सभी क्षेत्रों में अपने देशवासियों के विकास का आह्वान कर रहा है। विकास के लिए चाहिएँ बुद्धिमान्, पराक्रमवान् तथा आकांक्षावान् नर-नारी। ये नर-नारी तभी आगे आएंगे, जब लड़कपन में उनके गुण, महत्त्व और मूल्यों को समान समझा जाएगा। उन्हें आगे बढ़ने का समान अवसर दिया जाएगा। यह तभी सम्भव है जब परिवारों में यह समझ उपजेगी कि

लड़का-लड़की हैं एक समान, इसी भाव से बनेगा देश महान्॥

(192) विपत्ति कसौटी जे कसे, ते ही साँचे मीत

संकेत बिंदु—(1) सच्चा मित्र (2) रहीम के नवीन भाव (3) विपत्ति के समय मित्र की कसौटी (4) सम्पत्ति को विपत्ति में मित्रता की कसौटी (5) उपसंहार।

मित्र की पहचान बताते हुए रहीम जी कहते हैं—जो विपत्ति अर्थात् कष्ट, चिंता, हानि, संकट में काम आए, सहयोग-सहायता से उपकृत करे, वही सच्चा मित्र है।

इस प्रकार रहीम जी ने विपत्ति को 'साँचे मीत' की कसौटी माना है। इस कथन को उनके पूर्व के मनीषी और लेखक पहले भी व्यक्त कर चुके हैं। अश्वघोष ने कहा, 'विपत्ति में साथ न छोड़ना मित्र का लक्षण है।' भर्तृहरि ने भी कहा, 'सच्चे मित्र विपत्ति में उसका साथ नहीं छोड़ते।' वाल्मीकि रामायण में लिखा है, 'दु:खित: सुखितो वापि सख्युर्नित्यं सखा गति: ' अर्थात् मित्र दु:ख में हो या सुख में, वह अपने मित्र की सदा ही सहायता करता है। गाथा सप्तशती ने लिखा, 'विपत्ति पड़ने पर किसी देश-काल में भी मित्र दीवार पर अंकित चित्र की भाँति मुँह नहीं फेरता।' तुलसी ने मानस में इसका समर्थन किया, *'विपत्ति काल कर सतगुन नेहा। श्रुति कह संत मित्र गुन एहा'* तथा *'धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपतकाल परखिए चारी।'* प्लुटार्क ने कहा, 'विपत्ति ही ऐसी तुला है, जिस पर मित्रों को तोल सकते हैं।' (Adversity is the only balance to Weight friends)।

प्रश्न उठता है कि रहीम ने नई बात क्या कही ? पुरानी बात का समर्थन करके रहीम ने कौन-से नए सत्य का उद्घाटन किया, जो सूक्ति बन गया ? यदि हम इस दोहे की पूर्व पंक्ति को पढ़ेंगे तो लगेगा रहीम ने लीक से हटकर कुछ नए भाव रखे हैं।

कहि रहीम संपति सगे, बनत बहुत बहु रीति।
विपत्ति कसौटी जे कसे, ते ही साँचे मीत॥

व्यक्ति के पास ऐश्वर्य और वैभव होने पर तो लोग तरह-तरह से रिश्तेदारी या पारिवारिक सम्बन्ध जोड़कर उससे अपनत्व प्रकट करते हैं, परन्तु सच्चा मित्र तो वह है, जो विपत्ति में काम आए।

यहाँ रहीम जी ने 'सगे बनत' और 'मीत' का प्रयोग किया है। 'सगे बनत' का अर्थ

है 'सहोदर बनना' या 'संबंध अथवा रिश्ते में अपने ही कुल या परिवार का बनना'। मीत का अर्थ मित्र या दोस्त है। इस व्याख्या से 'सगे बनत' और 'मीत' में अन्तर आ गया। पारिवारिक संवंध जोड़ना और मित्रता निभाना, दो अलग-अलग बातें हैं। पारिवारिकता का संबंध रक्त से है और मित्रता का हृदय से।

इस दोहे से रहीम जी का यह भाव प्रकट हुआ कि जब व्यक्ति सम्पत्तिवान् होता है तो लोग अपने तरीके से, विविध उपायों से, नए-नए आधारों पर उससे संबंध-स्थापित करते हैं। पर विपत्ति पड़ने पर जो साथ छोड़ जाए, वह 'साँचा मीत' कहलाने योग्य नहीं।

यहाँ सम्पत्ति का अर्थ ऐश्वर्य, वैभव, जायदाद के साथ-साथ लाभपूर्ण पद का स्वामित्व लें तो बात स्पष्ट हो जाएगी। पार्षद, विधायक, सांसद, पदासीन अधिकारी तथा सत्तासीन राजनयिक सम्पत्तिवान् हैं। इनके आगे-पीछे जनता का ताँता लगा रहता है। सच भी है, गुड़ है तो उस पर मक्खियाँ भिनभिनाएंगी हीं। कहीं पहचान निकाली जाती है, दोस्तों के दोस्त बन जाते हैं, दूर की रिश्तेदारी का वास्ता दिया जाता है। और नहीं तो 'काले- काले सब मेरे बाप के साले' कहकर 'भानजा' बनने की कहावत तो चरितार्थ कर 'सगे बनत' का प्रयत्न करते हैं। प्रसाद जी ने (प्रेम पथिक में) इस सत्य का उद्घाटन करते हुए कहा है—

कहीं तुम्हारा 'स्वार्थ' लगा है, कहीं लोभ है 'मित्र' बना।
कहीं 'प्रतिष्ठा', कही 'रूप' है, मित्र रूप में रंगा हुआ।।

पद मुक्त हुए, निर्वाचन में पराजय पल्ले पड़ी तो 'सगे' बेगाने हो गए। इन्दिरा जी की पराजय के पश्चात् उनके कई सहयोगियों को संजय और इन्दिरा जी में बुराइयाँ ही बुराइयाँ दीखने लगीं। चहुँ ओर उनके दोषों, भूलों, बुराइयों की शल्य-क्रिया होने लगी। Indira is India (इंदिरा ही भारत है) मानने वालों का स्वर चमगादड़ की तरह बदल गया। इन्दिरा जी उनकी नजर में देशघातिनी बन गईं। अपनी कूटनीति से इन्दिरा जी पुनः प्रधानमंत्री बनीं तो वे ही आलोचक, हितैषी बनने का, सगे होने का नाटक करने लगे। इस विपत्तिकाल में इन्दिरा का सगा बना 'बेटा संजय' और मित्र बने अमित्र।

सम्पत्ति को विपत्ति में मित्रता की कसौटी मानना क्या असंगत है ? बिलकुल नहीं। फिर 'सगे' को विपत्ति की कसौटी मानें ? बिलकुल मानना चाहिए। क्या 'सगे' को 'मीत' का पर्यायवाची मानते हुए पहली बात को दूसरी का उदाहरण मानें ? नहीं, बिलकुल नहीं। पर, यदि मीत का अर्थ 'सहृदय' लें तो बात स्पष्ट हो जाएगी।

हनुमान् श्रीराम के सगे (संबंधी) नहीं थे, पर सहृदय (मीत) बनकर उन्होंने विपत्तिकाल में उनका साथ दिया। इसके विपरीत विभीषण रावण का सगा बंधु (अनुज) था, पर विपत्तिकाल में वह साथ छोड़ गया। इतना ही नहीं रावण का वध उसी के कारण हुआ।

महाभारत का कर्ण पाँडवों का 'सगा' था, किन्तु मित्रता निभाई कौरवों के साथ; यह जानने पर भी कि वह कुंती पुत्र है। कर्ण ने दुर्योधन को कहीं धोखा नहीं दिया, जीवन-पर्यन्त साथ नहीं छोड़ा। यही मित्रता की सच्ची कसौटी है।

दानवीर भामाशाह और महाराणा प्रताप का क्या रिश्ता था ? राजा और प्रजा का, 'सगे' का नहीं। 'मीत' होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। भामाशाह ने विपत्ति को समझा, सहृदय बना और सम्पूर्ण सम्पत्ति प्रताप के चरणों में अर्पित कर दी। हुई न सहृदय (मीत) की कसौटी विपत्ति।

बिहार-पुलिस के शूरवीर जब जयप्रकाश नारायण पर लाठी भांज रहे थे तो नाना जी देशमुख ने उनका सुरक्षा-कवच बन लाठियां का प्रहार अपने ऊपर झेला। मौत की परवाह नहीं की। क्या रिश्ता था जयप्रकाश नारायण और नानाजी देशमुख का ? केवल सहृदयता का। इसके विपरीत इन्दिरा जी पर गोलियाँ चलीं तो साथ चलने वालों में से कोई उनकी सुरक्षा के लिए गोली खाने को तैयार नहीं हुआ। इसलिए आज के भारत का सिद्धान्त बना—

गीत गाओ त्याग के, चर्चा करो परमार्थ पर।
घूम-फिर कर अंत में, आ जाइए निज स्वार्थ पर।।

—काका हाथरसी ('सत्संग' कविता)

सम्पत्ति महान् साधन है 'मीत' का और विपत्ति कसौटी है मीत के परख की। संपत्ति मंगलमय मिलन का स्रोत है तो विपत्ति अलगाव की पीड़ा। इसीलिए रहीम ने कहा, जो विपत्ति में सहायक बने, वही वास्तविक सुहृद है, वही सखा और अभिन्न मित्र है।

(193) सठ सुधरहिं सत संगति पाई

संकेत बिंदु—(1) रामचरितमानस के बालकांड में सत्संगति का प्रभाव (2) सुधरहिं का अर्थ (3) विभिन्न ग्रंथों में सत्संगति का महत्त्व (4) महापुरुषों की सत्संगति का प्रभाव (5) उपसंहार।

रामचरितमानस के बालकांड में तुलसी सत्संगति के प्रभाव का चित्रण करते हुए कहते हैं, *'सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परसि कुधातु सुहाई।'* अर्थात् दुष्ट भी सत्संगति पाकर सुधर जाते हैं, जैसे पारस के स्पर्श से लोहा सुन्दर स्वर्ण बन जाता है।

स्वभाव से दुष्ट, धोखेबाज और मूर्ख 'सठ' (शठ) है। चालक, जालसाज, मक्कार बेईमान और कपटी भी 'सठ' है। एक स्त्री के प्रति प्रेम प्रदर्शित करते हुए दूसरी स्त्री में मन रमाने वाला भी 'सठ' है।

सत्संग की व्याख्या करते हुए तुलसी कहते हैं, 'ऋषियों का दर्शन मात्र सत्संग है *(तुम्हारे दरस जाहिं अघ खीसा। बड़े भाग पाइअ सत्संगा।)* आगे चलकर संतों के साथ रहकर 'हरिकथा श्रवण' को सत्संग कहा है। *(बिनु सतसंग न हरिकथा तेहि बिनु मोह न भाग)*। एक स्थान पर संत समागम को सत्संगति कहा है। *(आजु धन्य मैं धन्य अति जद्यपि सब विधि हीन। निज जन जानि मोहि प्रभु संत समागम दीन्ह।)* 'संत समागम' में संत मिलन, उनके दर्शन, कथावार्त्ता आदि का उनसे श्रवण सम्मिलित है। योग वाशिष्ठ का भी यही

कहना है, 'पूर्ण महात्मा और सज्जनों के साथ को ही सत्संग कहते हैं।' कोशकार रामचन्द्र वर्मा का मत है, 'सज्जनों, साधु-महात्मा या धर्मनिष्ठ व्यक्तियों के साथ उठना-बैठना, धर्म सम्बन्धी चर्चा करना सत्संगति है।' (मानक हिन्दी कोश)

'सुधरहिं' से तात्पर्य है, दोषों, विकारों आदि का उन्मूलन कर अथवा उनमें परिवर्तन लाकर स्थिति में सुधार होना। श्री संतसिंह 'पंजाबी' इसका अर्थ महिमा बढ़ने में मानते हैं, जिससे इस लोक में शोभा होती है और परलोक में गति मिलती है। (मानस की भाव प्रकाश टीका)।''सुधरहिं' की एक शर्त है निष्कपट सत्संग। सत्संग में किंचित् भी कपट हुआ तो वैसे ही सुधार नहीं होगा जैसे लोहे और पारस के बीच में महीन कागज या कपड़ा भी हुआ तो लोहा सोना नहीं होगा।

इस प्रकार इस चौपाई का अर्थ हुआ—स्वभाव से दुष्ट, धोखेबाज, जड़ बुद्धि वाले, चालाक, जालसाज, मक्कार, बेईमान, कपटी, पर-स्त्री गामी भी सज्जनों, साधु-महात्मा या धर्मनिष्ठ व्यक्तियों के साथ उठने-बैठने या धर्म चर्चा करने से अपने दोषों और विकारों का उन्मूलन कर अपनी महिमा बढ़ाते हैं। वे न केवल इस लोक में शोभा पाते हैं बल्कि परलोक में भी उनकी गति मिलती है, स्वर्ग प्राप्ति होती है।

भर्तृहरि ने भी सत्संगति के प्रभाव का निम्न शब्दों में उल्लेख किया है—

जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं / मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं / सत्संगतिः कथय किन्न करोति पुँसाम्॥

अर्थात् सत्संगति बुद्धि की जड़ता नष्ट करती है, वाणी में सत्य को सींचती है, मान बढ़ाती है, पाप मिटाती है, चित्त को प्रसन्नता देती है, संसार में यश फैलाती है। सत्संगति मनुष्य के लिए क्या क्या (हित) नहीं करती?

'मालविकाग्निमित्र' में कालिदास कहते हैं, 'विद्वानों की संगति में बैठकर मूर्ख भी उसी प्रकार विद्वान् बन जाता है जैसे मटमैला पानी मैल को काटने वाले निर्मली के फल के सम्पर्क से स्वच्छ हो जाता है।'

'हितोपदेश' में लिखा है—सुवर्ण के सम्बन्ध से काँच भी सुन्दर रत्न की शोभा को प्राप्त करता है, इसी प्रकार मूर्ख भी सज्जन के संसर्ग से चतुर हो जाता है।

'सठ सुधरहिं' कहकर तुलसी चुप नहीं रह गए, उन्होंने इसके लिए कुछ उदाहरण भी दिए हैं, 'बाल्मीक नारद घट जोनी' तथा 'जलचर थलचर नभचर नाना।' 'मति कीरति गति भूति भलाई।' 'जे जड़ चेतन जीव जहाना जेहि जब जतन जहाँ जेहि पाइ।'

एक पौराणिक कथा के अनुसार त्रेता युग के वाल्मीकि पहले रत्नाकर नामक दस्यु थे। नारद के सत्संग से उनके जीवन में परिवर्तन आया और वे तपस्वी वाल्मीकि बन गए। एक जन्म में दासी पुत्र नारद ब्रह्मर्षियों की कृपा से 'उच्छिष्ट सीथ प्रसादी' प्राप्त कर मुनीश्वर बने। धर्म शास्त्र-रहित योनी से अगस्त्य (घट योनी) की उत्पत्ति हुई तथा शाप द्वारा जो मर्त्युलोक में उत्पन्न हुए वे भी सत्संग के प्रभाव से देव और ऋषि तुल्य पूज्य बने।

जलचर, स्थलचर, नभचर, जड़ और चेतन को सत्संगति से क्रमश· मति, कीरति, गति, भूति और भलाई प्राप्त हुई। राघव मत्स्य (जलचर) को सुमति उपजी। गजेन्द्र (स्थलचर) को कीर्ति मिली। नभचर (जटायु) को सद्गति मिली। (जड़ बनी) अहल्या अपने पति को प्राप्त हुई। सुग्रीव, हनुमान् आदि वानरों (चेतन) को इतनी भलाई प्राप्त हुई कि स्वयं प्रभु श्रीराम ने अपने को उनका ऋणी माना।

पुराणकाल के अनन्तर भी 'सठ सुधरहिं सत्संगति पाई' के सहस्त्रों उदाहरण मिलते हैं। महामूर्ख कालिदास गुरु सान्निध्य प्राप्त कर संस्कृत-साहित्य का उज्ज्वल नक्षत्र बना। महात्मा बुद्ध के सत्संग से वैशाली की नगरवधू आम्रपाली का जीवनोद्धार हुआ। ऐश्वर्य के मद में चूर चालाक, कपटी व्यभिचारी भारतीय नरेश गाँधी जी की सत्संगति से देशभक्ति की ओर मुड़े। अस्पृश्य कहलाया जाने वाला हिन्दू-वर्ग का महात्मा गाँधी के सत्संग से उद्धार हुआ। आत्म-गौरव शून्य राष्ट्रीयता की पहचान से अनभिज्ञ लाखों नवयुवक डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार तथा श्री माधव सदाशिव गोलवलकर (श्री गुरु जी) की सत्संगति में आकर भारतमाता के सच्चे सपूत सिद्ध हुए। वनवासी बन्धु राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सम्पर्क से आधुनिक जीवन जीने की शैली से परिचित हुए।

धर्म-तीर्थ, पाँचों मठ, भारत में फैले स्वामी रामकृष्ण आश्रम, गुरुवर रवीन्द्रनाथ का शांति-निकेतन, पांडिचेरी में स्थित महर्षि अरविन्द आश्रम तथा अन्य अनेक धार्मिक स्थल आज भी राह से भटके, दिग्भ्रान्त और निराश प्राणियों को अपनी शरण में लेकर उनके जीवन में आमूल परिवर्तन कर रहे हैं।

कहावत है कि एक मछली सारे तालाब को गन्दा कर देती है। क्या एक 'सठ' सत्संगति को भ्रष्ट नहीं कर पाता। इसका समाधान तुलसी ने इसी चौपाई के उत्तरार्द्ध में यह कह कर किया है, *'बिधिवस सुजन कुसंगति परहीं। फनिमनि सम निज गुन अनुसरहीं।'* मणि सर्प के मस्तक में रहती है और विष भी। पर मणि में विष का मारक गुण नहीं आने पाता। सर्प का संसर्ग पाकर भी मणि उसके विष को ग्रहण नहीं करती, प्रत्युत मणि विष को मारती है। इसी प्रकार सन्त यदि दुष्टों के बीच में पड़ भी जाएं, तो भी दुष्टों की दुष्टता उनमें नहीं आ पाती, दुष्टों की संगति का उन पर प्रभाव नहीं पड़ता। भक्त प्रवर प्रह्लाद का जन्म और पालन-पोषण ही नास्तिक वातावरण में हुआ था और विभीषण महाबली राक्षसराज रावण के अनुज थे। फिर भी, उन दोनों पर कुसंगति का प्रभाव नहीं पड़ा।

व्यक्ति अपने वातावरण से प्रभावित होता है, यह प्रकृति-सत्य है। शठ व्यक्ति दण्ड के भय से कुकर्म त्याग दे, पर स्वभाव से वह नहीं बदलेगा। कहावत भी प्रसिद्ध है, 'चोर चोरी से जाए, हेरा फेरी से नहीं जाता।' यह स्वभाव परिवर्तन 'केवल सत्संगति' से सम्भव है। गाँधी जी का 'हृदय-परिवर्तन' सिद्धांत स्वभाव-परिवर्तन ही तो है। यह हृदय-परिवर्तन संतों-सज्जनों के समागम के बिना असम्भव है। 'सठ सुधरहिं' का यही मूल भाव है।

(194) सबै दिन होत न एक समान

संकेत बिंदु—(1) परिवर्तन ही जीवन (2) जीवन में उतार-चढ़ाव (3) इतिहास का एक अन्य प्रसंग (4) प्रकृति परिवर्तन का दूसरा रूप (5) उपसंहार।

गुण, मूल्य, महत्त्व, आकार, प्रकार, रूप, मात्रा, विस्तार तथा संक्षेपण की दृष्टि से जीवन में सब दिन एक-ही जैसे नहीं रहते। मानव हो या पशु, प्रकृति हो या सृष्टि, चल हो या अचल, सब पर यह उक्ति चरितार्थ होती है। कारण, परिवर्तन ही जीवन है और समय परिवर्तनशील है। श्रीधर पाठक 'भारत-गीत' में लिखते हैं—

परिवर्तन है प्राण प्रकृति के अविचल क्रम का।
परिवर्तन क्रम ज्ञान मर्म है, निगमागम का॥
परिवर्तन है हार सृष्टि के सौन्दर्यों का।
परिवर्तन है बीज विश्व के आश्चर्यों का॥

जीवन में समय की गति तीव्र है। इस तीव्र गति से दौड़ते समय के चक्र की जो भी चपेट में आया, वह बदल गया। आशा निराशा में, सफलता असफलता में, जय पराजय में, उत्थान पतन में, सुख दु:ख में, मिलन वियोग में, राग द्वेष में, प्रेम घृणा में, त्याग भोग में, तृष्णा वितृष्णा में बदल गई। परिणामत: जीवन की स्थिति बदल गई, गुण और मूल्य बदल गए। यशस्वी पुरुष के लिए उसका यश विद्रूप बन गया। अर्थवान् के लिए अर्थ अनर्थ हो गया। अहिंसावादी मनुष्य के लिए अहिंसा हास्यास्पद बन गई। राजा रंक बन गया और दीन मंत्री बन बैठा, प्रांत या राष्ट्र का भाग्यविधाता बन बैठा।

हम अपने जीवन में झाँक कर देखें तो अपने जीवन के उतार-चढ़ाव, आनन्द और शोक, अवनति-उन्नति, शान्ति-कलह इस बात को प्रमाणित करेंगे कि जीवन में सब दिन एक समान नहीं होते। दैनिक जीवन में भी इसका अनुभव कर सकते हैं—घर में खीर बनी है, सब चाट-चाट कर खा रहे हैं, कल सब्जी में नमक ज्यादा था, इसलिए सब बड़बड़ा रहे थे। कल दफ्तर की बस बीच रास्ते में ऐसी ख़राब हुई कि तबीयत नासाद हो गई और आज जब घर लौटे तो घर में महाभारत मचा था।

भारत में कल तक जमींदारों और राजाओं, नवाबों का राज्य था। जमींदारी उन्मूलन में जमींदारी खत्म हुई। राजाओं-नवाबों की सल्तनतें खत्म हुईं, प्रीवी पर्स ख़त्म हुए। राजशाही इतिहास के पन्नों की कथा बनकर रह गई।

प्रभु राम का जीवन भी इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। कहाँ राजसी वैभव और कहाँ बनवास के चौदह वर्षों का कष्टकर जीवन। ऊपर से सीता-हरण का दारुण दु:ख। रावण से युद्ध की पर्वत-सम समस्या। सीता-मिलन से पूर्व सीता की अग्नि-परीक्षा। राम राजा बने, सीता गर्भवती हुई, पर हुआ गर्भवती सीता का त्याग। इसे 'राम की लीला' कहें या 'सब दिन होत न एक समान' का श्रीराम के जीवन पर प्रभाव।

इतिहास का एक अन्य प्रसंग है। भारत की सशक्त प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी

का जीवन 'सबै दिन होत न एक समान' का जीवंत उदाहरण है। इलाहाबाद हाई कोर्ट का निर्णय, आपत्काल की घोषणा, निर्वाचन में हार, मुकदमें और आरोप, पुन: प्रधानमंत्री बनना। देश की समस्याओं से जूझना। सैंकड़ों सुरक्षाकर्मियों से घिरी सुरक्षित इन्दिरा जी। और अन्त में बाड़ ही खेत को खा गई—उनके दो सुरक्षाकर्मियों ने ही उनकी हत्या कर दी। है न 'सबै दिन होत न एक समान' का सटीक उदाहरण। पूर्व प्रधानमंत्री नरसिंहराव को ही लीजिए। कभी उनकी तूती बोलती थी, और अब मुकदमों के चक्कर में उनके तोते बोलते हैं।

सबै दिन होत न एक समान का सटीक उदाहरण देते हुए कविवर नरोत्तमदास श्री कृष्ण से मिलने के पश्चात् सुदामा के जीवन में हुए परिवर्तन का उल्लेख करते हुए लिखते हैं—

कै वह टूटी-सी छानी हुती कहँ। कंचन के सब धाम सुहावत।
कै पग में पनही न हुतीं कहँ। लै गजराजहु ठाडे महावत।।
भूमि कठोर पै रात कटै कहँ। कोमल सेज पं नींद न आवत॥
कै जुरतो नहिं कोदौं सवाँ, प्रभु के परताप ते दाख न भावत।।

(सुदामाचरित पद कं. 119)

प्रकृति हर दूसरे महीने अपना वेश बदलकर सबै दिन होत न एक समान को चरितार्थ करती है। वासन्ती परिधान में पृथ्वी इठलाती है, तो गर्मी में सूर्य की तेज किरणों से धरा तप्त होती है। मेघावली के जल के सिंचन से हरियाली छाती है तो शीत का हृदय कम्पाने वाला वेग और हिम पूरित वायु का सन्नाटा तन-मन को झकझोर देता है।

प्रकृति-परिवर्तन का दूसरा रूप 'सबै दिन' तो क्या 'पहर-पहर होत न एक समान' का साक्षी है। प्रभात बेला का बाल-अरुणोदय, दोपहर में अंशुमाली का दृप्ततेज, सायंकाल थके सूर्य की जल समाधि और मधुरात्रि में तारागणों की जगमगाहट देखकर जीवन के परिवर्तन को कौन झुठला सकता है?

सृष्टि परिवर्तन का अनोखा रूप देखिए। जहाँ कभी बीहड़ जंगल थे, वहाँ आज भव्य नगर हैं। जहाँ कहीं मेघ बरसने से भी डरते थे, वहाँ महाबाँधों ने पृथ्वी को सस्यश्यामला कर रखा है। और जहाँ कहीं देवदारु के पेड़ आकाश को छूते थे, वहाँ अब जंगल में मंगल है। जहाँ गहन अन्धकार रहता था, वहाँ अब विद्युत् प्रकाश की चकाचौंध है।

राजनीति में तो यह सूक्ति पूर्णत: चरितार्थ होती रहती है। 'आयाराम-गयाराम' पार्टी-बदल की संज्ञा बनी। जिस भारतीय जनता पार्टी को विपक्ष 'साम्प्रदायिकता' की गाली देते थकता नहीं था, आज अधिकांश वही विपक्ष भाजपा में सत्ता का साझीदार है। वेदव्यास जी ने महाभारत में सच ही कहा है, 'अरिश्च मित्रं भवति मित्रं चापि प्रदुष्यति।' (शांतिपर्व 80/8) अर्थात् शत्रु भी मित्र बन जाता है और मित्र भी बिगड़ जाता है।

परिवर्तन जीवन और प्रकृति का शाश्वत नियम है, सृष्टि की अपनी प्रकृति है। जब परिवर्तन-क्रिया होती है तो जीवन प्रभावित होता है। जीवन की एकरसता, एकरूपता में बदल जाती है। यह बदल ही 'सबै दिन होत न एक समान' की वास्तविकता है।

सदा न फूले तोरई, सदा न सावन होय।
सदा न जीवन थिर रहे, सदा न जीवै कोय॥

(195) समय सबसे बड़ा धन है

संकेत बिंदु—(1) संतों व विद्वानों के विचार (2) समय का महत्त्व (3) मानव की बहुमूल्य निधि (4) समय की गति पहचानने वाला भाग्यशाली (5) उपसंहार।

समय जगत्-नियन्ता से भी शक्तिशाली है। रूठे हुए प्रभु को आराधना, तप, भक्ति से पुन: मनाया जा सकता है। गीता में श्रीकृष्ण इसका समर्थन करते हैं, 'स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानव: ।' अपने-अपने कर्मों के द्वारा ईश्वर की पूजा करने से मनुष्य सिद्धि को प्राप्त होता है। दूसरी ओर रूठा हुआ कल अर्थात् बीता हुआ समय कोटि उपाय करने पर नहीं बुलाया जा सकता, उसे प्रसन्न नहीं किया जा सकता।

डिकेन्स का कथन है, 'कोई ऐसी घड़ी नहीं बना सकता, जो मेरे बीते हुए घंटों को फिर से बजा दे।' समय की कीमत कौन आँक सकता है ? हाँ, समय पर काम न करने की क्षति का अनुभव सबको कभी न कभी अवश्य होता है ?

समय मानव की बहुमूल्य निधि है। समय हृदय पर लगी चोट को सहलाता है, मानव के आँसू पोंछता है, दिल पर लगे घावों को भरता है—'Time is the best healer'. युद्ध की विभीषिकाएँ समय के साथ समाप्त हो जाती हैं। ईर्ष्या, राग, द्वेप, घृणा, विद्रोह रूपी मनोविकार समय के साथ शान्त हो जाते हैं। समय की यह महानता चुनौती-रहित कार्य है, जो 'समय ही सबसे बड़ा धन है', इस अटल सत्य को स्वीकार कराता है।

मानवीय तृष्णाएँ समाप्त नहीं होतीं, मानव समाप्त हो जाता है। मानव के पास इतना समय है कि वह बीतता नहीं, मानव ही बीत जाता है। कैसी विडम्बना है ? समय को नष्ट करने वालों को समय ही नष्ट कर देता है।

इहलोक का हर प्राणी किसी न किसी कारण चिन्तित है, किन्तु समय को किसी की चिन्ता नहीं। उसे किसी की प्रतीक्षा नहीं। वह तो तीव्र गति से अबाध बह रहा है। समय की गति को पहचान कर कार्य करने वाला भाग्यशाली है, धनी है, सिद्ध पुरुष है। समय जब द्वार पर दस्तक देता है, उसकी आवाज को सुनने के लिए सतर्क रहने वाले लाभ उठा गए, जो दैव-दैव पुकारते रहे, वे जीवन में पिछड़ गए। समय रूपी अश्व की दुलत्तियों ने उन्हें धूल चटा दी।

समय की अवहेलना करने वाला समय की मार से कब बचा है ? स्वतन्त्रता-पूर्व हिन्दू-दौर्बल्य ने भारत माता का विभाजन करवा दिया। समय की अवहेलना के कारण ही आज साम्प्रदायिकता सिंह-गर्जन कर रही है और भारत-सरकार उससे बचने के लिए कन्दरा में छिप रही है। रोम जल रहा है, नीरो बंसी बजा रहा है।

श्रीमद् आद्यशंकराचार्य का कथन है—'समय को व्यर्थ खोना जीवन की अपूरणीय हानि है।' 'काव्यशास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम्। व्यसनेन तु मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा'—बुरे कार्यों, निद्रा, लड़ाई-झगड़े में समय की बरबादी मूर्खता की निशानी

है। 'समय काटे नहीं कटता', 'कोई कार्य नहीं', ऐसा सोचना मस्तिष्क की शून्यता है। मस्तिष्क की शून्यता अर्थात् विवेकहीनता, जो शैतान का घर है।

सम्पूर्ण जीवन में समय ही ऐसा तत्त्व है जो मनुष्य के भाग्य पर दस्तक देता है। उठो और मुझे पहचानो। मेरा लाभ उठाकर जीवन को धन्य करो। समय रूपी अमृत बहता जा रहा है। सम्भव है प्यास बुझाने का अवसर फिर न मिले। इसलिए समय को सबसे बड़ा धन कहा गया है।

मृत्यु जीवन का अंत है। आत्मा का शरीर से विसर्जन है। इस विसर्जन का अधिकार किसे है ? यह महत्त्वपूर्ण तत्त्व क्या है ? कल्हण इसका उत्तर देते हुए कहते हैं—'समय'।

न भवेत् पविपातेऽपि प्रलयः समयं विना।
प्रसूनमप्यसून् हन्ति जन्तो प्राप्तावधे पुनः ॥

(राजतरंगिणी, 8/531)

समय आए बिना वज्रपात होने पर भी मृत्यु नहीं होती है और समय आ जाने पर पुष्प भी प्राणी का प्राण ले लेता है।

समय का मूल्यांकन करते हुए एडमंड वर्क का कहना, 'The great instructor time'. अर्थात् महान् शिक्षक समय। बेकन लिखते हैं 'Time, which is the author of authors.' समयः जो लेखकों का भी लेखक है। शेक्सपीयर का तो यहाँ तक विश्वास है, 'The sprit of the time shall teach mespeed.' समय की आत्मा मुझे गति सिखा देगी। क्योंकि शेक्पीयर शब्द को अश्रव्य और निःशब्द चरण मानते हैं। 'The inaduible and noiceless foot of time.'

अथर्ववेद ने समय का मूल्यांकन इस प्रकार किया है—'समय सात प्रकार की किरणों वाले सूर्य के समान शासन करने वाला, अजर अर्थात् कभी वृद्ध न होने वाला तथा महाबलशाली है। समय सदा गतिशील घोड़े के समान है। बुद्धिमान् लोग इसे अपना वाहन बनाते हैं, क्योंकि वह सर्वव्यापक है तथा भिन्न-भिन्न परिस्थितियों के कारण रंग बदलता है।'

समय सत्य का पथ-प्रदर्शक है। समय की पाबन्दी सुशीलता का चिह्न है, सफलता की कुंजी है। कल का काम आज निपटाना यशस्वी बनने का साधन है। समय का उचित उपयोग समय की बचत है, सफलता की कुंजी है इसलिए समय सबसे बड़ा धन है।

(196) समरथ को नहीं दोष गुसाईं

संकेत बिंदु—(1) तुलसीदास की चौपाई का अर्थ (2) समर्थवान और तेजस्वी का अर्थ (3) समर्थवान और धनवान में सर्वगुण (4) ऐतिहासिक उदाहरण (5) उपसंहार।

देवर्षि नारद पर्वतराज हिमवान् और उनकी पत्नी को बता रहे हैं कि तुम्हारी पुत्री पार्वती का पति गुणहीन, मानहीन, माता-पिता-विहीन, उदासीन, लापरवाह, योगी, जटाधारी,

निष्काम हृदय, नंगा और अमंगलवेशधारी होगा। ये गुण शिवजी में हैं। यदि शिवजी के साथ पार्वती का विवाह हो जाए तो शिवजी के इन दोषों को लोग गुणों के समान कहेंगे। क्योंकि 'समरथ को नहिं दोष गोसाईं।' अर्थात् समर्थवान् को दोष नहीं लगता।

'समरथ को नहिं दोष गोसाईं' चौपाई की यह अर्धाली अपूर्ण है। कारण, 'गुसाईं' यहाँ सम्बोधन नहीं, 'समरथ' उपमेय का उपमान है। यहाँ गुसाईं का अर्थ है हरि। इसलिए इसके आगे के तीन उपमानों के बिना यह पंक्ति अपंग है। पूरी चौपाई इस प्रकार है—

समरथ को नहिं दोष गोसाईं। रवि पावक सुरसरि की नाईं।

ऊपर भी तुलसी इन चारों उपमानों से दोष बताते हैं—(1) जो अहिसेज सयन हरि करहीं। (2-3) भानु कृषानु सर्व रस खाहीं (4) सुभ अरु असुभ सलिल सब बहई।'

अब जरा शिवजी से चारों की तुलना भी करके देख लीजिए—(1) हरि शेषनाग की शैया पर शयन करते हैं, वैसे ही शिवजी शरीर पर सर्प लपेटे रहते हैं। (2-3) भानु-कृषानु अर्थात् सूर्य और अग्नि सर्व रस (जल) भक्षी हैं, वैसे ही शिवजी भाँग, धतूरा आदि मादक द्रव्यों का सेवन करते हैं। शिवजी का तीसरा नेत्र अग्निस्वरूप है ही। (4) सुरसरि शुभ और अशुभ, सब प्रकार के जल को बहाती है तो शिवजी नग्न रहते हैं।

भागवत में जब राजा परीक्षित द्वारा इसी प्रकार का प्रश्न किया गया तो श्री शुकदेव ने उत्तर में कहा—'तेजांसि न दोषाय।' जो तेजवान् है, वह दोषों से रहित है। यही बात पंचतंत्र में विष्णु शर्मा ने कही है—'तेजो यस्य विराजते स बलवान् स्थूलेषु कः प्रत्ययः।' अर्थात् जो ओजस्वी है, वही बलवान् है। शरीर का भारी-भरकम होना कुछ काम नहीं देता। यहाँ तेज का अर्थ सामर्थ्य ही है।

अब प्रश्न उठता है समर्थ या तेजवान् कौन है? जिसके पास शारीरिक बल है वह समर्थ है, जिसके पास धन की शक्ति हो वह समर्थवान् है, जिसका दिमाग तेज हो वह समर्थ है, जिसके पास अधिकार हो वह भी समर्थ है, जिसके पास सत्ता हो वह परम समर्थ है?

शरीर से बलवान् पहलवान् होगा या समाज-द्रोही (गुंडा), समाज में इन दोनों के कुकृत्यों की चर्चा करते डरते हैं। इनके दोष में भी गुण ढूँढ़ा जाता है। इनके समाज-विरोधी कार्य में भी वीरता के दर्शन करते हैं। आज तो पुलिस भी इन पर एकाएक हाथ डालने से डरती है।

जो धनवान् है, लक्ष्मी जिसके चरण दबाती है, जमींदार, सेठ-साहूकार है; फैक्ट्री, मिल या उत्पादक इकाइयों का मालिक है, उसके सौ कत्ल भी माफ हैं। उसके विरुद्ध बोलते जबान लड़खड़ाती है। उनके दोष भी गुण हैं। जैसे मांस को आकाश में पक्षी, भूमि पर हिंसक जीव और जल में मगरमच्छ खा जाते हैं, ऐसे ही ये मानव-मांस के भक्षक हैं, पर समाज में सबसे प्रतिष्ठित यही हैं। कारण, 'सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति।' संसार के सभी गुण सुवर्ण में बसते हैं।

बुद्धिमान् की शक्ति शरीर और धन बल से बड़ी है। बुद्धिमान् शस्त्रहीन चाणक्य ने सशत्र नन्दवंश का नाश कर दिया। इन्दिरा गाँधी ने राजनारायण को तलवार बनाकर जनता-

सरकार को गिरवा दिया। लोग चाणक्य और इन्दिरा गाँधी की जय-जयकार करते हैं। राम और लक्ष्मण मात्र दो भाइयों ने स्वर्णमयी लंका के स्वामी रावण को धूल चटा दी। कारण, बुद्धिमान् की भुजाएँ बड़ी लम्बी होती हैं जिनसे वह दूर तक वार करता है। (दीर्घौ बुद्धिमतो बाहू याभ्यां हिंसति दूरत:)

जिसके पास अधिकार है, उस अधिकारी के दोष को कौन देखता है ? पुलिस वाले पता नहीं कितने अत्याचार-अनाचार करते हैं, किन्तु कोई उन्हें टोकता है ? नहीं, उलटा वे उसके अलंकरण के पात्र होते हैं। आज खरीद-अधिकारी लाखों का गोलमाल करके भी सत्यवादी हरिश्चन्द्र हैं। सभी उनके गुणगान करते हैं। बॉस की चरित्रहीनता उसके अधिकार तले दबकर साँसे भरती है। चूँ-चपड़ की तो 'ट्राँसफर' करवा दिया। मिल गया न 'समरथ' को छेड़ने का मजा।

सत्ता जिसके पास है, उसके सभी दोष गुणों में बदल जाते हैं। राजनीति उसकी शोभा है और कूटनीति उसका अलंकरण। विपक्ष का गला घोंट दे, अपने मंत्रीगण को कठपुतली की तरह नचाये, हजारों लोगों को मरवा दे, लाखों को जेल में डलवा दे, फिर भी वह पूजनीय है, श्रद्धेय है। आपत्काल में सत्ता द्वारा देश को जेलखाना बनाने वाली इन्दिरा गाँधी को उस समय की ही जनता ने 'इन्दिरा इज इण्डिया' कह दिया। राष्ट्र की माता मानकर उसकी पूजा की। यह है सत्ता का जादू जो दोषों में भी गुण ढूँढ़ता है, बुराई में भी भलाई दीप्त होती है। उसके षड्यंत्र को कूटनीति की संज्ञा से अलंकृत किया जाता है।

'समरथ को नहिं दोष गोसाईं' के कुछ रोंगटे खड़े कर देने वाले उदाहरणों के बिना यह निबन्ध पूर्ण नहीं होगा।

अकबर बादशाह ने हिन्दुओं पर अनगिनत अत्याचार-अनाचार किए, फिर भी वह 'ग्रेट एम्प्रर' की उपाधि से इतिहास में अलंकृत हुआ। सहस्रों शिल्पियों के हाथ कटवाने वाला शाहजहाँ ताजमहल का पुन: निर्माता बनकर विश्व के सात आश्चर्यों में से एक का स्वामी होने के कारण विश्व-पुरुष बना।

अंग्रेजों की कूटनीति और क्रूरता की लोमहर्षकता से विश्व के अनेक गुलाम राष्ट्र पद-दलित थे, पर अंग्रेजों का गुणगान इन शब्दों में होता था, 'ब्रिटिश साम्राज्य में सूर्य नहीं डूबता।' उनके 'लॉ एण्ड आर्डर' की तारीफ करते दास देशों का कण्ठ नहीं सूखता था।

कांग्रेस के सन् 1942 के आन्दोलन की हिंसा से भारत की आत्मा भी काँप उठी थी। 'मेरी लाश पर पाकिस्तान का निर्माण होगा' का उद्घोष महात्मा गाँधी ने ही किया था। पाकिस्तान बन गया, पर गाँधी जीवित रहकर सत्य और अहिंसा के देवता बने रहे, विश्ववंद्य हुए।

गाँधी जी परम देशभक्त थे। भारत सरकार, कांग्रेस पार्टी और भारत के मनीषियों ने दुश्मन पाकिस्तान को 55 करोड़ रुपया लौटाने से इन्कार कर दिया, क्योंकि उसने भारत का तीन अरब रुपया देना था, पर गाँधी जी ने आमरण अनशन करके भारत सरकार को पाकिस्तान रूपी सर्प को 55 करोड़ रुपए रूपी दूध पिलाने को मजबूर किया। फिर भी गाँधी जी राष्ट्रपिता कहलाए।

जवाहरलाल नेहरू ने लोकसभा में एक बिल पास करवाया—जब तक भारत का एक भी प्रांत हिन्दी के विरुद्ध होगा, हिन्दी राजभाषा नहीं बन सकती। बहुमत की अवहेलना करने वाले श्री नेहरू लोकतंत्र के अधिष्ठाता कहलाए।

प्रान्तों में मनचाहे मुख्यमंत्री थोपने वाली, अधिनायक की तरह मुख्यमंत्रियों को पदच्युत करने वाली तथा अपनी पार्टी में आजीवन चुनाव न कराने वाली इन्दिरा जी लोकतंत्र की मसीहा कहलाईं।

इसलिए तुलसी ने सच ही कहा है, सामर्थ्यवान् के दोषों में भी गुण नजर आते हैं। उसके कुकृत्यों में भी समाज की भलाई के दर्शन होते हैं तथा उनके देशद्रोहत्व को भी देशभक्ति से अलंकृत किया जाता है, क्योंकि समर्थ होने से दोष उन्हें स्पर्श नहीं कर पाते।

(197) सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा/ भारत देश महान्

संकेत बिंदु—(1) भारतीयों के स्वदेश प्रेम का परिचायक (2) जलवायु की दृष्टि से भारत सर्वश्रेष्ठ (3) भारत की विश्व सभ्यता का आदि स्रोत (4) भारतीय सभ्यता और धर्म का आधार ईश्वर (5) पाश्चात्य समाज केवल अधिकार को महत्त्व।

उर्दू कवि इकबाल की यह काव्य-पंक्ति भारतीयों के स्वदेश प्रेम की परिचायक है, विश्व में भारत की सर्वश्रेष्ठता, महत्ता को सिद्ध करती है। भारत की संस्कृति-सभ्यता की भव्यता के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करती है।

इकबाल से पूर्व संस्कृत और हिन्दी-साहित्य में भारत-भू का गुणगान करने वालों की भरमार है। विष्णु पुराण में कहा गया है—*'गायन्ति देवा: किलगीतकानि धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे'* अर्थात् देवता भी कहते हैं कि भारत में जन्म लेने वाले लोग धन्य हैं। क्योंकि भारत स्वर्ग और अपवर्ग का हेतु है। नारद पुराण में कहा गया है—'आज भी देवगण भारत-भू में जन्म लेने के इच्छा करते हैं।' श्रीधर पाठक ने 'जगत मुकुट जगदीश दुलारा, शोभित सारा देश हमारा' कहकर भारत की वन्दना की है। मैथिलीशरण गुप्त पूछ ही बैठे, 'भूलोक का गौरव, प्रकृति की पुण्य लीला-स्थली है कहाँ?' फिर वे स्वयं उत्तर देते हुए कहते हैं, 'फैला मनोहर गिरि हिमालय और गंगाजल जहाँ।'

भारत की महिमा का वर्णन करते हुए महादेवी वर्मा कहती हैं, 'संसार में इतना सुन्दर देश दूसरा नहीं है। जिन्होंने बाहर जाकर देखा है, वे भी यही कहेंगे कि वास्तव में ऐसी हरी-भरी भूमि जिसमें तुषारमंडित हिमालय भी है, जिसमें सूर्य की किरणें केसर के फूलों की तरह शोभा बरसाती हैं, जिसके कंठ में गंगा-यमुना जैसी नदियों की माला पड़ी हुई नदियाँ हैं, जिसके चरण तीन ओर से कन्याकुमारी में सागर धोता है, कितनी हरी-भरी है, कितनी सम-विषम है! ऐसी सुजला-सुफला भारत की ही धरती है।'

जलवायु की दृष्टि से भारत सारे संसार में श्रेष्ठ है। विश्व की जलवायु का ऐसा सन्तुलित विभाजन और कहाँ है? कोई देश ग्रीष्म में तप रहा है, तो कोई कठोर शीत से संत्रस्त है। यह भारत ही है जहाँ प्रचण्ड गर्मी भी है तो प्रबल शीत और भरपूर वर्षा भी। शुष्क पतझर भी है, तो हृदयहारी वसंत भी। गर्मी, बरसात और सर्दी अपने चातुर्मास्य काल में भारत को तृप्त करते हैं। षड्-ऋतुएँ (वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त और शिशिर) वर्ष भर के वातावरण को भिन्न-भिन्न ऋतुओं में विभक्त कर भारतवासियों को सुख-शान्ति प्रदान करते हैं। भारत-भू को सुजला-सुफला, सुवर्णा, मलयज शीतला बनाते हैं।

भारत विश्व-सभ्यता का आदि-स्रोत है। इसने विश्व के नंगे, असभ्य और अनाश्रित मानव को सभ्यता का पाठ पढ़ाया। जीवन जीने की शैली समझाई। मानव-मूल्यों की पहचान करवाई। मानवता को विकसित करने का पथ-प्रशस्त किया। व्यक्ति और समाज का जो समन्वय प्राचीन वर्णाश्रम-व्यवस्था में मिलता है, उसका उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ है।

विश्व की आदि पुस्तक वेद है। वेद ज्ञान के भण्डार हैं। सृष्टि में ज्ञान का उदय करने का और युगों-युगों से विश्व में ज्ञान की ज्योति जलाये रखने का पूर्ण दायित्व निर्वाह करने का श्रेय पवित्र वेदों को है। वेद संस्कृत में हैं। संस्कृत भारत की आदि भाषा है। वेद, उपनिषद् छहों दर्शन तथा मानस के समान अध्यात्म का पाठ पढ़ाने वाले धार्मिक-ग्रन्थ विश्व में अन्यत्र कहाँ हैं?

भारत की प्राचीन वास्तुकला आज के वैज्ञानिकों को विस्मय में डाल देती है। आयुर्वेद, धनुर्वेद, ज्योतिष, गणित, राजनीति, चित्रकला, वस्त्र-निर्माण आदि सभी में प्राचीन भारत किसी समय बहुत उन्नत था। अजन्ता के रंगीन-चित्र प्राकृतिक-आघातों का सामना करते हुए आज तक सुरक्षित हैं। महरौली (नई दिल्ली) का लोह स्तम्भ सहस्रों वर्षों से जल-वायु प्रदूषण से अप्रभावित खड़ा है।

यूरोपीय देशों ने जीवन की समृद्धि के लिए एक ही उपाय स्वीकार किया—और वह है आवश्यकताओं की वृद्धि, किन्तु भारत ने अपरिग्रह का और आवश्यकताएं घटाओ का उपदेश दिया। 'सादा जीवन उच्च विचार का सन्देश सुनाया'। 'तेन त्यक्तेन भुंजीथाः मा गृधः कस्यस्विद् धनम्' का आदर्श प्रस्तुत किया। इतना ही नहीं वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम में समाज-कल्याण के लिए जीवन समर्पण का पथ-प्रशस्त किया। चिन्तन के इसी अन्तर के कारण पाश्चात्य नागरिकों का अन्तःकरण अशांत है, अतृप्त है, विक्षुब्ध है और इसीलिए नैराश्य पूर्ण जीवन में वहाँ आत्म-हत्याओं की प्रमुखता है, विक्षिप्तता का प्राचुर्य है, सोने के लिए नींद की गोलियों का सहारा लिया जाता है।

भौतिकवादी पाश्चात्य समाज केवल अधिकार को महत्त्व देता है। अधिकार प्राप्ति-इच्छा ही उसके असंतोष और संघर्ष का मूल कारण है। मजदूर मालिक से, किसान जमींदार से, शासित-शासक से और इतना ही नहीं विद्यार्थी अपने अध्यापक से अधिकार प्राप्ति की लिप्सा में संघर्षरत है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी करोड़ों रुपए व्यय कर, समय लगाकर

मानवीय अधिकारों की ही व्याख्या की है, किन्तु कहीं कर्तव्य भावना का जिक्र नहीं। भारत में कर्तव्य सर्वोपरि है। 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' की शिक्षा यहाँ माँ के दूध के साथ दी जाती है। इसलिए अधिकार-लिप्सु राष्ट्र एक-दूसरे को नष्ट करने के लिए संहारकारी शस्त्रास्त्र निर्माण की होड़ में लगे हैं। मानव और मानवता को नष्ट करने पर तुले हैं और भारत 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः' की प्रार्थना करते हुए भौतिक उन्नति करने के साथ-साथ मानव और मानवता का संरक्षण कर रहा है। मानवीय मूल्यों के संरक्षण-संवर्द्धन के कारण भी हमारा हिन्दोस्ताँ सारे जहाँ से अच्छा है।

विश्व के लाखों लोग भारत के अध्यात्म-तत्त्व और जीवन-मूल्यों के प्रति आकर्षित हैं। भौतिक-वैज्ञानिक सुखों को त्याग कर आत्म-ज्ञान के लिए भारत की ओर उन्मुख हैं। संघर्ष और युद्ध का मार्ग छोड़ शांति, प्रेम, स्नेह का जीवन जीने के लिए भारत की ओर निहार रहे हैं।

संस्कृति, सभ्यता, जीवन-मूल्य, जीवन-शैली, जीवन मुक्ति तथा आत्मविकास का ज्ञान भारत-भूमि के कण-कण में व्याप्त है। इसी के तत्त्वज्ञान के आचरण में जीवन का सच्चा सुख है और है परलोक की उन्नति। इसीलिए भारत देश सारे देशों से श्रेष्ठ है, अजर है, अमर है। 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा' के गायक कवि इकबाल ने इसी तत्त्व-चिन्तन की पृष्ठभूमि में कहा था, 'कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।'

(198) स्वतन्त्रता स्वच्छंदता नहीं है

संकेत बिंदु—(1) स्वतंत्रता का अर्थ (2) स्वच्छंदता का दुरुपयोग (3) सामाजिक स्वच्छंदता के कारण अराजकता (4) राजनीतिक स्वच्छंदता से नुकसान (5) उपसंहार।

स्वतंत्रता का अर्थ स्वेच्छा, मौज या रुचि के अनुसार अथवा किसी सनक में आकर काम करना नहीं। स्वतंत्रता का अर्थ किसी प्रकार के अंकुश, नियंत्रण या मर्यादा का ध्यान न रखते हुए मनमाने ढंग से आचरण या व्यवहार करना भी नहीं। स्वतंत्रता का अभिप्राय नैतिक और सामाजिक दृष्टि से अनुचित तथा निन्दनीय आचरण या व्यवहार करना भी नहीं। भ्रष्ट-आचरण भी स्वतंत्रता नहीं। बिना किसी रोक या बाधा के जहाँ चाहे, वहाँ विचरण करते फिरना भी स्वतंत्रता नहीं।

स्वतंत्रता मुख्यतः प्रशासनिक और सामाजिक क्षेत्रों का शब्द है। इसमें परकीय तंत्र या शासन से मुक्त होने का भाव प्रधान है। इसके विपरीत स्वच्छन्दता मुख्यतः आचार और व्यावहार क्षेत्रों का शब्द है और इसमें शिष्ट-सम्मत नियमों और विधि-विधानों के बंधनों के प्रति अवज्ञा का भाव प्रधान रहता है। अतः स्वच्छन्दता का मार्ग इन्द्रियों को बहिर्मुखी बनाए रखना है जबकि स्वतंत्रता का मार्ग उनको अन्तर्मुखी बनाकर उनकी क्षमता का विस्तार करना है।

व्यक्ति जब स्वतंत्रता के साथ स्वच्छन्दता का उपभोग करे, तो वह प्रमादी बन जाता है। नारी स्वच्छन्दचारिणी बन जाए तो कुलटा या वेश्या कहलाती है। समाज स्वच्छन्द हो जाए, तो उसमें गुंडा-गर्दी का वर्चस्व होता है। स्वच्छन्द राष्ट्र तो अपनी स्वतंत्रता खोकर परतंत्रता को ओढ़ता है। आर्थिक स्वच्छन्दता ऐय्याशी है। ऐय्याशी अन्धी होती है और मनुष्य को बिगाड़ देती है।

रावण ने सीता-हरण कर स्वच्छन्दता प्रकट की, तो स्वर्णमयी लंका का विनाश हुआ। कौरवों ने द्रौपदी के चीरहरण का स्वच्छन्द कृत्य किया, तो महाभारत का युद्ध हुआ। 'कामायनी' के मनु ने इड़ा से स्वच्छन्द आचरण करना चाहा, तो मनु आहत हुए। इन्दिरा गाँधी ने सत्ता में स्वच्छन्दता का उपयोग किया, तो न केवल वे, बल्कि उनकी पार्टी भी चाहे एक बार ही सही, सत्ता-सुख से वंचित हुई।

देश ने घोर तपस्या करके आजादी ली थी। आजादी मिली, तो तपस्या विलास में बदल गई। सत्ता के नशे ने हर कांग्रेसी के मन में स्वच्छन्दता जागृत हुई। देश को लूटने-चूसने की होड़ लड़ गई। सत्ता-भोग का जादू सिर चढ़कर बोलने लगा। चरित्र का घोर पतन हुआ। मान-मर्यादाएँ धूल में मिल गईं। नव धनाढ्य-वर्ग उत्पन्न हुआ, जिसका उद्देश्य ही स्वतंत्रता को स्वच्छन्दता से भोगना था। फलत: देश भ्रष्टाचार में डूबने लगा। हर व्यक्ति बिकाऊ हो गया। अन्तर केवल व्यक्ति-व्यक्ति के मूल्य का था, स्तर का था।

देश में सामाजिक स्वच्छन्दता ने भी अपने पैर फैलाए। समाज स्वच्छन्दता की ओर बढ़ा, तो सर्वत्र गुंडा-गर्दी का साम्राज्य स्थापित हुआ। नर-नारी की स्वतंत्रता स्वच्छन्द समाज-द्रोही तत्त्वों के हाथों गिरवी हो गई। दुर्बल-वर्ग से मारपीट, नारी से बलात्कार और बच्चों को उठा ले जाना उनकी स्वच्छन्दता के प्रतीक हैं। दूसरी ओर समाज में दहेज के दानव ने पुरुष की स्वतंत्रता को स्वच्छन्दता में बदला और नारी की स्वतंत्रता घोर परतंत्रता में परिवर्तित हुई। परिणामत: वह पुरुष-स्वच्छन्दता के सम्मुख पैर की जूती बनी, मार-पीट, गाली-गलौज-अपमान, भूख और उपेक्षा की पीड़ा में उसकी अग्नि-परीक्षा होने लगी। संसद् और विधानसभाओं में पार्टी-बहुमत ने सत्ता को स्वच्छन्दता प्रदान कर दी। पाशविक बहुमत के आगे विपक्ष बौना बन गया। श्रीमती इन्दिरा गाँधी का 19 मास का आपत्काल अर्थात् 'गुलामी' सत्ता की स्वच्छन्दता का ही तो खुला उपभोग था। 'इन्दिरा इज इण्डिया' का उद्घोष स्वच्छन्द 'अहम्' की पराकाष्ठा ही तो थी।

राजनीतिक स्वच्छन्दता का नग्न रूप देखना हो तो राजीव शासन और बाद के दिनों को देखिए, जहाँ 'लॉ एण्ड आर्डर' गुंडों और अराजकतावादी तत्त्वों का पानी भरता था। अराजकता की स्वतंत्रता ने उग्रवादी स्वच्छन्दता का बाना पहन लिया। बिहार, असम, उड़ीसा और आंध्र के उग्रवाद ने मानव-जीवन को मूल्यहीन बना दिया तो कश्मीर पाकिस्तान समर्थक उग्रवादियों का गढ़ बन गया। दूसरी ओर, विदेशी पूँजी की स्वतंत्रता ने भारत के उद्योगों को स्वायत्तता से स्वच्छन्द कर भारत-भू पर जन्म लेने वाले हर नवजात शिशु को विदेशों का ऋणी बना दिया है। इस प्रकार भारतवासी आर्थिक दृष्टि से विदेशों

का गुलाम बनता जा रहा है, स्वतंत्र सत्ता की स्वच्छन्दता का यह अभिशाप है कि केन्द्र में सरकार बदलने पर भी आज हम उसका कुफल भोग रहे हैं।

स्वतंत्रता में जिस राष्ट्र के मानव या समाज ने स्वच्छन्दता से गुरेज किया, यह ऊपर उठता चला गया, आगे बढ़ता चला गया। जापान और इजराइल का उदाहरण सामने है। इजराइल के सैन्य-बल और जापान के औद्योगिक साम्राज्य ने विश्व को चकाचौंध कर दिया है। मुस्लिम समाज और धर्म में स्वतंत्रता को स्थान है, स्वच्छन्दता को नहीं। किसी पीर-पैगम्बर पर उँगली तो उठाकर देखिए, पवित्र कुरान के विरुद्ध कुछ लिखकर देखिए, उसकी कितनी कीमत चुकानी पड़ेगी, विरोधी समाज को। इसलिए मुस्लिम धर्म विश्व का दूसरा धर्म बन गया। तीसरी ओर, पाश्चात्य राष्ट्र का नागरिक अपने राष्ट्र की स्वतंत्रता का भोग करता है, पर नियमानुसार। वह स्वच्छन्दता को राष्ट्र का शत्रु समझता है, इसलिए वह राष्ट्रीय चरित्र से सम्पन्न है, राष्ट्रीय उन्नति-प्रगति का स्तम्भ है। स्वतंत्रता का अर्थ 'स्व' को 'तंत्र' (विशेष व्यवस्था) के अधीन रखकर जीवन में विकास करना है, न कि स्व को तंत्र के बंधन से मुक्त रखकर जीना। स्वतंत्रता परमात्मा की देन है, जो सत्, चित् और आनन्द का स्रोत है। इसका उपभोग प्राणि-मात्र का अधिकार है, पर इसका यह अर्थ नहीं कि उस स्रोत को अवरुद्ध कर दे या भ्रष्ट आचरण से मलिन कर दे।

स्वतंत्रता की अति स्वच्छन्दता है। अति से तो अमृत भी विष हो जाता है। अत: अति की वर्जना में ही मानव-जीवन का मंगल है। अत: स्वतंत्रता को स्वच्छन्दता समझना विवेक का विनाश है, स्वतंत्रता रूपी सुखद यौवन को त्यागकर स्वच्छन्दता रूपी मृत्यु के प्रति आकृष्ट होना है।

(199) धीरज, धर्म, मित्र अरु नारी/ आपतकाल परखि अहिं चारी॥

संकेत बिंदु—(1) विपत्ति में धीरज की परीक्षा (2) आपत्तिकाल में धर्म के उदाहरण (3) सच्चे मित्र की पहचान (4) मानव जीवन में नारी का महत्त्व (5) उपसंहार।

रामचरित मानस के रचियिता महाकवि तुलसीदास के मतानुसार धैर्य, धर्म, मित्र और स्त्री (पत्नी) इन चारों की विपत्ति में परीक्षा होती है। धैर्यविहीन व्यक्ति सदैव विचलित रहता है और जो व्यक्ति धर्म से विमुख होता है, वह विश्वास के योग्य भी नहीं कहा गया।

इतिहास साक्षी है कि जब किसी राजा पर दूसरा राजा आक्रमण को तत्पर होता है तो राजा धैर्य से काम लेता हुआ आक्रमणकारी राजा पर विजय प्राप्त कर लेता है। व्यक्ति को किसी विपत्ति के आने पर धैर्य का त्याग नहीं करना चाहिए। धैर्य वह धन है जिसकी सहायता से मनुष्य को विचलित नहीं होना चाहिए, क्योंकि धैर्य ही मनुष्य को जीवन में सभी बाधाओं को पारकर सफलता के सोपान पर ले जाने में सहायक होता है।

धैर्य और धीरज दो शब्द हैं लेकिन इनका अर्थ एक ही है। कठिन-से-कठिन समय में या विपदा में कभी भी मनुष्य को अपना धीरज नहीं छोड़ना चाहिए। कवि मनोहर लाल 'रत्नम्' ने एक दोहे में यह सन्देश दिया है—

विपदा में 'रत्नम्' कभी, मत धीरज को छोड़ो।
मन के खुले कपाट से, विपदा का मुख मोड़ो॥

विपत्ति में यदि धीरज के साथ काम लिया जाय तो विपदा स्वत: ही दूर हो जाती है इसीलिए तुलसीदास का यह संकेत मूल्यवान् हो जाता है कि आपतकाल में अर्थात् विपदा में धीरज या धैर्य को परखना चाहिए, विपत्ति में धैर्य का प्रयोग ही श्रेयकर होता है। कहा जाता है कि सुदामा ने विकट दरिद्रता में धैर्यपूर्वक श्रीकृष्ण के महल में जाकर कुछ नहीं माँगा और यह सुदामा के धैर्य का ही परिणाम रहा कि श्रीकृष्ण ने सुदामा को बिना माँगे ही सब कुछ दे दिया। धीरज को अपना मित्र बनाकर सुदामा ने जो अपने विपदा काल में परिचय दिया। उसी के फलस्वरूप सुदामा की दरिद्रता दूर हुई। सुदामा ने धीरज को अपना मित्र भी बनाया, धीरज को परखा भी और संयम को भी अपने साथ बनाये रखा।

गोस्वामी तुलसीदास ने किस सुन्दर ढंग से मानस में इसका उल्लेख किया है कि—**धीरज धर्म, मित्र अरु नारी। आपतकाल परखि अहिं चारी॥** यह सत्य भी है जब आपत्ति काल आता है तो मनुष्य विचलित हो जाता हैं और संसार में बाकी सब कुछ तो क्या मनुष्य का अपना साया भी उसका साथ छोड़ दिया करता है, ऐसे कठिन समय में मनुष्य को धैर्य और धर्म को साथ लेकर समय के साथ चलने में ही बुद्धिमत्ता है। जब राजा हरिश्चंद्र के धर्म की परीक्षा हुई तो हरिश्चन्द्र ने पत्नी, पुत्र को बेच डाला फिर स्वयं भी धर्म निभाने के लिए स्वयं को बेच दिया और जाकर श्मशान में मुर्दे जलाने के कार्य में रत हो गये।

राजा हरिश्चन्द्र ने अपने आपत्तिकाल में धर्म को अपने से अलग नहीं होने दिया। अगर देखा जाये तो धर्म को धैर्य के साथ राजा हरिश्चन्द्र ने मित्र बनाकर आपदा को स्वीकार किया। केवल धैर्य और धर्म के कारण ही वह विपत्ति, आयी हुई वह आपदा का संकट समाप्त हुआ। यदि आज भी प्रत्येक मनुष्य संकट के समय धर्म को अपना मित्र बनाते हुए समय के साथ चले तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि विपत्ति बहुत शीघ्र ही पलायन कर जायेगी।

एक राजा हरिश्चन्द्र ही नहीं अनेक इस प्रकार के उदाहरण हमारे इतिहास में भरे पड़े हैं। धर्म की रक्षा के लिए अपना पालन करने में राजा बलि ने भगवान् को तीन पग भूमि दान का जो संकल्प किया, वह धर्म के सहारे ही पूर्ण हुआ। इसी प्रकार महाराजा दशरथ ने अपने वचन का धर्म निभाते हुए राम को वनवास दे दिया। नल-दमयन्ती का उदाहरण भी धर्म के नाम पर कम नहीं है। सावित्री ने अपने पति सत्यवान के प्राण वापिस यमराज से प्राप्त कर लिए थे, क्योंकि इस संकट की महान् घड़ी में सावित्री विचलित नहीं हुई, धर्म को साक्षी बनाकर ही सावित्री ने यमराज से अपने पति के प्राण वापिस लेने में जो अपनी समय और बुद्धि का परिचय दिया, यह सिद्ध करता है कि मनुष्य को विपत्ति में अधीर नहीं होना चाहिए। इसी प्रकार मित्र क्या है, कौन है, कैसा है, इसकी परख भी तुलसीदास के शब्दों में अनिवार्य हैं। कवि रहीमदास ने कहा है—

सब कोउ सब सौं करें, राम, जुहार सलाम।
हित रहीम तब जानिहौं, जा दिन अटके काम॥

इसी बात पर कवि रहीम ने भी जोर देकर कहा कि वैसे तो सब किसी को राम-राम या सलाम करके मित्र बनने का नाटक करते हैं, मगर मित्र वही है जो कठिन समय में मित्र के काम आवे। यूँ तो मित्र अनेक मिल जायेंगे, मगर मनका मीत कौन है, इसकी परख भी आवश्यक है। राम के वनवास के समय जब सीता का अपहरण हो गया तो हनुमान् जी ने राम की सुग्रीव से मित्रता करायी और फिर सुग्रीव ने अपने श्रमबल, सेना के साथ राम की सहायता भी थी। अर्थात् राम के संकट के समय मित्र सुग्रीव ने अपनी मित्रता का धर्म निभाते हुए श्रीराम का साथ दिया। परिणामस्वरूप सीता की खोज की गयी, लंका पर आक्रमण हुआ, रावण का मरण हुआ, इन सबके पीछे केवल राम सुग्रीव की मित्रता को ही देखा जा सकता है।

संसार में मित्र अनेक होते हैं और सच्चा मित्र ही मित्र की पहचान कर पाने में सक्षम होता है। मित्र के सन्दर्भ में कवि 'रत्नम्' के गीत की पंक्तियाँ कितनी सार्थक बन पड़ी हैं—

मीत की मैं प्रीत को पुकारता हुआ चला।
मीत को गहरी गहरी, निहारता हुआ चला॥

संभवत: तुलसीदास ने समाज के व्यक्तियों को उनके कर्त्तव्य का बोध कराने के लिए ही राम चरितमानस में इसका उल्लेख किया है—'**धीरज धर्म मित्र अरु नारी।**' और यह सत्य भी है कि संसार में मित्र अनेक हैं कि और इस संदर्भ गीतकार श्रवण 'राही' के गीत की पंक्तियों में इसका उल्लेख मिलता है। किसी से दिल नहीं मिलता, कोई दिल से नहीं मिलता। तभी तो तुलसीदास यह कहने पर विवश हो गये कि आपतकाल में मित्र की परख की जाती है। जो मित्र विपदा में काम आ जाये उसे ही मित्र कहा जा सकता है, बाकी सब तो आपके केवल सुख-सम्पदा के ही साथ हो सकते हैं—मित्र नहीं।

मनुष्य के एकाकी जीवन को रमसय बनाने के लिए नारी की उत्पत्ति स्रष्टा ने की है। नारी पत्नी के रूप में, माँ के रूप में, बहन और बेटी के रूप में समाज में हमारे सामने हैं। गोस्वामी तुलसीदास का यह कहना '**धीरज धर्म मित्र अरु नारी।**' कितना सटीक और सार्थक है। जहाँ धीरज को, धर्म को, मित्र को संकट काल में परखने की बात कहीं गयी है, वही साथ में नारी शब्द को भी जोड़ा गया है। यहाँ यदि हम नारी को पत्नी के रूप में देखें तो मनुष्य के जीवन में नारी का बहुत महत्त्व होता है। क्योंकि नारी को देखकर मनुष्य का मन वश में नहीं रहता और मनुष्य नारी पर आसक्त हो जाता है। इतिहास में इसके अनेक उदाहरण मिल जाते हैं, मेनका को देखकर विश्वामित्र का मन डोल जाना, कुन्ती को देखकर सूर्य का विचलित होना, यह नारी के प्रति पुरुष का आकर्षण ही कहा जायेगा, लेकिन क्या वास्तव में नारी भी पुरुष की मन से सहभागिनी होती है, इसकी परख तो मनुष्य पर विपदा पड़ने पर ही की जा सकती है।

राजा हरिश्चन्द्र जब अपने धर्म और वचन पर अडिग रहे तो उनकी पत्नी शैव्या ने पति की आज्ञा का पालन करते हुए काशी के बाजार में स्वयं को बेच दिया। वह करना यह सिद्ध करता है पति पर विपदा आने पर पत्नी ने सम्पूर्ण साथ दिया। जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है सावित्री ने यमराज से अपने पति सत्यवान् के प्राण वापिस माँग लिए, इसी क्रम में महासती अनुसूया, बेहुला, वृन्दा का उदाहरण दिया जा सकता है जिन्होंने पति पर आये संकट में उनका भरपूर साथ दिया। गोस्वामी तुलसीदास का मानस में उल्लेख '**धीरज धर्म मित्र अरु नारी।**' के सन्दर्भ में यही कहा जा सकता है कि इन चारों की पहचान या परख विपदा में या संकट के समय में ही सम्भव है। वैसे समाज के प्रत्येक प्राणी का यह कर्त्तव्य भी है कि वह अपने जीवन में धैर्य-धीरज को कभी नहीं खोवे, धर्म पर अडिग रहना भी मनुष्य का पहला कर्त्तव्य कहा गया है, मित्र अवश्य बनाने चाहिएँ मगर मित्र सच्चा हो इसकी परख भी समय-समय पर कर लेनी अनिवार्य है। और जहाँ तक नारी का प्रश्न है इसकी परख भी संकटकाल में करने का तुलसी का सुझाव लाभदायक और सटीक है। सुख में तो सभी प्रसन्न और खुश रहते हैं लेकिन जीवन तभी आनन्ददायक होगा जब संकट के समय में भी यह साथी मित्र बनकर साथ रहें। तभी तुलसीदास का यह सन्देश सार्थक हो सकेगा।

(200) पर उपदेश कुशल बहुतेरे

संकेत बिंदु—(1) भारत ऋषि, मुनि और तपस्वियों का देश (2) गाँधी जी का दृष्टांत (3) दूसरों को उपदेश देने की अपेक्षा उस पर अमल (4) उपदेश मानव मन की सहज अनुभूति (5) उपसंहार।

हमारा देश भारत ऋषियों, तपस्वियों, मनीषियों, गुरुओं और आचार्यों आदि का देश कहा जाता है, यही कारण है कि हमारे देश में उपदेश बहुत ही महत्त्वपूर्ण माने और कहे गये हैं। वृत्तान्त मिलता है कि नारद मुनि भी प्रत्येक देवी-देवता, मानव-दानव, किन्नर, यक्ष आदि को केवल उपदेश ही दिया करते थे। फिर उपदेश जो निःशुल्क, मुफ्त में मिल जावे तो उपदेश देने और लेने वाले की हानि तो कहीं भी होती, मगर व्यक्ति चर्चा में अवश्य रहता है।

संस्कृत की एक प्रसिद्ध उक्ति है—"*महाजनो येन गतः स पन्थाः।*"

जिस का अर्थ हुआ कि जिस मार्ग पर हमारे गुरुजन गये हों हम सबको भी उसी मार्ग का अनुसरण करना चाहिए। भारत में वैसे भी हम सभी "एक ही लकीर के फकीर" भी कहे जाते हैं और यदि देखा जावे तो हम सभी नकल करने में भी सबके आगे माने जाते हैं। तो फिर जब हमारे गुरुजन उपदेश दिया करते हैं तो हमें भी उन्हीं के मार्ग पर चलकर उपदेश देने में हर्ज ही क्या है?

कहा गया है कि किसी को भी अपने कर्त्तव्य का बोध कराने से मूर्ण यह आवश्यक है कि हम भी स्वयं क्रर्त्तव्यनिष्ठ बनें। एक वृत्तान्त के अनुसार एक बार महात्मा गाँधी के पास एक महिला अपने पुत्र को लेकर आयी और बोली बापू जी आप मेरे बेटे को समझाइये यह गुड़ बहुत खाता है और मेरी बात नहीं मानता, तो महात्मा गाँधी बोले—एक सप्ताह बाद आना फिर मैं तुम्हारे पुत्र से बात करके इसे समझा दूँगा। एक सप्ताह बाद उस महिला को महात्मा गाँधी ने फिर एक सप्ताह बाद आने की बात कह दी। अगली बार जब वह महिला अपने पुत्र के साथ आयी तो महात्मा गाँधी ने उस महिला के पुत्र के सिर पर हाथ रख कहा—बेटा गुड़ खाना बुरी बात है और गुड़ खाना छोड़ दो। महात्मा गाँधी की इतनी बात सुनकर महिला क्रोधित होकर बोली—बापू यह बात तो आप पहले दिन भी कह सकते थे, बिना मतलब हमारा समय और धन नष्ट करा दिया। महिला की बात सुनकर महात्मा गाँधी ने शांत स्वर में कहा—आपकी बात अपनी जगह पर बिल्कुल ठीक है और आपका क्रोध करना भी उचित है, लेकिन मेरी विवशता यह रही कि जब आप मेरे पास अपने पुत्र को लेकर आयी थीं उस समय मैं भी गुड़ खाया करता था, अब मैंने गुड़ खाना छोड़ दिया है और गुड़ छोड़ने के बाद ही तो मैं आपके पुत्र को गुड़ न खाने की बात कहने का अधिकारी हूँ। इसीलिए गोस्वामी तुलसीदास का कथन—

''पर उपदेश कुशल बहुतेरे। जे आचरहिं ते नर न घनेरे॥''

अर्थात् दूसरों को कर्त्तव्य पालन की सीख देने वाले बहुत मिल जाते हैं, लेकिन स्वयं अपने ही दिये उपदेश का आचरण करने वाले बहुत ही कम व्यक्ति देखने को मिलेंगे। वैसे भी दूसरों को उपदेश देना बहुत ही सरल कार्य है, लेकिन इन उपदेशों को व्यवहार में लाना बहुत ही कठिन होता है। समाज में अधिकांश लोग उपदेश देना जानते हैं, किन्तु उन पर स्वयं कभी भी अमल नहीं करते।

एक गुरुजी जन समूह के सामने प्रवचन दे रहे थे। अपने प्रवचन में बार-बार जोर देकर कहते थे कि गुरुजन, ऋषिजन, साधु-संत जिस बात को कहें या जो भी उपदेश दें, उसका पालन व्यक्ति को अवश्य करना चाहिए। इससे जीवन का स्तर ऊँचा होता है। इसी बीच गुरुजी ने 'बैंगन' की बुराई कर दी और कहा कि बैंगन जो सब्जी में काम लाया जाता है इसमें कोई गुण नहीं होता अर्थात् बैंगन तो बे-गुण होता है, वैसे इसका रंग भी काला होता है। बैंगन की सब्जी पेट में गर्मी पैदा करती है, बैंगन खांकर आदमी के पेट में भी दर्द की सम्भावना रहती है। गुरु जी का प्रात:कालीन प्रवचन इसी प्रकार के अनेक उपदेशों के पश्चात् समाप्त हो गया। प्रवचन समाप्त कर गुरु जी किसी विशेष कार्य हेतु चले गये। जब गुरु जी दोपहर में लौटकर आये तो उनके कूड़े के ढेर में बैंगन पड़े थे। गुरु जी ने अन्दर आकर अपने शिष्यों से कूड़े में पड़े बैंगनों के बारे में पूछा तो एक शिष्य बोला-गुरु जी आप आज प्रात: बैंगन के अवगुण प्रवचन में बता रहे थे तो मैंने इन बे-गुण वाले बैंगनों को बाहर फैंक दिया।

शिष्य की बात सुनकर गुरु जी बोले—बेटा प्रवचन सुनने वालों को कुछ तो कहना

ही पड़ता है, सो आज मैं उन सबको बैंगन के बारे में बताया था, मगर आप लोगों को यह तो नहीं कहा था कि बैंगन उठाकर बाहर फेंक देना, वैसे बैंगन की सब्जी स्वादिष्ट बनती है और उपदेश तो फिर दूसरों के लिए होते हैं, अपने लिए नहीं हुआ करते। रामचरित मानस के लंका काण्ड में मेघनाद के मरण पर लंका में मचे उपद्रव को शांत करने के लिए रावण द्वारा लंका वासियों को कहलवाया कि "यह सम्पूर्ण जगत नाशवान् है, हृदय में विचार करके देखो।" इस पर गोस्वामी तुलसीदास ने रावण के इस चरित पर व्यंग्य करते हुए लिखा—"पर उपदेश कुशल बहुतेरे" दूसरों को उपदेश देने में बहुत लोग निपुण होते हैं, पर ऐसे लोग अधिक नहीं हैं जो उपदेश के अनुसार आचरण भी करते हैं।

यदि हम आज अपने सामाजिक परिवेश के देखें तो उपदेश की कोई सीमायें नहीं होतीं, यह तो मानव मन की सहज अनुभूति होती है जो हृदय में उदित हो जाया करती है। समाज में दीन-हीन, दु:खी को देखकर कोई भी व्यक्ति उपदेशक बन जाता है, क्योंकि उपदेश देने की प्रवृत्ति का उत्पन्न होना प्रकृति-प्रदत्त है, इसके लिए किसी से भी कहने या सुनने की आवश्यकता नहीं होती। क्योंकि आज समाज में प्रत्येक व्यक्ति अधिक समझ रखता है और समझ के कारण ही वह दूसरों को उपदेश देने में भी सक्ष्म ही माना गया है।

अगर देखा जाये तो पिता, पुत्र, भाई, बन्धु, मित्र, वकील, डॉक्टर, महात्मा, गुरु, बापू, नागरिक, देशभक्त, नेता, सैनिक, पत्रकार, कवि, लेखक, सम्पादक आदि सभी अपने कर्त्तव्य के साथ जुड़े हैं और कुछ व्यक्ति तो हर किसी को उपदेश देना अपना जन्मसिद्ध अधिकार भी मानते हैं। कुछ समझदार व्यक्ति अपने नैतिक मूल्यों का आदर करते हुए अपने उपदेशक कर्त्तव्य पालन करते हैं।

यदि हम अपने इतिहास को देखें तो भगवान् श्रीकृष्ण ने महाभारत युद्ध के समय अर्जुन को उपदेश दिया था। वह भी तब जब अर्जुन अपने कर्त्तव्य से विमुख होने लगा था, तब श्रीकृष्ण ने उपदेश देते समय अर्जुन से कहा था—"हे, अर्जुन! तू कर्म कर, फल की इच्छा मत कर। कर्म न करने की तेरी प्रवृत्ति नहीं होनी चाहिए।"

लेकिन आज समाज में प्रत्येक व्यक्ति उपदेश देना अपना परम कर्त्तव्य मानता है और हो भी क्यों न, क्योंकि उपदेश देने वाला देता है और उपदेश लेने वाला लेता है। भले ही वह उस तथाकथित उपदेश पर अमरण करे या न करे। इसी संदर्भ में कवि मनोहर लाल 'रत्नम्' का एक दोहा सटीक लगता है—

सबसे ऊँचा बन सदा, दे सबको उपदेश।
मान और सम्मान भी, 'रत्नम' मिले हमेश।।

इसीलिए गोस्वामी तुलसीदास की चौपाई भी यहाँ सार्थक लगती है कि, "पर उपदेश कुशल बहुतेरे"।

(201) फूल नहीं बो सकते हो यदि, काँटों को भी मत बोना।

संकेत बिंदु—(1) फूल के साथ काँटे का भावार्थ (2) काँटे की प्रवृति केवल चुभन और पीड़ा (3) काँटों वाले वृक्ष से दूरी (4) फूलों से विनम्रता (5) उपसंहार।

जब फूल की चर्चा होती है तो अनायास ही काँटा भी चर्चा में आ ही जाता है। यह सत्य है कि प्रकृति ने फूल और काँटे साथ ही उपजाये हैं, फूल से तो सुगन्ध का आभास सदैव होता है और काँटा केवल चुभान ही दे पाता है। संत कवि कबीरदास ने दोहे के माध्यम से एक सुंदर संदेश संसार को देने का सार्थक प्रयास किया है—

जो तोकू काँटा बुवे, ताई बोय तू फूल।
तोकू फूल को फूल है, बाकू है तिरसूल॥

लेकिन यहाँ हम चर्चा कर रहे हैं कि यदि आप फूल नहीं बो सकते हो तो कम-से-कम काँटे मत बोना। संदर्भ तो कबीरदास के दोहे से ही है, मगर कवि मनोहर लाल 'रत्नम्' की कविता में इसी प्रकार का ही संदेश प्रतीत होता है—

फूल नहीं बो सकते हो यदि, मत काँटों को बो देना।
पर सुख के आगे अपनी ही, मत खुशियों को खो देना॥

काँटे बोने का अर्थ जहाँ तक समझ में आता है दूसरे के प्रति अपने मन में द्वेष भावना, प्रतिशोध की भावना। कहा गया है कि वैर-से-वैर बढ़ता है, कटुता से कटुता बढ़ जाती है और मनुष्य प्रतिशोध में पागल हो जाया करता है। इस प्रकार मन में वैर-द्वेष रखने वालों की रात की नींद, दिन का चैन चला जाया करता है और कभी-कभी कटुता की भीषण ज्वाला समूचे परिवार को ही नष्ट कर दिया करती है। काँटा भी तो वैर-विरोध-द्वेष का प्रतिरूप माना गया है।

गीतकार श्रवण 'राही' के गीत की पंक्तियाँ भी इसी ओर संकेत करती हैं—

वेदना उर में छिपाले, अधर पर मुस्कान धर।
जो हँसे तेरी दशा पर, उसका तू सम्मान कर॥

यहाँ मुस्कान का अर्थ फूल से है वेदना का अर्थ काँटे में लगता-सा प्रतीत होता है। लेकिन कुछ इस प्रकार की प्रवृत्ति के लोग समाज में होते हैं जिन्हें दूसरों को सताने में आनन्द आता है। समाजशास्त्री श्री बेकन के मतानुसार प्रतिशोध एक प्रकार का जंगली न्याय माना गया है, इसीलिए इसको स्थान देने में ही भलाई है। क्योंकि बात फिर आती है कि अगर आप में फूल बोने की क्षमता नहीं है तो कोई बात नहीं है, मगर जान-बूझकर काँटों का रोपण मत करो। क्योंकि ऐसा न हो कि आपके बोये गये काँटों में आपका [illegible] ही [illegible] अटक कर कहीं तार-तार न हो जाये। स्वामी विवेकानन्द ने कहा है कि, "जो व्यक्ति स्वयं काँटें बोता है वह किसी-न-किसी मानसिक रोग से अवश्य पीड़ित होता है।"

कबीर दास ने कहा है। *"जो तोकू काँटा बुवे, ताहि बोय तू फूल।"* कबीर एक कवि ही नहीं सन्त भी थे और कबीर ने जीवन का चिन्तन-मनन करके ही यह पंक्ति समाज को प्रदान की है जो तुम्हारे लिए काँटे बोता है तुम उसके लिए फूल बो दो। यदि तुम फूल बोने की स्थिति में नहीं हो तो काँटे कभी भी भूलकर भी मत बोना, क्योंकि काँटे अपने और पराये का भेद नहीं मानते। काँटे की प्रवृत्ति केवल चुभन और पीड़ा देने की ही होती है।

गीतकार धनंजय ने अपने मन की पीड़ा को किस प्रकार से पश्चात्ताप के साथ व्यक्त किया है—

हमने तो कलमें गुलाब की रोपी थीं,
गमले में उग आयी नागफनी।

अगर देखा जाये तो कभी-कभी मन की स्थिति सही न होने पर काम प्रायः बिगड़ जाया करता है जिस पर गुलाब की कलमें लगाने की बात की गयी, मगर नागफनी किस प्रकार उग आयी। यहाँ नागफनी भी उन काँटों का ही प्रतीक माना गया है। यदि हम प्रकृति के सिद्धांत का अवलोकन करें तो पायेंगे कि प्रत्येक जीव की अपनी-अपनी प्रवृत्ति होती है। जिस प्रकार गाय घास खा कर केवल दूध ही दिया करती है और साँप दूध पीकर भी जहर उगलता है, यह प्रकृति का सिद्धांत बताया गया है। लेकिन हम सब तो बुद्धिजीवी हैं, समझदार हैं, होशियार है, हमें अच्छे और बुरे की परख भी है, समझ भी है और हमें कोई भी ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए जिससे हमें अपमानित होना पड़े।

जानबूझकर, चाह कर यदि हम काँटे बो देते हैं तो कल को वह काँटे हमें ही पीड़ा देंगे, हमें ही घाव देंगे और हम घायल होकर स्वयं वेदना सहते रह जायेंगे।

काँटों वाले वृक्ष से समझदार व्यक्ति सदैव दूरी बनाये रखता है, यदि बेर के पेड़ के पास केले का पेड़ लगा है तो बेर के काँटे केले के सभी पत्तों को चीरते रहेंगे। क्योंकि काँटों की प्रवृत्ति केवल घाव देने की है। इसी प्रकार कीकर के पेड़ से मनुष्य सदा बचकर निकलता है। जितने भी काँटेदार वृक्ष हैं मनुष्य उनसे सदा दूर रहने का प्रयास करता है। ठीक उसी प्रकार जैसे कौआ और कोयल की स्थिति होती है, दोनों देखने में एक जैसे हैं, मगर कोयल के गीत मन को लुभाते हैं और कौए का ककर्श स्वर अच्छा नहीं लगा करता।

काँटों के बीच में यदि फूल खिला हुआ है तो समझदार व्यक्ति उस काँटों से घिरे फूल को कभी भी तोड़ने का प्रयास इसलिए नहीं करेगा, क्योंकि फूल तोड़ते समय काँटों की चुभन का व्यक्ति को आभास अवश्य हो जायेगा, क्योंकि काँटे की प्रवृत्ति केवल घाव देने की होती है। काँटे को नीम या साँप की श्रेणी का भी मान लिया गया है।

प्रश्न उठता है कि तन में यदि काँटा लग गया है तो उसे काँटे से नहीं निकालना चाहिए, क्योंकि सम्भव है कि जिस काँटे से हम तन के भीतर धँसे काँटे को निकालने का प्रयास करें वह काँटा भी तन को नया घाव न दे दे, वह इसलिए भी काँटे का कार्य केवल घाव या चुभन देना ही है।

फूल से अभिप्राय विनम्रता से है। महात्मा गाँधी ने भारत को आज़ादी दिलाने में अंग्रेज़ों के समक्ष नम्रता का व्यवहार अपनाया अर्थात् सत्याग्रह किया। यदि गाँधी भी अंग्रेज़ों की भाँति क्रूर हो जाते तो सम्भवत: आज़ादी का अर्थ कुछ और हो जाता। गाँधीजी ने विनम्र होकर फूल की भाँति अंग्रेज़ों को भारत छोड़ने पर विवश कर दिया। आज भारत देश की जो दशा आतंक के जहरीले शत्रुओं के कारण है वह समाज में किसी से भी छिपी नहीं है। देश का युवा वर्ग यदि फूल बोने की बात सोचता तो भारत देश आज विश्व में सर्वोच्च देश माना जाता। मगर यह विडम्बना है कि कुछ भटके युवकों को स्वार्थी लोगों ने बहला-फुसलाकर फूल से काँटा बनाकर समाज में ही खड़ा किया है। इसीलिए आतंकवाद और उग्रवाद की यह काँटेदार फ़सल देश में उग आयी है जिसके कारण देश और समाज की दशा इन विषैले काँटों के कारण डगमगा गयी है। देश और समाज में हो रहे प्रत्येक गलत कार्यों की केवल काँटों से ही तुलना की जा सकती है फूलों से नहीं। फूल तो केवल सफलता पर अर्पित किये जाते हैं और काँटे अर्पित नहीं किये जाते, इसीलिए समाज में काँटे बोने का कोई औचित्य समझ में नहीं आता।

फूलों के संदर्भ में अनेक कवियों और गीतकारों-शायरों ने अपने मन के विचारों को व्यक्त किया है, जैसे—"**बहारो फूल बरसाओ, मेरा महबूब आया है।**" और "**फूल तुम्हें भेजा है खत में, फूल नहीं मेरा दिल है।**" तथा "**फूल-फूल से फूला उपवन, फूल गया मेरा नन्दन वन**" आदि। और यह भी सत्य है कि हम जब समाज में किसी भी उत्सव में जाते हैं या अपने किसी प्रियजन से भेंट करने जाते हैं तो केवल फूल लेकर ही जाते हैं, कोई भी व्यक्ति अपने प्रिय को काँटे भेंट करने नहीं गया होगा। इसीलिए यह कहा गया है कि अपने दयालु हृदय का ही सुंदर परिचय देते हुए फूल बोना हमें सीखना चाहिए, फूलों से हमें प्यार करना सीखना चाहिए, जब हम फूलों को प्यार करेंगे, स्वीकार करेंगें तो हमें अपने जीवन में काँटे बोने की न तो आवश्यकता होगी और न हम काँटे बो ही पायेंगे।

गीत प्रेम-प्यार के ही गाओ साथियो।
जिन्दगी गुलाब सी बनाओ साथियो।।

(202) कठिन परिश्रम का नाम सौभाग्य है

संकेत बिंदु—(1) कठिन परिश्रम के लिए साहस और सहनशीलता (2) बिना परिश्रम भाग्य भी नहीं (3) कठिन तपस्या, साधना से सिद्धि (4) कठिन परिश्रम के इतिहास में उदाहरण (5) उपसंहार।

इतिहास में अनेक उदाहरण हैं कि कठिन परिश्रम ही सौभाग्य को बनाता है और कठिन परिश्रम करने वाले व्यक्ति ही देश में सदैव अग्रणी भी रहे हैं। चाहे वह देश का श्रमिक

हो, चाहे विद्यार्थी, चाहे देश का वैज्ञानिक हो या कवि-लेखक, अभिनेता हो या नेता, वैद्य-हकीम डॉक्टर हो या कोई संत-महात्मा, जितने में कठिन परिश्रम किया है सफलता का सौभाग्य उसी को मिला है।

कठिन परिश्रम करने के लिए मनुष्य में सहनशीलता, साहस, निर्भीकता आदि के गुण विद्यमान होते हैं क्योंकि कठिन परिस्थितियों में कठिन परिश्रम ही सौभाग्यदायक सिद्ध होता है, कठिन परिश्रम करने की प्रवृत्ति भी प्रत्येक व्यक्ति में नहीं होती, लेकिन अपनी धुन के पक्के व्यक्ति कठिन परिश्रम करके ही सौभाग्यशाली कहलाते हैं। अपना मन लगाकर किया जाने वाला कोई भी कार्य परिश्रम ही कहलाता है और कुछ श्रमिकों का मूलमन्त्र 'श्रम ही पूजा है' होता है और वह लोग अपने कठिन परिश्रम से प्रत्येक कार्य को सम्भव बना पाने में सक्षम भी होते हैं।

कठिन परिश्रम की महत्ता पर कवि मनोहरलाल 'रत्नम्' का मत है कि—

गगन चूमते महल बनाते, पर्वत को कर देते धरती।
जिनकी गाथा नित कहती है, ऊँची चिमनी धुँआ उगलती।।
नत मस्तक मैं हो जाता हूँ, इनकी मेहनत है मतवाली।
श्रम के दीप जलाकर 'रत्नम्' पूजा करता हूँ दीवाली।।

कवि ने श्रम के दीप जलाकर दीपावली पूजने की बात कह कर यह ही बताने का प्रयास किया है कठिन परिश्रम के कारण गगन चूमते भवन अपने सौभाग्य को दर्शा रहे हैं। सही परिश्रम के साथ भाग्य भी सफलता का एक उपकरण हैं और यह सत्य है कि मनुष्य द्वारा किया गया कठिन परिश्रम उसका सौभाग्य बनकर गुण के समान उसे अपने उच्च स्थान पर ले जाता है और यह इतिहास की सच्चाई भी है कि व्यक्ति को बिना परिश्रम भाग्य भी कुछ नहीं दे सकता। क्योंकि कठिन परिश्रम का साथ पाकर ही भाग्य भी सौभाग्य बन जाया करता है। *"जिन खोजा तिन पाइया, गहरे पानी पैठ"* यहाँ भी कठिन परिश्रम की महत्ता को ही चरितार्थ किया गया है। विद्यार्थी कठिन परिश्रम करता है तो परीक्षा में अपने श्रम के सहारे पूरे विद्यालय ही नहीं, पूरे नगर अथवा जिला में प्रथम स्थान प्राप्त करता है। इसे सौभाग्य ही कहा जायेगा, जो कठिन परिश्रम से प्राप्त हुआ है। यदि विद्यार्थी श्रम करेगा ही नहीं तो उसे सफलता किस प्रकार मिलनी सम्भव होगी। इसी प्रकार व्यापारी भी सुबह से शाम तक परिश्रम करता है। वैज्ञानिकों द्वारा कठिन परिश्रम का ही तो परिणाम है कि आज हमारा विज्ञान शिखर पर है और देश का सौभाग्य उज्ज्वल हुआ है।

कठिन परिश्रम केवल पत्थर तोड़ना या भवन बनाना ही नहीं है, हर क्षेत्र में कठिन परिश्रम की आवश्यकता होती है। वर्षों की कठिन तपस्या, साधना, परिश्रम के बाद किसी सन्त-महात्मा को सिद्धि प्राप्त होती है। वर्षों के कठिन परिश्रम के पश्चात् भारत को स्वतंत्रता प्राप्ति का सौभाग्य प्राप्त हुआ, लेकिन इसके लिए हमें कितने बलिदान देने पड़े, वीरों को कितना कठिन परिश्रम करना पड़ा, यह किसी से छुपा नहीं है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी रामचरित मानस में कहा है—

सकल पदारथ हैं जग माँहि।
कर्म हीन नर पावत नाँहि।।

तुलसीदास ने इस चौपाई के माध्यम से यह स्पष्ट किया है कि इस संसार में हर प्रकार के पदार्थ विद्यमान हैं, लेकिन जो मनुष्य श्रमहीन है वह इन सफल पदार्थों को नहीं प्राप्त कर सकता। मनुष्य को सदैव परिश्रम के लिए तत्पर रहना चाहिए। भाग्य या सौभाग्य केवल कठिन परिश्रम से ही उदय होते हैं। जब हम कोई कर्म या परिश्रम नहीं करेंगे तो फिर किसी वस्तु को पाने की आशा भला कैसे कर सकते हैं ? कुछ भी संसार में पाने के लिए हमें परिश्रम तो करना ही पड़ेगा, परिश्रम करने से ही हम अपने गंतव्य या सफलता के सोपान पर पहुँच पायेंगे, तभी हमारा सौभाग्य भी हमारा साथ देगा। इसके लिए हमें उद्यमी होना पड़ेगा, बिना इसके कुछ भी प्राप्त होना सम्भ नहीं है।

देवों और दानवों ने कठिन परिश्रम कर सागर मन्थन किया। इतिहास में इसका उल्लेख मिलता है कि दोनों समुदायों ने मिलकर मँदराचल पर्वत को मथनी बनाया और शेषनाग को डोरी बनाकर सबने परिश्रम से सागर के गर्भ से संसार की अनेक वस्तुएँ निकालीं। यह सौभाग्य है कि अनेक वनस्पतियाँ, रासायन, बहुमूल्य धातुएँ और अमृत के साथ मदिरा की भी प्राप्ति हुई। देवताओं और दानवों के कठिन परिश्रम के कारण आज हमारे सामने अनेक पदार्थ आये।

कठिन परिश्रम को जीवन का संग्राम कह कर भी परिभावित किया गया है *''बन्दे! जीवन हैं संग्राम''* यह पंक्ति किसी फिल्म के गीत की है या किसी कवि की कविता की प्रथम पंक्ति। लेकिन इसका सार यही है कि मनुष्य को संग्राम की भाँति जीवन में कठिन परिश्रम करना चाहिए तभी सौभाग्य का उदय सम्भव है। परिश्रम शारीरिक हो अथवा मानसिक परिश्रम तो परिश्रम ही होता है, देश को स्वतंत्र करने में महामना मदनमोहन मालवीय, महात्मा गाँधी, पंडित जवाहरलाल नेहरू, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन, बल्लभभाई पटेल, सुभाषचन्द्र बोस, सरदार भगत सिंह, चन्द्र शेखर आजाद, जैसे अनेक देश-भक्त वीरों ने अपने कठिन परिश्रमवश ही आजादी के सौभाग्य देश को दिया।

रंग लाती है हिना, पत्थर पे घिस जाने के बाद।
सुर्खरू होता है इन्सां, ठोकरे खाने के बाद।।

यह किसी शायर का कथन है, इसका तात्पर्य यही है कि कठिन परिश्रम करके जब मेंहन्दी को पत्थर पर पीसा जाता है तो वह सौभाग्य से रंग देती है, इसी प्रकार मनुष्य द्वारा किया गया कठिन परिश्रम ही सौभाग्यकारी माना गया है।

(203) धन अर्जन की अँधी दौड़ और उपेक्षित स्वास्थ्य

संकेत बिंदु—(1) पैसा कमाना एक फैशन (2) पैसे के लिए अनैतिक कार्य (3) स्वास्थ्य को हानि (4) पैसे के समक्ष स्वास्थ्य चिन्ता नहीं (5) उपसंहार।

धन अर्जन अर्थात् पैसा कमाना या यह कहा जाये कि पैसा इकट्ठा करना इसके लिए हमारे समाज में एक अँधी दौड़ प्रारम्भ हो गयी है, क्योंकि अब हमारी महत्त्वाकांक्षा इतनी बढ़ गयी हैं कि पैसे के आगे सब रिश्ते बौने से लगने लगे हैं। धन कमाने और एकत्र करने का एक फैशन-सा बन पड़ा है और मनुष्य अपने शरीर की चिन्ता न करके केवल पैसा एकत्र करने के अपने लक्ष्य को साधने में जुटा है। धन एकत्र करने वाला धन का लोभी व्यक्ति शायद यह भूल गया है कि धन ही सब कुछ नहीं है। पैसा कमाने की इस अँधी दौड़ में व्यक्ति न तो अपना शरीर ही देख पा रहा है और न उसे अपने स्वास्थ्य की ही चिन्ता है, चिन्ता है तो केवल धन को एकत्र करने की, पैसा पैदा करने की। पैसा पाने के लालच में आदमी हर प्रकार का नीच-से-नीच काम करने को भी तत्पर रहता है, मगर वह भूल रहा है कि सिकन्दर का क्या हाल हुआ था, इस पर एक शायर ने कहा है—

इकट्ठा कर जहाँ के जर, सभी मुल्कों के माली थे।
सिकन्दर जब गया दुनिया से, हाथ दोनों ही खाली थे।

या यह कहा जाये कि एक कवि ने भी सिकन्दर की स्थिति पर अपनी कविता की पंक्तियों में इसका उल्लेख किया है—

हाथ मेरे कफन से बाहर करो,
लोग देखें सिकन्दर है खाली गया।
जुल्म ढाये हैं मैंने कहर की तरह,
एक मुल्की रियासत का माली गया।।

यह सच है कि पैसा कमाने के लिए अत्याचार भी आदमी करता है, झूठ-फरेब, जालसाजी भी पैसे के लिए ही होती है। आज चारों ओर भ्रष्टाचार का बोलबाला है, काला बाजारी, काले धन्धे दिन के उजाले में भी अपना साम्राज्य फैला रहे हैं। आज मानवता टके के मोल बिकने लगी है। हिंसा, मारकाट, लूट-खसोट, हत्या, डकैती, बलात्कार आज पैसे के नाम पर एक आम बात हो गयी है। अब तो पैसा कमाने के लिए रक्षक-ही-भक्षक बन रहे हैं—केवल कुछ रुपये के लिए। वैसे भी आज की स्थिति पर यदि विचार किया जाये तो आदमी को केवल पैसा ही चाहिए चाहे वह किसी भी तरह से क्यों न प्राप्त हो। आज लगता है कि आदमी पैसे की इस अँधी दौड़ में अवसरवादी भी हो गया है। आदमी को अवसर मिलना चाहिए। वह पैसा पाने के लिए दूसरे के तन के कपड़े भी उतारने पर उतारू हो जाता है। दिन भर पैसे के लिए हाय-हाय करने के लिए आदमी अपने तन का भी होश खो रहा है।

आदमी पैसा बटोरने के इतना लालायित हो गया है कि अपने तन की, अपने स्वास्थ्य

की चिन्ता तो कर नहीं रहा मगर धन पाने की चिन्ता में रात-दिन भाग रहा है। मगर यह दौड़ कहाँ जाकर समाप्त होगी यह आदमी को स्वयं भी नहीं पता। आज आदमी का लक्ष्य केवल पैसा-है-पैसा और अगर पैसा होगा तो स्वस्थ शरीर का उपचार तो कहीं भी पैसे के बल पर कराया जा सकता है। आवश्यक है कि पैसा होना चाहिए, वह पैसा चाहे ईमानदारी का हो या बेईमानी का, पैसा चाहिए बस पैसा। दौड़ते-दौड़ते जब आदमी जर्जर हो जायेगा तब वह जोड़ा गया पैसा क्या जर्जर काया को फिर से जवानी और ताकत लौटा पायेगा? इस बात पर इन पैसा बटोरने वालों ने शायद कभी ध्यान नहीं दिया। कवि 'रत्नम' का एक और दोहा इसी ओर ध्यान आकर्षित करता है—

केवल धन ही चाहिए, चाहे तन जर्जर हो जाये।
धन की अँधी दौड़ में, 'रत्नम्' दौड़ा जाये।।

आज समय ऐसा आ गया है कि धन अर्जन करने वाले को न तो अपने तन की चिन्ता है और न परिवार की। ऐसा आदमी अपनी माता तक की भी निन्दा कर देता है, पिता का सम्मान भी नहीं करता। पत्नी, बेटे-बेटियों के लिए उसके पास समय नहीं है। यदि समय है तो केवल धन जमा करने में, वह भी शायद मरते समय अपने साथ ही ले जायेगा, क्योंकि हो सकता है कि पैसा बटोरने वाले व्यक्ति ने अपने कफन में भी जेब लगवा ली हो। जिस आदमी को केवल अपने तन से भी अधिक प्यारा पैसा लगता है वह निश्चय ही धन-लोलुप कहा जायेगा।

पैसा कमाने और पैसा बटोरने में आज आदमी कहाँ तक गिर सकता है, इसका अनुमान देश में घटित घटनाओं से सहज ही लगाया जा सकता है। पैसा कमाने की अँधी दौड़ में उग्रवादी मानव बम बनने को तैयार हो जाते हैं। अगर कोई इनसे यह पूछे कि जिस पैसे के लिए तुम इस शरीर को ही समाप्त करने पर उतारू हो गये इस पैसे को एकत्र करने से क्या लाभ? पैसा बयेरने के लिए ही तो समूचे देश में आतंक है। मगर इन आतंकवादियों ने पैसा तो बटोरा मगर शरीर तो चला गया!

समाज में अपने को उच्च ही नहीं सर्वोच्च व्यक्ति कहलाने वाले लोग जो पैसा बटोरने के काले काम में लिप्त हैं वह अपने परिवार तक को भी पैसे के लिए दूसरों के हाथों में सौंपने में परहेज नहीं करते। पैसा बटोरते-बटोरते शरीर चाहे साथ छोड़ दे, काया रोगी हो जाये मगर लालसा कभी समाप्त होने वाली नहीं है। पति भी कमा रहा है, पत्नी भी कमा रही है, बच्चे भी कमा रहे हैं, समूचा घर मशीन की तरह धन अर्जन में जुटा है, मगर अपने शरीर का, अपने तन का, अपने मन का किसी को भी ध्यान नहीं है। पैसे के लिए दौड़ते-दौड़ते यदि शरीर साथ छोड़ दे तो वह पैसा किस काम का। लेकिन इस प्रकार की प्रवृत्ति के लोगों को केवल पैसे से ही तात्पर्य है अपने शरीर या स्वास्थ्य से नहीं।

आज एक-दूसरे की ओर देखकर आदमी प्रतिस्पर्धा में ही घुटा जा रहा है। उसके पास पैसा है, कार है, कोठी है, नौकर-चाकर हैं; मेरे पास सामने वाले से चार गुना धन होना चाहिए। आदमी तस्करी करता है, देश की युवा पीढ़ी को पथ-भ्रष्ट करने के लिए नशे

की सामग्री का बाहर से आयात करता है, केवल पैसा बटोरने के लिए। पैसा बटोरने वाले व्यक्ति के लिए अपने शरीर और अपने स्वास्थ्य से अधिक रुपये या धन का महत्त्व अधिक है और पैसे को ही वह सबसे बड़ा आधार मानता है। यह कहा जाता है कि अधिक धनवान् व्यक्ति अपने प्रति, परिवार के प्रति और समूचे समाज के प्रति क्रूर हो जाता है, जैसे लंकापति रावण ने अपने तन की, मन की, परिवार की, राज्य की चिन्ता नहीं की और अपने हठ क आगे समूची लंका का ही सर्वनाश करा दिया, उसी प्रकार धन के लोलुप व्यक्ति किसी का हित नहीं कर सकते। वैसे अगर देखा जाये तो धन को संग्रह करने वाला जीव जब अपने शरीर का, अपने स्वास्थ्य का ही ध्यान नहीं रख पाया तो बेचारा परिवार या समाज का क्या ध्यान रख पायेगा। धन की अँधी दौड़ को देखकर एक संन्यासी का यह कहना कितना सार्थक लगता है कि—

बहुत पसारा मत करो, कर थोड़े की आस।

(204) अपना हाथ जगन्नाथ

संकेत बिंदु—(1) जगन्नाथ का अर्थ (2) मनुष्य को कर्म की प्रेरणा (3) मनुष्य की अनेक शक्तियाँ (4) मनुष्य की साहस और शक्ति के उदाहरण (5) उपसंहार।

यह एक किवदन्ती है 'अपना हाथ जगन्नाथ', वैसे हिन्दू धर्म में भगवान् का नाम जगन्नाथ है। जग का नाथ अर्थात् जगन्नाथ। यह लोकोक्ति मनुष्य के लिए प्रयोग की गयी है। '**अपना हाथ जगन्नाथ**' यदि हम इस पर गहरायी से विचार करें तो पता चलता है कि भगवान् या ईश्वर में प्रत्येक कार्य को सम्पन्न करने की अपार शक्ति का विपुल भण्डार है और यही शक्ति का असीम भण्डार भगवान ने मनुष्य को भी प्रदान किया है, मगर स्वार्थ के कारण मनुष्य अपने अधिकार को भूल चुका है।

बात हाथ की है तो हम भगवान की वन्दना करते समय यह कहना नहीं भूलते कि '**हरी है हजार हाथ वाला**', भगवान के समस्त चित्रों में कहीं चार हाथ, कहीं आठ हाथ दिखायी देते हैं, यह सत्य है कि जिस प्रकार हम चित्रों में भगवान् के चार और आठ हाथ देखते हैं, उसी प्रकार मनुष्य के पास भी चार या आठ हाथ हैं, मगर मनुष्य को केवल दो ही हाथ दिखायी देते हैं। सम्भवत: इसीलिए यह उक्ति बनी हो कि—"**अपना हाथ जगन्नाथ**"। यह वाक्य शायद हमारे पूर्वजों ने हमें कर्म करने की प्रेरणा के लिए ही सूत्र के रूप में दिया हो।

मनुष्य को कर्म करने की प्रेरणा देने के लिए अपने हाथ को जगन्नाथ कहना एक मुहावरा हो सकता है, सूक्ति हो सकती है मगर मनुष्य को बड़े कार्य करने की प्रेरणा इसी वाक्य से मिलती है। कठिन काम को देखकर जब व्यक्ति हताश या निराश हो जाता है तो यह वाक्य मनुष्य के मन में शक्ति का संचार करने का एक माध्यम बनकर उभरता है। तभी तो कवि मनोहरलाल 'रत्नम्' की यह पक्तियाँ सार्थक लगने लगती हैं क्योंकि हताश

और निराश व्यक्ति को कवि प्रेरित करते हुए कहता है—

रह सनाथ, मत हो अनाथ,
यह अपना हाथ है जगन्नाथ।
कर प्रयास, हो पूरी आस—
अपना कर 'रत्नम्' ऊँचा माथ।
यह अपना हाथ है जगन्नाथ।।

भगवान् श्रीकृष्ण ने जब हताश अर्जुन को कर्म करने के लिए गीता का ज्ञान दिया तो उस समय भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा था—''हे पार्थ ! मनुष्यों में बल मैं ही हूँ, सृष्टि का प्राण मैं ही हूँ अर्थात् ''**अहं ब्रह्मस्मियों** जब श्रीकृष्ण अहं ब्रह्म कह पाने में सक्षम हो सकते हैं तो हम ईश्वर का स्मरण करते हुए अपने हाथ को जगन्नाथ क्यों नहीं कह सकते ? जब मनुष्य स्वयं को जगन्नाथ मानकर चलेगा तो कठिन-से-कठिन कार्य भी सुलभ व सुगम बन जायेगा।

मनुष्य को अनेक प्रकार की शक्तियाँ प्राप्त हैं, कार्य करने की शक्ति, सब कुछ जानने की शक्ति, मानने की शक्ति, स्वयं को पहचानने की शक्ति। यह शक्ति ही तो है जिसके आधार पर मनुष्य सभी कार्य सम्पन्न करता है। वस्तु, शरीर योग्यता और सामर्थ्य यह सभी कुछ तो मनुष्य के पास है और इन्हीं के बल पर मनुष्य विश्व-विजयी बन सकता है।

सागर पार करने की कठिन यात्रा से जब हनुमान् विचलित हुए तो कहा जाता है कि जामवन्त ने हनुमान को उनके भीतर सम्पूर्ण शक्ति का आभास कराया, जिसे हनुमान् भूल चुके थे। शक्ति का स्मरण आते ही पवन पुत्र हनुमान ने क्षण भर में सागर पार कर लिया और लंका में जाकर जानकी की सुधि भी ली। हनुमान् के इस बलपूर्वक किये गये कार्य को भी हम '**अपना हाथ जगन्नाथ**' के नाम से जोड़कर देख सकते हैं।

मनुष्य के शरीर में व्याप्त वस्तु, योग्यता, सामर्थ्य सभी कुछ संसार के लिए हैं और संसार के काम आते भी हैं। मनुष्य बड़े-से-बड़ा कार्य करने में सक्षम है, केवल मन में धारणा और विश्वास होना चाहिए। इसी संदर्भ में कवि रामप्रकाश 'राकेश' का कहना है कि ''***मन में केवल साहस चाहिए, पाँव स्वयं ही चल पड़ते हैं।***''यह पंक्ति भी '***अपना हाथ जगन्नाथ***'वाली उक्ति को चरितार्थ करती है। मनुष्य अपने इन दोनों हाथों से सब कुछ करने की क्षमता रखता है, केवल मन में साहस होना अनिवार्य है।

'***अपना हाथ जगन्नाथ***'से अभिप्राय यह है कि मनुष्य में शक्ति और साहस होना चाहिए। उल्लेख मिलता है कि रावण ने अपने दोनों हाथों से कैलाश पर्वत को शिव सहित ऊपर उठा दिया था, यदि व्यावहारिक दृष्टिकोण से हम देखें तो पता चलता है कि रावण ने भी '***अपना हाथ जगन्नाथ***'की कहावत को चरितार्थ करके संसार को दिखा दिया कि असम्भव भी सम्भव हो सकता है। रावण द्वारा कैलाश को उठाना मात्र कल्पना हो सकती है मगर हमें उस साहस और श्रम को नहीं भूलना चाहिए जो मनुष्य के भीतर विद्यमान है।

यदि देखा जाये तो गगन चूमते भवनों का निर्माण हाथों द्वारा ही हुआ है। आगरा में

प्रेम का प्रतीक ताजमहल भी हाथों के निर्माण का जीवित उदाहरण है। दिल्ली में कुतुबमीनार, इण्डिया गेट, लालकिला तथा अन्य भवन भी मजदूरों के हाथों की मेहनत माँ की गाथा का बखान कर रहे हैं। इसी प्रकार ऋषिकेष में लक्ष्मण झूला, हरिद्वार में उड़न खटोला जैसे अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। अभी हाल में दिल्ली में भूमिगत और ऊपर खम्बों पर दौड़ने वाली मेट्रो रेल भी तो हमें *'अपना हाथ जगन्नाथ'* का ही स्मरण कराती है।

समाज में स्त्री हो या पुरुष, बालक हो या वृद्ध, शिक्षित हो या अशिक्षित, साधु-संन्यासी हो या गृहस्थ सभी के पास दो हाथ हैं और इन्हीं हाथों से मनुष्य अनेक प्रकार के अच्छे व बुरे, सम्भव-असम्भव, कठिन व सरल कार्य करने में सक्षम माना गया है। यह हमारे हाथ जहाँ एक ओर अन्न उपजाते हैं, खाद्य सामग्री, सब्जी-दालें उपलब्ध कराते हैं, वहीं दूसरी ओर विज्ञान में अनूठे चमत्कार भी हाथों की ही देन हैं। आकाश में विचरण करते वायुयान, पटरी पर सरपट दौड़ती रेल, पानी, बिजली की व्यवस्था भी हाथों द्वारा ही सम्भव है। तभी तो समाज के मनीषियों, शास्त्रियों, बुद्धिजीवियों ने 'हाथ को जगन्नाथ' की संज्ञा देकर मनुष्य में साहस, सम बल और शक्ति का संचार करने की प्रेरणा दी है।

जीवन की अमूल्य धरोहर है,
अपने तन में दो लगे हाथ।
मैंने 'रत्नम्' से जान लिया—
यह अपने हाथ हैं जगन्नाथ।

(205) नर-नारी सब एक समान

संकेत बिंदु—(1) एक सिक्के के दो पहलू (2) नारियों का गौरवशाली अतीत का वर्तमान (3) नारी में नवीन चेतना और मानसिकता का विकास (4) पुरुष के साथ कार्यरत (5) उपसंहार।

आज के वैज्ञानिक युग में नारी हर क्षेत्र में पुरुष के साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर चल पाने में सक्षम हो गयी है। आज यदि हम देखें तो नारी भी पुरुष के साथ शिक्षा, चिकित्सा, व्यापार, शिल्पकला, पुलिस, न्यायपालिका, राजनीति, प्रशासन के साथ-साथ यहाँ तक हवाई उड़ान, रेल और बस व्यवस्था गें भी नारी का भरपूर सहयोग मिल रहा है। अगर देखा जाये तो प्राचीनकाल में भी नारी किसी पुरुष से कम बलशाली नहीं रही। इतिहास साक्षी है कि गार्गी, मैत्रेयी, लक्ष्मीबाई, पद्मनी आदि अनेक नारियों के वीरता के पृष्ठ देखने को मिल जायेंगे।

नर और नारी एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जिस प्रकार नदी के दो किनारे होते हैं, उसी प्रकार नर और नारी भी समाज में, परिवार में दो किनारों की भाँति ही माने जाते हैं। जिस प्रकार किसी रथ के, मोटर साइकिल या साइकिल के दो पहिये यदि गतिशील हैं तो व्यवस्था सुचारु होती है उसी प्रकार स्त्री और पुरुष भी दो चक्रों या पहियों के समान ही निरन्तर गतिशील बने रहें।

नर-नारी हों एक समान।
जीवन में आये मुस्कान॥

भारतीय समाज में नारी की दशा के मूल में भी प्रमुख कारण प्रारम्भ में यह रहा कि हमारे यहाँ पुरुष प्रधान समाज की मान्यता बनी रही जिसके कारण नारी की दशा को अत्यन्त दयनीय बना दिया था, लेकिन वर्तमान में जो विचारधारा उभरकर सामने आयी है उससे नारी हर क्षेत्र में स्वतन्त्रता के साथ आगे बढ़ रही है। नारी को पुरुषों के बराबर सम्मान देकर देश में एक प्रशंसनीय कार्य हुआ है और इसी के फलस्वरूप भारतीय नारी कल्पना चावला को नासा के माध्यम से अन्तरिक्ष में जाने का सौभाग्य मिला, लेकिन दुर्भाग्य यह रहा कि अन्तरिक्ष से लौटते समय यान में खराबी आ जाने से कल्पना केवल कल्पना ही बनकर रह गयी, मगर पुरुष के साथ नारी ने कदम-से-कदम मिलाकर चलने का साहस तो किया।

रामायण और महाभारत काल में भी नारियों को गौरवपूर्ण पद प्राप्त था, लेकिन समय के साथ नारी की स्थिति में परिवर्तन आता गया। सामाजिक परिवर्तनों के साथ-साथ नारियों की स्थिति में भी परिवर्तन आया। सीता, राधा, यशोधरा, अहल्या, मन्दोदरी, सुलोचना, तारा, शकुन्तला आदि ऐसी नारी पात्र हैं जो पुरुष प्रधान समाज में सम्मलित होकर भी आजीवन दु:ख और संघर्षों की आँच में कुन्दन की भाँति तपती रहीं। हमें इस सत्य को स्वीकार करना पड़ेगा कि इन दोनों युगों त्रेता द्वापर में नारी की वह स्थिति नहीं रह गयी तो वैदिक काल में थी।

'यत्र नार्यस्तु पूजन्ते रमन्ते तत्र देवता' अर्थात् जहाँ नारी की पूजा जाती है, वहाँ देवता निवास करते हैं। लेकिन आज भारत में नारी की पूजा के स्थान पर नारी को पुरुष के बराबर माना गया है और कार्य पूजा से भी अधिक श्रेष्ठ जान पड़ता है। कहा गया है कि नारी केवल भोग की वस्तु है और नारी पुरुष की वासना पूर्ति का साधन है, मगर आज के परिवेश में यदि देखा जाये तो नारी पुरुष की संगनि है और प्रत्येक कार्य में पुरुष की बराबर की भागीदार भी है।

नर-नारी एक समान के अधिकार को पाकर भारतीय नारी जगत् में एक नवीन चेतना और मानसिकता का विकास हुआ है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने नारी की स्थिति का चित्रण अपनी कविता में किया था—

अबला जीवन, हाय तेरी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी॥

आज के वातावरण को देखकर लगता है कि समय और विधाता ने गुप्त जी की पीड़ा को देखा-परखा और नारी के जीवन में सुधार लाने के सामाजिक और सरकारी स्तर पर प्रयास हुए और नारी को पुरुष के बराबर हर क्षेत्र में अधिकार भी प्राप्त हुए।

भारत में अब नारी की है नयी कहानी।
हर क्षेत्र में नारी चमकी बन मर्दानी॥
पुरुषों के संग कार्य-क्षेत्र में हाथ बँटाती।
नारी को अधिकार मिले 'रत्नम्' तूफानी॥

गुप्त जी द्वारा नारी की दयनीय दशा का कविता में जो चित्रण है, वह उस समय की बात रही होगी लेनिक आज जो नारी को सम्मान और पुरुष के समान अधिकार मिले हैं उस पर मनोहरलाल 'रत्नम्' की उपरोक्त चार पंक्तियाँ सटीक और सुन्दर चित्रण प्रस्तुत करने में सफल हुई हैं। नारी समाज की धुरी है और पुरुष नारी का साथी माना जाता है। नारी और पुरुष से ही समाज की रचना सम्भव है, लेकिन अब वर्तमान में नारी और पुरुष एक साथ प्रत्येक कार्यों में संलग्न होकर देश और समाज को उन्नत बनाने में अग्रसर हैं। नारी को पुरुष के समान अधिकार मिलने का सबसे बड़ा श्रेय नारी-शिक्षा को जाता है, जब नारी शिक्षित होगी तभी समाज के प्रत्येक कार्य व्यवहार में भागीदारी निभा पाने में सक्षम होगी। आज शिक्षा के स्तर को यदि देखा जाये तो शिक्षा के स्कूली स्तर पर लड़कियाँ लड़कों से आगे पायी जाती हैं और विश्वविद्यालय स्तर पर भी लड़कियाँ शिक्षा में आगे हैं। शिक्षित महिला समाज की आवश्यकताओं को समझ पाने में सक्षम होती है, यह बात आज नारी समाज की समझ में आ गयी है। वैसे नारी के सन्दर्भ में अनेक कवियों और गीतकारों ने अपनी लेखनी चलायी है, एक फिल्म के गीत की कुछ पंक्तियाँ जो नारी के सम्मान में लिखी गयीं—

कितने सुख नारी देती है,
माँ, बहन, बहू, बेटी बनकर॥

जहाँ नारी के सुख देने की बात है उपर्युक्त पंक्तियाँ तो केवल पारिवारिक पृष्ठभूमि तक ही सीमित करती हैं, मगर आज नारी शिक्षित होकर पुरुष के साथ प्रत्येक क्षेत्र में कार्यरत है, यह भी नारी द्वारा दिया गया सुख ही कहा जायेगा। समाज में नर और नारी का दोनों का समावेश है, स्त्री पुरुष समाज के अभिन्न अंग हैं, दोनों के समान विकास में, शिक्षा के क्षेत्र में अध्ययन के समान अवसर, खेल के मैदान में स्त्री और पुरुषों को समानता के अधिकार, दैनिक जीवन में एक समान व्यवहार और स्त्री और पुरुषों दोनों के गुणों को समान रूप से जगाने में ही समाज और देश का कल्याण निहित है।

नर-नारी एक समान पर चर्चा करते समय हमारा ध्यान चम्बल के बीहड़ों की ओर भी जाता है। यहाँ भी नारी ने अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए कभी पुतलीबाई और कभी फूलन देवी बनकर पुरुषों से अधिक बलशाली कार्य कर दिखाया है, इस सन्दर्भ में इन नारियों की राह तो गलत थी मगर बहादुरी और समानता में पुरुषों से कहीं आगे दिखाई देती हैं।

भारतीय समाज में नर-नारी को एक समान अधिकार मिलने से सम्भव है कि हमारा भारत देश भविष्य में आर्थिक और सामाजिक उन्नति कर विश्व में अग्रणी बनकर विशाल भारत देश कहलाने का गौरव प्राप्त करेगा। इस गौरव को पाने के लिए आज आवश्यकता बुद्धिमान्, पराक्रमवान्, निष्ठावान्, आकांक्षावान और ईमानदार नर और नारी, यह स्त्री-पुरुष तभी देश के स्वाभिमान और गौरव को ऊँचाकर पायेंगे जब इन सबको इनके गुण और महत्त्व और मानवीय मूल्यों को एक साथ समान रूप से समझा जायेगा।

नार-नारी संसार में, हैं केवल दो हाथ।
नर से नारी का रहे, हर कार्य में साथ॥
हर कार्य में साथ, उन्नति हम पा जायें।
ऊँचे शिखर पहुँच, वहाँ सारे मुस्कायें॥
कह 'रत्नम्' पथ पर हों जब नर और नारी॥

प्रकृति

(206) प्रकृति-सौन्दर्य

संकेत बिंदु—(1) प्रकृति-सौंदर्य ईश्वरीय सृष्टि की अलौकिक शक्ति (2) रात का मनमोहक दृश्य (3) ऋतु-परिवर्तन प्रकृति की विभिन्न दृश्यावलियाँ (4) मेघों के बरसने से प्रकृति सौंदर्य (5) उपसंहार।

प्रकृति-सौन्दर्य ईश्वरीय सृष्टि की अलौकिक, अद्‌भुत, असीम एवं विलक्षण कला का समूह है। प्रकृति का पल-पल परवर्तित रूप सौन्दर्य पूर्ण, हृदयाकर्षक और उल्लासमय होता है। सर्वस्व लुटाकर भी वह हँसती है, हँसाती है। श्रीधर पाठक कश्मीर के प्राकृतिक-सौन्दर्य से मुग्ध होकर गा उठे—

प्रकृति यहाँ एकांत बैठि निज रूप सँवारति,
पल-पल पलटति भेष, छनिक छबि छिनछिन धारति।
बिहरति विविध विलासमयी, जीवन में मद सनी,
ललकती, किलकति, पुलकति, निरखति थिरकति बनि ठनि।।

प्रभात वेला में बाल-अरुणोदय के समय उड़ते हुए पक्षियों का कलरव, सस्यश्यामल क्षेत्र में मुक्ता के समान चमकती ओस की बूँदें, शीतल सुरभित मलयानिल, भगवान् भास्कर की दीप्त रश्मियाँ, प्राणिमात्र का जागरण और कार्यों में लगने का उपक्रम तथा यत्र-तत्र शान्त वातावरण क्या ही अनुपम आनन्द का अनुभव कराते हैं। कविवर प्रसाद का मन इस सौन्दर्य को देखकर कहता है—

उषा सुनहले तीर बरसती, जय लक्ष्मी-सी उदित हुई।

दोपहर हुई। भगवान् अंशुमाली के दृप्त तेज से गर्मी की प्रचण्डता का आभास प्रकट हुआ। जैसे प्रेयसी कुपित होती है, तो भी सुन्दर लगती है, इसी प्रकार प्रकृति के इस कोप में भी सौन्दर्य है, जन-जन का कल्याण निहित है।

दिनभर की यात्रा से श्रान्त भास्कर जब अपनी थकान मिटाने सायं समय पश्चिम समुद्र में स्नान करने उतरता है, तो उसका प्रतिपल, प्रतिक्षण रंग बदलता हुआ मनोहर रूप आश्चर्यचकित कर देता है। सूर्य के स्पर्श से समुद्र-जल का रंग अरुणाभ हो जाता है, मानो जल-राशि पर तरल-स्वर्ण गिरकर बिखर गया हो। सूर्य के समाधि लेने पर जल रक्तवर्ण

हो जाता है, तो लगता है, गेरू पिघल कर बह रहा हो। कुछ क्षण बीतने पर बैंगनी रंग में बदल जाता है और अन्त में जल काला हो जाता है। क्षण-क्षण बदलती प्रकृति-नटी के रूप को आँखें तो देख पाती हैं, किन्तु मस्तिष्क उतना तेजी से उन रंगों को पकड़ नहीं पाता।

मधु-रात्रि में तारागणों की जगमगाहट, मध्य में पूर्ण चन्द्रमंडल का अपनी रजत किरणों से जगत् को धर्वालित करना, मधुर मकरंद-पूरित वायु के संचरण में प्रकृति की अद्‌भुत छटा है। इस दृश्य को देख राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का हृदय आत्म-विभोर होकर कह उठा—

चारु चन्द्र की चंचल किरणें, खेल रही हैं जल-थल में।
स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई है, अवनि और अम्बर-तल में।।

ऋतु-परिवर्तन प्रकृति की विभिन्न दृश्यावलियाँ हैं। एक-एक ऋतु का एक-एक दृश्य सौन्दर्य-सुषमा से ओत-प्रोत है। प्रथम पुष्प, फिर किसलय, फिर भौंरों की गुंजार और कोयलों की कूक, इस प्रकार क्रमशः वसन्त का अवतार होता है। वासन्ती परिधान में पृथ्वी इठलाती है। सुरम्य वन, कुँज, लता, उपवन, पर्वत, तटिनी, जहाँ दृष्टिपात करो, उधर ही कुसुमपूरित डालियाँ दिखाई देती हैं। पंत का प्रकृति प्रेमी हृदय वासंतिक दृश्य को देखकर गा उठता है—

अब रजत स्वर्ण मंजरियों से, लद गई आम्र रस की डाली।
झर रहे ढाक, पीपल के दल, हो उठी कोकिला मतवाली।।

प्रकृति ने करवट बदली, ग्रीष्म का आगमन हुआ। सूर्य भगवान् की तेजो-दृप्त किरणें, लू के थपेड़े, तेजपूरित उष्ण निदाघ, खिले फूलों का मुरझाना, नदियों की शुष्कता तथा मंद प्रवाह, भू पर छाया सन्नाटा, विचित्र प्रभाव उत्पन्न करते हैं।

प्रकृति ने तेवर बदले। ग्रीष्म की तेज लू, प्राणिमात्र की उदासीनता श्याम सघन-घन के स्पर्श से शीतल हुई। मेघावली के जल-सिंचन से सर्वत्र हरियाली छाई। विद्युत् का बार-बार चमकना, वृक्षाच्छादित हरित पर्वत श्रेणियाँ, नील गगन में इन्द्रधनुष की सतरंगी आभा, सौदामिनी के चमकने के साथ घोर वज्रपात का स्वर, क्षितिज पर्यन्त हरियाली, जल पूरित नद-नदियाँ, सरि-सरोवरों का प्रवाह, मयूरों का नर्तन, कोकिलगण का कलरव, मतवाले भ्रमरों की गुँजार, मेंढकों की टर्-टर् ध्वनि, वेग से गुंजित-कंपित वृक्षावली का सिर हिलाकर चित्त को आकर्षित करना, रुकते हुए जल की श्वेत आभा नेत्रों के सम्मुख अद्‌भुत, विलक्षण दृश्य उपस्थित करती है।

प्रकृति-नटी ने ऋतु-चक्र-नर्तन का अन्तिम दृश्य उपस्थित किया शारदीय नृत्य में। फिर हेमन्त में शीत का हृदय कँपाने वाला वेग, हिम पूरित वायु का सन्नाटा, कोहरा-धुंध का गाढ़ा अन्धकार जिसमें कुछ दिखाई नहीं देता, जो दृश्यमान है भी, उसमें चित्त भय से काँप जाता है। नील गगन का मेघ युक्त सूर्य शीत के प्रभाव से अधिक प्रज्वलित तेज की सृष्टि करके अपनी सुखद किरणों से वसुधा में रस-संचार करता है।

अब आइए, जरा पहाड़ों की ऊँचाई पर अद्‌भुत, हृदयाकर्षक प्रकृति-सौन्दर्य के दर्शन कर लें। हिम-पूरित तराइयों में तथा हिमावृत्त चोटियों पर अद्‌भुत रंग के नील, पीत, ललित

कुसुम सहित लताओं तथा ऊँचे-ऊँचे अपार अनगिनत वृक्ष-समूहों के शीतल वायु के झोंकों से दोलायमान होना, पुन: सूर्य की किरणों की चमक पड़ने से हिमावृत चोटियों का इन्द्रधनुष-सा रंग जाना कैसा सुन्दर दिखाई पड़ता है। पावस ऋतु में पर्वत पर बदलते प्रकृति-दृश्य से विस्मित होकर पंत पी कहते हैं— *'पावस ऋतु थी, पर्वत प्रदेश। पल-पल परिवर्तित प्रकृति वेश।'* दूसरी ओर, निर्मल जल में सूर्य चन्द्रमा की परछाईं का हिलोरे लेना, तट पर खड़े वृक्षों का चन्द्रमा की चाँदनी की छटा बिखेरना किसे नहीं ठग लेता?

वस्तुत: प्रकृति-सौन्दर्य के सम्मुख मानवी-सौन्दर्य भी फीका लगने लगता है। तभी तो प्रकृति के चतुर चितेरे कविवर सुमित्रानन्दन कह उठते हैं—

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया, तोड़ प्रकृति से भी माया।
बाले, तेरे बाल-जाल में, कैसे उलझा दूँ लोचन।।

(207) चाँदनी-रात का वर्णन

> **संकेत बिंदु**—(1) चन्द्रमा का उदय और अस्त नियमबद्ध (2) चाँदनी का विस्तार (3) नदियों और झरनों में रात का दृश्य (4) चाँदनी-रात में नौका विहार (5) चाँदनी रात प्राणि-मात्र के लिए मनभावन।

वैज्ञानिक सिद्धान्तों के अनुसार पृथ्वी सूर्य के चहुँ ओर चक्कर लगाती है। संसार का जो भाग सूर्य के सम्मुख होगा, वहाँ दिन होगा, जिसकी पीठ सूर्य की ओर होगी, वहाँ रात होगी। यह निरन्तर चलने वाला चक्र ही पृथ्वी पर दिन और रात की सृष्टि करता है।

चन्द्रमा का उदय और अस्त भी नियमबद्ध है। वह पृथ्वी का चक्कर एक मास में पूर्ण करता है। चन्द्रमा उदय और अस्त भी शनै: शनै: होता है। न एकदम अमावस होती है, न एकदम पूर्णिमा।

चाँदनी रात—पूर्णिमा की रात्रि अत्यन्त सुहावनी होती है। चारों ओर चन्द्र-किरणों की उज्ज्वल और शीतल ज्योत्स्ना का साम्राज्य। जल-स्थल, अवनि-अम्बर सर्वत्र चन्द्र-किरणों की क्रीडा। मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में

चारु चन्द्र की चंचल किरणें, खेल रही हैं जल-थल में।
स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई है, अवनि और अम्बर-तल में।।

सम्पूर्ण जगत्-कांति से आलोकित हो रहा है। गगन-मण्डल में भी शुभ्रता छाई हुई है। तारों की जगमगाहट उस शुभ्र ज्योत्स्ना में लुप्त-सी हो गई है। चाँदनी का यह विस्तार क्षीरसागर जैसा प्रतीत हो रहा है और उसके मध्य विराजमान चन्द्र एक खिले हुए श्वेत कमल के समान दिखाई दे रहा है। श्री जानकीवल्लभ शास्त्री के शब्दों में—

नयन-मन-उन्मादिनी
आज निकली चाँदनी
आज केवल शून्य नीचे शून्य ऊपर,

स्वर्ग की सम्पूर्ण सुषमा आज भू पर,
सब कहाँ, है आज दो-चार तारे,
हेर वसुधा के हृदय का हार हारे।
उमड़ता ज्यों क्षीर-सागर फेन-निर्मल।
चाँद उसमें है खिला ज्यों शुभ्र शतदल॥

संस्कृत के महाकवि कालिदास चाँदनी-रात का वर्णन करते हुए लिखते हैं, 'चन्द्रमा ने अपनी किरणों से तिमिर का अन्त कर दिया है। रजनी जैसे तिमिर रूपी दैत्य के पंजों से छूट आई है। अब चन्द्रमा चुपचाप भली प्रकार अपनी अंगुलियों से रजनी के केश-कलाप को हटाकर उसे सहलाता-सँभालता हुआ चूम रहा है। केशों के नयनों पर से हट जाने पर दिशा का स्वच्छ मुँह उद्भासित हो गया है।'

नद-नदियों, सर-सरोवरों, झरनों और समुद्र के जल में चाँदनी-रात का दृश्य अत्यन्त विलक्षण और आकर्षक होता है। जल की स्वच्छ नीलिमा से चन्द्रमा की परछाई हिलोरें ले रही है। तट पर खड़े वृक्षों पर चन्द्रमा की चाँदनी की छटा अत्यन्त शोभायमान है। उपवन में विकसित फूल अपनी सुगन्धि से वातावरण को अत्यधिक मादक बना रहे हैं।

जरा चाँदनी-रात का आनन्द ताजमहल के परिसर में भी लीजिए। शुभ्र संगमरमर से निर्मित यह भव्य-भवन उज्ज्वल चाँदनी में जगमग-जगमग करता हुआ बहुत ही सुन्दर लगता है। शरत्-पूर्णिमा की रात्रि में इस भवन की भव्यता को देखने के लिए देश-विदेश से सहस्रों व्यक्ति प्रतिवर्ष आगरा आते हैं।

चाँदनी रात में नौका-विहार करना अत्यन्त आनन्दप्रद होता है। नदी तट का शान्त और शीतल वातावरण मन में अपूर्व आह्लाद उत्पन्न करता है। रेतीले तटों के मध्य बहती हुई नदी की धारा तन्वंगी सुन्दरी जैसी प्रतीत होती है। जब नौका धारा के मध्य थिरकने लगती है, तब पानी में प्रतिबिम्बित तट दुगुने ऊँचे दिखाई देते हैं। जल में प्रतिबिम्बित होते हुए तारों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानों वे (तारे) पानी के अन्दर कुछ ढूँढ़ रहे हैं। हिन्दी के लोकप्रिय कवि श्री सुमित्रानन्दन पन्त ने अपनी 'नौका-विहार' कविता में इस दृश्य का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है—

शान्त, स्निग्ध ज्योत्स्ना उज्ज्वल!
अपलक अनन्त, नीरव भूतल!

× × ×

सैकत-शैया पर दुग्ध-धवल, तन्वंगी गंगा, ग्रीष्म-विरल
लेटी है श्रान्त क्लान्त, निश्चल!

× × ×

निश्चल जल के शुचि दर्पण पर बिम्बित हो रजत-पुलिन निर्भर,
दुहरे ऊँचे लगते क्षण भर!

शरत्-पूर्णिमा की रात्रि को चन्द्र-किरणों में अमृत प्रवाह-मानकर ही खीर पकाकर चन्द्र-किरणों के लिए रखी जाती है तथा श्वास के रोगों से मुक्ति के विचार से वह खीर

खाई जाती है। इतना ही नहीं, इस दिन चन्द्र किरणों के दर्शन मात्र से संजीवनी शक्ति मानव को प्राप्त होती है, ऐसा विश्वास किया जाता है।

चाँदनी-रात सर्वत्र सुखद हो, सर्वप्रिय हो और प्राणि-मात्र के लिए मनभावन हो, ऐसी बात नहीं। चौर्य-कर्मी चाँदनी-रात को अपना शत्रु मानते हैं, जिसके अस्तित्व में वे अपने कर्म की सफलता में सन्देह अनुभव करते हैं। इसी प्रकार विरह-वेदना से पीड़ित नायिका को चाँदनी-रात और भी विह्वल और सन्तप्त करती है। अत: वह उपालम्भ भरे स्वर में चन्द्रमा से कहती है—

तू तो निसाकर सब ही कि निसा करै,
मेरी जो न निसा करै तो तू निसाकर काहे को?

ताप हरण करने वाली, सहृदयों के हृदय को प्रफुल्लित करने वाली, शुभ्र ज्योत्स्ना से जगमगाती हुई रात्रि का वर्णन जितना भी किया जाए, कम है। चाँदनी को लक्ष्य करके कविवर पन्त ने ठीक ही कहा है—

वह है, वह अनिर्वच, जग उसमें, वह जग में लय।
साकार चेतना-सी वह, जिसमें अचेत जीवाशय॥

(208) चाँदनी-रात में नौका-विहार

संकेत बिंदु—(1) अद्‌भुत व आनंददायक अनुभव (2) शरत् पूर्णिमा का पर्व (3) नाविकों द्वारा मुँहमाँगा किराये की माँग (4) चाँदनी रात में खीर का आनंद (5) उपसंहार।

जो आनन्द प्रेमी-प्रेयसी की क्रीडा में आता है, जो सुख नवदम्पती की चहुल-बाजियों में प्राप्त होता है, जो प्रसन्नता रुचि-अनुकूल फिल्म देखने में होती है, जो गुद्‌गुदाहट विवाह के सीटनों (उपालम्भपूर्ण गालियों) को सुनकर होती है, न्यूनाधिक रूप में वही आनन्द तथा प्रसन्नता चाँदनी-रात में नौका-विहार में आता है।

चाँदनी-रात हो, नदी का जल मंथर गति से बह रहा हो, समवयस्क हमजोलियों की टोली हो, गीत-संगीत का मूड हो, तालियों की लयबद्ध ताल हो तो किसका हृदय बल्लियों नहीं उछलेगा? कौन हृदय-हीन उन मस्ती के क्षणों में आनन्दित नहीं होना चाहेगा?

शरत् पूर्णिमा का पर्व। चन्द्र-किरणों में अमृत का प्रवाह मान कर खीर पकाकर चन्द्र-किरणों के स्पर्श हेतु रखने की रात्रि, नदी-तट पर आनन्दोत्सव का त्यौहार।

मित्रों की टोली निकल चली यमुना-तट के लिए।9-10 मित्र हम-उमर, हम-खयाल, किन्तु कोई ताड़ की तरह आकाश को छूता हुआ, तो कोई भगवान् वामन का अवतार, कोई अंग्रेजों की गोरी चमड़ी को चुनौती दे रहा है, तो कोई भगवान् राम-कृष्ण का रूप प्रदर्शित कर रहा है। मोटर-साइकिल और स्कूटरों का काफिला समगति, समभाव से दिल्ली की चौड़ी सड़कों पर रात की नीरवता को चीरता हुआ चला जा रहा है।

यमुना तट पर चाँदनी रात्रि में कार, स्कूटर, मोटरसाइकिल और टैम्पों का जमघट। लोग यमुना तट पर खड़े यमुना में पड़ती क्षपाकर-किरणों को देख रहे हैं। सुदूर पुल पर जलते हुए विद्युत् बल्बों के प्रतिबिम्ब से सुशोभित जल की छटा को निहार रहे हैं। हिलोरें लेती जल-राशि में चन्द्र किरणों और बल्बों का बिम्ब अत्यन्त शोभायमान लग रहा है। थिरक-थिरक कर नृत्य करने वाली तरंग-मालाओं से पवन अठखेलियाँ कर रहा है।

इस दिन नाविक सीधे मुँह बात नहीं करते। 'डिमांड एन्ड सप्लाई' का युग है। नौकाएँ कम और सैलानी अधिक। पाँच के पचास माँग लें, तो कोई आश्चर्य नहीं। बीस में सौदा हो जाए, तो सस्ते छूटे। मित्रों की टोली चढ़ गई नाव पर। जब आनन्द लेना है तो ब्लैक के टिकट खरीदने में दोष, दुःख या क्रोध क्यों? फिर आनन्द ऐसा इत्र है, जिसे जितना अधिक दूसरों पर छिड़केंगे, उतना ही सुगन्ध अपने अन्दर समाएगी।

हमारी नौका का लंगर खुला। पक्षी पिंजरे से छूटा। नाविक ने जल पर चप्पू का प्रहार किया। नौका नृत्य की प्रथम भंगिमा में आकर डगमगाने लगी, जल-राशि पर थिरकने लगी। यात्रियों ने जय घोष किया—'यमुना मैया की जय।'

तरणी बीच धारा में पहुँची, तो चारों ओर असीम अनन्त चन्द्रिका का विस्तार दिखाई देता था। जहाँ तक दृष्टि जाती थी, शुभ्र ज्योत्स्ना का ही प्रसार दिखाई देता था। नील गगन निष्पलक नेत्रों से धरती को निहार रहा था। नौका चप्पू के रूप में अपने हाथ फैला-फैला कर, चमकीली फेन रूपी मोतियों के गुच्छे भर-भर कर लुटा रही थी।

इस मादक दृश्य ने सबके हृदय को आह्लादित कर दिया। एक गायक मित्र मचल उठा और उसके कोमल कंठ से मधुर गीत-ध्वनि बह निकली—*'कुछ-कुछ होता है'* गीत के लय के चढ़ाव-उतार के साथ-साथ मित्र ताली बजाकर रस उत्पन्न कर रहे थे। इसी बीच दूसरे मित्र ने खड़े होकर नशे का अभिनय करते हुए झूम कर चुनौती दी *'प्यार किया तो डरना क्या?'* गाने के बीच में गायक मित्र की हिचकियाँ अनारकली को भी मात दे रही थीं। तभी मीनाकुमारी की याद ताजा करने हुए कव्वाली मुखरित हो उठी, *'इन्हीं लोगों ने, छीना दुपट्टा मेरा।'*

यमुना का दूसरा तट आ पहुँचा, नाव एक क्षण रुकी। नाविक ने पूछा उतरोगे? मित्र ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की, *'चल मेरे भाई? तेरे हाथ जोड़ता हूँ। हाथ जोड़ता हूँ, तेरे पाँव पड़ता हूँ।'* सभी ठहाका मार कर हँस पड़े।

नौका को वापिस लौटाने के लिए नाविक ने पतवारों को घुमाया। सरिता का प्रवाह कम था। जल-राशि का कोश थोड़ा था। चप्पू जल-थल को स्पर्श कर रहे थे। नाविक जोर लगा रहा था।

तभी आवाज आई, 'खीर'! खीर की बाल्टी सामने आई। विश्वास था कि सुधाकर अमृतवर्षा कर चुके होंगे। काल्पनिक अमृत के आनन्द में खीर स्वादिष्ट लगी। थोड़ी छीना-झपटी; थोड़ी चोरा-चोरी और अपना चमचा दूसरे के मुख में देना आदि से वातावरण अत्यन्त मधुर बन गया।

अकस्मात् जल-धारा का वेग थोड़ा तीव्र हो गया। लहरें थोड़ी उछलने लगीं। यमुना का कल-कल निनाद कुछ तीव्र होने लगा।

नौका मध्य-धारा में थिरकने लगी, तो पानी में प्रतिबिम्बित तट जल में डूबा हुआ-सा लगने लगा। जल में तारों का प्रतिब्रिम्ब देखकर लगा कि अनन्त जल-राशि में मुक्तामणि ढूँढ़ रहे हैं। यमुना के वक्ष पर हिलोरें लेती लहरें तथा उन पर पड़ता चन्द्र-प्रकाश ऐसा प्रतीत होता था, मानों यमुना को चन्द्रमा ने हीरों का हार पहना दिया हो। चप्पू से उठने वाले पानी के बबूले बनते और फूटते देखकर लगता था मानों होली के छोटे-छोटे गुब्बारे फूल और फूट रहे हों।

मस्ती भरा, उल्लासमय रंगीन नौका-विहार क्षण-क्षण में समाप्ति की ओर जा रहा था। थका माँदा किसान, दिन भर फाइलों से मल्लयुद्ध करता लिपिक और सवारी ढोता पशु अपने घर की ओर जब चलता है, तो गति में स्वाभाविक तेजी आ जाती है। निर्जीव तरणी भी तट की ओर वेग से चल रही थी। चप्पू की आवाज कर्कशता में बदल रही थी। नौका-बिहार में उमंगें यात्रा-समाप्ति पर हृदय को दबोच रही थीं।

तरणी से उतर कर यमुना माता को प्रणाम किया। माता के मधुर स्नेह को पाकर कौन पुत्र विछोह पसन्द करेगा? पैर मोटर-साइकिल और स्कूटरों को किक मार रहे थे, किन्तु हृदय में माता के स्नेह की उमंगें किक मार रही थीं। मित्र-कंठ गा उठा—

जिन्दगी भर नहीं भूलेगी यह, नौका-विहार की चाँदनी-रात!

(209) किसी प्राकृतिक दृश्य का वर्णन

संकेत बिंदु—(1) प्रकृति परमात्मा की अनुपम कृति (2) नदी और महानदी प्रकृति का रूप (3) पश्चिमी क्षितिज पर सूर्य (4) प्रकृति तट पर रेत की सुंदरता (5) उपसंहार।

प्रकृति परमात्मा की अनुपम कृति है। प्रकृति का पल-पल परिवर्तित रूप उल्लासमय और हृदयाकर्षक होता है। वह मुस्कराती रहती है तो सर्वस्व लुटाकर भी हँसती है। नित्य सूर्योदय से पूर्व एवं सूर्योदय तथा सूर्यास्त के समय की प्राकृतिक-छटा कितनी अनुपम होती है! इन मनोमुग्धकारी दृश्यों को देखकर कौन आत्मविभोर नहीं होगा?

ऋतु-परिवर्तन प्रकृति की विभिन्न दृश्यावलियाँ हैं। एक-एक ऋतु का एक-एक दृश्य आनन्दमय होता है। प्रत्येक ऋतु के एक-एक दृश्य का सजीव वर्णन कवियों और साहित्यकारों की आत्म-विस्मृति का परिचायक है।

प्रकृति का एक रूप नद-महानद हैं। जल की विपुल राशि समुद्र है। गंगा-यमुना सरस्वती, कावेरी का वर्णन करते हुए कवि महाकवि बन गए, लेखक महालेखक बन गए। उनकी वाणी अवरुद्ध हो गई, कलम की शक्ति क्षीण हो गई, पर प्रकृति पुनः मुस्कराकर

आह्वान कर उठी। प्रकृति से पराजित महाकवि प्रसाद कह उठे, 'प्रकृति-सौन्दर्य ईश्वरीय रचना का एक समूह है अथवा उस बड़े शिल्पकार का एक छोटा-सा नमूना या उसको अद्‌भुत रस की जन्मदात्री कहना चाहिए। इसका सम्पूर्ण रूप से वर्णन करना तो मानो ईश्वर के गुण की समालोचना करना है।'

आइए, आपको दिखाएँ प्रकृति का एक चमत्कार, पल-पल रंग बदलती प्रकृति-नटी का रूप। ऐसा प्राकृतिक दृश्य जिसे देखने विश्व के सुदूर देशों से लोग आकर अपने को धन्य समझते हैं। वह है कन्याकुमारी के सूर्यास्त का दृश्य।

भारत-भू के सुदूर दक्षिण छोर पर है कन्याकुमारी। अरब सागर, हिन्द महासागर और बंगाल की खाड़ी, इन तीनों के संगम-स्थल की उस चट्टान पर, जिस पर स्वामी विवेकानन्द ने समाधि लगाई थी, आज उनका पवित्र मन्दिर अवस्थित है और दूर-दूर तक फैली हैं काली चट्टानें। इन चट्टानों पर खड़ा होकर देखने पर सूर्यास्त के दृश्य का आनन्द बहुत ही अद्‌भुत और रोमांचकारी होता है। सामने अपार सागर लहराता दिखाई देता है और पीछे कन्याकुमारी के मन्दिर का भव्य दृश्य। चट्टानों की पंक्ति काफी दूर तक फैली हुई है। आखिरी चट्टान से सूर्यास्त का दृश्य खुले रूप में दिखाई देता है।

पश्चिमी क्षितिज पर धीरे-धीरे नीचे की ओर उतरता हुआ सूर्य स्पष्ट दिखाई देता है। दूर-दूर से आए हुए यात्रियों के झुंड-के-झुंड इस दृश्य को देखने के लिए चट्टानों पर चढ़ते हैं। आखिरी चट्टान तक कम ही लोग पहुँच पाते हैं। यात्रियों में तरह-तरह के लोग होते हैं। इनकी विविधता भी अपने-आप में कम रोचक नहीं होती।

आखिरी चट्टान तक पहुँचने पर पश्चिमी क्षितिज का खुला विस्तार दिखाई देता है। वहाँ से दूर तक रेत की एक लम्बी ढलान दिखाई देती है, जिसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो समुद्र तक उतरने के लिए मार्ग तैयार किया गया हो। पीछे दाँईं ओर नारियलों के झुरमुट दिखाई देते हैं। उधर पश्चिमी तट के साथ सूखी पहाड़ियों की एक लम्बी शृंखला दिखाई देती है।

सूर्य के गोले ने पानी के तल को स्पर्श किया। स्पर्श मात्र से पानी का रंग पीला हो गया। दृश्य देखकर लगा कि जल पर स्वर्ण गिरकर बिखर गया है। गोले के डूबने की क्रिया प्रारम्भ होने और डूबने के क्षणों में जल का रंग प्रतिपल प्रतिक्षण इस प्रकार परिवर्तित होता है कि आँखें अपलक देख तो पाती हैं, परन्तु मस्तिष्क उतना तेजी से उन रंगों को पकड़ नहीं पाता। सूर्य के गोले की समुद्र में पूर्ण जल-समाधि के समय जल रक्तवर्ण हो जाता है, मानों रक्त की धारा बह रही हो। रक्त की धारा भी चिर-स्थायी न रही। कुछ क्षण बीते होंगे कि वह बैंजनी रंग में बदल गई और अन्त में जल काला हो गया।

समुद्र-जल में डूबते समय सूर्य की रंग बदलती छवि दर्शकों को मन्त्रमुग्ध कर लेती है।

प्रकृति का यह रूप देखा, साथ ही समुद्र-तट की रेत को भी देख लीजिए। प्रसिद्ध कथाकार मोहन राकेश इस दृश्यावली का वर्णन करते हुए लिखते हैं—

'यूँ पहले भी समुद्र तट पर कई रंगों की रेत देखी थी। सुरमई, खाकी, पीली और लाल।

मगर जैसे रंग उस रेत में थे, वैसे मैंने पहले कभी कहीं रेत में नहीं देखे थे। कितने ही अनाम रंग थे वे, एक-एक इंच पर एक-दूसरे से अलग—और एक-एक रंग कई-कई रंगों की झलक लिए हुए। काली घटा और घनी लाल आँधी को मिलाकर रेत के आकार में ढाल देने में रंगों के जितनी तरह के अलग-अलग सम्मिश्रण पाये जा सकते थे, वे सब वहाँ थे, और उनके अतिरिक्त भी बहुत-से रंग थे। मैंने कई अलग-अलग रंगों की रेत को हाथ में लेकर देखा और मसलकर नीचे गिर जाने दिया। जिन रंगों को हाथों से नहीं छू सका, उन्हें पैरों से मसल दिया। मन था कि किसी तरह हर रंग की थोड़ी-थोड़ी रेत अपने पास रख लूँ। पर उसका कोई उपाय नहीं था।'

कितनी विवशता है मानव की। प्राकृतिक सौन्दर्य को देख तो रहा है, किन्तु स्पर्श नहीं कर पा रहा।

प्राकृतिक दृश्यों का सौन्दर्य अनन्त है, असीम है। फूलों की कोमलता और उनका सौरभ एक ही प्रकार का रहने से भी तो काम चल जाता है, फिर इतनी शिल्पकला, पंखुड़ियों की विभिन्नता, रंगों की सजावट क्यों ? यह प्रकृति-नटी की विविधता और रंगीनी ही तो है। वैदिक ऋषि के शब्दों में—

'**पश्य देवस्य काव्यं न भमार न जीर्यति**'। यह ईश्वर का एक महाकाव्य है, जो अमर है, अजर है।

(210) प्रात:कालीन भ्रमण

संकेत बिंदु--(1) भ्रमण का अर्थ (2) सैर करना अच्छी आदत (3) प्रात: कालीन सैर का आनंद (4) मित्रों के साथ सैर (5) स्वास्थ्य के लिए सर्वोत्तम।

'भ्रमण' शब्द का वाच्यार्थ है घूमना, इधर-उधर विचरण करना। देश-विदेश में विचरण करना (भ्रमण करना) ज्ञान-वृद्धि का प्रमुख साधन है। इसके बिना जीवन में पूर्णता नहीं आ सकती। प्रसिद्ध विचारक आगस्टाइन के शब्दों में 'विश्व एक बड़ी पुस्तक है, जिसमें वे लोग, जो घर से बाहर नहीं जाते, सिर्फ एक पृष्ठ ही पढ़ पाते है।'

देश-विदेश के भ्रमण का सु-अवसर यदा-कदा ही एवं कतिपय लोगों को ही मिल पाता है। भ्रमण का एक और बहुत उपयोगी रूप है—और वह है प्रात: अथवा सायं-काल सैर करना। भ्रमण का यह रूप व्यायाम का ही एक रूप है। प्रात:कालीन भ्रमण सबसे सरल, किन्तु सबसे अधिक उपयोगी व्यायाम है।

गर्मियों में लगभग पाँच-साढ़े पाँच बजे और सर्दियों में छह-साढ़े छह बजे का समय प्रात:कालीन सैर के लिए अधिक उपयुक्त है। प्रात: बिस्तर छोड़ने में थोड़ा कष्ट तो अनुभव होगा ही। गर्मियों की प्रात:कालीन हवा और उसके कारण आ रही प्यारी-प्यारी नींद का त्याग कीजिए। सर्दियों में रजाई का मोह छोड़िए और चलिए प्रात:कालीन सैर को।

सैर आप कहीं भी कीजिए, मनाही नहीं है। फिर भी अच्छा है कि किसी पहाड़ी की

ओर जाइए, जहाँ की रमणीय प्रकृति आपके चित्त को प्रसन्न कर देगी। किसी बाग-बगीचे या खेत में जाइए, जहाँ के सुन्दर विकसित फूल आपकी आँखों को प्रिय लगेंगे और उन्हें तोड़ने के लिए आपका मन ललचाएगा।

किसी नदी-तट पर जाइए, जहाँ आपके शरीर को नई स्फूर्ति मिलेगी। यदि इन स्थानों तक जा सकने का सौभाग्य आपको प्राप्त न हो, तो ऐसी चौड़ी सड़क पर सैर कीजिए, जिसके दोनों ओर नीम, जामुन या कोई दूसरे घने वृक्ष खड़े हों।

सैर को जाने से पूर्व ध्यान रखिए कि आप शौच से निवृत हो चुके हैं न। बिना निवृत हुए मत जाइए। मुँह पर ठण्डे पानी के छपके मारिए। बालों में थोड़ा कंघी कर लीजिए। ऋतु-अनुसार चुस्त वस्त्र पहनिए, किन्तु कम-से-कम। चलिए, सैर कीजिए। मील, दो मील, चार मील, जितनी सामर्थ्य हो। हाँ, बाग-बगीचे में कभी जूते पहनकर मत घूमिए।

प्रात:कालीन वातावरण अत्यंत्र सुन्दर होता है। पक्षी अपने-अपने घोंसलों में फड़फड़ा रहे होते हैं। मंद-मंद सुगन्धित पवन चल रही होती है। रात्रि के चन्द्रमा और तारागण की ज्योति समाप्त-प्राय होती है। भगवान् भास्कर उदित होने की तैयारी कर रहे होते हैं। आकाश बड़ा स्वच्छ होता है। गली मोहल्ले में पाँच-सात ही व्यक्ति फिरते नजर आते हैं। इस शान्त वातावरण को श्वान अपने बेसुरे स्वर से कभी-कभी अवश्य भंग कर देते हैं।

सैर कीजिए, किन्तु चींटी की चाल से नहीं, तेजी से चलिए। लम्बे-लम्बे कदम हों और उनके साथ बारी-बारी से आगे पीछे पूरे वेग से हिल रहे हों आपके हाथ। मुँह को खोलने का कष्ट न कीजिए। नाक से साँस लीजिए। लम्बे-लम्बे साँस अधिक लाभ-प्रद रहते हैं। एक बात भूल गया; बूढ़ों की तरह कमर को झुकाकर नहीं, सीना तान-कर चलिए।

रजाई के मोह और प्यारी-प्यारी नींद का त्याग और वह भी प्रात:कालीन सैर के लिए, बड़ा लाभप्रद होता है। आलस्य आपसे पराजित हो जाता है। सारे दिन शरीर में स्फूर्ति बनी रहती है। तेज चलने से शरीर के प्रत्येक अंग की कसरत हो जाती है। रक्त-नलियाँ खुलती हैं। स्वास्थ्य सुन्दर बनता है। चेहरे पर रौनक आती है। हरी-भरी घास पर पड़ी ओस-बिन्दुओं पर नंगे पाँव घूमने से आँखों की ज्योति बढ़ती है।

आप सैर को चल रहे हैं, कोई मित्र मिला, हँसकर एक-दो मिनट गपशप हुई। हँसने से फेफड़ों को बल मिला। पड़ोसी मिला; नमस्ते हुई बड़े बुजुर्ग मिले, चरण-स्पर्श किया; क्रीडा करते बच्चों की टोलियाँ मिलीं, हृदय गद्‌गद हो गया। एक साथ इतने लोगों के दर्शन प्रात:काल में; चित्त प्रसन्न हो गया।

सैर से आप वापस आ रहे हैं। सूर्य ने अपनी प्रथम किरण पृथ्वी पर डाल दी है। अहा! कितना सुन्दर दृश्य है। नीले आकाश में उदित होते लाल सूर्य को नमस्कार करने को मन चाहता है। मनुष्यों के साथ प्रकृति भी जग गई है। चारों ओर चहल-पहल नजर आती है। पक्षीगण चहचहा रहे हैं और हमारी सैर का आनन्द खराब करने को मार्ग में सफाई कर्मचारी झाड़ू देने के लिए आ गया है और लोकल-बसें धुआँ छोड़ती हुई दौड़ने लगी हैं।

जहाँ फूल होते हैं, वहाँ काँटे भी होते हैं। आपकी सैर के मजे को जो किरकिरा करे,

उससे बचने का प्रयत्न कीजिए। झाड़ू देते सफाई कर्मचारी को अपना कर्तव्य-पालन करने दीजिए, बसों को अपनी जलन निकालने दीजिए। आप नाक पर रूमाल रखकर इससे बच जाइए, मन खराब न कीजिए। कारण, मन खराब हुआ तो सैर का सारा आनन्द लुप्त हुआ।

प्रात:कालीन सैर स्वास्थ्य-निर्माण करने का सर्वोत्तम उपाय है। यह सस्ता भी है, मीठा भी। जिसके लिए न डॉक्टर को पैसे देने पड़ते हैं और न उसकी कड़वी दवाइयों का सेवन करना पड़ता है। स्वास्थ्य के लिए प्रात:कालीन भ्रमण की उपयोगिता पर सुप्रसिद्ध कवि श्री आरसीप्रसादसिंह 'आरसी' का निम्नलिखित पद्य उल्लेखनीय है—

घूम रहा था मैदान में एक दिवस मैं प्रात:काल।
तब तक फैला था न तरणि की अरुण-करुण किरणों का जाल।
प्रकृति-परी बोली मुस्काकर मुझसे अरे पथिक नादान।
जाते हो इस ओर कहाँ तुम नंगे पैर और मुख-म्लान।
मैंने कहा यहीं पर मेरा स्वास्थ्य खो गया है अनजान।
करता हूँ मैं उसी का इस पथ में सखि! अनुसन्धान॥

कवि ने कितने सुन्दर ढंग से इस तथ्य को प्रकट किया है कि प्रात:कालीन भ्रमण से मनुष्य किसी भी कारण खोए हुए स्वास्थ्य को पुन: प्राप्त कर सकता है।

आइए! आज से प्रण करें कि हम प्रात:कालीन सैर अवश्य करेंगे, अवश्य करेंगे।

(211) नदी-तट पर भ्रमण

संकेत बिंदु—(1) मस्तिष्क और शरीर के लिए लाभकारी (2) कवि कुँवर नारायण की दृष्टि में (3) प्रात:काल में नदी का दृश्य (4) हर आयु वर्ग के सैर करने वाले (5) मन में स्फूर्ति और स्वस्थ तन।

नदी का तट अत्यन्त मनोहर और आनन्द प्रद होता है। नदी के मध्य बहती हुई जल-धारा तो सुन्दर लगती ही है, उसके दोनों तट पर खड़ी वृक्षावली और उसके रेतीले तट भी कम सुन्दर नहीं होते। इसी कारण नदी-तट पर भ्रमण से मन प्रसन्न होता है, शरीर चुस्ती का अनुभव करता है, नेत्र हरियाली का आनन्द उठाते हैं, और जल-क्रीडा को देखते हुए अतृप्त ही रहते हैं। थकने पर पानी में पैर लटका कर बैठने से थकान दूर हो जाती है और फिर मन कहता है नदी-तट के भ्रमण का और आनन्द लूटें।

नदी-तट के वृक्षों, पौधों, क्यारियों की हरियाली के मध्य भ्रमण करना मानव और प्रकृति का सुन्दर समागम है। नंगे पैर घूमना स्वास्थ्य के लिए हितकारी है। इससे मस्तिष्क सम्बन्धी विकार दूर हो जाते हैं, मस्तिष्क सबल बनता है। भ्रमण के समय चाल जरा तेज रखिए, फिर लूटिए ऑक्सीजन (प्राण वायु) का आनन्द। उधर वृक्षावली सूर्य का स्वागत करने के लिए पाणि-पल्लव पसार रही हो, उन पर बैठे विहगवृन्द किल्लोल कर रहे हों, तो लगता है भ्रमण के साथ-साथ माँ सरस्वती की वीणा की झंकार सुनाई पड़ रही है।

एक ओर नदी, दूसरी ओर वृक्षों-लता-पादपों की हरियाली, तीसरी ओर मन्द मन्द बहती शीतल पवन। शीतल, सुगन्धित मन्द पवन कभी-वृक्षों से अठखेलियाँ करती और कभी लाज भरी कलिकाओं का घूँघट उठाकर हठात् उनका मुख झाँक जाती है। कभी-कभी शिथिल पत्रांक में सुप्त कलिकाओं को झकझोरती है।

कवि कुँवर नारायण तो इसकी पावनता पर इतने मुग्ध हैं कि उसे 'माँ सरीखी' मानते हैं—

नदी तट से लौटती गंगा नहाकर
सुवासित भीगी हवाएं
सदा पावन / माँ सरीखी। *(कविता : सवेरे-सवेरे)*

यह पवन जब भ्रमण कर्ता के शरीर से टकराती है, तो उसका हृदय बल्लियों उछलता है, मन आत्मानन्द की अनुभूति करता है। जो चाहता है चाल धीमी करके धीमे बहती वायु का धीमे-धीमे आलिंगन किया जाए, ताकि इससे श्वासोच्छ्वास क्रिया से रक्त शुद्ध हो, फेफड़ों को बल मिले, शरीर नीरोग हो, पेट अजीर्णता का शिकार न बने।

सूर्य उदय हो रहा है। उदित होते सूर्य की किरणों से नदी-तट की रेत भी सतरंगिणी-सी दिखाई देती है। बालू की ऐसी रेखाएँ बनी हुई हैं, जो साँपों जैसी लगती हैं। बाल-रवि के प्रतिबिम्ब को पानी में लोट-पोट कर नहाता देखकर भ्रमण करने वाले रुक जाते हैं। जल पर बिखरी लाल-पीली किरणें ऐसी प्रतीत होती हैं मानो पानी में सोना बह रहा हो। वह दृश्य देखते मन नहीं भरता, निरन्तर आगे बढ़ने की लालसा बनी रहती है।

नदी-तट पर भ्रमण हो रहा है। धोती-कुरता पहने नगर के व्यापारी जोर-जोर से बहस करते घूम रहे हैं। बुड्ढों की टोली हँसी-मजाक करती शनैः-शनैः बढ़ रही है। नवयुवक-नवयुवतियों के झुंड तेजी से नदी-तट को पार कर जाना चाहते हैं। कुछ दौड़ लगाकर व्यायाम में भ्रमण का आनन्द ले रहे हैं, तो कुछ लोग इतनी तेजी से चल रहे हैं, मानो किसी प्रिय को पकड़ने के लिए दौड़ लगा रहे हों।

यह लीजिए, भ्रमणार्थ बालकों की बन्दर-टोली चली आ रही है। बालक और सीधे चलें तो इन्हें बन्दर कौन कहे ? मछरना, शरारत करना, शोर मचाना, मार्ग को पूर्ण रूपेण घेर कर चलना इनकी आदत में शुमार है। नदी में पत्थर फेंक दें, बड़े बुजुर्गों की टोली को चीर दें, किसी की नकल उतार दें, यह सब इनके लिए क्षम्य है। ये भ्रमण में व्यायाम का सही आनन्द लेते हैं।

जरा सैर का शौक देखिए। ये बूढ़े-बुढ़िया ७०-७२ के लगभग होंगे, पर छड़ी टेक-टेक कर मस्तानी चाल का मजा लूट रहे हैं। दूसरी ओर अधरंग का मारा अधेड़ चींटी की चाल चल रहा है, पर मन में उत्साह है, तन में स्फूर्ति है। लीजिए, गृहणियाँ भी परदे से बाहर निकल आईं ठंडी हवा का झोंका लेने। पल्लू सिर से उतर गया है, तो कोई बात नहीं, केश-विन्यास शिथिल पड़ गया है, तो कोई चिन्ता नहीं। चिन्ता को तो ये घर पर छोड़कर मौज-मस्ती लेने तो आई हैं, नदी-तट पर।

नदी-तट के भ्रमण में भ्रमण का ही आनन्द लीजिए। भ्रमण में सँपेरे, कंजड़, भगवा वस्त्रधारी भिखारी हाथ पसारे मिलेंगे। जटा-जूटधारी विभूति-अलंकृत 'शंकर बम भोला' के उद्घोषी आशीर्वचन की झड़ी लगाते हुए मिलेंगे। भारत की दरिद्रता के प्रतीक भिखमंगे झोली पसारे दिखाई देंगे। आप मुँह न बनाइए, नाक न सिकोड़िये। चुपचाप अनदेखी करके निकल जाइए। जहाँ इनके चक्कर में पड़े, वहीं भ्रमण का आनन्द समाप्त हुआ समझिये।

नदी-तट का एक लाभ स्वतः आपको मिल जाएगा। नदी-तट के मंदिरों में जगत्-नियन्ता को माथा टेककर पुण्य कमा लीजिए। कहीं 'ओम् जय जगदीश हरे' की आरती हो रही है, चाहे तो रुक कर मन की शांति ले लीजिए, अन्यथा भ्रमण करते-करते श्रवणेन्द्रिय को खुला रखिए। वाणी से स्वयमेव आरती के बोल निकलने लगेंगे। भ्रमण में मन की शांति और चित्त की प्रसन्नता एवं आनन्द का लाभ।

नदी-तट का भ्रमण न केवल तन में स्फूर्ति भरता है, उसे स्वस्थ रखता है, अपितु मन-मस्तिष्क को शान्त रखकर मनोबल बढ़ाता है। नदी-जल का नर्तन और तट के पेड़-पौधे अपनी मस्ती से सुगन्धित पवन द्वारा हृदय को शुद्ध रक्त प्रदान कर बलवान् बनाते हैं। नदी-तट के पूजा-स्थल भ्रमणार्थी को परमपिता परमेश्वर का स्मरण करवा कर पावन कर्मों को करने का संदेश सुना जाते हैं। भ्रमणान्तर शीतल जल से स्नान मानव को तन, मन से स्वच्छ करके दैनन्दिन जीवन में जुटने का साहस प्रदान करता है।

(212) बाढ़ : एक प्रकृति-प्रकोप

संकेत बिंदु—(1) जल का विनाशकारी रूप (2) बाढ़ के लिए उत्तरदायी कारण (3) वनों का कटाव (4) भयंकरता का सूचक (5) प्रकृति का अभिशाप।

बाढ़ अर्थात् जल-प्रलय। जल का विनाशकारी रूप। अतिवृष्टि के कारण पृथ्वी के जल सोखने की शक्ति जब समाप्त हो जाती है तो उसकी परिणति बाढ़ में होती है। अति वर्षा का जल पर्वतों की करोड़ों टन मिट्टी बहाकर नदियों में ले जाता है, तो जल-प्रलय होती है। बाँधों (डैम) में संग्रहीत जल आवश्यकता से अधिक छोड़ दिया जाता है तो नदियों में बाढ़ आ जाती है। नदी-नाले, जलाशय, सरोवरों का जल अपने तट-बन्धनों को तोड़ बस्तियों की गलियों, कूचों, सड़कों, खेत-खलिहानों में पहुँचने लगता है। पानी की निकासी के अभाव में जल इकट्ठा होने लगता है।

बाढ़ का प्रमुख कारण प्रकृति-प्रकोप है। अति वृष्टि यदि बाढ़ का कारण है तो बादल फटने से भी बाढ़ आती है। बादल फटने से तो कुछ ही मिनटों में तबाही बरप पड़ती है। मानव को बचाव का भी समय नहीं मिल पाता। फिर, बादले फटने की प्राकृतिक घटना की पूर्व संभावना मौसम विभाग भी नहीं लगा पाता।

पर्वतीय क्षेत्रों में पर्यटन-विकास के लिए सड़कें और भव्य भवनों का निर्माण भी बाढ़ के लिए उत्तरदायी है। सड़क और भवन-निर्माण के लिए पर्वत विखंडित किए जाते हैं।

उनका मलवा समतल में आकर गिरता है इससे उतनी भूमि की जल-चूषण क्षमता नष्ट हो जाती है इससे पहाड़ों में भूस्खलन की गति तेज हो जाती है। इस निरन्तरता के क्रम में प्रतिवर्ष मलवा गिरने की प्रवृत्ति बनी रहती है। यही मलवा पहाड़ी ढलानों की हरियाली नष्ट करते हुए जल-निकासी मार्गों को भी अवरुद्ध करता हुआ, अन्ततोगत्वा बड़ी और विशाल नदियों के तल को ऊँचा उठा कर बाढ़ का मार्ग प्रशस्त करता है। असम की बाढ़ भूस्थल से ब्रह्मपुत्र नदी के तल का ऊँचा उठना ही तो है।

विकास के नाम पर बने विशाल बाँध भी बाढ़ का कारण हैं। बाँध बाढ़ के रक्षक हैं, किन्तु जब ये भक्षक बनते हैं तो बाड़ ही खेत को खाने वाला दृश्य उपस्थित कर देती है। सिंचाई और बिजली के लिए बनाए जाने वाले बाँध वर्षा की अनिश्चितता के कारण अपनी आवश्यकतानुसार जल से भरे रहते हैं, किन्तु इनकी भी अपनी क्षमता है। अति वर्षा के कारण जब इनकी संग्रह-क्षमता समाप्त हो जाती है तो बाँध के पानी की निकासी जरूरी होती है, अन्यथा बाँध के समीपस्थ हजारों ग्राम-नगर जलमग्न हो जाएं। बाँध को खतरे से मुक्त रखने के लिए जल छोड़ा जाता है, जिसमे नदियों में बाढ़ आ जाती है। पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, उत्तर प्रदेश की नदियों की प्राय: बाढ़ भाखड़ा बाँध से जल छोड़े जाने का दुष्परिणाम है।

पृथ्वी के वनस्पति कवच को उतारना भी बाढ़ का कारण है। वन के वृक्ष पानी के व्यर्थ बहने को रोकते हैं। भूमि पर गिरे उनके फूल-पत्ते ऊपर की मिट्टी को पानी के साथ बह जाने से रोकते हैं। जब वे नहीं रहे तो पानी के बहाव और मिट्टी को कौन रोकेगा? बाढ़ का रास्ता साफ हुआ। श्री अशोक सिंह लिखते हैं, 'तिब्बत पर चीन द्वारा जबरदस्ती आधिपत्य कर लिए जाने के बाद ब्रह्मपुत्र के जल ग्रहण क्षेत्र में (जिसका बहुत बड़ा भाग पूर्वी तिब्बत में है), जंगलों की बेरहमी से हजामत हुई। ब्रह्मपुत्र नदी का तल भूकंप के कारण पहले ही ऊँचा हो गया था। जंगलों की कटाई ने उसका और भी बुरा हाल कर दिया। अरुणाचल प्रदेश में भी पेड़ों की कटाई बीते कुछ वर्षों में बहुत अधिक तीव्र हो चली है। नेपाल में भी वन विनाश चरम सीमा पर पहुँचा हुआ है। यही स्थिति भूटान की भी है। जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश और उत्तर प्रदेश के पर्वतीय क्षेत्रों में पहले ही वनों की कटाई के लिए कीर्तिमान स्थापित हो चुके हैं।

बाढ़ का जल भीषण शोर मचाता ऐसे बह उठता है मानो कोई महानदी अपनी सखी से मिलने इधर आ रही हो, और जब दोनों मिलीं, तब पानी का पाट चौड़ा, विराट् और विस्तृत हो गया। उस समय जल-शक्ति का विस्तार और विस्तार की शक्ति अपराजेय होती है।

बाढ़ भयंकरता का सूचक है। बाढ़ का दृश्य अति बीभत्स होता है, कारुणिक होता हैं, भयप्रद होता है। विनाशकारी जल-प्रलय मनुष्य की चिरसंचित और अर्जित जीवनोपयोगी सामग्री को नष्ट कर देता है। खेती और खेत को बरबाद कर देता है। मानव और पशुधन को बहा ले जाता है। आवागमन को अवरुद्ध कर देता है। सड़कों को तोड़

देता है। विद्युत्, पेय-जल और दूरसंचार व्यवस्था (टेलीफोन आदि) को नष्ट कर देता है। मकान टूटकर गिर जाते हैं। घर-बेघर, बेसहारा प्राणी प्रभु का स्मरण करते हुए 'त्राहिमाम् त्राहिमाम्' चिल्लाते हैं।

8-10 फुट तक घरों में घुसा पानी निकलने का नाम ही नहीं लेता। खाद्य-पदार्थों, बिछाने, ओढ़ने और पहनने के कपड़ों, अध्ययन की पुस्तकों, अलंकारों, आभूषणों को नष्ट कर देता है। निरीह मानव पेय-जल, भोजन, वस्त्र आदि के अभाव में और अग्नि की असुविधा से पीड़ित हो, सहायता की खोज करता है।

जल प्रलय होने पर दूर-दूर तक जल-ही-जल दिखाई देता है। मक्खी-मच्छरों का साम्राज्य जल-क्रीडा कर रहा होता है। बिजली के स्तम्भ और सड़क के किनारे खड़े वृक्ष नतमस्तक होकर जल-प्रलय के सम्मुख आत्म-समर्पण करते दिखाई देते हैं। यातायात के माध्यम कार, बस, ट्रक बाढ़ के सम्मुख आने में भी कतराते हैं, टक्कर लेना तो दूर की बात है।

बाढ़ तो बाढ़, उसके अवशेष उससे भी बुरे हैं। बाढ़ आने से तो मनुष्य विपदा में फँसता ही है, किन्तु बाढ़ उतरने के बाद अनेक मास तक सामान्य से लेकर घातक बीमारियों का ग्रास बनता है। मलेरिया, टाइफाइड, हैजा, दस्त आदि अनेक संक्रामक रोग उसे घेर लेते हैं।

बाढ़ प्रकृति का अभिशाप है। मनुष्य की अकर्मण्यता और अनैतिकता उसकी शिकार हैं। बाढ़ प्रकृति-विजय के दम्भी मानव को चुनौती है। प्रकृति और प्रभु का स्मरण करवाने का बहाना है। पाश्चात्य सभ्यता और नास्तिकता की ओर बढ़ते भारतीयों की भारतीय-संस्कृति और सभ्यता की शरणागति स्वीकार करने का निमंत्रण है।

भारत में आने वाली प्रत्येक बाढ़ राज्य-सरकारों की बाढ़ रोकने के प्रति अकर्मण्यता अथवा उदासीनता का प्रमाण है। राजनीतिज्ञों द्वारा वनों को बरबाद करने के पापों का कुपरिणाम है। बाढ़-पीड़ितों की सहायतार्थ दिए जाने वाले पदार्थों और धन में से अपना हिस्सा काटना अधिकारियों की अनैतिकता का दस्तावेज है। बाढ़ की हालत का जायजा लेने के नाम पर मंत्री-मुख्यमंत्री की वायुयान/हैलीकाफ्टर की सैर, सर्किट हाउस में मंत्री-मुख्यमंत्री तथा अनेक स्टॉफ का खान-पान खर्च सब राहत-कोश से खर्च होता है। दूसरी ओर बाढ़-पीड़ितों को खाद्यान्न पर आया खर्च वास्तविक खर्च से कई गुना अधिक दिखाया जाता है।

(213) भूकम्प : एक नैसर्गिक क्षोभ

संकेत बिंदु—(1) भूकम्प की उत्पत्ति (2) प्रकृति में परिवर्तन नैसर्गिक (3) प्रकृति का विनाशक ताण्डव (4) भूकम्प प्रकृति का क्षोभ नहीं, वरदान भी (5) उपसंहार।

जब पृथ्वी की सतह अचानक हिलती या कंपित हो उठती है, तो उसे भूकंप कहते हैं। गगनभेदी गड़गड़ाहट और धरा के ऊपरी सतह के कंपन के साथ प्रकृति सर्वनाश करने

वाला जो प्रकोप प्रकट करती है, उसी को भूकंप की संज्ञा देते हैं। उत्तरोत्तर संचित हो रहे विवर्तनिक प्रतिबलों से उत्पन्न तनाव जब भू के लिए असह्य हो जाते हैं तो दरारें खिल जाती हैं, धड़धड़ा कर भूपटल फट जाता है। भूपटल का फटना भूकंप का लक्षण है। ज्वालामुखी के उद्गार भी भूकंप का कारण बनते हैं। भूमि की चट्टानों के असंतुलन से भी भूचाल आ सकते हैं।

भूकंप की उत्पत्ति यह सिद्ध करती है कि यह मानवीय शक्ति की उद्भावना नहीं हो सकती। यह निसर्ग की देन है। सृष्टि के एकमात्र उत्पादन शक्ति की करामत है। मानव की विज्ञान-बुद्धि जब बर्दाश्त के बाहर प्रकृति से छेड़छाड़ करती है तो प्रकृति भूकंप के रूप में अपना क्षोभ व्यक्त करती है। प्रकृति का माया रूपी हृदय जब डोलता है तो वह अपनी चंचलता (प्रकोप) प्रकट करता है। उसकी चंचलता भूकंप, भूचाल या अर्थक्वेक रूप में प्रकट होती है।

प्रकृति भी परिवर्तन-प्रेमी है, क्योंकि वह क्रियाशील है। जिस प्रकार जीवन में परिवर्तन स्वाभाविक है, उसी प्रकार प्रकृति में परिवर्तन भी नैसर्गिक है। प्रकृति जब प्रसन्नवदना होती है तो नाना रूपों में सौन्दर्य प्रकट कर मानव को आकर्षित करती है और जब रुष्ट होती है तो जल-प्लावन, ज्वालामुखी विस्फोट, आकाशीय विद्युत् प्रताड़न और भूकम्प के रूप में अपना विनाशकारी रूप दर्शाकर सृष्टि को भयभीत और प्रकंपित करती है। अन्तर इतना ही है कि प्रकृति की प्रसन्नता दीर्घ समय तक रहती है और प्रकोप क्षणिक रहता है।

प्रश्न उठता है कि प्रकृति विज्ञान-प्रेमियों से रुष्ट क्यों होती है, क्यों उसे अपना प्रकोप प्रकट करना पड़ता है? आज पहाड़ों में सड़कों का जाल बिछाने के लिए उत्खनन कार्यों तथा पत्थर निकासी ने पहाड़ों को बौना बना दिया है। बारूदी धमाकों ने पहाड़ों को कमजोर कर दिया, उनमें दरारें डाल दीं। चट्टानें फट गईं। परिणामतः भूस्खलन के संकट को आमंत्रित कर दिया।

जिस प्रकार जल-प्रलय प्रकृति का विनाशक ताण्डव है, उसी प्रकार भूकंप उससे भी भयानक विनाशक प्रक्षोभ है। मौसम-विज्ञानी समुद्री तूफान की सूचना दे सकते हैं, पर भूकंप के आगमन की सूचना पाने में वैज्ञानिक अशक्त हैं। दो-चार सेकिण्डों के भूकम्प से छोटे भवन, दीर्घ प्रासाद और उच्च अट्टालिकाएँ-काँपती हुई पृथ्वी के चरण चूमने लगती हैं। मनुष्य जैसे का तैसा, जहाँ का तहाँ भूकम्प के झटके की चपेट में आकर परलोक को गमन करता है या घायल होकर चीख-पुकार मचाता है। पशुओं को रंभाने का अवसर नहीं मिलता। गाँव के गाँव नष्ट हो जाते हैं। शवों के ढेर लग जाते हैं। लोगों की जीवन भर की गाढ़ी कमाई और सम्पदा क्षणभर में नष्ट हो जाती है। चीख-पुकार से आहत नर-नारी, आबाल वृद्ध आसमान सिर पर उठा लेते हैं। 20 अक्तूबर, 1991 को उत्तरकाशी में आए भूकम्प से 15,000 से अधिक व्यक्तियों की मृत्यु हुई और सहस्रों लोग घायल हुए। दूसरी ओर, 30 अक्तूबर, 1993 के लातूर एवं उस्मानाबाद क्षेत्रों के विनाशकारी भूकम्प का कहर 81 गाँवों पर बरपा जिसमें 25 से ज्यादा गाँवों ने श्मशान की शांति ओढ़ ली और 12 सहस्र

व्यक्ति क्षणभर में जीवन से हाथ धो बैठे। इतना ही नहीं लातूर से 500 किलोमीटर दूर विदर्भ के क्षेत्रों में भी अनेक भवनों में दरारें पड़ गईं।

भूकम्प का प्रभाव नदियों पर भी पड़ता है। पहाड़ों के नीचे धँसने से, चट्टानें, पत्थर, ढीली मिट्टी, गाद जल-धाराओं में मिलने से नदी का प्रवाह अवरुद्ध हो जाता है। नदी का प्रवाह अवरुद्ध होने और पानी जमा होने से वह स्थान झील के रूप में परिणत हो जाता है। जलमग्न घर, भवन भूकम्प के प्रकोप से बचकर भी प्रकृति-प्रकोप की चपेट में आ जाते हैं। 1978 में भूकम्प के कारण भूस्खलन से गंगोत्री मार्ग पर 500 मीटर ऊँचा मिट्टी पत्थर का ढेर लग गया। गंगा-जल अवरुद्ध हो गया। फलतः झील बन गई। प्रशासन चेता। बम विस्फोट से झील तोड़ी। यदि मनेरी बाँध द्वारा विलोथ में गंगा पर लोहे के पुल का दृढ़ आधार न होता, तो संभवतः उत्तरकाशी डूब जाती। फिर भी, पहाड़ की चोटी से मकानों की जल-समाधि का खेल स्पष्ट दिखाई दे रहा था।

भूकंप पृथ्वी के किसी भी स्थान पर आ सकते हैं, लेकिन कुछ क्षेत्रों में भूचाल प्रायः थोड़े-थोड़े समय के बाद आते ही रहते हैं। इन क्षेत्रों में पृथ्वी की सतह अपेक्षाकृत कमजोर होती है। अधिकांश भूचालों का उद्गम भूपटल में 60 कि.मी. से कम गहराई पर अवस्थित रहता है। भारत में अधिकांश भूकम्प हिमालय क्षेत्र तथा गंगा-ब्रह्मपुत्र की घाटी में ही आते हैं। भारत के दक्षिण के पठार में भी कुछ भूकम्प आए हैं। यहाँ का दिसम्बर, 1967 का कोयना नगर का भूकंप आज भी बिहारवासियों के रोंगटे खड़े कर देता है, क्योंकि पूरी बस्ती ही जमीन में धँस गई थी।

भूकम्प केवल धरा में ही आते हों, ऐसा नहीं। मनुष्य की जन्मजात अविकारी चारित्रिक मूलभूत विशेषताओं (जिसे 'प्रकृति' कहा जाता है) में जब भूकम्प आता है तो मनुष्य का तन-मन हिल जाता है। वह किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है। निराशा चहुँ ओर से घेर कर उसे नारकीय जीवन की ओर धकेल देती है। इस प्रकार मानवीय प्रकृति का भूचाल उसे मरने भी नहीं देता और जीवन जीने योग्य भी उसे नहीं छोड़ता। यह भूचाल भी अल्पायु होता है, दीर्घजीवी नहीं।

भूकम्प का प्राकृतिक प्रकोप अपनी पीड़ा के अमिट चिह्न धरा के चेहरे पर छोड़ जाता है। अपने से प्रभावित प्राणी में भी आतंक के ऐसे अवशेष छोड़ जाता है, जो स्वप्न में भी उसे आतंकित कर जाते हैं। पर प्रत्येक ध्वंस नए निर्माण का संदेश लेकर आता है। प्रकृति प्रकोप से धरा का झुलसा चेहरा, जब नव-शृंगार कर उपस्थित होता है तो मानवीय-प्रकृति सृष्टि-प्रकृति को चिढ़ा रही होती है। प्रकृति पर मानव की विजय पताका फहरा रही होती है।

(214) प्रकृति और हम/ प्रकृति और मनुष्य (हम)

संकेत बिंदु—मनुष्य प्राकृतिक शक्ति का संवाहक (2) कवियों की दृष्टि में प्रकृति (3) मनुष्य के लिए आनंद का साधन (4) मानव द्वारा प्रदूषण (5) उपसंहार।

प्रकृति इस भौतिक जगत् की उत्पत्ति का मूल कारण है तो मनुष्य इस भौतिक जगत् का एक महत्त्वपूर्ण प्राणी। त्रिगुणात्मक शक्ति प्रकृति है तो मनुष्य उस शक्ति का संवाहक है। शुद्धाद्वैत के मतानुसार प्रकृति यदि भगवान् का एक रूप है तो मनुष्य में भगवान् का वास है। महाभारत के अनुसार पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि तथा अहंकार (अपरा) प्रकृति के भेद हैं तो इन आठों भेदों का साक्षात् रूप चेतन प्राणी मनुष्य है। अत: प्रकृति के बिना मनुष्य सौंदर्यहीन है और मनुष्य के बिना प्रकृति का कोई महत्त्व नहीं। ये एक-दूसरे के पूरक हैं।

प्रकृति की छटा का वर्णन करते हुए प्रसाद जी लिखते हैं, 'अगाध-जल के तल में, कैसी अद्‌भुत रचना, कैसा आश्चर्य। हिमपूरित तराइयों में तथा हिमावृत्त चोटियों पर अद्‌भुत रंग के नील, पीत, ललित कुसुम सहित लताओं का, शीतल वायु के झोंके से दोलायमान होना, पुन: प्रात: सूर्य की किरणों का छायाभास पड़ने से हिमावृत्त चोटियों का इन्द्रधनुष-सा रंग पाना, कैसा सुन्दर जान पड़ता है? शिखरों पर वेग से बहती नदियाँ, उनके प्रवाह से शिला-खण्डों का बनाव और उसकी अद्‌भुत स्थिति देखकर, मनुष्य की योग्यता और बुद्धि हतप्रभ रह गई।'

मनुष्य प्रकृति के सौन्दर्य और प्रेम में खो गया। सैलानी बन उसने प्रकृति का आनन्द लूटा। वैज्ञानिक बनकर उसके गर्भ से अमृत प्राप्त किया। व्यापारी बन उसके खनिज-पदार्थों से वनस्पतियों और काष्ठों को बेचकर समृद्ध हुआ। चिकित्सक बनकर उसने जीवन-रक्षक औषधियाँ ढूँढी।

महाकवि प्रसाद ने प्रकृति में अतृप्ति-अवसाद, करुणा, वेदना, रोमांच और रहस्य भावना के दर्शन किए और वह कवि के लिए संवेदनशील बनकर आई।

'रात' को प्रिय के पास जाती हुई नायिका समझकर प्रसाद कहते हैं—

पगली! हाँ संभाल ले कैसे छूटा पड़ा तेरा अंचल।
देख बिखरती है मणिराजी, अरी उठा बेसुध चंचल।

पंत तो प्रकृति में इतना खो गए कि नारी का सौन्दर्य भी उन्हें आकृष्ट न कर सका—

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया, तोड़ प्रकृति से भी माया।
बाले! तेरे बाल जाल में, कैसे उलझा दूँ लोचन?

महादेवी तो प्रकृति में सर्वत्र अलौकिक प्रिय के दर्शन करती हैं—

मुस्काता संकेत भरा नभ, आज क्या प्रिय आने वाले हैं?

प्रकृति के समयानुकूल परिवर्तन में मानव तन-मन को सुख शांति तथा ऊर्जा प्रदान

की। षड्-ऋतु (वसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त और शिशिर) के अद्‌भुत परिवर्तन-चक्र को देखकर 'प्रसाद' के रूप में मनुष्य का विस्मित मन बोल उठा, 'हे प्रकृति! यह सब तुम्हारी आश्चर्यजनक लीला। इससे तुम्हारे अनन्त वर्ण रंजित मनोहर रूप को देखकर कौन आश्चर्यचकित नहीं हो जाता ?'

प्रकृति मनुष्य के लिए आनन्द का साधन बनी, क्रीडा का स्थल बनी, स्वास्थ्यवर्धन और ज्ञानवर्धन का कारण बनी। ग्रीष्म में मनुष्य प्रकृति की गोद में (पर्वतों में) स्वास्थ्य लाभ और चित्त को रंजित करने पहुँचा। चाँदनी रात में नदी या सागर के जल में नौका विहार का आनन्द लिया तो बर्फ पर स्केटिंग की क्रीडा का आनन्द लिया। पहाड़ों पर चढ़ना, समुद्र की तह तक पहुँचना, नभ में अपने उपग्रह की ध्वजा फहराना, अन्य ग्रहों से परिचय बढ़ाना, मानव के प्रकृति पर विजय के शौक बने।

मानव ने प्रकृति से मित्रता निभाई। उसके सौन्दर्य को द्विगुणित करने का प्रयास किया। उसकी मोहकता को बनाए रखने की चेष्टा की। उसकी शोभा वृद्धि की कोशिश की। प्रकृति ने भी मानव को अपना मूर्तरूप प्रदान किया। वनस्पति, जीव-जन्तु, जल स्रोत और वायुमंडल का संतुलित चक्र प्रदान कर स्वस्थ और सुवासित पर्यावरण दिया। सस्यश्यामला भूमि दी, जीवन रक्षक औषधियों के लिए जड़ी-बूटियाँ दीं। ईंधन दिया, कागज दिया, बिजली दी, खनिजपदार्थ दिए। मानव के सुख और ऐश्वर्य की निधि मानव चरणों में मुक्तहस्त से लुटाई।

लालची मानव ने प्रकृति के कोश को लूटने के लिए प्रकृति से शत्रुता करनी शुरू कर दी। उसके सस्यश्यामल खेत नष्ट किए, वन-उपवन काटे, हरियाली उजाड़ी, पहाड़ों को तोड़ा, नदियों को मरोड़ा। हरे-भरे खेतों का स्थान लिया भव्य-भवनों ने। अमूल्य-बहुमूल्य पदार्थों के कोश वनों का स्थान लिया औद्योगिक संस्थानों ने। सुगंधित वायुमंडल को दूषित किया, विषैली गैसों ने, जल को अपवित्र किया कारखानों से निकले रसायनों ने।

एक जगह आकर प्रकृति और मनुष्य का अर्ध-नारीश्वर रूप प्रकट होता है। मनुष्य का वह चारित्रिक मूल-भूत गुण, तत्त्व या विशेषता, जो बहुत कुछ जन्मजात और प्रायः अविकारी होती है, प्रकृति कहलाती है। इसी को 'स्वभाव' भी कहते हैं। जैसे परशुराम प्रकृति से ही क्रोधी थे। युधिष्ठिर प्रकृति से ही धर्म-भीरु थे। यहाँ आकर मानव-प्रकृति में मनुष्य की उन सभी आकांक्षाओं, प्रवृत्तियों, वासनाओं आदि का अन्तर्भाव होता है, जिसके फलस्वरूप उसका चरित्र अथवा जीवन बनता-बिगड़ता है। इस प्रकार प्रकृति को मनुष्य से तथा मनुष्य को प्रकृति से अलग नहीं किया जा सकता।

आध्यात्मिक क्षेत्र में, विशेषतः वेदान्त में प्रकृति को परमात्मा को मूर्तिमती इच्छा के रूप में माना गया है और इसे 'माया' का रूप कहा गया है। साधारण रूप में माया को सांसारिक-भ्रम और अज्ञानता का ही नामान्तर माना माता है। मनुष्य सांसारिक प्राणी है। वह संसार के मिथ्यात्व और भ्रमात्मकताओं का शिकार है। इस प्रकार माया रूपी प्रकृति और श्रेष्ठ प्राणी रूपी मनुष्य का संबंध जल और मीन का-सा है।

प्रकृति अपने उत्पत्ति रूप में अनादि, अनन्त और नित्य है तो मनुष्य प्रकृति के चैतन्य रूप में शाश्वत और अखंड है। प्रकृति मनुष्य के अन्तर्भाव का दर्पण है तो मनुष्य प्रकृति का आजीवन बन्दी है। प्रकृति और मनुष्य का संबंध रहस्यमय और कल्पनातीत है।

(215) प्रकृति और विज्ञान

संकेत बिंदु—(1) प्रकृति विविध रूप में परमात्मा की कला (2) व्यवस्थित ज्ञान का नाम विज्ञान और प्रकृति बहुरूपा (3) विज्ञान द्वारा प्रकृति का दोहन-मंथन (4) पेड़-पौधे प्रकृति की आत्मा (5) उपसंहार।

प्रकृति सत्य की अधिष्ठात्री देवी है तो विज्ञान सत्य का उपासक। प्रकृति विविध रूप में परमात्मा की कला है तो विज्ञान उस कला के दर्शन की विधि है। प्रकृति परिवर्तनशील है तो विज्ञान भी नदी के प्रवाह के समान परिवर्तनशील और प्रवहमान है। प्रकृति आत्मा की शक्ति है तो विज्ञान आत्मा का अनुसन्धानात्मक प्रयोग।

विज्ञान और प्रकृति जब तक सखा रहे विज्ञान प्रकृति को संवारता रहा, सजाता रहा। उसके रूप सौन्दर्य में निखार लाता रहा। जब से विज्ञान और प्रकृति में 3-6 का संबंध बना, विज्ञान प्रकृति को नष्ट करने पर तुल गया। हक्सले ने सत्य ही कहा है, 'विज्ञान की बड़ी त्रासदी है, सुन्दर परिकल्पना की एक कुरूप तथ्य से हत्या।' (The greatest tragedy of Science—the slaying of a beautiful hypothesis by an ugly fact.)

प्रकृति बहुरूपा है, विशाल है, विस्तृत है, अनन्त ब्रह्मांड में व्याप्त है। द्वीप, महाद्वीप, प्रायद्वीप, समुद्र, नदी, निर्झर, वृक्ष-लता, पशु-पक्षी, आकाश-पाताल, सूर्य-चन्द्र, वन-बाग तथा सम्पूर्ण जल-स्थल प्रकृति की सौंदर्यपूर्ण चित्रकला है। विज्ञान भी अनेक शाखाओं-उपशाखाओं में विभक्त होकर अंशुमाली भगवान् का-सा दृप्त तेज प्रकट कर रहा है। रसायन-विज्ञान, भौतिक-विज्ञान, जीव-विज्ञान, वनस्पति-विज्ञान, कृषि-विज्ञान, समुद्र-विज्ञान, अंतरिक्ष-विज्ञान आदि द्वारा महाबली विज्ञान प्रकृति के रहस्यों की खोज में संलग्न है।

व्यवस्थित ज्ञान का नाम है विज्ञान। उसने प्रकृति के मनमौजीपन पर अंकुश लगाया। प्रमाद को काबू किया। उच्छृखंलता को रोका। अपरिमित शक्ति-प्रदर्शन को प्रतिबंधित किया। प्रकृति के क्रूर रूप जल-प्रलय आदि को यथासम्भव नियंत्रित किया। रेगिस्तानी विस्तार को रोका। वनों-उपवनों को कलात्मक सौंदर्य प्रदान किया। प्रकृति की प्यास बुझाई। नील गगन पर कृत्रिम अंतरिक्ष-ग्रहों के केन्द्र स्थापित किए। वन-पर्वतों से औषधियाँ निकालीं। जल को पेय बनाया। उससे विद्युत् शक्ति का निर्माण किया। आकाश और समुद्र की छाती पर मूँग दलते हुए व्योमयान और जलयान चलाए। वन-वृक्षों से कागज बनाया जिससे ज्ञान का प्रचार-प्रसार तो बढ़ा ही, उसका संरक्षण संभव हुआ। मनुष्यों को

भव्य भवनों में शरण दी। कहाँ तक गिनाएं प्रकृति पर विज्ञान के वरदान की कथा। यह तो अनन्त है।

विज्ञान ने प्रकृति का दोहन-मंथन किया। उससे प्राप्त अमृत मानव-कल्याणार्थ वितरित कर दिया। मंथन में अमृत के साथ विष की उत्पत्ति स्वाभाविक है। विज्ञान के अति मंथन ने अमृत को भी विष में परिणत कर दिया। वरदान भी अभिशाप बन गया। 'दि रोल ऑफ दि साइंटिस्ट' पर भाषण देते हुए इन्दिरा जी ने सच ही कहा था, 'वास्तव में विज्ञान ने जितनी समस्याएँ हल की हैं, उतनी ही नयी समस्याएँ खड़ी भी कर दी हैं।' इसलिए जार्ज बर्नाड शॉ का कथन है, 'विज्ञान सदैव गलत है। यह किसी भी समस्या को बिना अनेक नई समस्याएँ खड़ी किए हल नहीं करता।' (Science is always wrong. It never solves a problem without creating ten more.)

इस प्रकार विज्ञान प्रकृति का सखा नहीं शत्रु बन गया है। वह प्रकृति को अभिशप्त कर प्रकृति के जीवन को नष्ट करने पर तुला है। कारण, जीवन-मूल्यों की समझ उसमें है नहीं। प्रसाद जी ने 'इरावती' उपन्यास में ठीक ही कहा है, 'अनात्म के वातावरण में पला हुआ यह क्षणिक विज्ञान, उस शाश्वत सत्ता में संदेह करता है।' सेंट आगस्टीन के कथनानुसार, 'संदेह सच्ची मित्रता का विष है।' प्रकृति-सखा विज्ञान आज अपने विष से प्रकृति के शरीर को शव बनाने पर तुला है।

पेड़-पौधे प्रकृति की आत्मा हैं। प्रकृति मातृरूप में ऑक्सीजन (प्राण वायु) रूपी आहार प्रदान कर पर्यावरण को स्वस्थ रखती है। अपावन गैसों तथा कार्बन डाइऑक्साइड का भक्षण कर पर्यावरण को प्रदूषण से बचाती है। पेड़-पौधों की अंधाधुंध तथा बेरहमी से हो रही कटाई से पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है। तापमान बढ़ने से हिमखंड पिघलने लगे हैं। दूसरी ओर वृक्षों के अभाव में वर्षा जल रोकने की अक्षमता के कारण जल प्लावन का ताण्डव नृत्य होने लगा। पृथ्वी की ऊर्जा-शक्तिवर्द्धन के चक्कर में उपज की पौष्टिक शक्ति क्षीण कर दी। अब न गेहूँ में ताकत है न फलों में पहले जैसा स्वाद। खनिज पदार्थों की अत्यधिक खुदाई ने उसके कोष को खाली होने की नौबत तक पहुँचा दिया है। इस प्रकार प्रकृति ने जिस पावन पर्यावरण को रक्षाकवच के रूप में प्रदान किया था, वही पर्यावरण विज्ञान के प्रकृति पर बलात्कार से विष वमन करने लगा है।

आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रकृति को 'माया' रूप में जाना जाता है। साधारण रूप में माया को सांसारिक भ्रम और अज्ञानता का ही नामान्तर माना जाता है। विज्ञान इस मिथ्यात्व, भ्रम तथा अज्ञानता का विनाशक है। वह 'माया' के मायावी प्रपंच का आवरण हटा कर सत्य-पथ दर्शाता है।

वैसे, प्रकृति परमात्मा रूप है। परम तत्त्व कभी नष्ट नहीं होता। वृहदारण्यक उपनिषद् इसकी पुष्टि करता है—

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते॥

अर्थात् परमेष्ठिमण्डल परिपूर्ण है। उसके सानिध्य से सब कुछ पूर्ण हो जाता है। उसकी पूर्णता में इतनी व्यापकता है कि उससे पूर्ण निकाल लेने पर भी वह पूर्ण बना रहता है। इसलिए प्रकृति अजर है, अमर है। विज्ञान उसे पराजित नहीं कर सकता। प्रसाद की के शब्दों में वह सदा 'हँसती-सी, पहचानी-सी' दृष्टिगोचर होती रहेगी।

(216) वन-संरक्षण

संकेत बिंदु—(1) वन संरक्षण की आवश्यकता (2) वन, प्राकृतिक वस्तुओं की खान (3) प्राकृतिक सुषमा का घर (4) जलवायु संतुलन तथा प्रदूषण रोकथाम (5) वनों का कटाव मानव का विनाश।

अमूल्य प्राकृतिक सम्पदा के कोष तथा नैसर्गिक सुषमा के आगार अरण्यों को बनाए रखने के लिए वन-संरक्षण की परम आवश्यकता है। समय पर संतुलित वर्षा-जल का सदुपयोग तथा राष्ट्र को जलाभाव से बचाने के लिए वन-संरक्षण की आवश्यकता है। जलवायु में असामयिक परिवर्तन रोकने, पर्यावरण को संतुलित रखने तथा वायु को प्रदूषण से अप्रभावित रखने के लिए वन-संरक्षण की आवश्यकता है। वन्य-प्राणियों के जीवन तथा वनों से प्राप्त औद्योगिक कच्चे माल को बचाने के लिए वन-संरक्षण की आवश्यकता है। इतना ही नहीं सस्य-श्यामला भूमि को बंजर होने से बचाने, भू-क्षरण, पर्वत-स्खलन को रोकने तथा पर्यटकों को आकर्षित करने के लिए वन-संरक्षण की आवश्यकता है।

वन जड़ी-बूटियों की खान है, जिनसे जीवन-रक्षक औषधियाँ बनती हैं। वृक्षों की छाल और पत्तियाँ भी जड़ी-बूटी का काम देती हैं। इसी प्रकार मधु-मक्खियाँ फूलों के मकरन्द से शहद बनाती हैं, जिसका उपयोग दवाइयों में होता है तथा खाने के काम भी आता है।

वनों से लकड़ी मिलती है। लकड़ी न केवल ईंधन के काम आती है, अपितु भवन, निर्माण मेज-कुर्सी, खिड़की-द्वार आदि अनेक वस्तुओं के निर्माण और साज-सज्जा में इसका उपयोग होता है। वनों से बाँस, यूक्लिप्टस, फर की लकड़ी और घास मिलती है, जिनसे कागज बनता है। लाख और गोंद मिलता है, जो खिलौने बनाने और रंग में मिलाने के काम आता है। वनों में उत्पन्न वृक्षों से प्लाईवुड बनती है, जो सौन्दर्य-सज्जा और खेल-कूद का सामान बनाने में काम आती है। खैर के पेड़ की लकड़ी से कत्था और तेन्दू वृक्ष के पत्तों से बीड़ी बनती है। बांस के वृक्षों से बंसलोचन मिलता है। नीलगिरि के वनों से रबड़ मिलता है।

वन प्राकृतिक-सुषमा के घर हैं। वनों के चहुँ ओर फैली हरियाली, पक्षियों का कलरव, वन्य-जन्तुओं की क्रीडा, मन को मोह लेती है। शायद इसीलिए वर्डसवर्थ को कहना पड़ा, 'इन्हें कोमल हाथ से स्पर्श करो, क्योंकि वनों में भी आत्मा है?' (with gentle hand

touch—for there is a sprit in the woods) । इसीलिए वन-पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र हैं। पर्यटक जहाँ प्रकृति की दिव्य-सुषमा से आनन्द-विभोर होता है, वहाँ मांसल धारीधार शरीर तथा अनोखे स्वभाव के बाघों को देखकर, सिंह-सिंहनी एवं सिंह-शावकों की क्रीडा को देखकर मंत्र-मुग्ध रह जाता है। पर्यटक जब हाथियों की मदमस्त चाल और उन्हें झुण्ड में पानी पीते और क्रीडा करते देखता है तो उसका शरीर रोमांचित हो जाता है। विशाल झील के तट पर खड़े सहस्रों वृक्षों पर चहचहाते, क्रीडा करते, बच्चों को भोजन कराते, रंग-बिरंगे पक्षियों को देखकर पर्यटक एक ऐसे देवलोक में पहुँच जाता है जहाँ शान्ति और सौन्दर्य का अनन्त साम्राज्य है। फिर पर्यटन व्यवसाय राष्ट्रीय आय का स्रोत भी है। इसलिए भी वन-संरक्षण की आवश्यकता है।

वन जलवायु को सन्तुलित करते हैं। ठीक समय पर वर्षा करने में सहायक होते हैं। वन के वृक्ष पानी के व्यर्थ बहने को रोकते हैं। भूमि पर गिरे उसके फूल-पत्ते ऊपर की मिट्टी को पानी के साथ बह जाने से रोकते हैं। इस प्रकार भूमि को सन्तुलित जल प्रदान कर उसकी उर्वरा शक्ति बढ़ाते हैं। झ़ील, तालाब, नदी, कुओं में जल का भंडारण सुरक्षित कर देश में जल की कमी नहीं होने देते।

दूसरी ओर वन पर्यावरण-प्रदूषण को रोकते हैं। ऑक्सीजन प्रदान कर कार्बन डाइऑक्साइड को स्वयं खाते हैं। इससे जलवायु और भूमि का सन्तुलन बना रहता है।

सिंह, बाघ, गैंडे, हाथी, भैंसे, सूअर आदि आकर्षक वन्य पशुओं और भाँति-भाँति के पक्षियों के लिए तो वन प्यारा घर है। वन उसका जीवन है। इसलिए राष्ट्रीय-सरकार ने राष्ट्रीय उद्यान तथा अभयारण्यों की व्यवस्था की है।

देश में जनसंख्या वृद्धि के कारण वन्य-पदार्थों की माँग बढ़ी। माँग की पूर्ति के लिए वनों की अन्धा-धुँध कटाई की गई। फलत: आज वन नंगे हो रहे हैं। वनों के नंगेपन की पहली मार पड़ी मौसम के बदलाव पर। बे-मौसमी बारिस और ओलों की मार से खलिहानों में खड़ी फसल चौपट होने लगी या अकाल पड़ने लगा।

वनों की अंधाधुँध कटाई से भू-क्षरण तथा पर्वतों का स्खलन हुआ। देश की हरियाली घटी, मरुस्थल का फैलाव बढ़ा। मैदानी वनों के कारण हवा का वेग रुकता था और पहाड़ी वनों के कारण वर्षा-जल का प्रभाव कम होता था, वह समाप्त हुआ। अधिक वर्षा का जल पर्वतों की करोड़ों टन मिट्टी बहाकर नदियों में ले जाता है, इससे विनाशकारी बाढ़ें आती हैं।

दूसरी ओर, जनसंख्या वृद्धि के कारण ही कृषि के लिए अधिक भूमि की आवश्यकता हुई, उसके कारण भी वन काटे जाने लगे। फलत: प्राकृतिक वातावरण या पर्यावरण में असन्तुलन आया। इस क्षति की पूर्ति के लिए भी आज अधिक से अधिक वृक्ष लगाने की तथा वनों के संरक्षण की आवश्यकता है।

वन-संरक्षण आज देश की परम आवश्यकता है। इसका संहार, इसको काटना दण्डनीय अपराध होना चाहिए। वनों की वृद्धि न केवल मानव-जीवन के लिए लाभप्रद

है अपितु प्राणिमात्र के लिए हितकर है। वनों का विध्वंस प्राणिमात्र की सामूहिक हत्या का षड्यन्त्र है। वनों का विकास प्राकृतिक-सौन्दर्य से देश को आकर्षक बनाना है, इनका संहार प्रकृति के नियमों का उल्लंघन है। कारण, गेटे के शब्दों में, 'प्रकृति अपनी उन्नति और विकास में रुकना नहीं जानती और अपना अभिशाप प्रत्येक अकर्मण्यता पर लगाती है।'

(217) वृक्षारोपण : एक आवश्यकता

संकेत बिंदु—(1) एक महत्ती आवश्यकता (2) वन से ईंधन, छायादार वृक्ष और औषधियाँ (3) प्रदूषण के नाशक (4) हिन्दू धर्म-ग्रंथों में वृक्ष का महत्त्व (5) उपसंहार।

पृथ्वी को शोभायमान रखने के लिए, स्वास्थ्य-वृद्धि के लिए, वर्षा के निमंत्रण के लिए, विविध प्रकार के पर्यावरण की सुरक्षा के लिए, प्राणिमात्र के पोषण के लिए, मरुस्थल का विस्तार रोकने के लिए, उद्योगों की वृद्धि के लिए, राष्ट्र को अकाल से बचाने के लिए फल, लकड़ी, विविध प्रकार की वनस्पति, फल-फूल तथा जड़ी-बूटी आदि की प्राप्ति के लिए वृक्षारोपण एक महती आवश्यकता है।

वृक्ष पृथ्वी की शोभा हैं, हरियाली का उद्‌गम हैं, स्वास्थ्य वृद्धि की बूटी हैं, वर्षा के निमंत्रणदाता हैं, प्रकृति के रक्षक हैं, प्रदूषण के नाशक है, प्राणिमात्र के पोषक हैं। वृक्ष अपने पत्तों, फूल, फल, छाया, छाल, मूल, वल्कल, काष्ठ, गन्ध, दूध, भस्म, गुठली और कोमल अंकुर से प्राणि-मात्र को सुख पहुँचाते हैं।

वृक्ष अधिक होंगे तो वर्षा अधिक होगी। वर्षा से पृथ्वी की उर्वरा शक्ति बढ़ेगी। खेती फले-फूलेगी। पृथ्वी पर हरियाली छाएगी। मरुस्थल फैलने से रुकेंगे। सरिता-सरोवर जल से लहलहा उठेंगे। प्राणि-मात्र का पोषण होगा।

लाल-लाल नारंगियाँ, पके हुए रसमय आम, सुस्वादु केले, गुलाबी सेव, अनूठे अखरोट, लाल-लाल लीचियाँ, अमरूद, बेर, अनार, मौसमी, खट्टे-मीठे नींबू, लुकाट, खरबूजा, पपीता, खीरा, तरबूज, अंगूर न जाने कितने प्रकार के फल इन वृक्षों और लताओं से प्राप्त होते हैं। फल स्वास्थ्य के लिए प्राकृतिक औषधि है। इस कारण भी वृक्षारोपण अत्यन्त आवश्यक है।

बाँस की लकड़ी, पापलर और घास से कागज बनता है। खैर के पेड़ की लकड़ी से कत्था और तेन्दू वृक्ष के पत्तों से बीड़ी बनती है। लाख और गोंद भी वृक्षों से मिलती है, जो खिलौने बनाने और रंग में मिलाने के काम आती है। वृक्षों की छाल और पत्तियों से अनेक जड़ी-बूटियाँ मिलती हैं, जिनसे दवाइयाँ बनती हैं। नीलगिरि के वृक्षों से रबड़ मिलता है। वृक्षोत्पादन के बिना इनकी प्राप्ति संभव नहीं। उत्पादन वृद्धि के लिए वृक्ष उगाने की होड़ चाहिए।

ईंधन के लिए, दरवाजे, खिड़कियाँ, अलमारी, मेज-कुर्सी, सोफा आदि समान बनाने के लिए लकड़ी चाहिए। गुल्ली-डंडा, बैट, हॉकी आदि खेल-साधनों के लिए लकड़ी चाहिए। नौका निर्माण के लिए लकड़ी चाहिए। लकड़ी की प्राप्ति का माध्यम है वृक्ष। वृक्ष होंगे, तो लकड़ी होगी। इसलिए भी वृक्षारोपण आवश्यक है।

सड़क के किनारे छायादार वृक्ष तो यात्रियों के प्राण हैं। ग्रीष्म में इनकी छाया में चलने में कष्ट नहीं होता। इनके कारण लू, धूप, वर्षा से रक्षा तो होती ही है, थकान भी कम चढ़ती है। पक्षियों के तो प्राणधार ही पेड़ हैं। पक्षी पेड़ों पर नीड़-निर्माण करते हैं। उनके फलों-पत्तियों से उदर-पूर्ति करते हैं। उन पर बैठ कर कलरव करते हुए मनोविनोद करते हैं।

वृक्ष जलवायु की विषमता को दूर करते हैं। जहाँ वृक्षाधिक्य होता है, वहाँ गर्मियों में गर्मी कम लगती है और शीत ऋतु की ठंड भी कम असर करती है।

वृक्ष प्रदूषण के नाशक हैं। पेट्रोलियम पदार्थों के प्रयोग से, ईंधन के जलने से, मिल-फैक्टरियों के कचरे और चिमनी के धुएँ से जो प्राणनाशक गन्दी वायु उत्पन्न होती है, उसे वृक्ष भक्षण करते हैं। बदले में प्राणप्रद वायु छोड़ते हैं। औद्योगिक उन्नति ने महानगरों में पर्यावरण-संकट उत्पन्न कर दिया है, जिससे शुद्ध वायु तथा शुद्ध भोजन का अभाव उत्पन्न हो गया है। महानगरों में साँस लेना भी कठिन होता जा रहा है। इस संकट के निवारण का एकमात्र उपाय है अधिक संख्या में वृक्षारोपण।

पेड़-पौधों के प्रति प्रेम की भावना हमारे देश के लोगों में बहुत प्राचीन-काल से है। भारतवासी इन पेड़-पौधों को लकड़ी का साधारण ठूँठ ही नहीं, बल्कि उन्हें देवता मानते आए हैं। भगवान् शंकर का निवास मानकर वट की पूजा होती है। आमलकी एकादशी को आँवला पूजा जाता है। पीपल और तुलसी की पूजा तो घर-घर में प्रतिदिन होती है। पीपल ही ऐसा वृक्ष है जो दिन-रात प्राण-वायु (शुद्ध आक्सीजन) देता है। इसी कारण पीपल को काटना पाप माना गया है।

मत्स्य पुराण के अनुसार एक वृक्ष का आरोपण दस पुत्रों के जन्म के बराबर है। वराह पुराण के अनुसार, 'पंचाम्रवापी नरकं न याति'— आम के पाँच पौधे लगाने वाला कभी नरक जाता ही नहीं। विष्णु-धर्म-सूत्र के अनुसार, 'एक व्यक्ति द्वारा पालित-पोषित वृक्ष एक पुत्र के समान या उससे भी कहीं अधिक महत्त्व रखता है। देवगण इसके पुष्पों से, यात्री इसकी छाया में बैठकर, मनुष्य इसके फल-फूल खाकर इसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं।' पद्म पुराण का कहना है, 'जो मनुष्य सड़क के किनारे वृक्ष लगाता है, वह स्वर्ग में उतने ही वर्षों तक सुख भोगता है, जितने वर्ष वह वृक्ष फलता-फूलता है।' पुराणों के ये कथन पुण्य-प्राप्ति के लिए वृक्षों से प्रेम करना सिखाते हैं।

हिन्दुओं ने वृक्ष लगाने का एक बड़ा सुन्दर उपाय खोज निकाला था। जिस स्थान पर शव को जलाया जाता था, वहाँ पर चौथे दिन फूल चुगने के बाद चिता के चारों कोनों पर चार वृक्ष लगाने का विधान था, जो अब केवल चार टहनियाँ गाड़कर पूरा कर दिया जाता है। 360 दिन तक इन वृक्षों को दूध और पानी से सींचने का भी विधान था, जो आज पीपल की जड़ में इकट्ठे 108 लोटे पानी लुढ़का कर पूरा कर दिया जाता है।

केन्द्रीय सरकार ने पर्यावरण के परिरक्षण के लिए (प्रकृति की रक्षार्थ) राष्ट्रीय समिति गठित की है। नवमी योजना में प्राकृतिक सन्तुलन बनाए रखने पर विशेष बल दिया गया है। प्रकृति की रक्षा और प्राकृतिक सन्तुलन के लिए प्रत्येक विकास-खण्ड में प्रशिक्षित कर्मचारी नियुक्त किए जाएँगे, जो ग्रामीणों को न केवल वृक्षारोपण का महत्त्व समझाएँगे, बल्कि उन्हें उपयोगी वृक्षों की पौध भी उपलब्ध कराएँगे।

वर्तमान भारत में जबकि पर्यावरण का संकट बढ़ता जा रहा है, ओलावृष्टि और असमय वर्षा से फसल नष्ट हो रही है; अकाल की वेदी पर प्राणी अपने जीवन की आहुति दे रहे हैं, जनसंख्या की वृद्धि के कारण ईंधन, इमारती लकड़ी और खेल-कूद के सामान की माँग सुरसा के मुँह की तरह बढ़ रही है; बीमारियों पर विज्ञान की विजय के लिए जड़ी-बूटी, वृक्ष-त्वचा और पत्र-पुष्प-फल की अत्यधिक आवश्यकता है; ज्ञान-प्रसार की दृष्टि से कागज की अत्यधिक माँग है, तब तेजी से तथा अत्यधिक परिणाम में वृक्षारोपण के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं।

(218) जनसंख्या घटाइए, वृक्ष लगाइए / वृक्षों से वायु, वायु से आयु

संकेत बिंदु—(1) मनुष्य और प्रकृति के संतुलन के लिए (2) जनसंख्या पर नियंत्रण समय की माँग (3) सीमित परिवार और वृक्षारोपण (4) बढ़ती जनसंख्या भयानक समस्या (5) उपसंहार।

मनुष्य और प्रकृति का संतुलन बना रहे, इस प्रकार के प्रयास काफी समय से होते चले आ रहे हैं। इस प्रकार का संतुलन बने रहे से ही मानव-जगत् सुखी और स्वस्थ रह सकता है। वर्तमान समय में जनसंख्या वृद्धि ने सारे प्रारूप और संतुलन को डगमग दिया है, जनसंख्या बढ़ जाने से भूमि तो नहीं बढ़ी और न ही उन्नत जल में ही वृद्धि हुई। हाँ इतना अवश्य हुआ कि नगरों और ग्रामों का जनसंख्या के अनुपात से विस्तार हुआ और हानि हुई उपजाऊ भूमि की, साथ ही वनों और वृक्षों की। वृक्ष समाप्त होने पर धरती पर प्रदूषण का साम्राज्य आने लगा और लोग असमय ही नये-नये रोगों से ग्रस्त होने लगे।

प्राचीन काल की एक घटना का स्मरण होता है कि रक्तबीज नामक एक दानव था, जिसको यह वरदान प्राप्त था कि तुम्हारे रक्त की जितनी बूँदें धरती पर गिरेंगी, तत्काल उतने ही रक्तबीज उत्पन्न हो जायेंगे। इस वरदान को प्राप्त कर रक्तबीज ने बहुत उत्पात मचाया, सारी सृष्टि त्राहि-त्राहि कर उठी अन्त में माँ काली ने रक्तबीज के रक्त को खप्पर में भरकर पीना प्रारम्भ किया तो रक्तबीज नामक दानव का अन्त हुआ। आज देश की जनसंख्या भी रक्तबीज के रक्त की भाँति नित्यप्रति बढ़ती जा रही है। 1947 को जब भारत देश स्वाधीन हुआ तब देश की जनसंख्या केवल 34 करोड़ थी जो अब साठ वर्षों में एक

अरब से ऊपर जा पहुँची है। जनसंख्या की समस्या देश में सुरक्षा की भाँति विकट बन पड़ी है और इस विकट समस्या से निपटने के लिए देश के प्रत्येक नागरिक को तत्पर रहने की आवश्यकता है। कवि मनोहरलाल 'रत्नम्' की कविता में एक सन्देश इसी समस्या पर उभरकर सामने आया है—

युग स्रष्टा से युग द्रष्टा बनकर आओ,
सम्भव हो कुछ जनका जन्म घटाओ।
फिर से इतिहास के पृष्ठ को स्वयं रचा दो;
हे युवा वर्ग! अब धरा पे वृक्ष लगा दो।।

जनसंख्या पर नियन्त्रण समय की माँग भी है और धरती पर रह रहे मनुष्यों के स्वास्थ्य को बचाने का माध्यम भी यही है। इतिहास साक्षी है कि जब-जब धरती पर जनसंख्या अधिक हुई है तो उसके समापन का भी माध्यम साथ ही बना है। रामायण काल में रावण के कुकर्म द्वारा लाखों लोगों के प्राण गये, इस सन्दर्भ में एक कहावत आज भी सुनी जा सकती है। **'एक लाख पूत सवा लाख नाती, ता रावण घर दिया न बाती'**। यदि हम सन्तान उत्पत्ति पर ध्यान दें तो अंजनी का केवल एक पुत्र हनुमान् था, जिसके पराक्रम की चर्चा समाज में विस्तार से है।

द्वापर युग में महाभारत काल में धृतराष्ट्र के नौ पुत्र थे और पाण्डव पाँच ही थे, परिणाम सामने हैं। अधिक सन्तान दु:ख का कारण तो बनती है, साथ ही रहन-सहन, भरण-पोषण में भी समस्या खड़ी हो जाती है। शकुन्तला के एक पुत्र भरत ने इतिहास को अमर कर दिया। आज समय की माँग है कि धरती पर जनसंख्या वृद्धि की अब आवश्यकता नहीं है, अब यदि किसी वस्तु की आवश्यकता है तो देश की जनसंख्या के स्वस्थ्य की और इसके लिए प्रत्येक देश के एक नागरिक को अपने आसपास के क्षेत्र में एक-एक वृक्ष लगाने की आवश्यकता है। कहा गया है कि—

'वृक्षों से वायु और वायु से आयु'

जब धरती पर वृक्ष लगेगें और हरियाली छायेगी तो प्रदूषण का विष स्वत: ही समाप्त हो जायेगा। आज देश को स्वस्थ और बलिष्ठ नागरिकों की आवश्यकता है और यह आवश्यकता तभी पूरी हो सकती है जब देश के प्रत्येक नागरिक को उचित शिक्षा, भरपूर भोजन और आजीविका के साधन सुलभ हो सकें और इन सबका एक ही आधार सामने दिखाई पड़ता है सीमित परिवार और छोटा परिवार ही देश की खुशहाली में सहायक हो सकता है।

युवा वर्ग का दायित्व है कि देश के भविष्य को स्थिर रखा जाये, अपने परिवार को सीमित करके अपने आसपास फलदार वृक्षों का रोपण कर परिवार, समाज व देश को उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होने में अपनी भागीदारी का निर्वाह करें। यदि हम सन्तान और वृक्ष की तुलना करें तो वृक्ष हमारे लिए सन्तान से भी अधिकारी लाभकारी सिद्ध हो सकता है। सन्तान तो पथभ्रष्ट भी हो सकती है मगर वृक्ष पथभ्रष्ट नहीं होता। वृक्ष यदि फलदार है तो वह अवश्य फल देगा और यदि वृक्ष फलदार नहीं है तो छाया और ऑक्सीजन तो अवश्य

देगा ही, साथ ही वृक्ष के पत्ते और लकड़ी भी उपयोग में लाई जा सकती है। धरती पर वनों के कटने से, महानगरों के विस्तार में अनेक वृक्ष काटे गये हैं जिनका परिणाम भी भयंकर हुआ है। प्रदूषण के रूप में, एक दोहे में यह पीड़ा साफ झलकती है—

बरगद, पीपल, नीम को, काट ले गये लोग।
हवा भी जहरी हो गयी, फैला जहरी रोग॥

अब प्रश्न उठता है कि देश की बढ़ती हुई जनसंख्या पर कैसे अंकुश लगाया जाये? सरकार ने जनसंख्या वृद्धि रोकने के अनेक उपाय किये हैं। आयुर्वेद में अनेक सर्व सुलभ साधन उपलब्ध हैं। एक युवक के विवाह पर एक घटना घटित हुई जिसकी चर्चा में यहाँ करना उचित इसलिए मानता हूँ कि जब युवक के विवाह के पश्चात् वह अपनी पत्नी को साथ लेकर एक वृद्ध महिला के चरण स्पर्श कर हटा तो उस महिला ने उस युवक को 'दूधो नहाओ-पूतों फलो' का आशीर्वाद दिया— "उस महिला के आशीर्वाद को यह युवक सुनकर बोला—दादी माँ मुझे नरक में धकेलने का आशीर्वाद नहीं चाहिए, मैं तो बस एक ही बालक को जन्म देकर अपना और उसी भावी बालक का जीवन सुखमय बनाने का प्रयास करूँगा", तभी उस युवक के पास खड़े एक कवि ने कविता की पंक्तियाँ इसी घटना पर सुना दी—

आशीर्वाद फूलो फलो का मिला,
सुनकर मेरा कलेजा था हिला।
कह दिया मैंने तभी यह चीखकर—
एक बालक में है तुझको क्या गिला?

यदि आज का युवक भी एक बालक को जन्म देने का (चाहे लड़का हो या लड़की) प्रण कर लेतो सम्भवत: जनसंख्या वृद्धि पर अंकुश अवश्य लगेगा और साथ ही एक युवक एक वृक्ष लगाकर धरती पर हरियाली लाने का भी प्रयास करे तो माना जा सकता है कि आने वाले समय में भारत किसी रमणीय स्वर्गभूमि से कम नहीं रहेगा।

वर्णनात्मक

(219) रेलवे प्लेटफार्म का दृश्य

संकेत बिंदु—(1) रेलगाड़ी का महत्त्वपूर्ण स्थान (2) प्लेटफार्म पर सार्वजनिक सुविधायें (3) गाड़ी के प्लेटफार्म पर पहुँचने से हलचल (4) रेलवे स्टेशन का कोलाहल पूर्ण वातावरण (5) उपसंहार।

यातायात के विविध साधनों में रेलगाड़ी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह सस्ता, सुलभ

और अधिक सुरक्षित सवारी है। इसलिए इसे जनता की सवारी कहा जाता है। आज देश में रेलों का एक जाल-सा बिछा हुआ है। स्वराज्य-प्राप्ति के पश्चात् राष्ट्र के कर्णधारों ने इसे प्रत्येक जिले, नगर, कस्बे तथा गाँव तक पहुँचाने का प्रयास किया है और कर रहे हैं।

विशालकाय लौहपथ-गामिनी के ठहरने, विश्राम करने, कोयला-डीजल व पानी लेने तथा अपने भार को हल्का करने और नया भार लेने के लिए निश्चित स्थान है-रेलवे स्टेशन। स्टेशन के अन्दर गाड़ी पर यात्रियों के चढ़ने और उतरने के लिए एक चबूतरा या मंच होता है। इसे रेलवे की भाषा में 'प्लेटफार्म' कहते हैं।

यात्रियों की सुविधा के लिए प्लेटफार्म पर पानी के लिए सार्वजनिक नल होते हैं, क्षुधा-शान्ति के लिए जलपान की रेहड़ियाँ होती हैं, ज्ञानवर्धन और मानसिक भूख मिटाने के लिए बुकस्टाल होते हैं। इनके अतिरिक्त एक-दो रेहड़ियाँ बच्चों के खेल-खिलौनों या स्थान-विशेष की प्रसिद्ध वस्तुओं की भी होती हैं।

प्लेटफार्म पर गाड़ी में चढ़ने और उतरने वालों, अपने सम्बन्धियों अथवा मित्रों की बिदाई अथवा अगवानी (स्वागत-सत्कार) के लिए आए प्रतीक्षार्थियों की भीड़ रहती है। इनके अतिरिक्त सामान उठाने, गाड़ी में रखने तथा उतारने के लिए कुलियों की भीड़ होती है। इनकी पहचान है: लाल या हरा कुर्ता, पगड़ी, सफेद पाजामा, बाँह पर बँधा हुआ रेलवे का अधिकृत बिल्ला। भारत की दरिद्र जनता का एक अंश हाथ में भिक्षा-पात्र लिए उदर-पूर्ति के लिए याचना करने वाले नर-नारी, बाल-वृद्ध भी प्लेटफार्म पर भारत की आर्थिक दुर्दशा का चित्र प्रस्तुत कर रहे होते हैं।

गाड़ी आने वाली है। स्टेशन-कर्मचारी ने गाड़ी आने की सूचना घण्टी बजाकर दे दी है। सबको सावधान कर दिया है। हलचल तेज हो गई है। भूमि पर चौकड़ी लगाए और बैंचों पर पैर लटकाए बैठे प्रतीक्षार्थी खड़े हो गए हैं। यात्रियों ने अपना सामान सँभालना शुरू कर दिया है। बच्चों को आवाजें लग रही हैं—'अञ्जू-संजू, जल्दी आओ, गाड़ी आ रही है। ओ अलका, चाट के पत्ते को फेंक, जल्दी कर, वरना यहीं रह जाएगी!'

कुलियों में हलचल मच गई है। जिन लोगों ने पहले ही अपने कुली निश्चित कर रखे हैं, वे उन्हें आवाज लगा रहे हैं। कुछ कुली स्वत: ही अपने निश्चित किये सामान की ओर दौड़ रहे हैं। पानी पिलाने वाले कर्मचारी ने बाल्टी भर ली है। द्वार पर नियुक्त टिकट-चेकर, जो मटरगश्ती में मस्त था, द्वार पर पहुँच चुका है। पोर्टर और कुली डाक के थैले और आने वाली गाड़ी में चढ़ाने का सामान हाथ-रेहड़ी में लेकर प्लेटफार्म पर आ रहे हैं।

धुआँ उड़ाती, सीटी बजाती, छक्-छक् करती अपेक्षाकृत मन्द गति से चलती हुई रेलगाड़ी प्लेटफार्म में प्रवेश कर रही है। गाड़ी के प्लेटफार्म में प्रवेश करते ही जनता में तेजी से हलचल मच गई है, गाड़ी एक झटके के साथ रुकती है। तो हलचल तीव्रतम हो उठती है।

गाड़ी में चढ़ने वाले और सामान लादे कुली गाड़ी में चढ़ने के लिए उतावलापन दिखाकर धक्का-मुक्की कर रहे हैं। उतरने वाले उनसे अधिक जल्दी में हैं। इस सारी आपा-

धापी में नर-नारियों के तीव्र, कर्कश और घबराहट भरे स्वर सुनाई पड़ते हैं, 'पूनम, तू चढ़ती क्यों नहीं ?' 'अरे भाई साहब, जरा लड़की को तो चढ़ने दो।' आदि।

उधर इस हल्के, मधुर, कर्णप्रिय शोर में वातावरण को अशान्त कर रही है 'वेंडरों' की कर्कश आवाजें—'चाय गरम', 'गर्म छोले-कुलचे', 'गरम दाल-रोटी लीजिए', 'गरम दूध', 'बीड़ी-सिगरेट'। इधर चाय के गिलास लिए हुए चाय-स्टॉल के लड़के डिब्बे की खिड़कियों के अन्दर की ओर मुँह करके आवाज लगा रहे हैं, 'चाय गरम, गरम चाय।'

पाँच-चार मिनट में ही प्लेटफार्म का दृश्य बदल जाता है। उतरने वाले यात्री प्लेटफार्म छोड़ रहे हैं। प्लेटफार्म की भूमि और बैंचों पर के यात्री अब गाड़ी में बैठे हैं। बैंच प्राय: खाली हैं। कुछ लोग चाय-पान या अल्पाहार में संलग्न हैं। कुछ बीड़ी-सिगरेट का धुआँ उड़ाते सुस्ता रहे हैं। पानी पिलाने वाले और चाय बेचने वालों की फुर्ती में थोड़ा अन्तर आ गया है। वेंडरों के कर्कश स्वर में धीमापन आ गया है। कुलियों की धका-पेल कम हो गई है। पुस्तकों का स्टॉल प्राय: सुनसान-सा पड़ा है।

इधर, गाड़ी ने चलने के लिए सावधान होने की पहली सीटी दी। उधर, एक दम्पती और दो बच्चे कुली से सामान उठवाए क्षिप्र गति से प्लेटफार्म पार कर गाड़ी में घुसने की कोशिश कर रहे हैं। कुली सिर का सामान उतार और मजदूरी की प्रतीक्षा में 'बाबू पैसे दो, बाबू पैसे दो' के शोर में रत है। उधर बाबू जी हाँफते हुए जेब में हाथ डाल रहे हैं।

गाड़ी आई और चली गई। यात्री आए और चले गए। पर प्लेटफार्म शान्त भाव से अपनी जगह अवस्थित है। वह आने वाली गाड़ी की प्रतीक्षा में है, जिसके आने से एक बार उसके हृदय में भी ज्वार-भाटा आता है, चेहरे पर रौनक आ जाती है।

(220) रेलवे स्टेशन का दृश्य

संकेत बिंदु—(1) बाहरी प्रांगण का दृश्य (2) प्रवेश प्रांगण का दृश्य (3) प्लेटफॉर्म का दृश्य (4) पटरी का दृश्य (5) उपसंहार।

रेलवे स्टेशन के दृश्य को हम चार भागों में बाँट सकते हैं—1. रेलवे-स्टेशन के बाहरी प्रांगण का दृश्य, 2. स्टेशन में प्रवेश-प्रांगण का दृश्य, 3. प्लेटफार्म का दृश्य तथा 4. पटरी का दृश्य।

रेलवे के बाहरी प्रांगण का दृश्य अति कोलाहलपूर्ण होता है। कार, ताँगा, टैक्सी तिपहिया स्कूटर आदि के आगमन ने इस भूमि को रौंद रखा है। साइकिल या मोटर-साइकिल सवार अपने वाहनों को स्टैण्ड पर खड़ा करके पैदल बढ़ रहे हैं। बस के उतरने वाले यात्री भी पैदल स्टेशन की ओर बढ़ रहे हैं। कोई वाहन आकर स्टेशन-प्रांगण के मुख्य द्वार पर ठहरा नहीं कि कुली यात्री के आसपास ऐसे मँडरा जाते हैं जैसे चीलें मांस-पिंड पर झपट्टा मारती हैं। पैसे के लेन-देन में थोड़ी देर हुई नहीं कि पीछे खड़े वाहन ने हार्न बजा-बजाकर उसे जल्दी करने की चेतावनी देनी शुरू कर दी। दूसरी ओर, किसी गाड़ी

के आगमन पर सारा प्रांगण हलचल से भर जाता है। कुछ यात्री बच्चों का हाथ पकड़े कुली के सिर पर सामान उठवाए बस-स्टैण्ड की ओर बढ़ रहे हैं, कुछ लोग तेजी से उस प्रांगण को पार कर बस पकड़ने की चिन्ता में हैं। कोई तिपहिए वाले से बातचीत में संलग्न है, तो कोई रिक्शेवाले से भाव-ताव कर रहा है। सिनेमा हॉल के छूटने के दृश्य की तुलना गाड़ी से उतरकर रेलवे-स्टेशन का प्रांगण छोड़ने के दृश्य से की जा सकती है। बस, अन्तर इतना ही है कि सिनेमा हॉल के दर्शकों के पास सामान प्राय: नहीं होता और गाड़ी से उतरने वाले प्राय: सभी यात्रियों के पास सामान होता ही है।

स्टेशन के प्रवेश-प्रांगण का दृश्य अपेक्षाकृत शान्त होता है, इस प्रांगण में या तो रॉकेट की-सी तेजी है या श्मशान की-सी शांति। चाँदनी चौक की-सी सामान्य हलचल वहाँ नहीं मिलेगी। सैकड़ों आदमी पंक्तिबद्ध टिकट की खिड़कियों पर खड़े हैं। उतावले इतने हैं कि हर टिकट खरीदने वाले पर जल्दी करने की आवाज कसते हैं, पूछताछ खिड़की पर भी हर यात्री अपने प्रश्न का उत्तर पहले प्राप्त कर लेना चाहता है। गाड़ी पकड़ने की चिन्ता में प्रवेश-प्रांगण को यात्री तेजी से पार कर रहे हैं। दूसरी ओर वे यात्री जिनकी गाड़ी आने में विलम्ब है, बिस्तर बिछाकर लेटे हैं। कोई बच्चों के साथ भोजन कर रहा है, कोई गपशप में मस्त है, कहीं धूम्रपान का धुआँ उड़ रहा है, तो कहीं सफाई कर्मचारी गीले टाट से प्रांगण के फर्श की सफाई कर रहा है। भीख माँगने वाले भी यदा-कदा यात्रियों को तंग करते रहते हैं। प्रवेश-प्रांगण में कहीं सामान की बु[illegible] रही है, तो कहीं डाक के थैलों को गाड़ी में चढ़ाने की तैयारी हो रही है। प्रवेश द्वार का दृश्य और भी आकर्षक है। अन्दर जाने वाले यात्रियों की गति इस द्वार पर जहाँ मध्यम हो जाती है, वहाँ गाड़ी से उतरने वालों का इस द्वार पर जमघट जमा हो जाता है। टिकट-कलेक्टर फुर्ती से टिकट लेता रहता है। भीड़-भाड़ में कुछ यात्री बिना टिकट दिए निकल जाते हैं, तो कोई 'पीछे वाले के पास टिकट है' की आवाज देकर निकल जाता है।

आइए, प्लेटफार्म के अन्दर चलें। है न कनाट-प्लेस का दृश्य। यात्रियों के विश्राम के लिए बैंच रखे हैं, चाय-लस्सी, बिस्कुट की चबुतरेनुमा दुकानें हैं और हैं बुक-मेगजीन-स्टाल। इन दुकानों पर गाड़ी आने से आधा घंटा पूर्व और दो-चार मिनिट पश्चात् तक बड़ी भीड़ रहती है। इन दुकानों के अतिरिक्त चाय, फल, रोटी-पूरी, छोले-कुलचे, मिठाई-नमकीन तथा खिलौनों की रेहड़ियाँ प्लेटफार्म के एक सिरे से दूसरे सिरे तक ग्राहक की तलाश में घूमती रहती हैं। हाथों में दैनिक पत्र-पत्रिकाएँ तथा पॉकेट-बुक्स लिए हॉकर चक्कर काटते हैं। प्यास बुझाने के लिए नल लगे हैं। एक प्लेटफार्म से दूसरे प्लेटफार्म पर जाने के लिए सीढ़ियाँ और पुल बने हुए हैं।

कुछ यात्री अपने सामान के साथ गाड़ी आने की प्रतीक्षा में हैं, कोई टहल कर अपना समय बिता रहा है, कोई बच्चों के लिए चीजें खरीदने में व्यस्त है, तो कोई कुली की सहायता लेने में संलग्न है। चाय वाला चाय बनाने में फुर्ती दिखाता है, तो मैंगजीन या पॉकेट बुक्स खरीदने वाला-उतनी ही सुस्ती प्रकट करता है।

दृश्य बदलता है। गाड़ी धीरे-धीरे प्लेटफार्म में प्रवेश कर रही है। गाड़ी की आवाज के साथ बिजली के स्विच खोलने के समान सारा प्लेटफार्म जीवन्त हो गया, सचेत हो उठा है, यात्री सचेत हो गए हैं। 'बुक्ड' कुलियों ने सामान उठा लिया है। द्वार पर खड़ा टिकट-चेकर 'एलर्ट' हो गया है।

गाड़ी रुकी। प्लेटफार्म का दृश्य बदला। सरकस की तरह नया खेल शुरू हुआ। गाड़ी में चढ़ने और उतरने वालों की उतावली का दृश्य धक्का-मुक्की का आनन्द दे रहा है। कुली पहलवानी दिखा रहे हैं। वे जबरदस्ती सामान को चढ़ाने में दक्षता प्रकट कर रहे हैं। सामान उतारने और चढ़ाने की तीव्र गति की प्रक्रिया में जो कोलाहल चल रहा है, उसी के बीच वेंडरों की कर्कश आवाजें भी सुनाई पड़ती हैं—'चाय गरम, गरम छोले-कुलचे', 'दाल-रोटी गरम', 'पान-बीड़ी-सिगरेट'। उतरे हुए यात्री प्लेटफार्म छोड़ने की जल्दी में हैं। कोई कुली से सौदा कर रहा है, तो कोई बिना सौदा किए ही सामान उठवा रहा है। कोई अपना सामान और बच्चे सम्भाल रहा है, उन्हें इकट्ठा कर रहा है।

गाड़ी आई और चली गई। प्लेटफार्म का दृश्य पूर्ववत् हो गया। मानो कोई नृत्यांगना, नृत्य दिखा कर पुनः अपने सामान्य रूप में आ गई हो।

रेलवे-स्टेशन का अन्तिम दृश्य है—रेल पटरी का। गाड़ी यदि प्लेटफार्म पर न खड़ी हो तो लोग इनका प्रयोग दूसरे प्लेटफार्म पर जाने के लिए करते हैं—'कट शॉर्ट' का युग जो हुआ। गाड़ी आने पर पटरी भी सक्रिय हो जाती है। रेल-कर्मचारी जल-नल के स्तम्भों से कैन्वस की नलिकाओं से पानी भरना शुरू कर देते हैं। दूसरी ओर, रेल के पहियों का निरीक्षण शुरू हो जाता है। ज्वाइंटस् को लोहे के हथौड़े से बजाकर परखा जाता है। वस्तुतः लौहपथ की अपनी कहानी है, अपना दृश्य है।

इस प्रकार रेलवे-स्टेशन का दृश्य चाँदनी चौक जैसा, वातावरण 'पिक्चर हाउस' जैसा और व्यस्तता समाचार-पत्र के कार्यालय जैसी होती है।

(221) सड़क दुर्घटना की झाँकी

संकेत बिंदु—(1) दुर्घटनाओं के मुख्य कारण (2) सड़क दुर्घटना का वर्णन (3) ड्राइवर की लापरवाही (4) ताँगे और बस की टक्कर (5) उपसंहार।

जनसंख्या की अतिवृद्धि और यातायात के साधनों का अत्यधिक प्रसार सड़क दुर्घटनाओं के मुख्य कारण हैं। दस वर्ष पूर्व जितनी सड़क दुर्घटनाएँ होती थीं, आज उससे कई गुणा अधिक होती हैं। दुर्घटनाएँ न हों या बहुत ही कम हों, सरकार ने इसके लिए अनेक उपाय किए हैं, किन्तु जैसे-जैसे सरकार सुरक्षात्मक उपाय बरतती जाती है, वैसे-वैसे दुर्घटनाएँ भी बढ़ती जाती हैं। समाचार-पत्रों में प्रतिदिन प्रकाशित होने वाले 'दुर्घटनाओं से मृत्यु' के समाचार इस बात के प्रमाण हैं।

सड़क पर चलता हुआ बच्चा कार की चपेट में आया और भगवान् ने उस अविकसित

कली को अपने दरबार में पेश करने की आज्ञा दे दी। ताँगे में बैठे यात्री बातचीत में मस्त चले जा रहे हैं, अकस्मात् दिल्ली-परिवहन तथा प्राइवेट ब्लू लाइन की बस टकराई और बातचीत बदल गई 'हाय! हाय!' में।

ये दुर्घटनाएँ न मनुष्य की उपयोगिता और महत्ता को देखती हैं और न समय और कुसमय को। कोई व्यक्ति किसी आवश्यक कार्य से जा रहा है, कितने उत्साह के साथ किसी स्वागत-समारोह या विवाहोत्सव की तैयारियाँ हो रही हैं, इन बातों से दुर्घटना को कोई वास्ता नहीं। जरा झटका लगने की देर है और मानव की जीवन-लीला समाप्त! दुर्घटना को तो किसी की बलि चाहिए—चाहे वह कोई भी हो। किसी का लिहाज नहीं, मोहब्बत नहीं। हिन्दी की प्रसिद्ध कवयित्री सुभद्राकुमारी चौहान और तत्कालीन अखिल भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष डॉ. रघुवीर की मृत्यु कार-दुर्घटना में ही हुईं थीं।

आइए, आपको एक हृदय-विदारक सड़क-दुर्घटना का वर्णन सुनाएँ। दिल्ली में एक स्थान है तीस हजारी। उसके आगे सीधे चलें तो मोरीगेट का पुल आता है। इस मार्ग के बीच में बाएँ हाथ को एक सड़क मुड़ती है, जो 'टेलीफोन एक्सचेंज' और 'न्यू कोर्ट्स' के मध्य से होती हुई निकल्सन पार्क की ओर चली जाती है। तीस हजारी से न्यू कोर्ट्स को मुड़ने वाली सड़क पर बीच में यातायात नियंत्रक 'सिपाही' के खड़े होने का गोल चबूतरा है। इसके आगे मोरीगेट पुल तक 'एक मार्गीय' यातायात व्यवस्था है।

रात्रि के आठ बजे थे। मैं जामा मस्जिद से दिल्ली-परिवहन की रूट नम्बर ग्यारह की बस में बैठा राणा प्रताप बाग की ओर जा रहा था। मेरे लिए बस के हिचकोले माता की गोदी की हिलोरों में बदल जाते हैं और मैं प्राय: बस में सो जाता हूँ। उस दिन भी मुझे निद्रा देवी ने धर दबाया था।

चलती हुई बस में यात्रियों के चढ़ने-उतरने या झटके के साथ बस रुकने से निद्रा में विघ्न पड़ता था और मैं एक बार आँख खोलकर देख लेता था कि बस कहाँ तक पहुँच गई है। फतेहपुरी बस-स्टॉप से चलकर बस मोरीगेट पर रुकी। यहाँ भीड़ अधिक थी। सभी यात्री चढ़ जाना चाहते थे। इधर, बस ठसाठस भरी हुई थी। अत: कंडक्टर सबको लेना नहीं चाहता था। उसने दो-चार सवारियाँ लीं और दो बार सीटी बजाकर बस को चलाने का आदेश दे दिया। ड्राइवर ने गाड़ी पहले गेयर में डाली और तेजी से चला दी। ड्राइवर अब तेजी के मूड में आ गया था।

बीस के स्थान पर लगभग चालीस आदमी खड़े थे। अत: धक्कापेल होनी स्वाभाविक थी। परिणामत: मेरी नींद भी रफूचक्कर हो गई। इधर 'न्यू कोर्ट्स' बस स्टॉफ पर एक नवदम्पती ने बस को रोकने का इशारा किया, किन्तु ड्राइवर ने बस और तेज कर ली। बस यहाँ से मुड़ती हुई टेलीफोन-एक्सचेंज के पास सिपाही के चबूतरे के पीछे बनी ईंटों के [illegible] सात-आठ फुट लम्बे और एक फुट ऊँचे चबूतरे के छोर पर एक सेकिण्ड रुकी। तेज बस के अकस्मात् रुकने पर थोड़ा झटका लगा। पलंक झपकते ही बस पुन: तेज हो

गई और चल पड़ी सड़क को दो भागों में बाँटने वाली पटरी के दाहिनी ओर मोड़ काटने के लिए। गलत दिशा में बढ़ती हुई बस को देखकर मेरा दिल दहल-सा गया।

आत्मा की आवाज हृदय से सुनी जा सकती है। इधर मेरा दिल अज्ञात दुर्घटना की आशंका से धड़का ही था कि एकदम बस के टकराने और लोगों के चीखने-चिल्लाने की आवाज कानों में पड़ी। बस लड़खड़ाती हुई-सी एकदम रुक गई। बस के एकदम रुकने से यात्री एक-दूसरे के ऊपर गिर पड़े।

यात्री किसी तरह शनैः-शनैः बस से बाहर निकले। मैं भी बाहर आया। देखा, बस और ताँगे की टक्कर हुई थी। ताँगे का घोड़ा मर गया था और उसके नीचे पड़ा था उसका चालक। वह भी अपने प्रिय घोड़े के मोह में प्राण त्याग चुका था। ताँगे में बैठी सवारियों में दो व्यक्ति उछल कर दूर जा पड़े थे, किन्तु अगली सीट पर बैठे दो व्यक्ति टूटे ताँगे के नीचे पड़े कराह रहे थे।

इधर, बस में भीड़ अधिक होने के कारण जो लोग पायदान पर लटक रहे थे, उनमें से दो बस के झटके से नीचे गिर पड़े और एक के ऊपर से बस निकल गई। उसका शरीर खून से लथपथ पड़ा था।

यह सब-कुछ पलक झपकते हो गया। ताँगा कैसे और किस ढंग से टकराया, बस वाले ने बाईं ओर से न जाकर दाईं ओर से बस को क्यों निकाला ? बीस के स्थान पर चालीस 'स्टैंडिंग' क्यों लीं ? पायदान पर यात्रियों को क्यों खड़ा रहने दिया गया ? आदि तथ्यों को अब झूठी-सच्ची गवाहियों से तोड़-मरोड़कर बदला जाएगा। ये सब बातें मेरे दिमाग में घूम गईं।

पाँच मिनट में पुलिस का 'फ्लाइंग स्क्वॉड' पहुँच गया। उसने बस, बस ड्राइवर और कण्डक्टर को अपने 'कब्जे' में ले लिया। जनता को घटना स्थल से 20-20 गज की दूरी तक पीछे हटा दिया। फिर ताँगे में बैठे चारों व्यक्तियों और कुछ बस यात्रियों को रोक लिया।

मार्ग-विभेदक निर्जीव पटरी चालक की मूर्खता पर हँस रही थी। प्रायः सड़कों पर लिखी आदर्श पंक्ति 'दो क्षण की बचत के लिए जीवन को खतरे में न डालिए' बस-चालक का उपहास कर रही थी।

मरने वालों की संख्या तीन थी। मामूली चोटों वाले अब भी कराह रहे थे। मैं दुःखी हृदय से तीस हजारी की ओर चल पड़ा। आँखों में अश्रु-बिंदु अनजाने ही आ गए थे।

(222) जलते हुए भवन का दृश्य

संकेत बिंदु—(1) मानव के लिए परम उपयोगी तत्त्व (2) अग्नि लगने के कारण (3) मकान की तीसरी मंजिल में आग (4) आग बुझाने वालों का हाल (5) उपसंहार।

अग्नि मानव के लिए परम उपयोगी तत्त्व है। इसी की सहायता से हम भोजन पकाते

हैं। इसी के द्वारा शरीर को ताप प्रदान किया जाता है। सर्दियों में तो अग्नि बहुत ही प्रिय लगती है। उक्ति प्रसिद्ध है—'अमृतं शिशिरे वह्निः' अर्थात् शिशिर ऋतु (सर्दी के मौसम) में अग्नि अमृत के समान होती है। इसके अतिरिक्त अग्नि की सहायता से अनेक अन्य कार्य भी होते हैं। भाप से चलने वाली गाड़ियों और मशीनों का जीवन अग्नि पर ही निर्भर रहता है। कूड़े-करवट को जलाकर अग्नि वातावरण को स्वच्छ रखने में ही बड़ी सहायता करती है। बड़वानल के रूप में समुद्र के अन्दर विद्यमान अग्नि उसे सदा मर्यादा में रखती है और जठरानल के रूप में प्राणियों के उदर में विद्यमान अग्नि भोजन को पचाने में सहायक होती है। इस प्रकार अग्नि हमारे लिए अत्यन्त उपकारी तत्त्व है।

प्रकृति का अटल नियम है कि जहाँ फूल होते हैं, वहाँ काँटे भी होते हैं। यह नियम अग्नि पर भी लागू होता है। अर्थात् जो अग्नि हमारा अनेक प्रकार से उपकार करती है, उसी के द्वारा कभी-कभी भारी अहित भी हो जाता है। अग्नि द्वारा यह अहित तब होता है, जब वह मानव के लिए उपयोगी वस्तुओं को अपना ग्रास बना लेती है। प्राय: देखा जाता है कि अग्नि कभी-कभी विशाल भवन को या किसी बाजार की कई दुकानों को भस्म कर देती है। जब अग्नि इस प्रकार अवांछित स्थानों पर भड़कती है, तब बड़ा ही वीभत्स दृश्य उपस्थित होता है।

अग्नि लगने के अनेक कारण हो सकते हैं—बिजली के शॉट सरकिट के कारण, खाना बनाने वाली गैस के रिसने के कारण, मिट्टी का तेल या पेट्रोलियम पदार्थों द्वारा अग्नि पकड़ने से, जलती सिगरेट से आदि। कई बार दुश्मनीवश भी आग लगाई जाती है। कई बार जन-हित में आग लगवा दी जाती है।

आग लगने से धन-जन, भवन की हानि होती है। पशु-पक्षी मारे जाते हैं। जीवन-भर की अर्जित सामग्री स्वाहा हो जाती है। लाखों, करोड़ों की सम्पत्ति जल कर राख हो जाती है। निस्सहाय आदमी शरणार्थी बन सड़क पर खड़ा होता है। अपलक नेत्रों से अपनी बरबादी का प्रत्यक्ष गवाह बनता है।

मैं एक दिन स्कूल से घर आ रहा था कि रास्ते में घंटी बजने की आवाज आई। उस घंटी की आवाज को सुनकर लोग कह रहे थे—'हट जाओ, हट जाओ, सड़क खाली कर दो।' एक मिनट बाद सामने से लाल रंग की तीन-चार मोटरें गुजरीं। लोग मोटरों के साथ-साथ उसी दिशा में भाग रहे थे। मैं समझ गया कि अवश्य ही कहीं आग लगी है। मेरी भी इच्छा आग को देखने की हुई। मैं भी जिधर मोटरें गईं थीं, उस ओर चल पड़ा।

आधा फलाँग भी नहीं चला हूँगा कि दाहिनी ओर की गली से भयंकर शोर सुनाई दिया और आग की लपटें नजर आईं। आग देखकर तो मेरी आँखें फटी ही रह गईं। ऐसी आग मैंने पहले कभी न देखी थी। आग एक तीन मंजिले मकान में लगी हुई थी।

आग मकान की तीसरी मंजिल पर लगी थी, किन्तु मंजिल के लोग जल्दी-जल्दी अपना सामान निकाल रहे थे। दूसरी मंजिल पर कुछ सामान बाकी था, किन्तु उसे निकालना

खतरे से खाली न था। तीसरी मंजिल में धुआँधार आग लगी हुई थी। मकान के चारों ओर 100-150 गज तक पुलिस ने घेरा डाला हुआ था।

जिस मकान में आग लगी थी, उसकी लपटें हवा के प्रकोप के साथ वाले मकान पर धावा बोल रहो थीं। साथ वाले मकान में भी हाहाकार मचा था। वे बालटी भर-भर कर आग की ओर फेंक रहे थे तथा अपना सामान बचाने में व्यग्र थे। पड़ोसी उनकी सहायता कर रहे थे।

उधर आग बुझाने वाले लोगों का बुरा हाल था। उन्होंने आग को तीन तरफ से घेर रखा था, किन्तु आग काबू में नहीं आ रही थी। वे एक स्थान से आग बुझाते, उधर दूसरी खिड़की जल उठती। इस प्रकार वे निरन्तर आग से जूझ रहे थे। इसी बीच एक दर्दनाक घटना घटी। दूसरी मंजिल पर रहने वाली एक स्त्री को ध्यान आया कि उसका चार वर्षीय पुत्र अन्दर सोता हुआ रह गया है। फिर क्या था ? उसने चिल्ला-चिल्लाकर आसमान सिर पर उठा लिया। उसकी चीत्कार से पिघलकर आग बुझाने वाले इंस्पेक्टर ने उस स्त्री से वह कमरा, जिसमें उसका बालक सो रहा था पूछा और ढाढस बँधाया, परन्तु स्त्री को तसल्ली कब होने वाली थी।

इंस्पेक्टर ने अपने लोगों को समझाया कि वे कमरे के ऊपर की आग को बुझाएँ और यह ध्यान रखें कि इस कमरे तक आग न पहुँचने पाए। आग बुझाने वाले आदमियों ने बड़ी हिम्मत और बहादुरी से उस सारी आग पर काबू पा लिया। काबू पाते ही उन्होंने अपनी सीढ़ी लगाई और ऊपर चढ़ गए। बच्चा चारपाई पर पड़ा हुआ था, किन्तु कमरे में धुआँ भरा होने के कारण कुछ नजर नहीं आ रहा था। फिर भी इंस्पेक्टर ने उसे ढूँढ़कर उठाया और कन्धे से लगा कर बाहर निकाल लाया। किस्मत का धनी इंस्पेक्टर बाल-बाल बच गया, जैसे ही वह बच्चे को लेकर नीचे उतरा, वैसे ही उस कमरे की छत नीचे गिर पड़ी बच्चा बेहोश था, उसे तुरन्त अस्पताल भेज दिया गया।

जब आग बुझ गई तो, आग बुझाने वाली मोटरें घंटा बजाती हुईं वापस चली गईं। मैं भी इस भयंकर तांडव का विनाशक दृश्य देख भारी मन से घर लौट आया।

(223) निर्वाचन-स्थल का आँखों देखा हाल

संकेत बिंदु—(1) जनता की परिपक्कवता की परीक्षा (2) मतदान प्रारम्भ और पोलिंग बूथ का दृश्य (3) पोलिंग स्टेशन पर नारेबाजी (4) बूथ के भीतर का दृश्य (5) उपसंहार।

'चुनाव' जनता द्वारा अपने प्रतिनिधि चुनने का माध्यम है; जनता को राजनीतिक परिपक्वता की परीक्षा का अवसर है। चुनाव पानीपत या कुरुक्षेत्र का युद्ध नहीं, अपितु प्रयाग या हरिद्वार का कुंभ-सा है।

भारत में तेरहवाँ महानिर्वाचन सितम्बर-अक्तूबर 1999 में हुआ। दिल्ली की सात लोक-सभाई सीटों का चुनाव 6 सितम्बर 1999 को था। सी.सी. कॉलोनी के लिए दो पोलिंग बूथ बने थे। दोनों पोलिंग बूथ राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, सी.सी. कॉलोनी में ही थे।

18 वर्ष से कम का युवक वोट डालने का अधिकारी नहीं होता। इस कारण हम बालक वोट के अधिकारी नहीं थे, किन्तु किसी बारात में जाने का निमंत्रण न मिले तो उसकी शोभा तो देखी जा सकती है, उसके श्रुति-मधुर गीतों का आनन्द तो लिया जा सकता है। अतः हम भी कौतूहल, उत्सुकता और जिज्ञासावश पोलिंग बूथ के आसपास मँडराने लगे।

मतदान प्रातः 7 बजे आरम्भ हुआ। 8-10 मतदाताओं की पंक्ति लगी थी। एक-एक करके मतदाता अन्दर जाता था। अन्दर जाने और बाहर आने की प्रक्रिया में 5 मिनट लग जाते थे। लगता था पोलिंग और प्रिजाइडिंग अधिकारी अनाड़ी थे, अतः अन्दर की कार्यवाही चींटी की चाल से चल रही थी। परिणामतः 9 बजे तक लगभग 50 मतदाता प्रतीक्षा रत हो गए। लोग कानाफूसी कर रहे थे। एक-दो साहसी युवक अधिकारियों से बात करने करने आगे बढ़े, तो रिजर्व पुलिस के सिपाही ने उन्हें रोक दिया। उम्मीदवारों के चुनाव-एजेण्टों से शिकायत की गई। उन्होंने चुनाव अधिकारी से बातचीत की, किन्तु वे अपनी कार्य-पद्धति को बदलने के लिए तैयार न हुए।

पोलिंग-बूथ के बाहर दूर-दूर तक न शामियाने लगे थे, न झंडियाँ। मैंने कौतूहलवश एक चुनाव-एजेण्ट से इसका कारण जानना चाहा। उसने बताया कि प्रायः झगड़े का कारण तम्बुओं में एक्त्रित समर्थक होते हैं, जो नारे लगाते-लगाते हाथापाई कर बैठते थे। अतः शामियाने लगाने पर रोक लगा दी गई है—'न नौ मन तेल होगा, न राधा नाचेगी।'

फिर भी कांग्रेस और भारतीय जनता पार्टी के लोग चुनाव केन्द्र से काफी दूर कुर्सी-मेज डाले बैठे थे। वहीं वे लोग वोटरों को हाथ जोड़कर या हाथ मिलाकर अपने उम्मीदवार को वोट देने के लिए संकेत करते थे या कहते थे।

बारह बजते-बजते पोलिंग बूथ पर नारेबाजी शुरू हो गई। मैं भागा हुआ गया। देखा 8-10 लोग प्रिजाइडिंग ऑफीसर को घेरे खड़े हैं और उसकी कार्य-प्रणाली पर असन्तोष प्रकट कर रहे हैं। उधर लाइन देखी तो दंग रह गया। 80-10 नर-नारी, युवा-वृद्ध पंक्ति में खड़े थे। इधर जिद्दी और अड़ियल अधिकारी मानता न था, उधर घेरा बढ़ता जा रहा था। लाइन टूट गई। पुलिस ने हस्तक्षेप किया, किन्तु उसका हस्तक्षेप भी व्यर्थ गया।

अकस्मात् भारतीय जनता पार्टी का उम्मीदवार उधर आ निकला। लोगों ने चुनाव अधिकारी का घेरा तोड़कर उस उम्मीदवार को घेर लिया। ये सज्जन पुराने खिलाड़ी थे, समझदार थे। चुनाव अधिकारी को पोलिंग बूथ में ले गए। कार्य-पद्धति को देखा और समझा। होता यह था कि चुनाव-कक्ष में पहला अधिकारी सुस्त और चुंधा था। वह वोट-नम्बर ढूँढ़ने में काफी समय लगा देता था। इसके कारण एक-एक वोटर के भुगतान में 5-

5 मिनट लग जाते थे। उसे वहाँ से हटाया गया, इस काम के लिए दो आदमी रखे गए। दो कार्यकर्ता सहयोग के लिए रखे गए। पुनः लाइन लगी और वोट पड़ने शुरू हुए।

तीन बजे मुझे भी अन्दर जाने का सौभाग्य मिला। एक वृद्धा को, जो चलने में असमर्थ थी, मैं अपनी पीठ पर बैठाकर ले गया। बिना पंक्ति मुझे प्रवेश मिल गया। अन्दर की कार्य-संचालन-पद्धति देखी। एक अधिकारी वोटर लिस्ट में से वोटर का नाम देख रहा था। नाम सही होने पर दूसरा अधिकारी बाएँ हाथ की तर्जनी के अग्र भाग पर नाखून के समीप विशेष प्रकार की अमिट स्याही का निशान लगा रहा था। तीसरा अधिकारी काउन्टर फाइल पर हस्ताक्षर करवा कर वोटर नम्बर की पर्ची दे रहा था।

वृद्धा को पर्ची मिलने तक मैं साथ रहा, बाद में उसे कुर्सी पर वैठा दिया गया। अशिक्षित होने के कारण वह स्वयं मशीन का बटन दबाने में असमर्थ थी। अतः केन्द्र-अधिकारी ने उससे उम्मीदवार का नाम पूछा और उसकी इच्छानुसार मशीन का बटन दबा दिया। मत मशीन पर दर्ज हो चुका था। दिल्ली में इस बार मशीनों से मतदान हुआ था। उनमें प्रत्याशियों के नाम व चुनाव चिह्न थे। इससे मतदाताओं को काफी सुविधा हुई।

मैंने वृद्धा की सहायता सेवा-भाव से की हो, ऐसा नहीं। सच्चाई तो यह थी कि मत डालने की प्रक्रिया देखने का मेरा वह एक बहाना था।

अपनी विजय पर प्रसन्न होकर मैं अपने दो-चार दोस्तों के साथ पोलिंग बूथ के चक्कर लगाता रहा। परिचितों को नमस्ते, बड़ों का चरण-स्पर्श करता रहा। लगभग साढ़े तीन बजे भाजपा और कांग्रेस के समर्थकों में थोड़ा झगड़ा हो गया। झगड़े का कारण था—काँग्रेसी झंडे युक्त एक कार से पाँच वोटरों का पोलिंग बूथ के द्वार पर उतरना। भारतीय जनता पार्टी ने कार पर घेरा डाल दिया। झगड़ा बढ़ा। इसी बीच कार की फोटो ले ली गई। नारे-बाजी शुरू हो गई। नारे-बाजी हाथा-पाई में बदली। पुलिस ने हस्तक्षेप किया, किन्तु भारतीय जनता पार्टी के समर्थक कार छोड़ने को तैयार नहीं थे—प्राण जाएं पर, कार न जाईं। था भी यह गैर-कानूनी काम। वोटरों को सवारी की सुविधा देना कानूनी अपराध है। थोड़ी देर बाद पुलिस कमिश्नर पहुँचे। भीड़ हटा दी गई। कुछ देर बातचीत के बाद मामला शान्त हो गया।

पाँच बचने वाले थे। पोलिंग बूथ पर 70-80 वोटरों की लाइन लगी थी। प्रिजाइडिंग ऑफीसर ने बुद्धिमत्ता से काम लिया। पंक्ति में खड़े लोगों को वोट डालने की आज्ञा दे दी।

वोट डालने की प्रक्रिया समाप्त हुई। पोलिंग-एजेण्ट मत-पत्र-पेटी को सील करने में लगे थे, उधर भारतीय जनता पार्टी और काँग्रेस (इ) के समर्थक नारे लगा रहे थे। जोश में होश नहीं था। वे भूल रहे थे कि उनके उम्मीदवार का भाग्य तो मशीन में बंद हो चुका है। फिर नारेबाजी किसलिए?

(224) किसी मेले का आँखों देखा हाल
किसी प्रदर्शनी का आँखों देखा वर्णन

संकेत बिंदु—(1) प्रगति मैदान में मेला (2) भारतीय भाषाओं के स्टाल (3) भारतीय संस्कृति और सभ्यता का नमूना (4) अंग्रेजी मंडप में पर्याप्त भीड़ (5) उपसंहार।

नई दिल्ली में भारत के उच्चतम न्यायालय की बाईं ओर लालबहादुर शास्त्री मार्ग पर एक विशाल मैदान है, जिसे 'प्रगति-मैदान' के नाम से जाना जाता है। वस्तुत: यह मैदान प्रदर्शनी स्थल है। राष्ट्रीय तथा अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर यहाँ प्रदर्शिनियाँ लगती रहती हैं। प्रदर्शनी राष्ट्र की प्रगति की सूचक होती है। अत: इस मैदान का नाम 'प्रगति मैदान' रखा गया है।

13 फरवरी, 2000 को रविवार का दिन। पुस्तक मेले का अंतिम दिन। पिताजी ने प्रात: ही घोषणा कर दी कि आज 'पुस्तक मेला' देखने जाएँगे। अत: रविवार होते हुए भी भोजन अपेक्षा-कृत जल्दी बना। खा-पीकर, विश्राम करने के उपरान्त ग्यारह बजे के लगभग हम चल पड़े प्रदर्शनी देखने। पिताजी ने बड़ी बहन, माताजी और मुझे साथ लिया। टैक्सी की और चल दिए प्रगति-मैदान के लिए। लगभग आधा घंटे में हम वहाँ पहुँच गए।

पुस्तक-प्रदर्शनी पाँच हॉलों में लगी थीं। तीनों हॉल एक दूसरे से पर्याप्त दूरी पर थे। सबसे सुन्दर स्थान अंग्रेजी वालों का था। वे दो हॉल और तीसरे हॉल का ग्राउंड फ्लोर घेरे हुए थे। हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाएँ दासी-पुत्री होने के कारण जरा दूर 6 नम्बर हॉल में बिठा रखी थीं।

हिन्दी को पृथक् हॉल प्रदान नहीं किया गया था। अंग्रेजी की मानसिकता के व्यवस्थापकों में हिन्दी को गौरव प्रदान करने का प्रश्न ही नहीं उठता। इसलिए भारतीय भाषाओं के अन्दर उसे स्थान दिया गया। 'हिन्दी-हॉल' कहने और नाम देने में साम्प्रदायिकता को बढ़ावा मिलता है।

भारतीय भाषा के प्रकाशकों ने अपने प्रकाशनों को हैसियत के अनुसार स्टैंड अथवा स्टॉल लेकर प्रदर्शित किया हुआ था। पुस्तकों के रंगीन तथा आकर्षक आवरण तथा नाम देखकर हम लोग पुस्तक उठाते, उसे उलटते-पलटते और अच्छी लगती तो खरीद लेते। एक चीज बिना माँगे मिल रही थी—प्रकाशकों के सूची-पत्र। इस मंडप से हमने 5-6 निबन्धों की तथा 4-5 सामयिक विषयों की पुस्तकें खरीदीं।

इस मंडप को देखने में समय लगा। पिताजी के मिलने वाली, माताजी की शिष्याएँ, बहिन के सहपाठी और मेरे मित्र मिले। मिलने पर चेहरे मुस्करा, उठते। किसी से हाथ

मिलाकर, कभी हाथ जोड़कर, कभी चरण-स्पर्श कर अभिवादन करते। एक-दो मिनट गपशप करते।

यह मंडप भारतीय संस्कृति और सभ्यता का नमूना था। वेश-भूषा, आचार-व्यवहार, बोलचाल के सभी रूप और रंग इस मंडप में देखने को मिलते थे। बंगाल, मद्रास, महाराष्ट्र, पंजाब तथा उत्तरी भारत की नारियों को धोती बाँधने और ओढ़ने में विविधता देखकर लगा सचमुच हम भारतीय हैं। यहाँ विविधता में भी एकरूपता के दर्शन हुए।

एक बात बताना मैं भूल गया। जिस-जिस स्टैंड या स्टॉल पर बच्चों की पुस्तकें प्रदर्शित थीं, वहाँ भीड़ भी अधिक थी और बिक्री भी। सर्वाधिक भीड़ 'डाइमंड पब्लिशर्स' या 'चिल्ड्रन बुक ट्रस्ट' के स्टॉल पर थी। बच्चों के लिए बहुरंगी पुस्तकें, किन्तु बहुत सस्ते मूल्यों में, ये दो ही प्रकाशक बेच रहे थे। वैसे भी, यह मेला बाल-साहित्य को समर्पित था। एक हॉल में बाल-साहित्य की भव्य प्रदर्शनी देखते ही बनती थी।

दो घंटे की चहल-कदमी से हम लोग थक गए थे। इसलिए थोड़ी देर के लिए हॉल से बाहर खाने-पीने के परिसर में पहुँचे। गरम-गरम कॉफी पी। समोसे और गुलाबजामुन खाए। थोड़ा विश्राम किया।

अब हम गए अंग्रेजी-मंडप में। अंग्रेजी-मंडप में पर्याप्त भीड़ थी। कलात्मक दृष्टि से भारतीय प्रकाशनों से सहस्रों गुणा अधिक सौन्दर्यपूर्ण पुस्तकें। बच्चों के लिए बहुरंगी और बढ़िया पुस्तकें देखकर तो मन ही नहीं भरता था। माताजी बार-बार कहती थीं, 'बेटा जल्दी करो।' पर बेटा जल्दी तो शरीर से कर सकता था, मन तो पुस्तकों में अटका था। यहाँ हमने 15-20 पुस्तकें खरीदीं। पिताजी ने अद्यतन विषयों अर्थात् करेण्ट टॉपिक्स पर तथा माताजी ने शिक्षा-मनोविज्ञान पर दो-चार पुस्तकें खरीदीं।

अंग्रेजी-मंडप में अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त अन्य विषयों की बहुत पुस्तकें देखीं। इस मंडप की विशालता, साज-सज्जा, प्रकाशकों के परिधान, बातचीत का ढंग, खरीदी गई पुस्तकें बढ़िया लिफाफों में डालकर देने की पद्धति, सूची-पत्रों की अपेक्षाकृत विशालता देखकर लगा कि कहाँ राजा भोज और कहाँ गंगू तेली। एक ओर भारतीय भाषा-मंडप की दरिद्रता और खरीददारों का अभाव तथा दूसरी ओर, अंग्रेजी मंडप की शान-शौकत, चहल-पहल और खरीददारी।

सायं 7.30 बज चुके थे। चल-चलकर पैर जवाब दे चुके थे, परन्तु मन देख-देखकर नहीं भर रहा था; उसकी तमन्ना थी, और देखा जाए। 'समरथ को नहिं दोष गुसाईं।' मन को झुकना पड़ा। हम बाहर निकल आए। भाई-बहन पुस्तकों के पैकिट उठाए हुए थे, तो माताजी-पिताजी सूचीपत्रों का ढेर।

(225) अविस्मरणीय हॉकी मैच/ किसी मैच का आँखों देखा हाल

संकेत बिंदु—(1) खेल मनुष्य के लिए उपयोगी (2) विशिष्ट अतिथि के रूप में (3) खेल प्रारम्भ और मध्यावकाश का निर्णम (4) मध्मावकाश के बाद का खेल (5) उपसंहार।

खेल मनुष्य के लिए बहुत उपयोगी हैं। विशेषकर विद्यार्थी-जीवन में खेलों का बहुत महत्त्व है। खेलकूद से शरीर तो स्वस्थ रहता ही है, चरित्र-निर्माण भी होता है। खेल के मैदान में हमें अनेक अच्छी बातें सीखने को मिलती हैं। परस्पर सहयोग एवं सहनशीलता खेलों की सबसे बड़ी देन है। इसी को 'खेल-भावना' (Sportsman Spirit) कहा जाता है। खेल-भावना के विकास के लिए भिन्न-भिन्न स्तरों पर मैच आयोजित किए जाते हैं। प्राय: सभी खेलों में अन्तर्विद्यालयीय मैचों से लेकर अन्तरराष्ट्रीय मैच तक प्रचलित हैं। मैच (प्रतियोगिता) का दृश्य बड़ा ही आकर्षक और प्रसन्नताप्रद होता है। लीजिए एक अन्तर्विद्यालयीय हॉकी मैच का आनन्द।

इस वर्ष 'सीनियर-सेकेण्डरी स्कूल हॉकी टूर्नामेंट' का फाइनल मैच गवर्नमेंट वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय और डी.ए.वी. वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय के बीच वसन्त पंचमी के दिन हुआ। स्थान था, शिवाजी हॉकी स्टेडियम। मैच सायंकाल ५ बजे से आरम्भ होना था।

साढ़े चार बजे से ही लोगों का आना शुरू हो गया था। पौने पाँच बजे दिल्ली के शिक्षा मंत्री महोदय पधारे। आज के मैच की विशेष अतिथि वही थे। समय पर मैदान भर चुका था। ठीक पाँच बजे से पाँच मिनट पूर्व दोनों स्कूलों के खिलाड़ी मैदान में उतरे। गवर्नमेंट स्कूल के खिलाड़ी सफेद कमीज और खाकी निक्कर पहने थे तथा डी.ए.वी. स्कूल के खिलाड़ियों का गणवेश था पीली जर्सी और नीली निक्कर। पहले दोनों ओर के खिलाड़ियों ने पंक्तिबद्ध खड़े होकर माननीय मुख्य अतिथि को बालचर-प्रणाम किया और उसके बाद उन्होंने खेल के मैदान में अपनी पोजीशन ले ली।

ठीक पाँच बजे निर्णायक (रेफरी) की सीटी की आवाज पर दोनों ओर के कप्तान उपस्थित हो गए। निर्णायक ने दिशाओं का निर्णय करने के लिए टॉस किया, जिसमें डी.ए.वी. स्कूल जीता। दिशा-निर्णय होने पर दोनों ओर के खिलाड़ी यथा-स्थान खड़े हो गए। निर्णायक की दूसरी सीटी बजते ही दोनों स्कूलों के अग्रसरों ने परस्पर तीन बार हॉकी छुआकर खेल प्रारम्भ किया।

खेल आरम्भ हुए पाँच मिनट भी नहीं बीते थे कि डी.ए.वी. स्कूल के खिलाड़ियों ने अकस्मात् गवर्नमेंट स्कूल पर एक गोल कर दिया। बस, विद्यार्थियों में हलचल मच गई। डी.ए.वी. स्कूल के विद्यार्थी लगे ताली बजाने। कुछ उछल-उछलकर अपने स्कूल की

जय-जयकार कर रहे थे। गवर्नमेंट स्कूल वालों के चेहरे उदास हो गए, फिर भी वे खिलाड़ियों को प्रोत्साहित कर रहे थे।

गोल होने के बाद पुनः खेल शुरू हुआ तो गवर्नमेंट स्कूल के विद्यार्थी अधिक सतर्क और सक्रिय थे। उन्होंने गोल करने की बार-बार कोशिश की, किन्तु सफलता न मिली। इस भाग-दौड़ में निर्णायक की सीटी बज गई और मध्यावकाश हो गया।

मध्यावकाश का दृश्य दर्शनीय था। डी.ए.वी. स्कूल के विद्यार्थी अपने खिलाड़ियों को शाबाशी दे रहे थे और गवर्नमेंट स्कूल के विद्यार्थी अपने खिलाड़ियों को डाँट रहे थे, किन्तु उनके शिक्षक महोदय कह रहे थे—'घबराने की कोई बात नहीं। हिम्मत से काम लोगे तो एक की क्या बात है, दो गोल कर दोगे।'

निर्णायक की सीटी के पश्चात् खेल पुनः आरम्भ हुआ। इस बार टीमों ने गोल की दिशा बदल ली थी। इस बार खेल में गवर्नमेंट स्कूल के खिलाड़ी गोल करने की जी-तोड़ कोशिश कर रहे थे। सौभाग्य से एक बार गेंद डी.ए.वी. स्कूल के गोल की सीमा तक पहुँच भी गई। एक खिलाड़ी ने बड़ी शान से हिट जमा दी, किन्तु गोलकीपर की सावधानी से गेंद गोल के अन्दर न जा सकी।

गेंद अधिकतर गवर्नमेंट स्कूल के गोल के समीप ही रहती थी, किन्तु दूसरा गोल नहीं हो रहा था। उधर गोल करने के लिए मानों गेंद ने उन्हीं के गोल के समीप रहने की कसम खाई थी। इस चक्कर में खेल समाप्त होने में कुल पाँच मिनट शेष रह गए। एकाएक गेंद डी.ए.वी. स्कूल के गोल के समीप गई। एक खिलाड़ी ने जोर से हिट मारी और गेंद गोल के अन्दर पहुँच गई और गवर्नमेंट स्कूल के खिलाड़ियों की जान में जान आई।

अब तीन मिनट बाकी थे। दोनों ओर के खिलाड़ी जान की बाजी लगाकर खेल रहे थे। गवर्नमेंट स्कूल का सितारा तेज था। निर्णायक की सीटी बजने को ही थी कि गेंद डी.ए.वी. स्कूल के गोल में पहुँची हुई थी। मरते-मरते गवर्नमेंट स्कूल ने एक गोल से बाजी मार ली।

गवर्नमेंट स्कूल के खिलाड़ियों को उनके साथी कन्धों पर उठा-उठाकर खुशियाँ प्रकट कर रहे थे। गवर्नमेंट स्कूल के कप्तान ने 'डी.ए.वी. स्कूल : हिप-हिप हुर्रे' का तीन बार नारा लगवाया। उधर डी.ए.वी. स्कूल वालों के चेहरे फीके पड़े हुए थे। इतना अवश्य है कि जीत चाहे गवर्नमेंट स्कूल की हुई, किन्तु उन्हें भी जीवन-भर स्मरण रहेगा कि पाला किसी बलवान् से पड़ा था।

दस मिनट की अशान्ति के पश्चात् प्रबन्धकों ने शान्ति स्थापित करवा दी। आदरणीय अतिथि ने 'खेल और स्वस्थ प्रतियोगिता' का महत्त्व समझाते हुए एक संक्षिप्त भाषण दिया और अन्त में गवर्नमेंट स्कूल के कप्तान को अपने कर-कमलों से विजय की प्रतीक 'शील्ड' प्रदान की। शिक्षा-निदेशक ने आदरणीय अतिथि महोदय का धन्यवाद करते हुए कार्यक्रम-समाप्ति की घोषणा की।

(226) किसी समारोह का आँखों देखा हाल

संकेत बिंदु—(1) हिंदी अध्यापकों का स्मरणांजलि दिवस (2) अध्यापकों का विवरण (3) कार्यक्रम का शुभारम्भ अध्यापकों के सम्मान से (4) अंत्याक्षरी कार्यक्रम और विजयी छात्रों को पुरस्कार (5) उपसंहार।

शरद् ऋतु का रविवार, 5.1.17। दिल्ली प्रांत के श्रेष्ठतम दस हिन्दी अध्यापकों का स्मरणांजलि दिवस। सूर्य भारती प्रकाशन के संचालक द्वारा इन श्रद्धेय अध्यापक-अध्यापिकाओं की कृतज्ञता-ज्ञापन का दिन।

कार्यक्रम का स्थान था, दिल्ली पब्लिक लायबरेरी हॉल, डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी मार्ग, दिल्ली। समय था अपराह्न 3.30 बजे। इस अवसर पर अध्यापक-अध्यापिकाओं का आगमन तीन बजे से ही आरम्भ हो गया था।

साढ़े तीन बजते-बजते हिन्दी अकादमी, के सचिव डॉ. रामशरण गौड़ तथा महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक के हिन्दी आचार्य डॉ. बैजनाथ सिंहल पहुँच गए। तनसुखराम गुप्त ने आगे बढ़कर उनका स्वागत किया। संचालक श्री अरुण कुमार गुप्त उन्हें समारोह स्थल की ओर ले गए। अब प्रतीक्षा थी दिल्ली सरकार के तत्कालीन शिक्षा मंत्री डॉ. हर्षवर्धन की। लगभग 4 बजे जब सेल्यूलर फोन पर उनसे सम्पर्क किया तो उन्होंने बताया कि वे साढ़े चार बजे तक पहुँचने वाले हैं।

स्मरणांजलि कार्यक्रम भी अद्भुत था। दिल्ली के बच्चों की अन्त्याक्षरी प्रतियोगिता में जो पुरस्कार राशि बाँटी जानी थी, वे इन्हीं अध्यापकों के नाम पर रखी गई थी। जिसका विवरण इस प्रकार था—

गोलोकवासी हिन्दी अध्यापकों की स्मृति में

पहला पुरस्कार : श्री गणेश शर्मा (बहुगुणा) शास्त्री पुरस्कार : 2100.00
(मारवाड़ी सी.से. स्कूल, नई सड़क)

दूसरा पुरस्कार : श्री ओम्प्रकाश कौशिक पुरस्कार : 1500.00
(राजकीय व.मा. विद्यालय, मोरी गेट)

तीसरा पुरस्कार : श्री कृष्णचन्द्र 'उम्मीद' पुरस्कार : 1100.00
(रामजस सी.से. स्कूल नं: 3, कूँचा नटवाँ)

सात प्रोत्साहन पुरस्कार : सेवा-निवृत्त हिन्दी शिक्षकों के नाम पर

चौथा पुरस्कार : पं. हीरालाल शास्त्री (जैन) पुरस्कार : 501.00
(हीरालाल जैन स्कूल, पहाड़ी धीरज)

पाँचवाँ पुरस्कार : श्री लक्ष्मीचंद गुप्त पुरस्कार : 501.00
(आर्य वैदिक सी.से. स्कूल, नया बाँस)

छठा पुरस्कार : श्री योगेन्द्र अग्रवाल पुरस्कार : 501.00
(रामजस सी.से. स्कूल नं: 1, दरियागंज)

सातवाँ पुरस्कार : श्री ओमप्रकाश शर्मा पुरस्कार : 501.00
(राजकीय सी.से. स्कूल, रमेश नगर)

आठवाँ पुरस्कार : श्री रोहतासिंह पुरस्कार : 501.00
(राजकीय सी.से. स्कूल, जौनती)

नवाँ पुरस्कार : डॉ. सतीश चड्ढा पुरस्कार : 501.00
(राजकीय सी.से. स्कूल, तिलक नगर)

दसवाँ पुरस्कार : श्रीमती लज्जावती गुप्ता पुरस्कार : 501.00
(राजकीय सी.से. स्कूल, बुलबुली खाना)

'सरस्वती वंदना' से कार्यक्रम का शुभारम्भ हुआ। श्रीमती मंजुशर्मा (अध्यापिका : टैगोर गार्डन) ने मधुर कंठ से 'वीणावादिनी वर दे' गीत गाकर वाग्देवी की वंदना की। तत्पश्चात् तनसुखराम गुप्त ने इस आयोजन की विशेषता पर प्रकाश डाला और बताया कि गत तीन दशकों से वे हिन्दी अध्यापक-अध्यापिकाओं को सम्मानित करते आ रहे हैं।

उन्होंने आगे कहा—हमें गर्व है कि हमारे निमन्त्रण पर वयोवृद्ध साहित्यकार श्री वियोगी हरि; दार्शनिक, चिंतक, कथाकारश्री जैनेन्द्र; मूर्द्धन्य समीक्षक (पद्मश्री) डॉ. नगेन्द्र; आधुनिक भाषा-विज्ञान के महापंडित डॉ. भोलानाथ तिवारी, भू.पू. वाइस चाँसलर एवं हिन्दी के समीक्षक डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त, पंजाब विश्वविद्यालय के आचार्य और तत्कालीन हिन्दीविभागाध्यक्ष डॉ. यश गुलाटी, प्रसिद्ध साहित्यकार और कवि (पद्मश्री) डॉ. श्यामसिंह 'शशि' तथा केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय (भारत सरकार) के निदेशक डॉ. गंगा प्रसाद 'विमल' ने पधार कर सम्मान उत्सवों की शोभा बढ़ाकर और अपने कर-कमलों से हिन्दी-शिक्षकों को सम्मान प्रदान कर उन्हें गौरवान्वित कर चुके हैं।

इनमें से तीन अध्यापकों ने धराधाम को छोड़कर अपना स्थान स्वर्ग में बना लिया है। ये हैं—सर्वश्री गणेश शर्मा शास्त्री, ओमप्रकाश कौशिक तथा कृष्णचन्द्र 'उम्मीद'।

श्री गणेश शर्मा अपने समय के यशस्वी और विख्यात प्रभाकर शिष्यों तथा मारवाड़ी स्कूल में पढ़े विद्यार्थीगण के लिए सदा स्मरणीय रहेंगे।

श्री ओमप्रकाश कौशिक जुझारू शिक्षक थे। जीवन-पर्यन्त 'टीचर कम्युनिटी' के लिए लड़ते रहे। उनके परशुराम जैसे तपस्वी स्वरूप को देखकर तो शिक्षा-अधिकारी भी भयभीत रहते थे।

उर्दू के प्रसिद्ध शायर, गजल गायक, कवि-सम्मेलनों और मुशायरों की जान और शान कृष्णचन्द्र 'उम्मीद' सम्पूर्ण जीवन रामजस स्कूलों की सेवा करते रहे।

इन तीनों महापुरुषों के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए आइए एक मिनट मौन खड़े होकर इन्हें श्रद्धा-सुमन चढ़ाएं।

इसके बाद सम्मान कार्यक्रम शुरू हुआ। सर्वप्रथम डॉ. रामशरण गौड़ को शाल ओढ़ाकर और पुष्प माला पहनाकर श्री अरुण कुमार गुप्त ने स्वागत किया। डॉ. बैजनाथ सिंहल का स्वागत श्री महेशचन्द्र शर्मा ने किया। श्री महेशचन्द्र शर्मा और श्री वासुदेव शर्मा शास्त्री का स्वागत डॉ. रामशरण गौड़ ने किया।

तदनन्तर अंत्याक्षरी कार्यक्रम आरम्भ हुआ। निर्णायक बने सर्वश्री डॉ. बैजनाथ सिंहल, वासुदेव शर्मा शास्त्री तथा योगेन्द्र अग्रवाल। दिल्ली के विभिन्न स्कूलों से लगभग 100 विद्यार्थियों ने इस कार्यक्रम में भाग लिया। कार्यक्रम अत्यंत रोचक और आकर्षक रहा। हाँ, कभी-कभी निर्णय पर विवाद होता था, किन्तु निर्णायक तर्क द्वारा अपने निर्णय की पुष्टि करके उसे शांत कर देते थे। पराजित होने पर अपने को पराजित न मानना, यह मानवीय दुर्बलता है। इसीलिए निर्णय पर विवाद उठता था। अन्त्याक्षरी का अंत और भी रोचक रहा। जब दो छात्र एक-दूसरे को पराजित कर प्रथम पुरस्कार प्राप्त करने के लिए उत्तेजित थे, तभी माननीय मुख्य अतिथि दिल्ली सरकार के शिक्षा मंत्री डॉ. हर्षवर्धन पधार गए। अन्त्याक्षरी कार्यक्रम रोक कर सूर्य भारती प्रकाशन की ओर से श्री अरुण कुमार गुप्त ने डॉ. हर्षवर्धन का पुष्पमाला पहना कर और शाल ओढ़ाकर स्वागत किया।

अन्त्याक्षरी कार्यक्रम पुन: शुरू करने से पहले श्री महेश चन्द्र शर्मा ने निर्णायकों को यह सुझाव दिया कि क्यों न दोनों को प्रथम पुरस्कार (इक्कीस-इक्कीस सौ रुपए) देकर यह कार्यक्रम समाप्त कर दिया जाए। निर्णायकों की सहमति से दोनों विद्यार्थियों को प्रथम घोषित कर दिया गया।

पुरस्कार वितरण से पूर्व सेवा-निवृत्त सात अध्यापक-अध्यापिकाओं का स्वागत किया गया। डॉ. रामशरण गौड़ तथा डॉ. हर्षवर्धन ने पुष्पमाला पहनाकर, शाल ओढ़ाकर इनका सम्मान किया। इसमें भी श्री ओमप्रकाश शर्मा (कनाडा चले गए हैं) अत: वे उपस्थित नहीं थे। दूसरी ओर, पं. हीरालाल शास्त्री (जैन) को वृद्धावस्था के कारण मंच पर चढ़ने में असमर्थ देख डॉ. हर्षवधन ने स्वयं मंच से उतरकर उनका अभिनन्दन किया। भाव-विभोर उपस्थित शिक्षकों ने ख़ूब तालियाँ बजाकर उनके प्रति सम्मान प्रकट किया।

शिक्षक-सम्मान के पश्चात् विद्यार्थियों का पुरस्कार कार्यक्रम आरम्भ हुआ। प्रथम दो तथा तृतीय छात्र-छात्राओं के विजयी मुस्कान युक्त चेहरे देखने वाले थे। उनके भाल गर्व से दमक रहे थे। डॉ. रामशरण गौड़ ने तीनों को पुरस्कार राशि देने से पूर्व उन्हें पुष्पहार पहनाए। प्रथम दो बच्चों से वे इतने भावाभिभूत थे कि उन्होंने दोनों को अपनी गोद में उठा लिया। शेष विजयी बच्चों को पुरस्कार सम्मानित शिक्षकों द्वारा दिलवाए गए। साथ ही तीनों विजयी विद्यार्थियों के हिन्दी अध्यापकों को भी पुष्पहार तथा शाल से सम्मानित किया गया।

अभी एक महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम शेष था। 'स्मरणांजलि पुस्तिका' का विमोचन। इसमें सम्मानित दसों अध्यापकों का विस्तृत सचित्र परिचय के साथ देश के भावी नागरिकों को सुयोग्य बनाने में उनकी भूमिका का भी चित्रण था। तालियों के बीच इसका लोकार्पण किया डॉ. बैजनाथ सिंहल ने।

डॉ. हर्षवधन, डॉ. रामशरण गौड़ तथा डॉ. बैजनाथ सिंहल ने कार्यक्रम की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए सूर्य भारती प्रकाशन के संचालकों को हिन्दी सेवा के लिए बधाई दी।

अन्त में सूर्य भारती प्रकाशन की ओर से स्मरणांजलि समिति के अध्यक्ष श्री महेशचन्द्र शर्मा ने विशिष्ट महानुभावों और शिक्षकों को कार्यक्रम में भाग लेकर इसको पूर्णत: सफल बनाने के लिए धन्यवाद दिया।

कार्यक्रम समाप्ति पर उपस्थित प्रत्येक अध्यापक-अध्यापिका को एक सुन्दर बैग में नव वर्ष की डायरी तथा 'स्मरणांजलि' पुस्तिका देकर सूर्य भारती प्रकाशन ने अपने आपको कृतार्थ समझा।

(227) भुलाए नहीं भूलता वह दृश्य / अद्भुत दृश्य का वर्णन

संकेत बिंदु—(1) अद्भुत अदृश्य का आँखों देखा हाल (2) गणेश जी को दुग्धपान (3) विभिन्न पत्रों द्वारा प्रतिक्रिया (4) सरकार द्वारा प्रचार माध्यमों में खंडन (5) उपसंहार।

जीवन में कई बार ऐसे दृश्य देखने को मिलते हैं जो अपनी अपूर्वता, विचित्रता और विलक्षणता के कारण हमें मुग्ध और स्तब्ध कर देते हैं। ऐसा अद्भुत, अप्रत्याशित, असाधारण या विलक्षण दृश्य सहसा देखने पर उसका कारण, रहस्य या स्वरूप समझ में नहीं आता। ऐसा ही अद्भुत दृश्य आँखों देखा है, इसलिए उसकी सत्यता में अविश्वास प्रकट करना प्रकृति और परमेश्वर पर अश्रद्धा प्रकट करना ही कह सकते हैं।

आश्विन कृष्ण द्वादशी तद्नुसार 21 सितम्बर 1995 को ब्राह्म मुहूर्त से रात्रि 12 बजे तक विघ्न विनाशक गणपति, उनके पिता शंकर, माता पार्वती तथा शिववाहन नंदी की प्रतिमाओं ने विश्व में सर्वत्र दुग्धपान किया। प्रतिमाएं चाहे प्रस्तर की थीं, पीतल, ताँबे या चाँदी अथवा अन्य धातुओं की, सबने ही दुग्धपान किया।

उस दिन प्रात: से ही मंदिरों में जन-समूह उमड़ पड़ा। ठाठें मारने लगा। हर हिन्दू गणेश जी को दुग्धपान करवा कर अपना जीवन कृतार्थ करना चाहता था। व्यवस्था को बनाए रखने के लिए अनेक भक्त मंदिरों में पंक्तियाँ लगवाने लगे, पर जनता को धैर्य कहाँ? जनता ही क्यों? नेतागण, पत्रकार और तथा बुद्धिजीवी भी इस अलौकिक दृश्य को देखने चल पड़े। व्यवस्था रखने के लिए पुलिस को मंदिरों की घेरा-बंदी करनी पड़ी।

'ओम् नम: शिवाय' का जाप शुरू हो गया। भक्तगण मंदिर में बैठकर गणेश जी की आरती गाने लगे।

प्रेस फोटोग्राफर इस दृश्य के चित्र और पूरे कार्यक्रम की रील खींचने लगे। स्थानीय नेता जब मंदिर में आते तो भीड़ में हल-चल मच जाती। उनको दर्शन करवाने के लिए पुलिस को कुछ धका-मुक्की करनी पड़ती।

तत्कालीन विपक्ष के नेता श्री अटल बिहारी वाजपेयी, तत्कालीन चुनाव-आयुक्त श्री टी.एन. शेषन तथा शिक्षाविद् किरीट जोशी ने इस तथ्य को स्वीकार किया। विश्व हिन्दू परिषद् ने तो इसमें भारत के भाग्य-परिवर्तन के लक्षण महसूस किए। साधु-महात्माओं ने भारत के उज्ज्वल भविष्य की झाँकी मानी।

सनसनीखेज खबरों के लिए प्रसिद्ध 'सन' के संवाददाता डेविड वुडहाउस ने साउथाल (इंग्लैंड के) मन्दिर का निरीक्षण करने के बाद लिखा, 'मैंने आश्चर्य के साथ देखा कि दो हिन्दू प्रतिमाओं ने मेरे हाथ की चम्मच से दूध पिया। नन्दी की प्रतिमा ने केवल 10 सेकिण्ड में पूरी चम्मच दूध गड़प लिया। मैंने प्रतिमा की पूरी तरह जाँच करने पर पाया कि वह जमीन में गड़ी हुई थी और कहीं कोई चालाकी नहीं थी। मैंने देखा और विश्वास किया कि कुछ विचित्र घट रहा है। पर वह क्या है ?'

दि टाइम्स ने 'दूध और चमत्कार के बारे में' शीर्षक सम्पादकीय लेख में कहा कि 'हमारे मध्य रह रहे भारतीयों के व्यवहार से सिद्ध होता है कि प्रगतिशील खुले मस्तिष्क और धार्मिक आस्थाएं साथ-साथ रह सकते हैं।'

भारत की तत्कालीन नास्तिक (संयुक्त) सरकार ने दूरदर्शन तथा अन्य प्रचार माध्यमों से इसका जोरदार खंडन किया। इतना ही नहीं दूरदर्शन के 'आज तक' के कार्यक्रम में तो इसका मजाक उड़ाते हुए एक मोची को जूता गाँठने के लोहे के औजार को दूध पिलाते दिखाया गया।

कुछ बुद्धिजीवियों ने दुग्ध-पान को नकारा तो नहीं, किन्तु इसे विज्ञान का सिद्धांत माना। उनके अनुसार (1) पृष्ठ तनाव वेग (सरफेसटेंशन), गुरुत्वाकर्षण (केपीलेटी एक्शन) एवं मूर्तियों के छिद्रयुक्त होने (फोरस) होने में छिपा हुआ है। यह एक सामान्य घटना थी, कोई चमत्कार नहीं। इसे चमत्कार मानना महज अन्ध-विश्वास है।

यदि यह विज्ञान का सिद्धांत है तो उसमें शाश्वत सत्य के दर्शन होने चाहिएं। जबकि शिव-परिवार ने 21 सितम्बर के पश्चात् दुग्ध ग्रहण बिल्कुल नहीं किया।

दूसरी ओर, अप्रैल 1995 में इटली के एक छोटे से गाँव में माता मरियम की आँखों से खून के आँसू बहने का समाचार आने पर लाखों कैथालिक श्रद्धालु वहाँ पहुँचे। स्वयं पोप ने भी वेटीकन से अपना दूत इस सत्य का परीक्षण करने भेजा। किसी ने इस घटना का उपहास नहीं उड़ाया।

वस्तुतः इस दृश्यमान् भौतिक जगत् के पीछे कुछ ऐसी शक्तियाँ भी सक्रिय हैं, जिनके कार्यों को सामान्य तर्क बुद्धि से समझना और वैज्ञानिकता का आवरण पहनाना संभव नहीं। यह तो प्रभु पर, उसकी अलौकिकता पर तथा जगत्-नियंता की दिव्य शक्ति पर विश्वास और श्रद्धा रहने पर ही इसका महत्त्व समझा जा सकता है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी अपने 'रामचरितमानस' की प्रारम्भिक वन्दना में इसीलिए कहा है—

भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम्॥

(228) होली के दिनों में बाजार का दृश्य

संकेत बिंदु—(1) होली का त्यौहार दो दिन का (2) व्यापारिक संस्थान, मंडियाँ और औद्योगिक प्रतिष्ठान (3) सड़कों, बाजारों, में होली का दृश्य (4) नारियों की ब्रज और हरियाणवी शैली की होली (5) उपसंहार।

होली का त्यौहार दो दिन मनाया जाता है—पहले दिन पूर्णिमा को होली-दहन और दूसरे दिन प्रतिपदा को धुलेण्डी। होली-दहन के दिन की बाजार में मस्ती का प्रभाव विविध रूपों में देखा जाता है। रंग-गुलाल, पिचकारी, पिचकारीनुमा तमंचे तथा रंग फेंकने के खिलौनों एवं मिठाई की दुकानों पर भीड़ होती है। खरीददारों को औरों से पहले माल चाहिए, इसलिए उनकी अधीरता और दुकानदार का ग्राहकों की चैं-चैं से परेशानी का दृश्य देखने योग्य होता है। नगरों में इस दिन सार्वजनिक अवकाश नहीं होता, अत: होली का हुड़दंग नहीं मचता।

दूसरी ओर, उत्तर भारत में अपराह्ण गली-मोहल्ले तथा बाजारों के चौराहों पर होलिका रूप में लकड़ी का ढेर इकट्ठा किया जाता है। सायंकाल नारियाँ उसका पूजन करती हैं। नारियों के साथ बच्चे भी होते हैं। बच्चों में होली खेलने का उत्साह तो होता है, किन्तु होलिका-पूजन में वे स्वच्छ और व्यक्तित्व-प्रदर्शन करने वाले वस्त्र पहनकर आते हैं, अत: न कोई रंग फेंकता है, न वे फिंकवाते हैं। यों इक्का-दुक्का घटनाओं से होली का उल्लास प्रकट नहीं होता, माहौल नहीं बनता। बड़ी सादगी और श्रद्धापूर्वक होली-पूजन सम्पन्न होता है।

धुलेण्डी के दिन व्यापारिक संस्थान, मंडियाँ, औद्योगिक प्रतिष्ठान बन्द हैं। राजकीय, अर्धराजकीय तथा निजी कार्यालय बन्द हैं। महानगरों के सरकारी परिवहन (बसें) की गति मध्याह्न 2 बजे तक अवरुद्ध है। सड़कें सुनसान हैं। बाजार चहल-पहल शून्य हैं। लगता है धुलेण्डी का पावन-दिन सब लोगों ने केवल उमंग, उल्लास और मौजमस्ती के लिए सुरक्षित रखा है।

नौ बजते-बजते होली का हुड़दंग गलियों, मुहल्लों में मन्दगति से शुरू हुआ। बच्चों ने इस हुड़दंग का श्रीगणेश किया। बच्चों के इस हुड़दंग ने युवक-युवतियों, अधेड़-वृद्धों का हृदय तरंगित किया, उल्लसित किया। दस बजते-बजते युवा-युवतियों की टोली निकल पड़ीं। वे निकालने लगे घरों में घुसे साथियों को। मदमाती मुस्कान से उनके स्वागत का आह्वान करने लगे। रंग-बिरंगा गुलाल लगाकर, एक दूसरे के गले मिलकर होली की शुभकामनाएँ देने लगे और मस्ती के आलम में साथी बनने का आग्रह करने लगे। उसी समय साथी और पड़ोस के घरों में लोग रंग की बाल्टी उँडेलकर, पिचकारी के स्नेह जल से प्रेम के छींटे फेंककर, गुब्बारे की मस्तीभरी मार से टोली का ध्यान आकर्षित करते हुए तुनक मिजाज और बिगड़े दिलों का स्वागत करने लगे।

नीरव सड़कों, सुनसान गलियों और शांत बाजारों में होली का यौवन झलकने लगा। शांत और शून्य बाजारों को होली की टोलियों ने जीवन दे दिया, उनमें यौवन भर दिया। सर्वत्र चहल-पहल।

ढोल की थाप पर नाचती-गाती, 'होली है, भई होली है', का घोष करती, शरारत करती, मस्ती में भंगड़ा करती बाजारों को सुशोभित करती हैं, ये टोलियाँ। भाल, बाल और गाल गुलाल से गुलाबी हैं। पहने हुए कपड़ों पर इन्द्रधनुषी रंगों से हृदय की मस्ती फूट रही है। नाच रहे हैं, गा रहे हैं, अर्ध-अश्लील तथा द्वि-अर्थी वचनों को बोलकर अन्तःकरण का वासनामयी उल्लास प्रकट कर रहे हैं।

जरा शरारत का दृश्य देखिए। आमने-सामने से आती दो अपरिचित टोलियों में गुलाल लगाने की भिड़न्त हो गई। सहनीय सीमा में प्यार की चुहुल शुरू हो गई और होने लगा भंगड़ा का 'कम्पटीशन'। बीच बाजार में समा बँध गया है। वाह-वाह की गुँजार और तालियों की गड़गड़ाहट प्रतियोगियों को प्रोत्साहित कर रही है। ढोल की थाप और पदों की गति का तालमेल दर्शनीय है।

नारियों की ब्रज और हरियाणवी शैली की होली ने तो बाजार के दृश्य को और रंगीन बना दिया है। नारियाँ धोती के कोलड़े बनाकर होली का प्यार दर्शाने वाले पुरुषों पर मार करती हैं। कोलड़े की मार खाकर भी पुरुष हँसते हैं, पुनः मजा लेने को तत्पर रहते हैं। इस छेड़ा-छेड़ी में अश्लीलता का प्रदर्शन नाम मात्र है, स्पर्श वर्जित है। अतः होली की मस्ती की उमंग का स्वच्छ रूप है। दूसरी ओर, ब्रज-शैली में नारियाँ पुरुषों पर डण्डे, लाठियों से प्रहार करती हैं। साहसी युवक होली की हिम्मत में यह वार झेलते हैं। तमाशबीन पुरुष अश्लील मुद्रा और हरकतों में एक ओर नारियों से मसखरी करते हैं, तो दूसरी ओर साहसी युवकों को 'चढ़ जा बेटा सूली पर' के लिए प्रोत्साहित करते हैं।

बाजार में जहाँ टोली, समूह, झुंडों की मस्ती है, वहाँ सड़कों पर वाहन दौड़ रहे हैं। मोटर-साइकिल, स्कूटर, कार अपने सगे-सम्बन्धियों, बन्धु-बान्धवों, मित्रों से होली खेलने दौड़ रहे हैं। होली के हुड़दंग में वाहनों का भी हुलिया बिगाड़ दिया है, गुब्बारों की मार ने।

भंग की मस्ती में, शराब की मदहोशी में बीच-बाजार के नाच-गान, छींटाकसी अश्लील हरकतें, ताने-फबतियाँ, सिनेमा के प्रिय 'डायलॉग' (संवाद) या गानों की भद्दी पंक्तियाँ मदनोत्सव की दृश्यावली से भिन्न नजारा पेश करती हैं। इन नजारों में यौवन की उमंग है, वसन्त की मादकता है और है प्रकृति से एक-रस होने की लालसा।

दो बजते-बजते 'फाग' का खेल समाप्त होता है और सायंकाल को लगते हैं होली-मेले, होलिका-बाजार। यहाँ जनता सोल्लास इकट्ठी होती है और होली-मिलन मनाती है।

मेलों में चाट-पकौड़ी, मिठाई-नमकीन, खेल-खिलौने तथा दैनिक जरूरत की चीजों की दुकान लगी होती हैं। बच्चों के लिए विविध प्रकार के झूले लगे होते हैं। कहीं मदारी

तमाशा दिखा रहा होता है, तो कहीं नट-नटनी अपने खेलों का प्रदर्शन करते नजर आते हैं। कहीं धार्मिक प्रवचन चल रहा होता है।

नगरों के उन स्थानों में जहाँ 'मूर्ख-जलूस' निकलते हैं, वहाँ बाजारों में हास्य की गंगा बहती है। नर-नारी जलूस को देखकर आनन्द-विभोर होते हैं।

(229) जीवन में हास्य या हास्य में जीवन

संकेत बिंदु—(1) हास्य का महत्त्व (2) कविताओं का हास्य रूप (3) मित्रों के साथ हास्य (4) कवि सम्मेलन की घटना (5) उपसंहार।

जीवन में हास्य को उतारना या हास्य में जीवन को जीना बड़ी साधारण बात है। मैं एक कवि हूँ और जीवन में नित्यप्रति घटनाओं में हास्य खोजना सहज है। आईये, मैं आपको कुछ कवियों की कविताओं का पोस्ट मार्टम करना भी बातों ही बातों में सिखा दूँ।

मीराबाई का नाम आप सबने सुना होगा और मीरा जी के भजन भी आप सुने ही नहीं होंगे उन्हें गुनगुनाते और गाते भी होंगे आप—

'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरा न कोई' इस भजन को यदि हम हास्य में उतारें तो हमें केवल दो चार शब्दों की हेराफेरी करनी पड़ेगी। जैसे—

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरा न कोई।
जाके हाथ पासपोर्ट, मेरो पति सोई।।

मीरा जी के बाद अब आप महाकवि सूरदास की रचना का भी लगे हाथों पोस्टमार्टम देखें तो आप हास्य रस के एक अच्छे कवि स्वयं हो जायेंगे।

'मय्या मैं गाय चरावन जैहों।' यह सूरदास जी का पद है और

मय्या मैं तो कार चलावन जैहों
गर्ल फ्रेंड को संग बिठाकर
पिकनिक खूब मनै हों, मैय्या मैं तो कार चलावन जैहों।

अगर इस हास्य की सरिता में हम शब्दों को बदल बदलकर उतारते रहेंगे तो हमें आनन्द की अनुभूति होती रहेगी। कबीरदास जी ने भी अनेक दोहे लिखे हैं। वह तो मर गये हैं, उनके दोहे में भी शब्द बदलकर हास्य का आनन्द किया जा सकता है—

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जो जीवन में न हँसे, वह मूरख का बाप।।
काल करे सो आज कर, आज करे सो अब।
मैरिज जो अब न करे, तो फेर करेगा कब।।

दोहे रहीमदास जी ने भी लिखे हैं, उनको भी हास्य में आओ उतार ही लिया जाये—

बड़े बड़ाई न करें, बड़े न बोलें बोल।
रहिमम हीरा ने कहा, तो दे मेरो मोल।

रहिमन देख बड़ेन को, लघु न दीजिए डार।
जहाँ काम आवे कच्छा, कहाँ करे सलवार॥

'रत्नम्' वह नर मर चुके, जो नित पियें शराब।
उनसे पहले वह मुए, जो इसको कहें खराब॥

इसी आधार पर हिम्मत से आगे बढ़ते रहें और कवियों की कविता उनका उसे अच्छे शब्द जड़कर हास्य बनाते रहें। अब सुभद्राकुमारी चौहान जो वीर रस की कवियित्री रहीं उनकी एक लोकप्रिय कविता 'झाँसी की रानी' की चीरफाड़ ऐसे की जा सकती हैं—

सिंहासन हिल उठे राजवंशों ने भृकुटी तानी थी
बूढ़ी काकी के तन में फिर से आई नयी जवानी थी
गुमे हुए अपने गुस्से की, कीमत ही वह पहचानी थी
अकड़ रही थी खड़ी गली में, वह सोनू की नानी थी।

विभिन्न कवियों की कविताओं में हास्यरस की जबरन उत्पत्ति देखी। मुझे आशा है कि सभ्य समाज का यह भ्रम मिटाने के लिए कि हास्य की रचनाओं में सदा कमी रही है। आप लोग भी मेरा अवश्य साथ देंगे। यही नहीं, मन बहलाने के लिए हास्य तो कहीं भी उत्पन्न किया जा सकता है। बातों में, मुलाकातों में और अब देखें वार्तालाओं में। हास्य की झलका।

मित्रो, आप पूछेगें मैं कैसा हूँ, मेरा उत्तर है आई. एम. क्वाइटम्स् वैलम। मैंने अंग्रेजी के शब्दों को संस्कृत का रूप दिया है, ताकि आप जान सकें कि मैंने उच्च शिक्षा पाई है और मैं भी ग्रेजुएट हूँ। वैसे आजकल रिक्शा चलाने वाले और मजदूर भी अच्छी अंग्रेज़ी बोल लेते हैं।

एक बार मेरे एक मित्र घर आये, बातों का सिलसिला शुरू हुआ। काफी समय बीत गया, चाय के भी दौर चले। अन्त में वह मित्र उठे और बोले—अच्छा डियर्स, अब मैं चलता हूँ, घर पर फादर्स आ गये होंगे।

शराब तो अब अन्तर्राष्ट्रीय पेय बन चुकी है और सारे विश्व में इसके पीने वाले मिल जाते हैं। एक बार मुझे भी इसके मधुर सेवन-पान का सुन्दर अवसर मिला। मैं शराब को दूध समझकर पूरा गिलास बिना पानी मिलाये पी गया, क्योंकि मैं किसी भी वस्तु में मिलावट करना पाप मानता हूँ। फिर क्या था, मुझे एक आदमी के चार-चार दिखाई पड़ने लगे। तभी वह आदमी मेरे पास आया जिसने मुझे शराब पिलाने की बाजी जीत ली थी और बोला—इच्छा हो तो और ले लो। मैंने कहा—एक-एक आदमी करके बात करें, मैं चार-चार आदमियों को एक साथ जवाब देने की हालत में नहीं हूँ।

बात शराब की है तो एक घटना और है। रात के लगभग ग्यारह बज रहे होंगे। मुहल्ले में पाँच शराबी आकर शोकर मचाने लगे, रामलाल जी, रामलाल जी।

ऊपरी तीसरी मंजिल से रामलाल की पत्नी ने झाँककर कहा कि वह अभी घर नहीं आये। इस पर एक शराबी ने कहा कि आप नीचे आकर रामलाल को पहचान लो और ऊपर ले जाओ, आज जरा हम लोगों ने ज्यादा ही पी ली है।

कवि सम्मेलन में एक कवि ने शराब पी रखी थी। जब कविता सुनाने माइक पर आये तो बोले—दोस्तो, मैं आज जो कविता सुनाने लाया हूँ, वह तो घर रह गयी है, माइक को पकड़ा और लड़खड़ाये। फिर बोले—यह मुझे स्टेज हिलता-सा लग रहा है, मैं हिलते हुए स्टेट और हिलते हुए श्रोताओं के सामने कविता पढ़कर कविता को बदनाम नहीं करना चाहता। पहले हिलना बन्द कराया जाये, फिर मैं आपको कविता सुना सकता हूँ।

बातचीत में जो हास्य उभर आता है, मगर कभी-कभी हास्य बिना बात के भी हस जाता है। एक घटना मेरे साथ ऐसी घटी कि मुझे जब याद आती है तो पसीना आ जाता है। मैंने सिल्क का कुर्ता-पायजामा सिलवाया और संयोग से नाड़ा (अजारबन्द) भी सिल्की ही था। पहनकर बस में जा बैठा। रास्ते में पता नहीं कैसे मेरा नाड़ा लटक गया और बस में मेरे बराबर में एक महिला आकर बैठ गई। जब महिला की नजर नाड़े पर पड़ी तो उसने मेरे नाड़े को अपना नाड़ा समझकर अपनी सलवार में फँसा लिया और मैं पायजामा खुल जाने के भय से अपने नाड़े की गाँठ को पकड़कर बैठ गया। मगर महिला का जोर लगाना था कि सिल्क के नाड़े पर लगी गाँठ का खुलना स्वभाविक था। मेरा स्टॉप आ गया, मगर महिला थी कि उठने का नाम ही न ले रही थी, मुझे पसीने छूट रहे थे। मैंने संयम बाँध कर महिला से कहा—मैडम आपने जो नाड़ा अपनी सलवार में अड़ाया है वह आपका नहीं, मेरा है। आप अगर इसी तरह नाड़े से खींचतान करती रहीं तो, मैं बिल्कुल वैसा हो जाऊँगा। वह महिला मुझे घूरने लगी और मैं पसीने से तर होता चला गया।

एक बार मैं रात को जरा देर से घर पहुँचा तो पत्नी रो रही थी, मुहल्ले की पाँच-छ औरतें पास बैठी मेरी पत्नी को दिलासा दे रही थीं। मुझे देखते ही औरतें तो चली गईं, मैंने अपनी पत्नी से रोने का और औरतों के आने का कारण पूछा तो पत्नी ने बताया कि पिछले वाले शर्मा जी का लड़का एक घन्टा पहले आया था। उसने कहा कि रोड पर कार- टैक्सी ऐक्सीडेन्ट में एक आदमी मर गया है, उसके मुँह पर डाढ़ी है और रंग साँवला है, दुबला-पतला-सा है। मैंने समझा कि तुम्हारा ऐक्सीडेन्ट हुआ है, तुम मर गये हो और मैं भरी जवानी में ही विधवा हो गयी हूँ। मेरे रोने को सुनकर मुहल्ले की औरतों का आना तो स्वभाविक ही था। भला तुम मरो और मुहल्ला अफसोस करने भी न आये, यह कैसे हो सकता है। डार्लिंग, अच्छा अब यह बताओ, तुम उस कार ऐक्सीडेन्ट में मरे क्यों नहीं, अगर मर जाते तो तुम्हारा क्या बिगड़ जाता, कम से कम सरकार से मुझे मुआवजा तो मिल जाता। कल से या तो जल्दी घर आया करो या फिर......।

(230) देशाटन

संकेत बिंदु—(1) मनुष्य में जिज्ञासा की प्रबल भावना (2) धर्म और संस्कृति का प्रचार और प्रसार (3) मनुष्य का धर्म (4) अनुभव का विकास (5) ज्ञान प्राप्ति के साथ मनोरंजन।

भिन्न-भिन्न देशों में भ्रमणार्थ की जाने वाली यात्रा या पर्यटन देशाटन है। विभिन्न देशों के महत्त्वपूर्ण स्थल देखने तथा मन बहलाव के लिए वहाँ के विस्तृत भू-भाग में किया जाने वाला भ्रमण देशाटन है।

मनुष्य में जिज्ञासा की भावना बड़ी प्रबल है। वह अपने पास-पड़ोस, नगर, राष्ट्र, विश्व के बारे में जानना चाहता है। यही जिज्ञासा उसे पर्यटन या देशाटन करने को विवश करती है। विभिन्न जीवन-पद्धतियों के अध्ययन से नाना प्रकार के प्राकृतिक दृश्यों को देखने से, विभिन्न राष्ट्रों के विकास साधनों एवं वैज्ञानिक उन्नति के परिचय से मानव को आनन्द, उत्साह तथा ज्ञान प्राप्त होता है।

पुस्तकें आनन्द, उत्साह और ज्ञानवर्धन का साधन हैं, किन्तु पुस्तक के अध्ययन से किसी देश का परिचय प्राप्त करने और उसके साक्षात्-दर्शन में अन्तर है। महान् घुमक्कड़ डॉ. राहुल सांकृत्यायन का कथन है, 'जिस तरह फोटो देखकर आप हिमालय के देवदारु के गहन वनों और श्वेत हिम-मुकुटित शिखरों के सौन्दर्य, उसके रूप, उनकी गंध का अनुभव नहीं कर सकते, उसी तरह यात्रा-कथाओं से आपको उस सौंदर्य से भेंट नहीं हो सकती, जो कि एक घुमक्कड़ (देशाटक) को प्राप्त होता है।'

संसार एक रहस्य है। इसका जीवन रहस्यमय है। देशाटन-दुस्साहसियों ने उस रहस्य को चीरने का प्रयास किया है। जिससे विश्व-बंधुत्व का मार्ग प्रशस्त हुआ है। कोलम्बस की घुमक्कड़ी ने अमरीका का पता लगाया। वास्कोडिगामा का भारत से परिचय हुआ। ह्वेनसांग, फाहियान आदि चीनी यात्री भारत में बौद्ध-धर्म ग्रंथों की खोज में आए। पुर्तगाली, डच, फ्राँसीसी और अंग्रेजों ने भारत में व्यापार का आरम्भ किया। भारतीय घुमक्कड़ों ने लंका, बर्मा, मलाया, यवद्वीप, स्याम, कम्बोज, चम्पा, बोर्नियो और सैलीबीज ही नहीं, फिलिपाइन तक का पता लगाया।

धर्म और संस्कृति के प्रचार और प्रसार का श्रेय देशाटन को ही है। प्राचीन धर्म-भिक्षु तो 'कर तल भिक्षा, तरु तल वासः' का आदर्श सामने रखते थे। कबीर, बुद्ध, महावीर जीवन भर घुमक्कड़ रहे। आद्य शंकराचार्य ने तो भारत के चारों कोनों का भ्रमण किया और दे गए चार मठ। वास्कोडिगामा के भारत पहुँचने से बहुत पहले शंकराचार्य के शिष्य मास्को तथा यूरोप में पहुँच चुके थे। गुरु नानक ने ईरान और अरब तक धावा बोला। स्वामी

विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ तथा उनके शिष्यों ने विश्व में वेदान्त का झंडा गाड़ा एवं महर्षि दयानन्द और उनके शिष्यों ने विश्व में वेदों की ध्वजा फहराई।

मनुष्य स्थावर वृक्ष नहीं, जंगम प्राणी है। चलना उसका धर्म है। 'चरैवेति-चरैवेति' उसका नारा है। *'सैर कर दुनिया की गाफिल जिन्दगानी फिर कहाँ?'* इस्माइल मेरठी के ये शब्द देशाटन के प्रेरणा-स्रोत हैं। विभिन्न देशवासियों की प्रकृति-प्रवृत्ति के परिणाम; विशिष्ट विषय के अध्ययन; ऐतिहासिक, भौगोलिक, साहित्यिक तथा वैज्ञानिक गवेषणा; प्राकृतिक दृश्यों के अवलोकन; धर्म तथा संस्कृति के प्रचार; राष्ट्रीय मेलों और सम्मेलनों में एकत्र होना; तीर्थाटन; व्यापार-वृद्धि; राजकार्य; पंचमांगी, कूटनीतिक तथा गुप्तचर कार्य; सर्वेक्षण; आयोग तथा शिष्टमंडल; जीवकोपार्जन; आखेट; मनोरंजन; स्वास्थ्य सुधार; पर-राज्य में आश्रय आज के देशाटन के प्रयोजन हैं।

घर से बाहर कदम रखते ही कष्टों का श्रीगणेश होता है, फिर देशाटन तो महाकष्टप्रद है। थका देने वाली यात्रा, प्रतिकूल आहार-व्यवहार; विश्राम की विकृत व्यवस्था; भाषा न समझने की विवशता; परम्परा और सभ्यता के मानदण्ड की अनभिज्ञता, ठग और गिरहकटों का भय, विपरीत प्रकृति-प्रवृत्ति वाले अथवा दुष्ट लोगों का साथ तथा अत्यधिक आर्थिक बोझ देशाटन में बाधक हैं। डॉ. राहुल सांकृत्यायन की दलील है; 'घुमक्कड़ी में कष्ट भी होते हैं, लेकिन उसे उसी तरह समझिए, जैसे भोजन में मिर्च।

देशाटन से अनुभव का विकास होता है। विभिन्न राष्ट्रों, स्थानों की भौगोलिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक स्थिति का ज्ञान होता है। व्यापारिक स्पर्द्धा और उन्नत होने के भाव बलवान् होते हैं। सहिष्णुता की शक्ति बढ़ती है। विभिन्न प्रकृति के मनुष्यों से सम्पर्क पड़ने के कारण मानव-मनोविज्ञान के ज्ञान में वृद्धि होती है। नये लोगों के मेल-मिलाप से मित्रता की सीमा फैलती है। प्रकृति से साहचर्य बढ़ता है। बातचीत करने का ढंग पता लगता है। व्यवहार कुशलता में वृद्धि होती है। कष्ट-सहिष्णुता का स्वभाव बनता है। मन का रंजन होता है। आनन्द का स्रोत फूटता है। जीवन में सफलता का मार्ग प्रशस्त होता है।

विदेशों में भ्रमण करने से अनेक प्रकार के चरित दिखाई पड़ते हैं। सज्जनों और दुर्जनों के स्वभाव मालूम होते हैं और मनुष्य अपने आपको पहचान जाता है—इसलिए पृथ्वी पर भ्रमण करना चाहिए।

देशाटन द्वारा ज्ञान प्राप्ति के साथ-साथ हमें सरस और रुचिपूर्ण मनोरंजन भी प्राप्त होता है। विभिन्न स्थानों, वनों, पहाड़ों, नदी-तालाबों और सागर की उत्ताल तरंगों का अवलोकन कर पर्यटक का मन झूम उठता है। पर्यटन हमारे स्वास्थ्य के लिए भी हितकर है। जलवायु-परिवर्तन से चित्त में सरसता और उत्साह का संचार होता है, जिससे हम प्रसन्न मन:स्थिति में रहते हैं, जो हमारे स्वास्थ्य की अनिवार्य शर्त है। देशाटन के दौरान हमें अनेक असुविधाओं और कष्टों का भी सामना करना पड़ता है। इन्हें सहन करके तथा इनका समाधान ढूँढ लेने पर हमें अद्भुत खुशी का अनुभव होता है।

देशाटन विश्व-बंधुत्व की भावना की भी वृद्धि करता है। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे संतु निरामयाः' की मंगलमयी भावना, विश्व में शांति, सुख, सौन्दर्य और श्री वृद्धि का जनक है। कष्टों, विपत्तियों, प्राकृतिक विपदाओं, दुर्भावनाओं, युद्धों और विनाश-प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाने का प्रयास है। विश्व को अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाने वाला ज्योति पुंज है।

(231) पर्यटन का शौक

संकेत बिंदु—(1) व्यक्तित्व की पहचान (2) पर्यटन-शौक की मूलवृति (3) साधु-संतों और साहित्यकारों में पर्यटन शौक (4) विश्व के घुमक्कड़ (5) उपसंहार।

शौक या अभिरुचि हमारे जीवन की परख है, हमारे व्यक्तित्व की पहचान है। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् को अध्ययन का शौक था, पंडित जवाहरलाल नेहरू को अचकन में गुलाब का फूल लगाने में रुचि थी, मोरारजी भाई देसाई को योगासन करने का शौक था और राजनीतिज्ञों को हवाई किले बनाने तथा झूठे आश्वासन देने का शौक होता है।

अंग्रेजी के प्रसिद्ध लेखक चेस्टाटन को यात्रा करने का बड़ा शौक था। यात्रा के बड़ी-बड़ी योजनाएँ बनाकर वह हफ्तों मित्रों से बहस करता था और जब यात्रा पर निकलता, तो कुछ घंटे स्टेशन पर गुजार कर बोरिया-बिस्तर के साथ वापिस आ जाता था।

ब्रिटेन के प्रधानमंत्री बैंजामिन डिजरायली को विरोधियों पर तीक्ष्ण कटाक्ष करने का शौक था। इस शौक के कारण उसने सुप्रसिद्ध बुजुर्ग पार्लियामेंटेरियन (संसदज्ञ) सर डेनियल ओकोपेल को भी नहीं बक्शा। ब्रिटेन की संसद् में भूचाल आ गया, किन्तु डिजरायली अर्ध मुस्कान के साथ चोट करता रहा।

देश-विदेश दर्शन पर्यटन-शौक की मूलवृत्ति है, जिसमें एक ओर प्रकृति की पुकार है तो दूसरी ओर साहसिक जिज्ञासा। यात्रा मानों विराट् मानवीय विकास की ही एक सीमित प्रतीक है। दूसरी ओर यात्रा आत्म-साक्षात्कार और प्रत्यभिज्ञा का निमित्त बनती हैं। लेकिन पुण्य-लाभ के लिए तीर्थाटन करने वाले यात्री विशेष से निर्विशेष होकर समूह के साथ एकात्म होकर, उस एकात्मकता में ही अपनी नियति की पहचान कर लक्ष्य तक पहुँचते हैं।

महादेवी जी के शब्दों, 'हमारी संस्कृति में यात्राओं का विशेष महत्त्व है, क्योंकि इस विचित्रता-भरी धरती में एक संस्कृति का प्रश्न यायावरी के साथ जुड़ा हुआ है।' (पुरोवाक् : जन जनक जानकी) देव-प्रतिमाओं के दर्शन, प्रकृति में ईश्वर की रहस्यमयी लीला को जानने की जिज्ञासा, धार्मिक और सांस्कृतिक पहचान, प्रतीकों को साक्षात् अपने नयनों से देखने की अभिलाषा तथा विश्व की अद्‌भुत कला और सौन्दर्य के दर्शन यात्रा करने की

उत्कंठा मानव का यात्री बनने को विवश करते हैं। यह विवशता ही शौक में बदल कर यात्रा की कठिनाइयों से उत्साह लेती है तथा कष्टों से रस ग्रहण करती है।

धर्म-प्रचारक साधु-संत, गृहस्थी, संन्यासी स्वभाव से ही पर्यटक थे। संन्यासियों को इसी कारण परिव्राजक कहा जाता है। निर्गुण ईश्वर के आराधक कबीर, नानक, सगुण प्रभु के विश्वासी तुलसी, सूर, रामानुज-माध्वाचार्य, बुद्धमत के संस्थापक महात्मा बुद्ध, चौबीसवें तीर्थंकर महावीर, चारों मठों के संस्थापक जगद्गुरु आद्य शंकराचार्य, वैदिक धर्म का डंका बजाने वाले महर्षि दयानन्द और विवेकानन्द, हिन्दुत्त्व के स्वाभिमान को जागृत करने वाले चारों संघचालक (परम पूज्य डॉ. हेडगेवार, गुरुजी, बाला साहब देवरस तथा रज्जू भैया) धार्मिक यात्री बने तभी भारत की आध्यात्मिक पहचान को प्रखर कर सके, भारतीय इतिहास में अपना नाम अमिट स्वर्णाक्षरों में लिखवा सके।

साहित्यकारों में भी पर्यटन का अत्यधिक शौक रहा। इस शौक के कारण ही उनका लेखन जीवन के यथार्थ को प्रकट कर सका और पाठक के हृदय को झकझोर सका। छायावादी काव्य के स्तम्भ प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी का काव्य उनके प्रकृति-दर्शन का सत्य है। राष्ट्रीयता के गायक मैथिलीशरण गुप्त, दिनकर, सोहनलाल द्विवेदी, माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य में भारत की आत्मा बोलती है। प्रेमचंद का साहित्य तो है ही राष्ट्रीय आन्दोलन का भाष्य है। इन सबसे बड़े यात्री-साहित्यकार हुए हैं राहुल सांकृत्यायन जिनका जीवन ही 'अथा तो घुमक्कड़-जिज्ञासा' के नाम से प्रसिद्ध है।

विश्व-घुमक्कड़ों की भी कमी नहीं है। उस साधन-विहीन समय में विश्व-खोज करने वाले यात्रियों का अदम्य साहस, उत्कृष्ट उत्साह और उमंग की कल्पना करके शरीर रोमांचित हो जाता है। 'जितनी दूर की यात्रा उतना ही खतरा पतन का' इस सिद्धांत वाक्य को 'प्राण जाएं पर शौक न जाहि' के सिद्धांत से मूर्तमंत किया। प्राणियों की उत्पत्ति और मानव-वंश के विकास के अद्वितीय खोजी चार्ल्स डारविन, पश्चिमी देशों के मार्गदर्शक कोलम्बस और वास्को द गामा, चीनी यात्री फाहियान के नाम के साथ राहुल सांस्कृत्यायन का नाम यात्रा-शौक के दीवानों में अजर-अमर रहेगा।

इस वैज्ञानिक युग में यातायात के साधनों के विकास, सुविधा तथा क्षिप्र-गतिता ने इसके कंटकाकीर्ण पथ के काँटे बुहार दिए हैं। स्थान-स्थान पर धर्मशालाओं, होटलों तथा रेस्टहाउसों में ठहरने की सुविधा ने शारीरिक क्लान्ति को अँगूठा दिखा दिया है। हर स्थान पर प्राप्त ऐच्छिक शाकाहारी तथा मांसाहारी भोजन ने खाने की चिंता को धता बता दी है। यातायात, निवास तथा भोजन की सुविधा संगम ने यात्रा-शौक में आम आदमी को भी इस गंगा में डुबकी लगाने को प्रेरित किया है। इसलिए पृथ्वी पर जन्मे मानव की प्रकृति यात्रामयी बन गई है। वह तीर्थ-यात्रा के नाम पर, विख्यात ऐतिहासिक स्थानों तथा कला-कृतियों के दर्शन के बहाने प्रकृति का सानिध्य प्राप्ति की जिज्ञासा में, विभिन्न प्रांतों, राष्ट्रों की सभ्यता-संस्कृति के अध्ययन निमित्त यात्रा रूपी गंगा में स्नान कर अपने जीवन को धन्य कर ज्ञान के नेत्र खोलना चाहता है।

पर्यटन का शौक की पूर्ति निर्भर करती है आर्थिक स्थिति और कष्ट-सहन करने की क्षमता पर। घर पर चौखट छोड़ते ही कष्ट और बटुए से नोट निकलने शुरु हो जाते हैं। वाहनों की लूट-प्रवृत्ति और कहीं-कहीं भाषा समझने की दरिद्रता विमुखता उत्पन्न करती है। पर्यटन-स्थलों पर सुरक्षा-कर्मियों का, धार्मिक-स्थलों पर पंडों का, होटलों में बैरों का व्यवहार मनोबल तोड़ता है। असामाजिक तत्त्वों की छेड़छाड़ तथा चौर्य कर्म शौक से तोबा करवा देते हैं। वेदव्यास जी के शब्दों में, 'वीर भोग्या वसुंधरा' के अनुसार वीर ही पर्यटन-शौक का भोग कर सकते हैं।

(232) रोचक बस-यात्रा/बस-यात्रा का अनुभव

संकेत बिंदु—(1) वाद-विवाद प्रतियोगिता का आयोजन (2) बस की चाल, ढाल और व्यवस्था (3) यात्रा का वातावरण परिवर्तित (4) अम्बाला छावनी का बस अड्डा (5) उपसंहार।

केन्द्र-शासित प्रदेश चण्डीगढ़ में वाद-विवाद प्रतियोगिता का आयोजन था। दिल्ली से पाँच विद्यार्थी इस प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए चुने गए। मेरा सौभाग्य था कि निर्वाचित विद्यार्थियों में एक मैं भी था। विद्यार्थियों को चण्डीगढ़ ले जाने और लाने का दायित्व था शिक्षा-निदेशालय के एक अधिकारी पर। ये अधिकारी थे श्री महेन्द्र गोयल।

22 जनवरी को अपराह्न 4 बजे प्रतियोगिता थी। अत: निश्चय हुआ कि प्रात: 7 बजे की बस से चला जाए, ताकि हम बारह या पौने बारह बजे तक चण्डीगढ़ पहुँच जाएँ और भोजन तथा विश्राम का समय मिल जाए। तत्पश्चात् नवोल्लास और नवोत्साह से प्रतियोगिता में भाग ले सकेंगे।

निश्चयानुसार हम पाँचों छात्र और श्री गोयल जी प्रात: 6-30 बजे अन्तर्राज्यीय बस अड्डे पर पहुँच गए। श्री गोयल जी ने दिल्ली-नंगल बस में 6 टिकटें चण्डीगढ़ की लीं। बस बिल्कुल खाली थी। हम पैर फैलाकर बैठ गए। दस मिनट बाद बस चली। यात्री कुल 20 थे। बस समय की पाबन्द हैं। वे समय पर चलती हैं, चाहे यात्री न भी हों।

पंजाब रोडवेज की बसें चाल, ढाल और व्यवस्था में अपना सानी नहीं रखतीं। रिंग रोड़ के 'बाई पास' से निकलकर बस ने रफ्तार पकड़ी। बस चल रही है, क्षिप्र गति से भागी जा रही है, किन्तु कोई हिचकोले नहीं, धक्के नहीं, सुन्दर दृश्यावली और शीतल पवन द्वारा शरीर-स्पर्श से हृदय गुद्‌गुदा जाता था। विद्यार्थी परस्पर बातचीत में मस्त, किन्तु गोयल जी के भय से कानों में बात करते थे। बीच-बीच में हँसी के फव्वारे भी छोड़ते जाते थे। फव्वारे छूटने पर वे कनखियों से गोयल जी के हाव-भाव भी देख लेते थे।

यात्रा का वातावरण बदल चुका था। बस मुरथल और सम्भालका पार कर चुकी थी और बेरोक-टोक चली जा रही थी। कंडक्टर ने छात्र को मुगलेआजम का गाना गाने को कहा। गोयल जी के डर से छात्र ने मना कर दिया। सरदार कडंक्टर जिद पकड़ गया। उसने

पानीपत चलकर सारी पार्टी को चाय पिलाने का वायदा किया। लड़का जोश में आ गया। मधुबाला की-सी हिचकी लेकर उसने जो गाने का स्वर साधा, साहब! कमाल हो गया। यात्रियों ने एक-एक दो-दो रुपये के नोट उस पर न्यौछावर करने शुरू कर दिए। गाने की एक-एक कड़ी पूरी होती और वाह-वाह का स्वर तेज हो जाता। कंडक्टर ने दस का नोट निकाला तीन बार छात्र पर वार कर उसको थमा दिया। मुड़कर छात्र ने देखा गोयल जी सबसे पीछे वाली सीट पर जा बैठे थे।

पानीपत बस रुकी। कंडक्टर पाँचों छात्रों को अपने साथ ले गया। चाय पिलाई, मुँह मीठा करवाया। वापिस आकर देखते क्या हैं, बस खचाखच भरी है। 15-20 लोग खड़े हुए हैं। यहाँ तक कि पाँचों छात्रों और गोयल जी की सीटों पर भी कब्जा हो चुका था। पहले तो छात्रों ने सीट खाली करने की प्रार्थना की, पर कौन सुनता है ? बात बढ़ते-बढ़ते हाथा-पाई पर नौबत आ गई। कंडक्टर और ड्राइवर को पता लगा तो वे भी पहुँच गए। उन्होंने कह-सुन करके ६ सीटें खाली करवा ही दीं।

गाड़ी का वातावरण बदल चुका था। अब तो साँस लेने में भी कठिनाई हो रही थी। अन्दर का दृश्य और कोलाहल ही इतना था कि बाहर के प्राकृतिक दृश्य पर मन लगाने का अवकाश ही कहाँ था, लाँग रूट की बस थी। तेज रफ्तार से चल पड़ी। करनाल बाई पास से निकल गई और डेढ़ घंटे के दमघोंटू वातावरण का अन्त हुआ अम्बाला छावनी पहुँच कर।

अम्बाला छावनी का बस-अड्डा आया। बस को यहाँ 15-20 मिनिट विश्राम करना था। फिर भी यात्री जल्दी-जल्दी उतर रहे थे। विद्यार्थी उतरे। गोयल जी ने विद्यार्थी-गण के मुरझाए चेहरे देखे। उन्होंने हाथ मुँह धोकर आने को कहा। फिर गरमा-गरम चाय के साथ पकौड़े खिलाए। सबके चेहरे पर ताजगी आ गई। विद्यार्थी गोयल जी की प्रशंसा करने लगे।

कंडक्टर ने बस चलाने की सीटी बजाई। ड्राइवर ने गाड़ी स्टार्ट की। कंडक्टर ने जोर से आवाज लगाई, 'गोयल जी, बच्चे आ गए हैं न ?' गोयल जी की स्वीकृति पर बस अम्बाला छावनी छोड़ चली। बस अब भी प्राय: भरी हुई थी। यात्रियों का स्तर बदल गया था। ग्रामीण उतर चुके थे। शहरी-समाज के यात्री चण्डीगढ़-नंगल जा रहे थे। अब गाड़ी की गति अपेक्षाकृत कम थी।

ड्राइवर को जवानी आई। उसने अम्बाला शहर पार करके एक निर्जन स्थान पर गाड़ी रोक दी। सीट से उठकर बच्चों के पास आ गया। उसने कहा, 'जरा एक तान और छिड़ जाए—जिन्दगी भर न भूलेगी यह सफर की बात।' बच्चों के लाख मना करने पर भी, वह जिद पकड़े रहा और गाड़ी न चलाने की सौगन्ध खा बैठा। यात्रियों ने ड्राइवर तथा बच्चों को मनाया, पर दोनों बा-जिद। आखिर गोयल जी ने बच्चों को ड्राइवर साहब को खुश करने को कहा।

तालियों की सु-मधुर ध्वनि में बच्चों ने 'दी बर्निंग ट्रेन' का गाना 'पल दो पल का साथ हमारा, पल दो पल के याराने' गाया। गीत समयानुकूल था, मस्ती के क्षणों में बच्चों ने इतना सुन्दर समाँ बाँधा कि यात्री भी ताली बजाकर साथ देने लगे। डेराबसी से गुजरती बस में तालियों की गड़गड़ाहट सुनकर स्टैण्ड पर खड़े यात्री भौंचक्के से देखते रह गए और बस आँखों से ओझल हो गई।

ट्रिब्यून का दफ्तर आ गया। गाड़ी दो पल रुकी। गाना भी रुका। 8-10 यात्री उतरे। उतरने वाले यात्री बच्चों को शाबाशी देना न भूले। बस चण्डीगढ़ शहर की ओर मुड़ी और दस मिनट में सेक्टर 17 पहुँच गई। सेक्टर 17 में ही चण्डीगढ़ का बस-अड्डा है।

बच्चे उतरे। गोयल जी उतरे। ड्राइवर और कंडक्टर उतरे। स्कूल-बोर्ड, चण्डीगढ़ की स्टेशन-वैगन बच्चों को लेने आई हुई थी। हम सभी उस पर चढ़ गए, किन्तु ड्राइवर और कंडक्टर निर्निमेष नेत्रों से बच्चों को देखते रहे, जब तक कि स्टेशन-वैगन ने अड्डा-क्षेत्र नहीं छोड़ दिया।

(233) पर्वत-प्रदेश की यात्रा

संकेत बिंदु—(1) प्रकृति परमेश्वर की सृष्टि (2) पर्वतीय स्थान की कठिन यात्रा (3) कालका से शिमला तक की यात्रा (4) प्राकृतिक दृश्य का आनन्द (5) पहाड़ पर गरीबी और परिश्रम का संगम।

पर्वत प्रकृति-नटी की क्रीडास्थली है। प्रकृति परमेश्वर की सृष्टि है। प्रकृति की उन्नति और विकास में ईश्वर अहर्निश लगा रहता है। अतः प्रकृति अपरिमित आकर्षण तथा ज्ञान का भंडार है। इसके पत्ते-पत्ते में शिक्षाप्रद पाठ हैं। उनसे लाभ उठाने के लिए अनुभव चाहिए, प्रकृति का बार-बार दर्शन चाहिए और चाहिए पर्वतीय-स्थलों की यात्रा।

गर्म प्रदेशों की गर्मी, साँय-साँय करती लू, ऊपर से भगवान् भास्कर का प्रचंड प्रकोप, नीचे से भट्टी के समान आग उगलती पृथ्वी माता, प्यास और पसीने से सराबोर शरीर, अपनी ही दुर्गन्ध से नाक-मुँह सिकोड़ता अपना मन जब तंग आ जाता है तो इच्छा होती है पर्वतीय-प्रदेश चलकर ग्रीष्म के संताप को कम करने की। दूसरी ओर, डेढ़-दो मास के ग्रीष्माकाश में वातावरण के परिवर्तन की इच्छा से व्यक्ति कुछ समय प्रकृति की गोद में अवश्य बिताना चाहता है। तीसरी ओर, बुद्धिजीवी वर्ग—न्यायाधीश, वकील, प्राध्यापकगण, पत्रकार, लेखक, कविगण निरन्तर चिन्तनप्रधान कार्य करते हुए जब थक जाते हैं तो वे प्रकृति की गोद में विश्राम कर अपने को तरोताजा करना चाहते हैं। पर्वतीय प्रदेश की यात्रा उनके लिए ऐय्याशी (Luxury) नहीं, अनिवार्य (Necessity) होती है।

पर्वतीय स्थान पर पहुँचना भी कोई बच्चों का खेल नहीं। बस या रेल में चक्कर आएँगे।

चक्कर उल्टी लाएँगे। खाया-पीया बाहर आ जाएगा। शरीर निढाल होकर विश्राम चाहेगा, पर लेटने की जगह न बस में है, न रेल में। शरीर की अकर्मण्यता पर मन क्षोभ से भर जाएगा, प्रकृति का आनन्द लूटने से मना करेगा। अत: कोई नीबू में नमक-कालीमिर्च डालकर चूस रहा है, कोई काबुली चना खाकर उलटी को सीधा करना चाहता है। कोई चूर्ण चाट रहा है। अकलमन्द प्राणी जानता है कि यदि चक्कर आते हैं, तो पहले ही दवा की एक डोज ले लो। रास्ता आराम से कटेगा।

अशिक्षित नर-नारी उलटी के सम्बन्ध में सोचकर नहीं चलते। परिणामत: बस खराब हो जाती है, रेल में गंदगी फैलती है। ठंडी- ठंडी पवन के झोंके उलटी (वमन) के कणों से सहयात्रियों के वस्त्रों पर छिड़काव कर देते हैं, तो किसी के मुँह का चुम्बन ले लेते हैं। अकस्मात् अनचाहे चुम्बन से मनुष्य क्रोधातुर हो उठता है।

कालका से शिमला तक यात्रा कीजिए; मुरादाबाद से नैनीताल का सफर कीजिए; जम्मू से श्रीनगर पर चढ़ाई कीजिए और लीजिए पर्वत-यात्रा का आनन्द। पर्यटन-विकास ने सड़कों को योजनाबद्ध चौड़ा कर दिया है, किन्तु साँप की गति के समानँ बलखाती सड़कें तो पर्वत-यात्रा की विशेषता है। आपकी बस आधा मील चली नहीं कि मोड़ आ गया। मोड़ भी इतना छोटा कि दो क्षण बाद पुन: बस मोड़ काटती नजर आती है। कई-कई घुमाव तो बड़े जालिम होते हैं। चालक ने जरा असावधानी बरती नहीं कि बस खड्ड में और यात्री प्रकृति की गोद में चिरनिद्रा में विलीन। कभी-कभी इन घुमावों पर विपरीत दिशा से आती हुई बसों का मिलन बड़ा भयावह होता है। दोनों के चालक ब्रेक न लगाएँ तो बस-बॉडियाँ टकरा जाएंगी।'एक्सिडेन्ट' बड़ा भयानक नाम है, क्रूर काल का।

पूरे मार्ग में सड़क के एक ओर प्राय: खड्ड हैं। खड्ड में अनियमित पर्वत-शृंखलाओं का कटाव देखिए। मार्ग में पर्वतीय ग्राम देखिए। ग्राम क्या है ? कच्चे मकानों का छोटा समूह। उनके सीढ़ीनुमा कम लम्बे, कम चौड़े खेत देखिए। सीढ़ीनुमा इसलिए कि पर्वतीय भूमि समतल नहीं होती। ग्रामीणों की गरीबी देखिए।

मार्ग में बस-पड़ाव पर थोड़ा सुस्ता लीजिए। थकान मिटा लीजिए। पहाड़ का बस-स्टैण्ड समतल स्थान के अभाव में अत्यन्त सीमित स्थान पर होता है। अत: ५-६ बसों से अधिक बसें वहाँ खड़ी हो जाएं तो मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। गाँव की अधकच्ची दूकानें देखिए। साथ ही देखिए शानदार ढंग से बनाए वातानुकूलित होटल और रेस्टोरेंट। पक्की दूकानों पर साफ-सुथरी खाने-पीने की चीजें प्राप्त हैं। एक ओर ग्रामीण बालाओं का सौन्दर्य और निष्कपट यौवन है, जिसे देखकर कविवर पंत का हृदय बोल उठा—

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया, तोड़ प्रकृति से भी माया।
बाले! तेरे बाल-जाल में, कैसे उलझा दूँ लोचन॥

बस या रेल में बैठे प्रकति की हरियाली का आनन्द न लटा. तो यात्रा बेकार है। स्थान-

स्थान पर प्रकृति-नटी का कलात्मक नृत्य देखिए। क्या कारीगरी है? कहीं हरी-भरी झाड़ियाँ हैं, लताएँ हैं, चीड़ और देवदारु के गगन-चुम्बी पेड़ हैं, कहीं पर्वत के बीच से शीतल जलधारा निकल रही है, तो कहीं चाँदी-से झरझर बहते झरने हैं। पहाड़ों से गिरते जल का दृश्य चित्ताकर्षक है। नीले-सफेद जल में से उठते-फूटते बबूले मानो कोई मोतियों को स्वतः तोड़कर आनन्दित हो रहा हो। आकाश में उमड़ते-घुमड़ते बादल कभी पर्वत की चोटी को छूते और कभी उससे बचकर हवा में तैरते फिरते हैं।

यदि आप रेल से यात्रा कर रहे हैं तो छोटी-छोटी गाड़ी हैं, जिनके छोटे-छोटे कम्पार्टमेंट हैं। चींटी की चाल चलती गाड़ी यात्रियों को उबा देती है। दूसरी ओर लम्बी-लम्बी सुरंगों से गुजरती गाड़ी भय उत्पन्न करती है। घोर अन्धकार में क्षीण विद्युत्-प्रकाश। तीसरी ओर, चक्करदार पटरियों पर चलती हुई रेलगाड़ी में ऐसा भ्रम होता है कि इस स्थान से तो अभी-अभी गुजरे थे।

पहाड़ पर गरीबी और परिश्रम का विचित्र संगम देखिए। बस-स्टैण्ड समीप आता है। बस मंद-मंद गति से चल रही है। पहाड़ी कुली अपना नम्बर आपको देने के लिए बस के साथ-साथ दौड़ रहा है। नम्बर आपने पकड़ लिया, समझो आप बुक हो गए। वह सामान उतारेगा। उतार कर अपने ऊपर लादेगा। लादकर उस खड़े पहाड़ी मार्ग या सीढ़ियों पर चढ़ेगा, जिस पर आप बिना सामान के नहीं चढ़ पा रहे। गंतव्य पर पहुँचने पर आपकी साँस चढ़ रही है। आप हाँफ रहे हैं और वह कुली समभाव से खड़ा आपके बटुए से निकलने वाली राशि की प्रतीक्षा कर रहा है।

पर्वतीय यात्रा मानव को प्रकृति के दर्शनों का, प्रकृति के रूप पर मोहित होने का, प्रकृति-नटी की नव-नव नृत्य मुद्राएँ देखने का, रंग बदलते, हास-परिहास और उल्लास का निमंत्रण देती है। धन खर्च कर तन और मन को प्राकृतिक रूप में स्वस्थ रखने का आमंत्रण भेजती है। प्रकृति के सस्य-श्यामल अंचल में आहार-विहार का आनन्द लेने का बुलावा भेजती है।

(234) दिल्ली की मुद्रिका बस से यात्रा

संकेत बिंदु—(1) मुद्रिका बस की यात्रा (2) मुद्रिका का लम्बा रूट (3) अनेक बस जंक्शनों से प्रारम्भ (4) विभिन्न मार्गों पर मुद्रिका सेवा (5) दिल्लीवासियों के लिए वरदान।

दिल्ली की मुद्रिका-बस की यात्रा दिल्ली-नई दिल्ली की परिक्रमा का सु-अवसर है। यह भौगोलिक ज्ञान-वृद्धि का साधन है। भीड़भरी सड़कों से दूर खुली सड़कों पर क्षिप्र गति वाली बस की सवारी का आनन्द देनेवाली और परिवहन समस्याओं या झंझटों से छुटकारा देने वाली है।

मुद्रिका-बस का साधारणतः अर्थ होगा 'मुद्रिका जैसे वृत्ताकार मार्ग पर चलने वाली

बस।' यह बस-सेवा जिस स्थान से प्रारम्भ होती है, वृत्ताकार मार्ग पर दिल्ली की परिक्रमा करती हुई उसी स्थान पर समाप्त होती है। इसका मार्ग मुद्रिका अर्थात् अंगूठी के समान गोल होता है। इसलिए इसे 'मुद्रिका-बस' कहा जाता है।

साधारणतया बसों के मार्ग के दो पड़ाव हैं। जैसे रूट (मार्ग) नम्बर 11 की बस का एक पड़ाव जामा मस्जिद है, तो दूसरा कल्याण विहार। वैसे ही रूट नम्बर 10 की बस का एक पड़ाव कल्याण विहार है तो दूसरा केन्द्रीय सचिवालय, किन्तु मुद्रिका-सेवा जहाँ से चलती है, 48.5 किलोमीटर की दूरी तय करके पुनः उसी स्टॉप पर आकर रेस्ट करती है, पड़ाव डालती है।

दूसरी, दिल्ली-परिवहन की शेष बसों के मार्ग एक रेखा के समान सीधी या टेढ़ी-मेढ़ी लम्बाई लिए हुए हैं। जैसे स्टेशन से बाँकनेर, लालकिले से महरौली, विवेक विहार से आदर्शनगर, किन्तु मुद्रिका-बस का रूट (मार्ग) अँगूठी के समान गोल है। जैसे देवालय की परिक्रमा, वैसे ही मुद्रिका -बस द्वारा दिल्ली-नई दिल्ली की परिक्रमा।

तीसरे, मुद्रिका-सेवा द्वारा दिल्ली-नई दिल्ली की प्रायः सभी बस्तियों एवं उपनगरों को एक मार्ग से जोड़ा गया है। वह है रिंग रोड। रिंग रोड दिल्ली-नई दिल्ली की अन्य सड़कों से अपेक्षाकृत चौड़ी है। प्रायः सम्पूर्ण रिंग रोड दो भागों में विभक्त है। आने का मार्ग अलग और जाने का मार्ग पृथक्। विभाजक पट्टी को आकर्षक बनाने के लिए कहीं-कहीं उस पर पौधों की क्यारियाँ लगाई हुई हैं, जो बस के धुएँ के प्रदूषण को कम तो करती ही हैं, साथ ही यात्रियों को हरियाली का आनन्द भी प्रदान करती हैं।

मुद्रिका-बस-सेवा अनेक बस-जंक्शनों से आरम्भ होती है। प्रत्येक मुद्रिका बस निश्चित जंक्शन से चलकर अपने जंक्शन पर ही आकर दम लेती है। मार्ग में जो और जंक्शन आएंगे, उन पर क्षण-दो-क्षण ठहरेगी तो सही, किन्तु पड़ाव नहीं डालेगी। आइए, आपको मुद्रिका-बस की सैर कराएँ।

चलिए आजादपुर के जंक्शन से मुद्रिका में बैठते हैं। आजादपुर से बस चली और आजादपुर, नई सब्जीमण्डी के पुल पर चढ़ती-उतरती अशोकविहार और शालीमार बाग के बीच रिंग रोड से गुजरकर परिवहन डिपो वजीरपुर को पार करती पंजाबी बाग के जंक्शन पर पहुँचती है। जहाँ से चलकर राजधानी कॉलिज, ई.एस.आई. अस्पताल के दर्शन कराती, राजा गार्डन जंक्शन पर पहुँचती है। उधर राजा गार्डन और राजौरी गार्डन है, तो उधर रमेश नगर तथा बसई दारापुर अवस्थित हैं।

. राजौरी गार्डन से होती हुए मुद्रिका नारायणा की विशाल औद्योगिक बस्ती की सवारियाँ लेती -उतारती तेज चाल से चली जा रही है—दिल्ली छावनी में प्रवेश करने के लिए। दिल्ली छावनी से गुजरती धौला कुँआ के विशाल जंक्शन पर पहुँचती है। यहाँ आत्माराम सनातन धर्म कॉलेज तथा वेंकटेश्वर कॉलिज हैं तो दूसरी ओर राजकीय कॉलोनियाँ हैं।

धौला कुआँ से सफदरजंग तक का सारा मार्ग सरकारी कॉलोनियों तथा कार्यालयों से घिरा है। सड़क के एक ओर मोतीबाग, नेताजी नगर, सरोजिनी नगर तथा लक्ष्मीबाई

नगर हैं, तो दूसरी ओर विस्तृत रामकृष्णपुरम्, नौरोजी नगर तथा सफदरजंग अस्पताल हैं। सफदरजंग अस्पताल के सम्मुख अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (All India Institute of medical sciences) है।

सफदरजंग जंक्शन से मुद्रिका बस किदवई नगर, साउथ एक्सटेंशन, डिफेंस कॉलोनी, एंड्रयूजजंग, लाजपतनगर, अमर कॉलोनी के विभिन्न सैक्टरों को स्पर्श करती लाजपतनगर जंक्शन पर पहुँचती है।

लाजपतनगर से निकलकर बस नेहरू नगर में पी.जी.डी.ए.वी. कॉलिज तथा श्री निवासपुरी को स्पर्श करती हुए जंगपुरा पुल पर चढ़ती और उतरती हुई निजामुद्दीन स्टेशन को स्पर्श करके सुन्दर नगर की ओर मुड़ जाती है। सुन्दर नगर से सुप्रीम कोर्ट, चिड़ियाघर, पुराना किला दिखाती हुई प्रगति मैदान के साथ-साथ पुन: रिंग रोड़ का रास्ता पकड़ती है।

रिंग रोड़ पर केन्द्रीय इन्द्रप्रस्थ परिवहन डिपो को सलामी देती हुई, राष्ट्र पिता महात्मा गाँधी, शाँति दूत जवाहरलाल नेहरू, श्री लालबहादुर शास्त्री तथा श्रीमती इंदिरा गाँधी की समाधियों को श्रद्धाजंलि अर्पित करती यमुना तट के साथ-साथ लालकिले के पार्श्व भाग को छूती हुई अन्तर्राज्यीय बस अड्डे से मुड़कर अलीपुर रोड़ पर आ जाती है और इंद्रप्रस्थ कॉलिज से गुजरती हुई माल रोड़ पर पहुँचती है। माल रोड़ पर सरकारी बस्ती तिमारपुर और दिल्ली विश्वविद्यालय की सीमा के साथ-साथ चलकर किंग्सवे कैम्प के चौराहे पर आ धमकती है।

किंग्सवे कैम्प से सीधा मार्ग है गंतव्य स्थान आजादपुर तक। मार्ग में एक ओर है—विशाल आधुनिक बस्ती मॉडल टाउन के तीन स्टॉप तथा दूसरी ओर है सुप्रसिद्ध 'छत्रसाल स्टेडियम'।

जहाँ से चले थे, वहाँ पहुँच गए। देखा न आपने दिल्ली का दृश्य! बढ़ा न आपका भौगोलिक ज्ञान? हुई न आपको दिल्ली व नई दिल्ली की आधुनिक बस्तियों की जानकारी। नए-नए पुलों को देखने तथा औद्योगिक संस्थानों के बोर्ड पढ़ने से हुआ न ज्ञान-वर्धन। दिल्ली के कॉलिजों, सरकारी कार्यालयों तथा अस्पतालों को देखकर भी तो ज्ञान-वृद्धि हुई।

शहरों की बसें 20 से 40 किलोमीटर की गति से चलती हैं। लगता है कि ताँगे की सवारी कर रहे हों। मिनट-मिनट में गेयर बदलने से गाड़ी की गति तेज-मध्यम होती रहती है। झटके ऐसे लगते हैं, जैसे बनारसी एक्के का घोड़ा नखरे करता है या बिजली के करेंट के झटके लगते हैं। बस में बैठी सवारियाँ झटके खाकर अगली सीट से टकराने को लालायित होती हैं, तो खड़ी सवारियाँ एक-दूसरे पर गिरती-पड़ती हैं। परिवहन अधिकारियों की सूझ-बूझ कहिए, मुद्रिका बस में न झटके हैं, न टकराहट। बस चली और उसने गति पकड़ी। समगति, समभाव से दौड़ी चली जा रही है। आप भी आराम से सवारी का आनन्द ले रहे हैं और देख रहे हैं हरियाली तथा नए ढंग के भवनों, मकानों की एकरूपता को।

दिल्ली की मुद्रिका-बस दिल्लीवासियों के लिए वरदान है। गरीब तथा मध्यवर्गीय जनता के लिए सुदूर गन्तव्य स्थल पर पहुँचने के लिए सस्ती और शीघ्र पहुँचाने वाली आनन्दप्रद सवारी है।

(235) दिल्ली की बसों में यात्रा/ लोकल बस में यात्रा

संकेत बिंदु—(1) सस्ता और सर्वसुलभ (2) सामान्य किराया (3) निश्चित और नियमित समय पर (4) बस यात्रा तपस्या से कम नहीं (5) उपसंहार।

दिल्ली की बसों में यात्रा अपने-अपने गंतव्य स्थल तक पहुँचने का सबसे सस्ता, सर्वसुलभ, शीघ्रगामी तथा श्रेष्ठ वरदान है। मध्यम वर्ग ही नहीं, निम्न वर्ग की भी शान की सवारी है। समय की नियमितता की पहचान है। दिल्लीवासियों की अहर्निश सेवा की प्रतीक है।

दिल्ली की बसों में यात्रा जान-पहचान बढ़ाने तथा मैत्री-विस्तार का सु-अवसर भी है। परिचितों, सम्बन्धियों तथा मित्रों के आकस्मिक मिलन का हेतु है। प्रेमियों के मिलन का सहज और सरल उपाय है। भारत के लघु रूप के दर्शन का साधन है।

आजकल दिल्ली की बसों में यात्रा करना एक तपस्या भी है। शारीरिक बल और सहन-शक्ति का प्रदर्शन स्थल है। वाक्-युद्ध का अनचाहा मैदान है। गुंडों ने लिए महिलाओं से छेड़छाड़ करने का स्वच्छन्द परिसर है। जेबकतरों के लिए कार्यसिद्धि का मुक्त क्षेत्र है।

दिल्ली की सामान्य बसों का किराया दो रुपए से लेकर आठ रुपए तक है। ह्वाइटलाईन और ग्रीनलाइन बसों का किराया अधिक है। चार किलोमीटर की यात्रा दो रुपए में हो जाए, इससे सस्ता वाहन और कौन-सा है, जबकि चाय का एक कप ही तीन रुपए का मिलता है। रिक्शा वाला भाव-ताव करेगा और 2 किलोमीटर के 5-6 रुपए माँग लेगा। नजदीक जाने के लिए तिपहिया स्कूटर और टैक्सी नखरे करेंगे।

दूर यात्रा के लिए बस जहाँ आठ रुपए लेगी, वहाँ तिपहिया स्कूटर 30-35 रुपए तथा टैक्सी 80-90 का बिल बनाएगी। दूरी अधिक होने पर स्कूटर या टैक्सी 125-150 रुपये तक ले लेते हैं। इसलिए दिल्ली की बसों में यात्रा बहुत सस्ती है। निर्धन-वर्ग की बात छोड़िए,मध्यम वर्ग भी दिल्लो की बसों में यात्रा कर संतुष्ट होता है।

दिल्ली में बसों की यात्रा इतनी सुलभ है कि प्राय: 5-10 मिनिट की प्रतीक्षा में ही आपकी मनचाही बस आपको मिल जाएगी। दूसरी ओर, गंतव्य-स्थल के लिए सीधी बस न मिलने की स्थिति में अन्य स्टॉप से बस बदल कर गंतव्य-स्थल पर पहुँचने की सुविधा है।

दिल्ली की बसें प्राय: 40 किलोमीटर की नियंत्रित गति से चलती हैं। यदि ट्रैफिक जाम न हो तो आप राणा प्रताप बाग से स्टेशन 20-25 मिनिट में तथा स्टेशन से महरौली एक-सवा घंटे में पहुँच सकते हैं। है ना शीघ्रगामी वाहन, गंतव्य-स्थल तक पहुँचने का।

दिल्ली की बसें प्रात: 5 बजे से रात्रि 10 बजे तक नियमित और निश्चित समय पर 10-15 मिनिट के अंतर पर चलती हैं। आप कह सकते हैं कि कभी-कभी समय को भी धोखा देती रहती हैं, तो साहब! लेट होना भारतीय समय (Indian Time) का गुण है।

दूरदर्शन समाचार को ही लीजिए। समय की 'पंकचुअलिटी' की प्रतीक होते हुए भी समय पर खबरें शुरू नहीं होतीं। वहाँ भी 'इंडियन टाइम' का गुण लागू होता है। रात्रि-सेवा की पंकचुअलिटी की बात तो छोड़ ही दीजिए।

एक ही रूट पर प्रतिदिन चलने वाले स्त्री-पुरुषों की मुलाकात कभी प्रेम का स्वरूप ले लेती है। बस-स्टॉप तथा बस-यात्रा प्रेमी मिलन की निरापद भेंट-स्थली तो है ही। कोई रोक नहीं, कोई टोक नहीं। बैठने के लिए सीट मिल जाए तो प्रेमपूर्वक संवाद द्वारा प्रेमालाप का मजा लूटिए।

दिल्ली की बसों में सभी वर्णों, धर्मों, सम्प्रदायों और प्रांतों के नर-नारी एक साथ सफर करते हैं। उनकी वेश-भूषा, बोल-चाल तथा भाव-भंगिमा सतरंगी इन्द्रधनुषीय छटा तथा लघु भारत के दर्शन करवाती है; भावात्मक-एकता का दिग्दर्शन करवाती है।

आप काम से हारे-थके घर लौटने के लिए बस से यात्रा कर रहे हैं। बस में बैठने की सीट मिल गई है। आप देखिए, बस के हिचकोले माँ की ममता के हिलोरों में बदल जाएंगे। आपको झपकी आने लगेगी और सुख-निद्रा में खो जाएंगे। 10-15 कि.मी. का लम्बा सफर हो तो भी बस के हिचकोले विश्राम के लिए विवश कर देंगे। बिना समय खोए थकान उतारने और पुनः स्फूर्ति पाने का इससे बढ़िया और क्या साधन हो सकता है।

दिल्ली में बसों की यात्रा तपस्या से कम नहीं। 'तपस्या' क्या है ? 'अभीष्ट की सिद्धि के लिए उठाया जाने वाला कष्ट।' यात्री का अभीष्ट है उसका गंतव्य स्थल। बस में चढ़ने वाले यात्रियों के धक्के सहना, पायदान पर खड़े लोगों का अवरोध तोड़ना, पहली तपस्या है। स्टेंडिंग में धक्कम-धक्का होना, जिसमें 'पेट-पीठ मिलकर एक' होने की उत्सुकता दूसरी तपस्या है। कण्डक्टर के कटुवचन सुनना, 'जगह खाली पड़ी है, आगे बढ़ो' तीसरी तपस्या है। बस के एकाएक लगे ब्रेक के झटके से सहयात्री पर गिरना और उसकी क्रोध भरी आँखों का सामना करना चौथी तपस्या है। विवशतावश यदि किसी नारी-यात्री पर गिर पड़े तो उसकी क्रोध भरी वाणी को झेलना अग्नि-परीक्षा है और अंत में जब आप उतरने लगें तो स्टेंडिंग में खड़े यात्री-प्रवाह को चीरना और चीर कर निकास द्वार से सफलतापूर्वक निकलना तपस्या की चरम सीमा है। इस बीच द्वार पर पहुँचते हुए आपने किसी के पैर को चीर दिया तो समझो आपकी तपस्या उसी प्रकार भंग हो गई, जिस प्रकार मेनका ने विश्वामित्र की की थी। सहन शक्ति है तो अपमान का घूँट पी लीजिए, अन्यथा अपना 'ब्लड प्रेशर' को 'हाई' कर लीजिए।

महिला यात्री के लिए यह यात्रा और भी कष्टप्रद तपस्या है। शरारती लड़के गाड़ी के पायदान पर खड़े हो जाएंगे ताकि कोई भी नारी उनको स्पर्श किए बिना चढ़ न सके। स्टेंडिंग में महिला यात्री को धक्के सहना, कुछ कहने पर प्रत्युत्तर में गंदे और कड़वे वचन सुनना, उसकी तपस्या ही समझिए। तपस्या का कठोर रूप तो उस समय देखने को मिलता है जब कुछ मनचले 'महिला-सीट' पर कब्जा कर लेते हैं और सीट न छोड़ने की जिद में महिला यात्री से झगड़ते हैं।

दिल्ली में बस-यात्रा जेबकतरों का निरापद परिसर है। बस में जहाँ स्टेंडिंग होगी, वहाँ किसी न किसी की जेब साफ होगी ही। पायदान पर खड़े बदमाश चढ़ते या उतरते समय हाथ का करिश्मा दिखा जाते हैं। मजे की बात यह है कि सहयात्री जेब कटते देखते हुए भी बोलेगा नहीं। कारण, वह जानता है कि जेबकतरे ने उस पर चाकू चला दिया तो आ बैल मुझे मार वाली स्थिति बन जाएगी। दु:ख तो तब होता है जब मास का पूरा वेतन घर पहुँचने से पहले ही साथ छोड़ देता है। मजदूर की दिन भर की दिहाड़ी पर हाथ साफ हो जाता है।

दिल्ली की बसें प्रदूषण फैलाने की चलती-फिरती प्रतिमाएं तो हैं, किन्तु 'ओवर लोडिंग' के कारण जो वायु प्रदूषण फैलता है, उससे तो दम ही घुटने लगता है। इस दम घोटू वातावरण में बीड़ी-सिगरेट का धुआँ मिल जाए तो समझिए करेला नीम पर चढ़ गया। आप कहेंगे कि बस में धूम्रपान वर्जित है, पर साहब मानता ही कौन है ?

दिल्ली की बसों में यात्रा दिल्लीवासियों के जीवन का आवश्यक ही नहीं अनिवार्य अंग है। जिस प्रकार सुख और दु:ख, जीवन के दो अनिवार्य तत्त्व हैं, उसी प्रकार दिल्ली की बसों में यात्रा कष्ट और कठिनाई का दु:ख तथा गंतव्य स्थल की प्राप्ति का सुख, दोनों सम्बद्ध हैं। कष्टों को हँसकर झेलिए और लीजिए यात्रा का आनन्द।

(236) भारत-पुत्र की अन्तरिक्ष यात्रा

संकेत बिंदु—(1) भारतीय अंतरिक्ष विज्ञान के इतिहास में अपूर्व (2) राकेश शर्मा की यात्रा आरम्भ (3) सोयूज टी की पृथ्वी-परिक्रमा (4) राकेश शर्मा का पृथ्वी पर लौटना (5) उपसंहार।

3 अप्रैल, 1984 का दिन भारतीय अन्तरिक्ष-विज्ञान के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा। उस दिन भारत-पुत्र राकेश शर्मा सोवियत भूमि से सोवियत अन्तरिक्ष यान 'सोयूज टी-11' में अन्तरिक्ष में गए। भूमंडल से अन्तरिक्ष यात्रा करने वाले श्री राकेश शर्मा 138वें यात्री हैं, किन्तु वे प्रथम भारतीय हैं, जिन्हें अन्तरिक्ष-यात्रा का सु-अवसर प्राप्त हुआ है।

सोवियत संघ ने श्री राकेश शर्मा को अन्तरिक्ष यात्रा का प्रशिक्षण देकर, अंतरिक्ष में जाने का अवसर प्रदान करके भारत को उपकृत किया है। इस सहयोग के लिए भारतवासी सोवियत संघ के ऋणी हैं। वैसे यह कार्य सोवियत संघ की नीति का अंग है। इससे पूर्व सोवियत संघ पोलैड, जर्मन जनवादी गणराज्य, मंगोलिया, वियतनाम, चेकोस्लोवाकिया, हंगरी, क्यूबा, बुलगारियाँ-रूमानियाँ तथा फ्रांस के नागरिकों को अन्तरिक्ष की सैर करवा चुका है।

सोवियत संघ में बाईकानूर नगर से 5-7 किलोमीटर दूर लांचिग पैड है। 3 अप्रैल को यूरी मालिशेव, स्रकालोव तथा राकेश शर्मा बस द्वारा लांचिग पैड के लिए रवाना होते हैं। रूस में भारत के राजदूत नूरुल हसन, रक्षा मंत्रालय में वैज्ञानिक सलाहकार डॉ.

अरुणाचलम्, भारतीय अन्तरिक्ष अनुसंधान संस्थान के प्रोफेसर यू.आर.राव, भारतीय वायुसेना के एअर मार्शल के.डी. चड्ढा तथा भारतीय पत्रकार 'यात्रा शुभ हो' बोलते हुए, हाथ हिला-हिलाकर उन्हें विदा करते हैं।

3 बजकर 55 मिनिट हुआ चाहते हैं। बाईकानूर के विस्तृत मैदान पर दूर-दूर तक अस्ताचल की ओर जाते सूर्य की किरणें पीला प्रकाश फैला रही हैं। हवा बहुत तेज है। तीनों अन्तरिक्ष यात्री 'स्पेस सूट' (अन्तरिक्षीय परिधान) में यान में प्रवेश करते हैं। वे अपनी अपनी सीटों पर अधलेटी-सी स्थिति में बैठते हैं। पेटियाँ बाँध लेते हैं। मालिशेव रूसी में और राकेश शर्मा हिन्दी में अपने-अपने देशवासियों के लिए संदेश पढ़ते हैं।

6 बजकर 37 मिनिट पर राकेट के सबसे नीचे के हिस्से से आग की लपटें निकलती हैं। राकेट प्रचण्ड धमाके और तीव्र धक्कों के साथ अन्तरिक्ष यान को लेकर अन्तरिक्ष में चल पड़ता है। अन्तरिक्ष यान अन्तरिक्ष की ओर जा रहा है। इसी में जा रहा है भारत-पुत्र राकेश शर्मा, भारत की कोटि-कोटि जनता का प्रतिनिधि।

राकेट के पृथ्वी छोड़ने के 119 सेकिंड पश्चात् 40 किलोमीटर की उँचाई पर राकेट का निचला खंड अलग होकर पृथ्वी पर गिरकर नष्ट हो जाता है। बीच का खंड 278 सेकिंड पश्चात् 160 किलोमीटर की उँचाई पर राकेट छोड़ देता है। वह उसी वायुमंडल में भस्म हो जाता है। तीसरा भाग 527 सेकिंड पश्चात् लगभग 220 किलोमीटर की उँचाई पर 'सोयूज टी-11' से अलग हो जाता है।

'सोयूज टी-11' पृथ्वी की कक्षा में परिक्रमा कर रहा है। राकेट की भयंकर उड़ान के कारण भयानक जोखिम उठाने वाले तीनों यात्री पृथ्वी की छठी से 11वीं परिक्रमा तक विश्राम करते हैं।

4 अप्रैल, 1984 को 'सोयूज टी-11' अन्तरिक्ष में पहले से विद्यमान 'सैल्यूज-7' से जुड़ जाता है। सैल्यूज-7 के अन्तरिक्ष-यात्री इन तीनों यात्रियों का हार्दिक स्वागत करते हैं।

सैल्यूज-7 में रहते हुए राकेश शर्मा प्रतिदिन तीन समय भरपेट भोजन करते हैं, 6 घंटे पूरी नींद लेते हैं। दूरदर्शन-कार्यक्रम प्रस्तुत करते हैं। प्रधानमंत्री इन्दिरा गाँधी, संवाददाताओं तथा रेडियो, टी.वी. कमेंट्रेटरों से बात करते हैं तथा परीक्षण करते हैं।

राकेश शर्मा ने अन्तरिक्ष में जो प्रयोग किए, उनमें से मुख्य हैं—'शरीर पर भारहीनता का प्रभाव और योग-क्रियाओं का हृदयगति पर असर। पदार्थ-विज्ञान सम्बन्धी प्रयोग में ऐसे धातुओं का मिश्रण तैयार करना, जो धरती पर सम्भव नहीं होता। भू-सम्पदा की खोज। भारत भू पर पृथ्वी के नीचे कौन-सी सम्पदा छिपी है। इसके लिए शक्तिशाली कैमरों से चित्र लेना।'

11 अप्रैल का शुभ दिन। भारत-पुत्र अन्तरिक्ष यात्री राकेश शर्मा का पृथ्वी पर लौटने का मंगलमय दिवस। रूस में कजाकिस्तान के नगर आरकालिया का स्वच्छ आकाश।

मौसम साफ है, धूप खिली है। 17 हेलीकाप्टर 35-40 किलोमीटर की उड़ान के बाद उमी क्षेत्र में चक्कर लगा रहे हैं।

सैल्यूट-7 के मित्रों से विदा लेकर तीनों अन्तरिक्ष यात्री 'सोयूज-टी 10' के अवतरण कक्ष में बैठते हैं। 'सोयूज टी-11' को वहीं छोड़ आते हैं। अटलांटिक महासागर पर उड़ते हुए जब वे अफ्रीका के ऊपर आए, तो यान की गति 7500 मीटर प्रति सैकिंड से घटाकर 300 मीटर प्रति सेकिण्ड कर देते हैं। घटी गति के बावजूद अवतरण-कक्ष पृथ्वी की कक्षा में रह नहीं सकता। तेजी से पृथ्वी की ओर बढ़ा तथा 110 किलोमीटर की उँचाई से पृथ्वी के वायुमण्डल में प्रविष्ट हुआ। चार बजकर उन्नीस मिनिट पर यान पृथ्वी तल पर पहुँच गया।

भारहीनता का प्रभाव समाप्त होने पर तीनों यात्री स्वस्थ-प्रसन्न चित्त नजर आते हैं। उनका डॉक्टरी परीक्षण होता है। स्क्वाड्रन लीडर राकेश शर्मा का वजन 600 ग्राम कम पाया जाता है।

5 मई, 1984 को राकेश शर्मा अपने दोनों माथी अन्तरिक्ष यात्रियों तथा अन्य सहयोगियों एवं अन्तरिक्ष यात्रा के लिए चुने गये प्रशिक्षण-साथी विंग कमांडर रवीश मल्होत्रा के साथ भारत वापिस आ गए। पालम-हवाई अड्डे पर वायु-सेनाध्यक्ष एअर मार्शल दिलबागसिंह, 40 संसद् सदस्यों तथा अनेक विशिष्ट व्यक्तियों ने उनका हार्दिक स्वागत किया। भारत माता अपने अन्तरिक्ष यात्री-पुत्र को पा गर्व से आनन्द विभोर हो गई। भारतवासी प्रसन्नता से झूम उठे। भारत-सरकार ने उन्हें 'अशोक चक्र' प्रदान कर सम्मानित किया।

राकेश शर्मा की अन्तरिक्ष-यात्रा भारत की अन्तरिक्ष प्रगति में आगे बढ़ा सुदृढ़ पग है, स्वर्णिम भविष्य का उज्ज्वल संकेत है।

(237) पिकनिक और हम/एक बार चले पिकनिक पर

> **संकेत बिंदु**—(1) मन व तन को स्वस्थ रखने का माध्यम (2) महानगर में अनेक पिकनिक स्थल (3) परिवार के साथ पिकनिक (4) उपसंहार।

महानगरों के तनावपूर्ण जीवन में व्यक्ति कुछ क्षण मौज-मस्ती, सैर-सपाटा, घूमना-फिरना चाहता है जिसे आज के सन्दर्भ में बोलचाल के साधारण शब्दों में पिकनिक भी कहा जाता है। इस तरह के पिकनिक कार्यक्रम से परिवार या मित्रों का समूह जैसा भी उचित है समयानुसार साथ रहता है। पिकनिक का अर्थ केवल मन को स्वस्थ रखने का माध्यम है अर्थात् मनोरंजन कहा गया है। जो भी समय हँसी-खुशी में बीत जाये, मन को प्रसन्नता प्रदान करे उसे भी पिकनिक ही कहा जायेगा।

यदि देखा जाये तो जो समय बीत गया वह लौटकर वापिस नहीं आता उसकी केवल, स्मृतियाँ ही शेष रह जाया करती हैं। पिकनिक के जो भी अनुभव होते हैं वह एक यादगार बन जाया करते हैं। पिकनिक हो या सैर-सपाटा इसमें मौजमस्ती होनी अनिवार्य है।

महीने में एक बार व्यक्ति को अपने परिवार के साथ पिकनिक पर जाने का कार्यक्रम बना लेना चाहिए। पिकनिक के लिए कोई ऐतिहासिक स्थल, प्राचीन प्राचीर, मन्दिर, बाग-बगीचा, पार्क या जो भी स्थान मन को अच्छा लगे वहाँ जाकर मन को प्रसन्न करने के उपाय करने चाहिएँ।

महानगर दिल्ली में पिकनिक के लिए या घूमने-फिरने के लिए अनेक स्थान हैं, अपने मन के अनुसार कहीं जाया जा सकता है। वैसे कुतुबमीनार एक ऐतिहासिक स्थल है, दिल्ली का लालकिला भी इतिहास की यादें ताजा कराता है। चिड़ियाघर में भी अनेक जानवरों को एक साथ देखा जा सकता है। चिड़ियाघर के साथ ही बना महाभारत काल का एक किला जिसे पुराना किला या पाण्डवों का किला कहा जाता है, भी देखने योग्य है। कनाट प्लेस में जन्तर-मन्तर भी देखने योग्य है। इनके अतिरिक्त लक्ष्मी नारायण मन्दिर, छतरपुर मन्दिर, लोटस टैम्पल, कालकाजी मन्दिर जैसे अनेक स्थान हैं जहाँ पर धार्मिकता के साथ-साथ पिकनिक का आनन्द भी लिया जा सकता है। यमुना के किनारे भी पिकनिक के लिए उचित कहे जाते हैं। यह तो आपको ही निर्धारित करना है कि आप अपने परिवार के साथ या मित्रों के साथ कहाँ जाना पसन्द करते हैं ?

एक बार हमने भी अपने परिवार के साथ पिकनिक पर जाने का मन बना ही लिया। गाड़ी में खाने-पीने का सामान लिया और चल दिये अपने परिवार के साथ घूमने, पिकनिक मनाने और मौजमस्ती करने। घर से निकलकर पहले सीधे हम कुतुबमीनार गये, वहाँ पहुँचकर हमारे दोनों बच्चे तो ऐसे दौड़े जैसे उन्हें कोई 'कारूँ का खजाना' ही मिल गया हो; बच्चे आगे-आगे और हम पति-पत्नी पीछे-पीछे धीरे-धीरे चल रहे थे। बच्चों ने कुतुबमीनार पहली बार ही देखा था और पत्नी ने भी पहली बार ही कुतुबमीनार को देखा और बोली इतनी लम्बी मीनार को बनाया कैसे गया होगा ?

वहाँ एक घण्टा बिताने के बाद हम लोगों ने खाना खाया, थोड़ी देर रुककर हम जन्तर-मन्तर देखने आ गये।

जन्तर-मन्तर पहुँचकर दोनों बच्चों ने बहुत आनन्द लिया, पत्नी भी पहली बार ही घूमने आयी थी, वह थक जाने के बाद भी मन में उमंग भरकर घूमने का आनन्द उठाती रही। जन्तर-मन्तर से हम पीछे लोटस टैम्पल पहुँचे, वहाँ पर भी लगभग एक घण्टा रुके। उसके बाद कालकाजी मन्दिर आ गये। मन्दिर में प्रसाद चढ़ाया, दर्शन किये और बाहर आकर बच्चों ने ठण्डा लिया और हम दोनों ने गर्म चाय का आनन्द उठाया। शाम होने को थी। कालकाजी से हम सीधे इण्डिया गेट पर आ गये। अब अँधेरा हो चुका था, बिजली की चमक से इण्डिया गेट बहुत सुन्दर लग रहा था, इण्डिया गेट के पास खड़े होकर राष्ट्रपति भवन भी जगमगाता दिखायी दे रहा था। बच्चों को यहाँ भी काफी आनन्द आया, तब पत्नी थक चुकी थी और घर चलने को कहने लगी। सारा दिन घूमने के बाद पिकनिक में आनन्द तो खूब आया और थकावट भी हो गयी। इण्डिया गेट से हम गाड़ी में घर चलने को तैयार हुए, गाड़ी स्टार्ट की और सड़क पर आ गये, अभी कुछ ही दूर चले थे कि गाड़ी बन्द हो

गयी, देखने से पता चला कि गाड़ी में पैट्रोल समाप्त हो गया है। अब समस्या विकट हो गयी, पास में कोई पम्प भी नहीं था जो पैट्रोल ले लिया जाता। रात के दस बज चुके थे, पत्नी और बच्चे थकावट के मारे सोने के मूड़ में थे और गाड़ी सुनसान सड़क पर खड़ी थी।

'गये थे नमाज पढ़ने, रोजे गले पड़ गये' वाली कहावत चरितार्थ हो गयी और 'हम न घर के रहे, न घाट के' बीच अधर में फँसकर रह गये। तभी पुलिस की जिप्सी पास आकर रुकी तो मैंने कहा गाड़ी का पैट्रोल समाप्त हो गया है, इसलिए यहाँ खड़े हैं, इस पर पुलिस कर्मचारी ने कहा कि घर से निकलते समय गाड़ी की देखभाल और पैट्रोल देख लेना चाहिए। पुलिस कर्मचारी ने हमारी सहायता की और हमारी गाड़ी को पैट्रोल पम्प तक अपनी जिप्सी से बाँधकर छोड़ गया। पैट्रोल लेकर हम घर आये तव रात के बारह बज चुके थे। पिकनिक तो अच्छी रही मगर मेरी गलती से परिवार परेशान हो गया। अब कभी भी जब पिकनिक पर जाना होगा तो गाड़ी का पैट्रोल सदा याद रहेगा।

(238) पक्षियों की प्रवास-यात्राएँ

संकेत बिंदु—(1) पक्षियों का प्रवास समय (2) प्रवास यात्रा में अनेक कष्ट और कठिनाइयाँ (3) पक्षियों का आना-जाना मोहक व आकर्षक (4) भारत में अनेक स्थानों पर प्रवास (5) उपसंहार।

जिस प्रकार हम प्रवास-यात्राएँ करते हैं और अपने मन को प्रसन्न रखने के साधन जुटाते हैं उसी प्रकार पक्षी भी प्रवास-यात्राएँ में करते हैं। शरद् ऋतु में प्रारम्भ होते ही हमारे देश भारत में उत्तरी क्षेत्र से—विदेशों से बहुत पक्षी सितम्बर-अक्टूबर माह में आते हैं और मौसम बदलने के साथ-साथ अपने देशों में वापिस लौट जाते हैं। पक्षी हमारे भारत में एशिया, यूरोप, अमेरिका, साइबेरिया आदि क्षेत्रों से आते हैं—

मन कहता है पक्षी बनकर
मैं भी उड़ा गगन में जाऊँ
एशिया, यूरोप, अमेरिका की
सीमाएँ जब लाँघ के आऊँ
इतना ऊँचा चढ़ूँ गगन में
पार हिमालय को कर जाऊँ
इस धरती के जन जन को मैं
मानवता के गीत सुनाऊँ।

भारत आने वाले पक्षी अपनी तीव्र वृद्धि से चन्द्रमा, सूर्य और सितारों को हृदय बनाकर इनकी सहायता से भारत के मैदानी क्षेत्रों में आते हैं। पक्षियों का भारत आने का मुख्य मार्ग हिमालय पर्वत की उत्तर-पश्चिम और उत्तर-पूर्वी मार्ग हैं, जिनसे यह पक्षी भारत के मैदानी

क्षेत्रों में बनी झीलों, नदियों पर आकर अपना जीवन सुरक्षित रख पाने में सफल होते हैं। जिन क्षेत्रों में सर्दी की अधिकता के कारण पानी बर्फ की तरह जम जाता है, उन क्षेत्रों से पक्षी दूसरे सर्दी वाले क्षेत्रों में चले जाते हैं ताकि भरपेट भोजन प्राप्त हो सके।

इन पक्षियों को प्रवास-यात्राओं में अनेक कठिनाइयाँ होती हैं, कष्टों और खतरों का सामना भी इन पक्षियों को करना पड़ता है। प्रवास-यात्रा के समय यह पक्षी अपनी पूरी गति से नहीं उड़ते, फिर भी अनुमान है कि इनकी उड़ने की रफ्तार 48 से 64 किलोमीटर प्रति घन्टा होती है। विशेषकर विदेशों से उड़कर आने वाली बत्तखों की 80 से 96 किलोमीटर प्रतिघंटा की रफ्तार होती है। पक्षी पृथ्वी से लगभग 900 मीटर की ऊँचाई पर उड़ते हैं।

तूतीहर नामक पक्षी हिमालय से नीलगिरि तक बिना रुके 24 सौ किलोमीटर की लगभग यात्रा उड़कर करते हैं। गुलाबी मैना 48 सौ किलोमीटर की यात्रा कर भारत आती है। धोबिन पक्षी और फुदकी नामक पक्षी भी लगभग 3 हजार 2 सौ किलोमीटर की यात्रा कर भारत में आते हैं। कुछ पक्षी तो ऊँची उड़ान भरते हुए हिमालय पर्वत की ऊँची चोटियों को सीधे ही पार कर हमारे भारत में आ जाते हैं। कुछ पक्षी समुद्र मार्ग मे भी भारत में प्रवेश करते हैं। सारस और हंस जब आकाश में उड़ते हुए आते हैं तो ऐसा लगता है कि पूरे आकाश में चाँदी की चादर बिछा दी गई हो। आबाबील, फुदकी और यकदिल पक्षी अपने समूह बनाकर आकाश में चहचहाट और फड़फड़ाहट से वातावरण को आकर्षक बना देते हैं। इन पक्षियों का आना जितना मोहक लगता है, इनका वापिस जाना भी कम आकर्षक नहीं होता।

उत्तर प्रदेश, राजस्थान, बिहार और दिल्ली में प्रवासी पक्षियों की मनमोहक छटा देखी जा सकती है। दिल्ली में चिड़ियाघर के अतिरिक्त दिल्ली में यमुना के किनारे, राजस्थान में उदयपुर, जयपुर, डींग आदि क्षेत्रों में भी इन प्रवासी पक्षियों का जमघट देखा जा सकता है। दिल्ली चिड़ियाघर के एक अधिकारी के अनुसार बत्तखों की जो प्रमुख जातियाँ विदेशों से भारत आती हैं उनमें शवलर, मैंलर्ड, कामनटील, पिनटैल, पैलीगन (हवासल), उकम् प्रमुख हैं जिनकी संख्या हजारों में होती है। अनेक जातियों के हज़ारों पक्षी भारत में आकर अपना जीवनयापन करते हैं और सर्दी समाप्त होते ही मार्च-अप्रैल में अपने क्षेत्रों में वापिस चले जाते हैं। इन पक्षियों के आने और जाने का एक ही मार्ग होता है।

विदेशों के अतिरिक्त भारत से भी पर्वतीय क्षेत्रों से अनेक पक्षी अपनी प्रवास-यात्रा से दिल्ली और इसके निकटवर्ती क्षेत्रों में आते हैं। जिनमें मैना, पपीहा, तोता और पहाड़ी कौआ आदि पक्षी देखे जा सकते हैं।

पक्षियों का इस प्रकार प्रवास-यात्राओं द्वारा भारत में आना समूची मानवजाति के नाम एक यह सन्देश है कि, "धरती के मानव ने तो धरती और आकाश का सीमाकरण किया है, मानव की जातियाँ और धर्म बनाये, हिंसा, आगजनी, लूट के व्यापार को बढ़ावा दिया है मगर पक्षियों की कोई जाति, कोई धर्म नहीं, न हिंसा, न आगजनी, न लूट और न ही धरती और आकाश की सीमा का बन्धन।"

पक्षियों की इस प्रकार की यात्राओं से हमें एकता, मित्रता और भाईचारे की शिक्षा तो मिलती है, साथ ही आपस में मिलजुल कर रहने का पाठ भी यह पक्षी हमें देते हैं। आओ, हम बाहर से आये पक्षियों को देखने अपने निकटवर्ती स्थानों पर चलें और अपना भारतवासी होने का परिचय 'अतिथि सत्कार' कर दें।

(239) मेरी पहली हवाई यात्रा

संकेत बिंदु—(1) हवाई यात्रा का अवसर (2) मन में अपार उत्साह (3) हवाई यात्रा की तैयारियाँ (4) मन में खुशी व भय (5) उपसंहार।

'बड़े भाग्य मानुष तन पावा' वाली कहावत मेरे जीवन में चरितार्थ हो गयी। क्योंकि मुझे पहली बार हवाई यात्रा का सौभाग्य प्राप्त हो गया, फिर होता भी क्यों न, क्योंकि रामचरित मानस में उल्लेख आता है कि '**सकल पदार्थ है जग माहीं**' और उन सकल पदार्थों में मुझे पहली बार जीवन में हवाई यात्रा का अवसर मिला। मेरा मन वायुयान में बैठने से पूर्व ही काल्पनिक उड़ान भर रहा था और अनेक फिल्मी गाने मेरे मन और मस्तिष्क पर अपना प्रभाव दिखा रहे थे।

अवसर मिला मुझे नासिक में एक कवि सम्मेलन में जाने का, आयोजकों ने मेरे नाम का टिकट दिल्ली से नासिक का हवाई जहाज़ का मुझे डाक से भिजवाया और साथ में यह भी लिखा कि आप नासिक से फिर मुम्बई में भी एक कवि-सम्मेलन में भाग लेंगे और आपको वापसी की टिकट मुम्बई में हवाई जहाज़ का दे दिया जायेगा। इसके साथ और बातें तो अनेक लिखी थीं, मगर मेरे लिए महत्त्वपूर्ण तो केवल पहली बार हवाई यात्रा ही थी।

चूँकि में पहली बार हवाई यात्रा कर रहा था और मुझे हवाई यात्रा के नियम तो पता थे नहीं, इसलिए मैं हवाई यात्रा की आवश्यक जानकारी अपने मित्रों से एकत्र करने में लग गया, क्योंकि हवाई यात्रा तो कुछ घण्टों की थी, मगर मन में उत्साह तो बहुत अधिक था। मेरे उत्साह को देखकर मेरा परिवार भी खुश था और सारे मुहल्ले में सब जगह एक ही चर्चा थी, मेरी पहली हवाई यात्रा की। मैं पास के मन्दिर में पण्डित जी के पास भी गया और उस दिन घर से कितने बजे महूर्त के अनुसार निकलना ठीक रहेगा इसकी भी जानकारी मैंने पण्डित जी से लेली, क्योंकि यह पहली हवाई यात्रा सुखद और सुविधाजनक रहे इसके लिए मैं कोई भी कोर-कसर छोड़ना नहीं चाहता था। वह इसलिए भी कि यदि मेरी पहली यह हवाई यात्रा सफल होती है तो भविष्य में अनेक हवाई यात्राओं का आनन्द भी उठाया जा सकता है। मेरी पहली हवाई यात्रा थी और पूरे परिवार में इस प्रकार का उत्साह था जैसे मैं गंगा सागर की यात्रा पर जा रहा हूँ या मक्का-मदीना की यात्रा करने की ठान चुका हूँ। लोगों को ऐसा लग रहा था कि मैं अमरनाथ या हेमकुण्ट साहिब जैसी किसी कठिन यात्रा पर जाने को तत्पर हूँ। मेरे मुहल्ले वाले मुझे आश्चर्यजनक नज़रों से देखने लगे, फिर देखें भी क्यों न, क्योंकि मैं अम्बर में वायुयान द्वारा एक विशेष यात्रा पर अपने जीवन में

पहली बार जा रहा था। मैं कल्पना कर रहा था कि जब मैं हवाई जहाज पर बैठूँगा और जहाज़ उड़ेगा तो नीचे लाखों आदमी उस उड़ते हुए हवाई जहाज़ को देखेंगे ज़रूर, क्योंकि उस जहाज़ मैं बैठकर अपनी पहली हवाई यात्रा कर रहा हूँगा।

मेरी पहली हवाई यात्रा का दिन आ गया, मेरी पत्नी ने चार जोड़े कपड़े, तौलिया, अण्डवियर, रूमाल, तेल, साबुन, पेस्ट, टूथब्रश आदि सभी सामान अटैची में रख दिया। मैं घर से निकलने ही वाला था कि मन्दिर के पण्डित जी घर आये और उन्होंने 'मेरी यात्रा सफल हो' इसके लिए एक बड़ी फूलों की माला मेरे गले में डालकर मुझे सफलता का आशीर्वाद दिया।

मैंने बाहर सड़क से ऑटो पकड़ा और चल पड़ा इन्दिरा गाँधी एअरपोर्ट के लिए, लगभग एक घंटे सफर के पश्चात् ऑटो एअरपोर्ट पर रुका; मैंने अपनी अटैची उठाई ऑटो वाले को भाड़ा दिया और एअरपोर्ट को अन्दर पहुँचा। वहाँ पहुँचकर मैंने स्वागत कक्ष में अपने हवाई जहाज़ की जानकारी ली। टिकट दिखाकर मैंने अपना सामान भी खोलकर दिखा दिया, सुरक्षाकर्मियों ने मेरी तलाशी भी ली और मुझे हवाई पट्टी पर जाने की अनुमति मिल गयी।

सामने एयर इण्डिया का बहुत बड़ा हवाई जहाज़ खड़ा था, मैं खुश भी था और भीतर से थोड़ा-सा भय भी लग रहा था क्योंकि इससे पहले मैं कभी आसमान में हवाई जहाज़ के माध्यम से उड़ा नहीं था। खैर! अन्य यात्रियों को देखता हुआ मैं भी हवाई जहाज़ के भीतर प्रवेश कर गया। एक सुन्दर महिला ने मुझे पहले नमस्ते की और फिर टिकट दिखाने को कहा। मैंने अपना टिकट दिखाया तो उस सुन्दर बाला ने मुझे मेरी सीट पर बिठा दिया। मैं हवाई जहाज़ की सीट पर ऐसे जा बैठा जैसे कोई मंत्री अपनी कुर्सी पर जा बैठता है।

थोड़ी देर बार घोषणा हुई। सभी यात्री सावधान हो जायें, हवाई जहाज उड़ने की तैयारी में है, तो एक व्यक्ति खड़ा हो गया और बोला—पहले मेरी बात सुन लें, फिर हवाई जहाज़ को उड़ायें। उस व्यक्ति के पास एक सुन्दर-सी एअर होस्टेस आयी और बोली—बताइये क्या बात आप सुनाना चाहते हैं ? तो वह व्यक्ति बोला—देखो मैडम, आप विमान चालक से कह दें कि वह विमान का तेल, टायरों की हवा और विमान के नट-बोल्ट एक बार जाँच लें, क्योंकि मैं बहुत परेशान हो चुका हूँ। तभी विमान का चालक वहाँ आया और बोला—भाई साहब सब कुछ ओ.के हैं, आप सीट पर बैटें, प्लेन उड़ने का समय हो चुका है, मगर वह आदमी नहीं माना और फिर बोला—जहाज़ का तेल, टायरों की हवा देख लो मेरे भाई, वरना रास्ते में मुसीबत हो जायेगी। जब मैं गाँव से चला तो एक बैलगाड़ी से मैंने लिफ्ट ली मगर वह बैलगाड़ी फँस गयी और और मुझे नीचे उतरकर धक्का लगाना पड़ा। सड़क पर आकर बस पकड़ी, बस रास्ते में खराब हो गयी, बस में धक्का लगाने वालों में मेरा भी नम्बर आ गया।

दिल्ली आकर मैंने ऑटो पकड़ा, मगर क्या बताऊँ कि महिपालपुर के पास ऑटो खराब हो गया, ड्राईवर के कहने पर मैंने ऑटों में धक्का लगाया। विमान चालक महोदय मैं आपसे

इसलिए निवेदन कर रहा हूँ कि विमान को भली प्रकार से देख लो, अगर कहीं आसमान में जाकर विमान रुक गया तो साफ-साफ कहे देता हूँ कि मैं विमान से नीचे उतरकर विमान को धक्का लगाने वाला नहीं हूँ, क्योंकि विमान आसमान में होगा और वहाँ पर तो पैर रखने की भी जगह नहीं होगी। उस आदमी की बात सुनकर सभी हँसने लगे और उस आदमी को उसकी सीट पर बिठा दिया गया।

विमान में घोषणा हुई, सभी यात्री अपनी-अपनी सीट पर बैल्ट बाँध लें विमान उड़ान भरने वाला है। विमान आकाश में उड़ा और मैं अपनी पहली यात्रा का आनन्द भरपूर ले रहा था, तभी एक सुन्दर-सी बाला ने मेरे आगे जूस का गिलास कर दिया, मुझे वह जूस पीकर बहुत आनन्द आया। इसके बाद चाकलेट दी गयी, फिर कॉफी का नम्बर आया। तभी विमान में घोषणा हुई कि सभी यात्री अपनी सीट पर बैल्ट बाँध लें, विमान नीचे उतरने वाला है। सभी यात्रियों के साथ-साथ मैंने भी बैल्ट बाँध ली और हवाई जहाज़ नीचे ज़मीन पर उतर चुका था और मेरी हवाई यात्रा भी सम्पूर्ण हो चुकी थी।

समाज

(240) समाज

संकेत बिंदु—(1) समाज की परिभाषा (2) विभिन्न विचारकों की दृष्टि समाज का अर्थ (3) सामाजिक सम्पन्नता का अर्थ (4) समाज विघटन के कारण (5) उपसंहार।

बहुत से लोगों का समूह समाज है। एक जगह रहने वाले अथवा एक ही प्रकार का काम करने वाले लोगों का वर्ग, दल, समूह या समुदाय समाज है। किसी विशिष्ट उद्देश्य से स्थापित की हुई सभा समाज है। जैसे-आर्य समाज, संगीत समाज। किसी प्रदेश या भूखंड में रहने वाले लोग जिनमें सांस्कृतिक एकता होती है, समाज है। जैसे—हिन्दू समाज। किसी सम्प्रदाय के लोगों का समुदाय, समाज है। जैसे—अग्रवाल समाज, ब्राह्मण समाज आदि।

डॉ. सम्पूर्णानन्द समाज की व्याख्या इस प्रकार करते हैं, 'समम् अजन्ति जना: अस्मिन् इति।' जिसमें लोग मिलकर एक साथ एक गति से एक-से चलें, वही समाज है।' (समाजवाद, पृष्ठ 19) पु.ग. सहस्रबुद्धे का मानना है, 'जब पूर्व परम्पराओं का एक अभिमान होता है, वर्तमान सुख-दु:ख तथा भविष्यकाल की आशा-आकांक्षा और ध्येय दिशा एक होती है, तब वह लोक-समूह समाज कहलाने लगता है।' (हिन्दू समाज : संघटन और विघटन, पृष्ठ 2) समाज मनोवैज्ञानिक टी. पार्सन्स (T-Parsons) का मत है, 'Society is a network of Social relationship' अर्थात् सामाजिक संबंधों की पूर्ण बनावट ही समाज है। एल. विल्सन (L. Wilsan) और डब्ल्यू. एल. कोल्फ (W.L. kolf) के शब्दों

में, 'समाज एक ऐसा समूह है जिसके अन्तर्गत सदस्य सामान्य जीवन की प्रारम्भिक आवश्यकताओं एवं दशाओं को पूर्ण करता है। मनुष्य की पारस्परिक क्रियाएँ, अन्त:क्रियाएं एवं प्रतिक्रियाएं ही समाज का निर्माण एवं विकास करती हैं। इनके माध्यम से ही समाज की पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को उसके कल्याण के लिए अपने अनुभव हस्तांतरित करती है।

तर्कों, वादों, कटु संघर्षों में / खोए जन।
निर्मित कर सकते न/सौध सामाजिकता का।।

—सुमित्रानन्दन पंत (आस्था, पृष्ठ 141)

व्यक्ति सत्य से ही सामाजिक-सत्य का उद्‌घाटन होता है और सामाजिक सत्य व्यक्ति सत्य को प्रभावित करता है। मनुष्य स्वभाव से सामाजिक प्राणी है। मनुष्य समाज में रहकर लाभान्वित होता है। दूसरी ओर, गेटे (Goethe) का मानना है कि 'सबसे अधिक सुखी समाज वह है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति परस्पर हार्दिक सम्मान की भावना रखता है।' (The most pleasant society is that in which an attitude of Cheerful respect is maintained by its members towards one another.) इसलिए स्वामी रामतीर्थ कहते हैं, तुम समाज के साथ ही ऊपर उठ सकते हो और समाज के साथ ही तुम्हें नीचे गिरना होगा। यह तो नितान्त असम्भव है कि कोई व्यक्ति अपूर्ण समाज में पूर्ण बन सके। क्या हाथ अपने आपको शरीर से पृथक् रखकर बलशाली बन सकता है ? कदापि नहीं। दूसरी ओर महादेवी जी चेतावनी देती हैं, 'जब वैधानिक और सामाजिक स्थिति परस्पर विरोधी हों तब सदस्यों के अधिकार अलंकार-मात्र रह जाते हैं। (संभाषण, पृष्ठ 120) कारण, 'समाज सर्वत्र अपने ही सदस्यों में से प्रत्येक के मानवत्व के विरुद्ध षड्‌यन्त्र है।'—एमर्सन (सेल्फ रिलायंस)

सामाजिक सम्पन्नता का अर्थ है मनुष्य सुखी हों, नागरिक स्वतंत्र हों और राष्ट्र महान् हो। इसलिए 'जिस समाज में गरीबों के लिए स्थान नहीं, वह उस घर की तरह है, जिसकी बुनियाद न हो। कोई हल्का-सा धक्का भी उसे जमीन पर गिरा सकता है।'-प्रेमचन्द (कर्मभूमि, पृष्ठ 383) अपने पूर्वजों की उपलब्धियों का कम मूल्य आँकने या उनसे घृणा करने देने का आघात समाज की आध्यात्मिकता को चोट पहुँचाता है। दहेज, बालविवाह, बहुपत्नीत्व, देवदासी आदि प्रथाएं समाज के विकास में बाधक हैं। वैधव्य तथा परित्यक्ता-वस्था में नारी का पुनर्विवाह निषेध समाज-पतन के चिह्न हैं। वेश्या तथा भिखारी जीवन समाज के अभिशाप हैं। अवैध-प्रेम तथा छुआछूत की मान्यताएँ समाज के कोढ हैं। अंध-विश्वास, अंधश्रद्धा तथा अनुपयुक्त परम्पराओं का पालन समाज की गति अवरुद्ध करते हैं। जानसन का तो यहाँ तक कहना है, 'To the Community, sedition is a fever. Corruption is a gangrene & idleness is atrophy.' अर्थात् समाज के लिए राजद्रोह एक ज्वर है, भ्रष्टाचार विगलन है तथा अकर्मण्यता क्षय रोग है। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी की धारणा तो यहाँ तक है कि 'जिस समाज में मानवीय विचारों और व्यवहारों के निरन्तर परिवर्तनमान मूल्यों के विचार करने वाले मनीषी, प्रकृति के रहस्य भेदकर नवीन-नवीन

जानकारियाँ उद्घाटित करने वाले अनुसंधाता नहीं होते, वह समाज-प्रवाह रुद्ध जलराशि के समान गन्दा, गतिहीन और मृत बन जाता है।
(विचार-प्रवाह, पृष्ठ 239)

समस्याओं की उत्पत्ति समाज विघटन के कारण होती है। समाज में परस्पर मतैक्य जब नहीं रहता, समूह का एकत्रित रहने का उद्देश्य इन मत-मतान्तरों से संकुचित हो जाता है तो समाज-जीवन अस्थिर हो जाता है। समाज-विघटन के प्रमुख कारण हैं—(1) पवित्र तत्त्वों तथा मूल्यों का ह्रास। (2) स्वार्थी वृत्ति (3) औपचारिकता का निर्वाह (4) व्यक्तिगत अधिकार की लिप्सा (5) सुख-प्राप्ति की बलवती इच्छा (6) आबादी की विभिन्नता (7) पारस्परिक अविश्वास तथा (8) अस्थिरता निर्माण करने वाली घटनाएं।

मानव-प्राणि-समूह समाज है। ईश्वर का मूर्त रूप प्राणी है। इस प्रकार समाज प्रकृति का साक्षात् ईश्वरीय रूप है। समाज की आराधना, ईश्वर की पूजा है। समाज की सेवा, ईश्वर से साक्षात्कार करने की विधि है, मोक्ष प्राप्ति का मार्ग है। अत: समाज के अस्तित्व में प्राणी के प्राण हैं। समाज का स्वस्थ जीवन प्राणी के कल्याण की गंगोत्री है।

(241) सामाजिक समस्याएँ

संकेत बिंदु—(1) अनेक समस्याओं से ग्रस्त (2) भारतीय नारियों की समस्याएँ (3) दहेज प्रथा और भ्रष्टाचार की समस्या (4) जातिवाद, अशिक्षा और कट्टरता की समस्यायें (5) उपसंहार।

इक्कीसवीं सदी में प्रविष्ट होने वाला भारतीय समाज असाध्य रोगों से ग्रस्त, कुप्रथाओं से पीड़ित, अन्धविश्वासों से दलित और प्राचीन हानिकारिणी रूढ़ परम्पराओं से प्रताड़ित है। आज के वैज्ञानिक युग में भी वह अपने कुसंस्कारों तथा कुप्रथाओं को छोड़ने के लिए तैयार नहीं। अन्य देश चन्द्र, मंगल ग्रह तक पहुँच गए हैं और भारतीय-समाज का रास्ता आज भी बिल्ली काट जाती है।

समाज में फैले अन्ध-विश्वासों को ही लीजिए। यदि किसी ने छींक दिया या बिल्ली रास्ता काट गई तो यात्रा के लिए अपशकुन हो गया। पानी भरा लोटा हाथ से गिर गया या पीछे से किसी ने आवाज दे दी तो समझिए कार्य नहीं होगा। मार्ग में यदि काना मिल गया और दुर्भाग्य से वह ब्राह्मण हो तो समझिए अशुभ हो गया—*'प्राण जाहिं बस संशय नाहीं।'*

'यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते, रमन्ते तत्र देवता' का उद्घोष करने वाला भारतीय समाज आज नारी पर भिन्न-भिन्न रूपों में अत्याचार कर रहा है। पर्दा-प्रथा, अनमेल विवाह, बाल-विवाह की स्वीकृति, विधवा विवाह का निषेध, रूढ़िवादिता तथा बहु-विवाह के आक्रमण नारी की निरीहता और विवशता को प्रकट करते हैं। सहिष्णुता की साक्षात् प्रतिमा नारी कर्तव्यशीलता की बलि-वेदी पर चढ़ रही है। शारदा एक्ट के बावजूद उत्तर-प्रदेश,

राजस्थान और बिहार में बाल-विवाह आज भी धड़ल्ले से हो रहे हैं। आर्थिक परतन्त्रता के कारण नारी घर की कारा में आजीवन बन्द रहती है। भोग-विलास की प्रतिमा और घर की नौकरानी से अधिक उसका मूल्य नहीं। मुस्लिम समाज में तो नारी का और भी बुरा हाल है। बहु-विवाह, बाल विवाह, पर्दा-प्रथा तथा तलाक पद्धति ने मुस्लिम नारी की स्थिति अत्यन्त शोचनीय बना दी है। भारत के उच्चतम न्यायालय ने तलाकशुदा मुस्लिम नारी को पूर्व पति से जीवन-भत्ता दिलाने का मानवीय निर्णय दिया तो पूर्व प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी ने उनका यह अधिकार छीनकर उनको दर-दर की ठोकरें खाने को विवश कर दिया। शायद, वे मुस्लिम नारी को सम्मान से जीने देना ही नहीं चाहते थे।

दहेज-प्रथा भारतीय समाज पर कोढ़ है, जो समाज को कुरूप कर रहा है। दहेज जुटाने में कन्या के माता-पिता का आत्म-पीड़न, उचित दहेज न मिलने पर लालची सास-ससुर तथा पति के अत्याचार निरीह नवविवाहिता को जीवित ही नरक में धकेल देते हैं। वर पक्ष को उसके जीने से घृणा होने लगती है तो आग लगाकर, मकान की छत से गिराकर या नदी में धक्का देकर उसकी हत्या करने में भी नहीं झिझकते। अनेक समाज-सुधारक, दहेज-प्रथा पर शोर तो खूब मचाते हैं, किन्तु अपने बेटों को वह भी बेचते हैं। ऐसे अत्याचारी समाज का भला तभी होगा, जब कोई चाणक्य अपनी शिखा खोलकर दृढ़ प्रतिज्ञा करके इसके पीछे पड़ जाएगा।

आज का भारतीय समाज वैयक्तिकता, संवेदन-हीनता, स्वार्थ और भ्रष्टाचार की ओर रॉकेट की-सी तीव्र गति से बढ़ रहा है। गुण्डा किसी सज्जन को पीट रहा है, उसकी हत्या कर रहा है, जेब-कतरा किसी की जेब काट रहा है, किसी नारी का आभूषण झपट रहा है, किन्तु साथ में खड़ा समाज सम्पूर्ण कुकृत्य को देखते हुए भी उस पीड़ित का साथ नहीं देता। आज का समाज इतना स्वार्थी है कि अपने तुच्छ लाभ के लिए दूसरों को बड़ी-से-बड़ी हानि पहुँचा सकता है। भ्रष्टाचार तो भारतीय समाज में इतना घुल-मिल गया है कि जीवित रहने के लिए भी उसका सहारा अनिवार्य है।

जातिवाद भारतीय समाज का रक्षक भी है और नाशक भी। कर्म के आधार पर कभी जातिवाद रहा होगा, किन्तु आज जन्मत: है। जातियों में उपजाति, उपजाति में उप-श्रेणी, उप-शृंखलाएँ विभाजन और विशृंखलता की सीमा नहीं। इसी प्रकार धर्म के विविध अंगों, शाखा-प्रशाखाओं की भी गिनती नहीं की जा सकती। फिर भी, जिस प्रकार वृक्ष में फूल और पत्तियों का विकास उसका विभेदक नहीं, उसी प्रकार हिन्दू समाज की विविधताएँ भी विघटन की सूचक नहीं हैं। हाँ, कट्टरता अवश्य कष्टप्रद है। शूद्रों से दुर्व्यवहार सामाजिक खोखलेपन को प्रकट करता है। उन्हें प्यास बुझाने के लिए पानी न देना, देवदर्शन से वंचित रखना, उनसे स्पर्श होने पर आत्म-ग्लानि उत्पन्न होना, समाज-पतन का परिचायक है। गाँवों में तो हरिजनों का इससे बदतर हाल है। वहाँ वे सवर्ण हिन्दुओं के रहमो-करम पर जीते हैं। उच्च-शिक्षा और विदेशी सम्पर्क सम्भवत: हरिजनों को इस दिशा से छुटकारा दिला दे।

भारतीय समाज कु-शिक्षा और अ-शिक्षा से पीड़ित है। अ-शिक्षा के कारण वह भले-बुरे, कायदे-कानून और जीवन के विकास से वंचित है। कु-शिक्षा के कारण वह भारतीय-सभ्यता और संस्कृति से दूर भाग रहा है। जीविकोपयोगी न होने के कारण आधुनिक शिक्षा ने भारतीय समाज में बेरोजगारों की पलटन खड़ी कर दी है।

गत 20-25 वर्षों में समाज ने जो करवट बदली, लक्ष्मण-रेखा ध्वस्त की, तथाकथित प्रगति-पथ पर बढ़ा उसका सम्पूर्ण श्रेय दूरदर्शन को है। दूरदर्शन घर-परिवार का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। उसे घर से निकाला नहीं जा सकता। उसका अस्तित्व अटल है। कर्तव्य की अवहेलना, दायित्व नकारना, प्रेम-रोग पालना, जीवन में उच्छृंखलता, कृतघ्नता तथा भोग-प्रवृति की तृप्टि के लिए असामाजिक कृत्यों में रुचि, सब दूरदर्शन की बिना माँगे, अनचाहे अभिशाप हैं, जो समाज को स्वभावतः समस्या-ग्रस्त बना रहे हैं, अभिशप्त कर रहे हैं। समाज-सुधारक कितना भी प्रयत्न करें, सरकार कितने भी कानूनों का शिकंजा कसे और धर्म-वेत्ता कितना धर्म-भय दिखाएं, जब तक 'दूरदर्शन' है सामाजिक समस्याएं सुरसा के मुँह की तरह बढ़ेंगी ही।

(242) दहेज प्रथा

संकेत बिंदु—(1) दहेज की शुद्ध और प्रामाणिक व्याख्या (2) भौतिगकवाद की प्रबलता के कारण (3) विवाह के स्वरूप में परिवर्तन (4) शिक्षित नारी द्वारा दहेज को नकारना (5) उपसंहार।

दहेज की शुद्ध और प्रामाणिक व्याख्या दहेज निरोधक अधिनियम 1960 में की गई है। 'दहेज का अर्थ कोई ऐसी सम्पत्ति या मूल्यवान निधि है, जो (*i*) विवाह करने वाले दोनों पक्षों में से एक पक्ष ने दूसरे पक्ष को अथवा (*ii*) विवाह में भाग लेने वाले दोनों पक्षों में से किसी एक पक्ष के माता-पिता या किसी अन्य व्यक्ति ने किसी दूसरे पक्ष अथवा उसके किसी व्यक्ति को विवाह के समय, विवाह के पहले या विवाह के बाद विवाह की आवश्यक शर्त के रूप में दी हो अथवा देना स्वीकार किया हो।' इस परिभाषा में विवाह के समय, विवाह के पहले या विवाह के बाद लिखकर दहेज की आधुनिक परिस्थितिनुकूल व्याख्या की गई है, जो उचित है।

किसी जाति, समाज आदि में किसी विशिष्ट अवसर पर किसी विशिष्ट ढंग से किया जाने वाला कोई कार्य प्रथा है। किसी चली आती हुई परिपारी का वह उत्कृष्ट और बढ़ा हुआ रूप जो किसी देश या समाज में सार्वजनिक रूप से मान्य हो चुका हो और जिसका उल्लंघन अनुचित या दूषित माना जाता हो, प्रथा है।

निराला जैसे फक्कड़ और दरिद्र कवि ने पुत्री सरोज के विवाह में यह मानते हुए भी कि ***'मेरी ऐसी, दहेज देकर / मैं मूर्ख बनूँ यह नहीं सुघर।'*** ***'पुष्प-सेज तेरी स्वयं रची।'*** अर्थात् पुष्प के समान सुन्दर बिछौने का प्रबन्ध किया। कारण दहेज रूप में शैयादान शुभ माना

जाता है। स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत में भौतिकतावाद की प्रबलता हो गई। सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक भावनाएँ अर्थ की दासी बन गईं। अर्थ-प्रधान युग में विवाह भी अर्थ की कसौटी पर कसा जाने लगा। कन्या की श्रेष्ठता शील और सौन्दर्य से नहीं, बल्कि दहेज से आँकी जाने लगी। कन्या की कुरूपता और कुसंस्कार दहेज के आवरण में आच्छादित हो गए। खुलेआम वर की बोली बुलने लगी। दहेज में प्राप्य राशि से परिवारों की श्रेष्ठता का मूल्यांकन होने लगा।

दूसरी ओर आज के युग में नगरों में सुशिक्षिता लड़कियों को शिक्षा, योग्यता तथा पदानुकूल वर नहीं मिलते। मिलते हैं तो उनकी माँग इतनी होती है कि जीवन-भर कमाते रहें, तब भी उनकी माँग पूरी न हो सके। फलत: अनमेल विवाह रचाए जाते हैं। एम.ए. लड़की सीनियर-सेकेण्डरी पास को सौंपी जाती है और पी.एच-डी. लड़की बी.ए. को, एम.बी.बी.एस. लड़की व्यापारी के मत्थे मढ़ दी जाती है। जीवन में 'इन्फ्यूरिटी-सुपैरीयरटी काम्पलेक्स, अर्थात् हीनता या महत्ता की भावना 'दम्पती' को दीमक की तरह चाटता है।

बीसवीं सदी के अन्तिम दशक में तो 'उपभोक्ता संस्कृति' ने विवाह का रूप ही बदल दिया है। अब योग्य वर-प्राप्ति के लिए मुँह-माँगे दहेज का प्रश्न खड़ा हो गया और ऋण लेकर चल-अचल सम्पत्ति गिरवी रखकर वर खरीदे जाने लगे।

मानसिक वेदना दहेजी-अभिशाप का दूसरा अनिवार्य पहलू है। दहेज न लाने पर वधू के साथ छोटी-मोटी बातों में गृह-कलह उत्पन्न किया जाता है। उस पर व्यंग्य-बाण मारे जाते हैं, कटूक्तियों के प्रहार किए जाते हैं। उसे भूखा मारा जाता है, तरसाया जाता है। पति से बोलने तक नहीं दिया जाता। मारा और पीटा जाता है। अदृश्य शारीरिक चोटें पहुँचाई जाती हैं। अन्त में उसको मायके भेज दिया जाता है। मानसिक चिन्ता से उस नव-यौवना का रूप, बल और बुद्धि शनै: शनै: नष्ट हो जाते हैं। कारण, चिन्ता ऐसा ज्वर है, जो शीघ्र मृत्यु की घोषणा कर देता है।

वधू को शारीरिक कष्ट देना दहेजी-अभिशाप का अत्यन्त क्रूर पहलू है। माँग पूरी न होने पर वधू को बेहताशा मारना-पीटना, उसका अंग-भंग कर देना आज भी शिक्षित, अर्द्धशिक्षित तथा असभ्य समाज में बेरहमी से चलता है। इस मारपीट से तंग आकर विवाहिता या तो आत्महत्या का मुक्ति-मार्ग ढूँढती है अथवा घर की चारदीवारी की लक्ष्मणरेखा लाँघकर समाज की ठोकरें खाने को निकल पड़ती है।

आज की शिक्षित नारी दहेज की वेदी पर बलि चढ़ना या पिसना पसन्द नहीं करती। उसमें धैर्य है, साहस है, तेजस्विता है, अर्थोपार्जन की क्षमता है, स्वावलम्बी जीवन जीने की योग्यता है। अत: वह दहेज के लोभी पति को छोड़कर मातृगृह में चले जाना पसन्द करती है। सम्बन्ध-विच्छेद (डाइवोर्स) करना उपयुक्त समझती है, स्वतन्त्र और स्वावलम्बी जीवन जीना चाहती है।

दूसरी ओर, आज शिक्षित कन्याओं को असमान या अनिच्छित पुरुष को सौंपना सरल नहीं रहा। नारी के स्वाभिमान ने उसमें आत्मविश्वास जागृत कर दिया है। अर्थोपार्जन की

दृष्टि से स्वावलम्बी नारियाँ अनचाहे व्यक्ति को जीवन-साथी बनाने की अपेक्षा आजीवन कुँवारी रहना पसन्द करती हैं।

तीसरी ओर, विवाह-पूर्व प्रेम की मान्यता ने दहेजी अभिशाप के दानव को दण्डित किया है। वहाँ जीवन का समर्पण दान है और भावनाओं का समर्पण दहेज।

चौथी ओर, दहेज के लिए तंग करने वाले, पतिगृह के सदस्यों को जेल भेजने, मुकद्दमा चलाने तथा आजीवन कारावास की सजा सुनाने के कारण दहेज-लोभियों में थोड़ी दहशत फैली है।

पाँचवीं ओर, नए कानून में तो दहेज अपराध माना गया है। इस कानून में ऐसी व्यवस्था है कि विवाह में वर को दिए गए उपहारों की सूची प्रस्तुत करनी होती है। पुलिस को जरा भी भनक पड़ जाए तो आवश्यकता से अधिक दहेज को वह जब्त भी कर सकती है।

दहेज-विरोधी कानूनों, लेखों, समाज-सुधारकों के भाषणों से कुछ नहीं होगा। आज अधिकांश समाज-सुधारक और राजनीतिक दुमुँहे हैं। उनकी कथनी और करनी में 3-6 का सम्बन्ध है। वह पुत्र के विवाह में स्काइलॉक की भाँति सम्बन्धी का 'एक किलो मांस' उतारने को उद्यत रहते हैं, किन्तु पुत्री के विवाह में आदर्शवादी बन जाते हैं।

युवक-युवतियों में दहेज-विरोधी मनःस्थिति तैयार होने पर ही दहेज के अभिशाप से मुक्ति होगी। इस अभिशाप की ज्वाला से उनके अन्तःकरण को प्रकाशित करना होगा; दहेजी प्रथाओं की कीचड़ से आत्मज्ञान रूपी कमल खिलाना होगा।

(243) दहेज प्रथा : एक अभिशाप

संकेत बिंदु—(1) शिष्ट समाज की अशिष्ट प्रथा (2) दहेज का अभिशाप जीवन के दूरगामी परिणाम में (3) मानसिक वेदना अभिशाप का अन्य पहलू (4) शारीरिक कष्ट (5) उपसंहार।

दहेज शिष्ट समाज की अशिष्ट प्रथा है। दहेज न मिलने पर वधू को जली-कटी सुनाना, बद्दुआ देना, झूठे अभियोग लगाना, मिथ्या दोषारोपण करना, कलहपूर्ण वातावरण बनाना, जीवन के प्रतिकूल परिस्थितियाँ निर्माण करना तथा उसको आत्महत्या के लिए प्रेरित करना दहेज-प्रथा का अभिशाप है।

बहू की पिटाई करना, उसके अंग-भंग करना, जिन्दा जलाना या अन्य विधि से मृत्यु के मुँह में धकेलना, पितृगृह में जीवन जीने को विवश करना, मानसिक पीड़ा देना दहेज के अभिशाप को प्रत्यक्ष करने वाली अनेक प्रक्रियाएँ हैं।

दहेज का अभिशाप दो प्राणियों के नहीं, अपितु दो परिवारों के रोने, कराह-कराह कर बिसूरने तथा वंशानुवंश शत्रुता की जड़ है। मानवीय विपत्ति तथा अनिष्ट के लिए निमन्त्रण है। वंशवर्द्धिनी गृह-लक्ष्मी का अनादर है, अपमान है। अग्नि के सम्मुख शपथ

लेकर पाणिग्रहण करते समय की गई प्रतिज्ञा का उल्लंघन है। विवाह को संस्कार न मानकर, 'लौकिक इकरारनामा मात्र' मानने की दुर्भावना है।

दहेज का अभिशाप जीवन के दूरगामी परिणाम के रूप में प्रकट हुआ। पुत्री का जन्म अशुभ लक्षण बना, संकटों का पहाड़ समझा गया। किसी ने उसके जन्म पर बधाई नहीं दी, जलपान का आयोजन नहीं किया, मंगल-गीत नहीं गवाए। विष्णु शर्मा ने पंचतंत्र में लिखा है—

पुत्रीति जाता महतीति चिन्ता, कस्मै प्रदेयेति महान् वितर्कः।
दत्त्वा सुखं प्राप्स्यति वा न वेति, कन्यापितृत्वं खलु नाम कष्टम्॥

अर्थात् पुत्री उत्पन्न हुई, यह बड़ी चिन्ता है। यह किसको दी जाएगी और देने के बाद भी यह सुख पाएगी या नहीं, यह बड़ा वितर्क रहता है? कन्या का पिता होना निश्चय ही कष्टपूर्ण होता है।

कवि उस्मान का हृदय पुत्री-जन्म पर 'चित्रावली' में चीत्कार कर उठा—

'जब ते दुहिता ऊपनी, सतत हिए उतपात।'

कन्या युवती हुई कि पिता सन्ताप-अग्नि में जलने लगा। 'यौवनारम्भ एव च कन्याकानामिन्धनी भवन्ति पितरः सन्तापानलस्य।' विवाह करने पर प्रतिज्ञा यौगन्धरायण में भास का मन दुःखी हुआ 'दत्तेति व्यथितं मनः।' तो महर्षि कण्व का मन भी द्रवित हुआ था, शकुन्तला को विदा करते हुए।

परिणामतः पुत्र माता-पिता का स्नेह-पात्र बना और पुत्री कोप-भाजन। पुत्री को मिली ताड़ना, तिरस्कार, अवहेलना और उपेक्षा, दुःख भरा अभिशप्त जीवन।

दहेज से कन्या के माता-पिता अभिशप्त हुए। ऋण लेकर दहेज की माँग को पूरा किया अथवा चल-अचल सम्पत्ति गिरवी रखकर या बेचकर दहेज की माँग पूरी की। ऋणी पितृकुल जीवन-भर के लिए ऋण रूपी राहु-केतु की छाया से ग्रस्त हो गया। वह तिल-तिल कर अन्तर्दाह से जलने लगा।

मानसिक वेदना दहेजी-अभिशाप का अन्य अनिवार्य पहलू है। दहेज कम आने पर वधू के साथ छोटी-छोटी बातों में कलह उत्पन्न किया जाता है, उस पर व्यंग्य-बाण मारे जाते हैं। कटूक्तियों का प्रहार किया जाता है, उसे भूखा मारा जाता है, तरसाया जाता है, पति से बोलने तक नहीं दिया जाता। मारा और पीटा जाता है। अदृश्य शारीरिक चोट पहुँचाई जाती है। अन्त में उसको मायके भेज दिया जाता है। अपने जीवन और वंश के विकास एवं समृद्धि के लिए वह पितृकुल से जहाँ गई थी वहाँ से अन्धकारमय भविष्य को लेकर लौटती है। मानसिक चिंता से उस नव-यौवना का रूप, बल और ज्ञान शनैः शनैः नष्ट हो जाता है। 'सजीवं दहते चिन्ता निर्जीवं दहते चिता।' अर्थात् चिंता सजीव को जलाती है जबकि चिता निर्जीव को। चिन्ताजनित वेदना को व्यक्त करता 'कामायनी' का मनु कहता है—

ओ चिंता की पहली रेखा, अरी विश्व वन की व्याली।
ज्वालामुखी स्फोट के भीषण, प्रथम कंप-सी मतवाली।।

—जयशंकर प्रसाद (कामायनी : चिंता सर्ग)

दहेज का एक और अभिशाप है असमान सम्बन्ध। सुन्दर, सुयोग्य, सुशिक्षित, कमाऊ कन्या को अपने अनुरूप वर नहीं मिल पाता। कन्या के हाथ पीले करना जरूरी है, अत: विवशता में विवाह किया जाता है, काम-चलाऊ वर ढूँढ़ा जाता है। विवशता का विवाह मानसिक असन्तोष और नियति को कोसने के अतिरिक्त कुछ नहीं। पति प्रेम की प्रतिमा नहीं, सम्मान की मूर्ति बनकर रह जाता है।

इस प्रकार दहेज के अभिशाप का कारण कन्या है और कन्या का जन्म पितृकुल का अभिशाप है, अवसाद है। सृष्टि को जन्म देने वाली नारी का अपमान है, अनादर है। दो कुलों की मेल-मिलाप, सद्भाव-सहयोग के स्थान पर वितृष्णा, वैमनस्य और विद्रोह का पुरस्कार है। प्रभु के प्रसाद स्वरूप प्राप्त इह जीवन की पतनोन्मुख प्रवृत्ति है।

(244) दहेज-प्रथा : सामाजिक कलंक

संकेत बिंदु—(1) सामाजिक विरासत (2) दहेज प्रथा विकृत और विकराल रूप में (3) विवाह व्यवस्था पर चोट (4) समाज के मस्तक पर बदनुमा दाग (5) उपसंहार।

प्रथाएं सामाजिक विरासत हैं। मानव-व्यवहार के नियंत्रण का अनौपचारिक साधन हैं। प्रथा के पालन के पीछे कोई तार्किक आधार नहीं, सामूहिकता का भाव रहता है। सभी ऐसा करते हैं, इसलिए हमें भी करना चाहिए। प्रथा की प्रकृति कठोर एवं बाध्यता मूलक होती है। कोई भी व्यक्ति निजी-स्तर पर उसकी अवहेलना नहीं कर पाता। प्रथाएं तोड़ने पर समाज द्वारा निंदा होती है। समाज-शास्त्री ऑगवर्न तथा निमकॉफ का मत है, 'जब कुछ प्रथाएं अनेक पीढ़ियों तक दोहराई जाती हैं, तब व्यक्तियों पर इनका दबाव काफी बढ़ जाता है और व्यक्ति इन प्रथाओं के अनुकूल ही व्यवहार करने को बाध्य होते हैं।'

हिन्दू समाज में दहेज प्रथा एक ऐसी ही प्रथा है। पीढ़ियों से हस्तांतरित होने के कारण व्यक्तियों पर इस प्रथा का सर्वाधिक दबाव पड़ रहा है। समाज की सामूहिक स्वीकृति होने के कारण इसकी प्रकृति कठोर एवं बाध्यता मूलक हो गई है।

दहेज-प्रथा आज जिस विकृत और विकराल रूप में पहुँच गई है, वह पूरे समाज के अपयश का कारण है, इसलिए यह समाज का कलंक है। दहेज-प्रथा ऐसी अनुचित प्रथा है, जिससे समाज की प्रतिष्ठा तथा मर्यादा को बट्टा लगता है, इसलिए यह सामाजिक कलंक है। दहेज-प्रथा ने वर्तमान सामाजिक-जीवन को विषाक्त कर दिया है, इसलिए यह समाज के भाल पर कलंक है।

समाज जीवन में पति-पत्नी की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। नर-नारी का प्रेम सम्बन्ध

समाज के अस्तित्व की पृष्ठभूमि है। स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों को दृढ़तर करती है विवाह-पद्धति। दहेज विवाह-पद्धति का एक अंग है पर इस अंग की अनिवार्यता ने और वर-पक्ष की दहेज की माँग ने नारी (वधू) के वैवाहिक-जीवन को विषाक्त कर दिया है। इसलिए यह सामाजिक कलंक है।

विवाह से पूर्व तथा विवाह-संस्कार के पश्चात् वैवाहिक जीवन में यह प्रथा नारी के चारों ओर भूत-पिशाच की तरह मंडराती रहती है, उसे कचोटती है, विवाह की असीम हार्दिक प्रसन्नता और उसके आनन्द को प्राप्त करने में बाधा डालती है, इसलिए यह सामाजिक कलंक है।

एक दार्शनिक का मत है कि विवाह प्रेम की वह व्यवस्था है, जो मानसिक, शारीरिक, आध्यात्मिक तथा इन्द्रियों के विकास का साधन है। दहेज-प्रथा विवाह व्यवस्था में मानसिक, शारीरिक तथा आध्यात्मिक विकास पर चोट करती है। नव-वधू पर वर-परिवार के व्यंग्य, कटूक्तियाँ और प्रताड़ना उसके मन को छलनी कर देते हैं। उनका रोष-पूर्ण व्यवहार उसका मानसिक ह्रास कर देता है। मार-पीट, अदृश्य चोट, आग की लपटें उसके जीवन के अस्तित्व पर ही प्रश्नचिह्न लगा देती हैं। जहाँ मन और शरीर ह्रासोन्मुख हों, वहाँ आत्मा भी उससे भयभीत हो अदृश्य हो जाती है। नव-वधू के मानसिक, शारीरिक तथा आत्मिक विकास को अवरुद्ध करने का दोषी दहेज है, इसलिए भी यह समाज के चेहरे पर बदनुमा दाग (कलंक) है।

विवाह पितृ-ऋण से उऋण होने का साधन है। पति-पत्नी मिलकर वंशपरम्परा का विस्तार कर पितृ-ऋण से मुक्ति पाते हैं। यह दहेज रूपी मंथरा पितृ-ऋण से उऋणता का राज्याभिषेक होने ही नहीं देती। वह अभागिन (जो भरपूर दहेज नहीं लाती) जिस वंश-विकास की समृद्धि का स्वप्न लेकर ससुराल जारी है, वहाँ से अन्धकारमय भविष्य लेकर पितृ-गृह लौट आती हैं। यदि सन्तान हो भी जाए तो दहेज के लोभ से भ्रष्ट पति अपने आत्मज को अपना मानने से इन्कार कर देता है। और उसके (पत्नी के) पवित्र चरित्र पर न छूटने वाला दाग लगा देता है। इस कारण इस प्रथा को समाज का कलंक ही कहना चाहिए।

मानव देवालय में देव-प्रतिमा के सम्मुख पत्र-पुष्प चढ़ाकर उससे वरदान चाहता है। पत्र-पुष्प उसकी श्रद्धा, आस्था तथा समर्पण के प्रतीक हैं। उसी प्रकार नव-वधू पतिगृह में प्रवेश करते समय वस्त्र, बर्तन तथा आभूषण साथ ले जाकर पति-चरणों में समर्पित कर अपनी श्रद्धा, आस्था और समर्पण का भाव व्यक्त करती है। जिस प्रकार पत्र-पुष्प का मूल्य नहीं आँका जाता, ऐसे ही वस्त्र, बर्तन और आभूषणों का मूल्य नहीं आँका जाता। वधू पक्ष द्वारा स्वेच्छा से प्रदत्त वस्त्र, बर्तन और आभूषण आदि 'दहेज' शब्द से अभिहित हुए। वधू का पति गृह खाली हाथ जाना अपशकुन माना जाता था, इसलिए अपनी शक्ति सामर्थ्य के अनुसार उसके माता-पिता उसे दहेज देते थे। अतः प्रारम्भ में दहेज-प्रथा समाज के सौन्दर्य तथा परिवार की श्री-समृद्धि का सूचक बनी।

ज्यों-ज्यों देश में अर्थ का वर्चस्व बढ़ता गया, दहेज की माँग भी बढ़ती गई। जब आदमी पाप पर उतरता है तो न आगा-पीछा देखता है, न उसके गुण-अवगुण की मीमांसा करता है। इसलिए दहेज की माँग सुरसा के मुँह की तरह बढ़ती गई। माँग पैदा कर, जब पाप करने वाले भी समाज के श्रेष्ठ और सम्माननीय व्यक्ति हों, तब दोष किसे दिया जाए ? परन्तु जब अपनी लड़की के विवाह में दहेज ने भस्मासुर का रूप दिखाया तो यही प्रतिष्ठित समाज चिल्लाया, 'दहेज-प्रथा : समाज का कलंक है, समाज के भाल पर बदनुमा दाग है।' इससे समाज की रक्षा होनी चाहिए।

रक्षा कौन करे ? समाज के ठेकेदार या सरकार। समाज के ठेकेदार भी तो वहीं हैं, जो लड़के के विवाह में कन्या पक्ष को निचोड़ने से, शेक्सपीयर के स्काई लार्क की तरह पुत्री के पिता से उसका एक किलो माँस की माँग रखने में नहीं झिझकते। फिर, सरकार पर भी इन्हीं सामाजिक ठेकेदारों का दबदबा है। फलत: दहेज कानून बना। पर कानून का मुँह रिश्वत के 'मोदक' से बन्द हो जाता है। जो फँस गए वे अनाड़ी कहलाते हैं। हाँ, दहेज-कानून का एक समाज-व्यापी प्रभाव अवश्य पड़ा। दहेज ने रिश्वत का रूप ले लिया। रिश्वत छद्म रूप में दी जाती है तो दहेज की रकम भी चुपचाप सौंपी जाने लगी।

आज का उपभोक्तावादी भारतीय समाज कलंकित दहेज प्रथा में इसी भाव का प्रदर्शन करता है, जिस भाव से नारियाँ दिन-भर उपवास कर चन्द्रमा को अर्घ्य चढ़ाती हैं और मुसलमान चाँद देखकर रोजे खोलते हैं। पर, कलंक तो आखिर कलंक ही है। इसे दूर किया ही जाना चाहिए, ताकि हजारों तरुणियाँ इसी दानव ही दाढ़ में आकर अकाल मृत्यु को प्राप्त न हों।

(245) दहेज : एक समस्या

संकेत बिंदु—(1) समाज की जटिल समस्या (2) आज का विवाह इकरारनामा (3) बारातियों की आलोचनाएँ (4) दहेज समस्या का समाधान (5) उपसंहार।

दहेज समाज की एक विकट समस्या है। दहेज में उलझन भरी विचारणीय ऐसी बातें होती हैं, जिसका निराकरण सहज में नहीं हो पाता, इसलिए यह समस्या है। दहेज आज विवाह-प्रसंग का सर्वाधिक जटिल प्रश्न बन गया, इसलिए यह कठिन समस्या है।

कन्या-पक्ष की ओर से विवाह के अवसर पर कन्या को दिया जाने वाला धन, आभूषण, वस्त्र, फर्नीचर आदि घरेलू उपयोगी वस्तुएँ जो वह साथ ले जाती है, दहेज कहलाता है। यह दहेज जटिल प्रश्न क्यों है ?

आज लोगों के मन से धर्म का भय कम हो गया है। पुण्य-पाप की भावना लुप्त हो गई है। इसलिए चरित्र की उज्ज्वलता, *'प्राण जाहिं पर वचन न जाहिं'* की प्रतिज्ञा-भावना तथा समाज की लज्जा या परवाह क्षीण हो गई है। व्यक्ति अपनी मनमानी पर उतर आया है—नंगा होकर। ऊपर से अर्थ की प्रधानता ने व्यक्ति के अहं को सातवें आसमान पर चढ़ा

दिया। दैव कृपा से वह विवाह योग्य बेटे का बाप हो तो 'मृच्छकटिकम्' का यह श्लोक चरितार्थ होता है—

मर्कटस्य सुरापानं ततो वृश्चिकदंशनम्।
तन्मध्ये भूतसंचारो, यद्वा-तद्वा भविष्यति।।

एक तो बन्दर, स्वभाव का वैसे ही उच्छृंखल। उसे पिला दी जाए शराब। दैव कृपा से उसे काट ले बिच्छू और इसके बाद प्रेत भी उस पर सवारी गाँठ ले तो दुर्भाग्य का फिर क्या कहना? लगभग यही स्थिति आजकल विवाह के अवसर पर दहेज के लोभी वर-पक्ष की हो गई है।

आज का विवाह दो आत्माओं का मिलन नहीं, बल्कि इकरारनामा हो गया है। आज का विवाह दो परिवारों को जोड़ने का नहीं, सौदेबाजी का व्यापार बन गया है। सौदा तय होने पर भी वर-पक्ष का लालची मन जब सौदे के पुनरावलोकन पर जिद करता है तो दहेज 'प्रबल समस्या' बन जाता है।

अब तो शादी में बाकायदा ठहराव होता है। शादी में वधू-पक्ष कुल खर्च कितना करेगा? यह शगुन लेने-देने से पूर्व तय हो जाता है। तय करने में समस्या तब आती है जब वर-पक्ष दहेज की सूची देता है। सूची का 'रफ-एस्टीमेट' ही ठहराव से ५०-६० प्रतिशत अधिक होता है। सूची में काटने की बात आती है तो वर-पक्ष का दिल बैठता जाता है और न काटे तो वधू-पक्ष गिरवी रखा जाता है। हो गई न विकट समस्या खड़ी।

वस्तुएँ (आइटम) काटने की बात पर वर-पक्ष की दलील सुनिए—यह लड़के की पसंद है, अमुक वस्तु तो लड़के की माँ की खास चाहत है और नहीं-नहीं साहब, इस वस्तु को काट देंगे तो समाज में मेरी नाक ही कट जाएगी। समस्या 'ठहराव से मुकरने' की है।

ले-दे कर समझौता हुआ। वर-पक्ष दबा, कुछ बेटी का बाप बढ़ा। सौदा २०-२५ प्रतिशत बढ़ गया। दो लाख की शादी में ४०-५० हजार बढ़ गए। इस ४०-५० हजार का जुगाड़ करना सरल काम नहीं। रुपए कहीं पेड़ पर उगते नहीं, जहाँ से जाकर तोड़ लाएँ। तब वह कर्ज लेगा, मकान गिरवी रखेगा या दोस्तों के आगे गिड़गिड़ाएगा। बेटी का बाप परेशान। अतिरिक्त धन जुटाने की समस्या उत्पन्न हो गई।

बेटे की बरात चढ़ी। बरात का स्वागत हुआ। भोज हुआ। बराती ना खुश। प्रेमचंद जी ने सच कहा है, 'बरात का बराती कभी खुश नहीं होता।' उधर बरात तय हुई थी दो सौ आदमियों की, आ गए तीन सौ। बच्चों की उसमें गिनती नहीं। दे दाल में पानी या फिर वधू-पक्ष के बराती उपवास पर। आलू की सब्जी में स्वाद नहीं था। रायते में दही कम पानी ज्यादा था। आइसक्रीम लप्सी जैसी पतली थी और नान तो जानवरों के खाने के लिए था। आदि-आदि आलोचनाएँ।

पुत्र-वधू घर में आई। दहेज का सामान उतरा। संजोकर रख दिया गया। शादी का वातावरण कम हुआ तो दहेज की जाँच पड़ताल शुरू हुई। अब 20-25 प्रतिशत का जो सुलह-समझौता हुआ था, उसका परिणाम देखिए। 'यह फर्नीचर तेरा बाप कबाड़ी की

दुकान से खरीदकर लाया था क्या ? सास ननदों की साड़ी—इतनी घटिया। ऐसी तो हमारी नौकरानी पहनती है।' लीजिए साहब मुर्गी तो जान से गई और खाने वाले को मजा नहीं आया। है न दहेज : एक उलझन भरी समस्या।

जब समस्याएँ उठती हैं तो समाज उसके समाधान का उपाय भी खोजता है। तय हुआ कि दहेज का सामान वर-पक्ष की पसन्द से खरीद लिखा जाए। पसन्द का ही प्रश्न है तो वर-पक्ष सस्ती चीज क्यों ले ? शादी कोई रोज-रोज थोड़े ही होती है। सबसे महँगी चीज ही उसकी पसंद होगी। फिर, बाजार की विविधता में महँगी चीज पर वर-पक्ष की लार टपक जाना स्वाभाविक है। हुआ 'बजट फेल' और दहेज की समस्या खड़ी हो गई।

दहेज केवल विवाह तक सीमित हो, ऐसा समझना भूल होगी। वर्ष-भर के त्यौहार भी विवाह के दहेज के ही अंग हैं, जो 'ठहराव' में 'अनठहरे' रह जाते हैं। विवाहोपरान्त पुत्री की 'दूसरी विदाई', होली, दीपावली, मकर संक्रांति, सावन की तीज तथा पहला 'छूछक' ऐसे अवसर हैं, जिनमें बेटी के बाप को जेब कटवानी ही पड़ती है।

जब दहेज की समस्याएँ विवाह के उल्लास को उदासीनता में बदल देती हैं तो बेटी के बाप को पंचतंत्र के लेखक विष्णु शर्मा की यह पंक्ति याद आती हैं—

पुत्रीति जाता महतीह चिन्ता, कस्मै प्रदेयेति महान् वितर्कः।
दत्त्वा सुखं प्राप्स्यति वा न वेति, कन्यापितृत्वं खलुनाम कष्टम्॥

अर्थात् पुत्री उत्पन्न हुई, यह बड़ी चिन्ता है। यह किसको दी जाएगी और देने के बाद भी यह सुख पाएगी या नहीं यह बड़ा वितर्क रहता है ? कन्या का पिता होना निश्चय ही कष्टपूर्ण होता है।

दहेज की समस्या के समाधान के लिए कानून बना। दो-चार परिवार पुलिस की ज्यादतियों और अदालतों के निर्णयों से दंडित भी हुए, पर आटे में इस नमक से क्या होगा ? फिर, इसका लाभ भी वर-पक्ष ने उठाया। शादी का दहेज, शादी पूर्व मंगा लिया गया। दहेज घर में आ गया तो वर-पक्ष मूँज की तरह और अकड़ गया। इस प्रकार दहेज की समस्या कानून की खिल्ली उड़ाते हुए पूरे देश में महामारी की तरह फैल गई।

इस समस्या के दो ही समाधान हैं—(1) प्रेम-विवाह, जहाँ दुलहिन ही दहेज के रूप में स्वीकार की जाती है। तथा (2) विवाह सम्बन्धों की पावित्र्य-भावना अर्थात् जो पुत्री का पिता स्वेच्छा से दे, वह दहेज स्वीकार करने की उदारता।

(246) सती-प्रथा

संकेत बिंदु—(1) सती का अर्थ (2) सती प्रथा की अतिशयता मुस्लिम काल की उपज (3) राजा राममोहन राय की धारणा (4) स्त्री के प्रति अमानवीय आचरण (5) उपसंहार।

अपने सत् (सत्य) अथवा पतिव्रत धर्म का निर्वाह करने वाली नारी सती कहलाती

है। जैसे सती सावित्री, सती सीता आदि। सम्भवत: पति की मृत्यु के अनन्तर पत्नी का स्वेच्छा से उसके शव के साथ ही जल मरने को भी 'सती' होना कहा जाने लगा। किन्तु कालान्तंर में जाति या समाज द्वारा विधवा नारी के देह-दाह की प्रथा समाज की मान्यता प्राप्त होने पर 'सती-प्रथा' बन गई। वह नारी का एक आदर्श आचरण बन गया। सती-व्रत ग्रहण करने वाली स्त्री इस बात से कभी नहीं डरती कि शरीर जल रहा है। पति निष्ठा पर जो उसकी एकाग्रता है, वह उसको शारीरिक वेदना से परे ले जाती है।

सती-प्रथा के पीछे कभी नारी के सतीत्व की सुरक्षा की भावना रही होगी, उसके जीवनयापन की समस्या रही होगी, उसकी छोटी-सी भूल में परिवार के तानों से दु:खी हृदय की कल्पना रही होगी। इसीलिए सती का देह-दाह पवित्र कर्म बन गया।

वैदिक-युग में सती-प्रथा के उदाहरण नगण्य हैं। हिन्दू नरेशों के युग में भी इस प्रकार की प्रथा नहीं थी। रामायण-काल में मेघनाद की पत्नी सुलोचना के सती होने का उल्लेख है। इसके विपरीत राक्षस-राज रावण की पत्नी मन्दोदरी अपने पति की मृत्यु के उपरांत अपनी देह को अग्नि में समर्पित नहीं करती, बल्कि विभीषण से पुनर्विवाह कर लेती है। महाभारत काल में माद्री का पाण्डु के साथ सती होने का उल्लेख अवश्य है।

सती-प्रथा की अतिशयता मुस्लिम-काल की उपज है। परकीय, परदेशी, आततायी, विधर्मी कामुक शत्रु के हाथों में जाकर नारियाँ जीवन के भोग भोगने की बजाए जौहर का वरण करती थीं। दूसरी ओर पति की मृत्यु के पश्चात् कामुक पुरुषों के साथ विलासी, किन्तु दासी जीवन बिताने से अच्छा वे पति के साथ जीवन-त्याग को ही महत्त्व देती थीं। वे अपने पति के शीश को अपनी गोद में लेकर उसके साथ ही अग्नि को समर्पित हो जाती थीं। यह युग-विशेष की परिस्थितियाँ थीं, विवशता थी। किन्तु जब किसी किशोरी विधवा के न चाहने पर भी उसे बलात् 'सती' होने के लिए विवश किया जाने लगा तो यह प्रथा 'दूषित' हो गई और समाज-सुधारकों को कचोटने लगी।

राजा राममोहन राय की यह धारणा थी कि याज्ञवल्क्य, कात्यायन, नारद, बृहस्पति आदि प्राचीन न्यायशास्त्रियों ने सम्पत्ति में कन्या और पत्नी का अधिकार स्वीकार किया है, किन्तु बाद के टीकाकारों ने इस अधिकार से नारी को वंचित कर दिया। परिणामत: पति की मृत्यु के बाद पत्नी की आर्थिक और सामाजिक स्थिति दयनीय हो गई। अपने ही बीच रहने वाली विधवाओं का उनके दैनिक जीवन में तुच्छता और घोर अपमान पूर्ण जीवन देखकर विधवा नारी ने विवशतावश सती प्रथा को अपनाया है।

राजा राममोहन राय के विरोध में तत्कालीन सती-प्रथा के समर्थक विद्वान् सती-पक्ष में ऋग्वेद का एक मंत्र चतुराई से उद्धृत करते रहे,

इमा नार्यः विधवा सुपत्नी सर्पिण संविशन्तु।
अनश्ररोहन मोवाः सुरत्ना जनयो योनिमग्रे॥

लगभग 26 वर्षों के अनथक प्रयास से एच.एच. विलसन ने इस मंत्र का शुद्ध पाठ खोज निकाला। पता चला कि '**जनयो योनिमग्रे**' को बदलकर '**जनयो योनिमग्ने**' कर दिया है।

भारतीय-मानस प्रथाओं-परम्पराओं के गुण-दोष विवेचन में विश्वास नहीं करता। उसके पालन में अन्ध-श्रद्धा व्यक्त करने में अपने जीवन की महत्ता समझता है। प्रथाओं की विमुखता में, उनके अपालन में उसे काल्पनिक भय सताता है। वह डरता है कि कहीं उस पर या उसके परिवार पर विपत्ति का पहाड़ न ढह जाए। इसलिए सती-प्रथा भी अन्ध श्रद्धा का केन्द्र बन गई। विधवा को भय से, दण्ड से, शक्ति से, पति-शव के साथ दग्ध होने को बाध्य किया गया। उसकी चीख-पुकार, उसका रुदन-विलाप ढोल-नगाड़ों या भक्ति गीतों के उच्च स्वर में नक्कारखाने में तूती की आवाज बनकर रह गया। देखते-देखते पवित्र तीर्थ रूपी देह राख में बदल गई।

स्वेच्छा से किया गया कर्म मन की संकल्प शक्ति का प्रतीक है, ध्येय के प्रति जीवन के समर्पण का द्योतक है। इसके विपरीत विवशता-वश किया गया कर्म पाशविक अत्याचार है, अमानवीय आचरण है। विधवा देह-दहन विवशता की सीढ़ियों से आत्मदाह की वेदी पर चढ़ने लगा, तो सहृदयी मानव का हृदय चीत्कार उठा। आग की लपटों में 'त्राहि माम्' की पुकार ने इस कुप्रथा को नंगा कर दिया और पाषाण हृदय मानव का दिल भी पसीज उठा। राजा राममोहन राय जैसे समाज-सुधारक ने इस प्रथा के विरुद्ध जनमानस को जागृत किया, फलत: विलियम बैटिंग की सरकार ने सन् 1829 में कानून बनाकर सती-प्रथा पर रोक लगाई।

कानून विधान की स्याही का वह बिन्दु था, जिसने गिरकर विधवा-देह-दहन की भाग्यलिपि पर कालिमा चढ़ा दी। विधवा-देह-दहन रुक गया। सती-प्रथा का अन्त हो गया। जिस प्रकार कानून को तोड़ने वाले समाजद्रोही तत्त्व समाज में ही फलते-फूलते हैं, उसी प्रकार सती-प्रथा को मान्यता प्रदान करने वाले शूरवीर, दानवीर समाज के नेता बने हुए हैं। सती-मन्दिरों का निर्माण, उसमें पूजा-अर्चना परोक्ष रूप में सती-महत्त्व का वर्द्धन है। इसलिए आज भी भारत में प्रतिवर्ष दो-चार नारियाँ सती-प्रथा की लीक को पीटती रहती हैं।

20वीं शताब्दी के अन्त में, दिवराला जैसे कांड होना, रूपकँवर का सती होना निश्चित ही समाज के भाल पर कलंक है और समाज के पतन का परिचायक, किन्तु यह अपराध होते रहेंगे, जब तक समाज में इस प्रथा के विरुद्ध घृणा उत्पन्न नहीं की जाएगी। लोकमत जागृत नहीं किया जाएगा।

पुरुष भूल गया कि नारी उसकी जननी है, पालन-पोषण करने वाली माता है, संस्कार देकर संस्कृत करने वाली शिक्षिका है, अपने प्रेम से उसके जीवन में मधुरता उँडेलने वाली प्रेमिका है। पुत्र देकर उसका पितृ-ऋण चुकाने वाली स्वामिनी है। ऐसी नारी का देह-दहन पुरुष को मानव बनाने वाली नारी के प्रति कृतघ्नता है, जघन्य अत्याचार है, और है नारी के प्रति गुरुतर द्रोह।

(247) बाल विवाह : एक कुप्रथा

संकेत बिंदु—(1) बाल विवाह का अर्थ (2) स्वस्थ जीवन का यंत्र (3) बाल विवाह प्रथा का आरम्भ (4) दम्पती का सुखमय जीवन (5) उपसंहार।

विवाह क्या होता है, क्यों किया जाता है, इसका यथेष्ट ज्ञान जिसे न हो; उस बालक या कन्या का छोटी अवस्था में होने वाला विवाह बाल-विवाह है। दूसरे शब्दों में, जो बालक-बालिका वयस्क और तरुण न हुए हों, उनका विवाह बाल-विवाह है। सोलह वर्ष से कम आयु की किशोरी तथा अठारह वर्ष से कम किशोर का विवाह बाल-विवाह कहलाता है।

ऐसे रीति-रिवाज जिनसे जाति, समाज या राष्ट्र को लाभ होता है सुप्रथा है, किन्तु जिनसे हानि होती है, कुप्रथा है। भारतीय समाज में विवाह एक संस्कार है। धर्म सम्मत काम-सेवन अर्थात् यौन-तृप्ति, सृष्टि-विस्तार, नियंत्रित मानसिक तृप्ति तथा संतति के द्वारा पितृ ऋण से मुक्ति और स्वरूप-लब्धि की निश्चित संभावना सन्निहित होने के कारण विवाह संस्कार एक सुप्रथा है।

एक वेद मंत्र है 'जीवेम शरदः शतम्...।' आदिकाल से प्रभु से हम यही माँगते आए हैं कि हम सौ वर्ष तक स्वस्थ जीवन व्यतीत करें। मनु जी ने मनुष्य के जीवन को चार आश्रमों में विभक्त कर उनमें चार पुरुषार्थों की प्राप्ति का विधान रखा। सौ वर्ष की पूर्णायु मानकर चार आश्रमों को 25-25 वर्ष में समान रूप से विभक्त किया। ये आश्रम हैं—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास।

आश्रम-व्यवस्था 'व्यक्तिगत जीवन की विकास सरणियों का निदेशन करता है और मनुष्य को इस बात का बोध कराता है कि उनके जीवन का उद्देश्य क्या है, उसको प्राप्त करने के लिए उसको जीवन का किस प्रकार संघटन और उपयोग करना चाहिए। वास्तव में जीवन की यह अनुपम और उच्चतम कल्पना और योजना है।'

(डॉ. राजबलि पाण्डेय : हिन्दू धर्म कोश, पृष्ठ 14)

इसके अनुसार गृहस्थाश्रम का प्रारम्भ पच्चीस वर्षोपरांत होता है। मनुस्मृति में इसके लिए लिखा है, 'विवाह करके घर बसाना चाहिए। संतान उत्पत्ति द्वारा पितृऋण, यज्ञ द्वारा देवऋण और नित्य स्वाध्याय द्वारा ऋषि ऋण चुकाना चाहिए।' (5/169)।

लगता है, बाल विवाह प्रथा का आरम्भ मुस्लिम-काल में हुआ। व्यभिचारी मुस्लिम शासकों द्वारा हिन्दू नारी के उत्पीड़न और बलात्कार से यह प्रथा शुरू हुई। शायद, विवाहोपरांत 'प्रथम मिलन' पति से नहीं, शासन द्वारा नियुक्त मुखिया से होने की बाध्यता की विवशता से बाल-विवाह प्रथा शुरू हुई हो।

इस युग में 9-10 वर्ष की अवस्था में बालक-बालिका का विवाह कर दिया जाता था। इतना ही नहीं, अनेक उप-जातियों में तो 5-6 वर्ष के अबोध बालक-बालिका के

विवाह की प्रथा बन गई। एक कदम और नीचे उतरे, कुछ लोगों ने जन्मत: ही विवाह-संबंध तय करने की प्रथा डाल दी।

इस प्रथा का शास्त्रोक्त प्रमाण भी चाहिए। अत: बाल-विवाह के पक्षपाती 'पाराशरी' और 'शीघ्रबोध' में लिखे दो श्लोकों को उद्धृत करते हैं—

अष्ट वर्षा भवद्रे गौरी नव वर्षा च रोहिणी।
दशवर्षा भवेत्कन्या तत ऊर्ध्वं रजस्वला।।१ ।।
माता चैव पिता तस्या ज्येष्ठो भ्राता तथैव च।
त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम्।।२ ।।

कन्या के आठवें वर्ष में गौरी, नवें वर्ष में रोहिणी, दसवें वर्ष में कन्या और उसके आगे रजस्वला संज्ञा हो जाती है। दसवें वर्ष तक विवाह न करके रजस्वला कन्या को देखकर माता, पिता और उसका बड़ा भाई, ये तीनों नरक में गिरते हैं।

मुस्लिम-काल दो सौ वर्ष पूर्व समाप्त हो गया। अंग्रेज राज्य आया। अंग्रेज राज्य में गुंडागर्दी और पर-पुरुष प्रथम मिलन संभोग की कोई विवशता नहीं थी। स्वतंत्र भारत में तो इस विवशता या बाध्यता का प्रश्न ही नहीं उठता, तब बाल-प्रथा का वर्तमान-काल में चलन सर्वथा अनैतिक और अप्रासंगिक है।

विवाह की पहली शर्त है—दम्पती का सुखमय जीवन। सुखमय जीवन निर्भर करता है अर्थ पर। पति-पत्नी मिल कर अर्थ की दृष्टि से स्वतंत्र होंगे, पारिवारिक व्यय की दृष्टि से आत्म-निर्भर होंगे, तभी सुखमय जीवन की कल्पना की जा सकती है। बाल-विवाह में न बालक ही अर्थ की दृष्टि से स्वतंत्र होता है, न बालिका ही। अत: जीवनयापन के लिए वे माता-पिता या अग्रज पर निर्भर होंगे। पर-निर्भरता अर्थात् परतंत्र जीवन में स्वप्न में भी सुख नहीं मिलता।

बाल-विवाह के समय बालक और कन्या मिडिल या हाईस्कूल में पढ़ रहे होते हैं। पढ़ाई उनके उज्ज्वल भविष्य का द्वार है। उस समय काम-वासना में रत बालक-बालिका की पढ़ाई में विघ्न आएगा। कामेच्छा उन्हें पढ़ाई से विरत करेगी। पढ़ाई से विरक्ति उनके उज्ज्वल भविष्य को अंधकार में धकेल देगी।

कम आयु में काम-पूर्ति वासना की अग्नि को प्रचण्ड करने में घी का काम करती हैं। काम का उन्माद लज्जा को जला देता है। तब कामी नर-नारी घर की मर्यादा, संबंधियों की लज्जा और बदनामी के भय को खूँटी पर टाँग शारीरिक-क्रीडा के लिए निकल पड़ते हैं। प्रसाद जी ने सच ही कहा है—

विकल वासना के प्रतिनिधि वे/सब मुरझाए चले गए।
आह! जले अपनी ज्वाला में/फिर वे जल में गले, गए।।

भारत की बढ़ती जनसंख्या को देखते हुए सरकार ने विवाह की वय 21/18 निश्चित की है। 21 वर्षीय पुरुष और 18 वर्षीय कन्या का विवाह संबंध स्थापित कर सकते हैं। ऐसा न करना विवाह कानून का उल्लंघन है। जो प्रथा कानून तोड़ने को प्रोत्साहित करे, वह कुप्रथा है।

भारत अपनी बहुसंख्या से पीड़ित है, दु:खी है। बढ़ती जनसंख्या उसके सकल उत्पाद को, विकास कार्यों को सुरसा के मुँह की तरह चट कर जाती है तथा 'और-और' की रट लगाती है। परिणामत: भारत की अर्थव्यवस्था चौपट हो रही है। उसका एक कारण है, बाल-विवाह। स्वास्थ्य का विनाश करनेवाली और राष्ट्र के विकास में बाधक इस कुप्रथा के अन्त में ही भारत का कल्याण है।

(248) भिक्षा वृत्ति

संकेत बिंदु—(1) भिक्षावृति से अभिप्राय (2) विनयपिटक के अनुसार (3) समय के साथ भिक्षावृति में बढ़ोत्तरी (4) भिक्षा-वृति जीवन-निर्वाह का साधन (5) उपसंहार।

असहाय या निरुपाय अवस्था में उदरपूर्ति के लिए लोगों से दीनतापूर्वक अपने निर्वाह के लिए हाथ फैलाकर अन्न, कपड़ा, पैसा आदि माँगने का काम भिक्षावृत्ति है। विशेष अनुग्रह की प्राप्ति के लिए किसी से दीनतापूर्वक की जाने वाली याचना का धन्धा या व्यवसाय भिक्षावृत्ति है। जीवन-निर्वाह के लिए भीख को साधन बनाना भिक्षावृत्ति है।

प्राचीन भारत में भिक्षा-वृत्ति और भिक्षा देना पुण्य-कर्म माना जाना था। ऋषियों के आश्रम में ब्रह्मचारी तथा संन्यासी जीवन की आवश्यकताएँ भैक्ष्यचर्या (भिक्षा-वृत्ति) से ही पूरी करते थे। गृहस्थ भी प्रसन्न होकर बटुओं को भिक्षा देते थे। इसका भाव यह था कि अध्ययनशील विद्यार्थी का पालन करना समाज का धर्म है और विद्याध्ययन के पश्चात् वह छात्र (गृहस्थ बनने पर) समाज की सेवा करेगा। शंकाराचार्य ने इस बात का का समर्थन करते हुए कहा है, 'क्षुद्व्याधिश्च चिकित्स्यतां प्रतिदिनं भिक्षौषधं भुज्यताम्।' अर्थात् संन्यासी को चाहिए कि भूख रूपी रोग की चिकित्सा भिक्षा रूपी औषधि खाकर करे। उस भिक्षा के भी कुछ नियम थे, जिन्हें समर्थ गुरु रामदास अपने 'दासबोध' में इस प्रकार व्यक्त करते हैं—'पहले जाकर पूछना चाहिए कि कुछ भिक्षा मिलेगी? और बहुत थोड़ी-सी भिक्षा मिल जाने पर ही सन्तोष करना चाहिए। आनन्दपूर्वक भिक्षा माँगना ही नि:स्पृहता का लक्षण है।'

विनयपिटक के अनुसार, इस प्रकार के भिक्षुक 'सर्वसाधारण के हित के लिए, लोगों पर दया करने के लिए तथा देवताओं व मनुष्यों पर उपकार करने के लिए घूमते थे।' और इनको भिक्षा देकर देने वाला भी अपने जीवन को कृतार्थ समझता था।

समय बदला। भारत मुगलों का गुलाम हुआ। मुगलों ने हिन्दुओं को उजाड़ा। उनकी सम्पत्ति छीनी। उन्हें दीन-हीन स्थिति में पहुँचा दिया। इस दीनता में भिक्षा को वृत्ति बनाकर पापी पेट को भरा गया। कविवर रहीम ने माँगने को बुरा माना, और कहा कि माँगना तो मरने के समान है, किन्तु जो माँगने वाले भिखारी को कुछ नहीं देता है, उसे उन्होंने उस भिक्षु से भी पहले मरा हुआ माना है। *'उनसे पहले वे मुए जिन मुख निकसत नाहिं।'*

समय ने करवट ली। अंग्रेज आए। उन्होंने अपने राज्य में सुख, शांति, अनुशासन वैज्ञानिक सुविधाएँ देने की चेष्टा की। लोगों को नौकरियाँ प्रदान कीं। जनता कमाकर पेट भरने लगी। सम्मान का जीवन जीने लगी, किन्तु जो उद्यम से जी चुराते थे, शारीरिक परिश्रम से कतराते थे, मान-सम्मान जिनके लिए नगण्य था, वे भिक्षुक बने रहे। हाँ, यह भिक्षा-वृत्ति बहुत कम थी, आटे में नमक बराबर।

तृष्णाएँ कम थीं। इसलिए लोग थोड़े में सुखी थे और आय का एक अंश भिक्षा रूप में देकर कृतार्थता अनुभव करते थे। वे अपने दान से समाज के दीन-दु:खी वर्ग का उद्धार करते थे।

काल के थपेड़े ने भारत के भाग्य को पलटा। स्वतन्त्रता मिली, पर देश-विभाजन के साथ! लाखों लोग अपनी धन-सम्पत्ति, मकान-भवन, रोजी-रोटी छोड़कर स्वतन्त्र भारत में आने को विवश हुए। इस दयनीय अवस्था में भी बहुसंख्यक पुरुषार्थी विस्थापितों ने भीख नहीं माँगी।

देश की स्वतन्त्रता के पश्चात् आर्थिक दृष्टि से समृद्ध भारत गरीब हो गया। अरबों रुपये का विदेशों का कर्जदार हो गया। जनसंख्या छलाँग लगाकर बढ़ने लगी। सहस्राब्दि के अंत तक 100 करोड़ हो गई। इतनी विशाल जनसंख्या को रोजगार देना असम्भव हो गया। उधर, प्रकृति की मार—अनावृष्टि तथा अतिवृष्टि ने प्रलय का तांडव रचाया। अपने परिश्रन के बल पर अपनी रोजी-रोटी सम्मान से खाने वाला भी सड़क पर भिक्षा-पात्र लेकर खड़ा हो गया। महाकवि निराला के शब्दों में—

पेट-पीठ दोनों मिलकर हैं एक
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी भर दाने को, भूख मिटाने को
मुँह फटी-पुरानी झोली का फैलाता—

भिक्षा-वृत्ति बढ़ी और बढ़कर व्यवसाय बन गई। जीवन-निर्वाह का साधन बन गई। देश की दानशील प्रवृत्ति ने इस पेशे को बढ़ावा दिया। आज का भिक्षुक इस पेशे में मस्त है। इससे प्राप्त आय से तृप्त है।

इसमें औसत आय पचास रुपये से लेकर डेढ़ सौ रुपये प्रतिदिन है। इतनी आय जीवनयापन के लिए पर्याप्त है। इसलिए भिक्षावृत्ति में चालाकी को अपनाया गया। बाकायदा कोढ़ियों जैसा मेकअप करना, व्यर्थ पट्टियाँ बाँधकर लूले-लंगड़े दिखना, साधु बनने का ढोंग करना, अति दैन्य दर्शाना इस पेशे की चालाकियाँ हैं। इतना ही नहीं, निरीह बच्चों को अन्धा, लंगड़ा बनाकर दादा लोगों ने यह रोजगार शुरू कर दिया।

वस्तुत: भिक्षा-वृत्ति तुच्छ और असम्मानित कार्य है, अपमानजनक धन्धा है। हीनता का उद्‌गम स्थल है। आत्म-ग्लानि का परिचायक है। कबीर के शब्दों में—

माँगन मरन समान है, मति कोई माँगो भीख।
माँगन से मरना भला, यह सतगुरु की सीख॥

भिक्षा-वृत्ति रोकने के लिए सर्वप्रथम भिक्षा को दण्डनीय अपराध घोषित करना होगा। भिक्षुओं को पकड़कर उनकी जाँच करनी होगी। स्वस्थ भिखारियों के लिए श्रम-कार्य का प्रावधान करना होगा। लूले-लंगड़े तथा कोढ़ियों का इलाज करके उन्हें जीवन जीने योग्य शिक्षा देनी होगी। अपंग और असमर्थ भिखारियों को उनकी शारीरिक शक्ति के अनुसार कम-से-कम काम लेकर श्रम के प्रति रुचि उत्पन्न करनी होगी। समाज को यह समझना होगा कि संड-मुस्टंडों को भिक्षा देना दान नहीं है। इससे उनके पुण्य के खाते में बढ़ोत्तरी नहीं होने वाली। उन्हें विनोबा जी की यह बात माननी चाहिए कि—'तगड़े और तन्दुरुन्त आदमी को भीख देना, दान करना अन्याय है। कर्महीन मनुष्य भिक्षा दान का अधिकारी नहीं हो सकता।'

(249) लेखक और समाज

संकेत बिंदु—(1) लेखक और समाज अन्योन्याश्रित (2) लेखकों द्वारा समाज को प्रेरणा (3) आज के लेखकों की लेखनी (4) लेखक का सृजन समाज का प्रतिबिम्ब (5) उपसंहार।

लेखक और समाज अन्योन्याश्रित हैं। लेखक समाज से वर्ण्य-विषय लेकर अपनी शैली में 'त्वदीयं वस्तु तुभ्यमेव समर्पये' करता है, तो समाज लेखक में सामाजिकता का जागरण कर इसके अस्तित्व को बनाए रखने में सहायक बनता है। लेखक समाज का सच्चा मित्र और शुभचिन्तक है, तो समाज लेखक का पालन-पोषण तथा वर्द्धन करता है। लेखन तपस्या है, साधना है, तो समाज लेखक की तपोभूमि है, साधना-स्थली है। लेखक के बिना समाज मूक है और समाज के बिना लेखक का लेखन व्यर्थ।

गोस्वामी तुलसीदास ने 'स्वान्तः सुखाय रघुनाथ गाथा' लिखकर हिन्दू समाज के मृतप्रायः शरीर में नवीन प्राणों का संचार किया। मुंशी प्रेमचन्द ने समाज की बुराइयों की तह तक जाकर अपने साहित्य के द्वारा उनका विश्लेषण किया। महर्षि दयानन्द, विवेकानन्द, तिलक, अरविन्द आदि महापुरुषों ने अपनी साहित्यिक वाणी से समाज को आध्यात्मिक और मानसिक तृप्ति प्रदान की। मैथिलीशरण गुप्त, रामधारीसिंह 'दिनकर', सोहनलाल द्विवेदी ने राष्ट्र और समाज को चुनौतियों का सामना करने की प्रेरणा दी। कवि भूषण की लेखनी ने हिन्दू जनता में वीरता की भावना जागृत कर दी। यूरोप में अनुदार और धार्मिक रूढ़ियों को, पोप की प्रभुसत्ता को लेखकों ने ही उखाड़ फेंका। फ्रांस में राज्यक्रांति तथा प्रजातंत्र का विकास लेखकों की ही देन है।

यद्यपि शृंगार रस राज है, पर शृंगार के नाम पर केवल नग्न-वासनादर्शन लेखक का ओछापन है। शृंगार में भी अश्लीलता यदि नग्नावस्था में प्रकट न हो, तो सुप्त वासना कैसे पूरी हो? साला-साली, पत्नी-पुत्री, सखा-सखी किसी को भी तो नहीं बक्शा, ऐसे घासलेटी लेखकों ने। *'नर के बाँटे क्या नारी की नग्न मूर्ति ही आई?'* लेखिकाएं तो लेखकों से एक

कदम और बढ़ गई। प्यार में, शृंगार में सम्भोग की क्रियाओं और करतूतों का विस्तृत और नग्न चित्रण बिना करे उनका लेखन अधूरा रह जाता है। लगता है लेखक-लेखिकाएँ बिहारी, देव, पद्माकर को नीचा दिखाने पर तुले हुए हैं, समाज जाए जहन्नुम में।

तीसरी ओर आज का लेखक वातानुकूलित भवन में रहता है। कार और हवाई जहाज को अपनी चरण धूलि से पवित्र करता है। फाइव स्टार होटलों में ठहरता है और नाश्ता करता है। सुरा और सुन्दरी के बिना वह जी नहीं सकता। ऐसा एय्याश और धनाढ्य लेखक जब साम्यवाद की दुंदुभि बजाता है; गरीब, दरिद्र, अर्द्धनग्न, बुभुक्षित, दलित, शोषित, पीड़ित समाज का मसीहा बनकर अपनी लेखनी में उनकी आवाज बुलन्द करता है, तो लगता है दुष्ट-आत्मा वेद के पावन मंत्रों का उच्चारण कर रही है। इस प्रकार का लेखन क्या समाज का कल्याण कर सकेगा? कारण, लेखक की अभिव्यक्ति में उसकी अपनी अनुभूति ही संपृक्त होती है।

वस्तुत: लेखक का सृजन समाज का प्रतिबिम्ब होता है। जिस प्रकार दर्पण व्यक्ति के रूप, रंग तथा स्वास्थ्य का द्योतक है, उसी प्रकार साहित्य जाति के उत्कर्ष-अपकर्ष, सजीवता-निर्जीवता तथा सभ्यता-असभ्यता का निर्णायक तत्त्व है। आज का भारतीय साहित्य चाटुकारिता की मुँह बोलती तस्वीर है, शृंगार का शृंगारिक दर्पण है और है जीवन और जगत् की झूठ का दस्तावेज। प्रेमचन्द जी ने ठीक ही कहा है—'जिन्होंने धन और भोग-विलास को जीवन का लक्ष्य बना लिया है, वह क्या लिखेगा?'

लेखक मानव-मस्तिष्क को भोजन प्रदान करता है। जिस प्रकार पौष्टिक भोजन शरीर को स्वस्थ बनाता है, उसी प्रकार श्रेष्ठ लेखक अपनी लेखनी से समाज के कल्याण का मंगलमय पथ-प्रशस्त करता है। वह दहेज के विरुद्ध 'निर्मला' लिखता है, शासकों को चेतावनी देते हुए 'यक्ष-प्रश्न' प्रस्तुत करता है, अल्पसंख्यक तुष्टिकरण के प्रमाणों को 'गाँधी वध क्यों' में उजागर करता है, इतिहास की सच्चाई 'देश की हत्या' और 'मेरा रंग दे वसन्ती चोला' तथा 'वयं रक्षाम:' 'में प्रकट करता है। ऐसे लेखकों की स्याही शहीद के खून से भी ज्यादा पवित्र है।

दूसरी ओर दूषित साहित्य शरीर को रुग्ण करता है, मानव-मस्तिष्क के विकास को अवरुद्ध करता है। इससे समाज का विकास अवरुद्ध हो जाता है। आज का अधिकांश भारतीय साहित्य इसका प्रमाण है। यही कारण है कि आज राष्ट्र चहुँ ओर से अपमानित है, उनका रोम-रोम कर्जदार है, वह भ्रष्टाचार में आकंठ डूबा है, स्वार्थ में मदांध है साम्प्रदायिक विनाश के आगे लिखने का साहस नहीं कर पा रहा। निरपराध हत्याओं के विरुद्ध चेतावनी नहीं दे पा रहा। भारतीय समाज जल रहा है और भारतीय लेखक वंशी के धुन में राग अलाप रहा है।

लेखक शिव है। समाज-मंथन से उत्पन्न विष को स्वयं पीता है और अमृत समाज को वितरित करता है। लेखक बादल रूप है। समाज की विकृतियों तथा विसंगतियों को वाष्प रूप में ग्रहण करता है और वृष्टि के रूप में लौटा देता है। लेखक पर्वत है। समाज

रूपी प्रकृति के प्रकोप सहकर निर्मल जल, उपयोगी तरु और स्वास्थ्यवर्धक वनस्पति उसको समर्पित करता है। समाज जनक है, लेखक उसका पुत्र। समाज कष्ट सहकर भी लेखक को चिन्तन के लिए सामग्री प्रदान करता है। समाज समुद्र है, जिसका हृदय विशाल है, विचारों में गंभीरता है। लेखक उसकी नदी, नदियाँ, सरोवर हैं, जो समाज को विभिन्न रूपों में सिंचित करते हैं, सस्य श्यामल करते हैं। अत: समाज लेखक के बिना गूँगा है और लेखक समाज के बिना निष्प्राण।

(250) साहित्य और समाज

संकेत बिंदु—(1) साहित्य और समाज एक-दूसरे के पूरक (2) सामाजिक मंगल का विद्यालय (3) साहित्य समाज का दर्पण (4) साहित्यकारों का दृष्टिकोण (5) उपसंहार।

साहित्य और समाज एक दूसरे के पूरक हैं। साहित्य समाज के मानसिक तथा सांस्कृतिक उन्नति और सभ्यता के विकास का साक्षी है और है समाज की समग्र-जीवन शक्तियों का संश्लिष्ट दान। साहित्य समाज की अपराजेय शक्ति है तो समाज साहित्य की प्रेरणा का स्रोत है। साहित्य से समाज को प्रेरणा मिलती है तो समाज से साहित्य को अभिव्यक्ति के तत्त्व प्राप्त होते हैं।

साहित्य मानव की बौद्धिक और भावात्मक साधना का सर्वोत्कृष्ट परिणाम है। प्रत्येक व्यक्ति समाज की स्वतंत्र इकाई होते हुए भी समाज का अभिन्न अंग है। अत: उसके प्रत्येक कार्य में वैयक्तिकता और सामाजिकता, दोनों का अस्तित्व रहता है।

'साहित्य सामाजिक मंगल का विद्यालय है। यह सत्य है कि वह व्यक्ति-विशेष की प्रतिभा से ही रचित होता है, किन्तु और भी अधिक सत्य यह है कि प्रतिभा सामाजिक प्रगति की ही उपज है। —हजारीप्रसाद द्विवेदी (विचार और वितर्क, पृष्ठ 244)

समाज साहित्यकार के निजी जीवन और व्यक्तित्व का निर्माण करता है। इसलिए उसकी कृति में समसामयिक स्थिति की प्रतिच्छाया होना स्वाभाविक है। यही कारण है कि राम-कथा और रामचरित एक होते हुए भी आदि कवि वाल्मीकि, लोकधर्मी गोस्वामी तुलसीदास, सांस्कृतिक पुनरुत्थानवादी मैथिलीशरण गुप्त, ऊर्ध्वगामी वृत्तियों के गायक 'निराला' और आधुनिक कवि श्री नरेश मेहता द्वारा अपने साहित्य में वर्णित 'राम' एक नहीं है। युग और परिवेश परिवर्तन ने साहित्य की चिन्तनधारा को बदला।

बालकृष्ण भट्ट का कहना है प्रत्येक देश का साहित्य उस देश के मनुष्यों के हृदय का आदर्श रूप है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का भी ऐसा ही कहना है, 'प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब है।' कारण, किसी भी समाज, राष्ट्र या जाति के उत्थान-पतन, आदर्शों मूल्यों, भावनाओं, धारणाओं का जो चित्र साहित्य द्वारा प्राप्त होता है, वह किसी अन्य स्रोत से प्राप्त नहीं हो सकता। यदि साहित्य सामाजिक

भावनाओं का बिम्ब न होता तो कोई भी समाज इस प्रकार अपने साहित्य की रक्षा में प्रवृत्त नहीं होता।

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के अनुसार 'साहित्य समाज का दर्पण है।' वीरगाथाकालीन साहित्य तत्कालीन सामाजिक परम्पराओं के अनुरूप तलवारों की खनखनाहट, बाहरी तथा आपसी युद्धों की विभीषिका, पारस्परिक स्पर्धा तथा वैमनस्य और प्रतिशोध की भावना का दर्पण है तो भक्तिकाल भारतीय-जीवन की हताशा और निराशा का प्रतिबिम्ब है। रीतिकालीन साहित्य से समाज में फैली घोर विलासिता का परिचय मिलता है। आधुनिक काल में मुंशी प्रेमचंद का साहित्य भारतीय जीवन का दर्पण है तो प्रगतिवादी तथा नई कविता आज के भारत की मुँह बोलती तस्वीर है।

डॉ. रामविलास शर्मा का मत है, 'यदि साहित्य समाज का दर्पण होता, तो संसार को बदलने की बात न उठती। कवि का काम यथार्थ जीवन को प्रतिबिम्बित करना ही होता तो वह प्रजापति का दर्जा न पाता। वास्तव में प्रजापति ने जो समाज बनाया है, उससे असन्तुष्ट होकर नया समाज बनाना कवि का जन्म सिद्ध अधिकार है।' साहित्य समाज का दर्पण है अथवा नहीं, इस पर विचार करते हुए डॉ. यश गुलाटी लिखते हैं—

'परन्तु यह स्वीकार करना होगा कि साहित्य एक सीमा तक ही समाज का दर्पण होता है। समाज स्वत: निर्माता नहीं होता और न ही इसकी क्षमता रखता है। साहित्यकार बाह्य जगत् को वैसा ही अंकित नहीं करता जैसा कि वह देखता है। बाह्य वास्तविकता और साहित्य-कृति में बिम्ब-प्रतिबिम्ब का सम्बन्ध मानना अनुचित है। साहित्यकार समाज का यथावत् अंकन नहीं करता। समाज उसके परिवेश का एक अंग होता है और उसका प्रभाव ग्रहण करता है, परन्तु साहित्य अनुकृति नहीं है और न ही साहित्यकार अनुकर्ता। वह सर्जक होता है और अपनी रुचि और व्यक्तित्व के अनुकूल तथ्यों का संचयन करता है। एक ही परिवेश में विभिन्न दृष्टिकोणों वाले लेखक द्वारा यथार्थ का ग्रहण और प्रतिफलन भिन्न होता है। समाज का यथार्थ एक नवीन रूप धारण करके तथा नवीन सौन्दर्य और अभिप्राय से समन्वित होकर साहित्य में प्रवेश करता है।'

साहित्य समाज से भाव सामग्री और प्रेरणा ग्रहण करता है तो वह समाज को दिशाबोध देकर अपने दायित्व को भी पूर्णत: अनुभव करता है। परमुखापेक्षिता से बचाकर उनमें आत्मबल का संचार करता है। साहित्य का पाँचजन्य उदासीनता का राग नहीं सुनता, वह तो कायरों और पराभव प्रेमियों को ललकारता हुआ एक बार उन्हें भी समरभूमि में उतरने के लिए बुलावा देता है। इसीलिए श्री महावीरप्रसाद द्विवेदी ने साहित्य की शक्ति को तोप, तलवार, तीर और बम के गोलों से भी बढ़कर स्वीकार किया है। मैजिनी के साहित्य ने इटली को नवजीवन प्रदान किया। फ्रांस की क्रांति रूसो और वाल्त्येर के साहित्य का फल है। बिहारी के एक दोहे से—

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहिं काल।
अली कली ही सौं बंध्यो, आगे कौन हवाल॥

राजा जयसिंह को अपने कर्तव्य का ज्ञान हो गया और उसके जीवन में बदल आ गया। भूषण की वीर भावों से ओत-प्रोत ओजस्वी कविता से मराठों को नवशक्ति प्राप्त हुई।

स्वतंत्रता-संग्राम के दिनों में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', रामधारीसिंह 'दिनकर', सुभद्राकुमारी चौहान आदि कवियों की ओजपूर्ण कविताओं ने न जाने कितने युवा प्राणों में देशभक्ति की भावना भरी।

हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत है कि 'सारे मानव-समाज को सुन्दर बनाने का ही नाम साहित्य है।' अत: साहित्य समाज-जीवन की मंगलमय संभावनाओं का संधान करता हुआ मानवीय सत्यों की स्थापना भी करता है। महादेवी के शब्दों में, 'साहित्य चाहे जिस भूमिका में उपस्थित हो, वह मानव जाति का, विकास के समान ही अविच्छिन्न साथी रहता है। प्रत्यक्ष वस्तु सत्य से अप्रत्यक्ष सम्भाव्य सत्य एक उसकी सीमाएं इस प्रकार फैली रहती हैं कि मनुष्य उसे अपने अतीत विकास का प्रमाण मानता है, वर्तमान का मापदंड भी और अनागत भविष्य का संकेत भर भी।'

(251) सिनेमा और समाज

संकेत बिंदु—(1) सिनेमा का समाज पर प्रभाव (2) फिल्में समाज का दर्पण (3) फिल्मों में अश्लीलता (4) युवाओं पर फिल्मों का प्रभाव (5) उपसंहार।

समाज और सिनेमा का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है। बिना समाज के सिनेमा तिलस्मी और अय्यारी उपन्यास से अधिक कुछ नहीं और बिना सिनेमा के मनोरंजन अपूर्ण रहता है। समाज-सत्य को प्रकट करना सिनेमा का दायित्व है तो समाज में अंगद के पैर की तरह अपनी जड़ जमा लेना सिनेमा का सच है।

सिनेमा का समाज पर प्रभाव का प्रमाण है उसकी तीव्र इच्छा। किशोर से लेकर प्रौढ़ तक, बालिका से लेकर कब्र में पैर लटकाई प्रौढ़ा तक, भिखारी से लेकर कर्मचारी तक, साधारण राजनीति से लेकर सत्ता के परम शिखर तक बैठा समाज सिनेमा को मनोरंजन का सशक्त साधन मानता है। सिनेमा से बढ़कर सस्ता और सशक्त मनोरंजन का साधन और कहाँ?

यह समाज पर सिनेमा का प्रभाव ही है कि लाखों लोग दूरदर्शन की अन्त्याक्षरियों में, एपीसोड के सिनेमा संबंधी प्रश्नों में, चित्रहारों में पूछे गए प्रश्नों का उत्तर देने को लालायित रहते हैं। यह उत्कंठा तभी सार्थक है, जब उसे सिनेमा से प्यार हो और उस प्यार में वे पूरे डूबे हों। सिनेमा के बारे में राई-रती पता हो, उसका एकाग्रता से अध्ययन किया हो।

फिल्में समाज से कट कर जीवित नहीं रह सकतीं। उनकी कहानी की कथावस्तु समाज की देन है। समाज के चलते-फिरते नर-नारी, समाज की समस्याएँ उसकी फिल्म के प्राण हैं। निर्माता फिल्म के लिए जिन तत्त्वों का चयन करता है, उसके बीज समाज में होते हैं।

समाज पर सिनेमा का प्रभाव इतना अधिक है कि उसके बातचीत का लहजा अभिनेता-अभिनेत्रियों की संवाद-शैली पर होगा। उसका फैशन सिनेमा-स्टाइल पर होगा। उसका प्रेम-प्रदर्शन सिनेमा की नकल होगा। हिंसा और सेक्स की उन्मुक्तता में सिनेमा का प्रभाव होगा। चोरी करने तथा डाका डालने में सिनेमा शैली का अनुसरण होगा।

आज के सिनेमा ने समाज-सच को सकारात्मक पक्ष में प्रस्तुत न कर उसके विकृत-पक्ष को उजागर किया है। सामाजिक सरोकारों और समस्याओं के उपचारों से उसका दूर-दूर तक लेना-देना नहीं रहता। विजय अग्रवाल के शब्दों में, 'उनमें समस्याओं का जो समाधान दिखाया जाता है, उसने दर्शकों के मन में समाधान की स्थिति को भ्रमित करके उसे उलझाया है। फिल्मों का समाधान जिस 'सुपरमैन' में निहित है, उसका अस्तित्व ही संदिग्ध है। इस प्रकार समस्या सच होती है और उसका समाधान मिथ्या। फलस्वरूप फिल्में अपनी सकारात्मक भूमिका निभाने की बजाय नकारात्मक भूमिका निभाने लगती हैं।'

फिल्म-निर्माण में कथानक, संगीत, ध्वनि, गीत, दृश्य आदि का उपयोग उसकी क्षमता की चरमसीमा तक किया जाता है। फलस्वरूप समाज की तिल-सी हिंसा फिल्मों में पहुँचकर ताड़ बन जाती है और पिद्दी से पिद्दी नायक भी फिल्मों में महानायक बन जाता है। इस प्रकार फिल्मों की अयथार्थवादी प्रस्तुति में सब कुछ होता है, सिवाय समाज के।

सिनेमा के कारण ही नारी के प्रति 'मातृवत् परदारेषु' की भारतीय-संस्कृति की मान्यता विलुप्त हो रही है। आज का पुरुष हर नारी में चाहे वह आयु में छोटी हो या बहुत बड़ी, 'प्रेम-रोग' के दर्शन करना चाहता है। इसी 'प्रेम-भावना' की उपज है 'गर्ल फ्रेन्ड' तथा बॉय-फ्रेन्ड' का प्रचलन। यही कारण है कि आज पति-पत्नी के सम्बन्धों में खिंचाव आ रहा है। तलाक के केसों में न्यायालय व्यस्त हैं, त्रस्त हैं। भाई-बहिनों, देवर-भाभियों के सम्बन्धों में विकृति आ रही है। सालियों की तो बात ही छोड़िए। कहाँ तक है पतन की सीमा। सिनेमा जो न प्रभाव दिखाए, थोड़ा है।

नग्नता जब कलात्मक रूप में प्रस्तुत होती है तो वह सृजनात्मकता का रूप ले लेती है। जब वह ज्यों की त्यों अभिव्यक्त होती है तो वह उससे भी अधिक अश्लील हो जाती है, जितनी वह यथार्थ रूप में थी। अश्लीलता भी तभी आपत्तिजनक है जब उसमें आक्रामकता तथा बलात्कारी भाव हो। अर्ध नग्न उत्तेजनात्मक रूप में शरीर प्रदर्शन, कामुक हाव-भाव, वक्षःस्थल का कृत्रिम उभार और संचालन, नृत्यों में कामुक दृश्य, समाज में कैंसर के किटाणु सिद्ध हो रहे हैं। चुम्बन तक ही सीमित न रहकर आज का सिनेमा स्नान दृश्य या बलात्कार के दृश्य न दिखाए तो वह फिल्म को अपूर्ण मानता है। चेतन मेहता की 'माया मेमसाहब' बासु भट्टाचार्य की 'आस्था', मीरा नायर की 'कामसूत्र', दीपा मेहता की 'फायर' नंगे और अश्लील दृश्यों के कारण ही चर्चित रही है। इतना ही नहीं, आज की अस्सी प्रतिशत फिल्में सहवास दृश्यों के 'सेक्स बम' से ओत-प्रोत हैं।

'अहिंसा परमो धर्मः' का पुजारी भारत आज हिंसा को धर्म मानने लगा है। समाज की सहिष्णुता लोप हो रही है। धैर्य उसके कोश में है ही नहीं। परिणामतः समाज में छोटी-

छोटी बातों का हिंसात्मक रूप ले लेना, सिनेमा का ही अभिशाप है। इतना ही नहीं दंगा-फसाद, 'फरिश्ते, तेजाब, खून का कर्ज, अग्निपथ, अपराधी, घायल, द्रोही, सड़क' जैसी एक्शन फिल्मों के वीभत्स दृश्यों ने न केवल युवा पीढ़ी का जायका बदला है, अपितु समाज में अपराधिक प्रवृत्तियों को भी बढ़ावा दिया है। दूसरी ओर सिनेमा द्वारा शराब के प्रचार ने युवा पीढ़ी में अपराधिक प्रवृत्तियों में दुस्साहसी प्रकृति को 'टानिक' दे दिया। परिणामत: आज के युवक सिनेमा-स्टाइल पर चोरी करते हैं, डाके डालते हैं; सिनेमा-स्टाइल पर बलात्कार एवं अपराधपूर्ण कृत्य करते हैं। बात-बात में चाकू निकाल लेना तो आज फैशन बन गया है। एक प्रख्यात पुलिस अधिकारी ने विदेशी पत्रकारों से बातचीत में कहा था कि उच्च न्यायालय में एक वकील ने यह तर्क दिया कि 'अपराधी ने फिल्मी हिंसा से प्रभावित होकर अपने अपराध किए हैं, इसलिए उसे प्राण-दंड न दिया जाए।' —विनोद भारद्वाज (राष्ट्रीय सहारा : 9.10.1994)

सिनेमा भारतीय संस्कृति को नकारता दानव है तो सभ्यता को ध्वस्त करता विध्वंसक-अस्त्र है। भारतीय जीवन मूल्यों के ह्रास का कारण है तो उपभोक्ता संस्कृति का जनक। श्री आनन्द कुमार का विचार है कि 'फिल्म समाज का दर्पण नहीं हो सकती, लेकिन फिल्म समाज से बाहर भी नहीं है। फिल्म समाज-सुधार का उपकरण नहीं है, लेकिन फिल्मों से समाज का सशक्त संवाद होता है। फिल्में विदेशी विधा के रूप में भारतीय संस्कृति में आयी हैं, लेकिन अब रेलगाड़ी, कारखाने और राजनीतिक दलों की तरह हमारे जीवन का जरूरी हिस्सा हैं। फिल्में साहित्य, संगीत, राजनीति और दर्शन का विकल्प नहीं हो सकतीं, लेकिन फिल्मों की अपनी स्वायत्तता है जो समाज को महत्त्वपूर्ण स्तर पर प्रभावित करती हैं। लेकिन अस्वीकार और चमत्कार की दो अतियों के बीच एक अनुपाती समझ का अभाव है। यह अभाव रोटी और आत्मसम्मान के अभाव के सामानांतर ही एक और विकृति का सिलसिला बनाने लगा है। इसलिए फिल्म और समाज के रिश्तों के भारतीय संदर्भ की ज्यादा खुली जांच-पड़ताल जरूरी होती जा रही है।' (राष्ट्रीय सहारा 9.10.1994)

(252) अच्छा पड़ोसी

संकेत बिंदु—(1) पड़ोसी का अर्थ (2) पारिवारिक सुख-शांति का प्रदाता (3) दुख-दर्द का साथी (4) पड़ोस की देखभाल (5) आदर्श पड़ोसी के गुण।

जिसका घर हमारे पड़ोस में हो, वह पड़ोसी है। प्रतिवेशी, हमसाया इसके पर्याय हैं। पंजाबी में एक कहावत है—'सम्बन्धी दूर, पड़ोसी नेड़े।' यह उक्ति शत-प्रतिशत सत्य है। घर में कोई चोर घुस गया है, असामाजिक व्यक्ति अपमान कर रहा है, अकस्मात् हार्ट-अटैक जैसी भयंकर बीमारी ने आक्रमण कर दिया है, उस समय पड़ोसी ही काम आएँगे। वे ही तन-मन और धन से सेवा करेंगे। इसीलिए बाइबिल ने चेतावनी दी है—'अपने पड़ोसी के विरुद्ध कभी झूठी गवाही न दो।' हीरेस का कहना है कि, 'जब तुम्हारे पड़ोसी के घर

में आग लगी हो, तो अपनी सम्पत्ति भी खतरे में समझो।' सच्चाई तो यह है कि पड़ोसी से प्रेम करने वाला विपत्ति में भी सुखी रहता है, जबकि पड़ोसी से बैर ठानने वाला सम्पत्ति होने पर भी दु:खी होता है।

अच्छा पड़ोसी पारिवारिक सुख-शांति का प्रदाता है। दु:ख, कष्ट और क्लेश को कम करने अथवा समाप्त करने का साथी है। उत्सव तथा मांगलिक-आयोजनों में पारिवारिक सदस्यों से बढ़कर है। घर की देख-रेख करने वाला है, परिवार का संरक्षक है। सामाजिक-चेतना का जीवन्त प्रमाण है। 'राजद्वारे श्मशाने च' के अनुसार साथ निभाने वाला बान्धव है।

अच्छा पड़ोसी सुख-शांति का प्रदाता है। उसमें पड़ोसी को सुख-शांति से रहने देने की भावना होती है। छोटी-छोटी बातों के मन-मुटाव से वह दूर रहता है। बच्चों के झगड़ों को अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न नहीं बनाता। अपने व्यवहार में अंतर नहीं लाता। औरतों की चख-चख को विष नहीं बनने देता। बहकावे में आकर पड़ोसी को ताना नहीं मारता, कटु शब्द नहीं कहता।

चार-पाँच पड़ोसी मिलकर प्रातः सैर को जाते हैं। सेहत बनाते हैं और परस्पर हास्य-व्यंग्य के फव्वारे भी छोड़ते हैं। इस हँसी-ठठ्ठे में मन की मैल धुल जाती है। पड़ोसियों के बच्चे इकट्ठे खेलते हैं। लड़ते हैं, झगड़ते हैं, फिर एक के एक। दोपहर को पड़ोसिनें इकट्ठी होती हैं। एक-दूसरे की निन्दा-स्तुति उनका धर्म है, पर वह होती ऊपरी है। मन का कालुष्य, घृणा या द्वेष उसमें नहीं होता।

व्यावहारिक सत्य है कि पड़ोसी से प्रेम करने वाला विपत्ति में भी सुखी रहता है, जबकि पड़ोसी से बैर ठानने वाला समृद्धि में भी दु:खी होता है। इसलिए अच्छा पड़ोसी दु:ख, दर्द, कष्ट-क्लेश में भी साथी बनने में कभी नहीं हिचकता। वह तन, मन तथा धन से पड़ोसी की सेवा करने में कभी नहीं झिझकता। पीड़ा हरने, कष्ट दूर करने तथा दु:ख-विपत्ति-निवारण में सामर्थ्यानुसार सदा तत्पर रहता है। आदर्श पड़ोसी सदा ध्यान रखता है अपने रेडियो, टेलीविजन के स्वर को मंद रखने का, ताकि पड़ोसी डिस्टर्ब न हो। वह पड़ौसी के दूरभाष को भी अनावश्यक कष्ट नहीं देता और न ही उनका समय गँवाने के लिए गपशप करने आता है।

एक दिन हमारे पड़ोसी को ब्राह्ममुहूर्त में अचानक हार्ट-अटैक हो गया। पड़ोस के डॉ. गुप्ता को बुलाया गया। मरीज की गम्भीर दशा देखी, तो डॉक्टर साहब अपनी कार में उसे अस्पताल ले गए। अपने प्रभाव से डॉक्टरों द्वारा तुरन्त उपचार की तैयारी करवाई, पर दुर्भाग्य से रोगी की जीवन-लीला समाप्त हो गई। डॉ. साहब ने शव को अपनी कार में रखा और घर वापिस। डॉ. गुप्ता ने यह सारा कार्य एक पड़ोसी के नाते ही किया था। अच्छे पड़ोसी की यही पहचान है।

उत्सव और मांगलिक-आयोजन परिवार के जीवन हैं। हर सौभाग्यशाली परिवार में ये शुभ दिन आते हैं। सुख और दु:ख को व्यक्ति अकेला नहीं झेल सकता। साथी चाहिए।

पड़ोस से बढ़कर कौन अच्छा साथी होगा ? पुत्र-पुत्री का विवाह है, बच्चों के मुण्डन हैं, पुत्र जन्मोत्सव है, पड़ोसी हाथ बँटाते हैं। वे उसे अपना ही कार्य समझते हैं।

पड़ोसी पड़ोस का चौकीदार तो है ही, उसका संरक्षक भी है। वह अवांछित व्यक्ति को घर में घुसते देख लेगा, तो उस पर निगाह रखेगा, यदि वह कोई गड़बड़ करेगा तो उसका प्रतिकार करेगा। उसके बच्चे, उसकी स्त्री या परिवारजन गलती करेंगे, तो उन्हें समझाएगा, अपनत्व में डाँटेगा भी।

पड़ोसिन ने देखा भरी दोपहर में शर्मा जी के घर चार अपरिचित व्यक्ति घुस रहे हैं। दिल धक् से बैठ गया। दो क्षण बाद देखा उनका दरवाजा अन्दर से बन्द कर दिया गया। उसने साहस से काम लिया। गली में शोर मचा दिया। औरतें इकट्ठी हो गईं। उन असामाजिक व्यक्तियों का साहस छूट गया। शोर सुनकर पिछले दरवाजे से भाग गए।

छोटी-मोटी वस्तु माँगना पड़ोस-धर्म है और उसका लौटाना पड़ोस-कर्तव्य। आदर्श पड़ोसी माँगकर लाई चीज काम निकलने पर वापिस कर देता है।

अच्छा पड़ोसी अपना कूड़ा-करकट, फलों के छिलके गली या सड़क पर नहीं फेंकता ताकि पड़ोसी को बुरा न लगे। कूड़ेदान में डालना उसका स्वभाव होता है।

कमियाँ-कमजोरियाँ हर मानव में होती हैं। आदर्श पड़ोसी न तो पड़ोस की कमियों-कमजोरियों से लाभ उठाता है और न ही उसे चर्चा का विषय बनाता है।

आदर्श पड़ोसी कोशिश में रहता है कि पड़ोसी से झगड़ा न हो। पड़ोसी से झगड़ा मन मलिन करता है और संबंध-विच्छेद का कारण बनता है। झगड़े का कारण पालतू पशु (कुत्ता) भी हो सकता है।

वस्तुत: आदर्श पड़ोसी सामाजिक चेतना का जीवन्त प्रमाण है। चाहे राजद्वार की प्रसन्नता हो या श्मशान का शोकाकुल वातावरण, वह साथ है—यथाशक्ति पड़ोसी के कर्तव्य को आदर्श रूप में निभाने के लिए।

(253) नैतिकता और समाज/नैतिकता का गिरता स्तर नैतिक कर्त्तव्य और मानवता /नैतिकता का स्तर और हम

संकेत बिंदु—(1) नैतिक पतन की पराकाष्ठा (2) देश की अस्मिता का सौदा (3) स्वार्थ के सामने नैतिकता मूल्यहीन (4) भय और आतंक नैतिक पतन की निशानी (5) उपसंहार।

उन्नति और प्रगति के इस दौर में एक ओर हमने बहुत कुछ खोया है और दूसरी ओर बहुत कम पाया है। हमने भौतिकता के माध्यम से शिखरों को छू लिया लेकिन हम पतन की ओर ऐसे गिरे कि नैतिकता पतन की पराकाष्ठा की ओर हमने अपना ध्यान दिया ही नहीं। सम्भव है कि हम भविष्य में इन्सान भी न रह पायें और हैवान से भी बदतर होते चले जायें।

हमारे देश के धर्मग्रन्थ वेद से एक उक्ति आती है 'मनुर्भव: दैवं जनय'' जिसका अर्थ

हुआ कि हे मनुष्य तू मानव बन और दिव्य सन्तान को उत्पन्न कर कि तेरी आने वाली सन्तान चरित्रवान् और दिव्यतापूर्ण हो, दानव नहीं। आज मनुष्य ने अपना परिष्कार और परिमार्जन त्याग दिया है, आत्मावलोकन छोड़ दिया है, साथ ही संस्कार आधारित शिक्षा का त्याग कर अपनी नैतिकता को एक खूँटी पर टाँग दिया है। आज मानव अपनी नैतिकता के सार को गिराकर स्वयं किलकारी मारकर हँस रहा है। इससे बड़ी विडम्बना और क्या हो सकती है।

समाज के अधिकांश प्राणी अपना नैतिक कर्त्तव्य भूलकर मानवता के स्थान पर दानवता का परचम लहराने में अपनी शान समझते हैं। यदि देखा जाये तो आज देश के नेताओं के चरित्र का पतन हो चुका है और देश के नेता ही अपने नैतिक मूल्यों से इतना गिर चुके हैं कि वह देश की अस्मिता का भी सौदा करने में पीछे नहीं है, यदि ऐसा नहीं है तो हर रोज नये-नये घोटाले क्या सन्देश लेकर आते हैं? नैतिकता का स्तर समाज में इतना गिर चुका है कि देश के शहीदों के पार्थिव शरीरों को उनके परिजनों तक सौंपने के लिए जिन ताबूतों (लकड़ी के बक्से) को व्यापारियों से खरीदा जाता है उनमें में दलाली की बू आती है, ताबूत खरीद में दलाली नेता ने खायी या अधिकारी ने यह विवाद का विषय नहीं है। लेकिन सोचने का विषय केवल यह है कि हमारा नैतिक स्तर कितना गिर गया है ? नैतिकता के गिरते स्तर पर गीतकार श्रवण 'राही' का एक गीत कितना सक्षम बन पड़ा है—

घी, दूध, मक्खन, दवाइयाँ भी देखियेगा,
मेरे देश में ये शुद्ध मिलते नहीं।
राम की तो बात मेरे देश में ही चलती है,
लोगों में तो राम चरित्र मिलता नहीं।

मानव का नैतिक पतन और चरित्र के पतित होने की पराकाष्ठा तो तब हो गयी जब मामा-भाँजी का पवित्र रिश्ता पतित होकर पति-पत्नी में परिवर्तित हो गया। नैतिकता का स्तर तब और गिर गया जब मनुष्य अधोगति को प्राप्त हो गया और ससुर तथा पुत्रवधू के बीच दुष्कर्म छा गया। नैतिकता के गिरते स्तर की पराकाष्ठा तब हुई जब भाई बहन का अटूट प्रेम काम-बन्धन की भेंट चढ़ गया।

मनुष्य और न जाने कितना नीचे गिरेगा? मानव के इस प्रकार के घिनौने कर्त्तव्य और पतन को देखकर तो शैतान भी भयभीत हो उठे, लेकिन आज का मनुष्य अपनी नैतिकता के पतन को लेकर लेशमात्र भी चिन्तित नहीं है और यदि यह सब इस प्रकार चतला रहा तो एक दिन मानव का अस्तित्व ही मिट जायेगा। आज मनुष्य की सोच इतनी बदल गयी है कि मनुष्य को अपने स्वार्थ के आगे नैतिकता मूल्यहीन लगने लगी है। नैतिकता का स्तर यहाँ तक गिर गया है कि माता और पुत्र का पावन सम्बन्ध भी कलंकित हो गया। दूसरी ओर मनुष्य की महत्त्वाकांक्षा इतनी बढ़ गयी है कि पुत्र अपने पिता की हत्या तक कर देने में संकोच नहीं करता। समाज में नित्यप्रति बढ़ रहे अपराध-हत्या, अपहरण, बलात्कार यह हमारी नैतिकता के गितरे स्तर के ही जीवित प्रमाण हैं।

एक ओर मनुष्य चाँद पर पहुँचकर अपने उन्नत होने का परचय भी लहराता है तो दूसरी ओर समाज में नैतिक पतन का क्रम जारी है। ऐश्वर्य और भाग के बढ़ते साधन ही विनाश का कारण बन रहे हैं और मनुष्य इस मृग-तृष्णा को अपनी उन्नति का मूल समझ बैठा है। समाज में आज आचरण और चरित्र नैतिकता के पतन की कहानी खुले रूप से कह रहा है और मनुष्य अपने कुकृत्यों पर लेशमात्र भी चिन्तित प्रतीत नहीं होता।

समाज में फैल रहा यह दुराचार , यह भ्रष्टाचार, यह अनाचार, यह बलात्कार और अत्याचार ही नैतिकता को समाप्त कर रहा है। देश में छा रहे आतंक और भय का वातावरण भी तो इस गिरती नैतिकता की ही तो निशानी है। वैसे समाज में नैतिकता के नाम पर खूब ढोल पीटा जाता है, मगर हम मन से सभी अनैतिकता का आवरण ओढ़कर सभ्य मानव बनने का ढोंग भी करते हैं, यदि यही क्रम चलता तो निश्चय ही हम पतन के उस मोड़ पर खड़े होंगे जहाँ से वापिस लौट पाना हमारे लिए सम्भव न होगा।

अब समय रहते हमें अपनी विचारधारा बदलने की आवश्यकता है और भारत जैसे विशाल देश में आदर्श और नैतिकता के गिरते स्तर को उठाने में हमें अपनी सार्थक पहल करके दिखानी है, तभी हमारा कल का भविष्य उज्ज्वल बन सकेगा। यह सनातन सत्य है कि जमाना हमसे बनता है, हम जमाने से नहीं बनते। प्रत्येक मनुष्य इस संसार में इकाई मात्र है, लेकिन इन्हीं इकाइयों से समूचे संसार का निर्माण होता है और अकेली इकाई का बहुत महत्त्व है, इसलिए 'वेद' ने इस इकाई को शुद्ध और नैतिकवान् रखने का निर्देश भी दिया है। अत: हम सबका कर्त्तव्य है कि हम इस बदले हुए मानव का अनुसरण करना छोड़े और हर विकृति का त्यागकर अपनी नैतिकता की रक्षा करें, जो विकृत हो रही है, विकार युक्त हो चुकी है, पतित हो चुकी है। कवि मनोहर लाल 'रत्नम्' का कहना है कि—

नैतिकता का पावन परचम, फिर से ही लहराना होगा।
सकल विश्व को इस भारत का, अमर ज्ञान सिखलाना होगा॥
है ऊँचा आदर्श हमारा, युगों-युगों से ही 'रत्नम्'—
विश्व भारत बन जाये, फिर वह शंख बजाना होगा॥

(254) कन्या भ्रूण हत्या का घिनौना कृत्य / देश में 'कुड़ी मारों' की बढ़ती संख्या / कन्या हन्ता समाज और कानून

संकेत बिंदु—(1) भ्रूण परीक्षण और बेटी बचाओ अभियान (2) परिवार में कन्या का महत्त्व (3) भ्रूण हत्या के लिए कानून (4) कन्या हत्या क्रूरता का प्रतीक (5) उपसंहार।

भारत देश में यह मान्यता रही है, 'नारी सर्वत्र पूज्यते' शब्द का जयघोष प्रत्येक स्थान

पर सुनायी भी देता है और नारी को देवी शक्ति का स्वरूप भी माना गया है, मगर इसी देश में नारी की इतनी अवमानना की जा रही कि कन्या के जन्म से पूर्व ही उसके अस्तित्व को हमारा समाज समाप्त करने पर तुल गया है। वर्तमान समय में समूचे समाज के भीतर भ्रूण परीक्षण एक फैशन-सा बन गया है यदि भ्रूण कन्या है तो पेट में ही समाप्त करा दिया जाता है। इस सन्दर्भ में कवि मनोहरलाल 'रत्नम्' अपनी वेदना व्यक्त करते हुए कहते हैं—

आज निर्दयी बन गया इन्सान है,
कोख माँ की बन रही श्मशान है।
लाश बेटी कफन अर्थी बिना—
माँ के हाथों में हुई वीरान है।

कन्याभ्रूण हत्या को लेकर अनेक संस्थाओं, द्वारा अखिल भारतीय स्तर पर 'बेटी बचाओ' अभियान के माध्यम से चेतना जागृत की जा रही है मगर फिर भी 'कुड़ी मारने' की बीमारी हर घर में प्राय: फैलती ही जा रही है। भारत देश में कानून बनने के बाद भी देश में लोग बेटी की हत्या करने में लेशमात्र भी संकोच नहीं करते। यदि समाज से बेटियाँ ही समाप्त होती रहेंगी तो कल्पना की जा सकती है कि सृष्टि किस आधार पर चलेगी। कन्या भ्रूण हत्या यदि इसी प्रकार समाज में होती रही तो लड़के वालों का अंश और वंश किस आधार पर बढ़ेगा, इस ज्वलन्त प्रश्न पर शायद किसी ने ध्यान नहीं दिया।

कवि गीतकार राजगोपाल सिंह ने एक दोहे के माध्यम से बेटी के सन्दर्भ में सटीक कहा है—

खुशबू है ये बाग की, रंग की पहचान।
जिस घर में बेटी नहीं, वो घर रेगिस्तान॥

यह सच है कि जो घर बेटी विहीन है, वह रेगिस्तान के समान है, यदि हम समाज के धार्मिक सन्दर्भ भी देखें तो पाते हैं कि 'कन्यादान' प्रत्येक दान से श्रेष्ठ बताया गया है। यहाँ तक कहा गया है कि अपने जीवन में जो व्यक्ति कन्यादान नहीं करता, उसे कन्यादान करने के लिए पुन: सात बार जन्म लेना पड़ता है और व्यक्ति अपने जीवन में कन्यादान कर लेता है वह सम्भवत: मोक्ष का अधिकारी माना गया है।

भ्रूण क्या है, और भ्रूण परीक्षण क्या है ? और इसकी आवश्यकता आज की युवा शक्ति नारी को क्यों पड़ी ? यदि खुले विचारों से देखा जाये तो यह भ्रूण परीक्षण हमारी विकृत मानसिकता का दिवालियापन है। नारी ही आने वाली नारी की शत्रु बन रही है, यह आज की विडम्बना ही कही जायेगी। जब यह सामाजिक सत्य है कि पुत्री ही पुत्र से अधिक माता-पिता का हित-चिन्तन करती है, लेकिन पता नहीं हम पेट में ही पल रही बालिका को जन्म से पूर्व ही उसे मिटाकर कौन-सी सभ्यता का प्रमाण देना चाहते हैं ? व्यक्ति जयसिंह आर्य अपनी कविता में भ्रूण हत्या और भ्रूण की चीख-पुकार का वर्णन करते हुए कहते हैं—

भ्रूण गर्भ में चीखता, कोई न सुने पुकार।
कैसा होगा सोचिये, बेटी बिन संसार॥

भारत सरकार ने कन्या भ्रूण हत्या के लिए कानून बनाया है। इस कानून के अन्तर्गत भ्रूण हत्या करने वाले लोगों और इस घृणित कार्य में सहायक बनने वालों, जैसे—अल्ट्रासाउंड करने वाले डॉक्टर आदि को दण्ड देने का प्रावधान है। एक सर्वे के अनुसार पिछले तीस वर्षों में भारत में लगभग एक करोड़ कन्या भ्रूणों की हत्या की गयी है। लिंग निर्धारण और चयनित गर्भपात के चलते लड़कों के अनुपात में प्रतिवर्ष पाँच लाख लड़कियाँ कम पैदा हो रही हैं। इस सन्दर्भ में महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या कानून बना देने मात्र से यह समस्या सुलझ पायेगी ? क्या बेटी का भ्रूण बच पायेगा ? क्या गर्भ में आयी बेटी जन्म ले पायेगी ? समाज की मानसिकता को देखकर यह संकेत मिलता है कि कानून बना देना इस समस्या का समाधान नहीं है।

कन्या भ्रूण हत्या के परिणाम सामने आने लगे हैं, हरियाणा के एक गाँव में एक लड़की ने तीन पतियों के साथ विवाह करने से स्पष्ट मना कर दिया, समाज के लोगों ने, बुद्धिजीवियों ने यह पता लगाने का प्रयास नहीं किया कि एक लड़की को तीन पतियों की पत्नी क्यों बनाया जा रहा है, परिणाम सामने है कि लड़कों की संख्या अधिक है और लड़कियों की संख्या कम होने के कारण सभ्य समाज इस प्रकार के घिनौने कृत्य करने को भी तैयार है।

कवि मनोहरलाल 'रत्नम् की पंक्तियाँ इस सन्दर्भ में कुछ सोचने को विवश भी करती है—

बेटी जो मरती रही, डूब जायेंगे वंश।
बेटे वालों का सुनो, मिट जायेगा अंश॥

इसी प्रकार का दिल दहला देने वाली एक घटना अमृतसर पंजाब के एक गाँव की हैं। पत्नी के पेट में कन्या का भ्रूण था, पति ने भ्रूण समाप्त करने की बात कही तो पत्नी को यह बात स्वीकार न हुई और वह अपने मायके आ गयी। वहाँ पर उसने एक कन्या को जन्म दिया। उस महिला का पति वहाँ जाकर पत्नी और बेटी को अपने घर ले आया, घर आकर इस क्रूर व्यक्ति ने अपनी बेटी को पटककर मार डाला। पत्नी की शिकायत पर मानवाधिकार आयोग के हस्तक्षेप के बाद बेटी-हत्या का मामला दर्ज हो पाया। कवि 'रत्नम्' की पंक्तियाँ इस सन्दर्भ में क्या कहती हैं—

कंस या रावण ने किया, जग में अत्याचार।
बेटी हत्या का चला, अब कैसा व्यवहार॥

दिल्ली के नजफगढ़ क्षेत्र में एक डॉक्टर ने एक महिला का गर्भ-परीक्षण किया और पेट में बेटी होने के कारण उसकी भ्रूण-हत्या कर दी गयी। इस घटना से क्षुब्ध डॉक्टर के पास काम करने वाले कर्मचारी ने इसकी शिकायत पुलिस को दी। डॉक्टर और उस महिला के पति के विरुद्ध हत्या का मामला दर्ज हुआ। इस प्रकार की भ्रूण-हत्या के विरुद्ध सामाजिक जागरूकता अति आवश्यक है; और हत्या तो हत्या ही है, अपराधी को दण्ड

अवश्य मिलना चाहिए। दण्ड के सन्दर्भ में भी सरकार को इस प्रकार के अपराधों के लिए विशेष प्रकार की अदालतों का गठन करने की आवश्यकता है ताकि भ्रूण हत्या के सभी आरोपियों को आठ या दस दिन में सजा सुनाने का प्रावधान भी बनाया जाये।

भ्रूण हत्यारों को जितनी जल्दी दण्ड मिलेगा, उतनी जल्दी ही समाज से यह बुराई भी समाप्त होगी। जब अपराधी को देर से दण्ड मिलता है तो शेष समाज में दण्ड का भय नहीं रहता। इस प्रकार की हत्याओं के लिए अब सरकार को, मानवाधिकार आयोग को, राष्ट्रीय आयोग को और समाज को जागरूक होने की आवश्यकता है। सामाजिक जागृति से ही बेटी का मरण रोका जा सकता है।

(255) परिवार की बढ़ती हुई दूरियाँ!/टूटते परिवार—बढ़ती समस्यायें/समाज में वृद्धों की उपेक्षा की वृद्धि!/आज का युवा वर्ग और बढ़ती आवश्य कलायें

संकेत बिंदु—(1) पारिवारिक स्वरूप में बदलाव (2) नए और पुराने में सामंजस्य का अभाव (3) धन लोलुपता के कारण माँ-बाप की उपेक्षा (4) कुत्ते और आदमी में अंतर (5) झूठी शान और दिखावा।

यदि आज समाज में देखा जाये तो युवा वर्ग की बढ़ती आवश्यकताओं और आकांक्षाओं के कारण पारिवारिक स्वरूप बदलता या जा रहा है, जिसका कारण आज हमारे युवा के मन पर पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव भी कहा जा सकता है और यही कारण है कि परिवार के बड़े-बुजुर्ग व्यक्तियों की अवहेला हो रही है।

प्राय: सुनने में आता है कि अमुक परिवार के वृद्ध या वृद्धा की उपेक्षा हो रही है, इसका मूल कारण आज हमारे विचारों में हो रहा बदलाव है और इसके दोषी हम स्वयं हैं। यदि विचार कर देखा जाये तो कहा जाता है कि बुढ़ापा जंग लगे लोहे जैसा है, लोहे के बाहरी जंग को तो आसानी से मिटाया जा सकता है मगर मनुष्य के मन के भीतर लगे जंग को मिटाना आसान नहीं है। कुछ व्यक्ति बच्चों की नयी विचारधारा के कारण तन से नहीं मन से ही बूढ़े हो जाते हैं, और तन पर आया बुढ़ापा कठिन नहीं होता मगर मन पर आया बुढ़ापा अत्यन्त कठिन हो जाया करता है, क्योंकि मन पर जो बूढापन आता है, उसकी कोई आयु नहीं होती। बच्चों द्वारा माँ-बाप की, की गयी उपेक्षा ही मन के बुढ़ापे का मूल कारण माना जा सकता है।

नये विचारों और पुराने विचारों में तारतम्य न हो पाने के कारण समाज में अनेक परिवार टूट रहे हैं और इस प्रकार टूटते परिवार ही अनेक अन्य समस्याओं का कारण भी बन जाया

करते हैं। संतान द्वारा की गयी उपेक्षा ही शारीरिक बीमारी से अधिक कष्टदायक होती है। आज अनगिन वृद्ध व्यक्ति अपनी संतान द्वारा घर के किसी कोने में बैठकर उपेक्षित जीवन जी रहे हैं जिसका मूल कारण आपसी विचारों में एक दूसरे का ताल-मेल न होना है। जबकि परिवार के प्रत्येक छोटे-बड़े का यह पारिवारिक दायित्व है कि अपने अहंकार को त्याग कर परिवार को टूटने से बचाने में अपनी भूमिका का निर्वाह करें; मगर बड़े को बड़ा होने का अभिमान और छोटे को अपनी योग्यता का अभियान ही परिवार के टूटने और दूरियाँ बनाने का मुख्य कारण भी माना जा सकता है।

प्राय: देखा गया है कि आज के युवा में आगे बढ़ने की होड़, उसकी बढ़ती रोज़ की आवश्यकतायें, धन कमाने की लाहासा में युवक अपने माँ-बाप को भूल कर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति में ही संलग्न है, और यही कारण है कि तब माँ-बाप को पुत्र-प्राप्ति का वरदान भी उस समय श्राप लगने लगता है जब बुढ़ापा अपनी ही संतान द्वारा अपने ही घर अपमानित और तिरस्कृत होता है। जनक और जननी का स्नेहिल दाया का उपवन अपनी ही संतान द्वारा उपेक्षित होने पर बंजर-सा लगने लगता है। परस्पर पूरकता और पारिवारिक दायित्व बोध का आभाव प्रतिदिन युवा पीड़ियों में पनप रहा है, जिसके कारण समाज में, परिवार में वृद्धों की उपेक्षा में भी वृद्धि हो रही है।

समाज में यह गम्भीर समस्या पूरी तरह से पनपती जा रही है कि जननी और जनक को माता-पिता का सम्मान नहीं मिल पा रहा है। अपने परिवार में ही परायेपन का अभिशापित रिश्ता पनपता जा रहा है और विश्वास के रिश्तों में छतना का साम्राज्य देखने को मिलता है। इसी का वर्णन कवि मनोहर लाल 'रत्नम' ने अपनी कविता में किया है—

अपने सभी परायें मेरे, इस दुनिया में भीड़ बहुत है।
जिस पर भी विश्वास किया है, वो ही कर जाता बहना।

आज समाज के बदलते परिवेश को देखकर लगता है कि आदमी और कुत्ते में केवल इतना ही अन्तर है कि कुत्ता अपनो को देखकर पूँछ हिलाता है और पराये लोगों के देखकर भौंकता है और कभी-कभीं काटला भी है। मगर आदमी अपरिचित और पराये लोगों को देखकर तो हँसता है, मुसकाता है, मगर परिचित को देखकर कहलाता है, बौखलाता है, मुँह बनाता है। आज आदमी का स्तर इतना गिर गया है कि जिस माँ-बाप ने उसे जन्म दिया है, संसार में जिसने उसे सभ्य बनाया है, उसी का अपमान कर रहा है, उसी के प्रति व्यक्ति वफादार नहीं रहा। इसका मुख्य कारण आज हमारे समाज में व्यक्तियों की बदलती मानसिकता ही है और कुछ दोष तो इसमें दूरदर्शनी संस्कृति का भी माना जा सकता है।

झूठी शान का दिखावा, बनावटीपन, दूसरों की होड़ आज अनेक परिवारों के टूटने का कारण है। इसमें यदि देखा जाये तो नब्बे प्रतिशत आज का युवा वर्ग दोषी हैं और दस प्रतिशत दोष उन वृद्धों पर जाता है जो अपने झूँठे-अहंकार के आगे समय के साथ समझौता नहीं कर पाते। आज परिवार में जों रिश्तों में दूरियाँ बढ़ रही हैं, इनमें उन युवाओं का दोष

है जो विवाह के पश्चात् अपने माता-पिता को मात्र बोझ समझ बैठे हैं। वास्तविकता यह है कि माता-पिता अनुभव की पाठशाला होते हैं, उनके पास जीवन के बहुमूल्य विचार और अनुभव होते हैं, मगर आज स्वार्थवश व्यक्ति अपनी स्वतंत्रता के कारण अपने जीवन को दु:खमय बना लेने में भी संकोच नहीं करते। वृद्धों का जीवन उपेक्षित और एकाकी हो जाता है और युवा वर्ग पथभ्रष्ट होकर दिशाहीन-अनुभव ही हो जाता है। समय रहते समाज में फिर से पुरानी परम्परा और एक साथ रहने के विकल्प कर विचार करना होगा, तभी समाज में सुख-समृद्धि स्थापित हो पायेगी और टूटते परिवारों का एकीकरण प्यार और स्नेह को पुन: जन्म देने का सार्थक प्रयास सफल हो पायेगा।

नारी और परिवार

(256) नारी

संकेत बिंदु—(1) नारी की परिभाषा (2) नारी के अनेक रूप (3) स्वभाव से चंचल और शृंगार प्रिया (4) नारी के अनुरक्त और विरक्त रूप (5) उपसंहार।

लिंग के विचार से मनुष्य जाति का वह वर्ग जो गर्भधारण कर प्राणियों को जन्म देता हैं, नारी है। युवती तथा वयस्क स्त्रियों की सामूहिक संज्ञा, नारी है। धार्मिक क्षेत्र में साधकों की परिभाषा में प्रकृति और माया, नारी है।

महादेवी वर्मा के शब्दों में, "नारी केवल मासपिंड की संज्ञा नहीं है। आदिमकाल से आज तक विकास-पथ पर पुरुष का साथ देकर, उसकी यात्रा को सरल बनाकर, उसके अभिशापों को स्वयं झेलकर और अपने वरदानों से जीवन में अक्षय शक्ति भरकर, मानवी ने जिस व्यक्तित्व, चेतना और हृदय का विकास किया है, उसी का पर्याय 'नारी' है।"

मन का विदारण करने के कारण नारी को 'दारा' कहते हैं। शरीर आहत कर देने के कारण 'वनिता' है। इसके अंगों के समान किसी अन्य के श्रेष्ठ अंग नहीं, अत: वह 'अंगना' है। पुरुष को लालायित कर देने के कारण 'ललना' है। प्रिय के दैव को छीन लेती है अथवा दया भाव रखती है, इसलिए 'दयिता' है। तीन प्रकार से शत्रु होने के कारण 'तीमयी' कहलाती है। उपकार और सुख पहुँचाने के कारण 'धन्या' है। पति ही मानो पुत्र रूप में उससे जन्म लेता है, इस कारण 'जाया' है। (जायते पति: पुत्ररूपेण अनया इति जाया) नर उसके प्रति रति (आसक्ति से) से तृप्त नहीं होता, इसलिए उसे 'नारी' कहते हैं।

नारी पुरुष की अंकाश्रिता है, जैसे वृक्ष के सहारे कोई बेल बढ़ रही हो। वह 'छाया' है, 'अनुगामिनी' है, 'अवलम्बिता' है। उसका अपना स्वतंत्र अस्तित्व जैसे है ही नहीं। वह पुरुष की 'सहयात्रिणी', 'सहचरी' ही नहीं, 'अनुचरी' भी है।

जन्मदात्री होने के कारण नारी 'जननी' है। जीवन-भर पति का साथ निभाने के कारण 'सहयात्रिणी' है। धर्म कार्यों में उसका साथ अनिवार्य होने के कारण 'सहधर्मिणी' है। गृह की व्यवस्थापिका होने के कारण 'गृह लक्ष्मी' विशेषण से विभूषित हुई। तन-मन से पति के प्रति पूर्णतः समर्पित होने से 'पतिव्रता' है।

नारी स्वभाव से चंचल, चतुर, शृंगार प्रिया और भीरु होती है। मधुर वचनों से आकर्षित करती है, तीक्ष्ण वचनों से प्रहार करती है। लज्जा उसका आभूषण है। रोना उसका बल है। उसके अधरों में अमृत कुंड है, भोलापन और निश्छलता के कारण वह सहज मुग्ध हो जाती है, प्रेम के वशीभूत हो जाती है। वह एक आँख से हँसती है तो दूसरी से रोती है। नारी की करुणा अन्तर्जगत् का उच्चतम विकास है, जिसके बल पर सदाचार ठहरे हुए हैं। इसलिए नारी नैतिक आदर्शों की संरक्षिका है। उसके जीवन का संतोष ही स्वर्णश्री का प्रतीक है। उसके वक्ष में पयस्विनी धार है तो हँसी में जीवन-निर्झर का संगीत है। दया, धैर्य और सहनशीलता नारी का स्वाभाविक धर्म है। उसका चित्त फूल जैसा कोमल है तो हृदय प्रेम का रंगमंच है। उसका प्रेम जल पर लिखा लेख है तो विश्वास रेत पर बने पद-चिह्न। दुर्भेध नारी हृदय में विश्व-प्रहेलिका का रहस्य बीज है।

मूलतः नारी ही नारी की शत्रु होती है। तुलसी इसका समर्थन करते हुए कहते हैं, *'मोह न नारि नारी के रूपा।'* (मानस 7/116/1) दूसरी ओर, पुरुष का आनन्द लेते हुए नारी कहती है—

भुज लता फँसा कर नर तरु से। झूले-सी झोंके खाती हूँ।

—प्रसाद (कामायनी : लज्जा सर्ग)

तीसरी ओर कहीं निगाहें, कहीं इशारे नारी की प्रकृति है। भर्तृहरि इसका समर्थ करते हुए कहते हैं—

जल्पन्ति सार्द्धमन्येन पश्यन्त्यन्यं सविभ्रमाः।
हृदये चिन्तयन्त्यन्यं प्रियः को नाम योषिताम्॥

(शृंगार शतक 89)

अर्थात् यह ज्ञात नहीं हो पाता कि स्त्रियों का प्रियतम कौन है ? वे बातचीत तो किसी दूसरे से करती हैं, हावभाव से देखती हैं किसी और को और मन में सोचती हैं किसी और के बारे में।

अनुरक्त होकर नारी अमृत तुल्य हो जाती है और विरक्त होने पर विष बन जाती है। वह उत्साहित भी शीघ्र होती है तो उतने ही अधिक परिमाण में निराशावादिनी भी होती है। प्रबोध चन्द्रोदय (1/27) के अनुसार नारी, 'मोहित करती है, मदयुक्त बनाती है, उपहास और भर्त्सना भी करती है। प्रमुदित करती है तो दुःख भी देती है। ससुराल उसका धार्मिक निकेतन है तो पीहर का पक्ष लेना नारी मन का नैसर्गिक न्याय है।'

असमिया कवयित्री नलिनीबाला देवी के शब्दों में, 'तुम वही शरत्कालीन अमृतमयी ज्योत्स्ना हो, जो विषाद की घन-घटाओं को दूर करती है। नर-हृदय के पुण्य स्पर्श मात्र से दरिद्र की कुटिया शांति-निकेतन बन जाती है।'

'तुम्हारे हाथ स्वार्थमयी पृथ्वी की कलुषकालिमा पोंछ देते हैं। प्रेम के दीप जलाकर कर्तव्य की तपस्या से तुम संसार-पथ में गरिमा का वितरण करती हो।'

'तुम आदि मानव की प्रिया हो। तुम सम्पूर्ण जगत् की माता हो। संजीवनी अमृत पिलाकर तुम रूप देती हो। तुम प्रेरणा की अनुभूति को मधुर मातृत्व में डालकर अपने प्राण न्यौछावर कर जाति को जीवित रखती हो।'

नारी ही मानवता की धुरी है। मानवीय मूल्यों की संवाहक है। मानवता की गरिमा और लावण्य भी है। धरती का पुण्य उसकी सुषमा में व्यक्त है तो सृष्टि का पुण्य नारी में है। अतः प्रसाद जी कामना करते हैं—

नारी! तुम केवल श्रद्धा हो। विश्वास रजत नग पग तल में।
पीयूष स्रोत-सी बहा करो। जीवन के सुन्दर समतल में।

(कामायनी : लज्जा सर्ग)

(257) नारी तू सबला है

संकेत बिंदु—(1) सूक्ति का भावार्थ (2) नारी शक्तिशालिनी (3) विभिन्न विद्वानों के विचार (4) नारी की वीरता (5) उपसंहार।

सूक्ति में 'सबल' का स्त्रीलिंग 'सबला' इसलिए बनाया है, ताकि नारी के लिए बहुप्रचलित शब्द 'अबला' का वह विलोमार्थी बन सके, अन्यथा हिन्दी में सबला शब्द का प्रयोग होता ही नहीं। वस्तुतः अबला का अर्थ है—जिसमें कोई बल या शक्ति न हो। यह नहीं है, अपितु अबला का अर्थ है—अल्प बल वाली। 'नञ्' का प्रयोग अल्पार्थ में भी होता है। इसका भाव इतना ही है कि नारी में पुरुष की अपेक्षा कुछ कम बल होता है, पर नारी में शक्ति होती ही नहीं, यह 'अबला' शब्द से ध्वनित नहीं होता।

वैसे बलवान् का कोशगत अर्थ है—जिसमें अत्यधिक शक्ति हो तथा जो पुष्ट हो। महाभारत के उद्योग पर्व (34/75) में महर्षि वेदव्यास ने पाँच प्रकार के बल बताए हैं—(1) बाहुबल, (2) मैत्री का मिलना, (3) धन लाभ, (4) पितामह से प्राप्त 'अभिजात' (उच्च कुल) तथा (5) बुद्धिबल। उन्होंने बाहुबल को निकृष्ट और बुद्धि-बल को सर्वश्रेष्ठ बल माना है। मैथिलीशरण गुप्त ने भारत-भारती में कहा है—*'खिंच जाए जिस पर मन स्वयं सच्चा वही बलवान् है।'* चाणक्य का मानना है कि 'रूप-यौवन माधुर्यं स्त्रीणां बलमुत्तमम्।' स्त्रियों की सुन्दरता, तारुण्य और मधुरता उनका आत्मबल है।

नारी शक्तिहीन नहीं, अपितु शक्ति-शालिनी है। इसके सम्बन्ध में अनेक उद्धरण मिलते हैं। वेदव्यास जी ने 'शुश्रूषा तु बलं स्त्रीणाम्' कहकर सेवा को ही स्त्री का बल बताया है। रामकुमार वर्मा नारी की शक्ति उसकी तपस्या मानते हैं। जयशंकर प्रसाद ने कामायनी में नारी का सबलत्व *'नारी माया ममता का बल, वह शक्तिमयी छाया शीतल'* में माना है। किसी विद्वान् ने 'रोदनं स्त्रीणां बलम्' कहकर रोने को ही स्त्री का बल स्वीकार किया है।

हजारीप्रसाद द्विवेदी 'बाणभट्ट की आत्म-कथा' में कहते हैं, 'जहाँ कहीं दुःख-सुख की लाख-लाख धाराओं में अपने को दलित द्राक्षा के समान निचोड़कर दूसरे को तृप्त करने की भावना प्रबल है, वही 'नारी तत्त्व' है या शास्त्रीय भाषा में कहना हो तो 'शक्ति-तत्त्व' है।'

नारी ही व्यक्ति को जनती है। वह घर, कुटुम्ब, जाति और देश को बनाती है। एक शब्द में कहें तो दुनिया स्त्री पर टिकी है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा, *'तुम विश्व की पालनी-शक्ति की धारिका हो, शक्तिमय माधुरी के रूप में।'* इसलिए नारी सबला है। ईरान के शहंशाह का कथन है—

सात सलाम उस नारी को, जो माँ है युवराज की।
बादशाह उससे डरते हैं, क्योंकि सत्ता उसकी गोद में है।।

पंचतंत्र में विष्णु शर्मा भी मानते हैं, 'मेधावी तथा समर-सूर पुरुष भी स्त्री के समीप परम कायर हो जाते हैं।' भर्तृहरि कहते हैं, 'वे भला अबला कैसे हैं जिनकी चंचल पुतलियों के कटाक्ष से इन्द्रादि भी हार मानते हैं। कारण, भौंहें फेरने की कुशलता के कारण खिंचे हुए नेत्रों से कटाक्ष करना, स्नेहपूर्ण बातें करना, शरमा कर हँसना, केलि करते हुए मन्द-मन्द चलना, झट से रुक जाना और झट चल पड़ना, नारी के अलंकार भी है और शस्त्र भी।' लिन उतांग का कहना है 'चीन में मान्यता है कि जब नारी की भृकुटी तनती है तो दूज का चन्द्रमा भी डर के मारे टेढ़ा हो जाता है।' कालिदास 'मालविकाग्निमित्रम्' में कहते हैं, 'निसर्ग निपुणाः स्त्रियः' अर्थात् स्त्रियाँ स्वभाव से चतुर होती हैं। 'प्रबोध चन्द्रोदय' में श्रीकृष्ण मिश्र इसका समर्थन करते हैं, 'नारी मोहित करती है, मदयुक्त बनाती है, उपहास करती है, भर्त्सना करती है, प्रमुदित करती है, दुःख देती है। ये स्त्रियाँ पुरुषों के दयामय हृदयों में प्रवेश कर क्या नहीं करती हैं?' कल्हण तो नारी की चुनौती से पराजित हो कहते हैं, 'निसर्ग तरलां नारीं को नियंत्रयितुं क्षमः।' (राज-तरंगिणी) अर्थात् निसर्ग-तरल नारी को नियन्त्रित करने में कौन समर्थ है?

नारी की वीरता का समर्थन प्रसाद जी 'कंकाल' उपन्यास में करते हैं, 'उसमें एक धारा है, गति है, पत्थरों की भी उपेक्षा करके कतराकर वह चली जाती है। अपनी संधि खोज ही लेती है और सब उसके लिए पथ छोड़ देते हैं, सब झुकते हैं, सब लोहा मानते हैं।'

नारी की वाणी की तेजस्विता पर लक्ष्मीबाई केलकर लिखती हैं—'स्त्री का शारीरिक सामर्थ्य भले ही कम हो, उसकी वाणी में असीम सामर्थ्य है। योग्य स्थान पर प्रभावशाली ढंग से उसका उपयोग कर वह समाज को योग्य दिशा दे सकती है।'

शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय कहते हैं, 'यथार्थ प्यार करने में स्त्रियों की शक्ति और साहस पुरुष से कहीं अधिक है। पुरुष जहाँ भय-विह्वल हो जाता है, स्त्रियाँ वहाँ स्पष्ट उच्चस्वर से घोषित करने में द्विविधा नहीं करतीं।'

नारी को देखकर पुरुष का मन उसके हाथ से निकल जाता है, वह उसमें आसक्त हो जाता है। विश्वामित्र-मेनका, सूर्य-कुन्ती, शीरीं-फरहाद, सोहनी-महीवाल इसके

चिर-परिचत उदाहरण हैं। इसलिए प्रसिद्ध कवि जानकीवल्लभ शास्त्री ने उसकी अजेयता पर गर्व करते हुए कहा— *'नारी पौरुष की दुर्बलता, युग-युग की हारी हुई विजय।'* इतना ही नहीं डॉ. रामकुमार वर्मा तो एक पग आगे रखते हुए कहते हैं, 'यदि नारी वर्तमान के साथ भविष्य को भी अपने हाथ में ले-ले तो वह अपनी शक्ति से बिजली की तड़प को भी लज्जित कर सकती है।'

रोना भी स्त्री का बल है। प्रसाद जी कहते हैं, इसीलिए 'नारी के अश्रु अपनी एक-एक बूँद में एक बाढ़ लिए रहता है।' विश्वकवि रवीन्द्र कहते हैं—'हे नारी! तूने अपने अथाह अश्रुओं से संसार के हृदय को उसी प्रकार घेर रखा है, जिस प्रकार समुद्र ने पृथ्वी को।'

जातक में नारी को सर्वशक्तिमती मानते हुए लिखा है :

बलं चन्दो बलं सुरियो बलं समण ब्राह्मणा।
बलं वेता समुदस्य बलाति बलं इत्थिया॥

अर्थात् चन्द्रमा बलवान् है, सूर्य बलवान् है, श्रमण और ब्राह्मण बलवान् हैं, समुद्र की लहरें बलबती हैं, परन्तु सबसे अधिक बलवती स्त्रियाँ ही हैं। रणभूमि में बलप्रदर्शित करने में भी भारत की नारी सदा अग्रणी रही है। लक्ष्मीबाई, दुर्गावती, चेन्नमा, इन्दिरा गाँधी इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

(258) नारी का आभूषण सौंदर्य नहीं, उसके सौम्य गुण हैं

संकेत बिंदु—(1) सौंदर्य के रूप (2) अलंकार और सौंदर्य नारी-जीवन की सफलता (3) नारी का व्यापक रूप (4) महापुरुषों की दृष्टि में नारी (5) उपसंहार।

सौन्दर्य ईश्वर के ऐश्वर्य का रूप है। सौन्दर्य परम सत्य है, परम सत्य की अभिन्न विभूति है। सौन्दर्य स्वयं में एक दिव्य शक्ति है। अत: सौन्दर्य की सत्ता सर्वव्यापी है।

इस सत्य को नारी अंगराग के लेप से; स्वर्ण, रत्न, रजत आदि के आभूषणों से परिवर्धित करती है। क्रीम, पाउडर, लिपस्टिक आदि कृत्रिम साधनों-प्रसाधनों से अधिक अलंकृत करती है। सौन्दर्य नारी की लोकप्रियता में चार चाँद लगाता है। जैसे कि सीता जी विवाह मंडप की ओर जा रही हैं। उनके शरीर पर आभूषण सुशोभित हो रहे हैं, *'भूषण सकल सुदेह सुहाए। अंगरुचि सखिन्ह बनाए।'* इतना ही नहीं, वे वन में भी पुष्पों से अलंकरण करती हैं, रूप को निखारती हैं।

सौन्दर्यमयी सजी नारी पुरुष के मन को आकर्षित करती है, मोहती है। जब सुन्दरता चलती है, तो देखने वाली आँखें, सुनने वाले कान और अनुभव करने वाले हृदय साथ-साथ चलते हैं। दर्शक मदमत्त हो जाते हैं। काल भी एक बार ठहर जाता है।

आज का विश्व मिस यूनिवर्स, मिसवर्ल्ड, मॉडल ऑफ दी वर्ल्ड के नाम से नारी-सौन्दर्य की प्रतियोगिता कराता है। द वर्ल्ड गोल्ड काउंसिल शो, द जेम एण्ड ज्वैलरी एक्पोर्ट प्रमोशन काउंसिल शो, द टिफैनीज शो केस, द गोल्ड मास्टर्स प्रेजेण्टेशन के भव्य आयोजनों द्वारा नारी की छवि को और ग्लैमरस बना रहा है। इनके अतिरिक्त डिजायनरों की पोशाकों के लिए प्रदर्शन और तमाम छोटे-मोटे आयोजन वर्ष-भर चलते रहते हैं। सुन्दरता की होड़ और दौड़ में भारत की नारी भी कम नहीं। सर्वश्री रीता फारिया, ऐश्वर्या राय, सुष्मिता सेन, डायना हेडेन तथा मुक्ता मुखी विश्व-सौन्दर्य प्रतियोगिता में विजयी भारतीय सौन्दर्य की प्रतीक हैं।

परन्तु क्या सचमुच अलंकार और सौन्दर्य ही नारी-जीवन की सफलता है ? क्या रूप और केवल रूप (प्राकृतिक या कृत्रिम रूप) में ही नारी का नारीत्व है ? क्या इस शरीर का सुघड़पन और वर्ण, हाथी-सी चाल, सिंह-सी कटि, शशि-सा मुख, तोते-सी नाक, हिरण-सी आँखें, अनार के दानों से दाँत, सर्प की-सी बेणी, रति-सा रूप-लावण्य ही सुन्दर नारी के गुण हैं ? नहीं। जीवन के लिए रूप चाहे कितना भी वांछनीय क्यों न हो, इन प्रश्नों का उत्तर 'हाँ' में नहीं दिया जा सकता। नारी का सौन्दर्य वस्तुत: उसकी बाह्य सज्जा में नहीं, उसके गुणों के विकास में है, जो नारी को सचमुच नारी बना देते हैं और जो उसके जीवन के विकास में सहायक हो सकते हैं। मटर टेरेसा, मृणाल गोरे, सुषमा स्वराज्य, ममता बैनर्जी जैसी महिलाओं का सौम्य गुणों से युक्त सौन्दर्य इसका प्रतिनिधित्व करते हैं। 'रघुवंश' काव्य में अज पत्नी इन्दुमती की मृत्यु पर विलाप करते हुए कालिदास कहते हैं—

गृहिणी सचिव: सखी मिथ: प्रिय शिष्या ललिते कला विथौ।

नारी का जीवन-विकास जिन गुणों से होता है, इसे समझने से पहले यह जान लेना आवश्यक है कि आखिर नारी का जींवन और कर्म-क्षेत्र क्या हैं ? यदि नारी का कार्य पुरुष की कामुक दृष्टि को उत्तेजित करना और उसकी वासनापूर्ति मात्र हो तो हम कह सकते हैं कि उसे अपने शारीरिक-सौन्दर्य को बढ़ाने में दिन-रात एक कर देना चाहिए और यदि आज की रमणी अपने केश-विन्यास तथा शृंगार आदि में लगी रहती है तो इसके लिए उसे दोष नहीं दिया जा सकता, किन्तु नारी का महत्त्व केवल रमणीत्व के कारण तो नहीं है। वह उससे बहुत अधिक महत् है, व्यापक है और उदार है। 'रामायण' में श्री रामचन्द्र भी पत्नी सीता के सम्बन्ध में कहते हैं—

'मेरी पत्नी विचार के समय मंत्री, काम-काज के समय दासी, धर्म-कार्य में पत्नी, सहिष्णुता में पृथ्वी, स्नेह करते हुए माता, विलास के समय रम्भा और खेल-कूद के समय मित्र की तरह है।'

जहाँ इतने महान् और व्यापक जीवन की कल्पना हो, वहाँ केवल आभूषणों से नारी नहीं सजती। वह सजती है, अपने चारित्रिक गुणों से, अपने मन की निर्मलता से, स्वभाव की पवित्रता से, लज्जा और विनय से, वाणी की मधुरता और अहंभाव के आत्यन्तिक क्षय से। उसमें चाहिए पृथ्वी की-सी सहिष्णुता, समुद्र की-सी गम्भीरता, हिम की-सी शीतलता,

पुष्पों की-सी कोमलता और नम्रता, गंगा की-सी पवित्रता, मधु की-सी मधुरता, गौ की-सी साधुता, हिमालय की-सी उच्चता तथा आकाश की-सी विशालता।

नैपोलियन का विचार है कि 'सौन्दर्यवती नारी नयनाभिराम होती है, बुद्धिमती स्त्री हृदय को प्रसन्न करती है। एक अनमोल रत्न है, तो दूसरी रत्न-राशि।' काउले मानते हैं कि सौम्य गुण युक्त स्त्री आनन्द देने वाली है। उसका मन सर्वश्रेष्ठ ज्ञान की पुस्तक है। शेक्सपीयर की मान्यता है कि 'सौन्दर्य स्त्रियों को प्राय: अभिमानी बनाता है, सद्‌गुण उनको अति प्रशंसनीय बनाता है और विनय से वह देवतुल्य हो जाती है।'

वह सेवा को अपना अधिकार समझती है। महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शब्दों में, 'जब यह गृहकार्य में लीन होती है तो उसके शरीर से ऐसी मधुर रागिनी निकलती है, जैसी छोटे-छोटे पत्थरों के साथ पर्वत-स्रोत के क्रीडा करने से निकलती है।' आचार्य चतुरसेन शास्त्री की मान्यता है, 'त्याग उसका स्वभाव है। प्रदान उसका धर्म है। सहनशीलता उसका व्रत है और प्रेम उसका जीवन।' इन्हीं सद्‌गुणों के कारण विश्व उसके वात्सल्यमय आँचल में स्थान पाता है।

भगवती सीता, द्रौपदी, कृष्णमयी राधा, वीरांगना लक्ष्मीबाई, कूटनीतिज्ञा इन्दिरा गाँधी, कला पुजारिन नरगिस, मधुबाला और मीना कुमारी, महाकवयित्री मीरा और महादेवी, भारतकोकिला सरोजिनी नायडू, स्वर-साधिका लता मंगेशकर और आशा भोंसले की कीर्ति एवं विश्वव्यापी सुगन्धित-सुवासित गरिमा का कारण आभूषण नहीं, शारीरिक सौन्दर्य नहीं, रूप वैभव नहीं, अपितु कला के प्रति उनकी साधना है, समर्पण है। यही उनके सौम्य गुण हैं।

हरमाज क शब्दा म, 'सौम्य गुणों से युक्त नारी ईश्वर की उत्कृष्ट कारीगिरी, देवताओं की वास्तविक शोभा, पृथ्वी का अपूर्व चमत्कार तथा संसार का एकमात्र आश्चर्य है।' अत: नारी को अपना जीवन गौरवपूर्ण बनाने के लिए सद्‌गुणों को अपनाने की आवश्यकता है।

(259) नारी शिक्षा का महत्त्व

संकेत बिंदु—(1) शाश्वत और अपरिहार्य (2) श्रेष्ठ पत्नी के लक्षण (3) नारी का मातृत्व रूप (4) अशिक्षिता नारी का रूप (5) उपसंहार।

मानवीय सद्‌गुणों के पूर्ण विकास, परिवार तथा समाज के सुधार, बच्चों के चरित्र-निर्माण एवं देश के उत्थान के लिए नारी-शिक्षा का महत्त्व शाश्वत है, अपरिहार्य है, अनिवार्य है। दूसरे, एक पुरुष की शिक्षा का अर्थ केवल एक व्यक्ति की शिक्षा है, जबकि एक नारी की शिक्षा का अर्थ सम्पूर्ण परिवार की शिक्षा है। अत: पारिवारिक सुख-शान्ति के लिए तथा पूर्ण परिवार को सुशिक्षित बनाने के लिए नारी की शिक्षा महत्त्वपूर्ण है।

नारी स्नेह और सौजन्य की देवी है। वह पशु तुल्य व्यक्ति को मनुष्य बनाती है। मधुर

वाणी से जीवन को अमृतमय बनाती है। उसके नेत्र में आनन्द का दर्शन होता है। वह संतप्त हृदय के लिए शीतल छाया है। उसके हास्य में निराशा हरने की अपूर्व शक्ति है।

नारी-जीवन मुख्यत: पत्नी और माता, दो रूपों में विभक्त है। शिक्षिता पत्नी परिवार के लिए वरदान है। स्नेह, सुख, शान्ति और श्री की वर्द्धक है। समन्वय, सामंजस्य और समझौते की साक्षात् प्रतिमा है। शास्त्रों में श्रेष्ठ पत्नी के छह लक्षण बताए गए हैं—

कार्येषु मन्त्री, करणेषु दासी, भोज्येषु माता, रमणेषु रम्भा।
धर्मानुकूला क्षमया धरित्री, भार्या च षाड्गुण्यवतीह दुर्लभा॥

'कार्येषु मंत्री' अर्थात् काम-काज में मंत्री के समान सलाह देने वाली। मंत्री रूप में सलाह वही दे सकती है, जिसमें विवेक हो, बुद्धि का विकास हो। बुद्धि विकसित होती है शिक्षार्जन से। अशिक्षित पत्नी जीवन, जगत् या व्यवसाय की समस्याओं में क्या सलाह देगी ? वह तो विपत्ति आने पर और भी संकट को निमंत्रण देगी।

'करणेषु दासी' अर्थात् सेवादि में दासी के समान कार्य करने वाली। 'सेवा' करने के लिए सेवा के महत्त्व का ज्ञान तथा उसकी सीमा और विधि की जानकारी चाहिए। इसके अनन्तर चाहिए सेवा में निष्ठापूर्वक संलग्न होने की आकांक्षा। शिक्षा के अभाव में नारी में सेवा का अर्थ जानने की क्षमता कहाँ से आएगी ?

'भोज्येषु माता' अर्थात् माता के समान स्वादिष्ट, स्वास्थ्यवर्द्धक भोजन कराने वाली। शिक्षित नारी ही पति के स्वास्थ्यानुकूल भोजन की महत्ता को समझ सकती है। वह मधुमेह के रोगी परिवारिक सदस्य से प्रसाद के नाम पर लड्डू खाने का आग्रह नहीं करेगी, रक्तचाप के रोगी पति को अधिक नमकीन खाद्य पदार्थों के सेवन के लिए विवश नहीं करेगी। समय पर, रुचिकर और मौसम के अनुकूल गरम-गरम भोजन देगी।

'रमणेषु रम्भा' का अर्थ है शयन के समय अप्सरा के समान सुख देने वाली। रमण-क्रीडा शिक्षा का अंग है। अपढ़, अशिक्षित, अज्ञानी नारी शिक्षा के अभाव में 'सेक्स बम' बनकर सम्भोग सुख तो दे सकती है, किन्तु कलात्मक आनन्द शिक्षित नारी ही प्रदान कर सकती है।

धर्म के अनुकूल काम करने वाली अर्थात् 'धर्मानुकूला'। धर्म और अधर्म को समझने के लिए ज्ञान चाहिए। ज्ञान का आधार है शिक्षा। अत: पत्नी रूप में नारी-शिक्षा का अत्यन्त महत्त्व है। पत्नी-धर्म के पालन से रत्ना के रामबोला मानस के तुलसी बने और विद्योत्तमा के कालिदास संस्कृत वाङ्मय की विभूति बने।

'क्षमया धरित्री' अर्थात् क्षमादि गुण धारण करने में पृथ्वी के समान स्थिर रहने वाली। कारण, गलती करना मानव का स्वाभाविक धर्म है। उस गलती पर क्रोध प्रकट करना, कलह उत्पन्न करता है। कलह परिवार का नाश है। 'क्षमा' आती है 'बुद्धि' से। बुद्धि की जननी है शिक्षा।

इस प्रकार पत्नी रूप में नारी-शिक्षा का महत्त्व आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है, ताकि वह सुन्दर, श्रेष्ठ, विकासशील परिवार की संरचना में योग दे सके।

नारी-जीवन का दूसरा रूप है माता का। मातृरूप में नारी का दायित्व गुरुतर है, महान् है। कारण, माता की गोद बच्चे की पाठशाला है। मनुष्य वही बनता है जो उसकी माता उसे बनाना चाहती है। अभिमन्यु ने माँ के गर्भ में ही चक्रव्यूह तोड़ने की शिक्षा प्राप्त की थी। शिवाजी को 'शिवा' बनाने में माता जीजाबाई का हाथ था। यदि माता शिक्षित न होगी, तो देश की संतानों का कल्याण नहीं हो सकता। कोई भी राष्ट्र अपने नौनिहालों को सुशिक्षित माँ की शिक्षा से वंचित रखकर उन्नति के स्वप्न नहीं देख सकता।

'शिशु-शुश्रूषा' मातृत्व की दीर्घ तपस्या है। तप कार्य के प्रति समर्पित ध्यानस्थ समाधि है। शिशु के तन-मन को स्वस्थ रखकर विकास-पथ पर अग्रसर करना माँ की तपस्या है। तप का ज्ञान प्रकाश का प्रदाता है। शिशु के शारीरिक एवं मानसिक विकास के ज्ञान की शिक्षा के अभाव में मातृत्व का तप निष्फल है, दिग्भ्रान्त है। स्वस्थ, सुन्दर और ज्ञानवान् शिशु शिक्षित नारी ही प्रदान कर सकती है।

अशिक्षिता नारी स्वभावतः दुर्बल होती है, परम्पराओं से ग्रस्त रहती है, जादू, टोना-टोटके में विश्वास रखती है, भूत-प्रेत की उपासिका होती है। प्रगतिशील पग उठाने में असमर्थ रहती है। कुरीति और कुसंस्कारों की लक्ष्मण-रेखा पार करते हुए हिचकती है, झिझकती है। इसलिए निरक्षर नारी का जीवन अंधकार की कारा है। पुत्री रूप में वह माता-पिता के लिए बोझ समझी जाती है। पत्नी रूप में दासी से अधिक उसका कोई मूल्य नहीं। पुत्र बड़ा होने पर वृद्धा माता को अपने सिर पर बोझ समझते हैं। नारी शिक्षिता होगी, तो उसमें आत्मविश्वास जागृत होगा। वह कु-परम्पराओं, कुरीतियों और कुसंस्कारों की लक्ष्मण-रेखा पार करेगी। जादू, टोना, टोटके की बजाए वैज्ञानिक सत्य को ग्रहण करेगी।

शिक्षा नारी में जीवन की परिस्थितियों का सामना करने की योग्यता प्रदान करती है। उसे श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा देती है। शिक्षिता नारी अपने बच्चों, परिवार, कुल, समाज तथा राष्ट्र में संस्कार और सुरुचि जागृत करेगी। श्रेष्ठतर चरित्र का निर्माण करेगी। सुशिक्षिता नारी नौकरी कर गृहस्थी की आय बढ़ाएगी। अध्यापिका बनकर राष्ट्र को शिक्षित करेगी। परिचारिका (नर्स) बनकर रोगियों और पीड़ितों की वेदना हरेगी। लिपिक बनकर कार्यालय-संचालन में सहयोग देगी। विधिवेत्ता बनकर समाज को न्याय प्रदान करेगी। नेत्री बनकर देश को कुशल नेतृत्व प्रदान करेगी। अतः नारी के लिए पूर्णतः सुशिक्षिता होना परमावश्यक है।

(260) राष्ट्र-निर्माण में नारी का योगदान

संकेत बिंदु—(1) शीर्षक का भावार्थ (2) विश्व निर्माण में नारियों का योगदान (3) नारी के साहसपूर्ण कार्य (4) विभिन्न संगठनों में नारी (5) उपसंहार।

प्रत्येक देशवासी के लिए उसका राष्ट्र ईश्वर का स्वरूप है। राष्ट्र-निर्माण का अर्थ , ईश्वरीय कार्य करना। इस ईश्वरीय कार्य को करने में जहाँ पुरुषों ने अपना जीवन-

न्यौछावर कर दिया, वहाँ नारियाँ भी इस कार्य में पीछे नहीं रहीं। राष्ट्र-निर्माण के प्रारम्भ से आज तक पुरुष का साथ देकर, उसकी जीवन-यात्रा सफल बनाकर, उसके अभिशापों को स्वयं झेलकर और वरदानों से राष्ट्रीय जीवन में अक्षय शक्ति भर कर नारी ने जो योगदान दिया है, वह उसकी अमर कीर्ति का परिचायक है।

पुरुष को आत्मज प्रदान कर नारी ने 'जाया' नाम को सार्थक करते हुए राष्ट्र को शिशु-पुष्पों से सुवासित किया। बालकों को राष्ट्र के भावी सुयोग्य नागरिक तथा बालिकाओं को दक्ष गृहणियाँ बनने की शिक्षा-दीक्षा देकर उन्हें राष्ट्र-निर्माण का आधार स्तम्भ बनाया। अध्यापिका बन उन्होंने शिक्षा दी, परिचारिका और चिकित्सक बन घायलों और रोगियों को स्नेह प्रदान किया। धर्म की उपासिका बन उसने समाज को अनैतिकता के विष से सावधान किया। सामाजिक कार्यों को प्रगति दी। विधायिका और सांसद बन राष्ट्र-निर्माण की योजनाएँ प्रस्तुत कीं। प्रधानमंत्री बन कर न केवल राष्ट्र-निर्माण ही किया, अपितु राष्ट्र के भाल को विश्व में उन्नत किया।

राष्ट्र-निर्माण ही क्यों, विश्व-निर्माण की कीर्तिस्तम्भ नारियाँ आज भी राष्ट्र-निर्माण की प्रेरणा दे रही हैं। विश्व को सन्तति-निरोध का नया विचार देने वाली मार्गरेट सेंगर, महिला मताधिकार के लिए सर्वप्रथम लड़ने वाली इमिलाइन पैकहर्स्ट, नवीन बाल-शिक्षण-पद्धति की प्रणेता मेरिया मांटेसरी, वर्ल्ड चीफ गाइड बेडन पावेल, नेत्रहीनों की ज्योति हेलन-केलर, करुणा और स्नेह की देवी मदर टेरेसा राष्ट्र-निर्माण कार्यों में ही संलग्न रही हैं।

अपने-अपने राष्ट्रों के निर्माण में विश्व प्रसिद्ध महिला प्रधानमंत्रियों का कार्य उल्लेखनीय है। इस दृष्टि से भारत की भूतपूर्व प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी, श्रीलंका की भूतपूर्व प्रधानमंत्री सिरीमावो बंडारनायके, वर्तमान राष्ट्रपति चन्द्रिका कुमारतुंगे, इजराइल की भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती गोल्डामायर और ग्रेट ब्रिटेन की पूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती मार्गरेट थैचर का नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा।

इतना ही नहीं जोखिम भरे, साहसपूर्ण और अद्‌भुत कारनामे करके अपने राष्ट्र के भाल को उन्नत करने में भी नारी पीछे नहीं रही। श्रीमती वेलेन्टिना निकोलायेवा तैरेस्कोवा प्रथम महिला अंतरिक्ष यात्री थी। उन्होंने 'वोस्तोक 6' अंतरिक्षयान में बहत्तर घंटे, इकतालीस मिनिट अंतरिक्ष में बिताए और पृथ्वी की अड़तालीस बार परिक्रमा की। इसी प्रकार जुंको तबाई नामक जापानी महिला ने 16 मई, 1975 को माउंट एवरेस्ट पर विजय प्राप्त की। सु-श्री विचेन्द्री पाल भी एवरेस्ट पर चढ़ने वाली प्रथम भारतीय महिला हैं। श्रीमती मिली जीन किंग ने विश्व टैनिस प्रतियोगिता अनेक बार जीत कर अमरीका का नाम उज्ज्वल किया। सन् 1953 में संयुक्त राष्ट्रसंघ महासभा की अध्यक्षा श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित थीं। इस कूटनीतिज्ञा नारी ने विश्व महासभा की अध्यक्षता कर भारत के भाल को चमकाया है।

नारी ने हर क्षेत्र में पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर राष्ट्रोत्थान में सहयोग दिया है। शिक्षा-क्षेत्र में महिलाओं का योगदान अनिर्वचनीय है। न केवल अध्यापिका बन उसने भारत को शिक्षित किया, अपितु डॉ. माधुरी शाह जैसी विदुषी महिला विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की अध्यक्षा रही हैं। राजनीति के क्षेत्र में जहाँ श्रीमती इंदिरा गाँधी भारत की प्रधानमंत्री रहीं हैं, वहाँ महिला विधायकों, सांसदों और मंत्रियों की संख्या भी पर्याप्त दिखाई देती है। मुख्यमंत्री रहीं सुचेता कृपलानी, जयललिता, मायादेवी, सुषमा स्वराज्य, राबड़ी देवी, राजेन्द्र कौर भट्टल, शीला दीक्षित के नाम राष्ट्र-निर्माण में अमर रहेंगे। न्याय के क्षेत्र में नारी का योगदान कम नहीं रहा। महिला वकील तो भारत के हर न्यायालय में मिल जाएंगी। उन्होंने न्यायाधीशों के पद को भी सुशोभित किया है। इस दृष्टि से केरल हाईकोर्ट की प्रथम महिला न्यायाधीश श्रीमती अन्नाचेंडी और दिल्ली उच्च न्यायालय की न्यायाधीश न्यायमूर्ति श्रीमती लीला सेठ का नाम स्मरणीय रहेगा।

प्रथम महिला वायु-सुरक्षा अधिकारी प्रेम माथुर, प्रथम महिला छाताधारी सैनिक गीता घोष, पहली वायुयान पायलेट दूबी बैनर्जी, अत्याधुनिक वायुयानों की कमाण्डर सौदामिनी देशमुख, प्रथम महिला ट्रेन ड्राईवर सुरेखा जाधव, डीजल इंजन की प्रथम ड्राईवर मुमताज काठावाला का नाम वाहन-चालकों में अमर रहेगा।

पहली महिला आई.पी.एस. (पुलिस) अधिकारी किरणबेदी ने अपने दो वर्ष के कार्यकाल में जो जेल सुधार किए, उसके लिए उन्हें 'मैगसेसे पुरस्कार' से सम्मानित किया गया है।

महिलाओं द्वारा राष्ट्र-निर्माण का एक विशिष्ट क्षेत्र है—चिकित्सा। इस क्षेत्र के परिचर्या (नर्सिंग) विभाग में एकमात्र महिलाओं का साम्राज्य है। पीड़ित, कष्ट भोगते, कराहते, चीखते-चिल्लाते मानव के कष्ट को नारी का स्नेह और माधुर्य ही हर सकता है। यह कार्य पुरुष के लिए दुष्कर है। भारत की प्रथम महिला डॉ. प्रेमा मुखर्जी और हृदयरोग विशेषज्ञा डॉ. पद्मावती तथा दीन-दुखियों की सेविका मटर टेरेसा अपनी राष्ट्र सेवा के कारण कभी नहीं भुलाई जा सकेंगी।

इन सब सेवाओं और राष्ट्र-निर्माण में योगदान से ऊपर है नारी का त्याग और राष्ट्र की बलिवेदी पर आत्माहुति के लिए प्रेरणा देने की अद्भुत शक्ति। राजपूतनियों ने वीर सपूत पैदा किए और उन्हें देश और धर्म की खातिर जान पर खेलने को शिक्षा दी। ***'सोलह बरस तक क्षत्री जिएँ, आगे जीने को धिक्कार'*** का वीर पाठ पढ़ाने वाली नारियाँ ही थीं। माता जीजाबाई ने शिवाजी को हिन्दू-पद-पादशाही का संस्थापक बनाया। लक्ष्मीबाई से लेकर कस्तूरबा गाँधी तक स्वातंत्र्य-संग्राम में नारी-बलिदानियों की लम्बी शृंखला है। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई तो ***'मनुज नहीं अवतारी थी,'*** जिसने देश की स्वतन्त्रता के लिए अपना अंग-अंग कटवा दिया। इसी प्रकार वीरांगना दुर्गावती और चेन्नमा को कौन भूल सकता है।

साहित्य राष्ट्र की उन्नति का मापदण्ड है। प्रांतीय भाषाएँ हों या विदेशी आंग्ल भाषा

या राष्ट्र-भाषा हिन्दी, सभी में महिलाओं ने साहित्य-सर्जन कर राष्ट्र की आत्मा को प्रकट किया। साहित्य को समाज का दर्पण बनाकर जन-जागरण को झकझोरा। सुभद्राकुमारी चौहान और महादेवी वर्मा की कविताएँ पढ़ते-पढ़ते मन नहीं भरता।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि आदि काल से राष्ट्र के निर्माण में नारी का योगदान काल और परिस्थिति के अनुकूल रहा है। उसने राष्ट्रों को आत्मांश प्रदान कर जगती रचाई, तो सुयोग्य संस्कार देकर राष्ट्र को श्रेष्ठ नागरिक प्रदान किये। गृहिणी के रूप में घर का निर्माण किया तो हाथ में तलवार लेकर राष्ट्र की रक्षा के लिए निकल पड़ी। नृत्य-संगीत से दिल बहलाव किया, तो सेवा की मूर्ति बन मानव की पीड़ा का हरण किया। शिक्षक बन राष्ट्र को श्रेष्ठ शिष्य प्रदान किए तो प्रधानमंत्री बन राष्ट्र की भाग्य-विधाता बनी। इस प्रकार राष्ट्र-निर्माण में नारी का योगदान अनिर्वचनीय है, असीमित है।

(261) भारतीय नारी

संकेत बिंदु—(1) मातृत्व की गरिमा से मंडित (2) सुसंस्कृत और जीवन मूल्यों से परिचित (3) गृह लक्ष्मी के उच्च सिंहासन पर आरूढ़ (4) नारी का सौंदर्य (5) उपसंहार।

भारतीय नारी मातृत्व की गरिमा से मंडित है। पत्नीत्व के सौभाग्य से ऐश्वर्यशालिनी है। धार्मिक अनुष्ठानों की सहधर्मिणी होने से धर्मपत्नी तथा अर्धांगिनी है। गृह की व्यवस्थापिका होने के कारण वह गृहलक्ष्मी है। सम्भोग-सुख के निमित्त पत्नी, प्रेयसी तथा रम्भा है। अर्थ के अर्जन में पुरुष की सहयोगिनी है।

भारतीय नारी जननी पहले, कुछ और बाद में है, इसलिए वह सृष्टि की निर्मात्री है। पुरुष को पुत्र प्रदान कर उसको पितृऋण से मुक्त कराती है, पुत्री देकर संसार के अस्तित्व को स्थिरता प्रदान करती है, इस रूप में वह पूज्या है।

भारतीय नारी की विशेषता बताते हुए डॉ. विद्यानिवास मिश्र लिखते हैं—'भारतीय नारी में हजार रिश्तों के केन्द्र समाहित दीखते हैं। सहस्रदल कमल दीखती है वह। रस लेती रहती है अपने मैके से, वाणी की तरह; लक्ष्मी की तरह लहराती रहती है अपने ससुराल में। उसके सहस्रदल सहस्रशोभा-किरण बनकर सहस्र दिशाओं को प्रकाशित करते रहते हैं—किसी की ननद है, किसी की भाभी, किसी की जेठानी, किसी की देवरानी, किसी की दीदी, किसी की लाडली, किसी की पतोहू, किसी की अनुज-वधू, किसी की चाची, मौसी, बुआ। इन सहस्र सम्बन्धों से एक होकर वह पूर्ण प्रस्फुटित कमल बनती है, तभी उसके भीतर पराग भरता है। उस पराग के कण-कण में नई-सृष्टि के बीज पड़ते हैं। भारतीय नारी उन पराग कणों में मधुपावली बनकर बीजमंत्र पढ़ती है—सम्पूर्ण उत्सर्ग के, सम्पूर्ण प्यार के, सम्पूर्ण शक्ति के।'

महादेवी वर्मा के शब्दों में, 'भारत की सामान्य नारी शिक्षित न होकर भी संस्कृत है।

जीवन-मूल्यों से उसका परिचय अक्षरों द्वारा न होकर अनुभवों द्वारा हुआ है। अत: उसके संस्कार समय के साथ गहराते गए। परिणामत: आज भी नीति, धर्म, दर्शन, आचार, कर्तव्य आदि का एक सहज-बोध रखने के कारण भारत की अशिक्षित नारी, शिक्षित नारी की अपेक्षा धरती के अधिक निकट और जीवन-संग्राम में ठहरने के लिए अधिक समर्थ है।'

पत्नी रूप में भारतीय नारी ऐश्वर्यशालिनी है। इसलिए मनु ने कहा है, 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:।' नारी परामर्श देने में मंत्री, गृह-कार्य में दासी, धर्मकार्य में पत्नी, सहिष्णुता में पृथ्वी, स्नेह करते हुए माता, विलास में रम्भा तथा क्रीडा में मित्र का स्थान रखती है। प्रसाद जी ने नारी के इसी महत् रूप पर रीझ कर कहा है—

नारी! तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पगतल में।
पीयूष-स्रोत सी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में॥

गृह की व्यवस्थापिका होने के कारण. भारतीय नारी 'गृहलक्ष्मी' के उच्च सिंहासन पर आरूढ़ है, किन्तु आज भी अर्थ-स्वातन्त्र्य के अधिकार से वंचित होने के कारण वह दीन है, रंक है। उसे प्रत्येक पग-पग पर, प्रत्येक साँस के साथ पुरुष से सहायता की भिक्षा माँगते हुए चलना पड़ता है। उसका 'गृहलक्ष्मी' का गौरवपूर्ण पद, उसका सम्पूर्ण त्याग; सारा स्नेह और आत्म-समर्पण बन्दी के विवश कर्तव्य के समान जान पड़ते हैं। आर्थिक परतन्त्रता के कारण उसका सामाजिक व्यक्तित्व मूल्यहीन हो गया है; अरक्षित रह गया है। भारतीय मुस्लिम महिलाओं की दशा तो और भी शोचनीय है। मैथिलीशरण गुप्त का कथन आज सार्थक सिद्ध हो रहा है—

अबला जीवन, हाय! तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी॥

समय बदलने के साथ आज विशेषत: नगरों में अर्थोपार्जन, समाज-सेवा, धर्म तथा राजनीति में भारतीय नारी ने समाज में अपना गौरवपूर्ण स्थान प्रतिष्ठापित किया है। अर्थोपार्जन कर उसने अपने महत्त्व को दर्शाया और अहं की सन्तुष्टि की। नर्स और डॉक्टर बनकर उसने रोग-पीड़ित जनों को स्नेह दिया, सहानुभूति दी। अध्यापिका बनकर छात्रों के ज्ञान के नेत्र खोले, उनमें विवेक जागृत किया। वैज्ञानिक बनकर अन्धविश्वास के तिमिर को मिटाया। व्यापारी बन देश की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने में हाथ बँटाया। सैनिक बन राष्ट्र की रक्षा में योगदान दिया। लिपिक और टाइपिस्ट बन् कार्यालय-व्यवस्था का संचालन कियां। राजनीति में भाग लेकर राष्ट्र का मार्ग-दर्शन किया। जनसेवा, कार्य-क्षमता और दूरदर्शिता के कारण समाज में नारी का स्थान महत्त्वपूर्ण है। उसकी उपेक्षा से समाज-पंगु बन सकता है, प्रतिगामी हो सकता है।

भारतीय नारी का हृदय प्रेम का रंगमंच है। नारी का सौन्दर्य आकर्षण का केन्द्र-बिन्दु है। नारी के चंचल कटाक्ष पत्थर-हृदय को भी घायल कर देते हैं। उसकी भाव-भंगिमा पुरुष को पागल बना देती है। उसकी मधुर मुस्कान पुरुष को पराजित कर देती है। उसे

केवल नारी में सत्, चित्, आनन्द के दर्शन होते हैं। सत्य, शिव और सुन्दर की अनुभूति होती है।

दूसरी ओर अर्थोपार्जन और रति-सुख के लिए तथाकथित मॉडर्न (आधुनिक) भारतीय नारी ने उच्छृंखलता का चोला पहना। शारीरिक सौन्दर्य के नाम पर नग्नता को अपनाया जिससे नारी के सम्मान और पावित्र्य पर प्रश्न-चिह्न लग गया। कॉलिज में दुष्ट छात्रों की, कार्यालय में कामुक बॉस की कुदृष्टि का शिकार बनी। दिन-दहाड़े अपहरण, बलात्कार होने लगे। गृह मंत्रालय के अपराध पंजीकरण ब्यूरो ने यह सत्य उद्घाटित किया कि भारत में हर 47 मिनिट में एक महिला बलात्कार का शिकार होती है और हर 44 मिनिट में औसतन एक महिला का अपहरण होता है। भारतीय नारी का चरित्र पतित हुआ, शालीनता नष्ट हुई।

भारतीय नारी के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए महादेवी जी लिखती है, 'आदिम काल से आज तक विकास-पथ पर पुरुष का साथ देकर, उसकी यात्रा को सरल बनाकर, उसके अभिशापों को झेलकर और अपने वरदानों से जीवन में अक्षय शक्ति भरकर मानव ने जिस व्यक्तित्व-चेतना और हृदय का विकास किया है, उसी का पर्याय नारी है।'

भारतीय नारी समाज की आधार-शिला है। नारी से समाज का धर्म, सभ्यता, संस्कृति, परम्पराएँ और वंश टिके हैं। समाज का सौन्दर्य, समृद्धि और सौष्ठव उसी के कारण स्थिर है। इसलिए भारतीय समाज में नारी का स्थान अत्युच्च और श्रद्धान्वित है, पावन है और है सर्वमहान्।

(262) भारतीय नारी की सामाजिक स्थिति

संकेत बिंदु—(1) सामाजिक दृष्टि से उच्च पद (2) जीवन के विकास की प्रतीक (3) गृहस्वामिनी रूप (4) घर से बाहर नारी (5) उपसंहार।

भारतीय नारी वैदिक काल से सामाजिक दृष्टि से परम उच्च पद पर प्रतिष्ठित है। पंचकन्या रूप में प्रातः स्मरणीया है। समाज उसके वात्सल्यमय आंचल में स्थान पाता है, इसलिए माता के नाते पूज्या है। निःस्वार्थ समाज-सेवा की सुधा बाँटती 'देवी' है। त्याग के बल पर समाज की 'सम्राज्ञी' है। सत्य-आनन्द की स्रोतस्विनी के नाते वह समाज की 'मोहिनी' है।

भारतीय नारी सदा सामाजिक संस्था बनकर दीप्त रही है। सहस्र दल कमल दीखती है वह। रस लेती रहती है अपने मायके से वाणी की तरह और लक्ष्मी की तरह लहराती रहती है अपने ससुराल में। किसी की ननद है, किसी की भाभी, किसी की जेठानी, किसी की देवरानी, किसी की चाची, मौसी, दीदी, बुआ। इन सहस्र सम्बन्धों में एक होकर वह पूर्ण प्रस्फुटित कमल बनती है। तभी उसके भीतर पराग भरता है।

भारतीय नारी एक ओर प्राकृतिक सृजन शक्तियों के उदार मानवीकरण के नाते जीवन

के विकास की प्रतीक बनी। दूसरी ओर, सामाजिक सदस्य के रूप में सर्वाधिकार प्राप्त प्रतिष्ठित पद पर आसीन हुई। अदिति मानव-मुक्तिदात्री मानी गई। सरस्वती ज्ञान का, इडा मेधा का, पृथ्वी मातृशक्ति का प्रतीक बनीं। ब्रह्मवादिनी मैत्रेयी का तत्त्व मंत्र आज भी समाज का प्रकाश स्तम्भ है, 'असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतंगमय।' गार्गी, सुत्रमा, घोषा, अपाला, लोपा मुद्रा, विश्ववारा, श्रद्धा (कामायनी) अम्मृण ऋषि की कन्या वाक् मत्र-द्रष्टा प्रतिष्ठित हुईं। महासरस्वती, महालक्ष्मी, महा-काली में विविध शक्तियों का सामंजस्य हुआ।

साक्षात् यमराज से अपने पति को छुड़ाने वाली सावित्री, पतिव्रता रूप में प्रतिष्ठित हुई तो शंकराचार्य से शास्त्रार्थ में पराजित मंडन मिश्र की पत्नी (जो दोनों के शास्त्रार्थ में मध्यस्थ थी) देवी भारती शृंगेरी और द्वारिका मठों में अध्यापक पद पर प्रतिष्ठित हुईं।

भारतीय नारी का दूसरा रूप है गृह-स्वामिनी का। पति में प्रभु की मूर्ति प्रतिष्ठित करके वह अपने सर्वस्व का समर्पण कर देती है और आत्मसमर्पण इतना पूर्ण, इतना गंभीर, इतना व्यवस्थित कि कोई परिस्थिति, कोई संकट, कोई विपद् उसको स्वात्मस्थिति से च्युत करने में समर्थ नहीं हुई। परिणामत: वह पति गृह की सम्राज्ञी बनी और सभी कार्यों की सहयोगिनी। धर्मकार्यों में सहधर्मिणी तथा पारिवारिक सम्पत्ति में सह अधिकारिणी बनी।

जब-जब समाज में 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता' के नारी-सम्मान को चुनौती मिली तो साध्वी पत्नी को अग्नि-परीक्षा देनी पड़ी, सभी भाइयों की भोग्या बनना पड़ा, द्यूत क्रीडा में धन सम्पत्ति के समान दाँव पर लगना पड़ा। संदेह मात्र से अग्नि-ज्वाला में झुलसी, देवताओं के मनोरंजन के लिए देवदासी बनीं और पुरुष के मनोरंजन के लिए गणिका। सीता और द्रौपदी पत्नी होने के कारण कष्ट सहने को बाध्य थीं तो राधा-पत्नी न होने के कारण। बौद्धकालीन नारी की स्थिति इतनी दयनीय थी कि भगवान् बुद्ध को नारियों के उद्धार के लिए 'भिक्षुणी' बनने की स्वीकृति देनी पड़ी।

मुगलकाल में भारतीय नारी हीनदशा को प्राप्त हुई। उसमें एक ओर नारी मात्र भोग्या थी तो दूसरी ओर, बाल-विवाह की विवशता और घर की चारदीवारी में सूर्य-दर्शन को तरसती नारी घूँघटी गुड़िया बन कर रह गई। विवश, भयाक्रांत, आहत नारी की मर्मव्यथा अकथनीय है।

आधुनिक युग में विशेषकर स्वतंत्रता के पश्चात् राजनीतिक परिस्थिति और वैधानिक दृष्टि से भारत की नारी अधिक अधिकार सम्पन्न हुई, समाज में प्रतिष्ठित हुई। आज वह केवल पत्नी, माता आदि सम्बन्धों के द्वारा ही अपना परिचय नहीं देती, अपितु अपने आपको राष्ट्र या समाज के उत्तरदायी नागरिक के रूप में प्रस्तुत करती है।

अर्थ का अभाव, स्वावलम्बन की इच्छा तथा कुछ कर दिखाने की लालसा ने नारी को नगरों में घर से बाहर तो निकाला, किन्तु उसकी स्थिति शंका से देखी गई। दिन-भर श्रम से जुटी नारी को घर में विश्राम और शांति चाहिए। वह स्थिति संगत नहीं बैठती। नौकरी और सामाजिक क्षेत्र में उसकी शृंगार-प्रियता तथा स्वतंत्रता में उच्छृंखलता का भ्रम हो जाना

सहज है। परिणामतः परिवार सम्बन्धों में संघर्ष और कटुता उत्पन्न हुई। 'स्व' के भविष्य-चिंतन ने संतति के भविष्य पर प्रश्न-चिह्न लगा दिया। नारी के सृजन-स्वभाव, स्नेह और सहानुभूति से बनी गृहस्थी जल उठी।

आज भी नारी सामान्य समाज में विशेषतः ग्रामों में और शहर की झोपड़ियों में दूसरे दरजे की नागरिक है। शोषित है, पीड़ित है, अर्थ की दृष्टि से पुरुष की बंदनी है। पुरातन संस्कारों से बद्धमूल है। निरर्थक आस्थाओं तथा व्यर्थ की परम्पराओं से भ्रमित है। 'दहेज प्रथा' विरोधी कानूनों के रहते भी योग्य पति पाने से वंचित है। इसलिए आज भी 'कन्या' का जन्म विपत्ति का आरम्भ माना जाता है। इतना होने पर भी आज भारतीय नारी सभी क्षेत्रों में आगे बढ़ रही है।

महादेवी वर्मा के शब्दों में, 'भारत की सामान्य नारी शिक्षित न होकर भी संस्कृत है। जीवन-मूल्यों से उसका परिचय अक्षरों द्वारा न होकर अनुभवों द्वारा हुआ है। अतः उसका संस्कार समय के साथ गहरा होता गया। परिणामतः आज भी नीति, धर्म, दर्शन, आचार, कर्तव्य आदि का एक सहज-बोध रखने के कारण भारत की अशिक्षित नारी, शिक्षित नारी की अपेक्षा धरती के अधिक निकट और जीवन-संग्राम में ठहरने के लिए अधिक समर्थ है।' दूसरी ओर, 'युगों से पीड़ित रहने के कारण जो हीनता के संस्कार भारतीय नारी में बन गए थे, उन्हें आधुनिक भारतीय नारी ने अपने रक्त और प्रस्वेद से इस प्रकार धो दिया है कि आगामी युग की नारी को उस पर कोई रंग नहीं चढ़ाना पड़ेगा। अपने स्वरूप के लिए समाज से याचना करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।'

(263) आधुनिक भारतीय नारी

संकेत बिंदु—(1) क्रांति की अग्रदूती (2) अमृतमयी ज्योत्स्ना रूप (3) राजनीति और शिक्षा के क्षेत्र में (4) पारिवारिक, धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में नारी (5) उपसंहार।

आधुनिक भारतीय नारी क्रांति की अग्रदूती है। नारी और समाज की स्वतन्त्रता की ध्वज वाहिका है। स्वस्थ परिवार, समाज और राष्ट्र की निर्मात्री है। बौद्धिक विकास में पुरुष की प्रतिद्वंद्वी है तो सौन्दर्य-शृंगार में रंगीन खिलौने के समान आकर्षक है। पुरुष को उन्मत्त कर देने का गर्व उसमें है।

प्रेमचन्द जी आधुनिक नारी का चित्रण इन शब्दों में करते हैं, 'गाल कोमल, पर चपलता कूट-कूट कर भरी हुई। झिझक या संकोच का कहीं नाम नहीं। मेकअप में प्रवीण। बला की हाजिर जवाब। पुरुष मनोविज्ञान की अच्छी जानकार, आमोद-प्रमोद को जीवन का तत्त्व समझने वाली, लुभाने और रिझाने की कला में निपुण। जहाँ आत्मा का स्थान है, वहाँ प्रदर्शन, जहाँ हृदय का स्थान है वहाँ हाव-भाव, मनोद्गारों पर कठोर निग्रह।' (गोदान : पृष्ठ 60)

नारी विषाद की घन-घटाओं को दूर करने वाली अमृतमयी ज्योत्स्ना है। उसकी हँसी में जीवन-निर्झर का मधुर-संगीत है। उसका स्पर्श सुधा-रस की तरह उत्तेजक है। उसका हृदय प्रेम का रंगमंच है। उसकी मधुर वाणी से गुलाब के फूल झड़ते हैं। इसकी अर्धमुस्कान और अर्धकटाक्ष पुरुषत्व को चुनौती हैं। उसका अर्थ-स्वातंत्र्य पति-रूपी देवता को सच्चे अर्थों में सहधर्मिणी मनवाने की कला है।

इस शताब्दी पूर्व की भारतीय नारी अनपढ़ थी, अशिक्षिता थी। राजनीतिक अधिकारों से वह शून्य थी तथा आर्थिक स्वतन्त्रता का उसे अभाव था। उसकी सामाजिक स्थिति भी कुछ स्पृहणीय नहीं थी। उसका प्रथम लक्ष्य पत्नीत्व और अन्तिम लक्ष्य मातृत्व समझा जाता रहा। महर्षि दयानन्द के प्रयास से नारी के लिए शिक्षा के द्वार खुले और महात्मा गाँधी के आह्वान पर राजनीतिक क्रांति की अग्रदूत बनी। पाश्चात्य संस्कृति-सभ्यता के सम्पर्क से वह जीवन और जगत् के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष को चुनौती देने लगी। परिणामत: उसके चारों ओर फैली दुर्बलता नष्ट हो गई, उसकी भावुकता छिन्न-भिन्न हो गई और उसके स्त्रीत्व से शक्तिहीनता का लांछन दूर हो गया।

आज की नारी राजनीतिक क्षेत्र में कार्य करती है। विधान-सभा, राज्य-सभा तथा संसद् का चुनाव लड़ती है। विधायक तथा सांसद बनकर अपने क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करती है। मन्त्री बनकर राष्ट्र के निर्माण में योगदान करती है। मुख्यमन्त्री तथा प्रधानमन्त्री बन प्रांत और राष्ट्र के भाग्य की विधाता बनती है। राज्यपाल बन राज्य को संविधान के अनुसार चलाने का दायित्व निभाती है।

शिक्षा के क्षेत्र में आधुनिक नारी प्रगति-पथ पर है। वह उच्च, उच्चतर तथा उच्चतम शिक्षा प्राप्त कर सामाजिक जागृति का सन्देश देती है तो साथ ही आजीविका का साधन भी जुटाती है। आर्ट्स हो या हो या कामर्स, साइंस हो या टैक्नोलोजी, कानून हो या मैनेजमेंट, सभी क्षेत्रों में योग्यता का प्रदर्शन करती है। अध्यापिका बनकर आज नारी देश को शिक्षित कर रही है। व्यापार और उद्योगों का संचालन कर देश की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ कर रही है। वैज्ञानिक बन राष्ट्र-जीवन को अपनी खोजों से लाभान्वित कर रही है। वकील बन देशवासियों के कानूनी-हक की लड़ाई लड़ रही है। नागरिक-प्रहरी (पुलिस) बन नगरवासियों की रक्षा करती है तो सैनिक बन राष्ट्र की सुरक्षा में योग देती है।

आधुनिक नारी ने परिवार को सुव्यवस्था दी। खान-पान को स्वास्थ्यवर्धक बनाया। रहन-सहन को व्यक्तित्व के अनुकूल ढाला। संतान के पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा, उन्नति-प्रगति में विवेकपूर्ण योग दिया। अंध श्रद्धा और अन्ध-विश्वास को कम किया। वैज्ञानिक जीवन में आस्था दर्शायी। घर को स्वर्ग-सम बनाया। पति की जूती नहीं बनी, पति-पुत्रों पर बोझ नहीं बनी। अबला-जीवन को गले नहीं लगाया।

धर्म के क्षेत्र में पूर्ण आस्था और श्रद्धा से नत हुई। पर्व और त्यौहार को उसने उल्लास से मनाया। पूजा-अर्चना में विवेक की ज्योति जलाई। धर्म के आडम्बर और कर्मकाण्ड

की बेतुकी बातों को दूर से ही प्रणाम किया। धर्म की वास्तविकता से मोह किया और विशालता में जीवन की कृतार्थता समझी।

सामाजिक-क्षेत्र में उसने अपना वर्चस्व प्रकट किया। दुश्चरित्र तथा अत्याचारी पति से तलाक तथा जीवन-निर्वाह के लिए भत्ता-प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त किया। पिता और पति की सम्पत्ति में भागीदार बनी। दहेज में प्राप्त सामान पर अपना स्वामित्व स्थापित किया।

आधुनिक नारी की स्वतन्त्रता-उच्छृंखलता में बदलती है तो प्रकृति से विकृति की ओर जाती है। वह अपनी प्रकृति को वस्त्रों के समान जीवन का बाह्य आच्छादन-मात्र बनाना चाहती है, जिसे इच्छा और आवश्यकतानुसार जब चाहे पहना और उतारा जा सके।

'आधुनिक नारी में स्त्री सुलभ विनम्रता व लज्जा का भाव तिरोहित होता जा रहा है और उसके स्थान पर पुरुषों से होड़ लेने का पुरुषोचित आक्रामक भाव बल पकड़ रहा है। नारी काफी हद तक जीत गई, लेकिन अपने दुर्लभ नारीत्व की कीमत चुकाकर। उसके सारे प्रयास और चिंतन के केन्द्र में पुरुष ही प्रतिष्ठित हो गया। वह जिससे मुक्ति चाहती थी, उसी के आकर्षण की परिधि में बंध गई।' —सुनीता श्रीवास्तव (राष्ट्रीय सहारा)

इसी अहं के कारण अपनी महत्त्वाकांक्षाओं तथा अस्तित्व के लिए अपने संघर्ष में भावनात्मक रूप में आधुनिक नारी अकेली पड़ती जा रही है। परिणामतः सामाजिक और व्यक्तिगत परेशानियों को सही परिप्रेक्ष्य में देखने-समझने की स्थिति में न हो पाने के कारण वह निरन्तर मानसिक तनाव झेलती है।

आधुनिक भारतीय नारी (विशेषतः अंग्रेजी शिक्षा से दीक्षित महानगरों में रहने वाली नारी) आज एक ऐसे चौराहे पर खड़ी है जहाँ एक ओर पश्चिमी जीवन-शैली, उन्मुक्त यौन संबंध एवं स्वच्छंदता की चकाचौंध है तो दूसरी ओर भारतीय नारी का पातिव्रत्य और पूज्या वाला आदर्श रूप है, जो सादगी, समर्पण और सीमाओं में रहने का पक्षधर है। पश्चिम के सांस्कृतिक प्रदूषण और भारतीय मर्यादित जीवन-मूल्यों के इस संक्रमण-काल में आधुनिक नारी क्या दिशा लेगी, इसका उत्तर 21वीं सदी की नारी ही देगी।

(264) आधुनिक नारी की समस्याएँ

संकेत बिंदु—(1) फैशन परस्ती और असफल वैवाहिक जीवन (2) दहेज की समस्या (3) अर्थ-स्वातंत्र्य (4) शिक्षा, अनुशासन, कानून का गिरता स्तर (5) उपसंहार।

आधुनिक नारी की पहली समस्या फैशन परसती है। कुछ अलग दीखने, आकर्षक व्यक्तित्व की बढ़ती चाह ने आधुनिक नारी को फैशन की ओर प्रेरित किया। टेलीविजन, सिनेमा, रंगीन पत्रिकाएँ देख-देखकर वह फैशन की दासी बन गई है। वह केश-विन्यास, वस्त्र-परिधान तथा एड़ी से चोटी तक एक-रंगीय पहनावा, वक्ष के उभार, आँखों की

बनावट आदि प्रतिदिन बदलते फैशनों को ओढ़ लेना चाहती है। उसके लिए वह तड़पती है, उसके बिना उसका मन कुंठित होता है, उसमें आत्महीनता आती है। इसके लिए समय और धन का दुरुपयोग मन की अशान्ति का कारण बनता है, पारिवारिक एकता को छिन्न-भिन्न करता है। फैशन परस्ती की समस्या कमोवेश सभी भारतीय नारियों की समस्या है।

आधुनिक नारी की दूसरी समस्या है—असफल वैवाहिक जीवन। भारतीय नारी को सच्चा और अच्छा जीवन-साथी नहीं मिल पाता। अच्छा जीवन-साथी मिल भी जाए तो जातिवाद, बिरादरीवाद, मूल्यवाद (दहेज) की दीवार उन्हें मिलने नहीं देती। जीवन-साथी को समझने, परखने का अवसर भारतीय समाज देता ही कहाँ है? विवशतावश दो शरीरों का मिलन ही विवाह है। मजबूरी के मिलन का फल समझौता है। जहाँ समझौता नहीं हो पाता, वहाँ गृह-कलह होता है। आए दिन झगड़े होते हैं। रोना-पीटना रहता है।

तीसरी समस्या है—दहेज की। दहेज के दानव ने भारतीय नारी को ग्रस रखा है। माता-पिता दहेज की माँग पूरा करते-करते कर्जदार होते जाते हैं। न देने पर ससुराल में कन्या से अमानुषिक व्यवहार होता है। कष्ट और यातना सहती नव-विवाहिता अग्निकुंड में स्वाहा कर दी जाती है या फिर घर की छत से गिराकर यमलोक पहुँचा दी जाती है।

नारी का एक वर्ग प्रेममय जीवन में एक पुरुष से बंधना नहीं चाहता। जीवन की उन्मुक्तता के साथ वह अपनी मर्जी से जिन्दगी जीना चाहती है और विवाह-विहीन संतान सुख का आनन्द लेना चाहती है। समलैंगिकता में भी उसकी दिलचस्पी बढ़ी है, जो अन्ततः नारी के मनोरोग का कारण बनती है।

नारी की एक अन्य समस्या है—अर्थ-स्वातन्त्र्य की। आर्थिक परावलम्बन के कारण वह पुरुष की दासता स्वीकार करती है। इसी कारण उसे पुरुष के अत्याचार, अनाचार और अहं को सहन करना पड़ता है। उसकी हाँ में हाँ मिलानी पड़ती है। गलत, समाज-विरुद्ध, राष्ट्र-द्रोही कार्य में भी सम्मिलित होना पड़ता है। जानती है कि उसे दो वक्त की रोटी तो चाहिए ही। यही कारण है कि पति के असामयिक निधन से नारी का जीवन विषमय बन जाता है।

जहाँ नारी अर्थोपार्जन करती है, वहाँ स्वच्छन्दता ने उसे अपने जाल में फँसाया। नौकरी-प्राप्ति के छल-छद्म के जाल में उसका सतीत्व लुटा, रूप सौन्दर्य का पान हुआ। नौकरी मिल गई तो सहयोगियों तथा बाँस पर रौब डालने की प्रवृत्ति ने नारी को आकर्षक और सुन्दर बनने की प्रेरणा दी। मुक्त हास-परिहास उसके स्वभाव का अंग बन गए। बच्चों, पति-देवर, सास-ससुर की उपेक्षा होने लगी। स्वाभाविक प्रेम छू-मंतर होने लगा। पत्नी दबती है तो बुझी-बुझी रहती है और हावी होती है तो पुरुष का भगवान् ही रक्षक है। कार्य-शक्ति की भी सीमा है। नौकरी करने वाली नारी से घर के काम की अपेक्षा किसी सीमा तक ही की जा सकती है।

आज नारी उच्च, उच्चतर तथा उच्चतम शिक्षा प्राप्त कर सकती है। इस मार्ग में कहीं कोई रुकावट नहीं, व्यवधान नहीं। आज कॉलिज तथा विश्वविद्यालय का वातावरण

अध्ययन की प्रेरणा नहीं देता। चिन्तन और मनन की भावना जागृत नहीं करता। वह तो सिखाता है उच्छृंखलता, विलासिता और नशे की दासता। फलतः आज की नवयुवती पाश्चात्य नारी का अन्धानुकरण करती है। नशा उसकी प्यास है, सैक्स (काम) उसकी भूख है और विलासिता उसकी कामना है। इनकी प्राप्ति जीवन का चरम लक्ष्य है। वे माँ को जननी और पिता को पूज्य नहीं समझतीं। जीवन की भारतीय मान्यताएँ उसके लिए असह्य हैं। अत्याधुनिक घरों में, उच्च पदासीन नारी के लिए पति का मूल्य नौकर या मित्र से अधिक नहीं। जब तक पटी पट गई, नहीं तो अलग-अलग।

देश के गिरते अनुशासन और कानून की अवहेलना ने नारी की विषम स्थिति बना दी है। गृह मंत्रालय के अन्तर्गत काम कर रहे अपराध पंजीकरण ब्यूरो की रिपोर्ट में कहा गया है—हर 47 मिनिट में एक महिला बलात्कार का शिकार होती है जबकि हर 44 मिनिट में औसतन एक महिला का अपहरण होता है। छेड़खानी करना, अश्लील सिने गीत द्वारा टोंटिंग कसना तथा अपमानित करना, सीटी बजाकर उसको लज्जित करना, उसके आभूषण झपटना, बैग छीनना तो दैनन्दिन शोषण हैं ही।

आधुनिक नारी (विशेषतः नगरों में रहने वाली) संक्रमण के चौराहे पर खड़ी है, जहाँ पग-पग पर समस्याएँ मुँह बाए खड़ी हैं। कॉलेज और विश्वविद्यालयों के विषाक्त वातावरण में उच्च शिक्षा की समस्या है। उच्च-शिक्षा प्राप्त कर लेने पर नौकरी प्राप्ति की समस्या है। नौकरी मिलने पर बॉस को संतुष्ट रखने की समस्या है। दूसरी ओर नौकरी की ओर पग न बढ़ाए तो पति पर आश्रित रहने की समस्या है। अर्थाभाव में पारिवारिक प्रसन्नता की समस्या है। इससे भी बढ़कर समस्या है, अपने आपको फैशन और वासना की मृग-मरीचिका से बचाने की।

नारी-समस्याओं का हल है—आत्म-संयम। जीवन के हर क्षेत्र में अपनाया गया संयम उसके लिए उन्नति का मार्ग प्रशस्त करेगा। उसे देखने, परखने और समझने का दृष्टिकोण बदलना होगा। सौन्दर्य की परिभाषा शृंगार में नहीं, सौम्य गुणों में बदलनी होगी। उच्छृंखलता में आकर्षण नहीं, अपितु विवेकपूर्ण व्यवहार ही पति, परिवार और बॉस के त्रिकोण को संतुष्ट रखने की रामबाण औषधि अपनानी होगी।

(265) आर्थिक स्वतंत्रता और नारी

संकेत बिंदु—(1) अर्थ ही जीवनाधार (2) नारी, पुरुष पर आश्रित (3) विद्वानों के अनुसार नारी के गुण (4) नारी ने आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त की (5) उपसंहार।

आज आर्थिक स्वतन्त्रता के अभाव में नारी पूर्णतः परवश है, प्रेरणा-शून्य है, स्फूर्तिमयी स्वतन्त्रता से वंचित है। अपने सामाजिक व्यक्तित्व की रक्षा करने में असमर्थ है। अतः उसका जीवन अभिशाप-ग्रस्त है।

आज के भौतिकता-प्रधान युग में अर्थ ही जीवनाधार है। अर्थ के बिना उदर-पूर्ति

सम्भव नहीं और न अर्थ के बिना वस्त्रों से शरीर ढका जा सकता है। भूखा पेट नारी को पाप के लिए प्रेरित करता है। वह सम्बन्धियों के यहाँ दर-दर भटकती है, कभी-कभी पर-पुरुष से सम्बन्ध जोड़ती है या अपमानित होकर वासना के बाजार में अपने को बेचती है।

भारतीय समाज में नर और नारी के कर्तव्य विभाजित हैं। द्रव्योपार्जन नर का कर्तव्य है। उपार्जित धन से गृह-संचालन नारी का दायित्व है। अत: वह उपार्जित धन की न्यासी (ट्रस्टी) है, न कि अधिकारिणी। अधिकार के अभाव में वह धन का उपयोग अपनी सामान्य इच्छाओं की पूर्ति में भी नहीं कर पाती। जहाँ उसने पुरुष द्वारा उपार्जित धन पर अधिकार समझा, वहाँ घर में कलह, द्वन्द्व और उत्पीड़न उपस्थित हो जाते हैं। घर की सुख-शान्ति काफूर हो जाती है।

नर, नारी पर अत्याचार-अनाचार इसलिए करता है, क्योंकि नारी जीवन की सभी सुख-सुविधाओं के लिए पुरुष पर आश्रित है। वह उसे भोग-विलास की सामग्री तथा घर की बंधक दासी के अतिरिक्त कुछ नहीं समझता। नारी की स्थिति अन्य स्थावर सम्पत्ति से अधिक कुछ नहीं। पुरुष बात-बात में उसे झिड़केगा, फटकारेगा, क्रोध प्रकट करेगा, आँखें दिखाएगा, मारेगा, पीटेगा, शारीरिक यातना देगा, मानसिक कष्ट पहुँचाएगा और नारी, *'एक धरम एक ब्रत नेमा; करम, वचन, मन, पति पद प्रेमा'* का आदर्श प्रस्तुत करते हुए सब सहेगी। कारण, वह जानती है कि घर की लक्ष्मण-रेखा पार करते ही उस पर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ेगा। इसका मूल कारण अर्थ-परतन्त्रता ही है।

पुरुष ने नारी को प्रसन्न रखने के लिए उसे अनेक सुन्दर विशेषणों से अलंकृत किया। संतति की जन्मदात्री होने के कारण 'जननी' का पवित्र पद दिया। धर्म-कार्यों में उसका साथ अनिवार्य करके उसे 'सहधर्मिणी' का पद प्रदान किया। गृह की व्यवस्थापिका बनाकर 'गृहलक्ष्मी' बनाया। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता:' का सिद्धान्त-वाक्य बनाकर 'नारी तुम केवल श्रद्धा हो' का गीत गाया, किन्तु धन के क्षेत्र में उसे परतन्त्र ही रखा। धन-सम्पदा की चाबी देकर भी उसे तिजोरी को हाथ न लगाने की हिदायत कर दी। कारण, पुरुष भयभीत रहता है कि उस गृह-लक्ष्मी के हाथ लगते ही चंचल लक्ष्मी कहीं सच्चे अर्थों में गृह-लक्ष्मी न बन बैठे।

विद्वानों ने नारी के अलंकरण के लिए नवीन शब्द खोजे। उसे 'सहयात्री' की पदवी प्रदान की। 'सहयात्री' शब्द पर आपत्ति प्रकट करती हुई परम विदुषी और कवयित्री महादेवी जी कह उठीं, 'सहयात्री वे कहे जाते हैं, जो साथ चलते हैं, कोई अपने बोझ को सहयात्री कहकर अपना उपहास नहीं करा सकता। भारतीय पुरुष ने स्त्री को या तो सुख के साधन के रूप में पाया या भार रूप में, फलत: वह उसे सहयोगी का आदर न दे सका। उन दोनों का आदान-प्रदान सामाजिक प्राणियों के स्वेच्छा से स्वीकृत सहयोगी की गरिमा न पा सका, क्योंकि एक ओर नितान्त परवशता और दूसरी ओर स्वच्छन्द आत्म-निर्भरता थी।'

शास्त्रों में नारी के छह गुणों की चर्चा है—(1) कार्येषु मन्त्री (काम-काज में मन्त्री के समान सलाह देनी चाहिए), (2) करणेषु दासी (सेवादि में दासी के समान सेवा करने

वाली), (3) भोज्येषु माता (माता के समान सुस्वादु भोजन कराने वाली), (4) रमणेषु रम्भा (शयन के समय रम्भा के समान सुख देने वाली), (5) धर्मानुकूला (धर्म के अनुकूल), (6) क्षमया-धारित्री (क्षमादिगुण धारण करने में पृथ्वी के समान स्थिर रहने वाली), किन्तु कहीं यह नहीं लिखा देखा कि वह 'अर्थ-अधिकारिणी' भी है। कारण, अर्थ का अधिकार नारी के हाथ में आ जाए, तो वह नर की असंगत बातों को क्यों सहेगी? उसके अत्याचारों को क्यों स्वीकार करेगी?

नारी ने आर्थिक स्वतन्त्रता के द्वार खटखटाए। अर्थोपार्जन के लिए सम्भव साधनों की तलाश की। अपनी योग्यता का विकास किया। चेतना शक्ति को जागृत किया। कार्य के अनुरूप अपने को ढाला। वह शक्ति, साहस और सहिष्णुता की त्रिवेणी बनी। उसने घर की चार दीवारी को लाँघा। पुरुष के वासना लोलुप चक्षुओं का निडरता से सामना किया।

आर्थिक रूप से स्वतन्त्र नारी ने स्वाभिमानपूर्ण जीवन की ओर पग बढ़ाया। नारी पर होने वाले अत्याचार, पाशविक वृत्ति तथा कुवचनों पर प्रतिबन्ध लगा। पुरुष नारी को वास्तविक संगिनी समझने पर विवश हुआ। नारी सच्चे अर्थों में गृहलक्ष्मी बनी। दैनन्दिन जीवन में पुरुष को सलाह देने लगी। उसने पुरुष को स्वास्थ्यानुकूल पौष्टिक भोजन दिया। वासना में रमण का भरपूर आनन्द दिया तो वंश-वर्द्धन भी किया। संतान का पालन-पोषण तथा गृह-संचालन में आदर्श प्रस्तुत किया।

आर्थिक रूप से स्वतन्त्र नारी ने नर का सीमातीत दुर्व्यवहार पसन्द नहीं किया। उसने तलाक लेकर स्वतन्त्र, स्वाभिमानपूर्ण जीवन जिया। पति की अकाल-मृत्यु पर दर-दर की ठोकरें नहीं खाईं, घर-गृहस्थी की गाड़ी को डगमगाने नहीं दिया। वृद्धावस्था के दु:खद दिनों में पेंशन, ग्रेच्युटी, प्रॉविडेंट फंड, सुरक्षित निधि ने उसको पुत्रों के सामने गिड़गिड़ाने से बचाया। जीवन के निराशात्मक क्षणों और विवशतापूर्ण परिस्थितियों में भी गौरव-पूर्ण जीवन जीने के लिए मार्ग प्रशस्त किया।

जब मायावी संसार में माया अर्थात् अर्थ ही जीवनाधार हो, उसकी शक्ति अपरिमित हो, 'सर्वे गुणा: काञ्चनमाश्रयन्ति' के अनुसार संसार के सभी गुणों का वास कंचन अर्थात् अर्थ में हो, माया सारे पापों पर परदा डालती हो, भय-मुक्ति की कुंजी हो, जब जीवन में 'धनाद् धर्मस्तत: सुखम्' अर्थात् धन से धर्म होता है, उससे सुख की प्राप्ति होती हो, तब नारी की आर्थिक स्वतन्त्रता जीवन के पूर्ण विकास के लिए अनिवार्य है। इसी में परिवार, समाज, राष्ट्र तथा विश्व का मंगल निहित है।

(266) नारी और नौकरी

संकेत बिंदु—(1) अर्थ की कामना (2) पुरुषों को चुनौती (3) नौकरी जीविकार्जन की अनिवार्यता (4) नारी की नौकरी के दोष (5) उपसंहार।

नारी द्वारा नौकरी करने की इच्छा के मूल में अर्थ की कामना है, पुरुष के पौरुष के

प्रति चुनौती है, जगत् के संघर्षमय कार्यों में सहयोग की आकांक्षा है, 'अहं' के पोषण की अभिलाषा है, 'स्व' के विकास की चाह है।

नारी द्वारा नौकरी नारी-शिक्षा, चेतना तथा स्वातन्त्र्य का प्रकटीकरण है, अर्थ की दृष्टि से पुरुष-दासत्व की लौह-शृंखलाओं को तोड़ने का साहसिक प्रयास है।

नारी ने घर की लक्ष्मण-रेखा को लाँघकर, पारिवारिक जनों की सेवा को त्यागकर, अपने आत्मजों के पालन-पोषण के गुरुता-पूर्ण दायित्व से विमुख होकर नौकरी करना क्यों पसन्द किया? स्पष्ट है कि नारी-शिक्षा, नारी-चेतना और अर्थ-स्वातन्त्र्य की भावना ने नारी को नौकरी के लिए विवश किया है। कभी जीवन-निर्वाह की कठिन समस्या के कारण भी नारी को नौकरी करनी पड़ती है।

आज भारतीय महिलाएँ हर उस क्षेत्र में नौकरी कर रही हैं जो कल तक केवल पुरुषों के ही क्षेत्र माने जाते थे। बात चाहे खेल, शिक्षा, प्रशासन, कला, विज्ञान, अनुसंधान की हो या सामाजिक और राजनैतिक चेतना जगाने की। कुछ एक विशिष्ट समझे जाने वाले क्षेत्रों में तो महिलाएँ बखूबी नौकरी को अंजाम देने में पुरुषों से आगे निकल गई हैं। चाहे वह बस की कण्डेक्टरी हो या रेलगाड़ी की ड्राइवरी या हैलीकॉप्टर और यान चालन की, न्यायमूर्ति (जज) बन कर निर्णय लेने का दायित्व हो या प्रशासनिक सुधार का प्रश्न। थल-सेना, वायुसेना और नौ सेना में सैनिक दायित्व हो या वैज्ञानिक प्रौद्योगिकी संस्थाओं में टेकनोलोजी का विकास। नर्सिंग, चिकित्सा, ऑफिस कार्य हो या अध्यापन, जीवन के हर क्षेत्र में आज भारतीय नारी के लिए नौकरी के द्वार खुले हैं।

दूसरी ओर आर्थिक परावलम्बिता और परतन्त्रता ने नारी को गृह-स्वामिनी होकर भी व्यावहारिक जीवन में सर्वाधिक क्षुद्र और रंक बना दिया था। उसे प्रत्येक पग पर प्रत्येक साँस के साथ पुरुष से अर्थ की भिक्षा माँगते चलना पड़ता था। उसका सम्पूर्ण त्याग, स्नेह आत्म-समर्पण बंदी के विवश कर्तव्य बन गए थे। प्रेरणा, स्वाभिमान, अहं शून्य हो गए थे। जीवन अभिशाप बन गया था। इस वेदना ने नारी को नौकरी के लिए प्रेरणा दी, प्रोत्साहित किया। अर्थ-स्वातन्त्र्य के लिए नौकरी ही एकमात्र मंत्र था। नारी ने उस मंत्र को अंगीकार कर लिया और पति की जूती चाटने अथवा जूती बनने के विवशता के जीवन को त्याग दिया।

वर्तमान-युग में नारी के लिए नौकरी न फैशन है, न अर्थ-स्वातन्त्र्य की ललक, अपितु यह जीवन जीने की अर्थात् जीविकार्जन की अनिवार्यता है। प्रतिदिन बढ़ती महँगाई ने गृह के बजट को फेल कर दिया है और एकाकी पुरुष की आय से घर चलाने में असमर्थता उत्पन्न कर दी है, जिससे संतान के विकास-साधन उसकी पहुँच से दूर होने लगे। विवश होकर नारी को नौकरी करनी पड़ती है। अर्थोपार्जन में अपना सहयोग प्रदान करना पड़ रहा है।

नारी को नौकरी से अनेक अन्य लाभ भी हैं। नौकरी करने वाली युवतियों का विवाह के क्षेत्र में अधिक मूल्यांकन होता है। पद की पहुँच (एप्रोच) से उसके लिए जीवन के

कार्य सुगम हुए। उसे सम्बन्धियों, मित्रों को कृतार्थ करने का अवसर मिला। समाज में उसकी प्रतिष्ठा बढ़ी।

नौकरी नारी की आर्थिक स्वतन्त्रता का आधार है, उसके वैयक्तिक अहं की तुष्टि की पृष्ठभूमि है, प्रगति की प्रेरणा है तो पारिवारिक सम्बन्धों में तनाव, अधिक सुन्दर दिखने की इच्छा, उन्मुक्त हास-विलास, स्वच्छन्दता-उच्छृंखलता उसकी विवशता है।

नौकरी में नारी का शोषण भी होता है। बस में, कार्यालय में, सड़क पर, बाजार में हर जगह शोषण के साये में जीती है। कहीं कम वेतन देकर तो कहीं अधिक काम करवाकर या दफ्तर में बॉस की जायज-नाजायज माँगों द्वारा नारी का शोषण होता है।

पद-यात्रा, बस के धक्के, कार्यालय की मानसिकता से क्लांत नारी विश्राम चाहती है, स्वस्थ मनोरंजन चाहती है। घर का काम, सास-ससुर की सेवा, बच्चों का भाव-विकास तथा स्नेह की चाहना, पति द्वारा प्रेम की आकांक्षा उसे घृणित लगते हैं। इससे घर की सुख-शांति, समृद्धि तिरोहित हो जाती है। माता के उचित मार्ग-दर्शन, संस्कार और संरक्षण के अभाव में सन्तान पथ-भ्रष्ट हो जाती है, उनका विकास अवरुद्ध हो जाता है। पति-पत्नी में कलह रहने लगता है। घर अशांत हो जाता है। नौकर-नौकरानी रखकर घर के काम में हाथ बटाया जा सकता है, पर सन्तान को संस्कार तथा घर को गृहिणी नहीं दी जा सकती। ये नारी की नौकरी के कुछ दोष भी हैं।

अपने को सुन्दरतम रूप में प्रस्तुत करना नौकरी-सभ्यता की अनिवार्यता है। इसलिए नौकरी वाली स्त्री शृंगार करती हैं। साथियों, अधिकारियों से मधुर वचन बोलना, उन्मुक्त हास-परिहास से कार्यालय-वातावरण की माँग को पूरा करती है।

प्रकृति का प्रत्येक पदार्थ गुण-अवगुण से युक्त हैं। चावलों में कंकर देखकर चावल फेंके नहीं जाते। नारी की नौकरी को पारिवारिक शांति और संतान के सुसंस्कारों में बाधक मानकर अर्थ-समृद्धि, समाज-राष्ट्र तथा विश्व के हित-चिन्तन को रोकना नारी के विकास, चेतना और प्रकृति को अवरुद्ध करना, विवेक-शक्ति को कुंठित करना, उसके मनोबल को क्षीण करना न्याय-संगत न होगा।

(267) कामकाजी महिलाओं की समस्या

संकेत बिंदु—(1) कामकाजी महिला का क्षेत्र (2) कामकाजी महिलाओं की समस्याएँ (3) पारिवारिक और सामाजिक समस्या (4) कामकाजी महिलाओं का शोषण व स्थानान्तरण (5) उपसंहार।

कुशल अथवा अकुशल श्रम के द्वारा आजीविका अर्जन करने वाली नारी कामकाजी महिला है। बिना 'सर्विस' के परिवार को सहयोग देने वाली नारी कितना ही श्रम क्यों न करती हो, वह कामकाजी नहीं कहलाती, क्योंकि उसे श्रम का प्रतिदान नहीं मिलता। श्रम का प्रतिदान 'वेतन' अथवा 'पारिश्रमिक' प्राप्त करना कामकाजी महिला की पहचान है।

कामकाजी महिलाओं का क्षेत्र अत्यन्त विशाल है। सरकारी, अर्द्धसरकारी या निजी कार्यालयों में काम करने वाली, प्रशासनिक कार्यों में हाथ बटाने वाली, खेत-खलिहान, फैक्ट्रियों, कारखानों तथा मिल जैसे औद्योगिक संस्थाओं में काम करने वाली, पुलिस तथा सेना में कार्यरत महिलाएँ, न्याय सिंहासन को सुशोभित करने वाली स्त्रियाँ 'कामकाजी महिलाओं' की श्रेणी में आती हैं।

प्राचीन काल से घर-गृहस्थी का दायित्व नारी पर और धन का उपार्जन पुरुष पर रहा है। अर्द्ध नारीश्वर की पावन भावना इसी सत्य को उजागर करती है। समय बदला। नारी शिक्षा और बढ़ती महँगाई के कारण परिवार चलाने की समस्या ने नारी को घर के बाहर कमाई के क्षेत्र में धकेल दिया। विवशतावश इस क्षेत्र में आई नारी, अब इस क्षेत्र में गर्व का अनुभव करती है। 'सर्विस' द्वारा वह पुरुष के अहं और अर्थ-परतन्त्रता की लौह शृंखलाओं को तोड़ने के साहसिक प्रयास में रत है। साथ ही है उसमें 'अहं' के पोषण की चाह और 'स्व' के विकास की तीव्र भावना।

परिवार-पालन कामकाजी महिला की महती समस्या है। सफाई-व्यवस्था, नाश्ता-भोजन, बच्चों तथा परिवार का दायित्व, पति की प्रसन्नता आदि को निभा पाना क्या ऐसी नारी के लिए संभव है ? कोमल शरीर एक, और गृहस्थी के झंझट अनेक। महिला का शरीर, माँस पेशियों का कोमल ढाँचा है, कोई लौह मशीन नहीं। दुहरी थकान, क्लान्ति, सिर दर्द, 'मूड ऑफ', सब उसके लिए भी हैं।

कामकाजी महिला के परिवार में माता-पिता या सास-स्वसुर, ननद-देवर यदि हों और उनमें पारस्परिक विश्वास और सहयोग का भाव हो तो परिवार इन्द्रधनुष-सा सुन्दर बन जाता है। घरेलू काम-काज में कुछ सुविधा, विश्रान्ति का समय तथा जीवन-जीने का आनन्द मिल जाता है, परन्तु यही स्थिति पलटा खाती हो तो पति से पत्नी की शिकवे-शिकायतें, घर में काना-फूसी, षड्यंत्र तथा सम्पूर्ण दायित्व का बोझ कामकाजी महिला पर डाल दिया जाए तो उसका जीवन नरक-सम बन जाता है।

परिवार का एक अंग है—संतान। संतान के उज्ज्वल भविष्य के लिए कामकाजी महिला खप रही है, जीवन को होम कर रही है, परन्तु वह उपेक्षा भी अपनी संतान की करती है। कितना विरोधाभास है उसके जीवन में। बच्चे को नित्य प्रति अनिवार्य समय देने, उसके-स्कूली अध्ययन में भागीदार बनने, उनके दैनिन्दिन आचरण तथा चालचलन की निगरानी रखने तथा उत्तम संस्कार देने की असमर्थता से बच्चे उपेक्षित रह जाते हैं। फलत: उसमें उच्छृंखलता, उद्दंडता तथा कर्तव्य-विमुखता घर कर जाती है। इसमें भो यदि माता-पिता में परस्पर स्नेह संबंध न हों तो बच्चा अपराधबोध लेकर जीएगा। इसे कहते हैं—'विनायकं प्रकुर्वाणो रचयामास वानरम्', चले थे बनाने गणेश जी, बन गया बंदर। इस प्रकार कामकाजी महिला सन्तान के भविष्य से खिलवाड़ करती है।

परिवार बनाकर रहने वाला एक मनुष्य सामाजिक प्राणी है। परिवार में उसके समीपस्थ और थोड़े दूर के रिश्तेदार शामिल हैं। पति-पत्नी तथा माता-पिता के विवाहित भाई-बहनों

को इस सीमा में ले सकते हैं। दूर के रिश्तों में भाई तथा बहिनों, मौसी तथा बुआ से जुड़े परिवारों को ले सकते हैं। समाज में पड़ोसी-मित्र तथा संगी साथी हैं। पर्व-त्यौहार, जन्म-मरण, मंगलमय उत्सव तथा कष्ट-प्रद पीड़ा में एक-दूसरे के यहाँ आना-जाना, यही सामाजिकता है, पारिवारिकता है। जब पति-पत्नी, दोनों ही सर्विस में हों तो यह आना-जाना समयाभाव के कारण भारी पड़ जाता है। भारी पड़ने का अहसास आने-जाने में दीवार खड़ी करता है। सम्बन्ध शिथिल होते हैं। रिश्तेदारों की नाराजगी महँगी पड़ सकती है, इसीलिए कामकाजी महिला की प्रकारान्तर से यह भी एक अन्य समस्या है।

घर से दफ्तर जाने और दफ्तर से घर लौटने के लिए वाहन चाहिए। वाहन अर्थात् बस या लोकल ट्रेन। महानगरों की बसों में जिस प्रकार ठूँस-ठूँस कर सवारियाँ भरी जाती हैं, जेबें कटती हैं, नारी से छेड़-छाड़ होती है, अपमान होता है, अश्लील तथा श्लिष्ट (दो अर्थ वाले) शब्दों से स्वागत होता है तथा खड़े-खड़े यात्रा पूर्ण करनी पड़ती है, कामकाजी महिला की ये विवशताएँ हैं।

काम पर 'मेकअप' करके या सज-सँवर कर पहुँचना, यह ऑफिस या कार्यक्षेत्र की आवश्यकता है। महिला कर्मचारी इस दृष्टि से अधिक सचेत रहती है। रूपवती दिखने की यह चाह नारी की प्रकृति है। साथियों तथा अधिकारियों के साथ अर्ध-मुस्कान से मधुर-वचन बोलना, हास-परिहास करना आम बात है। इस सहजता में जब कामकाजी महिला अपने को खो देती है तो वह कहीं न कहीं, किसी न किसी से वासनात्मक संबंध बना बैठती है। दूसरी ओर, किसी ऑफीशियल उलझन में फँसने, पदोन्नति चाहने तथा विशेष-सुविधा प्राप्त करने के लिए कामकाजी महिला का आत्म-समर्पण भी उसकी विवशता है।

शरीर को तिल-तिल क्षीण करना कामकाजी महिला की अन्य समस्या है। शारीरिक सामर्थ्य से अधिक काम लेना शरीर-शोषण है। जिस नारी के भाग्य में मेज-कुर्सी नहीं, शारीरिक मजदूरी से ही जो आजीविका कमाती हैं, उनका शरीर क्षीण होता ही है। पुलिस और सेना की नौकरी भी कम शरीर तोड़क नहीं। 'वह तोड़ती पत्थर' में तो महाकवि निराला ने इसी ओर संकेत किया है। निराला का हृदय उसी दृश्य से द्रवित हो उठा था।

इस प्रकार कामकाजी महिलाओं की अनेक समस्याएं हैं। ये समस्याएँ, उनके लिए शाश्वत हैं, अनिवार्य हैं। जब उसने घर की लक्ष्मण-रेखा पार कर, दाम्पत्य-जीवन और संतान के भविष्य को दाँव पर लगाया है तो मन में घुटन क्यों? द्वन्द्वग्रस्तता क्यों? नौकरी करनी है तो नखरे कैसे? ओखली में सिर दिया है तो मूसली का डर क्यों? निराशा, हताशा, कुंठा समस्या को विकरालता प्रदान करेंगी। इन समस्याओं के होते हुए भी नारी में धैर्य हो और संघर्ष से दो हाथ करने का पूर्ण सामर्थ्य हो तो उक्त समस्याएं उससे हार जाएंगी।

(268) पारिवारिक जीवन

संकेत बिंदु—(1) पारिवारिक जीवन का अर्थ (2) नारी, पारिवारिक जीवन का आधार (3) परिवार में मर्यादाओं, कर्त्तव्यों और अनुशासन का महत्त्व (4) पारिवारिक संबंधों में ह्रास (5) उपसंहार।

एक घर में और विशेषत: एक कर्ता के अधीन या संरक्षण में रहने वाले लोगों का जीवन पारिवारिक जीवन है। परिवार मनुष्य की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रकृति द्वारा स्थापित महत्त्वपूर्ण संस्था है।

शतपथ ब्राह्मण की धारणा है कि मनुष्य जन्मत: तीन ऋणों का ऋणी होता है। ये ऋण हैं—पितृ-ऋण, ऋषि-ऋण तथा देव ऋण। पितृ ऋण का अर्थ है परिवार को सन्तानोत्पत्ति द्वारा आगे बढ़ाना। यह तभी सम्भव है जब मनुष्य पारिवारिक जीवन जीए।

पारिवारिक जीवन का मूल आधार बनी नारी। कारण 'न गृहं गृहमित्याहु: गृहिणी गृह मुच्यते।' (महाभारत, शांतिपर्व 144/6) अर्थात् गृह-गृह नहीं है, अपितु गृहिणी गृह होता है। साथ ही यह भी निर्देश दिए गए 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता' (मनुस्मृति 3/56) अर्थात् पारिवारिक जीवन में जब तक नारी का सम्मान रहेगा, वहाँ देवता निवास करेंगे अर्थात् सुख, शांति तथा समृद्धि की त्रिवेणी बहेगी।

परिणाम सुखद हुआ। नारी पुरुष के पौरुष, उत्साह और कर्म के भरोसे सुकुमार सौन्दर्य की प्रतिभा बनकर उसे रिझाने लगी और दु:खमय विषम स्थिति में संकटों का सहारा बनी। पुरुष अपने पौरुष से सम्पत्ति-निर्माण, उत्साह से प्रेरित होकर कर्म से पारिवारिक जीवन-यापन करने लगा।

परिवार-जीवन भारतीय समाज की आधार शिला बना। पिता, पुत्र और पुत्री बनकर ही व्यक्ति अपना अस्तित्व प्रकट कर पाया। उसका विशुद्ध निजीपन कुछ नहीं रहा। परिवार के भूत, वर्तमान और भविष्य, इन तीन आयामों में उसका अस्तित्व देखा जाने लगा। व्यक्ति का यश-अपयश परिवार के दृष्टिकोण से आंका जाने लगा।

जैनेन्द्र जी पारिवारिक जीवन सामरस्यता के बारे में लिखते हैं—'परिवार मर्यादाओं से बनता है। परस्पर कर्तव्य होते हैं, अनुशासन होता है और उस नियत परम्परा में कुछ जनों की इकाई एक हित के आसपास जुटकर व्यूह में चलती है। उस इकाई के प्रति हर सदस्य अपना आत्मदान करता है, इज्जत खानदान की होती है। हर एक उसमें लाभ लेता है और अपना त्याग देता है। (इतस्तत:, पृष्ठ 158)।

पाश्चात्य सभ्यता के दुष्प्रभाव के कारण व्यक्ति में 'अहम्' का भाव बढ़ गया। इस अहम् ने पारिवारिक जीवन को भी प्रभावित किया। माता-पिता पुराने जीवन के या दकियानूसी बन गए। छोटी-छोटी बातों पर भाई-भाई में, देवरानी-जेठानी में, सास-बहू में, ननद-भाभी में असन्तोष बढ़ने लगा। असन्तोष में गृह-कलह का रूप लिया। सामूहिक

परिवार नरक बनने लगे। नरक-कुण्ड से छुटकारे का एक उपाय था—संयुक्त परिवार का बिखराव।

अतः पारिवारिक जीवन एक पुरुष के परिवार में सीमित हो गया। पुरुष अपनी पत्नी और बच्चों में ही सुख का जीवन भोगने लगा। आनन्द का अनुभव करने लगा। सन्तुष्टि की सीमा समझने लगा।

पारिवारिक संबंधों को ह्रास का कारण डॉ. गोपाल जी मिश्र औद्योगीकरण तथा नगरीकरण को भी मानते हुए लिखते हैं—

'समाज में ज्यों-ज्यों औद्योगीकरण एवं नगरीकरण बढ़ता जा रहा है, त्यों-त्यों पारिवारिक सम्बन्ध भी प्रभावित होते जा रहे हैं। समाज के कुछ ऐसे तथ्य जैसे कि बेरोजगारी, सुविधाओं की न्यूनता, विभिन्न संस्कृतियों का प्रभाव आदि पारिवारिक मूल्यों को प्रभावित करते जा रहे हैं। तेजी से बदलते हुए मूल्य पारिवारिक संगठन एवं वातावरण को प्रभावित करते जा रहे हैं। इस प्रभाव का परिणाम पारिवारिक सम्बन्धों में ह्रास के रूप में दृष्टिगोचर हो रहा है। सम्बन्धों में स्थिरता घट रही है। परिवर्तनशीलता बढ़ रही है।'

दूसरी ओर परिवार के वरिष्ठ-सदस्य का कठोर-व्यवहार भी पारिवारिक जीवन को विषैला बना देता है। उसके व्यवहार से सदस्यों में आक्रोश, कुण्ठा, असहायता, कुसमायोजन, निर्दयता,आक्रामकता, असत्यवादिता आदि विकार पैदा होकर पारिवारिक जीवन को प्रभावित कर देते हैं।

असन्तुष्टि और सौन्दर्यप्रियता वर्तमान सभ्यता के छूत के रोग हैं, जिनकी चपेट में आज के परिवार जल रहे हैं, तड़प रहे हैं। कमाई से असंतुष्टि, पति के व्यवहार से असन्तुष्टि, काम-पूर्ति में असन्तुष्टि, अपने सुखी जीवन से भी असन्तुष्टि पारिवारिक असन्तोष का कारण है। उस पर सौन्दर्य-प्रियता का कोढ़ पारिवारिक जीवन को बदरंग बना देता है। उसे नख से सिख तक एक रंग का परिधान और आभूषण चाहिएँ। उसके शरीर को अलंकृत करने के लिए नये-नये फैशन चाहिएँ। मानो संसार का समस्त सौन्दर्य उसको ओढ़ लेना चाहिए। असम्भव को सम्भव बनाने के प्रयास में कलह का जन्म होता है। खर्च बढ़ता है, चादर से बाहर पैर पसारे जाते हैं। अधिक अर्थ-प्राप्ति के लिए भ्रष्टाचार का आश्रय लिया जाता है, भ्रष्टाचारी मानव कभी सुखी रहता ।

घर-घर में विद्यमान टेलीविजन ने आज नर-नारी और बच्चों में एक नई सभ्यता को जन्म दिया है। फैशनपरस्ती, गुण्डागर्दी, प्रेमालाप और बलपूर्वक प्रेमी-प्रेमिका-निर्माण, छुरेबाजी और अश्लील गाने जीवन को विकृत कर रहे हैं। विकृति के कारण पुत्र माता-पिता तथा गुरुजनों को श्रद्धा से नहीं देखता। बहिन, सहपाठिन या किसी भी समवयस्का को कामुकता की दृष्टि से देखता है। लड़ने-मरने को उद्यत रहता है। अद्यतन फैशन को अपनाना धर्म समझता है। परिणामतः आज का सीमित परिवार भी फूट, कलह और वेदना के कगार पर खड़ा सिसकियाँ भर रहा है।

इस इक्कीसवीं सदी के प्रवेश में पारिवारिक जीवन अत्यन्त संकुचित होता जा रहा है, लघुतर से लघुतम होता जा रहा है।

(269) परिवार में नारी की भूमिका

संकेत बिंदु—(1) पुत्री, पत्नी और माता के रूप में (2) परिवार में नारी के अनेक रूप (3) परिवार की स्वामिनी (4) नारी का मातृत्व रूप (5) उपसंहार।

परिवार में नारी की भूमिका विशेष रूप से पुत्री, पत्नी तथा माता के रूप में है। इन तीनों रूपों में भी परिवार में पत्नी का स्थान सर्वोपरि है। महादेवी वर्मा के शब्दों में 'आदिम काल से आज तक विकास-पथ पर पुरुष का साथ देकर, उसकी यात्रा को सरल बनाकर, उसके अभिशापों को स्वयं झेलकर और अपने वरदानों से जीवन में अक्षय शक्ति भर कर मानव ने जिस व्यक्तित्व, चेतना और हृदय का विकास किया है, उसी का पर्याय नारी है।' माता के रूप में वह ममतामयी बनकर संतान के लिए अखंड सुख-ऐश्वर्य की कामना करती है। पुत्री का महत्त्व तो स्वयमेव निर्धारित है, क्योंकि पत्नी और माता इसी के विकसित रूप हैं।

पत्नी परिवार का आधार है, उसका जीवन-प्राण है। पत्नी गृहस्थी का मूल है। गृहस्थी की आत्मा है। ऋग्वेद के अनुसार तो पत्नी ही घर-परिवार है। परिवार में पत्नी की महत्ता सिद्ध करते हुए महाभारत में लिखा है—'घर-घर नहीं, अपितु गृहिणी ही घर है। उसके बिना महल भी बीहड़ जंगल है।' दूसरी ओर, मानव भूतल पर जन्मतः ऋषि-ऋण, देव-ऋण एवं पितृ-ऋण का ऋणी है। पत्नी यज्ञ में पति के साथ रहकर देव-ऋण से तथा पुत्रोत्पन्न कर पितृ-ऋण से मुक्त करवाती है।

भारतीय नारी पारिवारिक रूप में इसलिए महत्त्व पाती है क्योंकि उसके अनेक रिश्ते हैं। डॉ. विद्यानिवास मिश्र के शब्दों में 'वह सास होती है, बहू होती है, बेटी होती है, बहन होती है, ननद होती है, भाभी होती है, जेठानी होती है, देवरानी होती है और न जाने क्या-क्या होती है। इन सबके साथ वह पत्नी भी होती है। इन सारे सम्बन्धों का जो शील के साथ निर्वाह कर पाती है, उसी का भारतीय परिवार में महत्त्व है।'

(नदी, नारी और संस्कृति, पृष्ठ 13)

वाल्मीकि रामायण में परिवार में नारी की भूमिका पर एक महत्त्वपूर्ण श्लोक है—

कार्येषु मन्त्री, करणेषु दासी, भोज्येषु माता, रमणेषु रम्भा।
धर्मानुकूला, क्षमया धरित्री, भार्या च षड्गुण्यवतीह दुर्लभा॥

काम-काज में मंत्री के समान सलाह देने वाली, सेवादि में दासी के समान कार्य करने वाली, माता के समान सुन्दर भोजन कराने वाली, शयन के समय रम्भा (अप्सरा) के समान आनन्द देने वाली और धर्म के अनुकूल तथा क्षमादि गुण धारण में पृथ्वी के समान स्थिर रहने वाली, ऐसे छह गुणों से युक्त पत्नी दुर्लभ होती है।

पत्नी परिवार की स्वामिनी है। परिवार की श्री-समृद्धि की धुरी है। वंश-वृद्धि की नींव है। मानव के कामातुर जीवन का पूर्ण-विराम है। परिवार की चहुँदिशि देख-भाल उसका दायित्व है। पतिपरायणता उसका कर्तव्य है।

पत्नी स्नेह और सौजन्य की देवी है, वह नर-पशु को मनुष्य बनाती है, मधुर वाणी

से पारिवारिक जीवन को अमृतमय बनाती है। उसके नेत्रों में पारिवारिक आनन्द के दर्शन होते हैं। वह संतप्त पारिवारिक-हृदय के लिए शीतल छाया है। उसके हास्य में परिवार में छाई निराशा को मिटाने की अपूर्व शक्ति है।

पृथ्वी की-सी सहिष्णुता, समुद्र की-सी गम्भीरता, हिम की-सी शीतलता, पुष्पों की-सी कोमलता-नम्रता, गंगा की-सी पवित्रता, वीणा की-सी मधुरता, गौ की-सी साधुता, हिमालत की-सी उच्चता तथा आकाश की-सी विशालता आदि सौम्य गुणों द्वारा माता ही पारिवारिकता, अखण्डता स्थिर रख, श्री-सम्पत्ति की वृद्धि करती है।

माता बच्चे को जन्म देकर परिवार को पितृ-ऋण से उऋण करती है। वह तन-मन-धन से एकाग्रचित्त, आत्मविस्मृत हो शैशव में आत्मज की सेवा-शुश्रुषा करती है। बाल्यकाल में संतान की शिक्षा-दीक्षा की पूर्ति के लिए सतत चिन्तित रहती है। पेट को काटकर भी संतान की ज्ञान-वृद्धि करना चाहती है। समय पर भोजन एवं स्वच्छ वस्त्रों का प्रबन्ध तथा पाठ्य-वातावरण उत्पन्न कर सन्तान को ज्ञानवान् बनाने में सहायक बनती है। यौवन की दहलीज पर आते ही संतान को गृहस्थ धर्म में प्रवेश करवाती है। विवाह का आयोजन कर स्वयं 'सास' की उपाधि से अलंकृत होती है। अब वह पुत्र-वधू को परिवार के संस्कार प्रदान करना अपना कर्तव्य समझती है।

पुत्री की परिवार में भूमिका कालान्तर में पत्नी और माँ की पृष्ठभूमि है। अतः पुत्री की भूमिका आदर्श पत्नी, कुशल गृहिणी तथा उदात्त मातृत्व के गुणों का शिक्षणकाल है। वह परिवार में रहकर दया, ममता, सेवा, धैर्य, सहानुभूति तथा विनय के सौम्य गुणों को सीखती है। शिक्षा-अर्जन कर ज्ञान का वर्द्धन करती है। बुद्धि का विकास करती है। जीवन और जगत् के लिए व्यावहारिक सिद्धांतों, मान्यताओं तथा भावनाओं का प्रयोग करती है।

पुत्री परिवार में रहकर माँ की भूमिका, पिता के व्यवहार, भाई-बहिनों के आचरण को खुली आँखों से देखती है। बुद्धि के अनुसार उसका विवेचन करती है। सत्-प्रणाली को गाँठ बाधती है, दुष्कर्मों की हानि से सचेत रहने की शिक्षा ग्रहण करती है।

नारी के बिना परिवार की कल्पना मृग-मरीचिका है। नारी के सौम्य गुणों के अभाव में परिवार की सुख-शांति असम्भव है। नारी के कर्तव्य-उपेक्षा में परिवार की क्षति है, ह्रास है। नारी के अमंगल में परिवार का विनाश है। नारी की पीड़ा में परिवार का ध्वंस है।

परिवार में नारी की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका को स्वीकारते हुए ही मनु जी ने कहा है—'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।' अतः नारी-सम्मान में ही परिवार कल्याण है।

(270) परिवार-नियोजन

> **संकेत बिंदु**—(1) परिवार नियोजन का अर्थ (2) जनसंख्या वृद्धि सबसे बड़ी समस्या (3) परिवार नियोजन का प्रचार (4) बढ़ती महँगाई के कारण (5) उपसंहार।

भारत में बढ़ती हुई जनसंख्या राष्ट्र की विषम समस्या है। राष्ट्र की समृद्धि के लिए

सरकार द्वारा किए गए श्रेष्ठ कार्यों में गतिरोध उत्पन्न होने का एकमात्र कारण जनसंख्या-वृद्धि है। इसलिए भारत-सरकार ने जन-कल्याण के लिए 'परिवार-नियोजन' का आह्वान किया है।

परिवार का अर्थ है—एक घर में विशेषत: एक कर्ता के अधीन या संरक्षण में रहने वाले लोग। नियोजन का अर्थ है, 'जकड़ना' (संस्कृत-हिन्दी कोष : आप्टे)। 'जकड़ना' से तात्पर्य है, विशेष प्रकार के नियमों, बंधनों आदि से इस प्रकार घेरना कि छुटकारा न पा सके। इस प्रकार परिवार-नियोजन का अर्थ हुआ कि परिवार को ऐसे नियमों तथा बंधनों में बाँधना जिसका वह पालन करने में विवश हो। शाब्दिक अर्थ से इस सामाजिक शब्द का इच्छित अर्थ संगत नहीं बैठता। परिवार-नियोजन का राजकीय दृष्टि से अर्थ है, 'गार्हस्थ्य जीवन के संबंध में की जाने वाली वह योजना जिससे लोग दो से अधिक संतान उत्पन्न न करें।' इसका अंग्रेजी पर्याय है, 'फैमिली प्लानिंग'।

वेदों में दस पुत्रों की कामना की गई है। सावित्री ने यमराज से अपने लिए शत भाई और शत पुत्रों का वरदान माँगा था। राजा सगर के साठ हजार पुत्र थे। कौरव सौ भाई थे। ये उन दिनों की बातें हैं, जब जनसंख्या इतनी कम थी कि समाज की समृद्धि, सुरक्षा और सभ्यता के विकास के लिए जनसंख्या-वृद्धि की परम आवश्यकता थी, किन्तु आज स्थिति एकदम विपरीत है।

पहली पंचवर्षीय योजना बनाते समय देश के योजनाकारों को यह भय था कि यदि इसी अनुपात से जनसंख्या बढ़ती रही तो बढ़ती हुई जनसंख्या पंचवर्षीय योजना को असफल कर देगी और विकास कार्यों को निगल जाएगी, अत: परिवार-नियोजन पर ध्यान दिया गया।

परिवार-नियोजन कार्यक्रम में नारा बना : *एक या दो बच्चे, होते हैं घर में अच्छे*। अर्थात् छोटा परिवार, सुखी परिवार। छोटा परिवार से 'काम' जो कि जीवन का एक पुरुषार्थ है और जीवनानन्द की स्वाभाविक वृत्ति भी, उसमें कमी न आए अन्यथा कामानन्द के अभाव में जीवन कुंठित हो जाएगा। निराशापूर्ण, घुटनपूर्ण जीवन जीवन-रस को समाप्त कर देगा। परिणामत: नारियों के लिए लूप, प्रजनेन्द्रिय को टांका लगाकर बन्द करना और गर्भ-निरोधक गोलियों का प्रचलन हुआ। पुरुषों के लिए नसबंदी को प्रेरित किया गया तथा 'कंडोम' के प्रयोग पर बल दिया गया।

परिवार-नियोजन का प्रचार युद्ध स्तर पर हुआ है और हो रहा है। पत्र-पत्रिकाओं में विज्ञापनों द्वारा, दीवारों पर पोस्टरों द्वारा, सिनेमा में सलाइडों द्वारा, आकाशवाणी, वीडियो, स्पॉट्स, इंटरनेट तथा दूरदर्शन पर विज्ञापनों के द्वारा तथा परिवार-नियोजन के कैम्प लगाकर सघन प्रचार चल रहा है। इतना ही नहीं, दूरदर्शन के अनेक एपीसोड तथा कहानियाँ परोक्ष और प्रत्यक्ष रूप में परिवार-नियोजन की प्रवृत्ति को बढ़ावा दे रहे हैं। दूसरी ओर कवि और लेखकगण भी अपनी कृतियों में सिद्धान्त रूप में नियोजित परिवार का प्रचार कर रहे हैं।

सन् 1976 में आपत्काल के दिनों में परिवार-नियोजन कार्यक्रम को युद्ध-स्तर पर अपनाया गया। साम, दान, दण्ड, तीनों नीतियाँ अपनाई गईं। एक ओर नकद राशि और पुरस्कारों का प्रलोभन दिया गया, तो दूसरी ओर जबरदस्ती नसबन्दी की गई। सरकारी सुविधाओं और नौकरियों में नसबन्दी की शर्त लगाई गई। परिणाम सुखद निकले। देश की जन्मदर घटी। 1951 की जन्मदर 40.8 से घटकर 1996 में 27.5 प्रतिशत रह गई।

परिवार-नियोजन का एक दूषित पक्ष भी सामने आया। जन्मदर कम करने के लिए लोगों ने एक घृणित उपाय ढूँढ़ निकाला। भ्रूण परीक्षण द्वारा गर्भ में लिंग पता करवाना शुरू कर दिया। यदि वह लड़की है तो उसकी भ्रूण-हत्या कर दी गई। फलतः सरकार ने प्रसवपूर्व जाँच तकनीक कानून 1994 को 1 जनवरी, 1996 में लागू करके इस क्रिया को रोका। इतना ही नहीं, अजन्मे भ्रूण के परीक्षण के लिए आल्ट्रसोनोग्राफी, एमनिओसैटिसिस आदि जाँच करवाने वाले दम्पत्तियों के लिए दण्ड का प्रावधान भी किया गया।

बढ़ती महँगाई, गिरते जीवन मूल्य तथा शरीर पोषण के अनिवार्य पदार्थों की पर्याप्त पूर्ति न होने से भारतीय समाज को परिवार-नियोजन कार्यक्रम अपनाने को विवश किया है। दूसरी ओर, दो या तीन बच्चों से अधिक बच्चों वाले दम्पतियों को समाज हेय दृष्टि से देखता है। 'बच्चों की फौज' कहकर उन पर व्यंग्य किया जाता है। तीसरी ओर, पौष्टिक, प्रदूषण तथा मिलावट रहित भोजन के अभाव में आज की नारी सचमुच 'कोमलांगी' विशेषण को सार्थक करती है। वह दो बच्चे पैदा करने के बाद टूट जाती है। चौथी ओर, पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव में आज का नगरवासी नर-नारी सम्भोग का तो भरपूर आनन्द लेना चाहता है, किन्तु गर्भाधान से बचता है। पाँचवी ओर, नारी-शिक्षा ने नारी में जीवन-जीने की कला उत्पन्न की है। उसमें वह दो से अधिक संतान को भार मानने लगी है। छठी ओर, सरकार ने जीवन के हर क्षेत्र में नारी को प्रश्रय देकर पुरुष के बराबर खड़ा करने का जो अभियान छेड़ा है, उससे 'पितृ-ऋण' से उऋण होने की संकल्पना खंडित हो रही है।

परिवार-नियोजन का सरलतम उपाय है, राजकीय लाभ उठाने की पात्रता के लिए पंथ तथा सम्प्रदाय से ऊपर उठकर 'दो संतान' का प्रमाण-पत्र अनिवार्य कर दिया जाए। राजकीय लाभ उठाने में नौकरी, पदोन्नति से लेकर परमिट-कोटा लेने तक, राशनकार्ड बनवाने या उसका नवीकरण करवाने से लेकर भवन-मिर्माण आदि के प्रमाण-पत्र तक, अपील करने से लेकर कोर्ट केस करने तक, सभी में परिवार-नियोजन का प्रमाण-पत्र अनिवार्य कर देना चाहिए।

यदि परिवार-नियोजन के महत्त्व को हमने नहीं समझा, तो एक दिन यह पुण्य भूमि भारत-भू पापमय नरक में परिवर्तित हो जाएगी। कविवर सुमित्रानन्दन पंत के शब्दों में—

नरक क्यों बने न जन-भू स्वर्ग / नहीं जब प्रजनन पर अधिकार।

(271) बदलते परिवेश में सन्तान के प्रति— माता-पिता की भूमिका

संकेत बिंदु—(1) पाश्चात्य प्रभाव से भौतिकवादी दृष्टिकोण (2) संतान के प्रति माता-पिता की भूमिका (3) भारतीय संस्कार और मूल्यों में गिरावट (4) व्यक्ति में अहंवादी प्रकृति (5) उपसंहार।

आज भारतीय जीवन में पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से भौतिकतावादी बुद्धिप्रधान दृष्टिकोण व्याप्त हो गया है। इससे समाज का सारा परिवेश बदल गया है। इस बदलते परिवेश ने संतान के प्रति माता-पिता की पूर्व भूमिका को नकार दिया है। सन्तान में बढ़ते 'अहम्' या 'ईगो' ने माता-पिता की भावनाओं को आहत किया है। सन्तान के मन में विद्रोहात्मक भावना पनप रही है, जिसने माता-पिता के प्रति सन्तानों को विद्रोह का ध्वज फहराने के लिए प्रेरित किया है। धार्मिक क्षेत्र में भी संतान की भूमिका माता-पिता के प्रति हास्यास्पद बन गई है।

विश्वप्रसिद्ध दार्शनिक खलील जिब्रान ने सत्य कहा है, 'तुम्हारे बालक अपने नहीं हैं। वे जीवन की जन्म लेने की लालसा की सन्तानें हैं। वे तुम्हारे साथ हैं, फिर भी वे तुम्हारे नहीं हैं।'

सन्तान माता-पिता की आत्मज हैं, अतः वे उनकी प्रतिमूर्ति हैं। माता-पिता अपार कष्ट, वेदना, मुसीबत सहकर भी उसका पालन-पोषण करते हैं। शिक्षा-दीक्षा देकर उसको ज्ञान-ज्योति से ज्योतित करते हैं। विवाह करवा कर उनको परिवार-संस्था का सदस्य बनाते हैं। पुत्र-वधू को गृहस्थ धर्म की दीक्षा देते हैं। वंश-वर्द्धन पर संतति-पालन का गुर सिखाते हैं। अपने अनुभवों से सन्तान की सांसारिक बाधाओं को हरते हैं।

माता-पिता की सन्तान के प्रति इस भूमिका में सन्तान-हित का भाव सर्वोपरि रहता है, बुढ़ापे के सहारे की आकांक्षा परोक्ष रूप में या गौण रहती है। इसलिए वे सन्तान से प्यार करते हैं तो उसे डाँट, फटकार और दण्ड देना अपना अधिकार समझते हैं। वे सन्तान के बुरे कार्यों की भर्त्सना करते हैं और अच्छे कार्यों की सराहना से उसका उत्साह बढ़ाते हैं। वे सन्तान के अभिशापों को झेलते हैं और वरदानों से आनन्दित होते हैं।

सन्तान के प्रति इसी भूमिका-निर्वाह ने माता-पिता में देवत्व के भाव उत्पन्न किए। सन्तान की दृष्टि में वे 'मातृदेव' या 'पितृदेव' बने। पुत्र माता-पिता की मृत्यु के अनन्तर नरकगामी होने से बचाने वाला बना तो पुत्री ने उन्हें महादान का (कन्यादान का) भागी बनाया।

समय परिवर्तनशील है। वह अपने बदलते क्षणों में जीवन के परिवेश, मूल्यों और मान्यताओं को बदलता जाता है। समय के प्रवाह में परिवेश, मूल्यों, मान्यताओं को न बदलना जड़ता के प्रति दुराग्रह, मूर्खता और मृत्यु की पृष्ठभूमि तैयार करना है।

समय की करवट और पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति की चकाचौंध ने भारतवासियों को लालायित किया। वे अपनी सन्तान को पाश्चात्य-सभ्यता से ओत-प्रोत देखना चाहने लगे। गरीब से गरीब माँ-बाप भी शिशु को लेकर तथाकथित 'पब्लिक स्कूलों' के द्वार पर दस्तक देने लगे।

इस पाश्चात्य सभ्यता के अन्धानुकरण ने भारतीय संस्कार और मूल्यों को नकारना शुरू किया। सन्तान को माता-पिता के रहन-सहन के तौर-तरीकों में बदबू आने लगी। सोचने-विचारने की विधि में पिछड़ेपन के दर्शन होने लगे। उनके सुझाव, सम्मति-सलाह के लिए विचार करने में समय की बरबादी दिखाई देने लगी। परम्परागत पारिवारिक मूल्य और संस्कार हथकड़ी-बेड़ी लगने लगे।

व्यक्ति के अहं ने जीवन में डेरा डाला। अहं पर चोट ने प्रचंड पावक का रूप धारण किया। घर में अशांति हुई। अशान्ति ने जीवन को नारकीय बनाया। इस नारकीय जीवन से मुक्ति के लिए माता-पिता को सन्तान के अहं को समझना होगा। उसके अहं को ठेस न लगे, इससे बचना होगा।

आज के परिवेश में डाँट-डपट, क्रोध-आक्रोश, अपशब्द, धौंस, जबरदस्ती के पुराने तौर-तरीकों को बदलना होगा। आदेश देने की प्रवृत्ति पर अंकुश लगाना होगा। वाद-विवाद की स्थिति से बचना होगा। विचार-परिवर्तन के लिए विवेक से काम लेना होगा। सन्तान को स्वतंत्र चिंतन, कार्य-पद्धति तथा व्यवहार की छूट देनी होगी। विचारों में समन्वय करना होगा। प्रसाद जी ने मानो माता-पिता को यही सन्देश देते हुए कहा है—

आँसू के भीगे अंचल पर, मन का सब कुछ रखना होगा।
तुमको अपनी स्मित रेखा से, यह संधि-पत्र लिखना होगा॥

पाश्चात्य सभ्यता 'मैं' की उपासिका है, पारिवारिक जीवन की शत्रु है। वहाँ व्यक्ति का ही मूल्य है, परिवार का कोई अस्तित्व नहीं। वहाँ 'मैं' और 'मेरा' के चिन्तन में ही सम्पूर्ण दर्शन समाहित है। ऐसी स्थिति में विवाहोपरांत सन्तान से सुख की कामना करना व्यर्थ है। उन्हें अपनी मौज-मस्ती, गृहस्थी के प्रति दायित्व, जीवन जीने की शैली उनके ढंग से चलाने देनी होगी।

माता-पिता ने जीवन की दौड़ में दौड़कर अनुभव के रत्न प्राप्त किए हैं। आज की सन्तान उन अनुभव रूपी रत्नों से लाभ उठाना नहीं चाहती, तो आप उन पर अपनी अनुभूति को लादिए नहीं। उन्हें अनुभव-प्राप्ति के लिए मूल्य चुकाने दीजिए, कष्ट सहने दीजिए। उनकी आँखें स्वतः खुल जाएंगी। कबीर ने इसलिए कहा है—

आतम अनुभव ज्ञान की, जो कोई पूछे बात।
सो गूँगा गुड़ खाई के, कहे कौन मुख स्वाद॥

भारतीय जीवन में प्रविष्ट पाश्चात्य संस्कार हमारे जीवन के परम्परागत प्राचीन मूल्यों को नकार रहे हैं, सामाजिकता को दुत्कार रहे हैं और धार्मिकता का परिहास कर रहे हैं। इसलिए आज संतान माता-पिता के प्रति कृतज्ञ नहीं, वह तो स्वयं को उनके मौज-मस्ती

के क्षणों का अभिशाप समझती है। अब इस अभिशाप को माता-पिता को झेलना होगा। संतान की इच्छाओं-आकांक्षाओं का स्वागत करना होगा। उसके व्यवहार के सम्मुख नत-मस्तक होना होगा, जिस ओर उनके आचरण की हवा बहे, उस ओर मुँह करके खड़ा होना होगा। विवेक से काम लेना होगा। हर परिस्थिति में सहयोग और समझौते को अपनाना होगा। अकबर इलाहाबादी के परामर्श को स्वीकार करना होगा—

मुनासिब यही दिलहै पर, जो कुछ गुजरे उसे सहना।
न कुछ किस्सा, न कुछ झगड़ा, न कुछ कहना, न कुछ सुनना॥

स्वास्थ्य, व्यायाम और खेल

(272) स्वास्थ्य-रक्षा

संकेत बिंदु—(1) स्वास्थ्य रक्षा का अर्थ (2) स्वास्थ्य रक्षा का आधार (3) व्यायाम स्वास्थ्य रक्षा का मूल मंत्र (4) पौष्टिक और स्वास्थ्यकर भोजन (5) गहरी और शांत निद्रा।

स्वास्थ्य रक्षा का अर्थ है शरीर की रोग, विकार, आलस्य आदि से रक्षा। मन के उद्वेग, कष्ट या चिन्ता से रक्षा, स्वास्थ्य रक्षा है। शास्त्रों के अनुसार आध्यात्मिक (मन से उत्पन्न दुःख), आधिभौतिक (शारीरिक दुःख) तथा आधिदैविक (प्रकृति प्रदत्त दुःख) रूपों से जीवात्मा की रक्षा, स्वास्थ्य रक्षा है।

वेदव्यास जी के अनुसार प्रकृति से उत्पन्न तीन गुण (सत्त्व, रज तथा तम) जीवात्मा को शरीर में बाँधते हैं। इनमें सत्त्व गुण (निर्मल होने से प्रकाशवान्) को छोड़कर शेष दो रजो गुण (कामना और आसक्ति) तथा तमो गुण (प्रमाद, आलस्य और निद्रा) से जीवात्मा की रक्षा स्वास्थ्य रक्षा है।

गोस्वामी तुलसीदास के अनुसार दैहिक (शारीरिक), दैविक (प्राकृतिक) तथा भौतिक (सांसारिक) तापों से शरीर की रक्षा स्वास्थ्य-रक्षा है।

स्वास्थ्य-रक्षा का आधार महर्षि चरक ने 'त्रय उपस्तम्भा आहारः स्वप्नो ब्रह्मचर्यमिति' बताया है, अर्थात् स्वास्थ्य रूपी घर को स्थिर रखने के लिए उसके तीनों पाए—आहार, स्वप्न (निद्रा) तथा ब्रह्मचर्य ठीक-ठाक रखने चाहिएँ। वेन्डेल फिलिप्स का कथन है कि 'स्वास्थ्य-रक्षा की पृष्ठभूमि है परिश्रम। इसके लिए परिश्रम के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं।'

महाकवि कालिदास की एक सूक्ति है—'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।' अर्थात् सभी धर्मों (कर्तव्यों) का पहला साधन शरीर है, अतः शरीर का स्वस्थ्य रहना परमावश्यक है। यदि शरीर स्वस्थ नहीं हो, तो मन स्वस्थ नहीं रह सकता। मन स्वस्थ नहीं, तो विचार स्वस्थ

नहीं होते। उर्दू में एक सूक्ति है—'तन्दुरुस्ती हजार न्यामत' अर्थात् स्वास्थ्य हजारों अन्य अच्छे भोगों से बढ़कर है। अंग्रेजी में भी कहावत है 'Health is wealth' अर्थात् स्वास्थ्य ही धन है।

स्वास्थ्यहीन व्यक्ति अविवेकी, विचारशून्य, आलसी, अकर्मण्य, हठी, क्रोधी, झगड़ालू अर्थात् दुर्गुणों का भंडार होता है। इसके विपरीत शरीर की स्वस्थता से मुख-मंडल दमकता है, शरीर का गठन और अंगों की चारुता चमकती है, चाल में चुस्ती और चंचलता प्रकट होती है। शरीर में आत्मा निवास करती है। आत्मा परमात्मा का स्वरूप है। एक प्रकार से शरीर परमात्मा का पुण्य मंदिर है, जिसे स्वच्छ और शुद्ध रखना मनुष्य का धर्म है। इस धर्म-पालन के साधन हैं—व्यायाम, संतुलित एवं नियमित भोजन, शुद्ध जलवायु का सेवन, संयम-नियमपूर्ण जीवन तथा ब्रह्मचर्य पालन।

व्यायाम स्वास्थ्य-रक्षा का मूल मंत्र है। विद्वानों का कथन भी है— 'व्यायामात्पुष्टगात्राणि।' व्यायाम से गात्र पुष्ट होते हैं, पाचन शक्ति ठीक रहती है, शरीर में ठीक से रक्त-संचार होता है, पुट्ठे मजबूत होते हैं, सीना चौड़ा होता है, भुजाओं में बल आता है और इन्द्रियाँ शक्ति सम्पन्न होती हैं। इससे मन में साहस, उत्साह, आत्मविश्वास, निर्भीकता और स्वावलम्बन के भाव जाग्रत होते हैं। चेहरे की झुर्रियाँ, शरीर की शिथिलता, मन की उदासी, हृदय की निराशा तथा मस्तिष्क की निष्क्रियता दूर होती है। इस प्रकार व्यायाम से शरीर सुन्दर बनता है, बुद्धि विकसित होती है और मन पर संयम रहता है।

स्वास्थ्य-रक्षा के लिए व्यायाम नित्य और नियमित रूप से करना चाहिए, पर उतना ही करना चाहिए, जिससे थकावट न जान पड़े। भोजन के पश्चात् व्यायाम नहीं करना चाहिए और न व्यायाम के तुरन्त पश्चात् भोजन करना चाहिए। ब्राह्ममुहूर्त या प्रातः शुद्ध और खुली हवा में व्यायाम करना हितकर है। व्यायाम के पश्चात् रगड़-रगड़ कर स्नान अनिवार्य है।

स्वास्थ्य-रक्षा का दूसरा मूलमंत्र है—पौष्टिक और स्वास्थ्यकर भोजन। भोजन नियत समय पर और भूख लगने पर करना चाहिए। सादा, सुपाच्य, सन्तुलित और पौष्टिक भोजन अधिक लाभप्रद है। घी, तेल, फल, सब्जी के प्रयोग से भोजन में पौष्टिकता आती है। सड़-गले बासी, अपाच्य भोजन से बचना चाहिए। खटाई-मिर्च से दूर करना चाहिए। अपनी शारीरिक प्रकृति और ऋतु के विरुद्ध भोजन नहीं करना चाहिए। जैसे—गर्म भोजन के मध्य ठंडा जल, ताजे फल खाकर जल पीना, दही के साथ मूली और दूध के साथ मछली असंगत हैं। नशीले द्रव्यों से परहेज करना चाहिए, ये स्वास्थ्य-भक्षक हैं।

पानी स्वच्छ पीना चाहिए। कई बार नलों में गन्दा पानी आ जाता है। उसे उबालकर या फिलटर कर स्वच्छ कर लेना चाहिए। आचार्य चाणक्य ने जल की विशेषता प्रकट करते हुए लिखा है, 'अजीर्ण होने पर जल औषधि है, पच जाने पर जल बल देता है। भोजन के समय जल अमृत के समान है और भोजन के अंत में विष का फल देता है।'

स्वास्थ्य-रक्षा का तीसरा मूलतंत्र है—निद्रा। गहरी और शांत निद्रा स्वास्थ्य की सहचरी है। जो सदाचारी है, निःस्पृह है और संतोष से तृप्त है, उसको समय पर निद्रा आए बिना

नहीं रहती। नींद से शरीर की थकावट दूर होती है, मस्तिष्क स्वस्थ होता है, चेतना आती है। महाकवि प्रसाद निद्रा को अत्यन्त प्यारी वस्तु मानते हुए लिखते हैं, 'घोर दु:ख के समय भी मनुष्य को यही सुख देती है।' रहस्य की बात यह भी है कि स्वास्थ्य ठीक हो, तो मनुष्य को काँटों पर भी नींद आ जाती है, वर्ना फूलों की पंखुड़ियों पर रात करवटें बदलते गुजरती है।

स्वास्थ्य-रक्षा का चौथा मूल मंत्र है—ब्रह्मचर्य। ब्रह्मचर्य का अर्थ है—मन, वचन और काया से समस्त इन्द्रियों का संयम। चित की अनुचित वृत्तियों का निरोध अर्थात् इन्द्रिय-निग्रह, संयम है। इन्द्रियों का संयम स्वास्थ्य-रक्षा की कुंजी है। ब्रह्मचर्य की महिमा का गान करते हुए अथर्ववेद में कहा गया है—'ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत।' अर्थात् ब्रह्मचर्य रूपी तपोबल से ही विद्वान् लोगों ने मृत्यु को जीता है।

दैनिक जीवन में स्वास्थ्य-रक्षा के मूल-मंत्रों को अपनाकर हम इस संसार का उपभोग कर सकते हैं, जीवन में आनन्द की गंगा बहा सकते हैं, 'जीवेम शरद: शतम्' की कल्पना को साकार कर सकते हैं।

(273) अच्छा स्वास्थ्य महावरदान

संकेत बिंदु—(1) नीरोग काया जीवन की सार्थकता (2) अथर्ववेद में महावरदान के लिए प्रार्थना (3) जीवन के चार पुरुषार्थ (4) शांत और स्थिर मन (5) उपसंहार।

नीरोग काया जीवन की सार्थकता है। अच्छा स्वास्थ्य महा-वरदान है, शुभ फलदायी है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का प्रधान कारण आरोग्य है (धर्मार्थ काममोक्षाणाम् आरोग्यं मूल मुत्तमम्) इसलिए अच्छा स्वास्थ्य महा-वरदान है। प्रभु की कृपा से प्राप्त होने वाली फल सिद्धि है। आरोग्य से अनेक प्रकार की सुख-सुविधाएँ प्राप्त होती हैं तथा कष्टों-संकटों का निवारण होता है। पी. साइरस ने इसीलिए कहा है, 'Good health & good Sense are too of life greatest blessings.' अर्थात् अच्छा स्वास्थ्य और अच्छी समझ, जीवन के दो सर्वोत्तम वरदान हैं।

अच्छा स्वास्थ्य क्या है ? इस सम्बन्ध में महाभारत के शांति पर्व में वेदव्यास जी ने कहा है—'सर्दी, गर्मी और वायु, (कफ, पित्त और वात) ये तीन शारीरिक गुण हैं। इन तीनों का साम्यावस्था में रहना ही अच्छे स्वास्थ्य का लक्षण है। दूसरे, 'सत्व, रज और तम, ये तीन मानसिक गुण हैं। इन तीनों गुणों का सम-अवस्था में रहना मानसिक स्वास्थ्य का लक्षण बताया गया है। चरक संहिता के अनुसार 'जब शरीर, मन और इन्द्रिय-विषय का समान योग होना है तब स्वस्थता होती है।' सुश्रुत-संहिता का मानना है, 'जिसके वात, पित्त और कफ समान रूप से कार्य कर रहे हों, पाचन-शक्ति ठीक हो, रस आदि धातु एवं मलों की क्रिया सम हो और आत्मा, इंद्रियाँ तथा मन प्रसन्न हो, उसी को स्वस्थ कहते हैं।'

अथर्ववेद में इसीलिए इस महा-वरदान की प्राप्ति के लिए प्रार्थना की गई है—'मेरे मुख में वाक् शक्ति हो, नाक में प्राण शक्ति हो, आँखों में दर्शन-शक्ति हो. कानों में श्रवण-शक्ति हो। बाल काले हों, दाँत मल रहित हों, भुजाओं में बल हो, उरुओं में शक्ति हो, जाँघों में वेग हो, पैरों में दृढ़ शक्ति हो। शरीर के सभी अंग-प्रत्यंग त्रुटिरहित, नीरोग, स्वस्थ और सबल हों। मेरा सम्पूर्ण देह निर्दोष हो।' इतना ही नहीं 'अश्मानं तन्वं कृधि' शरीर पत्थर समान दृढ़ हो। 'गात्राण्यस्य वर्धन्तां सुखाप्यायतामयम्', यह चन्द्रमा के समान दिनों-दिन बढ़कर खूब मोटा ताजा हो।

शरीर रथ है और इन्द्रियाँ घोड़े। शरीर रूपी रथ पर बैठकर मनोदेव इन्द्रियों के घोड़े दौड़ाते हैं और आकाश-पाताल की सैर करते हैं। जीवन के चारों पुरुषार्थों—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का पालन और प्राप्ति कर इस लोक और परलोक को सुखमय बनाते हैं। मुख-मंडल की तेजस्विता से दूसरों को मुग्ध करते हैं तथा अपने कुल और राष्ट्र का नाम उज्ज्वल करते हैं। रत्न-गर्भा पृथ्वी का वीरता से भोग करते हैं। यदि इसके पहिए ढीले हो जाएं, इसकी कमानियों में दम न रहे तो जीवन-यात्रा कठिन हो जाए। सांसारिक भोग और आध्यात्मिक उन्नति व्यर्थ हो जाएं। चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति क्षितिज के उस पार चली जाए। 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि कर्माणि जिजीविषेत् शतं समा' अर्थात् कर्म करते हुए सौ वर्ष तक जीने की यह इच्छा खंडित हो जाए। इसलिए अच्छा स्वास्थ्य महा वरदान है।

महाकवि प्रसाद के 'कामायनी' काव्य की नायिका श्रद्धा मनु को जीने के लिए बलवान् बनने और समस्त बाधाओं पर विजय प्राप्त करने की प्रेरणा देते हुए कहती हैं—

और यह क्या तुम सुनते नहीं, विधाता का मंगल वरदान।
'शक्तिशाली हो, विजयी बनो', विश्व में गूँज रहा जय गान।।

और जब मनु का तन-मन स्वस्थ हुआ तो उसे महावरदान के रूप में प्राप्त हुआ—***'संगीत मनोहर उठता, मुरली बजती जीवन की।'*** और वह अनुभव करता है—***'माँसल-सी आज हुई थी, हिमवती प्रकृति पाषाणी।'***

अत: जीवन की सार्थकता के लिए अच्छा स्वास्थ्य अनिवार्य है। अच्छे स्वास्थ्य का गुर है—व्यायाम। महर्षि चरक का कहना है, 'व्यायाम करने से शरीर की पुष्टि, गात्रों की कांति, मांसपेशियों के उभार का ठीक विभाजन, जठराग्नि की तीव्रता, आलस्य-हीनता, हलकापन और मलादि की शुद्धि होती है। साथ ही शारीरिक हलकापन, कर्म-सामर्थ्य, दृढ़ता, कष्ट-सहिष्णुता और दोषों की क्षीणता आती है।'

मन की वह अवस्था जिसमें मानव को कोई उद्वेग, कष्ट तथा चिन्ता न हो अच्छे स्वास्थ्य की व्याख्या मानी गई है। कारण, इसमें चित्त शांत और स्थिर होगा। क्षोभ, घबराहट या परेशानी उसे स्पर्श नहीं करेंगे। भय तथा विस्मय आतंकित नहीं करेंगे। कष्ट उसके समक्ष उपस्थित होने में भी भयभीत होंगे। क्योंकि वह वीर है, साहस और तेज की प्रतिमूर्ति है, इसलिए चिंताएं उसको स्पर्श ही नहीं करतीं। यह संभव है संयम से। संयम का अर्थ है—'चित्त की अनुचित्त वृत्तियों का निरोध' अर्थात् इन्द्रिय-निग्रह। मन की भटकन, नयनों

की चंचलता, जिह्वा का स्वाद, उपस्थ की उत्तेजना को वश में रखना संयम है। कालिदास के शब्दों में—'आत्मेश्वराणां न हि जातु विघ्ना:समाधि क्षोभप्रभवा: भवन्ति।' अर्थात् जितेन्द्रिय पुरुष के मन में विघ्नकर तत्त्व थोड़ा भी क्षोभ उत्पन्न नहीं कर सकता। काका कालेलकर के शब्दों में, 'संयम में ही जीवन साफल्य की पराकाष्ठा है।'

जीवन जागरण है, सुषुप्ति नहीं। उत्थान है, पतन नहीं। मानव को पृथ्वी के अन्धकाराच्छन्न पथ से गुजर कर दिव्य-ज्योति से साक्षात्कार करना है। यह साक्षात्कार तभी संभव है जब हम तन और मन से नीरोग होंगे। मस्तक पर तेज दीप्त होगा। जीवन धारा सुन्दर रूप में प्रवाहित होकर, 'सत-सतत प्रकाश, सुखद अथाह' से पूर्ण करके महावरदान सिद्ध होगा।

(274) स्वास्थ्य और विज्ञान

संकेत बिंदु—(1) स्वास्थ्य के बिना जीवन अधूरा (2) वैज्ञानिक आविष्कारों का जीवन में उपयोग (3) आयुर्विज्ञान विज्ञान की देन (4) मन को स्वस्थ रखने में विज्ञान का योगदान (5) उपसंहार।

'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' के अनुसार सभी धर्मों (कर्तव्यों) का प्रथम साधन शरीर है। अत: शरीर का स्वस्थ रहना परमावश्यक है। स्वास्थ्य के बिना जीवन, जीवन नहीं है। विज्ञान स्वास्थ्य-रक्षा में सहायक है। वह स्वस्थ रहने के नियम बताता है, रोगी होने पर रोग का निदान कर व्यक्ति को स्वस्थ बनाता है। मृत्यु के मुँह में पहुँचे मानव को जीवन प्रदान करता है। हायजीन (Hygiene) विज्ञान की वह शाखा है, जो मानव-स्वास्थ्य की देख-भाल करती है। इसी कारण जो शास्त्र स्वास्थ्य, रोगोत्पत्ति और उसके निदान को बताता है, उसे आयुर्वेद या आयुर्विज्ञान नाम दिया गया है।

स्वास्थ्य के लिए चाहिए पाचन-क्रिया का ठीक होना। कारण, पाचन-क्रिया ठीक होगी तो वात, पित्त और कफ समान रूप से कार्य करेंगे। रस आदि तथा धातु और मलों की क्रिया सम होगी। पाचन-क्रिया का ठीक संचालन विज्ञान करता है। विज्ञान बताता है कि मनुष्य को स्वस्थ रहने के लिए संतुलित आहार करना चाहिए। सन्तुलित आहार से तात्पर्य है—शरीर की संवृद्धि और विकास के पोषक-तत्त्वों का सेवन। पोषक-तत्त्व हैं—कार्बोहाइड्रेट, फैटस्, प्रोटीन, खनिज-लवण, विटामिन तथा जल। ये छहों तत्त्व विज्ञान की देन हैं। विज्ञान की देन कैसे हैं ? इसके लिए एक दो उदाहरण पर्याप्त होंगे।

पानी जो जीवन का आधार है हाइड्रोजन और आक्सीजन से बना एक रासायनिक यौगिक है। कार्बन हाइड्रेट में प्रत्येक पदार्थ के स्टार्च व शक्कर शामिल है। मीठी चीनी कार्बन हाइड्रोजन और ऑक्सीजन से बनती है। कोयला, तेल, अनाज, सब्जियाँ, फल और मेवे, सभी तो रसायन हैं, अत: विज्ञान के अंश हैं।

प्रकृति की लीला भी निराली है। अत्यधिक गर्मी और अत्यधिक सर्दी को मानव सहन नहीं कर पाता। गर्मी से विह्वल होता है तो सर्दी से ठिठुरता है। इसके लिए विज्ञान ने वातानुकूलन की व्यवस्था प्रदान की। पंखे, हीटर, कूलर, एक्जोस्टर फैन— क्या हैं ? मानव को प्रकृति प्रकोप से बचाने के वैज्ञानिक आविष्कार ही तो हैं।

शरीर आखिर शरीर है। बीमार होते क्या देर लगती है। इसीलिए तो 'शरीरं व्याधिमन्दिरम्' कहा गया है। नजला, जुकाम, सिर-दर्द, बदन-दर्द, आँख में सूजन, पेट फूलना, बदहजमी (अपचन) या दस्त। ये सामान्य बीमारियाँ हैं। एस्प्रो या सिरोडीन लीजिए सिरदर्द गायब, विक्स-500 या कोलडिन की गोली से नजला-जुकाम में आराम। पचनोल या पुदीनहरा से पेट के विकार दुरुस्त। 'लकोला' या 'आईटोन' डालिए आँखें स्वस्थ। ये सब गोलियाँ क्या हैं ? विज्ञान की शाखा औषध-विज्ञान (आयुर्विज्ञान) की देन हैं।

बुखार, मलेरिया, टाइफाइड, इन्फ्लूएंजा, नमूनिया, हैजा, मधुमेह, गठिया, कोढ़, पेचिस, दमा, खसरा, प्लेग, पोलियो, पायोरिया, हाइड्रोफोबिया, सूखा रोग, चेचक, टिटेनस, रतौंधी, मोतियाबिंद, गण्डमाला आदि बीमारियाँ दूषित खान-पान प्रदूषण के कारण होती रहती हैं। आयुर्विज्ञान की कृपा से मनुष्य इन रोगों से शीघ्र स्वस्थ हो जाता है।

पीलिया, टी. बी. (क्षयरोग) दमा, हृदयरोग, किडनी के रोग, कैंसर आदि असाध्य रोग समझे जाते थे। आज विज्ञान की अपार कृपा से ये रोग मानव को पराजित नहीं कर सकते, शीघ्र मृत्यु का निमंत्रण नहीं दे सकते। हृदय तथा गुर्दे का प्रत्यारोपण तथा हृदय की 'बाई-पास सर्जरी' द्वारा मृत्यु-मुँह से मानव को निकालकर स्वस्थ खड़ा कर देना, विज्ञान का ही वरदान तो है।

शरीर के साथ मन का भी मानव-स्वास्थ्य पर बहुत असर पड़ता है। मन स्वस्थ होगा तो स्वास्थ्य शुक्लपक्ष के चाँद की तरह निरन्तर बढ़ेगा। मन अस्वस्थ होगा तो *'चिन्ता ज्वाल शरीर बन, दावा लगि लगि जाए'* की स्थिति निर्मित होगी। मन के स्वस्थ रखने लिए विज्ञान ने मनोरंजन के अनेक साधन प्रदान किए हैं। दूरदर्शन, आकाशवाणी, चलचित्र , वीडियो, पत्र-पत्रिकाएँ, पुस्तकें मानव का भरपूर मनोरंजन करते हैं। दिन का थका हारा मानव जीविका की ऊँच-नीच से टूटा आदमी जब दूरदर्शन का स्विच ऑन करता है तो एक ओर तो उसकी थकावट दूर होती है, तो दूसरी ओर मनोरंजन का आनन्द भी प्राप्त होता है।

विज्ञान का मानव के साथ जहाँ तक 6-3 का सम्बन्ध है, वहाँ वह स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद है, किन्तु यह सम्बन्ध जहाँ 3-6 का हुआ, वहाँ विनाशकारी बन जाता है। यह मानव के स्वास्थ्य से ही खिलवाड़ नहीं करता, उसका जीवन भी दूभर कर देता है। नगरों तथा महानगरों का मानव विज्ञान की विनाशकारी देन 'पर्यावरण प्रदूषण' से परेशान है। वाहनों से निकले धुएँ से उसका दम घुटता है। मलमूत्र तथा कारखानों-मिलों के रासायनिक पदार्थ से युक्त नदी-जल को हाईजनिक करके पेय जल पीता है। कीटनाशक औषधियों से युक्त फल-सब्जियाँ और अन्न खाने को मिलते हैं। मदर डेरी का बासी, किन्तु वैज्ञानिक

ढंग से ताजा बनाकर दूध मिलता है, तो कहाँ रहेगा स्वास्थ्य ? दूसरी ओर, जहाँ घर में सलेंडर ने गैस लीक की नहीं कि एक तो अग्नि देवता ने घर को स्वाहा कर दिया और कारखाने-मिल की गैस लीक हुई तो हजारों रोगी हो गए, अन्धे हो गए, जीवन-लीला खो बैठे। 'भोपाल का गैस कांड' आज भी हृदय में कम्पन्न पैदा कर देता है।

विज्ञान के अनेक आविष्कारों ने औषध और शल्य-चिकित्सा द्वारा स्वास्थ्य-क्षेत्र में क्रान्ति उत्पन्न की, किन्तु जरा-सा इंजेक्शन गलत लगा और मानव परलोक पहुँचा। औषध ने जरा-सा रिएक्शन (प्रतिक्रिया) दिखाया नहीं, आदमी को बिना-माँगे रोग चिपटकर उसके स्वास्थ्य का दीवाला पीट देता है।

सृष्टि ही गुण-दोषमयी है, तो फिर विज्ञान इससे अछूता कैसे रह सकता है ? पर यह सच है कि विज्ञान ने केवल मानव के अपितु पशु-पक्षी जगत् के स्वास्थ्य को भी सुरक्षा, संवर्द्धना तथा सचेतना प्रदान की है। 20वीं शताब्दि के पाँचवें-छठे दशक तक आम आदमी की औसत उम्र 50-60 वर्ष होती थी, जबकि 21वीं सदी के प्रवेश में यह सीमा बढ़कर 70-80 पहुँच गई है। पहले पचास वर्ष का आदमी अपने को बूढ़ा कहता था और आज बुढ़ापा षष्टिपूर्ति के पश्चात् प्रारम्भ होता है।

अर्केडियन फरार के शब्दों में—'विज्ञान ने अन्धों को आँखें दीं और बहरों को सुनने की शक्ति दी। उसने भय को कम कर दिया, पागलपन को वश में कर लिया। रोग को रौंद कर जीवन को दीर्घता प्रदान की।'

(275) स्वास्थ्य और व्यायाम

संकेत बिंदु—(1) स्वस्थ शरीर व्यक्ति की प्राथमिकता (2) स्वस्थ शरीर के लक्षण (3) व्यायाम की आवश्यकता (4) व्यायाम के अनेक प्रकार (5) व्यायाम के नियम और करने की प्रवृति।

महर्षि चरक के अनुसार 'शरीर की जो चेष्टा देह को स्थिर करने एवं उसका बल बढ़ाने वाली हो, उसे व्यायाम कहते हैं।' डॉ. जानसन के अनुसार 'I take the true definition of exercise to be, labour without weariness.' अर्थात् मेरे लिए व्यायाम की परिभाषा बिना थकावट के परिश्रम है।

शरीर रथ है और इन्द्रियाँ घोड़े। शरीर रूपी रथ पर बैठ कर मनोदेव इन्द्रियों के घोड़े दौड़ाते हैं और आकाश-पाताल की सैर करते हैं। यदि इसके पहिये ढीले हो जाएँ, इसकी कमानियों में दम न रहे तो जीवन-यात्रा दूभर हो जाएगी।

महाकवि कालिदास की सूक्ति है, 'शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्,' अर्थात् धर्म का (कर्तव्य का) सर्वप्रथम साधन स्वस्थ शरीर है। यदि शरीर स्वस्थ नहीं तो मन स्वस्थ नहीं रह सकता। मन स्वस्थ नहीं तो विचार स्वस्थ नहीं होते। जब विचार स्वस्थ नहीं तो धर्म (कर्तव्य) की साधना कहाँ ? इसलिए शरीर को स्वस्थ रखना व्यक्ति का प्रथम कर्तव्य है।

सुश्रुत संहिता ने स्वस्थ शरीर के लक्षण इस प्रकार बताए हैं—'जिसके वात, पित्त और कफ समान रूप से कार्य कर रहे हों, पाचन शक्ति ठीक हो, रस आदि धातु एवं मलों की क्रिया सम हो और आत्मा, इन्द्रियाँ तथा मन प्रसन्न हो, उसी को स्वस्थ कहते हैं।'

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥

वस्तुतः जीवन में स्वास्थ्य ही सब कर्मों के लिए महत्त्वपूर्ण है। अस्वस्थ व्यक्ति सांसारिक सुखों का भोग नहीं कर सकता। चाहे घर में षड्रसयुक्त व्यंजन बने हों अथवा वस्त्राभूषण पहनने का प्रश्न हो और चाहे उत्सवों और सम्मेलनों में भाग लेना हो, अस्वस्थ व्यक्ति के लिए सब चीजें व्यर्थ हैं। उसे इन सबको देखकर ईर्ष्या होती है। वह जीवन-भर इनके लिए हाथ मल-मलकर पछताता है। इसलिए किसी ने ठीक कहा है 'पहला सुख नीरोगी काया' अर्थात् सबसे बड़ा सुख स्वस्थ शरीर है।

शरीर को स्वस्थ रखने के लिए व्यायाम की नितान्त आवश्यकता है। जो लोग व्यायाम नहीं करते, वे आलसी और निरुद्यमी बन जाते हैं। व्यायाम करने से हाथ-पैर और शरीर के पुट्ठे बलिष्ठ रहते हैं, चुस्ती और फुर्ती आती है, पाचन शक्ति ठीक रहती है, समय पर भूख लगती है, चित्त प्रसन्न रहता है और काम करने की इच्छा होती है। शरीर में रुधिर अधिक बनता है और काया सुडौल हो जाती है। बादी (वातरोग) से फूला हुआ शरीर दो-तीन मास के नियमित व्यायाम से सुन्दर बन जाता है। जिस आदमी को व्यायाम का शौक है, वह कभी रोग का शिकार नहीं हो सकता। उसका शरीर वज्र के समान सुदृढ़ बन जाता है। उसके हृदय में उत्साह, आत्मविश्वास तथा निडरता रहती है।

महर्षि चरक का कहना है कि—'व्यायाम करने से शरीर की पुष्टि, गात्रों की कांति, माँस-पेशियों के उभार का ठीक विभाजन, जठराग्नि की तीव्रता, आलस्यहीनता, स्थिरता, हलकापन और मलादि की शुद्धि प्राप्त होती है।' एक अन्य स्थान पर वे लिखते हैं—'व्यायाम से शारीरिक हलकापन, कर्म-सामर्थ्य, दृढ़ता, कष्ट-सहिष्णुता, दोषों की क्षीणता तथा जठराग्नि की वृद्धि होती है।'

वस्तुतः व्यायाम वह मूल (जड़) है, जो जीवन-रूपी वृक्ष को हरा-भरा रखने के लिए रस प्रदान करता है। जिस वृक्ष की जड़ें मिट्टी में जितनी ही गहरी होंगी, वह उतना ही दीर्घजीवी और हरा-भरा होगा। इसी प्रकार जो मनुष्य नियमित रूप से व्यायाम करने वाला होगा, उसका जीवन उतना ही सुखी और उल्लासपूर्ण होगा। व्यायाम से केवल शरीर ही पुष्ट नहीं होता, बल्कि मन और मस्तिष्क भी मजबूत होते हैं।

व्यायाम करने के अनेक ढंग हैं। दण्ड और बैठक लगाना, कुश्ती लड़ना, दौड़ लगाना, घोड़े की सवारी करना, पानी में तैरना, मुद्गर घुमाना, गेंद खेलना, कबड्डी खेलना आदि। व्यायाम भारत में प्राचीनकाल से प्रचलित हैं। योगासन और प्राणायाम भी [illegible] के लिए श्रेष्ठ व्यायाम हैं। प्रातः एवं सायं तेज चाल के भ्रमण से भी शरीर का व्यायाम होता है। व्यायाम अवस्था के अनुरूप करना चाहिए। सभी व्यायाम सभी लोगों के लिए उपयोगी

नहीं हो सकते। बच्चों के लिए दौड़-भाग वाले खेलकूद उपयोगी हैं, तो नवयुवक खेलों द्वारा अपने शरीर को पुष्ट कर सकते हैं। वृद्ध लोगों तथा दिमागी कार्य अधिक करने वालों के लिए प्रातः तथा सायं भ्रमण करना लाभदायक है।

अंग्रेजी खेलों में अच्छे और प्रसिद्ध खेल हैं—क्रिकेट, हॉकी, फुटबॉल, वॉलीबॉल, पोलो और टेनिस। ये भी व्यायाम के सुन्दर साधन हैं।

नाचने, रस्सी कूदने, चक्की चलाने या सरल योगासन करने से स्त्रियों का शरीर स्वस्थ रहता है।

प्रत्येक व्यक्ति को अपनी शक्ति और शारीरिक आवश्यकता के अनुसार व्यायाम अवश्य करना चाहिए। आवश्यकता से अधिक व्यायाम शरीर के लिए हानिकर है। चरक-संहिता में इसके दोष बताते हुए लिखा है—'अति व्यायाम से थकावट, क्लांति, क्षीणता, प्यास, रक्तपित्त, साँस चढ़ना, खाँसी, ज्वर तथा वमन, ये उपद्रव होते हैं।'

श्रम क्लम क्षयस्तृष्णा रक्तपित्त प्रतामकः।
अति व्यायामतः कासो ज्वरश्छर्दिश्च जायते॥

व्यायाम करने के लिए नियम भी हैं। व्यायाम कभी भरे पेट नहीं करना चाहिए। व्यायाम खुले मैदान और स्वच्छ वायु में करना चाहिए। व्यायाम करते समय मुँह बन्द रखना चाहिए और नाक से लम्बे साँस लेने चाहिएँ। शरीर पर तेल लगाकर मालिश करके स्नान करने से स्फूर्ति आती है। सादा और सात्त्विक भोजन तथा पवित्र विचार स्वास्थ्य-वृद्धि की कुँजी हैं।

व्यायाम करने की प्रवृत्ति बाल्यकाल से ही डालनी चाहिए। जो बच्चे बचपन से ही व्यायाम करते हैं, उनका शरीर सुडौल और दिमाग तेज होता है। बच्चों के लिए व्यायाम की अनिवार्यता को अनुभव करते हुए विद्यालयों में भी खेलों और व्यायाम की व्यवस्था होती है।

प्रत्येक मनुष्य की इच्छा होती है कि वह सुख एवं सम्मान के साथ सौ वर्ष तक जीए, किन्तु यह तभी सम्भव है जबकि उसका शरीर स्वस्थ हो। शरीर तभी स्वस्थ रह सकता है, जब वह नियमित व्यायाम करे।

(276) व्यायाम के लाभ

संकेत बिंदु—(1) व्यायाम का अर्थ (2) व्यायाम में शरीर सुन्दर और पाचन शक्ति मजबूत (3) व्यायाम से अनेक लाभ (4) रक्त के संचार में वृद्धि (5) उपसंहार।

महर्षि चरक ने 'शरीरस्य या चेष्टा, स्थैर्यार्था बलवर्धिनी देह व्यायामः' कहकर देह को स्थिर करने एवं उसका बल बढ़ाने वाली शारीरिक चेष्टा को व्यायाम की संज्ञा दी है। डॉ. सिद्धेश्वर वर्मा ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है, 'व्यायाम का अर्थ पहलवानी नहीं है।

व्यायाम किसी भी ऐसे कार्य को कह सकते हैं, जिसके द्वारा शरीर की स्थायी शक्ति सतेज, सक्रिय तथा सुदृढ़ हो। डॉ. जॉनसर 'बिना थकावट के परिश्रम' को व्यायाम मानते हैं।

मानव-जीवन की तीन महत्त्वाकाँक्षाएँ हैं—प्राणेषणा, वित्तेषणा तथा परलोकेषणा। इन तीनों में प्राणेषणा अर्थात् जीवित रहने की इच्छा उत्कृष्टतम है। कारण, शरीर के नष्ट होने पर धनप्राप्ति और मोक्ष प्राप्ति सम्भव ही नहीं है। प्राणेषणा निर्भर करती है व्यायाम पर।

व्यायाम से शरीर की पुष्टि, गात्रों की कांति, माँस-पेशियों के उभार का ठीक विभाजन, जठराग्नि की तीव्रता, आलस्यहीनता, स्थिरता, हलकापन और मल आदि की शुद्धि होती है।

व्यायाम से पाचन-शक्ति ठीक कार्य करती है। शरीर के विकार—मल, मूत्र, पसीना आदि नियमित रूप से बाहर आ जाते हैं। पाचक रस अधिक निकलते हैं, भूख बढ़ती है। भोजन पचने के बाद ही वह रक्त, मज्जा, माँस आदि में परिवर्तित होता है। शरीर में रक्त-संचार सुचारु रूप से होता है और हृदय में ताजगी आती है। शरीर सुडौल, सुगठित एवं सुदृढ बन जाता है। पुट्ठे मजबूत हो जाते हैं, सीना चौड़ा हो जाता है। गर्दन मोटी तथा गोल हो जाती है। सभी इन्द्रियाँ ठीक तरह से कार्यरत रहती हैं। शरीर में स्फूर्ति आती है, उत्साहवर्द्धन होता है।

व्यायाम से शरीर सुन्दर बनता है। चेहरे पर रौनक आती है। मस्तक चमकता है। मस्तिष्क की शक्ति उर्वरा होती है। मन में स्फूर्ति रहती है। कार्य करने के लिए उत्साह प्राप्त होता है। गति में तीव्रता आती है। वृद्धावस्था में भी यौवन प्रकट होता है।

बुढ़ापा अत्याचारी है, जो मृत्यु का भय दिखाकर यौवन के समस्त उल्लासों का निषेध कर देता है, किन्तु व्यायाम करने वाले शरीर पर बुढ़ापा सहसा आक्रमण नहीं कर पाता। फलत: वह मनुष्य 'कुर्वन्नेहवेह कर्माणि जिजीविषेत्: शतं समा:' अर्थात् काम करते हुए सौ वर्ष जीने की इच्छा पूरी कर पाता है।

व्यायाम से मनुष्य संयमी बनता है। संयमहीन जीवन विपत्तियों का आगार होता है, अत: विपत्तियाँ व्यायाम करने वाले से दूर रहती हैं। फिर, जो संयमी है, वही सर्वशक्तिमान् है।

धैर्य उसकी चारित्रिक विशेषता बन जाती है। धैर्य वीरता का अति उत्तम, मूल्यवान् और दुष्प्राप्य अंग है। धैर्य संतोष की कुंजी है और प्रकृति का रहस्य है।

क्षमा उसके स्वभाव का अंग बन जाती है, जो 'वीरस्य भूषणम्' है। क्षमा से बढ़कर किसी तत्त्व में पाप को पुण्य बनाने की शक्ति नहीं है।

सन्तोष रूपी अमृत से वह आकंठ पूर्ण रहता है, जो सुख-शान्ति का वाहन है। चाणक्य-नीति के अनुसार सन्तोष देवराज इन्द्र का नन्दन-वन है।

व्यायाम से उत्पन्न आत्मविश्वास और आत्म-निर्भरता जीवन की सफलता का रहस्य हैं, विपत्तियों पर विजय का प्रतीक हैं। सर्वांगीण उन्नति की आधारशिला है। अत: ये दोनों व्यायाम की आत्मजा हैं।

व्यायाम-शील व्यक्ति साहस और शक्ति का संचय करता है। साहस और शक्ति से संकट का प्रतिरोध करने में ही उसका साफल्य निहित है। साहसी व्यक्ति आत्म-विश्वासी भी होता है।

जगत् का ध्रुव सत्य है 'वीर भोग्या वसुन्धरा'। अर्थात् वीर पुरुष ही धरती का भोग करते हैं। भय पर आत्मा की शानदार विजय वीरता है, जो व्यायाम से ही सम्भव है। कारण, व्यायाम वीरता का लक्षण है।

मनुष्य-शरीर में 519 पेशियाँ हैं। ये पेशियाँ ही मानव को कार्य करने, इधर-उधर मुड़ने, उठने-बैठने, फैलने-सिकुड़ने आदि में सहायता देती हैं। माँस-पेशियाँ जितनी लचीली और स्वस्थ होंगी, उतनी ही अंग-संचालन में सुगमता आएगी। व्यायाम इन माँस-पेशियों को सुदृढ़ करता है, रक्त के संचार को बढ़ाता है, शुद्ध करता है, जिससे रोगनाशक शक्ति का विकास होता है। रोग भयभीत होकर उससे दूर भागता है। अथर्ववेद ने इसका समर्थन किया है—'सर्व रक्षांसि व्यायामे सहामहे।' सब रोग रूपी राक्षसों को हम व्यायाम करने से ही सहन अर्थात् नष्ट कर सकते हैं।

आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रंथ भावप्रकाश में व्यायाम के लाभ पर निम्नोक्त सुन्दर पद्य मिलते हैं—

लाघवं कर्म-सामर्थ्य विभक्त-घन-गात्रता।
दोष-क्षयोऽग्नि-दीप्तिश्च, व्यायामादुपजायते।
व्यायाम-दृढ़-गात्रस्य, व्याधिर्नास्ति कदाचन।
विरुद्धं वा विदग्धं वा भुक्तं शीघ्रं विपच्यते॥

प्रतिदिन नियमपूर्वक व्यायाम करने से शरीर हल्का और फुर्तीला बन जाता है। कठिन से कठिन कार्य करने की शरीर में शक्ति और सामर्थ्य पैदा होती है। शरीर के सब अंगोपांग भरे हुए, सुन्दर, सुडौल तथा अलग-अलग दीखने लगते हैं। वात, पित्त, कफ दोषों का नाश होकर जठराग्नि प्रदीप्त होती है। व्यायामशील व्यक्ति को कभी भी किसी प्रकार की बीमारी नहीं सताती। वह जो कुछ खाता है, चाहे वह विरुद्ध या विदग्ध ही क्यों न हो, उसे शीघ्र पचा लेता है।

व्यायाम के अनगिनत लाभों को देखकर स्वामी सत्यदेव परिव्राजक ने कहा—

नेम से व्यायाम को नित कीजिए।
दीर्घ जीवन का सुधा रस पीजिए।।

(277) जीवन में खेलों का महत्त्व

संकेत बिंदु—(1) खेल के बिना जीवन (2) खेलों से आत्म-विश्वास और वीरता का भाव (3) खेलों के प्रकार (4) खेलों में धन और यश की प्राप्ति (5) उपसंहार।

जीवन है भौतिक शरीर में प्राणों के बने रहने की अवस्था। खेल है समय बिताने, शरी-

को स्वस्थ रखने तथा मन बहलाने के लिए किया जाने वाला काम। इस प्रकार सम्पूर्ण जीवन ही एक खेल है। खेलमय जीवन में ही भौतिक शरीर की गतिशीलता है, संवेदना है, आत्मतुष्टि है।

जीवन सौन्दर्य की आत्मा है और खेल उसके प्राण। प्राणों के बिना जीवन का कोई अर्थ नहीं है। खेल के बिना जीवन जड़ है। खेलमय जीवन ही जागृति है और उत्थान है, इसीलिए जैनेन्द्र कहते हैं 'जीवन-दायित्व का खेल है और खेल में जीवन-दायित्व की प्राण संजीवनी शक्ति है।'

गतिशीलता जीवन का लक्षण है। गतिशीलता निर्भर करती है स्वस्थ शरीर पर। सुश्रुत संहिता के अनुसार स्वस्थ शरीर की पहचान है, जिसके वात, पित्त और कफ समान रूप से कार्य कर रहे हों, 'पाचन-शक्ति ठीक हो, रस आदि धातु एवं मलों की क्रिया सम हो और आत्मा, इन्द्रियाँ तथा मन प्रसन्न हों।' इसका आधार है व्यायाम। महर्षि चरक ने कहा भी है, 'शरीरस्य या चेष्टा, स्थैर्यार्था बलवर्धिनी देह व्यायामः।' खेल व्यायाम का ही एक भाग है, मुख्य अंग है।

वैदिक काल से मानव की चाह रही है, 'जीवेम शरदः शतम्। शृणुयाम शरदः शतम्, प्रब्रवाम शरदः शतम्, अदीनाः स्याम शरदः शतम्।' इतना ही नहीं वह चाहता है मेरा शरीर पत्थर के समान दृढ़ हो और चन्द्रमा के समान दिनों-दिन बढ़कर खूब फले-फूले (गात्राण्यस्य वर्धन्तामंशुखाप्यायतामयम्) इस कामना-पूर्ति के लिए चाहिए नीरोग काया और इसकी रामबाण औषध है 'खेल'।

जीवन भोग का कोश है। इन्द्रिय-जनित सुख तथा इच्छाओं की तृप्ति के लिए चाहिए वीरता। कहते भी हैं, 'वीर भोग्या वसुंधरा।' वीरता का मूल है आत्म-विश्वास। आत्म-विश्वास जागरण का मूल-मंत्र है खेल।

खेल तीन प्रकार के हैं—मनोविनोद के खेल, व्यायाम के खेल तथा धनोपार्जन कराने वाले खेल। मनोरंजन के खेलों में ताश, शतरंज, कैरमबोर्ड, साँप-सीढ़ी, जादुई करिश्मे आदि आते हैं। व्यायाम के खेलों में एथलेटिक्स, कुश्ती, निशानेबाजी, नौकायन, डोंगीचालन, घूँसेबाजी (बाक्सिंग), भारोत्तोलन (वेटलिफ्टिंग), साइक्लिंग, फेंसिंग, जूडो, अश्वारोहण, तीरंदाजी, हॉकी, वालीबॉल, हैंडबॉल, फुटबॉल, टेनिस, टेबलटेनिस, क्रिकेट, खो-खो, कबड्डी आदि आते हैं। धनोपार्जन के लिए खेलों में सरकस का खेल, जादू के खेल तथा अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर खेले जाने वाले मैच आते हैं।

मनोरंजन के खेल मानसिक व्यायाम के साधन हैं। इनसे मानसिक थकावट दूर होती है, नवस्फूर्ति आती है, नवस्फूर्ति मन के संकल्पों का दृढ़ आधार है। सत्य संकल्प ईश्वर के प्रति सबसे बड़ी निष्ठा है, जीवन के शुभ और कल्याण का मार्ग प्रशस्त करता है।

व्यायाम के खेलों से शरीर की पुष्टि, गात्रों की कांति, माँस-पेशियों के उभार का ठीक विभाजन, जठराग्नि की तीव्रता, आलस्यहीनता, स्थिरता, हलकापन और मल, मूत्र, पसीना

आदि की नियमित शुद्धि होती है। पाचक रस अधिक निकलने से भूख बढ़ती है। शरीर में स्फूर्ति रहती है और मन में उत्साह रहता है।

- धनोपार्जन कराने वाले खेलों से न केवल धन की प्राप्ति होती है, बल्कि यश भी मिलता है। हॉकी खिलाड़ी परगटसिंह। पुरुष तैराक खजानसिंह। पहलवान ओमवीरसिंह। निशानेबाज सोमादत्त। क्रिकेटर कपिलदेव तथा समृद्ध स्पिन परम्परा को आगे बढ़ाने वाले अनिल कुम्बले। गोल्फ में जलवे दिखाने वाले मिल्खासिंह। भारतीय तैराकों के वर्तमान स्टार निशा मिलेट। टैनिस जगत् की शान लिएंडर पेस और महेश भूपति की जोड़ी। ओपन बैडमिंटन में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारत की प्रतिष्ठा बढ़ाने वाले पी. गोपीचन्द। देश का सबसे महँगा फुटबॉल खिलाड़ी बाईचुंग भूटिया। शतरंज में मात्र बारह वर्ष की उम्र में इंटरनेशनल वीमेन्स बैडमिंटन खिलाड़ी कोनुरुहम्पी। उभरती हुई महिला बैडमिंटन खिलाड़ी अर्पणा पोपट। भारोत्तोलक पद्मश्री कर्णम् मल्लेश्वरी तथा कुंजारानी देवी। गोल्डन गर्ल के नाम से प्रसिद्ध धाविका ज्योतिर्मय सिकदर, उड़नपरी पी.टी. उषा। महिला हॉकी खिलाड़ी नीलम जे. सिंह। इन सबने धन के साथ यश भी अर्जित किया है। राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर खेले जा रहे खेलों में, एशियाड और ओलम्पिक खेलों में धन और यश के साथ राष्ट्र-जीवन की अस्मिता भी जुड़ जाती है। पदकों की प्राप्ति राष्ट्रों के गौरव और गर्व का परिचायक है। इसलिए प्रत्येक राष्ट्र अपने श्रेष्ठ खिलाड़ियों पर गर्व करता है।

खेल-कूद से अपने दल के अनुशासन में रहकर साथियों के साथ पूर्ण सहयोग करते हुए खेलने की भावना का उदय होता है। कारण, सहयोग और अनुशासन के बिना खेल चल नहीं सकता। हॉकी में हॉफबैक खेलने वाला खिलाड़ी अनुशासन तोड़कर, साथियों से सहयोग न करते हुए क्या कभी फारवर्ड खेलने का प्रयास करेगा? कदापि नहीं। अत: खेल-कूद से अनुशासन में रहने और सहयोग से कार्य करने की भावना जागृत होती है।

खेल-कूद से मनुष्य में पूरी तन्मयता से कार्य करने की लगन जागृत होती है। वह जब कोई खेल खेलता है, तो विजय पाने के लिए अपने अन्दर की समस्त शक्तियों को केन्द्रीभूत कर लेता है। इसे 'Sportsman spirit' (खेल-भावना) भी कहते हैं। इससे जीवन के हर कार्य में खिलाड़ी-प्रवृत्ति से कार्य करने का स्वभाव बनता है।

खेलने में चोट लगने पर खिलाड़ी प्रतिशोध लेने की बजाय कष्ट को सहन करता है। इससे मानव में सहनशीलता की भावना बढ़ती है।

सीखने की प्रक्रिया में खेलों का विशिष्ट स्थान है। शैशव और बाल्यकाल में तो खेलों द्वारा सीखने की सहज प्रवृत्ति है। शिशु खेल-खेल में खड़ा होना, चलना और दौड़ना सीखता है। बालक खेल-खेल में भावी जीवन का विकास करता है। गुड्डे-गुड़ियों के खेल में बालिका गृहस्थ जीवन की शिक्षा लेती है। अपने से छोटे तथा शिशुओं को खिलाने में बालक-बालिका अनजाने में मातृत्व-पितृत्व का अभ्यास करते हैं।

(278) छात्र-जीवन में खेलों का महत्त्व

संकेत बिंदु—(1) खेल तन और मन स्वस्थ रखने के साधन (2) शरीर में लचकता और मन को मजबूत बनाना (3) स्वस्थ तन स्वस्थ मन (4) विद्यालय और कॉलेज में खेलों का महत्त्व (5) उपसंहार।

छात्र-जीवन में खेल छात्र के तन से स्वस्थ और मन से प्रसन्न रहने के साधन हैं। तन का स्वास्थ्य और मन की प्रसन्नता अध्ययन और मनन की ओर प्रेरित करती हैं। अध्ययन और मनन की प्रेरणा परीक्षा में अधिक अंक प्राप्ति का कारण बनती हैं। अधिक अंक प्राप्ति अर्थात् सर्वाग्रणी रहना छात्र-जीवन का लक्ष्य होता है। इस प्रकार खेल छात्र-जीवन के लक्ष्य प्राप्ति में सहायक तत्त्व हैं।

वह विशिष्ट कालखंड जिसमें बालक या बालिका किसी शिक्षा-संस्थान में अध्ययन करते हैं, छात्र-जीवन कहलाता है। जीविकोपार्जन की चिन्ता से मुक्त अध्ययन की समयावधि छात्र-जीवन है। छात्रावस्था जीवन के निर्माण का काल है। सर्जनात्मकता या निर्माण का मूल है स्वस्थ मस्तिष्क। छात्र-जीवन शिक्षा द्वारा मस्तिष्क के विकास का काल है। मस्तिष्क-विकास स्वस्थ शरीर पर निर्भर है। कहा भी है, 'Sound mind in a sound body.' अर्थात् स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क निवास करता है। स्वस्थ शरीर के लिए चाहिए—पाचनशक्ति का ठीक होना; वात, पित्त और कफ का समान रूप से संचालन; रस आदि धातुओं का निर्माण तथा मलों का नियमित विसर्जन। इन चारों की सुचारुता निर्भर करती है खेलों पर। छात्र-जीवन में मस्तिष्क के विकास के लिए खेल आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी हैं।

छात्र-जीवन प्राय: शैशव के पश्चात् किशोरावस्था से आरम्भ होता है। किशोरावस्था में शरीर की हड्डियाँ कोमल तथा लचकदार होती हैं। इन्हें सरलता से तरोड़ा-मरोड़ा जा सकता है। अत: विभिन्न प्रकार के खेलों के लिए इस अवस्था में शरीर आसानी से तैयार हो जाता है। भारत की सर्वश्रेष्ठ धाविका पी. टी. उषा ने एक साक्षात्कार में कहा था, 'मैंने अपना दौड़-प्रशिक्षण आठवीं कक्षा से आरम्भ किया था।' इससे स्पष्ट हुआ कि छात्र-जीवन में खेलों का अति महत्त्व है।

हड्डियों की कोमलता की तरह किशोरावस्था में छात्र का मन भी किशोर रहता है। किशोर मन का अर्थ है अपरिपक्व बुद्धि। इस किशोर-मन को जिस प्रकार तैयार करेंगे, भावी जीवन उससे प्रभावित होगा। खेलों द्वारा किशोर मन में संघर्ष के लिए सिद्धता, विजय प्राप्ति की सोच, दलीय अनुशासन, परस्पर सहयोग तथा तन्मयता का स्वभाव बनता है। पराजित होने पर आत्मग्लानि नहीं होती, बल्कि पुन: दक्षता प्राप्ति की कामना जागृत होती है। गिर-गिर कर उठने की चाह होती है। चोट लगने पर प्रतिशोध भावना नहीं पनपती, बल्कि सहिष्णुता का गुण उदित होता है। भावी जीवन की सफलता, प्रगति और समृद्धि

के लिए खेलों द्वारा निर्मित गुण व्यक्ति के जीवन में नींव के पत्थर साबित होते हैं। महापुरुषों का जीवन इस बात का साक्षी है कि उनकी चारित्रिक विशेषताओं का श्रेय किशोर जीवन के खेलों को है। नैपोलियन को पराजित करने वाले सेनापति नेलसन ने कहा था, 'The war of Waterloo was won in the fields of Edon.' अर्थात् मेरी विजय का समस्त श्रेय (किशोरावस्था) के खेल-मैदान को है।

छात्र-जीवन में तन की स्वस्थता अनिवार्य तत्त्व है। तन स्वस्थ नहीं होगा तो मन उदास रहेगा, पढ़ने में चित्त नहीं लगेगा, पाठ याद नहीं होगा। तन स्वस्थ नहीं होगा तो चुस्ती-फुर्ती काफूर होगी, उत्साह-उमंग दूर भागेंगे। किसी भी कार्य को करने में कष्ट का अनुभव होगा। चेहरे पर बारह बजे होंगे। 'होमटास्क' (गृहकार्य) पूरा नहीं होगा तो दण्ड से अपमानित होना पड़ेगा। कहावत प्रसिद्ध है, 'All work and no play makes Jack a dull boy.' अर्थात् खेल के अभाव में होशियार छात्र भी मूर्ख बन जाता है। अत: स्वस्थ छात्र के लिए खेल जरूरी हैं।

खेल भी दो प्रकार के हैं। एक, केवल मनोविनोद के खेल तथा दूसरे व्यायाम के खेल। ताश, शतरंज, कैरम, साँप-सीढ़ी आदि खेल केवल मनोरंजन करने वाले खेल हैं। इन खेलों से मन का व्यायाम होता है और रंजन भी। ताश का पत्ता फेंकने या शतरंज की चाल चलने में मन की सोच ही मानसिक व्यायाम है।

व्यायाम के खेलों में तन का व्यायाम तथा मन की कसरत, दोनों होती हैं। दौड़, आसन, कुश्ती, खो-खो, हॉकी, क्रिकेट, फुटबॉल आदि खेल व्यायाम के श्रेष्ठ साधन हैं। इन खेलों से शरीर सुडौल, सुगठित एवं सुदृढ़ होता है। पुट्ठे मजबूत होते हैं, सीना चौड़ा होता है गर्दन गोल तथा मोटी होती है। सभी इन्द्रियाँ ठीक तरह से कार्य करती हैं। शरीर में स्फूर्ति बनी रहती है और मन में उत्साह-लहराता है। छात्रों के लिए ऐसे ही खेल उत्तम हैं।

स्कूल तथा कॉलिज में अपनी पहचान बनाने तथा अपना महत्त्व प्रकट करने का एक तरीका है—योग्यता। योग्यता भी दो प्रकार की हैं—पढ़ाई की योग्यता और खेल-कूद की योग्यता। यश की दृष्टि से खेल-कूद की योग्यता के सम्मुख पढ़ाई की योग्यता फीकी है। खिलाड़ी को छात्र-भीड़ में भी पहचाना जाएगा। लोग उंगली के इंगित से उसकी पहचान प्रकट करेंगे। संगी साथी मैत्री भाव बढ़ाएंगे, गुरुजन स्नेह प्रदान करेंगे। यह ख्याति और प्रतिष्ठा खेलों का कृपा-प्रसाद ही तो है।

छात्र-जीवन में खेल छात्र को सम्मानित करने के कारण भी हैं। स्कूल-कॉलिज में खेल प्रतियोगिताएँ होती हैं। प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय स्थान प्राप्त खिलाड़ी तथा प्रथम आई 'टीमें' पुरस्कृत होती हैं। इतना ही नहीं अन्तर्नगरीय, अन्तर्प्रान्तीय तथा अन्तर्देशीय छात्र खेल आयोजित होते हैं। इनमें विजेता खिलाड़ी न केवल पुरस्कृत होते हैं, अपितु यश के भागी भी बनते हैं। छात्र जीवन के खेलों में अग्रणी खिलाड़ियों से ही एशियाड तथा ओलम्पिक खेलों के खिलाड़ी चुने जाते हैं। इस प्रकार खेल छात्रों को कीर्ति प्रदान करते हैं।

छात्र-जीवन में खेलों को पढ़ाई से अधिक महत्त्व देने का अर्थ है, कम अंक पाने पर भी कालेज में प्रवेश पाने का विश्वास। पढ़ाई में फिसड्डी रह गए, येन-केन प्रकारेण उत्तीर्ण तो हो गए, या तृतीय श्रेणी में या द्वितीय श्रेणी अंक लेकर उत्तीर्ण हुए तो कॉलेज में प्रवेश कहाँ? प्रवेश के अभाव में जब आप निराश हैं तो तभी पता चलता है कि खिलाड़ियों के कोटे से आप प्रवेश पा सकते हैं। असम्भवता में सम्भवता No admission में Yes admission छात्र-जीवन में खेलों का चमत्कार है।

छात्र-जीवन में खेल छात्र के शारीरिक और मानसिक विकास और मनोरंजन के साधन हैं। शिक्षण-संस्था तथा समाज में अपनी पहचान और प्रसिद्धि के माध्यम हैं। भावी जीवन में संघर्ष और विजय-श्री के वरण की पृष्ठभूमि हैं।

विज्ञान

(279) विज्ञान : वरदान और अभिशाप/ विज्ञान का महत्त्व / आधुनिक युग को विज्ञान की देन

संकेत बिंदु—(1) मानव के लिए कामधेनु (2) यातायात, मनोरंजन और मुद्रण में क्रांति (3) चिकित्सा और घरेलू जीवन पर प्रभाव (4) आवास और भोजन समस्या का हल (5) मानव के लिए हानिकारक।

विज्ञान मानव के लिए कामधेनु है, कल्पतरु है। यह प्राणिमात्र के लिए अमृत-कुंड है। जीवनदायिनी शक्ति का पुंज है। प्रकृति की गुप्त निधियों के द्वार खोलने की कुंजी है। विश्व को पारिवारिक रूप प्रदान करने का माध्यम है। वस्तुत: विज्ञान मानव-कल्याण का नेत्र है, जो अहर्निश मानव-कल्याण की चिन्ता में लीन है।

आज का विश्व विज्ञान के दृढ़ स्तम्भ पर टिका है, अत: आज का युग विज्ञान का युग कहलाता है। प्रतिदिन होने वाले नवीन वैज्ञानिक आविष्कार संसार में नूतन क्रांति कर रहे हैं। आज मानव-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विज्ञान का देवता अपना आधिपत्य जमा चुका है। उनकी आशातीत उन्नति से आज सभी चमत्कृत हैं। विज्ञान की इस महत्ता का एकमात्र कारण है—विज्ञान द्वारा प्रदत्त विभिन्न आविष्कार।

विज्ञान की इस आशातीत उन्नति और सर्वव्यापकता का श्रेय पिछली चार शताब्दियों को है, जिसमें क्रमशः जापान, जर्मनी, इंग्लैंड, रूस, अमेरिका आदि देश एक-से-बढ़कर एक आश्चर्यजनक आविष्कार करके विज्ञान को चरम-सीमा पर पहुँचा रहे हैं। विज्ञान के इन आविष्कारों को दैनिक जीवन सम्बन्धी, शिक्षण, चिकित्सा, यातायात, संचार आदि अनेक वर्गों में बाँटा जा सकता है।

यातायात-साधनों के विकास ने जहाँ मानव को सरलतापूर्वक एक स्थान से दूसरे स्थान पर कम-से-कम समय में पहुँचाया, वहाँ सम्पूर्ण विश्व एक राष्ट्र-सा लगने लगा। विज्ञान की कृपा से साइकिल, मोटरसाइकिल, कार, बस, रेल, वायुयान, जलयान आदि वाहन बने। यातायात सरल हुआ, सुगम हुआ और हुआ द्रुतगामी। मीलों का सफर मिनटों में तय होने लगा। पृथ्वीपुत्र-मानव चन्द्रमा, शुक्र-ग्रह एवं मंगल-ग्रह तक पहुँचने का दम भरने लगा। हेलीकॉप्टर तो जंगल में या खेत में, जहाँ चाहो वहाँ उतार देता है। सच्चाई यह है कि संसार सिमिट कर इतना बौना हो गया कि तीन पग में सारी धरती नाप लीजिए और आधे में आसमान पर चढ़ जाइए।

अंधकार में प्रकाश हुआ, अमावस पूनम में बदली। विद्युत् ईंधन बनी। पंखे, कूलर, हीटर, वातानुकूलन के यन्त्र बने। रेडियो, टेलीविजन-रेडियोग्राम, लाउड स्पीकर, सिनेमा आदि संचार और मनोरंजन के माध्यम बने। इन आविष्कारों से मानव-जीवन सुखी, सुविधा-सम्पन्न हुआ, ज्ञानसम्पन्न और मनोरंजनपूर्ण बना। विश्व में घटित घटनाओं के सजीव चित्र घर की चारदीवारी में बैठे टेलीविजन पर देखने को मिले। चलचित्र द्वारा मनोरंजन हुआ। उपग्रह टेक्नॉलोजी ने तो संचार-सेवाओं में चार चाँद ही लगा दिए।

मुद्रण-विज्ञान का क्षेत्र व्यापक हुआ। पुस्तकों के द्वारा मानव शिक्षित हुआ, ज्ञानी हुआ। आगामी पीढ़ी के लिए ज्ञान का भंडार सुरक्षित रख सका। मुद्रण-कला ने ही समाचार-पत्र एवं पत्रिकाओं को भी जन्म दिया। आज भारत में ही अंग्रेजी के 353, हिन्दी के 2202 तथा अन्य भाषाओं के 2335 दैनिक समाचार-पत्र विश्व के नवीनतम सचित्र-समाचार और ज्ञानवर्धक सामग्री देने में मानवीय और भारतीय ज्ञान-कोष के विकास में सफल हैं

चिकित्सा-क्षेत्र में विज्ञान की सफलता अद्भुत है। दवाइयों, इंजेक्शन, ऐक्स-रे, रेडियम एवं विद्युत्-चिकित्सा ने मृतक समान मानव को भी प्राणदान दिया। छोटी-छोटी शल्य-क्रिया की बात छोड़िए, आज तो चिकित्सकों को हृदय-रोपण तक में सफलता प्राप्त हो रही है। मशीन जिगर का काम करने लगी है। कृत्रिम गर्भाधान से 'ट्यूब बेबी' जन्म लेता है। प्लास्टिक सर्जरी ने कुरूप को भी सुन्दरता प्रदान कर दी। 'पानी केरा बुद्-बुदा त्यों मानुस की जात' वाली उक्ति निरर्थक-सी हुई।

समाचार भेजने के क्षेत्र में विज्ञान ने अद्भुत योगदान दिया। टेलीफोन, तार, फेक्स, ई-मेल, टेलेक्स और रेडियो से तुरन्त समाचार पहुँचने लगे हैं।

विज्ञान ने हमारे घरेलू जीवन को भी प्रभावित किया। बिजली तथा गैस भोजन बनाने लगी, सिलाई की मशीनें कपड़े सीने लगीं। पिसाई की मशीनें गेहूँ, जौ, बाजरा पीसने लगीं। मशीनों द्वारा गन्ने से गुड़ और चीनी बनने लगी। वस्त्र, जुराब, बनियान बनाने और स्वेटर बुनने की मशीनें मिनटों में परिधान तैयार करने लगीं।

और तो और, मानव-मस्तिष्क का काम भी लोहे की मशीन 'कम्प्यूटर' करने लगा है। शरीर में रासायनिक परिवर्तन, स्नायुओं की गतिविधि, रोगों का निदान, औषधियों का विधान, सब कम्प्यूटर करेंगे। हवाई जहाजों की गति, दूरी, ऊँचाई, खतरा, सभी कम्प्यूटर से इंगित होंगे। उद्योग जगत् में उत्पादन प्रक्रिया के सभी चरणों पर नियंत्रण से कम्प्यूटर ने क्रांति ही ला दी है।

आवास की समस्या पर्याप्त मात्रा में हल हुई है। विज्ञान की कृपा से गगनचुम्बी अट्टालिकाओं के निर्माण से यह सम्भव हो रहा है। इन अट्टालिकाओं पर चढ़ने के लिए लिफ्ट और स्केलेटर का निर्माण किया गया है। कुछ ही क्षणों में अट्टालिकाओं की किसी भी मंजिल पर पहुँच जाइए। दूसरी ओर, वातानुकूलन ने गर्मी में सूर्य के प्रकोप से और सर्दी में हाड कंपा देने वाली शीत से जीवन सुरक्षित किया। उदर-पूर्ति को विज्ञान ने 'भूख-मिटावन' से हरा कर विविध व्यंजनों तथा पेयों से तृप्त किया। स्वादिष्ट और स्वास्थ्य कर भोजन देकर मनुष्य के स्वाद को बदला। समय की बचत के लिए 'फास्ट फूडिंग' का आविष्कार किया।

कुछ लोग विज्ञान को मानव के लिए हानिकर भी मानते हैं। उनका कहना है कि एक ओर विज्ञान द्वारा निर्मित अस्त्र-शस्त्र और बम नागासाकी और हिरोशिमा जैसे सुन्दर नगरों को क्षणभर में खंडहरों में बदल देते हैं तो दूसरी ओर, यान्त्रिक उन्नति ने मानव को आलसी, सुस्त और निकम्मा बना दिया है। तीसरी ओर, यान्त्रिक खराबी और मानव की जरा-सी भूल जीवन को नष्ट कर देती है, पदार्थ का अस्तित्व समाप्त कर देती है। नभ में उड़ता विमान जरा-सी यान्त्रिक खराबी से कुछ ही क्षणों में यात्रियों को परलोक में पहुँचाकर धूल चाटने लगता है। बिजली के नंगे तार पर भूल से हाथ लगा और मृत्यु से साक्षात्कार हुआ। खाना बनाने की गैस रिसी नहीं कि आग लगते देर नहीं लगती। नगरों में प्रदूषण की समस्या विज्ञान की ही देन है, जिसके कारण न स्वच्छ वायु मिल पाती है, न स्वच्छ जल प्राप्त होता है और न शुद्ध भोजन प्राप्त होता है।

सच्चाई यह है कि आज सभी राष्ट्रों का अधिकांश बजट वैज्ञानिक उन्नति द्वारा मानव को स्वस्थ, सुखी, समृद्ध और जीवन को सर्वाधिक आनन्दप्रद बनाने पर खर्च हो रहा है। भूमि, जल तथा नभ के विस्फोटों द्वारा हो या नभ में उपग्रह की स्थापना द्वारा, विज्ञान मानवीय कल्याण में अग्रसर है।

ईश्वर की तीनों शक्तियों ब्रह्मा (उत्पत्ति), विष्णु (पालन), तथा महेश (विनाश) को विज्ञान आज अपने हाथों में ले रहा है—मानव के सुख, समृद्धि और कल्याण के लिए।

(280) दैनिक जीवन में विज्ञान

संकेत बिंदु—(1) विज्ञान, मानव का सच्चा मित्र (2) दिनचर्या का आरम्भ वैज्ञानिक वस्तुओं से (3) विज्ञान के आविष्कार से बनी वस्तुएँ (4) कार्यालय में विज्ञान प्रदत वस्तुओं का प्रयोग (5) उपसंहार।

दैनिक-जीवन में विज्ञान मानव का सच्चा दोस्त है, जो मित्र के कल्याण में रत रहता है और पग-पग पर उसकी शारीरिक और मानसिक चिन्ताओं को कम करने में योग देता है। जीवन को सरल, सुविधापूर्ण और सरस बनाने में अपना कर्तव्य समझता है।

स्वेट मार्टेन ने कहा है—'हमारा सदा यही लक्ष्य रहा है कि हमारा जीवन सुख और आनन्द से परिपूर्ण हो।' महाकवि जयशंकर प्रसाद प्रसन्नता को ही जीवन का सत्य मानते हैं। सत्य का अर्थ है विज्ञान। कारण, विज्ञान सत्य का सार है। अत: जीवन में सुख, आनन्द और प्रसन्नता के लिए विज्ञान परमावश्यक है। विज्ञान ने सम्पूर्ण जीवन को आज न केवल भौतिक सुविधाओं से परिपूर्ण किया है, अपितु मनुष्यों के दैनिक जीवन में भी सुविधाओं का अंबार लगा दिया है।

दिनचर्या आरम्भ होती है ब्राह्ममुर्हूत में शय्या त्यागने के उपरान्त। शौच आदि से निवृत्त होकर दाँत साफ करने के पश्चात् बिजली के शेवर से अपनी शेव करते हैं, कुकिंग गैस और कूकर प्रातराश और भोजन तैयार करते हैं। टूथपेस्ट, दंत मंजन, शेवर, गैस, कूकर विज्ञान के आविष्कार हैं। यदि चाय में पड़ने वाली चीनी कार्बन, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन से बनी वैज्ञानिक देन ही तो है तो भोजन कृषि-विज्ञान की देन है।

नगरों के दैनिक-जीवन में तलब होती है समाचार-पत्र की। समाचार-पत्र क्या है ? दुनिया की ताजा खबरों का संग्रह और विशेष घटनाओं पर सम्पादकीय और विशेष लेख। समाचार-संग्रह का विशेष साधन है टेलीप्रिंटर। मुद्रण का साधन है विशालकाय छापे की मशीनें। छपता है कागज पर। ये सब प्रक्रिया और साधन विज्ञान की देन हैं जिससे आदमी दैनिक जीवन का 'करेंट नालिज मैन' अर्थात् सद्यज्ञानी बन जाता है।

काम पर जाएंगे तो दोपहर का भोजन भी साथ ले जाएंगे। भोजन ठंडा हो गया तो खाने का मजा किरकिरा हो जाएगा। इसलिए विज्ञान ने एअर टाइट फूड-फ्रीजर लंच बॉक्स बनाए। अब आप जब भी खाएंगे, खाना गर्म ही रहेगा।

आपने काम पर जाना है। पैदल जाएंगे ? नहीं। कारण समय अधिक लगेगा, पैदल चलने से थकान बढ़ेगी। विज्ञान ने कृपा की। काम पर जाने के लिए साइकिल, मोटरसाइकिल, स्कूटर, कार, बस, ट्राम, ट्रेन बना दीं। अब आप आराम से कम समय में, बिना थके काम पर पहुँच सकते हैं।

कार्यालय पहुँचे। हाय राम ! चार-पाँच मंजिलें चढ़नी पड़ेंगी। नानी-दादी याद आएगी। नहीं साहब, नानी दादी याद न कीजिए। विज्ञान ने 'लिफ्ट' प्रदान कर दी। लिफ्ट में खड़े हुए, बटन दबाया और एक मिनिट में चौथी या पाँचवीं मंजिल पर पहुँच गए।

कार्यालय में अंधेरा है, दूकान में प्रदर्शित वस्तुओं के लिए प्रकाश चाहिए। विज्ञान ने प्रकाश का प्रबन्ध कर दिया, विद्युत् प्रदान कर। बटन दबाया और कार्यालय प्रकाश से भर गया। इस प्रकाश में भी आपके नयन आपका साथ नहीं दे रहे। विज्ञान ने कहा, 'लो बेटा! चश्मा ले और आँखों पर चढ़ा। तुझे सब कुछ दिखाई देगा। चश्मों में बोझ लगता है तो कानटेक्ट लेंस लगवा लो।'

कार्यालय में काम करते थक गए या सिर-दर्द हो गया। चक्कर आने लगे। सिर पकड़ कर बैठ गए। तभी विज्ञान ने आपको उठाया। थकान है तो विटामिन 'बी कम्पलेक्स' की गोली लो। सिर-दर्द है तो एस्प्रो या एनासिन लो। बेल्ड प्रेशर है तो 'कलकीगार्ड' की एक गोली खालो। मन उदास न करो। विज्ञान ने कहा, मैं तुम्हारे साथ हूँ।

आज सर्दी बहुत है। नजला, जुकाम और खाँसी ने चेहरा बिगाड़ दिया है। नाक पोंछते-पोंछते रूमाल भी जवाब दे गया। ऊपर से हरारत! हाय माँ! कहीं बुखार न हो जाए। विज्ञान ने मानव को झकझोरा। पीठ पर थपकी दी। 'जा कोलड्रिन, विक्स या क्रोसीन ले ले।' तंग करने और चेहरा बिगाड़ने वाली बीमारी छू मन्तर हो जाएंगी। आदमी खुश!

आदमी का पैर फिसला। चोट लग गई। घुटनों में दर्द हुआ और गैस की कुकृपा से हाथ जल गया तो आदमी रोया-चिल्लाया। प्रभु विज्ञान ने मानव को सुझाया चोट पर 'आयोडैक्स', घुटनों पर 'मूव' और जले पर 'बरनोल' लगा।' तेरा कष्ट दूर हो जायेगा।

इतना ही नहीं, यदि दैनिक जीवन में और कोई भी रोग या कष्ट होता है तो डॉक्टर के पास जा। वह मेरे वरदान से तुझे ठीक कर देगा।

कार्यालय की फाइलें, योजनाएं, जोड़-गुणा-घटा का हिसाब करते-करते तंग आ गया। विज्ञान ने मानव के सिर पर आशीर्वाद का हाथ रखा और उसे 'कम्प्यूटर' रूपी खिलौना दे दिया। 'ले प्रज्ञा! तू दिमाग न खराब कर। तेरा दिमागी काम यह करेगा, वह भी अत्यल्प समय में।'

शाम को थका-माँदा आदमी घर पहुँचा। चाय या काफी पीकर शरीर में स्फूर्ति आई, पर मन! उसे चाहिए मनोरंजन। विज्ञान ने हँसकर आदमी को गुद्गुदाया। दूरदर्शन का बटन दबा और मनोरंजन कर। मनोरंजन ही नहीं ज्ञानवर्धन भी। अब तो मैंने इसमें अनेक चैनल भर दिए हैं ताकि रात-दिन इसे देखता रहे और कभी उदास न हो। वैसे आकाशवाणी भी तेरा मनोरंजन कर सकती है।

दिनचर्या का अंतिम पड़ाव है शय्या। आदमी शय्या पर लेट गया, किन्तु नींद नहीं आ रही। आदमी घबरा गया, नींद नहीं आएगी तो प्रातः शरीर टूटा-टूटा रहेगा। विज्ञान ने मानव के सिर पर आशीर्वाद का हाथ रखा और 'स्लीपिंग पिल्स' खिला दी। मनुष्य खर्राटे लेने लगा।

दैनिक जीवन में विज्ञान ने अपने प्रयोग पर सदा सचेत और सावधान रहने की हिदायत भी दी। उसे समझाया। मेरे जरा से गलत प्रयोग से तुम भयंकर हानि उठा सकते हो। बटन

की जगह नंगे तार पर हाथ लगा दिया तो सीधे यमपुरी पहुँच जाओगे। अगर गैस का बटन बंद नहीं किया तो रिस-रिस कर घर को 'ओम् स्वाहा' कर देगी।

इस प्रकार विज्ञान ने दैनिक जीवन में पग-पग आने वाली कष्ट-कठिनाइयों को यथासम्भव दूर कर जीवन को सुख-सुविधापूर्ण बिना दिया है।

(281) विज्ञान और विश्व-शांति

संकेत बिंदु—(1) विज्ञान और विश्व-शांति का संबंध (2) विश्व-शांति भंग होने के कारण (3) अमेरिका और रूस में होड़ (4) विश्व शांति का आधार-स्तम्भ विज्ञान (5) उपसंहार।

विज्ञान और विश्व-शान्ति का सम्बन्ध विरोधाभास पूर्ण दिखाई दे रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि विज्ञान 'चोर को कहता है तू चोरी कर, शाह को कहता है तू जागता रह।' एक ओर विज्ञान के उत्कर्ष से विश्व-शान्ति के लिए प्रयत्न आरम्भ किये गए तो दूसरी ओर विश्व को नष्ट करने के लिए भयंकर घातक अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण हुआ। आज उन अस्त्रों-शस्त्रों के सम्भावित प्रयोग से सभी राष्ट्र भयभीत भी हैं। वे डरे हुए इसलिए हैं कि कहीं इन घातक अस्त्र-शस्त्रों के प्रयोग से विज्ञान रूपी भस्मासुर अपने प्रभाव से मानवों का विनाश करता हुआ स्वयं ही नष्ट न हो जाए तथा पृथ्वी का अस्तित्व ही समाप्त न कर दे।

विश्व-शान्ति भंग होने के दो प्रमुख कारण हैं—प्रकृति का क्रूर अट्टहास अर्थात् प्रलयंकारी रूप तथा विश्व के महान् राष्ट्रों का युद्ध-भूमि में उतर आना।

प्रकृति का प्रलयंकारी रूप विज्ञान के अधीन है। विज्ञान ने मनुष्य को ऐसा गुरु-मंत्र प्रदान किया है, जिससे प्रकृति की गुप्त निधियों के द्वार सहज में खुल जाते हैं। दूसरे, प्रकृति विज्ञान की चेरी है। प्रकृति पर विजय पाकर विज्ञान ने ऐश्वर्य और वैभव विश्व के चरणों में उँडेल दिया है। फिर भी चेरी के नखरे सम्भावित हैं। जैसे भूकम्प, जल-प्रलय और ज्वालामुखी-विस्फोट। इनसे क्षेत्र-विशेष की जनसंख्या पीड़ित हो सकती है। ये नखरे इतने भयंकर नहीं हो सकते कि विश्व शान्ति को ही खतरा उत्पन्न हो जाए।

विश्व के दो महान् राष्ट्र हैं—रूस और अमेरिका। 'वर्ल्ड किंग' (विश्व सम्राट्) बनने की इन दोनों राष्ट्रों में होड़-सी लगी थी। इसके लिए वे व्यापारिक प्रलोभन देकर, विकास की सुविधाएँ देकर, अस्त्र-शस्त्र तथा दैनिक जीवन की उपयोगी वस्तुएँ देकर, ऋण देकर, विश्व के अन्य राष्ट्रों को उपकृत करते थे। विश्व में अपने अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न करने के लिए राष्ट्रों के राष्ट्राध्यक्षों को बदलवा देते थे। सैनिक क्रान्ति करवा देते थे। प्रजातांत्रिक राष्ट्रों में चुनाव के समय और चुनाव के पश्चात् पानी की भाँति रुपया बहाकर अपने समर्थक उम्मीदवारों को विजय दिलवाने और विपक्षी प्रत्याशियों को खरीदने का प्रयत्न करते थे।

कूटनीति के बल पर अमेरिका ने विश्व-शक्ति में अपने प्रतिद्वन्द्वी राष्ट्र रूस को खंडित करवा कर उसकी विश्व-शक्ति पहचान को ही क्षीण कर दिया। विज्ञान-शक्ति के सुदृढ़ स्कंधों पर वह 'वर्ल्ड किंग' (विश्वसम्राट्) बन गया है। अपनी विज्ञान-शक्ति के बल पर पाश्चात्य राष्ट्रों को इकट्ठा कर इराक से युद्ध कर उसे नाक रगड़वाता है तो युगोस्लाविया की सम्पत्ति जब्त करवाता है और विश्व से उसका सम्बन्ध विच्छेद करवाता है। विश्व के अनेक राष्ट्रों को धमकी देता है, मानो उनका जीवन-मरण अपने हाथ में रखना चाहता है।

विश्व-शान्ति के शत्रु ये महान् राष्ट्र जहाँ एक-दूसरे पर वाग्वाण चलाते रहते हैं, वहाँ प्रत्यक्ष मैदान में उतरकर हाथ दिखाने से डरते हैं। आज बड़े राष्ट्रों ने प्रक्षेपणास्त्रों, अणु बमों तथा न्यूक्लीयरों का कल्पनातीत संग्रह कर रखा है। विज्ञान के इस संहारक शस्त्र-प्रयोग में जिसने भी पहल की, वह दूसरे राष्ट्र को कुछ ही मिनटों में श्मशान बनाकर रख देगा, किन्तु करता कोई नहीं। मित्र-राष्ट्रों की सेना द्वारा ईराक पर संहारक-शस्त्रों का प्रयोग न करना, इसका ज्वलंत प्रमाण है। द्वितीय विश्व-युद्ध में अमेरिका द्वारा हाईड्रोजन बमों की मार से ध्वस्त हिरोशिमा और नागासाकी के श्मशान की बुझी राख आज भी युद्ध का नाम सुनकर भय खाती है, अत: यह सत्य है कि विश्व तृतीय विश्व-युद्ध के कगार पर पहुँच कर भी विज्ञान के कारण वापिस मुड़ जाता है। अत: विश्व-शान्ति का आधार-स्तम्भ विज्ञान है।

सच्चाई यह है कि आज विज्ञान की कृपा से विश्व में शान्ति है, 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना विद्यमान है। विश्व के राष्ट्र एक-दूसरे के सुख-दु:ख के साथी हैं, एक-दूसरे से लाभान्वित होते हैं। जिन राष्ट्रों के पास कच्चा माल है, वे कच्चा माल देकर सन्तुलन बनाए हुए हैं, मानव को अभाव की पीड़ा से बचाए हुए हैं।

विज्ञान ने विश्व-मानव को सुख और सम्पन्नता प्रदान करने के लिए मनुष्य की दिनचर्या में घर कर लिया है। उसको सुख देने का प्रत्येक साधन विज्ञान ने उपलब्ध करा रखा है। विज्ञान की सहायता से मनुष्य शान्तिपूर्वक इहलोक के सुखों को भोग सकता है।

विज्ञान के कारण विश्व की शान्ति के लिए संकट का अनुभव करते हुए विश्व की तृतीय शक्ति 'तटस्थ राष्ट्रों' ने नारा लगाया है—'विज्ञान को शान्ति-कार्यों की ओर उन्मुख किया जाए। विनाशक शस्त्रों की होड़-समाप्ति के लिए संहारक शस्त्रों के निर्माण पर प्रतिबन्ध लगाया जाए।' मद में मतवाले राष्ट्र इस आवाज के महत्त्व का मूल्यांकन करते हुए कुछ संहारक शस्त्रों के भण्डार को समाप्त करने की बात कर रहे हैं, किन्तु स्वार्थवश कर नहीं रहे।

दूसरी ओर अमेरिका,रूस तथा ग्रेट ब्रिटेन ने परमाणु प्रसार निषेध संधि (CTBT) की शुरूआत की। इन तीनों की चौधराहट से विश्व के अनेक राष्ट्र इस संधि पर हस्ताक्षर कर चुके हैं। परमाणु प्रसार निषेध संधि विश्व-शांति की दिशा में एक सुदृढ़ प्रयास ही तो है,

पर जब तक ये राष्ट्र ही अपना परमाणु-आयुध भंडार नष्ट नहीं करेंगे, क्या वास्तव में शान्ति सम्भव होगी ?

नेपोलियन के शब्दों में, 'युद्ध असभ्य लोगों का व्यापार है।' वह व्यापार छोटे-मोटे राष्ट्र करते रहें, तो विश्व-शान्ति को खतरा नहीं होता। इजराइल-अरब-फिलिस्तीनी युद्ध तथा भारत-पाक युद्ध इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं। इन युद्धों रूपी सुनार की खट्-खट् से विश्व-शान्ति की निद्रा तो उचटी, किन्तु निद्रा भंग नहीं हुई। विश्व-शान्ति भंग तभी होगी, जब विश्व के महान् राष्ट्र युद्ध-भूमि में उतर आएँगे अथवा विश्व पर्यावरण प्रदूषित हो जाएगा।

(282) मानव विज्ञान का दास है

संकेत बिंदु—(1) वर्तमान युग विज्ञान का युग (2) मानव जीवन के आधार विज्ञान की देन (3) भोजन, कपड़ा और मकान विज्ञान की कृपा से (4) विद्युत और औषधि में विज्ञान का योगदान (5) उपसंहार।

वर्तमान युग विज्ञान का युग है। विज्ञान के नित्य नवीन आविष्कार मानव को अनेक सुख और सुविधाएं प्रदान कर रहे हैं। इनके कारण मानव विज्ञान के प्रभाव तथा वश में होता जा रहा है, इसलिए वह उसका दास है। मानव विज्ञान-सेवा में पूर्णतः समर्पित है, इसलिए वह विज्ञान का दास है। विज्ञान ने मानव-जीवन गिरवी रखा हुआ, इसलिए मानव उसका दास है।

स्थिति यह हो चुकी है कि जो विज्ञान पहले मानव का सेवक था, आज वह उसका स्वामी बन चुका है। विज्ञान ने मनुष्य को ऐसा गुरुमंत्र प्रदान किया है, जिससे प्रकृति की गुप्त निधियों के द्वार सहज में खुल जाते हैं। इसलिए मानव ने विज्ञान की कृतज्ञता मानकर उसका दासत्व स्वीकार किया। विज्ञान ने मनुष्य को अपरिमित शक्ति प्रदान की, प्रकृति को उसकी चेरी बनाया और ऐश्वर्य तथा वैभव को उसके चरणों में उँडेल दिया। काल और स्थान की सीमाएँ मिटा दीं। इसलिए विज्ञान उसका स्वामी है और मनुष्य उसका दास। विज्ञान ने अन्धों को आँखें दी है और बहरों को सुनने की शक्ति। मानव जीवन को सुन्दर और दीर्घायु बनाया और उसे भय से मुक्त किया। रोगों को रौंदकर मानव को नीरोग किया। ऐसे महाबली विज्ञान के सम्मुख मानव बौना है, उसके हाथों की कठपुतली है, इसलिए उसका दास है। आर्थर बाल्फोर के शब्दों में, 'विज्ञान सामाजिक परिवर्तन का एक महान् उपकरण है, आधुनिक सभ्यता के विकास में सहयोगी सभी क्रान्तियों का संयोजक है।' ऐसे विज्ञान का दास बनकर मानव अपने जीवन की कृतार्थता मानता है।

मानव जीवन प्राण पर आधारित है। प्राण है—श्वास। यह श्वास क्या है ? वायु। और वायु नाइट्रोजन, ऑक्सीजन, आर्गन, कार्बनडाईऑक्साइड तथा सभी गैसों का मिश्रण ही तो हैं। गैसें विज्ञान की शाखाएँ हैं।

जल को मानव का जीवन माना जाता है। कारण, यह पीने, नहाने, कपड़े धोने, सफाई, कृषि, उद्योग के अतिरिक्त शरीर के लिए अत्यन्त उपयोगी है। शरीर के लगभग एक तिहाई भाग में पानी रहता है। शरीर में पानी की उपस्थिति से रक्त तरल बना रहता है। पानी क्या है? हाइड्रोजन और ऑक्सीजन का एक रासायनिक यौगिक है। जीवन जीने के लिए मनुष्य को जल चाहिए, इसलिए वह विज्ञान की शरण में जाता है। फिर विज्ञान मानव को समझाता है कि पीने का पानी रंगहीन, गंधहीन, ठोस पदार्थों तथा जीवाणुओं से रहित एवं हानिकारक नाइट्रेट; नाइट्राइट और अमोनिया से मुक्त होना चाहिए।

अन्न मानव-जीवन का प्राण है। अन्न मिलता है कृषि कर्म से। कृषि स्वतः विज्ञान की एक शाखा है। कृषि-विज्ञान कृषि की सघनता, शक्तिमत्ता एवं नीरोगता का परिचायक है। 'बुभुक्षितः किम् न करोति पापम्।' भूखा आदमी दासत्व तो क्या पापत्व भी स्वीकार लेता है। इसलिए मानव ने भोजन के लिए भी विज्ञान का दासत्व ओढ़ा।

हवा, पानी और भोजन की अनिवार्यता और उसके कारण मानव का विज्ञान की दासता स्वीकार करने की विवशता के बाद, हम देखते हैं कि कपड़ा और मकान भी मानव के लिए आवश्यक हैं।

वस्त्र मानव शरीर को गरमी, सर्दी और वर्षा से बचाते हैं और साथ ही मानव के बाह्य व्यक्तित्व के निर्माण करने वाले तथा सुन्दरता प्रदान करने वाले भी हैं। वस्त्र बिना नंगा मनुष्य जंगली और असभ्य कहलाता है। वस्त्र चाहे सूती हों या ऊनी, नाइलान के हों या टेरीलीन, रेयान के हो या पालीएस्टर के, सबकी निर्माता है मशीनों की वैज्ञानिक प्रक्रिया। परिणामस्वरूप विज्ञान की इस शाखा का नामकरण हुआ 'वस्त्र-विज्ञान'। सभ्य दिखना और बाह्य व्यक्तित्व का प्रदर्शन मानव की कमजोरी है। उसे वस्त्र-विज्ञान की कृपा को साभार स्वीकार करके उसके सामने समर्पण करना पड़ा।

मकान जीवनोपयोगी पदार्थों का संग्रह-स्थल है। परिवार अपनत्व के वातावरण निर्माण का कारण है। अतः मकान जीवन की आवश्यकता ही नहीं वर्तमान युग की अनिवार्यता भी है। मकान का निर्माण, उसके नियम, सिद्धांत, सब विज्ञान 'वास्तु-विज्ञान' के अन्तर्गत आते हैं। कलात्मक, स्वास्थ्यवर्द्धक, वातानुकूलित भवनों के लिए मानव विज्ञान की शरण में जाता है।

मानव को अन्धकार से प्रकाश में लाने का श्रेय है विज्ञान की विद्युत् किरणों को है। बटन दबाया और प्रकाश हो गया। अमावस में पूर्णिमा का-सा प्रकाश। नहीं तो पड़े रहिए अन्धकार में। तन-मन सब निराश। इसलिए मानव विद्युत् का दास है।

मानव की कामना रही है—'जीवेम शरदः शतम्, अदीनाः स्याम शरदः शतम्।' रोग, चोट, बीमारी और शरीर के अवयवों का ढीलापन, टूटना, डिस्लोकेट होना आम बात है। इस मानव-प्रकृति की स्वाभाविकता को खुशी में बदलने के लिए विज्ञान ने प्रकृति की गुप्त निधि के द्वार औषध-चिकित्सा तथा शल्य-क्रिया रूप में खोले। परिणामतः आज का आदमी बीमारियों और शरीर के टूटते, चोट खाते अवयवों से निश्चिंत है। क्योंकि वह

जानता है कि विज्ञान नामक प्रभु की कृपा-दृष्टि उस पर है। इसलिए वह उस प्रभु का दास बना हुआ है।

मानव घर में स्थिर खड़ी रहने वाली कोई मिट्टी की मूर्ति नहीं है। उसे दूर-दूर की यात्रा करनी पड़ती है। दूरस्थ बैठे व्यक्ति से सम्बन्ध और सम्पर्क बनाना पड़ता है। साइकिल, मोटर-साइकिल, कार, बस, वायुयान, जलयान, अन्तरिक्षयान उसके वाहन बने। लम्बी दूरी का समय मिनटों में तय किया। टेलीग्राफ, टेलीफोन, टेलीप्रिंटर, फैक्स, रेडियो, दूरदर्शन इन्टरनेट, उपग्रह मानव के संदेश वाहक दूत बने। इन दूतों की कृपा से मानव जीता है, इनकी खराबी और अभाव में मानव सिर धुनता है। लगता है सभ्य मानव-जीवन आज के संचार और यातायात साधनों के पास गिरवी है, ये सभी विज्ञान की देन हैं।

पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं के वाचन से ज्ञान की वृद्धि होती है। पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएँ विज्ञान की कृपा का प्रतिफल हैं। कागज और मुद्रण की कला विज्ञान की देन हैं।

इसी प्रकार मनोरंजन के सस्ते और सुलभ साधन हैं—दूरदर्शन, आकाशवाणी तथा चलचित्र। ये तीनों विज्ञान की देन हैं। इसलिए मानव विज्ञान का आभारी है।

सच्चाई तो यह है कि आज का मानव-जीवन विज्ञान पर अत्यधिक आश्रित है। इसलिए वह विज्ञान को अपना स्वामी मानता है। वह जानता है कि यह विज्ञान रूपी स्वामी यदि रुष्ट हो गया तो उसका जीवन दूभर हो जायेगा।

(283) अंतरिक्ष में मानव के बढ़ते चरण

संकेत बिंदु—(1) अंतरिक्ष यात्रा का शुभारम्भ (2) अंतरिक्ष में स्टेशन निर्माण (2) सोयुज और अपोलो की यात्रा और मंगल ग्रह (4) कोलम्बिया शटल और अंतरिक्ष में औषधियाँ निर्माण (5) उपसंहार।

महाभारत तथा पुराण ग्रंथों में चन्द्र व अन्य ग्रहों की यात्रा का वर्णन है। लगभग चार सौ साल पहले गैलीलियो ने अपनी बनाई दूरबीन के माध्यम से देखकर चाँद की अनेक जानकारियाँ दी थीं। उसी कल्पना को साकार करते हुए आज के वैज्ञानिक अन्तरिक्ष-यान में उड़ान भर रहे हैं।

अन्तरिक्ष-यात्रा का वास्तविक आरम्भ 4 अक्तूबर, 1957 से समझना चाहिए, जब रूस ने 'स्पुतनिक-1' छोड़ा। यह कृत्रिम भू-उपग्रह अन्तरिक्ष में तीन महीने तक पृथ्वी के चक्कर लगाता रहा। इसने पृथ्वी की 1400 परिक्रमाएँ कीं। रूस ने इसके एक महीने बाद 'स्पुतनिक-2' छोड़ा, जिसमें लाइका नामक कुतिया थी। अमेरिका भी इस क्षेत्र में 21 जनवरी, 1958 को आ गया, जब उसने 'एक्सप्लोरर-1' नामक अपना पहला भू-उपग्रह छोड़ा और फिर 17 मार्च, 1958 को 'बेनगार्ड-1' उपग्रह छोड़ा, जो हजार साल तक पृथ्वी के चक्कर लगाता रहेगा।

अनेक परीक्षणों और प्रयोगों के पश्चात् रूस ने 12 अप्रैल, 1961 को प्रथम मानव यात्री यूरी गागारिन को अन्तरिक्ष में भेजा। इस सफल परीक्षण के पश्चात् अमेरिका ने 'जैमिनी-11' और 'जैमिनी-12' में एक-एक मानव भेजे। रूस और अमेरिका, दोनों राष्ट्र अन्तरिक्ष में जाकर अनेक प्रकार के परीक्षण करते रहे।

इन सफल परीक्षणों के पश्चात् अन्तरिक्ष में स्टेशन-निर्माण की ओर ध्यान गया। चाँद को ही स्टेशन बनाने की योजना अमरीकी वैज्ञानिकों ने बनाई। अन्ततः अमेरिका का 'अपोलो-11' तीन यात्रियों सहित 21 जुलाई, 1969 को प्रातः 1-48 पर चन्द्रतल पर उतर गया। उसके दो यात्री सर्वश्री नील ए. आर्मस्टाँग और एडविन एल्ड्रिल ने चंद्रतल पर पग रखकर करोड़ों पृथ्वी पुत्रों की आकांक्षाओं को पूर्ण कर दिया।

'अपोलो-11' के चार महीने बाद अमेरिका ने 'अपोलो-12' छोड़ा, जिसमें तीन यात्री थे। ये 21 नवम्बर, 1969 को रात्रि में चाँद के तूफानी महासागर में उतरे। ये पहले यात्रियों से अधिक समय तक चाँद पर विचरण करते रहे।

इन दोनों यानों के यात्री अपने साथ चन्द्रतल से मिट्टी व चट्टानों के अनेक नमूने लाए थे, जिनका अध्ययन विश्व के प्रमुख वैज्ञानिकों ने किया है। अध्ययन करने वालों में चार वैज्ञानिक भारतीय भी थे। इन वैज्ञानिकों ने महत्त्वपूर्ण तथ्यों का उद्घाटन किया। फिर भी, चाँद के बारे में अनेक गुत्थियाँ अभी तक सुलझी नहीं हैं।

17 जुलाई, 1975 को सोवियत 'सोयुज-19' तथा 'अपोलो-21' यान का भारतीय समय के अनुसार रात्रि 9-39 पर पुर्तगाल व स्पेन के समुद्रतटों के 225 किलोमीटर ऊपर अन्तरिक्ष में संगम हो गया। संगम निर्धारित समय से 6 मिनट पूर्व होने के कारण पश्चिमी जर्मनी के ऊपर नहीं हो सका।

संगम के लगभग तीन घण्टे के बाद सोयुज और अपोलो के अन्तरिक्ष यात्री दोनों यानों को जोड़ने वाली सुरंग के अन्दर मिले और उन्होंने एक-दूसरे से हाथ मिलाए। तत्पश्चात् उन्होंने अपने-अपने राष्ट्रों के ध्वज एक-दूसरे को भेंट किए। 'सोयुज' तथा 'अपोलो' का यह संगम अन्तरिक्ष-वैज्ञानिकों की ऐतिहासिक उपलब्धि थी।

अब अन्तरिक्ष-अनुसंधान का नया लक्ष्य बना मंगल-ग्रह। इस बार भी अमेरिका ने पहल की और सफल रहा। 20 अगस्त, 1975 को 'वाइकिंग-1' ने मंगलग्रह की यात्रा आरम्भ की। 11 मास में 80 करोड़ किलोमीटर की यात्रा तय कर 20 जुलाई, 1976 को 5 बजकर 43 मिनट पर उसने मंगलग्रह के धरातल पर पदार्पण किया। अमेरिका का यह विमान मानव-रहित था। इस सफलता पर अमेरिकी जनता हर्षातिरेक से नाच उठी।

वैज्ञानिकों ने मंगल-ग्रह की उपलब्धि के पश्चात् शुक्रग्रह को अपना लक्ष्य बनाया। 20 मई, 1978 को छोड़ा गया 'पायनीयर बीनस-1' 4 दिसम्बर, 1978 को शुक्र ग्रह में पहुँच गया। इसके पश्चात् 'पायनीयर-2' ने शुक्र-ग्रह में पहुँचकर वहाँ के वायुमण्डल की रचना और मौसम का अध्ययन करने के उद्देश्य से उसके वायुमण्डल में पाँच प्रायौगिक पैकेज छोड़े।

इन अन्तरिक्ष यात्रियों को समय-समय पर सात 'प्रोग्रेस' यानी (मानव रहित माल वाहक अन्तरिक्ष यान) द्वारा रसद तथा अन्य सामग्री पहुँचाई गई। इन यानों का संचालन पृथ्वी से रिमोट-कंट्रोल प्रणाली द्वारा किया गया था। प्रोग्रेस द्वारा एक टेलिविजन रिसीवर 'सेल्यूज-6' तक पहुँचाया गया। अन्तरिक्ष यात्री इसे दूरभाष की भाँति प्रयोग करके पृथ्वी-स्थित अपने प्रियजनों से बातचीत कर सकते थे। साथ ही उन्हें देख भी सकते थे।

12 अप्रैल, 1981 को अमेरिका द्वारा अन्तरिक्ष शटल 'कोलम्बिया' को अन्तरिक्ष में भेजकर तथा 15 अप्रैल, 1981 को सकुशल वापिस लौटाकर अन्तरिक्ष-यात्रा में नए युग का आरम्भ कर दिया गया। इस शटल में दो वैज्ञानिक भी गए थे।

अंतरिक्ष में ऐसी औषधियों का निर्माण-कार्य चल रहा है, जो पृथ्वी पर गुरुत्वाकर्षण के कारण असम्भव था। दूसरे, अन्तरिक्ष स्टेशनों से उपग्रह की मरम्मत की जा सकती है, जिससे उनकी अकाल मृत्यु न हो और लाखों डालरों की क्षति से बचा जा सके।

फ्लोरिडा के केनेडी अंतरिक्ष केन्द्र से अमरीकी अंतरिक्ष यान 'एनडेवर' ने 12 सितम्बर 1992 को उड़ान भरी। अंतरिक्ष यान में सात यात्रियों का एक अंतरराष्ट्रीय दल गया जिसने अंतरिक्ष प्रयोगशाला 'जे' में सात दिनों तक विभिन्न प्रयोग किए। इस अभियान का आयोजन अमेरिकी अंतरिक्ष एजेंसी 'नासा' और जापान की राष्ट्रीय अंतरिक्ष विकास एजेंसी ने मिलकर किया था।

रूस और अमरीका अंतरिक्ष कार्यक्रम जारी रखे हुए हैं। अमरीका अंतरिक्ष यान 'डिस्करी व एंडेपर' उपग्रहों को अंतरिक्ष में स्थापित करने में व्यस्त रहा। नासा की मंगल खोज सितम्बर 1992 से जारी है। अगस्त 1993 में पहली बार इसने मंगल की सतह के करीब से फोटो भेजें। उस समय यह मंगल से 5.8 मिलयन किलोमीटर की दूरी पर था।

अन्तरिक्ष-अनुसंधान दिन-प्रतिदिन प्रगति पर है। वैज्ञानिक अहर्निश अन्तरिक्ष में अनुसंधान कर मानव के लिए कल्याणकारी और मंगलकारी तल ढूँढ़ने में लगे हैं। वह दिन दूर नहीं, जब इन अन्तरिक्ष-यानों से भूमिपुत्र अत्यधिक लाभान्वित होंगे।

(284) विद्युत् के चमत्कार

संकेत बिंदु—(1) विद्युत विज्ञान का वरदान (2) विद्युत के अनेक कार्य (3) कृषि, उद्योगों और उत्पान केंद्रों में विद्युत का योगदान (4) बिजली बिना सब सूना (5) विद्युत से हानियाँ।

विद्युत् विज्ञान का अद्भुत वरदान है। प्रकृति और सृष्टि का कल्पवृक्ष है। विश्व सभ्यता के विकास का आधार है। कलरव कूजित कलयुग का प्राण है। असावधानी और छेड़छाड़ करने वालों के लिए भस्मासुर है।

प्रकृति ने सृष्टि को प्रकाश के दो साधन दिए-सूर्य और चन्द्रमा। दिन में सूर्य और रात

में चन्द्रमा सृष्टि को प्रकाशित करते हैं। इतना ही नहीं 'एते वाउ उत्पवितारो यत् सूर्यस्य रश्मय: ।' (शतपथ ब्राह्मण 1/1/3/6) कहकर सूर्य की किरणों में पवित्रता के दर्शन किए गए और चन्द्रमा को पूर्ण कलापूर्ण माना गया।

प्रकृति के प्रकाश पुंज सृष्टि के अंधकार को मिटाने में असफल रहे तो प्रसाद जी कह उठे—

इतना अनन्त था शून्य सार। दीखता न जिसके आर-पार।

—कामायनी (दर्शन सर्ग)

मानव ने 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' की प्रार्थना की। विज्ञान ने प्रकृति का दोहन किया। सूर्य, जल, कोयला, पवन, परमाणु, विद्युत् उत्पादन के साधन बने। तार विद्युत् शक्ति प्रवाहित होने के साधन बने। चुम्बकीय शक्ति युक्त 'जनरेटर' (विद्युत् जनित्र) प्रसारण के माध्यम बने। वास्तव में विद्युत् इलेक्ट्रान की धारा है और इसी धारा का नाम बिजली है। प्रकाश, ताप तथा शक्ति इसके कार्य हैं। बिजली के लट्टुओं या ट्यूब से प्रकाश प्राप्त होता है। हीटर आदि के द्वारा ताप प्राप्त होता है और शक्ति (ऊर्जा या पावर) के द्वारा छोटे से छोटे और भारी-से-भारी यंत्र चालित होते हैं।

ज्ञान के क्षेत्र में बिजली ने जगत् पर बड़ा उपकार किया है। उसने अपनी शक्ति से छपाई मशीनों को चलाकर करोड़ों पुस्तकें प्रदान कर दीं। कुछ ही घंटों में लाखों अखबार छापकर, फोल्ड करके प्रतिदिन आपके द्वार पर पहुँचा दिए। इतना ही नहीं चार रंगों वाले चित्र मुद्रित कर आकर्षण के दायित्व को अच्छी तरह निभा रही है।

काम के बाद आराम मानव की प्रकृति है। मनोरंजन उसकी चाह है। मनोरंजन से तन की थकावट मिटती है और मन की शिथिलता दूर होती है। विद्युत् ने कहा लो आकाशवाणी, लो दूरदर्शन, लो इन्टरेनेट, लो सिनेमा। बटन दबाओ आकाशवाणी के गीत-संगीत सुनो और दूरदर्शन के दर्शन से कानों और आँखों को सुख दो।

मानव को चित्र खिंचवाने तथा देखने का शौक है। उसका शौक पूरा किया बिजली कैमरों ने।

आज की सभ्यता उत्पादन केंद्रों पर टिकी है। कारखाने, फैक्ट्रियाँ, मिल आदि उत्पादन-केन्द्र हैं। विद्युत् इन केन्द्रों की प्राण है। प्राण निकले कि शरीर शव बना, बिजली गई और उत्पादन ठप। उत्पादन कम होगा तो जीवन की जरूरतों पूरी न होंगी, आवश्यक वस्तुओं की कमी महँगाई की मार मारेगी। देखा, बिजली के कोप का प्रभाव।

कटे यह रात क्योंकर हाय, क्या सदमें गुजरते हैं।
न वह आते, न सब्र आता, न नींद आती, न मरते हैं॥ —*दाग*

गति ही जीवन है के अनुसार मनुष्य को एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना होता है। इसके लिए चाहिए साधन। यातायात साधनों के बिना जगत् पंगु है। बिजली ने यातायात की भी सुविधा प्रदान की। बिजली की रेल तथा ट्राम यातायात के साधन बने। बम्बई जैसे महानगरों में स्थानीय विद्युत् ट्रेनें लाखों लोगों को प्रतिदिन उनके गन्तव्य तक पहुँचाने का

दायित्व निभाती हैं। फिर इनकी गति भी तीव्र होती है। यह समय की बचत भी करती हैं। अब पर्यावरण प्रदूषण से पिंड छुड़वाने के लिए बिजली की बसें और कारें यातायात के साधन बनने लगे हैं। इतना ही नहीं, गगन चुंबी अट्टालिकाओं पर चढ़ने का साहस तो कहाँ, उसे देखते ही पसीने छूटने लगते हैं। विद्युत् शक्ति ने लिफ्ट या स्केलेटर प्रदान किए। बटन दबाते ही आदमी चढ़ गया बीसवीं मंजिल पर।

खेती नहीं होगी तो सृष्टि भूखी मर जाएगी। अन्न होगा तो मानव भोजन से क्षुधा-पूर्ति करेगा। खेती निर्भर है वर्षा पर। प्रभु ने कृपा नहीं की तो वर्षा के अभाव में फसल सूख गई तो अकाल पड़ेगा। विद्युत् ने भगवान् से टक्कर ली, नल-कूप बने। उसने कहा बटन दबाओ पानी ही पानी पाओ। अन्न को छीलने, बुहारने, भूसा अलग करने का काम विद्युत् ने सम्भाला। इतना ही नहीं उसे आटे में परिणत करने, फलों को सड़ने से बचाने तथा मसाले पीसने का सब काम विद्युत् ने अपने ऊपर ले लिया।

प्रात:काल उठने से लेकर रात्रि में सोने तक विद्युत् प्रेमिका मानव के दिन को हर्षमय, आनन्दमय रखती है। प्रात: उठ कर बिजली का दंत-ब्रुश बत्तीसी साफ करेगा। 'विद्युत्-शेवर' से हजामत करेगा, वाशिंग मशीन आपके कपड़े धोकर, सुखाकर प्रेस के लिए तैयार करेगी। विद्युत् प्रेस आपके कपड़ों को प्रेस करेगा। हीटर पानी गर्म करेगा। विद्युत्-चूल्हा आपका नाश्ता और भोजन, दोनों तैयार करेगी। इतना ही नहीं कमरे को ठंडा करना है तो पंखे और कूलर चलाएगी। गर्म करना है तो हीटर चलाकर कमरे के वातावरण में गरमा हट लाएगी। कमरे की सफाई भी कर देगी। दुधारू पशुओं का दूध भी निकाल देगी। फ्रिज और हॉट-टिफ्फन आपके खाने को गर्म रखेंगे।

विद्युत् जहाँ वर्तमान समय में मानवीय जीवन और जगत् के लिए कामधेनु है, वहाँ कर्मनाशा भी है। जरा-सी असंगत छेड़छाड़ से वह इतनी क्रुद्ध हो जाती है कि प्राणी के प्राण भी हर लेती है। छेड़-छाड़ ही नहीं थोड़ी-सी असावधानी भी जीवन को संकट में डाल देती है। नंगे तारों पर हाथ या पैर लगा तो प्राणों का हरण हो गया। किसी पाइप या खम्मे में करेंट का असर हो गया और भूल से मानव स्पर्श कर बैठा तो उसे स्तम्भ से मुक्ति नहीं मिलेगी, चाहे जीवन से मुक्ति मिल जाए। कहीं बिजली के पेट में शॉट सरकिट का दर्द हो गया तो समझो अग्नि की ज्वालाओं द्वारा सब कुछ स्वाहा करने का निमंत्रण आ गया है। हर साल लाखों झुग्गियाँ, मकान, दुकानें, भवन शॉट सरकिट से जलकर अपार सम्पत्ति, दस्तावेज तथा प्राण हानि कर देते हैं।

अति से अमृत भी विष हो जाता है। यदि आपने जरूरत से ज्यादा बिजली-जेनरेटर पर बोझ डाला तो वह इस अन्याय को बरदाश्त नहीं करेगा। वह अपने को अपनी ही ज्वालाओं में भस्म कर लेगा। स्थान विशेष को छोड़ जाएगी, अंधकार के अंधेरे में।

(285) कम्प्यूटर के चमत्कार

संकेत बिंदु—(1) श्रम और समय की बचत (2) चुनावों और बैंकों में सहायक (3) मीडिया और अन्य आपदाओं में कारगर (4) चिकित्सा और अपराध अंकुश में मददगार (5) उपसंहार।

आज का व्यक्ति समय और श्रम की बचत तथा काम में आधा माशा पाव रत्ती 'एक्युरेसी' (पूर्णता और शुद्धता) चाहता है। इसलिए उसे जरूरत पड़ी स्वचालित 'कलों' की, ताकि मेधा और हाथों का काम इलेक्ट्रानिक्स द्वारा हो जाए। कम्प्यूटर इस मानव इच्छा का साकार रूप है। यह चौबीसों घंटे काम करते थकता नहीं, विश्राम के लिए रुकता नहीं। दूसरे, उसका मस्तिष्क दैवी-मस्तिष्क है। उससे गलती, भूल या अशुद्धि की संभावना ही नहीं हो सकती। रही विलम्ब की बात, यह शब्द तो उसके शब्द-कोश में है ही नहीं। चट मंगनी पट ब्याह। कम्प्यूटर का बटन दबाइए, उत्तर आपके सामने प्रस्तुत है। 6-6 अंकों का जोड़, घटा, गुणा, भाग एक सेकिण्ड में लीजिए। आप चाहें तो 30 लाख संक्रियाएँ (Operations) एक साथ कर सकते हैं। एक विशेषता और, कम्प्यूटर ने जटिलतम गणनाओं का हल ही नहीं निकाला, उनका संग्रह और विश्लेषण भी किया।

हिसाब करने की शक्ति, सही तथ्य खोजने का सामर्थ्य और अत्यल्प समय में बहुत अधिक काम कर सकने के कारण कम्प्यूटर को 'इलेक्ट्रानिक मस्तिष्क' भी कहते हैं। सच्चाई ऐसी है नहीं। कम्प्यूटर तो एकत्रित आँकड़ों का इलेक्ट्रानिक विश्लेषण प्रस्तुत करने वाली मशीन है। सुपर कम्प्यूटर अर्थात् सर्वाधिक तेज गति से गणनाएं और विश्लेषण करने वाली इलेक्ट्रोनिक मशीन।

इन्सेट एक उपग्रह है। यह मौसम की जानकारी ही नहीं देता, दूरदर्शन, दूरभाष प्रसारण में सहयोग भी करता है। यह सब कम्प्यूटर की कृपा का परिणाम है। अत: कम्प्यूटर के सहयोग के अभाव में इन्सेट या अन्य कोई भी उपग्रह न तो अंतरिक्ष में पहुँच सकता है और न ही वहाँ परिक्रमा कर सकता है।

गणना और फाइलिंग की समस्या बैंक प्रणाली की सिरदर्दी है। कम्प्यूटर ने इस सिरदर्दी को दूर कर दिया। बैंक बैलेंस शीट तैयार करने में जहाँ एक-एक मास तक लगता था, वहाँ कम्प्यूटर कुछ ही मिनिटों में तुलन-पत्र बनाने लगा। दूसरा लाभ एक और हुआ। आपका खाता दिल्ली के किसी बैंक की कम्प्यूटराइज्ड शाखा में है। आपको अपने कलकत्ता या बम्बई प्रवास में पैसे की जरूरत पड़ गई। आप उस बैंक की वहाँ की शाखा से चैक देकर रुपया ले सकते हैं। कारण, वहाँ का कम्प्यूटर आपके दिल्ली खाते का बैलेंस देख सकता है।

अब बिजली, पानी, दूरभाष आदि के सरकारी बिल कम्प्यूटर बनाने लगा है। रेलवे, बस तथा हवाई जहाज की किसी भी शहर की 'एडवांस बुकिंग' किसी भी शहर में बैठकर

कम्प्यूटर से सम्भव है। समय और सिर-दर्द, दोनों की बचत। फाइलिंग का स्थान कम्प्यूटर 'फ्लापी' ने ले लिया। एक अलमारी में यदि सौ फाइलें आती हैं तो उतने ही स्थान में एक सहस्र फ्लापी रखी जा सकती हैं।

आज यान-दुर्घटना आम बात है। क्यों हुई ? यह पता लगाना टेढ़ी खीर है। 23 जून, 1985 को भारत का एक बोइंग विमान 'कनिष्क' आकाश में ही नष्ट हो गया। 321 यात्री तथा चालक दल के सभी सदस्य मारे गए। उसके 'ब्लैक बॉक्स' की तलाश की गई। वह मिला और दुर्घटना के कारण का पता चला। ब्लैक बॉक्स यानी कम्प्यूटर।

पुस्तक, समाचार-पत्र, पत्र-पत्रिकाएँ ज्ञानवर्धन के सर्वश्रेष्ठ साधन हैं। पहले इनका मुद्रण हाथ की कम्पोजिंग से होता था। सैकड़ों हाथ मिलकर एक समाचार-पत्र को प्रात: निकाल पाते थे। कम्प्यूटर ने कम्पोजिंग की। श्रम शक्ति बची। जो कम्पोजिंग घंटों में होती थी, अब मिनिटों में होने लगी। डिजाइन चित्रों के लिए ब्लॉक बनते थे। यह काम भी कम्प्यूटर करने लगा। डिजाइनिंग, स्केचिंग तथा ब्लॉक की समस्या समाप्त। अखबार लाखों की संख्या में छपता रहता है, कम्प्यूटर गिनता रहता है। कम्प्यूटर की कृपा से पुस्तकों का भाषांतरण, समितियों का प्रतिवेदन मिनटों में तैयार। झंझट खत्म।

भवन-निर्माण, क्षेत्र-विशेष का विकास, परिसर का नियोजन, आज का महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। इसके लिए चाहिए शिल्पकार। इस कार्य के लिए शिल्पकार को चाहिए पर्याप्त समय। कम्प्यूटर का डिजाइनिंग प्रोग्राम क्षेत्र की लम्बाई, चौड़ाई और आंकड़ों के अनुसार कुछ ही घंटों में नक्शा तैयार कर देता है। कम समय में उत्तम काम करने का श्रेय मिला कम्प्यूटर को।

चिकित्सा क्षेत्र में कम्प्यूटर जीवन-रक्षक कवच बन कर अवतरित हुआ। शरीर में रासायनिक परिवर्तन, स्नायुओं की गतिविधि, रोगों का निदान और औषधियों का विधान, शल्यक्रिया और अंगरोपणों का निरीक्षण का दायित्व कम्प्यूटर ने अपने ऊपर ले लिया।

फैशन की दुनिया में कम्प्यूटर इष्ट देवता है। कारण, ड्राइंग, डिजाइनिंग के विविध प्रयोगों का यह कोश है। कम्प्यूटर पर विविध रंगीन आर्ट को पसन्द कीजिए और फैशन का डिजाइन बनाइए।

कम्प्यूटर को दूरभाष लाइन से जोड़कर समूचे विश्व की सूचनाएं प्राप्त की जा सकती हैं, और भेजी भी जा सकती हैं।

कम्प्यूटर को रोबोट जैसी मशीनों के साथ जोड़कर वेल्डिंग, पेंटिंग, कचरा साफ करना, परमाणु भट्टी के समीप काम करना, भारी सामान की संभालने जैसे कष्टकर भयप्रद और श्रम साध्य काम भी कराए जा सकते हैं। इतना ही नहीं कम्प्यूटर पर अनेक और विविध खेल खेले जा सकते हैं, पहेलियाँ बुझाई जा सकती हैं।

विदेशों में अपराध पर अंकुश लगाने का काम भी कम्प्यूटर कर रहा है। अमेरिका के प्रसिद्ध वैज्ञानिक चार्ल्स फ्रायट ने 'फेस' नामक ऐसा कम्प्यूटर तैयार किया है जिसमें जिस स्थान पर अपराध होगा उस घटना-स्थल के निरीक्षण के लिए जो व्यक्ति जाएगा उसके

कानों के पीछे एक सॉकेट जैसा उपकरण लगाया जाएगा। यही उपकरण घटनास्थल की तरंगों को पकड़ेगा। सॉकेट जैसा उपकरण बाल और अंगुलियों के निशान आदि से कम्प्यूटर स्क्रीन पर अपराधी का रेखाचित्र तैयार करेगा। बाद में साइबरनेटिक्स की सहायता से उसका पूरा शरीर तैयार हो जाएगा। कैलीफोर्निया, ओरेगान व फ्लोरिडा में पुलिस व गुप्तचर संस्थाएं अपराधी को पकड़ने में इस कम्प्यूटर की मदद लेने लगी हैं।

सुपर कम्प्यूटर से पृथ्वी पर पड़ने वाले सभी ग्रहों के प्रभाव की गणना कर सकते हैं। 'चिकित्सक शरीर के भीतरी अंगों के त्रि-आयामी चित्रों का नजारा सुपर कम्प्यूटर के जरिए ले सकते हैं। सुपर कम्प्यूटर के माध्यम से कार और हथियारों के डिजाइन से लेकर किसी देश की अर्थव्यवस्था कैसे चलती है, इसकी भी जानकारी पायी जा सकती है। सुपर कम्प्यूटर आकाशगंगाओं की टक्कर और उससे होने वाले परिणामों की जानकारी देने के अलावा पृथ्वी के वातावरण की बनावट संबंधी जानकारी भी दे सकता है। फ्रियॉन सहित अन्य प्रदूषणकारी तत्त्वों का पर्यावरण पर क्या और कैसे विपरीत प्रभाव पड़ सकता है, इसकी भी गणना सुपर कम्प्यूटर द्वारा की जा सकती है।

कम्प्यूटर विज्ञान का वरदान है। स्वचालित मशीनों के समूह का नाम है। अथाह मस्तिष्क मेधा का पुरोधा है। शुद्ध और प्रामाणिकता की साक्षात् प्रतिमा है। गणितीय और व्यावहारिक कार्यों का जादूगर है। समय और श्रम की बचत का साधन है। इसलिए जीवन और जगत् के लिए इस कल्पवृक्ष की आवश्यकता ही नहीं, नितांत अनिवार्यता भी है।

(286) दूरभाष : सुविधा के साथ असुविधा भी

संकेत बिंदु—(1) विज्ञान का अद्भुत आविष्कार (2) समय की बचत (3) टेलीफोन का राक्षसत्व रूप (4) टेलीफोन का दुरुपयोग (5) उपसंहार।

टेलीफोन या दूरभाष विज्ञान का अद्भुत आविष्कार है। यह ग्राहम वैल की विश्व को कल्याणकारी भेंट है। मानवीय जीवन के लिए उपयोगी वरदान है। मनचाहे दूरस्थ व्यक्ति से बातचीत का सरलतम सुविधाजनक माध्यम है। तुरन्त संदेश देने तथा समाचार भेजने का सर्वश्रेष्ठ उपाय है। व्यापार और कार्यालय-संचालन का विश्वसनीय साथी है।

आज मानव मनचाही बात पर तुरन्त कार्यवाही चाहता है। उसके पास समयाभाव है। वह चाहता है कि उसका संदेश कुछ ही क्षणों में सम्बन्धित व्यक्ति को मिल जाए। तुरन्त टेलीफोन का डायल घुमाइए और दूर से दूर बैठे व्यक्ति से बातचीत कर लीजिए। यह है विज्ञान का ईश्वरीय रूप, मानव के लिए कल्याणकारी वरदान।

टेलीफोन से समय की बचत हुई। संदेश या समाचार वायु-वेग से पहुँच गया। कुछ ही क्षणों में मनचाहे व्यक्ति से मुँह-दर-मुँह बातचीत हो गई। आपका आत्मीयजन बीमार पड़ा है, घबराने की जरूरत नहीं। डॉक्टर को फोन कीजिए। किसी अधिकारी से मिलना

है, जाने पर मिलेगा या नहीं, यह संशय है। दूरभाष पर 'टाइम अप्वॉइन्ट' (समय निश्चित) कर लीजिए। पड़ोस में आग लग गई। फायर-ब्रिगेड को तत्काल फोन कीजिए। किसी की मृत्यु हो गई है। फोन करके कुछ ही क्षणों में सम्बन्धी इकट्ठे कर लीजिए। घर में चोर घुस आए हैं। 'पुलिस फ्लाइंग स्क्वाड' को दूरभाष पर 100 नम्बर को सूचना दीजिए।

कार्यालयों, संस्थाओं, प्रतिष्ठानों का जीवन फोन बिना दूभर है। अधिकारी को क्षण-क्षण में निजी सचिव से बातचीत करनी पड़ती है। बार-बार उठने में, बुलवाने में दोनों का समय बरबाद होता है। फोन पर बातचीत हो गई। समय की बचत, शारीरिक कष्ट से मुक्ति, तत्परता से कार्य की पूर्ति के अतिरिक्त कार्यालय की कार्य-शक्ति सुचारु रूप से संचारित हो रही है।

दूरभाष ने तरक्की की। उसने अपना एक रूप 'सेल्यूलर' ऐसा प्रकट किया, जिसमें आप कार में हो या हवाई जहाज में, पिकनिक में हों या पार्टी में आपकी सेल्यूलर की घंटी बज उठेगी। महत्त्वपूर्ण संदेश मिल जाएगा, बातचीत हो जाएगी।

रोटी, कपड़ा और मकान की भाँति फोन भी आज के जीवन का आवश्यक अंग बन गया है। यह आवश्यक अंग कहीं-कहीं अनिवार्य भी बन गया है। इसके अभाव में संचार-व्यवस्था ठप्प हो जाएगी और जीवन दूभर हो जाएगा।

किन्तु टेलीफोन का देवत्व रूप जब राक्षसत्व में प्रकट होता है, तो फोन का स्वामी थरथर काँपने लगता है।

टेलीफोन मिलाया—3266412। ट्रिल-ट्रिल घंटी बजी। दूसरी ओर से रिसीवर उठाया। 'हाँ जी।'

—अरुण जी को दीजिए।

—यहाँ कोई अरुण नहीं है, रॉंग नम्बर।

भाग्यचक्र देखिए—तीन बार मिलाया, तीनों बार रॉंग नम्बर। पैसे के पैसे गए, बातचीत भी न हो सकी।

जरूरी काम से टेलीफोन का रिसीवर उठाया। वहाँ किसी की बातचीत चल रही है। आपकी लाईन पर किसी और का नम्बर मिल गया है। जब तक वह लाइन कटे नहीं, बातचीत समाप्त न हो, आप फोन कर ही नहीं सकते।

नम्बर घुमाया। ट्रिल-ट्रिल। किसी ने दूसरी ओर का रिसीवर उठाया। बातचीत शुरू की—यह क्या? उसकी आवाज आप सुन रहे हैं। आपकी आवाज उधर सुनाई नहीं दे रही।

नम्बर घुमाया। टेलीफोन का डायल चुप—न एंगेज, न घंटी। नम्बर घुमा-घुमाकर परेशान। त्योरियाँ चढ़ गईं।

ट्रिल-ट्रिल की घंटी उस समय ज्यादा परेशान करती है, जब आप विश्राम कर रहे हों, स्वप्नों में विचर रहे हों, मूड ऑफ हो। अनचाहे परिचित की कॉल हो। स्नानागर में स्नान कर रहे हों, शौचालय में शौच से निवृत हो रहे हों, भजन-पूजन में ध्यानस्थ होने का प्रयास

कर रहे हों, भोजन का आनन्द ले रहे हों, मित्रों से गपशप कर रहे हों, किसी गंभीर मंत्रणा में लगे हों, उस समय ट्रिल-ट्रिल की घंटी अनचाहे अतिथि-सी लगने लगेगी। आपने गुस्से में फोन का रिसीवर उठा कर अलग रख दिया। इस बीच सम्भव है आप किसी महत्त्वपूर्ण संदेश से वंचित रह गए हों, जो गाड़ी छूटने के बाद स्टेशन पहुँचने के समान पश्चात्तापकारी हो।

हमारे पड़ोसी हैं शर्मा जी। जब-तब फोन करने चले आते हैं। वे हमारे फोन को अपना ही समझते हैं। इसलिए न समय-असमय को देखते हैं, न हमारी 'प्राइवेसी' का ध्यान रखते हैं। दूसरे, यह कि वे अन्य शहरों में रह रहे सम्बन्धियों से बातचीत का भी मजा लेते रहते हैं। उन्हें क्या पता कि अपनी बातचीत से वे सुविधा-प्रदाता के तन-मन-धन को क्षति पहुँचा रहे हैं।

पड़ोसियों के लिए जब फोन आने लगें तो दूरभाष संकट-मोचन की बजाय पीड़ा-दायक बन जाता है। अपनी सब व्यस्तता छोड़ उन्हें बुलवाइए। जब तक वे आकर फोन न सुन लें, आप अपना समय उनको समर्पित कर दीजिए। व्यक्तिगत जीवन के उन क्षणों को परहित पर न्यौछावर समझ लीजिए। उन्हें बुलाते-बुलाते तंग आ जाएँ, तो झूठ बोलने का अभ्यास बना लीजिए।

टेलीफोन एक्सचेंज के 180, 181, 197, 199 नम्बर सदा इतने व्यस्त रहते हैं कि बार-बार डायल घुमाना पड़ता है। कभी-कभी तो घंटी बजती रहती है, उठाता ही कोई नहीं।

इस प्रकार टेलीफोन वर्तमान सभ्य समाज के लिए संचार-सुविधा का अत्यन्त उपयोगी माध्यम है। साथ ही तन, मन और धन को क्षति पहुँचाने वाला असुविधाप्रद यंत्र भी है।

पर्यावरण

(287) पर्यावरण-प्रदूषण

> **संकेत बिंदु**—(1) प्रदूषण का अर्थ (2) पर्यावरण प्रदूषण के कारण (3) वायु, जल और ध्वनि प्रदूषण से हानियाँ (4) प्रदूषण से मौसम में परिवर्तन (5) प्रदूषण नियंत्रण रोकने के उपाय।

प्रदूषण शब्द का अर्थ है, 'नष्ट करना, चौपट करना, अशुद्ध या अपवित्र करना।' पर्यावरण का अर्थ है, 'वातावरण' अथवा वायु की वह राशि जो पृथ्वी, ग्रह आदि पिण्डों को चारों ओर से घेरती है। दूसरे शब्दों में, मानव-जीवन के अस्तित्व, निर्वाह, विकास आदि को दूषित करने वाली स्थिति का नाम पर्यावरण-प्रदूषण है।

पर्यावरण-प्रदूषण बढ़ती जनसंख्या का, नगरों की संख्या वृद्धि और विस्तार का परिणाम है तथा साथ ही है वैज्ञानिक औद्योगिक समृद्धि का अभिशाप। मानव ही नहीं प्राणिमात्र को मृत्यु के मुँह में धकेलने की अनचाही चेष्टा है। बीमारियों को बिन माँगे शरीर में प्रवेश कराने की प्रक्रिया है। प्राणि मात्र के अमंगल की अप्रत्यक्ष भावना है।

बड़े-बड़े उद्योगों की वृद्धि से, कारखानों की चिमनियों से, मोटर-वाहनों के एग्जासिट पाइपों से, रेल के इंजनों से, घरों में काम आने वाली स्टोवों से तथा धूम्रपान आदि किसी भी जलने वाली वस्तु से जो गैसें निकलती हैं, वे वायु को प्रदूषित करती हैं। मोटर-वाहनों के एग्जासिटों से जो कार्बन-डाईऑक्साइड, नाइट्रोजन, नाइट्रिक, ऑक्साइड, सल्फ्यूरिक एसिड और शीशे के तत्त्व, (पेट्रोल में शीशा डाला जाता है) उसके घोल में से होकर निकलने वाले तत्त्व, हवा में घुलते हैं, वे प्रत्येक व्यक्ति को प्रभावित करते हैं। भारत के महानगरों की भीड़ वाली सकड़ों पर सायं 6 बजे से 8 बजे तक इतना प्रदूषण होता है कि उससे दम घुटने लगता है।

वायु-प्रदूषण से श्वास सम्बन्धी अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। जैसे—श्वासनी-शोथ, फेफड़ा-कैंसर, खाँसी, दमा, जुकाम। इस प्रकार वायु-प्रदूषण मन्द विष 'Slow Poisoning' का काम करता है, किन्तु भोपाल-गैस-दुर्घटना तो हजारों लोगों को एक साथ ही लील गई।

घरेलू गंदा पानी, नालियों में प्रवाहित मल तथा कारखानों से निकलने वाले व्यर्थ पदार्थ नदियों और समुद्रों में प्रवाहित कर दिए जाते हैं। इन व्यर्थ पदार्थों में अनेक प्रकार के जहरीले रसायन होते हैं। भारत की महानगरीय व्यवस्था में भूमिगत सीवर अन्ततः समीपस्थ नदी में गिरते हैं। इससे नदी का पानी विषाक्त हो जाता है।

प्रदूषित जल के उपयोग से आमाशय सम्बन्धी विकार, खाद्य-विषाक्तता तथा चर्मरोग उत्पन्न हो जाते हैं। प्रदूषित-जल खाद्य-फसलों और फलों को सारहीन बना देता है। साथ ही उसमें अवशिष्ट जीवनाशी रसायन मानव-शरीर में पहुँच कर खून को विषाक्त कर देते हैं, जिससे अनेक बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

ताप, शोर और दुर्गन्ध भी प्रदूषण के बहुत बड़े कारण हैं। ताप बिजली घरों से अथवा परमाणु-भट्टियों से बड़ी मात्रा में ऊष्मा निकलती है; उससे जलवायु का संतुलन बिगड़ जाता है, क्षेत्रीय पेड़-पौधों को हानि पहुँचती है। अधिक शोर तथा अधिक दुर्गन्ध मनुष्य को रोग-शय्या पकड़ने को बाध्य कर देते हैं। अभिक शोर या ध्वनि प्रदूषण से श्रवण शक्ति मन्द पड़ जाती है जो बहरेपन को बढ़ाता है।

ऊर्जा के क्षेत्र में सर्वाधिक शुद्ध ऊर्जा का साधन बिजली है। बिजली के प्रयोग में कोई प्रदूषण नहीं होता, परन्तु बिजली का उत्पादन स्वयं प्रदूषण का कारण बन सकता है। बिजलीघरों में जो कोयला जलता है, वह चिमनियों से राख के रूप में फैल जाता है। यह राख भी स्वास्थ्य के लिए पर्याप्त हानिकारक है।

संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्य-परिषद् अनेक बार चेतावनी दे चुकी है कि हमें स्वनिर्मित

नाश की चेतावनी के निर्देशक-चिह्नों को पहचानना होगा और इस युग को चुनौतियों का सामना कर अपने को सुरक्षित और स्वच्छ वातावरण में बदलना होगा।

प्रदूषण नियंत्रण के लिए उन्नत वैज्ञानिक साधनों और उत्पादन-उद्योगों को नष्ट करने की आवश्यकता नहीं, बल्कि विकल्प ढूँढने की आवश्यकता है। जैसे—

(1) कारखानों की चिमनियों को न केवल ऊँचा किया जाए बल्कि उनकी गंदगी और व्यर्थ पदार्थों की निकासी का वैज्ञानिक हल ढूँढा जाए।

(2) यातायात के साधनों से धुआँ कम से कम निकले।

(3) मल-मूत्र तथा कारखानों का कचरा नदियों में न प्रवाहित किया जाए।

(4) नगरों में बाग-बगीचे और पार्क विकसित किए जाएँ।

(5) राज-मार्गों और बहु-यातायात वाली सड़कों के बीच पेड़ लगाए जाएं।

(6) परम्परागत इंधनों का उपयोग कम करके सूर्य, हवा, पानी से शक्ति उत्पन्न कर कल-कारखाने और वाहन चलाए जाएं।

(7) जनसंख्या पर नियन्त्रण करें और गंदगी पर भी नियन्त्रण रखें। विषैले पदार्थों का प्रयोग बंद न करें तो कम अवश्य कर दें।

शुद्ध जल, शुद्ध वायु तथा शुद्ध भोजन मानव-जीवन के लिए अनिवार्य तत्त्व हैं। इनकी प्राप्ति की समस्या राष्ट्रों के समक्ष जीवन-मरण का प्रश्न लिए खड़ी है। प्रदूषण एक गम्भीर समस्या है, गूढ़ पहेली है। इसके हल होने पर मनुष्य स्वस्थ-जीवन व्यतीत कर सकेगा, दीर्घायु प्राप्त कर सकेगा।

(288.) महानगरों में बढ़ते प्रदूषण की समस्या

संकेत बिंदु—(1) शीर्षक का अर्थ (2) प्रदूषण के प्रकार और जल प्रदूषण (3) वायु-प्रदूषण के तत्त्व और बीमारियाँ (4) ध्वनि-प्रदूषण और बीमारियाँ (5) उपसंहार।

महानगरों के विस्तार और औद्योगीकरण की अधिकता के कारण आज मानव के सामने जो समस्याएँ आ रही हैं, प्रदूषण की समस्या उनमें अधिक भयंकर है। आज नगरों में बढ़ती पर्यावरण प्रदूषण की समस्या नगरवासियों से प्राकृतिक वायु और शुद्ध जल छीन रही है तथा नई-नई असाध्य बीमारियों की ओर धकेल रही है।

यह प्रदूषण चार प्रकार का है—जल-प्रदूषण, वायु-प्रदूषण, ध्वनि-प्रदूषण तथा भूमि प्रदूषण। नगरों में शुद्ध पेय जल, शुद्ध वायु, शांत वायुमंडल तथा भूमि की उर्वरा शक्ति का दिन-प्रतिदिन ह्रास हो रहा है। परिणामत: नगर का शिशु प्रदूषण में ही जन्म लेता है। यह नगर-जन्म का एक बड़ा अभिशाप है। पंत जी ने ठीक ही कहा है—

दूषित वायु, दूषित जल कैसे हो जीवन-मंगल।
क्षीण आयु, क्षुब्ध जन, कैसे हो जन्म सफल॥ (गीत-संगीत)

नगर में प्राय: भूमिगत जल-निकासी का प्रबन्ध होता है। मल-मूत्र, नहाने-धोने तथा सफाई करने से गंदा हुआ जल, औद्योगिक संस्थाओं का कूड़ा-करकट, रासायनिक द्रव्य, पेस्टीसाइड, बायोसाइड, कीटनाशक रसायन, सब भूमिगत नालियों द्वारा नगर की समीपवर्ती नदी में प्रवाहित कर दिए जाते हैं। इतना ही नहीं, हवन-यज्ञ, अंत्येष्टि के अवशेष तथा पाँचवर्ष से कम के मृत शिशु-शव भी नदी में बहाने की प्रथा है। परिणामत: नदी-जल दूषित हो जाता है। नदी के उसी जल को वैज्ञानिक ढंग से साफ करके पेय-जल बनाया जाता है। इस तथाकथित शुद्ध-जल के उपयोग से आमाशय सम्बन्धी विकार, खाद्य विषाक्तता तथा चर्म-रोग उत्पन्न हो जाते हैं। प्रदूषित जल फसलों को सार-हीन बना देता है। जल में अवशिष्ट जीवनाशी रसायन मानव-शरीर में पहुँचकर रक्त को विषाक्त कर देते हैं, जिससे अनेक बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

शुद्ध वायु जीवन-जीने का अनिवार्य तत्त्व है। शुद्ध वायु का मुख्य स्रोत है—वन, हरे-भरे बाग-बगीचे तथा लहलहाते पेड़-पौधे। कारण, ये प्रदूषण के भक्षक हैं और हैं ऑक्सीजन के प्रदाता। नगरों में बढ़ती जनसंख्या ने वन, बाग-बगीचों को उजाड़ दिया और बना दिए हैं भवन। जीवनदाता के स्थान पर जीवन-नाशक कंकरीट के जाल बसा दिए हैं। अब शुद्ध वायु आए तो आए कहाँ से?

दूसरी ओर, कारखानों की चिमनियों से, रेल के इंजनों से, घरों में काम आने वाले स्टोवों से तथा जलने वाले पदार्थों से, कूड़े-कचरे के ढेर से जो गैसें निकलती हैं, वे वायु को प्रदूषित करती हैं। रही-सही कसर नगर में डीजल-पेट्रोल से चलने वाले वाहन पूरी कर देते हैं। स्कूटर, मोटर-साइकिल, थ्रीह्विलर, आटोरिक्शा, कार, टैक्सी, बस, ट्रक, स्टेशन-वैगन आदि वाहन रात और दिन नगरों की सड़कों पर दौड़ते रहते हैं। इन गाड़ियों के एक्जासिटों से जो कार्बन-डाईऑक्साइड, सल्फ्यूरिड एसिड और शीशे के तत्त्व उनके घोल में से होकर हवा में घुलते जाते हैं, वे वायु को इतना प्रदूषित कर देते हैं कि यातायात के 'पीकं-आवर्स' में तो सड़क पर चलते हुए दम घुटने-सा लगता है।

महानगर दिल्ली को ही लीजिए। इस समय वाहनों की संख्या ४० लाख को पार कर चुकी है। उधर केन्द्रीय प्रदूषण बोर्ड के अधिकारी स्वयं स्वीकारते हैं कि हर तीन महीने में वाहनों के प्रदूषण जाँच वाले नियम से प्रदूषण में तो कोई कमी आयी नहीं है, जो थोड़ी-बहुत कमी आयी भी तो उतने ही वाहन बढ़ जाते हैं। राजधानी में हर रोज वाहनों से उपजे 130 मीट्रिक टन विषाक्त यौगिक हवा में घुल रहे हैं। चूँकि गाड़ियों से निकला धुआँ कम ऊँचाई पर रहता है, अत: यह कुछ अधिक ही जानलेवा है।

वायु-प्रदूषण से श्वास-संबंधी रोग उत्पन्न होते हैं। जैसे-श्वसनी शोथ, फेफड़ा कैंसर, खाँसी, दमा, जुकाम। त्वचा और नेत्र भी प्रभावित होते हैं। ये जीवन को विकलांगता प्रदान करते हैं। यदि किसी नगर में किसी कारखाने की गैस निकल जाए तो उस नगर का विध्वंस प्रलय से कम नहीं होता। भोपाल नगर के नागरिकों की आत्मा आज भी 'भोपाल गैस कांड' के नाम पर सिहर उठती है।

जो शब्द या नाद सामान्य से ऊँचा हो, कानों के परदे पर आघात करे या श्रवणेन्द्रिय को कष्ट-कर लगे तो वह ध्वनि-प्रदूषण बन जाता है। ध्वनि-प्रदूषण नागरिक जीवन का अनचाहा अभिशाप है। ब्राह्ममुहूर्त में पूजा स्थानों से ध्वनि विस्तारकों से आने वाली ऊँची आवाज आपको शान्ति से सोने नहीं देगी। दिन में आकाशवाणी तथा कैसेटों के शोर को झेलना पड़ेगा। मुर्दाबाद-जिन्दाबाद के नारे, बैंड-बाजों की तीव्र ध्वनि, ढोल और शहनाई की चीख आपको सुननी पड़ेगी। घर का टी.वी. तो कानों के लिए टी.बी. (तपेदिक) ही सिद्ध हो रहा है। रही-सही कसर पूरी करती है वाहनों के होर्नों की पों-पों।

ध्वनि प्रदूषण श्रवण-शक्ति का ह्रास करता है, जिससे मनुष्य बहरेपन का शिकार हो जाते हैं। यह उच्च रक्तचाप, मानसिक तनाव, चिड़चिड़ापन, हृदयरोग तथा अनिद्रा को भी जन्म देता है। इससे गर्भस्थ शिशु के विकास में व्यवधान पड़ता है। दुर्घटनाओं में वृद्धि होती है।

नगरों में बढ़ती प्रदूषण की समस्या के निराकरण के लिए नगर की बढ़ती जनसंख्या को रोकना होगा, बाग-बगीचों का जाल बिछाना होगा, औद्योगिक संस्थानों को नगर से दूर स्थानान्तरित करना होगा, भूमिगत नालों के प्रदूषित जल को नगर-नदी के स्थान पर अन्यत्र बहाना होगा या वैज्ञानिक रीति से स्वच्छ करके खेतों की सिंचाई के काम में लाना होगा। लाउडस्पीकर की ऊँची-आवाज तथा आकाशवाणी की उच्च-ध्वनि के कान मरोड़ने होंगे। ऐसे वाहनों के चालन पर प्रतिबंध लगाना होगा, जो प्रदूषण फैलाते हैं।

(289) पेड़े-पौधे और पर्यावरण

संकेत बिंदु—(1) पेड़-पौधे और पर्यावरण का सम्बन्ध (2) पर्यावरण की शुद्धता का महत्त्व (3) पेड़-पौधों से पर्यावरण सुशंधित (4) वर्षा के निमंत्रणकर्त्ता (5) पुराणों में पेड़ का महत्त्व।

पेड़ वृक्ष का पर्यायवाची है। वृक्ष, बाड़ या भूमि पर फैलने वाले वनस्पति को लता या बेल कहते हैं। लताओं, पेड़ों और झाड़ियों से भिन्न वे वनस्पतियाँ जो दो-तीन हाथ तक ऊपर उठती हैं तथा जिनके तने और शाखाएँ बहुत कोमल होते हैं 'पौधे' या पादप कहलाते हैं। भूमि का बाह्य वातावरण अथवा जलवायु की विशेष स्थिति पर्यावरण है।

पेड़-पौधे और पर्यावरण का सम्बन्ध माता-पुत्र का-सा है। जिस प्रकार माता अपने स्तन पान कराके शिशु को पालती है, उसी प्रकार पेड़-पौधे अपनी ऑक्सीजन से पर्यावरण को स्वस्थ और शुद्ध रखते हैं। जिस प्रकार माँ ब्रालक की शरारत और उद्दंडता को क्षमा करके उसके प्रति किए गए उपालम्भ को पचा जाती है, उसी प्रकार ये पेड़-पौधे मानव द्वारा छोड़ी नाइट्रोजन तथा वातावरण में फैली अन्य प्रदूषित गैसों को उदरस्थ कर जाते हैं।

सृष्टि के आरम्भ में पेड़-पौधे और वनस्पति की उत्पत्ति में जगत्-नियन्ता ने पर्यावरण

की शुद्धता का महत्त्व समझकर, इन्हें प्राथमिकता दी थी। महाकवि प्रसाद ने कामायनी में इस सत्य को इस प्रकार प्रकट किया है—

धीरे-धीरे हिम आच्छादन, हटने लगा धरातल से।
जगी वनस्पतियाँ अलसाई मुख, धोती शीतल जल से॥

प्रत्येक प्राणी श्वसन-क्रिया में ऑक्सीजन लेता है और कार्बन डाइऑक्साइड बाहर छोड़ता है। जबकि पेड़-पौधे कार्बन डाइऑक्साइड खाते हैं और ऑक्सीजन छोड़ते हैं। इससे पर्यावरण स्वस्थ और संतुलित रहता है। पेड़-पौधों की श्वास-प्रक्रिया पर प्रकाश डालते हुए श्री हरचरणलाल शर्मा लिखते हैं—'पेड़-पौधों की पत्तियों में बारीक रंध्र होते हैं, जिनके दोनों ओर रक्षक कोशिकाएं होती हैं। इन्हीं रंध्रों के द्वारा वातावरण और पौधों में गैसों का विनिमय होता है और जैविक क्रियाएँ सम्पन्न होती हैं। पत्तियों के इन छोटे-छोटे रंध्रों से वायु भीतर जाती है। यहाँ प्रकाश संश्लेषण-प्रक्रिया के द्वारा कार्बन-डाइऑक्साइड का ऑक्सीजन में परिवर्तन होता है। इस प्रकार इन रंध्रों से जो गैस बाहर निकलती है, उसमें कार्बन-डाइ-ऑक्साइड की अपेक्षा ऑक्सीजन की मात्रा अधिक होती है।'

पेड़-पौधे जब पुष्पों-फलों से लदे होते हैं तो अपनी सुगंध से वातावरण को सुगंधित करते हैं, पर्यावरण का मोहित करते हैं। मादक महकती वासंती बयार में; मोहक रस पगे फूलों की पराग में; हरे-भरे पौधे की उड़ती बहार में; करकई, काँकर, कवड़, कचनार, महुआ और आम की गंधसनी मदमाती मुस्काती पवन में पर्यावरण के दोषों के प्रक्षालन की शक्ति है।

सुभद्राकुमारी चौहान 'वीरों का कैसा हो वसन्त?' कविता में पेड़-पौधों के पुष्पित प्यार का वर्णन करते हुए लिखती हैं—

फूली सरसों ने दिया रंग
मधु लेकर आ पहुँचा अनंग
वधु वसुधा का पुलकित अंग-अंग।

'वधु-वसुधा का पुलकित अंग-अंग' ही तो पर्यावरण के प्रदूषण को उदरस्थ करने का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

पर्याप्त वर्षा पर्यावरण की शुद्धि की कुंजी है। पेड़-पौधे वर्षा के निमन्त्रक भी हैं और नियंत्रक भी। जहाँ पेड़-पौधे अधिक संख्या में होते हैं, वहाँ वर्षा भी अधिक तथा ठीक समय पर होती है, किन्तु जहाँ-पेड़-पौधे नहीं होते (जैसे मरुभूमि में) वहाँ वर्षा बहुत ही कम होती है। जब वर्षा होती है तो पेड़-पौधों की मिट्टी उस जल को पी लेती है। उसके चहुँ ओर बिखरे पत्र-पुष्प उस पानी को बह जाने से रोकते हैं। परिणामतः बाढ़ की स्थिति उत्पन्न नहीं होती।

पेड़-पौधे वर्षा के निमंत्रणकर्ता कैसे होते हैं? इसको स्पष्ट करते हुए कृष्णभगवान गुप्त लिखते हैं—'पौधों में जड़, तना, पत्तियों आदि होती हैं। जड़ मिट्टी से पानी तथा खनिज

लवणों को पौधों के लिए अवशोषित करती हैं। यह पानी तने से होता हुआ पत्तियों तक पहुँच जाता है। पानी के कुछ भाग को पौधा अपना भोजन बनाने में उपयोग कर लेता है। शेष पानी पत्तियों की सतह से वाष्प बनकर निकल जाता है। वाष्पित पानी वायुमंडल में मिलकर बादलों का अंश बन जाता है। बादल वर्षा करते हैं।'

इनके प्रदूषण का कारण कार्बन-डाई-ऑक्साइड को छोड़ना है। यदि बहु भीड़-भाड़ की सड़कों के बीच या दोनों किनारों पर पेड़-पौधे लगे हों तो यह प्रदूषण कम हो जाएगा। धूप की सहायता से पेड़-पौधों की पत्तियों के हरे पदार्थ द्वारा कार्बन-डाइ-ऑक्साइड और पानी के बीच एक रासायनिक प्रक्रिया होती है, जिसके फलस्वरूप ऑक्सीजन का निर्माण होता है।

पद्म पुराण का कहना है, 'जो मनुष्य सड़क के किनारे वृक्ष लगाता है, वह स्वर्ग में उतने ही वर्षों तक सुख भोगता है, जितने वर्ष तक वह वृक्ष फलता-फूलता है।' पेड़-पौधों का रोपण धार्मिक कृत्य मानते हुए मत्स्य पुराण ने कहा, 'एक वृक्ष का आरोपण दस पुत्रों के जन्म के समान है।' वराह पुराण के अनुसार 'पंचाम्रवापी नरकं न याति' अर्थात् आम के पाँच पौधे लगाने वाला कभी नरक में जाता ही नहीं।' सच्चाई तो यह है कि पुराणों के कर्ता मुनि यह जानते थे कि कलियुग में ऐसा समय भी आएगा, जब पर्यावरण प्रदूषित होगा। उसको शुद्ध रखने के लिए एक मात्र सृजनात्मक उपाय है—'पेड़-पौधे उपजाओ, उन्हें विकसित करो, पुष्पित-पल्लवित करो।' अतः पर्यावरण की शुद्धि के लिए तथा प्रदूषण से मानवों की रक्षा के लिए अधिक से अधिक पेड़-पौधों का रोपण परमावश्यक है।

(290) पर्यावरण और हमारा दायित्व

संकेत बिंदु—(1) वायुमंडल प्रकृति का वरदान (2) औद्योगिक और वैज्ञानिक प्रगति से पर्यावरण दूषित (3) वाहनों और वन-कटाई से प्रदूषण (4) वृक्षों द्वारा जल-प्रदूषण रोकना (5) ध्वनि प्रदूषण पर रोक।

व्यक्ति के आस-पास की वह परिस्थिति जिसका व्यक्ति के अस्तित्व, जीवन-निर्वाह, विकास आदि पर प्रभाव पड़ता है, पर्यावरण कहलाता है। दूसरे शब्दों में इसे 'वायुमंडल' कह सकते हैं।

हमारा वायुमंडल प्रकृति का वरदान है। हमारा पालनकर्ता और जीवनाधार है। हमें स्वस्थ और सुखमय रखने का रक्षाकवच है। पर यदि यह विषाक्त हो जाए तो अभिशाप बनकर मानव-जीवन का संहारक बन जाता है। इसलिए पर्यावरण की सुरक्षा का दायित्व हमारा है।

स्वतंत्रता से बहुत पूर्व जब बड़े-बड़े उद्योगों का विस्तार नहीं हुआ था, हमारा पर्यावरण शुद्ध था। शुद्ध वायु हमारा आलिंगन करती थी। शुद्ध जल हमारा अभिषेक करता था। उर्वरा

भूमि हमें स्वास्थ्यप्रद अन्न प्रदान करती थी। जीवन में न अधिक भाग-दौड़ थी, न हाय-हाय। संतुष्टि पूर्ण सौम्य जीवन पर्यावरण का वरदान था।

भारत भू सस्य श्यामला थी, वन-उपवनों से हरी-भरी थी। वे पेड़-पौधों, वृक्ष-लताओं से समृद्ध थी। इसलिए वायुमंडल शुद्ध था। हवा की पावन सुगन्ध जन-जीवन को सुरभित कर रही थी। जनसंख्या बढ़ी। इसकी गति तीव्र हुई। इस बढ़ी हुई जनता के निवास के लिए भूमि चाहिए थी। दूसरी ओर, बढ़ती जनसंख्या की भूख मिटाने और अधिकाधिक सुख-सुविधाएं प्रदान करने के लिए उत्पादन बढ़ाने की जरूरत थी। उत्पादन बढ़ाने के लिए कारखाने, फैक्ट्रियाँ तथा औद्योगिक संस्थान खड़े किए गए। इनके लिए भूमि की माँग हुई। इसकी माँग पूरी की वन-उपवनों ने, खेत-खलियानों ने। जहाँ भूमि सस्य श्यामला थी, वहाँ गगन चुम्बी भवनों का निर्माण हो गया। भूमि की सस्य श्यामलता क्या कम हुई, हमने प्राणदायिनी वायु को अपने ही हाथों कुछ सीमा तक अवरुद्ध कर अपने लिए अनेक असाध्य रोगों को निमंत्रण दे दिया।

जन-सुख-सुविधा के लिए औद्योगिक संस्थानों नई वैज्ञानिक प्रौद्योगिकी ने उत्पादन तो बढ़ाया, किन्तु पर्यावरण को तीन रूपों में प्रभावित कर दिया। (1) कारखानों की चिमनियों से जो धूआँ निकला, उसने वायु को प्रदूषित कर दिया। उत्पादन के अवशेष तथा व्यर्थ पदार्थों को (कूड़े-कचरे) जलाया और भराव के काम लिया गया। दोनों ने वायु को प्रदूषित किया (2) उद्योगों के दूषित रासायनिक द्रवित पदार्थ को समीपस्थ नदी में प्रवाहित कर दिया। जिससे पेय-जल दूषित हो गया। (3) वन के वृक्ष कटने से मौसम का मिजाज बिगड़ा, वर्षा का वर्षण बे-समय हुआ। वर्षा का जल जो पहले वृक्षों के कारण बहने से रुकता था, बे-रोकटोक बहने लगा, फलतः भूमि की उर्वरा शक्ति घटने लगी। कुछ औद्योगिक उत्पादनों के लिए वनों का भी निर्ममता ने विनाश किया गया। इससे भी पर्यावरण दूषित हुआ।

वायु प्रदूषण का प्रथम कारण था वन-उपवन की कटाई। कटाई का कारण था जनसंख्या की वृद्धि के साथ निवास के लिए भवनों का निर्माण और औद्योगिक संस्थानों की स्थापना। इसलिए वायु प्रदूषण रोकने के लिए जनसंख्या वृद्धि को रोकना हमारा कर्तव्य होना चाहिए। दो से अधिक बच्चे उत्पन्न करना, अपराध मानना होगा। दूसरी ओर, औद्योगिक संस्थानों को शहर से बाहर, आबादी से दूर स्थानान्तरित करवाना होगा। उच्च न्यायालयों तथा सर्वोच्च न्यायालयों के निर्णयों के मानने के लिए बाध्य करना होगा। तीसरी ओर, औद्योगिक कचरे का वैज्ञानिक हल ढूँढ़वाना, हमारी जिम्मेदारी है।

वाहनों के पाइपों से जो गैस सरे-आम जीवन में विष घोल रही हैं, उनको रोकें। हम अपने वाहनों को 'प्रदूषण-मुक्त' का प्रमाण-पत्र मिलने पर ही चलाएँ। धूम्रपान जो हमारे शौक की विवशता है, उसे यथासम्भव कम करें। प्रदूषित स्थलों पर नाक पर रूमाल रखने का स्वभाव बनाएं।

भूमि को पुनः सस्य श्यामला करना होगा। इसके लिए वन-उपवनों का विकास करना होगा तथा वनों के विनाश को रोकना होगा। असंख्य पेड़-पौधे लगाकर उनको पल्लवित-पुष्पित करना हमारा दायित्व होगा। राजमार्गों तथा अत्यधिक व्यस्त मार्गों के बीच या दोनों ओर जैसे भी संभव हो, वृक्षों की पंक्तियाँ सुशोभित करवाना भी हम अपना धर्म समझें।

जीवन की दूसरी आवश्यकता है, जल। औद्योगिक-संस्थानों ने तो जल को विषाक्त किया ही, किन्तु हमने अपनी अव्यवस्था से भी जल को दूषित कर दिया। कपड़े-बरतन-हाथ धोने, स्नान करने तथा फर्श साफ करने पर जो अशुद्ध जल बहता है, उसे हमने समीपस्थ नदी में मिला दिया। ऊपर से प्रवाहित कर दिया उसमें अपना मल और मूत्र। परिणामतः जल और भी प्रदूषित हो गया।

शुद्ध-जल पीने को मिले, यह हमारा अधिकार है, पर जल को प्रदूषण से बचाना भी हमारा दायित्व है। शहर के गंदे जल का समीपस्थ नदी में प्रवाहित करने के स्थान पर आबादी से दूर उसके विसर्जन की व्यवस्था करवानी होगी। दूसरे, औद्योगिक रासायनिक द्रव को जल में प्रवाहित करने पर पूर्ण प्रतिबंध लगवाना होगा। तीसरे, रासायनिक प्रक्रिया द्वारा जल के परिशोधन को निश्चित करना होगा। चौथे, जल के अपव्यय को रोकें तथा पेय जल को फिल्टर (छान) करके या उबाल कर प्रयोग में लाएं।

पर्यावरण को प्रदूषित करने का एक और माध्यम है—'शोर'। इसे 'ध्वनि प्रदूषण' कहा जाता है। ऊँची, तीखी और कर्णकटु ध्वनियाँ जीवन के लिए हानिप्रद हैं। आकाशवाणी तथा दूरदर्शन की ऊँची आवाज तो घर की चार-दीवारी में गूँजती है, जो घर के वातावरण को दूषित करती हैं। धार्मिक स्थानों पर लगे लाउडस्पीकर, दुकानों पर लगे रेडियो, बैंड की आवाज, जलसे-जूलसों की नारे-बाजी अनचाहे हमें झेलनी पड़ती हैं। इसी प्रकार सड़कों पर चलते वाहनों के 'हार्नों' की आवाज तथा उनकी गड़गड़ाहट भी भयंकर शोर उत्पन्न करती हैं। 'शोर' से उत्पन्न होता है ध्वनि प्रदूषण। ध्वनि प्रदूषण से प्रभावित होती है हमारी श्रवण-शक्ति।

पावन वायु, शुद्ध जल तथा शक्तिवर्द्धक भोजन हमारे जीवन जीने के लिए अनिवार्य हैं। इनकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना हमारा दायित्व है। यदि हमने अपने दायित्व से मुख मोड़ा तो सृष्टि के विनाश के अपराधी हम स्वयं होंगे, प्रकृति या जगत्-नियन्ता नहीं।

(291) हवन-यज्ञ से पर्यावरण सुरक्षा

संकेत बिंदु—(1) अग्निहोत्र प्रक्रिया (2) हवन से वायु सुगंधित (3) हवन करते समय सावधानियाँ (4) सूर्य किरणों में रोगनाशक गुण (5) उपसंहार।

एक सामान्य व्यक्ति प्रति घण्टे 600 लीटर हवा फेफड़ों, वायुकोष्ठों एवं त्वचा के माध्यम से वातावरण से खींचता है। चौबीस घण्टों में यह मात्रा लगभग 14,500 लीटर बैठती

है। इस क्रम में प्रति मिनट मात्र 300 मिली लीटर ऑक्सीजन अन्दर जाती व 250 मिली लीटर कार्बन डाइऑक्साइड बदले में बाहर निकलती है। यदि आबादी का सघन अनुपात हो, आसपास जंगल न हो एवं ऊपर से प्रदूषण अतिरिक्त मात्रा में कारखानों के माध्यम से हो रहा है, तो कल्पना की जा सकती है, अन्दर प्रविष्ट होने वाली ओषजन का हवा में अनुपात क्रमश: कम होता जायेगा एवं कार्बन डाइऑक्साइड भी प्रचुर मात्रा में चारों ओर होगी। यह रक्त में अम्लता बढ़ाने, मानसिक असंतुलन एवं तनाव पैदा करने तथा वायुमण्डल को सान्द्र बनाने, साँस घुटने जैसी स्थिति पैदा करेगी। लगभग यही आज शहरों व कस्बों में होता देखा जा सकता है, जहाँ हरीतिमा नाममात्र को है एवं प्रदूषक तत्त्व अधिकाधिक मात्रा में हाल हैं। जब हरीतिमा बढ़ाने हेतु स्थान हो तो विकल्प क्या हो? इसका समाधान अग्निहोत्र प्रक्रिया कर देती है।

अग्निहोत्र प्रक्रिया में जब समिधाओं को या हविष्य औषधियों का होम किया जाता है तो प्राप्त यज्ञ धूम औषधि मिश्रित होता है। उसमें कार्बन डाइऑक्साइड बहुत अल्प मात्रा में उतनी ही रहती है जितनी कि याजक के मस्तिष्क के तंतुओं को उत्तेजना देने हेतु अनिवार्य है। होमी गयी औषधियों के मुख्य तत्त्वों के अतिरिक्त क्रियोजोट, फिनॉल, एसीटिलीन, ओजोन आदि भी इस प्रक्रिया में नि:स्तृत होते हैं। यहाँ हमें यहाँ समझना होगा कि यज्ञ की ज्वलन प्रक्रिया भट्टी में सम्पन्न होंने वाली क्रियाओं से बहुत अर्थों में भिन्न है। भट्टी में तापमान अधिकतम सीमा तक ले जाया जाता है। ताकि ईंधन तेज गति से जलकर अधिकतम ऊष्मा दे सके। यज्ञ कुण्ड इस प्रकार बनते हैं कि उसकी अग्नि उद्दीपन-प्रज्वलन प्रक्रिया भट्टी से भिन्न होती है। अग्नि के समन्वय से अग्निहोत्र प्रक्रिया में निर्मित ऊर्जा के कारण पदार्थ छोटे-छोटे कणों में विभक्त होता रहता है। यह एक प्रकार से रासायनिक विखण्डन की प्रक्रिया है। इससे दो परिणाम निकलते हैं—आवेशित कण को धारण किए सूक्ष्म औषधि घटक या तो वाष्पीभूत हो जाते हैं अथवा अवशिष्ट भस्म का एक अंग बन जाते हैं। चूँकि प्रज्वलन प्रक्रिया धीमी है, अत: जो धूम बनते हैं वे कार्बन डाइऑक्साइड एवं मोनोऑक्साइड रहित होते हैं। जो गैसों की मात्रा होती है उनमें भी इथीलिन ऑक्साइड, प्रॉपलिन ऑक्साइड, फार्मल्डीहाइड एवं बीटाप्रोपियो लेक्टेन तथा एसीटिलीन का अनुपात अधिक होता है। यह वायु शोधक सम्मिश्रण है जो वृक्ष वनस्पति की वृद्धि भी करता है। पर्यावरण का संशोधन-नियमन करके घातक जीवाणु-विषाणुओं की वृद्धि रोकता है। प्रयोग बताते हैं कि व्यापक स्तर पर किये गए ऐसे उपचार जब वायुमंडल में धूम के बादल बनकर पहुँचते हैं तो बादलों को आकर्षित करने की क्षमता रखते हैं। वायुदाब कम करके वर्षा तक उत्पन्न करने की सामर्थ्य इनमें होती है। पूना के फर्ग्युसन कॉलेज के वैज्ञानिकों ने प्रयोगोपरान्त पाया है कि 6˙6˙2.8 इंच गहराई के सामान्य ताम्र पात्र में आम की समिधाओं के माध्यम से, युग निर्माण योजना द्वारा प्रयुक्त सामान्य वनौषधि सम्मिश्रण से किया गया

अग्निहोत्र एक बार की 108 आहुतियों से 36 ˙ 22 ˙ 10 फीट के हाल की 1000 से भी अधिक घनफुट वायु में कृत्रिम रूप से विनिर्मित वायु प्रदूषण समाप्त करने में सफल रहा। नियमानुसार हवा के नमूने लेकर गैस लिक्विड क्रोमेटोग्राफ पर जाँचकर देखा गया है कि परीक्षित वायु पूरी तरह शुद्ध हो गयी।

हवन से उपयोगी गैस उत्पन्न कर हम पर्जन्य की अभिवृद्धि करते हैं, जिससे अन्न, फल आदि की उपत्ति होती है। ज्वालामुखी पर्वतों से यह वायु निकलती है। उनके आसपास वृक्ष तथा वनस्पति अधिक होती है। फ्रांस में यूबरीन में एक चश्मे से वह वायु निकली है जिससे वृक्ष आदि की वहाँ बहुतायत है। इसके अतिरिक्त यज्ञ-कुण्ड की वेदी के चारों ओर एक नाली-सी बनी रहती है जिसमें जल भर दिया जाता है कि कार्बन से उत्पन्न होने वाली वायु में विकार जो कि पृथ्वी पर हो सकते हैं अपने भीतर समाविष्ट कर लेता है।

वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि हवन से जो वायु बनती है उसमें अधिक भाग ओषजन होती है। इसका प्रमाण यह है कि हवन की वायु में सुगंधित वायु अधिक मात्रा में होती है और ओषजन उक्त वायु का ही दूसरा नाम प्राण-प्रद वायु है।

हवन करते समय जो सावधानियाँ बरतने का विधान दिया जाता है उनके अनुसार आहुत हव्य पूर्णतया जलकर कार्बनद्विओषित नहीं बनाती, वरन् उनका वाष्पीयन होकर उनमें ऐसे रासायनिक परिवर्तन होते हैं जिनके द्वारा अनेक उपयोगी पदार्थ अत्यंत सूक्ष्म मात्रा में उत्पन्न हो दिग्दिगंत में व्याप्त हो प्राणियों का उपकार करते हैं। हवन करते समय समिधा को केवल बाहर की ओर लगाने का प्रयोजन यह है कि समिधा के जलने से जो ताप उत्पन्न होता है वह हव्य का केवल वाष्पीयन करे, जलाये नहीं। हवन कुण्ड का ऊपर से खुला होना और नीचे संकुचित होने का भी यही प्रयोजन है कि हव्य में हविपरिमित मात्रा में पहुँचे। अधजले हव्य को कुरेदकर जलाने का निषेध भी यही प्रमाणित करता है कि हवन में हव्य को पूर्णतया जलने न देकर उसका वाष्पीयन किया जाता है, जिनके वाष्पीयन से उपयोगी द्रव्य वायुमण्डल में फैलकर प्राणियों का हित साधन करें।

प्रात: ऊषाकाल में जो वायु चलती है वह सबसे अधिक प्राणप्रद मानी जाती है। उसमें भी ओषजन ही अधिक होता है। अत: इससे सिद्ध होता है कि हवन-यज्ञ वायु को शुद्ध करता है और प्राणप्रद वर्षा भी करता है।

वैज्ञानिक परीक्षणों से भी यह सिद्ध हो गया है कि वायु शोधन का विशेष गुण यज्ञ में है। दुर्गन्धित सीलन युक्त मकान में रोग के कीटाणुओं का अड्डा होता है। वे उसी में छिपे हुए बैठते हैं और जिस भी अवयव में अनुकूलता पाते हैं, वहीं की स्थिति के अनुरूप रोग उत्पन्न करते हैं। इनके निवारण के लिए यज्ञ की ऊर्जा शोधन और मारण का काम करती है। यह ऐसा उपयोगी एण्टीबॉयोटिक है जिसमें उपयोगी कृत्रि-कीटकों, जीवाणुओं को पोषण मिलता है और दमन हानिकारक विजातियों का ही होता है।

गूगल, कपूर आदि पदार्थों के गुण सर्वविदित है। उन्हें रोग वाले स्थानों में जलाया जाता है। घृत दीपक में भी यही विशेषता है। गुड़, शक्कर जलने से भी मात्र रोगकारक जीवाणुओं-विषाणुओं का ही हनन होता है, सजातीय जीवाणु नहीं मरते, जब कि एण्टीबॉयोटिक औषधियाँ सजातीय और विजातीय दोनों प्रकार के जीवाणुओं को मारकर नफा-नुकसान बराबर कर देती है।

सूर्य की किरणों में रोगनाशक गुण है। इसलिए घरों में खिड़की खोलकर सूर्य की किरणों के प्रवेश की व्यवस्था की जाती है। नित्य कपड़े धोकर उन्हें धूप में सुखाते हैं। बिस्तर आदि जो कपड़े नित्य नहीं धोये जा सकते उन्हें भी तेज धूप में सुखाते हैं। खाद्य-पदार्थों को धूप लगाते रहने की आवश्यकता समझी जाती है। आटा, दाल आदि को धूप लगाते रहते हैं। इससे स्पष्ट है कि धूप की गर्मी में रोगनिवारक विशेषताएँ हैं। ठीक वही ऊर्जा यज्ञ ऊर्जा में पायी जाती है। सूर्य सम्पर्क से किसी को हानि नहीं होती, वरन् अन्न, शाक, फल आदि जो भी सूर्य के सम्पर्क में आते हैं, उनमें उपयोगी विटामिन 'डी' उत्पन्न हो जाता है। आहार विज्ञानी इसलिए खाद्य पदार्थों को छिलके समेत सेवन करने की सलाह देते हैं। ताकि उनका सूर्य संपर्क वाला विटामिन 'डी' सेवनकर्त्ताओं को उपलब्ध होता रहता है। मनुष्यों को भी प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति के अनुसार प्रात:काल की धूप में नंगे शरीर बैठने की सलाह दी जाती है ताकि त्वचा पर उपयोगी प्रभाव पड़े और वह गर्मी शरीर के भीतर पहुँचकर भी रोग निरोधक क्षमता बढ़ाये।

सूर्य ऊर्जा के सदृश्य ही यज्ञ को भी सशक्त माना गया है। उसमें संरक्षण और परिशोधन के दोनों गुण हैं। वह हानि नहीं पहुँचाती। फागुन सुदी पूर्णिमा को होली जलाई जाती है, वह नवान्न यज्ञ है। पतझड़ के पत्ते, माघ की वर्षा की सीलन पाकर दुर्गन्धित और रोगात्पदक प्रभाव उत्पन्न करते हैं। उसका सामूहिक उपचार बड़े रूप में अग्नि जलाकर किया जाता है। छोटी होली हर घर में जलाई जाती है। बड़े रूप में बड़े क्षेत्र की ओर छोटे रूप में घर की छोटी परिधि की वायुशोधन प्रतिक्रिया अग्नि जलाकर सम्पन्न की जाती है। वस्तुत: यह यज्ञ का ही एक अव्यवस्थित रूप है, जिससे हानिकारक तत्त्वों का निवारण होता है।

वातावरण को प्रसन्नतावर्धक-आरोग्य समर्थक बनाने के लिए प्रत्येक शुभ कार्य को आरम्भ करते समय हवन किया जाता है। जिन लोगों में विधिवत् हवन करने की पद्धति का प्रचलन नहीं है, वे गूगल, कपूर, चन्दन आदि वस्तुएँ जलाकर सुगन्धित वायु उत्पन्न कर लेते हैं। इसे मांगलिक माना जाता है। शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक प्रसन्नता बढ़ाने की विशेषता भी इसमें है। ये सब यज्ञ के ही अस्त-व्यस्त रूप हैं। सिद्धान्त इनके पीछे यही है कि यज्ञीय ऊर्जा सूर्य किरणों के समतुल्य है और वह मनुष्य के लिए हर दृष्टि से उपयोगी है। दूषित वायु को सुगन्धित वायु में परिवर्तित करने के सिद्धांत का इस प्रक्रिया में समावेश है। अत: संवर्धन एवं वातावरण परिशोधन दोनों के लिए किसी-न-किसी रूप में यज्ञ को दैनिक क्रिया में सम्मिलित किया ही जाना चाहिए।

(292) समाचार-पत्र

संकेत बिंदु—(1) वर्तमान स्थिति का दर्पण (2) देश-विदेश, व्यापार, खेलकूद के समाचार (3) लोकतंत्र का चतुर्थ स्तम्भ (4) समाचार पत्र का जन्म और विभिन्न पत्र-पत्रिकायें (5) उपसंहार।

समाचार-पत्र संसार की वर्तमान स्थिति का दर्पण है। विश्व में घटित घटनाओं का विश्वसनीय दस्तावेज है। सत्ता और विरोधी पक्ष के विचारों के गुण-दोष विवेचन का राजहंस है। ज्ञान-वर्धन का सबसे सस्ता, सरल और प्रमुख साधन है। मानवीय जिज्ञासा, कौतूहल और उत्सुकता की शान्ति का साधन है। लोकतंत्र का चतुर्थ स्तम्भ है।

समाचार-पत्र केवल डेढ़-दो रुपए में विश्व-दर्शन करवाता है। कितना सस्ता साधन है, ज्ञानवर्धन का। हॉकर समाचार-पत्र को घर पर डाल जाता है। बिना कष्ट किए ही हमें उसकी उपलब्धि हो जाती है। कितनी सुगम है इसकी प्राप्ति। जीवन और जगत् की अद्यतन जानकारी देने वाला विश्वसनीय दूत है, यह। इसकी प्रामाणिकता में सन्देह के लिए कोई स्थान नहीं।

समाचार-पत्र में देश-विदेश के ताजे समाचार तथा शासकीय, व्यापारिक एवं खेलकूद के समाचार पढ़िए। सरकारी आदेश, निर्देश, सूचनाएँ देखिए। सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, साहित्यिक तथा सिने-संसार की गतिविधियों की जानकारी लीजिए। आकाशवाणी और दूरदर्शन के दिन-भर के कार्यक्रमों का विवरण पढ़िए चलचित्र जगत् का पोस्टमार्टम प्राप्त कीजिए।

व्यापारिक मण्डियों के भाव, शेयरों के उतार-चढ़ाव, नौकरी के लिए कहाँ-कहाँ स्थान खाली है? कौन-सी फिल्म किस सिनेमाघर में लगी है? इसकी जानकारी के लिए समाचार-पत्र पढ़िए। बेटी-बेटे के लिए वर-वधू की खोज समाचार-पत्र के माध्यम से कीजिए।

समाचार-पत्र के विज्ञापन व्यापार-वृद्धि के प्रमुख साधन हैं। विज्ञापन समाचार-पत्रों के आय के स्रोत भी हैं। संवाददाताओं, फोटोग्राफरों की आमदनी बढ़ाते हैं। लाखों कर्मचारियों को जीविका प्रदान करते हैं। लाखों हॉकरों को रोजी-रोटी देते हैं।

समाचार-पत्र लोकतन्त्र के चतुर्थ स्तम्भ हैं, उसके जागरूक प्रहरी हैं। राजनैतिक बेईमानी, प्रशासनिक शिथिलता तथा भ्रष्टाचरण एवं मिथ्या आश्वासनों और जनता के अहितकर षड्यन्त्रों का पर्दाफाश करते हैं। 1974 से 1977 तक के आपत्कालीन तिमिरावृत भारतीय काल को चीर देने का श्रेय समाचार-पत्रों को ही है। अमेरिका के वाटरगेट काण्ड का भण्डाफोड़ समाचार-पत्रों ने ही किया था। चुनावों के खोखलेपन की शल्यक्रिया करने

वाले ये समाचार-पत्र ही हैं। भारत में प्रजातन्त्र के छद्म-वेश में परिवार तन्त्र की स्थापना के प्रति सचेत करने का दायित्व समाचार-पत्र ही वहन किए हुए हैं।

समाचार-पत्र सामाजिक कुरीतियों तथा धार्मिक अन्धविश्वासों को दूर कराने में सहायक सिद्ध हुए हैं। अखबार के सम्पादकीय बड़े-बड़ों के मिजाज ठीक कर देते हैं। ये सरकारी नीति के प्रकाशन तथा सरकार की आलोचना के भी सुन्दर साधन हैं। वास्तव में विचारों को स्पष्ट और सही रूप में प्रस्तुत करने के लिए समाचार-पत्र से अधिक अच्छा साधन और कोई नहीं है। वर्तमान युग में विचारों की (बुद्धि की) प्रधानता है। सर्वत्र बुद्धिवाद का ही बोलबाला है। तर्कसम्मत और प्रभावोत्पादक ढंग से विचारों को प्रस्तुत करना ही सफलता की कुंजी है। इसके लिए समाचार-पत्र सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण साधन हैं। प्रसिद्ध विचारक श्री हेन ने ठीक ही कहा है—'आजकल हम विचारों के लिए संघर्ष करते हैं और समाचार-पत्र हमारी किलेबन्दियाँ हैं।'

समाचार-पत्र का जन्म सोलहवीं शताब्दी में चीन में हुआ था। 'पीकिंग गजट' विश्व का प्रथम समाचार-पत्र था। अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् मुद्रण-कला के विकास के साथ-साथ भारत में भी समाचार-पत्र का प्रारम्भ हुआ। भारत का प्रथम समाचार-पत्र 'इण्डिया गजट' था। इसके बाद ईसाई पादरियों ने समाचार-पत्र निकाले। हिन्दी का पहला-पत्र 'उदन्त-मार्तण्ड' 30 मई, 1826 को प्रकाशित हुआ। यह साप्ताहिक था। तत्पश्चात् राजा राममोहन राय ने 'कौमुदी' और ईश्वरचन्द्र ने 'प्रभाकर' पत्र निकाले। आजकल तो समाचार-पत्रों की बाढ़ आई हुई है।

सम्पूर्ण भारत में अंग्रेजी में 353, हिन्दी में 2202, उर्दू में 509, तमिल में 344, मराठी में 302, कन्नड़ में 290 तथा मलयालम में 208 दैनिक समाचार-पत्र छपते हैं। इनके अतिरिक्त अंग्रेजी सहित सभी भारतीय भाषाओं में 14743 साप्ताहिक तथा 5913 पाक्षिक और 12065 मासिक पत्रिकाएं छपती हैं।

आठ क्षेत्रीय कार्यालयों और 33 कार्यालयों एवं सूचना केन्द्रों द्वारा 'पत्र सूचना कार्यालय' विभिन्न प्रसारण माध्यमों, जैसे प्रेस विज्ञप्तियाँ, प्रेस नोटों, विशेष लेखों, संदर्भ सामग्री, प्रेस ब्रीफिंग, साक्षात्कारों, संवाददाता सम्मेलनों और प्रेस दौरों आदि की सूचना 13 क्षेत्रीय भाषाओं में आठ हजार समाचार-पत्रों तथा समाचार-संगठनों तक पहुँचाता है। कम्प्यूटर और इन्टरनेट के माध्यम से दुनियाभर के समाचार-पत्रों को भी ये सूचनाएं उपलब्ध हैं।

समाचार-संग्रह का प्रमुख साधन है—टेलीप्रिण्टर। समाचार-पत्र कार्यालयों में लगी ये मशीनें अहर्निश टप-टप की ध्वनि में समाचारों को टंकित करती रहती हैं। टेलीप्रिण्टर को संचालित करती हैं—समाचार-एजेंसियाँ। ये समाचार-संग्रह की विश्व-व्यापी संस्थाएँ हैं। ये अपने संवाददाताओं द्वारा समाचार-संग्रह करके टेलीप्रिण्टर द्वारा समाचार-पत्रों को भेजती हैं। भारत में दो प्रमुख समाचार-एजेंसियों हैं—(1) प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया (P.T.I.)

तथा (2) यूनाइटेड न्यूज ऑफ इंडिया (U.N.I.)। इनके अतिरिक्त गुट निरपेक्ष समाचार एजेंसी पूल (N.A.N.A.P.) है।

दैनिक समाचार-पत्र नवीनतम दैनिक समाचारों का दस्तावेज हैं, तो साप्ताहिक-पत्र साप्ताहिक गतिविधियों के मीमांसक-दर्पण। पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक पत्र-पत्रिकाएँ विषय-विशेष के रूप को उजागर करती हैं। ये विविध रूपा हैं—जैसे साहित्यिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक आदि। विशिष्ट ज्ञानवर्धक सामग्री प्रस्तुत करना इनका ध्येय है।

जैसे-जैसे मानव में ज्ञान के प्रति जागरूकता बढ़ेगी, जीवन और जगत् की जानकारी के प्रति जिज्ञासा जागृत होगी, संसार की अद्यतन गतिविधियों के प्रति जल बिन मीन की तरह छटपटाहट होगी, वह 'समाचार-पत्रम् शरणम् गच्छामि' के उद्घोष को मुखरित करेगा।

(293) जन-जागरण और समाचार-पत्र

संकेत बिंदु—(1) सर्वश्रेष्ठ, सुगम और सस्ता साधन (2) स्वतंत्रता संग्राम और अनेक राजनीतिक-सामाजिक घटनाओं में समाचार पत्र (3) समाचार पत्र की विस्तृत भूमिका (4) विश्व की घटनाओं का संक्षिप्त दस्तावेज (5) उपसंहार।

समाचार-पत्र जन-जागरण के सर्वश्रेष्ठ, सर्वसुलभ सस्ते तथा सुगम साधन हैं। समाचार-पत्र के लेखों से जनता पर जादू का-सा प्रभाव पड़ता है। वह बुरे कर्म से सचेत होती है, अच्छी और लाभप्रद बातों का लाभ उठाती है।

जनता को विकास-पथ पर अग्रसर होने के लिए सचेत करने को जन-जागरण कह सकते हैं। जनता को सतत जागृत रखना समाचार-पत्रों का दायित्व है। जन-जीवन के जागरण की विविध दिशाएँ हैं—सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, पारिवारिक, आर्थिक, व्यापारिक, वैज्ञानिक, साहित्यिक आदि। वस्तुत: समाचार-पत्र जन-जागरण के प्रहरी ही नहीं, मन्त्रदाता और मार्गदर्शक भी हैं।

महाकवि जयशंकर प्रसाद ने जागरण का अर्थ कर्म-क्षेत्र में अवतीर्ण होना माना है। वे लिखते हैं—'कर्मक्षेत्र क्या है ? जीवन-संग्राम।' जनता को जीवन-संग्राम में अवतरित करने में समाचार-पत्र का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसीलिए कुछ महापुरुषों ने तो समाचार-पत्रों को 'जनता के शिक्षक' माना है और जे. पार्टन ने उन्हें 'जनता के विश्वविद्यालय' स्वीकार किया है।

भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम में समाचार-पत्रों ने जनता को राजनीतिक कर्तव्यों के प्रति जागरूक रखा। परतन्त्रता के युग में अंग्रेजों के दमन-चक्र के विरुद्ध सत्याग्रह के लिए

वातावरण तैयार करने एवं अंग्रेजों के विरुद्ध जनाक्रोश उत्पन्न करने में समाचार-पत्रों की भूमिका अविस्मरणीय थी। आपत्काल में इण्डियन एक्सप्रेस, वीर अर्जुन, प्रताप, पाञ्चजन्य आदि पत्रों ने अपने अग्रलेखों से जनता को जागरूक रखा।

किसी भी सरकार की नीतियों के आलोचक समाचार-पत्र ही होते हैं। उनके सम्पादकीय लेख अधिनायकवादी सत्ताधारियों के मिजाज ठीक कर देते हैं। भारतीय शासन में बढ़ते और फैलते भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद तथा स्वार्थपूर्ति के लिए किए गए कुकर्मों का भंडाफोड़ भारत के समाचार-पत्र ही करते रहे हैं। ब्रिटेन के प्रसिद्ध प्रधानमन्त्री डिजरायली का विचार था कि अत्याचारी शासक-वर्ग का सबसे बड़ा शत्रु समाचार-पत्र हैं। प्रसिद्ध अमेरिकी संवाददाता जैक ऐम्डर्सन ने लिखा है, 'समाचार-पत्रों की स्वतन्त्रता एक पहरेदार कुत्ते की तरह है, जो कभी-कभी भयंकर रूप धारण कर सकती है और इसकी घ्राणशक्ति हमें उन अलमारियों तक ले जाती है, जिनमें सरकारों, बड़े-बड़े औद्योगिक संस्थानों तथा नेताओं की भयावनी योजनाएँ छिपी रहती हैं।'

अमेरिका के सुप्रसिद्ध 'वाटरगेट काण्ड', जिसके कारण राष्ट्रपति निक्सन का पतन हुआ, जापान के शक्तिशाली प्रधानमंत्री काकुई तनाका के पतन एवं इंग्लैण्ड के मन्त्री प्रोफ्यूमा के सेक्स-काण्ड और अमेरिका के राष्ट्रपति क्विंटन के अवैध काम-सम्बन्ध के उद्घाटन का श्रेय समाचार-पत्रों को ही है। भारत तो षड्यंत्रों और भ्रष्टाचरण का भवन बनता जा रहा है। नागरवाला काण्ड, बोफर्स काण्ड, चाराकाण्ड, शेयर मार्किट और बैंकों का षड्यन्त्र, एक से एक बढ़कर षड्यन्त्र होते हैं, जिन्हें समाचार-पत्र ही उद्घाटित करते हैं। वे जनता के दु:खदर्द से अनजान सत्ता की नींद हराम करते हैं। इसलिए विश्वविख्यात वीर नेपोलियन ने एक बार कहा था—'मैं लाखों विरोधियों की अपेक्षा तीन विरोधी समाचार-पत्रों से अधिक भयभीत रहता हूँ।'

समाचार-पत्र सामाजिक कुरीतियों से पर्दा उठाकर जनता को उनके विषाक्त परिणाम से अवगत कराते हैं। दहेज की बलिवेदी पर चढ़ने वाली नारियों तथा सती प्रथा द्वारा आत्मदाह करने वाली पत्नियों के समाचारों को प्राथमिकता देते हैं। इधर 'कल्याण' पत्र ने धार्मिक क्षेत्र में जन-जागरण का जो कार्य किया है और कर रहा है, उसे भारतीय जनता विस्मृत नहीं कर सकेगी। उसमें धार्मिक जीवन की सुचारुता, शान्ति और प्रगति के लिए लेखों की भरमार रहती है। राष्ट्र की आर्थिक दशा का विश्लेषण करके जनता को सचेत करने में समाचार-पत्र कभी पीछे नहीं रहे। आर्थिक-विकास के साधनों के प्रयोग को समाचार-पत्र प्रकाश में लाते रहते हैं। आर्थिक चेतना की जागृति के लिए तो भारत में अब अनेक आर्थिक दैनिक-पत्र भी छपते हैं। जनता को वैज्ञानिक उन्नति की जानकारी देने एवं उसके हानि-लाभ से परिचित कराने का श्रेय समाचार-पत्रों को ही है। वैज्ञानिक-पत्रिकाओं का उद्देश्य तो केवल यही है कि जनता वैज्ञानिक प्रयोगों और उनकी आश्चर्यजनक उपलब्धियों से परिचित रहे। जनता जानती है कि अब बड़ी-से-बड़ी बीमारी पर भी विज्ञान

ने विजय प्राप्त कर ली है। तपेदिक, कैंसर, हृदय तथा मस्तिष्क-रोगों से अब मानव मरता नहीं। इसी प्रकार स्वास्थ्य-रक्षा के साधनों, उनके कार्यक्रमों तथा उपायों की विस्तृत जानकारी देकर ये समाचार-पत्र जनता को जागृत करते रहते हैं।

समाचार-पत्र विश्व की घटनाओं का संक्षिप्त दस्तावेज हैं। प्रात: उठकर मानव ज्ञानवर्द्धन के लिए समाचार-पत्र पढ़ता है। विश्व की घटनाओं के प्रति जानकारी प्राप्त करता है। व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व के सन्दर्भ में उनका मूल्यांकन करता है। सन् 1974 में बंगला देश में जब मार्शल लॉ लागू हुआ तो भारत की जनता सजग हो गई कि कहीं भारत पर उसका प्रभाव न पड़े। जागरूक जन-नेताओं की दूरदर्शिता सच निकली और जून, 1975 में भारत में आपत्स्थिति घोषित हो गई।

लोकतन्त्रात्मक राष्ट्रों में समाचार-पत्र चतुर्थ जन-शक्ति है। यह जन-शक्ति जनता के अधिकारों के लिए लड़ती है और कर्तव्यपूर्ति के लिए जनता को प्रेरित करती है। सरकार-निर्माण के लिए मतदान के अवसर पर वह प्रत्येक प्रत्याशी और दल की गतिविधियों की समीक्षा करके उसकी अच्छाई-बुराई को स्पष्ट करती है, ताकि जनता मत डालते समय जागरूक रहे, राजनीतिज्ञों की धूर्तता के मोह-जाल में न फँस जाए।

वित्तीय घोटालों और काण्डों की राजनीति का पर्दाफास करना, जातीय हिंसा, साम्प्रदायिक विद्वेष तथा क्षेत्रीय आतंकवादी राजनीति से सरकार और जनता को सचेष्ट करना, दलीय राजनीतिक से लोकतांत्रिक मूल्यों की सुरक्षा के लिए तर्क करना तथा देशद्रोहियों की गतिविधियों से जागरित करना चतुर्थ जन-शक्ति का कर्तव्य है।

इस प्रकार जनता को जागरूक रखने का बहुत बड़ा श्रेय समाचार-पत्रों को है। जनता के अधिकारों के लिए लड़ना और जनता को अपने कर्तव्यों के प्रति सचेत करना समाचार-पत्र अपना धर्म समझते हैं। अत्याचार और अनाचार के विरुद्ध जनता में पाँचजन्य का घोष करके एवं उसे क्रान्ति के लिए प्रस्तुत करके, उसे आर्थिक, धार्मिक तथा सामाजिक विद्रोही तत्त्वों से सजग रखने में ही समाचार-पत्रों की इतिकर्तव्यता है।

(294) (क) समाचार-पत्रों का जीवन में स्थान/ समाचार-पत्रों की जीवन में उपयोगिता/ समाचार-पत्र का महत्त्व

संकेत बिंदु—(1) जीवन में जानकारी का माध्यम (2) भारतीय संस्कृति का उद्घोष (3) जनजागरण और जनमत तैयारी का साधन (4) विज्ञापन का सस्ता और सुगम माध्यम (5) उपसंहार।

समाचार-पत्र वर्तमान-जीवन का दर्पण है, अद्यतन-ज्ञान का प्रदाता है। जीवन में विश्व-हलचल की जानकारी का माध्यम है। यह जनता को जागृत करते का सर्वश्रेष्ठ,

सर्वप्रिय, सस्ता तथा सुलभ साधन है। लोकतन्त्रात्मक राष्ट्रों में समाचार-पत्र जन-शक्ति का चतुर्थ स्तम्भ है, क्योंकि यह जन-जीवन की भावनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम है।

समाचार-पत्र वर्तमान-युग की 'बैड टी' है। जिस प्रकार बिना 'बैड टी' आज का तथाकथित सभ्य नागरिक बिस्तर के नीचे पाँव नहीं रखता, उसी प्रकार मानसिक भूख मिटाने लिए 'समाचार-पत्र' पढ़े बिना उसे चैन नहीं पड़ता। कुछ लोग प्रातः उठकर दर्पण में अपना मुँह देखते हैं, कुछ हथेलियों के माध्यम से आत्म-दर्शन करते हैं, उसी प्रकार आज का शिक्षित नागरिक समाचार-पत्र रूपी दर्पण में विश्व-दर्शन किए बिना सन्तुष्ट नहीं हो पाता। वर्तमान-जीवन में समाचार-पत्र का इससे बढ़कर महत्त्व क्या होगा कि समाचार-पत्र पढ़ने का अभ्यस्त व्यक्ति प्रातःकाल उसके दर्शनों के अभाव में ऐसा तड़पता है, जैसे जल के बिना मछली।

भारतीय संस्कृति का उद्घोष है, 'वसुधैव कुटुम्बकम्।' इसके कार्यान्वयन का भार वहन किया समाचार-पत्रों ने। समाचार-पत्र विश्व के समाचारों का संग्रह है, सांसारिक-जीवन की गतिविधि का दर्पण है। वह वसुधा के समाचारों को समस्त कुटुम्ब तक पहुँचाना अपना लक्ष्य मानता है। इस प्रकार समाचार-पत्र वर्तमान जीवन में ज्ञानवर्धन का माध्यम है। इसीलिए आजकल लड़ाई का मैदान विश्व के राष्ट्र कभी-कभी ही होते हैं। कारण, समाचार-पत्रों ने इनका स्थान ले लिया है। नेताओं, राष्ट्र और राज्य के दृष्टिकोण के समर्थन, प्रचार एवं प्रसार के लिए समाचार-पत्र प्रतिदिन अग्नि-वर्षा करने से नहीं चूकते।

समाचार-पत्र लोकतान्त्रिक राष्ट्रों में जन-शक्ति के महान् प्रदर्शक है। जनता की भावनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम है, राष्ट्र के कर्णधारों के बहरे कानों में जनता की आवाज फूँकने वाला पाँचजन्य है। भारत के सूखा-पीड़ितों की बेहाली, जनता की असुरक्षा की घटनाओं, चोरी, डाके, बलात्कार, दलितों पर हुए अत्याचारों तथा पीड़ित जनता की चीत्कार को प्रकट कर भारत के समाचार-पत्रों ने सरकार को झझकोरा है।

समाचार-पत्र जन-जागरण के वैतालिक हैं। एक सजग प्रहरी की भाँति समाचार-पत्र भयंकर रूप भी धारण कर सकते हैं। वे हमें अपनी दिव्य दृष्टि एवं तीव्र सूझबूझ के माध्यम से उन आलमारियों तक ले जाते हैं, जिनमें सरकारों, बड़े-बड़े औद्योगिक संस्थानों तथा स्वार्थी नेताओं की भयावनी योजनाएँ छिपी रहती हैं। अमेरिका के सुप्रसिद्ध 'वाटरगेट काण्ड', जापान के शक्तिशाली प्रधानमन्त्री काकुई तनाका का पतन, इंग्लैण्ड के मन्त्री प्रोफ्यूमा का सेक्स-काण्ड एवं भारत में बोफर्स काण्ड, चारा काण्ड, क्रिकेट-मैच फिक्सिंग काण्ड आदि बीसियों काण्डों का प्रकाशन समाचार-पत्रों द्वारा जन-जागरण के ज्वलन्त प्रमाण हैं। इसीलिए विश्वविख्यात वीर नेपोलियन ने कहा था, 'मैं लाखों विरोधियों की अपेक्षा तीन विरोधी समाचार-पत्रों से अधिक भयभीत रहता हूँ।'

समाचार-पत्र ही जनमत तैयार करने का सबसे सुलभ साधन है। प्रकाशित समाचारों, अग्रलेखों और सम्पादकीय-टिप्पणियों में जनता की विचारधारा मोड़ने और दृष्टिकोण को

बदलने की महती शक्ति होती है। आपत्काल की ज्यादतियों एवं संजय-राजनारायण-चरणसिंह की विभेदक नीतियों से राष्ट्र को खतरे की घण्टी बजा-बजाकर समाचार-पत्रों ने इन सबके प्रति जनता के मनों में क्षोभ उत्पन्न किया। रूस के अधिनायकवादी रवैये पर समाचार-पत्र ही टिप्पणियाँ लिख-लिखकर जनता को सही बात समझाने की चेष्टा करते रहे। अमेरिका की चौधराहट पर रोष प्रकट करने का कार्य समाचार-पत्र ही करते हैं।

जीवन में विज्ञापन का बहुत महत्त्व है। किसी वस्तु, भाव या विचार को विज्ञापन द्वारा प्रसिद्ध किया जा सकता है, प्रधानता दिलाई जा सकती है। समाचार-पत्र विज्ञापन का एक बड़ा साधन है। इसमें प्रकाशित विज्ञापन पढ़े जाते हैं। ये विज्ञापन पाठक पर अपना प्रभाव भी छोड़ते हैं। इसीलिए व्यापारी-वर्ग विज्ञापन के लिए समाचार-पत्रों का सहारा लेकर व्यापार की वृद्धि करते हैं। दूसरी ओर अपने विचारों के प्रचार और प्रसार के लिए राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक संस्थाएँ अपने-अपने अखबार निकालती हैं। समाचार-पत्र योग्य वर या वधू, काम के लिए उपयुक्त कर्मचारी, कार्यालय या निवास के लिए उचित स्थान की खोज का श्रेष्ठ एवं सरल साधन बन गए हैं।

वर्तमान युग में नवोदित लेखकों एवं कवियों-कवयित्रियों को प्रकाश में लाने का श्रेय भी समाचार-पत्रों को है। अपरिचित लेखकों को जनता समाचार-पत्रों के माध्यम से आँखों पर बैठाती है, उनके प्रति श्रद्धा प्रकट करती है। यश के साथ-साथ समाचार-पत्र आय का साधन भी हैं। लेखक को लेख का पारिश्रमिक मिलता है, कवि-कवयित्री को अपनी प्रकाशित कविता के लिए दक्षिणा प्राप्त होती है।

इन सबसे बढ़कर समाचार-पत्र लाखों लोगों की आजीविका का साधन है। समाचार-पत्रों के कार्यालयों में कार्यरत कर्मचारी, सम्पादक, संवाददाता, फोटोग्राफर, समाचार-एजेंसियों के कर्मचारी, कम्पोजिटर, मशीनमैन आदि लाखों लोग समाचार-पत्रों से अपनी रोजी-रोटी चलाते हैं।

समाचार-पत्र के बिना आज का मानव जगत् की घटनाओं से अनभिज्ञ अँधेरे में ही रह जाता है। सुचारु जीवन जीने की कला से अनभिज्ञ रहता है। विश्व की कुटुम्बीय भावना को नकारता है। किसी कवि ने ठीक ही कहा है—

इस अन्धियारे विश्व में, दीपक है अखबार।
सुपथ दिखावे आपको, आँख करत है चार॥

(295) लोकतंत्र में पत्रकारों का दायित्व

संकेत बिंदु—(1) जागरूक प्रहरी की सार्थक भूमिका (2) सत्य घटना व जानकारी का स्रोत (3) अपनी जान पर खेलकर कर्त्तव्य-निर्वाह (4) जनता की भावनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम (5) उपसंहार।

पत्रकार लोकतंत्र में एक जागरूक प्रहरी की सार्थक भूमिका का निर्वाहक होता है और समाचार-पत्र लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ कहा गया है। समाचार-पत्र और पत्रकार ही समाज

की खोई शक्ति को पुनः जागृत करने का कार्य करते हैं। पत्रकार ही अपने समाचार-पत्र के माध्यम से सामाजिक कुरीतियों और धार्मिक अंधविश्वासों को उजागर कर समाज को जागरूक बनाते हैं। कवि मनोहर लाल 'रत्नम' ने अपनी कविता '**पत्रकार प्रहरी होता है**' में इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया है कि—

लोकतंत्र की मर्यादा का, पत्रकार प्रहरी होता है।
मन का भावुक पत्रकार यह, समय पड़े जहरी होता है॥

लोकतंत्र में पत्रकार सत्य और सही बात कहने में बिल्कुल भी संकोच नहीं करता। राजनैतिक बेईमानी, प्रशासन की कमजोरियाँ, चहूँ ओर फैला भ्रष्टाचार, नेताओं के झूठे आश्वसनों का पत्रकार ही पर्दाफाश करता है। वर्तमान में पत्रकार दो प्रकार से देखे जा सकते हैं, एक तो प्रकाशन समुदाय से जुड़े पत्रकार जिसे आज हम 'प्रिंट मीडिया' के नाम से जानते हैं और (दूसरे 'मीडिया' से जुड़ें अर्थात् दूरदर्शन प्रणाली के पत्रकार। दोनों के पत्रकार चाहे समाचार-पत्र से जुड़े हों या दूरदर्शन से, समाचार एकत्र करने में अपने दायित्व का निर्वाह करते देखे गये हैं।

वर्तमान में युग दूरदर्शन का है और विभिन्न चैनलों के माध्यम से आज पत्रकार अपने कार्य को सुचारू रूप से कर रहे हैं। लोकतंत्र में पत्रकार आज इतना जागरूक है कि 'तहलका' और 'तेलगी' जैसे घिनौने कार्य का पत्रकारों ने अपनी जान पर खेलकर फर्दाफाश किया है। लोकतंत्र में इन पत्रकारों को इतनी स्वतंत्रता मिल पाना ही लोकतंत्र की जीत कही जा सकती है।

भारत देश प्रजातंत्र के भेष में परिवार तंत्र की स्थापना के प्रति समाज और देश को सचेत करने दायित्व इन पत्रकारों ने ही निभाया है। देश में हो रहे अनेकों काण्ड चारा घोटाला काण्ड, चीनी काण्ड, शेयर घोटाला काण्ड, बोफोर्स काण्ड, ताबूत काण्ड इत्यादि अनेकों घोटालों का भंडाफोड़ पत्रकारों ने ही किया है, यही कारण है कि आज बड़े-बड़े नेता भी यदि भय खाते हैं तो इस प्रकार के कर्त्तव्यनिष्ठ खोजी पत्रकारों से, जिनके प्रयास से नेताओं की काली करतूते जनता के सामने आती हैं।

पत्रकार अपनी लेखनी की पैनीधार से राजनीति की भी बखिया उधेड़ते ही रहते हैं। यदि देश का पत्रकार अपने कर्त्तव्य में विमुख हो जाये तो सारा समाज गँदला हो जायेगा। पत्रकार अग्रणी होकर समाज में हो रही अनेक घटनाओं की जानकारी जनता के समक्ष रखते हैं।

पत्रकार लोकतांत्रिक राष्ट्र ने जन-शक्ति का महान् प्रदर्शक है, जिसकी तत्परता से ही समाज में जागकरण आता है। पत्रकार ही जनता की भावनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम है। पत्रकारों का साहस है कि वह अपने उस खुफिया कैमरे के माध्यम से बिक्रीकर अधिकारियों, आयकर विभाग के कर्मचारियों, नेताओं और पुलिस को रिश्वत लेते हुए दूरदर्शन के चैनलों पर दिखाकर लोकतंत्र में अपने दायित्व को निभाया है, ताकि देश की जनता इनके असली स्वरूप को पहचान सके।

समाज का आम नागरिक तो रात को अपने घर में आराम कर रहा होता है और पत्रकार खबरें खोज रहा होता है। टी.वी. पर अनेक चैनलों ने नये ढंग से विस्तार के साथ समाचारों को प्रसारित करना प्रारंभ किया है जिनमें सनसनी, अचल हैंडरेड, पुलिस फाईल में, काल-कपाल-महाकाल, वारदाता, सी.आई.डी., नाम से जो कार्यक्रम टी.वी. पर विभिन्न चैनलों द्वारा प्रसारित किये जाते हैं उनको बनाने में, फिल्माने में पत्रकारों का साहस और उनका कर्तव्य भी प्रशंसनीय है। तभी से कहा गया है कि 'अपने देश की सीमाओं का पत्रकार प्रहरी होता है।'

प्रहरी पत्रकार के प्रतिनिधि मंडल के मुखिया से यह पूछ लिया कि आपकी कार में 'लालबत्ती' किस हैसियत से लगी है, क्योंकि आप न तो विधायक हैं, न सांसद हैं और न ही कोई मंत्री हैं तो गाड़ी पर लालबत्ती का कारण ? इतना सुनते उस मुखिया के हिमायतियों ने पत्रकार के साथ मारपीट शुरू कर दी; उसी क्षण सभी टी.वी. चैनलों के पत्रकारों ने वह मारपीट और उस तथाकथित मुखिया नेता द्वारा बोली जा रही अभद्र भाषा को फिल्माकर पूरे देश को दिखा दिया। लोकतंत्र में पत्रकार ने केवल 'लालबत्ती' के अधिकार का प्रश्न ही पूछा तो हँगामा इतना हो गया कि जैसे किसी चोर को चोरी करते हुए रंगें हाथों पकड़ लिया गया हो।

आज के समय में पत्रकारिता का कार्य बड़ा जोखिम भरा है और जब तक पत्रकार निडर और निर्भीक नहीं है तब तक वह व्यक्ति पत्रकार के कार्य को भली प्रकार नहीं निभा सकता। आजकल तो महिलाएँ इस क्षेत्र में रुचि लेकर आगे आ रही हैं। भारत देश के नेता तो पूरे देश को दागी और कलंकित करने पर उतारू हो रहे लगते हैं और पत्रकार लोकतंत्र में अपने दायित्व को निभाने में तत्पर हैं।

लोकतंत्र में कपटतंत्र है, संविधान है मौन।
पत्रकार है सजग देश का, और न्याय है मौन॥

चलचित्र, दूरदर्शन और आकाशवाणी

(296) मनोरंजन के आधुनिक साधन

संकेत बिंदु—(1) मनोरंजन का अर्थ (2) मनोरंजन के बिना स्वास्थ्य में कमी (3) मनोरंजन के साधन (4) मनोरंजन के आधुनिक साधन (5) उपसंहार।

मन को प्रसन्न करने की क्रिया या भाव मनोरंजन है। ऐसा कोई कार्य या बात जिससे समय बहुत ही आनन्दपूर्वक व्यतीत होता है, मनोरंजन है। मनोविनोद, दिल-बहलाव और इन्टरटेनमेंट, इसके पयार्यवाची हैं।

मनोरंजन मात्र मन की रंजन-क्रिया ही नहीं, जीवन दर्शन भी है। जीवन जीने की एक कला है। जीवन-मूल्यों के प्रति आस्था है। वैचारिकता की दृष्टि से पंकमय अस्थिर मन में कमल विकसित करना है।

दिल दे तो इस मिजाज का परवर दिगार दे।
जो रंज की घड़ी को खुशी में गुजार दे।। -दाग

मानव की स्वभावगत मोहक प्रवृति है मनोरंजन। जीवन को हँसकर जीने की औषधि है तो स्वास्थ्य का अनोखा मंत्र है मनोरंजन। वस्तुतः मनोरंजन या मनोविनोद परिश्रम से क्लान्त तन-मन को विश्रान्ति देने वाला और आनन्द देने वाला है।

मनोरंजन का अर्थ है—मन को प्रसन्न रखना। इसी को मनोविनोद भी कहते हैं। वस्तुतः मनोरंजन से मन हर्षित होता है। मन के प्रसन्न रहने से शरीर व मन, दोनों को लाभ मिलता है, आयु बढ़ती है। मनोरंजन के क्षणों में शरीर के तनाव-ग्रस्त तन्तु ढीले पड़ जाते हैं और अतिरिक्त शक्ति का संचय होने लगता है, जिससे नवस्फूर्ति आती है।

मनोरंजन के बिना मनुष्य का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। कार्य-क्षमता मन्द पड़ जाती है। इच्छा-शक्ति क्षीण हो जाती है। मानसिक चेतना ही जागृति के अभाव में जीवन का सन्तुलन बिगड़ जाता है। स्वभाव में रुखाई एवं चिड़चिड़ापन आ जाता है। हास्य भाव समाप्त हो जाता है और जीवन-नीरसता से भर जाता है। अतः मनोरंजन के लिए कुछ समय निकालना और उन आनन्दमय क्षणों में जीवन की वास्तविक अनुभूति प्राप्त करना आवश्यक है।

प्राचीन रोम में खान-पान, सरकस एवं पुरुषों के साथ पशुओं का द्वन्द्व-युद्ध मनोरंजन के साधन थे। 'बुल फाइटिंग' स्पेन-वासियों के मनोरंजन का प्रमुख साधन था। प्राचीन भारत में नाटक और पुत्तलिका-नृत्य, काव्य-ग्रन्थों का अध्ययन, शतरंज और ताश, तीतर और बटेर की लड़ाई, शिकार आदि मनोरंजन के प्रमुख साधन थे।

वैज्ञानिक उन्नति के साथ-साथ मनोरंजन के साधनों का भी विकास होता गया। आज मनोरंजन के लिए सर्वसुलभ और अत्यन्त सस्ते साधन हैं-टेलीविजन (दूरदर्शन) और रेडियो (आकाशवाणी)। आज घर-घर में टेलीविजन और रेडियो हैं। टेलीविजन में फीचर फिल्में देखिए और देखिए नृत्य एवं संगीत के विविध मनोरंजक कार्यक्रम। गणतन्त्र दिवस का आनन्द लीजिए तथा क्रिकेट-मैच से मनोरंजन कीजिए। यह अनेक धारावाहिकों द्वारा विविध रूपेण प्रतिदिन मनोरंजन कराने वाला बिना वेतन का सेवक है।

ध्वनि कार्यक्रमों पर आधारित रेडियो मानव-मात्र का स्वस्थ मनोरंजन-प्रदाता है विविध-भारती के कार्यक्रम, मनोरंजक प्रायोजित कार्यक्रम, श्रुतिमधुर गीत, नाटक, प्रहसन, लोकरुचि के कार्यक्रम, कहानियाँ तथा कविताएँ, क्रिकेट कॉमेंट्री आदि कार्यक्रम मानव को स्वस्थ और चुस्त बना देते हैं।

मनोरंजन का तीसरा आधुनिक साधन है चित्रपट या सिनेमा। कम पैसों में एयर कंडीशंड हॉल में बैठकर फिल्म देखिए और तीन घण्टे तक स्वस्थ मनोरंजन प्राप्त कीजिए।

मनोरंजन का चौथा आधुनिक साधन हैं-पुस्तकें। हिन्दी में उपन्यास, कहानी-संग्रह हास्य-व्यंग्य कविताओं ने जनता में जहाँ पढ़ने की रुचि जागृत की, वहाँ स्वस्थ मनोरंजन भी प्रदान किया। आज सभ्य और पढ़ी-लिखी जनता पुस्तकों की शौकीन हो गई है।

मनोरंजन के अन्य आधुनिक साधन हैं-सरकस, रंगमंचीय नाटक, ध्वनि-प्रकाश कार्यक्रम तथा नृत्य और संगीत। ये हर समय या प्रतिदिन तो उपलब्ध नहीं है। हाँ, बड़े-बड़े शहरों में ये कार्यक्रम होते रहते हैं। सरकस में सरकस का जोकर हँसा-हँसाकर एवं पशुओं और युवक-युवतियों के साहसिक कृत्य दिखाकर जनता का स्वस्थ मनोरंजन करते हैं। इसी प्रकार नृत्य-संगीत-नाटक में संगीत की धुन पर नृत्य और अभिनय का संगम बहुत चित्ताकर्षक कार्यक्रम होता है। रंगमंचीय नाटक और ध्वनि-प्रकाश कार्यक्रम मानव-मन को हर्षोल्लासित करते हैं। विजयदशमी के पर्व पर रामलीला का मंचन जन-जन को आह्लादित करता है।

ताश, कैरम, शतरंज, बैडमिंटन, फुटबॉल, क्रिकेट, कबड्डी, मल्लयुद्ध, नौका विहार आदि खेल भी आधुनिक युग में मनोरंजन के अच्छे साधन हैं। अपनी-अपनी रुचि के अनुकूल जन-मानस इनसे मनोरंजन प्राप्त करता है।

मनोरंजन के कुछ अन्य साधन हैं-पिकनिक और प्रातःकालीन सैर। अवकाश के दिन मित्रों की टोली जब पिकनिक पर जाती है, तो अनेक दिनों तक उसका आनन्द विस्मृत नहीं कर पाती। सैर शौक-पर निर्भर है। शौक से सैर करेंगे, तो आनन्द आएगा, मनोरंजन भी होगा।

कवि-सम्मेलन, काव्य-गोष्ठियाँ, सांस्कृतिक-कार्यक्रम जीवन को आनन्द प्रदान करते हैं। काव्य-रुचि विद्वानों को रस-मग्न करती है।

विज्ञान की प्रगति के साथ-साथ आज का मानवीय जीवन अत्यन्त व्यस्त होता जा रहा है। जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं को जुटाने और कमरतोड़ महँगाई के कारण आज का मानव घुटन का जीवन जी रहा है। चेहरे पर मुस्कान रहते भी वह अन्दर से घुटा-घुटा रहता है। जीवन से जूझने में समयाभाव दीवार बनकर खड़ा है। समयाभाव के कारण मानवीय मनोरंजन के साधनों में भी उसी मात्रा में विकास हो रहा है। दिन-भर फाइलों से झूझता लिपिक, दिनभर की व्यापारिक ऊँच-नीच को झेलता दुकानदार और पसीने में तर-बतर कठोर श्रम करने वाला श्रमिक जब घर लौटता है, तो रेडियो या दूरदर्शन उसका हल्का-फुल्का मनोरंजन करते हैं, उसका मन स्वस्थ करते हैं। जैसे-जैसे मानव समयाभाव की पीड़ा का अनुभव करेगा, वैसे ही 'आवश्यकता आविष्कार की जननी है' इस सिद्धान्त के अनुसार वीडियोगेम्स जैसे सरल तथा स्वस्थ मनोरंजन के उपाय आविष्कृत हो जाएँगे।

(297) सिनेमा (चलचित्र)

संकेत बिंदु—(1) मनोरंजन का सस्ता और लोकप्रिय साधन (2) सिनेमा का व्यावसायिक इतिहास (3) शिक्षा और प्रचार का सशक्त माध्यम (4) सिनेमा के दुष्परिणाम (5) उपसंहार।

चलचित्र वर्तमान युग का एक जन-प्रिय आविष्कार है। यह ध्वनि और चित्र का अद्‌भुत संगम है। मनोरंजन का शक्तिशाली और सस्ता साधन है। वर्तमान सभ्यता का महत्त्वपूर्ण अंग है। जन-जन की इच्छा का मूर्त रूप है।

सिनेमा आज लोकप्रियता के शिखर पर है। एडवांस बुकिंग, टिकट-घर पर लम्बी लाइनें, 'हाउस फुल' के बोर्ड, टिकटों की ब्लैक, सिनेमा-प्रियता के प्रमाण हैं। इसके श्रुति-मधुर गीत सुनने के लिए लोग ट्रॉंजिस्टर और रेडियो को 'ऑन' (खुला) रखते हैं। चित्रहार, चित्रगीत, चित्रमाला, रंगोली आदि में गीत सुनने और दृश्य देखने के लिए टेलीविजन पर धरना देकर बैठते हैं। आज के शिशु को भी सिनेमा-गीत गाते सुना जा सकता है। युवक-युवतियों का 'सिनेमा स्टाइल' के बाल रखना, वेशभूषा अपनाना तथा बातचीत करना तो सामान्य-सी बात हो गई है।

चित्रपट पर चलचित्र दिखाने का ढंग वैज्ञानिक है। प्रोजेक्टर के ऊपर और नीचे दो चरखियाँ लगी होती हैं और एक आर्कलैम्प लगा होता है, जो रोशनी फैंकता है। ऊपर की चरखी पर उल्टी फिल्म लगाई जाती है। मशीन चलाने पर ऊपर की चरखी से फिल्म नीचे की चरखी में लिपटती जाती है। जब फिल्म प्रोजेक्टर के उस भाग के सामने आती है, जहाँ प्रकाश बाहर निकलता है, तब वहाँ कुछ क्षण रुकती है। फिल्म के पीछे एक कटा हुआ पहिया घूमता रहता है। जैसे ही फिल्म वहाँ रुकती है, वैसे ही पहिये का कटा हुआ भाग उसके पीछे आ जाता है। इसमें से होकर तेज रोशनी फिल्म पर पड़ती है। यह प्रकाश फिल्म में से होकर प्रोजेक्टर के लैंस में से गुजरता है और चित्र सामने दिखाई देता है। पर्दे के पीछे लगे लाउडस्पीकर ध्वनि उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार चित्रपट पर चित्र और ध्वनि का संगम बनता है।

सिनेमा को व्यवसाय के रूप में स्थापित करने का श्रेय ल्युमिएर बंधुओं को जाता हैं। उन्होंने 28 दिसम्बर 1895 को पेरिस में पहली बार लघुचित्र का व्यावसायिक प्रदर्शन किया था। इसके बाद सन् 1897 में जार्जेस मेलिस ने पेरिस के पास विश्व का पहला स्टूडियो 'पॅथे गारमान्टे' स्थापित कर सिनेमा के व्यवसाय को संगठित रूप दिया और केवल 16 वर्षों के अन्तराल में 1000 फिल्मों का निर्माण कर 'फन्तासी जनक' के रूप में ख्याति प्राप्त की। सिनेमाई जगत् की इस नई क्रांति से भारत भी अछूता नहीं रह सका। 1913 में मूक फिल्म 'राजा हरीशचंद्र' द्वारा भारत में फिल्म निर्माण शुरू हुआ और 1931 में 'आलम आरा' द्वारा उसे वाणी मिली। तब से आज तक यह उद्योग लगातार प्रगति पथ पर है।

आज चलचित्रों ने बहुत उन्नति कर ली है। विभिन्न प्रकार के दृश्य उसमें देखिए। जिन दृश्यों को साक्षात् देखकर मानव-मन दहल उठता है, उसको भी आप वहाँ पाएँगे। रंग-बिरंगे चित्र देखिए और साथ ही सुनिए श्रुति-मधुर गीत।

सिनेमा जहाँ मनोरंजन का साधन है, वहाँ शिक्षा व प्रचार का भी सर्वश्रेष्ठ साधन है। भूगोल, इतिहास और विज्ञान जैसे शुष्क विषयों को अमेरिका और यूरोपीय देशों में चलचित्रों द्वारा समझाया जाता है।

समाज को सुधारने में चित्रपट का पर्याप्त हाथ है। सामाजिक कुरीतियों को दूर करने में सहस्रों प्रचारक जो काम न कर सके, वह चलचित्र ने कर दिखाया। सिनेमा समाज पर अच्छा-बुरा सभी प्रकार का प्रभाव होता है। 'बॉबी', 'प्रेमरोग', 'आँधी', 'जागृति', 'चक्र', 'आक्रोश', 'फिर भी' आदि फिल्मों ने समाज पर अपना अलग-अलग प्रभाव स्थापित किया है।

इसी भाँति पौराणिक और धार्मिक चलचित्र हमारे पुरातन इतिहास को सम्मुख लाकर धर्म के प्रति जनता की श्रद्धा बढ़ाने का यत्न करते हैं, तो राष्ट्रीय चलचित्र देश के प्रति मर-मिटने की भावना जाग्रत करते हैं। 'रामराज्य', 'झाँसी की रानी', 'शहीद', 'भगतसिंह', 'गाँधी' आदि चित्रों को इसी श्रेणी में रखा जा सकता है।

सिनेमा से जहाँ इतने लाभ हैं, वहाँ हानियाँ भी बहुत हैं। ठीक भी हैं; जहाँ फूल होंगे, वहाँ काँटे भी अवश्य होंगे। आज भारत में अधिकांश चित्र नग्नता, मार-धाड़ और अश्लील वासना-वृत्ति पर आधारित होते हैं। इससे जहाँ नवयुवकों और नवयुवतियों के चरित्र का अध:पतन हुआ है, हिंसा बढ़ी है, वहाँ समाज में समाज-विरोधी दुष्कृत्यों की संख्या भी बढ़ गई है। अब तो दिन-प्रतिदिन चल-चित्रों में नग्नता भोड़ेपन का रूप ले रही है। अभिनेत्रियाँ निर्वस्त्र होने में शान समझने लगी हैं। आलिंगन तथा चुम्बन के दृश्य इस प्रकार दिखाए जाने लगे हैं कि परिवार के छोटे-बड़े सदस्य एक साथ बैठकर उन्हें नहीं देख सकते।

दूसरे, आजकल सिनेमाओं में जो गाने चलते हैं, वे प्राय: अश्लील और वासनात्मक प्रवृत्तियों को उभारने वाले होते हैं, किन्तु उनकी लय और स्वर इतने मधुर होते हैं कि आज तीन-तीन और चार-चार वर्ष के बच्चों से भी आप वे गाने सुन सकते हैं।

तीसरे, समाज में आए-दिन नए-नए फैशन का रोग फैलाने की जड़ भी सिनेमा ही है। सिनेमा के अभिनेता जिस रूप में दिखाई देते हैं, नवयुवक वर्ग उसका अन्धानुकरण करने के लिए उतावला हो उठता है। परिणामत: नए फैशन छूत की बीमारी की तरह फैलते चले जाते हैं।

चौथे, अधिक सिनेमा देखने से तीन हानियाँ होती हैं—(1) सिनेमा की तेज रोशनी से आँखों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। (2) धन और समय का अपव्यय होता है। (3) पैसा न मिलने पर उसकी प्राप्ति के लिए चोरी आदि बुरे काम करने की आदत पड़ती है।

इन सब बुराइयों के होते हुए भी सिनेमा एक लाभप्रद आविष्कार है। इतना अवश्य ध्यान रखना होगा कि चलचित्र-निर्माताओं को सामाजिक दृष्टि से सार्थक, सांस्कृतिक दृष्टि से प्रामाणिक, कला की दृष्टि से सन्तोषप्रद और शिल्प की दृष्टि से चमत्कारी फिल्में बनानी चाहिएँ; तभी सिनेमा शिक्षा और मनोरंजन का सर्वश्रेष्ठ साधन सिद्ध हो सकेगा।

(298) सिनेमा और अश्लीलता

संकेत बिंदु—(1) चोली-दामन का सम्बन्ध (2) प्रेम की परिणति काम (3) अश्लील दृश्यों से भरपूर फिल्में (4) अश्लीयता से भरे गीत (5) उपसंहार।

आज सिनेमा और अश्लीलता का चोली-दामन का सम्बन्ध बन गया है। नैतिक तथा सामाजिक आदर्शों से च्युत दृश्यों की शूटिंग सिनेमा का अनिवार्य तत्त्व बन गया है। सभ्य और सुसंस्कृत-जनों के बीच में तथा कुटुम्ब के छोटे-बड़ों के मध्य प्रतिकूल लगें, ऐसे दृश्यों को दर्शाना सिनेमा-जगत् का टॉनिक बन गया है। इसलिए नंगापन, बलात्कार तथा कामोत्तेजक दृश्य आज के सिनेमा-साफल्य की कसौटी बन गए हैं।

सिनेमा आज एक शुद्ध व्यवसाय बन गया है। व्यापारी उसी व्यापार में पूँजी लगाता है, जिसमें उसे लाभ की संभावना रहती है। सिनेमा का निर्माता व्यापारी उसमें करोड़ों रुपए फूँकता है तो उससे कहीं बहुत अधिक पा लेना चाहता है। इस 'पा लेने की चाह' में अपनी प्रत्येक फिल्म में थोड़ी-सी हिंसा, थोड़ा-सा नंगापान, थोड़ा-सा आदर्श, थोड़ी-सी तड़क-भड़क, थोड़ा-सा संयोग, थोड़ा-सा वियोग, थोड़ी-सी दुर्घटना, थोड़ी-सी सुघटना, थोड़ा-सा रहस्य, थोड़ा-सा रोमांस गूँथता है। ऊपर से डालता है नायक-नायिका के आलिंगन-चुम्बन और कामोत्तेजक दृश्यों की चासनी। थोड़ा और आकर्षण बनाने के लिए डालेगा 'बैडरूम' का नंगापन, चोली-बिकनी का स्नान दृश्य, बलात्कार के दृश्य।

फिल्मों का मूल उद्देश्य हमेशा से मनोरंजन रहा है। प्रेम के बिना मनोरंजन असम्भव-सा हो गया है। मनोरंजन की स्थिति युग-युग में बदलती रही है। पहले सिनेमा देखना ही मनोरंजन का कारण था। बाद में नृत्य और संगीत ने मनोरंजन को बढ़ावा दिया। फिर नृत्य की उत्तेजकता ने मनोरंजन दिया। जब इन सब दृश्यों को दर्शक 'पिटे-पिटाए' मानने लगा तो स्नान दृश्य और बलात्कार के दृश्य जोड़े गए और यह क्रम बढ़ते-बढ़ते नग्न वासनात्मक दृश्यों में उतर आया। प्रश्न वासनात्मक दृश्यों की आवश्यकता, अनावश्यकता या अनिवार्यता का नहीं, प्रश्न है केवल मनोरंजन में वृद्धि का।

श्री शिवसारंग फिल्मों में सेक्स की 'शल्यक्रिया' इन शब्दों में करते हैं—'सर्वेक्षणों के अनुसार द्रोहकाल, आस्था, आर-पार, माया मेमसाब, कामशास्त्र : ए टेल ऑफ लव, इस रात की सुबह नहीं, जहाँ तुम ले चलो, गंगा, ट्रेन टू पाकिस्तान, 1947 अर्थ, फायर, बाम्बे बायज, कामतंत्र, दिल से, ऐलिजाबेथ, बैंडिट क्वीन, खोज, खूबसूरत आदि फिल्मों

के कुछ दृश्यों ने एक कीर्तिमान बनाया। '1947 : अर्थ' निर्देशिका ने समलैंगिक फिल्म की चर्चित 29 वर्षीय विंदास नन्दिता दास को नायिका लिया। भारत पाक विभाजन पर आधारित अर्थ में राहुल खन्ना और नन्दिता दास का प्रणय दृश्य बैंडिट क्वीन की याद दिलाता है। फिल्म की अविवाहिता नायिका का विवाह-पूर्व प्रेमी से सम्भोग करने का दृश्य बहुत ही रुचि लेकर फिल्मांकित किया गया है। नन्दिता ने भी पूरी उदारता से यह दृश्य दिया है। सबसे आपत्तिजनक यह है कि इस सैक्स दृश्य को एक बच्ची देख रही थी।

विन्दास नन्दिता दास ने 'फायर' में अपनी जेठानी शबाना आजमी से 'समलैंगिक सैक्स' के लम्बे दृश्यों से सनसनी मचा दी थी। 'फायर' में कामोद्दीपन से ग्रस्त नग्न नन्दिता पर नग्न शबाना सम्भोग करने जाती है। निर्देशिका ने शबाना आजमी और नन्दिता की देह रेखा को कला के नाम पर बाजाप्ता प्रदर्शित किया। इन दृश्यों के अलावा 'फायर' में वृद्धा के सामने नौकर द्वारा ब्लू फिल्म देखना और हस्तमैथुन के विकृति भरे दृश्य है। विकृति यहाँ तक है कि 'फायर' में वीडियो पार्लर से बच्चों को ब्लू फिल्म ले जाते दिखाया गया है। 'कामतंत्र' में उर्वशी और दीप्ति भटनागर के नृत्य कामोत्तेजक हैं। उर्वशी से कामकला के आसनों की मुद्राएं करवायी गई है। कामतंत्र में स्वामीजी और नायक द्वारा सेक्स के लम्बे दृश्यों ने सभी सीमाएं तोड़कर रख दीं। जबकि कथानक का इनसे कोई लेना-देना नहीं था। खुजहारों की सेक्स मुद्राओं का उत्तेजक संगीत में भौंड़ा प्रदर्शन शर्मनाक रहा। ये दृश्य दर्शकों में काम-वासना का प्रचण्ड प्रवाह उत्पन्न करते हैं।

'आर पार' और 'माया मेमसाब' में हीरोइन दीपा साही के जिस्म की भरपूर नुमाइश की गई है। 'माया मेमसाब' फिल्म के अंत में दीपा साही और शाहरुख खान के उन्मुक्त सेक्स का दृश्य है, जिसमें नग्न दीपा साही को शाहरुख खान उठाये हैं।' 'आर पार' में जैकी श्राफ और दीपा साही का पानी की पारदर्शी शैया पर रति प्रसंग दर्शकों में उत्तेजना भरने में सक्षम है। इसे लम्बा करने के लिए कामुक गाना भी जोड़ा गया है। दु:खद यह है कि दोनों फिल्मों के निदेशक हीरोइन दीपा साही के पति हैं। बासु भट्टाचार्य जैसे चोटी के निर्देशक की 'आस्था' में मडोना, रेखा और नवीन निश्चल के सेक्स के तीन लम्बे दृश्यों ने भी सभी सीमाएं तोड़ीं। इनमें रेखा नवीन निश्चल को उत्तेजित करने के लिए क्या नहीं करती है। निर्देशक ने यही क्रम पुरी और रेखा के मध्य दोहराया है। ये प्रसंग स्वयं में शर्मनाक हैं। रेखा 'खिलाड़ियों के खिलाड़ी' में अक्षयकुमार के साथ मिट्टी लपेटे इससे भी अधिक सेक्सी प्रसंग कर चुकी है। बासु भट्टाचार्य के लिए क्या सेक्स प्रदर्शन ही शेष रहा था। परन्तु हिन्दी फिल्मों की सभी सीमाएं संवाद और दृश्यों में 'बैंडिंट क्वीन' ने तोड़ी। बैंडिट क्वीन में सीमा विश्वास को नग्न देह में लगभग दस मिनिट तक कुएं पर आते और पानी भरते दिखाया गया है। सीमा विश्वास के इस बोल्ड दृश्य ने होलीवुड की अभिनेत्रियों के भी होश उड़ा दिये। अमेरिकी, फ्रांसीसी, रूसी फिल्में हीरोइन के शरीर का नाभी से नीचे का भाग प्रदर्शित नहीं करती हैं। धन्य हैं, हमारे शेखर कपूर जिन्होंने गलियों की सड़ांध भी समाज में फैला दी। शेखर कपूर की 'ऐलिजाबेथ' के कुछ दृश्यों पर हंगामा मचा। कपूर

सेंसर बोर्ड पर बरसे भी। वास्तविकता के नाम पर नारी देह के गुप्तांग प्रदर्शन अश्लीलतम चेष्टा है।

हिन्दी फिल्मों की सफलता के पीछे गीतों का भी बहुत बड़ा हाथ रहा है। अब तो गीत पहले प्रचलित होते हैं और फिल्म बाद में प्रदर्शित होती है। गीतों में प्रेम और शृंगार का चित्रण सदा ही रहा है। राजकपूर की संगम का गीत, 'मैं क्या करूँ राम मुझे बुड्ढा मिल गया,' 'गाइड' का गीत, 'आज फिर जीने की तम्मना है, आज फिर मरने का इरादा है', मुगलेआजम का गीत 'प्यार किया तो डरना क्या ?' आदि गीतों ने दर्शकों को हृदयों को हर लिया था।

आज के गीत पुराने प्रेम-गीतों के परिवर्तित खुले रूप हैं, श्रवण-सुखद हैं। दिल को झकझोरते हैं। जैसे—खलनायक का 'चोली के पीछे क्या है ?' राजा बाबू का 'सरकाय लो खटिया जाड़ा लगे, जाड़े में बलमा प्यारा लगे।' शूल का 'आई हूँ दिल वालों का करार लूटने, मैं आई हूँ यू.पी., बिहार लूटने। रोजा का, 'शादी के बाद क्या-क्या हुआ ?' 'कुछ-कुछ होता है', 'मेरा पाँव भारी हो गया', 'चुम्मा-चुम्मा दे दे' आदि।

निर्माता निर्देशक महेश भट्ट के शब्दों में तो—'सेक्स में बुराई क्या है ? क्या हर जीवित प्राणी इसका आनंद नहीं लेता ? केवल कुछ व्यक्ति ही सेक्स की बात चलने पर नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं। जिस चीज में आपको मजा आता है उसके बारे में छद्मलज्जा की बात समझ में नहीं आती। साफ कहिए कि आपको मजा आता है और आपको कुछ ज्यादा चाहिए। केवल कुछ लोगों के कहने से सेक्स बुरी चीज नहीं हो जाती है। लोगों की समझदारी के बारे में कुछ लोगों का निर्णय लेना असंगत है। सेक्स के बारे में लोगों की धारणाएं अलग हैं। यह किसी भी व्यक्ति की अपनी समझदारी पर निर्भर करता है कि वह उसे किस रूप में लेता है। सेक्स के बारे में 'हाँ' या 'ना' में जवाब नहीं दिया जा सकता। मैं मानता हूँ कि छोटे बच्चों को सेक्स के बारे में नहीं बताना चाहिए, क्योंकि वे गलत रूप में इसे ले सकते हैं। पर हम यहाँ वयस्कों की बातें कर रहे हैं, जो सेक्स का सही अर्थ जानते हैं। कोई भी व्यक्ति किसी फिल्मकार को सेक्स के चित्रण या दर्शकों को उसे देखने से कैसे रोक सकता है ? क्या यह कहने की जरूरत है कि हम अपनी बात को बिगाड़कर ही पेश कर पाते हैं। चूँकि हमें सब कुछ दबे और छिपे रूप में बताना पड़ता है, इसलिए हमारी फिल्में न इधर की और न उधर की रह पाती हैं। (राष्ट्रीय सहारा : 19.7.1997)

कोई भी कला रूप या मनोरंजन का माध्यम समाज से निरपेक्ष नहीं रह सकता। आज का सिनेमा समाज का दर्पण नहीं हो सकता तो समाज से बाहर भी नहीं है। भारतीय समाज जिस पाश्चात्य सभ्यता को जबरदस्ती ओढ़कर संकर-जीवन जी रहा है, आज का सिनेमा उसकी मुँह बोलती तस्वीर ही तो है। आज के युवक-युवती के सम्मुख 'सेक्स' के खुले प्रदर्शन में कोई बुराई नहीं। आज की तथाकथित सभ्यता, 'Eat, Drink & Be marry' (खाओ, पीओ और मौज करो) में ही है।

(299) दूरदर्शन

संकेत बिंदु—(1) दूरदर्शन शब्द का अर्थ (2) भारत में दूरदर्शन का आगमन (3) दैनिक राष्ट्रीय कार्यक्रम और अंतर्राष्ट्रीय चैनल शुरू (4) मनोरंजन, ज्ञानवर्धन और विज्ञापन का साधन (5) उपसंहार।

दूरदर्शन अंग्रेजी शब्द टेलीविजन का हिन्दी पर्याय है। 'टेलीविजन' (Television) अंग्रेजी के दो शब्दों 'Tele' और 'vision' से मिलकर बना है। Tele का अर्थ है 'दूर' और vision का अर्थ है 'देखना' अर्थात् 'दूरदर्शन'। विज्ञान के जिन चमत्कारों ने मनुष्य को आश्चर्यचकित कर दिया है, उनमें टेलीविजन भी मुख्य है। इस यन्त्र के द्वारा दूर से प्रसारित ध्वनि चित्र सहित दर्शक के पास पहुँच जाती है।

भारत में 'दूरदर्शन' का आगमन 15 सितम्बर, 1959 से ही समझना चाहिए, जब कि तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसाद ने आकाशवाणी के टेलीविजन विभाग का उद्घाटन किया था। 500 वाट शक्ति वाला ट्रांसमीटर दिल्ली से 25 कि.मी. की दूरी तक कार्यक्रम प्रसारित कर सकता था। 1965 से एक समाचार बुलेटिन के साथ नियमित रूप से प्रतिदिन एक घंटे का प्रसारण शुरू हुआ। टेलीविजन सेवा का बम्बई में विस्तार 1972 में ही हो पाया। 1975 तक कलकत्ता, चेन्नई, श्रीनगर, अमृतसर और लखनऊ में भी टेलीविजन केन्द्र स्थापित किए जा चुके थे।

प्रगति का एक पग और बढ़ा। 1 अगस्त, 1975 से अमेरिकी उपग्रह द्वारा 6 राज्यों के 2400 गाँवों की 25 लाख जनता दूरदर्शन से लाभान्वित हुई।

15 अगस्त, 1982 को भारतीय उपग्रह 'इन्सेट-1 ए' के माध्यम से विभिन्न दूरदर्शन केन्द्रों से एक ही कार्यक्रम दिखाना सम्भव हुआ। दूसरी ओर 'इन्सेट-1बी' उपग्रह के सफल स्थापन के बाद सितम्बर, 1983 से न केवल भारत के विभिन्न दूरदर्शन-केन्द्रों में सामंजस्य स्थापित हो सका, अपितु देश के कोने-कोने में बसे हुए गाँव भी दूरदर्शन कार्यक्रम से लाभान्वित होने लगे। यही कार्य अब 'इन्सेट-डी' कर रहा है।

1981-1990 के दशक में ट्रांसमीटरों की संख्या 19 से बढ़कर 519 हो गई। अनेक शहरों में स्टूडियो भी खोले गए। दूरदर्शन ने 1993 में चार नए चैनल शुरू किए थे, किन्तु 1994 में परिवर्तन करके भाषानुसार कर दिए। 1995 इन्सेट 2-सी के प्रक्षेपण के बाद दूरदर्शन की नीति हर प्रांत के क्षेत्रीय चैनल बढ़ाने की रही।

15 अगस्त 1984 को सारे देश में एक साथ प्रसारित किए जाने वाले दैनिक राष्ट्रीय कार्यक्रमों का शुभारम्भ हुआ। 1987 में दैनिक प्रातःकालीन समाचार बुलेटिन का प्रसारण आरम्भ हुआ। 20 जनवरी 1989 को दोपहर का प्रसारण आरम्भ हुआ। जनवरी 1986 से दूरदर्शन की विज्ञापन-सेवा आरम्भ हुई। परिणामतः उसके राजस्व में बहुत अधिक वृद्धि हुई।

डी-डी 2 मैट्रो चैनल 1984 में शुरू हुआ। यह सेवा 46 शहरों में उपलब्ध है, किन्तु डिश एंटीना के जरिए देश के अन्य भागों में भी इसके कार्यक्रम देखे जा सकते हैं।

1995 से दूरदर्शन का अन्तरराष्ट्रीय चैनल शुरू हुआ। पी.ए.एस.-4 के द्वारा इसके प्रसारण एशिया, अफ्रीका तथा यूरोप के पचास देशों में पहुँच चुके हैं। अमरीका और कनाडा के लिए इसके प्रसारण पी.ए.एस.-1 मे किए जा रहे हैं।

नए चेनलों में 'खेल चेनल' तथा अगस्त 2000 से पंजाबी चैनल शुरू हुआ जो 24 घंटे कार्यक्रम प्रसारित करेगा।

दूरदर्शन पर सरकारी नियंत्रण था। उसके विकास का दायित्व सरकार पर होता था। 23 नवम्बर 1997 से इसका कार्यभार प्रसार-भारती (स्वायत्त प्रसारण परिषद्) ने संभाल लिया है।

दूरदर्शन मन को स्थिर करने का साधन है, एकाग्रचित्तता का अभ्यास है। इसके कार्यक्रम देखते हुए हृदय, नेत्र और कानों की एकता दर्शनीय है। जरा-सा भी व्यवधान साधक को बुरा लगता है। दूरदर्शन के कार्यक्रम के मध्य अन्य कोई व्यवधान दर्शक को बेचैन कर देता है, क्रोधित कर देता है।

दूरदर्शन मनोरंजन, ज्ञानवर्धन, शिक्षा तथा विज्ञापन का सुलभ और सशक्त माध्यम है। फीचर फिल्म, टेलीफिल्म, चित्रहार, चित्रमाला, रंगोली, नाटक-एकांकी-प्रहसन, लोक-नृत्य-संगीत, शास्त्रीय-नृत्य-संगीत, मैजिक-शो, अंग्रेजी धारावाहिक, हास्य फिल्में, ये सभी दूरदर्शन के मनोरंजक कार्यक्रम ही तो हैं। ये दिनभर के थके-हारे मानव के मन को गुद्‌गुदा कर स्वस्थ और प्रसन्न करते हैं, स्फूर्ति और शक्ति प्रदान करते हैं।

जीवन और जगत् के विविध पहलुओं के कार्यक्रम दर्शक का निःसन्देह ज्ञानवर्धन करते हैं। 'बातें फिल्मों की' जैसे कार्यक्रम जहाँ फिल्म-जगत् की पूरी जानकारी देते हैं, वहाँ यू.जी.सी. के कार्यक्रम वैज्ञानिक प्रगति का सूक्ष्म-परिचय भी देते हैं। टेलीविजन द्वारा शरीर के कष्टों से मुक्ति दिलाने के लिए डॉक्टरी सलाह दी जाती है, तो कानून की पेचीदगियों को समझाने के लिए चर्चा की जाती है। प्रकृति के रहस्य, समुद्र की अतल गहराई, नभ की अनन्तता, विभिन्न देशों का सर्वांगीण परिचय, भारत तथा विश्व की कला एवं संस्कृति की विविधता की जानकारी, सभी ज्ञानवर्धन के कार्यक्रम हैं।

व्यापार की समृद्धि प्रचार पर निर्भर है। वस्तु विशेष का जितना अधिक प्रचार होगा, उतनी ही अधिक उसकी माँग बढ़ेगी। दूरदर्शन प्रचार का श्रेष्ठ माध्यम है, वस्तु-विशेष की माँग पैदा करने का उत्तम उपाय है। दूरदर्शन के विज्ञापन दर्शक के हृदय पर अमिट छाप छोड़ जाते हैं, जो जरूरतमन्दों को वस्तु-विशेष खरीदते समय प्रचारित वस्तु खरीदने के लिए प्रेरित करते हैं।

जैसे-जैसे मानव की व्यस्तता बढ़ेगी, मानसिक तनाव बढ़ेंगे, जीवन में मनोरंजन की अपेक्षाएँ बढ़ेंगी, वैसे-वैसे दूरदर्शन अपने में गुणात्मक सुधार उत्पन्न कर मनोरंजन का सशक्त साधन सिद्ध होता जाएगा।

(300) दूरदर्शन और मनोरंजन

संकेत बिंदु—(1) मनोरंजन, जीवन के लिए अनिवार्य (2) समय व्यतीत करने का अच्छा साधन (3) कार्यक्रमों की विविधता और ज्ञानवर्धन (4) धार्मिक ग्रंथों और उपन्यासों का प्रसारण (5) उपसंहार।

मनोरंजन जीवन के लिए अनिवार्य तत्त्व है। इसके अभाव में प्राणिमात्र मानसिक विकारों से ग्रस्त हो जाता है। उसके स्वभाव में रुखाई और चिड़चिड़ापन आ जाता है; जीवन का संतुलन बिगड़ जाता है तथा जीवन नीरस हो जाता है।

बीसवीं शताब्दी की छठी दशाब्दी से पूर्व मनोरंजन के प्रमुख साधन थे—चित्रपट, आकाशवाणी, पॉकिट उपन्यास, सरकस, रंगमंचीय नाटक। ताश, कैरम, शतरंज, नौका-विहार तथा पिकनिक में भी मानव ने पर्याप्त आनन्द लूटा। जीवन में जूझते मानव को समय के अभाव की प्राचीर लाँघना कठिन हो रहा था। समय के अभाव में चित्रपट का सशक्त साधन प्रतिदिन उसका मनोरंजन करने में असमर्थ था। आकाशवाणी का मनोरंजन, सुलभ और सशक्त तो था, किन्तु मात्र ध्वनि पर आधारित था। नयनों का सुख उसमें कहाँ था? उधर, ताश और कैरम के लिए साथी चाहिएँ।

दूरदर्शन चित्रपट का संक्षिप्त रूपान्तर है। चित्रपट देखने के लिए टिकट खरीदने की परेशानी, सिनेमा-घर तक पहुँचने के लिए वाहन का झंझट, हॉल के दमघोटू वातावरण की विवशता, अनचाहे और अनजाने व्यक्ति के अनायास दर्शन, समाज-द्रोही दर्शकों की अश्लील-हरकतें, सबसे छुट्टी मिली। घर बैठे चित्रपट का आनन्द प्रदान किया दूरदर्शन ने।

अहर्निश व्यापार के झंझटों से बेचैन व्यापारी, दिन भर दफ्तरी-फाइलों से सिर मारता लिपिक, बच्चों को पढ़ाते-पढ़ाते सिरदर्द मोल लेने वाला शिक्षक, कठोर परिश्रम से क्लांत मजदूर और दिन-भर गृहस्थी के झंझटों से पीड़ित गृहिणी, मनोरंजन के लिए जब टेलीविजन खोलते हैं, तो थकान रफू-चक्कर हो जाती है, सिर-दर्द तिरोहित हो जाता है; मानव मनोरंजन-लोक में डूबकर रोटी-पानी भी भूल जाता है।

खेलना-कूदना बच्चों का स्वभाव है। गली के असभ्य साथियों से स्वभाव में विकृति आती है। गालियाँ और गंदा व्यवहार सीखता है। दूरदर्शन ने कहा, 'भोले बालक! खेल-कूद के मनोरंजन को छोड़ मुझसे दोस्ती का हाथ बढ़ा। मैं तेरा ज्ञानवर्धन भी करूँगा और आनन्द भी प्रदान करूँगा।

रोगी एक ओर रोग से बेचैन है और दूसरी ओर सेवाधारियों के व्यवहार से परेशान। बिस्तर पर लेटे-लेटे समय कटता नहीं। ऊपर से 'मूड' खराब। दूरदर्शन ने सुझाव दिया—तन का उपचार डॉक्टर करेगा और मन का मैं करूँगा। तू अपना टी.वी. ऑन कर और देख 'मूड' ठीक होता है नहीं।

दूरदर्शन के सर्वाधिक प्रिय कार्यक्रम हैं—फिल्म और उसके गीत। प्रसार-भारती टी.वी. के अतिरिक्त अन्य टी.वी. चेनल जैसे सोनी टी.वी., जी.टी.वी., स्टार मूवी प्रतिदिन 2-2, 3-3 चित्र दिखाते हैं। आपको एक चित्र पसंद नहीं, चेनल बदलिए दूसरी देख लीजिए। 'तू नहीं, और सही, और नहीं, और सही।'

सिने गीत का करिश्मा तो मनोरंजन की जादू की छड़ी बन गया है। चित्रहार, रंगोली, ऑल दी बैस्ट, हंगामा अनलिमिटेड, अन्त्याक्षरी आदि दसियों नामों से यह जादुई छड़ी घूमती रहती है। आपको रसगुल्ले-सा मिटास देती है। गोल-गप्पों-सा चटपटा स्वाद देती है। आलू की टिकिया या समोसे-सा जायका प्रदान करती है। इनके अतिरिक्त प्राइवेट अलबम के गीत सोने में सुहागा सिद्ध होते हैं।

आज का तथाकथित सभ्य समाज अभिनेता-अभिनेत्रियों के दर्शन कर अपने को कृतार्थ समझाता है। उनके मुख से निकले शब्दों को वेद-वाक्य मानता है। उनके जीवन की विशेषताओं और स्वभाव की रंगीनी को देखकर उसका मन भी रंग जाता है। दूरदर्शन के विभिन्न चैनल, अपने विविध कार्यक्रमों द्वारा किसी न किसी अभिनेता-अभिनेत्री का दर्शकों से परिचय करवाते रहते हैं। साक्षात्कार के समय उनके जीवन से सम्बन्धित फिल्म के अंशों को प्रमाण रूप में दिखाकर उस साक्षात्कार को अधिक रसीला बना देते हैं।

सुप्रसिद्ध उपन्यासों तथा कहानियों पर बने एपीसोड दूरदर्शन मनोरंजन को द्विगुणित करते हैं। प्रायः आधा-आधा घंटे के ये एपीसोड दर्शक की रुचि को विभिन्न व्यंजनों से तृप्त करते रहते हैं। 'न्याय', 'बंधन' जैसे सोप ओपरा तो प्रतिदिन धारा-प्रवाह में बहकर नदी स्नान का-सा आनन्द प्रदान करते हैं। ये एपीसोड काल्पनिक ही हों, ऐसा नहीं। सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक एपीसोड भी जीवन को तरंगित करते रहते हैं। 'रामायण, महाभारत' और 'चाणक्य' की शृंखलाओं ने तो दर्शकों की चाहत कीर्तिमान ही तोड़ दिए थे और अब भी पुन:-पुन: देखकर मन नहीं भरता।

उपन्यासों के अतिरिक्त देश-विदेश की विभिन्न भाषाओं के नाटक तथा एकांकी भी अभिनीत होते हैं। ये नाटक-एकांकी भी भरपूर मनोरंजन से युक्त होते हैं।

नृत्य-संगीत में लोक नृत्य, शास्त्रीय नृत्य, पॉप नृत्य, तथा पाश्चात्य शैली के नृत्यों के साथ-साथ उभरता संगीत मन को मोह लेते हैं। खेल-प्रेमियों के लिए खेलों की दुनिया का मनोरंजन फिल्म के मनोरंजन से कम रोचक नहीं होता। क्रिकेट, हॉकी, बालीबाल, फुटबॉल, टेनिस, तैराकी, कुश्ती आदि खेलों के मैच जब दूरदर्शन पर आते हैं तो दर्शक उन्मत्त हो टी.वी. पर आँख गड़ाए रहते हैं। एशियाड तथा ओलम्पिक खेलों के करिश्में देखने को तो आँखें तरसती हैं। आँखों का टी.वी. पर आँख गड़ाना, तरसना दूरदर्शनीय मनोरंजन का प्रमाण ही तो है।

मनोरंजन अर्थात् मन का रंजन जिससे हो, वह मनोरंजन। दूरदर्शन मनोरंजन का सर्वश्रेष्ठ साधन ही नहीं, मनोरंजन का विश्वकोश है, जिसके हर पृष्ठ पर रंजन है, हास्य झलकियाँ हैं, हृदय को गुद्‌गुदाने की शक्ति है।

(301) दूरदर्शन और ज्ञानवर्धन

संकेत बिंदु—(1) ज्ञान की वृद्धि का माध्यम (2) ज्ञानवर्धन के चार मार्ग (3) दूरदर्शन ज्ञान का विश्व-कोश (4) विविध कार्यक्रमों का विस्तारपूर्वक वर्णन (5) उपसंहार।

चेतन अवस्था में इन्द्रियों और मन द्वारा बाहरी वस्तुओं, विषयों आदि का मन को होने वाला परिचय या बोध ज्ञान है। किसी बात या विषय के संबंध में होने वाली वह तथ्यपूर्ण, वास्तविक और संगत जानकारी या परिचय जो अध्ययन, अनुभव, निरीक्षण और प्रयोग आदि के द्वारा प्राप्त होता है, ज्ञान है। कुछ जानने, समझने आदि की योग्यता, वृत्ति या शक्ति ज्ञान है। ज्ञान की वृद्धि या विकास ज्ञानवर्धन है।

ज्ञान अज्ञान को दूर करता है। अच्छे-बुरे की पहचान करवाता है। सत्य से साक्षात्कार करवाता है। जीवन में आने वाले शारीरिक और मानसिक तापों के हरण का मार्ग प्रशस्त करता है। उन्नति, प्रगति और उज्ज्वल जीवन के लिए पथ-प्रदर्शित करता है। इसलिए जीवन में ज्ञान का महत्त्व है, उसका वर्धन मानव का दायित्व है।

ज्ञानवर्धन के चार मार्ग बताए जाते हैं-अध्ययन, अनुभव, निरीक्षण और प्रयोग। कुछ जानने, समझने आदि की योग्यता, वृत्ति इन चारों बातों पर निर्भर है। दूरदर्शन वह चौराहा है, जहाँ ज्ञान के चारों मार्ग मिलते हैं। इसलिए दूरदर्शन ज्ञानवर्धन की गंगोत्री है। जिस प्रकार गंगोत्री से निकलकर गंगा भारत-भू को तृप्त करती है, पवित्र करती है, उसी प्रकार दूरदर्शन जनमानस में ज्ञान की गंगा बहाकर पवित्र करता है। इसी जीवन में ज्ञान के कपाट खोलकर सत्, चित् और आनन्द के दर्शन करवाता है।

जीवन में उम्र के बढ़ने के साथ-साथ जो वस्तु मिलती है, उसका नाम है अनुभव। जिस जीवन से आप गुजरे नहीं, जिस कष्ट को आपने भोगा नहीं, जो गलतियाँ आपने की नहीं, उसका अनुभव आपको नहीं होगा। बाँझ को प्रसववेदना का क्या अनुभव ? लघु जीवन में अतिलघु अनुभव द्वारा ज्ञान से परिचय कैसे हो। अकबर इलाहाबादी तो अनुभव की कमी पर रो पड़े—

कह दिया मैंने हुआ तजर्बा मुझको तो यही।
तजर्बा हो नहीं चुकता है कि मर जाते हैं॥

संसार के दो महत्त्वपूर्ण अंग है-सृष्टि और प्रकृति। इन दोनों का पूर्ण तो क्या सामान्य निरीक्षण भी इस जीवन में असम्भव है, दुर्लभ है। अत: निरीक्षण से ज्ञान प्राप्ति बहुत सीमित है।

ज्ञान का चौथा स्रोत है प्रयोग। कोई नई बात ढूँढ निकालने के लिए की जाने वाली कोई परीक्षणात्मक क्रिया अथवा उसका साधन प्रयोग है। किसी प्रकार की क्रिया का प्रत्यक्ष रूप से होने वाला साधन प्रयोग है। प्रयोग बहुत दुस्साहपूर्ण होता है और जीवन में रिस्क

(दुस्साहस) लेने से आदमी कतराता है। फिर कितने रिस्क लेकर आदमी कितना ज्ञान प्राप्त करेगा ? अत्यन्त सीमित।

दूरदर्शन ज्ञान का विश्व-कोश है। हर बुराई और अच्छाई का व्याख्याता है। करणीय-अकरणीय को बताने वाला दार्शनिक है। जीवन के पुरुषार्थों के कार्यान्वयन का प्रेरक है। प्रकृति के रहस्यों और सृष्टि के समाचारों की मुँह बोलती तस्वीर है।

नगर ही नहीं प्रांत, देश, विदेश; पृथ्वी ही नहीं पाताल और अंतरिक्ष; भू की ही नहीं अन्यलोकों की; मानव ही नहीं प्राणि मात्र की अद्यतन, नवीनतम खबरों की जानकारी देकर दूरदर्शन 'करेण्ट नॉलिज' (अद्यतन ज्ञान) प्रदान करता है। करेन्ट को अधिक करेन्ट बनाने के लिए हर 60 मिनिट बाद अपना कर्तव्य पूरा करता है। साथ ही अपनी खबरों के सत्यापन के लिए तत्सम्बन्धी चित्र भी दिखाता है। इससे अधिक प्रामाणिक और करेन्ट (सद्य) ज्ञान कहाँ से मिलेगा ? राष्ट्र या विश्व में कोई अनहोनी घटना घटित हो जाए तो दूरदर्शन अपना कार्यक्रम रोक कर भी उस घटना की सूचना दर्शक को देता है। जैसे-इन्दिरा जी की हत्या की सूचना।

समाचार अफवाह भी हो सकते हैं, असत्य भी। पर जब आप अपनी आँखों से समाचारों सम्बन्धी घटनाओं को देख रहे हैं तो फिर 'प्रत्यक्षं किम् प्रमाणम् ?' शेयर बाजारों के सूचकांक, दैनिक तापमान के उतार-चढ़ाव, गुमशुदा व्यक्तियों के बारे में सचित्र विवरण, 'नौकरी के लिए स्थान खाली हैं' के लाभों (नियोजन) की सूचना देना, करों के भुगतान का स्मरण करवाना भी दूरदर्शन द्वारा ज्ञानवर्धन में शामिल है।

देश का एक बड़ा भाग ग्रामों में बसता है। खेतीबाड़ी उसका व्यवसाय है। गाँव और खेती की छोटी-से-छोटी बात को विस्तारपूर्वक समझा कर यह कृषकों का ज्ञानवर्धन करता है। सच तो यह है ग्राम-विकास में दूरदर्शन का बहुत बड़ा योगदान है।

हमारा देश दर्शनीय-स्थलों का आगार है। कला-कृतियों का भण्डार है। विश्व का महान् आश्चर्य 'ताजमहल' हमारे राजपूत राजाओं का करिश्मा है। इन सबको देख पाना इस जीवन में सामान्य व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं। दूसरे, आप देखने भी गए तो उसका ऊपरी दर्शन मात्र कर सकेंगे। उसके निर्माण का रहस्य, कला का रोमांच, पृष्ठभूमि का इतिहास आप नहीं जान पाएंगे। मंदिर हो या मठ, ताजमहल हो या कश्मीर स्थित अमरनाथ का मंदिर, दक्षिणी-समुद्र-स्थित विवेकानन्द-शिला हो या अमृतसर का स्वर्ण मन्दिर दूरदर्शन इनके पूरे इतिहास के साथ-साथ कला विशेषताओं का दिग्दर्शन करवाएगा।

विदेश-भ्रमण कितने लोग कर पाते हैं। विश्व की कला-कृतियों को कितने लोग देख पाते हैं ? उत्तर है मुट्ठीभर। दूरदर्शन विश्व के प्रत्येक राष्ट्र के दर्शन करवाएगा, उनके रहन-सहन, रीति-रिवाज़, आस्थाओं-मान्यताओं, सभ्यता और संस्कृति का विस्तार से सचित्र परिचय करवाएगा। ज्ञान बढ़ाएगा आपका। घोड़ी नहीं चढ़े तो बारात तो देखी है की कहावत सिद्ध करेगा।

स्वस्थ रहने के गुर जनता को देकर दूरदर्शन उनके स्वास्थ्य की चिंता करता है। व्यायाम की उपयोगिता और योग के लाभ बताता है। भोजन द्वारा स्वास्थ्य की शिक्षा देता है।

प्रकृति के रहस्य-रोमांच का ज्ञान पुस्तकों में मिलता है या उन शूरवीरों को है जिन्होंने जान की बाजी लगाकर वहाँ तक पहुँचने की चेष्टा की है। दूरदर्शन न केवल प्रकृति के शृंगार पहाड़ (एंवरेस्ट, नीलकंठ) और जलनिधि समुद्र के रहस्य-रोमांचों के दर्शन तथा परिचय करवाता है अपितु अन्य लोकों (चन्द्रलोक, मंगललोक) के दर्शन भी करवा कर हमारे ज्ञान को विस्तृत करता है। डिस्कवरी अर्थात् अनुसन्धान द्वारा समस्त भूमण्डल के सागरों, पर्वतों, वनों और उनमें रहने वाले अनदेखे जीवों के दर्शन कराता है।

महापुरुष किसी भी राष्ट्र की धरोहर हैं। उनकी जयन्तियाँ तथा पुण्यतिथियाँ मनाना राष्ट्र की ओर से श्रद्धांजलि अर्पण है। दूरदर्शन महापुरुषों के जीवन पर प्रकाश डालकर, गोष्ठियाँ आयोजित कर जनता को उनके द्वारा किए गए महान् कार्यों की जानकारी देता है। उन्हें उन जैसा बनने की प्रेरणा देता है।

सच तो यह है कि दूरदर्शन स्रष्टा से सृष्टि तक, जीवन से लेकर मृत्यु तक, आविष्कार से लेकर उपयोग तक, परिवार से लेकर समाज तक, धर्म से लेकर राजनीति तक, कला से लेकर विज्ञान तक, विश्व से लेकर ब्रह्माण्ड तक, सबका ज्ञान परोसने वाला अद्भुत यान्त्रिक साधंन है।

(302) दूरदर्शन का जीवन पर प्रभाव

संकेत बिंदु—(1) पारिवारिक जीवन पर आश्चर्यजनक प्रभाव (2) नैतिक पतन और असंतुष्टि दूरदर्शन की देन (3) दूरदर्शन द्वारा अश्लीलता का प्रचार-प्रसार (4) दूरदर्शन के अन्य बुरे प्रभाव (5) उपसंहार।

दूरदर्शन का भारतीय पारिवारिक जीवन पर अद्भुत तथा आश्चर्यजनक अमिट प्रभाव पड़ रहा है। वह सुखद भी है और दुःखद भी। एक ओर बहू के घूँघट का लम्बा परदा उठा है तो देवर-जेठ-ननदोई में भाई तथा ससुर में पिता के दर्शन कर मन की बात कहने का साहस प्रकट हुआ है। शिशुओं के पालन-पोषण, परिवार के खान-पान, रहन-सहन और जीवन-शैली में गुणात्मक सुधार हुआ है तो पर्व-त्योहारों के मनाने के प्रति आस्था बढ़ी है। धार्मिक अंध-विश्वास के प्रति अनास्था जगी है। आडम्बर और कपटपूर्ण प्रतीकों से विश्वास हिला है।

दूरदर्शन ने अपने विविध कार्यक्रमों द्वारा ज्ञान का जो प्रकाश फैलाया है, उससे पारिवारिक जीवन प्रकाशित हुआ है। उससे व्यक्ति के सोच-समझ का दायरा बढ़ा है। अच्छे-बुरे की पहचान बनी है। तन से स्वस्थ और मन से प्रसन्न रखने की तथ्यपूर्ण संगत जानकारी से परिवार परिचित हुआ है। सामाजिक बुराइयों से बचने लगा है।

पुरुष और नारी की परस्पर सहमति, अनुशासन, आत्मसमर्पण तथा कर्तव्यपालन पारिवारिक जीवन में सुख, शांति और उन्नति के सोपान हैं। औरों को खिलाकर खाना, मर्यादित काम और शृंगार, शिखर पुरुष (परिवार प्रमुख) का आदरपूर्ण अनुशासन, नैतिकता के प्रति आग्रह, परम्पराओं का सम्मान, पारस्परिक सहयोग से चलने की प्रेरणा में पारिवारिक जीवन का सौन्दर्य है। दूरदर्शन के अनेक-कार्यक्रमों से इन बातों पर अच्छा प्रभाव भी पड़ा है।

दूसरी ओर, दूरदर्शन आज यथार्थ के नाम पर या खुलेपन के नाम पर परिवार को जो कुछ परोस रहा है उसका प्रभाव विष से भी अधिक विषाक्त है, नीम से भी अधिक कड़ुआ है और साइनोमाइड से भी अधिक मारक है। उसके अधिकांश कार्यक्रम पारिवारिक व्यूह-रचना को तोड़ने की शिक्षा देते-देते परिवार के नैतिक मूल्यों को बेरहमी से रौंदते हैं। अनुशासन के प्रति विद्रोह के बीज बोते हैं तथा शालीनता, मान--मर्यादा की पावन भावना को कुचलते हैं। परिवार के प्रत्येक घटक में उसके अहं को तीव्र कर पारिवारिक सोच, समझ, समर्पण और समझौते की अन्त्येष्टि करते हैं। वासना और नग्नता का गन्दा नाला बहाकर, जीवन को कलुषित करते हैं।

दूरदर्शन जब अश्लील तथा कामुक दृश्यों, गीतों, संवादों की चासनी खुलेआम परोसता है तो विश्वामित्र की तपस्या भी भंग हो जाती है। नारद का हृदय भी डोल जाता है। नारी का अर्ध-नग्न क्या लगभग नग्न (केवल नितम्ब और स्तनों पर हलका- सा आवरण) शरीर, विविध रूप की उत्तेजनात्मक मुद्रा से वक्षों की मादक थिरकन, मदभरे नयनों का कटाक्ष, कूलहे मटकाने की शैली, शयन-दृश्य पारिवारिक जीवन में बची लाज की चिंदी-चिंदी उघाड़ चुके हैं। चेहरों से शर्म का परदा उतार चुके हैं। बहिन, भाभी, साली-सलहज तथा मित्रों के प्रति वासनात्मक लालसा-पिपासा दूरदर्शन द्वारा प्रदत्त मूल्यों की देन है।

इतना ही नहीं, जब दूरदर्शन 'सुपरहिट मुकाबला' के नाम पर अश्लील गीतों का प्रदर्शन बार-बार करता है तो अबोध बालक भी अनजाने 'चोली के पीछे क्या है ?', 'दरवाजा बंद कर दो', चुम्मा चुम्मा दे दे' गाने लगता है। कामसूत्र कंडोम का विज्ञापन देखता है तो संभोग-क्रिया से अनभिज्ञ बालक-बालिका भी माता-पिता से पूछ बैठते हैं, 'यह निरोध क्या चीज है ? किस काम आता है ?'

नग्नता चाहे दृश्य की हो या गीत की जब तथाकथित कलात्मक रूप में प्रस्तुत होती है तो वह सृजनात्मकता का रूप लेती है, लेकिन जब वह प्रकृतवादी रूप में (ज्यों की त्यों) अभिव्यक्त होती है तो वह उससे भी अश्लील हो जाती है। घृणित होते हुए भी इसकी उपेक्षा इसलिए नहीं कर पाते क्योंकि उसका सीधा प्रभाव परिवार--जन के चेतन अथवा अचेतन मन पर पड़ता है। इस प्रकार दूरदर्शन अश्लीलता को पारिवारिक मान्यता दिला रहा है।

दूरदर्शन की पारिवारिक जीवन को महत्त्वपूर्ण देन है 'अहम्।' अहम् अपने आप में गर्वपूर्ण तत्त्व है पर परिवार-जनों की यह धारणा कि 'मेरी भी कुछ सत्ता है', पूरे परिवार

को विद्रोह के कगार पर खड़ा कर देती है। अपनी सत्ता का भान कर्तव्य से शून्य अधिकार की माँग करता है। अधिकार-पूर्ति न होने पर परिवार में मन-मुटाव होता है। आज दूरदर्शन की अनुकम्पा से घर-घर महाभारत मचा है। परिवार के शिखर-पुरुष के अनुशासन की अवहेलना हो रही है।

तृष्णाओं की जागृति दूरदर्शन का विनाशकारी प्रसाद है। परिवार-जन जो कुछ दूरदर्शन पर देखते हैं, उसे प्राप्त करने तथा वैसा बनने की चेष्टा करते हैं। आय कम, साधन अपर्याप्त हों तो इच्छा पूर्ति किस प्रकार हो सकती है ? झूठ बोलना, प्रवंचना देना, चोरी करना, गलत काम करना, पापवृत्ति से पैसा कमाना, दुष्प्रवृत्ति में पड़ना दूरदर्शन-शैली में लालसा पूर्ति का परिणाम है। परिवार-जीवन की यह विडम्बना दूरदर्शन की ही देन है।

दूरदर्शन के आकर्षण से विद्यार्थी के अध्ययन में बाधा पड़ती है। घर के काम की उपेक्षा होती है। माता-पिता की आज्ञा की अवहेलना होती है। समयोचित कार्य करने में अनिच्छा होती है। महत्त्वपूर्ण कार्य की प्राथमिकता रुक जाती है। आलस्य और प्रमाद जीवन पर हावी होते हैं।

नैतिकता को तोड़ता दूरदर्शन, अंकुश-विहीन अनुशासन को जन्म देता है। फैशनी सौन्दर्यप्रियता को उच्छृंखल काम-विलासिता में डुबोता है। चकाचौंध की दुनिया में घसीट कर विवेक के नेत्रों को फोड़ देता है।

दूरदर्शन ने अपने कार्यक्रमों द्वारा पारिवारिक-जीवन में एक हलचल पैदा करके उसे जबरदस्त तरीके से बदला है। इस बदलाव का प्रभाव हमारे पारिवारिक मूल्यों पर निःसन्देह पड़ रहा है। अच्छा कम और बुरा ज्यादा।

(303) दूरदर्शन : एक अभिशाप

संकेत बिंदु—(1) दूरदर्शन का तेजी से विकास (2) दूरदर्शन के दुष्प्रभाव (3) दूर की संस्कृति और पास की पीड़ा (4) अश्लीलता और फूहड़ता की भरमार (5) उपसंहार।

दूरदर्शन का प्रारम्भ भारत में 15 सितम्बर, 1959 से समझना चाहिए, जब तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसाद ने आकाशवाणी के दूरदर्शन विभाग का उद्घाटन किया था। चार दशक की यात्रा में दूरदर्शन का विकास इस तेजी से हुआ है कि आज करीब छह करोड़ टी. वी. सेट, साढ़े छह सौ लघु शक्ति ट्रांसमीटर, तीन-सौ सैटलाइट, करीब एक लाख डिश एंटेना और केबल के तंत्र ने मिलकर भारत का चेहरा ही नहीं बदला, बल्कि रोटी, कपड़ा और मकान की तरह, यह भी जीवन की आवश्यकता बन गया है।

चौबीस घंटे मनोरंजन देने की विवशता के कारण टी. वी. के नए खुलते चैनल तथा विदेशी चैनलों ने टी. वी. के विकास की विविधता तथा टेक्नोलॉजी में उत्तरोत्तर प्रगति की

है। उपग्रह से सम्बद्धता ने टी. वी. के विकास में अनुपम सहयोग दिया है, प्रसारण की क्षमता ने अद्‌भुत शक्ति प्रदान की है, पर यह वरदान कम, अभिशाप अधिक बन रहा है।

टी.वी. के प्रिय कार्यक्रम का समय है। मेहमान आ गए। परिवारजनों का मुँह उतर गया। मन ही मन दुआ माँग रहे होते हैं कि यह खिसके तो कार्यक्रम का आनन्द लें। कान में फुसफुसाहट शुरू हुई। 'टी.वी. लगा लूँ, मैच आ रहा है।' बेशरम हुए तो बिना पूछे टी. वी. 'ऑन' कर देंगे। आज पूरी की पूरी पीढ़ी टी. वी. के मादक नशे से झूम रही है।

परिणामत: विद्यार्थी अध्ययन में कम, टी. वी. में ज्यादा ध्यान केन्द्रित करता है। पुत्र-पुत्रियाँ टी. वी. के कारण माता-पिता की आज्ञा की अवहेलना करती हैं। सिनेमा-गृहों को टी. वी. ने खाली करवाया तो नाट्‌य-शालाओं के दर्शनों को अवरुद्ध किया। साहित्यिक, सांस्कृतिक पत्रिकाओं को तो जीवन-निकाला ही दे दिया। दैनंदिन-जीवन में टी. वी. के संक्रामक विषाणुओं ने जीवन की सोच, समझ, सभ्यता और संस्कारों को ही बदल दिया।

आज टी. वी. का इतना प्रभाव है कि साप्ताहिक, पाक्षिक, व्यावसायिक और साहित्यिक पत्रिकाओं की बात छोड़िए, दैनिक समाचार-पत्रों में एक पूरा रंगीन पृष्ठ छोटे-बड़े पर्दे के कारनामों को उजागर करता है।

माया नगरी के इस जादूगर के पिटारे में जो सम्मोहक रंग हैं, उसके प्रति आकर्षण क्यों न हो ? जब छोटे-परदे से झरती हिंसा, मुक्त यौनाचार और विवाहेतर संबंधों की नई-नई व्याख्या प्रस्तुत होती हों। उन्मुक्त काम दृश्य, युवतियों के निर्वस्त्र तन और वैसी भाषा खुले आम टी. वी. के जरिए घर में प्रवेश कर रही हो। वासनापूर्ण संवाद तथा कामोत्तेजक संगीत और गाने मन को गुँजारित कर रहे हों।

सूर्यबाला जी का मत है, 'मनोरंजन के नाम पर यौन और हिंसा का अबोध बालकों के मन पर जिस तरह घोर कामुक मुद्राओं और चेष्टाओं का विषाक्त नशा पिलाया जा रहा है, उससे तो यही लगता है हँसते-खेलते, उम्र की दहलीज चढ़ते मासूम बच्चों को जैसे वेश्याओं के कोठों पर ला बिठाया गया है। सेक्स और हिंसा की 'ओवर डोज' पाए हुए किशोर और युवा, आज भयावह और रोंगटे खड़े कर देने वाली अपराधी वृत्तियों की ओर धड़ल्ले से बढ़े रहे हैं।'

सुदर्शना द्विवेदी जी का मानना है, 'जिस किस्म के बदतमीज, बदजबान, असंस्कारों और चरित्रशून्य किशोरों की उपस्थिति इन तमाम धारावाहिकों में दर्ज हो रही है, उससे दोहरा असर हो रहा है। एक ओर मूल्यहीनता की पढ़ाई ये किशोर बेहद तत्परता से पढ़ रहे हैं और नजीर (प्रमाण) के तौर पर इनके वाक्यों का इस्तेमाल भी कर रहे हैं। दूसरी ओर अभिभावकों को दिखाया जा रहा है कि यही है असली किशोर और अगर आपका किशोर इनसे कुछ बेहतर है यानी गीता और संगीता से इश्क लड़ाने और मुक्का मार कर पड़ोस के राजू की आँख फोड़ने के अलावा कुछ पढ़ भी लेता है तो आप अपने भाग्य सराहें।'

परिणामत: युवक-युवतियाँ कॉलिजों में पढ़ने कम दोस्ती-दुश्मनी, प्यार-मोहब्बत

निभाने ज्यादा जाते हैं। सिगरेट और ड्रग्स, बियर और पब, छात्र-जीवन के जीवनदायी टॉनिक हैं।

स्थिति की भयावहता जिस तेजी से खतरे के बिंदु को पार करती जा रही है, उसमें दूरदर्शन के विज्ञापन भी कम दोषी नहीं हैं। तथाकथित साहसिक कारनामों और भयप्रद दृश्यों तथा सुरा-सुन्दरी के अश्लील चित्रों का जो एलबम विज्ञापन प्रस्तुत कर रहे हैं, उससे प्रेरित होकर किशोर-किशोरियाँ अपने जीवन से खेल रहे हैं। मृत्यु का आह्वान कर रहे हैं।

भाषा के नाम पर हिन्दी की विकृति और खिचड़ी भाषा का प्रश्रय तथा धारावाहिकों के परिचय में मुख्यत: अंग्रेजी भाषा का प्रयोग राष्ट्रभाषा का अपमान है। अकारण ही अंग्रेजी की गुलामी ओढ़ाने की चाल है। जाति-समाज की संस्कृति, आचार-विचार और जीवन-मूल्य व्यवस्था नकारने की साजिश है।

अन्त्याक्षरी हमारी काव्य-सम्पदा का अंग है। उसका फूहड़ रूप जो सिनेमा गीतों में उतरा है, वह नई पीढ़ी को साहित्य से दूर करने का भयंकर षड्यंत्र है।

माता-पिता, प्रौढ़जन तथा शिष्ट व्यक्तियों पर संवादों द्वारा जो अपमानित प्रहार किए जाते हैं, वे मानव-मूल्यों को तिरस्कृत करके विद्रोह पैदा करते हैं। आज की युवा पीढ़ी का वृद्ध माता-पिता से विद्रोह टी.वी. प्रभाव का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

भारत की 80 प्रतिशत जनसंख्या मध्यमवर्ग या निम्न मध्यमवर्ग का जीवन जी रही है। फैशन, प्रेम, सेक्स, शराब, ड्रग्स और हिंसा के दृश्यों को जब वह प्रतिदिन बार-बार देखती है तो ये सभी तत्त्व उसके रक्त में समा जाते हैं। कारण, सजीव दृश्यों का मानव-मन पर अधिक और स्थिर प्रभाव पड़ता है। इन दृश्यों को जीवन में भोगने के लिए चाहिए पैसा। मन की इच्छा पूरी करने के लिए वह टी.वी. शैली में रिश्वत लेता है, चोरी करता है, डाके डालता है, गुंडागिरी, अपहरण, बलात्कार और हत्या करता है। तस्करी और स्मगिंलग के लिए अपराध-जगत् की शरण लेता है। इस प्रकार दूरदर्शन समाज-द्रोह और राष्ट्र-द्रोह की पाठशाला बन गया है।

दूरदर्शन अप-संस्कृति का प्रतीक बन गया है। मुसलमान बादशाह और अंग्रेजी-साम्राज्य अपने सैंकड़ों वर्षों के शासन-काल में जिस भारतीय संस्कृति को नष्ट नहीं कर सके, जिन उदात्त भारतीय परम्पराओं, मान्यताओं और सिद्धान्तों को खंडित नहीं कर सके, वह काम करने में दूरदर्शन सफलता की सीढ़िया चढ़ रहा है। टी. वी. के कुसंस्कारों के सम्मुख भारतीय-संस्कृति असहाय खड़ी है। भारत माता चीत्कार करते कह रही है—

मैं क्या दूँ वरदान तुम्हें?
आत्मा मेरी अभिशाप दे रही।
मैं क्या दूँ?

(304) आकाशवाणी

संकेत बिंदु—(1) रेडियो विज्ञान की लोकप्रिय देन (2) स्वाधीनता के बाद से आकशवाणी का विस्तार (3) आकाशवाणी से प्रसारित कार्यक्रम (4) मनोरंजन ज्ञानवर्धन और मनोरंजन का साधन (5) उपसंहार।

रेडियो विज्ञान की लोकप्रिय देन है। विद्युत् चुम्बकीय तरंगों का क्रान्तिकारी चमत्कार है। मनोरंजन और ज्ञानवर्धन का श्रेष्ठ साधन है। वर्तमान समाज की आवश्यकता-पूर्ति का माध्यम है।

आधुनिक काल में रेडियो के आविष्कार का श्रेय इटली निवासी श्री मारकोनी को है। इन्हीं दिनों इस दिशा में भारत के महान् वैज्ञानिक श्री जगदीशचन्द्र बसु ने भी काफी प्रयत्न किए थे।

भारत में बम्बई और कलकत्ते के दो निजी स्वामित्व वाले ट्राँसमीटरों की सहायता से रेडियो प्रसारण 1927 में आरम्भ हुआ। 1936 में सरकार ने इसे अपने हाथ में लेकर भारतीय प्रसारण सेवा की स्थापना की और इसका नाम बदल कर ऑल इण्डिया रेडियो रखा गया। 1957 से इसे 'आकाशवाणी' नाम से भी जाना जाने लगा।

रेडियो ध्वनि-प्रसारण का यंत्र है। एक स्थान की आवाज को दूसरे स्थान तक पहुँचाने का काम यह बिना तार के करता है। बिजली द्वारा आकाशवाणी केन्द्र से ध्वनि को बिजली की लहरों में परिणत कर दिया जाता है। ये विद्युत् चुम्बकीय तरंगें सारे आकाश में फैल जाती हैं। आकाश में फैली हुई उन लहरों को रेडियो एरियल द्वारा तुरन्त पकड़ लेता है।

ध्वनि-तरंगें तीन रूप में प्रसारित होती हैं—छोटी तरंगे, मध्य तरंगें तथा लम्बी तरंगे। इसी के अनुसार रेडियो भी तीन प्रकार के होते हैं—स्थानीय (Local), अखिल भारतीय (All India) और समस्त विश्व से सम्बन्धित (All World)। स्थानीय रेडियो पर केवल स्थान-विशेष के आकाशवाणी-केन्द्र द्वारा प्रसारित ध्वनि ही सुन सकते हैं, अखिल भारतीय रेडियो द्वारा सम्पूर्ण भारत के आकाशवाणी-केन्द्रों की ध्वनि सुन सकते हैं और विश्व-रेडियो द्वारा संसार-भर के प्रमुख आकाशवाणी-केन्द्रों की ध्वनि सुनी जा सकती है। रेडियो की मशीन में ऐसी व्यवस्था होती है कि श्रोता अपनी इच्छानुसार किसी भी आकाशवाणी-केन्द्र से प्रसारित होने वाले कार्यक्रम को सुन सकते हैं।

1947 में स्वाधीनता के समय देश में आकाशवाणी के छह केन्द्र थे। 31 मार्च 1998 तक आकाशवाणी नेटवर्क के 197 केन्द्र हो गए। इस समय आकाशवाणी के 305 ट्रांसमीटर काम कर रहे हैं। इनमें 145 मीडियम वेव, 55 शार्ट वेव तथा 105 एफ.एम. ट्रांसमीटर हैं। इस नेटवर्क द्वारा देश के 90 प्रतिशत क्षेत्रों में कुल 97.3 प्रतिशत जनसंख्या तक आकाशवाणी-प्रसारण पहुँचते हैं।

रेडियो समाचार प्रसारण का मुख्य साधन है। इससे प्रतिदिन देश-विदेश प्रसारण सेवा

में प्रतिदिन 314 समाचार बुलेटिन प्रसारित होते हैं। इनमें से 88 बुलेटिन दिल्ली से घरेलू सेवा में, 42 क्षेत्रीय समाचार सेवा में 137 समाचार बुलेटिन प्रसारित होते है। 15 अगस्त 1993 में अंग्रेजी के समाचार पूल के समान ही हिन्दी के समाचार-पूल ने भी काम करना शुरू कर दिया है। 25 फरवरी 1998 से एम. एम. चैनल पर प्रमुख समाचार प्रसारित कर रहा है। अब ये समाचार दिन-रात पढ़े जा रहे हैं। 25 फरवरी 1998 से ही आकाशवाणी से फोन पर समाचार देने की सुविधा शुरू हो गई है। आकाशवाणी अब इंटरनेट पर भी आ गई है।

विदेश सेवा प्रभाग द्वारा 25 भाषाओं (16 विदेशी तथा 9 भारतीय भाषाओं) में लगभग 70 घंटों के कार्यक्रम प्रतिदिन प्रसारित होते हैं। यह प्रसारण जनरल ओवरसीज सर्विसेज (समुद्र पारीय सेवा) के अन्तर्गत प्रसारित होते हैं। इनके द्वारा विश्व घटनाओं पर भारत का दृष्टिकोण भी प्रस्तुत किया जाता है।

18 नवम्बर 1988 से आकाशवाणी का राष्ट्रीय-चैनल आरम्भ हुआ। फिलहाल यह रात्रि सेवा के रूप में कार्य कर रहा है। यह चैनल सूचना व मनोरंजन का संतुलित प्रसारण करता है। रातभर राष्ट्रीय चैनल से हर घंटे बारी-बारी से हिन्दी व अंग्रेजी में समाचारों का प्रसारण किया जाता है।

1 नवम्बर 1967 से आकाशवाणी ने 'विविध भारती' तथा 'विज्ञापन प्रसारण-सेवा' का श्रीगणेश किया। विविध भारती का मूल उद्देश्य है मनोरंजन। इसमें वर्तमान समय में प्रतिदिन 14 घंटे से अधिक मनोरंजन कार्यक्रमों का प्रसारण होता है।

आकाशवाणी के 80 से भी अधिक केंद्रों मे विभिन्न भाषाओं में 'रूपक' प्रसारित किए जाते हैं। मूल नाटकों के साथ ही लोकप्रिय और उत्कृष्ट उपन्यास, लघुकथाएं और मंच-नाटक भी प्रसारित करता है। अनेक केन्द्र बेरोजगारी, निरक्षरता, पर्यावरण-प्रदूषण, नारी समस्या जैसी सामयिक-सामाजिक-आर्थिक विषयों को नाटक के माध्यम से प्रसारित करते हैं।

कृषि और गृह कार्यक्रम के अन्तर्गत यूनीसेफ और राज्य-सरकारों के सहयोग से प्रसव से लेकर माँ-बच्चे की देखभाल, बच्चों के अधिकार, बच्चे-बच्ची में अभेद तथा बच्चों के शोषण आदि मुद्दों पर जोर रहता है। कृषि-कार्यक्रम संचार विधि के रूप में 'फार्म स्कूल ऑन एअर' कार्यक्रम कई आकाशवाणी केन्द्र चलाते हैं। जिसमें खेती बाड़ी की सम्पूर्ण जानकारी के अतिरिक्त ग्रामपंचायतों, ग्राम सेवकों, जवाहर रोजगार योजना, इंदिरा आवास योजना, एम.एस.वाई. जैसे विभिन्न आर्थिक उपायों पर भी जोर दिया जाता है।

परिवार-कल्याण कार्यक्रम के अन्तर्गत 8500 से अधिक कार्यक्रम देश की सभी भाषाओं तथा बोलियों में प्रतिमास प्रसारित होते हैं। इस कार्यक्रम के अंतर्गत एड्स, तपेदिक, डेंगू, यौन-रोग, पानी से फैलने वाले रोगों, मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रम, बाल-सुरक्षा तथा सुरक्षित मातृत्व, नसबंदी और बंध्याकरण जैसे राष्ट्रीय महत्त्व के कार्यक्रम प्रसारित होते हैं।

राष्ट्रीय, अन्तरराष्ट्रीय और विश्व में आयोजित खेल प्रतियोगिताओं का आँखों देखा हाल प्रस्तुत करता है तथा युवकों की प्रतिभा विकसित करने के अनेक कार्यक्रम प्रसारित करता है।

रेडियो अर्थात् मनोरंजन। रेडियो मनोरंजन का भी सशक्त और प्रमुख साधन है। शास्त्रीय और सुगम संगीत के बहुत अधिक कार्यक्रम प्रसारित होते हैं। सिनेमा गीत-श्रवण में जनता मन्त्रमुग्ध हो इन गानों के संगीत, स्वरलहरी तथा बोलों में खो जाती है। इतना ही नहीं सैनिकों के लिए यह कार्यक्रम 'जयमाला' के अन्तर्गत प्रतिदिन उनके अनुरोध गीत सुनाता है।

रेडियो ज्ञानवर्धन का सबल साधन है। समाचारों द्वारा रेडियो हमें विश्व की नवीनतम घटनाओं की जानकारी देता है। विश्व की प्रमुख घटनाओं तथा संसद् की कार्यवाही की समीक्षा हमारे ज्ञान को बढ़ाती है। बच्चों के कार्यक्रम में बच्चों के लिए तथा महिलाओं के कार्यक्रम में महिलाओं के लिए पाक-विज्ञान, कढ़ाई, बुनाई, घर की देख-भाल, शिशु-पालन आदि के रोचक तथा ज्ञानवर्धक कार्यक्रम प्रसारित होते हैं। समय-समय पर विशेषज्ञों द्वारा राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक एवं जीवन और जगत् की समस्याओं पर विद्वत्तापूर्ण भाषण हमारे ज्ञान को विस्तृत करते हैं। शासन की सूचनाओं की जानकारी देते हैं और शासकीय कर्तव्य के प्रति जागरूक रखते हैं। नवीन पुस्तकों की समीक्षा प्रसारित कर हमारी साहित्यिक रुचि में अभिवृद्धि करते हैं। स्वास्थ्य सम्बन्धी चर्चा बीमारियों से बचाव के उपायों में ज्ञानवृद्धि करती है।

व्यापार-वर्द्धन के लिए रेडियो वर्तमान जगत् का एक सशक्त साधन है। विविध-भारती से व्यापारिक विज्ञापन और प्रायोजित कार्यक्रम व्यापार की श्रीवृद्धि करते हैं। वस्तु-विशेष के प्रति आकर्षण उत्पन्न कर नए-नए ग्राहक पैदा करते हैं। निष्कर्षत: आकाशवाणी जन-जन की आशाओं का केन्द्र है। शिक्षा-संस्कृति के प्रसार का सशक्त माध्यम है। स्वस्थ मनोरंजन और विशिष्ट ज्ञानार्जन का प्रमुख साधन है। बौद्धिक विकास और मानसिक परिष्कार का वैज्ञानिक यंत्र है और है व्यापार-वर्द्धन की कुञ्जी।

भौगोलिक

(305) भारत की राजधानी

संकेत बिंदु—(1) राजधानी का अर्थ और विभिन्न कालों में राजधानी (2) दिल्ली राजधानी के रूप में (3) अंग्रेजों के काल में राजधानी (4) स्वतंत्र भारत की राजधानी (5) उपसंहार।

जिस नगर में राष्ट्र के केन्द्रीय सरकार के मुख्य कार्यालय अवस्थित होते हैं और जहाँ

से देश का सारा राज-काज चलता है, वह 'राजधानी' कहलाता है। मुख्य शासक या राजा का स्थायी निवास-नगर 'राजधानी' के नाम से पहचाना जाता है। भारत के शासन को चलाने का केन्द्रीय नगर 'भारत की राजधानी' कहलाएगा।

रामायण-काल में अयोध्या भारत की राजधानी रही तो महाभारत काल में पहले—हस्तिनापुर और बाद में इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली), बौद्धकाल में कपिलवस्तु तो जैनकाल में कुण्डग्राम। सम्राट् अशोक ने पाटलीपुत्र को राजधानी होने का गौरव प्रदान किया तो मुगल बादशाहों ने दिल्ली को बादशाहत बख्शी, किन्तु कुछ मुगल सम्राटों ने आगरे को भी सल्तनत का केन्द्र बनाया। अंग्रेजों ने शुरू में कलकत्ता को भारत की राजधानी माना, किन्तु सन् 1911 से यह गौरव दिल्ली को प्रदान किया गया है। आज स्वतन्त्र भारत की राजधानी दिल्ली ही है।

दिल्ली को 'राजधानी' बनने का गौरव सर्वप्रथम महाभारतकाल में प्राप्त हुआ। राजा युधिष्ठिर ने इस इन्द्रप्रस्थ को शासनकेन्द्र का प्रमुख नगर बनाया। उसके बाद चौहान राजाओं में पृथ्वीराज चौहान ने दिल्ली को अपनी राजधानी बनाया। चौहानों के हाथ से हकूमत निकलकर अफगानों के हाथ चली गई। पहले अफगान बादशाह शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी ने भी दिल्ली को ही राजधानी माना।

गुलामवंश का राज्य भारत में आया। कुतुबुद्दीन ऐबक, अल्तमश, रज़िया सुल्ताना, बलबन आदि इस वंश के बादशाह रहे। सबको दिल्ली ही रास आई। सबने दिल्ली को ही राजधानी का गौरव प्रदान किया।

गुलामवंश के बाद खिलजीवंश आया। अल्लाउद्दीन खिलजी, फिरोजशाह खिलजी, कुतुबुद्दीन खिलजी ने राज्य किया और शासन-केन्द्र दिल्ली ही रखा।

खिलजीवंश का उत्तराधिकार छीना तुगलकवंश ने, जिसमें गयासुद्दीन तुगलक, मोहम्मदबिन तुगलक, फीरोजशाह तुगलक ने भारत पर राज्य किया। इन्होंने भी अपनी राजधानी होने का गौरव दिल्ली को प्रदान किया।

मुगलों से भारत के शासन की बागडोर अंग्रेजों ने हथियाई। अंग्रेज व्यापारी के रूप में यहाँ आए थे। उन्होंने व्यापार के लिए कलकत्ता में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना की थी। अत: जब धीरे-धीरे इस कम्पनी ने शासन की बागडोर भी हथिया ली, तब कलकत्ता को ही राजधानी बना दिया। उसके बाद अंग्रेजी शासन में सन् 1778 से 1910 तक जितने भी गवर्नर जनरल तथा वायसराय आए, सभी ने ही कलकत्ता को भारत की राजधानी के रूप में अलंकृत किया। लार्ड हार्डिंग ने दिल्ली को सर्वप्रथम राजधानी का पद प्रदान किया। सन् 1914 में दिल्ली में ही उसका विधिवत् राज्याभिषेक हुआ।

पांडवों के इन्द्रप्रस्थ से लेकर शाहजहाँ के शाहेख्वाब का स्वर्ग शाहजहाँनाबाद के रंगारंग रूप से गुजरती दिल्ली अंग्रेजों के रायसीना पर आकर टिक गई। 'रायसीना' बदलकर 'नई दिल्ली' कहलाया। 15 अगस्त, 1947 को भारत स्वतन्त्र हुआ। स्वतन्त्र भारत की राजधानी बनी दिल्ली।

पांडवों की राजधानी से लेकर 1947 तक इस दिल्ली ने हजारों साल का सफर तय किया। कितने अत्याचार, अनाचार, रोमहर्षण जुल्म बरदाश्त किए, कितनी खुशियाँ लूटीं। इसके गली-मुहल्ले, दरो-दीवार, इमारत, गुम्बद और मीनार के सीनों पर आप पढ़ सकते हैं। गुजरे जमाने के अफसाने, यादों के झरोखों में झाँकती ये यादगारें दिल्ली के उजड़ने और बसने की पहचान करा देती हैं।

आज स्वतन्त्र भारत की राजधानी दिल्ली है। शासन के तीनों प्रमुख अंग—विधि-निर्माण, न्यायपालिका तथा कार्य-पालिका दिल्ली में ही हैं। विधि-निर्माण संसद् का कार्य है। न्याय-पालिका के लिए सर्वोच्च न्यायालय है। कार्य-पालिका के लगभग 30 प्रमुख मंत्रालय हैं।

'राजधानी' नाम की सार्थकता पूरी करते हैं राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, मुख्य-न्यायाधीश तथा लोकसभा अध्यक्ष के निवास-स्थान। अपने कार्यकाल में इन सबका स्थायी निवास दिल्ली ही होता है।

30 प्रमुख मंत्रालयों का उत्तरदायित्व जिन जनप्रतिनिधियों पर है, वे हैं—केन्द्रीय मंत्री, राज्य मंत्री तथा उपमंत्री। शासन-व्यवस्था की दृष्टि से उत्तरदायी हैं निजी सचिव, सहायक सचिव, अपर सचिव, उप सचिव तथा तत् सम्बन्धी अधिकारीगण। ये सभी मंत्री तथा सचिव दिल्ली में ही स्थायी रूप से रहते हैं। इस प्रकार दिल्ली के भारत की राजधानी होने की सार्थकता सिद्ध करते हैं।

वर्तमान युग में किसी भी राष्ट्र की राजधानी विश्व की कूटनीति से सम्बद्ध होती है। दिल्ली भारत की राजधानी होने के कारण विश्व कूटनीति का एक केन्द्र है। 15 राष्ट्रों के राजदूत तथा 18 राष्ट्रों के उच्चायुक्त दिल्ली में रहकर अपने राष्ट्रों का राजनीतिक कार्य करके अपने देश का प्रतिनिधित्व करते हैं।

शासन-व्यवस्था के विस्तार के साथ दिल्ली का विस्तार अवश्यम्भावी था। दिल्ली ने अपनी सीमा में बहुत तेजी से विविध रूपेण विस्तार किया; एक-एक इंच भूमि का उपयोग किया। गली, कूँचे, मोहल्लों से निकलकर दिल्ली नगरों, 'विहारों' में फैली। साधारण मकानों से हटकर आलीशान कोठियों और गगनचुम्बी 'टावरों' एवं भूमिगत बाजारों में प्रतिष्ठित हुई। ऊबड़-खाबड़ रास्तों को छोड़कर यातायात के अनुकूल सड़कों, पुलों और फ्लाइ ओवरों में बदली। कभी मिट्टी के तेल के दीपक दिल्ली की अंधेरी रात को रोशन करने का दम भरते थे, अब वहाँ विद्युत् के तेल बल्ब और ट्यूब सूर्य के प्रकाश को भी नीचा दिखाते हैं। दिल्ली में खेल के मैदान और स्टेडियम अपनी सम्पन्नता पर गर्व करते हैं।

भारत की राजधानी है दिल्ली। राजधानी के कारण है यह एक महानगर। महानगर की 'बृहत्ता' बढ़ रही है। दिल्ली अपनी सीमाओं में समा नहीं पा रही। दिल्ली, उसका निखरता सौंदर्य, अंगड़ाई लेता यौवन तथा मस्तीभरी जवानी गर्व से राजधानी होने की उद्घोषणा करते हैं।

(306) दिल्ली के दर्शनीय स्थान

संकेत बिंदु—(1) कला, संस्कृति और इतिहास की कहानी (2) चाँदनी चौक, कनॉट प्लेस और जामा मस्जिद (3) कुतुबमीनार और बिड़ला मंदिर की भव्यता (4) दिल्ली के मनोरंजक और औद्योगिक स्थल (5) महापुरुषों की समाधि-स्थल।

दिल्ली के दर्शनीय स्थान कला, संस्कृति, इतिहास तथा सभ्यताओं की जीवन्त कहानी हैं। पाण्डवों के इन्द्रप्रस्थीय स्मारक, शाहजहाँ के ख्वाबों का स्वर्ग शाहजहाँनाबाद, अंग्रेजों द्वारा बसाई गई नई दिल्ली तथा स्वतन्त्र भारत के कर्णधारों की स्वर्णिम योजनाएँ—सबने मिलकर सारी दिल्ली को ही दर्शन के योग्य बना दिया है। उर्दू के शायर मीर का हृदय गा उठा—

दिल्ली के न थे कूचे, आरा के मुसव्विर थे।
जो शक्ल नजर आयी तस्वीर नजर आयी।।

अरे क्या थीं दिल्ली की गलियाँ! चित्रकार की कूची थी। वहाँ जो भी सूरत शक्ल नजर आती थी, तस्वीर ही नजर आती थी।

और शायद इसलिए शेख इब्राहीम जौक अनेक उपाधियाँ हासिल करने पर भी दिल्ली छोड़ने को तैयार न हुए। वे चीत्कार कर उठे,

'कौन जाये जौक, दिल्ली की गलियाँ छोड़कर।'

पहले दिल्ली के ऐतिहासिक स्थान लीजिए। यमुना-तट पर चाँदनी चौक बाजार के अन्त में चारों ओर खाइयों में घिरा आधा मील के घेरे में फैला हुआ लाल-पत्थरों से निर्मित एक किला खड़ा है। यह 'लाल किला' है। शाहजहाँ द्वारा निर्मित कहे जाने वाले इस किले का नौबत-खाना, रंगमहल, दीवाने-खास और दीवाने-आम देखिए।

ऐतिहासिक बाजार चाँदनी चौक का फव्वारा और जामा मस्जिद, दोनों ऐतिहासिक स्थान हैं। फव्वारे के स्थान पर गुरु तेगबहादुर तथा भाई मतिदास का वध हुआ था और जामा मस्जिद दिल्ली की सबसे बड़ी मस्जिद है, जिसे शाहजहाँ ने बनवाया था। फव्वारे के सम्मुख स्थित सिक्खों का गुरुद्वारा शीशगंज देखिए।

नई दिल्ली में कनाट प्लेस के समीप राजपूत राजा सवाई मानसिंह द्वारा निर्मित जन्तर-मन्तर बड़े गजब की चीज है। प्राचीन काल में इससे दिन में समय का बोध और रात्रि में नक्षत्रों की गणना होती थी।

मुगल बादशाह कुतुबुद्दीन के बनवाए पुराना-किला, फीरोजशाह कोटला, तुगलकाबाद का किला और लोदी गार्डन्स देखिए। साथ ही हुमायूँ का मकबरा भी देखते जाइए।

पृथ्वीराज चौहान द्वारा निर्मित यमुना-स्तम्भ अर्थात् कुतुबमीनार पर (जिसे यवनों ने अपना बनाने के लिए उस पर कुरान की आयतें खुदवा दी हैं) चढ़ने की कोशिश कीजिए और उतर कर 'लौह-स्तम्भ' पर आजानुबाहु होने का प्रमाण दीजिए।

नई दिल्ली का शानदार लक्ष्मीनारायण (बिड़ला) मन्दिर देखिए। मूर्तियों की भव्यता के साथ इसकी दीवारों की चित्रकला देखते-देखते तथा प्राचीन एवं आधुनिक भारतीय साहित्य के उद्धरण एवं महापुरुषों के आप्तवाक्य पढ़ते-पढ़ते आपका मन नहीं भरेगा।

अंग्रेजों द्वारा निर्मित शाही शान-शौकत के 'रायसीना' अर्थात् नई दिल्ली की एक-एक चीज देखने योग्य है। कनाट-प्लेस की सजधज और चहल-पहल अवर्णनीय है। राष्ट्रपति-भवन, आकाशवाणी-भवन, कृषि-भवन, चक्राकार संसद्-भवन, उद्योग-भवन, राष्ट्रीय-संग्रहालय, इण्डिया गेट तथा केन्द्रीय सचिवालय के भवन, उनके समीपस्थ हरी-हरी मखमली घास के मध्य बने कृत्रिम सरोवर और झील आपके मन को मोह लेंगे। रवीन्द्र रंगशाला और नेहरू मेमोरियल संग्रहालय भी नई दिल्ली के दर्शनीय स्थल हैं।

फरवरी मास में देखिए राष्ट्रपति भवन का मुगल उद्यान। ज्यामिती की रेखाओं की तरह खिंची हुई मेड़ों-रास्तों के आसपास हरी-हरी मखमली घास के मध्य और सजी हुई चौकोर क्यारियों में न जाने कितने रंगों के फूल खिले हुए हैं।

बच्चों के साथी अर्थात् पशुओं की विभिन्न जातियों को देखने के लिए पुराने किले के नीचे बहुत बड़े क्षेत्र में बसाए गए 'चिड़ियाघर' में जाइए, भारतीय तथा विदेशी जानवरों को देखकर ज्ञानवर्धन और मनोरंजन कीजिए।

पिकनिक स्थानों की सैर के बिना दिल्ली की सैर अधूरी रह जाएगी। ओखला में नहर के प्रवाह और बंध के दृश्य का आनन्द लूटिए। तैरना आता है, तो डुबकी भी लगाइए। हौजखास और बुद्धपार्क की भी सैर करते चलिए।

देखिए, स्वतन्त्रता के पश्चात् दिल्ली एक औद्योगिक नगर भी बन गया है। वस्त्र-निर्माण से लेकर विशालकाय मशीनों तक का उत्पादन दिल्ली में हो रहा है। विश्वप्रसिद्ध 'मारुति' गाड़ियों का निर्माण श्रेय दिल्ली को ही प्राप्त है। सिले-सिलाए वस्त्रों तथा पुस्तक प्रकाशन की विश्वमंडी दिल्ली ही है। बिड़ला मिल, स्वतन्त्र भारत मिल, गणेश फ्लोर मिल आदि सैकड़ों औद्योगिक संस्थाओं के दर्शन कीजिए।

दिल्ली भारत का हृदय है। भारत की आन-बान-शान को बनाए रखने का श्रेय इस हृदय को है। इसकी धमनियों में सशक्त और स्वस्थ रक्त का संचार हो रहा है। किस-किस की तारीफ करें, किस-किस को छोड़ें। दिल्ली का कण-कण दर्शन के योग्य है, सुन्दरता की प्रतिमा है, और है उसमें मनोहर आकर्षण।

अन्त में आइए, देश के महापुरुषों की समाधियों पर पुष्पाँजलि समर्पित कर चलें; श्रद्धा के सुमन चढ़ा चलें। ये हैं—राष्ट्र-पिता महात्मा गाँधी की समाधि 'राजघाट'; स्वतन्त्रता-संग्राम के यशस्वी संचालक और भारत के प्रथम प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू की समाधि 'शान्तिवन', समरांगण में पाकिस्तान को पराजय का मुख दिखलाने वाले प्रधानमंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री की समाधि 'विजयघाट', श्रीमती इन्दिरा गाँधी की समाधि 'शक्तिस्थल'। राजीव गाँधी की समाधि 'वीर-स्थल' तथा बाबू जगजीवनराम की समाधि

'समता-स्थल।' इनके अतिरिक्त राष्ट्रपति ज्ञान जैलसिंह तथा श्री शंकरदयाल शर्मा को भी श्रद्धांजलि अर्पित कर चलें।

दिल्ली का नक्शा बदल दिया 'एशियाड 82' ने। इसके लिए नव-निर्मित जवाहरलाल नेहरू स्टेडियम, इन्द्रप्रस्थ स्टेडियम, छत्रसाल स्टेडियम भी दिल्ली के दर्शनीय स्थान बन गए हैं, जो उच्चकोटि की कला के प्रतीक हैं।

दिल्ली प्रतिदिन सज रही है, सँवर रही है। कला की श्रेष्ठतम कारीगरी की मानो यहाँ होड़ लगी है, जो पत्थर में जान फूँक रही है, सीमेंट और लोहे में आत्मा का संचार कर रही है।

(307) पृथ्वी का स्वर्ग : कश्मीर

संकेत बिंदु—(1) भारत का 'स्विटजरलैंड' (2) डल झील की प्राकृतिक सुंदरता (3) कश्मीर के पर्यटन स्थल (4) 1947 में कश्मीर का भारत में विलय (5) उपसंहार।

कश्मीर धरती का स्वर्ग है। केसर की क्यारी है। महर्षि कश्यप की तपोभूमि है। आर्य-संस्कृति का उद्‌गम स्थल है। अभिनवगुप्त और पाणिनि की जन्मभूमि है और है भगवान् अमरनाथ का वास-स्थल। ''जिसके वानीर-प्रदेश युग-युग से 'अमृत पुत्रा:' की अनुगूँज से गुंजित रहे, शिवत्व का शाश्वत स्वरूप स्वयंभू शिवलिंग जहाँ साकार है,'' ऐसा है मूर्का-कश्मीर। जहाँगीर ने अपने 'तुज्क-ए-जहाँगीरी' में कश्मीर को 'परिस्तान' लिखा। महर्षि अरविन्द ने इसे 'भारत का मुकुट' कहा। विदेशियों ने इसे 'भारत का स्विट्जरलैंड' नाम दिया।

सिंधु, झेलम (वितस्ता) और चिनाव (चन्द्रभागा) नदियाँ कश्मीर की वक्षमालाएँ हैं। पीर, पंजाल और जोजिला पर्वत-शृंखलाएँ इसके शरीर के भाग हैं। गुलमर्ग की पुष्पाच्छादित भूमि, पहलगाँव के हिमगिरि-स्पर्शी, भीनी-भीनी सुगन्ध वाले देवदार के वृक्ष, लेदर (लम्बोदरी) का निर्मल और स्वच्छ शीतल जल एवं 'हुस्न ए कश्मीर' डल झील में तिरते हुए गहरी नीली-जल-राशि की गम्भीरता समस्त संसार को आकर्षित करती हैं, आमोद-प्रमोद से मस्त होने के लिए, प्रकृति में अपने को विस्मृत करने और इहलोक में इहकाय से स्वर्ग का आनन्द प्राप्त करने के लिए।

हजार काफिल-ए-शौक मी कशद शबगीर।
कि बारे ऐश कुशायद ब बास्तए कश्मीर।। (फैजी)

(यहाँ शौक से हजारों काफिले डेरा डालते हैं। इसलिए कि कश्मीर की भूमि पर वे अपनी जिन्दगी का बोझ हलका कर लें।)

पठानकोट से 262 मील की दूरी पर स्थित है कश्मीर की राजधानी श्रीनगर। 'डल' झील इसके प्राण हैं। यह 14 मील लम्बी और ५ मील चौड़ी है। 'शिकारा (हाउस बोट)

श्रीनगर की डल झील में भ्रमण कराने की टैक्सी है। सभी ओर 'हाउस बोटों' का मजमा लगा रहता है। नीले पानी पर सेवारों का मेला लगा रहता है। शिकारों की मस्त चाल पर पूरी झील में मस्ती का राग किसी अनदेखे सपने-सा तैरता है।

डल झील विश्व की प्राकृतिक झीलों में सर्वाधिक खूबसूरत झील है। यह डल झील ही है, जिसका स्वच्छ जल, उस पर रेंगती हुई किश्तियाँ और शिकारे दिल की धड़कनों को तेज करते जाते हैं। अपने ख्वाबों के गुलाबों को महकाने के लिए और अपने सपनों को साकार करने के वायदे लिए दुनियाभर के लोग यहाँ इसके मोहब्बत भरे शफाफ पानियों व नजारों से आँख-मिचौनी करने आते हैं। इसीलिए डल झील को हुस्न-ए-कश्मीर भी कहा गया है।

निशात बाग अर्थात् खूबसूरत रंग-बिरंगे फूलों का उद्यान। इसके पीछे पहाड़ है और आगे डलझील। यहाँ फूलों पर तितलियाँ हैं और सैकड़ों जोड़ियाँ चहल कदमी करती हैं। हरी-हरी दूब, झाऊ के पेड़ तथा रंग-बिरंगे झरते फब्बारे, इसके आकर्षण हैं।

श्रीनगर से 60 मील दूर है पहलगाँव। कश्मीर का सबसे स्वास्थ्यवर्धक क्षेत्र। जहाँ पहाड़ों पर बादल प्रायः डेरा डाले धमा-चौकड़ी मचाते रहते हैं और धूप आँख-मिचौली खेलती है। पास में बहती है पहाड़ी धारा। चारों ओर उग आए हैं छतनार के फूल। लगता है चप्पा-चप्पा जमीन सैलानियों को गुद्गुदाने के लिए बनी है।

पहलगाँव से नौ मील ऊपर चंदनवाड़ी है और चंदनवाड़ी से 18 मील की चढ़ाई पर पावन अमरनाथ जी हैं। हिन्दुओं की सांस्कृतिक धरोहर।

गुलमर्ग अर्थात् 'पहाड़ों की रानी।' सालभर खूबसूरती और मनोरम दृश्यों से पटी भूमि। मौज और मनोरंजन के साधनों से भरपूर यहाँ की सेबनुमा मुसकराहट अन्यत्र दुर्लभ है। गोल्फ का विश्व प्रसिद्ध मैदान है। इतनी ऊँचाई पर गोल्फ का दूसरा मैदान विश्व में नहीं है, तभी तो दुनियाभर के गोल्फ प्रेमी यहाँ आते हैं।

कश्मीर का असली सौन्दर्य है, उसके अंचल में। रनमार्ग के नीचे धानी अंचल में, जहाँ सेब और अखरोट के पेड़ों का सौन्दर्य बिखरा पड़ा है। श्री शंकरदयाल सिंह के शब्दों में, 'फूलों और फलों का कश्मीर, अखरोट की कठोरता और केसर की सुगंध और ताजा सेबों की मोहकता का कश्मीर तो यहाँ है।'

कश्मीर की चारों दिशाएँ विश्व के अनेक राष्ट्रों का सीमान्त हैं। पूर्व में तिब्बत, पश्चिम में अफगानिस्तान, उत्तर में रूस और चीनी सिकियाँग तथा दक्षिण में पाकिस्तान है। भौगोलिक और सामरिक दृष्टि से गिलगित इसका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। मैत्री के उपहार में पाकिस्तान ने इनका कुछ भाग चीन को दे दिया है।

15 अगस्त, 1947 को भारत स्ततन्त्र हुआ। कूटनीतिज्ञ अंग्रेजों ने भारत का विभाजन न केवल भारत और पाकिस्तान के रूप में किया, बल्कि देश में विद्यमान सैकड़ों देशी रियासतों को भी पृथक्-पृथक् इकाइयों के रूप में स्वतन्त्र कर दिया। तत्कालीन उपप्रधानमंत्री, सरदार बल्लभ भाई पटेल के जो गृहमन्त्री पद पर विद्यमान थे, बुद्धिकौशल

से 584 रियासतों को भारत-संघ में सम्मिलित करवा दिया, किन्तु कश्मीर के तत्कालीन महाराजा हरिसिंह ने इस स्थिति का लाभ उठाया और वे किसी ओर भी सम्मिलित न होकर स्वतन्त्र राज्य के स्वप्न देखने लगे। महाराजा हरिसिंह के प्रधानमंत्री रामचन्द्र काक ने 'व्यापारिक और प्रशासनिक सुविधा के लिए पाकिस्तान से अस्थायी समझौता किया', किन्तु 17 अक्तूबर, 1947 को ही कश्मीर के नये प्रधानमन्त्री मेहरचन्द महाजन ने पाकिस्तान से सम्बन्ध-विच्छेद की चेतावनी दी और परिणामस्वरूप पाकिस्तान ने कबायलियों के नाम पर 22 अक्तूबर, 1947 को ब्रितानी जनरल मेसर्बी के नेतृत्व में दस हजार सैनिक भेजकर कश्मीर पर सशस्त्र आक्रमण कर दिया।

और यहीं से कश्मीर के इतिहास ने नई करवट बदली। अन्य देशी राज्यों के विलीनीकरण की भाँति जब कश्मीर के महाराज ने कश्मीर की भारत में विलीनीकरण की प्रार्थना की, तो भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू और तत्कालीन वायसराय लॉर्ड माउन्टबेटन के द्वारा ठुकरा दिया गया और विचित्र शर्तें रखी गईं। अन्तत: विवश होकर महाराजा हरिसिंह ने भारत-संघ की विलीनीकरण-शर्तें स्वीकार करते हुए नेशनल कान्फ्रेंस के प्रधान शेख अब्दुल्ला को रिहा कर उन्हें प्रधानमन्त्री बना दिया एवं बदले में उन्हें (राजा को) मिला राज्य-निकाला। २७ अक्तूबर, १९४७ को कश्मीर भारत का अंग बन गया।

दूसरी ओर पं. नेहरू ने कश्मीर में जनमत संग्रह की बात संयुक्त राष्ट्र-संघ में रखकर मानो कश्मीर पाकिस्तान को देने का विधिवत् मार्ग ही पेश कर दिया। इसी आधार पर पाकिस्तान ने भारत पर 1964 तथा 1972 में आक्रमण भी किए। वह कश्मीर को ऐन-केन-प्रकारेण हस्तगत करना चाहता है।

कश्मीर कांग्रेस की मुस्लिम-तुष्टिकरण नीति की बलि चढ़ता रहा। 1947 की भारत-संघ में विलय-संधि से लेकर आजतक कांग्रेस-कूटनीति की विफलता का परिणाम है 'उग्रवाद'। धारा 370 ने उग्रवाद के लिए रक्त संचालन का कार्य किया। परिणामत: आज प्राय: समस्त हिन्दू कश्मीर से पलायन कर चुके हैं। शरणार्थी बन जम्मू में निर्वासित जीवन जी रहे हैं। वहाँ के देवालय खंडित हो चुके हैं। सेना के बल पर प्रांतीय शासन चल नहीं रहा, घिसट रहा है।

अब कश्मीर वह न पृथ्वी का स्वर्ग है, न शांतमय प्रकृति का सौन्दर्य क्रीडा-स्थल। है तो केवल आतंकवाद की बन्दूकों की गरज और उनका शासन।

(308) पर्वतराज हिमालय

संकेत बिंदु—(1) हिमालय का वर्गीकरण (2) भारत का महरेदार (3) दुर्लभ औषधियाँ, जीव-जन्तु और संन्यासियों का स्थल (4) पर्यटन और धार्मिक स्थल (5) उपसंहार।

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधीऽवगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः॥

—कालिदास ('कुमार सम्भव' का मंगलाचरण)

पूर्व और पश्चिम समुद्र का अवगाहन करके पृथ्वी के मानदण्ड के समान स्थित नगाधिराज देवतात्मा हिमालय उत्तर दिशा में स्थित है। संसार के भूगोलशास्त्री कालिदास के इस कथन से सहमत नहीं, पर यह तो सच है कि महाहिमवंत की शाखा-प्रशाखाएँ ब्रह्म देश से आरम्भ होकर चीन, तिब्बत-सीमांत एवं वहाँ से असम-बंगाल-नेपाल होती हुई कुमायूँ, गढ़वाल, पंजाब, हिमालय, कश्मीर, हिन्दुकुश और अफगानिस्तान होकर मध्य-एशिया के प्रदेशों में चली गई हैं। सम्पूर्ण हिमालय की लम्बाई लगभग पाँच हजार मील और चौड़ाई पाँच सौ मील है।

भारतीय-हिमालय क्षेत्र को चार भागों में बाँट सकते हैं—(1) हिमाचल तथा पंजाब प्रान्त हिमालय। इसका विस्तार गिलगित से सतलुज तक है। यह 560 कि.मी. लम्बा है। इसकी चोटियाँ 6 हजार मीटर से कम चौड़ी हैं, किन्तु इसके नंगापर्वत की ऊँचाई 8126 मीटर है। (2) कुमायूँ-हिमालय। यह शृंखला सतलुज से काली नदी तक गई है। यह 320 कि.मी. लम्बी है। नन्दा देवी, कामेट, त्रिशूल, बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री तथा यमुनोत्री इसी विभाग के अन्तर्गत आते हैं। (3) नेपाल-हिमालय। काली नदी से सिक्कम तक यह शृंखला 800 कि.मी. लम्बी है। तिब्बत और नेपाल संधि पर स्थित एवरेस्ट (8848 मीटर), कंचन जंघा (8598 मीटर), मकालू (8481 मीटर) तथा धवलगीर (8172 मीटर) ऊँची पर्वत श्रेणियाँ इस भाग का अंग हैं। (4) असम-हिमालय। यह पर्वत शृंखला 720 कि.मी. लम्बी है। इसका विस्तार तिप्ता नदी से ब्रह्मपुत्र और बीच की सीमा तक है। चाखोबा, धोकनिया, जोगसोंगला, कुल्हाकांगरी, चीमोल्हारी, काबारू आदि इसकी प्रसिद्ध चोटियाँ हैं, जिनकी ऊँचाई 7320 से 7450 मीटर तक है।

हिमालय की सर्वोच्च शृंखला गौरीशंकर है, जिसे एवरेस्ट नाम से भी जाना जाता है। कर्नल हंट और शेरपा तेनसिंह इस शृंखला पर विजय पताका फहराने वाले पहले वीर मानव हैं।

हिमालय की हिमाच्छादित हरित-पल्लवित-पुष्पित अमित देव-दुर्लभ वनस्पति परिपूरित उपत्यकाएं, असंख्य गिरि-गुफाएँ, घोर वन, पर्वत शृंखलाएँ, बर्फीली चोटियाँ, नदियाँ, झरने, झीलें, हिमालय के पुत्र-पुत्रियाँ हैं। गंगा, यमुना, ब्रह्मपुत्र, सिंधु आदि नदियाँ हिमालय से निकलकर भारत-भू को हरा-भरा तथा शस्य-श्यामलता बनाये रखती हैं। इन्हीं के कारण यह भूमि सोना उगलती है। घने वनों के फल-फूल; देवदार, बाँस आदि वृक्ष, जड़ी-बूटियाँ, महौषधियाँ, वनस्पति, खनिज पदार्थों के अक्षय भण्डार लुटाकर भारत-भू को रत्न-गर्भा बना रहे हैं। लगता है यहाँ आकर अथर्ववेद की कामना पूरी हो रही है—'हिम शैल से निकलने वाली और समुद्र में मिलने वाली नदियाँ हमारे लिए उत्तम औषधि प्रदान

करें।' (6-24-1) इनके जंगलों में अबाध विचरण करते हिंसक बाघ, भालू, हाथी, हायना, हिरण, गेंडे, साँभर, चमरी आदि पशु शिकारियों के लिए आकर्षण का केन्द्र हैं।

हिमालय के कैलास पर भगवान् शंकर का वास है। 'इसी कारण कैलास अपनी चंद्र धवल ऊँची चोटियाँ पसारे ऐसा लगता है जैसे शिव का अट्हास पुंजी-भूत हो गया हो।' भगवती पार्वती की साधना स्थली है कन्याकुमारी—सुदूर दक्षिण में। शंकर-पार्वती मिलन उत्तर-दक्षिण का कैसा अद्‌भुत सामंजस्य है। 'यहीं कैलास की गोद में (ऊर्ध्वभाग, कटि देश में) गंगारूपिणी साड़ी खोले कालिदास की कल्पित—अलका नगरी नंगी पड़ी है।'

युगों-युगों से लाखों त्यागी-वैरागी साधु, संन्यासी, योगी, तपस्वी पद्‌मासन में आँखें मूँदकर प्रभु से साक्षात्कार करते यहीं पंचत्व को प्राप्त हो गए। लाखों ज्ञान पिपासु, तीर्थवासी, सत्यान्वेषी तथा पर्यटक यहाँ आकर सत्, चित् और आनन्द के साक्षात्कार में मुग्ध हो रहे। सहस्रों ऋषि-मुनियों के चरण-चिह्नों से आज भी इसकी शृंखलाएँ पावन बनी हुई हैं। पाँचों पाँडवों और द्रौपदी की तो यह मोक्ष भूमि है। यक्ष, गंधर्व, किन्नर, किन्नरियाँ, अप्सराएँ तो अपने नृत्य-संगीत से देवात्मा का हृदय हर लेते हैं। इसीलिए प्रकृति के चितेरे कवि पंत ने कहा— ***'स्वर्ग खंड तुम इस वसुधा पर/पुण्यतीर्थ हे देव प्रतिष्ठित।'***

(स्वर्ण किरण : हिमाद्री)

अब भी भारतीय तथा विदेशी सैलानियों, पर्यटकों, ज्ञानपिपासुओं तथा तीर्थयात्रियों का अहर्निश उमड़ता सैलाब इसकी 'देवतात्मा' की पहचान करवाता है। गाँधी जी ने त्रिशूल शृंग के सम्मुखवर्ती कौसानी पहाड़ की चौटी पर बैठकर 'अनासक्ति योग' की रचना की थी। मुक्तेश्वर तीर्थपथ में मिलने वाले रामगढ़ पर्वत शृंखला पर बैठकर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अनेक कविताओं को जन्म दिया था।

हिमालय हिन्दू तीर्थों का कुंज है। कैलास, अमरनाथ, मानसरोवर, बद्रीनाथ, केदारनाथ, ऋषिकेश, उत्तरकाशी, गंगोत्री, यमुनोत्री आदि पूज्य तीर्थ हिन्दू धर्म-ध्वजा को फहरा रहे हैं। जैन और बौद्ध मन्दिर भी यहाँ असंख्य हैं।

वेदों में, उपनिषदों में, पुराणों में, महाकाव्यों में और इतिहास के परिच्छेदों में हिमालय का विस्तृत वर्णन है। संस्कृत-कवियों ने इसे देवतात्मा मानकर इसके चरणों में पर अपने काव्य-पुष्प अर्पित किए हैं। कालिदास के 'कुमार-सम्भव' की सम्पूर्ण कथा हिमालय में ही घटित होती है। उनका 'उत्तरमेघ' भी हिमालय का वर्णन करता है। 'विक्रमोर्वशीय' का चौथा और 'अभिज्ञान शाकुंतल' का सातवाँ अंक हिमालय से सम्बद्ध है। रघुवंश के प्रथम, द्वितीय तथा चतुर्थ सर्गों में हिमालय का वर्णन है।

डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में—'हिमालय हमारा प्रहरी है, देवभूमि है, रत्नखानि है, इतिहास विधाता है, संस्कृति मेरुदण्ड है।' प्रबोधकुमार सान्याल के शब्दों में, 'वीरों के असाध्य अध्यवसाय में, संन्यासियों की एकाग्र तपस्या में, तीर्थ-यात्रियों के पूजा पाठ में, कवि-चित्रकार-दार्शनिक की सौन्दर्य-कल्पना में देवतात्मा हिमालय मानव के लिए चिर-विस्मय है।'

(309) अलकापुरी चंडीगढ़

संकेत बिंदु—(1) आकर्षक शहर (2) चंडीगढ़ का निर्माण (3) चंडीगढ़ की बनावट और परिकल्पना (4) चंडीगढ़ के दर्शनीय स्थल और मुख्य इमारतें (5) उपसंहार।

यक्षनगरी अलकापुरी हो सकता है कि महाकवि कालिदास की मात्र कल्पना ही हो, लेकिन यदि अलकापुरी का अस्तित्व सचमुच कभी रहा होगा, तो निश्चित ही वह चंडीगढ़ जैसा ही होगा। दिल भले ही इस नगरी का कंक्रीट का बना हो, लेकिन स्थापत्य कला में यह अत्याधुनिक नगरी अलकापुरी-समान ही तो है। 'कौन जाए दिल्ली की गलियाँ छोड़कर' वाली उक्ति चंडीगढ़ पर भी चरितार्थ होती है। एक बार जो चंडीगढ़ आ जाता है, उससे फिर यहाँ से जाते नहीं बनता। यह वह मदिरा है जो एक बार होठों से क्या लगती है कि फिर छूटती ही नहीं है। अत्याधुनिक अलकापुरी चंडीगढ़ का जादू तो सिर चढ़के बोलता है। एक बार पंजाब के साथ हरियाणा की राजधानी क्या बनी तो फिर क्या मजाल थी हरियाणा की कि वह किसी और नगरी को हरियाणा की राजधानी बनाने के बारे में सोचने की हिमाकत कर सकता। चंडीगढ़ की तर्ज पर पंचकूला और मोहाली जैसे शहर बने तो सही, लेकिन वही कहावत चरितार्थ हुई कि असल असल है, और नकल नकल।

चंडीगढ़ भले ही लाहौर की तरह जगमगाती विरासत वाला शहर न हो, लेकिन चंडीगढ़ ने अपने पाँच दशकों की कालावधि में जो इतिहास रचा है, वह अपना उदाहरण स्वयं ही है। विभाजन की त्रासदी पर पंजाब का पश्चिमी भाग पाकिस्तान में शामिल हुआ और पूर्वी भाग भारत में। यही पूर्वी भाग भारत का वर्तमान पंजाब है, लेकिन वर्तमान पंजाब के अस्तित्व में आने के बाद उसके पास लाहौर जैसा कोई शहर नहीं था जिसे पंजाब की राजधानी बनाया जा सकता। यहीं से चंडीगढ़ के जन्म की कहानी शुरु होती है। पंजाब की राजधानी ऐसी होनी चाहिए जो किसी भी दृष्टि से लाहौर से कम न हो—यह विचार सबसे पहले भारत के प्रथम प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू के मन में आया। अम्बाला से उनतालीस किलोमीटर की दूरी पर, अम्बाला रोपड़ मार्ग पर और चड़ी मंदिर से दस से बारह किलोमीटर के अंतर पर छोटे-छोटे कई गाँव शिवालिक पर्वतमालाओं के चरणों में बसे थे और उनके दोनों ओर बहती हुई दो छोटी-छोटी नदियाँ हिमालय के पंख पखारती थीं। यही वह जगह थी जो अलकापुरी चंडीगढ़ के निर्माण के लिए चुनी गई थी।

चंडीगढ़ शहर की परिकल्पना को एक जीवित राष्ट्र-पुरुष के रूपक से भी समझा जा सकता है जिसके मस्तक पर उच्च न्यायालय विराजमान है। सचिवालय और न्यायाधीश निवास इसकी दो भुजाएँ हैं। शेष नगर उसका मध्य भाग है और केन्द्रीय तथा हरियाणा, पंजाब और स्वयं चंडीगढ़ संघ राज्य के कर्मचारियों के निवास-स्थान इसके चरण हैं।

निरन्तर विकासमान चंडीगढ़ अभी तक पचास से भी अधिक सैक्टरों में विभक्त है।

इसमें मंत्रियों से संतरियों तक के लिए विभिन्न प्रकार के भवन निर्मित हैं जिनका विधिवत् उद्घाटन 7 अक्तूबर 1953 को भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसाद ने किया था।

चंडीगढ़ शहर के वास्तुशिल्प की विशिष्ता इस बात में भी निहित है कि इसके प्रत्येक सैक्टर की निर्मिति एक स्वतंत्र उपनगरी की पद्धति पर हुई है। प्रत्येक सैक्टर की अपनी मार्कीट है तो अपनी डिस्पैंसरी और अपने बैंक भी हैं। यही नहीं, प्रत्येक सैक्टर के अपने पार्क भी हैं। कुछ महत्त्वपूर्ण सैक्टरों में अपने डाकखाने भी हैं। सभी सैक्टर समाज के सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनमें सरकारी कर्मचारी भी रहते हैं और अधिकारी भी, व्यापारी भी रहते हैं और छोटे-छोटे कामगार भी। पंजाब और हरियाणा की संयुक्त रूप से राजधानी और संघीय राज्य होने के कारण भी चंडीगढ़ का अपना एक अलग चरित्र और हैसियत है। विधायकों, मंत्रियों के आवास हालांकि शहर की अत्याधुनिक बस्तियों में स्थित हैं, लेकिन उनके लिए कोई अलग सैक्टर निर्मित नहीं है।

नये मिजाज का शहर होने के कारण यहाँ सड़कें बहुत चौड़ी हैं जिनकी परिकल्पना पुराने चलन के शहरों में तो की भी नहीं जा सकती। हालांकि तेजी से बढ़ती आबादी और दूर-दराज के शहरों से रोजी-रोटी की तलाश में निरन्तर यहाँ आने वाले लोगों के कारण चंडीगढ़ में भी अब भीड़ द्रुतगति से बढ़ रही है, फिर भी यह नगरी अभी महानगर में परिवर्तित नहीं हुई है। इसलिए प्रदूषण का प्रकोप अभी उतना नहीं बढ़ा है। फिर यहाँ सड़कों के किनारे पेड़ इतने बहुतायत में हैं कि उन्होंने इसे प्रदूषण से काफी हद तक बचा रहता है। नीम, पीपल, बड़ के पेड़ों ने तो जो हमारी सांस्कृतिक अस्मिता के प्रतीक हैं, इस नए मिजाज़ के शहर में मुश्किल से ही मिल पाते हैं, लेकिन सड़कों के किनारे लगे अमलतास, गुलमुहर, युकिलिप्टस और पगोड़ा के खुशबूदार वृक्ष जरूर इस शहर के चरित्र को एक अलग पहचान देते हैं।

प्रकृति भी इस अत्याधुनिक अलकापुरी पर विशेष मेहरबान है। तीन-चार दिन गर्मी पड़ी नहीं कि बारिश हो जाती है। इसलिए मौसम यहाँ प्राय: आनन्ददायक रहता है और दिल्ली जैसी पसीने की चिपचिपाहट यहाँ की रोजमर्रा की दिनचर्या को निरानन्द नहीं करती।

चंडीगढ़ में सात सिनेमा हाल हैं तो टैगोर थिएटर भी है। पंजाब विश्वविद्यालय का ओपन एयर थिएटर रंगकर्मियों का तीर्थ है तो टैगोर थिएटर इस नगरी के सांस्कृतिक जीवन का दिल है। बेकार की चीजों से निर्मित 'रॉक गार्डन' नेकचन्द की ईश्वर की सृष्टि की तरह एक समानान्तर सृष्टि ही तो है जो दुनियाभर में एक विरल रचना के रूप में जानी जाती है। रोजगार्डन, बोटेनिकल गार्डन इस शहर के जन-जीवन की सौन्दर्य प्रियता के प्रतीक हैं तो आर्टगैलरी अपनी तरह की एक ऐसी कला दीर्घा है जो कला-प्रेमियों को निरन्तर कुछ नया करने की प्रेरणा देती रहती है। सुखना झील का भी अपना ही महत्त्व है। यह सैलानियों को तो लुभाती ही है, इसका चंद्राकार तट एक कलात्मक नमूना भी है।

सचिवालय भवन, विधानसभा भवन, उच्च न्यायालय भवन और पंजाब विश्वविद्यालय

के भवन भी स्थापत्य-कला के अद्‌भुत नमूने हैं तो इंजीनियरिंग कॉलिज का भवन एक उड़ान भरते मॉडल का रूप होने के कारण विशुद्ध भारतीय कलाकृति ही प्रतीत होती है। हाईकोर्ट का मुख्य द्वारा देख कर फतहपुर सीकरी के बुलन्द दरवाजे का स्मरण हो आता है। विधानसभा भवन और हाईकोर्ट भवन में सीढ़ियों का प्रयोग न करके जयपुर के आमेर महल की भाँति ऐसी समतल गैलरी बनाई गई है कि उस पर बेबी आस्टिन कार सुविधा से चली जाती है। पंजाब विश्वविद्यालय के गाँधी भवन की स्थापत्य कला तो अद्‌भुत है। कृत्रिम जलाशय में स्थित गाँधी भवन की दूर से दिखाई देती प्राचीरें बड़ा ही मनोरम दृश्य उपस्थित करती हैं।

पंजाब विश्वविद्यालय के ठीक सामने पी. जी. आई. का भवन है। पी.जी.आई अर्थात् उत्तर भारत का सुप्रसिद्ध चिकित्सा संस्थान, जहाँ देश के हर कोने से निराश रोगी सैंकड़ों की संख्या में रोज ही इस अस्पताल की शरण में आते हैं। पी. जी. आई. सचमुच उत्तर भारत के जीवन में निराश रोगियों के लिए एक प्राणदायी उपहार सरीखा ही तो है।

अलकापुरी चंडीगढ़ अब अखबारों की नगरी के रूप में भी जाना जाने लगा है। यह इस शहर के चरित्र का एक नया आयाम है। यहाँ से अंग्रेजी के तीन—'दी ट्रिब्यून', 'इंडियन एक्सप्रेस', 'हिन्दुस्तान टाइम्स', तथा हिन्दी के चार—'दैनिक ट्रिब्यून', 'दैनिक भास्कर', 'अमर उजाला', और 'देश सेवक', तथा पंजाबी के दो 'पंजाबी ट्रिब्यून' और 'देश सेवक'—प्रकाशित होते हैं। इस तरह से अलकापुरी चंडीगढ़ अब बाबूओं का शहर ही नहीं रहा है, सूचना प्रौद्योगिकी के रूप में भी पनपता जा रहा है।

हालाँकि चंडीगढ़ को जब-तब पंजाब को सौंपे जाने की खबर राजनीतिक गलियारों से सुनाई पड़ती रहती है, लेकिन चंडीगढ़ का चरित्र जिस तरह से लघु भारत के एक सटीक, रूपक के रूप में विकसित हो रहा है तो यही बेहतर होगा कि आने वाले दिनों में भी चंडीगढ़ का संघीय दर्जा यथावत् कायम रखा जाए और अलकापुरी चंडीगढ़ हरियाणा और पंजाब की संयुक्त राजधानी के रूप में भारत संघ के राज्यों में मुकुट की मध्य-मणि के रूप में विराजमान रहे।

(310) गुलाबी नगर

'जयपुर'

संकेत बिंदु—(1) जयपुर 'गुलाबी नगर' (2) भौगोलिक स्वरूप (3) ऐतिहासकि पर्यटन स्थल (4) जयपुर का जन्तर-मन्तर (5) उपसंहार।

राजस्थान की राजधानी 'जयपुर' 'गुलाबी नगर' के नाम प्रसिद्ध है। सन् 1875 में इंग्लैंड का राजकुमार (रानी विक्टोरिया का पुत्र) जयपुर आया था तो जयपुर के महाराजा

'सवाई राम सिंह' ने जयपुर के मुख्य बाजार को गुलाबी परदों से सजाया था। उस समय से गुलाबी रंग इस शहर की इमारतों की विशेषता बन गया और जयपुर 'गुलाबी शहर' बन गया।

जयपुर के तीन ओर एशिया की सबसे पुरानी पर्वत-शृंखला अरावली की पहाड़ियाँ हैं। शहर के चारों ओर एक दीवार है। इसमें 7 प्रवेश द्वार हैं। जयपुर 6 आयताकार भागों में बँटा है, यह समुद्र की सतह से 431 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है। जयपुर की स्थापना सवाई राजा जय सिंह ने सन् 1727 में की थी। उनके नाम पर इस शहर का नाम जयपुर पड़ा। जय सिंह ने भारतीय ग्रंथ 'शिल्पशास्त्र' के आधार पर योजनाबद्ध तरीके से शहर का निर्माण कराया। इसलिए जयपुर आज भी सुंदर रास्तों एवं इमारतों की एक-सी बनावट हेतु प्रसिद्ध है। गुलाबी नगर जयपुर आज भी अपनी सुंदरता और एकरूपता के लिए प्रसिद्ध है।

सितम्बर से मार्च तक का समय जयपुर में घूमने के लिए अच्छा समय है, भारत के किसी भी स्थान से जयपुर हवाई जहाज, रेल एवं बस द्वारा पहुँचा जा सकता है। जयपुर में हिंदी, राजस्थानी एवं उसकी उपबोली 'केरादी' बोली जाती है। दिल्ली से जयपुर के लिए 'पिंक सिटी एक्सप्रैस अच्छी गाड़ी है। पर्यटक आसानी से आकर जयपुर घूम सकते हैं।

जयपुर एक ऐतिहासिक पर्यटन स्थल है। और इस नगर में तथा इसके आस पास अनेक ऐतिहासिक स्थल स्थित हैं। 'सिटी पैलेस' जयपुर शहर के बीचों बीच स्थित है। यह शहर के लगभग 1/7 क्षेत्र में फैला हुआ है। यह इस समय संग्रहालय है। इसमें राजपूत एवं मुगलकालीन चित्रकारी के सुंदर नमूने, दुर्लभ पांडुलिपियाँ, मूर्तियाँ, कालीन एवं एक शस्त्रंगार है। सिटी पैलेस में जाने के कई दरवाजे हैं किंतु त्रिपोलिया द्वार ठीक महल में पहुँचाता है। अंदर जाकर पहली इमारत 'मुबारक महल' दिखती है। जिसे राजा माधो सिंह ने बनवाया था, इसके बाद 'दीवाने आम' एवम् 'दीवाने खास' है। इसके बाद 'चन्द्र महल' आता है। इस महल की ऊपरी मंजिल 'मुकुट महल' कहलाती है, इससे सारे शहर का सुंदर दृश्य दिखता है, चंद्र महल के उत्तर में गोविन्द देव का मंदिर है, महल के अंदर हथियारों का संग्रह है। जयपुर के अन्य ऐतिहासिक स्थलों में जयपुर का हवा महल भी अपनी विशालता और सुंदरता के लिए प्रसिद्ध है। इसका निर्माण महाराजा सवाई प्रताप सिंह ने सन् 1799 में करवाया था, इस इमारत की शिल्पकला का सौंदर्य अत्यंत मनमोहक है, यह पाँच मंजिला भवन है। इसके 8 कोनों वाले झरोखे, शानदार गुम्बदें, वक्ररेखीय छत एवं कलश इमारत की सुंदरता को चार चाँद लगा देते हैं। यह ऐतिहासिक इमारत शिल्पकला का खूबसूरत नमूना है पर्यटक इसे देखकर मुग्ध हो जाते हैं।

जयपुर का जन्तर-मन्तर अन्य पाँचों जन्तर-मन्तरों दिल्ली, मथुरा, उज्जैन, वाराणसी एवं जयपुर में से सबसे विशालतम और सुंदर है। इसे सन् 1726 में महाराजा जय सिंह द्वारा बनवाया गया था, यह सिटी पैलेस के पास ही है। जयपुर के आस-पास भी अनेक

ऐतिहासिक स्थल हैं, इनमें जयपुर से लगभग 11 कि.मी. दूर दिल्ली-जयपुर रोड़ पर बंजर पहाड़ियों पर बना आमेर का किला प्राचीन एवं शानदार है। प्राचीनकाल में आमेर जयपुर की राजधानी था। सन् 1150 में 'कुशवाहों' के एक वंशज 'घोलराम' ने आमेर को अपनी राजधानी बनाया था, वर्तमान किला अकबर के सेनापति राजा मान सिंह (1592-1615) ने बनवाया था इसके बाद राजा जय सिंह ने इसका पूरा निर्माण करवाया था, यह भवन-निर्माण कला का बेजोड़ नमूना है इसके दीवाने आम, जय सिंह महल, सुख निवास, जल महल, जय मंदिर एवं काली मंदिर दर्शनीय हैं।

जयपुर से लगभग 30 कि.मी. दूर बानगंगा नदी पर बाँध बनाकर 'रामगढ़ झील' का निर्माण किया है। यह झील भी सैलानियों के लिए एक प्रमुख पिकनिक स्थल है। और यहाँ पर पर्यटक नौकायन का भी आनन्द उठाते हैं।

अत: जयपुर आइए, यहाँ घूमिए, राजस्थान की प्रसिद्ध दस्तकारी की वस्तुएँ, सांगानेरी वस्त्र, कशीदाकारी के जूते-चप्पल, हाथी दाँत एवं चंदन की वस्तुएँ आदि खरीदिए। गुलाबी शहर की सैर कर गुलाबी मन से घर वापस आइए।

(311) भारत का द्वार—मुम्बई

संकेत बिंदु—(1) मुम्बई का इतिहास (2) मुम्बई में घूमने का समय (3) गेटवे ऑफ इंडिया (4) मुंबई के अन्य पर्यटक स्थल (5) उपसंहार

अरब सागर किनारे स्थित मुम्बई विश्व का सातवाँ शहर है, भारत की व्यापार राजधानी के नाम से प्रसिद्ध मुम्बई में तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व में बौद्ध लोग रहते थे 6 और 7वीं शताब्दी के बाद एलिफेंटा गुफा मंदिर के निर्माण के बाद यहाँ हिन्दू भी रहने लगे, मुम्बई में प्राकृतिक बन्दरगाह भी है। कुछ समय यह पुर्तगाली लोगों के पास भी रहा, लेकिन फिर इंग्लैंड के राजा चार्ल्स द्वितीय को पुर्तगाल की राजकुमारी से विवाह करने पर यह दहेज में मिला।

मुम्बई घूमने देश के किसी भी कोने से आसानी से पूरे वर्ष आ जा सकते हैं, क्योंकि समुद्र किनारे बसा होने से यहाँ का मौसम एक-सा रहता है किन्तु घूमने हेतु नवम्बर से फरवरी तक मुम्बई का मौसम अच्छा रहता है। मुम्बई में अनेक पर्यटक स्थल हैं जिन्हें देखने देश-विदेश के पर्यटक प्रतिवर्ष आते हैं।

इन पर्यटक स्थलों में 'गेटवे ऑफ इंडिया' भी प्रमुख है। यह मुम्बई में ताजमहल होटल के सामने बना है। इसे सन् 1911 में ब्रिटिश सम्राट जार्ज पंचम और रानी मैरी के भारत आने पर बनवाया गया था। इसे पत्थरों से बनवाया गया है। और इसके सामने छत्रपति शिवाजी की प्रतिमा लगी है। पर्यटक गेटवे ऑफ इंडिया देखकर मोटरबोट में बैठकर समुद्र की सैर भी कर सकते हैं।

मुम्बई के अन्य पर्यटक स्थलों में चर्चगेट रेलवे स्टेशन से लगभग 1.6 कि.मी. दूर 'प्रिंस ऑफ वेल्स संग्रहालय, स्थित है। यह विश्व के सर्वश्रेष्ठ संग्रहालयों में से एक है। इसकी इमारत ब्रिटिशकालीन भवन निर्माण का नायाब नमूना है, यहाँ कई दुर्लभ वस्तुओं का संग्रह है। चर्चगेट रेलवे स्टेशन से लगभग 9 कि.मी. दूर 7वीं सदी में चट्टानों को काटकर एलिफेंटा गुफाएँ बनाई गई हैं, इनमें शिव के विविध रूपों को पत्थरों से बनाया गया है।

मुम्बई के समुद्र तटों में चौपटी का समुद्र तट सबसे सुंदर है। शाम को यहाँ पर्यटकों की भारी भीड़ रहती है। पर्यटक यहाँ मुम्बई की प्रसिद्ध भेलपुरी एवं पावभाजी खाने का आनंद उठाते हैं। जूहू बीच भी मुम्बई के उत्तरीय भाग में स्थित विशाल समुद्र तट है और यह पर्यटकों के आकर्षण का मुख्य केंद्र है। यह ताड़ और नारियल के पेड़ों से घिरा हुआ है। यहाँ से सूर्यास्त देखना अच्छा लगता है। जूहू बीच से नरीमन पाइंट की ऊँची इमारतें देखना सपनों की नगरी का अहसास दिलाती है। मुम्बई के अन्य पर्यटक स्थलों में 'मालाबार हिल' भी पहाड़ी पर बसा सुंदर क्षेत्र है इसकी हरियाली पर्यटकों का मन मोह लेती है। इसी क्षेत्र में मुम्बई का प्रसिद्ध 'हैंगिग गार्डन' एवं 'कमला नेहरू पार्क' है। यहाँ से आसपास का विहंगम दृश्य सुंदर लगता है।

मुम्बई यात्रा 'सिद्धि विनायक मंदिर' 'महालक्ष्मी मंदिर' एवं 'मुंबा देवी' के मंदिर के दर्शन बिना अधूरी है। इसके अलावा समुद्र में बनी 'हजरत अली' की दरगाह भी पर्यटकों की आस्था का केंद्र है। मुम्बई आइए और इस फिल्मी दुनिया की नगरी घूमिए और सैर का आनन्द लीजिए।

गाँव और शहर

(312) भारत के गाँव

संकेत बिंदु—(1) भारत गाँवों में निवास करता है (2) गाँवों की दुर्दशा के मुख्य कारण (3) गाँवों की समस्याएँ (4) आधुनिक युग में गाँवों का बदलता स्वरूप (5) उपसंहार।

भारत माता ग्रामवासिनी है। भारत की 85 प्रतिशत जनता गाँवों में रहती है, अतः भारत के गाँव भारत की आत्मा हैं, भारतीय जीवन के दर्पण हैं, भारत की संस्कृति और सभ्यता के प्रतीक हैं।

भारतीय गाँव प्रकृति का वरदान हैं। प्राकृतिक-सुषमा के घर हैं, भारत के निवासियों के लिए अन्न, फल-फूल, साग-सब्जी, दूध-घी के प्रदाता हैं। खेतों के लिए कृषकों के साथ ही सेना को सैनिक, पुलिस को सिपाही और श्रमिक-प्रतिष्ठानों को मजदूर गाँवों से ही मिलते हैं।

दूसरी ओर, भारतीय गाँव देश की सबसे पिछड़ी बस्ती हैं। दरिद्रता की साकार प्रतिमा हैं। अज्ञान और अशिक्षा की धरती हैं। रोग और अभावों के अड्डे हैं। ईर्ष्या और द्वेष के अग्नि-कुंड हैं। शिक्षालयों और औषधालयों की पहुँच के परे हैं। मुकद्दमेबाजी के अखाड़े हैं।

गाँवों की दुर्दशा का मुख्य कारण है अशिक्षा। अशिक्षा अज्ञान की जननी है। अज्ञान अन्धकार का पथ-प्रदर्शक है, ईष्या-द्वेष का सहयोगी है। दूसरे के खेत का पानी अपने खेत की ओर मोड़ लेना, दूसरे की कटी फसल अपने खेत में डाल देना, दूसरे के हरे-भरे खेतों में अपने पशु छोड़ देना किसान की अज्ञानता के प्रतीक हैं। दूसरी ओर जिससे वैर हो उसके पशु हँकवा देना, खलियान फूँक देना, घर में सेंध लगवा देना, यहाँ आम प्रवृत्ति है। बात-बात में झगड़ना, लट्ठ बरसाना, भाले-फरसे निकाल लेना ग्रामीणों का स्वभाव बन गया है।

अज्ञानता का ही दुष्परिणाम है कि सेठ-साहूकार ग्रामवासियों को लूटते हैं। पाँच देकर दस पर अँगूठा टिकवाते हैं। सूद में उसके कपड़े उतारते हैं और मूल में उनको बंधुवा मजदूर बना लेते हैं। जन्मोत्सव, शादी तथा अन्य धार्मिक और पारिवारिक उत्सवों में ग्रामीणजन झूठी शान में चादर से बाहर पैर पसारते हैं। अपने भविष्य के अंधकार को निमन्त्रण देते हैं। अपना भला बुरा सोचने की ताकत उनमें नहीं है।

भारतीय गाँव सभ्यता और आधुनिक-सुख-सुविधा से कोसों दूर हैं। अपवाद रूप में कुछ पक्के मकानों को छोड़कर कच्चे-मकान और झोंपड़ियाँ वहाँ के निवास-स्थान हैं। स्वच्छ पेय जल का वहाँ अभाव है। मल-मूत्र की विधिवत् निकासी नहीं है। गाँव में गड्ढे सड़ते हैं, दुर्गंध पैदा होती है। बिजली के लाभ से वे वंचित हैं।

गाँव में चिकित्सालय नहीं। प्रशिक्षित डॉक्टर नहीं, क्वालिफाइड नर्स नहीं। नीम हकीमों का राज्य है, जो खतरा-ए-जान हैं। जादू-टोने आज भी ग्रामवासियों में स्वस्थ रहने की औषध है। गंडा-ताबीज उनके स्वास्थ्य के प्रहरी हैं, भाग्य-विधाता हैं। इसीलिए छोटे-छोटे रोग भी गाँव में मृत्यु का कारण बन जाते हैं।।

अब भारतीय गाँवों में नई चेतना, नई ज्योति, नया जीवन भी आया है। आर्थिक शोषण से मुक्ति दिलाने के लिए सहकारी बैंक स्थापित हुए। जमींदारी प्रथा का अन्मूलन हो गया है। जमींदारों की जमीन छीनकर किसानों में बाँट दी गई। भूदान-यज्ञ ने किसान को भूमि का मालिक बनाया। भूमि-कानून लागू कर भूमि-सीमा निश्चित कर दी गई। छोटे खेतों की समस्या का समाधान चकबन्दी तथा सहकारी खेतों द्वारा किया गया। फसल को शहर तक पहुँचाने के लिए गाँव को पक्की सड़कों से जोड़ा गया। ऋण देकर ट्रैक्टर दिए, कर्ज देकर सुन्दर बीज दिया, उर्वरक खाद दी। गाँव को शिक्षित करने के लिए रेडियो और दूरदर्शन से फसल उगाने की विधियाँ और ग्राम्य-जीवन-सुधार कार्यक्रम चल रहे हैं। ग्राम-सेवक-सेविकाएँ ग्रामवासियों के लिए देव-दूत हैं, जो उनकी हर सम्भव सहायता के लिए तत्पर रहते हैं। कृषि उन्नति के लिए कृषि-विश्वविद्यालय स्थापित हो गए हैं।

ग्रामीण युवाओं की स्वरोजगार प्रशिक्षण योजना, ग्रामीण शिल्पकारों की सुधार-योजना, ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं और बच्चों की विकास योजना, राष्ट्रीय सामाजिक सहायता योजना, जवाहर रोजगार योजना, इन्दिरा आवास योजना, रोजगार गारंटी योजना तथा पंचायतीराज योजनाओं द्वारा गाँवों की सामाजिक और आर्थिक उन्नति के प्रयत्न सरकार द्वारा चलाए जा रहे हैं।

आज ग्रामों से अशिक्षा का अन्धकार दूर होता जा रहा है। गाँव-गाँव में प्राथमिक, माध्यामिक विद्यालयों का जाल बिछा है। कस्बों में हाई स्कूल खुल गए हैं, नगरों में कॉलेज खुल गए हैं। विश्वविद्यालय की शिक्षा ग्रामवासी की पहुँच में आ गई है। बिजली ने गाँवों में प्रकाश फैलाया, रेडियो और दूरदर्शन ने ज्ञानवर्धन किया और जगती से गाँव का सम्बन्ध स्थापित किया। बुद्धिमान्, चतुर और समझदार ग्रामवासी इन योजनाओं से लाभान्वित हो सभ्यता की दौड़ में आगे बढ़ रहे हैं। पढ़-लिखकर उच्च पदों पर पहुँच रहे हैं।

ग्रामीण उन्नति और प्रगति का दूसरा चेहरा भी सामने आया है। विभांशु दिव्याल के शब्दों में, 'पचास साल की आजादी ने राजनीतिक नेतृत्व, प्रशासनिक प्रणालियों और सामाजिक संरचनाओं को जिस तरह से भ्रष्टाचार, गुंडई और मर्यादाविहीनता के हवाले किया है उसकी सबसे ज्यादा कीमत गाँवों ने चुकाई है। लाठी पहले से भी ज्यादा मजबूत हो गई है। जो सबल है उसने निर्बल को और अधिक निर्बल बना दिया है। जो बलात्कार कर जाता है, जो हत्या कर देता है और जो अपने बाहुबल से किसी औरत को सरे गाँव नंगा घुमा देता है, उस तक पहुँचने में कानून की साँस फूल जाती है। यहाँ भ्रष्टाचार उन्मुक्त है, अनाचार निर्बाध।'

(313) भारत का किसान

संकेत बिंदु—(1) परिश्रम, त्याग और तपस्वी जीवन का नाम 'किसान' (2) किसान की दिनचर्या (3) किसान की सेवा निष्काम और स्वार्थ में परमार्थ (4) भारतीय कृषक कर्मयोगी और धर्मभीरू (5) उपसंहार।

'किसान' कठोर परिश्रम, त्याग और तपस्वी जीवन का दूसरा नाम है। किसान का जीवन कर्मयोगी की भाँति मिट्टी से सोना उत्पन्न करने की साधना में लीन रहता है। वीतराग संन्यासी की भाँति उसका जीवन परम संतोषी है। तपती धूप, कड़कती सर्दी और घनघोर वर्षा में तपस्वी की भाँति वह अपनी साधना में अडिग रहता है। सभी ऋतुएँ उसके सामने हँसती-खेलती निकल जाती हैं और वह उनका आनन्द लूटता है। यह उसके जीवन की विशेषता है।

सृष्टि का पालन विष्णु भगवान् का कार्य है। मानव-समाज का पालन किसान का धर्म है। अतः किसान में हम भगवान् विष्णु के दर्शन कर सकते हैं। प्राणिमात्र के जीवन को पालने वाले किसान का तपस्या-पूर्ण त्याग, अभिमान रहित उदारता, क्लान्ति रहित परिश्रम

उसके जीवन के अंग हैं। उसमें सुख की लालसा नहीं होती। कारण, दु:ख उसका जीवन साथी है। संसार के प्रति अनभिज्ञता और अज्ञानता से उसमें आत्म-ग्लानि नहीं होती, न दरिद्रता में दीनता का भाव-बोध होता है। ये उसके जीवन के गुण हैं।

किसान अहर्निश कर्म-रत रहता है। वह ब्राह्म-मुहूर्त में उठता है, पुत्र सम बैलों को भोजन परोसता है, स्वयं हाथ-मुँह धो, कलेवा कर कर्मभूमि 'खेत' में पहुँच जाता है। जहाँ उषा की किरणें उसका स्वागत करती हैं। वहाँ वह दिनभर कठोर परिश्रम करेगा। स्नान-ध्यान, भजन-भोजन, विश्राम, सब कुछ कर्मभूमि पर ही करेगा। गोधूलि के समय अपने बैलों के साथ हल सहित घर लौटेगा। धन्य है किसान का ऐसा कर्मयोगी जीवन!

चिलचिलाती धूप, पसीने से तर शरीर, पैरों में छाले डाल देने वाली तपन, उस समय सामान्य जन छाया में विश्राम करता है, किन्तु उस महामानव किसान को यह विचार ही नहीं आता कि धूप के अतिरिक्त कहीं छाया भी है।

मूसलाधार वर्षा हो रही है, बिजली कड़क रही है, भयभीत जन-गण आश्रय ढूँढ रहा है, किन्तु यह देवता-पुरुष कर्मभूमि में अपनी फसल की रक्षा में संलग्न है। वरुण देवता की ललकार का सामना कर रहा है। वाह रे साहसिक जीवन!

प्रकृति के पवित्र वातावरण और शुद्ध वायुमण्डल में रहते हुए भी वह दुर्बल है, किन्तु उसकी हड्डियाँ वज्र के समान कठोर हैं। शरीर स्वस्थ है, व्याधि से कोसों दूर है!

रात-दिन के कठोर जीवन में मनोरंजन के लिए स्थान कहाँ? रेडियो पर सरस गाने सुनकर, यदा-कदा गाँव में आई भजन-मण्डली के गीत सुनकर या कचहरी की तारीख भुगतने अथवा आवश्यक वस्तुओं की खरीद के लिए शहर आने पर चलचित्र देखने में ही उसका मनोरंजन सम्भाव्य है। जहाँ किसान अपेक्षाकृत समृद्ध है, वहाँ दूरदर्शन भी मनोरंजन का साधन है।

भारतीय कृषक-जीवन के भाष्यकार मुंशी प्रेमचन्द का विचार है, 'किसान पक्का स्वार्थी होता है, इसमें सन्देह नहीं। उसकी गाँठ से रिश्वत के पैसे बड़ी मुश्किल से निकलते हैं, भाव-ताव में भी वह चौकस होता है। वह किसी के फुसलाने में नहीं आता। दूसरी ओर उसका सम्पूर्ण जीवन प्रकृति का प्रतिरूप है। वृक्षों से फल लगते हैं, उन्हें जनता खाती है। खेती में अनाज होता है—यह संसार के काम आता है। गाय के थन में दूध होता है—वह दूध नहीं पीता;.दूसरे ही उसे पीते हैं। इसी प्रकार किसान के परिश्रम की कमाई में दूसरों का साझा है, अधिकार है। उनके स्वार्थ में परमार्थ है और उसकी सेवा निष्काम है।'

एक ओर भारतीय कृषक कर्मयोगी है, दूसरे और धर्मभीरु भी है। गाँव का पण्डित उसके लिए भगवान् का प्रतिनिधि है। उसकी नाराजगी उसके लिए अभिशाप है। इस शाप-भय ने इहलोक में उसे नरक भोगने को विवश कर रखा है। तीसरी ओर, वह कायदे-कानून से अनभिज्ञ भी है, तो साहूकार अथवा बैंक का कर्जदार भी है। निम्न वर्ग का किसान कर्ज में जन्म लेता है, साहूकारी-प्रथा में जीवन-भर पिसता है और कर्ज में डूबा ही मर जाता है। उसकी मेहनत की कमाई पर ये नर-गिद्ध ऐसे टूटते हैं कि उसका सारा माँस नोंच-

नोंच कर उसे ठठरी बना देते हैं। ब्याज का एक-एक पैसा छुड़ाने के लिए वह घण्टों उनकी चिचोरी करता है।

इस तपस्वी के जीवन की कुछ कमजोरियाँ भी हैं। अशिक्षा के कारण बातों-बातों में लड़ पड़ना, लट्ठ चलाना, सिर फोड़ना या फुड़वा लेना; वंशानुवंश शत्रुता पालना, किसी के खेत जलवा देना, फसल कटवा देना, जनता के प्रहरी पुलिस से मिलकर षड्यन्त्र रचना, मुकदमेबाजी को कुल का गौरव मानकर उस पर बेतहाशा खर्च करना, ब्याह-शादी में चादर से बाहर पैर पसारकर झूठी शान दिखाना, इसके जीवन के अंधेरे पल को प्रकट करने वाले तत्त्व हैं।

आज भारतीय किसान का जीवन संक्रमण काल से गुजर रहा है। एक ओर वह शिक्षित हो गया है; खेती के लिए नये उपकरणों और सघन खेती करने के साधनों का प्रयोग करता है। जिससे आर्थिक सम्पन्नता की ओर अग्रसर है। रहन-सहन में नागरिकता की स्पष्ट छाप उसके जीवन पर प्रकट हो रही है, तो दूसरी ओर उसमें उच्छृंखलता व उद्दण्डता और बेईमानी, चालाकी और आधुनिक जीवन की विषमताएँ, कुसंस्कार और कुरीतियाँ घर कर रही हैं। अब उसके बेटे-पोते किसानी से नाता तोड़कर बाबू बनने लगे हैं। खेतों की सुगन्ध-युक्त हवा में उन्हें धूल अधिक दिखाई देने लगी है, जिससे वस्त्र खराब होने का भय है।

इस कठोर परिश्रमी, धर्मभीरु और स्वाभिमानी भारतीय कृषक का जीवन भविष्य में किन विचित्र धाराओं में प्रवाहित होगा, यह कहना कठिन है।

भोले भाले कृषक देश के अद्भुत बल हैं।
राजमुकुट के रत्न कृषक के श्रम के फल हैं॥
कृषक देश के प्राण, कृषक खेत की कल हैं।
राजदण्ड से अधिक मान के भाजन हल हैं॥ —लोचनप्रसाद पाण्डेय

(314) भारत की ग्रामीण-संस्कृति

संकेत बिंदु—(1) ग्रामीण संस्कृति की आत्मा (2) ग्रामीण संस्कृति की विशेषताएँ (3) शोषण, ग्रामीण संस्कृति का अभिशाप (4) ग्रामीण संस्कृति के कलंक (5) उपसंहार।

भारत की 80 प्रतिशत जनता गाँवों में निवास करती है। गाँवों की अपनी एक परम्परागत संस्कृति है, जो शहरों की संस्कृति से सर्वथा भिन्न है। गाँवों में प्रचलित आचार-व्यवहार, रहन-सहन, वेश-भूषा भारतीय ग्रामीण संस्कृति है। ग्रामीण जनता में प्रचलित रूढ़ियों, धार्मिक परम्पराओं, विचार-सरणियों व जीवन-मूल्यों का समग्र रूप ही भारत के गाँवों की संस्कृति है। भारतीय ग्राम ग्रामीण संस्कृति की आत्मा है।

भारतीय ग्रामीण संस्कृति की सर्वोत्तम विशेषता है आस्तिक भाव। भारत का ग्रामीण-जन प्रभु की सत्ता का घोर विश्वासी है। वह दारिद्र्य, दीनता, अत्याचार और पीड़ा को अपना

ही कर्मफल मानता है। धर्म के प्रति उसकी अंधभक्ति है। इसलिए वह धर्मभीरु है। वह थोथे और शास्त्र-विरुद्ध धार्मिक प्रपचों से बँधा है। उसे धार्मिक आडम्बरों में जीवन का स्वर्ग दिखाई देता है। प्रभु के प्रति भारतीय ग्रामीण के मानस में विद्यमान श्रद्धा और विश्वास ही ग्रामीण संस्कृति को शक्ति प्रदान करते हैं।

ग्रामीण संस्कृति की दूसरी विशेषता बंधुत्व की भावना है। ग्रामीण जन दुःख-सुख में परस्पर साथ देना अपना कर्तव्य समझते हैं। अभाव के क्षणों में परस्पर सहायता करना, खुशी के अवसर पर सबका सम्मिलित होना ग्राम-संस्कृति का मुख्य गुण है। गाँवों में बहन-बेटी की इज्जत सुरक्षित है। शत्रु भी बहन-बेटी की ओर बुरी निगाह तथा उँगली उठाकर नहीं देख पाता।

गरीबी और अज्ञान के कारण धोखाधड़ी ग्रामीणों का स्वभाव-सा बन गया है। वहाँ दिल की सफाई और ईमान की सच्चाई बहुत कम देखने को मिलती है। चीज लेकर भूल जाना, दूसरे की नहर का पानी काट लेना, अनाज चोरी कर लेना, दूसरे के खेत में पशु घुसा देना ग्रामीण-स्वभाव है।

बेईमानी-शैतानी, ईर्ष्या-द्वेष तथा वैर-विरोध ग्रामीण संस्कृति की आन्तरिक व्यथा-कथा है। छोटी-छोटी बातों पर मन-मुटाव होना ग्रामीण-स्वभाव है। इसलिए दूसरे के खेत में खड़ी फसल कटवा देना, खलियान फुँकवा देना, हलवाहे-चरवाहे मजदूरों को बहकाना-भड़काना, पशुओं को हँकवा देना, झूठी निन्दा-स्तुति करना ग्रामीण-स्वभाव के अंग हैं। मन-मुटाव शत्रुता में बदलती है, तो एक ओर हत्याओं का सिलसिला शुरू होता है, और दूसरी ओर मुकदमेबाज़ी का चक्कर। शत्रुता और मुकदमेबाजी का व्यसन ग्रामीण-नारी बच्चे को घुट्टी में पिलाती है और रक्त देकर सींचती है।

शोषण ग्रामीण-संस्कृति का अभिशाप है। सेठ-साहूकार-जमींदार और गाँवों का देवता-पंडित ग्रामीणों को हर तरह से चूसते हैं। ऋण देकर जीवन भर सूद भरवाते हैं और मूल राशि के उपलक्ष्य में 'बंधुवा' बनाते हैं। गाँव का पंडित धर्म-कर्म के नाम पर जी भरकर लूटता है। रही-सही कसर पूरी करते हैं सरकारी अधिकारी। चूसी हुई गुठली को राजनेता, राज-कर्मचारी, पुलिस, नम्बरदार, तहसीलदार, जिलाधीश बेरहमी से निचोड़ते हैं। ऋण दिलाने में कमीशन, उर्वरक दिलाने में बेईमानी तथा फसल बेचने में हेरा-फेरी ग्रामीण-शोषण के द्वार है। बचा-खुचा सम्मान-सम्पत्ति अदालती अमलों के सिल-लोढ़े की रगड़ में समाप्त हो जाती है। उनका जीवन मृत्यु से भयंकर है, क्योंकि उनकी जीवन उच्छ्वासयुक्त मरण है।

झूठी शान ग्रामीण संस्कृति के भाल पर कलंक है। ग्रामीणजन जन्मोत्सव, विवाह तथा धार्मिक आयोजनों पर झूठी शान दिखाने में गर्व अनुभव करता है। इस गर्वानुभूति के लिए चादर से बाहर पैर पसारता है, ऋणी बनता है, भविष्य को अन्धकार का निमंत्रण देता है। उसके सोच-विचार गालिब की याद ताजा करते हैं—

> *कर्ज की पीते थे वो और कहते थे कि हाँ,*
> *रंग लाएगी हमारी, फाका-मस्ती एक दिन।।*

बीमारी में ओझों, गुनियों एवं मंत्र फूँकने वालों की शरण जाना, गंडे-ताबीज पर आस्था रखना, पोए-पीर-पूजा में श्रद्धा प्रकट करना ग्रामीण संस्कृति की नियति है। नियति से नीयत बिगड़ी। अंधविश्वास सुरसा के मुँह की तरह फैला। बिल्ली रास्ता काट गई, तो अपशकुन हो गया। पानी भरा लोटा हाथ से गिर गया या किसी ने पीछे से आवाज दे दी, तो कार्य में असफलता मिलेगी। मार्ग में एकाक्षी के दर्शन हो गए और दुर्भाग्य से वह ब्राह्मण हुआ तो समझिए 'प्राण जाहिं बस संशय नाहीं।'

संस्कृति संस्कार से बनती है। विविध साधनाओं की सर्वोत्तम परिणति संस्कार है। साधना साधन के बिना पंगु है। साधन विवेक से प्राप्त होते हैं। विवेक का उद्गम है शिक्षा। ग्रामीण-संस्कृति के अभिशाप माँ-शारदा के प्रति विमुखता के परिणाम हैं। ग्रामीण-संस्कृति के मूल्यों में परिवर्तन के लिए ग्रामवासियों को शिक्षित करना होगा, उसे ज्ञान-प्राप्ति के सभी सम्भव साधन उपलब्ध कराने होंगे।

ग्रामीण जीवन में सांस्कृतिक-परिवर्तन के लिए जीवन जीने की जरूरतों को उपलब्ध कराना होगा। शुद्ध स्वच्छ पेय जल, ऋतु-अनुकूल वस्त्र तथा पक्के मकान, पक्की सड़कें, यातायात के सुगम साधन तथा आधुनिक उपकरणों से सुसज्जित औषधालय-अस्पताल उपलब्ध कराने होंगे। सभ्यता की ये उपलब्धियाँ सांस्कृतिक परिवर्तन की दर्पण बनेंगी।

(315) भारत में हरित-क्रान्ति

संकेत बिंदु—(1) हरित क्रांति का उद्देश्य (2) कृषक जीवन में चेतना (3) हरित क्रांति के मूलाधार (4) कृषि योग्य भूमि को पानी (5) उपसंहार।

कृषि-उत्पादनों में वृद्धि 'हरित-क्रान्ति' का उद्देश्य है। उन्नत रीति से कृषि करने के वैज्ञानिक उपायों की खोज और प्रयोग हरित-क्रान्ति के साधन हैं। कृषि-उत्पादनों द्वारा देश को स्वावलम्बी बनाकर विदेशी मुद्रा की बचत करना हरित-क्रान्ति की आकांक्षा है। सदियों से गरीब, रूढ़िवादी और हीन-भावना से ग्रस्त किसान की आर्थिक और सामाजिक उन्नति करना, इस क्रान्ति की परोक्ष मंगलमयी भावना है। अप्रयुक्त-कृषि-भूमि को कृषि-मजदूरों में बाँटकर खेती करवाना, इस क्रान्ति की एक योजना है।

राष्ट्र को 'हरित-क्रान्ति' का नारा देने और उसे योजनाबद्ध रूप से कार्यान्वित करने का श्रेय बाबू जगजीवनराम को है। 1967-68 में वे श्रीमती इन्दिरा गाँधी की सरकार में कृषि-मन्त्री थे। तभी उन्होंने कृषि के नये-नये प्रयोगों द्वारा 'हरित-क्रान्ति' लाने का बिगुल बजाया था।

'हरित-क्रान्ति' के शंखनाद से कृषक-जीवन में चेतना आई। कृषि-जीवन ने करवट बदली। 1968 में ही इसके सुलक्षण दिखाई देने लगे। 1969, 70, 71 में तो 'हरित-क्रान्ति' ने राष्ट्र को हरा-भरा बना दिया। भारत-पाक युद्ध (1971) के कारण एक लाख पाकिस्तानी युद्ध-बन्दी और लगभग एक करोड़ बांगला शरणार्थी भारत में आए। इससे 'हरित-क्रान्ति'

योजना अकस्मात् चौपट हो गई। पुनः विदेशों से अन्न आयात करना पड़ा। 1975 की आपत्कालीनस्थिति ने हरित-क्रान्ति को पुनः सहयोग और सम्बल दिया। 1978-79 में देश में 12 करोड़ 50 लाख टन और 1980 में 14 करोड़ 20 लाख टन खाद्यान्न का उत्पादन हुआ। वर्ष 1983-84 में खाद्यान्न-उत्पादन 15.06 करोड़ टन रहा, जिसने पिछले सब कीर्तिमान तोड़ दिये। सन् 2000 तक पहुँचते-पहुँचते खाद्यान्न का उत्पादन 7.4 करोड़ टन गेहूँ तथा 8.8 करोड़ टन धान सहित 20.6 करोड़ टन हो गया है। 1979 के सूखे ने 'हरित-क्रान्ति' की कब्र खोदने का प्रयास तो किया, किन्तु खाद्यान्न के स्थायी भण्डार ने दैवी विपत्ति को हँसकर टाल दिया। आज खाद्यान्न की यह स्थिति है कि पाकिस्तान, बंगला देश, वियतनाम, अफगानिस्तान, इण्डोनेशिया और मारीशस आदि राष्ट्रों को गेहूँ, गेहूँ का आटा तथा चावल निर्यात करके भारत विदेशी मुद्रा भी अर्जित कर रहा है। सितम्बर 2000 से तो गेहूँ का स्टॉक सरकारी गोदामों में इतना भरा हुआ है कि उसे सड़ने से बचाने के लिए गरीब जनता को मुफ्त बाँटने जैसी स्थिति उत्पन्न हो गई है।

हरित-क्रांति के सात मूलाधार हैं—(1) नयी तकनीक, (2) उच्चकोटि के बीज, (3) खाद, (4) कीटनाशक दवाइयाँ, (5) कृषि उपकरण, (6) सिंचाई, (7) ऋण। ये सातों मूलाधार परस्पर सम्बद्ध हैं, परस्पर एक-दूसरे पर निर्भर हैं। उदाहरणतः यदि अच्छे किस्म के बीज पर्याप्त मात्रा में न मिलें, तो अन्य घटकों का उपयोग बेकार है। यदि खाद सही समय पर न मिल पाई तो उपज की सम्भावना कम हो जाएगी।

कृषि की नयी तकनीक का विकास निरन्तर अग्रसर है। फलतः सघन खेती और अनेक फसल उठाने का परिणाम सामने है। 1993-14 में 62.20 लाख क्विंटल उन्नत तथा प्रमाणित बीज किसानों को वितरित किए गए, वहाँ 1998-99 में अनुमानतः 83 लाख क्विंटल बीज बाँटे गए।

राष्ट्रीय बीज निगम नई-नई किस्मों के बीज तैयार कर सस्ते मूल्य में उन्नत किस्म के बीज प्रदान कर रहा है। उन्नत बीजों का स्टॉक प्रतिवर्ष बढ़ रहा है, किन्तु सरकार इससे सन्तुष्ट नहीं।

रासायनिक खाद की कृपा से किसान वर्ष में 2 की बजाय 3-4 फसल पैदा करने लगा है। देश में रासायनिक खाद के कारखानों का जाल-सा बिछ गया है। पलतः सन् 1997-98 में 161.8 लाख टन उर्वरक काम में लाए गए थे ज अकि 1998-99 के दौरान 167 लाख टन रासायनिक उर्वरकों की खपत होने का अनुमान है। रासायनिक खाद का उत्पादन अपनी चरम सीमा पर है। खेती को कीड़ों से बचाने के लिए कीटनाशक दवाओं का उत्पादन खूब समृद्धि पर है।

भारत की कृषि-भूमि वरुण देवता की कृण पर फलती थी और कोप पर सूखती थी। वैज्ञानिक साधनों ने वरुण देवता पर आश्रित किसान.के लिए विकल्प प्रस्तुत किया। जिन स्थानों पर सिंचाई की व्यवस्था नहीं थी, वहाँ नहरों से पानी पहुँचाया। जहाँ नहरें सम्भव नहीं थीं, वहाँ नलकूपों की व्यवस्था की गई। भूमिगत जल की खोज के लिए भू-सर्वेक्षण

विभाग का 'केन्द्रीय भूमिगत जल निगम' कार्यरत है। परिणामतः कृषि-योग्य भूमि को समय पर पानी मिलने लगा है।

हरित-क्रान्ति को सफल बनाने के लिए किसान को बहुत सस्ते सूद पर ऋण देने की व्यवस्था की गई। बढ़िया से बढ़िया बीज उधार मिलने लगा। ट्यूबवैल लगाने के लिए कर्ज की सुविधा मिली, ट्रैक्टर खरीदने के लिए ऋण मिलने लगा।

'हरित-क्रान्ति' के स्वप्न को साकार करने के लिए कृषि-विश्वविद्यालय खोले गए। कृषि-विज्ञान पाठ्यक्रम का विषय बना। अनेक प्रयोग और परीक्षण होने लगे। सूखा-पीड़ित जिलों के लिए चारा उगाने की नई तकनीक की खोज का श्रेय इन्हीं कृषि पंडितों को है। आकाशवाणी और दूरदर्शन जैसे प्रचार माध्यमों से प्रतिदिन कृषक-भाइयों के लिए खेत, खेती और कृषि-जीवन पर वार्त्ताएँ प्रसारित की जाती हैं। साथ ही अनाज के भण्डारण के लिए देश में वैज्ञानिक भण्डारों का जाल बिछाया जा रहा है।

हरित-क्रान्ति के अन्तर्गत भूमि-सुधार पर भी विशेष बल दिया गया। भूमि-सुधार की राष्ट्रीय-नीति का उद्देश्य व्यापक परिधि में कृषकों को भूमि के स्वामित्व के अधिकार देना, कृषि को सुरक्षा प्रदान करना और लगान निर्धारित करना है। अब तक लगभग कई लाख हेक्टेयर फालतू भूमि कृषकों में बाँटी जा चुकी है। ग्रामीण क्षेत्रों में जिन लोगों के पास अपनी जमीन नहीं है, उन्हें आवास के लिए भूमि बाँटने का काम तेजी से चल रहा है।

सच्चाई तो यह है कि हरित-क्रान्ति का उद्घोष देश को खाद्यान्नों से भरपूर करने की कल्याणकारी योजना है। कृषि-भूमि, कृषि और कृपक के विकास और उन्नति की मंगलमय कार्य-शैली है।

(316) गाँव भला कि शहर/ ग्रामवास अच्छा कि नगरवास

संकेत बिंदु—(1) गाँव और शहर में अंतर (2) यातायात, शिक्षा, मनोरंजन और स्वास्थ्य की सुविधाएँ (3) गाँवों की समस्याएँ (4) शहरों की समस्याएँ (5) उपसंहार।

वास-स्थान का भला-बुरापन, अच्छाई-बुराई व्यक्ति की जीविका की सुविधा तथा अनुकूलता पर निर्भर करता है। निवास-स्थान व्यवसाय या नौकरी स्थान से बहुत दूर नहीं होना चाहिए। आवास ऐसे स्थान पर हो जहाँ सगे-सम्बन्धियों, इष्ट-मित्रों से सम्पर्क करने में यातायात-साधन सुलभ हों। बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था हो और यदि दुर्भाग्य से बीमारी आ टपके तो यथाशीघ्र उपचार की सुविधा हो। जीवन की दैनन्दिन आवश्यकताओं की पूर्ति सरलता से हो। साथ ही होनी चाहिए अपने स्तर की मित्र-मण्डली।

शहर में रहने के लिए सुख-सुविधा सम्पन्न मकान हैं, जिनमें शौचालय, स्नानघर,

शयन कक्ष, भण्डार-गृह की व्यवस्थाएँ हैं, किन्तु गाँव में मकान के नाम पर ईंटों की घेराबन्दी है। शौचालय के लिए खुले खेत और मैदान हैं। स्नान के लिए पोखर-तालाब हैं।

शहर नौकरी और व्यवसाय का उपयुक्त स्थान है। यह लाखों लोगों की आजीविका प्रस्तुत करता है। सरकारी, अर्ध-सरकारी कार्यालय, व्यापारिक संस्थानों के कार्यालय, व्यापारिक केन्द्र, औद्योगिक संस्थान, मिल-कारखाने-फैक्टरियाँ, शिक्षित-अशिक्षित, सभ्य-असभ्य सभी की जीविका जुटाते हैं। जबकि गाँव में खेती, लघु-कुटीर उद्योग, कुछ ग्राम्य शिल्प तथा मामूली दूकानों के अतिरिक्त आय के अन्य स्रोत नगण्य हैं।

बच्चों की सामान्य तथा उच्च-शिक्षा के लिए चाहिए विद्यालय, महाविद्यालय तथा तकनीकी शिक्षा केन्द्र। शहर में ये सभी शिक्षा केन्द्र सहज में उपलब्ध हैं। महानगरों में तो विश्वविद्यालय आपके बच्चों को विविध विषयों की उच्च से उच्चतम शिक्षा से दीक्षित करने का दायित्व वहन करते हैं। दूसरी ओर गाँव में प्राथमिक और माध्यमिक कक्षाओं के विद्यालय आपके अध्ययन पर पूर्णविराम लगाते हैं। हाई-स्कूल या हायर-सेकेण्डरी स्कूलों की व्यवस्था के लिए तो कहना होगा कि 'दिल्ली अभी दूर' है।

जीवन में मनोरंजन का भी अपना स्थान है। इसके बिना जीवन शुष्क और नीरस रहता है। शहरों में सिनेमा घर, क्लब, होटल, क्रीडा-मैदान, सरकस, नाट्य-शालाएँ आदि आपके स्वस्थ मनोरंजन के लिए विद्यमान हैं। इसके विपरीत गाँव में मनोरंजन के स्थान पर पर्व विशेष का नाच-गान है कभी-कभार नौटंकी या स्वांग है या है चौपाल की पर-निन्दा या पर-स्तुति।

'शरीरं व्याधिमन्दिरम्' के अनुसार शरीर के साथ रोग भी लगे ही रहते हैं। नजला, जुकाम, बुखार से लेकर रक्तचाप, हार्ट अटेक (हृदय गति रुकना) और मधुमेह (डाइबटीज) सब जीवन के शत्रु हैं। शहर में एम. बी. बी. एस., एम. डी., ऐल्योपेथिक, आयुर्वेदिक तथा होम्योपैथिक, तीनों प्रकार के रोग-विशेषज्ञ, प्राइवेट और सरकारी अस्पताल, रोग जाँच की अधुनातन मशीनें, रोग-निवारण की नवीनतम दवाइयाँ आपको तत्काल उपलब्ध हो जाती हैं। एक बार तो वे आपको यमदूत से छुड़ा ही लाएँगे, चाहे यमराज के आदेश कितने भी सख्त हों। गाँव में उपचार के नाम पर मिलेंगे टोटके, गण्डे-तावीज, ओझे-बहरुपिए या 'नीम हकीम'। जिनकी उपस्थिति 'खतरा ए जान' बनकर जीवन की बलि ले लेती है।

आइए, जरा जीवन की सुविधाओं के गणित पर गाँव और शहर की उपयोगिता आँक लें। वर्तमान जीवन की परम-सखी बिजली रानी गाँव से अभी दूर है। इसके बिना गाँव का समस्त जीवन ही अन्धकारमय है। 'बिजली' से नगर प्रकाशित है, इसमें अमावस भी पूनम में बदल जाती है। दूसरा अनिवार्य तत्त्व है—'पेय जल।' गाँव में पेय-जल के लिए है कुएँ का पानी और शेष कार्यों के लिए है जोहड़ या ताल का कीट दूषित जल। अनचाहे, बिन माँगे रोगों की जड़। नगरों में घर-घर में नल है। कान मरोड़ो और पेय-जल प्राप्त करो। जितना चाहो प्रयुक्त करो, बाद में नल-टूटी के कान मरोड़ो और प्रवाह अवरुद्ध कर दो।

शहर-निवास के दोष भी हैं। यहाँ का वायुमण्डल प्रदूषित है। पेट्रोल और डीजल वाहनों के 'एग्जासिस्ट पाइपों' से, कारखानों की चिमनियों से, रेल के इंजनों से, घरों के स्टोव से, रसायनिक गैसों से, विद्युत् के निर्माण प्रक्रिया से जो वायु प्रदूषण होता है, उसमें साँस लेना भी कठिन हो जाता है। दूसरी ओर नगर का समस्त मल-मूत्र, कारखानों का रासायनिक अवशेष समीपस्थ नदी में बहा दिया जाता है। उससे नदी-जल दूषित हो जाता है। उस दूषित नदी-जल को शुद्ध कर पेय के लिए प्रस्तुत किया जाता है। अब जरा गाँव में चलिए। शीतल-मन्द-सुगन्ध समीर अपने सुखद स्पर्श से आपका आलिंगन करेगी। फूली हुई सरसों का सुहावना दृश्य मीलों तक पीताम्बरी छटा उपस्थित कर देगा। ऋतु अनुकूल रवाँस और मटर की फलियाँ, चने के छोले, मक्का के भुट्टे, गेहूँ, जौ, चना, बाजरा की बालें, मटकती हुई सेंदें, खिलते खरबूजे, रस-भरे रसाल (आम) और गन्ने, हरी सब्जियों के सस्य-श्यामल खेत आपके तब-मन को हरा कर देंगे। शुद्ध वायु का कुंज है गाँव और नरक-कुण्ड है शहर।

शहर में पग-पग पर प्रवंचना, ठगी, जेब कटी, आभूषण लुंठन, चोरी, डाके, हत्या, बलात्कार का बाजार गरम है। संवेदन-शून्यता शहरी जीवन की पहचान है। यहाँ प्रेम, सहानुभूति, कृपा, दया, उपदेश-कृतार्थता स्वार्थ मिश्रित हैं, बनावटी हैं। जबकि गाँव का वातावरण शान्त है, शहरी अपराध वृत्ति से अछूता है। वहाँ युवतियाँ तथा नारियों का मान सुरक्षित है। सच्ची आत्मीयता और प्रेम भाव है। गाँव के गँवईपन में भी एक तरह की शोभन सभ्यता है और शहर 'गँवई' कुत्सित क्षेत्र है।

महानगर का जीवन उच्छ्वासहीन, रागहीन, सुरभिहीन, रसहीन है। डॉ. विद्यानिवास मिश्र के शब्दों में 'नकलीपन का जनसंकुल पर बीहड़ जंगल है, जहाँ रूप नकली, रंग नकली, रस नकली, स्वर लहरी भी नकली, गंध भी नकली, ज्ञान नकली, सिद्धांत नकली, मूल्य नकली, सब सिंथेटिक, कहने को टू कापी (सही नकल) पर सब नकल।'

अच्छाई क्या है और बुराई क्या है ? भला क्या है तथा बुरा क्या है ? इसका निर्णय एकांगी दृष्टि से करना श्रेयस्कर नहीं। दो टूक निर्णय देना अच्छाई-बुराई, भले-बुरे के साथ अन्याय होगा। सच्चाई तो यह है कि भारत की आत्मा गाँवों में निवास करती है और उसका शरीर शहर में। आत्मा के अभाव में शरीर शव नहीं बना, यह प्रकृति की लीला है। यह परमपिता परमेश्वर की कृपा है और है जगन्नियन्ता का एक रहस्य।

(317) महानगर की समस्याएँ

संकेत बिंदु—(1) महानगर जटिल समस्याओं के संगम (2) प्रदूषण और अन्य समस्याएँ (3) महानगरों का अनियमित, अमर्यादित और अनियंत्रित विकास (4) यातायात व्यवस्था, विद्युत-आपूर्ति और श्रेष्ठ संस्थानों की कमी (5) उपसंहार।

महानगर जटिल समस्याओं के संगम हैं। कभी न समाप्त होने वाली उलझनों की प्रवाहिणी हैं। विकट प्रसंगों के ज्वालामुखी हैं, जिनका निराकरण सहज सम्भव नहीं।

बरसात में उफनती हुई नदी के प्रवाह के समान नवीन कठिनाइयों की उग्रतर बाढ़ है, जो महानगरों को ही आत्मसात् कर लेना चाहती है।

महानगर रोजगार प्रदान करने के महा केन्द्र हैं। नगर-निगम तथा राजकीय कार्यालय, औद्योगिक प्रतिष्ठान, व्यापारिक केन्द्र, कल-कारखाने रोजगार प्रदान करने का आह्वान करते हैं। अतः ग्रामीण जनता इन महानगरों की ओर खिंची चली आती है। इनकी जनसंख्या सुरसा के मुख की तरह प्रतिवर्ष बढ़ती जाती है। महानगरों की बढ़ती आबादी महानगरों की सबसे प्रमुख समस्या है।

प्रदूषण महानगरों की विकट समस्या है। यहाँ के कल-कारखाने, मिलें तथा सड़क पर अहर्निश दौड़ती बसें, ट्रक, कार, मोटरसाइकिल, स्कूटर, टैम्पो आदि पैट्रोल तथा डीजल से चलने वाले वाहन जो प्रदूषण उत्पन्न करते हैं, उनसे यहाँ की वायु विषाक्त हो चुकी है, जिससे साँस लेने में भी दम घुटता है।

बढ़ती आबादी को आश्रय देने के लिए विकास प्राधिकरण जितनी व्यवस्था करता है, वह कम पड़ जाती है। मकानों की कमी, मकानों के किरायों में वृद्धि का कारण बनती है। आवास की कमी को पूरा करती हैं राजनीतिज्ञों, कालोनाइजरों और भूमिपतियों की अपावन साँठ-गाँठ से निर्मित अनधिकृत बस्तियाँ तथा झुग्गी-झोंपड़ियाँ। झुग्गी-झोपड़ियाँ महानगर के सुन्दर शरीर पर कोढ़ हैं, तो अनधिकृत बस्तियाँ उसके स्वस्थ-विकास में बाधक हैं।

महानगरों का अनियमित, अनियन्त्रित, अमर्यादित विकास तथा प्राचीन नगर की तंग-गलियाँ, कल-कारखानों तथा औद्योगिक संस्थानों का कचरा नगर की शोभा के मुख पर कालिख फेर देता है। गन्दी बस्तियाँ, तंग कटरे, भूमिगत मल-मूत्र निकासी के प्रबन्ध का अभाव, शहर के बीच गुजरते विशालकाय खुले मुँह नाले आस-पास के निवासियों को अपनी दुर्गन्ध से दुःखी रखते हैं।

महानगरों के स्वास्थ्य को चौपट करने का ठेका पेय जल व्यवस्था ने ले रखा है। सभी महानगरों का मल-मूत्र उनकी समीपस्थ नदियों में मिलता है, जो नदियों के जल को दूषित कर देता है। इस दूषित जल को रासायनिक प्रक्रिया से स्वच्छ करके महानगरवासियों को पीने के लिए उपलब्ध कराया जाता है। महानगरों में महारोगों के जानलेवा प्रकोप में बहुधा यही दूषित जल कारण बनता है।

महानगरों की यातायात व्यवस्था नगर-वासियों के लिए अपर्याप्त रहती है। बसें ही यातायात का मुख्य साधन हैं। बम्बई, दिल्ली जैसे महानगरों में लोकल ट्रेन की व्यवस्था भी है। बसों और ट्रेनों की अपार भीड़, धक्कम-धक्का अनियन्त्रित स्टैडिंग, बस चालकों की मनमानी, रेजगारी के लिए कण्डक्टर से झगड़े, तकरार सब मिलकर महानगरवासियों के लिए अभिशाप सिद्ध होते हैं। रहे टैक्सी और स्कूटर, ये तो यात्रियों के कपड़े उतारने के लिए तैयार रहते हैं।

महानगरों में विद्युत्-आपूर्ति की कमी से औद्योगिक संस्थान उत्पादन की कमी से

परेशान हैं, तो कार्यालय के बाबू प्रकाश के अभाव में काम करने से इन्कार कर देते हैं। जनता गर्मी में पंखे और कूलर के बन्द होने से तथा सर्दी में हीटर की हीट (गर्मी) समाप्त होने से विद्युत् प्राधिकरण को गालियाँ देती रहती है। कारण, महानगरों की बिजली-रानी कब और कितने समय के लिए रूठ जाए, कुछ कहा नहीं जा सकता।

महानगरों में शिक्षा-संस्थाएँ बहुत हैं, पर श्रेष्ठ संस्थाएँ बहुत कम हैं। भारत का भावी नागरिक स्कूलों के गन्दे स्थान, अपर्याप्त सुविधा तथा विषाक्त वातावरण में अपनी शिक्षा ग्रहण करता है। नगर निगम में विद्यालयों में फटे-पुराने तम्बुओं से बना अध्ययन कक्ष विद्यार्थियों पर किस शिष्टता, सभ्यता की छाप छोड़ेगा? सीनियर सेकेण्डरी कक्षाओं तथा कॉलिजों में मनचाहे विषयों में प्रवेश न मिल पाना कोढ़ में खाज सिद्ध होता है। पब्लिक स्कूलों का शुल्क इतना अधिक है कि लगता है ये विद्या के मंदिर नहीं, व्यापारिक संस्थान हैं।

महानगरों की संचार-व्यवस्था का प्रमुख साधन है दूरभाष व्यवस्था। यह व्यवस्था महानगरवासियों को जितना परेशान करती है तथा पीड़ा पहुँचाती है, वह अकथनीय है। 'राँग नम्बर' तथा 'इस नम्बर का अस्तित्व समाप्त हो गया है, महानगर दूरभाष का स्वभाव है। लाइनों का अनचाहा मेल कराकर बात न करने देने तथा दूसरों की बात सुनने का अवसर प्रदान करना उसकी नीति है। 'डेड' हो जाना उसका बहाना है। शिकायत दर्ज करके टिकट नम्बर देकर महानिद्रा में खो जाना उसका 'रुटीन' है। आप शिकायत पर शिकायत दर्ज कराते रहिए, कर्मचारी की महानिद्रा भंग होगी, तो वह आ जाएगा, अन्यथा लीजिए महानगर में रहने का अभिशाप।

महानगरों की समस्याओं के मूल-भूत कारण नगर-पिताओं की नगर के विकास कार्यों के प्रति उदासीनता, अधिकारियों का भ्रष्ट आचरण, उच्च अधिकारियों का कर्तव्य के प्रति राजनीतिक दृष्टिकोण तथा कर्मचारियों का कार्य के प्रति उपेक्षा भाव हैं। जब तक ये कमियाँ रहेंगी, महानगर की समस्याएँ कम नहीं होंगी।

भारतवर्ष

(318) हमारा प्यारा भारतवर्ष

संकेत बिंदु—(1) भारत के नाम और ग्रंथ (2) भारत सभ्यता और संस्कृति का आदि स्रोत (3) भारत ज्ञान-विज्ञान का केंद्र और समन्वय सामंजस्य भारत संस्कृति के गुण (4) कांग्रेस के नेतृत्व में स्वाधीनता (5) उपसंहार।

भारत हमारी मातृभूमि है, पितृभूमि है, पुण्यभूमि है। हम इसकी कोख से उत्पन्न हुए। इसने हमारा पालन-पोषण किया। इसके तीर्थ हमारी आस्था और श्रद्धा के केन्द्र हैं। वेदों, पुराणों, रामायण, महाभारत आदि में प्रतिपादित धर्म भारतीय-धर्म है।

प्राचीन काल में यह देश 'जम्बू द्वीप' कहलाता था। सात महती नदियों के कारण इसे 'सप्तसिन्धु' कहा गया। श्रेष्ठ जन का वास होने के कारण इसका 'आर्यावर्त' नाम पड़ा। परम भागवत ऋषभदेव के प्रतापी पुत्र भरत के सम्बन्ध से 'भरतखंड' और 'भारत' बना।

प्रिय भूमि भारत की गाथा देवता भी गाते थे। विष्णु पुराण के अनुसार स्वर्ग में देवत्व भोगने के बाद देवता मोक्ष-प्राप्ति के लिए भारत में ही मनुष्य रूप में जन्म लेते थे।

गायन्ति देवाः किल गीतकानि / धन्यास्तु ते भारत भूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदहेतुभूते / भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥

भारत को 'विश्वगुरु' कहलाने का गौरव है। न केवल यूरोप, अपितु फारस-अरब आदि राष्ट्रों में भारत को 'सोने की चिड़िया' या 'स्वर्ण भूमि' कहकर इसकी स्तुति की जाती रही है। मनु ने भारत को मानवीय गुणों की प्रेरणा और शिक्षा का एकमात्र केन्द्र बताया है। कवीन्द्र रवीन्द्र ने इसे 'महामानव-समुद्र' कहा, जो आया, वह इसका हो गया।

हिमालय हमारा भाव-प्रतीक है। गंगा हमारी माँ है। इन जैसा संसार में और कहाँ? हमारा देश सरिता-मय है। यहाँ प्रकृति का लावण्य और सौन्दर्य अलसा कर बिखर गया है। कालिदास ने हिमालय को देवतात्मा और पृथ्वी का मानदण्ड माना है। महाकवि रवीन्द्रनाथ भी उसे देवात्मा मानते हैं। निकोलस रोरिख का कथन है कि—'हे रहस्यमय, तुम्हें नमस्कार है। तुम्हारे दर्शन-मात्र से चित्त प्रफुल्ल और भव्य भावनाओं से परिपूर्ण हो जाता है। तुम अनन्य हो।'

भारत सभ्यता और संस्कृति का आदि स्रोत है। धर्म की जन्मभूमि होने के कारण भारत आध्यात्मिक देश है। यहीं मानव, प्रकृति एवं अन्तर्जगत् के रहस्यों की जिज्ञासाओं के अंकुर सर्वप्रथम उगे। यहीं परमात्मा की अमरता, एक अन्तर्यामी ईश्वर की सत्ता, प्रकृति और मनुष्य के भीतर एक परमात्मा के दर्शन सर्वप्रथम किए गए। यहीं धर्म तथा दर्शन के उच्चतम सिद्धांतों ने अपने चरम शिखर स्पर्श किए। भारत की आध्यात्मिकता और दर्शन की लहर बार-बार उमड़ी और उसने समस्त संसार को सिक्त किया।

संसार गणित और ज्योतिष के लिए भारत का ऋणी है। अरब-राष्ट्रों ने ज्योतिष-विद्या भारत से सीखी। भारत ने चीन को ज्योतिष और अंकगणित सिखाया। गणित में शून्य (०) का सिद्धान्त भी भारत ने ही विश्व को पढ़ाया। बन्दूक और तोपों का प्रचलन वैदिककाल में था। आयुर्वेद, चित्रकारी और कानून भी भारतवासियों ने यूरोप को पढ़ाया। मलमल, रेशम, टीन, लोहे और शीशे का ज्ञान भी यूरोप ने भारत से प्राप्त किया।

कर्म, त्याग और संयम भारत की धरोहर हैं। 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' यहाँ का मूल मन्त्र है। भोग संयम के साथ बँधा है। निर्मल वैराग्य के द्वारा दैन्य उज्ज्वल होता है। सम्पदा पुण्य कर्मों द्वारा मांगल्य प्राप्त करती है। त्याग मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करता है।

समन्वय और सामंजस्य भारत और भारतीय-संस्कृति के विशेष गुण हैं। शक और हूण, यूनानी और तुरुक, मुगल और पठान एक दिन दृप्तवीर्य होकर यहाँ आए और सब कुछ भूलकर यहाँ के ही हो रहे। शक, हूण, कुषाण तो यहीं की संस्कृति-सभ्यता में रच-

खप गये, किन्तु इस्लाम के मानने वाले आक्रान्ता, मुगल, तुर्क, पठान भारत पर राज्य करते हुए, यहीं रहते हुए भी भारतीय संस्कृति को अपना न सके। हाँ, उन पर उसका कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य पड़ा। रसखान, रहीम, जायसी आदि ऐसे ही कवि थे।

धर्मप्राण भारत पर सन् 712 ई. में मुगलों का आक्रमण हुआ। मुहम्मद बिन कासिम पहला आक्रमणकारी था। देश उस समय दुर्बल हो चुका था, खंड-खंड हो चुका था। परिणामत: यह मुसलमानों के अधीन हो गया। गुलाम वंश, तुगलक वंश, लोदी वंश और अन्त में मुगल वंश ने यहाँ राज्य किया।

देश की स्वाधीनता के लिए जहाँ कांग्रेस के तत्त्वावधान में अहिंसात्मक आन्दोलन चल रहा था, वहाँ क्रान्तिकारियों ने अंग्रेज शासकों के दिलों में दहशत पैदा करने में कसर न छोड़ी। सुभाषचन्द्र बोस ने जापान और जर्मनी के सहयोग से भारत पर सशस्त्र आक्रमण ही कर दिया। दूसरी ओर नौ-सेना में विद्रोह हो गया। इधर, द्वितीय महायुद्ध में अंग्रेज कौम राजनीति के मोर्चे पर विजयी होते हुए भी आर्थिक मोर्चे पर हार गई। अर्थ-संकट ने ब्रिटेन की कमर तोड़ दी। इन सभी कारणों से अंग्रेज भारत छोड़ने के लिए विवश हो गए, किन्तु कूटनीति निपुण अंग्रेज जाते-जाते भारत के दो भाग कर गए। 15 अगस्त, 1947 को देश का विभाजन करके अंग्रेजी साम्राज्य की पताका भारत से उतर गई। भारत-विभाजन का आधार था—द्विराष्ट्रवाद। मुस्लिम बहुल प्रान्तों का स्वतन्त्र राष्ट्र पाकिस्तान बना। हिन्दुओं के लिए शेष 'हिन्दुस्तान' रह गया। भारत माता का अंग-अंग कटवाकर हम स्वतन्त्र हुए। इस खण्डित भारत को ही 'भारत माता' को वास्तविक मूर्ति मानकर हमने इसकी पूजा-अर्चना आरम्भ की। देश के नेता भारत की प्रगति और समृद्धि के लिए जुट गए। अपना संविधान-निर्माण कर 26 जनवरी, 1950 को भारत गणतन्त्र घोषित हुआ।

21वीं सदी के प्रवेश पर भारत की आबादी एक अरब से अधिक हो गई है। शासन की दृष्टि से भारत संघ में 28 राज्य तथा 7 केन्द्र शासित प्रदेश हैं।

स्वतन्त्र भारत में जनता का जीवन-स्तर पूर्वापेक्षा ऊँचा हुआ। जनसंख्या की दृष्टि से विश्व का द्वितीय महान् राष्ट्र भारत में जनतन्त्र सफल हुआ। यहाँ लोकतन्त्र की आधार भूत मान्यताओं का विकास हुआ, औद्योगिक विकास हुआ। विज्ञान के क्षेत्र में प्रगति हुई। अंतरिक्ष-विजय में तो विश्व के महान् राष्ट्रों में भारत की गणना होने लगी है। भारत अजर है, अमर है और आध्यात्मिक छवि से आज भी विश्व-गुरु है। इसलिए डॉ. इकबाल ने कहा था—'*कुछ बात है कि हस्ती, मिटती नहीं हमारी।*'

(319) देश हमारा प्राण से प्यारा

संकेत बिंदु—(1) प्राण जीवन की पहचान (2) देश प्राणों से प्यारा (3) देश पर प्राण न्यौछावर करने वालों का सम्मान (4) सारे जग से न्यारा भारत हमारा (5) उपसंहार।

प्राण जीवन की पहचान है, इसलिए प्राण-रक्षार्थ प्राणी अपनी सामर्थ्यानुसार सब उपाय और प्रबन्ध करता है। सम्पूर्ण जीवन 'प्रिय प्राणों' की सेवा में अर्पित कर देता है। अथर्ववेद (11/4/1) भी प्राण को प्रणाम करते हुए कहता है, 'प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे' अर्थात् जिसके अधीन यह सब कुछ है, उस प्राण को प्रणाम है।

पुत्र रूप जन और माता रूप भूमि के मिलन से ही देश की सृष्टि होती है। इसमें जब अपनत्व का अमृत घुलता है तो देश अपना और हमारा बन जाता है। हमारा देश अर्थात् हमारी मातृभूमि, पितृभूमि तथा पुण्यभूमि। जिस भूमि में माता का मातृत्व, पिता का पितृत्व और पुण्य की पुनीतता का प्रसाद हो, वह वन्दनीय है।

जो श्रेष्ठ, सुन्दर अथवा आकर्षक होने के कारण प्रेमपूर्ण भाव का अधिकारी हो, वह प्यारा है। जिसके प्रति बहुत अधिक प्रेम, मोह या स्नेह हो, वह प्यारा है। प्यारा प्राणों की प्रतिमूर्ति है, पुण्यलता की प्रत्यात्मा है और नेत्रों के लिए देवता।

जब देश पर आक्रमण होता है, तब देश-भक्त वीरों के लिए प्राणों का मूल्य समाप्त हो जाता है। विजेता जब देश में लूट-मार करता है, तब प्राणों की जीवन-शक्ति जवाब दे देती है और रही सुख-समृद्धि की बात—'पराधीन सपनेहिं सुख नाहिं।' पराधीनता में उन प्रिय प्राणों का विसर्जन भी स्वेच्छा से असम्भव है। रामायण के सुन्दरकाण्ड में वाल्मीकि लिखते हैं, 'न शक्यं यत् परित्यक्तु मात्मच्छेन्देन जीवितम्।' तब इन प्राणों का मोह कैसा? देश से अधिक प्यारे कैसे?

देश पर प्राण न्यौछावर करने वालों का सम्मान 'शहीद' या 'हुतात्मा' कहकर किया जाता है। देश उसकी मृत्यु पर गर्व करता है। उसकी चिता पर हर वर्ष मेले लगाता है। पुण्य-तिथि मनाकर उसको स्मरण किया जाता है। प्रतिमा लगाकर, सड़कों, कॉलोनियों, नगरों, शहरों तथा विभिन्न संस्थाओं के साथ उनका नाम जोड़कर उनकी कीर्ति सुरक्षित रखी जाती है। इतिहास उन्हें अमरता प्रदान करता है। इसलिए सोहनलाल द्विवेदी कहते हैं। *'हों जहाँ बलि शीश अगणित, एक सिर मेरा मिला लो।'* और माखनलाल चतुर्वेदी पुष्प के माध्यम से अपनी अभिलाषा प्रकट करते हुए कहते हैं—

मुझे तोड़ लेना बनमाली! उस पथ में देना तुम फेंक।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जावें वीर अनेक।।

हमारा देश हमें प्राणों से प्रिय क्यों न हो? हमने इसकी गोद में जन्म लिया है। इसकी धूल में लोट-पोट कर बड़े हुए और 'धूल भरे हीरे' कहलाए। इसने जीवन के सभी इहलौकिक सुख प्रदान किए तथा अन्त में इसने अपने ही तत्त्वों में विलीन कर आत्म-रूप बना लिया। इस प्रकार जगत् में जन्म लेने, क्रीडा-कर्म, पालन और उपसंहार तक का सम्पूर्ण श्रेय देश को है।

सच्चाई भी यह है कि संस्कृति की महत्ता, सभ्यता की श्रेष्ठता, कला की उत्कृष्टता, जीवन मूल्यों की उत्तमता तथा प्रकृति का वरदान हमारे देश को ही प्राप्त है। इसीलिए प्रसाद जी गाते हैं—*'अरुण यह मधुमय देश हमारा।'* इकबाल गर्व कहते हैं, *'सारे जहाँ से अच्छा*

हिन्दोस्तां हमारा। 'पंत का कंठ फूट, *'ज्योति भूमि, जय भारत देश।'* तो निराला का स्वर गूँजा—

'भारती! जय विजय करे।
स्वर्ण-सस्य कमल धरे।।'

देश के सम्मुख प्राणों को हेय समझने वाले देश-भक्तों की शृंखला अनन्त है। इसका आदि है, अन्त नहीं। महाराणा प्रताप ने दर-दर की ठोकरें खाईं तो बन्दा वैरागी ने गर्म लोहे की शलाखों से सीना छलनी करवा लिया। मतिराम ने अपना मस्तक आरे से चिरवा लिया। गुरु गोविन्दसिंह ने अपने चारों बच्चे बलि चढ़ा दिए। झाँसी की रानी, तात्याटोपे, नाना साहब ने रक्त की होली खेली। सुभाषचन्द्र बोस, मदनलाल ढींगरा विदेशों में शहीद हुए। भगतसिंह, सुखदेव, बिस्मिल आदि नौजवान फाँसी के तख्ते पर झूल गए। स्वातन्त्र्य वीर विनायक दामोदर सावरकर ने दो जन्म का कारावास एक ही जन्म में काटा। लाला लाजपतराय साइमन कमीशन की बलि चढ़े। लाखों की तरुणाई जेल की अंधेरी कोठरियों में प्रज्ज्वलित हुई। लाखों भारतीय अंग्रेजों की संगीनों के सामने छाती पर गोली खाकर अमर हुए। इतना ही नहीं, इन्दिरा के आपत्काल के अन्धेरे को सैकड़ों ने अपने प्राणों की ज्योति से ज्योतित किया। उनके मन में एक ही तड़पन थी—

तेरा वैभव अमर रहे माँ। हम दिन चार रहें न रहें।

हमारा देश हमारी जन्म-स्थली और क्रीडा-स्थली है। हमारे प्राणों का पालनहार है। प्राणों की पहचान है। प्राणों का संस्कारक है। हमारे प्राणों का आत्म-रूप पुंज है। इसलिए देश के सम्मुख प्राण गौण हैं। देश हमारा प्राण से प्यारा है। हमारे प्राणों की सार्थकता देश-प्रेम में है।

प्राण क्या है देश के हित के लिए।
देश खोकर जो जिए तो क्या जिए।। —कामताप्रसाद गुप्त

(320) मेरे सपनों का भारत/ मेरी कल्पना का भारत

संकेत बिंदु—(1) सर्वगुण सम्पन्न हो (2) भारत धन्य-धांन्य से सम्पन्न हो (3) भारत के नागरिक चरित्रवान बनें (4) देश हित सर्वोपरि हो (5) उपसंहार।

मेरा स्वप्न है कि मेरा भारत अपने प्राचीन जगद्-गुरु पद को प्राप्त हो। सुवर्ण और रत्नों से परिपूर्ण हो, ताकि विश्व इसे फिर 'सोने की चिड़िया' के नाम से पुकार सके। मेरा भारत इतना शक्तिशाली हो कि कोई उसकी ओर आँख उठाने का दुस्साहस भी न कर सके। शांति और व्यवस्था की दृष्टि से यहाँ 'राम-राज्य' का आदर्श प्रस्तुत हो। भारत अपने नाम को (अर्थात् जो 'भा' प्रतिभा, ज्ञान, शोभा में 'रत' है, आसक्त है, वही भारत है) चरितार्थ करे।

मेरा स्वप्न है कि भारत का समीरण पुष्प-सुगंध से परिपूर्ण होकर बहता हुआ

वास्तविक 'गन्धवह' बने। भारत के खेत-खलियान अन्न से भरपूर हों। भारत के वन-उपवन अपनी हरीतिमा में और सौन्दर्य में नन्दन-कानन सदृश सुखद हों। भारत के लता-पादप रसपूर्ण, स्वाद और मधुर फलदायी हों। भारत की नदियाँ जन-जीवन को तृप्त करें। भारत की पर्वत शृंखलाएँ तपोभूमि बनकर मानव-मंगल का आशीष प्रदान करें, अपनी अतुल सम्पदा से भारत को भर दें। समग्र रूप में प्रकृति नटी अपने सौन्दर्य से, अपने हास्य-विलास, अपने अँगड़ाई लेते यौवन से विश्व को स्तब्ध कर दे।

भारत की नारी का सौन्दर्य उसके सतीत्व और मातृत्व में प्रकट हो। सौम्यता, सद् गुण और चरित्र की उज्ज्वलता उसको विभूषित करने वाले अलंकरण हों।तपोमय जीवन उसका परिधान बने। पुरुषों में पौरुष हो, उनका जीवन विवेक से संचालित हो।

आज के संदर्भ में मेरी कल्पना भारत के पवित्र चरित्र की भावना से विभोर है। मेरा स्वप्न है कि भारत के राजनीतिज्ञ Two Faces (दुमुँही) की नकाब को उतार फेंकेंगे ताकि भविष्य में अहिंसा के नाम पर 1947 के समान भारत माता का विध्वंस करके कोई गाँधी सत्याचरण के नाम पर देश का विभाजन न कर सके। कोई जवाहरलाल वंशवाद स्थापित करने के लिए 'कामराज योजना' लागू न करा सके। कोई लालबहादुर युद्ध में विजयी होकर भी रूस की राजनैतिक चौसर पर अपने बहुमूल्य प्राण अर्पण न कर सके। इसलिए मेरा स्वप्न है कि मेरे भारत में 'प्राण जाएँ पर चरित्र न जाहिं' की कल्पना साकार हो।

मेरे स्वप्नों के भारत में व्यक्तिगत स्वार्थ के स्थान पर देश-हित सर्वोपरि होगा। ताकि कोई इतिहासकार देश की स्वतंत्रता का श्रेय एकमात्र कांग्रेस को न दे सके। कोई गाँधी-जवाहर द्विराष्ट्रवाद के सिद्धांत पर मिली स्वतंत्रता को सर्वधर्म समभाव के लिए 'धर्म निरपेक्षता' की पटरी पर देश चलाकर साम्प्रदायिकता की विष-बेल को बढ़ावा न दे सके। कोई कांग्रेसी मंत्री भस्मासुर रूपी आतंकवाद को जन्म देकर देश के लिए सिरदर्द पैदा न कर सके। कोई राजनीतिज्ञ प्रजा के नाम पर वंशवाद और सामंतशाही की वकालत न कर सके। कोई पदाधिकारी रिश्वत के बल पर धनाढ्य न बन सके।

मेरी कल्पना में भारत की वह उज्ज्वल भव्य प्रतिमा है, जिस पर प्रत्येक भारतीय चाहे वह हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, फारसी, यहूदी किसी भी धर्म का उपासक हो, इस देश को अपनी मातृभूमि, पितृभूमि तथा पुण्यभूमि मानता हुआ इसकी उन्नति के लिए कार्य करेगा और अपनी विशिष्ट पूजा पद्धति को सुरक्षित रखता हुआ भी भारत के मान बिन्दुओं को पैरों तले कुचल न सके, अपने पूर्वजों का अपमान न कर सके।

चरित्र की उज्ज्वलता, देश-हित की सर्वोच्चता तथा मातृ-भूमि और पुण्य-भू की वैचारिक सोच से भारत में रामराज्य आएगा। सुख, समृद्धि और ज्ञान की त्रिवेणी बहेगी।

मैं चाहता हूँ कि मेरा भारत पुनः 'सोने की चिड़िया' बने। जिस भारत पर विदेशों का अरबों रुपया कर्ज है, उसके लिए 'सोने की चिड़िया' का स्वप्न लेना पागलपन है। इस दृष्टि से मुझे पागल कह सकते हैं, भ्रान्तमति कह सकते हैं, शेखचिल्ली की उपमा से अलंकृत कर सकते हैं। पर जब द्वितीय महायुद्ध का ध्वस्त जापान केवल चार दशकों में

ही औद्योगिक विश्व का उज्ज्वल नक्षत्र बन सकता है, साढ़े चार दशकों में हिटलर की पराजय से विभक्त जर्मनी पुन: एक होकर महाशक्ति बन सकता है तो भारत के मिल, कारखाने, फैक्ट्रियाँ निर्यात के वर्चस्व से विश्व का सोना भारत में क्यों नहीं ला सकते?

मेरा स्वप्न है कि भारत पुन: विश्व-गुरु का पद ग्रहण करे। वर्तमान विश्व गुरु बनने का अर्थ होगा कि विश्व-संसद् 'संयुक्त राष्ट्र संघ' में उसका वर्चस्व हो, प्रभुत्व हो। केवल अध्यात्म की रट से, सनातन-धर्म की दुहाई से, विश्व-सभ्यता-संस्कृति का आदि-स्रोत की पुकार से विश्वगुरु पद मिलने वाला नहीं। जब तक हम 'भिक्षां देहि' की स्थिति से उभरकर साहूकार नहीं बनेंगे, जब तक वैज्ञानिक दौड़ में हम प्रथम नहीं रहेंगे।

मेरा स्वप्न है कि इक्कीसवीं शताब्दी भारत में सबके लिए समान कानून का साम्राज्य हो, आतंकवाद का विनाश हो। राजनीतिज्ञ प्रांतवाद, पार्टीवाद और परिवारवाद से ऊपर उठकर 'भारत-हित' को प्राथमिकता देंगे। साम्प्रदायिकता नष्ट होगी, साम्प्रदायिक भाव सर्वधर्म समभाव में परिवर्तित होगा। पारस्परिक प्रेम और आत्मीयता की गंगा बहेगी। नई टैक्नोलोजी से उद्योग समृद्ध होंगे ताकि कोई भारतीय गरीबी का जीवन न जीए। यहाँ सब सुखी, नीरोग, सुशिक्षित, वैभव सम्पन्न और राष्ट्र-भक्त बनें।

नारद पुराण के पूर्व भाग में एक कथन है—'अद्यापि देवा इच्छन्ति जन्म भारत भूतले।' अर्थात् देवगण आज भी भारत भूमि में जन्म लेने की इच्छा रखते हैं। मेरी कामना है कि भारत इतना समृद्ध और पावन बने ताकि देवता पुन: यहाँ जन्म लेने की इच्छा कर सकें।

(321) 21वीं सदी में भारत प्रवेश

> **संकेत बिंदु**—(1) 21वीं सदी का भारत (2) भाषाओं का तिरस्कार और दुर्बल लोकतंत्र (3) कानून व्यवस्था और भ्रष्टाचार (4) प्रांतवाद और लोकतंत्र के स्तम्भ (5) उपसंहार।

21वीं सदी का भारत राजनीतिक दृष्टि से पतित, सामाजिक दृष्टि से विभक्त, आर्थिक दृष्टि से विकलांग और धार्मिक दृष्टि से कट्टर, प्रशासनिक दृष्टि से सुस्त और सामर्थ्यहीन, अनुशासन की दृष्टि से अव्यवस्थित और जनसंख्या की दृष्टि से विशालतर राष्ट्र है।

ईसा की द्वि-सहस्राब्दि के प्रारम्भ में ऐसा तो हुआ नहीं कि केवल धनी और प्रभुता-सम्पन्न राष्ट्रों ने ही 2000 वर्ष में प्रवेश किया है तथा गरीब और पिछड़े राष्ट्र 20वीं सदी में रह गए हैं। समय का प्रवाह बाढ़ के पानी की तरह अपने कूड़े-कचरे सहित आगे बढ़ रहा है। विश्व-राष्ट्रों में ईस्वी-सन् 2000 में भारत का स्थान इस प्रकार है—'सर्वाधिक जनसंख्या वाला देश : भारत (जनसंख्या एक अरब), सर्वाधिक गरीब देश : भारत (प्रति व्यक्ति औसत आय 3000 रुपए), सर्वाधिक अनपढ़ों वाला देश : भारत (अनपढ़ों की

संख्या 30 करोड़) सर्वाधिक बेरोजगारी वाला देश : भारत (बेरोजगारों की संख्या : 40 करोड़) सर्वाधिक बेघरों का देश : भारत (बेघरों की संख्या : 6 करोड़)।'

ईसा की 21वीं सदी का भारत भाषा की दृष्टि से अपनी भाषाओं का तिरस्कार कर अंग्रेजी द्वारा ज्ञान के द्वार खोलता है। वह भारत की सनातन संतान को जन्मत: साम्प्रदायिक मानता है। भारतीय वाङ्मय को 'बैकवर्ड' मानता है। 'वंदे मातरम्' धर्म-पालन में बाधक नजर आता है। संस्कारों में उसे जीवन की दुर्गंध आती है। माता-पिता पहले ही 'डैड' (मृत) और 'ममी' (पिरामडों में सुरक्षित शव) हो गए हैं। परिवार समष्टिमूलक परम्परा से कटकर तेजी से व्यक्तिवादी मूल्यों को अपनाने को विवश हो चुका है। अनेक संघर्षों और बलिदानों के बाद जिस विदेशी साम्राज्य से पिंड छुड़वाया था, 21वीं सदी के प्रवेश पर हम विदेशी मूल के व्यक्ति को भारत की सत्ता का सूत्रधार बनाने को उतावले हो रहे हैं।

हमारा लोकतंत्र बाह्य दृष्टि से अजेय है और आन्तरिक रूप में अत्यंत दुर्बल। प्रादेशिक राजनीति केन्द्र पर हावी है। परिणामत: केन्द्रीय राजनीतिक-दल दुर्बल हो रहे हैं और प्रांतीय राजनीतिक-दल सशक्त। परिणामत: भारत में एक दलीय सरकार का समय बीत चुका है। इसलिए केन्द्रीय सत्ता 21 दलों के असंतुलन से सदा भयभीत रहती है। यही राजनीतिक दशा प्रदेशों की भी हो रही है। परिणामत: राज्य और केन्द्रीय सरकारों की निर्णय-क्षमता को लकवा मार गया है। विपक्ष 'विरोध के लिए विरोध' करता है, राष्ट्र-हित में नहीं।

लोकतंत्र का आधार है चुनाव। आजकल भारत में चुनाव के तीन आधार बन चुके हैं—धन बल, बाहुबल और बोगस मतदान। इस त्रिगुणी माया के बंधन में सच्चा, पवित्र और ईमानदार प्रत्याशी तो जीत ही नहीं सकता। फलत: भारत की राजनीति का अपराधीकरण हो गया है या यूँ कह सकते हैं कि अपराधियों का राजनीतिकरण हो गया है। भारत माता विलाप कर अपने भाग्यविधातों से पूछ रही है, 'इस देश का पुत्रो, क्या होगा?'

21वीं सदी का भारत-प्रवेश भ्रष्टाचार का सशक्त आधार है। 'पब्लिक डीलिंग्स' में बिना भ्रष्टाचारी पासपोर्ट के प्रवेश निषेध है। आज भी कचहरी के चपरासी, बिक्री-कर विभाग के अर्दली की आय और सम्पत्ति अपनी पोजीशन से कई गुणा अधिक है। राजनीतिज्ञ और मंत्रियों की बात छोड़ दीजिए, वे रिश्वत नहीं लेते, सेकेण्डल करते हैं। करोड़ों-अरबों के घोटाले करते हैं। मानवीय 'संवेदना' इतनी जागरूक है कि अकाल-पीड़ितों की सहायतार्थ सामग्री से भी अपना भाग नहीं छोड़ते और पशु-चारे को भी खा जाते हैं, किन्तु जुगाली नहीं करते। मजे की बात यह है कि भ्रष्टाचारी का भ्रष्ट आचरण न्यायालय की तुला पर उज्ज्वल होकर निकलता है।

सम्प्रदायवाद भारत की संजीवनी बूटी बन गई है। सत्ता प्राप्ति का परमिट बन गई है। जातीयता का बुखार तेजी से बढ़ रहा है। पिछड़े वर्गों को आर्थिक आधार पर नहीं, जातीय आधार पर रेवड़ी बाँटी जा रही हैं। 50% का आरक्षण तटबंध तोड़ने का आह्वान कर रहा है। उनके कल्याण के लिए देश का राजनीतिज्ञ सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों

को भी संविधान परिवर्तन से नीचा दिखाने को तत्पर है। अल्पसंख्यकों को खुश करने के लिए राजनीतिज्ञों में होड़ लगी है। उनकी हर माँग को असाम्प्रदायिक माना जाता है। दूसरे धर्मों पर किए गए प्रहार को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का जामा पहनाया जाता है और नर-संहार के पीछे बहुसंख्यकों का षड्यंत्र माना जाता है। एक बावरी ढाँचे के गिरने पर छाती फाड़-फाड़ कर विलाप होता है, किन्तु सैंकड़ों मंदिरों के तोड़े जाने पर कोई 'आह' भी नहीं भरता। एक विदेशी पादरी की हत्या पर धर्म-निरपेक्ष भारत में भूचाल आ जाता है, किन्तु केरल में सैंकड़ों हिन्दू-कार्यकताओं की निर्मम हत्या पर लोक-सभा में प्रस्ताव तक नहीं आता।

लोकतंत्र के आधार स्तम्भ हैं—न्यायपालिका, कार्यपालिका, विधायिका और समाचार-पत्र। भारत की न्यायपालिका की दुर्दशा यह है कि लाखों मुकदमें अनेक वर्षों से न्यायालय की अल्मारियों में कैद पड़े हैं।

कार्यपालिका अर्थात् नौकरशाही कोई काम करके खुश ही नहीं। निर्णय की अपंगता-अक्षमता तथा नियमानुसार कार्य करना उसकी विशेषता है। रिश्वत लेकर फाइल सरकाना उसकी पद्धति है। हड़ताल उसका जन्मसिद्ध अधिकार है। परिणामत: नौकरशाही ने कार्यपालिका को कार्यमृतिका बना दिया है।

विधायिका अर्थात् संसद् और विधानसभाएं। संसदीय प्रणाली के अलंकरण हैं, तर्क और वाक्-चातुरी। तर्क और वाक्-चातुरी के लिए चाहिए समझ, अध्ययन और विवेक। पार्टी-अन्धभक्त सांसदों में वह चातुरी कहाँ? वाक्-चातुरी के नाम पर संसद् तथा विधानसभाओं में होती है गोली-गलौज, हाथापाई तथा चरित्र-हनन की अश्लील बातें। देश-हित के निर्णय कम और वोट बैंक की दृष्टि से निर्णय अधिक होते हैं।

लोकतंत्र का चतुर्थ स्तम्भ है समाचार-पत्र। समाचार-पत्र समाचार-दर्शन से अधिक अपनी विचारधारा के रंग में रंगे समाचारों के दर्शन करवाने का दायित्व निभाते हैं। अल्पसंख्यकों के विरुद्ध लिखने में उनकी स्याही ही नहीं, जान भी सूखती है और हिन्दू धर्म की छिछालेदार करने में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का पोषण होता है। ये देश को क्रियात्मक सुझाव देने की अपेक्षा नकारात्मक पक्ष को अधिक उजागर करते हैं।

आर्थिक दृष्टि से 21वीं सदी के भारत की स्थिति डाँवाडोल है। खरबों रुपयों के विदेशी ऋणों का ऋणी भारत इसका ब्याज भी विदेशी ऋण से चुकाता है। प्रत्येक प्राकृतिक आपदा आने पर भीख का कटोरा लिए विश्व में 'भिक्षां देहि' की आवाज लगाता है। उसकी आर्थिक नीति ने नव धनाढ्यवर्ग तो खड़ा किया, किन्तु 40 प्रतिशत जनता को जीवन-जीने के स्तर से गिरकर जीवनयापन करने को विवश कर दिया है। उद्योग-धंधे तो खड़े कर समृद्धि की ओर अग्रसर तो हुआ, किन्तु विदेशी पूँजी, विदेशी टैकनीक तथा बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के प्रवेश ने भारतीय उद्योग जगत् पर अमावस्या की काली छाया प्रसारित कर दी।

21वीं सदी का भारत राजनीतिक दृष्टि से असहाय, आर्थिक दृष्टि से विपन्न,

सामाजिक दृष्टि से विभक्त, धार्मिक दृष्टि से उन्मादी, प्रशासनिक दृष्टि से शिथिल, न्यायायिक दृष्टि से लचर तथा आत्म-प्रशंसा में तेज है, भले ही विश्व-प्रांगण में उसका आत्मसम्मान धूल ही चाट रहा है।

(322) भारत की सांस्कृतिक-एकता

संकेत बिंदु—(1) सांस्कृतिक एकता का अर्थ (2) संस्कृति का निर्माण (3) भारतीय भाषाएँ और साहित्य (4) पर्व और त्योहार सांस्कृतिक एकता की आधारशिला (5) उपसंहार।

सांस्कृतिक एकता का अर्थ भारत की दो, तीन या चार धार्मिक वृत्तियों से जुड़ी संस्कृति का मिलन नहीं, न ही इसका अर्थ एक मिश्रित संस्कृति का उदय है। इसका सीधा-सा अर्थ है कि हिन्दू धर्म में विभिन्न मत-मतान्तरों के होते हुए भी, खान-पान, रहन-सहन, पूजा-उपासना में विभेद रहते हुए भी विश्व का हिन्दू सांस्कृतिक दृष्टि से एक सूत्र में बँधा है, वह एक है।

तथाकथित धर्म-निरपेक्ष जनों के मतानुसार भारत में सांस्कृतिक एकता का अर्थ हिन्दू-मुस्लिम तथा पाश्चात्य संस्कृति के एकीकरण में है। परिणामस्वरूप हिन्दू-संस्कृति, मुस्लिम और पाश्चात्य संस्कृतियों के सम्मुख समर्पण करती जाती है। इस समर्पण का प्रभाव हिन्दुओं की हीनता और राष्ट्र-विभाजन के रूप में प्रकट हो रहा है। भारत-विभाजन इस विकृत तथाकथित सांस्कृतिक ऐक्य का प्रथम कटु प्रसाद था, जो सारे राष्ट्र ने चखा। स्वतन्त्र भारत में यह नासूर बनकर साम्प्रदायिक दंगों में रक्त रंजित ज्वालामुखी के रूप में फूट पड़ता है। भारत और भारतीयों को तबाह कर देता है। कैसी है यह सांस्कृतिक एकता?

संस्कृति का निर्माण 'खुल सम सम' की भाँति होता नहीं, सौ पचास वर्षों में उसकी पताका फहराती नहीं। अनेक पीढ़ियों के संस्कार सहस्रों वर्षों की तपस्या, चिन्तन से संस्कृति का भवन खड़ा होता है। परम्पराएँ, मान्यताएँ, आस्थाएँ, जीवनमूल्य उसके इस्पाती स्तम्भ होते हैं। धार्मिक सिद्धान्त, सामाजिक-पारिवारिक परम्पराएँ, जीवन-जीने का दृष्टिकोण तथा शैली मानव माँ के स्तनपान से सीखता है और संस्कृति का उपासक बनता है।

अनेकरूपता किसी राष्ट्र की जीवन्तता, सम्पन्नता तथा समृद्धि की द्योतक है। भारत विभेदों का समुद्र है, शायद इसलिए इसे उपमहाद्वीप माना जाता है। यहाँ ढाई कोस पर बोली बदलती है। संविधान-स्वीकृत सतरह भाषाएँ हैं। सनातन-धर्म, आर्य-समाज, ब्राह्मसमाज, नाथपंथी, कबीरपंथी, शैव, लिंगायत, शाक्त, वैष्णव आदि उपासना पद्धति के विविध भेद हैं। जैन, बौद्ध, सिख मत हिन्दू-धर्म के ही परिवर्तित रूप तथा अभिन्न अंग हैं। परिधान की विविधता में यहाँ इन्द्रधनुषी सप्त रंगों के दर्शन होते हैं। रुचि की विविधता

तथा जलवायु की आवश्यकता के अनुसार खान-पान में विभिन्नता है, पर ये विभिन्नताएँ भारतीय-संस्कृति के एकता का पोषक ही हैं, बाधक नहीं।

भारत की बोलियाँ और भाषाएँ संस्कृत से सम्बद्ध तथा निस्सृत हैं। सभी भाषाओं की वर्णमाला एक नहीं, तो एक-सी अवश्य है, केवल लिपि का भेद है। संस्कृत की परिनिष्ठित लिपि होने के कारण देवनागरी प्राय: सभी भारतीयों द्वारा पहचानी जाती है। सबकी पृष्ठभूमि तथा व्याकरण प्राय: एक-से हैं। भाषाओं के भेद के बावजूद विचारों की एकरूपता यहाँ कभी खण्डित नहीं हुई। आजादी की लड़ाई के लिए उत्तर और दक्षिण, पूर्व और पश्चिम, सभी ने बलिदान दिए। शोषण के विरुद्ध सभी ने आवाज बुलन्द की, विदेशी आक्रमण के समय सभी ने एक स्वर से प्रतिकार किया।

समस्त भारतीय साहित्य में एकात्मता के दर्शन होते हैं। वेद, उपनिपद्, षड्दर्शन तो हैं ही सम्पूर्ण भारत की पैतृक थाती। श्रीमद्भागवत्, पुराण, रामायण, महाभारत साहित्य के उपजीव्य रहे। राम और कृष्ण पर सभी भारतीय भाषाओं में ग्रन्थ रचे गए। तुलसी के 'मानस' और सूर के 'पद' अनेक भाषाओं में अनूदित हुए। बंगाल के 'वन्देमातरम्' और 'जन-गण-मन' कोटि-कोटि भारतीयों के राष्ट्रगीत बने। विद्यापति हिन्दी, मैथिली और बंगला में सम्मानित हुए, तो मीरा हिन्दी और गुजराती में समान रूप से कवयित्री मानी जाती हैं। सन्तों की वाणी ने एकात्मता के दर्शन करवाए। संत तुकाराम आदि महाराष्ट्रीय संतों ने अपनी कविता में हिन्दी को अपनाया। प्रेमचन्द, अश्क, सुदर्शन, कृष्णचन्दर ने हिन्दी में लिखा और उर्दू में भी।

विभिन्न धार्मिक-उपासना पद्धतियों एवं मान्यताओं के बावजूद सबमें एक भावना है, एक दर्शन है। अयोध्या; मथुरा, माया (हरिद्वार), काशी, कांची, अवन्तिका (उज्जयिनी) तथा द्वारिका के दर्शन किए बिना हिन्दू आज भी अपने को मोक्ष का अधिकारी नहीं समझता। ओंकार, गायत्री, गीता, गंगा, गोमाता के प्रति हिन्दू मात्र की दृष्टि पूज्य है, श्रद्धायुक्त भावना है। शिव भक्त-ठेठ उत्तर की गंगोत्री से गंगाजल लेकर दक्षिण सीमा के रामेश्वरम् महादेव का अभिपेक कर आत्म-सन्तुष्टि अनुभव करता है।

पर्व और त्यौहार हमारी सांस्कृतिक एकता की आधारशिला हैं तथा एकात्मदर्शन के साक्षी हैं। होली का 'हुड़दंग', रक्षाबन्धन की 'राखी' विजयदशमी का उल्लास तथा दीपावली का 'पूजन' हर हिन्दू स्वप्रेरणा से करता है। नवरात्र-पूजन, राम-नवमी और कृष्ण-जन्माष्टमी मनाने के लिए हिन्दू की आत्मा उद्वेलित रहती है। कुंभ और महाकुंभ पर लाखों हिन्दुओं का अपनी गाँठ से पैसा खर्च करके, कष्ट सहकर भी हरिद्वार, प्रयाग, नासिक आदि तीर्थों में एकत्र होना अटूट सांस्कृतिक-एकता का प्रमाण है।

जन्म से मृत्यु-पर्यन्त सोलह संस्कारों में अटूट विश्वास हमारी सांस्कृतिक एकता का संस्कारित दस्तावेज है। अग्नि की चार परिक्रमाएँ तथा सप्तपदी के मंत्रोच्चारण करते हुए वर-वधू का सात पग साथ के बिना हिन्दू-विवाह की कल्पना नहीं की जा सकती। इसी प्रकार शव को अग्नि में भस्म किए बिना शरीर की अन्त्येष्टि अपूर्ण रह जाती है।

दक्षिण के आचार्य शंकर ने भारत की चारों दिशाओं में चार मठ (उत्तर में ज्योर्तिमठ, दक्षिण में शृंगेरी मठ, पूर्व में गोवर्धन मठ तथा पश्चिम में शारदा मठ) स्थापित कर भारतीय सांस्कृतिक एकता को सुदृढ़ किया। 'कलियुगे कलि प्रथम चरणे बौद्धावतारे' कहकर प्रत्येक धार्मिक संकल्प में बुद्ध का पुण्य स्मरण किया जाता है। गुरु नानक ने हिन्दी (ब्रज भाषा) में रचना की। गुरु गोविन्दसिंह ने अपने काव्य में चंडी (दुर्गा) का स्तवन किया। 'गुरु ग्रंथसाहब' में कबीर आदि महात्माओं की भी वाणी संकलित हैं। जैनियों के भगवान् ऋषभदेव का श्रीमद्भागवत में परम आदर के साथ उल्लेख हुआ है।

इस सांस्कृतिक एकता के कारण सृष्टि के आदि से चली आई भारतीय संस्कृति आज भी गौरव और गर्व से विश्व के प्रांगण में उन्नत मस्तक किए है। मिस्र, रोम, असीरिया, बेवीलोनिया, यूनान की संस्कृतियाँ काल के कराल थपेड़ों से नष्ट हो गईं, किन्तु हमारी संस्कृति काल के अनेक थपेड़े खाकर भी आज अपने आदि स्वरूप में जीवित है। इसी कारण महाकवि इकबाल को कहना पड़ा, *'कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।'*

(323) भारत में राष्ट्रीय-एकता का स्वरूप

संकेत बिंदु— (1) सर्वधर्म समभाव पर टिका (2) राष्ट्र के कर्णधार (3) राष्ट्रीय एकता का स्वरूप (4) भारतीय संविधान (5) उपसंहार।

भारत में राष्ट्रीय-एकता का स्वरूप सर्वधर्म समभाव पर टिका है। सर्वधर्म समभाव का अर्थ है—सभी धर्मों के प्रति समान आदर भाव। आदर भाव का अर्थ सर्वधर्म सम्मिश्रण या सभी धर्मों का एक धर्म में सम्मिलन नहीं। पर, भारत की राष्ट्रीय-एकता सर्वधर्म-समन्वय पर आधारित है। मुसलमानों के धर्म-कृत्यों में हिन्दुओं की और हिन्दुओं के धर्म-कृत्यों में मुसलमानों की उपस्थिति राष्ट्रीय-एकता का स्वरूप माना जा रहा है। किसी हिन्दू नेता की मृत्यु या पुण्यतिथि पर सभी धर्म-ग्रंथों का पाठ कर देना राष्ट्रीय-एकता का स्वरूप बनाया जा रहा है। धर्म-सम्मिश्रण (खिचड़ी घाल-मेल) राष्ट्रीय-एकता का प्राण लेवा तत्त्व है। यही वह विकृत-अवधारणा है, जिसने भारत का विभाजन किया, स्वतंत्र भारतीय संसद् में 'वंदे मातरम्' के राष्ट्रीय-गान को अवरुद्ध किया और भारत में आतंकवाद को बढ़ावा देकर भारतीय-जन की सुख-शांति को लूट लिया। देश में साम्प्रदायिकता की आग में घी डालने का काम किया।

राष्ट्र के कर्णधार बने सत्ताधारी लोगों ने और सत्ता के पक्षधरों ने समन्वय को एक आँख से देखा, एक-पक्षीय ढंग से सोचा, एक विशेष शैली से आचरित किया। यहाँ महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू, लालबहादुर शास्त्री, इन्दिरा गाँधी, राजीव गाँधी की जन्म तथा पुण्य-तिथियों पर तो गीता, कुरान, बाइबिल का पाठ होता है, किन्तु फखरुद्दीन अली अहमद, अब्दुल कलाम 'आजाद' की पुण्य-तिथियों पर केवल कुरान का पाठ होता है, गीता या बाइबिल का नहीं। 'हिन्दू लॉ' को 'गरीब की बहू सबकी भाभी' मानकर संसद्

छेड़खानी करती रहती है, किन्तु 'मुस्लिम लॉ' की सर्वोत्तम-न्यायालय ने शाहबानो केस में, मानवोचित व्याख्या कर दी तो देश में तूफान खड़ा करा दिया गया। फलतः राजीव गाँधी को संसद् में सर्वोच्च-न्यायालय के निर्णय को निरस्त करवाना पड़ा। भारत के प्रायः सभी प्रसिद्ध हिन्दू तीर्थ-मंदिरों की व्यवस्था और आय पर सरकार का अधिकार है, परन्तु भारत की किसी भी मस्जिद या गिरिजाघर की व्यवस्था पर सरकार हस्तक्षेप नहीं कर सकती। हिन्दुओं के परमपूज्य शंकराचार्यों को तो पकड़ कर जेल भेज सकती है, पर जामा मस्जिद, दिल्ली के पूर्व प्रमुख इमाम अब्दुल्ला बुखारी को तीन-तीन बार न्यायालयों के 'समन' के बावजूद हाथ भी नहीं लगा सकी। मुस्लिम हज-यात्रियों पर केन्द्र सरकार करोड़ों रुपया खर्च करती है, पर कुम्भ मेलों पर टैक्स लगाती है।

भारत 28 स्वशासित राज्यों तथा सात केन्द्र शासित प्रदेशों में बँटा हुआ है। ये राज्य और प्रदेश भारत-माता के उसी प्रकार अंग हैं, जिस प्रकार आँख, कान, नाक, मुख आदि शरीर की अंग हैं। मानव का हृदय अपने विभिन्न अवयवों को समान रक्त का संचालन करके एकात्मा बनाए रखता है, परन्तु भारत की राष्ट्रीय-एकता के स्वरूप में कश्मीर और नगालैण्ड विशिष्ट स्थिति प्राप्त हैं। भारत का नागरिक तो क्या राष्ट्रपति भी चाहे तो कश्मीर राज्य में एक इंच भूमि नहीं खरीद सकता। प्रांतीय एकता के इस गुर ने कश्मीर में मुस्लिम उग्रवाद को जन्म दिया और नगालैण्ड में ईसाई-उग्रवाद को। परिणामतः दोनों प्रांत स्वतंत्र गण-राज्य पाने के लिए की दिशा में संघर्षरत हैं।

भारत के 28 राज्यों तथा 7 केन्द्र शासित प्रदेशों में भाषा और भूमि के उग्र-प्रेम का प्रोत्साहन हमारी राष्ट्रीय-एकता का विचित्र स्वरूप है। हम बबूल बोकर आम की कल्पना साकार करना चाहते हैं। भारत के विभिन्न प्रांत नदी-जल पर ऐसे झगड़ते हैं, जैसे बंगला देश और भारत में गंगा-जल का बँटवारा हो रहा हो। विभिन्न प्रदेश भाषा के आधार पर दो-चार गाँव अपने में मिलाने के लिए ऐसी युद्ध-स्थिति का निर्माण करते हैं, जैसे पाकिस्तान ने निर्मित की हुई है। प्रांत-मोह में ही भारत में तथाकथित राष्ट्रीय-एकता का स्वरूप दीखता है।

भारत में राष्ट्रीय-एकता के स्वरूप-दर्शन का दर्पण है भारत का संविधान। भारतीय संविधान विभिन्न धर्मों, जातियों, प्रांतों में विभेद खड़ा करने में 'राष्ट्रीय-एकता' का स्वरूप निर्धारित करता है। अहिन्दू एक से अधिक विवाह कर सकता है, किन्तु हिन्दू एक पत्नी रहते दूसरा विवाह रचाएँ तो संविधान का उल्लंघन है। संविधान शिक्षा, नौकरी, पदोन्नति में जातीयता को प्रोत्साहन देता है, 50 से लेकर 61, और अब 80 प्रतिशत आरक्षण पर उनकी बपौती मानता है। इस प्रकार योग्यता, विद्वत्ता, और प्रतिभा की मूल्य-हीनता में राष्ट्रीय-एकता का स्वरूप प्रकट होता है। चिकित्सा और इंजीनियरी में 80 प्रतिशत अंक पाने वाले वंचित रह जाते हैं और 25 प्रतिशत पाने वाले तो क्या 15 प्रतिशत अंक पाने वाले सर्वथा अयोग्य भी आरक्षण के नाम पर प्रविष्ट हो जाते हैं।

'अंग्रेजी' राष्ट्रीय-एकता का सूत्र बनी, तो अंग्रेजी सोच ने भारतीय जीवन-मूल्यों और

सांस्कृतिक पहचान पर इतना भयंकर आक्रमण किया कि हम आज काले अंग्रेज बनकर रह गए हैं। अपनी सभ्यता से दुराव करने लगे, धर्म को आडम्बर समझने लगे और संस्कृति से विमुख हो गए। प्रातः उठने से लेकर रात्रि सोने तक विदेशी वस्तुओं का प्रयोग तथा विदेशी सभ्यता का अन्धानुकरण हमारी राष्ट्रीयता की पहचान बनी। 'कान्वेंट' तथा 'पब्लिक-स्कूलों' में अंग्रेजी माध्यम से ज्ञान के नेत्र खुलने की पहचान बढ़ी। 'दून स्कूल संस्कृति', 'ममी-पापा', 'अंकिल-आंटी' का सम्बोधन, बातचीत और संभाषण में अंग्रेजी जुमलों का व्यवहार राष्ट्रीय-एकता के सूत्र बने।

भारत में राष्ट्रीय-एकता का स्वरूप निर्धारण का एकमात्र मानदंड है—'वोट-बैंक'। ' जिस सूत्र से वोट-बैंक बढ़ता हो, वह राष्ट्रीय-एकता का खरा सूत्र है, जिससे वोट-बैंक घटता हो, वह राष्ट्रीय-एकता के स्वरूप का विकृति-कारक है। 'वोट-बैंक' की वृद्धि और क्षय जब राष्ट्रीय-एकता के स्वरूप के मानदंड हों तो राष्ट्रीय-एकता समुद्र में डूबकर आत्महत्या नहीं करेगी तो क्या करेगी ?

(324) भारत में आतंकवाद और हिंसा की राजनीति

संकेत बिंदु—(1) भ्रष्ट राजनीतिक सफलता के गुर (2) हिंसा और आतंक का तांडव (3) पं. नेहरू की कश्मीर-नीति (4) आतंक की नीति (5) उपसंहार।

हिंसा और आतंकवाद भ्रष्ट राजनीतिक सफलता के गुर हैं। इनके बिना राजनीति में सफलता आकाश के तारे तोड़ना है। इनके बिना नेताओं की सत्ता की स्थिरता असम्भव है। विपक्ष को नीचा दिखाने और उसका मनोबल तोड़ने के लिए आतंक रामबाण औषधि है, तो विपक्ष के अस्तित्व को ही समाप्त करने में हिंसा का आश्रय विवशता नहीं आवश्यकता बन गई है।

आतंक जब परोक्ष रूप में चाल चलता है, तो व्यक्ति या संस्था पर आयकर या सी.बी.आई. के छापे, अनर्गल मुकदमे, पुलिस द्वारा ज्यादतियाँ करवाते हैं। जब प्रकट रूप दिखाता है, तो जनता त्राहिमाम्-त्राहिमाम् कर उठती है। उसमें गेहूँ के साथ घुन भी पिसता है। जयप्रकाश नारायण, वी.पी.सिंह अटलबिहारी वाजपेयी जैसे देश-भक्त भी कारागार की चक्की पिसते हैं। राजनीति में हिंसा प्रायः प्रत्यक्ष प्रकट नहीं होती। वह अपने पीछे छोड़ जाती है सी.बी. आई की जाँच या न्यायविदों का आयोग। सत्ता द्वारा हिंसा में राजनीति अपने पूरे प्रपंच से चाल चलती है। परिणामतः आयोग और जाँच भी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाते।

हिंसा और आतंक जब राहु-केतु बन ललकारते हैं तो पुष्प शैया भी अग्निज्वाला बन जाती है। सौरभ से सने विकसित फूल भी अंगारों का रूप धारण कर लेते हैं। शीतल समीर सर्पों की फुफकार बन जाती है। गंगा भी कर्मनाशा हो जाती है। कल्प-वृक्ष विष-वृक्ष बन जाता है। बाढ़ ही खेत को खाने लगती है। इंदिरा गाँधी जैसी सुरक्षित और सजग प्रधानमंत्री भी अपने ही सुरक्षा सैनिकों द्वारा भून दी जाती है।

धर्म पर आधारित भारत-विभाजन की सच्चाई को जब कांग्रेस ने नकारने-भुलाने का प्रयत्न करके मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति पर चलना शुरू किया तो राजनीति की प्रथम हिंसा के शिकार हुए महात्मा गाँधी। स्वतंत्र भारत में राजनीति-हिंसा की यह प्रथम बलि थी। इस हत्या का बदला लेने के लिए तत्कालीन कांग्रेस-विरोधी वातावरण को कांग्रेस-पक्ष में बदलने के लिए पं. जवाहरलाल नेहरू ने बलि का बकरा बनाया राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को। देश में लगभग एक लाख स्वयंसेवकों को पकड़ कर जेल में बन्द करवा दिया गया। अनेक घर फुँकवा कर, कइयों की हत्या करवा कर और पुलिस द्वारा खूब पिटाई करवा कर जो आतंक फैलाया उसने कांग्रेस-विरोध की कमर ही तोड़ दी।

इधर इन्दिरा जी के आशीर्वाद से जिस भिंडरवाला का उदय हुआ था, वही पंजाब का 'डिक्टेटर' बन बैठा। सिक्खों के पवित्र तीर्थ स्वर्ण मन्दिर (हरि मन्दिर) को अपना दुर्ग बनाकर उसे अपवित्र कर दिया। उसने पंजाब में वह आतंक फैलाया कि पंजाब प्रशासन के नेता और अधिकारी अपनी जीवनरक्षा के लिए उसके द्वार पर जाकर नाक रगड़ने लगे। हिन्दुओं का जीना दूभर हो गया। किंकर्त्तव्यविमूढ़ इंदिरा जी ने जब उनके विरुद्ध सैन्य कार्यवाही की तो भिंडरवाला तो मारा गया, पर सिक्ख अपने को आहत महसूस करने लगे। फलत: भिंडरवाला के शिष्यों ने 30 अक्टूबर 1984 को इन्दिरा जी की उनके घर में ही हत्या कर दी।

1984 में कश्मीर और आंध्र प्रदेश में कांग्रेस सत्ता में न आ सकी तो षड्यंत्र करके फारुक अब्दुल्ला तथा रामाराव की सरकारों को तोड़कर कांग्रेस-पक्षीय सरकारों को सत्ता सौंपी गई। वे दोनों कांग्रेस-सहयोगी सरकारें तो कुछ दिनों में गिरी हीं, किन्तु अपने पीछे एक ऐसी दुर्नीति छोड़ गईं जिससे इन दोनों प्रांतों में हत्या और आतंक की नीति आज भी सिर उठाए खड़ी है।

अपना रौब गाँठने और विपक्ष को सबक सिखाने में लोकतांत्रिक मुख्यमंत्रियों में जब अधिनायक की आत्मा का प्रवेश होता है तो लाठी-गोलियों से जनता को भूना जाता है। घर से बाहर खींच-खींच कर लावारिस कुत्तों के समान जनता को घसीटा जाता है, पीटा जाता है। कार सेवकों पर मुलायमसिंह सरकार के अत्याचार से तो हिंसा और आतंक ने भी शर्म से मुँह छिपा लिया था और दूसरी बार सत्ता में आने पर आरक्षण के नाम पर आरक्षण विरोधियों की जो दुर्गति मुलायमसिंह सरकार ने की उसमें इलाहाबाद हाईकोर्ट के न्यायधीशों तथा वकीलों को भी नहीं बख्शा गया। उसी शैली का कहर 28 फरवरी 1993 की भाजपा की वोट-क्लब रैली पर केन्द्र सरकार ने ढाया, जहाँ उसके तत्कालीन अध्यक्ष डॉ. मुरलीमनोहर जोशी तो बेहोश हो गए थे।

आज हत्या और आतंक की जड़ें इतनी जम गई हैं कि भारत के प्राय: हर प्रांत में उग्रवादी राजनीति को प्रभावित कर रहे हैं। कश्मीर का हरकत उल अंसार, हिजबुल मुजहिदीन, 'जम्मू एंड कश्मीर लिबरेशन फ्रंट' जमात.ए तुलुबा, बंगाल का नक्सलवाद, बिहार की रणवीर सेना, पीपुल्स वॉर ग्रुप, माओवादी कम्युनिस्ट सेंटर, असम में ऑलबोडो स्टूडेंट्स

यूनियन तथा उल्फा (यूनाइटेड लिबरेशन फ्रंट ऑफ असम); मेघालय की 'मेघालय यूनाइटेड लिबरेशन आर्मी' तथा 'खासी फॉर नेशनल कौंसिल ऑफ मेघालय'; नागालैंड में नेशनल सोशलिस्ट कौंसिल ऑफ नागालैण्ड तथा ऑल नागा कम्युनिस्ट पार्टी, मणिपुर में पीपुल्स लिबरेशन आर्मी, मिजोरम में मिजो नेशनल फ्रंट; त्रिपुरा में नेशनल लिब्रेशन फ्रंट ऑफ त्रिपुरा तथा अखिल त्रिपुरा टाइगर फोर्स, आंध्र प्रदेश में 'पीपुल्स वार ग्रुप' तथा तमिलनाडु में' लिबरेशन टाइगर्स ऑफ तमिल ईलम (लिट्टे), मुम्वई महानगर में कुख्यात माफिया दाऊद के लोग चमकते आतंकवादी संगठन हैं जिन्होंने सत्ता की नींद हराम कर रखी है और कानून और व्यवस्था को गहरी नींद में सुला रखा है।

स्वातंत्रोत्तर काल से कांग्रेस ने जिस आतंकवादी और हिंसात्मक नीति को प्रश्रय दिया उसका दुष्परिणाम है कि आज भारतीय राजनीति का ही अपराधीकरण हो गया है। जव देश के शिखर पुरुष ही दूषित राजनीति के अंग हों तव देश में आतंकवाद तथा हिंसा का साम्राज्य फले-फूलेगा ही।

(325) भारत में आतंकवाद/उग्रवाद का आतंक

संकेत बिंदु—(1) आतंकवाद का अर्थ (2) आतंकवाद का ताँडव (3) भारत के आतंकवाद के विष-बीज (4) भारत की सुरक्षात्मक स्थिति (5) उपसंहार।

अपने प्रभुत्व से, शक्ति से, जन-मन में भय की भावना का निर्माण कर अपना उद्देश्य सिद्ध करने का सिद्धांत आतंकवाद है। प्रत्यक्ष युद्ध के बिना जन-मन तथा सत्ता पर अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए भयप्रद वातावरण निर्माण करने का सिद्धांत टैरिरिज्म, आतंकवाद या उग्रवाद है।

भारत में आतंकवाद अपने नक्सलवादी रूप में 1967 में शुरू हुआ था। बंगाल के उत्तरी छोर पर नक्सलवाड़ी से शुरू हुए खूनी आंदोलन ने एक नये विचार, नई राजनीति का आरम्भ किया। गाँव के कुछ मंझोले किसानों के सर काट कर क्रांति शुरू की गई। तेलंगाना में विफल कम्युनिस्ट क्रांति की पीड़ा भोग रहे आंध्रप्रदेश के आदिवासी-बहुल श्रीकाकुलम जिले में नक्सलवाद तेजी से फैला। बंगाल के नौजवानों की बेकारी, बिहार में जातिवाद तथा भूमिहीन कमजोर प्रजा का दमन तथा आंध्रप्रदेश के आदिवासियों के शोषण ने नक्सलवाद के लिए उर्वरा भूमि प्रदान की।

1974 तक का नक्सलवाद का इतिहास विनाश की कहानी है और है निरपराध हिंसा के शिकार लोगों की अभिशप्त आत्मा की चीख-पुकार। आपत्काल की घोषणा से पूर्व तक देश के छह राज्य—आंध्र प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश तथा उड़ीसा नक्सलवादी क्षेत्र थे।

जब सत्ता स्वार्थ-द्वन्द्व से ग्रस्त हो, तो उसकी पराजित मनोवृत्ति पहचान कर आतंकवाद सिर उठाता है। सत्ता के वर्ग-विशेष के सहयोग से उग्रवाद का आतंक चिरायु होता है और

गर्व-गौरव से सिर उन्नत कर चलता है। आज भारत के अधिकांश प्रांत सत्ता की दुर्बलता के कारण आतंकवाद के नखरे झेल रहे हैं।

त्रिपुरा में टी.एन.वी. (त्रिपुरा नेशनल वालिंटियर्स), बिहार में रणवीर सेना, पीपुल्स वॉर ग्रुप, माओवादी कम्युनिस्ट सेंटर, आंध्र में पीपुल्स वॉर ग्रुप, असम में बोड़ो आन्दोलन आतंकवाद के प्रांतीय रूप हैं। कश्मीर में पाकिस्तान प्रेरित कट्टर मुस्लिम उग्रवाद सक्रिय हैं। आजकल कश्मीर में इसका भयंकर नग्नरूप दिखाई दे रहा है। इसी के कारण वहाँ से लाखों कश्मीरी पंडित पलायन के लिए विवश हो आज जम्मू, दिल्ली व अन्य नगरों में नरक-सा जीवन जीने को विवश हैं। अब भी कश्मीर के ग्रामों में पाकिस्तानी उग्रवादी नित्य अनेक लोगों की सामूहिक हत्या कर रहे हैं।

असम में यू.एल.एफ.ए. (यूनाइटेड लिबरेशन फ्रंट ऑफ असम), नागालैण्ड में एन.सी.एस.एन. (नेशनल सोसलिस्ट कौंसिल ऑफ नागालैण्ड) तथा मणिपुर में पी.एल.ए. (पीपुल्स लिबरेशन आर्मी) तमिलनाडु में लिबरेशन टाइगर्स ऑफ तमिल ईलम (लिट्टे) चमकते आतंकवादी सूर्य हैं।

भारत में आतंकवाद के विष-बीज विविध रूपेण पुष्पित-पल्लवित हो चुके हैं। इनके क्रूर आतंक से आम जनता त्रस्त है, सत्ता राजनैतिक स्वार्थ में अंधी है। दलगत राजनीति से दबी है। अतः सत्ता हवा में तलवार घुमाती है और आतंकवाद के विरुद्ध आक्रामक रुख अपना नहीं पाती।

आज भारत-सरकार आतंकवाद के हमले से डरकर 'सुरक्षात्मक स्थिति' ढूँढ़ रही है। नेताओं को बॉडीगार्ड देना, सरकारी भवनों पर सुरक्षा-प्रबन्ध सुदृढ़ करना, रेलों व बसों में सुरक्षात्मक उपाय करना, जनता को बमों से बचने के उपाय रटाना, सब 'डिफेंसिव मैथड' (सुरक्षात्मक उपाय) हैं।

आतंकवाद सत्ता के लिए खुली चुनौती है, कानून और व्यवस्था की शव-रूप में परिणति है। निरीह नागरिकों के जीवन-जीने के अधिकार का अपहरण है। धन-सम्पत्ति की असुरक्षा की घंटी है। दमघोटू वातावरण में जीवन जीने की विवशता है। लोकतंत्र के मुँह पर जोरदार चाँटा है। राष्ट्र को अस्थिर कर उसे परतन्त्र करने का दुश्चक्र है।

निरपराध लोगों के हत्या करने वाले इस आतंकवाद को सत्ता की शक्ति से ही दबाना होगा। शासन को पूर्ण मनोबल से इसके विरुद्ध आक्रामक रुख अपनाना होगा। 'विषस्य विषमौषधम्' नियम को अपनाना होगा। सैन्य-बल से आतंकवाद का सिर कुचलना होगा। तभी भारतीय जनता सुख और चैन की साँस लेगी; राष्ट्र फलेगा-फूलेगा; उन्नति-पथ पर अग्रसर होगा।

(326) भारत में धर्म-निरपेक्षता

संकेत बिंदु—(1) एक जीवन-पद्धति का नाम (2) धर्म-निरपेक्षता का नारा (3) हिंदू धर्म की उपासना पद्धतियाँ (4) लोकतंत्र में धर्म तंत्र का कोई मूल्य नहीं (5) उपसंहार।

'धर्म-निरपेक्षता' एक नारा नहीं, कुछ मूल्यों का नाम है, एक जीवन-पद्धति का नाम है। वर्तमान साम्प्रदायिक दंगों की प्रतिक्रिया नहीं, ऐतिहासिक और शाश्वत प्रक्रिया है। सर्वधर्म समभाव का पर्याय है, जिसमें सभी धर्मों की समानता के प्रति समझ और सहिष्णुता का दृष्टिकोण व्याप्त है।

विभिन्न धर्मों में पारस्परिक सहिष्णुता धर्म-निरपेक्षता है। धार्मिक-उन्माद को रोकने का नाम है धर्म-निरपेक्षता। यह कार्य अनादिकाल से चल रहा है और यह यज्ञ अनन्तकाल तक चलता रहेगा।

'धर्म-निरपेक्षता' का नारा कांग्रेस पार्टी का नारा नहीं, भारतीय संस्कृति में विद्यमान मन्त्र है। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में कहा है—'जनं विभ्रति बहुधा विवाचसम्। नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्।' (यह पृथ्वी जो विभिन्न धर्मों और भाषाओं के लोगों को आश्रय देती है, हम सबका कल्याण करे)। इसमें आगे कहा गया है कि माँ पृथ्वी! हमें अपने पुत्रों के रूप में ऐसी शक्ति दो कि हम आपस में सद्भावनापूर्वक संवाद कायम करें। एक-दूसरे से मिलें और एक-दूसरे के साथ मधुरतापूर्वक बातचीत करें। ऋग्वेद तो 'एकैव मानुषी जाति:' (सभी प्राणी एक ही जाति के हैं) पर विशेष बल देता है।

क्या भारत की स्वाधीनता के बाद भारत को हिन्दू-राज्य घोषित नहीं किया जा सकता था? जबकि पाकिस्तान ने अपने को मुस्लिम राष्ट्र घोषित किया। भारत भी कर सकता था, किन्तु ऐसा नहीं हुआ। कारण, भारतीय-संस्कृति इसकी आज्ञा नहीं देती।

स्वयं हिन्दुत्व में अनेक उपासना पद्धतियाँ हैं। भारतीय-संस्कृति ने भी कभी ऐसा नहीं कहा—'एक ही पुस्तक को मानो; अमुक व्यक्ति में ईमान लाओ, नहीं तो दोजख में जाना पड़ेगा।' सत्य एक है, लेकिन विद्वान् उसकी व्याख्या भिन्न-भिन्न रूपों में करते हैं (एकं सद्विप्रा: बहुधा वदन्ति)। परमात्मा एक ही है, लेकिन उसकी प्राप्ति के अनेकानेक मार्ग हो सकते हैं।

वस्तुत: धर्म-निरपेक्षता कोई नेतिवाचक (निषेधात्मक) अवधारणा नहीं, सकारात्मक अवधारणा है। इसका अर्थ धर्म-विरोधी या अधार्मिक होना भी नहीं। सीधे-सादे रूप में इसका अर्थ है—सभी धर्मों, आस्थाओं और विश्वासों के प्रति सम्मान तथा नास्तिकवाद सहित किसी भी धर्म को चुनने और पालन करने के लिए अधिकार का प्रयोग। इस अधिकार का प्रयोग इस प्रकार होना चाहिए कि वह दूसरे व्यक्ति द्वारा इस अधिकार के प्रयोग के रास्ते में आड़े न आए। धर्म का पालन सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता और स्वास्थ्य के अनुरूप हो।

धर्म-निरपेक्ष राज्य भले ही स्वयं को किसी विशेष धर्म के साथ न जोड़े, किन्तु उसे वह वातावरण उपलब्ध कराना होगा, जिसमें सभी नागरिक इच्छानुकूल उपासना-पद्धति के अधिकार का प्रयोग कर सकें।

लोकतन्त्र में धर्मतन्त्र का कोई मूल्य नहीं। लोकतान्त्रिक और धर्मतान्त्रिक राज्य साथ-साथ नहीं चल सकते। उदाहरणत: पाकिस्तान में लोकतन्त्र पद्धति असफल रही। अरब राष्ट्रों ने इस पद्धति को स्वीकार ही नहीं किया। भिन्न-भिन्न धर्मानुयायियों के बीच भेद-भाव बताने वाला राज्य लोकतान्त्रिक होने का दावा कैसे कर सकता है? क्योंकि यह बात सभी नागरिकों को समान मानने की लोकतन्त्र की आधारभूत मान्यता के विपरीत है। इसलिए कहा जा सकता है कि लोकतन्त्र और धर्म-निरपेक्ष राज्य का भविष्य परस्पर सम्बद्ध है।

वस्तुत: दुर्भाग्य से आज भारत में हिन्दुत्व की बात करना साम्प्रदायिकता मानी जाती है। मात्र धर्म पर आधारित मुस्लिम लीग, अकाली दल, द्रविड मुनेत्रकड़गम जैसे दल राष्ट्रीय हैं! हिन्दू युवती मुसलमान से विवाह कर ले, तो भारत का राष्ट्रपति आशीर्वाद देने पहुँचता है, किन्तु यवन लड़की हिन्दू से विवाह करे, तो साम्प्रदायिकता की बू आती है, झगड़े होने का भय होता है। इस प्रकार धर्म को राजनीति से जोड़ना धर्म-निरपेक्षता का गला घोंटना है।

भारत के शासक धर्म-निरपेक्षता की रट तो लगाते हैं, किन्तु उनका आचरण धर्माधारित होता है। वे रब्बात जैसे विशुद्ध मुस्लिम धार्मिक सम्मेलन में भाग लेने पहुँचते हैं, तो सिक्खों की धार्मिक भावनाओं को भी उभारते हैं। पंजाब में सिख उग्रवाद का कारण शासक दल का प्रोत्साहन ही था, जो भस्मासुर बन प्रधानमंत्री इन्दिरा गाँधी को खा गया। दक्षिण में ईसाइयत के सम्मुख घुटने टेक-नीति ने तो भारत की धर्म-निरपेक्षता के मुख पर करारा तमाचा ही जड़ दिया है।

धर्म-निरपेक्षता का पाठ भारत के शिशु को प्राथमिक शाला से ही पढ़ाना होगा। शिक्षा में नैतिकता का विषय अनिवार्य करना होगा। सब धर्मों के समान सूत्रों, सभी धर्म-गुरुओं की आप्तवाणी तथा एकेश्वरवाद के सिद्धांतों को नैतिकता के पाठ्यक्रम के अन्तर्गत लाना होगा। तभी भारत का युवक सच्चे अर्थों में धर्म-निरपेक्ष होगा, सभी धर्मों के प्रति सहिष्णु होगा।

पूर्व राष्ट्रपति श्री शंकरदयाल शर्मा के शब्दों में—'भारतीय स्वभाव में धर्मनिरपेक्षता एक ऐसा तत्त्व है, जिसे सभी नागरिकों को अपने सभी कार्यों से परिपुष्ट करना चाहिए। हमारी राष्ट्रीय राजनीति का यह तथ्य सिर्फ हमारे राष्ट्र तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इसमें विश्व के सभी लोगों और देशों के लिए एक संदेश निहित है, जो मानवता के भविष्य का पथ प्रशस्त करता है।'

धर्म-निरपेक्षता हमारे जीवन और जागरण का प्रमाण है। हमारी गतिशीलता और विकास का द्योतक है। यह इस संकल्प का उद्घोष है कि हम उज्ज्वल अतीत से प्रेरणा लेकर उज्ज्वलतर शान्तिमय और समृद्धिमय भविष्य का निर्माण करने के लिए सतत प्रयत्नशील हैं।

(327) भारत में साम्प्रदायिकता

संकेत बिंदु—(1) साम्प्रदायिकता का अभिशाप (2) विभिन्न धर्मावलम्बी (3) साम्प्रदायिक दंगों की बढ़ती संख्या (4) साम्प्रदायिक तुष्टीकरण (5) उपसंहार।

साम्प्रदायिकता का अभिशाप जब अपना प्रभाव दिखाता है, तो जन और धन, दोनों की हानि करता है, सम्पत्ति का विध्वंस करता है। नर-नारियों की हत्या करता है, दुकानों और व्यापारिक प्रतिष्ठानों की लूट होती है और वाहनों या मूल्यवान् सामान की होली जलाई जाती है। मानव, मानव के रक्त का प्यासा हो जाता है।

साम्प्रदायिक दंगे भारत-माता के भाल पर भयंकर कलंक हैं। राष्ट्र की प्रगति के लिए सबसे बड़े बाधक हैं। कानून और व्यवस्था के शत्रु हैं। सुखी और शांतिपूर्ण जीवन के लिए भयंकर अभिशाप हैं।

राष्ट्र के प्रति व्यापक निष्ठा के मुकाबले किन्हीं भी क्षुद्र संकीर्ण निष्ठाओं के जगाने को 'साम्प्रदायिकता' का नाम दिया जा सकता है। ये संकीर्ण निष्ठाएँ हैं—धर्म पर आधारित सम्प्रदायों की निष्ठा।

भारत में विभिन्न धर्मावलम्बी लोग रहते हैं—सनातन धर्मी, आर्यसमाजी, ब्राह्मसमाजी, शैव, वैष्णव, जैन, बौद्ध, कबीरपंथी, दादूपंथी, निरंकारी, सिक्ख, ईसाई, मुसलमान, पारसी आदि। ये धार्मिक सम्प्रदाय न केवल एक-दूसरे से लड़ते हैं, अपितु प्रत्येक सम्प्रदाय के अन्दर भी विभिन्न वर्ग हैं, जो परस्पर टकराते हैं। मुसलमानों में शिया और सुन्नियों का, वोहदों और अहमदियों का, ईसाइयों में कैथोलिक और प्रोटेस्टेंटों का, हिन्दुओं में सवर्णों और हरिजनों का झगड़ा सामान्य घटनाएँ हैं।

साम्प्रदायिक अभिशाप ने क्या-क्या गुल नहीं खिलाए। भारत-विभाजन साम्प्रदायिक अभिशाप का अमिट कलंक है। पाकिस्तान का निर्माण साम्प्रदायिक अभिशाप की ही देन है। लाखों लोगों की हत्या, नारियों का सतीत्व-हरण तथा कुमारियों के कौमार्य को भंग करने का अति निन्दनीय क्रूर कर्म है। सहस्रों वर्षों से अपने पूर्व पुरुषों के घरों को छोड़ निष्कासित शरणार्थी जीवन बिताना साम्प्रदायिक अभिशाप का ऐतिहासिक काला अध्याय है। मोपला-विद्रोह, मुस्लिम लीग का एक्शन-डे, स्वर्ण-मन्दिर पर सैन्य-कार्यवाही, पंजाब और कश्मीर में निरीह हिन्दुओं का कत्ल, दिल्ली, उत्तर-प्रदेश में सामूहिक सिक्ख-संहार, सेना में सिक्ख-विद्रोह, 2 नवम्बर 1990 को राम मन्दिर के कार-सेवकों की लाशों का ढेर; गणेशशंकर विद्यार्थी, स्वामी श्रद्धानन्द तथा श्रीमती इन्दिरा गाँधी की हत्या इतिहास के पृष्ठों में काले अक्षरों में अंकित हैं।

क्या कारण है कि भारत में साम्प्रदायिकता की अग्नि शांत होने की बजाए दावानल बनती जा रही है ? वर्षानुवर्ष साम्प्रदायिक दंगों की संख्या बढ़ती जा रही है। दंगों की उग्रता,

तीव्रता और भीषणता प्रचण्डतर होती जा रही है ? सम्प्रदाय, पंथ या मज़हब के प्रति कट्टरता और दुराग्रही प्रवृत्ति दृढ़तर होती जा रही है ? सच्चाई यह है कि 1947 में जिस साम्प्रदायिकता की अंत्येष्टि के लिए राष्ट्र ने भारत-विभाजन का विषैला घूँट पिया था, कांग्रेस के 45 वर्षीय शासन में वह भूत बनकर देश की शांति, समृद्धि तथा स्वातन्त्र्य को भयभीत कर रहा है। अपने विषैले डंक से राष्ट्र की भावना और आत्मा को विषाक्त कर रहा है। सन् 2000 तक पहुँचते-पहुँचते वोट के लालची राजनीतिज्ञों ने मुसलमानों तथा ईसाइयों का पक्ष लेकर और हिन्दू-हित की बलि देकर इस साम्प्रदायिक सर्प को दूध पिलाकर देश का वातावरण विषाक्त बना दिया है।

सत्ता के मोह-जाल में फँसकर शासन भयभीत है। शासन का भय राष्ट्र का विनाश करेगा। विश्व के दो प्रमुख धर्म (मुस्लिम तथा ईसाई) विश्व राजनीति में अपना वर्चस्व रखते हैं। अरब के पास तेल है। तेल के बिना विश्व पंगु है। ईसाई-राष्ट्र उन्नति के चरम शिखर पर हैं। उनकी भृकुटी पर पड़ा जरा-सा बल विश्व को कँपा देता है। ऐसी स्थिति में भारत की केन्द्रीय सरकार मुसलमानों तथा ईसाइयों से डरती है। उनके विरुद्ध कोई कठोर पग उठाते हुए झिझकती है। भारत में साम्प्रदायिक अभिशाप का यह भी एक कारण है।

राजनीतिज्ञों के द्वारा साम्प्रदायिक तुष्टिकरण साम्प्रदायिकता की अग्नि में घी डालने के समान है। दोषी साम्प्रदायिक तत्त्वों को दंडित न करना साम्प्रदायिकता को खुली छूट देना है। इंग्लैण्ड में तो देशद्रोही मुसलमान मौलवी को निष्कासित किया जाता है, किन्तु भारत की राजधानी में ही जामा मस्जिद के पूर्व इमाम अब्दुल बुखारी के देशद्रोहपूर्ण आचरण पर भी उसको बंदी बनाते सरकार डरती है। साम्प्रदायिकता का संरक्षण ईसाई व मुसलमान जनता को राष्ट्रीय-धारा में समान रूप से सम्मिलित न होने देने का षड्यन्त्र है।

अल्पसंख्यक मतावलम्बी अपने-अपने धर्मों के प्रति आस्थावान् हैं। कट्टरता उनकी नस-नस में है, धर्म-प्रचार उनका पावन कर्म है। स्वधर्म के प्रचार और प्रसार के लिए प्रत्येक बलिदान पर सिक्ख, मुसलमान तथा ईसाई गर्व करता है। तर्क के लिए इन धर्मों में स्थान नहीं। धर्म के नाम पर वे टूट सकते हैं, झुक नहीं सकते, समझौता नहीं कर सकते।

साम्प्रदायिकता के अभिशाप से राष्ट्र की मुक्ति तभी सम्भव है, जब शासन साम्प्रदायिक दंगों में बिना किसी दबाव के पक्षपात रहित रहकर दोषी व्यक्तियों को कठोर दण्ड दे। दूसरे, देश के कानून धर्म-विशेष पर आधारित न हों। जैसे—हिन्दू तो बहु-विवाह निषेध के कानून से बद्ध है, किन्तु मुसलमान नहीं। तीसरे, भारत के नागरिक होने के नाते सब में भारत के प्रति मातृभूमि, पितृभूमि तथा पुण्यभूमि के रूप में श्रद्धा उत्पन्न की जाए। चौथे, सब लोगों से समान रूप से भारत की पुरातन सांस्कृतिक तथा राष्ट्रीय-धारा में एकरूप होने की ललक जागृत की जाए। पाँचवें, अल्पसंख्यकों का राजनीतिक संरक्षण बन्द कर दिया जाए।

(328) भारत के लिए लोकतन्त्र की सार्थकता

संकेत बिंदु —(1) विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र (2) मतदाताओं की उदासीनता (3) भारत में कार्यपालिका और न्यायपालिका (4) कार्यपालिका और समाचार पत्र (5) उपसंहार।

भारत लोकतन्त्रात्मक देश है। यहाँ अब्राहम लिंकन की परिभाषा के अनुसार, 'जनता के लिए, जनता द्वारा, जनता की सरकार' शासन रत है। लोकतन्त्र के चारों स्तम्भ—न्यायपालिका, कार्यपालिका, समाचार-पत्र तथा विधायिका, यहाँ स्वतन्त्र हैं। लोकतन्त्र की आधारशिला चुनाव है। यहाँ चुनाव भी पाँच वर्ष में नियमित रूप में होते हैं। लोकतन्त्र में व्यक्ति की स्वतन्त्रता का अधिकार भी व्यक्ति को प्राप्त है। इस प्रकार भारत में पूर्ण लोकतन्त्र है।

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतन्त्रात्मक राष्ट्र है। यहाँ अब हर अठारह वर्षीय पुरुष और महिला को निर्वाचन में वोट देने का अधिकार है। (पहले मतदान की आयु इक्कीस वर्ष थी।) यह कितनी बड़ी उपलब्धि है, भारत के लोकतन्त्र की। पर भारत के चालीस प्रतिशत् मतदाता अनपढ़ हैं, अशिक्षित हैं। लगभग दस प्रतिशत ऐसे मतदाता हैं, जिनकी आयु 18 से 20 वर्ष तक है। इसको भारतीय-सरकार विवाह के दायित्व-वहन करने के अयोग्य समझती है, पर मतदान के लिए नहीं। अमेरिका के राष्ट्रपति कैनेडी ने कहा था 'जनतंत्र' में एक मतदाता का अज्ञान सबकी सुरक्षा को संकट में डाल देता है।' भारत में तो 40 प्रतिशत से अधिक मतदाता 'वोट' के महत्त्व से अपरिचित हैं। ऐसी स्थिति में लोकतन्त्र की सार्थकता पर प्रश्न-चिह्न लग जाता है।

भारत का अधिकांश मतदाता जब 'वोट' के महत्त्व को नहीं समझते तब वह पैसे से खरीदे जाते हैं। मतदाता जाति-बिरादरी के दवाब में मत देता है या शराब से मदमस्त किया जाता है। भय और आतंक की छाया में उससे वोट डलवाया जाता है। जाली वोट डलवाए जाते हैं। 'बूथ कैप्चरिंग' की जाती है। मतों की गणना में गड़बड़ करवाई जाती है। प्लेटो के मतानुसार—"जहाँ मतदाता मूर्ख है, वहाँ उसके प्रतिनिधि धूर्त होंगे।" ऐसे धूर्त प्रतिनिधियों के कारण ही बर्नार्ड शॉ को कहना पड़ा, "सच्चा देश-भक्त और त्यागी नेता चुनाव के रेगिस्तान में निरर्थकता की फसल बोते-बोते दम तोड़ देता है और धूर्त एवं छली व्यक्ति मैदान मार लेता है।"

अज्ञेय जी का कहना है, "जनतन्त्र व्यवहारतः विश्वास या आस्था के ही सहारे चलता है।" और भारत में शीर्ष नेताओं के जनतन्त्र के प्रति विश्वास और आस्था का हाल यह है कि उनके 'राजनीति-शास्त्र कोश' में ये दोनों शब्द हैं ही नहीं। चौधरी चरणसिंह तथा श्री चन्द्रशेखर का प्रधानमन्त्री बनना आस्था या विश्वास की गला-घोट् प्रवृत्ति का ही प्रतीक है। इनको प्रधानमन्त्री बनाने वाली तथा इनकी सरकारों की शैशवकाल में 'जघन्य हत्या'

करने वाली कांग्रेस है। श्री देवगौड़ा और इन्द्रकुमार गुजराल का प्रधानमन्त्री बनना और शीघ्र ही पद-च्युत होना इसी परम्परा की एक कड़ी है। जहाँ 'व्यक्ति' तथा 'पार्टी-स्वार्थ' से राष्ट्र का लोकतन्त्र चलता हो वहाँ लोकतन्त्र की सार्थकता कैसी ?

भारत का प्रधानमन्त्री लोकतन्त्रात्मक पद्धति से इस पद को प्राप्त करता है, परन्तु प्रधानमंत्री बनने के बाद उसमें तानाशाह की आत्मा जाग्रत हो जाती है। (इन्दिरा गाँधी और राजीव गाँधी में यही प्रवृत्ति रही है।) किसी भी निर्वाचित मुख्यमन्त्री को बार-बार बदलना, प्रान्तीय सरकारों के कार्य में हस्तक्षेप करना, मंत्रि-परिषद् में मनमाना फेर-बदल करना, बिना परामर्श राज्यपालों की नियुक्ति करना, सम्बन्धित राज्य की सहमति के बिना राष्ट्रीय स्तर पर समझौते करना, संसद् को अपनी मर्जी का चाबी-भरा खिलौना समझना, लोकतन्त्र की आड़ में जनतन्त्र की हत्या ही तो है।

लोकतंत्र में न्यायपालिका की स्वतंत्रता अनिवार्य है, किन्तु भारतीय केन्द्रीय सत्ता 'कमिटेड जूडीशरी' (प्रतिबद्ध न्यायपालिका) की हिमायती रही है। न्यायाधीशों की नियुक्ति में राजनीतिक रुचि निर्णय लेती है। सरकारी निर्णय या नीति के विरुद्ध निर्णय देने वाले न्यायाधीशों की पदोन्नति रोककर या स्थानान्तरित करके उन्हें सबक सिखाया जाता है। आम सभाओं और संसद् में उनकी आलोचना होती है। उनके चरित्र पर लांछन लगाए जाते हैं, तब न्यायपालिका की स्वतन्त्रता का प्रश्न ही नहीं उठता।

भारत की कार्यपालिका लोकतन्त्र की जड़ खोदने में लगी है। प्रशासन की सुस्ती, भ्रष्टाचार, लालफीताशाही, प्रशासनिक अधिकारियों का प्रमाद और निर्णय लेने में बुद्धि की कुंठा, सबने मिलकर लोकतन्त्र को ठेस पहुँचाई है। देश में बढ़ती अराजकता, आतंकवाद तथा स्वच्छन्द प्रवृत्ति प्रशासन की असफलता का द्योतक है। जब प्रशासन लूला-लंगड़ा हो तो लोकतन्त्र की सार्थकता पर प्रश्न-चिह्न लगना स्वाभाविक है।

लोकतन्त्र का चतुर्थ स्तम्भ है समाचार-पत्र। विचारों की अभिव्यक्ति लोकतन्त्र की रीढ़ है। भारत में सत्ता के विरुद्ध समाचार-पत्रों को विचार-अभिव्यक्ति का दण्ड भुगतना पड़ता है। 'इन्कम टैक्स' के छापों से तंग किया जाता है। सरकारी-विज्ञापन न देकर आर्थिक कमर तोड़ी जाती है। प्रतियाँ जब्त करके विचारों की अभिव्यक्ति रोकी जाती है। मुकदमे ठोक कर परेशानी पैदा की जाती है। कार्यालयों पर प्रदर्शन करके, तोड़-फोड़ करके, संवाददाताओं को पिटवाकर, जेल भेजकर तथा मरवा कर उनका मनोबल तोड़ा जाता है। जब लोकतन्त्र का चतुर्भ स्तम्भ ही कमजोर हो जाएगा तो लोकतन्त्र की स्थिति विडम्बना बनकर रह जाएगी।

लोकतन्त्र भारत का सुहाग चिह्न है, ठीक उसी प्रकार से जैसे मंगलसूत्र, बिछवे या सिन्दूर धारण किए हुए स्त्री को देखकर पता चलता है कि उसका पति जिन्दा है। पति गूँगा, बहरा, अपाहिज हो, क्षय रोग से ग्रस्त हो, उससे हर तरह का संवाद खत्म हो चुका हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। औरत है तो सधवा ही। ठीक उसी प्रकार संविधान को स्थगित करके, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को हर कर, आपत्काल लगाकर तथा लोकतन्त्र के चारों स्तम्भों

को कमजोर करके, उनका मनोबल तोड़कर भी भारत में लोकतन्त्र है तो जीवित। यदि इस आत्मघाती, विक्षिप्त और प्रज्ञा-विहीन लोकतन्त्र में भारत का हित है तो भारत में लोकतन्त्र की सार्थकता को स्वीकारना होगा।

(329) लोकतन्त्र और चुनाव

संकेत बिंदु—(1) लोकतंत्र और चुनाव अन्योन्याश्रित (2) लोकतंत्र और तानाशाही में अंतर (3) चुनाव राजनीतिक पार्टियों के शक्ति-परीक्षण का अखाड़ा (4) चुनावों का दुरुपयोग (5) उपसंहार।

लोकतन्त्र और चुनाव अन्योन्याश्रित हैं। बिना चुनाव के लोकतन्त्र राजतन्त्र बन जाता है। चुनाव लोकतन्त्र रूपी रथ की धुरी है; लोक-निष्ठा का प्रतीक है; जनता का अपने द्वारा अपने लिए शासकों का चयन है। पं. जवाहरलाल नेहरू ने इससे आगे एक और कदम बढ़ाते हुए कहा था, ''लोकतन्त्र में चुनाव राजनीतिक शिक्षा देने का विश्वविद्यालय है।''

अमेरिका के विख्यात राष्ट्रपति श्री अब्राहम लिंकन ने लोकतन्त्र का अर्थ बताया है—''जनता के हेतु, जनता द्वारा, जनता का शासन।'' जनता का शासन तभी होगा, जब जनता शासन चलाने के लिए अपने प्रतिनिधि चुनेगी। प्रतिनिधि चुनने की क्रिया चुनाव पर अवलम्बित है। अत: लोकतन्त्र में चुनाव का महत्त्व सर्वोपरि है।

लार्ड विवरेज ने लोकतन्त्र और तानाशाही शासन में अन्तर स्पष्ट करते हुए लिखा है, ''लोकतन्त्रीय और तानाशाही में अन्तर नेताओं के अभाव में नहीं है, वरन् नेताओं की बिना हत्या किए हुए बदल देने में है। शान्तिपूर्वक सरकार बदल देने की शक्ति लोकतन्त्र की अनिवार्य शर्त है।'' यह शर्त पूरी होती है—चुनाव द्वारा। 1975 के आपत्काल के अनन्तर 1977 में भारत में शान्तिपूर्वक शासन-बदल चुनाव की शक्ति का सबसे बड़ा प्रमाण है। इसी प्रकार 1984 के महानिर्वाचन में चुनाव की महाशक्ति एक बार फिर प्रकट हुई है, जिसने कांग्रेस (इ) को लोकसभा में चार सौ एक सीटें प्रदान करके प्रधानमन्त्री राजीव गाँधी के प्रति अद्वितीय आस्था व्यक्त की है।

चुनाव का अर्थ है प्रत्याशियों का जनता के दरबार में पहुँचकर अपने तथा दल के प्रति जनता का विश्वास अर्जित करना। अपनी नीतियों, सिद्धान्तों, कार्यों के प्रति जनता की स्वीकृति प्राप्त करना। शासन करने के ढंग तथा राष्ट्र-कल्याण के लिए प्रस्तुत योजनाओं पर जनता की स्वीकृति की मोहर लगवाना।

चुनाव राजनीतिक दलों के लिए अपनी नीतियों तथा सिद्धान्तों के प्रचार का सरल माध्यम है, जनता तक अपनी बात पहुँचाने का बेरोक-टोक साधन है। विपक्षी दलों द्वारा सरकार के क्रिया-कलापों की शल्य-क्रिया करने का स्वर्ण अवसर है।

चुनाव के समय विद्यमान सरकार के लिए चुनाव उसके गत शासन-काल के क्रिया-

कलापों का प्रश्न-पत्र है। उसकी गलत नीतियों के कारण राष्ट्र को पहुँची क्षति का विवरण प्रस्तुत करने वाली उत्तर-पुस्तिका है। उनकी आपा-धापी, कुटुम्बपरस्ती, गलत ढंग से धनाढ्य बनने के मूल्यांकन का अवसर है तो अपने सुकर्मों की हुंडी को भुनाने का उचित अवसर भी है।

चुनावी-चरित्र पर सारगर्भित टिप्पणी बर्नार्ल्ड शॉ तथा प्रोफेसर लास्की की दिलचस्प बातचीत में समझिए--

बर्नार्ड शॉ—"जिसे आप लोकतन्त्र कहते हैं, वह असल में धूर्ततन्त्र है।"

प्रोफेसर लास्की—"लोकतन्त्र को धूर्ततन्त्र मानना सत्य का अपमान है।"

इस पर शॉ ने शैतान की-सी मुस्कान से लास्की की ओर देखा और सफाई पेश की, "प्रोफेसर, क्या आपको प्लेटो का यह कथन याद है कि जहाँ मतदाता मूर्ख हैं, वहाँ प्रतिनिधि धूर्त होंगे।"

प्रसिद्ध विद्वान् बर्क को कहना पड़ा, "लोकतन्त्र की मूल बीमारी यह है कि धूर्तता और मूर्खता रूपी दो पाटों की चक्की में न्याय और ईमानदारी आटे की तरह पिस गए हैं।"

आज की भारतीय राजनीति में, विशेषकर चुनाव के मध्य, प्रेम के तौर-तरीके खरगोश के सींग बन जाते हैं। क्यों न हो ? आखिर कितने वायदों को चेनना के ऊँट पर लादना पड़ता है, कितनी मिथ्याओं पर धर्म का मुलम्मा चढ़ाना पढ़ता है, सच्चाई से कितनी बार ईमान निचोड़ देना पड़ता है। अकबर इलाहाबादी का व्यंग्य साकार हो उठता है—

नयी तहज़ीब में दिक्कत, ज़्यादा तो नहीं होती।
मजहब रहते हैं, क़ायम, फ़क़त ईमान जाता है॥

देश में शहद और दूध की नदियाँ बहाने की क़समें खा-खाकर चुनाव का धर्मक्षेत्र या कुरुक्षेत्र जीतने वाले ये नेता स्वयं के लिए सबसे बड़ा बोझ बन जाते हैं। ऐसे लोकतन्त्र पर वज्र नहीं गिरेगा, तो कहाँ गिरेगा ?

चुनाव धन, बोगस वोटिंग तथा मृगमरीचिकी नारों के बल पर लड़ा जाता है। जाति, धर्म और सम्प्रदाय के नाम पर जीता जाता है। भारत का 40 प्रतिशत मतदाता आज भी अशिक्षित है। अशिक्षित मतदाता से सोच-समझकर मतदान की आशा की भी कैसे का जा सकती है ? यही कारण है कि सच्चा देश-भक्त और त्यागी नेता चुनाव के रेगिस्तान में निरर्थकता की फसल बोते-बोते दम तोड़ देता है तथा धूर्त एवं छली व्यक्ति मैदान मार जाते हैं।

लोकतन्त्र तभी सफल रह सकता है जब चुनाव निष्पक्ष हों। धन, धमकी, जाति, कुल, सम्प्रदाय और धर्म के नाम पर पर वोट (मत) न डाले जाएँ। जन-प्रतिनिधि सच्चाई और ईमानदारी से राष्ट्र की सेवा करने वाले हों। तब चुनाव लोकतन्त्र के लिए युद्ध नहीं, तीर्थ-यात्रा बन जाएगा, पर्व बन जाएगा। पानीपत या कुरुक्षेत्र का रणक्षेत्र मैदान नहीं, प्रयाग का पुनीत संगम बन जाएगा।

(330) भारत में जातिवाद

संकेत बिंदु— (1) जाति व्यवस्था की स्थापना (2) वर्तमान वर्ण व्यवस्था जन्मत: (3) ऋग्वेद में वर्ण व्यवस्था (4) ब्राह्मण ग्रंथों में वर्ण व्यवस्था (5) उपसंहार।

अंतरिक्ष, पृथ्वी और पाताल में ब्रह्माण्ड का विभाजन उसके शृंगार का परिचायक है। सृष्टि की उत्पत्ति, पालन और संहार में देवगण का कार्य-विभाजन सुचारु-सुव्यवस्थित सृष्टि-संचालन का कारण है। इसी प्रकार किसी भी राष्ट्र में केन्द्र, प्रांत, जनपद, नगर, ग्राम आदि में विभक्त शासन-योजना स्वस्थ शासन की अनिवार्य व्यवस्था है। पृथ्वी पर विभिन्न धर्मों की अवधारणा परमात्म-तत्त्व की प्राप्ति के विविध सत्य-पथ हैं। उसी प्रकार समाज का विभिन्न वर्णों (वर्गों) और जातियों में विभाजन सामाजिक व्यवस्था की श्रेष्ठता का अलंकरण ही है।

हिन्दू धर्म भारत का शाश्वत सनातन धर्म है। सृष्टि का आदि धर्म है। इस श्रेष्ठ धर्म के अनुयायियों को गुण और कर्म के अनुसार विभिन्न वर्णों में विभक्त कर हमारे समाज के निर्माता ऋषि-मुनियों ने अद्‌भुत सूझ-बूझ का परिचय दिया है। भगवान् कृष्ण ने श्रीमद् भगवद्‌गीता में कहा है, 'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्म विभागश:' अर्थात् मैंने गुण और कर्म के अनुसार ही चातुर्वर्ण्य अर्थात् जाति-व्यवस्था की स्थापना की है।

गुण और कर्म पर आधारित वर्ण-निर्णय में जब समस्याएँ उत्पन्न हुई होंगी और उनका समाधान समस्या से अधिक जटिल तथा विषम हो गया होगा तो भारतीय मनीषियों ने इसे जन्मत: स्वीकार कर लिया होगा। इस वर्ण-व्यवस्था के अनुसार ब्राह्मण की संतान ब्राह्मण, क्षत्रिय की संतान क्षत्रिय, वैश्य की संतान वैश्य तथा शूद्र की संतान शूद्र ही कहलाई। जन्मत: वर्ण-व्यवस्था में सभी वर्णों के कर्त्तव्य निश्चित हो गए। कर्त्तव्य द्वारा सबके लिए जीविका का प्रबन्ध हो गया। ब्राह्मण का धर्म-क्षेत्र, क्षत्रिय का राष्ट्र-क्षेत्र, वैश्य का व्यापार रक्षण-वर्धन और शूद्र का सेवा-क्षेत्र निश्चित हुए। बुद्धि, बल, सामर्थ्य, पुरुषार्थ पर एक व्यक्ति या जाति का अधिकार नहीं होता। अत: कालान्तर में इन निश्चित कार्य-क्षेत्रों में एक दूसरे का हस्तक्षेप होने लगा होगा, तो यह कार्य-विभाजन व्यवस्था भी भंग हो गई। फलत: अब चारों वर्णों के लोग अपनी सुविधा और जीविका, प्रारब्ध और पुरुषार्थ की दृष्टि से सभी कार्य स्वीकार करते हैं।

वर्तमान वर्ण-व्यवस्था जन्मत: है। सभी वर्णों के सदस्य जीवन के हर क्षेत्र में कार्य करने को स्वतन्त्र हैं। वैश्य कुल में उत्पन्न जयशंकर प्रसाद और मैथिलीशरण गुप्त आजन्म ब्राह्मण कर्म में लीन रहे। शूद्र-कुलोत्पन्न डॉ. भीमराव अम्बेडकर भारतीय संविधान निर्माता हुए। ब्राह्मण कुल में उत्पन्न जवाहरलाल और अटलबिहारी वाजपेयी ने राष्ट्र-रक्षा अर्थात् क्षत्रिय कर्म अपनाया। क्षत्रिय कुल में जन्मे मुंशी प्रेमचंद और महादेवी वर्मा ज्ञान

का दीप जलातें रहे अर्थात् ब्राह्मण कर्म में रत रहे।

ऋग्वेद के दशम मंडल के पुरुष-सूक्त में वर्ण-व्यवस्था का स्पष्ट उल्लेख अवश्य है। ''यज्ञ के लिए जिस परम पुरुष की परिकल्पना की गई थी, उसको किस-किस प्रकार गढ़ा गया? उसका मुख क्या था? उसकी बाहें क्या थीं? उसकी जाँघें क्या थीं? उसके पैर क्या थे?'' मंत्र 11 में इस प्रश्न का उत्तर दिया गया है—''ब्राह्मण उसका मुख था। क्षत्रिय उसकी बाहें, वैश्य उसकी दो जँघाएँ तथा दो पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए।'' पर यह पाश्चात्य दृष्टि से सोचने वालों को अपेक्षाकृत अर्वाचीन लगता है। उनके अनुसार सम्पूर्ण ऋग्वेद में वर्ण शब्द परवर्ती वर्ण-व्यवस्था के अर्थ में कहीं प्रयुक्त नहीं हुआ। ऋग्वेद में वर्ण शब्द रंग या प्रकाश अर्थ में अनेकश: प्रयुक्त हुआ है।

ऋग्वेद के उपरान्त अन्य तीनों वेदों—यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद एवं इन वेदों के विभिन्न ब्राह्मण ग्रंथों का समय उत्तर वैदिक काल के नाम से अभिहित होता है। इस काल में आकर 'वर्ण' शब्द का अर्थ रंग की अपेक्षा जाति अर्थ में सुनिश्चित रूप से प्राप्त होता है। इस युग में धार्मिक तथा सामाजिक क्षेत्रों में स्थिति, अधिकार, कर्त्तव्यों और कार्यों की दृष्टि से चारों वर्णों में परस्पर भिन्नता दिखाई देने लगती है।

ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रणयन के समय तक वर्णव्यवस्था इतनी सुदृढ़ हो गई थी कि देवों का भी विभिन्न वर्णों में विभाजन कर दिया। अग्नि एवं बृहस्पति देवता ब्राह्मण थे; इन्द्र, वरुण तथा यम देवता क्षत्रिय थे; वसु, रुद्र, विश्वेदेव तथा मरुत् विश् (वैश्य) थे एवं पूषन् शूद्र था।

बृहदारण्यक उपानषद् में चारों वर्णों की उत्पत्ति प्रगति के आधार पर वर्णित है (1/4/11/5) तो छान्दोग्योपनिषद् कहता कि पूर्व जन्म के कर्म ही व्यक्ति के वर्ण का आधार बन जाते हैं। (5/10/7)

जाति का सवाल सामाजिक-परिवर्तन और आर्थिक विकास की श्रेष्ठ बृहत्तर योजना थी। तथाकथित दलित और पिछड़ी जाति के बालकों को शिक्षित कर, उनकी अन्त:करण की चेतना जागृत कर, दिल और दिमाग के स्वाभाविक द्वार खोलने के स्थान पर आर्थिक सहयोग पर बल दिया गया। प्रत्यक्ष आर्थिक सहायता देकर तथा परोक्ष रूप में उनके लिए नौकरी तथा चुनावों में स्थान आरक्षित कर उनकी आर्थिक दशा को सुधारने का प्रयत्न किया गया। फलस्वरूप दस प्रतिशत दलित और पिछड़े जन ही इन 54 वर्षों में अपना जीवन सुधार पाए। दूसरी ओर, यह उन्नत और नव-घनाढ्य दलित और पिछड़ा वर्ग अपनी जाति के सामूहिक उद्धार से विमुख हो गया। वह अपनी सत्ता, अपना परिवार, अपने संबंधी वर्ग के हित में सम्पूर्ण जाति के दर्शन करने लगा। जाति-उत्थान का यह दृष्टिकोण ही उस जाति के लिए घातक है, जिसका राजनीतिज्ञ उत्थान करना चाहते हैं।

(331) भारत के दर्शनीय स्थान

संकेत बिंदु—(1) भारतीय सभ्यता और संस्कृति (2) ताजमहल, अजंता-एलोरा और दिलवाड़े के मंदिरों की भव्यता (3) महाबलिपुरम और लालकिला की सुंदरता (4) अन्य दर्शनीय स्थल (5) उपसंहार।

भारत एक महान् देश है। इसकी सभ्यता-संस्कृति की महत्ता के चिह्न इसके विशाल शरीर (भूभाग) को सुशोभित कर रहे हैं। कहीं यह धार्मिक आस्था के रूप मन्दिर बनकर प्रकट हुआ है तो कहीं स्थापत्य कला के रूप में और कहीं प्रकृति नटी की नाट्यशाला के रूप में। जिन्हें देखकर दर्शक विभोर हो जाता है, आत्मविस्मृत हो जाता है।

मन मोह लेती है देवतात्मा हिमालय की रम्य घाटियाँ; कन्याकुमारी का आकर्षण; केरल का जलस्वर्ग बैकवार्स, गोआ के अनूठे विश्वविख्यात समुद्रतट; विन्ध्याचल, सतपुड़ा के प्रपातों की नाट्यशाला; शिवालिक का योजना-तीर्थ भाखड़ा; अरावली की मनोरम झीलें, स्वप्नलोक कार्बेट राष्ट्रीय उद्यान; हरे-भरे मनभाते हिल स्टेशन (पर्वतीय स्थल); सदाबहार पहाड़ियों का महकता अंचल सह्याद्रि-नीलगिरि; तीर्थाभूत चारधाम; सप्तपुरी; शैल गुफाओं का आह्वान, महानगरों की महत्ता, दर्शनीयता तथा ताजमहल की अलौकिकता, जो पर्यटक की आँखों में साकार स्वप्न बनकर झूम जाते हैं।

विश्वप्रसिद्ध आगरे के ताजमहल को ही लीजिए। स्थापत्य-कला की दृष्टि से यह विश्व का एक महान् आश्चर्य माना जाता है। यह प्रेम का अमर प्रतीक है। सादगी और सौन्दर्य का अद्‌भुत मेल है।

इसी प्रकार अजन्ता-एलौरा की गुफाएं 2000 वर्ष पुरानी होते हुए आज भी इसकी 259 फुट ऊँची सीधी चट्टान पर उत्कीर्ण चित्र-कला दर्शकों को अपने सौन्दर्य से आकृष्ट और आनन्दमग्न कर लेती है। इनके अतिरिक्त कलात्मक सौन्दर्य के दर्शनीय स्थल हैं—भरहुत का स्तूप एवं काली की बौद्ध गुफा। कला और शिल्प का उत्कृष्ट उदाहरण है कोणार्क का 'सूर्यमंदिर'। बारीकी और तफसील में बेजोड़ है चेन्ना केशव मंदिर, बेलूर। वीरता और शौर्य के प्रतीक हैं चितौड़गढ़ के जय-स्तम्भ और कीर्ति-स्तम्भ।

माउंट आबू के दिलवाड़ा के जैन मंदिर, हिन्दू, बौद्ध, जैन मंदिरों का संगम-स्थल एलोरा की गुफाएँ, ग्वालियर का राजमहल तथा सास-बहू (सहस्रबाहु) मन्दिरों की पच्चीकारी देखते ही बनती है। श्रवणबेल गोला (कर्नाटक) में गोमतेश्वर की 57 फुट ऊँची विशाल महावीर जिन की प्रतिमा तथा सोमनाथपुरम् मंदिर, खजुराहो का 20 मन्दिरों का समूह जो भारी पेचीदगी होने पर भी सन्तुलित सौन्दर्य के प्रतीक हैं।

दिल्ली का लालकिला मुगलवैभव, शान-शौकत और ठाट-बाट का साक्षी है। दिल्ली की कुतुबमीनार स्थापत्य और शिल्प का उत्कृष्ट उदाहरण है। इसके पास ही वह प्रसिद्ध लौह-स्तम्भ है जो 1500 वर्षों में निरन्तर धूप-वर्षा सहकर भी अक्षुण्ण और जंग रहित है।

महाबलिपुरम् के सात पगोडाओं नाम से प्रसिद्ध मन्दिर कलात्मकता के चिह्न हैं। साँची (भोपाल) का स्तूप प्राचीनतम स्तूप है, इनके मुख्य द्वार पर जातक कथाएँ अंकित हैं। सर्वाधिक प्राचीन हैं सिरगुजा के भित्तिचित्र। 70 फुट ऊँची प्राचीन और अष्टभुज बुर्ज वाला आगरे का लालकिला। तिरुचिरापल्ली के श्री रंगम् का विष्णु मन्दिर। सोन नदी तट पर स्थित शेरशाह का मकबरा। ताजमहल की तुलना में प्राचीन हैं शिल्पकला के जैसलमेर के जैन मन्दिर।

भारत के कुछ अन्य दर्शनीय स्थलों की पहचान बना ली जाए। औरंगाबाद का कैलाश मन्दिर और बीवी का मकबरा। कश्मीर में भगवान् अमरनाथ की गुफा। तंजौर का बृहदेश्वर मन्दिर। कर्नाटक का वृन्दावन गार्डन्स। फतेहपुर सीकरी का बुलन्द दरवाजा और पंचमहल। हैदराबाद की चार मीनार। भुवनेश्वर के पास चिलका झील।

बम्बई के 'हैंगिंग-गार्डन्स', मालाबार हिल्स, प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूजियम, टावर ऑफ सायलेंस तथा गेटवे ऑफ इंडिया। जिला कोलाबा का इगिल्सवेस्ट (रायगढ़ का किला), अमृतसर का स्वर्ण-मन्दिर तथा दुर्गियाणा मन्दिर। बीजापुर की गोल गुम्बद। जयपुर का हवामहल और आमेर का किला। उदयपुर का जलमहल। आगरे की एत्माउद्दौला की दरगाह। पुरी (उड़ीसा) का जगन्नाथ मन्दिर। कर्नाटक के गरसोपा झरने। कन्याकुमारी का कन्याकुमारी मन्दिर तथा स्वामी विवेकानन्द स्मारक। छतरपुर का खजुराहो। बड़ौदा का लक्ष्मी विलास महल। बीकानेर का लालगढ़ महल। भुवनेश्वर के लिंगराज मन्दिर। उज्जैन का महाकालेश्वर मन्दिर। मदुरई का मीनाक्षी मन्दिर। जूनागढ़ के माउन्ट गिरनार का जैन मन्दिर। मद्रास का नटराज मन्दिर। श्रीनगर का निशात बाग, शालीमार बाग, डल झील। त्रिवेन्द्रम का पद्मनाभ मन्दिर। हेम्पी की उग्र नरसिंह जी की मूर्ति। तिरुपति का तिरुपति बाला जी मन्दिर। कलकत्ता का विक्टोरिया मैमोरियल तथा हावड़ा ब्रिज। दिल्ली में महात्मा गाँधी की समाधि राजघाट, नेहरू जी समाधि शांतिवन तथा लालबहादुर शास्त्री की समाधि विजयघाट के अतिरिक्त लक्ष्मीनारायण मन्दिर (बिड़ला मन्दिर) तथा जन्तर-मंतर।

आदि शंकराचार्य के चार मठों के दर्शन बिना दर्शनीय स्थलों की सूची का अभाव खलेगा। ये हैं—ज्योर्तिमठ (जोशी मठ, बदरीनाथ धाम), गोवर्धन पीठ (जगन्नाथ पुरी), शारदा मठ (द्वारिका) तथा श्रृंगेरी मठ (रामेश्वर)।

पुराणों की दृष्टि से सात मोक्षदायिनी पुरियों के महत्त्व को आज के वैज्ञानिक युग में भी नकारा नहीं जा सका, तो फिर क्यों न इनकी भी चर्चा कर लें—

अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काञ्ची, अवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता: मोक्षदायिका: ।।

माया अर्थात् हरिद्वार और अवन्तिका अर्थात् उज्जैन।

आज भारत अपना स्वरूप तेजी से बदल रहा है। भवन-निर्माण में शिल्पकला, स्थापत्यकला तथा अलंकरण-कला को महत्त्व दिया जा रहा है। बहुमंजली अट्टालिकाएँ, कलात्मक सौन्दर्य युक्त स्टेडियम (क्रीडांगण), यातायात के लिए विशाल और विस्तृत

पुल; विशाल बाँध; गगनचुम्बी दूरदर्शन टावर (दिल्ली) जैसे अनेक दर्शनीय स्थान भारत के सौन्दर्य को अलंकृत करेंगे, गौरव को द्विगुणित करेंगे, सैलानियों को आकर्षित करेंगे तथा पर्यटकों को मोहित करेंगे।

(332) भारत की विदेश-नीति

संकेत बिंदु—(1) विदेश नीति का उद्देश्य (2) नैतिकता का सिद्धांत अव्यहारिक (3) तटस्थता की नीति अव्यवहारिक (4) विदेश नीति के हथियार और सफलता (5) उपसंहार।

भारत की विदेश-नीति का उद्देश्य यह रहा है कि अगणित बलिदानों से अर्जित हमारी स्वाधीनता चिरंजीवी रहे, हमारी अखंडता तथा एकता अक्षुण्ण रहे और अपने देश में अपनी प्रकृति, प्रतिभा तथा परम्परा के आधार पर अपना वर्तमान और भविष्य गढ़ने का हमारा अधिकार सुरक्षित रहे।

राष्ट्रीय-हितों का संरक्षण और संवर्द्धन आन्तरिक राजनीति के घात-प्रतिघातों, उतार-चढ़ावों तथा संसदीय विवादों के आक्रमणों से परे विदेश-नीति को एक ऐसी निरन्तरता प्रदान करते हैं, जो जड़ नहीं, गतिमान् होती है; परिस्थिति-निरपेक्ष नहीं, समाज-सापेक्ष होती है। इसलिए राजनीति में कोई स्थायी मित्र या स्थायी-शत्रु नहीं होता; स्थायी होता है तो केवल 'राष्ट्रीय हित'।

भारत विकासशील राष्ट्र है। उसे विकास के सोपानों पर चढ़कर अपनी समृद्धि करनी है, इसलिए उसे चाहिए विश्व-शांति। विश्व-शांति के लिए चाहिए राष्ट्रों के बीच मेल-मिलाप, विश्वास और सहयोग की भावना का संवर्द्धन। इससे राष्ट्रों के बीच तनाव दूर होंगे, संघर्ष का खतरा टलेगा।

विदेश-नीति में नैतिकता का सिद्धांत अव्यवहार्य है। भारत ने जब भी नैतिकता का पल्ला पकड़ा, उसे हानि हुई। भारतीय सेना के बढ़ते चरण जब कश्मीर को आजाद करवा रहे थे तो पंडित नेहरू ने युद्ध-विराम करके कश्मीर का 40 प्रतिशत भाग पाकिस्तान के पास रहने दिया। 1971 के भारत-पाक युद्ध में विजयी भारत नैतिकता के कारण शिमला समझौता में हार गया। अरबों, फिलिस्तीनियों तथा मुस्लिम राष्ट्रों का प्रबल पक्षधर बनकर भारत ने पश्चिमी राष्ट्रों की सहानुभूति खो दी। लीबिया के आक्रमण में ज्यादा चूँ-चपड़ करने का परिणाम हमारी आंतरिक स्थिति पर पड़ा। विदेशमंत्री बलिराम भगत को सरकार से हटना पड़ा। श्रीलंका में हस्तक्षेप करके हमें आर्थिक, सैनिक तथा सम्मान की दृष्टि से हानि ही नहीं उठानी पड़ी, श्री राजीव गाँधी की बलि भी चढ़ानी पड़ी।

हमारी तटस्थता की नीति सिद्धांततः सुन्दर है, पर व्यावहारिक रूप में कुरूप है। अमरीका और भारत के बुनियादी हित टकराते हैं, इसलिए अमरीका की आँख की किर-किरी भी हमारे लिए जिहाद खड़ा करने का कारण बन जाती है। जबकि रूस खंडित हो

चुका है और अमरीका विश्व की एकमात्र प्रबल शक्ति बन गया है। वह भारत को पग-पग पर नीचा दिखाता रहा है।

पड़ोसियों के प्रति हमारी विदेश-नीति सम्बन्ध सुधारने की रही है। सम्बन्ध सुधारने के लिए तनाव पैदा करके चलना तथा थोड़ा-सा डराना-धमकाना हमारी नीति रही है, ताकि पड़ोसी राष्ट्र परस्पर मिलकर हमारे लिए संकट पैदा न कर सकें। यह नीति भी असफल रही। पाकिस्तान, श्रीलंका, बंगलादेश, नेपाल—सभी पड़ोसी देशों से हमारे सम्बन्ध बिगड़ते चले गए। पाकिस्तान पहले पंजाब में अब खुलेआम कश्मीर में आतंकवाद के सहारे भयंकर नर-संहार और विद्रोह करवा रहा है।

हमारी विदेश-नीति का एक हथियार रंग-भेद नीति का विरोध भी है। हम अफ्रीकी राष्ट्रों की अल्पमत वाली प्रिटोरिया सरकार के विरुद्ध खूब आग उगलते हैं, अफ्रीकी जनता को अपना नैतिक समर्थन देते हैं, किन्तु परोक्ष रूप में लगता है कि कहीं हम कुछ खो तो नहीं रहे। राष्ट्रीय खेलों के आयोजन के लिए सियोल सम्मेलन में अफ्रीकी तथा कैरिबाई राष्ट्रों ने भारत को वोट नहीं दिए और भारत हार गया।

विदेश-नीति की दूसरी असफलता है विदेश-व्यापार में असन्तुलन। आयात और निर्यात में सैकड़ों करोड़ के अन्तर ने देश की अर्थव्यवस्था को चौपट कर दिया है। ऊपर से ओढ़ी हुई बहु-राष्ट्रीय कम्पनियों की चादर भारत के व्यापार को रसातल में पहुँचा देगी। भारत पर विदेशी ऋण उसके सम्मान को चोट पहुँचा रहा है, स्वाभिमान को गिरवी रख रहा है। ब्रिटेन से बेस्टलैण्ड हैलीकाप्टर और हरमीज विमानवाहक युद्धपोत की खरीद का सौदा हमारी दोषपूर्ण विदेश व्यापार नीति का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

वाजपेयी सरकार आने के बाद विदेश नीति में काफी परिवर्तन आया। आज विश्व में भारत की विदेश नीति का महत्त्व शनैः-शनैः बढ़ा। पिछले 52 वर्षों में पहली बार अमेरिका ने भारत के साथ गंभीरता से बातें कीं। अमेरिका के साम्राज्यवाद का भूत पूरे जोर-शोर से उतारा गया और विदेश मंत्री जसवंत सिंह ओझा थे। सितम्बर 2000 में प्रधानमन्त्री अटल जी की अमेरिका-यात्रा इसका प्रमाण है। कारगिल में संयम बरतकर अमेरिका और यूरोपियनों के साथ पींगें बढ़ाई गईं। पुरानी दुहाई देकर रूस से संबंध विकसित हुए। जापान जैसा समृद्ध राष्ट्र भारत से संबंध बढ़ाने को तत्पर हुआ। केवल एक ही वर्ष सन् 2000 में अमेरिका के राष्ट्रपति क्लिंटन, रूसी राष्ट्रपति पुतिन तथा विश्व के अनेक राष्ट्राध्यक्षों तथा प्रधानमन्त्रियों का भारत में आगमन भारत की विदेश नीति की महत्त्वपूर्ण सफलता है।

अमिताभ भट्ट के शब्दों में—"अब भारत की विदेश नीति नैतिकता परक राजनीति से व्यावहारिक राजनीति की ओर बढ़ रही है।" "विदेश मंत्री जसवंतसिंह के शब्दों में "राष्ट्र की राष्ट्रीय स्मृति दोबारा प्राप्त कराना ही विदेश-नीति का काम है।" परिणामतः कई देशों में भारत की छवि निखरी है और कई दोस्त बने हैं, बन रहे हैं।

(333) विश्व शांति और भारत

संकेत बिंदु—(1) संसार की समृद्धि और प्रगति का सूचक (2) विश्व शांति का प्रबल समर्थक (3) हमारे पड़ोसी देश (4) भारत विश्व के अनेक देशों का ऋणी (5) उपसंहार।

विश्व-शांति संसार की समृद्धि और प्रगति की सूचक है। मानव कल्याण के लिए नित्य प्रति चिन्तन और अन्वेषण का उद्गम है। विश्व के राष्ट्रों में परस्पर प्रबल सहयोग की कामना है। विकासशील देशों के अपने पाँव पर खड़े होने की सहायता की शर्त है। नए-नए शस्त्रास्त्रों की खोज और निर्माण का कारण है। औद्योगिक प्रगति और हरित क्रांति का माध्यम है।

भारत वैदिककाल से ही 'सर्वे भवन्तु सुखिन; मर्वे सन्तु निरामया:' (सब सुखी हों तथा सब नीरोग हों) की कामना करता आया है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' उसका सिद्धांत वाक्य है। अहिंसा का वह प्रचारक है। त्याग और परोपकार की भावनाएँ उसको घुट्टी में मिले हैं। 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' उसका लक्ष्य है।

भारत विश्व-शांति का प्रबल समर्थक है। विश्व के किसी भी भाग में युद्धरत देशों के मध्य वह सन्धि करवाने के लिए सदा तत्पर रहता है। भारत राष्ट्रों के मतभेदों को वार्ता द्वारा निबटाने का पक्षपाती है। शीत-युद्ध तथा शस्त्र-युद्ध का प्रबल विरोधी है। संहारक शस्त्रास्त्र-निर्माण के विरुद्ध है। वैज्ञानिक आविष्कारों को मानव-कल्याण के लिए प्रयोग का इच्छुक है।

विश्व-शान्ति की कामना करने वाला भारत विश्व-युद्ध को रोक नहीं सकता। विश्व-युद्ध तो क्या, परस्पर राष्ट्रों के युद्ध अथवा शीत-युद्ध को रोकना भी भारत की शक्ति और सामर्थ्य के बाहर है। वह शान्ति-स्थापनार्थ शोर मचा सकता है, शान्ति-मिशन भेज सकता है, निरर्थक दौड़-धूप कर सकता है, किन्तु अपने साहस और शक्ति के बल पर युद्धरत राष्ट्रों को धमकी नहीं दे सकता। न ही वह युद्धरत राष्ट्रों के बीच पड़कर आत्माहुति दे सकता है। भूतपूर्व अमरीकी राष्ट्रपति कैनेडी ने एक बार रूस को अल्टीमेटम दिया तो उस अल्टीमेटम पर रूस सिहर उठा। उसने अपनी सेनाएँ गंतव्य पर पहुँचने से पूर्व ही वापिस बुला लीं। यह है शान्ति-स्थापना के लिए सामर्थ्य का प्रमाण।

शान्ति सबल का मित्र है, तो निर्बल-दुर्बल से उसका कोई सम्बन्ध नहीं। भारत विश्व-शान्ति की भूमिका तब निभाएगा, जब वह पहले अपने पड़ोसी राष्ट्रों से निबट ले। पाकिस्तान के शस्त्र-संग्रह तथा उग्रवादियों के भेजने पर भारत गला फाड़-फाड़कर चिल्ला रहा है, पर कौन सुनता है? दूसरी ओर 1947 के आक्रमण में पाकिस्तान ने कश्मीर का 40 प्रतिशत भाग दबा लिया था, जिसे हम आज तक हस्तगत नहीं कर सके।

हमारे द्वारा जन्मा तथा पाला-पोसा गया बंगलादेश आज हमें आँखें दिखाता है।

गंगाजल के बँटवारे का प्रश्न अनेक वर्षों से निबट नहीं पा रहा था कि उसने नवमूर द्वीप का झंझट खड़ा कर दिया। उधर, वह बिहारी मुसलमानों तथा बंगाली हिन्दुओं को भारत में भगा रहा है, उनकी सम्पत्ति जब्त कर रहा है। हमारे लिए सिरदर्द पैदा कर रहा है। अखबारी कागज सम्बन्धी लिखित समझौते पर वह मुकर सकता है और उसे खुश रखने के लिए हमने 'तीन बीघा' जमीन 1992 में उसे समर्पित भी कर दी हैं।

तीसरी ओर, हमारा एक पड़ोसी राष्ट्र श्रीलंका है। जिसने हमारे 'कच्चा टीबू' को हथिया लिया। तमिलों की नृशंस हत्या की और उन्हें अपने देश से निकाल दिया। वहाँ गृह-युद्ध की स्थिति उत्पन्न हुई, तो भारत ने शान्ति-सेना भेजी। सैंकड़ों सैनिकों की बलि, अरबों रुपयों की कमर-तोड़ हानि भी वहाँ शान्ति स्थापित नहीं करा पाई है, फिर शान्ति-सेना भी किसके विरुद्ध—भारतवंशी तमिलों के विरुद्ध। यह है भारत के सिर पर विश्व शान्ति का भूत। जिसके कारण पूर्व प्रधानमन्त्री राजीव गाँधी की बलि चढ़ी।

फिर, भारत अपने को तटस्थ राष्ट्र कहता है, किन्तु रूस द्वारा हंगरी पर अधिकार तथा 1980 में तटस्थ राष्ट्र अफगानिस्तान में रूस के सशस्त्र हस्तक्षेप के विरुद्ध बोलने में उसका गला दुखता रहा। राजनीतिक भाषा में रूस का समर्थन 'मात्स्य न्याय' को उचित ठहराता है। कहाँ रही हमारी तटस्थता ?

भारत विश्व के अनेक राष्ट्रों का ऋणी है। कर्जदार राष्ट्र अपने को कर्जा देने वाले राष्ट्रों के बारे में निष्पक्ष मत नहीं दे सकता, उनके विरुद्ध मुँह नहीं खोल सकता। विश्व-युद्ध को रोक सकना तो भारत के लिए मरुभूमि में जल की चाह करते हुए मृत्यु का वरण करना है।

भारत के महान् औद्योगिक-संस्थान विश्व के अनेक राष्ट्रों की दया और कृपा पर जीवित हैं। उनका संचालन, संवर्धन और उत्पादन उनके इंगित पर होता है। अमेरिका द्वारा यूरेनियम-सप्लाई की रोक ने भारत की असमर्थता को नग्न कर दिया था। यदि ये राष्ट्र चाहें तो कुछ क्षणों में बिना युद्ध, बिना शस्त्र भारत के उत्पादन को ठप्प कर सकते हैं। अरब राष्ट्र चाहें तो 'तेल बन्द' की धमकी देकर भारत से नाक रगड़वा सकते हैं, उसे बैलगाड़ी के युग में धकेल सकते हैं। ऐसी स्थिति में दूसरों की दया और कृपा पर जीवित राष्ट्र विश्व-शान्ति का माध्यम कैसे बन सकता है ?

विश्व शांति में प्रत्यक्ष हस्तक्षेप न करके अप्रत्यक्ष रूप में विश्व शांति के लिए सहयोग तो दे सकता है। यह सहयोग है संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्त्वावधान में विभिन्न राष्ट्रों में भेजी जाने वाली शांति-सेना की भागीदारी।

अन्तर्राष्ट्रीय शांति सुरक्षा के लिए अपनी प्रतिबद्धता को स्थिर रखते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुरोध पर भारत ने लेबनान में संयुक्त राष्ट्र शांति-सेना तथा लेबनान में संयुक्त राष्ट्र अंतरिम सेना के कार्यों की भागीदारी के लिए सेना का एक जत्था भेजा। नवम्बर 1998 में दक्षिण लेबनान में भारतीय सेना की एक पैदल-वाहिनी को शामिल किया गया। इस प्रकार भारत संयुक्त राष्ट्र शांति सेना के कार्यों में सबसे बड़ा सहयोगी सिद्ध हुआ। इतना

ही नहीं, गृह-युद्ध से शप्त सियरा लियोन में भारत के तीन हजार सैनिक विश्वराष्ट्र शांति सेना में शामिल रहे हैं। भारतीय सैन्य, सैन्य पर्यवेक्षक और सामान्य पुलिस कार्मिक अभी अंगोला और पश्चिम सहारा, कुवैत तथा लेबनान, बोस्निया और हर्जेगोविना एवं हैती में शांति सेना के साथ कार्य कर रहे हैं।

(334) भारत में विज्ञान के बढ़ते चरण

संकेत बिंदु—(1) सफलताओं की लंबी परंपरा (2) कृषि और पशुपालन में अनेक अनुसंधान (3) औद्योगिक और ईंधन क्षेत्र में क्रांति (4) ज्ञान और कम्प्यूटर के क्षेत्र में अग्रणी (5) उपसंहार।

''भारत की विज्ञान के क्षेत्र में प्राचीन काल की उपलब्धियों से लेकर इस शताब्दी में प्राप्त की गई सफलताओं की एक लंबी एवं अद्वितीय परंपरा रही है। स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले शताब्दी का भाग अधिकतर विशुद्ध अनुसंधान से संबंधित रहा है। स्वतंत्रता प्राप्त करने के समय हमारा वैज्ञानिक व तकनीकी ढाँचा विकसित विश्व की तुलना में न सुदृढ़ था, न ही व्यवस्थित। इसके फलस्वरूप हम अन्य देशों में उपलब्ध तकनीकी निपुणता व विशेषज्ञता पर निर्भर रहे। गत चार दशकों में, अपने राष्ट्र की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए एक ढाँचा व सामर्थ्य उत्पन्न कर लिया गया है, जिससे हमारी अन्य देशों पर निर्भरता घट गई है। सुविधाओं, सेवाओं व उत्पादों के विस्तृत क्षेत्रों को पूरा करने के लिए लघु से अत्यंत उन्नत प्रकार के विभिन्न उद्योगों की स्थापना हो चुकी है। अब हमारे पास विज्ञान के मूल और व्यावहारिक क्षेत्रों में हुई आधुनिकतम प्रगति से परिचित विशेषज्ञों का एक खजाना है, जो उपलब्ध प्रौद्योगिकियों में से चयन करने, नई तकनीकों को सहज ग्रहण करने और भविष्य में देश के विकास का ढाँचा तैयार करने में सक्षम है।''

चिकित्सा-क्षेत्र में भारत की प्रगति दर्शनीय है। मानव को जीवन प्रदान हेतु छोटे-मोटे आप्रेशन की बात छोड़िए, यहाँ तो हृदयारोपण तथा किडनी (गुर्दा) प्रत्यारोपण की सफल शल्यक्रिया हो रही है। कैंसर जैसी बीमारी भी भारतीय चिकित्सकों से भयभीत है। वे 'ट्यूब बेबी' उत्पन्न करने में समर्थ हैं। राष्ट्रीय स्तर पर 7 तथा एकांश स्तर पर 13 विभिन्न अनुसंधान केन्द्र मानव-जीवन की चिकित्सार्थ 580 परियोजनाओं पर शोधकार्य कर रहे हैं।

कृषि तथा पशुपालन के क्षेत्र में अनेक अनुसंधान परिषदें संलग्न हैं। कृषि-भूमि की उपजाऊ शक्ति बढ़ाई जा रही है। कीटनाशक दवाओं से खेती की रक्षा की जा रही है। वैज्ञानिक साधनों से अनाज और फलों की सघन खेती हो रही है। इतना ही नहीं शोध-कार्यों द्वारा इनकी नई-नई किस्में पैदा की जा रही हैं। कृषि विश्वविद्यालय देश को कृषि वैज्ञानिक प्रदान कर रहे हैं और अनुसंधान केन्द्र भारत भू को सस्य-श्यामला बनाकर अन्न से भरपूर कर रहे हैं। यही कारण है कि 100 करोड़ भारतीयों को आज भारत-भूमि अन्न देने में सक्षम है।

भारतीय सेना अधिक प्रभावकारी एवं श्रेष्ठ भारतीय शस्त्रों एवं उपकरणों से सज्जित है। नई किस्म की पर्वतीय तोप, अर्ध-स्वचलित राइफल, टैंक नाशक, सुरंग विस्फोटक, फील्ड आर्टिलरी रडार, चेतावनी रडार यन्त्र आदि अस्त्र-शस्त्रों के अतिरिक्त वायुयान एवं विशाल जलयानों का निर्माण भी भारतीय वैज्ञान की प्रगति की पहचान हैं।

औद्योगिक-क्षेत्र में भारतीय वैज्ञानिक संस्था G.S.I.R. की कृपा से भारतीय उद्योग में क्रान्ति का बिगुल ही वजा दिया है। फलस्वरूप देश में शीशा, चमड़ा, वस्त्र, रसायन, धातु, इलेक्ट्रॉनिक उपकरण जैसे उद्योगों का बहुत बड़े पैमाने पर विकास हुआ। उद्योग का आधार है मशीन। 'यांत्रिक इंजीनियरी अनुसंधान संस्थाओं' ने भारत में ही विशालकाय मशीनों का निर्माण कर न केवल उत्पादन ही बढ़ाया, अपितु विदेशी मुद्रा की भी बचत की है।

ज्ञान के क्षेत्र में पुस्तक तथा समाचार-पत्र प्रकाशनों की तकनीकी में गुणात्मक सुधार प्रदान कर घर-घर में ज्ञान का दीप जलाया। मुद्रण-कला में नई तकनीक ने प्रवेश कर क्रांति मचा दी है। मासिक या साप्ताहिक पत्र ही नहीं, दैनिक पत्र भी रंगीन आधुनिक साज-सज्जा से छपने लगे हैं।

कम्प्यूटर के क्षेत्र में भारत विश्व का अग्रणी राष्ट्र है। सुपर पावर कम्प्यूटर दस लाख का निर्माण सर्वप्रथम भारत में ही हुआ है। विश्व के सर्वोत्तम सुपर कम्प्यूटरों में से एक 'फ्लोसोलव्र एम.के. 3' है। इसका प्रयोग मानसून गतिविधि, रचना संबंधी यंत्र विद्या, प्रतिबिम्बों के प्रसंस्करण तथा क्रिस्टल विद्या में अत्यधिक तथा तेज गणनाओं के लिए किया जाता है।

प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भी भारत निरन्तर प्रगतिशील है। जिन उत्पादों का सफलतापूर्वक उत्पादन और विपणन किया गया, उनमें पहली बार जेनेटिक इंजीनियरिंग से बनाया गया टीका, मक्के के भूसे से बना 'जैव कीटनाशक', सूर्य मीन ब्रांड का विपचिण पदार्थ, तपेदिक के इलाज में प्रयुक्त औषधि के निर्माण में प्रयुक्त होने वाले महत्त्वपूर्ण वैकल्पिक औषधि 'इंटरमीडिएट डी.एल. 2' अमीनो बुटानोल; सिफलोसप्रिन, एंटीबायोटिक की खाने की दवाई, 'सिफीक्सीम तथा रिंकबीनेट हेपिटाइट्स-बी' टीका शामिल हैं। पूर्ण स्वदेशी कम्पोजिट से बना दो सीटों वाला प्रशिक्षण विमान 'हंस' के प्रवर्तन के साथ भारत में नागरिक विमानन उद्योग की शुरूआत हुई और 11 मई 1998 को इसे तीन महान् प्रौद्योगिक उपलब्धियों में शामिल किया गया। इनके अतिरिक्त सैंकड़ों अन्य उत्पाद हैं जिनमें भारतीय तकनीक ने झंडे गाड़े हैं।

जीवन के हर क्षेत्र में भारतीय वैज्ञानिक अनुसंधान कर रहे हैं। वे भारतीय जीवन को सुख-समृद्धि की ओर तेजी से अग्रसर करने का प्रयास कर रहे हैं। उनमें बुद्धि है, बल है, जीवन है। वह पहाड़ों की छाती को फोड़ रहे हैं। समुद्र का मंथन कर रहे हैं, नभ को चीरकर जन-कल्याणकारी पदार्थ प्रस्तुत कर रहे हैं। अन्तरिक्ष में अपना स्थान निश्चित कर रहे हैं। भूमि को उर्वरा, सस्य-श्यामला बना रहे हैं। काल और स्थान क. : ·+ग दूर कर, यातायात और संचार-व्यवस्था को सरल और सुगम बना रहे हैं। प्रकृति को मानव की चेरी बनाकर, ऐश्वर्य और वैभव उसके चरणों में उँडेल देने के लिए कटिबद्ध हैं।

(335) भारत की अन्तरिक्ष-यात्रा

संकेत बिंदु—(1) भारत विकासशील राष्ट्र (2) भारत की अंतरिक्ष यात्रा की शुरूआत (3) भारतीयों की उपलब्धि (4) आधुनिक उपग्रहों का निर्माण (5) उपसंहार।

भारत विकासशील राष्ट्र है। निर्धनता, निरक्षरता, अन्धविश्वास, अज्ञानता, रूढ़िवादिता, बीमारी, गन्दगी और भूख यहाँ अभी व्याप्त हैं। विदेशों का बढ़ता अरबों रुपए का ऋण राष्ट्र को घुन की तरह चाट रहा है। यहाँ के राजनीतिज्ञ राष्ट्र को राजनीतिक छल-छन्द की धूल से धूलि-धूसरित करने को कटिबद्ध हैं, फिर भी भारत के वैज्ञानिक दिन-प्रतिदिन विशाल राष्ट्र की अनन्य समस्याओं को विज्ञान द्वारा हल करने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ हैं।

वैज्ञानिकों की वैज्ञानिक सूझ-बूझ, कार्य-कौशल, दृढ़ निश्चय और कार्य के प्रति समर्पण ने आज भारत को अन्तरिक्ष-संचार-युग में पहुँचा दिया है, जहाँ अब तक भूतपूर्व सोवियत संघ, कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान और विकासशील राष्ट्र इण्डोनेशिया ही पहुँच पाए थे।

18 मई 1974 को पहला सफल परमाणु-विस्फोट पोखरन (राजस्थान) से लेकर 26 मई 1999 की अंतरिक्ष सफल उड़ान में तीन उपग्रहों की सफल अन्तरिक्ष-स्थापना तक का 24 वर्षीय इतिहास भारत की अन्तरिक्ष विज्ञान सम्बन्धी प्रगति का क्रमबद्ध लेखा-जोखा है, कोई जादुई चमत्कार नहीं।

भारत द्वारा अन्तरिक्ष-यात्रा का प्रारम्भ लगभग छब्बीस वर्ष पूर्व किया गया था। तब भारत ने इस क्षेत्र में एक छोटा-सा पग उठाया था और थुम्बा से एक अमेरिकी राकेट छोड़ा था, किन्तु 19 अप्रैल, 1975 का दिन वह ऐतिहासिक दिन है, जब भारत में निर्मित प्रथम उपग्रह 'आर्यभट्ट' अंतरिक्ष कक्षा में स्थापित किया गया। उस दिन से विश्व में भारत की गणना 'उपग्रह-निर्माण' की क्षमता रखने वाले राष्ट्रों में होने लगी।

भारत ने अन्तरिक्ष में अगला पग रखते हुए 7 जून, 1979 को सोवियत संघ के एक केन्द्र से उपग्रह 'भास्कर' छोड़ा। यह उपग्रह भारतीय अन्तरिक्ष-अनुसंधान-संगठन द्वारा तैयार किया गया था। इसका उद्देश्य भू-पर्यवेक्षण और पृथ्वी के प्राकृतिक संसाधनों का पता लगाना था।

भारतीय वैज्ञानिकों ने अपनी प्रयोगशाला में निर्मित राकेट 'एस. एल. वी-3' के द्वारा 'रोहिणी' उपग्रह को 18 जुलाई, 1980 को पृथ्वी की कक्षा में स्थापित करके अन्तरिक्ष-विज्ञान के इतिहास में नया स्वर्णिम अध्याय जोड़ने में अद्‌भुत सफलता प्राप्त की।

19 जून 1981 को भारत के महान् वैज्ञानिकों ने अन्तरिक्ष विज्ञान में एक पग और बढ़ाया। पहला संचार उपग्रह 'एप्पल' (A.P.P.L.E.) यूरोपीय अन्तरिक्ष एजेंसी के सहयोग से अन्तरिक्ष में पहुँचाया गया। यह उपग्रह पूर्णतः भारतीय अन्तरिक्ष अनुसंधान संगठन' के

बंगलौर केन्द्र में 'भारतीय वैज्ञानिकों ने तैयार किया। इसके प्रक्षेपण से भारत में एक नए संचार-युग का आरम्भ हो गया जिससे आज देश को उपग्रह-संचार के लाभ मिल रहे हैं।

नवम्बर, 1981 में भारत ने दूसरा भू-पर्यवेक्षण उपग्रह 'भास्कर-2' सोवियत संघ की सहायता से अन्तरिक्ष में भेजा।

3 अप्रैल, 1984 को भारतीय सैनिक राकेश शर्मा ने रूस के अन्तरिक्ष-यान में अन्तरिक्ष में जाकर अनेक प्रयोग किए। उसके साथ ही रवीश मल्होत्रा ने भी अन्तरिक्ष-उड़ान का प्रशिक्षण प्राप्त किया था।

29 अप्रैल, 1985 को अमरीकी स्पेसलैब-३ पर स्थित भारतीय अन्तरिक्ष प्रयोगशाला, 'अनुराधा' ने अपनी एक सप्ताह की यात्रा में सूर्य तथा ब्रह्माण्ड में अन्य स्रोतों से निकलकर पृथ्वी के वायुमण्डल में आने वाली ऊर्जा-किरणों के गठन तथा तीव्रता का अनुसंधान किया।

इसके पश्चात् अन्तरिक्ष विज्ञान में भारत ने तेजी से कदम बढ़ाए। दुर्भाग्यवश 24 मई, 1988 को छोड़ा गया पहला 'ए. एस. एल. वी.' (A.S.L.V.) विफल रहा। 'ए. एस. एल. वी. : डी 2' 13 जुलाई 1988 को श्रीहरिकोटा से उड़ा और 54 सेकिण्ड बाद ही बंगाल की खाड़ी में गिरकर डूब गया। भारत के करोड़ों रुपए नष्ट करता हुआ, वैज्ञानिकों की अनुसंधान प्रतिभा की अक्षमता का परिचय दे गया।

देश में संचार, दूरदर्शन तथा आकाशवाणी-प्रसारण एवं मौसम सम्बन्धी जानकारी के लिए 12 जून 1990 को 'इन्सेट-1 डी' को अमेरिका के केपकानवरेज, फ्लोरिडा से अन्तरिक्ष में भेजकर अन्तरिक्ष में ही स्थापित किया गया। दूसरी ओर 29 अगस्त 1991 को दूर-संवेदी उपग्रह 'आई.आर. एस-1 बी' सोवियत संघ के बैकानूर अन्तरिक्ष केन्द्र से अन्तरिक्ष में प्रक्षिप्त किया गया। इस अति आधुनिक उपग्रह का डिजाइन भारत में ही तैयार किया गया था।

20 मई 1992 को ए.एस.एल.वी. (डी-3) को श्रीहरिकोटा के राकेट प्रक्षेपण केन्द्र से छोड़ा गया। यह उड़ान सफल रही और इस उड़ान से छोड़े गए उपग्रह को 450 किलो मीटर ऊँचाई पर भूस्थिर कक्षा में स्थापित कर दिया गया।

17 अगस्त 1992 को अन्तरिक्ष विज्ञान में भारत को एक नई सफलता मिली। स्वदेशी उपग्रह 'इन्सेट-2 ए' से प्रसारण शुरू हो जाने से दूरदर्शन लगभग 40 हजार डालर (12 करोड़ रुपए) की विदेशी मुद्रा की बचत करेगा।

23 जुलाई 1993 को भारत में निर्मित दूसरा बहुउद्देश्यीय 'इन्सेट-2 बी' को फ्रेंच गुयाना में कौरु से एक एरियन राकेट द्वारा प्रक्षिप्त किया गया। यह मौसम संबंधी सूचना, संचार-सम्पर्क और दूरदर्शन प्रसारण में सशक्त काम कर रहा है।

4 मई 1994 को 'ए.एस.एल.वी. : डी-4' के सफल प्रक्षेपण द्वारा 113 किलोग्राम के रोहिणी शृंखला के दूसरे उपग्रह 'स्रोत-सी' को पृथ्वी के कक्ष में स्थापित कर दिया। भारत के उपग्रह प्रक्षेपण कार्यक्रम में यह सफलता मील का पत्थर साबित होगी। लगभग

स्वदेशी तकनीक पर आधारित ए.एस.एल.वी. : डी-4 इस दिशा में भारत की आत्म-निर्भरता का परिचायक है।

प्रक्षेपण की सफलता जहाँ खगोलीय जानकारियों और वातावरण सम्बन्धी आँकड़े प्राप्त करने के बारे में नए दरवाजे खोलती है, वहाँ अमरीका और अन्य पश्चिमी राष्ट्रों को एक करारा जवाब भी है, जिन्हें भारत की वैज्ञानिक प्रगति नहीं भाती। भविष्य में अन्तरिक्ष कार्यक्रम के विकास की अत्यधिक संभावना हैं।

(336) भारत का परमाणु परीक्षण

संकेत बिंदु—(1) इतिहास में गौरव का दिन (2) पोखरण परीक्षण के लिए पृष्ठभूमि (3) उपकरणों का विस्फोट (4) अनेक देशों द्वारा भारत पर प्रतिबंध (5) उपसंहार।

11 मई 1998 का दिन भारतीय इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा, क्योंकि उस दिन विश्वव्यापी निन्दा, आलोचनाओं और आर्थिक प्रतिबन्धों का संकट उठाकर भी अटलबिहारी वाजपेयी सरकार ने पोखरन में परमाणु परीक्षणों को मूर्तरूप दिया। श्री अटलबिहारी वाजपेयी सरकार इन परीक्षणों का शौर्य दिखाकर गौरव का पात्र हो गई, क्योंकि श्री राव से गुजराल तक परमाणु परीक्षण की फाइल सभी प्रधानमन्त्रियों की मेजों पर हमेशा पड़ी रही, किन्तु वे शौर्य प्रकट करने का साहस नहीं जुटा पाए। परीक्षणों के पुरोधा चार वैज्ञानिकों—सर्वश्री आर. चिदंबरम् (चीफ डिजाइनर), ए. पी. जे. अब्दुलकलाम (प्रेरणा पुरुष, वर्तमान राष्ट्रपति), अनिल काकोडकर (असाधारण विशेषज्ञ) तथा के संथानम् (श्रेष्ठ समन्वयकार) के भारतवासी सदा कृतज्ञ रहेंगे, जिन्होंने भारत-राष्ट्र के भाल को विश्व प्रांगण में आत्म-गौरव से दीप्त किया, गर्व से ऊँचा उठाया।

10 अप्रैल 1998 को प्रधानमंत्री श्री अटलबिहारी वाजपेयी ने परमाणु-परीक्षण की स्वीकृति प्रदान की तो लगभग 100 वैज्ञानिकों और इंजीनियरों का दल पोखरन के लिए रवाना हो गया। परीक्षण का समय एक मास बाद तय किया गया।

इस सम्बन्ध में श्री राज चेंगप्पा लिखते हैं—पाँच परीक्षणों के लिए प्लूटोनियम के मूल भाग को जिस तरह से ढोकर लाया गया वह ठोस योजना का उदाहरण है। परीक्षणों से दस दिन पहले वायु सेना के ए-एन-32 विमान ने रात में मुंबई के सांताक्रुंज हवाई अड्डे से उड़ान भरी। उसमें रखे आधा दर्जन लकड़ी के क्रेटों की रखवाली कुछ स्टेनगनधारी कमांडो कर रहे थे। सेब रखने वाले बक्से से मिलते-जुलते उन क्रेटों में धातु की कवच के भीतर विस्फोटक श्रेणी के प्लूटोनियम के गोले रखे थे। देश के अग्रणी ऊर्जा संस्थान ट्रॉम्बे स्थित भाभा परमाणु ऊर्जा केन्द्र (बार्क) में तैयार एक गोले का वजन 5 से 10 किग्रा. के बीच था। दो घंटे बाद जोधपुर में हवाई अड्डे के बाहर खड़े ट्रकों में से एक में उन क्रेटों को रख दिया गया। इसे आम काफिला दिखाने के लिए अतिरिक्त सुरक्षा व्यवस्था नहीं

की गई और रात के अंधेरे में काफिला रवाना होकर पोखरन पहुँचा। पारंपरिक विस्फोटक डिटोनेटर और ट्रिगर पहले पहुँचा दिए गए थे। फिर वैज्ञानिकों ने उपकरणों के विभिन्न घटकों को जोड़ना शुरू कर दिया। अमेरिका के टोही उपग्रहों से बचने के लिए उन्होंने रात में ही ज्यादातर काम किए। मुख्य डिजाइनर चिदंबरम् ने सेना के ट्रक में रेगिस्तान में दो दिन तक थकाऊ सफर किया।

11 मई, सोमवार को सैनिकों ने मध्याह्न पूर्व पोखरन के खेतोलाई गाँव जाकर ऐलान किया कि कोई बड़ा गोला फटने वाला है, घर हिल सकते हैं, इसलिए घरों से बाहर आ जाएँ। एक गाँव से दूसरे गाँव जाने पर प्रतिबंध था। सड़कों पर यातायात अवरुद्ध कर दिया गया।

11 मई को ठीक 1 बजे विद्युत्धारा प्रवाहित कर दी गई। तभी अचानक तेज हवा चलने लगी। तापमान 43 डिग्री सेल्शियस तक पहुँच गया। दोपहर तक हवा रुक गई। टाइमर ने 3.45 पर तीनों उपकरणों का विस्फोट करा दिया।

जमीन में 200-300 मीटर नीचे 10 लाख डिग्री सेंटीग्रेट तक तापमान पैदा हुआ—सूरज के बराबर तापमान। करीब 1,000 टन की चट्टान या छोटी पहाड़ी फौरन भाप बन गई और चट्टान के नीचे धंसने के साथ ही उतनी चट्टान और पिघल गई। वह फौरन ठंडी हो गई और उसने रेडियोधर्मिता को रोक दिया। फुटबॉल के मैदान के बराबर की जमीन कई मीटर ऊपर उठ गई। देशभर में और वहाँ आसपास रखे दर्जनों भूकंपमापी यंत्रों ने फौरन परीक्षण को रेकॉर्ड करके उनकी पुष्टि कर दी।

यह विस्फोट एक नहीं, तीन थे—पहला, फिशन (विखंडन), दूसरा कम शक्ति वाला नाभिकीय और तीसरा थर्मोन्यूक्लियर नाभिकीय विस्फोट।

विश्व के कड़े विरोध, अमेरिका के आर्थिक तथा सैनिक-सहयोग प्रतिबंध; जापान, स्वीडन, डेनमार्क, हॉलैंड, नार्वे तथा नीदरलैण्ड द्वारा सहायता रद्द करने की घोषणा के बावजूद भी 13 मई 1998 को दोपहर 12.21 पर दो और परमाणु परीक्षण करके भारत ने अपनी परमाणु-परीक्षण शृंखला पूरी कर ली।

इस परीक्षण से रुष्ट होकर अमेरिका ने भारत आर्थिक तथा सैनिक सहयोग पर प्रतिबंध लगाया तो कनाडा ने भविष्य में मदद की बात खत्म की। स्वीडन ने सभी मदद बंद कीं। जापान ने मदद पिछले साल के स्तर पर बंद की तथा आस्ट्रेलिया ने अनुदान रोका, ऋण वार्ता रद्द की। भारत के विपक्षी दलों ने भी इस परीक्षण की निन्दा की। तथाकथित शान्ति-दल इसे अहिंसा का विरोधी बताने लगे।

भले ही भारत का विपक्ष और विदेशी राष्ट्र भारतीय परमाणु-परीक्षणों को जी भर कर कोसें, किन्तु अटल जी के शब्दों में यह तो कटु सत्य है कि, "इन परीक्षणों का सबसे बड़ा लाभ यही है कि इन्होंने भारत को शक्ति दी है, मजबूती दी है और आत्म-विश्वास दिया है।"

श्री ए.पी.जे. अब्दुल कलाम के शब्दों में, "अब हमारे पास परमाणु धमकियों का मुँहतोड़ जवाब देने की क्षमता है।" चीफ डिजाइनर श्री आर. चिदम्बरम् तो यह मानते हैं, "ताकत जगजाहिर होने का फायदा यह है कि उसका इस्तेमाल नहीं करना पड़ेगा।"

इसका लाभ भी सामने आने लगा है। अब लगभग ढाई वर्ष पश्चात् (2000 ई. का अन्त आते-आते) विश्व राष्ट्रों के आँखों के आगे आई धुन्ध छटने लगी है। उन्होंने भारतीय परमाणु परीक्षण की अनिवार्यता समझ ली है और आर्थिक प्रतिबन्धों को धीरे-धीरे समाप्त करना आरम्भ कर दिया है तथा ऋण व अनुदान देने पर लगा प्रतिबन्ध हटा दिया है।

(337) कारगिल-विजय

संकेत बिंदु—(1) आपरेशन विजय (2) कारगिल का इतिहास (3) पाकिस्तान की कारगिल क्षेत्र पर कुदृष्टि (4) पाकिस्तान की कूटनीति और भारत की विजय (5) उपसंहार।

कारगिल 'ऑपरेशन विजय' भारत के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखी जाने वाली विजय गाथा है। स्वतंत्र भारत के इतिहास में यह पहला अवसर है जब पाकिस्तान को बिना शर्त, बिना समझौते नियंत्रण-रेखा से पीछे हटना पड़ा, पलायन करना पड़ा। यह पहला अवसर है जब विश्व मंच के प्रबल सूत्रधार अमेरिका के राष्ट्रपति क्लिंटन के वार्त्ता-निमंत्रण को राष्ट्रीयता के पुरोधा पूर्व प्रधानमन्त्री अटलबिहारी वाजपेयी ने ठुकरा दिया। कूटनीति की चौसर पर भी विजय प्राप्त करके भारत को गौरवान्वित किया। विदेशनीति की विजय का यह पहला अवसर है जब पाकिस्तान के हिमायती अमेरिका और चीन ने भी उसका पक्ष लेने से इंकार ही नहीं किया, बल्कि उसे घुसपैठिए वापिस बुलाने की एकतरफा घोषणा करने को विवश होना पड़ा। यह पहला अवसर है जब ऑपरेशन-विजय के दिनों में भारत का मुसलमान राष्ट्रीय-धारा में बहता नजर आया और यह पहला ही अवसर है जब संघर्ष के समय भारत का विपक्ष अपनी सरकार की निन्दा कर दुश्मन के हौंसले बुलन्द करता रहा।

1948 के अंतिम चरण में भारतीय सेना ने जोजिला और कारगिल को मुक्त करा कर, लद्दाख को बचा लिया था। सेना जब स्कार्दू को मुक्त कराने के लिए बढ़ने लगी तो पं. नेहरू ने 1 जनवरी 1949 को युद्ध-विराम की घोषणा कर दी थी। परिणामत: कारगिल तो भारत के पास रहा, किन्तु उसके निकट पहाड़ी क्षेत्र और चोटियाँ जहाँ से कारगिल नगर और श्रीनगर लेह मार्ग को निशाना बनाया जा सकता है, पाकिस्तान के अधिकार में रह गए।

1964 में जब पाकिस्तान ने कच्छ पर आक्रमण किया तो भारतीय सेना ने बलिदानों की भारी कीमत देकर इन चोटियों को जिन्हें 'कारगिल हाइट्स' कहा जाने लगा था, अपने अधिकार में ले लिया और श्रीनगर-लेह मार्ग को सुरक्षित कर दिया। भारत के तत्कालीन प्रधानमन्त्री नेहरू की अदूरदर्शिता और भारत की विदेश-नीति और सुरक्षा-नीति में तालमेल न होने के कारण कच्छ समझौते के अंतर्गत इन चोटियों को फिर पाकिस्तान के अधिकार में दे दिया गया। 1965 के भारत-पाकिस्तान युद्ध के समय भारतीय सेना ने फिर इन चोटियों

को मुक्त करा लिया, परन्तु 1966 में हुए ताशकंद समझौते के अंतर्गत इन्हें फिर पाकिस्तान को दे दिया गया।

1971 के युद्ध में भारतीय सेना ने न केवल इन चोटियों को अपितु इनके साथ लगे हुए सियाचिन हिमनद तक का क्षेत्र फिर अपने अधिकार में ले लिया। इस युद्ध में भारतीय सेना ने पाकिस्तानी पंजाब प्रांत का लगभग पाँच हजार वर्ग मील क्षेत्र अपने अधिकार में ले लिया और पाकिस्तान के 93 हजार सैनिक भी बंदी बना लिए। तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने 'शिमला-समझौता' कर, न केवल 93 हजार पाकिस्तानी सैनिकों को लौटाया, अपितु विजित क्षेत्र भी लौटा दिए। कारगिल क्षेत्र भारत के पास रह गया।

पाकिस्तान की तभी से निरन्तर यह चेष्टा रही कि कारगिल क्षेत्र की चोटियों पर पुन: अधिकार कर लेह तथा हिमनद ग्लेशियर को श्रीनगर से मिलाने वाली सड़क को काट दिया जाए।

8 से 15 मई 1999 के बीच भारतीय गश्ती सैनिक दल ने कारगिल की पहाड़ियों पर घुसपैठियों को देखा और पाकिस्तान के इस षड्यंत्र को भाँपा कि वह पाकिस्तान-लेह-श्रीनगर सड़क सम्पर्क को काटना चाहता है। 26 मई तक सेना को यह भी विश्वास हो गया कि कारगिल, द्रास, बटालिक आदि क्षेत्रों में पंद्रह सौ तक घुसपैठिए जमे हुए हैं।

भारत ने पूर्ण तैयारी के साथ समूचे क्षेत्र पर हमला किया। भारतीय वायुसेना के लड़ाकू विमानों ने 18,000 फुट की उँचाई पर उड़कर जो कमाल दिखाया, वैसा चमत्कार भारतीय इतिहास के लिए अद्भुत था। दूसरी ओर, ग्लेशियर पोशाकों के अभाव में भी बहादुर पैदल सेना ने जो उत्साह, साहस और शौर्य प्रदर्शित किया, उसने अंततोगत्वा भारत का भाग्य ही बदल दिया।

पाकिस्तान ने भारत को पहले की तरह कूटनीति से पराजित करने का प्रयत्न किया। उसने अमेरिका और चीन का सहयोग लेने के प्रयास किए, किन्तु भारत की कूटनीति और प्रधानमन्त्री के नियंत्रण-रेखा पार नहीं करने के संयम ने विश्वमंच पर भारत की साख बढ़ा दी। परिणामत: विश्व-मंच से पाकिस्तान पर दबाव बढ़ा कि अपने घुसपैठियों को वापिस बुला ले। तब अमेरिका के राष्ट्रपति क्लिंटन ने दूरभाष से पूर्व प्रधानमन्त्री श्री अटलबिहारी वाजपेयी को बातचीत के लिए तुरन्त अमेरिका आने को कहा, किन्तु वाजपेयी जी ने उनका निमंत्रण अस्वीकार कर दिया। 'इस घुसपैठ के खिलाफ संयुक्त अभियान में भारतीय सेना ने लगातार सफलता हासिल करते हुए बटालिक, द्रास और मश्कोह घाटी के क्षेत्र में पहाड़ी चोटियों को मुक्त कराने में कामयाबी हासिल की। इसके पश्चात् भारतीय सेना ने एक निर्णायक कदम उठाते हुए 13 जून को सामरिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण तोलोलिंग चोटी पर फिर से अपना कब्जा कर लिया और तोलोलिंग के उत्तर में स्थित सैडल तथा प्वाइंड 4590 क्षेत्र को दुश्मन से खाली कराने में सफलता हासिल की। तोलोलिंग विजय अभियान उस समय पूरा हुआ जब 20 जून को भारतीय सेना ने प्वांइट 5140 पर कब्जा कर लिया।

4 जुलाई 1999 को सेना और वायुसेना के संयुक्त अभियान के फलस्वरूप भारतीय सैनिकों ने द्रास क्षेत्र में सबसे महत्त्वपूर्ण ठिकाने 'टाइगर हिल' की चोटी पर कब्जा करने में सफलता हासिल की। इसके पश्चात् 9 जुलाई के आते-आते पाकिस्तानी घुसपैठियों ने करगिल क्षेत्र से पीछे हटना शुरू कर दिया। भारतीय सेना ने बटालिक की महत्त्वपूर्ण चोटियों पर कब्जा करने के बाद पाकिस्तानी उग्रवादियों को पूर्ण रूप मे भारतीय क्षेत्र खाली करने के लिए 16 जुलाई की समय सीमा निर्धारित कर दी।

कारगिल, द्रास, बटालिक, प्वाइंट 5140, तोलोलिंग आदि पहाड़ियों पर भारतीय विजय और विश्व जनमत के दबाव में पाकिस्तान के तत्कालीन प्रधानमंत्री नवाज शरीफ ने 12 जुलाई 1999 के अपने टी. वी. भाषण में घुसपैठियों की वापसी की घोषणा की। 14 जुलाई 1999 को भारत के तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने 'ऑपरेशन विजय' की सफलता की घोषणा कर दी।

(338) भारत के निर्माण में राजनेताओं का योगदान

संकेत बिंदु—(1) राष्ट्र-निर्माण में गाँधी जी की भूमिका (2) देश का विभाजन और औद्योगिक विकास (3) संविधान का महत्त्व (4) देश-निर्माण में प्रधानमंत्रियों का सहयोग (5) राष्ट्र-निर्माण निरंतर चलने वाली प्रक्रिया।

स्वतन्त्र भारत को उन्नत रूप देने वाले राजनेताओं में सर्वप्रथम पूज्य महात्मा गाँधी को स्मरण किया जाएगा तो द्वितीय स्थान पर स्वतन्त्र भारत के भूतपूर्व उपप्रधानमन्त्री लौह पुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल को। पं. जवाहरलाल नेहरू स्वाधीन-भारत-निर्माण में तीसरे क्रम पर आते हैं।

भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के संचालक महात्मा गाँधी ने राष्ट्र-निर्माण में अभूतपूर्व योगदान दिया। इन्होंने देश को सत्य और अहिंसा का पाठ पढ़ाया। हरिजनों से प्रेम करना सिखाया। भारतवासियों में साम्प्रदायिक एकता का मंत्र फूँका। सर्व-धर्म समभाव के दर्शन करवाए। गाँवों में कुटीर-उद्योगों को प्रोत्साहन की प्रेरणा दी तो शहरों में स्वदेशी वस्तुओं को स्वीकार करने पर बल दिया। उपदेश से अधिक आचरण पर जोर दिया।

यद्यपि देश-विभाजन का आधार द्विराष्ट्रवाद-सिद्धान्त था। मुस्लिम बहुल प्रान्तों को मिलाकर पाकिस्तान निर्माण हो चुका था; फिर भी, गाँधी जी ने मुसलमानों को अपनाया। धर्म के आधार पर देश-स्वातन्त्र्य के दस्तावेज को तो स्वीकार किया, किन्तु भारत स्वतन्त्र होने पर इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया। देश को धर्म-निरपेक्षता का मन्त्र प्रदान किया।

भारत के औद्योगिक विकास का प्रारम्भिक श्रेय भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री पं. जवाहरलाल नेहरू को है। देश को आत्म-निर्भरता की दिशा में अग्रसर करने के लिए उद्योग-पथ को अपनाना अनिवार्य था। फलतः बड़े-बड़े बाँधों का निर्माण किया। पन-

बिजली परियोजनाएँ चालू कीं। लोहे, इस्पात और रासायनिक खाद्य-कारखानों का जाल बिछाया गया। देश को परमाणु-शक्ति के मार्ग पर चलने को प्रोत्साहित किया।

भारत की निर्धनता और निरक्षरता, अन्धविश्वास और अज्ञानता, रूढ़िवादिता, बीमारी, गन्दगी और भूख, इन सबको जड़मूल से उखाड़ फेंकने के लिए विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी (टेक्नोलोजी) की शरण में जाना जरूरी है। औद्योगिक, कृषि, चिकित्सा, प्रतिरक्षा, आदि अन्यान्य विविध क्षेत्रों में जो क्रमश: उन्नति हुई है, उसका सम्पूर्ण श्रेय पं. नेहरू को है।

देश-संचालन में संविधान का विशेष महत्त्व है। इसका श्रेय है संविधान सभा अध्यक्ष डॉ. राजेन्द्रप्रसाद के साथ-साथ विधानसभा निर्मात्री सात सदस्यीय समिति के अध्यक्ष डॉ. भीमराव अम्बेडकर को जाता है। 26 जनवरी 1950 से लागू भारत का अपना संविधान भारत-निर्माण में रीढ़ की हड्डी बनी, जिस पर देश खड़ा है, संचालित है और प्रगति की ओर अग्रसर है।

राजनेताओं में लोकनायक जयप्रकाश नारायण का भी देश-निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान है। एक ओर विनोबा का शिष्य बनकर उन्होंने भूदान तथा सर्वोदय द्वारा भूमिहीन किसानों, हरिजनों, पिछड़े वर्गों का उत्थान किया तो दूसरी ओर 14 अप्रैल 1972 को चम्बल घाटी के बर्बर दस्युओं का आत्म-समर्पण कराकर उन्हें सुनागरिक जीवन अपनाने को प्रेरित किया। तीसरी ओर अप्रैल 1974 में 'सम्पूर्ण क्रान्ति' का नारा देकर देश को मदांध शासकों के प्रति जनता को जागृत किया। 'जनता पार्टी' का जन्म इसी सम्पूर्ण-क्रांति-पीड़ा का सुफल था।

नेहरू जी के पश्चात् आने वाले प्रत्येक प्रधानमन्त्री ने देश-निर्माण में अपने ढंग से सहयोग दिया। श्री लालबहादुर शास्त्री ने 'जय जवान जय किसान' का उद्‌घोष देकर देश में सैन्य शक्ति तथा कृषि-विकास पर समान रूप से बल दिया तो श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने देश की चहुँ ओर प्रगति और विकास पर बल दिया। देश को आत्मनिर्भरता की ओर ले जाने के लिए एक ओर उद्योगों का जाल बिछाया तो दूसरी ओर शिक्षा के स्तर को ऊपर उठाने के लिए केन्द्रीय विद्यालय संगठन खड़ा किया। शिक्षा के व्यापक प्रचार-प्रसार के लिए मुक्त विश्वविद्यालय खोले। परिवार-नियोजन पर बल दिया। निर्धन वर्ग के हितार्थ 'जनता क्वार्टर्स' की नींव रखी। वैज्ञानिक प्रगति को और विशेष बल दिया। उपग्रह स्थापना उनकी देन है। श्री राजीव गाँधी ने इन्दिरा जी की नीतियों को आगे बढ़ाया। हाँ, विश्वनाथ प्रतापसिंह ने छोटे किसानों के दस हजार रुपए तक के ऋण माफ करके तथा उपज का मूल्य बढ़ाकर कृषि-विकास में योगदान दिया। अल्पमत सरकार के स्वामी नरसिंहराव ने बहुदेशीय विदेशी कम्पनियों को भारत-प्रवेश का निमंत्रण दिया। देश के सौभाग्य से पुन: एक आत्मविश्वासी चाणक्य-पुत्र प्रधानमन्त्री अटल बिहारी वाजपेयी मिला जिसने विश्व के विकसित और अमेरिका जैसे शक्तिशाली राष्ट्र के रोष की चिन्ता न करते हुए पोखरन में परमाणु परीक्षण कर देश के आत्म-विश्वास को जागृत किया। 'कारगिल-विजय' द्वारा देश के स्वाभिमान को गौरवान्वित किया। विदेशी पूँजी तथा तकनीक का स्वागत करके देश की आर्थिक स्थिति को सदृढ़ता प्रदान की।

सच्चाई तो यह है कि राष्ट्र-निर्माण का कार्य निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। इसमें छोटे-से-छोटे नगरपालिका पार्षद् से लेकर विधानसभा और संसद् सदस्य तक, मंत्री से लेकर मुख्यमन्त्री तथा प्रधानमन्त्री तक, राज्यपाल ले लेकर राष्ट्रपति तक और इतना ही नहीं विरोधी-दलों के राजनीतिज्ञों तक, सब अपने-अपने दृष्टिकोण, सामर्थ्य, सीमा तथा दृष्टिकोण से राष्ट्र-निर्माण में संलग्न रहे हैं और हैं।

(339) भारत की वन-सम्पदा

संकेत बिंदु—(1) अद्भुत और अतुलनीय (2) वृक्षों की अनेक प्रजातियाँ (3) हिमालय के वनों में विभिन्न प्रकार के वृक्ष (4) राष्ट्र की अर्थव्यवस्था में महत्त्वपूर्ण योगदान (5) उपसंहार।

भारत की समृद्ध और विशाल वन-सम्पदा अपूर्व, अद्भुत तथा अतुलनीय है। भारत की वन सम्पदा बहुरूपणी, विविध वृक्षों, लता-पादपों, गुल्मों और वनस्पतियों युक्त अक्षय स्रोतस्विनी-सी है। सुखदायनी तथा कल्याणमयी है। सुषमा की अक्षय निधि है, सौरभ का अजस्र पुंज है।

वन-सम्पदा अर्थात् प्रकृति-प्रदत्त पेड़-पौधों तथा जंगली जानवरों की बहुलता का पर्वतीय या मैदानी निर्जन क्षेत्र का ऐश्वर्य तथा बैभव है अरण्य या काननों की समृद्धि।

भारत की वन सम्पदा की समृद्धि-सम्पन्नता इसी से ज्ञात होती है कि यहाँ वृक्षों की अनुमानत: 45,000 प्रजातियाँ पाई जाती हैं। संवहिनी वनस्पति के अन्तर्गत 15,000 प्रजातियाँ हैं। इसमें से 35 प्रतिशत के लगभग प्रजातियाँ देशीय (स्थानीय) हैं, जो विश्व में और कहीं नहीं पाई जातीं। देश की वन-सम्पदा में न केवल फूलों वाले बड़े पौधे ही हैं बल्कि बिना फूल के पौधे जैसे—फर्न, लिवरवर्थ, शैवाल, फंगाई भी शामिल हैं।

प्रमुख सम्पदा की दृष्टि से यहाँ के वन काष्ठ (लकड़ी) प्रमुख हैं और गौण सम्पदा में लाख, राल, गोंद, रबड़, औषधियाँ, जड़ी-बूटियाँ, कत्था, चारा, घास और बीड़ी बनाने की पत्तियाँ (तेंदू पत्ते) शामिल हैं। रूसा और खस घासों से इत्र निकाला जाता है। खैर वृक्षों की टहनियों को उबालकर कत्था प्राप्त किया जाता है। चीड़ से प्राप्त किए जाने वाले राल से तारपीन बनाया जाता है। पलाश और कुसुम जैसे वृक्षों के रस पर जीवित रहने वाले कीड़े के स्राव को लाख कहते हैं। ये मुख्यत: विहार और मध्य प्रदेश में पाए जाते हैं। शहतूत के पत्तों पर रेशम के कीड़े पलते हैं, जिनसे रेशम प्राप्त होता है।

हिमालय प्रदेश के वनों के वृक्षों में चीड़, कैल, पाइन, रई, देवदार, बाँस और बुरांस उल्लेखनीय हैं। शीशम, कैल तथा देवदार वृक्ष देश की मूल्यवती मुलायम लकड़ी के स्रोत हैं। इनका प्रयोग मकान, पुल, स्लीपर, फर्नीचर के लिए किया जाता है। स्प्रूस, रई तथा सिल्वर फर वृक्षों की लकड़ी का प्रयोग सेल्यूलो[illegible]ज तथा अखबारी कागज बनाने

में होता है। तुन, साल और सागौन वृक्ष भी बहुतायत में हैं। इनका इमारती लकड़ी के रूप में व्यापक प्रयोग होता है। कारण, इनकी लकड़ी कठोर और टिकाऊ होती है। सागौन के वन अधिकतर पश्चिमी घाट तथा मध्य प्रदेश की सतपुड़ा श्रेणियों में मिलते हैं। बाँस, महोगनी, रोजवुड तथा चंदन के वृक्ष हमारे वनों के अन्य उत्पाद हैं। बाँस का उपयोग आजकल लुगदी बनाने के लिए होता है। लुगदी से कागज बनता है। रोजवुड का प्रयोग फर्नीचर और लकड़ी की कलात्मक खुदाई वाली वस्तुएँ बनाने के काम आता है। चन्दन का प्रयोग सजावटी सामान में होता है। यह अपनी मनोहर सुगंध के लिए प्रसिद्ध है। कर्नाटक राज्य की नीलगिरि पहाड़ियों से चन्दन प्राप्त होता है। तेंदु पत्ता, जिससे बीड़ी बनती है, मध्य प्रदेश के वनों का विशिष्ट उत्पाद है।

भारत की वन-सम्पदा की महत्त्वपूर्ण वस्तु जड़ी-बूटियों से औषध का निर्माण होता है, जो मानव-जीवन की सुरक्षा का प्रथम प्रहरी है।

भारत की वन-सम्पदा का राष्ट्र की अर्थव्यवस्था की सुदृढ़ता में महत्त्वपूर्ण योगदान है। वन-उत्पाद का विदेशों में निर्यात तथा वन्य सौन्दर्य और सम्पदा को देखने वाले पर्यटकों के आकर्षण केन्द्र होने के नाते अर्थोपार्जन के विशिष्ट अंग हैं। प्राकृतिक दिव्य-सुषमा के पुंज होने के नाते देश को हरा-भरा बनाए रखने में इनका विशिष्ट योगदान है। वातावरण को सौरभयुक्त करने में इनका प्रमुख हाथ है। जलवायु में परिवर्तन रोकने, पर्यावरण को संतुलित रखने तथा वायु को प्रदूषण से अप्रभावित रखने में वन-सम्पदा का योगदान है। जल-ग्रहण क्षेत्रों के संरक्षण एवं वर्षा के पानी को सोखने तथा झरनों एवं नदियों में सतत प्रवाह बनाए रखने में वनों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। इससे भूमि को संतुलित जल मिलता है, उसकी उर्वरा शक्ति बढ़ती है।

वर्तमान में संरक्षित क्षेत्र के अंतर्गत 75 राष्ट्रीय उद्यानों तथा 421 अभयारण्यों की गिनती की जाती है। इसमें उत्तर-प्रदेश का 'कार्बेट पार्क', असम का 'काजीरंगा', मध्य प्रदेश का 'कान्हा', केरल का 'पेरियर' और गुजरात का 'गिर' प्रसिद्ध अभयारण्य हैं।

जनसंख्या वृद्धि और उद्योग-विस्तार के कारण वनों का अवैज्ञानिक तरीके से मनमाने तौर पर दोहन किया गया है और अब भी हो रहा है। इस प्रकार हम अपने पैरों पर स्वयं कुल्हाड़ी मारकर अपनी वन-सम्पदा को न केवल नष्ट कर रहे हैं, अपितु अपनी अकाल और अनैसर्गिक मृत्यु का प्रबन्ध भी स्वयं कर रहे हैं। दूसरी ओर हम वन-सम्पदा का महत्त्व भूल गए हैं। अब तो वृक्षारोपण केवल हरियाली एवं शोभा के लिए हैं। प्रकाश-संश्लेषण के जरिए वातावरण में फैली कार्बन डाइ-ऑक्साइड को सोखने तथा अधिकतम ऑक्सीजन-युक्त करना ही ध्येय रह गया है।

वन्य की इस सम्पदा का शत्रु वह शिकारी वर्ग है जो शौक या वन्य पशुओं की खाल-सींग विक्रय के लोभ-वश इनकी हत्या कर रहा है। इसके कारण शेर, बाघ, हाथी, चीता, हिरण, गैंडा आदि जंगली-जानवरों की विशिष्ट प्रजातियाँ ही लुप्त होती जा रही हैं।

वन-संपदा की सुरक्षा तथा संवर्धन के लिए भारत-सरकार का वानिकी अनुसंधान केन्द्र कार्यरत है। देहरादून, जोधपुर, जोरहाट, बंगलौर, जबलपुर, कोयम्बतूर, शिमला, रांची, इलाहाबाद, छिंदवाड़ा और हैदराबाद में इसके अनुसंधान केन्द्र हैं।

मानव प्रकृति प्रेमी है। प्रकृति में उसकी आत्मा का वास है। उसके सौंदर्य और सौरभ में मदमस्त है। अर्थ लाभ से समृद्ध है। ऐसी प्रकृति की देन वन-संपदा के संरक्षण तथा संवर्धन में अन्ततः मानव का ही कल्याण हैं।

(340) आकर्षक होगी दिल्ली और राष्ट्र मण्डल खेल/ दिल्ली में राष्ट्र मण्डल खेलों की धूम/राष्ट्र मण्डल खेल और दिल्ली का स्वरूप

> **संकेत बिंदु**—(1) राष्ट्रमंडल खेलों के लिए संवारना (2) सरकारी स्तर पर रूप परिवर्तन (3) नए स्टेडियमों का निर्माण (4) दिल्ली के आसपास के क्षत्रों का कायाकल्प (5) उपसंहार।

दिल्ली भारत का दिल कहा जाता है और दिल को स्वरूप और सुंदर बनाना हम सबका कर्त्तव्य हो जाता है। आगामी सन् 2010 में भारत की राजधानी दिल्ली में राष्ट्र मण्डल खेलों का आयोजन होने जा रहा है और इसके लिए भारत के दिल दिल्ली को सँवारना अति आवश्यक भी है।

चर्चा है कि दिल्ली को दुल्हन की भाँति सजाया और सँवारा जाएगा, कुछ लोगों का यह कहना कि दिल्ली को पैरिस बना दिया जाएगा और कुछ लोग दिल्ली को लन्दन बनाने की बात तक कह रहे हैं। लेकिन आज के समय में यदि बहादुरशाह ज़फ़र होते तो वह फिर कह उठते, "**कौन जाए ज़फ़र, दिल्ली की गलियाँ छोड़कर।**" दिल्ली में जो भी आकर बस गया, बस दिल्ली का ही होकर रह गया।

बात है दिल्ली का स्वरूप संवारने की। वह तो अवश्य ही सँवारा जाना चाहिए भी, क्योंकि दिल्ली को सँवारना इसलिए भी आवश्यक है कि बहुत से विदेशी खिलाड़ी दिल्ली में अपना खेलों के माध्यम से भाग्य आजमाने आयेंगे।

पुरानी कहावत के अनुसार कहा जाता है कि सौ वर्ष पश्चात् दिल्ली का स्वरूप स्वयं ही बदल जाता है, कारण कुछ भी रहे मगर दिल्ली को नया स्वरूप देने के सरकारी अथवा गैर सरकारी प्रयास होते ही रहते हैं। तभी तो एक किवन्दती के अनुसार पता चलता है कि—

नौ दिल्ली दस बादली, बीच वजीराबाद।

इसका अर्थ यह लिया जाता है कि मुगल काल से अब तक नौ बार दिल्ली का और दस बार बादली का स्वरूप बदल चुका है। अब राष्ट्र मण्डल खेलों के आगमन पर दिल्ली का स्वरूप अवश्य सरकारी स्तर पर बदला।

दिल्ली में खेलों के लिए पाँच स्टेडियमों का काया कल्प होना है जिनमें नेहरू स्टेडियम, इंदिरा गाँधी स्टेडियम, तालकटोरा स्टेडियम, कर्ण सिंह शूटिंग रेंज और नेशनल स्टेडियम का नाम प्रमुखता से लिया जा रहा है। इन सभी स्टेडियम में लाइटिंग, छतों का बदलाव, नये रैंप और पब्लिक एड्रेस सिस्टम को प्रमुखता के साथ रखा गया है।

इन पाँचों स्टेडियमों में देश-विदेश से आने वाले पत्रकारों के लिए ट्रांसमिशन और कम्युनिकेशन की विश्व स्तरीय सुविधाएँ भी शामिल हैं। दर्शकों के लिए पार्किंग की भी सुविधा का ध्यान रखा जाएगा। पाँच स्टेडियमों का कायाकल्प होने से दिल्ली का कुछ स्वरूप बदल भी जाएगा।

राष्ट्र मण्डल खेलों में दिल्ली में विश्व के लगभग 71 देशों के खिलाड़ियों के भाग लेने की सम्भावना है। खेलों का आयोजन दिल्ली में 3 अक्तूबर से 14 अक्तूबर तक सन् 2010 में किया जाएगा। खूबसूरत दिल्ली में तैराकी, एथलेटिक्स, बैडमिंटन, मुक्केबाजी, साइकिंलग, जिमनास्टिक, हॉकी, लानटेनिस, बॉलिंग, नेट बाल, निशानेबाजी, स्क्वाश, टेबल टेनिस और भारी जो तक के मुकाबले आयोजित किए जायेंगे।

राष्ट्र मण्डल खेलों को ध्यान में रखकर दिल्ली का जो स्वरूप निखारा जाएगा उनमें राजधानी दिल्ली के प्रवेश हार भी नये स्वरूप के साथ दिखायी देंगे। राजधानी में उत्तर प्रदेश और हरियाणा की ओर से आने वाले मार्गों पर द्वार बनाये जायेंगे और इन द्वारों पर कैमरे भी लगाये जाने का प्रावधान है। दिल्ली के अप्सरा बार्डर, मँडोली बार्डर, गाजी पुर बार्डर, के.जी.टी. नरेला बार्डर, टीकरी बार्डर, बदर पुर के दो और कापसहेड़ा के तीन बार्डर द्वार शामिल हैं। दिल्ली को सुंदर बनाने में कोई भी कसर नहीं छोड़ी जाएगी और दिल्ली वाली ऊपर गामी सेतुओं के सहारे दिल्ली में चलेंगे। ऊपर गामी सेतुओं में रिंग रोड नारायणा, आई.टी.ओ. चुंगी अंडर पास, शास्त्री नगर; बाहरी रिंग रोड पर आई.आई.टी, आजाद पुर, मंगोल पुरी में ऊपर गामी सेतुओं का निर्माण हो जाने से दिल्ली का स्वरूप और निखर जाएगा।

राष्ट्र मण्डल खेलों के आयोजन के लिए दिल्ली ही नहीं दिल्ली के ग्रामीण क्षेत्रों का भी कायाकल्प किया जाएगा। बाहरी दिल्ली के गाँवों की 159 विकास योजनाओं को उपयोग में लाया जाएगा। दिल्ली के कई गाँवों का विकास कर इन्हें 'आदर्श ग्राम' के रूप में प्रस्तुत किया जाएगा। दिल्ली के गाँवों में बाँकनेर, दरिया पुर कलाँ तथा बुध पुर गाँवों में खेल के मैदानों का विकास कर राष्ट्र मण्डल खेलों के लिए इन्हें उपयोग में लाया जाएगा। इनके साथ ही आया नगर, महरौली, किटोरनी जैत पुर का भी स्वरूप निखारा जाएगा। बवाना गाँव को भी खेलों की भागीदारी के लिए सँवारा जायेगा।

''दिल्ली दुल्हन बन जाएगी'' राष्ट्र मण्डल खेलों का आयोजन दिल्ली में होने से दिल्ली के व्यापारी वर्ग को भी लाभ मिलेगा। साथ ही दिल्ली का स्वरूप बदलने में अनेक लोगों को रोजगार के अवसर भी मिलेंगे। दिल्ली को सँवारना, दिल्लीवासियों को सँवारना

माना जा रहा है। दिल्ली को सजाने और सँवारने में अनेक कलाकारों की भागीदारी भी रहेगी।

सन् 2010 के आते-आते दिल्ली का स्वरूप इतना भव्य और सुंदर हो जायेगा, जिसकी कल्पना करना व्यर्थ है। ऊपर गामी सेतु, भीतर गामी पथ पार, आदर्श गाँव, सफाई की समुचित व्यवस्था ही दिल्ली का नया और सुंदर स्वरूप होगा। दिल्लीवासियों को मार्गों में कोई अवरोध, सिंगनल, लाल-हरी बत्ती नहीं मिलेगी और निखरी-सँवरी दिल्ली में सड़कों पर वाहन तीव्र गति से बिना अवरोध के चलते चलेंगे। वैसे मेट्रो के चलने से कुछ स्वरूप दिल्ली का संवर चुका है, शेष राष्ट्र मण्डल खेलों तक दिल्ली नये स्वरूप में बदल जायेगी।

भारत की समस्याएँ

(341) भारत की आधुनिक समस्याएँ

संकेत बिंदु—(1) पूर्व समस्याओं का विकराल रूप (2) आर्थिक समस्या और स्थिर सरकार की समस्या (3) राजनीतिक और नौकरशाही की अकर्मण्यता की समस्या (4) सामाजिक समस्याएँ (5) बढ़ती जनसंख्या।

भारत की आधुनिक समस्याएँ उसकी पूर्व समस्याओं का विकराल रूप हैं और समाधान की दिशा में उठाए गए विवेक-हीन और असंगत उपायों का दुष्परिणाम है। स्वार्थ और दलहित से प्रेरित आत्मघाती दृष्टिकोण का अभिशाप है और है नेतृत्व के बौनेपन का स्पष्ट उदाहरण।

आज की राजनीतिक समस्याएँ राष्ट्र को अस्थिरता की ओर धकेल रही हैं। आर्थिक समस्याएँ राष्ट्र की समृद्धि के मार्ग में बाधक बनी हुई हैं। सामाजिक समस्याओं ने समाज का जीना दूभर कर रखा है। उग्रवाद, आतंकवाद और साम्प्रदायिकता भारत में नागरिकों से जीवन जीने का अधिकार छीन रही है। उद्योगों के क्षेत्र में आत्म-निर्भरता और स्वायत्तता को विदेशी सहयोग की बैसाखी की जरूरत पड़ गई है। जनसंख्या की वृद्धि कोढ़ में खाज पैदा कर रही है।

भारत की सर्वप्रमुख समस्या स्थिर केन्द्रीय सरकार की है। 1989, 1991 तथा 1996 से बाद के महानिर्वाचनों में किसी भी राष्ट्रीय दल को बहुमत न मिलना भारत के लिए अभिशाप है। कारण, अल्पमत-सरकार देश की समस्याओं से सशक्त मनोबल से जूझने और प्रगति तथा समृद्धि की ओर अग्रसर होने में अक्षम रहती है।

आर्थिक समस्या आज प्रजा को निगलने के लिए मुँह बाए खड़ी है। अर्थ का अनर्थ हो चुका है। भारत विदेशों के अरबों रुपयों का कर्जदार है। महँगाई छलाँग लगाकर लगातार

बढ़ रही है, जिसने मध्यवर्ग का जीना दूभर कर रखा है। देश का धनीवर्ग विदेशों में अपना धन रखकर भारत की आर्थिक रीढ़ को तोड़ने पर लगा है। बड़े-बड़े आर्थिक स्केण्डलों (घोटालों) ने देश की अर्थ-नींव को हिला दिया है। काले धन के वर्चस्व ने देश की प्रतिष्ठा को ही काला कर रखा है। पाकिस्तान द्वारा पाँच सौ रुपए के जाली नोटों के प्रचलन ने देश की मुद्रा पर ही प्रश्न-चिह्न लगा दिया है। सरकारी क्षेत्र के उद्योग निरंतर करोड़ों रुपए का घाटा देकर आर्थिक स्थिति को जटिल बनाने पर तुले हैं। दूसरी ओर भारत की 40 प्रतिशत जनता गरीबी की सीमा-रेखा से नीचे जीवन जीने को विवश है।

राजनीतिक समस्याओं ने देश के चित्र और चरित्र को बिगाड़ दिया है। चरित्रविहीन राजनीति ने देश की दुर्गति करने में कसर नहीं छोड़ी। अपराधियों के राजनीतिकरण ने देश में 'चरित्र' की व्याख्या ही बदल दी है। आज देश में व्याप्त उग्रवाद, साम्प्रदायवाद भारत की तुष्टिमूलक प्रवृत्ति और वोट प्राप्ति की देन हैं, जो भस्मासुर की तरह भारत को ही निगल रहे हैं। संविधान में जाति, सम्प्रदाय, वर्ग-विशेष, प्रांत-विशेष के विशिष्ट अधिकार तथा संरक्षणवाद ने बिभाजन और विभेद का राक्षस खड़ा कर रखा है। नेतागण लोकतंत्र की दुहाई देते हैं, पर कार्य किसी तानाशाह से कम का नहीं करते। भ्रष्ट और देश-द्रोही तत्त्व राजनीतिक आँचल में सुरक्षा पा रहे हैं।

भारत की बड़ी समस्याओं में से एक है नौकरशाही की अकर्मण्यता। राजकीय कर्मचारी चाहे वह किसी भी पद पर आसीन हो, कार्य को तत्काल और सुचारू रूप से करने में खुश नहीं। परिणामत: कार्यपालिका लंगड़ी चाल से चल रही है, जो देश की सुचारु गति पर अर्ध विराम लगा रही है। ऊपर से भ्रष्टाचार ने कार्यपालिका के मुँह में खून लगा दिया है, जिससे राष्ट्र की आत्मा ही हिल गई है।

आज देश में अनेक सामाजिक समस्याएँ भी तांडव-नृत्य कर रही हैं। दहेज ने विवाह पूर्व और विवाहोपरांत जीवन में कैंसर पैदा कर दिया है। ऊँच-नीच के भेद-भाव ने समस्त समाज को ही अन्त्यज बना दिया है। नारी के शोषण, उत्पीडन और बलात्कार ने 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:' के आदर्श को लांछित कर दिया है।

समाज से अपनत्व की भावना समाप्त होती जा रही है। पुत्र में वैयक्तिक सुखोप-भोग की वृत्ति बढ़ रही है; इसलिए वह माता-पिता से विद्रोह पर उतर आया है। व्यक्तिगत अहं ने पारिवारिक जीवन को नष्ट कर दिया है। समाज में संवेदना ही समस्या बन गई है।

आज का युवक सुरा, सुन्दरी तथा मादक पदार्थों के सेवन में आत्मविस्तृत हो रहा है। वह अपने शरीर पर अत्याचार कर रहा है और कर रहा है मन पर बलात्कार। युवा पीढ़ी को इस आत्महत्या से बचाने की समस्या विराट् और विनाशकारी दानव बनकर खड़ी है। युवा पीढ़ी की यह बरबादी राष्ट्र को ही तबाह कर देगी।

बढ़ती जनसंख्या भी भारत की गहन समस्या है। इसने देश के विकास कार्यों को बौना, जीवनयापन को अत्यन्त दुरूह तथा जीवन-शैली को उच्छृंखल और कुरूप बना दिया है। परिणामत: आज भारत की 40 प्रतिशत जनता गरीबी की सीमा-रेखा से नीचे जीवनयापन

करने को विवश है। घर के अभाव में नीलगगन उसकी छत है और भूमि उसकी शय्या। वह भूखे पेट को शांत करने के लिए असामाजिक कृत्य करती है।

भारत के उद्योगों को आत्मनिर्भर बनाने, अपने पैरों पर खड़ा करने की भी समस्या है। कारण, विदेशी पूँजी और टेक्नीक भारतीय उद्योग को परतन्त्रता के लौह-पाश में जकड़ती जा रही हैं। आज विदेशी पूँजी और टेक्नीक ने भारत में विदेशी बहुद्देशीय कम्पनियों का साम्राज्य स्थापित कर दिया है। भारत का कुटीर-उद्योग और लघु-उद्योग मर रहे हैं और औद्योगिक समूहों की आर्थिक स्थिति डाँवाँडोल है, उनके पैर लड़खड़ा रहे हैं।

वस्तुतः आज भारत अनेक समस्याओं का घर बन गया है। वह समस्याओं से घिरा हुआ है, आहत है, पीड़ित है। इनके दो प्रमुख कारण हैं—समस्या की सही पहचान न होना और उस पर पकड़ न होना तथा सत्ता-पक्ष और राजनीतिज्ञों की बदनीयती।

(342) भारतीय लोकतन्त्र की समस्याएँ और उपलब्धियाँ

संकेत बिंदु—(1) लोकतंत्र भारत के कल्याण के लिए (2) लोकतंत्र के स्तम्भ (3) लोकतंत्र की समस्याएँ (4) ईमानदार और चरित्रवान लोगों का चुनाव से हटना और अधिनायकवादी प्रवृति (5) उपसंहार।

भारतीय लोकतंत्र भारतीय जनता के हेतु, भारतीय जनता द्वारा निर्वाचित जनता का शासन है। इसलिए भारतीय लोकतंत्र भारतीय लोकेच्छा और लोक-कल्याण का प्रतीक है। जब-जब जनता ने केन्द्रीय या प्रांतीय सत्ता को पसन्द नहीं किया, उसे उसने सत्ता से च्युत कर दिया।

भारतीय लोकतन्त्र महान् भारत के कल्याण के लिए वचनबद्ध है। प्रधानमंत्री चाहे जवाहरलाल नेहरू रहे हों या इन्दिरा गाँधी; मोरार जी भाई देसाई रहे हों या विश्वनाथ प्रतापसिंह, सबने अपने-अपने दृष्टिकोण के अनुसार जन-कल्याण और देशोत्थान के कार्य किए। यही कारण है कि आज देश औद्योगिक दृष्टि से बहु-विकसित, वैज्ञानिक दृष्टि से बहुत आगे, टेक्नोलोजी ऋल दृष्टि से विशिष्ट और राजनीतिक दृष्टि से स्थिर है। देश का चहुँमुखी विकास भारतीय लोकतंत्र की जीवंत उपलब्धि है।

लोकतन्त्र के चार स्तम्भ हैं—न्यायपालिका, कार्यपालिका, विधायिका और समाचार-पत्र। इन चारों स्तम्भों की स्वतंत्र सत्ता है, इन्हें स्वायतत्ता प्राप्त है। लोकतांत्रिक भारत (डेमोक्रेट इंडिया) में चारों स्तम्भों का सुचारु रूप से संचालन भारतीय लोकतंत्र की पाँचवीं विशेष उपलब्धि है।

भारतीय लोकतन्त्र की जहाँ अनेक महती उपलब्धियाँ हैं, वहाँ उसकी समस्याएँ भी बहुत हैं। ये समस्याएँ स्वयं राजनीतिज्ञयों के सत्ता मोह और स्वार्थ से उपजी हैं। उनके व्यक्तिहित, दलहित से पुष्पित-पल्लवित हुई हैं और अब भस्मासुर बनकर उनको ही नहीं

भारत के लोकतंत्र को डस रही हैं, भारतमाता के शरीर को शव में परिणित करने की तैयारी से कर रही हैं।

हमारे लोकतन्त्र की प्रथम समस्या है—भारतीय-भारतीय में भेद। यह भेद-विष दो रूपों में लोकतंत्र को विषाक्त कर रहा है। पहला है—अल्पसंख्यकवाद तथा बहुसंख्यकवाद। तथा दूसरा है—जातिवाद। अल्पसंख्यकवाद तथा बहुसंख्यकवाद ने लोकतंत्र राष्ट्र की धर्म-निरपेक्ष छवि को धूमिल ही नहीं किया, देश को खंड-खंड करने का रास्ता भी प्रशस्त कर दिया है। दूसरी ओर, जातिवाद ने तो घर-घर में लड़ाई का बीज बो दिया है। एडमीशन, चुनाव तथा नौकरियों में उनके लिए पदों (सीटों) के आरक्षण ने लोकतंत्र के 'समानता' के सिद्धान्त को ही जल-समाधि ही दे दी है।

लोकतन्त्र शासन की दूसरी समस्या है प्रज्ञाचक्षुत्व। लोकतंत्र की आँखें नहीं होतीं। लोकतन्त्र में मन्त्री उपमन्त्री की आँख से देखता है, उपमन्त्री सचिव की आँख से, सचिव उपसचिव की आँख से, डिप्टी-सेक्रेटरी अण्डर-सेक्रेटरी की तथा अण्डर-सेक्रेटरी 'फाइल' की आँख से देखता है। इसका परिणाम यह होता है कि प्राय: तथ्य और कथ्य में अन्तर पड़ जाता है। अयोध्या का राम मंदिर-ढाँचा विवाद इस फाइली आँख का दोष है। संसद् में मंत्रियों के विवादास्पद उत्तर इन फाइली नेत्रों का दोष है।

लोकतंत्र शासन की तीसरी समस्या है अधिनायकवादी प्रवृत्ति की। भारत का प्रधानमन्त्री लोकतन्त्रात्मक पद्धति से इस पद को प्राप्त करता है, परन्तु प्रधानमन्त्री बनने के बाद उसमें तानाशाह की आत्मा जाग्रत हो जाती है। इन्दिरा गाँधी, राजीव गाँधी, विश्वनाथ प्रतापसिंह और नरसिंहराव में यही प्रवृत्ति रही है। किसी भी निर्वाचित मुख्यमन्त्री को बार-बार बदलना, प्रान्तीय सरकारों के कार्य में हस्तक्षेप करना, विपक्ष शासित प्रांतीय सरकारों को तोड़ना, बिना परामर्श राज्यपालों की नियुक्ति करना, सम्बन्धित राज्य-सरकारों की सहमति के बिना राष्ट्रीय स्तर पर समझौते करना, संसद् को अपनी मर्जी का चाबी-भरा खिलौना समझना लोकतन्त्र की आड़ में जनतन्त्र की हत्या ही तो है।

भारतीय लोकतंत्र की चौथी समस्या है, संसद में दिए जाने वाली वक्तृता में 'तर्क, प्रमाण और वाक्चातुरी की।' तर्क और चातुरी के लिए चाहिए समझ, अध्ययन और विवेक। पार्टी के अन्धभक्त सांसदों में वह चातुरी कहाँ? वाक्चातुरी के नाम पर संसद् तथा विधानसभाओं में होती है गाली-गलौज, हाथापाई, चरित्र-हनन की अश्लील बातें तथा अध्यक्ष के आसन के सम्मुख नारेबाजी। तर्क, प्रमाण और वाक्चातुरी के अभाव में संसद् की गरिमा कहाँ, लोकतन्त्र की शोभा कहाँ?

भारत विशाल राष्ट्र है। जनसंख्या की दृष्टि से विश्व का दूसरा महान् राष्ट्र है। इस विशाल देश के प्रारम्भिक कर्णधारों द्वारा लोकतंत्रात्मक शासन को अपनाना उदार दृष्टिकोण का परिचायक है। उसमें भारत के कल्याण की दूरदर्शिता है। 1950 से लेकर अब तक के 55 वर्षों में लोकतंत्र शासन-प्रणाली का सफल संचालन हमारे लोकतंत्र की गौरवपूर्ण उपलब्धि है। हाँ, सत्ता-मोह से उत्पन्न राजनीतिज्ञों का चरित्र-संकट तथा चुनाव में भ्रष्टाचरण भारतीय लोकतंत्र की प्रबल समस्याएँ आज भी हैं।

(343) बेरोजगारी की समस्या

संकेत बिंदु—(1) राष्ट्र के मस्तक पर कलंक (2) बेरोजगारी के प्रकार (3) गलत औद्योगिक-योजना और घरेलू उद्योगों को बढ़ावा न देना (4) बेकारी के अन्य कारण (5) उपसंहार।

बेरोजगारी राष्ट्र के भाल पर कलंक का टीका है। देश की गिरती आर्थिक स्थिति का सूचक है। सामाजिक अवनति का प्रतीक है। उद्योग-धन्धों की राष्ट्र-व्यापी कमी का द्योतक है। जब काम की कमी और काम करने वालों की अधिकता हो, तब बेरोजगारी की समस्या उत्पन्न होती है। जो अपने श्रम को बाजार में बेच पाने में असमर्थ हैं या व्यवसायहीन हैं, वे बेरोजगार हैं।

बेरोजगारी भी चार प्रकार की हैं। (1) **सम्पूर्ण बेकारी** : जहाँ श्रम का कुछ भी महत्त्व नहीं आँका जाता। (2) **अर्ध बेकारी अर्थात् 'पार्टटाइम जॉब'** : जहाँ 2-4 घंटों के लिए श्रम को खरीदा जाता है। (3) **मौसमी बेकारी** : जैसे—फसल कटते समय मजदूरों को रख लिया जाता है। कोई भवन निर्माण के समय मजदूर रख लिए जाते हैं, बाद में वे बेरोजगार हो जाते हैं। (4) **स्टेटस बेकारी**। जहाँ योग्यता तथा क्षमता से गिर कर काम न करने के कारण बेकारी है।

स्तर की दृष्टि से बेरोजगारी के चार प्रकार हैं—(1) शिक्षित जनों की बेकारी। (2) शिल्पीय दक्षता प्राप्त जन की बेकारी (3) अकुशल जनों की बेकारी। (4) कृषक-जन की बेकारी।

बेकारी का सर्वप्रथम कारण देश की बढ़ती जनसंख्या है। देश में प्रतिवर्ष एक करोड़ शिशु जन्म लेते हैं। जिस अनुपात में जनसंख्या बढ़ रही है, उस अनुपात में रोजगार के साधन नहीं बढ़ रहे। फलत: बेकारी प्रतिपल-प्रतिक्षण बढ़ती जा रही है।

बेकारी का दूसरा बड़ा कारण है—दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली। हाईस्कूल तक की थोड़ी-सी शिक्षा पाकर हर नवयुवक नौकरी की ओर भागता है, बाबूगिरी में ही जीवन का स्वर्ग देखता है। किसान का बेटा किसानी से मुँह मोड़ता है। चमार का बेटा चमारी से घृणा करता है तथा कर्मकाण्डी पण्डित का बेटा कर्मकाण्ड को पाखण्ड मानता है। श्रम से पलायन की प्रवृत्ति के कारण बेकारी दूध के उबाल की भाँति उफन रही है।

बेकारी का तीसरा कारण है, देश की गलत औद्योगिक-योजना। देश ने पहली पंचवर्षीय योजना से ही विशाल, विशालतर और विशालतम उद्योगों को बढ़ावा दिया, किन्तु छोटे उद्योग सिसकियाँ लेते रहे। 'बाटा' ने चमारों का धंधा छीना, 'टाटा' ने लुहारों को चौपट किया, बिड़ला-भरतराम ने बुनकरों की रोजी पर लात मारी और तेल-मिलों ने तेलियों का रोजगार ठप्प किया, साबुन की बड़ी कम्पनियों ने लघु-उद्योगों का गला-घोंटा। विदेशी कम्पनियाँ तो भारतीय औद्योगिक उत्पादनों की कब्र खोदने पर उतारू हैं।

बेकारी का चौथा कारण है, सरकार की ओर से घरेलू उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन का अभाव। बड़ी मिल लगाने के लिए बैंक करोड़ों रुपये कर्ज दे देते हैं, किन्तु लघु उद्योगों के लिए वे तड़पा-तड़पाकर कर्ज देते हैं। परिणामतः लघु उद्योग-धन्धे विकसित नहीं हो पा रहे। दूसरे, उनकी बिक्री का बाजार नहीं, उनके पास खपत का सुनियोजित माध्यम नहीं।

बेकारी का पाँचवाँ कारण है, मशीनीकरण एवं यन्त्रों के अभिनवीकरण को प्रोत्साहन। जैसे कम्प्यूटर का प्रयोग देशहित में है, किन्तु इससे बेकारों की संख्या में तो वृद्धि हुई है।

बेकारी के अन्य कारण हैं—(6) कृषि पर बढ़ता दबाव। (7) परम्परागत हस्तशिल्प उद्योगों का ह्रास। (8) दोषपूर्ण नियोजन (9) व्यवसायपरक शिक्षा की उपेक्षा। (10) श्रमिकों में गतिशीलता का अभाव। (11) स्वरोजगार की इच्छा का अभाव।

देश की बेकारी दूर करने के लिए दूरदर्शिता से काम लेना होगा। उसके लिए सर्वप्रथम परिवार-नियोजन पर बल देना होगा। जो पालन-पोषण नहीं कर सकता, उससे प्रजनन का अधिकार छीनना होगा। आपत् काल की भाँति कठोर हृदय होकर इस कार्यक्रम को सफल बनाना होगा। धर्म-विशेष के आधार पर प्रजनन की छूट को प्रतिबंधित करना होगा।

शिक्षा का व्यवसायीकरण करना होगा। ताकि 'स्वरोजगार' के प्रति युवा वर्ग में दिलचस्पी पैदा हो। नई तकनीक द्वारा विकास के साथ नए कौशल (स्किल) तेजी से बढ़ेंगे। बाबूगिरी के प्रति मोह भंग होगा।

प्रत्येक तहसील में लघु उद्योग-धन्धे खोलने होंगे। लघु-उद्योगों के कुछ उत्पादन निश्चित करने होंगे, ताकि वे बड़े उद्योगों की स्पर्धा में हीन न हों, पिछड़ न जायें।

शिक्षित युवकों को शारीरिक श्रम का महत्त्व समझना होगा। श्रम के प्रति उनके मन में रुचि उत्पन्न करनी होगी, ताकि वे घरेलू उद्योग-धन्धों को अपनाएँ।

उद्योग राष्ट्र की प्रगति के प्रतीक होते हैं। आज राष्ट्र का उत्पादन गिर रहा है। इसे बढ़ाना होगा, नए-नए उद्योग स्थापित करने होंगे। नए उद्योगों से राष्ट्र को आवश्यक चीजों की प्राप्ति होगी और रोजगार के साधन बढ़ेंगे।

भारत की अस्सी प्रतिशत जनता गाँवों में जीवनयापन करती है और कृषि पर निर्भर रहती है। कृषकों का बहुत-सा समय व्यर्थ जाता है। इसलिए जरूरत है रोजगारपरक ग्रामीण विकास नियोजन तथा कृषि पर आधारित उद्योग-धंधों के विकास की। साथ ही गाँवों में बिजली देकर गाँवों के जीवन में क्रांति लाई जा सकती है।

प्राकृतिक साधनों का पूर्ण विदोहन, विनियोग में वृद्धि, रोजगार की राष्ट्रीय नीति निर्धारण तथा औद्योगिक विकास सेवाओं की तीव्रता द्वारा बेरोजगारी कम की जा सकती है।

(344) बढ़ती हुई जनसंख्या की समस्या

संकेत बिंदु—(1) विकास गति अवरुद्ध (2) जनसंख्या वृद्धि के कारण (3) वोट बैंक, जनसंख्या-नियंत्रण में बाधा (4) पाकिस्तानी तथा बंगला देशी नागरिकों का अवैध रूप से रहना (5) उपसंहार।

विकासशील भारत की बढ़ती हुई जनसंख्या उसकी विकास-गति को अवरुद्ध करेगी। जीवन-जीने के लिए अत्यावश्यक पदार्थों से वंचित करेगी। जीवन-मूल्यों पर प्रश्न-चिह्न लगाएगी। आनन्द का हरण कर विश्व-प्रांगण में भारत के सम्मान को ठेस पहुँचाएगी।

जनसंख्या किसी भी राष्ट्र की शक्ति होती है, शोभा होती है। जनसंख्या के बल पर ही राष्ट्र सुख, समृद्धि और वैभव प्राप्त कर सकता है। विकसित राष्ट्र भी अपनी आंतरिक जन-शक्ति के बल पर विश्व में गर्व से अपना भाल ऊँचा कर सकते हैं। किन्तु जनसंख्या का अत्यधिक बढ़ जाना राष्ट्र के लिए अनेक समस्याएँ उत्पन्न कर देता है।

भारत की जनसंख्या 1951 में लगभग 36 करोड़ थी और सन् 2000 में यह संख्या एक अरब से अधिक हो गई है। यदि जनसंख्या वृद्धि की यही गति रही तो दो दशक बाद भारत चीन से भी अधिक जनसंख्या वाला हो जायेगा।

भारत में जनसंख्या वृद्धि के मुख्यत: तीन कारण हैं—(1) काम में विवेक की कमी। (2) सत्ताधारियों में इच्छा-शक्ति का अभाव और (3) वोट-बैंक का मोह।

भारत की लगभग 35 प्रतिशत जनसंख्या अशिक्षित है। लगभग इतनी ही जनता जीवन स्तर से नीचे का जीवन जीती है। अशिक्षा और गरीबी के मध्य विवेक का स्वर अब रुद्ध हो जाता है। काम ही उनके आनन्द का एक-मात्र स्रोत है, अत: निर्बाध रूप में वे बच्चे पैदा करते हैं। ये बच्चे गरीबी में जन्म लेते हैं, पलते हैं और युवा होकर समाज-द्रोही बनते हैं। वीर्यविहीन काम का आनन्द उनकी समझ के बाहर है। ऐसे नर-नारियों का जबरदस्ती वंध्यकरण करके उन्हें प्रजनन अधिकार से वंचित कर देना चाहिए।

आपत्काल में जनसंख्या नीति का कठोरता से पालन हुआ। दो संतानों के माता-पिता को नसबंदी करवाने के लिए विवश किया गया। परिणाम सुखद हुआ। जन्मदर में गिरावट आई। जन्मदर गिरी, किन्तु इन्दिरा जी और उनकी पार्टी 'इन्दिरा कांग्रेस' लोकसभा चुनाव में हार गई। सत्ता से वंचित रह गई। परिणामत: जनसंख्या नीति का कठोरता से पालन सत्ता से हटने का कारण माना जाने लगा। इसलिए इन्दिरा जी के बाद जब मोरार जी देसाई या उसके बाद जो सरकारें आईं उन्होंने इस विषय में मौन धारण कर लिया। स्वयं इन्दिरा जी पुन: प्रधानमन्त्री बनीं तो उन्होंने इस विषय में आग्रहपूर्ण तेवर नहीं दिखाए। अटलबिहारी वाजपेयी सरकार ने जो जनसंख्या नियंत्रण नीति बनाई, उसका कार्यान्वयन राज्य-सरकारों

पर छोड़ दिया। राज्य सरकारें जनसंख्या नियंत्रण के प्रति प्रतिबद्ध नहीं हैं। इसलिए अनेक राज्यों ने जनसंख्या आयोग का गठन ही नहीं किया। यह है राज्य-सरकारों की इच्छा-शक्ति का अभाव। किन्तु उसके पश्चात् जनसंख्या नियंत्रण का कोई प्रयासन हुआ।

जनसंख्या-नियंत्रण में सबसे बड़ी बाधा है, वोट बैंक। बीसवीं सदी का सुशिक्षित नागरिक दो संतानों से अधिक की न तो कामना करता है, न उत्पन्न करता है, किंतु जहाँ सम्प्रदाय विशेष का धर्म-शास्त्र ही चार विवाह और अनेक संतान उत्पन्न कर जनसंख्या बढ़ाने की आज्ञा देता हो, वहाँ सरकार घुटने टेक देती है। इस भिड़ के छत्ते को हाथ लगाकर अपना वोट-बैंक कौन खराब करना चाहेगा ?

दूसरी ओर, भारत में लगभग एक करोड़ पाकिस्तानी तथा बंगला देशी नागरिक अवैध रूप से रहते हैं। वोट के लोभी राजनीतिक दलों की कृपा से येन-केन-प्रकारेण ये वोटर भी हैं। इनमें से अधिकांश मुसलमान हैं। अल्पसंख्यक और वोटर, ऐसे जनों को देश से बाहर कौन निकाल कर जनसंख्या पर नियंत्रण करना चाहेगा ?

बंगला-देशी नागरिकों को भारत से निकालने पर तथाकथित धर्म-निरपेक्ष पार्टियों ने 1999 की लोकसभा में जो शक्ति प्रदर्शन किया, उसके पीछे वोट-बैंक नीति काम कर रही थी। ऊपर से निर्भय होकर ये अधिक संतान उत्पन्न करेंगे तो भारत की जनंसख्या बढ़ेगी ही।

बढ़ती जनसंख्या का सर्वाधिक हानिकर पक्ष है—विकास कार्यों पर प्रतिकूल प्रभाव। सरकार वर्तमान जनगणना के आधार पर जो भी विकास कार्य करती है, वह अपनी सम्पन्नता तक बढ़ती आबादी में खो जाती है। उदाहरणत: दिल्ली में हर साल 10-12 नए वरिष्ठ माध्यमिक व्रिद्यालय खुलते हैं, फिर भी दिल्ली के स्कूल सम्पूर्ण शिक्षार्थियों को प्रवेश नहीं दे पाते। कमोवेश यही हाल रोजगार उपलब्ध कराने के लिए रोजगार के नए साधन निर्माण का है, चिकित्सा सुविधाएँ प्रदान करने का है, यातायात एवं संचार साधनों का है। सरकार कितना भी विकास-योजनाओं को सम्पन्न करे, वे सब ऊँट के मुँह में जीरा साबित हो रही हैं। देश की खुशहाली, प्रगति, औद्योगिक विकास, आर्थिक उन्नति को बढ़ती हुई जनसंख्या रूपी सुरसा का मुख निगल जाता है।

जब तक केन्द्रीय तथा प्रांतीय सरकारें प्रबल इच्छा शक्ति से जनसंख्या नियंत्रण कार्यक्रम को नहीं अपनाएँगी, अल्पसंख्यक-जन की पक्षधरता को नहीं त्यागेंगी तथा अवैध नागरिकों को बलपूर्वक उनके राष्ट्रों में जहाँ के वे नागरिक हैं, नहीं भेजेंगी, भारत में जनसंख्या पर नियंत्रण आकाश से तारे तोड़ लाना ही सिद्ध होगा।

(345) अमीर भारत-गरीब भारत/भारत में अमीरी का बढ़ता दायरा /हमारे देश भारत की अमीरी रेखा और गरीबी रेखा /भारत देश की बढ़ती समृद्धि का सत्य

संकेत बिंदु—(1) करोड़पतियों की संख्या में वृद्धि (2) निजी कम्पनियों में अधिक वेतन (3) स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद अमीर-गरीब में अंतर (4) अमीरी और गरीबी के दायरे में वृद्धि (5) उपसंहार।

हमारे देश भारत में करोड़पतियों की संख्या में प्रतिवर्ष वृद्धि हो रही है और आँकड़े बताते हैं कि उसी स्तर पर देश में गरीबी की भी वृद्धि हो रही है। देश में वर्ष 2003 में एक सर्वेक्षण के अनुसार करोड़पतियों की संख्या 61 हज़ार थी, वह सन् 2004 में बढ़ कर 70 हजार हो गयी। वहीं सन् 2007 में आठ लाख करोड़पतियों के बन जाने का अनुमान लगाया जा रहा है, इसके साथ ही यह भी सम्भावना व्यक्त की जा रही है कि वर्ष 2009 तक करोड़पतियों की संख्या भारत में सोहल लाख हो जाने का अनुमान है।

देश में बढ़ रहे करोड़पतियों की संख्या में जहाँ एक ओर भारत की प्रतिष्ठा बढ़ेगी वहीं भारत की संसद में मज़दूरों की दशा पर एक रिर्पोट प्रस्तुत की गयी है। भारत के ग्रामीण क्षेत्रों और कस्बों में एक कमीज सिलाई के आज भी मज़दूर को मात्र दो रुपये ही मिलते हैं और एक हज़ार बीड़ी बनाने की मज़दूरी केवल बीस रुपये रोज़ है। बारह घण्टे काम करने वाले मज़दूर की एक दिहाड़ी केवल पचास रुपये है। इन्हीं आँकड़ों के आधार पर देश में आम और अमीर आदमी की आय के बढ़ते फासलों का अनुमान कई स्तरों पर लगाया जा सकता है।

भारत में एक मान्यता प्रचलित रही कि देश के राष्ट्रपति से अधिक किसी का वेतन नहीं होना चाहिए। आज के संदर्भ में यदि देखा जाये तो अब भारत में निजी कम्पनियाँ अपने मुख्य अधिकारी या प्रबन्धक पर एक करोड़ प्रतिमाह तक खर्च करती हैं। इससे सिद्ध होता है कि एक निजी कम्पनी का अधिकारी देश के राष्ट्रपति से अधिक वेतन पाता है तो कम्पनी की आय अपनी घोषित आय से नहीं अधिक होगी।

भारत के काले धन पर इंग्लैंड के प्रोफेसर ने अध्ययन कर सन् 1955-56 में बताया था कि भारत में 2-3 प्रतिशत काला धन है। सन् 1990 में नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ पब्लिक फाइनेन्स के अनुसार काले धन की मात्रा भारत में 18 प्रतिशत हो गई है। सन् 1995 में जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्री ने एक पुस्तक में यह जानकारी दी कि भारत देश में काला धन 40 प्रतिशत बढ़ गया है।

इस प्रकार यदि देखा जाये तो स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश में आय की बढ़ रही इस प्रकरण के पैमाने बदल गये हैं और देश में आय की गति तीव्र हो गयी है और इसी से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि अमीर और गरीब का अन्तर देश में 90 गुना हो गया है,

क्योंकि निजी कम्पनी जहाँ अपने कार्य अधिकारी या प्रबन्ध को एक दिन का औसत वेतन साढ़े तीन हज़ार देती है और वहीं भारत देश का एक मज़दूर सारा दिन अपना शरीर तोड़ कर मात्र पचास रुपया ही वेतन पाता है। इस प्रकार आय के इस अन्तर को कई प्रकार से देखा जा सकता है। बढ़ती आय और घटती आय को देखकर यह भी कहा जा सकता है कि अमीर भारत बनाम गरीब भारत।

भारत में अमीरी के बढ़ते स्तर को देखकर लगता है कि भारत उन्नतशील हो रहा है और जब गाँव-देहात में ध्यान दिया जाता है तो भारत एक बहुत ही पिछड़ा देश मालूम होता है। धनवानों द्वारा धन के बल पर मौज और किसानों द्वारा की जा रही आत्महत्या देश के नाम पर एक कहावत है। एक सर्वेक्षण से पता चलता है कि अमीरों की दुनिया के भारत में नाम और सूरत में भी अन्तर आया है। भारत में पहले टाटा समूह को सर्वाधिक अमीरों में मिल जाता था और आज हमारे देश में सबसे अधिक धनाढ्य व्यक्तियों में प्रेम जी, दिलीप सिंधवी, रिलायन्स, भारती टेलीवेयर्स, एच.पी.एल., नारायण मूर्ति, सुभाष गोयल आदि अनेक नाम गिनाये जा सकते हैं।

भारत में जहाँ एक ओर अमीरी की शोभा विस्तार पा रही है, वहीं दूसरी ओर गरीबी का दायरा भी उसी गति से बढ़ रहा है। देश के किसानों की दशा दयनीय हो रही है, उनके सरों पर क़र्ज़े का बोझ बढ़ रहा है, यह सब देखकर तो यहीं अनुमान लगाया जा सकता है कि क्या अर्थ तंत्र मानवीय त्रासदियों से स्वतंत्र है ? सरकार ने इस प्रकार देश में बढ़ रही अमीरी और गरीबी के अन्तर पर अब तक कोई स्वतंत्र नीति की घोषणा नहीं की।

भारत में अमीर व्यक्ति अमीर होता जा रहा है और गरीब को गरीब बनाने की सरकारी योजनायें रोज ही देखने को मिलती हैं जिनमें कभी प्रदूषण के नाम पर फैक्ट्रियों का हटाया जाना, कभी दूकानों, रेहड़ी, पटरी वालों को प्रताड़ित करना, कभी रिक्शों के चलन पर रोक लगाना आदि गरीबी को बढ़ाने में सहायक दिखाई देते हैं। इसीलिए देश में आर्थिक नीतियों के भीषण दुष्परिणाम सामने आ रहे हैं, इसी बीच महानगर दिल्ली में काम की तलाश में आने वाले गरीब मज़दूरों को लगातार आर्थिक असुरक्षा कर सामना करना पड़ रहा है।

भारत को समृद्धिशील बनाने और अमीरी-गरीबी के अन्तर को कम करने का एक ही समाधान है कि देश के ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों में अधिक-से-अधिक कारखाने इत्यादि खोले जायें ताकि महानगरों की और दौड़ने वाले गरीब-मज़दूरों को उनके घरों के पास ही रोजगार प्राप्त हो सके। इसके साथ ही महानगरों के ऊँचे भवनों के पास उगने वाली झुग्गियों से मुक्ति पाई जा सके। इसमें मज़दूरों को दी जाने वाली मज़दूरी की भी राशि बढ़ाये जाने से गरीबी से कुछ मुक्ति अवश्य होगी और देश में बढ़ रहा अमीरी-गरीबी का अन्तर भी कुछ कम हो पायेगा।

(346) बढ़ती जनसंख्या, सिकुड़ते साधन

संकेत बिंदु—(1) समाज और राष्ट्र की जन-शक्ति का प्रतीक (2) बढ़ती जनसंख्या वरदान (3) सिकुड़ते साधनों का दुष्परिणाम (4) महँगाई और नकली माल को बढ़ावा (5) उपसंहार।

बढ़ती जनसंख्या समाज और राष्ट्र की विशाल जन-शक्ति का प्रतीक है। विकास-साधनों में मानवीय श्रम की सहज उलब्धि है। पुलिस और सेना की ताकत की पहचान है। प्रकृति को चुनौती भरा आह्वान है। राष्ट्र की प्रकृति का मेरुदण्ड है। सभ्यता का सम्बल है और है संस्कृति की प्रचारक।

सिकुड़ते साधन जीवन-जीने की क्षमता को चुनौती हैं। जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं रोटी, कपड़ा और मकान की कमी के परिचायक हैं। जीवन मूल्यों को मलवे में दबा देने की चेष्टा हैं। विकास-कार्यों को जन-जन तक पहुँचने से रोकने का षड्यंत्र हैं। सभ्यता को असभ्यता के गर्त में फेंकने की क्रिया है। संस्कृति की विकृति की भविष्यवाणी है। राष्ट्र की प्रगति पर प्रश्न-चिह्न हैं। देश को अभावपूर्ण स्थिति में पहुँचाने की अनचाही तैयारी है।

जनसंख्या जितनी अधिक होगी राष्ट्र उतना ही श्रम शक्ति से परिपूर्ण होगा। परिणामत: उसका उपयोग औद्योगिक, तकनीकी, वैज्ञानिक तथा विविध क्षेत्रों में किया जा सकेगा। पाश्चात्य और मुस्लिम राष्ट्र अपनी जनसंख्या की कमी का अभिशाप भुगत रहे हैं, तो भारत के लाखों लोग उनको इस अभिशाप से मुक्ति दिला रहे हैं। उनके राष्ट्र-विकास के हर क्षेत्र में सहयोग दे रहे हैं।

बढ़ती जनसंख्या जब विदेशों में खपेगी तो उसके साथ उनकी सभ्यता और संस्कृति भी जाएगी। अपनी सामाजिक और धार्मिक मान्यताओं की सुगन्ध से वह विदेश की भूमि को महकाएगी। परिणामत: विदेश में बढ़ती जनसंख्या देश की सांस्कृतिक ध्वजा फहराएगी। नेपाल, मलेशिया, नीदरलैण्ड, गुयाना, सउदी अरब, सिंगापुर, सूरीनाम, फिजी, मोरिशस, अमेरिका और इंग्लैण्ड की भूमि पर एक छोटा भारत बसता है। वहाँ भारतीय-संस्कृति का ध्वज शान से फहराता हुआ भारत की जढ़ती जनसंख्या के अभिशाप को वरदान में बदल रहा है।

बढ़ती जनसंख्या में विकास के सिकुड़ते साधन जीवन के लिए अभिशाप सिद्ध होंगे। जीवन जीने की आवश्यकताओं को हड़प कर जुगाली भी नहीं करेंगे। जीवन-मूल्यों को गिराएँगे और सभ्यता के मुँह पर चाँटा मारेंगे।

भारत में बढ़ती जनसंख्या में सिकुड़ते साधनों का दुष्परिणाम यह है कि आज भारत में गरीबी रेखा से नीचे जीने वालों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है। पापी पेट की आग बुझाने के लिए भोजन नहीं, गर्मी में लू और सर्दी में हड्डियाँ चीर देने वाली शीत लहरों (हवाओं) से बचने के लिए वस्त्र नहीं। खुले नीलगगन के नीचे फैली हुई भूमि ही उसका आवास-स्थल है।

बढ़ती आबादी में सिकुड़ते साधन महँगाई और नकली चीजों को प्रोत्साहित कर रहे हैं। कारण, माँग अधिक और आपूर्ति कम है, इसलिए महँगाई बढ़ रही है। माँग बढ़ती है गुणन-प्रणाली के अनुसार—2 × 2 = 4; 4 × 4 = 16; 16 × 16 = 256, जबकि सप्लाई (आपूर्ति) 1 + 1, 4 + 4, 16 + 16 के अनुपात में बढ़ रही है। महँगाई का बोझ नकली चीजें प्रस्तुत कर दूर किया जा रहा है। खाद्य-पदार्थों में मिश्रण, वस्त्र-निर्माण में हेरा-फेरी एवं जीवन-रक्षक औषधियों में मिलावट के कारण जन-स्वास्थ्य चौपट हो रहा है। आपूर्ति की कमी महँगाई के साथ-साथ 'चोर-बाजारी' को बढ़ावा दे रही है, जो राष्ट्र की अर्थव्यवस्था को चौपट करती है।

बढ़ती हुई आबादी में सिकुड़ते साधनों की समस्या ने रिश्वत को जन्म देकर 'काला-बाजार' को प्रेरणा दी है, जिसने राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था की नींव को हिलाकर रख दिया है। बच्चे का विद्यालय-प्रवेश, नौकरी की प्राप्ति, लाइसेंस, कचहरी की तारीखें, राजकीय कार्यालयों के काम बिना रिश्वत नहीं हो पाते। परिणामतः भारत में कर्त्तव्य की अवहेलना हो रही है और चरित्र का पतन। योग्यता रिश्वत के घर पानी भरती है. विवेक तथा क्षमता कुंठित होकर आत्म-हत्या करते हैं अथवा विदेश-पलायन करते हैं। परिणामतः सरकार और कार्यालय अयोग्य कंधों की बैसाखी पर टिके हैं। विकास की कोई भी योजना पूरी नहीं हो पाती। पूरी होती है तो इतने विलम्ब से कि उसकी उपयोगिता संदेहास्पद बन कर रह जाती है। वह 'का वर्षा जब कृषि सुखाने' की सूक्ति को चरितार्थ करती है।

भारत की जनता भौतिक दृष्टि से तभी सुखी रह सकती है जब जनसंख्या की बढ़ती हुई गति को धीमा किया जाए और विकास साधनों को फैलाया जाए, बढ़ाया जाए। जनसंख्या की बढ़ती गति को धीमा करना मानव के वश में है और साधनों का विकास प्रकृति की क्षमता पर निर्भर है। अतः सिकुड़ते साधनों में ही जीवन को सौख्यपूर्ण बनाने के लिए जनसंख्या की गति को अपेक्षाकृत धीमा करने में ही भारत का कल्याण है।

(347) कमरतोड़ महँगाई

संकेत बिंदु—(1) आवश्यक वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि (2) भारत की आर्थिक नीतियों की विफलता (3) विदेशी कर्ज में बढ़ोत्तरी (4) गरीबी को दूर करके विकास संभव (5) उपसंहार।

कमरतोड़ महँगाई जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं के मूल्यों में निरन्तर वृद्धि, उत्पादन की कमी और माँग की पूर्ति में असमर्थता की परिचायक है। बढ़ती हुई महँगाई जीवन-चालन के लिए अनिवार्य तत्त्वों (कपड़ा, रोटी, मकान) की पूर्ति पर गरीब जनता के पेट पर ईंट बाँधती है, मध्यवर्ग की आवश्यकताओं में कटौती करती है, तो धनिक वर्ग के लिए आय के स्रोत उत्पन्न करती है।

देसी घी तो आँख आँजने को भी मिल जाए तो गनीमत है। वनस्पति देवता का

आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए भी बहुत रजत-पुष्प चढ़ाने पड़ते हैं। पेट्रोल, डीजल, मिट्टी के तेल, रसोई गैस की दिन-प्रतिदिन बढ़ती मूल्य-वृद्धि ने दैनिक जीवन पर तेल छिड़ककर उसे भस्म करने का प्रयास किया है। तन ढकने के लिए कपड़ा महँगाई के गज पर सिकुड़ रहा है। सब्जी, फल, दालें और अचार गृहणियों को पुकार-पुकार कर कह रहे हैं—'रूखी सूखी खाय के ठंडा पानी पी।' रही मकान की बात, अगर महँगाई की यही स्थिति रही तो लोग जंगल में वास करने लगेंगे। दिल्ली की हालत यह है कि दो कमरे-रसोई का सैट तीन-चार हजार रुपये किराये पर भी नहीं मिलता। कैसे गुजारा होगा मध्यम वर्ग का?

बढ़ती हुई महँगाई भारत-सरकार की आर्थिक नीतियों की विफलता का परिणाम है। प्रकृति के रोष और प्रकोप का फल नहीं, शासकों की बदनीयती और बदइंतजामी की मुँह बोलती तस्वीर है।

काला धन, तस्करी और जमाखोरी महँगाई-वृद्धि के परम मित्र हैं। तस्कर खुले आम व्यापार करता है। काला धन जीवन का अनिवार्य अंग बन चुका है। काले धन की गिरफ्त में देश के बड़े नेताओं से लेकर उद्योगपति और अधिकारी तक शामिल हैं। काले धन का सबसे बुरा असर मुद्रास्फीति और रोजगार के अवसरों पर पड़ता है। यह उत्पादन और रोजगार की संभावना को कम कर देता है और दाम बढ़ा देता है।

इतना ही नहीं सरकार हर मास किसी-न-किसी वस्तु का मूल्य बढ़ा देती है। जब कीमतें बढ़ती हैं तो आगा-पीछा नहीं सोचतीं। दिल्ली बस परिवहन ने किराये में शत-प्रतिशत वृद्धि के परिणामत: थ्रीह्वीलर, टैक्सी वालों ने भी रेट बढ़ा दिए।

विदेशी कर्ज और उसके सेवा-शुल्क (ब्याज) ने भारत की आर्थिक नीति को चौपट कर रखा है। भारत का खजाना खाली है।

एक ओर विदेशी कर्ज बढ़ रहा है, तो दूसरी ओर व्यापारिक सन्तुलन बिगड़ रहा है। तीसरी ओर 1200 करोड़ रुपये देश की बीमार मिलें और 300 करोड़ रुपये बीस हजार लघु उद्योग नष्ट कर रहे हैं। चौथी ओर राष्ट्रीयकृत उद्योग निरन्तर घाटे में जा रहे हैं। इनमें प्रतिवर्ष अरबों रुपयों का घाटा भ्रष्ट राजनेताओं, नौकरशाही और बेईमान ठेकेदारों के घर में पहुँच कर जन-सामान्य को महँगाई की ओर धकेल रहा है।

गरीब देश की बादशाही-सरकारों के अनाप-शनाप बढ़ते खर्च देश की आर्थिक रीढ़ को तोड़ने की कसम खाए हुए हैं। मन्त्रियों की पलटन, आयोगों की भरमार, शाही दौरे, योजनाओं की विकृति, सब मिलाकर गरीब करदाता का खून चूस रही हैं। देश में खपत होने वाले पेट्रोलियम-पदार्थों के कुल खर्च का एक बड़ा हिस्सा राजकीय कार्यों में खर्च होता है, लेकिन प्रचार माध्यमों से बचत की शिक्षा दी जाती है—'तेल की एक-एक बूँद की बचत कीजिए।'

करोड़ों रुपया लगाकर हम उपग्रह बना रहे हैं, वैज्ञानिक प्रगति में विश्व के महान् राष्ट्रों की गिनती में आना चाहते हैं, किन्तु गरीब भारत का जन भूखा और नंगा है। आई. आर. एस. शृंखला उसकी भूख नहीं मिटा पाएगी और न ही 'इन्सेट' शृंखला उसकी नग्नता को

ढक पाएगी। यदि यह रुपया ईमानदारी से गरीबी दूर करने में लगता, तो निश्चित ही देश की काया-पलट होती।

सरकारों द्वारा आयात शुल्क तथा उत्पाद शुल्क बढ़ाए गए हैं। रेलवे ने मालभाड़ा बढ़ाया है तथा यात्री किरायों में वृद्धि की है। डाक की दरें भी बढ़ी हैं। लिफाफे का मूल्य एक रुपये से बढ़कर तीन रुपए हो गया है। इन सब बढ़ोत्तरियों का असर कीमतों पर पड़ना लाजिमी है।

1990 के बाद कीमतें बढ़ने का मुख्य कारण आर्थिक उदारीकरण है। उदारीकरण के तहत उद्योगपतियों और व्यापारियों को खुली छूट दी गयी है कि वे जितना चाहे ग्राहक से वसूलें। जिन अनेक चीजों पर से मूल्य नियन्त्रण उठा लिया गया है, उनमें दवाएँ भी हैं। अनेक अध्ययन यह बताते हैं कि पिछले पाँच-छह वर्षों में दवाओं की कीमतें बेतहाशा बढ़ी हैं। उपभोक्ता वस्तुओं की कीमत में वृद्धि का एक बड़ा कारण मार्केटिंग का नया तन्त्र है, जिसमें विज्ञापनबाजी पर बेतहाशा खर्च किया जाता है। एक रुपया लागत की वस्तु दस रुपये में बेची जाती है।

अधिक नोट छापने का गुर एवं विदेशी और स्वदेशी ऋण घाटे की खाई को पार करने के सेतु हैं, खाई भरने की विधि नहीं। जब घाटे की खाई भरी नहीं जाएगी, तो मुद्रास्फीति बढ़ती जाएगी। ज्यों-ज्यों मुद्रास्फीति बढ़ेगी, महँगाई छलाँग मार-मार कर आगे कूदेगी। जनता महँगाई की चक्की में और पिसती जाएगी।

(348) भारत में नशाबन्दी (मद्यनिषेध)

संकेत बिंदु—(1) नशाबन्दी का अर्थ (2) मादक द्रव्यों के प्रकार व दुष्प्रभाव (3) नशे के अनेक दुर्गुण (4) नशे पर प्रतिबंध लगाना हल नहीं। (5) उपसंहार।

वे पदार्थ जिनके सेवन से मानसिक विकृति उत्पन्न होती है, नशीले या मादक द्रव्य हैं। नशीली वस्तुओं पर प्रतिबन्ध या इनका व्यवस्थित प्रयोग नशाबन्दी है। किसी प्रकार के अधिकार, प्रवृत्ति, बल आदि मनोविकार की अधिकता, तीव्रता या प्रबलता के कारण उत्पन्न होने वाली अनियन्त्रित या असन्तुलित मानसिक अवस्था नशा (मद) है। जैसे—जवानी का नशा, दौलत का नशा या मोहब्बत का नशा। इनको व्यस्थित रूप देना नशाबन्दी है।

मादक द्रव्य कौन-से हैं, जिनसे मानसिक विकृति उत्पन्न होती है? वे पदार्थ हैं—शराब, अफीम, गाँजा, भाँग, चरस, ताड़ी, कोकीन आदि। कुछ स्वास्थ्य-विशेषज्ञ तम्बाकू, चाय और बीड़ी-सिगरेट को भी इस सूची में सम्मिलित करते हैं। प्राचीन काल में आसव तथा सोमरस को भी नशा मानते थे। तांत्रिक अनुष्ठान में 'अमृत' को भी नशा मानते थे। कारण 'तांत्रिक अनुष्ठान में जो वारुणी है, वह भी इसी अमृत का प्रतीक है।' (हिन्दी-साहित्य कोश : खण्ड 1, पृष्ठ 54)। वर्तमान समय में भारत में नशाबन्दी का

तात्पर्य शराब और ड्रगस् पर प्रतिबन्ध या उसके व्यवस्थित प्रयोग से है। क्योंकि ये पदार्थ अत्यधिक नशा देने वाले हैं।

'अति' सदा विनाशकारी होती है। जब मदिरा का अति प्रयोग हुआ, 'लत' पड़ गई, हुड़स तंग करने लगी तो मदिरा ने विष बनकर तन-मन को खोखला कर दिया। आँतों को सुखा दिया, 'किडनी' (गुर्दे) और 'लिवर' को दुर्बल और असहाय कर दिया। परिणामत: अनेक बीमारियाँ बिना माँगे ही शरीर से चिपट गईं। ड्रगस् ने तो शरीर की हाजमे की शक्ति को ही रौंद डाला और उसके अभाव में पेट-पीड़ा का असाध्य रोग दे दिया, जो व्यक्ति को विह्वल कर देता है।

स्खलन चेतना के कौशल का, मूल जिसे कहते हैं।
एक बिन्दु जिसमें विषाद के, नद उमड़े रहते हैं॥ —**प्रसाद**

नशा करने या मद्यपान करने के अनेक दुर्गुण हैं। नशे में धुत होकर नशेड़ी अपना होश खो बैंठता है। विवेक खो बैठता है। बच्चों को पीटता है। पत्नी की दुर्दशा करता है। लड़खड़ाते चरणों से मार्ग तय करता है। ऊल-जलूल बकता है। कोई ड्राईवर शराब पीकर जब गाड़ी चलाता है तो दूसरों की जान के लिए खतरनाक सिद्ध होता है। परिणामत: लाखों घर उजड़ रहे हैं, बरबाद हो रहे हैं। मिल्टन के शब्दों में, "संसार की सारी सेनाएँ मिलकर इतने मानवों और इतनी सम्पत्ति को नष्ट नहीं करतीं, जितनी शराब पीने की आदत।" वाल्मीकि ने मद्यपान की बुराई करते हुए कहा है—"पानादर्थश्च धर्मश्च कामश्च परिहीयते।" अर्थात् मद्य पीने से अर्थ, धर्म और काम, तीनों नष्ट हो जाते हैं। 'दीर्घनिकाय' का वचन है, "मदिरा तत्काल धन की हानि करती है, कलह को बढ़ाती है, रोगों का घर है, अपयश की जननी है, लज्जा का नाश करती है और बुद्धि को दुर्बल बनाती है।"

"जहाँ सौ में से अस्सी आदमी भूखों मरते हों वहाँ दारू पीना गरीबों का रक्त पीने के बराबर है।' —**मुंशी प्रेमचन्द**

"शराब भी क्षय जैसा एक रोग है। जिसका दामन पकड़ती है, उसे समाप्त करके ही छोड़ती है।" —**भगवतीप्रसाद वाजपेयी**

"मदिरा का उपभोग तो स्वयं को भुलाने के लिए है, स्मरण करने के लिए नहीं।" —**महादेवी वर्मा**

अकबर इलाहाबादी कहते हैं कि इस अंगूर की बेटी ने (शराब ने) इतने जुल्म ढाए हैं, शुक्र है कि उसका बेटा न था—

उसकी बेटी ने उठा रक्खी है दुनिया सर पर।
खैरियत गुजरी कि अंगूर के बेटा न हुआ॥

जो वस्तु खुलेआम नहीं बिकती, वह काले बाजार की शरण में चली जाती है। काला बाजार अपराधवृत्ति का जनक है, पोषक है। अच्छी शराब मिलनी बन्द हो जाए, तो घर-घर में शराब की भट्टियाँ लगेंगी। देशी ठर्रा बिकेगा। 'जीभ-चोंच जरि जाय' के अनुसार घटिया शराब से लोग बिन परमिट परलोक गमन करने लगेंगे; जो राष्ट्र के लिए घोर अनर्थ होगा।

इसलिए नशे पर प्रतिबन्ध लगाना श्रेयस्कर नहीं। दूसरे, इससे राजस्व की हानि होगी। तीसरे, औषध के रूप में, शीत काल में सेना के लिए शराब का अपना उपयोग है। अत: इसके व्यवस्थित उपयोग पर बल देना चाहिए।

गुजरात, आंध्र, मीजोरम और हरियाणा राज्य-सरकारों ने पूर्ण नशाबंदी करके देख लिया। करोड़ों रुपए राजस्व की हानि तो हुई ही शराब की तस्करी का धंधा जोरों से चल पड़ा। नकली और जहरीली शराब कुटीर-उद्योग की तरह पनपने लगी। दूसरी ओर, डिस्टलरियाँ और ब्रुआरियाँ बंद होने से इस कारोबार में लगे हजारों लोग बेरोजगार हो गए। पहले ही इन प्रांतों में बेरोजगारी थी। पूर्ण नशाबंदी ने बेरोजगारों की संख्या और बढ़ा दी। आर्थिक कमर टूटते देख अन्तत: इन सरकारों ने पूर्ण नशाबंदी आदेश को वापिस ले लिया।

सुरालयों की संख्या कम करके, देसी भट्टियों को जड़मूल से नष्ट करके, सार्वजनिक रूप में शराब पीने पर पूर्णत: प्रतिबन्ध लगाकर इसके दुरुपयोग को रोका जा सकता है, इसे हतोत्साहित किया जा सकता है।

(349) भारत में काला धन

संकेत बिंदु—(1) राष्ट्र की अर्थव्यवस्था के लिए दीमक (2) काले धन के विभिन्न रूप (3) भ्रष्ट नेताओं, अपराधियों और व्यवसायियों द्वारा अवैध रूप से कमाया गया धन (4) अवैधानिक मानसिकता से काला धन (5) उपसंहार।

राष्ट्र की अर्थव्यवस्था के लिए दीमक है, काला धन। अर्थव्यवस्था के राजपथ पर बेरोकटोक बढ़ती अन्तहीन विकृति है, काला धन। अर्थव्यवस्था को संकटग्रस्त बनाता है, काला धन। राष्ट्र की सम्पूर्ण संस्कृति और सभ्यता की कर्मनाशा है, काला धन।

राजनीति में काला धन उज्ज्वल वस्त्रधारी राजनेता की ताकत की पहचान है। व्यावसायिक क्षेत्र में काला धन व्यापारी की समृद्धि का द्योतक है। नौकरशाही और अपराध जगत् में काला धन उनकी सम्पन्नता और शक्ति का प्रतीक है।

काला धन क्या है? काली आय से सृजित धन, काला धन है। हवाला, तस्करी, वेश्यावृति, रिश्वत जैसे अवैध धंधों से प्राप्त धन, काला धन है। आय-कर, बिक्री-कर और उत्पादन-कर से छिपा कर रखा गया धन, काला धन है।

सौ करोड़ की आबादी वाले भारत में लगभग तीन करोड़ लोग ऐसे हैं, जिनके पास पर्याप्त काला धन है। इनमें लगभग एक करोड़ लोग ऐसे हैं जो काले धन में आकंठ डूबे हुए हैं अर्थात् भारत की एक प्रतिशत आबादी के पास ही जमा है, अधिकांश काला धन।

उद्योगपतियों और राजनीतिकों के सम्बन्ध जब गहरे होने लगे तो उद्योग जगत् में 'काला धन' बनाने की प्रवृत्ति जोर पकड़ने लगी। उद्योग जगत् विभिन्न राजनीतिज्ञों को आर्थिक सहायता देने लगा और बदले में तमाम वैध-अवैध तरीके से कमाई करने को अपना अधिकार समझने लगा। मैं एक उदाहरण दे रहा हूँ, नेहरू मन्त्रिमंडल में रफी अहमद

किदवई डाक-तार विभाग के मन्त्री बने तो उन्होंने 'नेशनल हेराल्ड' अखबार के लिए चंदा जुटाना शुरू कर दिया। इस पर आपत्ति प्रकट करते हुए पटेल ने नेहरू जी को पत्र भी लिखा, लेकिन नेहरू जी ने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया। फिर धीरे-धीरे चंदे का रूप बदलने लगा। चुनावी खर्च, पार्टी फंड आदि में उद्योगपतियों ने जो धन देना शुरू किया उसकी कीमत वह कई अन्य तरीकों से वसूलने लगे।

'राष्ट्रीय सहारा' के हस्तक्षेप परिशिष्ट (26.2.2000) के सम्पादक की धारणा है कि—

"काले धन का अर्थशास्त्र ऐसा है कि वैध और अवैध, दोनों ही धंधों के जरिये काला धन पैदा होता है। जहाँ शेयर बाजार तथा सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र वैध की श्रेणी में आते हैं वहीं हवाला, तस्करी, वेश्यावृत्ति जैसे अनेक धंधे अवैध माने गए हैं। अवैध धंधों के जरिये पैदा होने वाला काला धन दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है।

पूरे विश्व में करीब 35 लाख करोड़ रुपये की नशीली दवाओं का व्यापार होता है जो भारत के सकल घरेलू उत्पाद का लगभग दोगुना है। एक अनुमान के मुताबिक नशीली दवाओं की तस्करी के जरिये 1990 में हमारे देश के तस्करों ने करीब 20 हजार करोड़ रुपये का मुनाफा कमाया।

भ्रष्ट राजनेताओं, व्यवसायियों, नौकरशाहों और अपराधियों की चौकड़ी ही काले धन का मूल स्रोत है। अनुमान है कि इस चौकड़ी के बेताज बादशाहों ने हवाला के जरिये 150 अरब डॉलर से भी ज्यादा धनराशि विदेशों में जमा कर रखी है। इस राशि पर उन्हें प्रति वर्ष कम से कम ६ अरब डॉलर ब्याज मिलता है।"

सरकार की नियत यदि देश के काले धन को काबू करना हो तो वह छह मास में देश में ऐसा आतंकित वातावरण निर्माण कर सकती है कि काले धन के चारों स्रोत बंद हो जाएँगे। जैसे—मकान की रजिस्ट्री लगभग 75 प्रतिशत कम मूल्य की होती है। रजिस्ट्री उपरांत ऐसे मकानों का रजिस्ट्री मूल्य चुकाकर सरकार जब्त कर ले तो करोड़ों रुपए के काले धन का स्रोत सूख जाएगा। आयकर तथा बिक्रीकर विभाग यदि व्यापारियों और उद्योगपतियों से ईमानदारी से आयकर और बिक्रीकर वसूल करें तो काले धन के दानव की कमर टूट सकती है। नौकरशाही की रिश्वत-प्रवृति पर लौह-प्रहार किया जाए तो काले धन की कर्मनाशा उज्ज्वल धन की गंगा में बदल सकती है।

भारत आध्यात्मिक देश है। पहले यहाँ भगवान् के भय से जनता कानून का पालन करती थी और नैतिकता को गले लगाती थी। गलत काम का लेखा 'ऊपर' देना होगा, की मानसिकता ने अपराध जगत् से भारतवासियों को बचा रखा था। धन ने जब नैतिकता की आँखों को विमोहित किया तो आदमी के मन से 'ऊपर' का भय निकल गया। संस्कृति पर भौतिक सभ्यता के आक्रमण ने सांस्कृतिक मूल्यों का अपहरण कर लिया। फलतः भारत जैसे आध्यात्मिक देश में ही काला धन फलने-फूलने लगा। ज्यों-ज्यों भगवान् का भय कम होता जाएगा, त्यों-त्यों काला धन भारत में बलवती होगा।

(350) मिलावट

संकेत बिंदु—(1) मिलावट प्राणघातक, देशद्रोही और अमानवीय (2) कानून के शिकंजे से दूर (3) स्वास्थ्य के लिए हानिकारक (4) स्वामी रामतीर्थ के जीवन की घटना (5) उपसंहार।

वर्तमान युग अभाव का युग है। जीवनोपयोगी पदार्थों की दृष्टि से कोई भी वस्तु बाजार से खरीदने जाइए। पहले तो मिलेगी ही नहीं, यदि मिल भी जाए तो बहुत ऊँचे दामों में। अभाव और ऊँचे मूल्य से व्यापारी में अधिक लाभ कमाने की सहज इच्छा जागृत हुई। अधिक लाभ की इच्छा ने वस्तुओं में मिलावट के प्राणघातक, देशद्रोही और अमानवीय कृत्य को जन्म दिया।

यह मिलावट औषधियों में तो और भी प्राणघातक सिद्ध होती है। दिल्ली में उपभोक्ताओं की शिकायत पर एक सर्वेक्षण किया गया। छापा मार कर सैरिडॉन की टिकियाँ पकड़ी गईं। टिकियों पर सैरिडॉन के स्थान पर 'सारोडॉन' लिखा हुआ था। डॉक्टरों का मत है कि नकली 'सारोडॉन' सिर दर्द तो दूर नहीं करेगी हाँ, पेट की गड़बड़ अवश्य पैदा कर सकती है। इसी प्रकार 'कोडोपायरीन' के स्थान पर 'कोडीपीन' की टिकियाँ मिलीं, जिनमें एस्पिरिन और चाक पाउडर का मिश्रण था। चाक से किडनी (गुर्दे) में पत्थर बन जाता है और एस्पिरिन हृदय-रोग उत्पन्न कर सकती है। एस्प्रो की नकली टिकियाँ जो देखने में असली की तरह दिखाई देती हैं, एस्पिरिन मात्र का संग्रह है, जो 'अल्परक्तचाप' का शिकार बना सकती है। विशेषज्ञों का कहना है कि इसकी कुछ गोलियाँ एक साथ खाने से गोली खाने वाला स्वस्थ मानव परलोक पहुँच सकता है।

हर मास समाचार-पत्रों के शीर्षक होते हैं—"अमुक नगर में विषैली शराब पीने से 20 आदमी मर गए।" कहीं 25 आदमियों के मरने का समाचार छपता है। विषैली शराब मिलावट का परिणाम है। फिर भी मजाल है कि शराब बेचने वाले पकड़े जाएँ। पकड़े भी गए तो उनकी पहुँच कानून के लम्बे हाथों को भी मरोड़ देती है।

नकली ग्लूकोज-इंजेक्शन से रोगियों की मृत्यु हो जाती है। कानपुर के लाला लाजपतराय अस्पताल के 22 रोगी नरक लोक में नकली ग्लूकोज-निर्माता को कोसते होंगे। पंजाब के मोगा शहर में 50 बच्चों की मृत्यु हो गई। पता चला कि उनकी दवाई में चूहे मारने वाली दवा स्टायक्लीन का प्रयोग किया गया था।

खाने की चीजों में मिलावट ने तो भारतवासियों का स्वास्थ्य चौपट ही कर रखा है। चावलों में सफेद पत्थर, काली मिर्चों में पपीते के बीज और पीसे धनिये में सूखी लीद मिलाना तो आम बात है। देसी घी में वनस्पति तेल मिलाकर 'विशुद्ध' बनाया जाता है। वनस्पति में तेल मिलाकर पवित्र किया जाता है। सड़े अचार में उत्पन्न कीटाणुओं को उसी में आत्मसात् कर दिया जाता है। सरसों का तेल भी शुद्ध नहीं रहा। शरीर में मलिए—कुछ

क्षणों में चिकनाहट गायब। खाने से मृत्यु का आह्वान। बादाम रोगन वास्तविक बादाम का प्रतिफलन नहीं, अपितु सेंट का कमाल है।

. मिलावट का दुष्परिणाम देखिए—आँख का अंजन आँख फोड़ रहा है और दन्त-मंजन दाँतों की जड़ों को खोद रहा है। नकली बाम सिर-दर्द तो मिटाता नहीं, बदन दर्द पैदा कर देता है।

शुद्ध ऊन के वस्त्र में नाईलॉन का मिश्रण होगा। शुद्ध नाईलॉन में नकली रेशमी धागे मिले होंगे। रेशम में कितनी शुद्धता है—कौन जाने ?

सीमेंट में रेत और बालू रेत में मिट्टी की मिलावट भवन की नींव को कमजोर कर देती है। फलत: बड़े-बड़े गगनचुम्बी भवन अपनी आयु से पूर्व ही पृथ्वी से साक्षात्कार करने को उतावले दिखलाई पड़ते हैं।

कलियुग के बारे में विष्णु पुराण, भागवत और रामचरितमानस के कवि-मनीषियों ने जो लिखा है, उसमें वे सम्भवत: यह लिखना भूल गए लगते हैं कि, "हर पाप कलियुग में अपनी मर्यादा में रहेगा, किन्तु मिलावट के पाप पर परमेश्वर भी काबू नहीं पा सकेगा।"

स्वामी रामतीर्थ के जीवन की एक घटना है। उन्होंने शिवलिंग पर चढ़ाने के लिए दूध खरीदा। दूध के रंग को देखकर स्वामी जी को शंका हुई। आचमन किया तो स्पष्ट हो गया कि दूध में जल का मिश्रण है। स्वामी जी ने पहले तो एकटक दूध वाले को देखा और फिर रोते हुए अपना सिर पीटने लगे। स्वामी जी का रुदन सुनकर अनेक शिष्य आ गए। शिष्यों ने स्वामी जी से उनके रुदन का कारण जानना चाहा, तो स्वामी जी ने कहा, "जो कुछ सामने है, उसकी शिकायत किससे करूँ? सरकार के आँख-कान होते नहीं। ग्वाले के सिर पर लोभ का भूत सवार है और शिवजी पहले ही पत्थर के हो गए। इसलिए अपना सिर पीटने के सिवाय चारा ही क्या है?" शिष्य-समूह में एक भक्त जो न्यायाधीश भी थे, खड़े थे। उन्होंने क्रोध में ग्वाले को दण्ड देने की बात कही। इस पर स्वामी रामतीर्थ ने शिवलिंग बगल में दबाया और यह कहते हुए वहाँ से चल दिए, "पहले मुझे इस ग्वाले से कम अपराधी को खोज लेने दो, फिर मैं दण्ड के बारे में सोचूँगा।"

मिलावट धन के लोभी-व्यापारियों की मानसिक पतन की पराकाष्ठा है। उससे छुटकारा पाने के लिए जनता-जनार्दन को सचेत रहना होगा। लोकप्रियता की दुहाई देने वाली सरकार को इस जघन्य अपराध से जनता को मुक्ति दिलानी होगी। मिलावट करने वाले संस्थानों के मालिकों को आजन्म कारावास और रिश्वत लेकर उसके जुल्म को कम करने या करवाने में सहायक अधिकारी को मृत्युदण्ड देना होगा, तभी इस पाप से मुक्ति सम्भव है, वरना अकबर इलाहाबादी के शब्दों में इस स्वर्णिम भारत की लोकतन्त्री सरकार के मिलावटी दृष्टिकोण पर कहने को विवश होना पड़ेगा—

दुनिया ही अब दुश्मन है, कायम न दीन है।
ज़र की इस तलब में, शेख भी कौड़ी का तीन है॥

(351) भारत में भ्रष्टाचार

संकेत बिंदु—(1) भ्रष्टाचार का अर्थ (2) रिश्वत और बेईमानी का पर्याय (3) राजनीतिक भ्रष्टाचार (4) धन का प्रभाव (5) उपसंहार।

दूषित और निन्दनीय, पतित और अवैध आचरण भ्रष्टाचार है। अधिकारियों तथा कर्मचारियों द्वारा विहित कर्त्तव्यों का निष्ठापूर्वक यथोचित रूप से पालन न करके, मनमाने ढंग से, विलम्ब से तथा कार्यार्थी से रिश्वत लेकर अनुचित रूप में कार्य करना भी भ्रष्टाचार है।

भ्रष्ट आचरण का अभिप्राय ऐसा आचरण और क्रियाकलाप है जो आदर्शों, मूल्यों, परम्पराओं, संवैधानिक मान्यताओं और नियम व कानूनों के अनुरूप न हो। भारतीय संविधान, भारतीय मूल्यों और आदर्शों के साथ किया जाने वाला विश्वासघात भी भ्रष्ट आचरण है। व्यापारी खाद्य वस्तु और पेट्रोलियम पदार्थों में मिलावट करते हैं, तीन रुपये की वस्तु के तेरह रुपये वसूलते हैं, यह भी भ्रष्टाचार ही है।

भ्रष्टाचार सामाजिक स्वास्थ्य के लिए विकार उत्पन्न करने का कारण है।

भ्रष्टाचार रिश्वत और बेईमानी का पर्याय है। इसके मूल में है अत्यधिक धनोपार्जन की लिप्सा। जब धन-सम्पत्ति के संग्रह की व्यापक छूट हो तो आगा-पीछा सोचने की जरूरत ही क्या है ? इस छूट से सच्चाई पर स्वत: पर्दा पड़ जाएगा, न्याय पर सोने का पानी चढ़ जाएगा। यदि धन-संग्रह की खुली छूट न होती, तो न्यायालय के चपरासी, बाबू और रीडर न्यायाधीश से भी अधिक अमीर कैसे होते ? हाजी मस्तान, बखिया और पटेल जैसे तस्कर-सम्राट् भारत में कैसे फलते-फूलते ? शेयर किंग हर्षद मेहता भारत के अर्थ-तंत्र की जड़ें कैसे हिला पाता ?

प्रशासनिक शिथिलता भ्रष्टाचार की जड़ है। रिश्वत के बिना 'फाइल' हिलेगी नहीं और कार्य की सम्पन्नता पर प्रश्नवाचक चिह्न बना ही रहेगा। लिपिक से लेकर मन्त्री तक, लालफीताशाही की गिरफ्त में हैं। उस बंधन को काटने के लिए चाहिए बख्शिश, रिश्वत, मेहनताना, दस्तूरी।

भारत आज भ्रष्टाचार के रोग से ग्रस्त है। यहाँ का राजनीतिज्ञ सूखा-पीड़ित जनों में वितरणार्थ आए अनाज की तो बात ही क्या पशुओं का 'चारा' तक खा जाता है। दोषी और भ्रष्ट नेताओं के विरुद्ध मुकदमे वापिस हो जाते हैं। समाजद्रोही तत्त्वों को न केवल सरकार का प्रश्रय मिलता है, अपितु उन्हें स्वच्छन्द पापाचार का लाइसेन्स भी मिलता है, तो भ्रष्टाचार रुकेगा कैसे ?

सरकारी कानूनों के नाम पर लोगों के उचित और सही काम भी जब फाइलों में लटकते रहेंगे, परियोजनाओं की पूर्ति के लिए खुलकर कमीशन मिलते और माँगे जाते रहेंगे, सरकारी खरीद में हिस्सा मिलता रहेगा तो लोगों में नैतिकता का बोध कैसे कायम रह पाएगा ?

यदि राजनीति में व्यक्ति, सिद्धांत, विचारधारा एवं संगठन की बजाय धन ही प्रभावी होता जाएगा और बिना पैसे वाले निष्ठावान् कार्यकर्ता की अवहेलना की जाती रहेगी, तो सार्वजनिक जीवन में पवित्र मूल्यों की स्थापना कैसे हो पाएगी ?

श्री अटलबिहारी वाजपेयी का मानना है, 'भ्रष्टाचार के विरुद्ध एक उदासीनता की स्थिति भी है क्योंकि भ्रष्टाचार ने संस्थागत रूप ले लिया है। लोग मानने लगे हैं कि भ्रष्टाचार न सिर्फ प्रशासन में बल्कि जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में इस हद तक फैल चुका है कि उसे मिटाया नहीं जा सकता।

इंगर सोल के शब्दों में—"इस युग की सबसे बड़ी देन मुखौटा है जिसे पहने बिना आज की सभ्यता से त्राण नहीं, आज की दुनिया में गुजर नहीं। दूसरी ओर, ये मुखौटे हमारी असलियत को चाट गए हैं। हम समाप्त हो गए हैं। बस, मुखौटे मात्र बच गए हैं। ये मुखौटे दिन के उजियाले में भ्रष्टाचार को कोसेंगे और रात के अंधियारे में उसकी आरती उतारेंगे। क्या कोई माई का लाल आएगा, जो इन मुखौटों को उतार फेंकेगा और मनुष्य को उसका असली रूप दिखाएगा ?"

भ्रष्टाचार पर अंकुश कुछ प्रभावी कदम उठाकर लगाया जा सकता है। सबसे पहले इस बात की जरूरत है कि मान्यता प्राप्त दलों के उम्मीदवारों का चुनावी खर्चा सरकार वहन करे। दूसरे, गोपन कानून को संशोधित किया जाए, क्योंकि जितने पर्दे कम होंगे, पाप भी उतने ही कम होंगे। तीसरे, शक्तियों का विकेन्द्रीकरण हो। शक्तियों के विकेन्द्रीकरण से चीजें पंचायती हो जाएँगी और भ्रष्टाचार करना आसान नहीं होगा। चौथे, रचनात्मक जवाबदेही से युक्त राजनीतिक लोकाचार स्थापित हो। इसके तहत कोई अफसर या राजनेता यह कह कर नहीं बच सकता कि उसने चोरी नहीं की, बल्कि उसके रहते चोरी हुई। यही उसे गैर जिम्मेदार साबित करने के लिए पर्याप्त है और पाँचवें, राजनीतिक कार्रवाइयों के लिए एक गैर-राजनीतिक 'पीपुल्स प्लेटफॉर्म' (जन-परिषद्) बने, जो स्थायी विपक्ष की भूमिका अदा करता रहे।'

(352) भारत में भ्रष्टाचार का रोग

संकेत बिंदु—(1) श्री-समृद्धि और काम निकालने की रामबाण औषध (2) दूषित-निन्दनीय व्यवहार रोग के लक्षण (3) मानसिक विकार (4) भ्रष्टाचार के रोगियों की विशेषता (5) उपसंहार।

'भ्रष्टाचार' वर्तमान युग में भ्रष्टाचारियों के लिए सफलता का सर्वश्रेष्ठ साधन है। काम निकालने तथा श्री-समृद्धि की रामबाण औषध है। ऋद्धि-सिद्धि का प्रदाता है, भाग्योदय का द्वार है। ऐश्वर्यमय जीवन जीने का साधन है। दु:साहस और अविवेक इसके जनक हैं। आज भारत में यह एक असाध्य रोग बन चुका है।

स्वार्थ और अबाध भौतिक सुखोपभोग की लालसा का आधिक्य इस रोग के कारण

हैं। दूषित और निन्दनीय आचार व्यवहार इस रोग के लक्षण हैं। करप्शन, रिश्वत, घूस, दस्तूरी इस रोग के पर्याय हैं। मन की शुद्धता, आचार की पवित्रता तथा सन्तोष इस रोग की औषध हैं।

भ्रष्टाचार का रोग बीमारी होते हुए भी बहुत मीठा है, प्यारा है। कुछ अपवादों को छोड़कर प्रत्येक नर-नारी, गृहस्थी, राजनीतिक-सामाजिक नेता इसका प्यार पाने का आकांक्षी है। इसके प्यार में आकंठ डूब जाने को सबका हृदय मचलता है। 'निराला' के शब्दों में आज का मानव कहता है—

मेरे प्राणों में आओ!
शत-शत शिथिल भावनाओं के
उर के तार सजा जाओ।

भ्रष्टाचार एक मानसिक विकार है। चित्त-वृत्ति को विकृत करने वाली की एक प्रवृति है। मन का विलास है। आकार, संकेत, गति, चेष्टा, वचन, नेत्र तथा मुख के विकारों से अन्तर्मन का ग्रहण हो जाता है। अत: इस रोग की चपेट में मानव शीघ्र आ जाता है। वह 'क्यू (पंक्ति) में लग कर अपनी बारी आने की प्रतीक्षा नहीं करता। द्वारपाल को 'टिप' देकर सबसे पहले अन्दर घुस जाता है। विद्यार्थी पढ़ाई की ओर ध्यान नहीं देता। वह ट्यूशन रखकर अधिक अंक पा जाता है। सरकारी अधिकारियों को उपहार तथा बड़े-बड़े ठेकों में सुरा-सुन्दरी का प्रयोग भ्रष्टाचार के ही तो नमूने हैं। इस प्रकार भ्रष्टाचारी दूसरों को भी अपने समान नंगा करने के लिए अपनी चित्त-वृत्ति को विकृत करता है; दूसरों को भ्रष्ट कर उनके मन में इस रोग के कीटाणु घुसा देता है। रक्तचाप और मधुमेह के बारे में यह प्रसिद्ध है कि ये रोग मृत्यु के साथ जाते हैं। इसी प्रकार भ्रष्ट आचरण भी बहु-विधि दण्ड पाने एवं उत्पीड़न, दमन सहने पर भी स्वच्छ नहीं होता। ललितनारायण मिश्र तथा नागरवाला कांड का अन्त उनके देह-विसर्जन पर ही हुआ। भ्रष्ट आचरण में सजा पाए सेठ डालमिया कारावास भोगने के बाद भी और अधिक विस्तार से अपने व्यापार-साम्राज्य को बढ़ाने में संलग्न रहे।

भ्रष्टाचार-रोग के रोगियों की एक विशेषता है—मनसा, वाचा, कर्मणा वे एक हैं। विविध तन होते हुए भी मन से एक हैं। उनके दु:ख-सुख एक हैं। जैसे काँटा पैर में चुभता है, मन उसके दु:ख दूर करने के लिए तुरन्त चिंतित होता है और हाथ अपना सहयोग प्रदान करते हैं, उसी प्रकार रिश्वतखोर पकड़ा जाए, तो ऊपर से नीचे तक की 'मशीनरी' उसको छुड़ाने के लिए तन, मन, धन से जुट जाएगी।

आज की स्थिति तो और भी विषम है। जहाँ घोटाले और काण्ड राजनीति-सफलता के अलंकरण हैं। पकड़ में न आना राजनीतिक कौशल तथा सत्ता पर राजनीतिक बदला लेने का आरोप लगाना, घोटाला करने वालों के उलट प्रहार हैं। श्रीमान् लालू प्रसाद यादव तथा श्रीमती राबड़ी देवी के पक्ष में संसद् में जो हंगामे होते रहते हैं, वे राजनीतिक बचाव ही तो हैं।

श्री अटलबिहारी वाजपेयी के शब्दों में—'देश में जब कोई संक्रामक रोग फैलता है तो अच्छे-खासे स्वस्थ लोग भी उसकी चपेट में आ जाते हैं। भ्रष्टाचार एक संक्रामक रोग है। यह सभी दलों को लग चुका है। मेरा दल भी इसका अपवाद नहीं। व्यवस्थागत दोषों से कोई भी दल अछूता नहीं है।'

व्यवस्थागत बदलाव के बिना भ्रष्टाचार के रोग पर चोट कर पाना असंभव है। कोई भी व्यवस्थागत बदलाव तात्कालिक दौर की राजनीतिक चेतना से हटकर नहीं लाया जा सकता। सवाल यह है कि इस वास्तविक और प्रभावी बदलाव का अभिकर्ता कौन होगा? कोई समग्रतावादी, उदार-संवेदनशील तथा औद्योगिक-वैज्ञानिक परिवर्तनों पर विवेकपूर्ण दृष्टि रखने वाला अभिकरण ही इस बदलाव का संवाहक हो सकता है।

क्या यह सच नहीं है कि जापान और इटली में कई भ्रष्ट राजनेता सजा काटने के लिए बाध्य किये गये। जब अमरीका जैसे देश में राष्ट्रपति क्लिंटन के खिलाफ भी पब्लिक प्रोसीक्यूटर खड़ा हो सकता है, तो हमारे देश में यह व्यवस्था क्यों नहीं लागू की जा सकती?

(353) राजनीति का अपराधीकरण

संकेत बिंदु—(1) राजनीति और अपराध अन्योन्याश्रित (2) अपराधियों के लिए शरणस्थली और माध्यम (3) राजनीति के अपराधीकरण के अन्य माध्यम (4) समाज पर प्रभाव (5) उपसंहार।

आज भारत की राजनीति और अपराध अन्योन्याश्रित हो चुके हैं। बिना अपराध राजनीति पंगु तथा पौरुष-विहीन नर और दंत विहीन हिंस्र पशु के समान हो चुकी है। राजनीतिज्ञों के आश्रय के अभाव में अपराधियों की गति नहीं। इनके बिना वे कारागार की अंधेरी कोठरी में घुट-घुट कर जीने को अभिशप्त हैं।

राजनीति के विषय में एक कहावत है, ''पॉलिटिक्स इज द गेम ऑफ स्काउनड्रल्स'' अर्थात् राजनीति गुंडों का खेल है। गुंडापन इस खेल का विधान है। काला धन खेल का क्रीडांगण है। पुलिस संरक्षण खेल का निर्णायक तत्त्व (रेफरी) है। श्री अरविन्द चतुर्वेदी इसका समर्थन करते हुए लिखते हैं, ''यह विषबेल पुलिस संरक्षण व कालेधन रूपी खाद पाकर पनपती गई तथा परवान चढ़ती गई। अपराध की लताएँ राजनैतिक बरगद के चारों ओर इस तरह लिपट गई हैं कि अब बरगद के मूल तने तथा इन विष बेलों में फरक करना मुश्किल हो गया है।' श्रीमती सुषमा स्वराज्य ने दूरदर्शन के एक साक्षात्कार में सही कहा था, 'राजनीति का अपराधीकरण हो रहा है या अपराधियों का राजनीतीकरण।'

चुनाव सभा में भीड़ जुटाने, बोगस मतदान कराने, मत-पत्र छीनने तथा मत-पेटी लूटने, विरोधियों को धमकाने-डराने के लिए अपराधी तत्त्व का सहारा लिया जाता है और बदले में उन्हें मुँह माँगा पैसा और राजनीतिक संरक्षण प्रदान किया जाता है। जैसे-जैसे राजनीतिज्ञों का अपराधी तत्त्वों पर आश्रय बढ़ता गया, अपराधी-तत्त्व भी सुरसा की तरह मुँह फैलाकर

अपनी माँग बढ़ाने लगे। जहाँ अपराधी तत्त्व सम्पन्न थे या हो गए हैं, वहाँ उन्होंने धन और संरक्षण के बदले चुनाव का टिकट माँगना शुरू किया है।'बोये पेड़ बबूल के तो आम कहाँ ते पाए।' फलतः राजनीतिक दलों ने विवशता तथा विजय की संभावनावश अपराधियों को चुनाव लड़वाना शुरू कर दिया। इस प्रकार हुआ अपराधियों का राजनीतिक संरक्षण। श्री आनन्द प्रधान के शब्दों में, "अपराधियों के लिए राजनीति अब सिर्फ शरणस्थली मात्र नहीं है, बल्कि राजनीति उनके लिए एक ऐसा औजार बन गई है, जिसके जरिये वह न सिर्फ लूटपाट के नए-नए अवसर खोज पाते हैं, बल्कि राजनीति उनको लूटपाट की एक राबिन हुडी सामाजिक स्वीकृति भी दिला देती है। यह एक नितांत पीड़ादायक सच्चाई है कि आज के युवा और विद्यार्थी को राजनीति का आदर्शवाद और परिवर्तन की आकांक्षा नहीं खींचती है, बल्कि राजनीति और अपराध के घालमेल से सफलता का 'शार्टकट' ज्यादा आकर्षित करता है।"

राजनीति और अपराध का सम्बन्ध पहले-पहल पाँचवें आम चुनाव सन् 1971 में प्रकट हुआ, जब राजनीतिक प्रत्याशियों ने अपराधियों के सहयोग से मत-पेटियाँ लूटीं और मत-पत्रों का दुरुपयोग हुआ। परिणामतः चुनाव-आयोग को 66 मतदान केन्द्रों पर दोबारा मतदान कराना पड़ा था। उसके बाद प्रत्येक प्रांतीय चुनाव तथा लोकसभा चुनाव में तो यह प्रवृत्ति बढ़ती गई। 1990 के बाद तो स्थिति नियंत्रण से बाहर हो गई। सन् 1999 के महानिर्वाचन में तो राजनीतिक हत्याएँ, जाली मत-पत्र डलवाने, थोक में मतपत्र डालने, मत-पेटियों का अपहरण तथा पुनः चुनाव करवाने के चुनाव-आयोग के आँकड़े चौंकाने वाले हैं।

लगभग सभी राजनीतिक दल आपराधिक तत्त्वों का सहयोग ही नहीं लेते, उन्हें वे अपना प्रत्याशी भी बनाते हैं। वोहरा समिति की रिपोर्ट को सच मान लिया जाए तो आज राजनेताओं, अपराधियों, नौकरशाही और उद्योगपतियों के बीच ऐसा अपावन गठबंधन है जो समूचे लोकतंत्र और चुनावी प्रक्रिया के लिए भयंकर चुनौती है।

राजनीति और अपराध का आरम्भ 1968 के कांग्रेस-विभाजन के समय से प्रारम्भ हुआ। तब पुराने त्यागी-तपस्वी कांग्रेसी इन्दिरा जी की तिकड़मों को देखकर उनसे दूर हुए। 1971 के चुनाव के बाद चन्द्रशेखर, कृष्णकांत, मोहन धारिया तथा रामधन जैसे 'युवा-तुर्क' कहे जाने वाले नेताओं को कांग्रेस से धकेलने की योजना बनी। इस बढ़ते शून्य को भरा उन तत्त्वों ने जिनका राजनीतिक विचारधारा से कोई संबंध नहीं था। इस पूरी प्रक्रिया में राजनीति का गैर राजनीतिकरण या अपराधीकरण हुआ।

राजनीति के अपराधीकरण के दूसरे माध्यम बने उद्योगपति। उद्योगों में मजदूर संघों की ताकत तोड़ने के लिए असामाजिक तत्त्व और राजनेताओं का सहयोग जरूरी था। तस्करी तथा जमीनों पर अनधिकृत कब्जे के धंधे में व्यापारियों के लिए दादाओं, भ्रष्ट राजनेताओं तथा भ्रष्ट अफसरों का आश्रय अनिवार्य था। इस आपराधिक सहयोग-सहायता की भागीदारी के काले धन से राजनेता चुनाव लड़ता था। अपराधी पालता था और जनता पर धौंस जमाता था। नेता को वोट दिलवाता था।

राजनीतिक अपराधीकरण का सर्वाधिक प्रभाव समाज जीवन पर पड़ा है। हर गली-मोहल्ले में दादाओं का वर्चस्व आम नागरिक को भय और आतंक में जीने को बाध्य करता है, मुँह सीकर रखने का परामर्श देता है। आज महानगरों में बढ़ते अपराध इस बात का प्रमाण हैं। नागरिक-सुरक्षा की प्रहरी पुलिस प्राय: अपराधियों का साथ देती है। वह उनकी सुरक्षा कवच बनती है। उन्हें अपनी नौकरी बचाने, तरक्की पाने और समृद्ध होने के लिए राजनीति के अपराधीकरण रूपी वृक्ष को सींचना होता है। ऐसे सुदृढ़ रक्षात्मक उपाय खोजते रहते हैं, जिनसे यह वृक्ष सदा पुष्पित और पल्लवित रहे।

भारत का न्यायालय अभी ईमानदार है, राजनीति के अपराधीकरण की पहुँच से बहुत दूर है, किन्तु भारत की न्याय-प्रकिया बहुत महँगी है, अत: साधारण-जन की पहुँच से बहुत दूर है। दूसरी ओर, न्यायालयों से मिलने वाला न्याय बहुत विलम्ब से मिलता है। 'का वर्षा जब कृषि सुखाने।' ग्लैडस्टोन के शब्दों में, 'Justic delayed is justic denied'. अर्थात् विलम्बित न्याय न्याय से वंचित करना है।

आज राजनीति और अपराध भारत में दूध-पानी की तरह एक रूप हो चुके हैं। जिस प्रकार दूध और पानी को अलग करना असंभव है, उसी प्रकार आज की भारतीय राजनीति को अपराध वृत्ति से विमुक्त करना नीचे खड़े रहकर हिमालय की चोटी को स्पर्श करना है, भैंस या बैल से दूध निकालना है। जब राजनेता अपराध कर्म से मुक्ति की बात चिल्ला-चिल्लाकर करता है, तब समूचा प्रहसन और भी अधिक भौंडा अथवा और भी अधिक जुगप्सा पैदा करने वाला लगता है और देश ऐसे शब्दाडंबर को सहने और ढोने को अभिशप्त है।

(354) आरक्षण : आधार और समस्याएँ

संकेत बिंदु—(1) प्रथम आयोग का गठन (2) मण्डल आयोग का गठन (3) मण्डल आयोग की सिफारिशें स्वीकार (4) मण्डल आयोग की त्रुटियाँ (5) उपसंहार।

भारतवर्ष में पिछड़ी जातियों के सम्बन्ध और भारतीय संविधान के अनुच्छेद 340 के अधीन प्रथम आयोग का गठन 29 जनवरी 1953 के तत्कालीन राष्ट्रपति के आदेश पर हुआ और आयोग ने सरकार के समक्ष अपनी रिर्पोट 30 मार्च 1955 को प्रस्तुत की। आयोग ने अपनी रिपोर्ट में 182 प्रश्नों की सूची संलग्न की और प्रत्यक्ष साक्ष्यों को एकत्र करने के लिए देश के विभिन्न भू-भागों का भ्रमण भी किया। पिछड़े वर्गों के उत्थान के लिए आयोग की सिफारिशें आदि व्यापक थीं, इस आयोग का नाम 'काका कालेकर आयोग' था। 'कालेलकर आयोग' की सिफारिशों को सरकार ने स्वीकार नहीं किया क्योंकि इस आयोग की रिपोर्ट में समाज के उचित वर्गीकरण और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों की निष्पक्ष परख और मानदण्ड सम्बन्धी विस्तृत ब्यौरे की कीमत बताई गयी थी।

सन् 1955 के बाद दूसरा आयोग तत्कालीन प्रधानमन्त्री ने 21 मार्च 1979 को गठित किया और इस आयोग का नाम 'मण्डल आयोग' था जिसने देश की जाति समस्या पर अपनी रिपोर्ट 31 दिसम्बर 1980 को सरकार के समक्ष प्रस्तुत की। मण्डल आयोग ने तर्क दिया कि पिछड़े वर्ग द्वारा झेली जा रही बाधाएँ हमारे सामाजिक ढाँचे में निहित हैं और उन्हें दूर करने के लिए सत्ताधारी वर्गों को व्यापक रचनात्मक परिवर्तन और पिछड़े वर्गों की समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में मूलभूत परिवर्तन अनिवार्य है। आयोग ने केवल 27 प्रतिशत आरक्षण की सिफारिश की जबकि देश में पिछड़े वर्गों की जनसंख्या लगभग दोगुनी है।

मण्डल आयोग ने राज्यवार जो सूची सरकार के सामने प्रस्तुत की उसका ब्यौरा इस प्रकार है—पिछड़े वर्गों में आंध्र प्रदेश में 292 जातियाँ, असम में 135, बिहार में 150, हरियाणा में 76, हिमाचल में 57, जम्मू और काश्मीर में 63, कर्नाटक में 333, केरल में 208, मध्य प्रदेश में 279, महाराष्ट्र में 272, मणीपुर में 49, मेघालय में 37, उड़ीसा में 224, पंजाब में 83, राजस्थान में 140, सिक्किम में 10, तमिलनाडु में 288, त्रिपुरा में 136, उत्तर प्रदेश में 116, पश्चिम बंगाल में 177, अरुणाचल प्रदेश में 10, चण्डीगढ़ में 93, दादरा तथा नगर हवेली में 10, अंडमान निकोबार द्वीप समूह में 17, दिल्ली में 72, गोआ दमन द्वीव में 8, मिजोरम में 5, पांडिचेरी में 260 पिछड़े वर्ग की जातियों को दर्शाया गया।

'मण्डल आयोग समिति' में 6 सदस्यों की नियुक्ति हुई जिनमें सर्वत्री वी. पी. मण्डल, आर. आर. भोले, दीवान मोहनलाल, एल. आर. नायक, के. सुब्रह्मणयम तथा एस. एस. गिल थे। सभी व्यक्तियों को अंशकालिक नियुक्त किया गया और इन सदस्यों ने अवैतनिक रूप से कार्य किया।

'मण्डल आयोग' ने आरक्षण की सिफारिश करते समय विधान के त्रिधिक रूप को भी सामने रखा कि अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और पिछड़े वर्गों के लिए कुल आरक्षण 50 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए। भारत सरकार ने 13 अगस्त 1990 को कार्यालय आदेश जारी करके 'मण्डल आयोग' की सिफारिशों को स्वीकार कर क्रियान्वित कर दिया। 'मण्डल आयोग' की रिर्पोट को जारी करते समय सरकार ने इसकी सम्भावनाओं की ओर ध्यान नहीं दिया और परिणामस्वरूप इस निर्णय से लोगों में असन्तोष फैल गया, और सरकार ने देश में प्रलय के घर जैसे खोल दिये हों। 'कालेलकर आयोग' की रिर्पोट पर सरकार ने बहस कराकर उसे अस्वीकार कर दिया मगर 'मण्डल आयोग' की रिर्पोट पर सरकार द्वारा बिना कोई बहस विचार किये लागू कर देने का निर्णय एक भयंकर भूल रही। लोग इस बात से परिचित हैं कि सरकार हिंसक आन्दोलनों की भाषा ही सुनती हैं। अनेक राज्यों में प्रचण्ड प्रदर्शन, जन-विद्रोह के विस्फोट हुए यहाँ तक की छात्रों का आत्मदाह तो इतिहास को भी कलंकित कर गया।

वैसे तो मण्डल आयोग ने 11 सिफारिशें सरकार के समक्ष प्रस्तुत कीं जिनमें 3 मुख्य मुद्दे सामने उभारे गये (1) सामाजिक पिछड़ापन, (2) शैक्षिक पिछड़ापन और, (3) आर्थिक पिछड़ापन । 'मण्डल आयोग' के सदस्य रिर्पोट में जो भयंकर भूल कर गये वह

आरक्षण की सिफारिश व्यक्ति पिछड़ेपन के आधार पर न करके जातिगत पिछड़ेपन को स्वीकार कर गये। 'मण्डल आयोग' की रिपोर्ट में 5 घातक त्रुटियाँ भी सामने आईं और इन्हीं के विषैले परिणाम से सारे देश का भूगोल एक बार को हितकर रह गया। जो 5 त्रुटियाँ इस रिपोर्ट में आँकी गयीं उन पर संक्षेप में प्रकाश डाला जा रहा है—

1. व्यवसाय उपक्रमों और शैक्षिक संस्थानों में रोजगार के लिए आरक्षण, परंतु यहाँ योग्यता जन्म लेने में भी असमर्थक होगी।

2. जाति पर आधारित आरक्षण/एक ओर गरीब ब्राह्मण और दूसरी ओर धनाढ्य दलित। यह दृढ़ता यहाँ वास्तविकता का विरोध करती है।

3. पिछड़ी जातियों के रोजगार और पदोन्नतियों में आरक्षण। यह बात प्रशासन और सेना जैसे विभागों के लिए तो अनर्थकारी सिद्ध हो सकतीं है।

4. राष्ट्रीय चेतना में परिवर्तन के लिए आरक्षण ,यह निर्णय जातिवाद के नासूर में जीवन का नया पट्टा जोरदार ढंग से नियोजित करता है। इस प्रक्रिया से देश में जातिवाद की समाप्ति नहीं अपितु जातिवाद का नया रूप उभरता है।

5. देश की प्रगति और समानतावाद के लिए आरक्षण। समानता आरक्षण से कभी सम्भव हो ही नहीं सकती, इस निर्णय से तो देश में असमानता को बढ़ाने के अवसर हैं।

मण्डल आयोग द्वारा आरक्षण के आधार का अध्ययन करने के पश्चात् देश के प्रबुद्ध नागरिकों ने इससे उत्पन्न स्थिति पर अपनी प्रतिक्रियाएँ प्रस्तुत की थीं, जिनमें नानी. ए. पालखीवाला, अरुण शौरी (पत्रकार) आदि का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। कुछ राजनेताओं ने भी आरक्षण के विरोध में अपनी प्रतिक्रियाएँ जनता के समक्ष रखीं। यह खुले रूप से कहा गया कि आरक्षण को लागू करना संविधान की धारा 15 (4), 16 (4), 46 आदि का खुला उल्लंघन है। कुछ न्यायविदों ने भी अपने विचार प्रस्तुत कर 'मण्डल आयोग' द्वारा प्रस्तुत आरक्षण रिर्पोट पर सुधार के लिए सरकार को सुझाव भी दिये।

यदि आरक्षण जातिगत न होकर व्यक्ति की दयनीय दशा, उसके गिरते आर्थिक स्तर को ध्यान में रखकर लागू किया जाये तब यह सम्भावनाएँ बलवीत होंगी कि यदि देश का हर नागरिक उन्नतशील होगा तो राष्ट्र स्वतः ही उन्नति करेगा।

(355) आतंकवाद से मुक्ति के उपाय

संकेत बिंदु—(1) विश्व की भयंकर समस्या (2) हमारी न्याय प्रक्रिया में त्रुटियाँ (3) अस्सी के दशक से भारत में आतंकवाद (4) अहिंसा से समस्या का समाधान (5) उपसंहार।

आतंकवाद आज पूरे विश्व की एक समस्या बन चुका है और विश्व के सभी देश आतंकवाद और उग्रवाद की विभीषिका से मुक्ति तो पाना चाहते हैं, मगर अभी तक कोई उचित मार्ग नहीं मिल पाया।

अमेरिका जैसे समृद्धशाली देश भी जहाँ राष्ट्रपति की हत्या सम्भव हो सकती है तो शेष विकासशील देशों में यदि आतंक का बोल बाला हो रहा है तो इसमें आश्चर्य की बात नहीं कही जा सकती। जर्मन, जापान, अरब देश, इराक और ईरान, श्रीलंका आदि अनेक देश इसी आतंक के दावानल से पीड़ित हैं।

भारत देश में भी आतंक का साया पिछले एक दशक से इतना विकराल रूप धारण कर चुका है कि अब देश का प्रत्येक नागरिक भयभीत-सा लगता है कि पता नहीं कब कहाँ से गोली चले और हँसते-खेलते परिवार को लील ले। यह भी अनुमान नहीं लगता कि कब कहाँ बम विस्फोट हो जाये और अनेक निर्दोष लोग मौत की गोद में सो जायें।

सन् 1948 में महात्मा गाँधी की हत्या भी इसी आतंकवाद की श्रेणी में यदि मान ली जाये तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। वर्ष 1984 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी की हत्या और उसके बाद एक विशेष समुदाय की सामूहिक हत्याएँ, आगजनी, लूटमार यह सभी कुछ तो आतंकवाद की ही देन है। वर्ष 1991 में पूर्व प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी की हत्या भी देश में बढ़ते आतंकवाद का ही परिणाम है। इस दिशा में हमारे विधान में भी कुछ त्रुटियाँ हैं कि हमारी दण्ड-प्रक्रिया में लचीलापन है जिस कारण व्यवस्था और प्रशासन को भी विवशता का मुँह देखना पड़ता है। मुझे याद है कि मैंने समाचार-पत्रों में पढ़ा कि आज भी कुछ मुस्लिम देशों में चोरी करने वालों के हाथ काट दिये जाते हैं। बलात्कारी पर सरेआम कोड़े बरसाये जाते हैं, इन तथ्यों से यह उक्ति सत्य लगती है कि—

'भयबिन प्रीत न होय गोपाला'

यदि हमारे देश में भी दण्ड प्रक्रिया के सुधार किया जाये और अपराधी को अपराध सिद्ध होने पर उसे अविलम्ब दण्ड दिया जाये, रंगें हाथों पकड़े गये अपराधी को उसी क्षण सजा दी जाये तो सम्भवत: देश की धरा से आतंक समाप्त हो सकता है।

डॉ. रुबिया के अपहरण पर कश्मीर ने पाँच उग्रवादी छोड़ने की बात जब सरकार के समक्ष रखी जो सरकार ने आतंकवादियों के समक्ष घुटने टेक दिये। इस प्रकरण से देशभर में आतंक और उग्रवाद को अधिक बल मिला। परिणामस्वरूप सारा देश फिर आतंक की चपेट में आ गया। यदि सरकार जरा संयम और कठोरता से काम लेती तो सम्भवत: डॉ. रुबिया भी स्वतन्त्र हो जातीं और उग्रवादी भी जेल में ही रहते। मगर हमारे नेता देश का भला नहीं अपनी कुर्सी का भला चाहते हैं।

सन् 1980 से समूचा देश आतंकवाद की चपेट में है और इस दशक में चार प्रधानमंत्रियों ने कार्य किया मगर आतंकवाद पर काबू न पाया जा सका। देश का एक छोर दूसरे छोर से प्राय: कटा-सा लगने लगता है जो आतंक का ही प्रभाव है।

आतंक और उग्रवाद से मुक्ति पाने के लिए जन-जन के अन्तर्मन में विशेष मनोबल की आवश्यकता है और प्रत्येक व्यक्ति को मानना होगा कि 'अहिंसा ही परोधर्म है।' अहिंसा के मार्ग पर चलने के लिए हर एक को प्रेरित करने की आज महती आवश्यकता भी है।

भगवान् बुद्ध ने सारे देश में और विदेशों में भी अहिंसा का उपदेश दिया और साथ कहा कि किसी को सताओ मत, किसी की हिस्सा मत छीनो। भगवान् महावीर ने भी 'अहिंसा परमोधर्म ' का महामंत्र दिया, साथ ही यह भी बताया कि 'जियो और जीने दो'' अर्थात् सभी को जीने का बराबर अधिकार है। 'जीव हत्या पाप है' का उद्घोष भी किया गया। ईसा ने भी यही कहा कि, ''मेरी शरण में आओ, मैं तुम्हारे पापों को क्षमा कर दूँगा।'' गुरु नानक ने भी अहिंसा का उपदेश दिया और समाज में भाईचारे की बात को फैलाया—

'एक नूर तों सब जग उपजया,
कौन न भले कौन मन्दे।'

इन सभी बातों का यहाँ उल्लेख करने का अभिप्राय केवल यही है कि यदि मानव अहिंसा का पालन करेगा तो हत्याओं से छुटकारा मिलेगा। देश को बढ़ते आतंकवाद से मुक्ति भी मिलेगी। इस आतंक से मुक्ति पाने के लिए मानव जाति को एकजुट होकर आतंकवादियों से टक्कर भी लेनी पड़ सकती है। प्यार के दो बोल, पत्थर जैसे विशाल हृदय को भी मोम बनाने की क्षमता रखते हैं। जो लोग आतंक को बढ़ा रहे हैं वह भी आखिर इंसान ही है। मगर कुछ क्षण के लिए उन पर शैतान का भूत सवार हो चुका है जो केवल आपसी भाइचारे और प्रेम के मीठे बोल से ही दूर भी किया जा सकता है।

जलती हुई आग को ठंडा करने के लिए पानी या रेत की आवश्यकता होती है। यदि आग लगने पर उसमें घी या तेल डाला जायेगा तो वह आग और ज्यादा ऊँची उठेगी। इसी प्रकार आतंकवाद से मुक्ति के लिए हमें सरकार पर आश्रित न रहकर सामाजिक स्तर पर भी उपाय करना है। सरकार तो गोली का उत्तर गोली से दे सकती है। अगर आतंक मचाने वालों को पास बिठाकर उनसे बात की जाये तो मेरा दावा है कि विश्व की कोई भी समस्या ऐसी नहीं है जो आपसी बातचीत से हल न हो सके। बड़े-बड़े विनाशकारी युद्धों के पश्चात् जैसे युद्ध-कर्त्ता शान्ति की ओर भागते हैं वैसे ही खूँखार आतंकवादी भी प्यार से बात करने पर शान्ति की ओर अग्रसर हो सकते हैं—आवश्यकता केवल विवेक और सामजंस्य बनाने की हैं। जिसके लिए राजनेताओं की नहीं समाज सुधारकों की ही आवश्यकता है।

जिस प्रकार राजा राममोहन राय ने अपने अकेले दम पर सतीप्रथा को रोक दिया था आज ठीक उसी प्रकार आतंकवाद के बढ़ते चरण को रोकने के लिए राजा राममोहनराय जैसे विवेकशील और समृद्धिशाली प्रतिभा की आवश्यकता है। पूरे समाज का मैं, आप तथा कोई भी व्यक्ति आगे आकर इस समस्या का समाधान खोज सकता है, इसके केवल आत्मबल और निष्ठा की भरपूर आवश्यकता है। इस देश में आतंक अपने ही लोगों ने मचाया है और अपने लोगों को प्यार और शान्ति की बात बताकर समझाया जा सकता है। इस कार्य के लिए न तो सेना चाहिए और न ही कोई दल-बल चाहिए। इसके लिए गौतम, गाँधी और नानक जैसा दिशा-निर्देशक चाहिए।

(356) गरीबी-उन्मूलन

संकेत बिंदु—(1) गरीबी अभिशाप नहीं (2) गरीब का कसूर (3) सरकार द्वारा गरीबी-निवारण के उपाय (4) अशिक्षा गरीबी का मूल कारण (5) उपसंहार।

गरीबी एक अभिशाप है ? यह तथ्य, यह लोकोक्ति-सी बन गया है। गरीबी अभिशाप नहीं है, बल्कि गरीबी मनुष्य के आलसीपन, और स्वयं को गरीबी से न उभार पाने का एक कारण भी है। यह सत्य है कि मनुष्य पर पड़ा आर्थिक दबाव, विरासत में मिला पैतृक ऋण, परिवार के बढ़ते आकार भी गरीबी का एक कारण है। हम सन् 47 में स्वतन्त्र हुए, मगर हमें यह स्वतन्त्रता तो मिली लेकिन हम गरीबी के चंगुल से स्वयं को स्वतन्त्र न कर पाये। गरीबी के बढ़ते आकार को देखकर कर्जे के बोझ से दबे एक मजदूर की दशा देखकर एक कवि ने कहा है—

है जिसका सर पर कर्जे का बोझ,
न मिलती जिसको रोटी रोज।
करेगा वह क्या जीवन खोज—
लायेगा कहाँ से बोलो ओज ?

एक तो व्यक्ति गरीब है ही, क्योंकि देश की आधे से अधिक आबादी गरीबी रेखा से नीचे का जीवन जीने को विवश है और मेरे मतानुसार देश की 25-30 प्रतिशत आबादी तो गरीबी के धरातल से जुड़ी जीवन-यापन कर रही है। जो व्यक्ति गरीब है, समाज उसे हीनता की भावना से देखता है, जबकि इसमें गरीब व्यक्ति का दोष केवल इतनी ही है कि वह गरीब है। गरीब बस्तियों को यदि करीब से देखा जाये तो पायेंगे कि कुछ लोगों को धन की कमी तो है ही लेकिन यह तन को साफ रखने में भी गरीबी को दोष देते हैं। ऐसे व्यक्ति बहुत मिल सकते हैं जिन्हें नहाए हुए अनेक दिन बीत जाते हैं, गरीबी का लेबल क्या लगा कि नहाने में भी गरीबी का बहाना बनाया जाता है।

आज देश में भूखे-नँगे, दीन-हीन, देशवासियों को सरकारी योजनाओं से नहीं; गरीबी उन्मूलन के ठोस उपायों से ही गरीबी से उभारा जा सकता है। भारत सरकार ने अपने चार पंचवर्षीय योजनाओं में बेकारी और गरीबी के निवारण के लिए पर्याप्त उपायों के साथ प्रयास भी किये; परन्तु गरीबी सुरसा के मुँह की भाँति बढ़ती ही गयी। पंचवर्षीय योजना में गरीब हटाने के जो उपाय किये उनमें ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों की समस्याओं को मुख्य रूप से ध्यान में रखा गया। सरकारी सूत्रों के अनुसार इस दिशा में जो कदम उठाये गये वह इस प्रकार रहे—

1. ग्रामीण क्षेत्रों में उद्योग-धन्धों का विस्तार,
2. ग्रामीण क्षेत्रों के गरीब मजदूरों को ऋण-सुविधा,

3. कृषि में तकनीकी शिक्षा का विस्तार,
4. ग्रामों में तकनीकी शिक्षा का विस्तार,
5. ग्रामों के गरीब युवकों को उद्योगों के प्रति प्रोत्साहन देना तथा आर्थिक सहायता, एवं
6. शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन।

इस प्रकार की अनेक योजनाएँ देहाती क्षेत्रों में बसे गरीब परिवारों के लिए सरकार द्वारा घोषित हुई। केवल योजनाएँ और घोषणाएँ ही गरीबी हटाने का ठोस उपाय नहीं हैं। देश के गरीबों का भी कर्त्तव्य है कि वह स्वयं को गरीबी की रेखा से ऊपर उठाने का स्वयं भी कुछ प्रयास करें। सारे देश में कक्षा 5 तक सरकार द्वारा बच्चों को नि:शुल्क शिक्षा का प्रावधान है, मगर जो परिवार स्वयं को गरीब कहता है वह बच्चों को शिक्षा से दूर रखता है, यह उस व्यक्ति की कुंठित मानसिकता ही तो कही जायेगी। अन्यथा जब गरीब का बालक कक्षा पाँच तक पढ़कर कहीं रोजगार के लिए जायेगा तो सम्भवत: उसे वेतन भी अधिक मिल सकता है। शिक्षा ही मनुष्य को अच्छे-बुरे का ज्ञान कराती है। अशिक्षा के कारण ही गरीब परिवारों में बच्चे भी अधिक होते हैं, जो देश की जनसंख्या को तो बढ़ाते ही हैं साथ ही परिवार का बजट भी बिगड़ जाता है। यहाँ यह कहा जा सकता है कि अशिक्षा का होना भी गरीबी का एक मूल कारण है।

दूसरा जो बड़ा कारण शिक्षा का अभाव का है वह यह कि यदि सरकार द्वारा गरीबों के उत्थान का कोई भी कार्यक्रम आता है तो अनपढ़ होने के कारण गरीब को उसका लाभ नहीं मिल पाता। चाहे वह बैंक से ऋण हो या अन्य कोई लाभ का विषय। यहाँ मैं यह कहना चाहूँगा कि यदि गरीब परिवारों में शिक्षा के महत्त्व को बढ़ावा दिया जाये तो सम्भवत: इस समस्या का कुछ निराकरण सम्भव हो सकता है। गरीब परिवारों में एक बात जो विशेष रूप से देखी और पाई जाती है वह है 'अन्धविश्वास' की और इसी अन्धविश्वास के कारण समाज का जागरूक वर्ग इन गरीब परिवारों का शोषण करता है। ग्रामीण क्षेत्रों में इस प्रकार का प्रभाव अधिक है क्योंकि अशिक्षा का प्रभाव नगरों की अपेक्षा देहातों में अधिक है। अशिक्षित व्यक्ति को लाला, जमींदार, पटवारी, आदि सभी समझदार और पढ़े व्यक्ति लूटने का प्रयास करते हैं। गरीबी उन्मूलन के लिए जो सबसे पहले किया जाने वाला प्रयास है वह है हर क्षेत्र में शिक्षा का प्रसार। सरकार को शिक्षा के विधान में एक महत्त्वपूर्ण संशोधन करना चाहिए कि गरीब परिवार का बालक जहाँ तक पढ़ना चाहे नि:शुल्क पढ़ सकता है। यदि शिक्षा के क्षेत्र में इस प्रकार की सरकार का नियम बन जाये तो मेरा दावा है कि देश की गरीबी 10-15 वर्षों में कुछ हद तक समाप्त हो सकती है, क्योंकि पढ़ जाने के बाद व्यक्ति का शोषण कम होता है।

(357) महानगरों में कानून व्यवस्था/ बढ़ते अपराध और कानून व्यवस्था/ कानून और अपराध के बढ़ते चरण

संकेत बिंदु—(1) असामाजिक तत्त्वों का बोलबाला (2) प्राय: कानून, न्याय दिलाने में असफल (3) प्रशासन व पुलिस की मिली भगत (4) राजनीतिक अपराध बढ़ने का कारण (5) उपसंहार।

'कानून के हाथ लम्बे होते हैं' लेकिन बाहुबलियों का यह कहना है कि 'कानून मेरी मुट्ठी में है', यदि देखा जाये तो दोनों वाक्यों में कितना अन्तर है ? यह भी समाज में एक कहावत है कि '**हाड़े की जोरू सबकी अम्मा और झाड़े की जोरू सबकी भाभी**, यह सब बातें हमें अपराध और कानून के भेद का दर्शन कराती हैं। चोरी, डकैती, अपहरण, बलात्कार, हत्या जैसे अपराध पूरे देश में होते हैं, लेकिन महानगरों में इस प्रकार के अपराधों की संख्या विकराल रूप से नित्य प्रति बढ़ती जा रही है।

महानगरों में इस प्रकार की बढ़ती हुई घटनाओं भय का वातावरण पनपता जा रहा है। यदि महानगर दिल्ली की ही बात करें तो दिल्ली में चोरी, डकैती, हत्या, बलात्कार, अपहरण की घटनाएँ बढ़ती जा रही हैं, इनके अतिरिक्त महागर दिल्ली में अब आतंकवादियों द्वारा समय-समय पर विस्फोट करना भी कानून व्यवस्था की कलई खोलती है। जैसे-जैसे विज्ञान उन्नति कर रहा है, वैसे-वैसे अपराध जगत् भी हाई टेक तरीके अपनाकर आगे बढ़ रहा है।

आजकल आधुनिक चोरों, डकैतों, झपटमारों, उठाईगिरों के पास आधुनिक मोबाईल फोन, लैपटॉप, तेजगति से चलने वाली मोटर साइकिलें, कारें इत्यादि जैसी सुविधा होने के कारण अनेक प्रकार की घटनाओं को सफल बनाने में समाज के असमाजिक तत्त्वों को सहायता मिल रही है।

मनुष्य को समाज में रहकर समाज की अनेक मान्यताओं और परम्पराओं का पालन करना होता है और यही सामाजिक मान्यताएँ कालान्तर में कानून का रूप धारण कर लेती हैं। इन सामाजिक वर्जनाओं और कानूनों का प्रथम और वास्तविक उद्देश्य समाज के सभी वर्गों के हितों को संरक्षण प्रदान करना है। कानून के निर्माताओं से लेकर कानून पालन करने वालों तक, सभी कानून राज्य में न्याय की स्थापना ही बताते हैं। प्राय: देखा गया है कि कानून कभी-कभी न्याय दिला पाने में असफल प्रतीत होता है, क्योंकि कानून तो तर्क और सबूतों को आधार मानता है। हम सभी जानते हैं कि कोई भी कानून अन्तिम नहीं होता, इसीलिए संविधान और कानून में फेर-बदल का संशोधन होना अनिवार्य भी बताया गया है। इसीलिए कहा गया है कि—

नगरों में कानून की, उड़ें धज्जियाँ रोज।
मानवता है खिसकती, अपराधी को मौज॥

'तू डाल-डाल, मैं पात-पात' आज अपराधी इतना आधुनिक हो गया है कि वह कानून को तोड़ने या मरोड़ने की कला सीख चुका है। अपराधी इस ताक में सदा रहता है कि किस स्थान पर, किस समय पर घटना को अंजाम दिया जाये और वह अपनी योजना में सफल भी हो जाता है। अपराध की दुनिया तो कानून की दुनिया से बहुत बड़ी है। छोटे-छोटे और महिलाओं द्वारा अपराध करवाने वाले गिरोह भी महानगर में सक्रिय हैं।

महानगरों के गली-मुहल्ले में पुलिस की गश्त या तो होती नहीं, अगर होती भी है वे केवल खानापूर्ति के लिए। महानगरों के पार्कों में जहाँ असामाजिक तत्त्वों का जमावड़ा रहता है क्या पुलिस को इसकी जानकारी नहीं होती ? शाम के समय युवा लड़के-लड़कियाँ पार्कों में या सार्वजनिक स्थानों में अश्लीलता की गन्दगी फैलाते हैं, क्या पुलिस इन बातों से अनभिज्ञ है ? सरेआम सड़कों पर झपटमारी की घटनाएँ होती हैं, क्या पुलिस को इसकी जानकारी नहीं होती ? यदि पुलिस अपने कर्त्तव्य का सही पालन करने लगे तो यह दावा है कि महानगरों में अपराध बढ़ने के बजाय घटने लगेंगे, मगर ऐसा इसलिए नहीं होता क्योंकि हर अपराधी की पुलिस में पूरी पैठ और चोरी, लूट या अन्य किसी भी अपराध का हिस्सा उस क्षेत्र के पुलिसकर्मी के पास ईमानदारी से पहुँच जाता है और अपराध फलता-फूलता है। एक पॉकेट मार की प्रार्थना की पंक्तियाँ—

ऊपर वाले तेरी दुनिया में, न जेब किसी की खाली मिले।
हर पॉकेट में ही बटुआ मिले, हर बटुए में हरियाली मिले॥

पॉकेट मार जब पॉकेट मारने जाता है तो इसकी जानकारी पुलिस के सिपाही को होती है, क्योंकि पॉकेटमारी के अपराध का पुलिसकर्मी भी घर बैठे भागीदार होता है और यही कारण है कि कानून के होते हुए भी अपराध बढ़ रहे हैं। इसका सबसे बड़ा कारण है कि हमारे देश का कानून अंग्रेज़ों द्वारा बनाया गया है। भारत के नेताओं ने कुर्सी के नशे में आकर कानून की ओर कभी ध्यान नहीं दिया, यदि कानून की ओर हमारे देश की सरकार ने ध्यान दिया होता तो अपराध इतने नहीं बढ़ते।

जब रिश्वत जैसे अपराध से बचने के लिए रिश्वत देकर छूट जाने का विधान हमारे कानून के रखवालों ने स्वयं बना लिया है, तो फिर महानगर में अपराधों का बढ़ना तो निश्चित है। यह भी माना जाता है कि हत्या के रेट, बलात्कार के रेट, चोरी-डकैती, झपट-मारी के रेट अर्थात् हर अपराध के लिए अलग-अलग अपराधियों द्वारा कानून के रक्षक पुलिस वालों से तय किये जाते हैं। कल्पना की जा सकती है कि जब कानून की वर्दी ही अपराध का संरक्षण करे तो भला फिर वह अपराध कम क्यों होने लगेंगे ? कवि मनोहरलाल 'रत्नम्' की चार पंक्तियाँ कानून व्यवस्था और अपराधों पर थोड़ा-सा प्रकाश डालती हैं—

आज नगर में शोर मचा है, आपाधापी कैसी आई,
भय से ही भयभीत है नारी, अनाचार की बाढ़ है आई।

मानव डाँवाडोल हो रहा, देखो 'रत्नम्' अपराधों का—
नुक्कड़ पर कानून खड़ा है, फिर भी बात न बनने पाई॥

कानून केवल तमाशा देखता है और अपराध रोज मुँह उठाकर बढ़ जाते हैं, नेता हमारे देश के घोटालों और दलाली में व्यस्त हैं, यदि ऐसा नहीं है तो इतनी सुरक्षा और चौकसी के रहते संसद भवन पर हमला होना क्या अपराध को बढ़ावा नहीं है, क्या किया हमारे कानून और संविधान ने इस दिशा में कि अपराध बढ़ने न पाये ? दीपावली पर महानगर दिल्ली में भीड़े भरे क्षेत्र में बम विस्फोट, क्या यह अपराध नहीं है ? वैसे हम अपने उपग्रह से हर बात की खबर रखने की बात करते हैं, कहाँ गयी हमारी गुप्तचर सेवा ? पुलिस अपराध क्यों बढ़ने देती है ? जब पुलिसकर्मी को वेतन सरकार से मिलता है तो अपराधी से फिर धन मिलने का लालच क्यों ? यदि इस प्रकार के ज्वलंत प्रश्नों का उत्तर खोज लिया जायेगा तो महानगर तो क्या समूचे देश से अपराध समाप्त हो जायेगा।

(358) आतंकवाद विश्व के लिए भयानक खतरा
आतंकवाद और समूचा विश्व

संकेत बिंदु—(1) पूरे विश्व में आतंकवाद का प्रसार (2) भारत में आतंकवादी हमले (2) आतंकवादियों के निशाने पर अमरीका (4) ब्रिटेन पर आतंकवादी हमला (5) उपसंहार।

यदि आज कोई चर्चा का विषय है तो वह है आतंकवाद/आतंक धीरे-धीरे अपने पैर समूचे विश्व में पसार रहा है। कहा गया है कि दुनिया पर अधिकार करने के सपने को साकार करने वाला अमेरिका ही आतंकवाद का जनक है और अमेरिका की सहायता से ही पाकिस्तान द्वारा कश्मीर को मुद्दा बनाकर पिछले पाँच दशक से भारत में अपनी गतिविधियाँ चला रहा है।

भारत के साथ-साथ श्रीलंका, बांग्लादेश, चीन, रूस, लंदन, ईरान, इराक में आतंक के काले बादल देखे जा सकते हैं। आतंक का इतना बड़ा नेटवर्क समूचे विश्व में फैल गया और विश्व की खुफिया ऐजेन्सियाँ हाथ-पर-हाथ धरे बैठी रहीं, सारी गुप्तचर व्यवस्था आतंक के आगे फेल हो गयी हैं। मौत का भीषण ताण्डव, फटते हुए बम, चीखते हुए लोग, जलते हुए घर, लाशों का ढेर यह सब आतंक की ही देन तो है। गीतकार श्रवण राही ने चार पंक्तियों में चित्रण किया है, उसमें आतंक का भय साफ दिखायी देता है—

उनकी आँखों में बम, उनकी साँसों में बम,
सिक रहे नित नये अब सलाखों में बम।
हम दिवाली मनायें भला किस तरह—
रख दिये हैं किसी ने पटाखों में बम।।

आतंकी इतना बलशाली है कि वायुयान का अपहरण कर कन्धार ले गया और निर्दोष

यात्रियों को जिन्दा छोड़ने की कीमत उसने भारत से वसूल की अपने कुछ आतंकी साथियों को जेल से रिहा करा कर और तब समूचा विश्व इस घटना का तमाशा देखता रहा। इराक में क्या हुआ ? किसी से छिपा नहीं है, ईरान भी आतंक के साये में रोज जल रहा है, लंका में भी आतंकी तूफान थमने का नाम नहीं ले रहा, मगर विश्व स्तर पर किसी भी देश ने न तो इस ओर कोई ठोस कदम ही उठाया है और न इस आतंक को समाप्त करने की कोई विश्व स्तर पर योजना ही बनायी गयी है।

भारत में जब लालकिला पर हमला हुआ तो दबे स्वर में अमेरिका ने इसकी निन्दा की। भारत के अक्षरधाम, जम्मू में रघुनाथ मंदिर, वैष्णो देवी यात्रा में आतंकी बाधा, आतंकियों द्वारा अमरनाथ यात्रा अवरुद्ध करने का प्रयास और यहाँ तक कि भारत की संसद् पर आतंकी हमला हुआ, मगर किसी ने भी इस आतंक को समाप्त करने कर स्थायी हल खोजने का प्रयास नहीं किया।

आतंक ने अपने पर फड़फाये और अमेरिका में बम धमाके कर यह सिद्ध कर दिया कि दुनिया पर साम्राज्य करने का स्वप्न देखने वाला अमेरिका भी अब आतंकवाद की मार से सुरक्षित नहीं है। हज़ारों जानें गयीं, करोड़ों डालर का भारी नुकसान हुआ, तब जा कर अमेरिका को आतंक की पीड़ा का आभास हुआ और अनेक धार्मिकता के नाम पर चल रहे कट्टरवादियों के संगठनों पर प्रतिबंध लगाने की चर्चा की गयी। प्रश्न उठता है कि अमेरिका का गुप्तचर विभाग इतना सक्रिय है कि वह आकाश की प्रत्येक गतिविधि की रिर्पोट रखता है लेकिन जब अमेरिका पर आतंकी हवाई हमला हुआ तो अमेरिका की गुप्तचर ऐजेन्सियाँ तब क्या कर रही थीं ? मानव बम बने हवाई जहाज़ों सहित आतंकियों ने हमला कर अमेरिका ही नहीं समूचे विश्व को एक बार हिलाकर रख दिया। लेकिन अमेरिका जैसा बलशाली देश भी आतंकवाद पर नियन्त्रण पाने में शायद असफल ही रहा।

मानव बम बनकर आतंकी, अमेरिका में छाया।
इस आतंकी घटना से था, व्हाइट हाऊस थर्राया।।

अमेरिका के बाद लन्दन को निशाना बनाया आतंकवादियों ने, और एक के बाद एक, कई बम विस्फोट कर आतंकियों ने लंदन को हिलाकर रख दिया। तब अमेरिका और लन्दन ने इस प्रकार की घटनाओं की कड़े शब्दों में निंदा की। तब अमेरिका और लंदन को आतंक के घावों का ध्यान आया और यह कहा गया कि भारत के साथ मिलकर आतंक को समाप्त करने का प्रयास करना चाहिए। इतने वर्ष बीत जाने के बाद भी समूचे विश्व से आतंक के समूल नाश का कोई ठोस उपाय नहीं किया जा सका।

वैसे अन्तरिक्ष में स्थापित उपग्रह प्रत्येक घटना पर नज़र टिकाये लगते हैं, मगर विश्व में आतंकी घटना पर क्या इनका ध्यान नहीं जाता ? आतंकी कैम्प कहाँ चल रहे हैं, कौन इनको चला रहा है, क्या इस बात का पता नहीं चलाया जाता ? वैसे तो शत्रु देश की प्रत्येक गतिविधि पर उपग्रह का ध्यान रहता है, लेकिन आतंक के शिविरों पर इनका ध्यान क्यों नहीं जाता।

आतंकवादियों ने समूचे विश्व में आतंक फैलाकर मोहम्मद, ईसा, बुद्ध और नानक जैसी विभूतियों का अपमान किया है और किसी भी धर्म में इस बात की इजाज़त नहीं है कि निर्दोष लोगों को बेमौत मारा जाये। यह सत्य है कि आतंक फैलाने में मुस्लिम समुदाय का सबसे बड़ा हाथ है। अगर समय रहते आतंक को समाप्त नहीं किया गया तो विश्व के लिए भयंकर खतरा बन सकता है और यह खतरा प्रलयकाल से भी अधिक विकट और विनाशकारी होगा क्यों आज हम बारूद के ढेर पर खड़े होकर शांति की केवल कामना ही कर रहे हैं।

आतंक की समाप्ति के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ को अग्रणी बनकर आगे आना होगा वरना आतंक के भयावह प्रभाव से शायद सारा विश्व बच ही पाये, क्योंकि आतंकवादियों की मंशा केवल विनाश की है और धरती पर सृजन की आवश्यकता है और सृजन केवल शांति से ही सम्भव है। इसके लिए समूचे विश्व को एकजुट होकर आतंकवाद को समाप्त कर विश्व को बचाने का सार्थक प्रयास करना होगा।

(359) आरक्षण से लाभ-हानि

संकेत बिंदु—(1) जाति के आधार पर आरक्षण (2) आरक्षण का वर्ग विशेष को लाभ नहीं (3) मण्डल आयोग का विरोध (4) आरक्षण के कारण प्रतिभा-पलायन (5) आर्थिक आधार पर आरक्षण।

हमारे देश भारत में आरक्षण को केवल जाति के आधार पर स्वीकार करने की बात कही जाती है, क्योंकि हमारे देश में प्राय: यह माना जाता है कि अनुसूचित जातियाँ, अनुसूचित जन जातियाँ तथा अन्य पिछड़ा वर्ग ही आरक्षण का अधिकारी है। जाति का प्रश्न सामाजिक परिवर्तन और आर्थिक विकास की योजना थी। इस योजना के अन्तर्गत दलित वर्ग और पिछड़ी जाति के बच्चों को शिक्षित बनाकर, उनके अन्त:करण की चेतना को जागृत कर, उनके मन और मस्तिष्क के द्वार खोलने के स्थान पर आर्थिक सहयोग पर बल दिया गया है। इन जातियों के बच्चों को प्रत्यक्ष रूप से आर्थिक सहायता देना और परोक्ष रूप से उनके लिए सरकारी नौकरी तथा चुनावों में स्थान आरक्षित कर उनकी आर्थिक दशा को सुधारने का प्रयत्न किया गया है।

यदि देखा जाये तो आजादी के साठ वर्षों में दलित और पिछड़ा वर्ग के 8-10 प्रतिशत ही अपनी दशा सुधार पाये होंगे। क्योंकि आजादी प्राप्ति के बाद उन्नत और धनाढ्य पिछड़ा वर्ग और दलित समुदाय अपनी जाति के सामूहिक उद्धार से लगभग विमुख हुआ-सा लगता है, क्योंकि इस वर्ग को अपने परिवार और अपने सम्बन्धी वर्ग के हितों में ही सम्पूर्ण जाति का उत्थान दिखायी देने लगा।

यदि आरक्षण को हम गहरायी से देखें तो पायेंगे कि सरकारी तंत्र में आरक्षण का ढोल अधिक पीटा गया है, इस ओर रचनात्मक कार्य शून्य ही रहा है। राजनीति के क्षेत्र में

महिलाओं के आरक्षण की माँग उठी साथ ही कुछ क्षेत्रों में जाति विशेष के आरक्षण को भी प्रमुखता से लिया गया है।

शिक्षा के क्षेत्र में आरक्षण की बात की जाये तो आरक्षण तो है मगर जाति विशेष के उन्हीं लोगों ने इसका लाभ उठाया है जिन्हें इस सन्दर्भ की जानकारी रही है। अधिकांश: परिवारों के मन में यह भ्रम है कि उनके बच्चों को जाति के आधार पर सरकारी नौकरी तो मिल ही जायेगी, इसके लिए उनके बच्चे शिक्षा के क्षेत्र में भले ही कम पढ़ पायें। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से आज तक सुविधा रहित और पिछड़े वर्ग को सम्पन्न और सुख-सुविधा दिलाने के नाम पर अनगिनत योजनाओं के नाम पर पैसा बहाया गया है लेकिन आज भी इन विशेष परिभाषा से परिभाषित की जाने वाली पिछड़ी जातियों का कोई उद्धार नहीं हो सका। आज भी इन्हें मुख्यधारा से अलग बताया जा रहा है, आखिर क्यों? आज़ादी के साठ वर्षों में पिछड़ी कही जाने वली जातियों को मुख्य धारा में शामिल नहीं कर सके तो भविष्य में कौन से वर्ष में आप इन्हें ''विशेष सुख-सुविधा सम्पन्न बनाकर शामिल कर पायेंगे। ऐसी कोई 'शताब्दी योजना' हमारे इन 'सर्वगुण सम्पन्न' राजनेताओं ने बनाई है क्या? केवल हमारे राजनेता अपनी वोटों के लिए ही देश में आरक्षण को मुद्दा बनाकर समाज में अशान्ति अवश्य फैलाने का कार्य कर देते हैं।

आज देश में सभी वर्ग अपने को आरक्षित जाति कहकर 'रिजर्व' होते चले जा रहे हैं, फिर बचा ही कौन है जिसे सरकार की ओर से विशेष सुविधाएँ नहीं मिल रही हैं? आज केवल वही जातियाँ बची हैं जिन्हें सामान्य वर्ग बताकर सुविधाओं से वंचित रखा गया है। जिसके लिए हर प्रकार के कड़े अनुशासन, नियम-कानून और कठिन-से-कठिन परीक्षाओं में अधिकतम निर्धारित अंकों की अनिवार्य शर्तों का 'विशेष आरक्षण' लागू किया गया है, जिसके बिना उसके इस आरक्षण का लाभ किसी भी प्रकार से नहीं मिल पाता है। इसे पाने के लिए सामान्य वर्ग को विशेष सुविधाएँ नहीं चाहिएँ, इस वर्ग को सामान्य रूप से खुली प्रतिस्पर्धा और कठिन मेहनत के बल पर सफलता चाहिए। इस सामान्य कहे जाने वाले वर्ग ने कभी भी किसी भी दौर में कोई विशेष माँग नहीं की। यह सच है कि राजनेताओं द्वारा सामान्य वर्ग से उसकी उपलब्धियाँ समय-समय पर छीनने का प्रयास किया गया है। कुछ वर्ष पूर्व मंडल आयोग की सिफारिशें लागू किये जाने के विरोध में सारा विद्यार्थी वर्ग सड़कों पर आ गया कि, परिणामस्वरूप तत्कालीन सरकार का पलायन हो गया।

अब मूलभूत प्रश्न उठता है कि देश को आरक्षण से क्या लाभ है? और देश को आरक्षण से क्या हानि है? अगर सच्चाई और ईमानदारी से आरक्षण की बात की जाये तो आरक्षण को लाभकारी तभी कह पाना सम्भव होगा जब पिछड़े वर्ग या दलित वर्ग के योग्य उम्मीदवार अपनी योग्यता के बल पर उच्च वर्ग के साथ प्रतिस्पर्धा के साथ आगे जाने का साहस करें। आरक्षण मात्र एक माध्यम हो सकता लेकिन सफलता का सोपान नहीं। इसी सन्दर्भ में यदि यह कहा जाये कि भीमराव अम्बेडकर जो भारत में शिखर पर पहुँचे और

आज देश में संविधान का निर्माता कहा जाता है, शायद उन्होंने आरक्षण का सहारा लिया हो ? इस प्रकार के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं।

आरक्षण को जनता ने कम राजनेताओं ने अधिक हवा देकर उछालने का प्रयास किया है। यदि आरक्षण के नाम पर अयोग्य व्यक्तियों को बलात् आगे लाने का प्रयास किया जायेगा तो सम्भवत: योग्य व्यक्ति के स्वाभिमान को ठेस अवश्य लगेगी, जिसके परिणामस्वरूप योग्य प्रतिमाएँ देश से पलायन कर विदेशों में चली जायेंगी। एक सर्वेक्षण के आधार पर अमेरिका में उच्च पदों पर 40 प्रतिशत भारतीय वैज्ञानिक, डॉक्टर, इंजीनियर, प्रबन्धक हैं। अब यदि देखा जाये तो यदि इन प्रतिभाओं को अपने देश में अवसर मिल पाता तो भारत की स्थिति आज क्या होती ?

लगता है कि आरक्षण के बजते बिगुल के आगे हमारे देश के योग्य प्रतिभाशाली युवक पलायन करने को विवश हो जाते हैं। हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि जब स्वामी विवेकानन्द ने विदेश में जाकर अपनी बात कही तो समूचा विश्व भारत को निहारने को विवश हुआ। यह भी सत्य है कि दशमलव की गणना भी भारत की ही खोज है; लेकिन आज भी गंदली राजनीति अपने निजी स्वार्थ में लिप्त होकर देश के भविष्य को भी दाव पर लगा देने में कोई हिचक नहीं करती।

अन्त में यही कहा जा सकता है कि आरक्षण की यदि देश में आवश्यकता है तो केवल आर्थिक रूप से पिछड़े परिवार के योग्य उम्मीदवार को ही आरक्षण दिया जाये। इसके लिए किसी जाति विशेष का प्रतिबन्ध अनिवार्य न हो। आज भी हमारे देश में योग्य विद्यार्थी विद्यमान हैं। जिस प्रकार लाल बहादुर शास्त्री निर्धन परिवार का सदस्य होने के बाद भी अपनी योग्यता के आधार पर विद्यालय या अपने गाँव-घर में ही नहीं भारत में सर्वोपरि माने गये। आज भी लाल बहादुर शास्त्री सरीखे अनेक लोग आर्थिक रूप से पिछड़े परिवारों में लिए जायेंगे केवल जिनको खोजने भर का प्रयास हमें करना होगा।

आर्थिक रूप से पिछड़ा परिवार चाहे उच्च वर्ग का या निम्न वर्ग का, पिछड़ा वर्ग हो या दलित वर्ग, किसी भी वर्ग के परिवार में यदि योग्य प्रतिभावान् छात्र हैं तो इस प्रतिभा को अवसर मिलना ही इस देश के आरक्षण की सफलता कहा जायेगा।

(360) सड़क पर कैसे चलें!

संकेत बिंदु—(1) जीवन चलने का नाम (2) सड़क में लापरवाही दुर्घटना का कारण (3) सावधानीपूर्वक सड़क पर चलना (4) सड़क-संकेतों की जानकारी (5) उपसंहार।

वैसे तो जीवन चलने का नाम है और बच्चा जब जन्म लेता है तो उसके माँ-बाप बच्चे

के चलने पर मिठाई बाँटते हैं। घुटनों चलकर पाँव चलता हुआ बच्चा घर के आँगन में कितना अच्छा लगता है। चलने के बारे में मेरी कविता की कुछ पंक्तियाँ—

पाँव चलें मंज़िल मिलती है, रुकने से जीवन रुक जाता।
देश का बचपन चलते-चलते, उच्च शिखर पर है चढ़ पाता।।
'रत्नम्' चलना सावधान हो, भीड़-काफला बढ़ता आता।
नियम के भीतर जो चलता है, वो अपनी मंजिल को पाता।।

'सड़क पर कैसे चलें' इस विषय में इतना कहना काफी रहेगा कि सड़क पर चलने के लिए बड़ी सावधानी की आवश्यकता होती है। जब हम घर से बाहर कहीं भी जाते हैं तो जानते हो हमारे घर वापिस आने का इंतज़ार होता हैं। बच्चों का इंतज़ार उसके माँ-बाप करते हैं और बड़ों का इंतज़ार बच्चे करते हैं। चलते समय सावधानी न होने पर भयंकर दुर्घटनाएँ होती हैं, कभी-कभी एकसीडेन्ट हो जाने से आदमी मर भी जाते हैं।

जो लोग सड़क पर गलत चलते हैं वह अख़बारों के लिए कभी-कभी ख़बर बन जाते हैं, जैसे सड़क दुर्घटना में कई व्यक्ति घायल, ट्रक ने कार को टक्कर मारी, कार ने एक बालक को कुचल दिया, स्कूटर-साइकिल में टक्कर, साइकिल सवार मरा, बस दुकान में घुसी आदि-आदि ऐसी ख़बरें अख़बारों में रोज़ आती हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि वह लोग दुर्घटना का शिकार होते हैं जो सड़क पर चलने के नियम का पालन नहीं करते और दूसरों के जीवन के साथ खिलवाड़ कर प्रशासन को भी मुसीबत में डाल देते हैं। जो लोग कार-स्कूटर-मोटर साइकिल आदि चलाते हैं उन्हें अपने से छोटी सवारी, पैदल यात्रियों और बच्चों का ध्यान रखना चाहिए, साथ ही उन्हें अपने से बड़ी सवारी बस-ट्रक, टैम्पो आदि से भी बचकर चलना चाहिए। कुछ लोग शराब पीकर गाड़ियाँ चलाते हैं जो कानूनन गलत है। ऐसे लोग भीषण दुर्घटना कर बैठते हैं। कुछ छोटे-छोटे बच्चे भी गलियों में स्कूटर, मोटर साइकिल, साइकिल गलत ढंग से चलाते हैं जो उनके जीवन के लिए हितकर नहीं होता। कुछ साइकिल सवार ट्रक-टैम्पों को पीछे से पकड़ कर चलते हैं जो सबसे गलत होता है। ऐसे लोग किसी भी क्षण जीवन से हाथ धो बैठते हैं। कुछ बच्चे तो सड़क पर ही खेलना शुरू कर देते हैं जिसके कारण भीषण दुर्घटना हो जाती है। भागकर, बिना देखे सड़क पार करना भी मौत को पास बुलाने वाली बात हो जाती है।

हमारी सुरक्षा के लिए ही सड़कों पर 'लेन' बनाई गई हैं। सड़क पर चलते समय हमें 'लेन' का हमेशा ध्यान रखना चाहिए। सड़क पर गाड़ी चलाते समय उतावलापन नहीं दिखाना चाहिए, ऐसा करने से जान तक भी जा सकती है। चौराहों पर लगे संकेतों के अनुसार ही हम सबको सड़क पार करनी चाहिए। सड़क पार करते समय हमें 'जेबरा क्रासिंग' का उपयोग करना चाहिए। पैदल चलने वालों को सड़क के बाईं ओर चलना चाहिए। जहाँ

भूमिगत पैदल पथ या ऊपर के पुल बने हों तो सड़क पार करते समय उनका प्रयोग करना चाहिए। सड़क पर चलते हुए दायीं ओर मुड़ते समय अधिक सावधान रहना चाहिए। दाईं ओर मुड़ने से पहले पीछे आते वाहनों को देखकर फिर हाथ का संकेत देकर ही दाईं ओर मुड़ना अच्छा रहता है। चौराहा पार करते समय भी हमें विशेष सावधान रहने की आवश्यकता होती है। चौराहे पर खड़ी गाड़ियों के बीच में फँसकर निकलने से भी दुर्घटना हो सकती है। कुछ लोग साइकिल पर ढेर सा सामान लेकर चलते हैं जिससे उन्हें सड़क पर चलने पर स्वयं तो परेशानी होती है, बाकी दूसरे लोगों के लिए भी सड़क पर परेशानी का कारण बन जाते हैं। कुछ कार वाले सड़क पर कार खड़ी करके बिना पीछे देखे ही कार का दाईं ओर का दरवाज़ा खोल देते हैं जो सड़क पर चलने के नियम के खिलाफ़ होता है, ऐसा करने से कभी भी पीछे से आने वाली सवारी टकरा कर गिर सकती है। कुछ लोग सड़क पर स्वयं गलत चलते हैं और दुर्घटना हो जाने पर दूसरों को दोष देते हैं।

चलें नियम से यदि सड़क पर,
कभी न टक्कर हो पाये।
सावधान हम चलकर 'रत्नम्'—
अपने घर वापिस आयें।।

अब मैं ट्रैफिक पुलिस द्वारा जारी 'सड़क संकेत' के बारे में चर्चा करूँ जिसमें हमें यह पता चलता है कि 'सड़क पर कैसे चलें।' 'सड़क संकेत' नामक इस चार्ट पर लिखा है ''संकेत व चिह्न सड़क की भाषायें हैं, इन्हें याद कीजिए और उनका पालन कीजिए। ''इस नक्शे में 'आदेशात्मक' 36 चिह्न हैं जो गोलाकार में दिखाये गये हैं। 'चेतावनी' शीर्षक में 41 चित्र हैं जो त्रिभुज आंकार के हैं। 'सूचनात्मक' शीर्षक में 19 चित्र हैं जो वर्गाकार हैं। बच्चों के लिए यह चार्ट बड़ा रोचक है और आसानी से ''सड़क पर कैसे चलें'' सभी संकेत याद किये जा सकते हैं। दिल्ली में यह चार्ट पुलिस मुख्यालय में उपलब्ध है। इसके साथ दिल्ली में बने चार ट्रैफिक पार्कों, पंजाबी बाग, रोशनारा बाग, प्रगति मैदान और बाबा खडग सिंह मार्ग पर बने ट्रैफिक पार्कों में देखने को मिल सकता है।

सभी बच्चों को सड़क पर चलने के नियम को जानने के लिए इन पार्कों में अवश्य जाना चाहिए और सड़क पर चलने के नियम अवश्य सीखने चाहिएँ। बच्चे अपने स्कूल के अध्यापकों के साथ या अपने माँ-बाप के साथ अपने निकटवर्ती ट्रैफिक पार्क में जाकर सड़क पर चलने के नियम की जानकारी प्राप्त करें जिससे भविष्य में होने वाली भीषण सड़क दुर्घटनाओं को रोकने में सहायता मिल सकती है। इन पार्कों में बताये गये चार्ट के अतिरिक्त अन्य सामग्री भी मिलती है जिससे हमें 'सड़क पर कैसे चलें' इसकी जानकारी मिलती है। इसी बारे में एक कवि ने कहा है—

जीवन चलने का नाम, चलते रहो सुबह शाम।

(361) दिल्ली मैट्रो

संकेत बिंदु—(1) मैट्रो का परिचय (2) मैट्रो का विस्तार (3) आधुनिक सुविधाएँ और प्रणाली (4) सुरक्षा के इंतजाम (5) भावी परियोजनाएँ।

दिल्ली की यातायात व्यवस्था में 'मेट्रो रेल' ने एक क्रांति ला दी है। इस बहुप्रतीक्षित परियोजना का शुभारंभ तत्कालीन प्रधानमंत्री मानवीय श्री अटलबिहारी वाजपेयी ने 24 दिसंबर 2002 को दिल्ली की पहली मेट्रो रेल को हरी झंडी दिखाकर रवाना करके विधिवत रूप से किया। यह मेट्रो रेल शाहदरा से चलकर तीस हजारी पहुँची।

मेट्रो रेल सेवा दिल्ली की बढ़ती जनसंख्या, चरमराती परिवहन व्यवस्था और प्रदूषण के बढ़ते स्तर को रोकने के लिए 1995 में केंद्र सरकार और दिल्ली सरकार ने संयुक्त रूप से एक संस्था डी. एम. आर. सी. की स्थापना की ताकि दिल्ली महानगर को मेट्रो रेल की सुविधाएँ उपलब्ध कराकर इन समस्याओं से छुटकारा मिल सके। और डॉ. ई. श्रीधरन को इस मेट्रो रेल कारपोरेशन का प्रबंध निदेशक नियुक्त किया गया। उनके निर्देशन में पूरी दिल्ली में मेट्रो रेल का कार्य सुचारू रूप से तथा नियत समय में पूरा हो रहा है।

मेट्रो रेल का कार्य कई चरणों में पूरा किया जाएगा। दिल्ली के उपराज्यपाल श्री बी. एल. जोशी के अनुसार दिल्ली मेट्रो ने 2021 तक 245 कि.मी. लंबे मेट्रो लाइनें तैयार करने का मास्टर प्लान तैयार किया है। इस योजना के पूरा होने के बाद दिल्ली के हर इलाके में मेट्रो सेवा उपलब्ध होगी।

19 दिसंबर 2004 को मेट्रो ने एक कीर्तिमान स्थापित किया। इस दिन कश्मीरी गेट से दिल्ली विश्वविद्यालय तक विश्व की सबसे बड़ी भूमिगत मेट्रो का शुभारंभ हुआ। मेट्रो के तीसरे खंड बाराखंभा से द्वारका तक का उद्घाटन 31 दिसम्बर 2005 को मानवीय प्रधानमंत्री श्री मनमोहन सिंह ने किया। इस खंड में 22 स्टेशन हैं। इस खंड के शुरू होने से तीनों खंडों की मेट्रो लाइन का लिंक स्टेशन राजीव चौक को बनाया गया है। मेट्रो के चौथे खंड में 11 नवम्बर 2006 को मेट्रो के स्टेशन मैनेजर पुष्पेन्द्र कुमार ने बाराखंभा रोड से इन्द्रप्रस्थ स्टेशन तक का उद्घाटन किया। इसमें प्रतिवर्ष प्रगति मैदान में आयोजित होने वाला भारत अंतर्राष्ट्रीय व्यापार मेला में आने वाले लोगों को काफी सुविधा रहेगी।

दिल्ली मेट्रो रेल अत्यधिक आधुनिक सुविधाओं और प्रणालियों से सम्पन्न है। यह पूर्णत: वातानुकूलित रेल है। और इसके दरवाजे स्वचालित प्रणाली पर आधारित हैं, मेट्रों के सभी स्टेशनों पर सफाई की उचित व्यवस्था है और बिजली से चलने वाली इस गाड़ी में बिजली की सप्लाई के लिए इनको उत्तरी ग्रिड और इन्द्रप्रस्थ गैस टरबाइन से जोड़ा गया है इसके अलावा आपातकाल में जेनरेटरों की भी व्यवस्था की गई है। मेट्रों स्टेशनों में यात्रियों की सुविधा के लिए ऐलीवेटरों, लिफ्टों, सीढ़ियों और विकलांगों के लिए पहिए वाली गाड़ियों का प्रबंध किया गया है। प्रत्येक स्टेशन और गाड़ी में सार्वजनिक उद्घोषणा प्रणाली, घड़ियाँ और सी. सी. टी. वी. कैमरों की व्यवस्था की गई है। यात्रियों के लिए

टोकन और स्मार्ट कार्ड की व्यवस्था विभिन्न काउंटरों पर प्रत्येक स्टेशन में उपलब्ध है। मेट्रो रेल के स्टेशनों में वेंटीलेशन की अच्छी व्यवस्था की गई है।

मेट्रों रेल में मोबाइल फोन पर बातचीत का पूरा आनंद लिया जा सकता है क्योंकि स्टेशनों के नीचे सुरंगों में विशेष तौर पर केबल बिछाईं गईं है। मेट्रों के प्रत्येक स्टेशन पर पार्किंग की अच्छी व्यवस्था के साथ-साथ परिवहन की भी अच्छी व्यवस्था है। कई मेट्रो स्टेशनों पर तो 'बड़े बाजार' तथा शापिंग मॉल तक खुल गए हैं ताकि लोग यात्रा के साथ-साथ खरीददारी का भी भरपूर आनंद ले सकें।

मेट्रो रेल और उसके स्टेशनों की कड़ी सुरक्षा और चौकसी के लिए केंद्र सरकार ने अर्धसैनिक बलों की कई टुकड़ियों को तैनात किया है। और इनकी सहायता के लिए दिल्ली पुलिस और निजी सुरक्षा एजेंसियों को भी लगाया है। मैटल डिक्टेटर और महिला पुलिसकर्मी भी पर्याप्त संख्या में हैं। भूमिगत स्टेशनों में लगभग 30-40 सी. सी. टी. वी. कैमरे लगाए गए हैं जिनका सीधा संपर्क केंद्रीय नियंत्रण कक्ष से है। महिलाओं की सुरक्षा के लिए मेट्रो रेल प्रबंधन ने कड़े प्रबंध किए हैं, यदि मेट्रो के अंदर किसी महिला से छेड़छाड़ होती है तो वह 'पैसेंजर अलार्म बटन' दबाकर सीधे ड्राइवर से संपर्क कर सकती है और ड्राइवर दरवाजे लॉक करके पुलिस भेज सकता है।

दिल्ली मेट्रो रेल के शुरू होने से धन और समय दोनों की बचत हो रही है क्योंकि मेट्रो में प्रतिदिन लाखों लोग सफर करते हैं। और इससे लाखों लीटर ईंधन की बचत होती है तथा साथ-ही-साथ प्रदूषण के स्तर में काफी कमी आईं है। और सड़कों पर होने वाली दुर्घटनाओं का ग्राफ काफी नीचे गिर गया है।

मेट्रो रेल की सेवा नियमित और दुरस्त है, और मेट्रो व्यस्तम समय में प्रति तीन मिनट के अंतराल पर ट्रेनों को चलाए जाने के लिए अपनी तरह की अनोखी सतत् स्वचालित सिग्नलिंग प्रणाली है। मेट्रो का समय प्रत्येक मेट्रों स्टेशन से सुबह 6 बजे से रात्रि 10 बजे तक के चलने का है।

दिल्ली मेट्रो रेल कारपोरेशन की भावी योजनाओं में इस सेवा को दिल्ली के समीपवर्ती शहरों नोएडा, गाजियाबाद, फरीदाबाद और गुड़गाँव इत्यादि क्षेत्रों में शुरू करने का प्रस्ताव है।

इस योजना के कार्यान्वित होते ही राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र आपस में जुड़ जाएँगे और यातायात की समस्या हल हो जाएगी और दिल्ली पर जनसंख्या दबाव भी कम हो जाएगा।

दिल्ली मेट्रो की आगामी योजनाओं में शाहदरा-दिलशाद गार्डन दिसम्बर 2008, इंद्रप्रस्थ-नोएडा सिटी सेंटर (वाया न्यू अशोक नगर) जून 2009 तक, यमुना डिपो-आनंद विहार सितम्बर 2009, दिल्ली विश्वविद्यालय-जहाँगीर पुरी अक्तूबर 2009 तक, इंद्रलोक-मुडंका जून 2010 केंद्रीय सचिवालय-गुडगाँव (वाया कुतुब मीनार) जून 2010 तक प्रस्तावित हैं।

मेट्रो रेल परियोजना ने दिल्ली की सुंदरता में चाँद लगा दिए हैं। इससे दिल्ली के विकास की गति में तीव्रता आई है। और दिल्लीवासियों के सपनों साकार हो रहे हैं।

धर्म, संस्कृति और सभ्यता

(362) धर्म

संकेत बिंदु—(1) धर्म शब्द का अर्थ (2) अलग-अलग धर्म-ग्रंथों में धर्म का अर्थ (3) धर्म के लक्षण (4) धर्म को पाँच अर्थों में विभक्त करना (5) उपसंहार।

धारणार्थक 'धृ' धातु से धर्म शब्द की निष्पत्ति होती है। अत: जो धारण करने योग्य है, वही धर्म है। 'धृ' धातु धारण करने एवं महत्त्व के अर्थ में प्रयुक्त होती है, अत: 'धारयति इति धर्म:' अर्थात् जो धारण करता है, वह धर्म है। 'धारणा द्धर्ममित्याहु: धर्माद्धार्यते प्रजा: ' धर्म सम्पूर्ण जगत् को धारण करता है, इसलिए इसका नाम धर्म है। धर्म ने ही समस्त प्रजा को धारण कर रखा है, क्योंकि वह चराचर प्राणियों सहित त्रिलोक का आधार है।

धर्म शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में सर्वप्रथम प्रथम मंडल के २२वें सूक्त के 18वें मंत्र में इस प्रकार पाया जाता है—

त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्य: ।।
अतो धर्म्माणि धारयन्॥

अर्थात् भगवान् विष्णु ने (वामन रूप में) तीन पदों से विक्रम प्रदर्शित कर धर्म की रक्षा की।

'किसी वस्तु या अवस्तु की, आत्म या अनात्म की विधायक वृत्ति को भी उसका धर्म कहते हैं।' प्रत्येक पदार्थ का व्यक्तित्व जिस वृत्ति पर निर्भर है, वही उस पदार्थ का धर्म है। धर्म की कमी से उस पदार्थ में कमी है, उसका क्षय है। धर्म की वृद्धि से उस पदार्थ की वृद्धि है, विशेषता है। बेले का फूल का एक धर्म सुवास है। उसकी वृद्धि उसकी कली का विकास है। उसकी कमी से फूल का ह्रास है।

छान्दोग्य उपनिषद् के अनुसार प्रथम यज्ञ, अध्ययन और दान, द्वितीय तप तथा तृतीय ब्रह्मचर्य जीवन, ये धर्म के तीन स्कन्ध हैं। ब्रह्म ने श्रेयरूप (कल्याण स्वरूप) धर्म की सृष्टि की है, अत: धर्म से उत्कृष्ट कुछ नहीं। केन उपनिषद् में अपने में धर्म के सदा वर्तमान रहने की कामना की गई है। तैत्तिरीय उपनिषद् में 'धर्मंचर' का उपदेश है। नारदपरिब्राजक-उपनिषद् में धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य तथा अक्रोध, इन दस को धर्म का लक्षण (स्वरूप) कहा गया है।

जैन मत में आत्मा के सद्गुणों के विकास को धर्म की संज्ञा दी है। दूसरे शब्दों में, आत्मस्वरूप की ओर ले जाने वाले और समाज को धारण करने वाले विचार और प्रवृत्तियाँ धर्म हैं। अत: सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र को धर्म कहते हैं। जैन मत में क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, अकिंचन्य और ब्रह्मचर्य का उल्लेख धर्म के रूप में किया गया है।

बौद्ध दर्शन में धर्म का अभिप्राय भूत और चित्त में सूक्ष्म तत्त्वों से है, जिनका पृथक्करण

और नहीं हो सकता। यहाँ धर्म शब्द के दो अर्थ हैं—(1) बुद्ध की शिक्षा, उपदेश और सिद्धान्त धर्म हैं। (2) धर्म अध्यात्म-आलम्बन तथा बाह्य आलम्बन, दोनों में है, किन्तु बाह्य धर्म असत् है। बौद्ध-दर्शन में धर्म के तीन तत्त्वों पर बल दिया है—शील, समाधि और प्रज्ञा।

पुराणों ने उसका विस्तार करके धर्म के तास लक्षण बताए हैं।

महर्षि वेदव्यास ने महाभारत के वन-पर्व में धर्म के आठ मार्ग स्थापित करते हुए लिखा है—

इज्याध्ययन दानानि तपः सत्यं क्षमा दमः।
अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधः स्मृतः॥

यज्ञ, अध्ययन, दान, तप, सत्य, क्षमा, मन-इन्द्रियों का संयम तथा लोभ-त्याग, ये धर्म के आठ मार्ग हैं।

ऐतरेय ब्राह्मण ने, 'धार्मिक कर्मों के सर्वांग स्वरूप' को धर्म की संज्ञा दी है। ये धार्मिक कर्म हैं—जप, व्रत, हवन, यज्ञ आदि।

किसी दार्शनिक के मत से, 'देश और काल के पथ पर महापुरुषों द्वारा निर्दिष्ट जीवन की वे विशिष्ट प्रक्रियाएँ, जो लौकिक एवं पारलौकिक सफलताओं का साधन बनती हैं, धर्म कही जा सकती हैं।' इसी आधार पर स्वामी करपात्री जी ने विभिन्न मतों में स्वीकृत धर्म के लक्षण को स्पष्ट करते हुए अपना मत स्थापित किया है—

आधुनिक समीक्षक रामचन्द्र शुक्ल की धारणा है कि 'वह व्यवस्था या वृत्ति जिससे लोक में मंगल का विधान होता है, अभ्युदय की सिद्धि होती है, धर्म है। व्यक्तिगत सफलता के लिए जिसे नीति कहते हैं, वह सामाजिक आदर्श की सफलता का साधक होकर धर्म हो जाता है।'

समवेत रूप में हम धर्म को पाँच अर्थों में विभक्त कर सकते हैं—

(1) पदार्थ मात्र की वह प्राकृतिक तथा मूलगत विशेषता या वृत्ति या गुण जो उसमें बराबर स्थायी रूप में वर्तमान रहती हो, जिससे उसकी पहचान होती हो और उससे कभी अलग न की जा सके। जैसे—आग का धर्म का जलना और जलाना। जीव का धर्म है जन्म लेना और मरना।

(2) सामाजिक क्षेत्र में नियम, विधि, व्यवहार आदि के आधार पर नियत या निश्चित वे सब काम या बातें, जिनका पालन समाज के अस्तित्व या स्थिति के लिए आवश्यक होता है और जो प्रायः सार्वत्रिक रूप से मान्य होती हैं। जैसे—अहिंसा, दया, न्याय, सत्यता आदि का आचरण मनुष्य मात्र का धर्म है।

(3) लौकिक क्षेत्र में वे सब कर्म तथा कृत्य जिनका आचरण या पालन किसी विशिष्ट स्थिति के लिए विहित हो। जैसे—माता-पिता की सेवा करना पुत्र का धर्म है। पढ़ना-लिखना, यज्ञ करना-कराना, ब्राह्मणों का मुख्य धर्म माना जाता था।

(4) आध्यात्मिक क्षेत्र में ईश्वर, देवी-देवता, देव-दूत (पैगम्बर) आदि के प्रति मन

में होने वाले विश्वास तथा श्रद्धा के आधार पर स्थित वे कर्तव्य, कर्म अथवा धारणा; जो भिन्न-भिन्न जातियों और देशों के लोगों में अलग-अलग रूपों में प्रचलित हैं और जो कुछ विशिष्ट प्रकार के आचार-शास्त्र तथा दर्शन-शास्त्र पर आश्रित होती हैं। जैसे—ईसाई धर्म, इस्लाम धर्म, हिन्दू धर्म।

(5) भारतीय नागर नीति में, वे सब नैतिक या व्यावहारिक नियम और विधान जो समाज का ठीक तरह से संचालन करने के लिए प्राचीन ऋषि-मुनि समय-समय पर बनाते चले आए हैं और जो स्वर्गादि शुभ फल देने वाले कहे जाते हैं। जैसे मानवता या राष्ट्रीयता के सिद्धान्तों का पालन करना ही हमारा धर्म है।

महर्षि वाल्मीकि ने लिखा है, 'धर्म से अर्थ प्राप्त होता है। धर्म से सुख का उदय होता है। धर्म से ही मनुष्य सब कुछ पाता है। इस संसार में धर्म ही सार है।'

धर्मादर्थः प्रभवति धर्मात् प्रभवते सुखम्।
धर्मेण लभते सर्वं धर्मसारमिदं जगत्॥

(रामायण : अरण्य कांड 9/30)

'धर्महीन जीवन का दूसरा नाम सिद्धान्तहीन जीवन है और बिना सिद्धान्त का जीवन बिना पतवार की नौका के समान है।' —महात्मा गाँधी। इतना ही नहीं वेदव्यास जी ने चेतावनी दी है, 'यदि तूने धर्म को तिरोहित या उच्छिन्न किया तो तू स्वयं ही नष्ट हो जाएगा और यदि तूने धर्म की रक्षा की तो वह (रक्षित) धर्म तेरी रक्षा करेगा—'**धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।**' (महाभारत : वन पर्व)

(363) धर्म और विज्ञान

संकेत बिंदु—(1) धर्म मानव की आत्मा (2) विज्ञान, धर्म के आगे नतमस्तक (3) राधा कृष्णन का मत (4) धर्म और विज्ञान सत्य पर आधारित (5) उपसंहार।

धर्म मानव की आत्मा है, तो विज्ञान मानव का शरीर है। धर्म का सम्बन्ध हृदय से है तो विज्ञान का सम्बन्ध मस्तिष्क से है। धर्म आध्यात्मिक अवस्थाओं का परीक्षक और निरीक्षक है, तो विज्ञान बाह्य पदार्थों का विश्लेषणकर्ता। विज्ञान सृष्टि की उत्पत्ति के नियमों को बताता है तो धर्म उन नियमों का नियन्ता के साथ संबंध दर्शाता है। धर्म विद्या है, संस्कृति है तो विज्ञान अविद्या है, सभ्यता है। धर्म श्रेय है, निःश्रेयस् है, अमृतत्व का प्रदाता है, तो विज्ञान प्रेय है, अभ्युदय है, भौतिक भोग्य-सामग्री का दाता है।

धर्म और विज्ञान एक-दूसरे से दूर दिखाई देते हुए भी जीवन के लिए समान रूप से उपयोगी हैं। अलबर्ट आइन्स्टाइन का कहना है, 'धर्म के बिना विज्ञान लंगड़ा है और विज्ञान के बिना धर्म अन्धा है।'

आधुनिक विचारकों का मत है कि विज्ञान अपनी परम स्थिति पर पहुँच कर धर्म के आगे सिर झुकाता है। इसे दूसरे शब्दों में इस प्रकार कह सकते हैं कि जहाँ विज्ञान और

दर्शन की सीमा समाप्त हो जाती है, वहाँ धर्म की सीमा प्रारम्भ हो जाती है और धर्म विज्ञान का विरोधी या नाशक नहीं, बल्कि विज्ञान के राज्याभिषेक का मौलि-मणि है। (Religion is Crowing Stone of Science.)

ऐसे विचारकों की भी कमी नहीं, जो केवल विज्ञान अथवा केवल धर्म को ही महत्त्व देते हैं। रूस के प्रसिद्ध विद्वान् टॉलस्टाय लिखते हैं, 'धर्म का युग चला गया। विज्ञान के अतिरिक्त अन्य किसी बात पर विश्वास करना मूर्खता है। जिस किसी वस्तु की हमको आवश्यकता है, वह सब विज्ञान से प्राप्त हो जाती हैं। मनुष्य के जीवन का प्रदर्शक केवल विज्ञान ही होना चाहिए। तर्तूलियन ने सम्पूर्ण दर्शनशास्त्र को राक्षसी कहकर उसकी निन्दा की है। पूछता है, 'ईसाई और दार्शनिक के बीच—स्वर्ग के अनुयायी और यूनान के अनुयायी के बीच एक जो सत्य को विकृत करता है और दूसरा, जो उसको पुन: स्थापित करता है और उसकी शिक्षा देता है, इन दोनों के बीच—कोई सादृश्य कहाँ है ?'

डॉ. राधाकृष्णन् का भी यही मत है—'वैज्ञानिक स्वभाव अपनी अविश्रान्त बौद्धिक जिज्ञासा, किसी भी चीज को केवल विश्वास पर स्वीकार करने में हिचकिचाहट तथा सन्देह करने की शक्ति के कारण ही सम्पूर्ण कृत्यों एवं प्रयोगों को आगे बढ़ाता रहा है। वह किसी विचार को बिना निरीक्षण-परीक्षण एवं आलोचना के स्वीकार नहीं करता। वह प्रश्न करने और मान्यताओं पर सन्देह करने में स्वतंत्र है जबकि धर्म में पूर्वाग्रह है। विज्ञान किसी सर्वाधिकारवादिता पर आश्रित नहीं है, बल्कि ऐसे दृष्ट प्रमाणों की ओर इंगित करता है जिनका मूल्यांकन कोई भी प्रशिक्षित मस्तिष्क कर सकता है। विज्ञान चिंतन एवं जिज्ञासा की स्वतंत्रता के बीच किसी भी प्रतिबंध को स्वीकार नहीं करता। वह नवीन ज्ञान एवं नवीन अनुभव का स्वागत करता है। एक सच्चा वैज्ञानिक कभी पूर्वाग्रह या अंधश्रद्धा का आश्रय नहीं लेता। उसके दृष्टिकोण में नम्रता, आत्मालोचन और दूसरों से सीखने की तत्परता दिखाई पड़ती है। यदि हम जिज्ञासा की स्वतंत्रता को महत्त्व देते हैं तो हमें यह समझते देर न लगेगी कि वह धर्म के प्रमुख अंग सर्वसत्तावाद या प्राधिकारवादिता के प्रतिकूल है।'
(सत्य की ओर, पृष्ठ 16)

विज्ञान बाह्यजगत् की आधार-शिला पर स्थित जिज्ञासा के प्रासाद में बैठकर सत्य की खोज करता है, वहाँ धर्म अन्तर्जगत् में प्रतिष्ठित होकर सत्य का साक्षात्कार करता है। इस प्रकार धर्म और विज्ञान, दोनों सत्य पर आधारित हैं। यह बात दूसरी है कि उनके विकास के क्षितिज भिन्न-भिन्न हैं और उनके आयामों में अन्तर है। वस्तुत: धर्म और विज्ञान जिज्ञासा रूपी पेड़ की दो शाखाएँ हैं और दोनों का फल एक ही है। और वह है 'सत्य की उपलब्धि।'

धर्म-ग्रन्थों में पृथ्वी के अतिरिक्त अन्य लोकों की चर्चा है तथा ब्रह्मांड को अण्डाकार माना गया है। आज का वैज्ञानिक धर्मग्रन्थों के तथ्य का साक्षात्कार कर रहा है। कभी मंगल-लोक और कभी शुक्र-लोक की दौड़ लगा रहा है। वह धार्मिक बातों की सत्यता स्वीकार करने लगा है। इस प्रकार वैज्ञानिक जिज्ञासा धार्मिक-चेतना से विच्छिन्न नहीं है, प्रत्युत उसी

का एक अनिवार्य अंग है। विज्ञान अपनी अति विकसित व्यवस्था में धर्म से एकाकार हो जाएगा, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

शरीर और आत्मा का जो पारस्परिक सम्बन्ध है, वही सम्बन्ध धर्म और विज्ञान का है। मानवता का आभ्यन्तर अर्थात् आत्मा धर्म है और बाह्य अर्थात् शरीर विज्ञान है। धर्म इसके नेत्र है और विज्ञान चरण। दोनों मिलकर ही मानवता की शरीर-यात्रा को गन्तव्य तक पहुँचा सकते हैं। धर्म और विज्ञान के इस मंगलमय मिलन में ही विश्व-कल्याण निहित है।

विज्ञान ने मानव को अनगिनत भौतिक सुख-सुविधाएँ प्रदान कीं, पर शान्ति न मिल सकी। शान्ति मिली धर्म से। अखण्ड आनन्द और अमृतत्व प्राप्त हुआ धर्म से। जीवन को सरल, सुलभ और सफल बनाने के लिए दोनों परमावश्यक हैं।

धर्म और विज्ञान, दोनों मंगलकारी वरदान हैं। दोनों मानव-मात्र के हितकारी हैं। दोनों दो तन और एक प्राण हैं। अत: दोनों में विरोध कैसा ?

धर्म और विज्ञान एक-दूसरे के पूरक हैं। अत: इनका पार्थक्य सम्भव नहीं। विज्ञान सृष्टि की उत्पत्ति के नियमों का ज्ञापक है और धर्म उन नियमों का नियन्ता के साथ सम्बन्ध दर्शाता है। अत: इनका सम्बन्ध-विच्छेद मृत्यु का आलिंगन है और इनका मिलन रत्नगर्भा वसुन्धरा को स्वर्ग बना देगा।

(364) धर्म और राजनीति

संकेत बिंदु—(1) श्रेष्ठ सिद्धांतों का समूह (2) मानव जीवन मौलिक सिद्धांतों पर अवस्थित (3) गाँधी जी के विचार (4) धर्म राजनीति से सम्बन्धित (5) उपसंहार।

धर्म क्या है ? जीवन को चलाने वाले श्रेष्ठ सिद्धान्तों का समूह ही धर्म है। इतना ही नहीं, धर्म मनुष्य के समस्त व्यावहारिक कार्य-कलापों को एक संगतिपूर्ण अर्थवत्ता में ढालने का जीवंत प्रयोग है। इसलिए धर्म का क्षेत्र व्यापक है। धर्म व्यक्ति का सहज स्वभाव है, धर्म कर्तव्य है। 'धर्म चक्र प्रवर्तनाय' इसीलिए कहा गया है।

राजनीति राज्य-प्रशासन चलाने की नीति या पद्धति का नाम है। 'पॉलिटिक्स' के अर्थ में यह 'गुटों, वर्गों आदि की पारस्परिक स्पर्धावाली तथा स्वार्थपूर्ण नीति है।' डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में, 'राजनीति भुजंग से भी अधिक कुटिल, असिधारा से भी अधिक दुर्गम तथा विद्युत् शिखा से भी अधिक चंचल है।' शायद इसीलिए नीतिशतक में भर्तृहरि ने इसका परिचय 'वारांगनेव नृपनीतिनेक रूपा' अर्थात् राजनीति वेश्या की तरह अनेक रूपिणी होती है, कहकर दिया है। अत: राजनीति में दोष की सम्भावना बनी ही रहती है।

मानवी जीवन धर्म के मौलिक सिद्धान्तों पर टिका है। चाहे हिन्दू-धर्मावलम्बी व्यक्ति

हो, ईसाई मत का अनुयायी हो या मुस्लिम मतावलम्बी हो। वह जन्म से लेकर मृत्यु-पर्यन्त धार्मिक सिद्धान्तों को न केवल मानता है, अपितु उन पर श्रद्धा सुमन भी चढ़ाता है। फलत: धर्म मानव के समग्र जीवन-तंत्र को प्रभावित करता है। इसलिए धर्म मनुष्य के समस्त व्यावहारिक कार्य-कलापों को एक संगतिपूर्ण अर्थवत्ता में ढालने का जीवन्त प्रयोग है।

धर्म का अभिप्राय है धारण करने वाला (धारणाद्धर्ममित्याहु:)। यह धारणा है कर्तव्य; राजा का देश तथा प्रजा के प्रति कर्तव्य, परिवार प्रमुख का अपने कुटुम्ब के प्रति कर्तव्य। कर्तव्य धर्म से तय होता है। इसलिए राज कर्तव्य का राज धर्म से सुसंचालन संभव है। दूसरी ओर, राजनीति भुजंग समान कुटिल, असिधारा के समान दुर्गम, विद्युत् शिखा समान चंचल तथा वारांगना समान बहुरूपिणी है। इसलिए इसमें दोष की सम्भावना सदा बनी रहती है। उसे दोष मुक्त करने के लिए एक मानक की जरूरत है। धर्म ही वह मानक है, वह दर्पण है, जिसमें राजनीति अपने सत्कर्मों और दुष्कर्मों का चेहरा देख सकती है।

गाँधी जी ने कहा है, 'धर्म से अलग राजनीति की कल्पना मैं नहीं कर सकता।' (हरिजन 10.2.1940)। श्री अरविन्द का कहना है, 'राष्ट्रवाद राजनीति नहीं, वरन् एक धर्म है, एक पंथ है।' स्वामी विवेकानन्द ने कहा, 'अपने धर्म को फेंकने में सफल होकर राष्ट्रीय जीवन शक्ति के रूप में यदि तुम राजनीति को अपना केन्द्र बनाने में सफल हो गए तो तुम समाप्त हो जाओगे।' विपिनचन्द्रपाल ने तो एक कदम आगे बढ़कर कहा, 'जो भी धर्म-निरपेक्ष तथा नागरिक अनुष्ठान हैं, उनमें धार्मिक अनुष्ठान तथा धार्मिक विधि का तत्त्व होना आवश्यक है।' डॉ. लोहिया भी धर्म और राजनीति के समन्वय की बात करते हुए कहते थे, 'अल्पकालिक धर्म राजनीति है, दीर्घकालिक राजनीति धर्म है।'

आज भी धर्म राजनीति से जुड़ा है। शाहबानों केस में सुप्रीम कोर्ट के आदेश को संसद् द्वारा निरस्त करवाना, अल्पसंख्यकों को 'रिलिजियस स्कूल' खोलने की स्वीकृति देना, हज-यात्रियों को करोड़ों रुपये का अनुदान देना, प्रधानमंत्री का किसी औलिया की कबर पर जाकर चादर चढ़ाना तथा देवहरा बाबा की पैर की ठोकर में जीवन-मुक्ति समझना, अपनी सफाई में सीता-माता के पावित्र्य का उद्धरण देना धर्म को राजनीति से जोड़ना ही तो है।

धर्म को सहस्राब्दियों से अर्जित अनुभवों का सार या आत्मबोध मानने पर ही हम झूठ को सच से, न्याय को अन्याय से, ज्ञान को अज्ञान से अलग करने का प्रयास करते हैं। सुप्रसिद्ध चिन्तक निर्मल वर्मा का कहना है कि 'यह वह भावबोध है जिसमें मनुष्य की अंतश्चेतना उसकी कॉनशस, उसकी अन्तरात्मा वास करती है। मनुष्य का मजहब, रिलीजन, विश्वासतंत्र कुछ भी क्यों न हो, वह एक पतली डोर से इस भाव बोध, इस अन्तश्चेतना के साथ जुड़ा रहता है। इस डोर का एक सिरा मनुष्य के आत्म के साथ जुड़ा है, दूसरा दुनियावी लोक के साथ। इन दोनों सिरों के बीच फैले तंतुजाल से मनुष्य की लोक-परलोक, उसकी लौकिक मर्यादाएँ और अलौकिक आस्थाएँ, उसका धर्म-कर्म उसका नैतिक विवेक मन, राज्य समुदाय के साथ उसके संबंध अन्तर्निहित होते हैं। जब हम उसकी

राजनीति से धर्म को अलग की बात करते हैं, तो वस्तुत: हम इस डोर को बीच में से काट डालते हैं, जिसका घातक परिणाम यह होता है कि एक छोर पर उसका आत्म नीति शून्य हो जाता है और दूसरे छोर पर उसकी राजनीति आत्मशून्य।'

धर्म को विवादास्पद, हेय, निन्दित, घृणित साम्प्रदायिकता के हद तक ले जाने का काम सत्ता के लोभी करते हैं। कांग्रेस ने आजीवन यही काम किया है। आज कांग्रेस ही धर्म को राजनीति से अलग करने का उपदेश देती है। वह भूल जाती है कि भारतमाता का विभाजन विशुद्ध धार्मिकता के आधार पर कांग्रेस की स्वीकृति से ही हुआ है। पड़ोस में एक नहीं दो-दो मजहबी राज्य (पाकिस्तान और बंगलादेश) बनाने की जुम्मेवार भी कांग्रेस ही है। सत्ता के लिए वह केरल में मुस्लिमलीग से गलबहियाँ डाले है तो मीजोरम में ईसाई सरकार बनाने के लिए ईसायत के नाम पर वोट माँगती रही है। कांग्रेस की इस अपराधपूर्ण नीतियों का परिणाम है कि एक ओर वे धर्म के खिलाफ तलवार चलाते रह जाते हैं, दूसरी ओर धार्मिकता का चोर राष्ट्रीय आत्म-बोध के किले में सेंध लगाने में कामयाब हो जाता है।

आज धर्म को राजनीति से अलग करने का विचार हिन्दुत्व भावना के सम्मुख कांग्रेस के वैचारिक चिंतन की हार है। उसके धर्म-निरपेक्ष चिंतन के बांझपन का परिचायक है। भारत के आध्यात्मिक रूप और गौरव को विश्व के सम्मुख धूमिल करने का षड्यन्त्र है, जिसे धर्मप्राण भारत कभी स्वीकार नहीं करेगा।

(365) धर्म और साम्प्रदायिकता

संकेत बिंदु—(1) विशिष्ट सिद्धांत को मानने वाला समूह (2) साम्प्रदायिकता का अर्थ (3) इस्लाम धर्म का दृष्टिकोण (4) ईसाइयों और हिंदुओं में संघर्ष (5) उपसंहार।

किसी धर्म के अन्तर्गत किसी विशिष्ट मत या सिद्धांत मानने वालों का वर्ग या समूह सम्प्रदाय है। जैसे हिन्दुओं में वैष्णव, शैव, सिक्ख, जैन तथा बौद्ध सम्प्रदाय हैं। मुसलमानों में शिया, सुन्नी और वोहरा सम्प्रदाय हैं। ईसाइयों में कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट सम्प्रदाय हैं। सम्प्रदाय से सम्बद्ध होने का भाव साम्प्रदायिकता है।

धर्म 'रिलीजन', 'सम्प्रदाय' या मजहब नहीं। धर्म तो सृष्टि चक्र को चलाने वाला प्रकृति और मानव का शाश्वत गुण है। विश्व में न धर्म दो हैं, न ईश्वर दो हैं। रिलीजन, सम्प्रदाय या मजहब अनेक हैं। जब एक गुरु, एक ग्रन्थ, एक 'प्रॉफिट' के अनुशासन को निर्ममतापूर्वक लादने की कोशिश की जाती है तो रिलीजन (सम्प्रदाय) की उत्पत्ति होती है। जब निजी हितों को प्राप्त करने के लिए निजी आस्था और निजी कर्मकाण्ड को दूसरों पर थोपने के लिए धर्म का सहारा लिया जाता है तो साम्प्रदायिकता अनुचित रूप में प्रकट होती है।

मस्जिद से मन्दिर लड़ते हैं, / गिरजा से लड़ते विहार मठ।
धर्म अनर्थ कर रहा कितना, / करते हैं अधर्म पामर शठ॥

सोहनलाल द्विवेदी

अपने धर्म के प्रति अटूट आस्था, विश्वास तथा श्रद्धा रखना साम्प्रदायिकता नहीं। साम्प्रदायिकता तब आती है, जब हम अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णुता नहीं दिखाते। धर्म क्या है? सत्य की पहचान। यह पहचान विविध रूपा है। कारण, एक ही मूल तत्त्व को विद्वान् अनेक नामों से पहचानते है। (एकं सद् विप्रा: बहुधा वदन्ति) इसलिए सत्य के पहचानने की विविध विधियाँ असत्य नहीं। इस प्रकार सत्य पर सब धर्मों का अधिकार है और सभी धर्म सत्य के अनुगामी हैं। जब सत्य पर एक धर्म अपना ही अधिकार मानता है तो साम्प्रदायिकता है।

केवल अपने सम्प्रदाय की श्रेष्ठता और हितों का विशेष ध्यान रखना और दूसरे सम्प्रदायों से द्वेष रखना साम्प्रदायिकता है। राष्ट्र के प्रति व्यापक निष्ठा के मुकाबले किन्हीं क्षुद्र संकीर्ण निष्ठाओं के जगाने को साम्प्रदायिकता का नाम दिया जा सकता है। ये संकीर्ण निष्ठाएँ हैं—धर्म पर आधारित साम्प्रदायिक समस्या, जाति-उपजाति की समस्या, प्रादेशिक भावनाओं की समस्या।

'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' अर्थात् विश्व के लोगों को श्रेष्ठ-शुद्ध आचरण वाला-बनाओ, वैदिक घोष रहा है। इसके विपरीत मुसलमानों की घोषणा है विश्व को इस्लामिक बनाओ। इस ध्येय पूर्ति के लिए वे अन्य धर्मावलम्बियों तथा सरकार पर दबाव बनाए रखना चाहते हैं। दबाव नीति के तहत वे देश में झगड़े-फिसाद करने का बहाना ढूँढते हैं। इतना ही नहीं विश्व में कहीं भी कोई इस्लामी देश छींकता है तो भारत की साम्प्रदायिकता को जुकाम हो जाता है। इंग्लैंड के लेखक सलमान रुशदी तथा बंगला लेखिका तसलीमा नसरीन के जीवन्त उदाहरण सामने हैं। एक ओर इस्लाम धर्म के दो सम्प्रदाय शिया और सुन्नी एक दूसरे के खून के प्यासे हैं, मगर जब अन्य धर्मावलम्बियों से संघर्ष होता है तो 'वयम् पंचाधिकम् शतम्' का सिद्धांत दर्शाते हैं।

पवित्र कुरान की आयतें मुसलमानों को आज्ञा देते हुए कहती हैं—

'फिर, जब हराम के महीने बीत जाएं, तो 'मुशिरको' को जहाँ-कहीं पाओ कत्ल करो, और पकड़ो, और उन्हें घेरो, और हर घात की जगह उनकी ताक में बैठो। फिर यदि वे 'तौबा' कर लें, नमाज़ कायम करें और जकात दें तो उनका मार्ग छोड़ दो। नि:सन्देह अल्लाह बड़ा क्षमाशील और दया करने वाला है।' (10.9.5)

'जिन लोगों ने हमारी 'आयतों का इन्कार किया, उन्हें हम जल्द अग्नि में झोंक देंगे। जब उनकी खालें पक जाएंगी तो हम उन्हें दूसरी खालों से बदल देंगे ताकि वे यातना का रसास्वादन कर लें। नि:सन्देह अल्लाह प्रभुत्वशाली तत्त्वदर्शी है।' (5.5.56)

दूसरा विश्व धर्म है ईसाई। यीशु आज्ञा देता है कि 'सम्पूर्ण विश्व उसका है। अविश्वासी को जिन्दा रहने, स्वतंत्र रहने, सम्मान पाने एवं सम्पत्ति रखने का कोई अधिकार

नहीं है।' इस प्रचार के लिए ईसाई धर्म 'सेवा द्वारा मेवा' का पक्षपाती है। ईसाई मिशनरी ईसाइयत के प्रचार में सेवा माध्यमों से जुड़ी हुई हैं। वे लड़ाई-झगड़े से नहीं प्रेम-भाव से धर्म-परिवर्तन में विश्वास करते हैं। किन्तु सितम्बर 2000 में रोमन कैथोलिक चर्च के सर्वेसर्वा पोप ने शपथपूर्वक घोषणा की है कि हम विश्व को किसी भी प्रकार चाहे उसमें हिंसा का प्रयोग ही क्यों न करना पड़े, ईसाई बनाकर ही रहेंगे, क्योंकि यही ईश्वर को पाने का एकमेव मार्ग है। भारत में जहाँ ईसाई मत के धर्मावलम्बी नगण्य थे, आज भारत की आबादी का 2.32 प्रतिशत (1991 की जन-गणना के अनुसार) हैं। ये सामूहिक धर्म-परिवर्तन में विश्वास करते हैं। अनपढ़, अशिक्षित, अभाव ग्रस्त आदिवासियों में ये काफी हद तक अपने मिशन में कामयाब हैं। हिन्दू जब जागृत हुआ तो इस धर्म-परिवर्तन के विरुद्ध विद्रोह खड़ा किया। परिणामत: दक्षिण के अनेक प्रांतों में ईसाई-हिन्दू साम्प्रदायिक झगड़े शुरू हो गए हैं।

हिन्दुओं का एक सम्प्रदाय है 'सिक्ख पंथ'। सिक्ख भारत में शांति-समभाव से जीवन का आनन्द ले रहे थे। कुटिल राजनीति ने इन्हें भी अपनी अलग पहचान बनाने के लिए प्रोत्साहित किया। परिणामत: सिक्खों का उग्र रूप प्रकट हुआ। पंजाब में निर्दोष हिन्दुओं की हत्या और आतंक का आलम यह था दिन छुपते ही पंजाब में मरघट की शांति छा जाती थी। जब पानी सिर से गुजरा तो सैनिक संघर्ष हुआ। यह संघर्ष इतना सशक्त था मानों दो राष्ट्रों में मुटभेड़ हो रही है। पराजित उग्रवादी सिक्खों ने प्रधानमंत्री इन्दिरा गाँधी की हत्या करवा कर मानो पराजय के कलंक को धो लिया। इंदिरा गाँधी की हत्या के प्रतिक्रियास्वरूप (1984 में) सिक्खों का संहार साम्प्रदायिकता का प्रखर रूप ही था।

जाति-उपजाति की साम्प्रदायिकता ने दो रूपों में अपने फन फैलाए-(1) शूद्र और पिछड़ी जाति संघर्ष तथा (2) सवर्णों में परस्पर संघर्ष। प्रथम वर्ग को शिक्षा, नौकरी तथा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्राथमिकता देकर वर्ग-संघर्ष उत्पन्न किया गया, जिसने साम्प्रदायिकता का रूप ले लिया है। यदि भारत का सर्वोच्च न्यायालय इसमें हस्तक्षेप करता है तो भारत का प्रधानमंत्री संविधान-संशोधन करके सर्वोच्च न्यायालय को उसकी औकात समझाता है। जब केन्द्र इस वर्ग के साथ हो तो साम्प्रदायिकता क्यों न फन फैलाएगी?

साम्प्रदायिकता के मूल में है—धार्मिक कट्टरता। धार्मिक कट्टरता धर्म का गुण है, दोष नहीं। दोष तब बनता है जब सर्वधर्म समभाव की अवहेलना होती है, दूसरों को अपना धर्म पालन करते हुए देखकर चिढ़ होती है और 'जीओ तथा जीने दो' की भावना का तिरस्कार होता है। यह तिरस्कार घृणा में बदलता है। घृणा घृणा को बल देती है। शासन का स्वार्थवश समर्थन साम्प्रदायिकता की अग्नि में घी का काम करता है। इसलिए धर्म के नाम पर कट्टर साम्प्रदायिकता फैलाना कभी न समाप्त होने वाली अमर बेल है।

(366) हिन्दू-धर्म

संकेत बिंदु—(1) प्राचीन, उदार और समन्वयशील (2) महात्मा गाँधी के विचार (3) धर्म का साधना-पक्ष अत्यंत व्यापक (4) सतत विकासमान और परिवर्तनशील (5) उपसंहार।

हिन्दू-धर्म सृष्टि का आदि धर्म है, यही सनातन धर्म है। जिस प्रकार वेद अपौरुषेय हैं, उसी प्रकार हिन्दू-धर्म अपौरुषेय है, अतः यह ईश्वरीय धर्म है। यह सर्वाधिक उदार और समन्वयशील धर्म है। यह वर्तमान जीवी धर्म है और इसमें सत्य तथा ऋत का गठबंधन है। यह प्रकृति और मनुष्य की एकात्मकता का धर्म है। बाहर जो सूर्य का प्रकाश है, वही भीतर बुद्धि का प्रकाश है। बाहर जो अन्धकार है, वही इसके भीतर का भय है। बाहर जो तृण, वीरुध और वृक्ष से ऊपर उठने की प्रक्रिया है, वही इसके भीतर की उमंग है।

हिन्दू-धर्म मानता है कि ब्रह्माण्ड के कण-कण में ईश्वर व्याप्त है। जीवात्मा ईश्वरांश है। उसका पुनर्जन्म भी होता है। ज्ञान के भंडार और अनुभव-सिद्ध वेदादि हिन्दू वाङ्मय धर्म के द्रष्टा हैं। चार वर्ण, चार आश्रम, चार पुरुषार्थ, सोलह संस्कार और शाश्वत नीति तत्त्व अहिंसा, सत्य आदि हिन्दू-धर्म के प्राण हैं। मोक्ष प्राप्ति के लिए विभिन्न रूपों—उपासना, व्रत, पूजन आदि में सत्य के दर्शन पर यहाँ फूल चढ़ाए जाते हैं।

इसी कारण महात्मा गाँधी ने 6-10-1921 के 'यंग इंडिया' में लिखा—मैं अपने को सनातनी हिन्दू कहता हूँ, क्योंकि—

(1) मैं वेदों, उपनिषदों, पुराणों और हिन्दू धर्म-ग्रंथों के नाम से प्रचलित सारे साहित्य में विश्वास रखता हूँ और इसलिए अवतारों और पुनर्जन्म में भी।

(2) मैं वर्णाश्रम धर्म के उस रूप में विश्वास रखता हूँ जो मेरे विचार से विशुद्ध वैदिक है, लेकिन उसके आजकल के लोक-प्रचलित और स्थूल रूप में मेरा विश्वास नहीं।

(3) मैं रक्षा में उसके लोक प्रचलित रूप से कहीं अधिक व्यापक रूप में विश्वास करता हूँ।

(4) मैं मूर्तिपूजा में अविश्वास नहीं करता।

'हिन्दू-धर्म मुझे क्यों प्रिय है' बताते हुए संत विनोबा ने लिखा है—

(1) इसमें असंख्य सत्पुरुष—वामदेव, बुद्धदेव, ज्ञानदेव आदि हैं।

(2) अनेक सामाजिक एवं वैयक्तिक संस्थाएं, संस्कार और आचार-यज्ञ, आश्रम, गोरक्षण आदि का विचार है।

(3) शाश्वत नीतितत्त्व—अहिंसा, सत्य आदि हैं।

(4) सूक्ष्म तत्त्व विभाग—भूतमात्र में हरि का निवास आदि माना जाता है।

(5) आत्मनिग्रह का वैज्ञानिक उपाय—योग विद्या है।

(6) जीवन और धर्म की एकता—कर्मयोग है।

(7) अनुभव सिद्ध साहित्य—वेद, उपनिषद्, गीता आदि हैं।

(विचार पोथी : क्रमांक ८)

हिन्दू-धर्म का साधना-पक्ष अत्यन्त व्यापक है। यहाँ 'इस्लाम को न मानने वालों के अतिरिक्त अन्य सभी काफिर हैं', का सिद्धान्त नहीं है। ईसाई-धर्म अब केवल बाइबल में सिमट कर रह गया है। यहाँ तो आस्तिक हो या नास्तिक, भावुक हो या बौद्धिक, प्रतिक्रियावादी हो या क्रान्तदर्शी, सभी को हिन्दू-धर्म में कोई-न-कोई पथ प्राप्त होता है। अत: सैद्धान्तिक और व्यावहारिक साधना-पक्षों की दृष्टि से हिन्दू-धर्म संसार का सर्वाधिक सम्पन्न धर्म है।

इस विषय में विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की दृष्टि द्रष्टव्य है, "हमारा धर्म 'रिलीजन' (पंथ या सम्प्रदाय) नहीं है, वह मनुष्यत्व का एकांश नहीं है, वह राजनीति से तिरस्कृत नहीं है, वह युद्ध से बहिष्कृत नहीं है, व्यवसाय से निर्वासित नहीं है, दैनन्दिन व्यवहार से दूरीकृत नहीं है।" (निबन्ध : धर्म-प्रचार)

प्रकृति सतत परिवर्तनशील है। इसलिए जीवन भी सतत परिवर्तनशील है, अत: हिन्दू-धर्म भी सतत-विकासमान धर्म रहा। जड़ता उसे अवरुद्ध न कर सकी; उसके प्रवाह को विचलित न कर सकी। एक ग्रन्थ प्रत्येक युग और भूमंडल के लिए सर्वदा उपयुक्त नहीं रह सकता। इसीलिए हिन्दू-धर्म में युगानुरूप स्पष्टीकरण हुए, मान्यताएँ मिलीं, सिद्धान्त स्थापित हुए। वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, स्मृतियाँ, पुराण, उपपुराण, रामायण, महाभारत, रामचरितमानस इसी तथ्य के प्रमाण हैं।

हिन्दू-धर्म की प्राणवत्ता, अजर-अमरता का रहस्य है—उसकी उदार प्रकृति और समन्वय प्रवृत्ति। जैन, बौद्ध, सिक्ख-मत हिन्दू-धर्म की शाखाएँ हैं, जैसे कि शैव, स्मार्त या वैष्णव। अपनी उदार प्रकृति के कारण उसने दोनों मत-प्रवर्तकों को महापुरुषों में स्थान दिया। बुद्ध की गणना तो दशावतारों में ही हो गई है। समन्वयात्मक प्रवृत्ति का परिचय विदेशी आक्रमण तथा उनके धर्माक्रमण को आत्मसात् करने में मिलता है। कुषाण, शक, हूण आदि सबका हिन्दू-धर्म में सम्मिश्रण हो गया। इतना ही नहीं, उनकी कुछ परम्पराएँ और सभ्यताएँ सभी हिन्दू-धर्म में पच, खप गईं।

स्वामी विवेकानन्द ने हिन्दू धर्म के सम्बन्ध में कहा है, 'मैं एक ऐसे धर्म का अनुयायी होने में गर्व का अनुभव करता हूँ, जिसने संसार को सहिष्णुता तथा सार्वभौम स्वीकृति, दोनों को ही शिक्षा दी है। हम लोग सब धर्मों के प्रति केवल सहिष्णुता में ही विश्वास नहीं करते, वरन् समस्त धर्मों को सच्चा मानकर स्वीकार करते हैं।'

(विवेकानंद साहित्य : प्रथम खंड, पृष्ठ ३)

भारत के सर्वोच्च न्यायालय के एक निर्णय अनुसार, "संसार के किसी भी 'रिलीजन' या 'रिलीजियस सीड' (धार्मिक बीज) पर जो कसौटियाँ लागू हो सकती हैं, वे सभी हिन्दू-धर्म के लिए अपर्याप्त हैं। प्रत्येक पंथ या पंथ-बीज निश्चित दार्शनिक प्रत्ययों का एक निकाय है और एक निश्चित पंथ मीमांसात्मक विश्वासों का विश्वास है। हिन्दू-धर्म पर

ये कसौटियाँ लागू नहीं होंगी।' हिन्दू-धर्म जीवन जीने की एक शैली है। ज्ञान को आचरण से जोड़ने की सतत प्रक्रिया है।''

वर्तमान जीवन-मूल्यों के लिए हिन्दू धर्म ही सर्व प्रकार से कल्याणकर और मंगलमय है। जैसे-जैसे मानव अन्तरिक्ष के अन्य ग्रहों का परिचय पाएगा, वैसे-वैसे हिन्दुओं के विचार 'सर्व खल्विदं ब्रह्म' का अर्थ समझता जाएगा, 'यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे' को मानता जाएगा, 'अहं ब्रह्मास्मि' की दिशा में बढ़ता जाएगा। हिन्दू-धर्म की सत्यता और सिद्धान्त को स्वीकार कर भौतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों को अपनाकर अपने को कृतार्थ करेगा।

(367) संस्कृति और सभ्यता

संकेत बिंदु—(1) संस्कृति राष्ट्र और जाति की आत्मा (2) संस्कृति का विस्तृत अर्थ (3) सभ्यता और संस्कृति सिक्के के दो पहलू (4) सभ्यता, भौतिक-समृद्धि का परिचायक (5) सभ्यता और संस्कृति में अंतर।

संस्कृति राष्ट्र और जाति की आत्मा है। आत्मिक उत्थान का चिह्न है। आत्मिक उत्कर्ष की सीढ़ी और आत्म-दर्शन का मार्ग है। आत्म-शुद्धि द्वारा मानव के सर्वगुण परिवृंहणार्थ एक सर्वोत्कृष्टभूता प्रशस्त मार्ग-प्रदर्शिका है।

संस्कृति शब्द 'सम्' उपसर्ग के साथ संस्कृत की 'कृ' धातु के पश्चात्, 'क्तिन्' प्रत्यय के प्रयोग से बनता है, जिसका मूल अर्थ स्वच्छ या परिष्कृत करना है। इस प्रकार संस्कृति का शब्दगत अर्थ हुआ 'संस्कार करने अर्थात् किसी वस्तु को संस्कृत रूप देने की क्रिया या भाव संस्कृति है।'—मानक हिन्दी कोश

मानव-शास्त्र का इतिहास यह प्रमाणित करता है कि मानव-जाति अपने आरम्भिक काल में उसी प्रकार का जीवन जीया करती रही होगी, जिस प्रकार पशु जीया करते हैं। समय पाकर मानव का प्रकृति से—उषा, सूर्य, चन्द्र, संध्या, नदी, निर्झर, पर्वतों एवं समतल भूमि पर हरियाली छिटकाते वनों से—और इसी प्रकार विभिन्न प्राणियों से सम्पर्क स्थापित हुआ, जिससे मानव की ज्ञान-चेतना जागृत हुई। ज्ञान-चेतना की इसी जागृति ने मानव हृदय में यह उमंग भर दी कि वह विश्व के साथ घुल-मिल जाए, प्रेम का विस्तार करे, उसकी जीवन-भूमि उल्लास, पवित्रता और सुन्दरता से परिपूर्ण हो उठे। मानव की यही उमंग जो धर्म, दर्शन, काव्य और कला बनकर व्यक्त तथा विकसित हुई, उसे ही संस्कृति कहा जाता है। दूसरे शब्दों में 'चित्त की परिष्कृत और उदात्त वृत्तियों की धर्म, दर्शन, काव्य और कला आदि रूपों में अभिव्यक्ति संस्कृति है।' इसी आधार पर मैथ्यू आर्नोल्ड ने 'मानव-चेतना के इतिहास से स्वयं को परिचित कराने' को संस्कृति माना है।

डॉ. देवराज संस्कृति को मानव-मात्र के चरम मूल्य के रूप में स्वीकार करते हैं। श्री 'अज्ञेय' इस बात का समर्थन करते हुए लिखते हैं, 'संस्कृतियाँ मूल्यों की सृष्टि करती हैं।' विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर संस्कृति को 'मस्तिष्क का जीवन' मानते हैं।

संस्कृति की सरल और सुन्दर व्याख्या करते हुए राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त 'हिन्दू' में लिखते हैं—

युग-युग के संचित संस्कार, ऋषि मुनियों के उच्च विचार।
धीरों वीरों के व्यवहार, हैं निज संस्कृति के शृंगार॥

'थोड़े शब्दों में और व्यापक अर्थ में किसी देश की संस्कृति से हम मानव-जीवन तथा व्यक्तित्व के उन रूपों को समझ सकते हैं, जिन्हें देश-विदेश में महत्त्वपूर्ण अर्थात् मूल्यों का अधिष्ठान समझा जाता है। उदाहरण के लिए, भारतीय संस्कृति में 'मातृत्व' और 'स्थितप्रज्ञता' की स्थितियों को महत्त्वपूर्ण समझा जाता है। ये स्थितियाँ जीवन अथवा व्यक्तित्व की स्थितियाँ हैं और इस प्रकार भारतीय संस्कृति का अंग हैं।'

—डॉ. देवराज (हिन्दी साहित्य-कोश भाग 1, पृष्ठ 869)

सभ्यता और संस्कृति एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। कहीं मन में भ्रम न हो, इसलिए सभ्यता को भी समझ लेना समीचीनं होगा।

चित्तवृत्तियों के उदात्त एवं परिष्कृत होते ही मानव पशुत्व से ऊँचा उठ गया—सुसंस्कृत बन गया। ये सुसंस्कृत महामानव ऋषि, मुनि, दार्शनिक, कवि एवं कलाकार कहलाए। इन सुसंस्कृत (Cultured) महामानवों ने जीवन-विकास के लिए नाना तत्त्वों का अन्वेषण किया। जीवन-आदर्शों को ढूँढ निकाला। सुख का स्वरूप पहचाना। ऐसी सामाजिक भावनाओं को विकसित किया जिससे मानव स्वार्थों की संकीर्णताओं से ऊपर उठकर 'जीओ और जीने दो' के सिद्धान्त को समझने लगा और इस प्रकार उसने सामाजिक रहन-सहन, खान-पान को पवित्र एवं सुन्दर बनाया। सर्वहितकारिणी आर्थिक व्यवस्था का निर्माण किया, समाज को सुशासित करने के लिए राजनैतिक नियमों का आविर्भाव किया और अपने विकास-क्रम की लम्बी परम्परा में भौतिक समृद्धि के रूप में गृह, कृषि, उद्योग, रेल, तार, रेडियो आदि का आविष्कार किया। इस प्रकार मानव की उदात्त चित्तवृत्ति की जो सामाजिक और आर्थिक संगठन के रूप में बहुमुखी अभिव्यक्ति हुई, उसे ही सभ्यता कहा जाता है। संक्षेप में भौतिक-समृद्धि का परिचायक तत्त्व सभ्यता है।

सभ्यता और संस्कृति में अन्तर

सभ्यता सामाजिक व्यवहार की व्यवस्था है। संस्कृति के भौतिकबोध का आंतरिक स्पंदन उसमें नहीं है। संस्कृति चित्त की उदात्त एवं परिष्कृत वृत्तियों की धर्म, दर्शन आदि रूप में अभिव्यक्ति है और उन महती चित्त-वृत्तियों का सामाजिक और आर्थिक संगठन के रूप में विकास सभ्यता है। संस्कृति संस्कार से बनती और सभ्यता नागरिकता का रूप है।

सारांशतः 'सभ्यता और संस्कृति, दोनों मनुष्य की सृजनात्मक क्रिया के कार्य का परिणाम हैं। जब यह क्रिया उपयोगी लक्ष्य की ओर गतिमान होती है, तब सभ्यता का जन्म होता है और जब वह मूल्य-चेतना को प्रबुद्ध करने की ओर अग्रसर होती है, तब संस्कृति का उदय होता है।' —डॉ. देवराज (संस्कृति का दार्शनिक विवेचन)

संस्कृति हमें राह बताती है तो सभ्यता उस राह पर चलती है। संस्कृति न हो तो मनुष्य और पशु के विचारों में कोई भेद न रहे। सभ्यता न हो तो मनुष्य और पशु का रहन-सहन एक-सा हो जाए।—कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर ('जीए तो ऐसे जीएं')।

प्रखर बुद्धि से भले
सभ्यता हो नव-निर्मित
संस्कृति के निर्माण के लिए
हृदय चाहिए।

—सुमित्रानन्दन पंत (आस्था, कविता 84)

(368) संस्कृति और समाज

संकेत बिंदु—(1) मानव विकास के स्तम्भ समाज और संस्कृति (2) संस्कृति, जाति या समाज की अन्तरात्मा (3) संस्कृति और समाज का सम्बन्ध (4) संस्कृति सतत विकासमान प्रक्रिया (5) भारतीय संस्कृति जीवन्त संस्कृति।

मानवता के विकास के दो आधार स्तम्भ हैं—समाज और संस्कृति। मानव सामाजिक प्राणी है। उसके बिना उसका न केवल विकास, अपितु जीवन भी मुश्किल है। संस्कृति मानवीय आदर्शों, मूल्यों, स्थापनाओं एवं मान्यताओं का समूह है। चित्त की उदात्त एवं परिष्कृत वृत्तियों की धर्म, दर्शन आदि रूप में अभिव्यक्ति है।

संस्कृति किसी जाति या समाज की अन्तरात्मा है। इसके द्वारा उस देश के समस्त संस्कारों का बोध होता है, जिनके आधार पर वह अपने सामाजिक या सामूहिक आदर्शों का निर्माण करता है। अत: प्रत्येक देश की संस्कृति का और तदनुकूल उसकी समाज-रचना का अन्य देशों की संस्कृति और सभ्यता से भिन्न होना स्वाभाविक है। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति जहाँ भारतीय समाज की अन्तरात्मा को अभिव्यक्ति है, वहाँ पाश्चात्य संस्कृति पश्चिम के समाज के संस्कारों का बोध कराती है।

जीवन-मूल्यों के साथ-साथ संस्कृति में भी यत्किंचित् परिवर्तन होता है। जीवन स्थिर और जड़ नहीं है, इसलिए संस्कृति भी जड़ और स्थिर नहीं। समाज के आर्थिक और सामाजिक जीवन में परिवर्तन होते रहते हैं और साथ-साथ सांस्कृतिक जीवन भी बदलता रहता है। दूसरी जातियों या देशवासियों से सम्पर्क होने पर संस्कृतियों में परिवर्तन सम्भाव्य है। कुछ लोगों के विचारों में हिन्दुओं ने आदि जातियों से दुर्गा पूजा, द्राविड़ों से शिवपूजा और जैनियों से मूर्तिपूजा के तत्त्व ग्रहण किए। वस्तुत: यह नितान्त भ्रमपूर्ण धारणा है। दूसरी और मुसलमानों ने भारत आक्रमण और राजसंस्थापन के पश्चात्, यवन संस्कृति ने हिन्दू संस्कृति को नष्ट करने की चेष्टा की, परन्तु हुआ विपरीत। दोनों संस्कृतियों में संघर्ष-संपर्क में और संस्पर्श हुआ। हिन्दू-संस्कृति ने मुस्लिम संस्कृति को आत्मसात् करने की चेष्टा की, किन्तु यवन-संस्कृति इसके लिए प्रस्तुत नहीं हुई। हाँ, यवन-संस्कृति प्रभावित

अवश्य हुई। सूफी समुदाय भारत के अध्यात्मवाद और साधना का मुस्लिम संस्करण ही तो है। मकबरों का पूजन, भजन, कीर्तन और संगीत द्वारा उपासना हिन्दू-संस्कृति की देन ही कही जाएगी।

समाज बढ़े, उन्नत हुए, संस्कृति की ध्वजा फहराई। समाज गिरा, संस्कृति लुप्त हो गई। उसका नामोनिशान न बचा। विश्व की प्राचीन प्रसिद्ध संस्कृतियों में मिश्र, असीरिया, बेबीलोनिया, यूनान आदि संस्कृतियाँ समाज के पतन के साथ लुप्त हो गईं। यूनान और रोम की भूमि पर आज किसी प्राचीन देवी-देवता को हम नहीं पा सकते। फिनलैण्ड का पूज्य वरुण देव, ग्रीनलैंड का अगस्त्याश्रम; जर्मनी, इटली और फ्रांस के कतिपय अवशेष; दक्षिणी अमेरिका के अनेक चिह्न; चीन, जापान, लंका आदि में फैला हुआ बौद्ध-धर्म; जावा, सुमात्रा, कम्बोज, मलय द्वीप की सामाजिक परम्पराएँ जिस अमिट संस्कृति की ओर संकेत कर रही हैं, वह उन स्थानों से मिट गईं। काल के कराल हाथों ने उनको नष्ट कर दिया।

प्राचीन युग में संस्कृति के निर्माण में धर्म का हाथ होता था। जैसे-जैसे राष्ट्रीयता का घोष प्रबल हुआ, संस्कृति में धर्म का स्थान गौण हो गया। रूस और चीन का यवन मिस्त्र और अन्य अरब राष्ट्रों की मुस्लिम संस्कृति का पुजारी नहीं रहा। वह 'रशियन' और 'चाइनी' संस्कृति का प्रतीक है। पाश्चात्य राष्ट्रों के मूल भारतीय निवासी आज भारतीय-संस्कृति के सच्चे प्रतीक नहीं कहे जा सकते। मॉरीशस और नेपाल का हिन्दू परिवर्तित भारतीय संस्कृति का उपासक नहीं माना जा सकता। आज धर्म राष्ट्र और नस्ल के आधार पर प्रतिष्ठित होते हैं। रोमन कैथोलिक चर्च को छोड़कर ईसाई दुनिया का भी यही हाल है।

संस्कृति कोई स्थिर वस्तु नहीं है। यह सतत विकासमान प्रक्रिया है, जीवन की शैली है। समाज की मान्यताओं, आदर्शों एवं मूल्यों का संगठन है। युगानुरूप परिवर्तनों को आत्मसात् करती हुई अबाध गति से प्रवहमान धारा है। इसके प्रवाह को, इसके विकास को, इसकी गतिशीलता को अवरुद्ध करने का प्रयास निष्फल होगा, उपहासास्पद होगा।

आज विश्व के समाजों में तीव्र गति से परिवर्तन हो रहा है। परिवर्तन समाज की अनिवार्य प्रक्रिया है, युग का धर्म है। समाज का पुराना सामंजस्य नष्ट हो रहा है। वह नई सभ्यता, नई मान्यता, नई आस्थाओं की तलाश में है। विश्व-समाज संक्रमणकाल में परिवर्तन के लिए तड़प रहा है। इतिहास साक्षी है कि जो समाज युग-धर्म की उपेक्षा करते हैं, वह पतनोन्मुख होते हैं।

भारतीय संस्कृति जीवन्त संस्कृति है। भारतीय समाज अजर और अमर है। भारतीय समाज और संस्कृति परिवर्तन में ही फलते-फूलते रहे हैं। इसे संघर्षों में ही जीवन्त अमरता प्राप्त हुई है। अतीत की विशेषताओं को इसने छोड़ा नहीं, आधुनिकता की उपयोगिता को अस्वीकारा नहीं। पवित्र विवाह संस्कार में लोग आज प्लेटों और चम्मच से स्टैण्डिग भोजन करते हैं, किन्तु संस्कार में वैदिक रीति अपनाते हैं। धार्मिक कृत्य में जहाँ धोती और अँगोछे को सहर्ष अपनाते हैं, वहाँ कार्यालय के लिए कोट-पैंट भी पहनते हैं। चन्दन भी लगाते

हैं, तो क्रास का प्रतीक टाई भी बाँधते हैं। घर में दीपावली पूजन करते हैं तो ईद की मुबारकबाद देकर मुसलमान दोस्तों से गले भी मिलते हैं। इसीलिए तो महाकवि इकबाल को कहना पड़ा—

यूनान मिश्र रोमां, सब मिट गए जहाँ से।
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।।

संस्कृति की महत्ता के लिए व्यक्तिगत चित्त और समाज चित्त को प्रभावित करना होगा। युग की आवश्यकताओं और आकाँक्षाओं के अनुरूप जीवन के मूल्य और पुरुषार्थ के उद्देश्य निर्धारित करने होंगे। उन्हीं के अनुकूल चित्त को उदात्त और प्रवृत्तियों को परिष्कृत करना होगा, तभी समाज सत्यं, शिवं, सुन्दरम् की ओर बढ़ सकेगा।

(369) हिन्दू संस्कृति की विशेषताएँ/ भारतीय संस्कृति की विशेषताएँ

संकेत बिंदु—(1) प्राचीन और भव्य संस्कृति (2) अध्यात्म पर आधारित (3) पुनर्जन्म पर विश्वास (4) हिन्दू संस्कृति के अनेक रूप (5) उपसंहार।

विश्व की नाना संस्कृतियों का इतिहास साक्षी है कि संसार में अनेक संस्कृतियाँ बरसाती पौधों के समान उत्पन्न हुईं और सूख गईं। नील नदी की घाटी में गगन-चुम्बी पिरामिडों का निर्माण करने वाली तथा अपने पितरों को 'ममी' के रूप में पूजा करने वाली मिश्र की संस्कृति अब कहाँ है ? असीरिया और बेबीलोनिया की संस्कृतियाँ क्या अब भूमि पर हैं ? देवी-देवताओं और प्राकृतिक शक्तियों को पूजने वाली संस्कृतियाँ क्या वर्तमान रोम के लोगों के लिए कोई महत्त्व रखती हैं, किन्तु भारतीय-संस्कृति का अमर वटवृक्ष प्राचीनतम वैदिक काल से लेकर आज तक फल-फूल रहा है तथा अपने लोक-मंगलकारी रूप में विद्यमान है।

वस्तुतः भारत की संस्कृति (हिन्दू संस्कृति) अध्यात्म पर आधृत है। इसलिए भारत भू धर्म-भूमि कहलाती है। 'नानात्वमय समस्त प्रपंच के प्रत्यक्ष बहुत्ववाद से अलक्ष्य, अगोचर, प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष से परे, निर्गुण-निराकार एक तत्त्ववाद, अद्वैत सिद्धान्त की प्रतिष्ठा ही हिन्दू-दर्शन की मौलिक विशेषता है। साकार-निराकार का पूर्ण समन्वय हिन्दू-दर्शनों में ही पाया जाता है। यही कारण है कि हिन्दू-संस्कृति में व्यावहारिक उत्तमता और पारमार्थिक श्रेष्ठता, दोनों पूर्णता की सीमा पर प्रतिष्ठित हैं। प्रतिपल सांसारिक व्यवहार करते हुए भी हिन्दू द्वैत-प्रपंच से उठकर अद्वैत स्वरूप निष्ठा-जीवन मुक्ति की अवस्था प्राप्त करने में समर्थ होता है। मनुष्य को मानव-विकास के उच्चतम शिखर पर पहुँचाकर जीवन-मुक्ति की अवस्था में प्रतिष्ठित करा देना ही हिन्दू संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता है।'

हिन्दू संस्कृति में जीव के आवागमन-चक्र और जन्मान्तरवाद पर विश्वास है। इसी

विश्वास के आधार पर परलोकवासी जीव का पथ सरल रहे और उसे कष्ट न हो, इसके लिए नित्य नैमित्तिक श्राद्ध-तर्पणादि कर्मकांड की सुव्यवस्था के लक्ष्य से 'दायभाग' की विशेष व्यवस्था है।

जिसका जन्म हुआ है, उसकी मृत्यु निश्चित है। गीता में कहा गया है—'जातस्यहिध्रुवा मृत्युः ध्रुवं जन्म मृतस्य च।' इस प्रकार जन्म और मृत्यु संसार के दो निर्विवाद सत्य हैं। पुनर्जन्म की समस्या इन्हीं दो सत्यों का स्पर्श करती है। पुनर्जन्म का आधार है आत्मा की अमरता। पाश्चात्य दर्शन का मानना है कि मरने के बाद आत्मा अनन्त में मिलकर आनन्त्य प्राप्त करता है जबकि हिन्दू दर्शन आत्मा को अविनाशी और अमर मानता है। आत्मा का न कभी जन्म होता है, न मरण, 'न जायते म्रियते वा कदाचित्।' आत्मा मृत्युकाल में स्थूल देह का त्याग कर सूक्ष्म देह से अपने-अपने कर्मों के अनुसार अपने-अपने उपयुक्त लोक में दुःख-सुख का भोग करने के लिए चला जाता है। दीर्घकाल के बाद आत्मा दूसरी देह में प्रवेश करती है; ठीक ऐसे ही जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्याग कर नये वस्त्र धारण कर लेता है।

हिन्दू संस्कृति सर्व कल्याणकारिणी है, मंगलमयी है। यहाँ एक जाति, धर्म या राष्ट्र की मंगल-कामना नहीं की, अपितु 'वसुधैव कुटुम्बकम्' मानकर चराचर के जीव-जगत् की मंगलमय कामना की गई है—

सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत्॥

[सभी सुखी हों, सब नीरोग हो, सब मंगलों का दर्शन करें। कोई भी दुःखी न हो।]

हिन्दू संस्कृति में नास्तिक दर्शन-चार्वाक, बौद्ध, जैन तथा छह आस्तिक दर्शनों—वैशेषिक, न्याय, सांख्य, योग, पूर्व मीमांसा, उत्तर मीमांसा के अतिरिक्त अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, द्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद, अचिन्त्यभेदाभेदवाद, शैवदर्शन, पाशुपत्य, प्रत्यभिज्ञा, शिवाद्वैत, लकुलीय, पाशुपत तथा शक्ति दर्शन आदि लगभग 24 दर्शन हैं। सनातन धर्म, आर्यसमाज, ब्राह्मसमाज, नाथपंथी, कबीरपंथी, दादूपंथी, नानक पंथी (सिक्ख) वैष्णव, शैव, (पाशुपत, लिंगायत), शाक्त, गाणपत्य आदि की उपासना पद्धति में भेद हैं। यह भेद सांस्कृतिक इन्द्रधनुषी रंग हैं। जो संस्कृति की अपनी विविध छटाओं से सुशोभित करते हैं। हिन्दू जीवन प्रणाली से कोई कटा नहीं, पृथक् नहीं। जैसे समुद्र की विविध लहरें समुद्र का आंचल नहीं छोड़तीं, उसी प्रकार ये दर्शन हिन्दू-संस्कृति से अभिन्न हैं।

'दूसरी ओर उपासना-शैली की पूर्णता भी हिन्दू संस्कृति की विशेषता है। अधिकारानुसार मंत्रयोग, हठयोग, लययोग, राजयोग एवं भक्ति की प्रक्रियाएँ मनुष्य को शक्तिपुंज से सिद्धि सम्पन्न बनाकर उसे अनन्तानन्द प्रदान करती हैं। निरन्तर जगत्कार्य में लगे लोगों को हिन्दू संस्कृति निष्काम कर्म का उपदेश उनके सम्पूर्ण कार्यक्षेत्र को ही उपासना का साधन बना देती है। और उनके भगवदर्पण बुद्धिपूर्वक कार्य कराते हुए उनके लिए लौकिक तथा पारलौकिक सर्वोन्नति का मार्ग प्रशस्त करती है। इनके अतिरिक्त यज्ञों,

महायज्ञों एवं विविध अनुष्ठानों द्वारा उपासना करके स्थूल जगत् के नियामक सूक्ष्म दैवी जगत् के पदाधिकारी विभिन्न देवी-देवताओं को प्रसन्न करके हिन्दू अपने वैयक्तिक, सामाजिक एवं विश्व कल्याण के लिए दैवी बल प्राप्त करने में समर्थ होता है।'

श्री एन.ए. निगम ने भारतीय संस्कृति के अमरत्व के कारणों पर प्रकाश डालते हुए लिखा है, 'भारतीय संस्कृति बहुत पुरानी है, मगर जीवन्त है। लगातार जारी रहना और अपने को नए ढंग से परिभाषित करना, इसके दो मुख्य गुण हैं। ये दोनों गुण भारतीय-संस्कृति को आज के बदले हुए विश्व में प्रासंगिक बनाते हैं। द्वन्द्ववाद और मिथक, दो ऐसे मूलभूत रूप हैं, जिनके द्वारा भारतीय-संस्कृति अपने आपको व्यक्त करती है। अनुभवातीत परिकल्पना के द्वारा भारतीय-संस्कृति प्रकृति की व्याख्या और प्रकृति के मिथकों की रचना करती है। अपनी द्वन्द्ववाद की क्रिया द्वारा भारतीय-संस्कृति जीवन और मृत्यु के रहस्य के भीतर तक पहुँचती है, ताकि उन महान् विचारों का आविष्कार किया जा सके, जो हमारी आस्था और कर्म को प्रभावित करती हैं। ये विचार इसके चिन्तन, जीवन और इतिहास को समन्वित करते हैं। भारतीय-संस्कृति सामान्य जनता की सामान्य चेतना में असाधारण व्यावहारिक प्रज्ञा की विरासत के रूप में जीवित रहती है।'

हिन्दू संस्कृति सृष्टि के आदिकाल से आज तक अपने मूल रूप में वर्तमान है। यथा-समय उसमें सुधार अवश्य हुए हैं। इस्लाम और ईसाई संस्कृति के अत्याचार, अनाचार तथा विनाशक प्रहार के बावजूद भी यह गर्व और गौरव से अपना मस्तक ऊँचा किए है। निकट भविष्य में संस्कृति की उदात्त विशेषताएँ ही इसे पुनः 'जगद्गुरु' पद पर प्रतिष्ठित करेंगी।

अपनी संस्कृति का अभिमान, करो सदा हिन्दू संतान।
सब आदर्शों की वह खान, नर-रत्नत्व करेगी दान॥

—मैथिलीशरण गुप्त

(370) आधुनिक-संस्कृति

संकेत बिंदु—(1) हिन्दू, मुस्लिम और पाश्चात्य संस्कृतियों का समन्वित रूप (2) उपभोक्तावाद का जन्म (3) आधुनिक संस्कृति के अलग-अलग रूप (4) अमर्यादित संग्रह प्रवृति (5) उपसंहार।

आधुनिक संस्कृति प्राचीन हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियों तथा पाश्चात्य संस्कृति का समन्वित रूप है। मर्यादाओं के मलबे में दबे जीवन-मूल्यों की विकृति का परिष्कृत रूप है। प्राचीन सांस्कृतिक मान्यताओं, आस्थाओं को नकारने का अन्तरराष्ट्रीय अभियान है।

आज संस्कृति के अर्थ ही बदल गए हैं। केवल नृत्य-संगीत को सांस्कृतिक कार्यक्रम की संज्ञा दी जाती है, जबकि संस्कृति संस्कारित करने वाले जीवन-मूल्यों की पहचान है और यम-नियम द्वारा जीवन जीने की विशिष्ट शैली है। यम अर्थात् सत्य, अहिंसा-अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि है तो सहिष्णुता, त्याग, संतोष, स्वावलम्बन आदि नियम हैं। पंच

यमों के प्रति आदर, नियमों के प्रति विश्वास और शीलयुक्त आचरण के कारण ही भारतीय संस्कृति जीवंत है।

सौन्दर्य को दृष्टि में रखकर जीवन के विषय में विचार करना, उसे अपनाना आधुनिक संस्कृति है। 'स्व' के अहम् की वृद्धि और निजीसुख की अभिलाषा आधुनिक संस्कृति के लक्षण हैं। धन और सम्पत्ति एवं विलासात्मक वस्तुओं का संग्रह आधुनिक संस्कृति के रक्षक हैं। निसर्ग, प्रकृति और राज्य के विधि-विधानों का तिरस्कार आधुनिक संस्कृति की नींव है। खाओ, पीओ और ऐश करो, आधुनिक संस्कृति का उद्देश्य है। इसे संस्कृति न कहकर विकृति कहना ही अधिक उपयुक्त होगा। सम् + कृति अर्थात् सम्यक् कृति और संस्कार इसमें हैं ही कहाँ?

खाओ, पिओ और ऐश करो की जीवन-शैली ने ही तो उपभोक्तावाद को जन्म दिया है। उपभोक्तावाद केवल भोग में विश्वास करता है जो मूल रूप में कृत्रिम आवश्यकताएं पैदा करता है और कृत्रिम आपूर्तियों द्वारा अतृप्ति की भावना जीवित होती है। अतृप्ति अपराध की जननी है। अपराध जीवन को पतन की ओर ले जाने के कारण बनते हैं।

आदिकाल से अजस्र प्रवाहित भारतीय-संस्कृति ने विरोधी आक्रामक संस्कृतियों के उपादेय तत्त्वों को ग्रहण कर अपने मूल-रूप को यथावत् रखा। उनकी चकाचौंध में डुबकी लगाई, किन्तु डूबी नहीं। अन्य जातियों से भी अनेक से तत्त्व ग्रहण किए। पाश्चात्य संस्कृति ने तो आर्य-संस्कृति (हिन्दू-संस्कृति) अर्थात् भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों पर ही ऐसा आक्रमण किया कि भारतीयों का 'ब्रेनवाश' ही कर दिया। अपनी प्राचीन चिन्तन-पद्धति का उपहास, अपने सांस्कृतिक परिवेश से घृणा, अपनी परम्पराओं के प्रति आक्रामक रवैया इसी ब्रेनवाश का परिणाम है।

श्री जयदत्त पंत के शब्दों में, हमारे तीर्थ अब पवित्रता के अर्थ को खोकर पर्यटन-व्यवसाय के लिए आकर्षण का केन्द्र कहे जाने लगे हैं। हमारी विविध संस्कृति समय-असमय प्रदर्शनी की चीज बन गई है। मनोरंजन सांस्कृतिक आयोजन का पर्याय बन गया है। सभ्यता और कला के उत्कर्ष की प्रतीक हमारी मूर्तियाँ आदि तस्करी का शिकार हो गईं हैं, जिनके आगे हमारी पिछली पीढ़ी तक के कोटिशः लोग धूप जलाकर माथा नवाते थे, वे विदेशों में करोड़पतियों के उद्यानों और उनके निजी संग्रहालयों की शोभा बन गईं हैं। हमारे देवी-देवताओं की कीमत लगाई गई और हमने उनको रात के अंधेरे में बेच दिया है।'

आधुनिक संस्कृति के मूलाधार सौन्दर्य-प्रेम ने जीवन के हर क्षेत्र में सौन्दर्य के दर्शन किए। कृत्रिम वैज्ञानिक उपकरणों से शरीर के सौन्दर्य को सम्पन्न किया, तो कलात्मकता से अपने निवास को सुसज्जित किया। कला-सौन्दर्य में अपनी रुचि प्रकट की। विलास और वासना के सौन्दर्य ने मानव को मदांध किया। धार्मिकता की असुन्दर रूढ़ियाँ टूटीं। असुन्दर परम्पराएं परिष्कृत हुईं।

धन और सम्पत्ति की अमर्यादित संग्रह-प्रवृत्ति आधुनिक-संस्कृति का अंग है, जो

भारतीय संस्कृति के 'त्याग' को दुत्कारती है, लांछित करती है। अवैध तथा भ्रष्टाचार के मार्गों ने संग्रह के दीप जलाए। दरिद्र, पीड़ित और नग्न जनता की सहायता-राशि में से धनापहरण कर रक्त चूसा। विभिन्न पदार्थों में मिलावट करके तिजोरियाँ भरीं। तस्करी करके अपनी अगली पीढ़ी को भी धनाढ्य बनाया। कानून के प्रहरियों को रिश्वत की मार से क्रीतदास बनाया। विधि-वेत्ताओं की सहायता से कानून का पोस्टमार्टम कर अपने पक्ष में निर्णय पलटवाए।

आधुनिक-संस्कृति का भारतीय-जीवन-संस्कारों पर प्रभाव नकारा नहीं जा सकता। आज हम बच्चों का जन्मदिन मोमबत्ती बुझाकर मनाते हैं। विवाह-संस्कार के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग 'पूजा-पाठ' को शीघ्रत: निपटवाना चाहते हैं। सप्त-पदी और प्रतिज्ञाओं का मजाक उड़ाते हैं। विवाह मुकुट का स्थान 'टोपी' ने ले लिया है।

आधुनिकता घर-घर में घुस गई। पाजामा-धोती नाइट सूट बन गए। पेंट-बुशर्ट और टाई परिधान बने हैं। हम जूते पहनकर मेज कुर्सी पर भोजन करने लगे हैं। माँ को मम्मा, पिता को पापा वा डैड तथा शेष लोगों को अंकिल-आंटी से सम्बोधित करने लगे हैं। माता का चरण-स्पर्श माँ के चुम्बन में बदला। पब्लिक स्कूलों में ही हमें ज्ञान के दर्शन होते हैं। पश्चिमी ढंग से रात्रि-क्लबों की धुंधली रोशनी में परमानन्द के दर्शन होते हैं। शराब और नशीली गोलियों में परम तत्त्व की प्राप्ति जान पड़ती है। करबद्ध नमस्कार का स्थान 'शेक हैंड' ने लिया है। टा-टा, बाई-बाई से परिजनों को बिदाई दी जाने लगी है।

आधुनिक संस्कृति अपनी स्वतंत्र-स्वच्छन्द प्रकृति से, इहलोक की सुख-शान्ति और ऐश्वर्य के सरलतम उपायों से, वर्तमान संसार की अधिकांश जनता को संस्कृत कर देना चाहती है, अपने रंग में रंग देना चाहती है। पाश्चात्य जीवन-मूल्यों, आदर्शों एवं परम्पराओं से भूमण्डल को आप्लावित कर देना चाहती है। संस्कृति में संस्कार देने की जो क्षमता है, वह आज है कहाँ? इसे संस्कृति न कहकर सभ्यता ही कहना चाहिए, वह भी तथाकथित विशेषण के साथ।

(371) बढ़ती सभ्यता, सिकुड़ते वन

संकेत बिंदु—(1) शीर्षक का अर्थ (2) उद्योगों की प्रगति और वनों का विनाश (3) सिकुड़ते वनों से अनेक हानियाँ (4) सिकुड़ते वन सामूहिक आयामों में खिंचाव (5) उपसंहार।

'बढ़ती सभ्यता' समाज की आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक सिद्धियों की प्रगति का द्योतक है, तो 'सिकुड़ते वन' जंगल, आवास-स्थान तथा बाग-बगीचों के विस्तार की कमी के प्रतीक हैं। 'बढ़ती सभ्यता' मानव-समाज की बाह्य और भौतिक उपलब्धियों का मापक है, तो 'सिकुड़ते वन' सामूहिक आयाम में खिंचाव के परिचायक हैं। एक ओर विनम्रता, सुशीलता और कुलीनता की ओर समाज का झुकाव 'बढ़ती सभ्यता' कहलाती है, तो दूसरी ओर प्रकाश किरणों का अवरोध 'सिकुड़ते वन' की संज्ञा है।

भारतीय सभ्यता आज प्रगति की दिशा में अग्रसर है। ग्राम और नगरों का रूपपरिवर्तन हो रहा है। उनके सौन्दर्य को निखारा जा रहा है। विद्युत् का प्रकाश सर्वत्र चकाचौंध उत्पन्न कर रहा है। परिवहन साधनों का विकास हो रहा है। तीव्रगामी परिवहन साधन समय की बचत कर रहे हैं। यातायात के अनेकविध साधन उपलब्ध हैं। निवास के लिए सुदृढ़ मकान, परिधान के लिए ऋतु अनुकूल बढ़िया से बढ़िया वस्त्र तथा उदर-पूर्ति के लिए सभी प्रकार के सुस्वादु खाद्य-पदार्थों की वृद्धि हो रही है।

देश में बढ़ते उद्योग सभ्यता की प्रगति के सोपान हैं। भौतिक उपलब्धियाँ राष्ट्र की सुख-समृद्धि की कुंजी सिद्ध हो रही हैं। सरल-समृद्ध संचार-व्यवस्था को प्रगति पथ पर अग्रसर कर रही है, बढ़ती शिक्षा ने मानव में सुसंस्कृत भाव को जागृत किया। नारी पर्दे से बाहर निकलकर प्रगतिशील बन पुरुष से कंधे से कंधा मिलाने लगी है।

नागर सभ्यता बढ़ी, किन्तु वन सिकुड़ते गए। बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकताओं ने उपवन और वन की भूमि को हरियाली से वंचित होने को विवश किया। भवनों के निर्माण के लिए अतिरिक्त भूमि चाहिए। अतिरिक्त भूमि शान्त वन-प्रदेश से ही प्राप्त हो सकती थी। दूसरे, ऊर्जा की आवश्यकता दिन-प्रतिदिन बढ़ती गई। परिणामत: पेड़ कटने लगे। कटते पेड़ इमारती लकड़ी और ईंधन का अकाल उत्पन्न कर रहे हैं। सिकुड़ते वनों से देश की हरियाली घटी, मरुस्थल का फैलाव बढ़ा। वन मिट्टी के कटाव को रोकते हैं। वह अब कम मात्रा में रुकता है। मैदानी वनों के कारण हवा का वेग रुकता था और पहाड़ी वनों के कारण वर्षा होती थी और वर्षा-जल का प्रभाव भी कम होता था, वह सिकुड़ते वनों के कारण अप्रभावित रहने लगे।

सिकुड़ते वनों का ही प्रभाव है कि कागज-निर्माण के लिए बाँस की लकड़ी और घास की कमी पड़ने लगी और देश में कागज की कमी हो गई। फलत: विदेशों से कागज आयात करने के लिए सरकार को बाध्य होना पड़ा। लाख और तारपीन भी वनों से मिलता है, जो खिलौने बनाने और रंग में मिलाने के काम आता है। सिकुड़ते वन लाख और तारपीन उद्योग को चौपट कर रहे हैं।

वनों से जड़ी-बूटियाँ मिलती हैं, जिनसे दवाइयाँ बनती हैं। खैर पेड़ की लकड़ी से कत्था और तेन्दू वृक्ष के पत्तों से बीड़ी बनती हैं। नीलगिरि के वनों से रबड़ मिलता है। सिकुड़ते वनों के कारण वनस्पतियों की अनेक प्रजातियों के विनाश से शुद्ध दवाइयों के अभाव में जीवन और जगत्, दोनों के चौपट हो जाने का भय है।

वन वर्षा के निमंत्रणदाता तथा नियंत्रक हैं। सिकुड़ते वनों ने वर्षा का निमंत्रण वापिस ले लिया तथा नियंत्रण खो दिया। परिणामत: वर्षा के अभाव में देश कहीं सूखे से पीड़ित है, तो कहीं अनियंत्रित, असामयिक वर्षा हरी-भरी खेती को चौपट कर रही है। उस प्रकार देश अकाल का ग्रास बन रहा है।

'सिकुड़ते वन' का अर्थ है सामूहिक आयामों में खिंचाव। विकासशील सभ्यता का यह दुर्गुण सामूहिक मान्यताओं को चहुँ ओर से विशृंखलित करने के लिए कटिबद्ध है।

समाज जाति-उपजाति तथा ऊँच-नीच वर्गों में विभक्त होता जा रहा है। धार्मिक दृष्टि में मत-मतांतरों ने अनेक सम्प्रदायों का निर्माण कर दिया है। पृथक्ता की असहिष्णुता ने समाज को डस लिया। सिक्ख-विद्रोह, हिन्दू-मुस्लिम-दंगे सामूहिक मान्यताओं में खिंचाव के परिणाम ही तो हैं। राजनीतिक दल पार्टी-दर पार्टी में टूट रहे हैं, परिवार सामूहिक मान्यताओं की लक्ष्मण-रेखा में बँधना नहीं चाहते, इसलिए टूट रहे हैं। शिक्षा-जगत् राजनीति की चौखट पर सिर मार-मार कर बिखर रहा है।

देश में सदा ही मर्यादा, परम्परा, सभ्यता और संस्कृति के प्रहरी, संरक्षक-प्रवर्तक और नियामक रहे हैं और आज भी हैं। अन्तर इतना ही है कि 'जनप्रतिनिधियों की कार्य-पद्धति और रवैये ने आम जनता को एक के बाद एक निरन्तर अनेक झटके दिए, जिससे उसकी आस्थाओं को, उसके विश्वास और आशाओं को गहरे आघात लगे।' एक ओर देश आर्थिक प्रगति और विकास की ओर बढ़ता रहा, दूसरी ओर गरीबी की रेखा के नीचे गिरते जाने वाली जनसंख्या का प्रतिशत बढ़ता रहा। एक और दुष्परिणाम सामने आया—स्वदेश का धनिक वर्ग शक्तिशाली होता गया। उसने न केवल अर्थतंत्र पर, अपितु शासन पर भी अपना कब्जा जमा रखा है। शासकीय बहानों और नौकरशाही की दलीलों ने इसका औचित्य सिद्ध करने के लिए कोई कसर न छोड़ी। इस प्रकार देश का शोषण जीवन-मूल्यों के प्रकाश की खोज में भटक रहा है।'

आज समाज में सभ्यता के पर्याय विनम्रता, सुशीलता और कुलीनता बढ़ रही हैं, तो दूसरी ओर व्यक्ति-बोध के अंकुर, अहम् का झूठा अभिमान, परम्पराओं और मान्यताओं के प्रति विकर्षण बढ़कर जीवन के लहलहाते बाग-बगीचे, हरियाली-प्रदाता वनों तथा सामूहिक पारिवारिकता को सिकुड़ते-सिमटने के लिए विवश कर रहा है।

•

(372) भारतीय वेशभूषा पर पाश्चात्य प्रभाव

संकेत बिंदु—(1) युवाओं में आकर्षक दिखने की लालसा (2) विदेशों में भारतीय परिधानों की माँग (3) पश्चिमी सभ्यता की अश्लीलता का अनुसरण (4) पाश्चात्य वेशभूषा पर अंकुश (5) उपसंहार।

'है प्रीत जहाँ की रीत सदा, मैं गीत वहाँ के गाता हूँ। पूरब का रहने वाला हूँ, पूरब के गीत सुनाता हूँ' यह गीत मनोजकुमार की फिल्म 'पूरब और पश्चिम' का है, जिसमें पूरब पर पश्चिम के प्रभाव को स्पष्ट रूप से दर्शाया गया है। आज प्रत्येक युबक और युवती में आकर्षक दिखने की लालसा घर कर गयी है और इस बात की प्रतिस्पर्धा महानगरों में ही नहीं छोटे नगरों और यहाँ तक कस्बे और ग्रामों में भी देखने को मिलती है। आज भारतीय वेशभूषा पर पश्चिम का प्रभाव इतना बढ़ गया है कि कभी-कभी तो किसी युवती को इतने कम कपड़े पहने देखकर देखने वाले का सर स्वयं लज्जा से झुक जाता है।

इस बदलते परिवेश पर कटाक्ष करते हुए एक गीतकार ने अपने विचार व्यक्त करते

हुए कहा है कि—'**तंग पेन्ट पतली टाँगें, लगती हैं सिगरेट जैसी**' समय-समय पर भारतीय वेशभूषा पर पड़ने वाले पाश्चात्य प्रभाव पर रचनाकारों, बुद्धिजीवियों ने कटाक्ष और व्यंग्य भी किये मगर सुरक्षा की भाँति यह प्रभाव देश में बढ़ता ही गया। आज की युवा पीढ़ी के फैशन और पहनावे को देख लगता तो यही है कि शायद भारत में कपड़े के कारखाने ही बन्द हो गये हैं, मगर ऐसा नहीं है, कपड़ा तो बन रहा है लेकिन तन को नंगा रखने का एक चलन-सा हो गया है। इस दशा पर कवि मनोहर लाल 'रत्नम्' ने बड़े तीखे व्यंग्य करते हुए अपने गीत में कहा है—

कहीं फटे चिथड़ों में यौवन, कहीं अमीरी का नंगापन।
कहीं रूप के टूटे दर्पण, कहीं दर्पणों का टूटापन॥

विडम्बना यह है कि हमारे देश का युवा पश्चिम की नकल कर रहा है और पश्चिम वाले भारतीय सभ्यता और संस्कृति को सर्वोपरि मानकर स्वीकार कर रहे हैं। अभी महानगर दिल्ली में कुछ जापान के लोगों से भेंट हुई तो आश्चर्य इस बात का हुआ कि जापानी युवतियों ने शुद्ध भारतीय परिधान अर्थात् साड़ी पहन रखी थी और पुरुषों ने कुर्त्ता-पायजामा। देखकर विचित्र लगा और बात करने पर एक जापानी युवक ने बताया कि आपके यहाँ का कुर्ता-पायजामा बड़ा आरामदायक है और युवती बोली जब से मैंने इण्डिया में आकर साड़ी पहनी है, मुझे पेन्ट और शर्ट अब अच्छी नहीं लग रही है। परिवर्तन का अन्तर जो आसानी से समझ में आने वाला है कि विदेशी युवक-युवतियाँ भारतीय परिधान को सर्वश्रेष्ठ बता रहे हैं और भारतीय पश्चिमी सभ्यता में रंग जाना चाहते है। फिल्म निर्माता मनोजकुमार ने अपनी एक फिल्म में इसकी चर्चा भी की है कि, 'जब फैशन इतना बढ़ता गया, और कपड़ा तन से हटता गया, हम देखकर भी अन्धे बने रहना चाहते हैं और सुनकर भी बहरे होने का हम अभिनय करते हैं।

हम अपनी सभ्यता और संस्कृति को भूल जाते हैं, हम भूल जाते हैं कि सूर्य सदैव पूरब से उदय होकर पश्चिम में अस्त होता है, लेकिन हम प्रकृति के सारे नियम एक ओर करके पता नहीं क्यों पश्चिमी सभ्यता में रंग जाना चाहते हैं। देश में जहाँ एक ओर भारत को विश्व-गुरु बनाये जाने के सपने को साकार करने का स्वप्न देखा जा रहा है, वहीं देश की युवा पीढ़ी वेशभूषा में पश्चिम का अनुसरण कर नंगेपन को बढ़ावा देने में अपने गौरव का अनुभव करने में लगी है।

जब युवक या युवती भड़काऊ कपड़े पहनकर बाहर खुली सड़कों पर दौड़ेंगे तो अनुमान लगाया जा सकता है कि दुराचार को भी बढ़ावा मिलेगा, जिसके साथ-साथ देश में अपराध का ग्राफ भी बढ़ेगा। फैशन उतना ही अच्छा लगता है, जिसे समाज स्वीकार करे। जो कपड़ा आलोचना का कारण बने उसका त्याग करना ही अपनी सुरक्षा के लिए आवश्यक है। वैसे तो हर प्राणी संसार में नंगा ही जन्म लेता है और युवा होने पर नँगेपन का प्रदर्शन; देश व समाज को ही नंगा करने के समान है। नर हो या नारी, सबको चाहिए कि पहनावा ऐसा पहना जाये जिससे किसी को न तो आपत्ति हो और न स्वयं लज्जित होना पड़े।

जब से भारतीय वेशभूषा पर पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव पड़ा है तब से हमारे देश में फैशन शो आयोजित होने लगे हैं, यही नहीं देश में फिल्मों और एलबम के माध्यम से भी जो नंगापन पर परोसा जा रहा है वह भी युवा पीढ़ी को पथभ्रष्ट बनाने में सहायक होते हैं। भारतीय वेशभूषा पर पाश्चात्य प्रभाव को जितनी जल्दी हो सके इस पर अंकुश लगना चाहिए अन्यथा आने वाली पीढ़ी का भविष्य भी नंगेपन का अभ्यासी होकर समाज को गंदला कर देगा। भारतीय वेशभूषा पर पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव को देखकर एक कवि ने कितनी सुन्दर पंक्तियाँ युवा पीढ़ी को समर्पित की हैं, ताकि उनकी आँख खुल सकें और वह अपने तन को पूरी तरह से ढकने की पहल कर सकें—

कभी यह पैन्ट सिकुड़ती है, कभी ढीली हो जाती है।
लड़कियाँ बन जाती हैं मर्द, मर्द लड़की बन जाते हैं॥
बढ़ाकर सर के लम्बे बाल, कोई तो हिप्पी बन बैठा।
बढ़ाकर यह मूँछों की पूँछ, कोई है जिप्सी बन बैठा॥
पहनते हैं ऐसे कपड़े, लाज कपड़ों को आती है।
जवानी बीच चौराहे, हाय निगौड़ी मसली जाती है॥

भारतीय सभ्यता और संस्कृति की रक्षा हेतु अब हमें भारतीय वेशभूषा पर छा रहे पाश्चात्य के प्रभाव को हटाने का समय आ गया है और इसके लिए सार्थक पहल करने के लिए देश के युवा वर्ग को ही आने आने की आवश्यकता होगी।

(373) राजनीति बनाम न्यायालय / न्यायालय में राजनीति का हस्तक्षेप/ गंदली राजनीति और न्यायालय

संकेत बिंदु—(1) राजनीति से प्रेरित न्यायलय (2) राजनीति और न्यायलय का मिश्रण (3) दोनों एक ही थाली के चट्टे-बट्टे (4) राजनीति और न्यायलय दोनों भ्रष्ट (5) उपसंहार।

आज हमारे देश की राजनीति द्रोपदी के समान असहाय हो गयी है और बाहुबली दागी और बागी नेताओं के चंगुल में बेचारी राजनीति अपना चीर बचाने के लिए छटपटा रही है। रही न्याय की बात, तो न्याय की देवी के हाथ में एक तराजू है और उसकी आँख पर आज़ादी से पहले से ही एक काली पट्टी बँधी है जो आज के परिवेश ने गांधारी का प्रतीक है। वैसे न्यायाधीश के ठीक पीछे 'सत्यमेव जयते' का वाक्य लगा है और इस वाक्य के नीचे ही हमेशा राजनीति के गंदले प्रभाव के कारण झूठ का बोलबाला देश में होता देखा गया है।

अदालतों में काले कोट पर लगा सफेद बैण्ड इस बात का खुला प्रतीक है कि अदालतों में न्याय केवल 'उड़द पर लगी सफेदी के बराबर होता है।' यदि ऐसा नहीं है तो राजनीति

से प्रेरित होकर देश के हाईकोर्ट और सुप्रीमकोर्ट द्वारा जनता पर आदेश क्यों लादे जा रहे हैं ? आज देश में प्रत्येक कार्य कोर्ट के आर्डर से ही सम्पन्न हो रहा है।

आज न्यायालय में राजनीति और राजनीति में न्यायालय आपस में इतना घुलमिल गया है कि अन्तर कर पाना कठिन है कि आदेश न्यायालय का है या राजनीति का ? अब तब राजनीति ने अपने वोट बैंक को सुरक्षित रखने के लिए न्यायालय को आगे कर जनता को परेशान किया है, उदाहरण के लिए—'हेलमेट' का स्कूटर चालक और मोटर साइकिल चालक को पहनना अनिवार्य है साथ ही पीछे बैठी सवारी को भी हैलमेट पहनना अनिवार्य है, यह आदेश कोर्ट द्वारा जारी किया गया।

प्रदूषण समस्या के नाम पर दिल्ली में 'सी. एन. जी.' वाहनों के लिए अनिवार्य बनाना भी कोर्ट का आदेश था। कुछ वाहन मालिक सड़कों पर भी आये, हड़तालें भी हुईं, नेताओं के पास भी लोग फरियाद लेकर पहुँचे, मगर नेताओं ने भी अदालत का आदेश कहकर मगरमच्छ जैसे आँसू बहा दिये। आदेश का भी पालन हो गया और नेताओं का वोट बैंक भी सुरक्षित रहा, यह राजनीति बनाम न्यायालय नहीं और क्या कहा जायेगा ? बेंकट हाल नेताओं के इशारे पर बनते हैं, भू-माफिया नेताओं के पालतू होते हैं, मगर इन भू-माफियों ने नेताओं को हिस्सा देना बन्द कर दिया तो राजनैतिक प्रभाव से अदालत के आदेश आ गये कि बेंकट हाल में शादियाँ और अन्य कार्यक्रम वहीं सम्पन्न हो सकेंगे जहाँ साठ फुट चौड़ी सड़क होगी, परिणामस्वरूप इस प्रकार के समारोह स्थल बन्द कर दिये गये। अदालत के जजों ने आदेश जारी करते समय यह क्यों न ध्यान दिया कि दिल्ली के अनेक प्रमुख बाजारों का अन्य अनेक प्रमुख स्थानों पर सड़क साठ तो क्या तीस भी नहीं है, उस संकरी सड़क के बारे में कोई आदेश क्यों नहीं आया ?

रिहायशी इलाकों में व्यापारिक गतिविधियों को बन्द करने के आदेश भी न्यायालय ने दिये। प्रभावित लोग जब अपने क्षेत्र के पक्ष और विपक्ष के नेताओं के पास गये तो नेताओं ने अपने हाथ खड़े कर यह कहा कि यह तो कोर्ट का आदेश है, हम कुछ नहीं कर सकते। नेताओं की यह दोहरी चाल जनता को केवल परेशान करने के लिए है। नेता और राजनीति को तो केवल चुनाव के समय ही जनता का ध्यान आता है। चुनाव सम्पन्न होने के पश्चात् तो राजनीति और न्यायालय लगभग एक ही थाली के चट्टे-बट्टे बने दिखायी देते हैं। जैसे कहा जाता है कि, "वक्त पड़ने पर गधे को भी बाप बनाया जाता है और वक्त निकलने पर तो बाप भी गधा बन जाता है, आज के नेताओं की यही परिभाषा सामने आती है।"

सी. बी. आई, आयकर के अधिकारियों द्वारा बड़े-बड़े नेताओं के घरों, कार्यालयों, फार्म हाऊसों में छापे मारे जाते हैं तो लाखों की बेनाम सम्पत्ति, आभूषण, नकदी सामने आती है। लेकिन राजनीति तब न्यायालय पर प्रभावी हो जाती है और परिणाम 'ढाक के तीन पात' अर्थात् 'नम्बर दो' की इस प्रकार की कमाई के लिए शायद ही किसी नेता को दण्ड दिया हो सरकार ने, क्योंकि 'सैंया भये कोतवाल फिर डर काहे का' वाली कहावत चरितार्थ हो जाया करती है। वैसे भी न्यायालय हो या राजनीति यहाँ 'हमाम में सभी नंगे

हैं।' राजनीति के बिना न्याय और न्याय के बिना राजनीति हमारे भारत में तो चल ही नहीं सकती; क्योंकि कानून अंग्रेज़ी सरकार का बनाया हुआ है और राजनीति में शुद्ध भारतीय लोग अपना पैर जमाये बैठे हैं। हमारे देश का सबसे बड़ा उदाहरण यह भी है कि हमारे देश के मंत्रियों और नेताओं पर अनेक घोटालों के आरोप लगे, जिनमें चारा घोटाला, शेयर घोटाला, सूटकेस घोटाला, चीनी घोटाला, ताबूत घोटाला, तहलका, तेलगी और न जाने कौन-कौन-सा घोटाला देश में हुआ, आयोग बैठे, रिपोर्ट आथी, दूध का दूध, पानी का पानी न हो सका, क्योंकि राजनीति बनाम न्याय यही तो परिभाषित करता है। कवि मनोहर लाल 'रत्नम्' इस सन्दर्भ में अपनी कविता में कहते हैं—

चोर लुटेरे आ बैठे हैं, सत्ता के सिंहासन पर,
और डाकूओं का डेरा, सबसे ऊँचे आसन पर।
देश रसातल में जाता, यहाँ घोटाले बढ़ते हैं—
हम हैं सब मिट्टी के माधो, सच कहने से डरते हैं॥

न्याय की देवी की आँख पर काली पट्टी सत्यमेव नयते का बदलता अर्थ, अपराधी को खुली छूट, देश की पुलिस असमर्थ। जिस देश में इतनी विशेषताएँ हों वहाँ भला न्यायालय में राजनीति का खुला प्रवेश नहीं होगा तो क्या होगा? देश की जनता को तो केवल भगवान् भरोसे से ही रहना चाहिए क्योंकि भारत देश की न तो राजनीति पवित्र है और न ही न्याय सच्चा मिल पाता है।

हिन्दी

(374) राष्ट्रभाषा हिन्दी

संकेत बिंदु—(1) राष्ट्र की आत्मा (2) संविधान में हिंदी की स्थिति (3) हिंदी को उचित सम्मान नहीं (4) हिंदी के विरुद्ध षडयंत्र (5) उपसंहार।

राष्ट्रभाषा हिन्दी राष्ट्र की आत्मा है। भारत की एकरूपता की धुरी है। भारत की संस्कृति और सभ्यता की मूल चेतना को सूक्ष्मता से अभिव्यक्त करने का माध्यम है। राष्ट्रीय विचारों का कोश है। भारतीयता का प्रतीक है।

स्वतन्त्र भारत के संविधान-निर्माण के समय हिन्दी को राष्ट्र-भाषा घोषित करवाने के लिए असंख्य हिन्दी प्रेमियों और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के स्वयंसेवकों ने प्रदर्शन किए, लाठियों का सामना किया, किन्तु भारत की आजादी के लिए सर्वस्व लुटाने वाले कांग्रेसी नेताओं की राजनीति को साँप सूँघ गया। परतन्त्रता-काल में हिन्दी के हिमायती कांग्रेसी नेता राजनीति के चक्कर में फँस गए। फलतः संविधान के अनुच्छेद 343 में लिखा गया—

'संघ की सरकारी भाषा देवनागरी लिपि में हिन्दी होगी और संघ के सरकारी प्रयोजनों के लिए भारतीय अंकों का अन्तरराष्ट्रीय रूप होगा', किन्तु अधिनियम के खंड (2) में लिखा गया 'इस संविधान के लागू होने के समय से 15 वर्ष की अवधि तक संघ के उन सभी प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी का प्रयोग होता रहेगा, जिसके लिए इसके लागू होने से तुरन्त पूर्व होता था।' अनुच्छेद की धारा (3) में व्यवस्था की गई—'संसद् उक्त पन्द्रह वर्ष की कालावधि के पश्चात् विधि द्वारा—(क) अंग्रेजी भाषा का (अथवा) अंकों के देवनागरी रूप का ऐसे प्रयोजन के लिए प्रयोग उपबन्धित कर सकेगी जैसे कि ऐसी विधि में उल्लिखित हों।

इसके साथ ही अनुच्छेद (1) के अधीन संसद् की कार्यवाही हिन्दी अथवा अंग्रेजी में सम्पन्न होगी। 26 जनवरी, 1965 के पश्चात् संसद् की कार्यवाही केवल हिन्दी (और विशेष मामलों में मातृभाषा) में ही निस्पादित होगी, बशर्ते संसद् कानून बनाकर कोई अन्यथा व्यवस्था न करे।

चाहिए तो यह था कि संविधान में हिन्दी को ही राष्ट्रभाषा माना जाता। अंग्रेजी के सहयोग की बात ही नहीं आनी चाहिए थी। कारण, राष्ट्रभाषा राष्ट्र की आत्मा का प्रतीक है। हमारे साथ स्वतन्त्र होने वाले पाकिस्तान ने उर्दू को राष्ट्रभाषा घोषित कर दिया। तुर्की के जनप्रिय नेता कमाल पाशा ने स्वतंत्र होने के तत्काल पश्चात् वहाँ तुर्की को राष्ट्रभाषा बना दिया। इतना ही नहीं अपने नाम के साथ 'पाशा' विदेशी शब्द हटाकर अपना नाम कमाल अतार्तुक कर दिया। हमारे पश्चात् स्वतन्त्र होने वाले अनेक राष्ट्रों ने अपनी-अपनी राष्ट्रभाषा की घोषणा कर दी, किन्तु भारत के कर्णधार 'सबको खुश करने' की प्रणाली पर चलते हैं। सबको खुश करने का अर्थ सबको नाराज करना होता है। वही हुआ।

राजभाषा अधिनियम 1963 के अन्तर्गत हिन्दी के साथ अंग्रेजी के प्रयोग को सदैव के लिए प्रयोगशील बना दिया गया। संसद् में भी हिन्दी के साथ अंग्रेजी के प्रयोग को अनुमति मिल गई और कहा गया कि जब तक भारत का एक भी राज्य हिन्दी का विरोध करेगा, हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर सिंहासनारूढ़ नहीं किया जाएगा।

देश के हिन्दी हिमायतियों में नेहरू के विरुद्ध बात कहने का साहस ही नहीं था। राष्ट्रकवि, राष्ट्रीय लेखक, राष्ट्रीय झंडा फहराने वाले हिन्दी-लेखकों, हिन्दी-संस्थाओं के संचालकों को काठ मार गया। वे किंकर्तव्यविमूढ़ हो गए। वे नेहरू जी की भाषा में बोलने लगे, उन्हीं के अनुरूप विचार प्रकट करने लगे। हिन्दी-हितैषियों को माँ-भारती को पददलित होते देखकर भी लज्जा न आई। हाँ, एकमात्र कांग्रेसी, माँ-भारती का सच्चा सपूत सेठ गोविन्ददास ही इस अग्नि-परीक्षा में सफल हुआ। उसने डंके की चोट सीना तान कर राजभाषा अधिनियम 1963 के विरुद्ध मत दिया। वे संसद् में दहाड़ उठे, 'भले ही मुझे कांग्रेस छोड़नी पड़े, पर मैं आँखों देखा विष नहीं खा सकता।'

लोकतन्त्र के महान् समर्थक पण्डित जवाहरलाल नेहरू द्वारा हिन्दी को सिंहासनारूढ़ करने की अन्तिम शर्त लोकतन्त्र का अनादर है, जनतन्त्र के आधारभूत नियमों के विरुद्ध

है, प्रजातंत्र का गला घोंटना है। लोकतन्त्र बहुमत की बात करता है, सबके साक्ष्य की नहीं। न सारे प्रांत कभी हिन्दी को चाहेंगे, न हिन्दी सिंहासनारूढ़ होगी। न नौ मन तेल होगा, न राधा नाचेगी। परिणाम स्पष्ट है—'रानी भई अब दासी, दासी अब महारानी थी।' वस्तुत: वह शर्त अनन्तकाल तक अंग्रेजी का वर्चस्व बनाए रखने का षड्यंत्र थी।

कांग्रेसी शासकों ने अंग्रेजों से सीखा था—'फूट डालो, राज्य करो।' यह सिद्धान्त शासन-संचालन की अचूक औषध है। भाषा के प्रश्न पर उत्तर-दक्षिण की बात खड़ी करके भारतीय समाज को विघटित कर दिया गया। दक्षिण संस्कृत भाषा, विद्वत्ता और अनुसंधान का गढ़ रहा है। हिन्दू-संस्कृति और सभ्यता, वैदिक-साहित्य और सूत्रों का अध्ययन और व्याख्या करने की क्षमता दक्षिण की बपौती रही है। दक्षिण के देवालय आज भी हिन्दू-संस्कृति की पताका फहरा रहे हैं। आज भी वेदों के पण्डित तथा संस्कृतविद्वान् उत्तर की अपेक्षा दक्षिण भारत में अधिक हैं। वही दक्षिण संस्कृत की पुत्री हिन्दी का विरोध करे, यह बात समझ से परे है। हाँ, राजनीति द्वारा आरोपित विष-वृक्ष फूट के फल तो लाएगा ही।

हिन्दी कहने को राष्ट्रभाषा है, किन्तु प्रांतीय भाषाएँ भी उसके इस अधिकार की अधिकारिणी बना दी गई हैं। अंग्रेजी-साम्राज्य की गुलामी की प्रतीक अंग्रेजी आज भी भारत पर राज्य करती है। राज्य-कार्यों में उसका ही वर्चस्व है।

(375) स्वतन्त्र भारत में अंग्रेजी का मोह

संकेत बिंदु—(1) आंग्ल-संस्कृति के प्रति आकर्षण का परिचायक (2) विश्व की बड़ी जनसंख्या द्वारा बोली जाने वाली (3) अंग्रेजी मोह के प्रमुख कारण (4) जीविका अर्जन के लिए अनिवार्य (5) उपसंहार।

स्वतन्त्र भारत में अंग्रेजी का मोह आंग्ल सभ्यता तथा संस्कृति के प्रति आकर्षण का परिचायक है। जीवन और जगत् में सफलता की कुञ्जी है। व्यक्तित्व की महत्ता का द्योतक है। अहं का वर्धक है। गर्व का कारण है। गौरव का प्रतीक है। ज्ञान-विज्ञान के द्वार पर दस्तक है और है विश्व से सम्पर्क का एकमात्र विश्वसनीय माध्यम।

अंग्रेजी भाषा का ज्ञान विशाल क्षेत्र का वातायन है। अंग्रेजी साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। अंग्रेजी लेखकों का चिन्तन बहुत प्रखर है। नये-नये विषयों में अन्वेषण की प्रवृत्ति उनका स्वभाव है। फलत: उनके ज्ञान-विज्ञान के अपार कोश, साहित्य की अमूल्य कृतियाँ, कला की अनुपम उपलब्धियाँ विश्व-मानव के ज्ञान प्रदाता हैं। आज का मानव अंग्रेजी ज्ञान के बिना अधूरा है, अपंग है। इसलिए अंग्रेजी के प्रति मोह स्वाभाविक है।

अंग्रेजी भाषा विश्व की बहुत बड़ी जनसंख्या द्वारा बोली जाने वाली भाषा है। यहाँ तक कि संयुक्त-राष्ट्र संघ की प्रमुख भाषा है। अत: विश्व के देशों से सम्पर्क और सम्बन्ध का माध्यम है। आज कोई भी देश विश्व से सम्बन्ध विच्छेद कर जीवित नहीं रह सकता। अत: विश्व सम्बन्धों के लिए अंग्रेजी के प्रति मोह स्वाभाविक है।

भारत में अंग्रेजी-मोह के चार प्रमुख कारण बने। एक, देश की राजकीय कार्य-व्यवस्था अंग्रेजी में संचालित थी। अत: अंग्रेजी मानसिकता का वर्चस्व था। वे दैनिक व्यवहार में हिन्दी को अपनाने के लिए तैयार न थे। सरकारी कार्यालयों के बाबू चाहे वे बड़े-बड़े अधिकारी हों या मध्यम व निम्न श्रेणी के लिपिक अभ्यस्त भाषा को छोड़ने के लिए तत्पर न थे।

दूसरे, देश-संचालन के विशेष पदों और पद्धतियों पर अहिन्दी भाषी अधिकारियों का अधिकार था। उन्हें हिन्दी तथा उत्तर भारतीय जीवन-पद्धति से घृणा थी। अत: उन्होंने छाती ठोककर हिन्दी से लोहा लिया, जिसमें वे सफल भी हो गए।

तीसरे, राजनीतिज्ञों को हिन्दी-संचालन में उत्तर-दक्षिण का बँटवारा दिखाई देने लगा। उन्होंने 'हिन्दी-लादने' जैसी गालियाँ देना शुरू कर दिया। उन्हें हिन्दी में साम्प्रदायिकता की बू आने लगी। इस मानसिकता ने हिन्दी के समर्थकों को अंग्रेजी के गुणगान गाने को बाध्य किया। अपने बच्चों को अर्थात् आगे आने वाली पीढ़ी को कॉन्वेण्ट की दीक्षा देकर उनमें जन्म से ही अंग्रेजी के प्रति मोह उत्पन्न कर दिया।

चौथे, रही-सही कसर पूरी कर दी लोकतन्त्र के देवता पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने। पण्डित नेहरू ने मृत्यु से पूर्व अंग्रेजी के सिंहासन की नींव सुदृढ़ कर दी। अंग्रेजी को यह 'पावर' (शक्ति) दे दी है कि भारत का एक भी राज्य जब तक हिन्दी को नहीं चाहेगा, वह राज्यभाषा नहीं बन सकती। लोकतन्त्र में बहुमत के सिद्धान्त की सरेआम हत्या कर दी गई।

पापी पेट के लिए जीविका चाहिए। जीविका अर्जित करनी है तो अंग्रेजी का ज्ञान अनिवार्य रूप से चाहिए। राज-काज की भाषा अंग्रेजी है। अत: नौकरी के लिए इसका ज्ञान अनिवार्य है। व्यापारवर्धन करना है, अंग्रेजी जरूर चाहिए। नौकरी में तरक्की करनी है, अंग्रेजी चाहिए। अफसर से काम निकालना है, अंग्रेजी बोलिए, लिखिए। आई.सी.ए., पी.सी.ए. पी.एस.सी. की प्रतियोगिता में बैठना है तो अंग्रेजी अवश्य आनी चाहिए। संघलोक सेवा आयोग (U.P.S.C.) के प्रश्न-पत्र और साक्षात्कार का माध्यम केवल मात्र अंग्रेजी जो है। अत: अंग्रेजी भारत में उदरपूर्ति का साधन बनी, उन्नति का माध्यम बनी। मोह का कारण बनी।

अंग्रेजी का मोह नस-नस में व्याप्त हुआ, रग-रग में संचारित हुआ। अंग्रेजी शैली के नृत्य-संगीत तथा यौन-सम्बन्धों के पंखों पर तैरते हुए आनन्द-लोक दिखाई देने लगा क्लब-सभ्यता में परमानन्द की प्राप्ति जान पड़ने लगी। फलत: अंग्रेजी का मोह सेक्स (काम-वासना) असंतुष्टि का ज्वार-भाटा बनकर छा गया और जो देश की तरुणाई को अज्ञान, भ्रान्ति तथा दु:ख के सागर में डूबो रहा है।

राजकीय स्तर पर अंग्रेजी का प्रचार परोक्ष रूप में जनता को मोहग्रस्त कर रहा है। अंग्रेजी सीखने, बोलचाल की भाषा बनाने तथा जीवन में अपनाने के लिए प्रेरित कर रहा है। दूरदर्शन के महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम, ज्ञान-विज्ञान की ज्ञानवर्धक वार्त्ताओं, भारत और विश्व की आश्चर्यजनक उपलब्धियों का प्रसारण अंग्रेजी में ही होता है।

इतना ही नहीं, एपीसोड हिन्दी में होगा, किन्तु उसके कलाकार, निर्माता और प्रबंधकों की नामावली अंग्रेजी में होगी। हिन्दी-समाचारों के पहले बजने वाली टून का पहला भाग News दिखाकर दूसरे भाग का अंत 'समाचार' से करेंगे। मानों वे हिन्दी भाषियों को बता रहे हैं कि News प्रस्तुत है, जिसे हिन्दी में समाचार कहते हैं। दूरदर्शन पर अभिनेता-अभिनेत्रियों से मुलाकात में ये लोग अंग्रेजी न बोलें तो उनकी छवि को बट्टा लगता है।

अंग्रेजी बोलने वालों में 'अहम्' का विकास होता है। उनके व्यक्तित्व में प्रभावोत्पादकता (?) आती है। गर्व उनके चेहरे से टपकता है। हीनता उन्हें छू नहीं पाती। वह 'इन्फ्योरिटी-कम्प्लेक्स' (आत्महीनता ग्रन्थि) का शिकार नहीं होते। नौकरी और उच्चतर पद पाने की सुविधा और आर्थिक साधनों पर अधिकार की सम्भावना में जीवन का कैरियर (भविष्य) नजर आता है। तब फिर अंग्रेजी-मोह स्वतन्त्र भारत में पल्लवित-पुष्पित हो, यह सहज ही है, स्वाभाविक ही है।

(376) हिन्दी की प्रगति में अवरोधक तत्त्व

संकेत बिंदु—(1) संवैधानिक त्रुटि (2) तकनीकी और वैज्ञानिक शब्दों का अभाव (3) अंग्रेजी मोह और राजकीय नीति के उपेक्षा (4) पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति का प्रभाव (5) उपसंहार।

आज हिन्दी-भारती का रथ कच्छप गति से आगे बढ़ रहा है। संविधान ने उसका लक्ष्य क्षितिज के उस पार पहुँचा दिया है, जहाँ तक वह कभी पहुँच ही नहीं पाएगी। प्रांतीय भाषाओं ने उसे पंगु बना दिया है। अंग्रेजी की मानसिकता ने हिन्दी-अभिरुचि का गला ही घोट दिया है। हिन्दी के पक्षपाती, उसके कर्णधार तथा उसके नाम पर व्यवसाय करने वाले उसे गंगा में समाधिस्थ करने पर तुले हुए हैं।

कहने को हिन्दी राष्ट्रभाषा है, पर उसकी स्थिति दासी से भी निकृष्ट है। संवैधानिक दृष्टि से राजनीतिज्ञों ने इस सन्दर्भ में तीन भूलें की हैं—

(1) यह निर्णय करना कि यदि भारत का एक भी प्रांत हिन्दी को राष्ट्रभाषा रूप में प्रतिष्ठापित नहीं करना चाहेगा, तो वह राष्ट्रभाषा नहीं बन सकती।

(2) हिन्दी के साथ अंग्रेजी की प्रतिष्ठा।

(3) 16 प्रांतीय भाषाओं को राष्ट्रभाषा-पद देना।

भाषावार प्रांत-निर्माण के पश्चात् देश के अहिन्दीभाषी राज्यों में प्रांतवाद का विष तीव्र गति से फैला। प्रांतवाद की वाहिका बनी प्रांतीय भाषाएँ। इन प्रांतों ने अपनी प्रांतीय भाषाओं को शासकीय भाषा का पद प्रदान कर उसका अभिषेक किया। ऐसी स्थिति में हिन्दी उनकी आँखों में शूल बन गई। वे खुलकर हिन्दी-विरोधी हो गए। वे हिन्दी के वर्चस्व को ताल ठोक कर नकारते हैं। प्रजातन्त्र राष्ट्र में प्रांतीय वीटो (निषेधाधिकार) ने हिन्दी को सदा-

सर्वदा के लिए राष्ट्रीय-मुकुट से वंचित कर दिया। न नौ मन तेल होगा, न राधा नाचेगी। न सारे प्रांत हिन्दी का समर्थन करेंगे, और न हिन्दी राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन हो सकेगी।

हिन्दी-भाषा में तकनीकी शब्दों का अभाव, विधि, वैज्ञानिक, औद्योगिक तथा प्रशासनिक अभिव्यक्ति की अक्षमता, शब्द-कोषों, पारिभाषिक कोषों, अन्तरराष्ट्रीय-कोषों का अभाव तथा असमृद्ध साहित्य का रोना रोकर हिन्दी के रथ का मार्गावरोध किया जा रहा है। फलतः हिन्दी का रथ मार्ग के कंटकों को हटाने में ही लगा रहेगा और अंग्रेजी तथा प्रांतीय-भाषाएँ विकसित होकर अपने रथों को तीव्रगति से दौड़ा रही होंगी। विश्व-हिन्दी-सम्मेलन में परम विदुषी महादेवी वर्मा ने हिन्दी की इस तथाकथित अक्षमता तथा अव्यावहारिकता के लिए पूर्णतः सत्ता को उत्तरदायी ठहराते हुए सटीक टिप्पणी की थी—'घोड़े को गाड़ी के पीछे बाँध दिया है।'

सेण्ट्रल बोर्ड ऑफ सेकेण्डरी एजूकेशन की परीक्षा-पद्धति हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन को हतोत्साहित करने का केन्द्रीय षड्यन्त्र है। 11वीं कक्षा में 'एक भाषा' की उत्तीर्णता की अनिवार्यता ने अंग्रेजी लेने को प्रोत्साहित किया और डॉक्टर, इंजीनियर, विधि-विशेषज्ञ, गणितज्ञ अथवा वैज्ञानिक बनने के इच्छुक छात्रों को हिन्दी त्यागने के लिए विवश कर दिया है। न होगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी। ज्ञानार्थी न हिन्दी में उच्च शिक्षा लेगा, न हिन्दी-प्रेमी बनेगा।

राजकीय नीति (कुनीति) के कारण हिन्दी की पाठ्य-पुस्तकों में उर्दू के कवि, कथाकार घुस गए हैं। गणतंत्र दिवस का 'हिन्दी-कवि-सम्मेलन' सर्वभाषा कवि सम्मेलन बन गया है। विश्व पुस्तक मेले में 'हिन्दी-मण्डप' का स्थान 'भारतीय-भाषा-मण्डप' ने ले लिया है। विश्व-हिन्दी-सम्मेलनों में प्रांतीय विद्वानों का सम्मान अनिवार्य बना दिया गया है। दिल्ली का हिन्दी अकादमी भी विद्यालयों में हिन्दी शिक्षकों को सम्मानित करने के साथ उनके कोटे से अन्य विषयों के शिक्षकों को भी सम्मानित करने में गर्व अनुभव करती है। हिन्दी को अपने पैरों पर खड़ा रहने ही नहीं दिया जाता। प्रांतीय बैसाखी का सहारा अनिवार्य कर दिया गया है। राजकीय सोपान पर चढ़ने के लिए प्रांतीय भाषाओं के सहयोग की शर्त हिन्दी को अपमानित करने तथा पग-पग पर नीचा दिखाने एवं अक्षमता, असमर्थता का बोध कराने की चाल है।

हिन्दी-रथ के रथी भी हिन्दी भारती की प्रतिमा में दोषारोपण करने लगे हैं। वे सरलता के नाम पर उर्दू-फारसी के शब्दों की बहुलता से माँ के आँचल को कलंकित कर रहे हैं। हिन्दी की जननी संस्कृत से उसका सम्बन्ध-विच्छेद कर उसके पीयूष और मूल स्रोत को ही अवरुद्ध करने पर तुले हुए हैं। इतना ही नहीं, हिन्दी के नाम पर आजीविका चलाने वाले हिन्दी के ये ठेकेदार, साहित्यकार, कर्णधार अपने बच्चों को हिन्दी की छाया से भी दूर हटाते जा रहे हैं, उन्हें कान्वेंट स्कूलों में शिक्षा दिला रहे हैं। हिन्दी की अगली पीढ़ी को अंग्रेजी-भक्त बना रहे हैं।

पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति ने हिन्दी-भाषी परिवारों को मोहित कर लिया है।

अंग्रेजी का जादू सिर चढ़कर बोल रहा है। प्रातः, सायं तथा रात्रि का अभिवादन 'गुड मार्निंग, गुड ईवनिंग, गुड नाइट' से होता है। माता-पिता 'मम्मी-डैडी' बन गए है। बहन 'सिस्टर' और पत्नी 'वाइफ' बन गई है। अंकल-आटी के दर्शन जहाँ चाहे, हो जाते हैं। बातचीत में बिना अंग्रेजी शब्दों के व्यक्तित्व नहीं निखरता। 'कौन-सी पिक्चर देखनी है?' 'लंच का टाइम हो गया।' 'संडे का शो देखना है,' कहे बिना बात समझ नहीं आती। कहाँ है हिन्दी-संस्कार।

हिन्दी के रथ को गति प्रदान करने के लिए चाणक्य चाहिए, जो हिन्दी के विरुद्ध किए जाने वाले शासकीय षड्यन्त्रों का पर्दाफाश करके, हिन्दी की पताका फहराने वालों की हिन्दी-विरोधी नीति को उजागर करके जन-मानस में हिन्दी-संस्कार का अमृत पहुँचा सके। लोभ, लालच, ममता, स्वार्थ के कंटकों को हटाकर मार्ग में पुष्प बिखेर दे, ताकि माँ भारती का रथ सरलता से चलकर भारत-भारती का भाल विश्व-प्रांगण में उन्नत कर सके।

(377) राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास के उपाय

संकेत बिंदु—(1) हिंदी को विकसित करने का दायित्व (2) हिंदीमय वातावरण का निर्माण (3) हिंदी के विकास में योगदान (4) कार्यालयों, विश्वविद्यालयों में हिंदी का प्रयोग (5) उपसंहार।

राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी को विकसित करना सरकार का कर्तव्य है। हिन्दी साहित्य को समृद्ध करना साहित्यकारों का दायित्व है। दैनिक जीवन में अधिकाधिक रूप में हिन्दी का प्रयोग करना जनता का धर्म है। ईमानदारी से हिन्दी-ज्ञान का वितरण, विस्तार और हिन्दी को एकरूपता प्रदान करना हिन्दी के माध्यम से रोटी कमाने वालों का नैतिक दायित्व है।

घर और समाज की अंग्रेजी-मानसिकता को बदलकर ही हम हिन्दी-वातावरण का निर्माण कर सकते हैं, हिन्दी की श्रीवृद्धि में योग दे सकते हैं। घर में हिन्दी बोलें; हिन्दी के दैनिक, साप्ताहिक, मासिक पत्र-पत्रिकाओं को खरीद कर पढ़ें; हिन्दी की श्रेष्ठ साहित्यिक पुस्तकों को पढ़ने का स्वभाव बनाएँ; निजी पत्र-व्यवहार हिन्दी में करें।

अपने बच्चों को कान्वेंट शिक्षण से दूर रखें। अंग्रेजी माध्यम के 'पब्लिक स्कूलों' की शिक्षण-पद्धति से परहेज करें। हिन्दी-पठन-पाठन पर बल दें। शिक्षा का माध्यम हिन्दी को ही स्वीकार करें।

घर की शोभा के लिए लटकाए गए चित्रों में विद्या की अधिष्ठात्री देवी माँ 'सरस्वती' के चित्र को स्थान दें। सम्भव हो तो हिन्दी के श्रेष्ठ कवियों या लेखकों के चित्रों से घर की दीवारों को अलंकृत करें।

अपने नाम-पट्ट, व्यापारिक संस्थाओं के बोर्ड, बीजक, बहीखाते तथा लैटरपैड (पत्रक) हिन्दी में रखें। पत्र-व्यवहार में हिन्दी अपनाएँ।

हिन्दी के माध्यम से रोजी-रोटी कमाने वाले हैं—हिन्दी-अध्यापक, प्राध्यापक, हिन्दी-अधिकारी, पत्र-पत्रिकाओं के लेखक-सम्पादक। यही वर्ग हिन्दी के विकास में सर्वाधिक योगदान दे सकता है; भारत के वातावरण में हिन्दी की सुगन्ध फैला सकता है।

हिन्दी के प्रचार-प्रसार का एक सशक्त साधन चित्रपट भी है। हिन्दी-चित्रों ने न केवल हिन्दी-भाषी क्षेत्रों में, अपितु विश्व के प्रांगण में जो प्रतिष्ठा पाई, उससे हिन्दी का गौरव बढ़ा है। हिन्दी को जानने-पहचानने की उत्सुकता बढ़ी। चित्र-निर्माता सामाजिक दृष्टि से सार्थक, सांस्कृतिक दृष्टि से प्रामाणिक, कला की दृष्टि से सन्तोषजनक और शिल्प की दृष्टि से चमत्कारी हिन्दी-चित्र बनाकर हिन्दी के विकास में योगदान दे सकते हैं।

हिन्दी-विकास के लिए सरकार को चाहिए कि सम्पूर्ण भारत में उच्च-विद्यालयों तथा उच्चतर माध्यामिक श्रेणियों तक हिन्दी का पठन-पाठन अनिवार्य कर दें। उच्च श्रेणियों में शिक्षा का माध्यम हिन्दी तथा प्रांतीय भाषाएँ ही कर दें।

चपरासी से लेकर उच्च-अधिकारी तक के लिए हिन्दी ज्ञान अनिवार्य कर देना चाहिए। पदोन्नति के लिए हिन्दी की परीक्षा—प्रभाकर, मध्यमा, उत्तमा, विदुषी, बी.ए. या एम.ए. (हिन्दी) परीक्षाओं का प्रमाण-पत्र आवश्यक कर दिया जाए। जब नौकरी में हिन्दी ज्ञान की शर्त अनिवार्य होगी तो निश्चित रूप से हिन्दी का विकास होगा।

हिन्दी-भाषी राज्यों (उत्तर-प्रदेश, मध्यप्रदेश, बिहार, राजस्थान, हरियाणा, हिमाचल-प्रदेश, उत्तरांचल, झारखंड, छत्तीसगढ़ एवं दिल्ली) का समस्त राज-काज, उच्च न्यायालयों सहित, हिन्दी में ही होना चाहिए। अंग्रेजी को सहयोगी भाषा बनाना भी अहितकर होगा।

कार्यालयों तथा अधिकारियों के नामपट्ट हिन्दी में होने चाहिएँ। विभाग, संस्थान तथा अभिकरणों (एजेन्सीज) के नाम हिन्दी में होने चाहिएँ। जैसे—'टेलिवीजन' नहीं, 'दूरदर्शन'; 'टेलीफोन' नहीं, 'दूरभाष' तथा 'रेडियो' नहीं, 'आकाशवाणी' नामकरण तत्काल प्रभावी होने चाहिएँ।

अहिन्दी-भाषी प्रांतों तथा विश्व के राष्ट्रों में महत्त्वपूर्ण हिन्दी-पुस्तकें तथा पत्र-पत्रिकाएँ सैकड़ों की संख्या में निःशुल्क भेजनी चाहिएँ।

हिन्दी शोध-ग्रन्थों, सन्दर्भ-ग्रन्थों तथा विशिष्ट ज्ञानवर्धक पुस्तकों की एक-एक प्रति सरकारी अनुदान से विश्वविद्यालयों तथा शोध-संस्थाओं में पहुँचानी चाहिएँ। कविता, उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी, जीवनी आदि की थोक खरीद बन्द करके उन संस्थाओं को ही अनुदान दे देना चाहिए, जिनके लिए ये खरीदी जाती हैं। इससे भ्रष्टाचार समाप्त होगा, हिन्दी-हित होगा।

इतिहास, अर्थशास्त्र, वाणिज्य, राजनीति-शास्त्र आदि विषयों के शोध-प्रबन्धों की भाषा अंग्रेजी नहीं, हिन्दी होनी चाहिए। सब प्रकार की वैज्ञानिक पुस्तकें भी हिन्दी में निर्मित

हों। उनकी पारिभाषिक शब्दावली संस्कृत के विज्ञान ग्रन्थों से ली जाए। हाँ, आरम्भ में कोष्ठक में उनके अंग्रेजी पर्याय दे दिये जाएँ। संस्कृत शब्द न मिलने पर ही पारिभाषिक अंग्रेजी शब्द लिए जाएं।

विश्वकोश, पारिभाषिक कोष, सन्दर्भ-ग्रन्थ, औद्योगिक और वैज्ञानिक उच्चकोटि के साहित्य का निर्माण सरकार स्वयं करे और सस्ते मूल्य में जनता को उपलब्ध कराएँ। केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नेशनल बुक ट्रस्ट, प्रकाशन विभाग, साहित्य-अकादमी आदि राष्ट्रीय संस्थाओं को यह दायित्व सौंपा जाए।

हिन्दी-भाषी क्षेत्रों के 'दूरदर्शन' का हिन्दीकरण हो। 80 प्रतिशत कार्यक्रम हिन्दी में प्रसारित किए जाएँ। ज्ञानवर्धक कार्यक्रम हिन्दी में ही दिखाए जाएँ। अन्य भाषाओं की विशिष्ट द्रष्टव्य बातों का हिन्दी-अनुवाद होना चाहिए।

जनता और सत्ता, दोनों मिलकर जब हिन्दी को सच्चे हृदय से अपनाएँगे, राजनीति के छल-छद्म से दूर रखेंगे तो निश्चय ही हिन्दी का विकास द्रुतगति से होगा और माँ-भारती का सुन्दर शृंगार होगा।

(378) राष्ट्रभाषा का महत्त्व

संकेत बिंदु—(1) स्वतंत्र देश की संपत्ति (2) राष्ट्रभाषा को उचित सम्मान नहीं (3) हिंदी ज्ञान-विज्ञान और तकनीक की भाषा (4) नेहरू जी का कथन (5) उपसंहार।

किसी भी राष्ट्र की स्वतंत्रता को स्थिर बनाये रखने के लिए वहाँ के निवासियों की राष्ट्रीय चेतना सर्वाधिक महत्त्व रखती है। हमारे देश भारत में राष्ट्रध्वज, राष्ट्रगान, राष्ट्र चिह्न तथा राष्ट्रभाषा का बराबर का महत्त्व है। यदि हमारे मन में अपनी राष्ट्रभाषा का सम्मान नहीं है तो हम राष्ट्र के प्रति भी अपनी आस्था नहीं रखते, यह स्पष्ट हो जाता है।

राष्ट्रभाषा स्वतंत्र देश की संपत्ति है और हमारे देश की राष्ट्रभाषा हिन्दी है। लेकिन अधिकांश देशवासी हिंदी को महत्त्व न देकर अंग्रेज़ी के मोहपाश में फँसे बैठे हैं। इस प्रकार का व्यवहार राष्ट्रभाषा और राष्ट्र का अपमान है। राष्ट्रभाषा वस्तुतः दो पदों के योग से बनी है—राष्ट्र और भाषा, सीधे अर्थ में राष्ट्र की भाषा। यह भी स्थापित तथ्य है कि राष्ट्रभाषा का महत्त्व राष्ट्रीय सम्मान की दृष्टि से ही है। एक ही राष्ट्र के निवासी जब आपस में मिलने पर बात विदेशी भाषा में करें तो यह एक सीधे से अर्थ में विपत्ति टूटना है। एक ही घर के तो व्यक्ति किसी विदेशी भाषा को अभिव्यक्ति का माध्यम बनायें तो माना जा सकता है कि वह दोनों वैचारिक स्तर पर 'दरिद्र' हैं। दूसरे देश से भाषा का आयात कर अपना काम चलाना किसी भिखारीपन से कम नहीं कहा जा सकता। जिसकी अपनी भाषा है वह दूसरे की भाषा का सम्मान तो कर सकता है मगर दूसरी भाषा पर आश्रित होना दिवालियेपन से कम नहीं है।

यह एक निर्विवाद सत्य है कि हिन्दी राष्ट्र की आबादी के एक बड़े भू-भाग की भाषा है। हिमगिरि से लेकर कन्याकुमारी तक हिंदी की पहचान और पहुँच है। सांस्कृतिक दृष्टि

से भी इसकी परम्परा अंततः पुष्ट और सुदीर्घ है। भक्तिकाल का सम्पूर्ण साहित्य भी हिन्दी भाषा में ही रचित है।

गाँधीजी ने समस्त भारतीय भाषाओं में से केवल हिंदी को ही समस्त विशेषताओं से संयुक्त समझा। स्वतंत्र भारत में देश के सभी नेताओं ने हिन्दी के महत्त्व को पूर्णरूपेण स्वीकार किया और भारत के संविधान में 14 सिंतबर 1949 को हिंदी को भारत गणराज्य की राष्ट्रभाषा घोषित किया और 26 जनवरी 1950 को संविधान को लागू करते समय देवनागरी लिपि में लिखित हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाया गया।

परंतु यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि स्वतंत्रता के 55 वर्षों के बाद भी हम राष्ट्रभाषा हिन्दी को उसका उचित सम्मान और महत्त्व प्रदान करने में सफल नहीं हो पाये। आज भी हिंदी विरोधियों की संख्या कुछ कम नहीं है। कहने वाले यहाँ तक कह देते हैं कि अंग्रेज़ी ही भारत की एकता और अखंडता स्थिर रखने में सक्षम है। जबकि मेरे अपने मतानुसार अंग्रेज़ी के जानकार समूचे देश में 1/2 प्रतिशत लोग ही होंगे। हिन्दी को पढ़ने, समझने, बोलने वालों की संख्या 75 प्रतिशत के लगभग हो सकती है मगर फिर भी हिन्दी के साथ कैसी विडम्बना है कि हर नागरिक डरे मन से ही हिन्दी को स्वीकार करने की बात कहता है। किसी भी स्वाधीन देश में जो महत्त्व उसके राष्ट्रगान, राष्ट्रध्वज का होता है वही महत्त्व राष्ट्रभाषा का भी होता है। किसी प्रजातांत्रिक देश में भाषा की दीवार आवश्यक है। शासन के प्रत्येक कार्य को राष्ट्रभाषा में सम्पादित होना होता है। ज़ब तक राष्ट्रभाषा हिन्दी को उसकी उचित गरिमा प्राप्त नहीं होती तब तक हमारा देश वास्तविक अर्थों में सबल रह पायेगा। व्यक्ति अपनी भाषा में ही स्पष्टता और सरलता के साथ अपने मनोभावों को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। नूतन विचारों के स्पन्दन और ज्ञानार्जन का माध्यम राष्ट्रभाषा ही हो सकती है। राष्ट्रभाषा हिन्दी जन-जन की वाणी है, जिसके अभाव में राष्ट्र प्रायः गूँगा-सा हो जाता है।

यह कहना तथ्य से परे की बात है कि हिन्दी ज्ञान-विज्ञान और तकनीकी विषयों की भाषा नहीं हो सकती। अब तक पर्याप्त हिन्दी शब्दावली समृद्ध हो चुकी है और अभियन्त्रण से लेकर चिकित्सा-विज्ञान तक के ग्रंथ इसमें प्रणीत होने लगे हैं। राष्ट्रभाषा हिन्दी को हम उस अनुवाद की भाषा के रूप में नहीं देखना चाहते। हिन्दी हमारी वाणी है। हमारी अस्मिता और हमारी मनीषा की महिमामयी प्रतिभा हिन्दी है, हिन्दी भाषा में मौलिक चिंतन, लेखन और अभिव्यक्ति के अन्य माध्यमों के रूप में तथा आधुनिकतम ज्ञान-विज्ञान की संवाहिका के रूप में पूरे वेग के साथ उभरकर जन-मानस के पटल पर राष्ट्रभाषा हिन्दी के महत्त्व को और अधिक उभारना है।

अखिल भारतीय रूप से राष्ट्रभाषा हिन्दी के महत्त्व को, गौरव के अनुकूल प्रतिष्ठित करना और प्रत्येक कार्य के लिए उसे अंगीकार करना नितान्त आवश्यक है। यह कार्य पारस्परिक तालमेल, समन्वय के साथ-साथ भाषायी संस्कृति के विकास के लिए तथा भावनात्मक रूप से देश की एकता के लिए अत्यंत आवश्यक है। वर्तमान स्थिति में राष्ट्रभाषा हिन्दी को जनमानस की भाषा के रूप में अभिव्यक्ति की भाषा बनाकर, राष्ट्र की वाणी हिन्दी को और मुखर करने की महती आवश्यकता है।

कोटि-कोटि कण्ठों की भाषा, मेरे भारत की अभिलाषा।
हिन्दी है पहचान हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी परिभाषा॥

राष्ट्रभाषा हिन्दी के महत्त्व के संदर्भ में पंडित जवाहर लाल नेहरू ने कहा—"मैं किसी भाषा का पंडित तो नहीं हूँ, फिर भी मुझे भाषा के सौंदर्य से, उसके शब्दों के संगीत से और शब्दों में भरे जादू और ताकत से मेरा प्रेम रहा है। मेरा विश्वास है कि लगभग दूसरी हर चीज के वनिस्बत भाषा किसी राष्ट्र के चरित्र की सही कसौटी है। अगर भाषा शक्तिशाली और ज़ोरदार होती है तो उसके इस्तेमाल करने वाले लोग भी वैसे ही होते हैं। अगर वह छिछली, लच्छेदार और पेचीदी है तो बोलने वाली प्रजा में भी वहीं लक्षण देखने को मिलेगा।

संविधान की धारा 351 के अंतर्गत हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा तो दिया गया है, मगर सरकारी स्तर पर हिन्दी को राष्ट्रभाषा का महत्त्व अभी प्राप्त न हो सका। इस कार्य के लिए हमें सरकार का मुँह ताकते नहीं रहना होगा। स्वयं आगे बढ़कर हमें यह उद्घोष करना होगा कि हम हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार कर उसके महत्त्व को स्थापित करने में योगदान करेंगे और कहेंगे—

जब तक भावुकता में बल है
जब तक नारी उर कोमल है
धरा पै बहता गंगा जल है
तब तक हिन्दी अमर रहेगी।

साहित्यिक निबन्ध

(379) हिन्दी साहित्य में छायावाद

संकेत बिंदु—(1) युग का नामकरण (2) छायावाद की परिभाषाएँ (3) प्रमुख छायावादी कवि और विशेषताएँ (4) छायावाद में तत्त्व चिन्तन, विज्ञान का प्रभाव (5) छायावाद में कलापक्ष।

द्विवेदी-युग के पश्चात् हिन्दी-साहित्य में जो कविता-धारा प्रवाहित हुई, वह छायावादी कविता के नाम से प्रसिद्ध हुई। वस्तुतः छायावाद इस युग की इतनी प्रमुख प्रवृत्ति रही है कि सभी कवि उससे प्रभावित हुए और उसी के नाम पर युग का नामकरण कर दिया।

छायावाद अपने युग की अत्यन्त व्यापक प्रवृत्ति है। फिर भी यह देखकर आश्चर्य होता है कि उसकी परिभाषा के सम्बन्ध में विचारक एकमत नहीं। विभिन्न विद्वानों ने छायावाद की भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ प्रस्तुत की हैं। कुछ परिभाषाएँ इस प्रकार हैं—

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—छायावाद एक शैली विशेष है, जो लाक्षणिक प्रयोगों, अप्रस्तुत विधानों और अमूर्त उपमानों को लेकर चलती है।

डॉ. रामकुमार वर्मा—छायावाद जीवन की परोक्ष अनुभूति है। यह रहस्यवाद की पूर्व स्थिति है।

महादेवी वर्मा—छायावाद प्रकृति के बीच जीवन का उद्गीथ है।

डॉ. नगेन्द्र—स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह छायावाद है।

हिन्दी के प्रमुख छायावादी कवि हैं—सर्वश्री जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' तथा महादेवी वर्मा। अन्य कवियों में डॉ. रामकुमार वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, उदयशंकर भट्ट, नरेन्द्र शर्मा, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' के नाम उल्लेखनीय हैं।

छायावादी काव्य की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(1) सौन्दर्य-भावना—छायावाद की प्रमुख प्रवृत्ति है सौन्दर्यानुभूति। मानव के आन्तरिक सौन्दर्य का उद्घाटन प्रकृति के माध्यम से हुआ। अतः छायावादी कविता में प्राकृतिक सौन्दर्य को विशेष महत्त्व मिला।

शशि मुख पर घूँघट डाले, अंचल में दीप छिपाए।
जीवन की गोधूलि में, कौतूहल से तुम आए।। —प्रसाद

(2) प्रेमभावना—छायावादी काव्य में प्रेम-भावना का विकास विविध रूपों में हुआ। जैसे-प्रकृति-प्रेम, नारी-प्रेम, मानव-प्रेम, आध्यात्मिक-प्रेम।

यह तीव्र हृदय की मदिरा, जी भरकर छक कर मेरी।
अब लाल आँखें दिखलाकर, मुझको ही तुमने फेरी।। —प्रसाद

(3) मानवतावादी दृष्टिकोण—छायावादी काव्य में रवीन्द्र और अरविन्द की मानवतावादी दृष्टि का विकास हुआ।

मानव तुम सबसे सुन्दरतम। —पंत

(4) जीवन के बदलते पहलुओं की अभिव्यक्ति—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार इन कवियों में 'मानवीय आचारों, क्रियाओं, चेष्टाओं और विश्वासों के बदले हुए और बदलते हुए मूल्यों को अंगीकार करने की प्रवृत्ति थी।'

धर्म, नीति और सदाचार का मूल्यांकन है जनहित।
सत्य नहीं वह, जनता से जो नहीं प्राण समन्वित।। —पंत

(5) रहस्य-भावना—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में, 'कवि उस अनन्त और अज्ञात प्रियतम को आलम्बन बनाकर अत्यंत चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से अभिव्यंजना करते हैं।' तथा 'छायावाद का एक अर्थ रहस्यवाद भी है।' अतः सभी आलोचक रहस्यवाद को छायावाद का प्राण मानते हैं—

प्रिय चिरन्तन है सजनि, क्षण-क्षण नवीन सुहागिनी मैं। —महादेवी

(6) तत्त्व-चिन्तन—छायावादी कविता में अद्वैत-दर्शन, योग-दर्शन, विशिष्टाद्वैतवाद,

आनन्दवाद आदि तत्त्वों का दार्शनिक चिन्तन मिलता है। जैसे-प्रसाद का मूल दर्शन आनन्दवाद है, तो महादेवी ने अद्वैत, सांख्य एवं योगदर्शन का विवेचन अपने ढंग से किया है।

(7) वेदना की युगानुरूप विवृत्ति—छायावादी कविता में वेदना की अभिव्यक्ति करुणा और निराशा के रूप में हुई है, किन्तु प्रसाद और महादेवी की वेदनानुभूति में निराशा का अंधकार एवं भौतिक दु:खों का धुंधलापन नहीं।

चिर पूर्ण नहीं कुछ जीवन में
अस्थिर है रूप जगत का मद। —पंत

(8) विज्ञान का प्रभाव—वैज्ञानिक युग में बैद्धिक प्रक्रिया का प्राधान्य होने के कारण विज्ञान मानव-संस्कृति की चेतना का इतिहास बना। शक्ति के संचार और मानवता की विजय की कामना बलवती हुई।

तांडव में थी तीव्र प्रगति, परमाणु विकल थे।
नियति विकर्षणमयी, त्रास से सब व्याकुल थे॥ —प्रसाद

(9) देश-प्रेम एवं राष्ट्रीय-भावना—छायावादी कविता में देश-प्रेम और राष्ट्रीयता की भावना अनेक रूपों में विकसित हुई।

मुझे तोड़ लेना वनमाली, उस पथ पर तुम देना फेंक।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जावें वीर अनेक।

—माखनलाल चतुर्वेदी

(10) शृंगारिकता का प्राधान्य—छायावादी काव्य विशुद्ध सौन्दर्यवादी और प्रेमवादी काव्य है।

नील परिधान बीच सुकुमार, खुल रहा मृदुल अधखुला अंग।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल, मेघ बन बीच गुलाबी रंग॥ —प्रसाद

(11) वैयक्तिक चिन्तन—छायावादी कविता वैयक्तिक चिन्तन और अनुभूति की परिधि में सीमित होने के कारण अन्तर्मुखी हो गई, कवि के 'अहं' में निबद्ध हो गई। दूसरी ओर कवियों ने काव्य में अपने सुख-दु:ख, उतार-चढ़ाव, आशा-निराशा की अभिव्यक्ति खुल कर की। बच्चन का **'आज मुझ से दूर दुनिया'** इसका परिचायक है।

कलापक्ष—कलापक्ष की दृष्टि से छायावादी कविता में गीति तत्त्व का विकास हुआ। प्रतीकों की छठा यहाँ दर्शनीय है। बिम्ब-विधान का यहाँ बहुलता से प्रयोग हुआ है।

कलापक्ष का जितना उन्नयन छायावादी काल में हुआ, वह अद्वितीय है। छन्द, शब्द-योजना, शब्द-संस्कार, शैली अलंकरण आदि सभी क्षेत्रों में क्रांति आई।

भाषा में माधुर्य गुण का समावेश हुआ। उसमें अर्थवत्ता बढ़ी, कोमलता आई, मुखर-चित्र प्रस्तुत करने की क्षमता आई। नए-नए शब्दों का निर्माण हुआ। भाषा को रागात्मक रूप और संगीत-सौन्दर्य मिला। लाक्षणिकता, ध्वन्यात्मकता, वचनवक्रता, चित्रमयता आदि गुणों का समावेश हुआ।

नए-नए छन्द आए। पुराने छंदों का संस्कार हुआ। यही नहीं, छन्दों से मुक्ति भी पाई गई। प्राचीन अलंकारों का त्याग हुआ। नए अलंकारों का प्रवेश हुआ। कविता आंतरिक सौंदर्य से विभूषित हुई। घिसे-पिटे उपमान छोड़कर नए प्रतीकों को अपनाया गया।

शीतल ज्वाला जलती है। ईंधन होता दृग-जल का।
यह व्यर्थ साँस चल कर। करती है काम अनिल का।। —प्रसाद

छायावादी कविता अपने अभिव्यक्ति-पक्ष में पुष्ट और महत्त्वपूर्ण रहने के आकर्षण से छायावाद को 'शैली-विशेष' कहकर पुकारा गया।

झर चुके तारक-कुसुम जब। रश्मियों के रजत पल्लव
संधि में आलोकतम की। क्या नहीं नभ जानता तब
पार से अज्ञात वासन्ती। दिवस रथ चल चुका है।

—महादेवी (दीपशिखा)

छायावादी काव्यधारा की भी कुछ अपनी सीमाएँ हैं, जिनके कारण सन् 1935 के बाद यह काव्यधारा क्षीण होती गई।

(380) हिन्दी साहित्य में रहस्यवाद

संकेत बिंदु—(1) छायावाद और रहस्यवाद में अंतर (2) रहस्यवादी भावनाएँ (3) हिंदी में रहस्यवाद का प्रारंभ और प्रमुख कवि (4) रहस्यवाद की प्रमुख अवस्थाएँ (5) साधनात्मक रहस्यवाद और भावात्मक रहस्यवाद।

द्विवेदी युग के अनन्तर हिन्दी-कविता में एक ओर छायावाद का प्रादुर्भाव हुआ और दूसरी ओर रहस्यवाद का। रहस्यवादी धारा यद्यपि छायावाद के समान व्यापक रूप से नहीं फैली, फिर भी उसका कम विस्तार नहीं हुआ।

रहस्यवादी कवि शरीर की सुध-बुध भूलकर अन्तर्जगत् में रम जाता है, आत्मरूप में। 'आत्मा' शब्द का प्रयोग बहुत दिनों से स्त्रीलिंग में हो रहा है (जबकि संस्कृत और मराठी सहित दक्षिण भारतीय भाषाओं में यह पुल्लिंग में ही प्रयुक्त होता है।) अतः कवि-आत्मा स्त्रीलिंग में बोलती है, परमात्मा पुल्लिंग है। धीरे-धीरे परमात्मा और आत्मा नर-नारी के रूप बन जाते हैं और यही दशा विकसित होती हुई आत्मा और परमात्मा में दाम्पत्य भाव की स्थापना कर देती है। यही कारण है कि रहस्यवादी भावनाएं अधिकतर दाम्पत्य-प्रेम के रूप में व्यक्त होती हैं।

रहस्यवाद भारतीय काव्य के लिए कोई नहीं वस्तु नहीं है। वेदों और उपनिषदों में, गीता के 11वें अध्याय में, शंकराचार्य के अद्वैतवाद में, सहजानन्द के उपासक कण्हप्पा आदि सिद्धों की रचनाओं में रहस्यवादी भावनाएँ नाना रूपों में व्यक्त हुई हैं; किन्तु वेदों से सिद्धों तक यह अभिव्यक्ति बौद्धिक चिन्तन अर्थात् मस्तिष्क से ही सम्बन्धित रही है, अतः उसे रहस्यवाद नहीं, दर्शन कहा जाता है।

हिन्दी में रहस्यवाद का स्वर सर्वप्रथम कबीर की वाणी में सुनाई देता है। कबीर एक पहुँचे हुए संत थे। उनकी अनुभूति में आत्मा-परमात्मा की एकता का सुन्दर चित्रण हुआ। वे लिखते हैं—

जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ, जल जलहि समाना, यह तत कथ्यो गियानी॥

इसी युग में जायसी ने भी रहस्यवादी भावना का अत्यन्त मनोहर चित्रण किया है। उनकी अनुभूति में 'प्रेम की पीर' या 'विरह-वेदना' का प्राधान्य है।

भक्तिकाल के अनन्तर रहस्यवादी भावना कुछ समय तक लुप्त रही, किन्तु आधुनिक युग में छायावादी युग के प्रारम्भ होने के साथ ही रहस्यवाद का स्वर भी मुखरित हो उठा। इस युग के सभी प्रमुख कवियों की वाणी में रहस्यवाद की भावना व्यक्त हुई। सर्वश्री जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानन्दन पन्त, महादेवी वर्मा, हरिकृष्ण 'प्रेमी' आदि कवियों ने रहस्यवाद का चित्रण किया है। आधुनिक युग का रहस्यवाद भावना-प्रधान है, फिर भी, प्रसाद जी की रचनाओं में चिन्तन की झलक मिलती है। महादेवी वर्मा का रहस्यवाद सबसे अधिक मार्मिक बना है, क्योंकि उसमें अनुभूति की प्रधानता और विरह का स्वर तीव्र है।

परिस्थितियों के अनुरूप हिन्दी कविता ने नया मोड़ लिया और रहस्यवादी भावना का चित्रण प्राय: रुक गया है।

रहस्यवाद की पाँच अवस्थाएँ मानी जाती हैं—

(क) जिज्ञासा—जब साधक संसार की अज्ञेयता, अनन्तता, विचित्रता, अव्यक्तता को देखता है, तो उसका हृदय विस्मय और कौतूहल से भर जाता है। ऐसी दशा में वह जानना चाहता है कि इस जीवन और जगत् का निर्माता कौन है और वह इस ज्ञानेच्छा को नाना रूपों में व्यक्त करता हुआ कहता है—

नभ के पर्दे के पीछे, करता है कौन इशारे।
सहसा किसने खोले हैं, जीवन के बन्धन सारे। (हरिकृष्ण 'प्रेमी')

(ख) प्रभु-महिमा का गान—जिज्ञासा ही जिज्ञासा में रहस्य के पट कुछ-कुछ खुलने लगते हैं और आत्मा को परमात्मा की झलक मिलने लगती है। इसी दशा में कवि-आत्मा कहती है—

क्या पूजन क्या अर्चन रे?
उस असीम का सुन्दर मन्दिर, मेरा लघुतम जीवन रे। (महादेवी)

(ग) वियोग की अनुभूति—असीम सौन्दर्य की अनुभूति के अनन्तर कवि-आत्मा उस प्रिय के वियोग में तड़पने लगती है, क्योंकि 'तौ लगि धरि, देखी नहिं पीड़ा', धीरज के बन्धन टूट जाते हैं, वियोग का असाध्य रोग लग जाता है—

ठहरो बेसुध पीड़ा को, मेरी न कहीं छू लेना।
जब तक वे आ न जगावें, बस सोती रहने देना॥ (महादेवी)

(घ) मिलन की अनुभूति—धीरे-धीरे प्रेम विकसित होता है और प्रेम की डोर उस रहस्य-रूप प्रिय को खींच लाती है। प्रिय-प्रिया का मिलन होता है और दिल की शहनाई की गूँज में सुनाई पड़ता है—

ये सब स्फुलिंग हैं मेरी, उस ज्वालामुखी जलन के।
कुछ शेष चिह्न हैं केवल, मेरे उस महामिलन के॥ (प्रसाद)

(ङ) एक-रूपता—यह मिलन महानन्द के रूप में परिवर्तित हो जाता है, आत्मा आनन्द रूप प्रिय में खोकर अनुभव करने लगती है—

जल थल मरुत व्योम में, जो छाया सब ओर।
खोज-खोजकर खो गई, मैं पागल प्रेम विभोर॥

आचार्य शुक्ल ने रहस्यवाद के दो रूप माने हैं—साधनात्मक रहस्यवाद और भावात्मक रहस्यवाद।

कबीर, जायसी, माखनलाल चतुर्वेदी, मुकुटधर पाण्डेय, प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी वर्मा, हरिकृष्ण 'प्रेमी' आदि इस धारा के प्रमुख कवि हैं, जिन्होंने अद्वैत-भावना, दाम्पत्य-प्रेम, प्रतीक-शैली और मुक्तक गीतों में रहस्यवादी अभिव्यक्तियाँ की हैं।

हिन्दी में प्रचलित प्रतीकवाद, अरूपवाद, अभिव्यंजनावाद और संकेतवाद रहस्यवाद के ही विभिन्न रूप और अंग हैं।

(381) हिन्दी साहित्य में प्रगतिवाद

संकेत बिंदु—(1) जीवन में यथार्थ समस्याओं का चित्रण (2) प्रगतिवाद का अर्थ (3) प्रगतिवाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ (4) शोषितों को प्रेरणा और मार्क्सवाद का समर्थन (5) उपसंहार।

जिस प्रकार द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मकता और उपदेशात्मकता की प्रतिक्रिया में छायावाद का जन्म हुआ था, उसी प्रकार छायावाद की कल्पनात्मकता और पलायनवाद के विरोध में एक नई धारा का जन्म हुआ। इस धारा के कवियों ने कविता को कल्पना के जाल से मुक्त कर जीवन के वास्तविक धरातल पर खड़ा करने का प्रयत्न किया। जीवन की यथार्थ समस्याओं का चित्रण इस धारा का मुख्य विषय बना। यह धारा साहित्य में प्रगतिवाद के नाम से प्रतिष्ठित हुई।

प्रगति का अर्थ है—'आगे बढ़ना' और वाद का अर्थ है—'सिद्धांत'। अत: प्रगतिवाद का अर्थ है—आगे बढ़ने का सिद्धान्त। इस अर्थ के अनुसार प्राचीन से नवीन की ओर, आदर्श से यथार्थ की ओर, उच्चवर्ग से निम्नवर्ग की ओर तथा शान्ति से क्रान्ति की ओर बढ़ना ही प्रगतिवाद है।

परन्तु छायावादी युग के बाद का प्रगतिवाद विशेष अर्थ में रूढ़ हो गया। उसके अनुसार इसका अर्थ है—'पश्चिम के साम्यवादी दृष्टिकोण को आधार मानकर आगे बढ़ने का

सिद्धान्त।' अतः यह भी कहा जाता है कि राजनीति के क्षेत्र में जो साम्यवाद है, साहित्य के क्षेत्र में वही प्रगतिवाद है।

प्रगतिवाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं—

(1) सामाजिक यथार्थवाद—समाज की आर्थिक विषमता के कारण दीन-दरिद्र-दलित वर्ग के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि के प्रसारण को इस वर्ग के कवियों ने प्रमुख स्थान दिया है और कृषक, मजदूर, कच्चे घर, मटमैले बच्चों को अपने काव्य का विषय बनाया है।

सड़े घूर की गोबर की बदबू से दबकर।
महक जिन्दगी के गुलाब की मर जाती है। —केदारनाथ अग्रवाल

(2) मानवतावाद का प्रकाशन—वह मानवता की अपरिमित शक्ति में विश्वास प्रकट करता है और ईश्वर के प्रति अनास्था प्रकट करता है—

जिसे तुम कहते हो भगवान्, जो बरसाता है जीवन में
रोग, शोक, दुःख, दैन्य, अपार, उसे सुनाने चले पुकार!

(3) क्रांति का आह्वान—प्रगतिवादी कवि समाज में क्रांति की ऐसी आग भड़काना चाहता है, जिसमें मानवता के विकास में बाधक समस्त रूढ़ियाँ जलकर भस्म हो जाएँ—

देखो मुट्ठी भर दानों को, तड़प रही, कृषकों की काया।
कब से सुप्त पड़े खेतों से, देखो 'इन्कलाब' घिर आया।। (अंचल)

(4) शोषकों, सेठों, सामन्तों के प्रति आक्रोश—प्रगतिवाद दलित एवं शोषित समाज के खटमलों—पूँजीवादी सेठों, साहूकारों और राजा-महाराजाओं के शोषण के चित्र उपस्थित कर उनके अत्याचारों का पर्दाफाश करना चाहता है—

ओ मदहोश बुरा फल हो, शूरों के शोणित पीने का।
देना होगा तुझे एक दिन, गिन-गिन मोल पसीने का।।

(5) शोषितों को प्रेरणा—प्रगतिवादी कवि शोषित समाज को स्वावलम्बी बनाकर उन्हें अपना उद्धार करने की प्रेरणा देता है।

न हाथ एक अस्त्र हो, न साथ एक शस्त्र हो।
न अन्न नीर वस्त्र हो, हटो नहीं, डटो वहीं, बढ़े चलो, बढ़े चलो।

(6) रूढ़ियों का विरोध—इस धारा के कवि बुद्धिवाद का हथौड़ा लेकर सामाजिक कुरीतियों पर तीखे प्रहार कर उनको चकनाचूर कर देना चाहते हैं—

गा कोकिल! बरसा पावक कण, नष्ट-भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन। (पन्त)

(7) सामाजिक समस्याओं का चित्रण—प्रगति का उपासक कवि अपने समय की अकाल आदि समस्याओं की ओर आँखें खोलकर देखता है और उनका यथार्थ रूप उपस्थित कर समाज को जागृत करना चाहता है—

बाप बेटा बेचता है
भूख से बेहाल होकर, धर्म धीरज प्राण खोकर
हो रही अनरीति बर्बर, राष्ट्र सारा देखता है।

(8) मार्क्सवाद का समर्थन—इस धारा के कुछ कवियों ने अपनी संस्कृति की ओर से आँखें मूँदकर साम्यवाद के प्रवर्तक कार्लमार्क्स तथा उसके सिद्धान्तों का समर्थन किया है—

साम्यवाद के साथ स्वर्ग-युग करता मधुर पदार्पण।

और साथ ही साम्यवादी देशों का गुणगान भी किया है—

लाल रूस का दुश्मन साथी! दुश्मन सब इन्सानों का।

(9) साधारण कला-पक्ष—प्रगतिवाद जनवादी है, अत: वह जन-भाषा का प्रयोग करता है। उसे ध्येय को व्यक्त करने की चिन्ता है, काव्य को अलंकृत करने की चिन्ता नहीं। अत: वह कहता है—

तुम वहन कर सको जन-जन में मेरे विचार।
वाणी! मेरी चाहिए क्या तुम्हें अलंकार।। —पन्त

छन्दों में भी अपने स्वच्छन्द दृष्टिकोण के अनुसार उसने मुक्तक छन्द का ही प्रयोग किया है।

पन्त, निराला, दिनकर, नरेन्द्र शर्मा, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', शिवमंगलसिंह 'सुमन', उदयशंकर भट्ट, केदारनाथ अग्रवाल आदि प्रसिद्ध प्रगतिवादी कवि हैं।

(382) हिन्दी साहित्य में प्रयोगवाद

संकेत बिंदु—(1) प्रयोगवाद का जन्म और अर्थ (2) प्रयोगवाद के स्वरूप पर आलोचकों की धारणाएँ (3) प्रगतिवाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ (4) वैचित्र्य प्रदर्शन, प्रकृति चित्रण (5) उपसंहार।

'प्रयोग' शब्द का अर्थ है, 'नई दिशा में कार्य करने का प्रयत्न।' जीवन के सभी क्षेत्रों में निरन्तर प्रयोग चलते रहते हैं। काव्य-जगत् में भी प्रयोग होते ही रहते हैं। सभी जागरूक कवियों की रचनाओं में रूढ़ियों को तोड़कर आगे बढ़ने की प्रवृत्ति किसी-न-किसी रूप में अवश्य दिखाई देती है, किन्तु सन् 1943 के पश्चात् हिन्दी कविता में नवीनता की प्रवृत्ति ने इतना जोर पकड़ा कि इस युग की कविता-धारा का नाम ही 'प्रयोगवाद' पड़ गया।

प्रयोगवाद के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए इस धारा के कवियों एवं कुछ प्रमुख आलोचकों की धारणाएँ इस प्रकार हैं—

'अज्ञेय'—'प्रयोगशील कविता में नए सत्यों का, नई यथार्थताओं का जीवित बोध भी है, उन सत्यों के साथ नए रागात्मक सम्बन्ध भी और उनको पाठक या सहृदय तक महुँचाने यानि साधारणीकरण की शक्ति भी है।'

डॉ. धर्मवीर 'भारती'—प्रयोगवादी कविता में भावना है, किन्तु हर भावना के आगे एक प्रश्न-चिह्न लगा है। इसी प्रश्न-चिह्न को आप बौद्धिकता कह सकते हैं। सांस्कृतिक ढाँचा चरमरा उठा है और यह प्रश्न-चिह्न उसी की ध्वनि-मात्र है।'

प्रयोगवादी कविता में मुख्य रूप से निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं—

(1) घोर अहंनिष्ठ वैयक्तिकता—प्रयोगवादी कवि समाज-चित्रण की अपेक्षा वैयक्तिक कुरूपता का प्रकाशन करता है। मन की नग्न एवं अश्लील मनोवृत्तियों का चित्रण करता है। अपनी असामाजिक एवं अहंवादी प्रकृति के अनुरूप मानव जगत् के लघु और क्षुद्र प्राणियों को काव्य में स्थान देता है। भावुकता के स्थान पर बौद्धिकता की प्रतिष्ठा करता है—

चलो उठें अब
अब तक हम थे बन्धु
सैर को आए—
और रहे बैठे तो / लोग कहेंगे
धुंधले में दुबके दो प्रेमी बैठे हैं
वह हम हों भी / तो यह हरी घास ही जाने। —अज्ञेय

(2) अश्लील प्रेम प्रदर्शन—प्रयोगवादी कवि मांसल प्रेम एवं दमित वासना की अभिव्यक्ति में रस लेता है। वह अपनी ईमानदारी यौन-वर्जनाओं के चित्रण में प्रदर्शित करता है—

चली आई बेला सुहागन पायल पहन...
बाण-बिद्ध हरिणी-सी
बाँहों में सिमट जाने की
उलझने की, लिपट जाने की
मोती की लड़ी समान।

(3) विद्रोह का स्वर—प्रयोगवादी कवि प्राचीन रूढ़ियों का परित्याग करता है और आततायी सामाजिक परिवेश को चुनौती देता है—

ठहर-ठहर आततायी! जरा सुन ले।
मेरे क्रुद्ध वीर्य की पुकार आज सुन ले॥ —अज्ञेय

(4) सामाजिक और राजनीतिक विद्रूपता के प्रति व्यंग्य—प्रयोगवादी कवि वर्तमान सामाजिक और राजनीतिक कुरूपता के प्रति सशक्त व्यंग्य करना अपना धर्म समझता है—

मुँसिफ बना दामाद
भतीजे ने पाया प्रमोशन।
बेटे ने पकड़ा
दामोदर वेली कारपोरेशन। —नागार्जुन

(5) वैचित्र्य प्रदर्शन—कहीं-कहीं वर्णन और वर्ण्य वैचित्र्य प्रदर्शन भी प्रयोगवादी कवियों ने किए हैं। वस्तुतः यह प्रवृत्ति बड़ी हास्यास्पद है। जैसे—

अगर कहीं मैं तोता होता!
तो क्या होता? / तो क्या होता?
तो होता/तो तो तो ता ता ता ता
होता होता होता होता।

(6) प्रकृति-चित्रण—नई कविता में प्रकृति-चित्रण शुद्ध कला के आग्रह से पूर्ण है, जिसमें साम्य की अपेक्षा वैषम्य की प्रचुरता है। हाँ, प्रकृति-चित्रण में बिम्बों का सफलतापूर्वक अंकन है।

नहीं
साँझ
एक असभ्य आदमी की
जम्हाई है। —पंत

(6) व्यापक सौन्दर्य-बोध—अति उपेक्षित वस्तु या स्थान का सौन्दर्यपूर्ण वर्णन करना प्रयोगवादी कवि की कला का गुण है—

हवा चली
छिपकली की टाँग
मकड़ी के जाले में फँसी रही, फँसी रही।

(8) शैली की नवीनता—प्रयोगवादी कवि कविता के परम्परागत कलापक्ष का भी विरोधी है। यही कारण है कि छायावाद की लाक्षणिक शब्दावली के स्थान पर उसने साधारण लोक-प्रचलित शब्दों का प्रयोग किया है एवं प्रचलित उपमानों के स्थान पर सर्वथा नए एवं आधुनिक जीवन में प्रयुक्त होने वाले तत्त्वों को उपमान के रूप में प्रयुक्त किया है।

आपरेशन थियेटर-सी
जो हर काम करते हुए चुप है।

× ×

प्यार का नाम लेते ही
बिजली के स्टोव-सी
जो एकदम सुर्ख हो जाती है।

इन प्रवृत्तियों को देखते हुए कहा जा सकता है कि प्रयोगवादी कविता में गुण और दोष, दोनों ही विद्यमान हैं। यह धारा आज हिन्दी में उत्तरोत्तर विकसित होती जा रही है।

प्रयोगवाद का जन्म सन् 1943 में स्वीकार किया जाता है। इस वर्ष श्री 'अजेय' के द्वारा सम्पादित प्रयोगवादी कविताओं के सर्वप्रथम संग्रह 'तार सप्तक' का प्रकाशन हुआ था। इस संग्रह में सर्वश्री अज्ञेय, गजानन माधव 'मुक्तिबोध', नेमिचन्द्र जैन, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर और रामविलास शर्मा की कविताएँ ली गई थीं।

इसके बाद सन् 1951 में 'दूसरा सप्तक' प्रकाशित हुआ। उसमें सर्वश्री भवानीशंकर मिश्र, शकुन्तला माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेरबहादुर सिंह, नरेश मेहता, रघुवीर सहाय तथा धर्मवीर 'भारती' की कविताएं संगृहीत हैं। इस समय तक प्रयोगवादी कविता का स्वरूप बहुत कुछ स्पष्ट हो गया था। अब 'तीसरा सप्तक' और 'चौथा सप्तक' भी प्रकाशित हो चुका है।

(383) हिन्दी साहित्य में नई कविता

संकेत बिंदु—(1) नये पत्ते के प्रकाशन से आरम्भ (2) कविता की मूल स्थापनाओं में मुख्य तत्त्व (3) कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ (4) समसामायिक और भाषा में खुलापन का चित्रण (5) उपसंहार।

जिस काव्य के ऊपर मात्र प्रयोगवाद का विवादास्पद आरोप और प्रत्यारोप लगाया जा रहा था, उससे भिन्न स्तर पर सर्वथा विषयवस्तु की नवीनता को लेकर नयी कविता को प्रतिष्ठित करने की आवश्यकता अनुभव करके सन् 1953 में 'नये पत्ते' का प्रकाशन हुआ। सन् 1954 में जगदीश गुप्त तथा रामस्वरूप चतुर्वेदी के सम्पादन में प्रकाशित होने वाला संकलन 'नयी कविता' में सर्वप्रथम अपने समस्त सम्भावित प्रतिमानों के साथ प्रकाश में आयी। 'आलोचना' पत्रिका के कुछ अंकों द्वारा इस नई काव्य-प्रवृत्ति में आन्दोलनात्मक त्वरा आई और इसकी वैचारिक पीठिका बनी।

नयी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

(1) **यथार्थवादी अहंवाद**—यथार्थ की स्वीकृति के साथ-साथ कवि अपने अस्तित्व को उस यथार्थ का अंश मानकर उसके प्रति जागरूक अभिव्यक्तियाँ देता है—

तो हमें स्वीकार है वह भी / उसी में रेत होकर—
फिर छनेंगे हम / जमेंगे हम कहीं फिर पैर टेकेंगे।
कहीं फिर भी खड़ा होगा, नए व्यक्तित्व का आकार।
मातः! उसे फिर संस्कार तुम देना। —अज्ञेय

(2) **व्यक्ति-अभिव्यक्ति की स्वच्छन्दता**—आत्मानुभूति की समस्त संवेदना को बिना किसी आग्रह के रखने की चेष्टा है—

जहाँ नंगे अंधेरों को / और भी उघाड़ता रहता है
एक नंगा तीखा, निर्मम प्रकाश-
जिसमें कोई प्रभा-मंडल नहीं बनते।
केवल चौंधियाते हैं तथ्य, तथ्य, तथ्य-
कितनी बार मुझे / खिन्न, विकल, संत्रस्त
कितनी बार! —अज्ञेय

(3) **परम्परागत मूल्यों की अप्रासंगिकता**—नयी कविता के लिए मूल्य न सनातन है, न अन्तिम और न निरपेक्ष। मोहभंग-चिंतन का यहीं से आरम्भ होता है। यह चिंतन परम्परागत मूल्य-व्यवस्था को नकारता हुआ भी मूल्य-स्तर पर संक्रांत है, क्योंकि वह मानव-मूल्यों की वांछा की सापेक्षता में है—

संकल्प-धर्मा चेतना का रक्त प्लावित स्वर
हमारे ही हृदय का गुप्त स्वर्णाक्षर

प्रकट होकर विकट हो जाएगा। —मुक्तिबोध

(4) लघुता के दर्शन—नयी कविता में व्यक्ति के स्वत्व और अस्तित्व-बोध के प्रश्न को जन-सामान्य की संवेदना के स्तर पर आंका गया है। इसे लघुमानव या लघुता का दर्शन भी कह सकते हैं। नयी कविता में क्षण की महत्ता और लघु मानव की प्रतिष्ठा जीवन के प्रति संसक्ति और स्वीकार के भाव से प्रेरित है—

सारा जीवन मेरा साधारण ही बीता।
वह सुबह उठा तो काम-काज दफ्तर फाइल।
झिड़की-फटकारें वही-वही कहना-सहना। —कीर्ति चौधरी

(5) आधुनिक यथार्थ से द्रवित व्यंग्यात्मक दृष्टि—जीवन की कटुताओं और विषमताओं के प्रति कवि की व्यंग्यपूर्ण भावनाएं व्यक्त हुई हैं—

बुद्धि का भाल ही फोड़ दिया।
तर्कों के हाथ उजाड़ दिए
जम गए, जाम हुए, फँस गए
अपने ही कीचड़ में धँस गए!!
विवेक बघार डाला स्वार्थों के तेल में
आदर्श खा गए। —मुक्तिबोध

(6) समसामयिकता का सम्पूर्ण चित्रण—रस-रोमांच के साथ-साथ आधुनिकता और समसामयिकता का प्रतिनिधित्व सम्पूर्ण रूप में व्यक्त हुआ है—

अब, जब हम / हर तरह से टूट चुके हैं।
अपना ही प्रतिबिम्ब / हमें दिखाई नहीं देता।
अपनी ही चीख / गैर की मालूम पड़ती है।
एक आखरी बयान / जीने और मरने का।
हम दर्ज कराना चाहते हैं
वे छीनने आये हैं / हमसे हमारी भाषा। —सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

(7) बिम्ब-बहुला कविता—चित्रमयता और अनुशासित शिल्प जीवन के नए संदर्भों में उभरनेवाली अनुभूतियों, सौंदर्य-प्रतीतियों और चिंतन आयामों से सम्पृक्त बिम्ब ग्रहण करता है। लोक-जीवन में लिए नए बिम्बों के माध्यम से लोक-जीवन की जटिल अनुभूतियों और प्रश्नों को ध्वनित करता है। इसलिए बिम्ब नयी कविता की मूल छवि है—

मैं
रथ का टूटा हुआ पहिया हूँ
लेकिन मुझे फैंको मत
क्या जाने कब
इस दुरूह चक्रव्यूह में
अक्षौहिणी सेनाओं को चुनौती देता हुआ
कोई दुस्साहसी अभिमन्यु आकर घिर जाए। —धर्मवीर 'भारती'

(8) भाषा में खुलापन और ताजगी, लोक शब्दों का चयन—लोक शब्द और नए शब्दों (टोटो, भभके-खिंचा, ठिठुरन, ढसकना, डाकती, फुनगियाती आदि) का प्रयोग धड़ल्ले से हो रहा है।

पहाड़ियों से घिरी हुई / इन छोटी-सी घाटी में
ये मुँह झौंसी चिमनियाँ बराबर / धुआँ उगलती जाती हैं।

नई कविता भाव-बोध के स्तर पर अनेक दृष्टि से पूर्ववर्ती काव्य-प्रवृत्तियों से भिन्न है। यह भिन्नता मात्र उद्देश्य गत नहीं, दृष्टिगत भी है। जीवन के प्रवाह में उसकी संदर्भ युक्त अभिव्यक्ति नई कविता का भावबोध है। संदर्भ विशेष में प्रत्येक वस्तुस्थिति के प्रति सापेक्ष मूल्यों का आग्रह इसकी मनोनीत नियति न होकर आत्मगत सत्य है। इसलिए उसमें न छायावाद की भाँति उदात्त के नाम पर पलायन करने की प्रवृत्ति है, न प्रगतिवाद के नाम पर कोई साम्प्रदायिक (साम्यवादी) आग्रह। प्रयोगवादी कविता में प्रयोग बाह्य शिल्पिक था जबकि नई कविता में प्रयोग पूरे संरचनात्मक तंत्र में व्याप्त है।

दूसरी ओर, नई कविता का कवि पूर्ववर्ती काव्यधारा से भिन्न यथार्थ और जीवन को एक साथ वहन करते हुए भुक्त क्षणों के दायित्वों के प्रति आग्रहशील है।

नई कविता के कवियों में प्रमुख नाम हैं—सर्वश्री अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, भवानीप्रसाद मिश्र, शमशेर बहादुर सिंह, धर्मवीर 'भारती', कुँवर नारायण, मुक्तिबोध, केदारनाथसिंह, रामदरश मिश्र, लक्ष्मीकांत वर्मा।

(384) स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी

संकेत बिंदु—(1) हिंदी कहानी का समृद्ध इतिहास (2) नई कहानी में यथार्थ चित्रण की परम्परा (3) समकालीन कहानी में विषय वैविध्य (4) समांतर कहानी और उसके बाद का युग (5) उपसंहार।

भारत की स्वतंत्रता के साथ ही हिन्दी कहानी को लगभग 50 वर्ष के इतिहास की समृद्ध परंपरा प्राप्त थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही सामाजिक जीवन में जो नवोन्मेष प्रत्येक क्षेत्र में दिखाई देता है, हमारा साहित्य भी उससे अछूता न रहा। हिन्दी कहानी भी स्वतंत्रता के बाद के वर्षों में एक नई ऊर्जा से सम्पन्न होने लगी जिसे 'नई कहानी' नाम के आंदोलन के रूप में जाना गया। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, नई कहानी ने यद्यपि अपनी पुरानी परंपरा से एकदम से नाता नहीं तोड़ा फिर भी उसमें इतना स्पष्ट परिवर्तन था कि उसे 'नई कहानी' के नाम से पुकारा गया। आजादी के बाद से लगभग 2-3 वर्षों में ही कहानी ने अपने इस नए रूप को ग्रहण कर लिया था और 1956 ई. में भैरवप्रसाद गुप्त के संपादन में 'कहानी' पत्रिका का नव-वर्षांक प्रकाशित हुआ जिसने इस कहानी आंदोलन को पूर्णतः स्थापित कर दिया। इससे पूर्व इस कहानी आंदोलन को लेकर खूब चर्चाएँ-परिचर्चाएँ हुईं। कमलेश्वर, मोहन 'राकेश' तथा राजेन्द्र यादव की त्रयी को यह श्रेय दिया जाता है कि इन

तीनों ने मिलकर 'नई कहानी' आन्दोलन को पूरी तरह प्रस्थापित किया। डॉ. नामवरसिंह जैसे आलोचक ने भी अपने लेखों-भाषणों द्वारा नई कहानी की प्रस्थापना में योग दिया।

आखिर ऐसा क्या था इस कहानी में जो इसे 'नयी' कह कर पुकारा गया। वास्तव में इससे पूर्व व्यक्ति-मन के अन्तर्द्वन्द्व, ऊहापोह को लेकर इतनी बारीकी से कभी नहीं लिखा गया। यथार्थ-चित्रण की एक नयी परंपरा हमें नई कहानी के युग से ही प्राप्त हुई। यह यथार्थ मध्यवर्गीय व्यक्ति के जीवन पर केन्द्रित होकर उसकी नित्य की जीवन-चर्या और समस्याओं को कहानी में चित्रित करने लगा। इस चित्रण में एक अभूतपूर्व ईमानदारी के दर्शन होते हैं, इसीलिए इसे 'अनुभव की प्रामाणिकता' भी कहा गया है। कहानीकार का कहना था कि हम अपने भोगे हुए यथार्थ को ही कहानी में कह रहे हैं, जी रहे हैं। इसे ही उन्होंने प्रामाणिक अनुभव कहा। चाहे सामान्य मनुष्य की गरीबी और उससे उत्पन्न मजबूरियों का चित्रण था ('दोपहर का भोजन', 'राजा निरंबसिया', 'चीफ की दावत') चाहे दांपत्य सम्बन्धों के तिड़कते-दरकते रिश्ते थे (मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, मन्नू भण्डारी आदि की कहानियाँ), चाहे प्रेम का निरूपण था (यही सच है, आदि) चाहे समाज में नारी की बदली हुई स्थिति की बात थी (जिन्दगी और गुलाब के फूल), चाहे अविवाहिता नारी-जीवन में ऊब और उकताहट थी (परिन्दे) या वृद्धावस्था का अपनी तरह का अकेलापन था (वापसी)। राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, मोहन 'राकेश', धर्मवीर 'भारती', भीष्म साहनी, अमरकांत, निर्मल वर्मा, उषा प्रियंवदा, मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, शिवप्रसाद सिंह, फणीश्वरनाथ 'रेणु', मार्कण्डेय, रघुवीर सहाय, शानी, शेखर जोशी, शैलेश 'मटियानी', हरिशंकर परसाई आदि अनेक कहानीकारों ने अपने-अपने ढंग से हिन्दी कहानी के भण्डार को समृद्ध किया और लगने लगा कि बदली हुई राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों की विषम स्थितियों, युग-जीवन के सत्य से कहानी अपनी संगति नहीं बिठा पा रही है। इसलिए इससे बाद के समय में, नई कहानी से विद्रोह के रूप में, अनेक आंदोलन उठ खड़े हुए जिन्हें 'अकहानी आन्दोलन', 'समकालीन कहानी आंदोलन', 'सचेतन कहानी आंदोलन', 'सहज कहानी', 'समांतर कहानी', 'जनवादी कहानी', 'सक्रिय कहानी' आदि नामों से जाना गया। इनमें से कुछ आंदोलन एक के बाद एक भी आए और कुछ समान्तर रूप में भी चलते रहे। इन सब आंदोलनों का पृथक्-पृथक् अध्ययन न करते हुए, इन सभी को हम समकालीन कहानी की सीमा में समेट सकते हैं या कहा जा सकता है कि नई कहानी के बाद का समय, 1965 ई. के बाद की कहानी का समय 'समकालीन कहानी' का समय है।

समकालीन कहानी में विषय की दृष्टि से बड़ा विस्तार और वैविध्य मिलता है। हमारे सामाजिक जीवन का कोई पक्ष नहीं है, कोई क्षेत्र नहीं है जिस पर कहानी न लिखी गई हो। समकालीन कहानी केवल यथार्थ का चित्रण-भर करके नहीं रुक जाती है, उसमें एक दृष्टिबोध भी है कि कैसे इन विकट स्थितियों से निपटा जाये, अथवा सही और गलत क्या है।

समकालीन कहानी के समय में इतनी अधिक कहानियाँ लिखी गयी हैं कि सबके या कहें श्रेष्ठ के भी नाम-भर गिनाना सुकर कार्य नहीं है। प्रयत्न यह होगा कि प्रत्येक आंदोलन और दशक के प्रमुख कहानीकारों के प्रदाय (देन) की संक्षिप्त चर्चा हो जाए। नई कहानी के एकदम बाद के दौर में '**अकहानी**' आंदोलन उठा, जिसमें जगदीश चतुर्वेदी, गंगाप्रसाद 'विमल', रवीन्द्र कालिया, परेश, दूधनाथसिंह प्रमुख हैं। इन्होंने स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों और प्रेम-सम्बन्धों पर खूब खुल कर लिखा। यदि एक ओर ऐसी कहानियों का योगदान यह है कि इन्होंने एक खुली दृष्टि के विकास में योग दिया तो दूसरी ओर यह कमी भी है कि कहानी को केवल यौन-अनुभवों तक ही सीमित कर दिया। इस सबके प्रति विद्रोह कर **सचेतन कहानी** आंदोलन आया जिसमें महीप सिंह, मधुकर सिंह, हृदयेश, हिमांशु जोशी, कुलदीप बग्गा, कुलभूषण, रामदरस मिश्र, गिरिराज किशोर आदि लेखकों ने कहानी को पुनः अपने-अपने क्षेत्र की समस्याओं से जोड़ा।

इसके पश्चात् '**समांतर कहानी आंदोलन**' का संचालन प्रसिद्ध कहानीकार कमलेश्वर ने किया जिसमें सामान्य मनुष्य के आर्थिक संघर्ष को प्रमुखता से चित्रित किया गया। कामतानाथ, मधुकर सिंह, सुधा अरोड़ा, सुदीप, सतीश जमाली, निरुपमा सेवती, मृदुला गर्ग, श्रवण कुमार आदि अनेक लेखकों की पहल पर समांतर कहानी की प्रस्थापना के लिए गोष्ठियाँ आदि आयोजित हुईं। बाद में अनेक लेखक 'सारिका' पत्रिका के माध्यम से इस आन्दोलन से जुड़ गए। सारिका के 1974 अक्तूबर अंक से लेकर 1975 जुलाई अंक तक दस अंकों में समानान्तर कहानी की धूम रही। आठवाँ दशक समाप्त होते-होते कहानीकारों को यह बात समझ में आने लगी कि सही कहानी, श्रेष्ठ या सशक्त कहानी, किसी भी आंदोलन के लेबिल की मुहताज नहीं होती। फलतः आठवें, नौवें दशक और बाद के कथा-समय में उभरी पीढ़ी ने केवल अच्छी कहानी लिखने में ही लेखन की सार्थकता मानी। राजी सेठ, अब्दुल बिस्मिल्लाह, मिथिलेश्वर, स्वदेश दीपक, राकेश वत्स, मृणाल पाण्डे, मृदुला गर्ग, सत्येन कुमार, गोविन्द मिश्र, चित्रा मुद्‌गल, रमेश उपाध्याय, धीरेन्द्र अस्थाना, नमिता सिंह, सिम्मी हर्षिता आदि अनेक नाम हैं, जिन्होंने आठवें दशक में न केवल सामान्य मनुष्य की संघर्ष-गाथा को शब्द दिए अपितु अपने समय और समाज की भयंकर विसंगतियों, राजनीति क्षेत्र की गलाजत, प्रशासनिक भ्रष्टाचार, विभिन्न सामाजिक इकाइयों और संस्थाओं में व्याप्त कदाचार का आँख खोलने वाला चित्रण कर आपाद मस्तक भ्रष्टाचार में संलिप्त सारी व्यवस्था की खबर ली। इन बदली हुई समाजार्थिक (सोशिओ इकॉनामिक) स्थितियों में मानवीय रिश्तों और सम्बन्धों के भी समीकरण बदले हुए हैं। आत्मीय सम्बन्धों में वह गरिमा और ऊष्मा शेष ही नहीं रह गई जो जीवन की पूँजी थी। संयुक्त परिवारों के टूटने से घर-परिवार में वृद्ध की स्थिति और भी दयनीय हो चली। सम्बन्धों के इस बदलते सत्य को कहानी ने बखूबी चित्रित किया है। काशीनाथ सिंह, गोविन्दमिश्र, अब्दुल बिस्मिल्लाह, प्रियंवद आदि पुरुष कथाकारों ने तथा सुधा अरोड़ा, चंद्रकान्ता, चित्रा मुद्‌गल, ममता कालिया, सिम्मी हर्षिता, मंजुल भगत आदि महिला

कथाकारों ने बहुत सशक्त कहानियाँ लिखीं। यह भी निस्संकोच रूप में कहा जा सकता है कि सम्बन्धों के सत्य पर पुरुषों की अपेक्षा महिला कथाकारों ने ज्यादा बेहतर ढंग से लिखा।

इधर कथाकारों की बिलकुल नई पीढ़ी ने कहानी को सांस्कृतिक संकट के सम्मुख खड़ा किया है। टी. वी. कल्चर, उपभोक्तावाद और भूमण्डलीकरण के बढ़ते कुप्रभावों, खुले बाजार की अर्थ-व्यवस्था ने बहुराष्ट्रीय कंपनियों के मायाजाल को जिस रूप में हमारे सामने पसारा है, उसका सजीव चित्रण संजीव, उदयप्रकाश, जयनंदन, प्रभा खेतान, अलका सरावगी, सुषम बेदी, ऋता शुक्ल, जया जादवानी, मैत्रेयी पुष्पा, क्षमा शर्मा, संजय खाती, अशोक शुक्ल, चन्द्रकिशोर जायसवाल, रामधारीसिंह दिवाकर आदि अनेक लेखक अपनी सशक्त कलम से कर हिन्दी कहानी को समृद्धि के चरम शिखरों पर पहुँचा रहे हैं।

(385) स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास

संकेत बिंदु—(1) भारतीय परिवेश के परिवर्तन की आवाज़ (2) आंचलिक और ग्राम्य जीवन पर आधारित उपन्यास (3) स्वतंत्रता प्राप्ति के महत्त्वपूर्ण उपन्यास (4) सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यास (5) उपसंहार।

भारत ने शताब्दियों पश्चात् सन् 1947 में स्वतंत्रता का स्वर्ण विहान देखा था। एक ओर देश में नव-निर्माण के स्वप्न और आशा-आकांक्षाएं थीं तो दूसरी ओर राजनीति और शासन की अपनी-अपनी तरह की सीमाएँ, जिनसे जो इच्छित परिणाम सामने आने चाहिएं थे, वे नहीं आ पाये। इससे एक प्रकार का मोहभंग हुआ। स्वातंत्र्य के प्रारम्भिक वर्षों के इस मोह-भंग के पश्चात् भारतीय राजनीति में भ्रष्टाचार, कदाचार का ऐसा नंगा नाच प्रारंभ होता है जो कभी रुकने का नाम ही नहीं लेता। अकाल, भूकम्प और अन्य अनेक प्राकृतिक आपदाओं तथा बीमार शासन-तंत्र के चलते हुए भी देश ने अभूतपूर्व प्रगति की है। आजादी के बाद के उपन्यास में भारतीय परिवेश के परिवर्तन की पद-चाप पूरी तरह सुनी जा सकती है। सामाजिक जीवन के इस बाहरी परिवेश-परिवर्तन के साथ-साथ हमारे आत्मीय संबंधों की धुरी भी पूरी तरह बदल गई है। रिश्ते-नातों में बदलाव के लक्षण समाज का प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक स्तर पर अनुभव करता है। कितनी ही ऐसी औपन्यासिक कृतियाँ रची गईं जो मानवीय रिश्तों में आये इस परिवर्तन को लक्षित कर उनका गंभीर विश्लेषण प्रस्तुत करती हैं। समाज के बाह्य पक्ष और मानवीय संबंधों के नये-नये समीकरणों पर जो उपन्यास लिखे गए उनसे हिन्दी उपन्यास की दो धाराएँ स्पष्टतः लक्षित की जा सकती हैं—

(क) सामाजिक चिंता के उपन्यास

(ख) मानवीय सम्बन्धों पर आधारित उपन्यास

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास के प्रायः पचास वर्षों के इतिहास का अध्ययन करते समय एक बात और ध्यान में रखने योग्य है। इस अवधि में इतने अधिक उपन्यासों की रचना

हुई है कि सबके नाम गिनाना और उन्हें स्मरण भी रखना एक बहुत ही मुश्किल काम है। इसीलिए इस विकास को लक्षित करते हुए केवल प्रमुख कृतियों को ही केन्द्र में रखा जा सकता है। विभिन्न धाराओं एवं प्रवृत्तियों को ध्यान में रखते हुए प्रमुख उपन्यासों की संक्षिप्त चर्चा ही यहाँ संभव हो सकेगी।

भारत के नव-निर्माण की ओर ध्यान जाते ही सबसे पहले हमारा ध्यान ग्रामों की ओर ही जाता है। ग्राम्य जीवन को केन्द्र बनाकर अनेक उपन्यास प्रकाशित हुए, जिनमें स्वतंत्रता के बाद फणीश्वरनाथ 'रेणु' का 'मैला आँचल' अत्यंत प्रसिद्ध हुआ तथा बिहार के ग्रामों में अंचल विशेष का चित्रण करने के कारण इसे आंचलिक उपन्यास के रूप में जाना गया। बिहार के पूर्णिया जिले के ग्राम को पिछड़े भारतीय ग्राम के रूप में अपना कर पूरे भारतीय ग्राम समाज का जीवंत प्रतीकात्मक चित्रण इस उपन्यास में हुआ है। अपनी भाषा की आंचलिकता के कारण भी यह उपन्यास विवाद के केन्द्र में रहा। भारतीय ग्राम्य जीवन का चित्रण करने वाला दूसरा सशक्त उपन्यास श्रीलाल शुक्ल का 'राग दरबारी' आया, जिसमें स्वतंत्रता के बाद भारतीय ग्राम्य-जीवन को राजनीति के विविध प्रयोगों ने किस भ्रष्टता में डुबोया, उसका अत्यन्त प्रामाणिक और सशक्त चित्रण मिलता है। बाद में चलकर ग्रामीण-जीवन पर विवेकीराय के 'लोक ऋण' तथा 'सोना-माटी'; जगदीशचन्द्र का उपन्यास 'धरती धन न अपना', ऋता शुक्ला का 'अग्निपर्व' आदि भी महत्त्वपूर्ण उपन्यास हैं। इधर के बिलकुल ताजा उपन्यासों में मैत्रेयी पुष्पा के 'इदन्नमम' तथा 'चाक' भी बिलकुल नई दृष्टि से ग्रामीण-समाज का विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं।

स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में यशपाल के 'झूठा-सच' का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है, जिसमें भारत-पाक-विभाजन के समय को बहुत प्रामाणिकता और मार्मिक रूप में प्रस्तुत किया गया है। स्वातंत्र्योत्तर समय की राजनीतिक गलाजत और प्रशासनिक भ्रष्टाचार का भगवतीचरण वर्मा के 'सबहिं नचावत राम गुसाईं' में बहुत गहराई से चित्रित किया गया है। इसी शृंखला में अमृतलाल नागर के 'करवट' उपन्यास को भी महत्त्वपूर्ण उपन्यासों की कोटि में रखा जा सकता है। मन्नू भण्डारी के 'महाभोज' उपन्यास में भी राजनीति के छल-छंद को उजागर किया गया है। स्वातंत्र्योत्तर व्यक्ति-चिंता के उपन्यासों में अज्ञेय के 'शेखर एक जीवनी' (दो भाग) तथा 'नदी के द्वीप' उपन्यासों का विशेष महत्त्व है, जिनमें प्रेम जैसे तरल विषय को बहुत सूक्ष्मता से विश्लेषित किया गया है। उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के 'गिरती दीवारें', 'शहर में घूमता आईना', 'गर्म राख' भी लोकप्रिय उपन्यास रहे हैं।

भीष्म साहनी के उपन्यासों में विभाजन की त्रासदी पर 'तमस' तथा पंजाब के जनजीवन के शतवर्षीय इतिहास को प्रस्तुत करने की दृष्टि से 'मय्यादास की माड़ी' श्रेष्ठ उपन्यास हैं। शिवप्रसाद सिंह को बनारस के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को आधार बना कर उपन्यास लिखने के लिए विशेष ख्याति मिली। 'गली आगे मुड़ती है', 'अलग-अलग वैतरणी,' 'नीला चाँद', 'शैलूष', 'कुहरे में युद्ध' आपके प्रसिद्ध उपन्यास हैं।

राही मासूम 'रजा' के 'आधा गाँव' उपन्यास को भी ग्राम्य-समाज का चित्रण करने

वाले उपन्यासों में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना गया। गोविन्द मिश्र के उपन्यासों को भी विशेष ख्याति मिली। 'लाल पीली जमीन', 'हुजूर दरबार', 'तुम्हारी रोशनी में', 'धीर समीरे', 'पाँच आँगनों वाला घर' आदि उनके चर्चित उपन्यास हैं। गिरिराज किशोर के 'यथा प्रस्तावित' तथा 'ढाई घर' भी पठनीय उपन्यास हैं। बनारस के जुलाहा, बुनकरों के जीवन पर अब्दुल बिस्मिल्लाह का 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' उल्लेखनीय उपन्यासों की श्रेणी में है। मंजूर एहतेशाम के 'सूखा बरगद' में मुस्लिम सामाजिक जीवन को खंगाला गया है। सत्येन कुमार का 'छुट्टी का दिन', बदीउज्जमा का 'एक चूहे की मौत', छठा तंत्र; हृदयेश का 'साँड', शानी का 'काला जल' भी सातवें-आठवें दशक में चर्चा में रहे उपन्यास हैं।

अभी इधर हाल के वर्षों में जिन उपन्यासों की बहुत चर्चा रही है उनमें सुरेन्द्र वर्मा का 'मुझे चाँद चाहिए', विनोद कुमार शुक्ल का 'नौकर की कमीज' तथा 'खिलेगा तो देखेंगे', प्रभा खेतान का 'छिन्नमस्ता', असगर वजाहत का 'सात आसमान', मनोहरश्याम जोशी का 'हमजाद', अलका सरावगी का 'कलि-कथा : वाया बाईपास' अब्दुल बिस्मिल्लाह का 'मुखड़ा क्या देखे' प्रमुख हैं। इस प्रकार स्वातन्त्रोत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य अत्यन्त विपुल तथा विविधतामुखी है।

(386) स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक

संकेत बिंदु—(1) स्वतंत्र्योत्तर सामाजिक और प्रतीक नाटक (2) पौराणिक चरित्र के नाटक (3) राजनीतिक नाटक (4) सांस्कृतिक नाटक (5) नुक्कड़ नाटक।

देश की स्वतंत्रता के पश्चात् हिन्दी नाटक यथार्थ और रंगमंच से जुड़कर नई दिशा की ओर उन्मुख हुआ। हिन्दी नाटकों की कथावस्तु में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ। ऐतिहासिक और पौराणिक कथानक आधुनिक युगबोध की परिधि में बंधकर रूपायित किए जाने लगे। इस युग में अधिकांश नाटककारों ने सामाजिक-राजनैतिक संदर्भों को नये मुहावरे में ढालकर प्रस्तुत किया। जीवन की विसंगतियों, अन्तर्विरोधों, तनावों, कुंठाओं और जीवन की जटिल स्थितियों को नाटककारों ने नये कौशल से नाट्य-रचना प्रक्रिया में अभिव्यक्त किया।

सामाजिक नाटक

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी सामाजिक नाटकों में उल्लेखनीय हैं—**उपेन्द्रनाथ अश्क** का 'अंजो दीदी', 'भंवर' और 'अलग-अलग रास्ते'। **विष्णु प्रभाकर** का 'डॉक्टर' और 'युगे युगे क्रांति'। **नरेश मेहता** का 'खंडित यात्राएँ' और 'सुबह के घंटे'। **डॉक्टर लक्ष्मी नारायण लाल** का 'अंधा कुआँ', 'मादा कैक्टस', 'तीन आँखों वाली मछली', 'रातरानी', 'दर्पन' 'कलंकी' और 'करफ्यू'। **मोहन राकेश** का 'आधे अधूरे'। **मन्नू भंडारी** का 'बिना

दीवारों के घर', शंकर शेष का 'फंदी', 'पोस्टर' और 'चेहरे', 'बिन बाती के दीप', 'बंधन अपने अपने', 'कालजयी' और 'रक्त बीज'। **भीष्म साहनी** का 'हानुश' और 'कबिरा खड़ा बाजार में'। **मुद्राराक्षस** का 'मरजीवा' और 'तेंदुआ'। इन नाटकों ने सामाजिक-राजनीतिक जीवन के भ्रष्टाचार, पाखंड, अमानवीयता, मध्यवर्गीय जीवन की कड़वाहट, मानवीय मूल्यों के ह्रास और जीवन की यांत्रिकता पर विवेकपूर्ण ढंग से प्रश्न उठाये हैं।

प्रतीक नाटक

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल हिन्दी में प्रतीक-नाट्य साहित्य के प्रमुख नाटककार हैं। अंधा कुँआ, मादा कैक्टस, सूखा सरोवर, नाटक तोता-मैना, कर्फ्यू, अब्दुला दीवाना आदि नाटक डॉ. लाल के प्रसिद्ध प्रतीक नाटक हैं। **डॉ. धर्मवीर 'भारती'** रचित काव्य नाटक 'अंधा-युग' स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी-नाट्य-साहित्य की उल्लेखनीय उपलब्धि है, जिसमें युद्धोपरान्त उग आई ह्रासोन्मुख मानवीय संस्कृति का चित्र है। **मोहन 'राकेश'** का लहरों के राजहंस' **परितोष गार्गी** का 'छलावा' व 'मोहिनी', **दुष्यंत कुमार** का 'एक कंठ विषपायी', **संतोष कुमार नौटियाल** का 'चाय पार्टियाँ', **अज्ञेय** का 'उत्तर प्रियदर्शी', आदि प्रतीक नाटक स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी-नाट्य-साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। आधुनिक हिन्दी नाटककारों में समय के साथ चलने और समयानुसार प्रतीक सृजन करने की उर्वरता विद्यमान है। निस्संदेह आज का हिन्दी नाटक प्रतीक-विधान की दृष्टि से समृद्धिशाली है।

पौराणिक चरित्र के नाटक

प्रतीक नाटकों के साथ-साथ स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी नाटककारों ने अपनी नाट्य-कृतियों में मिथकीय (पौराणिक) चरित्रों को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। नाटककारों ने मिथिक को आधुनिक संदर्भों में रूपायित किया। समकालीन जीवन की विभीषिकाओं एवं क्रूर अमानवीय वास्तविकताओं से साक्षात्कार की जो शुरुआत 'अंधायुग', 'पहला राजा' और 'सूर्यमुख' जैसे नाटकों से हुई थी, जिनमें मिथकों का बहुत ही सार्थक प्रयोग हुआ था, उसी परंपरा को **गिरिराज किशोर** के 'प्रजा ही रहने दो', **शंकर शेष** के 'एक और द्रोणाचार्य', **लक्ष्मीनारायण लाल** के 'राम की लड़ाई', 'नरसिंह कथा' और 'सत्य हरिश्चन्द्र', **लक्ष्मीकांत वर्मा** के 'एक ठहरी हुई जिन्दगी', सुरेन्द्र **वर्मा के** 'द्रौपदी', 'आठवाँ सर्ग' और 'छोटे सैयद, बड़े सैयद', **मणि मधुकर** के 'इकतारे की आँख', '**दया प्रकाश सिन्हा के** 'कथा एक कंस की', **नरेन्द्र कोहली** के 'शंबूक की हत्या', **डॉ. विनय** के 'एक प्रश्न और', **रेवती शरण शर्मा** के 'राजा बलि की नयी कथा' और **लक्ष्मीनारायण भारद्वाज के** 'अश्वत्थामा' जैसे नाटकों ने आगे बढ़ाया।

राजनीतिक नाटक

बीसवीं शताब्दी के सातवें और आठवें दशक में राजनीतिक स्थितियों के बदलते

परिवेश ने नाटककार को नये ढंग से नाट्य-सृजन को परिभाषित करने के लिए बाध्य किया। राजनीति की सिद्धान्तहीनता और अवसरवादिता ने नाटककारों को नयी जमीन से जोड़ा। **डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल** के 'रक्त कमल', 'पंच पुरुष' और 'गंगा माटी', **कणाद ऋषि भटनागर** के 'जहर' और 'जनता का सेवक', **शरद जोशी** के 'एक था गधा उर्फ अलादाद खाँ' और 'अंधों का हाथी', **ब्रजमोहन शाह** का 'शह ये मात', **शंकर शेष** के 'फंदी' और 'बंधन अपने-अपने', **सर्वेश्वर दयाल सक्सेना** के 'बकरी' और 'अब गरीबी हटाओ'।

लोक नाट्य-रूप

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटककारों ने नये नाट्य-रूपों की खोज करते हुए भी भारतीय रंग-संस्कार और पारंपरिक नाट्य-रूपों के माधुर्य को नहीं छोड़ा। आधुनिक नाटककारों ने नौटंकी और ख्याल जैसे लोक-नाट्य-रूपों की शक्ति को पहचाना। **सर्वेश्वर दयाल सक्सेना** ने 'बकरी', **मणि मधुकर** ने 'रस गंधर्व', 'दुलारी बाई', और 'बुलबुल सराय', **लक्ष्मीनारायण लाल** ने 'एक सत्य हरिश्चन्द्र' और 'नाटक तोता मैना' **हबीब तनवीर** ने 'आ गए बाजार', 'राजा चम्बा और चार भाई', 'गाँव के नाँव ससुराल, भोर नाँव दामाद', 'चरनदास चोर' और 'ख्याल', **ठाकुर पृथ्वीपाल सिंह** जैसे नाटकों में लोक-रूपों की गंध और लय को बनाये रखा है। इन सभी नाटकों ने रंगमंचीय सफलता प्राप्त की। इस तरह के नाट्य-प्रयोगों ने हिन्दी-नाटक को नई उर्वर भूमि पर ला खड़ा किया।

सांस्कृतिक नाटक

समसामयिक नाटककारों ने नाट्य-कृतियों में अपने समय की विसंगतियों और विद्रूपताओं का अंकन करते हुए भी मानवीय मूल्यों को प्रतिष्ठित किया है। बदले संदर्भों में भी नाटककार ने भारतीय संस्कृति, नैतिकता और आदर्शपूर्ण स्थितियों को अपने नाटकों में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। **ज्ञानदेव अग्निहोत्री** के 'माटी जागी रे', **शंकर शेष** के 'बिन बाती के दीप', **डॉ. लक्ष्मीनारायण** लाल के 'सुन्दर रस', **मुद्राराक्षस** के 'तिलचट्टा', **सत्यप्रकाश संगर** के 'दीप से दीप जले', **चिरंजीत** के 'दादी माँ जागी' और 'तस्वीर उसकी', **रेवतीशरण शर्मा** के 'अपनी धरती' आदि नाटकों में भारतीय संस्कृति और मानवीय संवेदनाओं की गंध विद्यमान है।

काव्य-नाटक

आधुनिक प्रयोगधर्मी नाटककारों ने काव्य-नाटक या पद्य-नाटक की ओर भी पाठकों व दर्शकों का ध्यान केन्द्रित किया। मुख्य रूप से अधिकांश काव्य-नाटकों की कथावस्तु पौराणिक ही है, किन्तु उनके माध्यम से नाटककारों ने आधुनिक समस्याओं को ही चित्रित करने का प्रयास किया है। ये नाटक मनुष्य के अन्तर्जीवन का सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं। काव्य-नाटकों में **अज्ञेय** का 'उत्तर प्रियदर्शी', **वीरेन्द्र नारायण** का 'सूरदास', **डॉ. विनय** के 'रंग ब्रह्म', **विनोद रस्तोगी** का 'सूतपुत्र' **भारतभूषण अग्रवाल** का 'अग्निलीक', **कुंथा जैन** का 'बाहुबली' आदि नाटकों का नाम उल्लेखनीय हैं।

एब्सर्ड नाटक

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी-नाट्य-रचना के क्षेत्र में जो एक अन्य महत्त्वपूर्ण धारा परिलक्षित होती हैं—वह है असंगत (एब्सर्ड) कहे जाने वाले नाटकों की। द्वितीय महायुद्ध के बाद जिस ढंग से मानवीय जीवन और मूल्यों का विघटन हुआ, उसने 'एब्सर्ड' (असंगत) नाटक को जन्म दिया। मुख्य रूप से इन नाटकों का उद्देश्य मानव-मूल्य एवं मानव जीवन की विसंगतियों को रेखांकित करना ही होता है। लक्ष्मीकांत वर्मा का 'रोशनी एक नदी है', मणि मधुकर का 'रस गंधव', मुद्राराक्षस का 'मरजीवा', 'योर्स फेथफुली', 'तिलचट्टा' और 'तेंदुआ', सत्यव्रत सिन्हा का 'अमृतपुत्र' एवं काशीनाथ सिंह का 'घोआस' महत्त्वपूर्ण एब्सर्ड नाटक की कोटि में आते हैं।

नुक्कड़ नाटक

पिछले दो-तीन दशकों से शिक्षित व अशिक्षित जनता को जागरूक करने में नुक्कड़ नाटकों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। जन नाट्य-मंच दिल्ली ने 'औरत', 'मशीन', 'हत्यारे' और 'गाँव से शहर' जैसे अनेक नुक्कड़ नाटकों की सैकड़ों प्रस्तुतियाँ कर साम्प्रदायिकता, भ्रष्टाचार, पाखंड, जाति-पाँति, ऊँच-नीच और हर प्रकार के शोषण के खिलाफ अपनी आवाज को बुलंद किया है। मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित और प्रेरित नाटककार, नाट्य-निर्देशक और अभिनेता नुक्कड़ नाटकों की ओर विशेष ध्यान दे रहे हैं। इनका सारा ध्यान समाज के उच्च-वर्ग की खिल्ली उड़ाना है। समाज की ज्वलन्त समस्याओं की ओर अपने दर्शकों का ध्यान केन्द्रित करने के लिए नाट्य-मंडली को अधिक ताम-झाम की आवश्यकता नहीं होती। नुक्कड़ नाटक के लिए न तो किसी मंच की आवश्यकता होती है और न दृश्य बंधों की। ये नाटक किसी भी पार्क, चौराहे या सड़क के नुक्कड़ पर खेले जा सकते हैं। दर्शकों की सीधे भागीदारी से इस तरह के नाटकों में जन-संवाद सीधे कायम करने की शक्ति होती है।

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी नाटक और रंगमंच आज अपने शिखर पर है। आज के हिन्दी नाटक में देशभर के नाटकों की सृजनात्मक चेतना का स्पर्श समा रहा है। आज के नाटककार ऐसी नाट्य-कृतियों का सृजन कर रहे हैं जिनमें मानव के समग्र जीवन को धड़कता हुआ महसूस किया जा सकता है। निस्संदेह आज के हिन्दी नाटक और रंगमंच की नवीन सम्भावनाओं के प्रति आश्वस्त हुआ जा सकता है।

(387) साहित्य का स्वरूप

संकेत बिंदु—(1) साहित्य वाङ्मय का समानार्थक (2) साहित्य की परिभाषा (3) विद्वानों द्वारा साहित्य की परिभाषा (4) साहित्य की विशेषताएँ (5) उपसंहार।

'साहित्य' शब्द अंग्रेजी भाषा के 'लिटरेचर' शब्द का पर्यायवाची माना जाता है। इस

शब्द की सीमा बहुत व्यापक है। किसी भाषा में लिखित अर्थात् अक्षरों (Letters) में गुंथी हुई सम्पूर्ण सामग्री साहित्य या लिटरेचर कहलाती है। जीवन-बीमा निगम के कर्मचारी अपने नियम आदि का ज्ञान कराने वाली छपी हुई सामग्री को अपना 'साहित्य' कहते हैं। औषधियों की कम्पनियों द्वारा प्रचार के लिए छापी हुई पुस्तिकाएँ तथा मूल्यसूची भी 'साहित्य' ही कहलाती हैं। राजनीति, ज्योतिष, अर्थशास्त्र आदि विषयों के ग्रंथ भी 'साहित्य' के अन्तर्गत गिने जाते हैं। इस दृष्टि से साहित्य 'वाङ्मय' का समानार्थक है।

साहित्य-शास्त्र में 'साहित्य' शब्द का प्रयोग सीमित अर्थ में होता है। संस्कृत-आचार्यों ने वाङ्मय को दो भागों में विभक्त किया था—काव्य और शास्त्र। काव्य में भावतत्त्व की प्रधानता होती है और शास्त्र में बुद्धि-तत्त्व की। साहित्य-शास्त्र में काव्य के लिए ही साहित्य शब्द का प्रयोग होता है। यह काव्य या साहित्य वही तत्त्व है, जिसे ललित कलाओं में 'काव्य-कला' कहा गया है। आधुनिककाल में साहित्य और काव्य शब्दों का प्रयोग भी भिन्न-भिन्न अर्थों में होने लगा है। काव्य के अन्तर्गत केवल छन्दोबद्ध रचनाएं ही ली जाती हैं, जबकि साहित्य में सभी भावतत्त्व-प्रधान रचनाएं (उपन्यास, कहानी, नाटक आदि) आ जाती हैं। कहा जा सकता है कि काव्य साहित्य का एक अंग है।

'साहित्य' शब्द 'सहित' शब्द से बना है 'हितेन सह इति सहितम्। सहितस्य भाव: साहित्यम्।' सहित शब्द के दो अर्थ हैं—(1) साथ-साथ अथवा मिला हुआ और (2) हित अर्थात् कल्याण की भावना से युक्त। सहित शब्द के इन दोनों अर्थों को ध्यान में रखकर साहित्य के स्वरूप पर विचार किया गया है।

साथ-साथ अर्थात् सम्मिलन के भाव को दृष्टि में रखकर कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने साहित्य की परिभाषा इस प्रकार की है—'सहित शब्द से साहित्य में मिलने का एक भाव देखा जाता है। वह केवल भाव-भाव का, भाषा-भाषा का, ग्रंथ-ग्रंथ का ही मिलन नहीं है, बल्कि मनुष्य के साथ मनुष्य का, अतीत के साथ वर्तमान का, दूर के साथ निकट का अत्यन्त अन्तरंग मिलन भी है, जो साहित्य के अतिरिक्त अन्य से सम्भव नहीं है।'
साहित्य का हित अर्थात् कल्याण की भावना से युक्त होना भी अनिवार्य है। सचाई तो यह है कि जिस रचना में मनुष्य-मनुष्य के, दूर और निकट के, अतीत और वर्तमान के समन्वय का भाव होगा, वह निश्चित ही मानव के लिए कल्याणकारी भी होगी। मानव को कुमार्ग से हटाकर सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देना ही साहित्य का उद्देश्य है। इसी तथ्य को प्रस्तुत करते हुए राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा है—

केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए।
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।।

हिन्दी के आधुनिक साहित्यकारों ने अपनी साहित्य-सम्बन्धी धारणाओं को संस्कृत-काव्यशास्त्र एवं योरुपीय समीक्षा-शास्त्र, दोनों की विचारधाराओं से सम्पुष्ट कर प्रस्तुत किया है। यह समन्वय साहित्य को नए स्वस्थ रूप और दिशा प्रदान करता है।

'ज्ञान राशि के संचित कोश का नाम साहित्य है।'—आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी

'मानव-समाज की चित्तवृत्तियों का प्रतिबिम्ब साहित्य है।'

—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

'साहित्य संसार के प्रति हमारी मानसिक प्रतिक्रिया अर्थात् विचारों, भावों और संकल्पों की शाब्दिक अभिव्यक्ति है और वह हमारे किसी-न-किसी प्रकार के हित का साधन करने के कारण संरक्षणीय हो जाती है।' —बाबू गुलाबराय

साहित्य की परिभाषा निर्धारित करते हुए सहित शब्द के इन अर्थों के अतिरिक्त एक अन्य उक्ति भी सामने आती है। वह है 'सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्।' इस उक्ति का सरल अर्थ है कि साहित्य में सत्य का चित्रण होता है, उसमें शिवम् अर्थात् मानव-कल्याण की भावना होती है और उसकी रचना-शैली सुन्दर होती है। उक्त विवेचन के अनुसार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि—

(क) साहित्य में सम्मिलन की शक्ति होती है।

(ख) उसमें जीवन के शाश्वत सत्य का चित्रण होता है।

(ग) वह मानव को सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देकर उसका कल्याण करता है।

(घ) उसकी रचना-शैली रोचक तथा प्रभावोत्पादक होती है।

जिस प्रकार हमारे जीवन के दो पक्ष हैं—आत्मा और शरीर, उसी प्रकार साहित्य के भी दो पक्ष हैं—भावपक्ष और कलापक्ष। भावपक्ष साहित्य की आत्मा और कलापक्ष उसका शरीर कहा जा सकता है।

साहित्य एक कला है, जिसके द्वारा साहित्यकार अपनी अनुभूति को प्रकट करता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि साहित्य के दो पक्ष हैं। पहला पक्ष है—वे अनुभव, भाव आदि, जिन्हें प्रकट करने के लिए साहित्य का निर्माण होता है और दूसरा पक्ष है—वह भाषा-शैली आदि, जिनके द्वारा साहित्यकार अपने अनुभवों को प्रकट करता है। पहला पक्ष अर्थात् साहित्यकार की अनुभूति 'भावपक्ष' कहलाती है और दूसरा पक्ष अर्थात् भाषा-शैली 'कलापक्ष'। इन्हें क्रमशः अंतरंग (भीतरी) और बहिरंग (बाह्य) पक्ष भी कहते हैं।

साहित्य में भाव-पक्ष की प्रधानता होती है। इसे काव्य (साहित्य) की आत्मा स्वीकार किया जाता है। इसके बिना साहित्य का अस्तित्व ही नहीं रह जाता। कलापक्ष (बाह्य पक्ष) तभी साहित्य का सौन्दर्य बढ़ा सकता है, जब वह सुन्दर भावनाओं रूपी प्राणों से सम्पन्न हो। भला निर्जीव शरीर आभूषण आदि से सजाने पर भी क्या सुन्दर हो सकता है ? कलापक्ष का महत्त्व भी कम नहीं है। रोगी शरीर में स्थित आत्मा भी स्वस्थ नहीं रह सकती। सुन्दर अनुभूतियों को सुन्दर शैली में प्रस्तुत करने पर ही उनका गौरव बढ़ता है।

तात्पर्य यह है कि साहित्य में भावपक्ष और कलापक्ष, दोनों का समन्वय होना चाहिए। जिस रचना में ये दोनों पक्ष सबल होंगे, वही रचना श्रेष्ठ साहित्य की कोटि में आ सकती है।

(388) साहित्य का महत्त्व

संकेत बिंदु—(1) साहित्य का महत्त्व अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष (2) मानव जीवन को प्रतिबिम्बित करने में (3) राष्ट्र-निर्माण और उद्धार में (4) साहित्यकारों की दृष्टि में (5) समाज का दर्पण।

साहित्य का महत्त्व धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त करवाने में है। मानव को हार्दिक आनन्द और संतोष प्रदान करने में है। उसे सुख-दुःख और आशा-निराशा के धरातल से उठाकर मानवता की समस्याओं और जीवन-प्रणाली की व्यापक भूमि पर स्थापित करने में है। अतीन्द्रिय लोक का दर्शन करवाने में है।

साहित्य का महत्त्व इस बात में है कि वह शोक में सात्वना देता है, हर्ष में आनन्दवर्धन करता है, नैराश्यपूर्ण क्षणों में सम्बल प्रदान करता है एवं पशुता का दमन और मनुष्यता का उद्रेक करता है। इतना ही नहीं, वह मनुष्य के सम्मुख भौतिक संसार के अतिरिक्त एक विश्वासयोग्य भावमय लोक उपस्थित करता है।

सिसरो की धारणा है कि 'साहित्य का महत्त्व तभी है जब उसका अध्ययन युवकों का पालन-पोषण करे, वृद्धों का मनोरंजन करे, उन्नति का शृंगार करे, विपत्ति में धीरज दे, घर में प्रमुदित करे और बाहर विनीत बनाए।'

मुन्शी प्रेमचन्द के विचार में 'जिस साहित्य से हमारी सुरुचि न जागे, हमें आध्यात्मिक और मानसिक तृप्ति न मिले, हममें गति और शान्ति न पैदा हो, हमारा सौन्दर्य-प्रेम न जागृत हो, जो हममें सच्चा संकल्प और कठिनाइयों पर विजय पाने की सच्ची दृढ़ता न उत्पन्न करे, उस साहित्य का कोई महत्त्व नहीं।

साहित्य का महत्त्व मानव-जीवन को प्रतिबिम्बित करने में ही नहीं, अपितु मानवता की रक्षा और प्रोत्साहन में भी है। इस दृष्टि से भर्तृहरि का कथन बहुत संगत है—'साहित्य, संगीत और कला से रहित व्यक्ति बिना पूँछ और सींग के साक्षात् पशु ही है।'

साहित्य सङ्गीत कला विहीनः/साक्षात् पशुः पुच्छ विष्पणहीनः। (नीतिशतक : 12)

साहित्य का स्थान भौतिक विचारों और धार्मिक भावनाओं से ऊपर है। हम ईसाई धर्म से घृणा कर सकते हैं और बाइबिल के प्रति अनास्था प्रकट कर सकते हैं, किन्तु ईसाई धर्म को मानने वाले शेक्सपीयर और मिल्टन के नाटकों तथा काव्यों से घृणा करना अथवा उन्हें पूर्ण एकाग्रचित होकर न पढ़ना, सर्वथा असम्भव है। उसी प्रकार भारतीय धर्म और संस्कृति के प्रति प्रसिद्ध जर्मन महाकवि गेटे की कैसी भी धारणा क्यों न हो, किन्तु कालिदास-रचित शकुन्तला नाटक की उसने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। शकुन्तला के रूप में उसने विश्व की कोमलता और स्वर्गीय विभूति को मूर्तिमान देखा है। यदि साहित्य भी धर्मों, जातियों तथा राष्ट्रों में खण्डित होता, तो न तो हमें शेक्सपीयर-मिल्टन के नाटकों, काव्यों का अध्ययन करते समय आनन्द की अनुभूति होती और न गेटे ही 'अभिज्ञान-शाकुन्तलम्' के सूक्ष्म

सौन्दर्य का उद्घाटन कर पाता। इस प्रकार विश्व-मानव को एकसूत्र में ग्रथित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य साहित्य द्वारा ही सम्पन्न होता है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन है, 'साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब होता है और समाज का मार्ग-दर्शक भी।' साहित्य का महत्त्व राष्ट्र के निर्माण में है, राष्ट्र के उद्धार में है। अतः महाकवि गेटे इस बात का समर्थन करते हुए लिखते हैं—'साहित्य का पतन राष्ट्र के पतन का द्योतक है।' यूरोप में अनुदार और धार्मिक रूढ़ियों एवं पोप की प्रभुता को साहित्य ने ही उखाड़ फेंका था। फ्रांस में प्रजातन्त्र का विकास साहित्य की ही देन है। पराजित इटली को पुनर्गौरव साहित्य से ही प्राप्त हुआ। भूषण के साहित्य ने हिन्दू-समाज में चेतना जागृत कर वीरता का संचार किया। बिहारी के एक दोहे—*'नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल। अली कली ही सों बंध्यो आगे कौन हवाल'* ने शासक सवाई राजा जयसिंह को कर्तव्य-पथ का बोध करा दिया था। मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत-भारती' ने परतन्त्र भारतवासियों में विद्रोह की चिंगारी उत्पन्न कर दी थी।

साहित्य की इतिकर्तव्यता सत्यं-शिवं-सुन्दरम् के समन्वय में है। महान् कवियों की वाणी में यह तथ्य प्रकट हुआ है—

यही प्रजा का सत्य स्वरूप, हृदय में बनता प्रणय अपार।
लोचनों में लावण्य अनूप, लोक-सेवा में शिव अविकार।

—सुमित्रानन्दन पन्त

कीरति भणिति भूति भलि सोई। सूरसरि सम सब कहँ हित होई।।

—तुलसीदास

संस्कृत-आचार्यों का कथन है—'चतुर्वर्गफलप्राप्तिः सुखादल्पधियामपि।' यह कोई अत्युक्ति नहीं। साहित्य न केवल धर्म, अर्थ, काम ही प्रदान करता है, अपितु वह मोक्ष का भी प्रदाता है। बाल्मीकि और व्यास, तुलसी और सूर के काव्य ने लाखों को भक्ति-पथ पर लगाकर उनके लिए मोक्ष का मार्ग प्रशस्त किया है।

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी साहित्य की महत्ता दर्शाते हुए लिखते हैं—'ज्ञान-राशि के संचित कोश का नाम साहित्य है। जिस भाषा के पास यह कोश नहीं है, वह भाषा भावाभिव्यक्ति में समर्थ होने पर भी रूपवती भिखारिन के समान न आदर पाती है, न पा सकती है।'

साहित्य समाज का दर्पण है। समाज के नग्न यथार्थ को प्रकट कर उसे आदर्शोन्मुख करने में ही साहित्य का महत्त्व है। मुंशी प्रेमचन्द का साहित्य भारतीय जन-जीवन का दर्पण है, हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन का भाष्य है। प्रेमचन्द जी की निर्मला (निर्मला), सूरदास (रंगभूमि) और होरी (गोदान) चीख-चीख कर भारत की आत्मा को अभिव्यक्ति प्रदान कर रहे हैं। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त और रामधारीसिंह 'दिनकर' का काव्य भारतीय जन-जीवन की आत्मा का दर्पण है।

साहित्य का महत्त्व व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और मानव मात्र के निर्माण और कल्याण

में है। साहित्य का महत्त्व उसके चिरस्थायित्व एवं मंगलमय होने में है। राष्ट्रकवि 'दिनकर' के शब्दों में—

अन्धकार है वहाँ, जहाँ आदित्य नहीं है।
मुर्दा है वह देश जहाँ साहित्य नहीं है॥

(389) साहित्य का उद्देश्य

संकेत बिंदु—(1) पाश्चात्य विद्वान सिसरो के अनुसार (2) यश और धन-प्राप्ति (3) लोक-व्यवहार का ज्ञान (4) समाज को सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा (5) उपसंहार।

ज्ञान-राशि के संचित कोष का नाम ही साहित्य है। दु:ख-दग्ध जगत् और आनन्दपूर्ण स्वर्ग का एकीकरण साहित्य है। प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का प्रतिबिम्ब होता है।

पाश्चात्य विद्वान् सिसरो का मत है कि 'साहित्य का अध्ययन युवकों का पालन-पोषण करता है, वृद्धों का मनोरंजन करता है, उन्नति का शृंगार करता है। साहित्य विपत्ति में धीरज देता है, घर में प्रमुदित रखता है और बाहर विनीत बनाता है।' मुंशी प्रेमचन्द का मत है कि 'जिस साहित्य से हमारी सुरुचि न जागे, आध्यात्मिक और मानसिक तृप्ति न मिले, हममें गति और शांति न पैदा हो, हमारा सौन्दर्य-प्रेम न जागृत हो, जो हममें सच्चा संकल्प और कठिनाइयों पर विजय पाने की सच्ची दृढ़ता उत्पन्न न करे, वह साहित्य आज हमारे लिए बेकार है, वह साहित्य कहलाने का अधिकारी नहीं।'

प्राचीन आचार्यों ने साहित्य के उद्देश्य की विस्तारपूर्वक चर्चा की है। इस सम्बन्ध में आचार्य मम्मट का कहना है कि काव्य अर्थात् साहित्य का प्रयोजन यश प्राप्ति, धन-प्राप्ति, लोक-व्यवहार का ज्ञान, दु:खों का नाश, अलौकिक आनन्द की प्राप्ति तथा प्रिया के वचनों के समान मधुर-शैली में उपदेश देना है।

श्रेष्ठ साहित्यकार को अपने साहित्य के माध्यम से यश प्राप्त होता है। यश अजर और अमर होता है। नश्वर शरीर छोड़ने के बाद साहित्यिक कृतियाँ साहित्यकार के यश को अक्षुण्ण रखती हैं। अत: श्रेष्ठ साहित्यकार कभी मरता नहीं। सूर, तुलसी, निराला, पंत, प्रेमचन्द, प्रसाद आदि इसके प्रमाण हैं।

साहित्य के लेखन, प्रकाशन एवं बिक्री पर साहित्यकार को धन प्राप्त होता है। कभी-कभी उत्कृष्ट साहित्यिक रचनाओं पर पुरस्कार भी मिलते हैं। अनेक प्रान्तीय सरकारें साहित्यकारों को हजारों / लाखों के पुरस्कार प्रदान करती हैं। भारतीय ज्ञानपीठ तो उत्कृष्ट साहित्यिक रचना पर डेढ़ लाख रुपये का पुरस्कार प्रदान करता है। सहस्रों साहित्यकार मसि-जीवी हैं। वे कलम की कमाई से न केवल परिवार-पालन ही करते हैं, अपितु ऐश्वर्यपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं।

साहित्यकारों को राज्याश्रय की प्राप्ति रीतिकाल तक तो स्पष्टत: प्रचलित रही है, किन्तु अब उसका रूप बदल गया है। भारत सरकार साहित्यकारों को पद्मश्री, पद्म-विभूषण, पद्म-भूषण आदि उपाधियों से सम्मानित करती है। प्रान्तीय सरकारें विधान-परिषद् में तथा केन्द्रीय-सरकार राज्यसभा में साहित्यकारों को नामांकित करती हैं।

साहित्यकारों की वाणी लोक-व्यवहार का ज्ञान कराती है। रामचरितमानस को पढ़कर हम सहज ही सीख लेते हैं कि 'हमें राम की तरह आचरण करना चाहिए, रावण की तरह नहीं।' कामायनी पढ़कर इच्छा, क्रिया और ज्ञान के समन्वय में ही जीवन की सार्थकता का पता चलता है।

साहित्य-निर्माण करते हुए एवं उसका अध्ययन करते हुए भावनाएं परिष्कृत होती हैं। इससे दु:खों का नाश हो जाना स्वाभाविक है। सत् साहित्य का अध्ययन बुद्धि की कुँजी है, सम्मान का द्वार है, सुख का भण्डार है और आनन्द का कोष है। न केवल साहित्यनिर्माता को, अपितु सत्साहित्य के अध्ययन से पाठक को भी अद्वितीय आनन्द की अनुभूति होती है।

साहित्य का महान् उद्देश्य समाज को कुमार्ग छोड़कर सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देना है। यह प्रेरणा वह गुरु की भाँति उपदेश द्वारा नहीं; अपितु प्रियतमा के समान मधुर शैली में करता है। कविवर बिहारी के एक ही दोहे *'नहि पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल'* ने नवविवाहिता रानी के प्रेमपाश में बँधकर राजकाज से विमुख हुए जयपुर नरेश को राजकाज देखने के लिए प्रेरित कर दिया था। मुंशी प्रेमचन्द की कहानियों और उपन्यासों ने भारतीय जीवन में व्याप्त कुरीतियों, कुप्रथाओं, कुसंस्कारों का पर्दाफाश ही नहीं किया, अपितु समाज में उनके प्रति घृणा भी उत्पन्न की।

साहित्य समाज का दर्पण होता है। साहित्य की सरिता जब जनता के हर्ष-विषाद से तरंगित होगी, तभी जनता उसे गंगा की धारा मानकर उसमें अवगाहन करेगी, अन्यथा वह कर्मनाशा के तुल्य त्याज्य है। 1947 से पूर्व भारतीय साहित्यकारों ने अपनी लेखनी द्वारा परतंत्रता के विरुद्ध शंखनाद किया और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश की चहुँमुखी प्रगति के स्वर को बुलन्द करते हुए कहा—

गा कोकिल! बरसा पावक कण,
नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन।

साहित्य एक कला है। ललित-कलाओं में उसका स्थान सर्वोपरि है। इस कला से विहीन व्यक्ति बिना पूँछ और सींग के साक्षात् पशु है। कारण, साहित्य आत्माभिव्यक्ति का माध्यम है। समाज में आदर्श भावों को जगाने तथा पशु-वृत्तियों का दमन कर मानवता का विकास करने के विचार से प्रेरित होकर जिन रचनाओं की सृष्टि होती है, वे ही साहित्य की कोटि में आती हैं।

मानवता का हित-चिन्तन, राष्ट्रीयता का संरक्षण, जीवन की सद्गति, उदात्त भावनाओं का विकास तथा प्रचार-प्रसार साहित्यकार का कर्तव्य है और यही है साहित्य का उद्देश्य।

(390) साहित्यकार का दायित्व

संकेत बिंदु—(1) धर्म, नीति, दर्शन का समाधान (2) सामाजिक वैषम्म, अनुशासनहीनता के प्रति विद्रोह (3) राजनीति में 1974 के आस-पास का संक्रांतिकाल (4) 'स्वान्तः सुखाय' और व्यक्तिनिष्ठ (5) उपसंहार।

साहित्यकार का दायित्व है कि वह अपनी कृति के माध्यम से लोकाचार और लोकनीति का निर्धारण करे। धर्म, नीति, दर्शन आदि गम्भीर समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करे। जिस समाज का वह अंग है, उसकी आस्था, धारणा, भावना, विचार और इच्छाओं-आकांक्षाओं को अभिव्यक्ति प्रदान करे। सम-सामयिक समस्याओं और राजनीतिक चिन्तन का पथ-प्रशस्त करे।

केवल मनोरंजनार्थ लिखा गया साहित्य शाश्वत नहीं हो सकता। 'कला कला के लिए' की भावना से लिखा गया साहित्य चिरजीवी नहीं हो सकता। समाज से दूर, राजनीति से अछूते और जीवन की वास्तविकता से मुँह मोड़ कर लिखे गए साहित्य का महत्त्व तोता-मैना की कहानियों से अधिक कुछ नहीं।

भारत विश्व का प्राचीनतम राष्ट्र है। इसका प्राचीन साहित्य ज्ञान-राशि का अनन्त भण्डार है। दूसरी ओर, विश्व-साहित्य में ज्ञान-विज्ञान के नए-नए तत्त्व प्रवेश कर रहे हैं। साहित्यकार का दायित्व है कि नये और पुराने ज्ञान विज्ञान के भंडार को अपनी भाषा में ले आने का महान् दायित्व सम्भाले। यदि साहित्यकार इस दायित्व की पहल नहीं करेगा, तो वह देश की प्रगति में सहायता तो पहुँचाएगा ही नहीं, बल्कि अपने प्रति देशवासियों की उपेक्षा और अवज्ञा के भाव को दृढ़ बना लेगा।

राजनीति और समाजनीति हमारे जीवन के उपयोगी पहलू हैं। राजनीति के साथ समाज के प्रत्येक सुसंस्कृत व्यक्ति का व्यावहारिक सम्बन्ध है। राजनीति से बिल्कुल अलग रहने की कल्पना शायद कोई साधु-संन्यासी ही कर सकता है। समाज में रहने वाला सजग व्यक्ति इस कल्पना को कभी स्वीकार नहीं करेगा। जो समाज में जीता है, उसका समाज के साथ सम्बद्ध होना और उससे प्रभावित होना स्वाभाविक और अनिवार्य है। साहित्यकार का यह दायित्व है कि वह सामाजिक वैषम्य, असामंजस्य, उच्छृंखलता, अनुशासनहीनता, अनीति और अन्याय के प्रति विद्रोह प्रकट करे। राजनीति के छल-कपट, वोट -नीति, फूट डालो और राज्य करो की कूटनीति, व्यक्तिवाद की वर्चस्वता, प्रजातन्त्र की आड़ में राजतन्त्र के कृत्य, भ्रष्टाचार तथा भाई भतीजावाद के प्रति जनता को सचेत करना साहित्यकार का दायित्व है।

डॉ. विजयेन्द्र स्नातक लिखते हैं—'हिन्दी के साहित्यकारों में मुंशी प्रेमचन्द को हम उच्चकोटि का समर्थ कलाकार मानते हैं। उनकी रचनाओं में प्रायः तत्कालीन भारतीय समाज तथा राजनीति का वर्णन ही मुख्य रूप से पाया जाता है। जिन समस्याओं को प्रेमचन्द

ने चित्रित किया है, उनका सीधा सम्बन्ध सामाजिक वैषम्य तथा भारत की पराधीनता से है। मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, 'दिनकर' आदि राष्ट्रीय कवियों के सामने भी राजनीति और अर्थनीति के प्रश्न रहे हैं।'

भारतीय राजनीति में सन् 1974 के आस-पास का काल संक्रातिकाल था। जिसमें लोकनायक जयप्रकाश धर्म-ध्वजा को सम्भाले संघर्षरत थे और सारा देश उनके नेतृत्व में सर्वस्व न्योछावर करने को सन्नद्ध था, किन्तु उस समय देश का साहित्यकार देश की भावनाओं से अलग-थलग पड़ गया। परिणामत: देश को 19 मास की आपातकालीन यातनाएँ सहनी पड़ीं। राजनीतिक स्वतन्त्रता का अपहरण होने के पश्चात् बुद्धिजीवी कलाकार अपनी चेतना से न तो आत्मोद्धार कर सका और न साहित्य से समाज का अभ्युत्थान हो सका। यदि उस समय भारत के लेखक राजनीति की चुनौती कर जन-मानस को क्रांति के लिए तैयार कर पाते, तो आज भारतीय राजनीति का रूप कुछ और ही होता।

आज का भारत अपनी राजनीति, समाजनीति, धर्मनीति और अर्थनीति से पुन: त्रस्त है। साहित्य को समाज का दर्पण माना जाता है। साहित्य रूपी दर्पण में समाज प्रतिबिम्बित होता है। अत: जागरूक साहित्यकार को उसका चित्रण करना अनिवार्य है। डॉ. स्नातक का मत है, 'साहित्य का बीज ऊसर में—जगत् और जीवन से तटस्थ होकर पनपता नहीं है। उसके अंकुरित और पल्लवित होने के लिए समाज की उर्वर भूमि ही अपेक्षित है। अत: मैं साहित्य को समाज-निरपेक्ष मानने के पक्ष में नहीं हूँ। साहित्य में राजनीति, अर्थनीति, समाजनीति आदि सभी आवश्यक तत्त्वों का सम्मिश्रण रहता है और रहना चाहिए।'

कुछ लोग साहित्यकार के दायित्व की सफलता 'स्वान्त: सुखाय' और 'व्यक्तिनिष्ठ' साहित्य के निर्माण में स्वीकार करते हैं, किन्तु वे यह भूल जाते हैं कि तुलसी का 'स्वान्त: सुखाय' काव्य 'सर्वजन हिताय' प्रमाणित हुआ। वे समाज और राजनीति के दायित्व से भागे नहीं। बल्कि मानस में समाज, धर्म और राजनीति के महान् द्रष्टा सिद्ध हुए। उन्होंने स्वयं कहा है—

'जो प्रबन्ध बुध नहिं आदरहीं, सो स्रम-वादि बाल कवि करहीं।'

उन्होंने राजनीति को लक्ष्य करके स्पष्ट करा— ***'जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी॥'***

इसी प्रकार व्यक्तिनिष्ठ साहित्यकार यदि यह चाहता है कि उसके साहित्य को कोई छुए नहीं, उससे कोई स्पन्दित न हो, उसका प्रभाव कहीं लक्षित न किया जा सके, तो ऐसे साहित्य की उपयोगिता क्या है ? अतीत से अछूते, वर्तमान से विमुक्त और अनागत से असम्पृक्त साहित्य को लेकर भारतीय समाज और साहित्य क्या करेगा ? दूसरे, जो भाव या विचार साधारणीकृत होकर पाठक या श्रोता तक नहीं पहुँच पाता; उसे साहित्य क्षेत्र में बहिष्कृत करने की बात काव्य-शास्त्र के ग्रन्थों में कही गई है।

डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत है कि 'साहित्यकार को मनुष्यता का उन्नायक होना चाहिए। जब तक वह मानव-मात्र के मंगल के लिए नहीं लिखता, तब तक वह अपने

दायित्व से पलायन करता है।' हम इस विचार से सहमत नहीं। मानव घर में जन्म लेकर समाज, देश तथा विश्व की बात क्रमश: सोचता है। समाज और राष्ट्र की बात छोड़कर मानव मात्र की बात संन्यासी को शोभा देती है, साहित्यकार को नहीं। जब समाज छिन्न-विछिन्न हो, राष्ट्र आपदाओं से ग्रस्त हो, तब विश्व-मानवता के प्रति संवेदनशीलता प्रकट करना रोम के जलने पर नीरो के वंशीवादन के समान ही होगा।

साहित्यकार राष्ट्र का पथ-प्रदर्शक होता है, समाज का सुधारक होता है, धर्म का व्याख्याता होता है, नीति का निर्धारक होता है। अत: उसे राष्ट्र की उन्नति के लिए, समाज और धर्म के उत्थान के लिए राष्ट्र की पुरातन नींव पर नई वैज्ञानिक प्रगति की सहायता से साहित्य-सृजन का दायित्व स्वीकार करना चाहिए।

(391) चरित्र-निर्माण में साहित्य का योगदान

संकेत बिंदु—(1) चरित्र-निर्माण (2) चरित्र-निर्माण का अचूक साधन (3) वर्तमान मानव दिग्भ्रांत (4) विभिन्न कविताओं में मानवीय वृत्तियाँ (5) उपसंहार।

भय, पलायन, वैर-विरोध, संग्रह-निवृत्ति, आत्माभिमान, स्वरक्षा, शरणागति, हास्य, जिज्ञासा, सामाजिकता, जीविकोपार्जन, उदरपूर्ति, भोग, दया, करुणा, संतोष आदि मानव की स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ हैं। इन प्रवृत्तियों को संतुलित करते हुए कल्याण मार्ग की ओर अग्रसर होना चरित्र-निर्माण है।

मनुष्य को अपने चरित्र में ईश्वरीय गुणों का सौन्दर्य विरासत में मिला है। इसीलिए मनुष्य दिव्य चरित्रवान् है। दूसरी ओर, वह सामाजिक प्राणी है। समाज के नियम उसके व्यक्तित्व को जटिल बना देते हैं। हिंसा, प्रतिहिंसा, स्वार्थ, शोषण आदि अनेक प्रवृत्तियाँ सामाजिक देन हैं। समाज की विषैली वायु से मानव-चरित्र की रक्षा करना चरित्र निर्माण का उद्देश्य है।

व्यक्ति के गुणों का विकास एकान्त स्थान में होता है। चिंतन मनन में होता है, किन्तु चरित्र का निर्माण सामाजिकता में ही सम्भव है, अत: गेटे का कथन है, 'चरित्र का निर्माण संसार के भीषण कोलाहल में होता है।'

चरित्र-निर्माण का अचूक साधन है साहित्य। कविता, कहानी, निबन्ध, नाटक, उपन्यास, जीवन-चरित्र, संस्मरण और पत्रकारिता, सभी ने चरित्र-निर्माण में योग दिया। कबीर, बिहारी, रहीम और वृन्द के दोहे; मानस के उपदेश, गिरधर की कुण्डलियाँ, कामायनी का आनन्दवाद, महादेवी का विरह, मैथिलीशरण गुप्त की राष्ट्रीयता, 'निराला' का विद्रोह, 'दिनकर' की ललकार, सुभद्राकुमारी चौहान की ममता, सब चरित्र-निर्माण के साक्ष्य हैं, दस्तावेज हैं।

प्रेमचन्द की कहानियाँ-उपन्यास, प्रसाद के नाटक, रामचन्द्र शुक्ल के निबन्ध, महावीरप्रसाद द्विवेदी के लेख, उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के एकांकी चरित्र-निर्माण के दिशा-दर्शन में आकाशदीप सिद्ध हुए हैं।

बिहारी के एक दोहे—*'नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल। अली कली ही सों बँध्यो आगे कौन हवाल'* ने राजा जयसिंह की भोग-मदांधता को भंग कर दिया था। तुलसी का मानस तो हिन्दू-चरित्र-निर्माण के प्रासाद की आधारशिला बना। उसने हिन्दू जनता के सोचने-समझने की दिशा ही बदल दी। 'दानवी प्रवृत्तियों को वश में करने या नष्ट करने में ही मानव का कल्याण है', यह शंखनाद 'मानस' रूपी पाँचजन्य ने फूँका। भूषण के वीरतापूर्ण पदों ने हिन्दू जाति में वीरता का संचार किया। प्रेमचन्द की 'निर्मला' ने दहेज-लोभियों की चित्तवृत्ति का 'पोस्टमार्टस' किया।

'आज का मानव' शुष्क बौद्धिकता के कारण दिग्भ्रांत है, संकटग्रस्त है। मनसा, वाचा, कर्मणा वह अनेकरूपी है, इसलिए वह असफल है। प्रसाद जीवन की सफलता का रहस्य बताते हैं—

ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है, इच्छा क्यों पूरी हो मन की?
एक दूसरे से न मिल सके, यह विडम्बना है जीवन की।।

स्वार्थ पर चोट करते हुए प्रसाद जी ने कहा—

अपने में सब कुछ भर, कैसे, व्यक्ति विकास करेगा?
यह एकांत स्वार्थ भीषण है, अपना नाश करेगा।।

आगे चलकर 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' का सन्देश देते हुए वे लिखते हैं—

औरों को हँसते देखो मनु, हँसों और सुख पाओ।
अपने सुख को विस्तृत कर लो, सबको सुखी बनाओ।।

ईर्ष्या और द्वेष के वशीभूत मानव अपना जीवन दुःखी कर लेगा। इस तथ्य को प्रस्तुत करते हुए तुलसी समझाते हैं—

पर सुख देखि-सुनि जरहीं जड़ बिनु आगी।
तुलसी तिनके भाग ते चलै भलाई भागी।।

तुलसी का मानस मानवीय वृत्तियों का बृहत् कोश है। मानस की एक-एक सूक्ति चरित्र-निर्माण की प्रेरक हैं।

मानव को दुःखों से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं। प्रसाद कहते हैं—

'डरो मत अरे अमृत सन्तान, अग्रसर है मंगलमय वृद्धि।'

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' विघ्न-बाधाओं में साहस न छोड़ने का उपदेश देते हैं—

देख बाधा विविध, बहु विघ्न घबराते नहीं।
भूलकर वे दूसरे का मुँह कभी तकते नहीं।।

'दिनकर' शौर्य का आह्वान करते हैं—

ले अंगड़ाई उठ, हिले धरा, कर निज विराट् स्वर में निनाद।
तू शैलराट्! हुँकार भरे, फट जाए कुहा, भागे प्रमाद।।

छोटी-छोटी बातों की तकरार मानव में अशांति और शत्रु-भाव उत्पन्न करती है। इस

सम्बन्ध में रघुवीरशरण मित्र चेतावनी देते हुए कहते हैं—

छोटी-छोटी बात पर, करो न तुम तकरार।
बढ़ जाएगी दुश्मनी, घट जाएगा प्यार।।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने मनोविकारों का जो सूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत किया है, वह चरित्र-निर्माण की अमूल्य निधि है। कतिपय प्रेरणाप्रद सूक्तियाँ देखिए—

(क) 'मनुष्य के अन्तःकरण में सात्विकता की ज्योति जगाने वाली यही करुणा है।'

(ख) 'ईर्ष्या में आलस्य, अभिमान और नैराश्य का योग रहता है।'

(ग) 'आनन्द के वर्ग में उत्साह का जो स्थान है, वही स्थान दुःख के वर्ग में भय का है।'

मुंशी प्रेमचन्द ने अपने कथा-साहित्य के माध्यम से चरित्र-निर्माण के हर पहलू को दूरबीन से देखा है। वे लिखते हैं—'लज्जा और विनय ही भारत की देवियों का आभूषण है। एक कठोर दण्ड बरसों के प्रेम को मिट्टी में मिला देता है।'

सम्पूर्ण साहित्य जीवन की प्रत्येक प्रवृत्ति को अनुशासित करने और उन्हें कल्याण-पथ पर अग्रसर करने के तत्त्व-ज्ञान से ओत-प्रोत है। इस प्रकार स्पष्ट है कि चरित्र-निर्माण में साहित्य का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान है।

(392) राष्ट्र-निर्माण में साहित्य का योगदान/ राष्ट्र-निर्माण में साहित्यकार की भूमिका

> **संकेत बिंदु**—(1) साहित्य में राष्ट्र-निर्देशन की शक्ति (2) परतंत्रता में साहित्यकार की भूमिका (3) स्वतंत्रता आंदोलन को तीव्र करने में (4) अखण्डता, सुरक्षा और सुख-शांति की स्थापना में (5) उपसंहार।

भूमि, जन और जन की संस्कृति के समन्वित रूप को राष्ट्र कहते हैं। प्रत्येक नागरिक पर राष्ट्र के प्रति तीन प्रकार के ऋण हैं—देवऋण, पितृऋण तथा ऋषिऋण। साहित्यकार जहाँ साधारण नागरिक की स्थिति में देवऋण तथा पितृऋण चुकाने का प्रयास करता है, वहाँ वह साहित्य-सर्जन करके ऋषि-ऋण भी चुकाता है। अतः राष्ट्र-निर्माण में साहित्य का योगदान शाश्वत प्रक्रिया है, ध्रुव सत्य है।

साहित्य में राष्ट्र के मार्ग-निर्देशन की अद्‌भुत शक्ति है, इस तथ्य को प्रमाणित करने वाले उदाहरणों से इतिहास भरा हुआ है। साहित्य ने पोप की प्रभुता को कम किया, फ्रांस में प्रजा की सत्ता का उदय और उन्नयन क्रिया, पदाक्रांत इटली का मस्तक ऊँचा उठाया, परतंत्र भारत में स्वतंत्रता के लिए मर मिटने की अग्नि प्रज्ज्वलित की। इतना ही नहीं, स्वाधीन राष्ट्र के पुनर्निर्माण में शासकों को परामर्श दिया और सचेत किया।

परतंत्र भारत का साहित्यकार विदेशी चाबुक की मार से चौंक उठा। उसने अपने

साहित्य को राष्ट्र-देवता के चरणों में श्रद्धांजलि रूप में अर्पित कर दिया। भारत के 'इंदु' हरिश्चन्द्र की वाणी से जो साहित्य-रूपी सुरसरि-प्रवाहित हुई, वह जयशंकरप्रसाद, मैथिलीशरण गुप्त, सुमित्रानन्दन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', सुभद्राकुमारी चौहान, माखनलाल चतुर्वेदी, रामधारीसिंह 'दिनकर', प्रेमचन्द, यशपाल, अमृतलाल नागर, फणीश्वरनाथ 'रेणु', राहुल सांकृत्यायन, अज्ञेय, धर्मवीर 'भारती' रूपी धाराओं में प्रवाहित होती हुई आज भी भारत-राष्ट्र को सिंचित और पल्लवित कर रही है।

'हा हा! भारत-दुर्दशा न देखी जाई' कहकर भारतेन्दु रो पड़े और उन्होंने अंग्रेजों की लूट पर भारतवासियों को सचेत किया।

भीतर भीतर सब रस चूसे हँसि हँसि के तन-मन धन मूसे।
जाहिर बातिन में अति तेज, क्यों सखि साजन, नहिं अंग्रेज।।

इसी प्रकार माखनलाल चतुर्वेदी नवयुवकों को स्वतंत्रता के लिए बलिदान की प्रेरणा देते हुए कहते हैं—

मुझे तोड़ लेना वनमाली! उस पथ पर देना तुम फेंक।
मातृ-भूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जावें वीर अनेक।।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का हृदय क्रांति का आह्वान करते हुए चीख उठता है—

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल-पुथल मच जाए।

देश-स्वातंत्र्य के पश्चात् देश की राजनीति पर निरन्तर छाते-फैलते कुहरे को देखकर राष्ट्र का साहित्यकार चुप न बैठ सका। वह कहीं सपाट ढंग से और कहीं व्यंग्यात्मक शैली में राजनीतिज्ञों का मार्ग-दर्शन करने लगा। दिनकर सोमवलकर ने आज की राजनीति के तीन अभिशापों को किस प्रकार मार्मिक वाणी दी है—

पूछा एक टूरिस्ट ने'
'आपने क्या बनाया है सरकार।'
बोले—
'तीन राष्ट्रीय उद्योग :
भाषण, भूख, भ्रष्टाचार।'

दूसरी ओर, धार्मिक सहिष्णुता से देश की अखण्डता, सुरक्षा, सुख-शान्ति के साथ सत्य की प्रतिष्ठापना के लिए भारतीय साहित्यकार एक हजार वर्ष से सतत प्रयत्नशील है। कबीर का साम्प्रदायिक सद्भाव आज भी हिन्दु-मुस्लिम एकता का संदेश दे रहा है। उन्होंने जिस मानवीय एकता का प्रचार किया, वह स्वतंत्रता- आन्दोलन के कर्णधारों का सम्बल बना। कबीर के ये शब्द कितने प्रेरणास्पद हैं—

हिन्दू-तुरुक की एक राह है, सतगुरु इहै बताई।
कहै कबीर सुनो हे साधो, राम न कहेउ खुदाई।

तुलसीदास ने रामचरितमानस के माध्यम से जाति, वर्ण, भाषा एवं मत-मतान्तरों के भेद को समाप्त कर हिन्दू धर्म में समन्वय की विराट् चेष्टा की और धर्म का आदर्श रूप

प्रस्तुत किया। रामचरितमानस न केवल हिन्दी-साहित्य के लिए गौरव-ग्रन्थ है, अपितु वह धर्म के क्षेत्र में महान् क्रांतिकारी पुस्तक भी है।

मुंशी प्रेमचन्द, वैद्य गुरुदत्त, सुदर्शन, यशपाल, धर्मवीर 'भारती' के कथा-साहित्य ने धर्माडम्बरों पर कुल्हाड़ा चलाया है, तो उपेन्द्रनाथ 'अश्क', रामकुमार वर्मा, लक्ष्मीनारायण मिश्र, जयशंकर प्रसाद, जगदीशचन्द्र माथुर, लक्ष्मीनारायण लाल आदि के नाटकों ने धर्म का सत्य रूप प्रस्तुत किया है।

सामाजिक विषमता, विपन्नता, परस्पर द्वेष-घृणा आदि समाज को पतन की ओर ले जाने वाले हैं, राष्ट्र-निर्माण में बाधक हैं। समाज में व्याप्त आडम्बरों को देखकर 'दिनकर' का दिल दहल उठा। वे चीत्कार कर उठे—

क्रांति-धात्रि कवित्ते! जाग उठ, आडम्बर में आग लगा दे।
पतन, पाप, पाखण्ड जले, जग में ऐसी ज्वाला सुलगा दे॥

बढ़ते वेतन भी चढ़ती महँगाई का सामना नहीं कर पा रहे, इसके दर्द की पुकार करते हुए चिरंजीत लिखते हैं—

वेतन भत्ते से अधिक महँगाई उत्थान,
लो कलयुग में पिट गया
सुरसा से हनुमान।

इस प्रकार समय-समय पर राष्ट्र की माँग के अनुसार राष्ट्र का साहित्यकार अपनी कृतियों से राष्ट्र के निर्माण में सदा योगदान देता रहा है, दे रहा है और देता रहेगा।

जीवनियाँ

(393) स्वामी विवेकानन्द

संकेत बिंदु—(1) विकानन्द का जन्म (2) नरेन्द्र की शिक्षा-दीक्षा (3) परमहंस रामकृष्ण के संपर्क में (4) श्री रामकृष्ण का देहावसान और विवेकानन्द के लक्ष्य (5) उपसंहार।

'अध्यात्म-विद्या, भारतीय-दर्शन एवं धर्म के बिना विश्व अनाथ हो जाएगा', इस प्रकार की दृढ़ भावना रखने वाला परतन्त्र भारत का ही एक साधु था, जिसने समस्त विश्व को भारत के अध्यात्मवाद के चरणामृत का पान कराया और विदेशों में भारत का मस्तक ऊँचा किया।

जन्म से नरेन्द्रदत्त और बाद में स्वामी विवेकानन्द के नाम से जगद्विख्यात भारतीय नव-जागरण के इस अग्रदूत का जन्म 12 जनवरी, सन् 1863 को कलकत्ता के एक क्षत्रिय

परिवार में श्री विश्वनाथ दत्त के घर में हुआ। विश्वनाथ दत्त कलकत्ता हाई कोर्ट के प्रसिद्ध वकील थे।

मेधावी बालक नरेन्द्र सन् 1879 में मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण कर कलकत्ता के 'जनरल असेम्बली' नामक कालिज में प्रविष्ट हो गया। कालिज में रहकर उसने इतिहास, साहित्य, दर्शन आदि विषयों का अध्ययन किया। अन्त में बी.ए. की परीक्षा उत्तम श्रेणी में उत्तीर्ण कर ली। 'अपने छात्र-जीवन में वे उन हिन्दू-युवकों के साथी थे, जो यूरोप के उदार एवं विवेकशील चिन्तकों की विचारधारा पर अनुरक्त थे तथा जो ईश्वरीय सत्ता एवं धर्म को शंका की दृष्टि से देखते थे।' वे जिज्ञासुवृत्ति के थे। ईश्वरीय सत्ता के अस्तित्व की जिज्ञासा लेकर वे ब्रह्मसमाज में गए। उन्होंने केशवचन्द्र सेन तथा महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के उपदेश सुने, पर जिज्ञासा शांत न हुई। अनेक धर्म-गुरुओं के सम्पर्क में होते हुए अन्त में नरेन्द्र सत्तरह वर्ष की आयु में दक्षिणेश्वर के रामकृष्ण परमहंस के मन्त्र से अनुप्राणित हुए। परमहंस जी का नरेन्द्र पर बहुत प्रभाव पड़ा।

'नरेन्द्रनाथ का शरीर काफी विशाल एवं हृष्ट-पुष्ट था। वे कुश्ती, बॉक्सिग, दौड़, घुड़दौड़ के प्रेमी और इन खेलों में दक्ष थे। वे संगीत के प्रेमी और तबला बजाने में सिद्धहस्त थे। उनका स्वभाव पौरुष के वेगों से उच्छल एवं उद्दाम था और आरम्भ से ही उनके भीतर राजसिकता के भाव थे। वे संस्कृत और अंग्रेजी के उद्‌भट विद्वान् एवं यूरोप के तार्किकों एवं दार्शनिकों की विद्याओं में परम निष्णात थे।'

परमहंस स्वामी रामकृष्ण के समीप आकर उनके विचार परिवर्तित होने लगे। नरेन्द्र ने उन्हें अपना दीक्षा-गुरु बना लियां। इसी बीच नरेन्द्र के पिताजी का देहावसान हो गया और परिवार का दायित्व उनके कन्धों पर आ गया। उन्होंने अच्छी नौकरी तलाश की, किन्तु नौकरी न मिली। उन्हें बहुत दु:ख हुआ।

वे पुन: भगवान् के अस्तित्व पर शंका करने लगे। इन शंकाओं में डूबा हुआ नरेन्द्र पुन: गुरु की शरण में गया और विनती की —"आप मेरे लिए काली माता से वरदान माँगें कि मेरा आर्थिक कष्ट दूर हो जाए।" परमहंस ने कहा—"माता से जो माँगना है, तू स्वयं नि:संकोच माँग ले, वे तेरे दु:खों को जानती हैं।" वहाँ से नरेन्द्र मन्दिर में गए और काली से धन की बात भूलकर उन्होंने भगवान् के दर्शनों के लिए बुद्धि और भक्ति की याचना की।

नरेन्द्र ने अनेक बार संन्यास लेने का विचार गुरु के सम्मुख प्रकट किया, किन्तु परमहंस जी उचित अवसर न समझ इन्कार करते रहे। अन्त में एक दिन उपयुक्त अवसर देख रामकृष्ण परमहंस ने अपनी साधना का तेज और अपनी अदृश्य-दर्शिनी दृष्टि को नरेन्द्रनाथ के हृदय में उतार कर उसे 'विवेकानन्द' बना दिया। रामकृष्ण और नरेन्द्रनाथ का मिलन श्रद्धा और बुद्धि का मिलन था, रहस्यवाद और बुद्धिवाद का मिलन था।

सन् 1886 ई. में श्री रामकृष्ण परमहंस का देहावसान हो गया। तत्पश्चात् स्वामी विवेकानन्द कलकत्ता छोड़ उत्तर में स्थित वराद नगर के आश्रम में आकर निवास करने लगे। वहाँ उन्होंने दर्शन एवं अन्य शास्त्रों और धर्म-ग्रन्थों का अध्ययन किया।

दो वर्ष तपस्या और अध्ययन के उपरान्त विवेकानन्द समस्त भारत की यात्रा पर चल पड़े। इस यात्रा में स्वामी जी ने निम्नलिखित तीन कार्यों को अपना लक्ष्य बनाया—

(1) बुद्धिवादी समाज में धर्म के प्रति जो अश्रद्धा उत्पन्न हो गई थी, उसको दूर करके धर्म की एक तर्क-संगत व्याख्या प्रस्तुत करना, जो मानव के सांसारिक कृत्यों में बाधक न हो।

(2) हिन्दू धर्म पर, कम से कम यूरोपीय विद्वानों द्वारा असमर्थित धर्म और इतिहास पर अविश्वास करने वाले हिन्दुओं में स्वधर्म के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करना।

(3) भारतीयों को आत्म-गौरव की भावना से प्रेरित करना एवं उन्हें भारतीय संस्कृति, इतिहास और आध्यात्मिक परम्पराओं का योग्य उत्तराधिकारी बनाना।

उन्होंने शक्ति की साधना में ही भारत का कल्याण बताया। उनका कहना था, "शक्ति, पौरुष, क्षात्र-वीर्य और ब्रह्म-तेज, इनके समन्वय से भारत की नई मानवता का निर्माण होना चाहिए।" इसके लिए उन्होंने वीरता, बलिदान और निर्भयता की शिक्षाएँ भी धर्म से निकालीं एवं रुद्र-शिव तथा महाकाली को लोगों का आराध्य बना दिया। साथ ही यह भी उपदेश दिया, वास्तविक शिव की पूजा निर्धन और दरिद्र की पूजा में है, रोगी और कमज़ोर की पूजा में है।"

कहीं-कहीं तो वे भारत के दारिद्र्य और दीन-हीन दशा पर ईश्वर से भी विद्रोह करते दिखाई देते हैं, "मेरे जीवन का परम ध्येय उस ईश्वर के विरुद्ध संघर्ष करना है, जो परलोक में आनन्द देने के बहाने इस लोक में मुझे रोटियों से वंचित रखता है, जो विधवाओं के आँसू पोंछने में असमर्थ है, जो माँ-बाप से हीन बच्चे के मुख में रोटी का टुकड़ा नहीं दे सकता।"

(394) डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार

संकेत बिंदु—(1) बीसवीं सदी की महान विभूति (2) हेडगेवार का जन्म और परिवार (3) जन्मजात देश-भक्ति और राष्ट्रीय स्वयंसेवक की स्थापना (4) प्रारम्भ में संघ का स्वरूप (5) उपसंहार।

बीसवीं शताब्दी का यह युधिष्ठिर वस्तुतः अजातशत्रु था। महान् मानव-शिल्पी था। वह संगठन मन्त्र का उद्‌गाता और हिन्दू जीवन में जन-जागरण का शंखनाद करने वाला ऋषि था। राष्ट्र-चिति की स्वयंभू अभिव्यक्ति-कर्ता था।

भारतीय इतिहास के देदीप्यमान नक्षत्र प्रातःस्मरणीय डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार का जीवन राष्ट्र-भक्ति की प्रेरणा का अखंड स्रोत है। 'क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे' का सुभाषित उन पर पूरी तरह घटित होता है। मातृभूमि के उत्थान की भावना की अखंड ज्योति उनके मन-मन्दिर में जीवन-पर्यन्त ज्योतित रही।

श्री हेडगेवार का जन्म विक्रम-संवत् 1946 की वर्ष-प्रतिपदा (1-4-1889) के पावन

दिन नागपुर में एक निर्धन ब्राह्मण कुल में हुआ। इनके पूर्वज कर्नाटक से यहाँ आये थे। उनके पिताजी का नाम श्री बलिराम पंत और माता का नाम श्रीमती रेवतीबाई था। उनके दो अग्रज सर्वश्री महादेव और सीताराम थे। उनकी तीन बहनें थीं—सर्वश्रीमती सरु, तंजु और रंगु। कुल परम्परा के अनुसार श्री बलिराम पंत उपजीविका के लिए पौरोहित्य तथा कर्त्तव्य समझकर विद्यादान, दोनों ही करते थे। कुछ काल पश्चात् उन्होंने भोजन के लिए यजमानों के घरों में जाना छोड़ दिया। हाँ, कुछ निश्चित घरों से 'सीधा' (आमान्न) वे स्वीकार करते थे।

यथा-समय बालक केशव की विधिवत् पाठशाला शिक्षा प्रारम्भ हुई। घर पर उन्हें अनेक स्तोत्र, श्लोक, रामरक्षा आदि के मंत्र सीखने को मिले। यज्ञोपवीत संस्कार होने पर संध्या, पूजा, रुद्रीपाठ आदि ब्रह्मकर्म का दैनिक शिक्षण आरम्भ हुआ।

देश-भक्ति उनमें जन्मजात थी और विदेशी शासन की पीड़ा उन्हें बचपन से ही ग्रस्त करने लगी। 22 जून, 1897 को महारानी विक्टोरिया के राज्यारोहण के साठवें वर्षदिन पर स्कूल में मिली मिठाई न खाकर उन्होंने कूड़े के ढेर में यह कहकर फेंक दी, "भौंसले के राज्य को जीतने वाले राजा के समारोह का आनन्द कैसा?" इसी प्रकार एडवर्ड सप्तम के राज्यारोहण के अवसर पर 'एम्प्रेस मिल' की ओर से की गई विशाल आतिशबाजी देखने से उन्होंने इसलिए इंकार कर दिया कि, "विदेशी राजा का राज्यारोहण-उत्सव मनाना हमारे लिए लज्जा का विषय है।"

सन् 1925 की विजयदशमी के पावन दिन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का कार्य प्रारम्भ हुआ। डॉक्टर साहब ने 15-20 व्यक्तियों को अपने घर में एकत्र कर कहा, "हम लोग आज से संघ शुरू कर रहे हैं।" इस प्रथम बैठक में सर्वश्री भाऊजी कावरे, अण्णा सोहोनी, विश्वनाथ राव केलकर, बाला जी हुद्दार और बापूराव भेदी के नाम प्रमुख हैं। यहाँ से डॉक्टर जी के जीवन नें नया मोड़ लिया और प्रारम्भ हुआ उनका हिन्दू राष्ट्र के पुनरुद्धार के लिए चारित्र्यपूर्ण, ध्येयनिष्ठ तथा सेवामय जीवन।

प्रारम्भ में संघ के सदस्य से इतनी ही अपेक्षा थी कि वह किसी भी व्यायामशाला में जाकर पर्याप्त व्यायाम करे। हाँ, सप्ताह में एक दिन रविवार को सभी स्वयंसेवक 'इतवार दरवाजा प्राथमिक शाला' के मैदान में एकत्रित होते थे। कुछ दिनों बाद श्री मार्तण्डराव जोग के निरीक्षण में सैनिक शिक्षण प्रारम्भ हुआ। अखाड़ों से निकलकर संघ-जीवन ने लाठी शिक्षण में प्रवेश किया। सेवा-वृत्ति की दृष्टि से इन स्वयंसेवकों ने रामटेक में रामनवमी के मेले में अप्रैल 1926 में अत्यन्त सुन्दर प्रबन्ध किया। इससे प्रभावित होकर संघ के स्वयंसेवकों की संख्या बढ़ने लगी। इधर, श्री सोहोनी के नेतृत्व में जो लाठी शिक्षण का कार्य चल रहा था, उससे आकर्षित हो, नए-नए तरुण संघ में आने लगे। श्री अण्णा सोहोनी के घोर प्रयत्न से अंग्रेजी भाषा के आदेशसूचक शब्दों का 'दक्ष', 'सावधान' आदि संस्कृत शब्दों में परिवर्तन हुआ।

वर्तमान संघ-शाखाओं जैसा कार्यक्रम 28 मई, 1926 से विधिवत् आरम्भ हुआ, जिसमें शारीरिक कार्यक्रम और लाठी शिक्षण का महत्त्व था। शाखा-समाप्ति पर प्रार्थना गाई जाती थी।

1-10 नवम्बर, 1929 को संघचालकों और कार्यकर्ताओं की बैठक हुई, जिसमें संघटन का स्वरूप 'एक चालकानुवर्ती' रखने का निश्चय किया गया। साथ ही सर्वसम्मति से प्रथम सरसंघचालक का पद डॉ. हेडगेवार जी को दिया गया। प्रथम कार्यवाहक बने श्री बाला जी हुद्दार और सरसेनापति श्री मार्तण्डराव जोग। 11 नवम्बर 1929 को डॉ. हेडगेवार जी को प्रथम सरसंघचालक प्रणाम दिया गया।

संघ के प्रारम्भ से लेकर मृत्युपर्यन्त डॉक्टर हेडगेवार ने संघ के माध्यम से विराट् हिन्दू-संघटन को देश के विभिन्न भागों में फैलाया। अनेक कर्मठ, निःस्वार्थ, लोकेषणा से बहुत दूर तपःपूत प्रचारकों की शृंखला खड़ी की, जिन्होंने माता-पिता का स्नेह, परिवार का प्रेम और बंधु-बांधवों का बंधन छोड़कर संघकार्य के लिए अपने जीवन समर्पित कर दिए। इन त्यागी, वैरागी प्रचारकों ने रात-दिन चौबीसों घंटे लगकर, हिन्दू-संगठन की नींव को सुदृढ़ किया। वस्तुतः वे पारस थे। उन्होंने अपने सम्पर्क से लाखों लोगों को सोने जैसा देदीप्यमान बनाया।

संघ का विस्तार और कार्य सुचारु रूप से चलाते हुए भी डॉक्टर जी ने राष्ट्र की अन्य गतिविधियों में भाग लेना नहीं छोड़ा। गाँधी जी के नमक-सत्याग्रह के समय डॉक्टर जी ने जंगल-सत्याग्रह शुरू कर दिया और 29 जुलाई, 1930 को 9 मास के सश्रम कारावास का दण्ड प्राप्त हुआ।

अपने व्यक्तिगत कारणों से संघ की हानि न हो, इसका डॉक्टर साहब सदा ध्यान रखते थे। अतः जंगल-सत्याग्रह के लिए जाते समय वे सरसंघचालक का भार डॉ. परांजपे को सौंप गए।

21 जून, 1940 को प्रातः 9 बजकर 25 मिनिट पर हिन्दूराष्ट्र का यह अनन्य पुजारी अपना कार्य पूर्ण कर परलोक को प्रस्थान कर गया। वह हिन्दू समाज को सुगठित कर उसमें आत्मबल भर गया। देश पर जब भी विपत्ति आई, राष्ट्र के कर्णधारों को 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' ही याद आया।

(395) पण्डित दीनदयाल उपाध्याय

संकेत बिंदु—(1) जन्म और जन्मकुंडली (2) पारिवारिक पृष्ठभूमि और शिक्षा (3) राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में प्रवेश (4) जनसंघ के द्वारा राजनीति में प्रवेश (5) उच्च कोटि के विचारक, लेखक-वक्ता और राजनीतिज्ञ।

ग्रामीणों जैसा सादा परिधान और सौम्य मुखाकृति वाले एवं व्यवहार में सरलता के धनी पण्डित दीनदयाल उपाध्याय का जन्म अपने नाना पं. चुन्नीलाल जी के घर धनकिया

(राजस्थान) में आश्विन कृष्णा त्रयोदशी, चन्द्रवार सम्वत् 1973 तदनुसार 25 सितम्बर, 1916 ई. को हुआ। नाना धनकिया के स्टेशन मास्टर थे। इनके पिता का नाम पंडित भगवती प्रसाद उपाध्याय और माता का नाम श्रीमती रामप्यारी था। पण्डित भगवतीप्रसाद जी 'जलेसर रोड' स्टेशन के स्टेशन मास्टर थे। वैसे, मूलत: वे भगवान् कृष्ण की पावन जन्मभूमि मथुरा जिले के फरह नामक गाँव के रहने वाले थे।

नाना जी ने ज्योतिषी बुलवाकर जन्म-नक्षत्र का विचार करवाया। ज्योतिषी ने बताया, 'बालक अत्यन्त विलक्षण और प्रतिभाशाली होगा। वैरागी, तपस्वी, विचारक, विद्वान् तथा देश-विदेश में सम्मान का भागी बनेगा। विवाह नहीं करेगा, परिवार नहीं बसाएगा।' जहाँ बालक की तेजस्विता की बात सुनकर नाना जी गद्‌गद हो गए, वहाँ 'वंश-परम्परा अवरुद्ध हो जाएगी' की पीड़ा उनके मन को कचोटती रही।

दीनदयाल जी के जन्म के दो वर्ष पश्चात् एक छोटे भाई ने और जन्म लिया। उसका नाम रखा गया 'शिवदयाल'। जब शिवदयाल जी केवल ६-७ मास के और दीनदयाल जी लगभग ढाई वर्ष के थे, तब एक दुर्घटना हो गई। इनके पिता को श्राद्धों के दिनों में किसी ने खिचड़ी में विष दे दिया। विष-प्रकोप से उनका शारदीय नवरात्रों की चतुर्थी को देहावसान हो गया।

तदनन्तर इनकी माताजी दोनों पुत्रों को लेकर अपने पिता के घर आ गईं। अभी चार वर्ष बीते होंगे कि 8 अगस्त, 1924 को माता रामप्यारी का निधन हो गया। आठ वर्षीय दीनदयाल और छ: वर्षीय शिवदयाल अनाथ हो गए; माता-पिता के स्नेह से वंचित हो गए।

दोनों भाई मामा के संरक्षण में बढ़ रहे थे कि विधि को यह जोड़ी भी एक आँख न भाई। सन् 1934 की कार्तिक कृष्ण एकादशी (18 नवम्बर, 1934) को छोटे भाई शिवदयाल की निमोनिया से मृत्यु हो गई और दीनदयाल अब जीवन में सर्वथा एकाकी रह गया।

विपरीत परिस्थितियों में भी दीनदयाल जी ने एम. ए. (प्रथम वर्ष) तक की उच्च-शिक्षा प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान पर रहकर उत्तीर्ण की। ममेरी बहिन की बीमारी में अत्यधिक सेवा-संलग्नता और बाद में उसकी मृत्यु के कारण एम. ए. द्वितीय वर्ष की परीक्षा न दे सके। तत्पश्चात् प्रशासनिक-सेवा परीक्षा तथा एल. टी. परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं।

शिक्षण समाप्त करने के बाद, जीवन में संघ की विचारधारा को पूर्णत: आत्मसात् कर लेने के कारण आपने देश-हितार्थ राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का प्रचारक बनना स्वीकार किया। शादी कर, घर बसाने और अपने पिता की एकमात्र जीवित संतान होने के कारण वंश-बेल को पुष्पित-पल्लवित करने की प्रचण्ड मानवीय अभिलाषा लुप्त हो गई। देश की स्वतन्त्रता व अखंडता के लिए उन्होंने अपना खिलता हुआ जीवनपुष्प भारत माता के चरणों में ही अर्पित करने का संकल्प किया और चल पड़े राष्ट्र-भक्ति की अलख जगाने के लिए।

उत्तर-प्रदेश के लखीमपुर जिले की एक तहसील में प्रचारक के रूप में सन् 1942 में आपकी नियुक्ति हुई।

इनकी योग्यता, कुशलता एवं लोकप्रियता देखकर संघ के अधिकारियों ने उन्हें 1945 में उत्तर-प्रदेश का सह प्रान्त-प्रचारक बनाकर उस प्रदेश के संघटन का भार आपके कन्धों पर लाद दिया।

इसी लोक-संग्रही मनोवृत्ति को देखकर परम पूजनीय गुरु जी ने दीनदयाल जी के बारे में एक बार उनका आत्म-दर्शन करते हुए कहा था, "दिल गरम एवं दिमाग ठंडा रखने की कला में वे प्रवीण हैं। दिल की गरमी ऊपर चढ़कर कभी भी उनके दिमाग के संतुलन को नष्ट नहीं कर सकती है एवं दिमाग की ठंडक कभी भी नीचे आकर उनके दिल की आग को बुझाने में समर्थ नहीं हो पाती है।"

उत्तर-प्रदेश में जनसंघ की स्थापना के साथ आप श्री गुरु जी की आज्ञा से जनसंघ में आ गए और संघ का सांस्कृतिक-कार्य राजनीतिक-चिंतन में अग्रसर हो गया।

21 सितम्बर, 1951 को उन्होंने लखनऊ में उत्तर-प्रदेश का सम्मेलन बुलाकर प्रादेशिक जनसंघ की स्थापना की। उसी सम्मेलन में आपने जनसंघ को अखिल भारतीय रूप देने का प्रस्ताव रखा, जो सर्वसम्मति से पारित हुआ और ठीक 1 माह के बाद अर्थात् 21 अक्तूबर, 1951 को दिल्ली में अखिल भारतीय सम्मेलन किया गया। डॉ. मुखर्जी के नेतृत्व में भारतीय जनसंघ ने अखिल भारतीय रूप ग्रहण किया। 1952 के दिसम्बर में कानपुर में जनसंघ का प्रथम अखिल भारतीय विशाल सम्मेलन हुआ। पं. दीनदयालजी की प्रतिभा, संगठनकौशल व राजनैतिक सूझबूझ देखकर डॉ. श्यामाप्रसाद जी ने उनको जनसंघ का महामन्त्री घोषित किया। तब से लेकर 1967 तक आप निरन्तर इस पद पर रहकर 15 वर्ष तक भारतीय जनसंघ के राजनीतिक रथ का संचालन करते रहे।

सन् 1963 में उन्होंने जौनपुर से लोकसभा का चुनाव भी लड़ा, किन्तु पराजित हुए। इसके बाद दीनदयाल जी ने आजीवन लोकसभा का चुनाव नहीं लड़ा।

पं. दीनदयाल जी एक उच्च कोटि के विचारक, प्रतिभा-सम्पन्न लेखक, कुशल पत्रकार, प्रभावी वक्ता, निपुण संघटक, चतुर राजनीतिज्ञ व सफल आन्दोलनकर्ता थे। भारतीय संस्कृति, भारतीय अर्थशास्त्र और भारतीय राजनीति के वे पारदर्शक पंडित थे। इस विषय में उनके सुचिन्तित विचारों का लोहा मानने को दिग्गज लोग भी विवश हो जाते थे।

दीनदयाल जी का साहित्यिक जीवन भी अत्यन्त गौरवशाली था। राष्ट्रधर्म (मासिक) स्वदेश (दैनिक) तथा पाञ्चजन्य साप्ताहिक का प्रकाशन पंडित दीनदयाल जी के मार्गदर्शन में ही शुरू हुआ।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संस्थापक डॉ. हेडगेवार के मराठी जीवन चरित का हिन्दी अनुवाद पंडित जी ने किया। उन्होंने कई मौलिक पुस्तकें भी लिखीं। जैसे—'सम्राट् चंद्रगुप्त', 'राष्ट्र-जीवन की समस्याएँ', 'टैक्स या लूट', 'एकात्म मानववाद', 'लोकमान्य

तिलक की राजनीति', 'जनसंघ : सिद्धान्त और नीति', 'जीवन का ध्येय', 'राष्ट्रीय आत्मानुभूति', 'हमारा कश्मीर', 'अखण्ड भारत', 'भारतीय राष्ट्रीय धारा का पुनः प्रवाह', 'भारतीय संविधान पर एक दृष्टि', 'इनको भी आजादी चाहिए' आदि। 'अमरीकी अनाज पी.एल. 480', 'पॉलिटिकल डायरी', 'भारतीय अर्थनीति : विकास की एक दिशा', 'बेकारी की समस्या और उसका हल', 'विश्वासघात' आदि रचनाओं ने बुद्धिजीवी समुदाय को झकझोर कर रख दिया था। वे 'राष्ट्रधर्म' और 'पाँचजन्य' के लिए नियमित लिखते रहे। उनके लेखन का एक ही लक्ष्य था—भारत की प्रतिष्ठा की वृद्धि।

11 फरवरी 1968, रविवार को सभी भारतवासियों ने यह दुःखद समाचार सुना कि पण्डित दीनदयाल जी का शव मुगलसराय स्टेशन के समीप पड़ा पाया गया। इससे भारत का जन-मानस हिल गया। भारत शोक-सागर में डूब गया।

(396) महात्मा बुद्ध

संकेत बिंदु—(1) गौतम बुद्ध के जन्म की कथा (2) बचपन से शांत व गंभीर स्वभाव (3) सांसारिक जीवन त्यागकर घोर तपस्या की (4) बौद्ध धर्म के सिद्धांत (5) उपसंहार।

गौतम बुद्ध का जन्म अब से लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व कपिलवस्तु के राजा शुद्धोदन के घर में हुआ था। कहा जाता है कि इनके जन्म से पहले इनकी माता महारानी महामाया को शुभ स्वप्न दिखाई देते थे। एक बार स्वप्न में उन्होंने देखा कि वे हिमालय-शिखर पर पहुँच गई हैं और गजराज ऐरावत अपनी सूँड में शतदल कमल लिए उनकी परिक्रमा कर रहा है। राज-ज्योतिषियों ने घोषणा की कि यह बहुत मंगल-सूचक स्वप्न है। इसी समय महारानी की इच्छानुसार राजा शुद्धोदन ने उन्हें उनके पिता के पास भेजने की व्यवस्था की। इसी यात्रा में भारत-नेपाल की सीमा पर विद्यमान लुम्बिनी वन में महारानी ने पुत्र को जन्म दिया। पुत्र-जन्म के सात दिन बाद महारानी स्वर्ग सिधार गई। उनकी छोटी बहिन गौतमी ने इस बालक का पालन-पोषण किया। इस बालक के जन्म से पिता की सन्तान प्राप्ति की कामना पूरी हुई थी, इसलिए इनका नाम 'सिद्धार्थ' अर्थात् सभी मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाला रखा गया। कुलगोत्र के अनुसार इन्हें 'गौतम' कहा जाता है तथा विशेष ज्ञान प्राप्त करने के बाद ये 'बुद्ध' नाम से प्रसिद्ध हुए।

सिद्धार्थ की जन्मपत्री देखकर ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी करते हुए कहा था—''महाराज! यह आपका महान सौभाग्य है कि आपके कुल में ऐसा पुत्र उत्पन्न हुआ। यह कुमार बत्तीस महापुरुषीय-लक्षणों से युक्त है। यदि यह गृहस्थाश्रम में रहे तो धार्मिक राजा, समुद्रों से घिरी पृथ्वी का स्वामी, चक्रवर्ती राजा होगा, यदि यह प्रव्रज्या लेगा तो यह संसार का महान् सम्यक्-संबुद्ध होगा।''

सिद्धार्थ बचपन से ही गंभीर स्वभाव का था। अवस्था के साथ-साथ उसकी यह प्रवृत्ति बढ़ती गई। इनकी गम्भीरता और उदासीनता दूर करने के लिए इनका विवाह एक अत्यन्त सुन्दरी राजकुमारी यशोधरा से कर दिया गया, जिससे एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ। इसका नाम राहुल रखा गया, किन्तु राजसी ठाठ और सुन्दर पत्नी का प्रेम एवं हृदयांश राहुल का वात्सल्य भी इनकी गंभीरता और उदासीनता को समाप्त न कर सका।

एक दिन सिद्धार्थ भ्रमण करने के लिए निकले। मार्ग में उन्हें रोगी, बूढ़े और मृतक व्यक्तियों के दर्शन हुए। रोगी की रोग से बेचैनी, बूढ़े की कार्य करने में असमर्थता और क्लान्त शरीर को देखकर तथा 'मृत्यु अनिवार्य है' ऐसा ज्ञात होने पर सिद्धार्थ का मन संसार से हटकर आत्मचिंतन में लीन हो गया।

एकमात्र सन्तान होने के कारण राजा ने भी उनको सांसारिक कर्मों की ओर मोड़ने में कोई कसर न रखी। फिर भी एक रात्रि को जबकि महल के सभी लोग सो रहे थे, सिद्धार्थ चुपके से उठे, पत्नी और पुत्र की ओर एक बार देखा तथा चल दिए। उन्होंने भयानक जंगलों की खाक छानते और कठिन तपस्या करते हुए शरीर को जर्जर कर लिया, किन्तु मन को शान्ति तब भी न मिली। अन्त में गया में एक पीपल के पेड़ के नीचे समाधि लगाकर बैठ गए। सात वर्ष की घोर तपस्या के बाद यहाँ इन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ। अब ये सिद्धार्थ से 'बुद्ध' कहलाने लगे। वह वट-वृक्ष भी 'बोद्धि वृक्ष' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। गया शहर भी 'बुद्ध गया' के नाम से विख्यात हुआ।

यहाँ से चलकर आप सर्वप्रथम काशी के समीप सारनाथ पहुँचे। यहाँ से आपने अपने मत का प्रचार आरंभ किया। इसके बाद उन्होंने सम्पूर्ण भारत का भ्रमण किया। एक बार वे कपिलवस्तु भी गए, जहाँ उनकी पत्नी यशोधरा ने पुत्र राहुल को उन्हें समर्पित कर दिया।

बौद्ध धर्म की दीक्षा ग्रहण करते समय नवदीक्षित कहता है—

बुद्धं शरणं गच्छामि।
धम्मं शरणं गच्छामि।
संघं शरणं गच्छामि।

अस्सी वर्ष की अवस्था में आप निर्वाण-पद को प्राप्त हुए।

उन्होंने संस्कृत त्यागकर जन-भाषा को अपनाया। उन्होंने कहा कि मायावी संसार में दु:ख ही दुख हैं। दु:ख आर्य सत्य है। दु:ख का कारण तृष्णा है। तृष्णा और दु:ख में कारण-कार्य का संबंध है। तृष्णा-त्याग और वासना की अलिप्ति दु:खों से मुक्त होने के उपाय हैं।

महात्मा बुद्ध का मत प्रधान रूप से प्रधान था। इनके ये पाँच सिद्धात थे—

(1) जीवन में न तो सर्वथा वैराग्य और साधना में लीन रहना चाहिए और न विलास में ही। सादा जीवन व्यतीत करना चाहिए।

(2) संसार दु:खमय है। दु:खों का कारण वासना है। तृष्णा की समाप्ति से दु:ख दूर होते हैं, तृष्णा को दूर करने के आठ साधन हैं।

(3) सत्य-दृष्टि, सत्य-भाव, सत्य-भाषण, सत्य-व्यवहार, सत्य-निर्वाह, सत्य-पालन, सत्य-विचार और सत्य-ध्यान से मनुष्य इस लोक और परलोक, दोनों में सुखी रह सकता है।

(4) यज्ञ और तपस्या व्यर्थ हैं। वास्तविक शुद्धि के लिए आत्म-परिष्कार आवश्यक है।

(5) जन्म से कोई बड़ा या छोटा नहीं होता। प्रत्येक व्यक्ति को भक्ति का अधिकार है। ब्राह्मणों की महत्ता का बुद्ध ने प्रबल विरोध किया। इसलिए समाज में जो वर्ण ब्राह्मण से जितना दूर था, वह बौद्ध धर्म की ओर उतने ही वेग से खिंचा।

अपने सरल नियमों, प्रचारकों की अनथक लगन और राज्याश्रय के कारण बौद्ध धर्म का खूब प्रचार हुआ। भारत में सम्राट् अशोक, कनिष्क तथा हर्ष ने इसे स्वीकार किया और इसके प्रचार और प्रसार में सहयोग दिया। इतना ही नहीं लंका, बर्मा, सुमात्रा, जावा, चीन, जापान, तिब्बत आदि देशों में भी इसका खूब प्रचार हुआ।

भारत में इस धर्म के प्रचार से राजा-प्रजा, दोनों में अकर्मण्यता और भीरुता उत्पन्न हुई और वैदिक-धर्म का ह्रास होने लगा। आगे चलकर स्वामी शंकराचार्य, कुमारिल भट्ट आदि महापुरुषों ने बुद्ध-मत का प्रबल विरोध एवं खंडन कर जनता को वास्तविक वैदिक-धर्म का ज्ञान कराया।

(397) महावीर स्वामी

संकेत बिंदु—(1) महावीर स्वामी का अवतरण (2) जैन ग्रंथों में चमत्कार के रूप में वर्णन (3) सांसारिक क्रिया-कलापों से मोहभंग (4) महावीर स्वामी की शिक्षाएँ (5) उपसंहार।

देश की धार्मिकता कर्मकांड की प्रबलता से विकृत थी। पशुओं और नर-पुत्रों के रक्त से यज्ञ में आहुतियाँ दी जाती थीं। देव-देवी प्रतिमा के सम्मुख नर-मेध किया जाता था। माँस-मंदिरा का भोग लगाया जाता था। नारी भोग का साधन बन गई थी। धर्म के नाम पर ढोंग चल रहा था। समाज के बन्धन ढीले पड़ चुके थे। ऐसी शोचनीय स्थिति में एक महापुरुष उत्पन्न हुआ। इसका नाम था वर्धमान, जो बाद में महावीर स्वामी के नाम से प्रख्यात हुआ।

महावीर स्वामी जैन धर्म के चौबीसवें तीर्थंकर थे। आपका जन्म लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व चैत्र सुदी त्रयोदशी के दिन बिहार प्रान्त के वैशालीनगर के पास कुंडग्राम में लिच्छवीवंशीय क्षत्रिय राजा सिद्धार्थ के घर हुआ था। आपकी माता का नाम त्रिशलादेवी था। पुत्र-जन्म से पूर्व माता त्रिशला ने चौदह शुभ स्वप्न देखे थे। इन स्वप्नों में उसे क्रमशः श्वेत हाथी, वृषभ, सिंह, लक्ष्मी, पुष्पमाला, चन्द्र, सूर्य, पताका, कलश, कमल-सरोवर, क्षीर-सागर, देव-विमान, रत्नराशि और अग्नि के दर्शन हुए। इससे विश्वास हो गया कि उसकी होने वाली सन्तान महान गुणों से युक्त पुत्र होगा। उनका विश्वास सत्य सिद्ध हुआ।

जैन धर्म-ग्रन्थों में महावीर के जन्म का चमत्कार के रूप में वर्णन किया गया है। वहाँ लिखा है—"प्रकृति प्रसन्न हो उठी। धरती ने फूलों का शृंगार किया। वसन्त समीर बहने लगा। सर्वत्र आनन्द और उल्लास छा गया, क्योंकि आज धराधाम पर एक महापुरुष का अवतार हुआ था।" पिता ने पुत्र-जन्म पर बहुत उल्लास प्रकट किया। धूमधाम से उत्सव मनाया गया और प्रजा को अनेक प्रकार की सुविधाएँ दी गईं। लिच्छवी वंश उस समय बहुत विख्यात था तथा आपके जन्मकाल से राजा सिद्धार्थ का प्रभाव और अधिक बढ़ने लगा। इस कारण आपका नाम 'वर्द्धमान' रखा गया।

वर्द्धमान बाल्यकाल से ही अत्यन्त होनहार, ज्ञानी तथा वीर थे। कहा जाता है कि आपने बचपन में ही एक भयानक सर्प तथा एक मदोन्मत्त हाथी को अपने पराक्रम से वश में कर लिया था। तभी से आपका नाम महावीर (महान् वीर) प्रसिद्ध हुआ।

आप अत्यन्त दयालु थे तथा जीव-हिंसा और प्राणियों के दु:खों को देखकर आपका मन संसार से उदासीन रहता था। आप 30 वर्ष की आयु तक घर में रहे, तत्पश्चात् राज्य, परिवार तथा सम्बन्धियों का मोह छोड़कर साधु बन गए और वन के एकांत-शांत स्थानों में आत्म-शुद्धि के लिए कठोर तपस्या करने लगे।

12 वर्ष तक तपस्या करने के पश्चात् वे वीतराग होकर पूर्ण ज्ञानी हो गए। आपने जनता को धर्म का स्वरूप समझाना प्रारंभ कर दिया। इनका सबसे पहला उपदेश राजगृह के निकट विपुलाचल पर्वत पर हुआ। राजगृह का शासक राजा श्रेणिक बिम्बसार महावीर स्वामी का परम भक्त था। धीरे-धीरे आपका प्रभाव बढ़ने लगा तथा आपके उपदेशों का प्रभाव सारे भारत में हो गया।

जैन दर्शन की मान्यता है कि जगत का प्रत्येक सत्, प्रतिक्षण परिवर्तित होकर भी कभी नष्ट नहीं होता। वह उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य, इस प्रकार त्रिलक्षण है। कोई भी पदार्थ चेतन हो या अचेतन, इस नियम का अपवाद नहीं है।

आपकी मुख्य शिक्षाएँ इस प्रकार हैं—

(1) किसी प्राणी को मारना, सताना या उसका दिल दुखाना हिंसा कहलाती है। सभी प्राणियों में एक-ही आत्मा है। अत: हिंसा करना महापाप है, अहिंसा सबसे बड़ा धर्म है।

(2) जीव अपने अच्छे-बुरे कार्यों तथा विचारों के अनुसार कर्म करता है और उनके अनुसार तरह-तरह की योनियों में जन्म लेकर दु:ख-सुख भोगता है। जब वह सब बाहरी पदार्थों से रागद्वेष छोड़कर आत्मचिन्तन तथा ध्यान में लगता है, तब दुर्भावों तथा दु:खों से छूट जाता है।

(3) सच्ची श्रद्धा, सच्चा ज्ञान और सच्चा आचरण (रत्नत्रय) ही आत्मशुद्धि के कारण हैं। इन तीनों की पूर्ति होने पर ही संसार से छुटकारा (मोक्ष) मिलता है।

(4) हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह—ये पाँच पाप हैं। इनसे आत्मा मलिन होती है। इनका त्याग किए बिना मानव सदाचारी नहीं बन सकता।

(5) मद्य, नशीली वस्तुओं तथा माँस का त्याग प्रत्येक मनुष्य के लिए आवश्यक बताया गया है।

(6) आवश्यकता से अधिक धन का संग्रह भी पाप है, क्योंकि इससे दूसरों के अधिकार कुचले जाते हैं।

(7) प्रत्येक वस्तु में अनेक गुण विद्यमान हैं। अत: विविध दृष्टिकोणों से विचार किए बिना वस्तु का पूर्ण तथा सत्य रूप ज्ञात नहीं हो सकता। दूसरों की बात पर भी गंभीरता तथा शांति से विचार करना चाहिए। अपनी-अपनी ही चलाना अनुचित है।

(8) क्रोध प्रीति का, मान विनय का, माया मित्रता का और लोभ सारे गुणों का नाश करता है। अत: क्षमा से क्रोध को जीतो, नम्रता से अभिमान को जीतो और संतोष से लोभ को जीतो।

इस प्रकार लगातार तीस वर्ष तक प्राणिमात्र को दया, सद्‌भाव, उदारता तथा आत्मोन्नति का पाठ पढ़ाकर 72 वर्ष की आयु में महावीर स्वामी ने कार्तिक मास की अमावस्या को प्रात:काल पावापुर (बिहार) में इस नश्वर शरीर को छोड़कर निर्वाण प्राप्त किया। आप जैन धर्म के अन्तिम तीर्थंकर माने जाते हैं।

जैन धर्म में आचरण तथा खान-पान की पवित्रता, तपस्या तथा दान पर विशेष जोर दिया जाता है। भारत के सभी प्रान्तों में जैन-धर्म के बड़े-बड़े मंदिर, धर्मशालाएँ तथा औषधालय हैं। श्रवणबेलगोला की गोमटेश्वर की 27 मीटर ऊँची मूर्ति तथा आबू, खजुराहो और देवगण आदि के जैन मंदिर अपनी कला के लिए प्रसिद्ध हैं।

समय के तापसयोगी, महामृत्यु के ध्याता तथा धर्म क्रांति के अग्रदूत भगवान महावीर स्वामी का जन्म-दिवस चैत सुदी 'महावीर जयन्ती' के नाम से सर्वत्र मनाया जाता है।

(398) गुरुनानक देव

संकेत बिंदु—(1) नानक जी का जन्म तथा बचपन (2) नानक जी का खरा सौदा (3) नानक जी का गृहत्याग और धर्मोपदेश (4) गुरुनानक जी की शिक्षाएँ (5) उपसंहार।

भारत की पवित्र भूमि पर समय-समय पर अनेक महापुरुष उत्पन्न हुए, जिन्होंने लोगों को धर्म का बोध कराया, ईश्वर-प्राप्ति का सच्चा मार्ग बताया। इन महापुरुषों में गुरु नानकदेव का नाम सदा स्मरणीय रहेगा।

नानक जी का जन्म संवत् 1526 में कार्तिक पूर्णिमा को तलवंडी नामक ग्राम में हुआ। तलवंडी का वर्तमान नाम 'ननकाना साहब' है। इनके पिता का नाम कालूचन्द पटवारी और माता का नाम तृप्ता था।

इनकी रुचि बचपन से हा भगवान् की भक्ति की ओर थी। अत: पढ़ने की बजाय वे

ईश्वर-स्मरण में ही समय बिताते, जिसे देखकर उन्हें पढ़ाने वाले पंडित और मौलवी दंग रह गए। फिर भी, ये संस्कृति और अरबी-फारसी के विद्वान् बन गए।

नानक जी को गौएँ व भैसें चराने का काम सौंपा गया। पशु खेत में चरते रहते और ये ईश्वर-भजन में मग्न रहते। एक बार ये पशु चराते हुए दूर निकल गए और थक गए। धूप प्रचंड थी। ये लेट गए और इन्हें नींद आ गई। तभी एक फनियल साँप ने आकर इन पर छाया कर दी। वहाँ का शासक राय बुलार वहाँ से गुजर रहा था। उसने यह दृश्य देखा तो को हटाने पहुँचा। साँप ने आदमी को देखा तो चुपके-से चला गया। रायबुलार बहुत प्रभावित हुआ।

पिता ने नानक को व्यापार में डाला। पिता ने एक बार बीस रुपये देकर लाहौर जाकर सच्चा व्यापार करने को कहा। ये चल पड़े। मार्ग में कुछ साधु मिले, जो भूखे थे। इन्होंने सोचा, "इनकी सेवा करना ही सच्चा व्यापार है।" बस, गाँव से सब रुपयों का आटा, दाल और सामान लाकर साधुओं को भेंट कर दिया। घर आने पर इन्हें बहुत दंड मिला।

16 वर्ष की आयु में नानक ने मोदीखाने (सरकारी अनाज की दुकान) में नौकरी कर ली। यहाँ भी वे अपना वेतन गरीबों और साधुओं को बाँट देते। 18 वर्ष की आयु में सुलक्षणादेवी से आपका विवाह हो गया। इनके दो पुत्र हुए—श्रीचन्द और लक्ष्मीदास। भक्ति करने वाले का मन गृहस्थी में कैसे लगता? ईश्वर की नौकरी करने वाला नवाब की चाकरी कैसे करता?

गुरु नानक का युग दिल्ली साम्राज्य के पतन का काल था। चारों ओर अत्याचार और अनाचार फैला हुआ था। धर्म के वास्तविक रूप को न हिन्दू समझ रहा था, न यवन। एक ओर योगी, यति, साधु, संन्यासी हिन्दू जनता को मूर्ख बना रहे थे तो दूसरी ओर मुल्ला, पीर, औलिया, उलमा मुसलमानों पर अपना रोब जमाए हुए थे। हिन्दू जनता अपना आत्म-विश्वास, आत्म-गौरव तथा आत्म-सम्मान खो चुकी थी। हिन्दुओं की असह्य वेदना से पीड़ित नानक घर-बार छोड़कर धर्मोपदेश के लिए चल पड़े।

ऐमनाबाद पहुँचकर वे लालू बढ़ई के यहाँ ठहरे। एक दिन वहाँ के धनी पुरुष मलक ने उन्हें भोजन के लिए आमन्त्रित किया। नानक जी ने स्वीकार न किया। मलक को क्रोध आया। वह नानक के पास पहुँचा। नानक ने एक हाथ में लालू की रोटी और दूसरे हाथ में मलक की रोटी को लेकर दबाया। लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब लालू की रोटी से दूध की और मलक की रोटी से रक्त की बूँदें टपक पड़ीं। उन्होंने कहा कि लालू का भोजन पवित्र कमाई का है।

गुरु नानक ने इस भाँति ईश्वर के प्रति जनता की रुचि जागृत करते हुए भारत का भ्रमण किया। वे मक्का-मदीना भी गए। वहाँ के मुसलमान उनसे बहुत प्रभावित हुए।

गुरु नानकदेव अधिक विद्वान् एवं शास्त्रज्ञानी नहीं थे, किन्तु वे बहुश्रुत तथा निजी अनुभव के धनी अवश्य थे। वे निर्गुण-निराकार ईश्वर की उपासना पर विश्वास रखते थे।

उन्होंने अवतारवाद, मूर्तिपूजा, छुआछूत आदि का घोर विरोध किया। अन्य सन्तों की भाँति गुरु नानकदेव ने भी अपने उपदेश सीधी सादी सरल भाषा में प्रस्तुत किए।

इनके उपदेश थे—सच्चे मन से भगवान् का भजन करो। संयम से जीवन बिताओ। परिश्रम से सच्ची कमाई करो। झूठ मत बोलो, पर-निन्दा और क्रोध मन को अपवित्र करते हैं। मधुर और परहितकारी वचन बोलने चाहिएँ। हमें उस भगवान् को याद करना चाहिए जो जल और थल में समा रहा है। किसी दूसरे शरीरधारी, जन्मने और मरने वाले का नाम नहीं जपना चाहिए।

12 सितम्बर, 1539 को आपने हिन्दू और यवन शिष्यों की उपस्थिति में 'तेरा भाणा मीठा लागे' शब्द कहते-कहते अपने नश्वर शरीर को त्याग दिया। इनके शव को जलाने और गाड़ने के प्रश्न पर हिन्दू और यवनों में झगड़ा होने लगा। झगड़ते हुए जब ये लोग अन्दर गए तो देखा कि सिवाय चादर के वहाँ कुछ नहीं है।

गुरु नानकदेव की वाणी 'गुरु ग्रन्थ साहब' में संगृहीत है। इनकी वाणी में एक अद्भुत प्रेरणादायिनी शक्ति है। इतनी प्रभावोत्पादकता अन्य किसी सन्त कवि की वाणी में नहीं पाई जाती। इस सम्बन्ध में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं—"जिन वाणियों से मनुष्य के अन्दर इतना बड़ा अपराजेय आत्मबल और कभी न समाप्त होने वाला साहस प्राप्त हो सकता है, उनकी महिमा निःसंदेह अतुलनीय है। सच्चे हृदय से निकले हुए उद्गार और सत्य के प्रति दृढ़ रहने के उपदेश कितने शक्तिशाली हो सकते हैं, नानक की वाणियों ने स्पष्ट कर दिया है।" इनकी वाणी का अध्ययन धार्मिक एवं साहित्यिक, दोनों दृष्टियों से किया जाता है। धार्मिक दृष्टि से सिख धर्मानुयायी तो इसका पाठ और श्रवण करते ही हैं, करोड़ों हिन्दू भी मानसिक शान्ति के लिए गुरुजी की वाणी का पाठ करते हैं।

गुरु नानक के अनुयायी आज 'सिक्ख' धर्मावलम्बी माने जाते हैं और वे गुरु नानक को अपना आदि गुरु मानते हैं।

(399) महाराणा प्रताप

संकेत बिंदु—(1) स्वाभिमानी और स्वतंत्रता का पुजारी (2) बचपन से ही देश-भक्त और वीरता (3) हल्दीघाटी युद्ध का प्रसंग (4) शक्ति सिंह का देश-निवार्सन (5) उपसंहार।

अपने जीवन को मातृभूमि की स्वतन्त्रता रूपी बलिवेदी पर सहर्ष निछावर करने वाले भारतीय सपूतों में महाराणा प्रताप का नाम अग्रगण्य है। अकबर के शासनकाल में जब अनेक हिन्दू राजा-महाराजा मुगलों की अधीनता स्वीकार कर चुके थे, तब अकेले प्रताप ही ऐसे ओजस्वी एवं स्वाभिमानी राणा थे, जो जीवन की अन्तिम साँस तक जन्मभूमि चित्तौड़ की स्वाधीनता के लिए जूझते रहे। अकबर उनकी वीरता का लोहा मानता था। महाराणा प्रताप के प्रति श्रद्धा व्यक्त करते हुए किसी कवि ने ठीक ही कहा है—

माई एहड़ा पूत जण, जेहड़ा राणा प्रताप।
अकबर सूतो ओझके, जाण सिराणे साँप।।

इस स्वदेशाभिमानी और स्वतन्त्रता के पुजारी का जन्म 31 मई, 1539 ई. को हुआ था। इनके पितामह मेवाड़-मुकुट वीरता के अवतार महाराणा सांगा और पिता महाराज उदयसिंह थे। उदयसिंह में उस वीरता और आत्मगौरव का अभाव था, जो महाराणा साँगा में विद्यमान थी। महाराणा प्रताप में अपने पितामह की वीरता और देश-प्रेम की भावना पल्लवित हुई। उन्हें अपने पिता की दुर्बलता पर खेद था। वे कहा करते थे कि "यदि मेरे और मेरे पितामह के मध्य मेरे पिता न आए होते तो दिल्ली चित्तौड़ के चरणों में होती।"

प्रताप ने अपनी योग्यता, वीरता और देश-भक्ति की भावना का परिचय बचपन से ही देना शुरू कर दिया था। परिणाम यह हुआ कि पिता की इच्छा न होने पर भी सामन्तों ने इन्हें मेवाड़ का महाराणा बनाया। मेवाड़ का सिंहासन उस समय वास्तव में काँटों की शय्या थी। राज्य के बहुत बड़े भाग पर मुसलमान अधिकार कर चुके थे। दिल्लीपति अकबर से टक्कर लेने की भूमिका थी मेवाड़ का महाराणा बनना। प्रताप ने इसे सहर्ष स्वीकार किया। प्रताप के पास अकबर जैसे कूटनीतिज्ञ एवं शक्तिशाली बादशाह से लड़ने के लिए न पूरे साधन थे और न धन ही था। फिर भी उन्होंने निश्चय किया कि, "जब तक देश का उद्धार नहीं होगा, तब तक राजमहलों का त्याग करके जंगलों में रहूँगा, पलंग छोड़कर तृणों की शय्या पर सोऊँगा और षट्रस भोजन छोड़कर जंगली कन्द-फल-मूल का आहार करूँगा।" इस दृढ़ निश्चय, त्याग और कष्ट सहन से प्रताप के मन में पर्वतों को हिला देने और तूफानों का सामना करने की शक्ति उत्पन्न हो गई।

अकबर ने अपनी पूरी शक्ति लगाकर अच्छे से अच्छे सेनापतियों के नेतृत्व में बड़ी-बड़ी सेना भेजकर प्रताप को पराजित करने का प्रयत्न किया, किन्तु उसे सफलता नहीं मिल सकी। हल्दीघाटी का युद्ध इस प्रसंग की सबसे मुख्य घटना है। एक ओर अकबर के सेनापति मानसिंह के नेतृत्व में एक लाख यवन सैनिक और दूसरी ओर देश-प्रेम के मतवाले महाराणा के 20 हजार योद्धा। महाराणा प्रताप का शौर्य देखने योग्य था। वे मानसिंह के रक्त के प्यासे सिंह के समान शत्रु सेना पर टूट पड़ते थे। अवसर पाकर उन्होंने मानसिंह के हाथी को घायल करके उस पर भाला मारा। मानसिंह ने हौदे के नीचे छिपकर प्राण बचाए। इधर प्रताप पर चारों ओर से यवन-सेना टूट पड़ी। प्रचण्ड वीरता दिखाने पर भी वे घायल हो गए। महाराणा के प्राणों को संकट में पड़ा देख झाला नरेश वहाँ पहुँचे और प्रताप का राजमुकुट अपने सिर पर रखकर युद्ध करने लगे। यवन सैनिक उन्हें ही प्रताप समझ कर युद्ध करते रहे और प्रताप को युद्ध से हट जाने का अवसर मिल गया।

हल्दीघाटी युद्ध का वर्णन करते हुए श्यामनारायण पांडे लिखते हैं--

धड़ कहीं पड़ा, सिर कहीं पड़ा/कुछ भी उनकी पहचान नहीं।
शोणित का ऐसा बेग बड़ा/मुरदे बह गए निशान नहीं।

मेवाड़ केसरी देख रहा/केवल रण का न तमाशा था।
वह दौड़-दौड़ करता था रण/वह मान रक्त का प्यासा था।

राणा प्रताप ने एक बार ब्राह्मण-वध के अपराध में अपने छोटे भाई शक्तिसिंह को देश-निर्वासन का दंड दे दिया था तो वह अकबर से जा मिला। महाराणा को युद्ध-भूमि से बाहर जाते हुए शक्तिसिंह ने देख लिया और वह बदला लेने के विचार से उनका पीछा करने लगा। दो मुगल सैनिक भी प्रताप का पीछा कर रहे थे। सहसा शक्तिसिंह के हृदय में भ्रातृप्रेम का भाव उमड़ा। उसने दोनों यवनों को मौत के घाट उतारा और महाराणा के सम्मुख जाकर क्षमा-याचना की। प्रताप का स्वामीभक्त घोड़ा चेतक दम तोड़ चुका था। वे शक्तिसिंह का घोड़ा लेकर सुरक्षित स्थान के लिए चले गए।

अपूर्व साहसी, अतुल पराक्रमी, प्रचण्ड शौर्ययुक्त, हिमाद्रि सदृश्य धीरता और दृढ़ता से युक्त, स्वदेशाभिमानी, तपस्वी, रण-कुशल, दृढ़-प्रतिज्ञ एवं मातृभूमि की गौरव-गरिमा और स्वाधीनता की रक्षा हेतु अपने युग के सर्वाधिक शक्तिशाली साम्राज्य की शक्ति से अकेले ही जूझने-टकराने वाले अमर सेनानी महाराणा प्रताप की चेतक पर सवार विशाल कांस्य प्रतिमा राजस्थान के स्वर्ग उदयपुर के मोती मगरी में अवस्थित है। गहनों से सजे-धजे चेतक का तीन पाँव पर खड़ा होना जहाँ अत्यन्त शोभनीय है, वहाँ प्रताप की कमर में लटकती तलवार, हाथ का भाला और युद्ध-पोशाक में वीरता टपकती है। द्वार पर ये शब्द अंकित हैं, "**जो राखै दृढ़ धर्म को, तेहि राखै करतार।**"

महाराणा प्रताप का बलिदान और यह स्मारक शताब्दियों तक पतितों, पराधीनों और उत्पीड़ितों के लिए प्रकाश-स्तम्भ रहा है और आगे भी रहेगा। चित्तौड़ की उस पवित्र भूमि में युगों तक मानव स्वराज्य एवं स्वधर्म का अमर संदेश झंकृत होता सुना जा सकता है।

(400) स्वामी दयानन्द

संकेत बिंदु—(1) स्वामी दयानंद का जन्म (2) मूलशंकर से दयानंद सरस्वती (3) लोगों को सच्चे वैदिक धर्म का ज्ञान कराया (4) षडयंत्र द्वारा स्वामी की हत्या (5) उपसंहार।

भारत में जब-जब भी धर्म और समाज में विकृति आई है, जन-जीवन अवनति के गर्त की ओर चला है, सामाजिक प्रथाओं एवं परम्पराओं पर कुठाराघात हुआ है, तब-तब ही इस पुण्य भू पर कोई-न-कोई दिव्य विभूति अवतरित हुई है, जिसने सुप्त भारतीयों को जगाया है। उनको कर्त्तव्य का बोध कराया है। 11वीं शताब्दी में भारत में व्याप्त अज्ञानान्धकार को दूर करने का सर्वाधिक श्रेय स्वामी दयानन्द को प्राप्त है।

महर्षि दयानन्द का जन्म मोरवी राज्य के टंकारा नामक ग्राम में सम्वत् 1881 में हुआ था। उनके पिता का नाम कर्षन जी था, जो कि एक बड़े भूमिधर थे। स्वामी दयानन्द का बचपन का नाम मूलशंकर था। बालक मूलशंकर शुरू से ही मेघावी था, अतः वह 14 वर्ष की आयु तक बहुत से शास्त्र व ग्रन्थ कण्ठस्थ कर चुका था।

स्वामी जी के पिता शैव धर्म के उपासक थे। उन्होंने एक दिन मूलशंकर से शिवरात्रि का व्रत रखने को कहा। ये अपने पिता के साथ शिवालय चले गए। शिवरात्रि को रात भर जागरण रखने का महत्त्व इन्हें समझाया गया। वहाँ सब लोग सो गए, किन्तु मूलशंकर जागता रहा। उन्होंने देखा कि शिवलिंग पर चूहे चढ़ गए हैं और मूर्ति पर चढ़ाई हुई मिठाई खा रहे हैं। इस घटना से स्वामी जी के मन में अनेक शंकाएँ उत्पन्न हुईं। पिता ने युक्तियों द्वारा समाधान करना चाहा, किन्तु बालक को उनकी कोई भी युक्ति तर्कसंगत न लगी।

कुछ दिन बाद उनकी 14 वर्षीय बहन की मृत्यु हो गई। इस मृत्यु ने मूलशंकर के मन पर गहरा प्रभाव डाला। उन्हें संसार से वैराग्य हो गया। यह दशा देखकर घरवालों ने उनके विवाह की तैयारी शुरू कर दी, किन्तु मूलशंकर विवाह के उत्सव से सुशोभित घर से निकल पड़ा।

दो वर्ष के निरन्तर भ्रमण के बाद चाडोंदा ग्राम के समीप दक्षिणात्य दंडी स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती से आपकी भेंट हुई। उन्होंने इनको विधिपूर्वक संन्यास धारण कराया। अब ये मूलशंकर से 'दयानन्द सरस्वती' बन गए।

गुरुजी द्वारा प्राप्त शिक्षा और दिए हुए आदेश को ग्रहण कर दयानन्द वैदिक धर्म के प्रचार के लिए निकल पड़े। संवत् 1924 में आप हरिद्वार के कुंभ मेले में गए और वहाँ 'पाखंड-खंडिनी' पताका गाड़ दी। इस मेले में स्वामीजी ने अनेक भाषण दिए, ब्राह्मण और साधुओं से शास्त्रार्थ किया और लोगों को सच्चे वैदिक धर्म के बारे में समझाया।

उन्होंने भारत के सभी छोटे-बड़े शहरों में भ्रमण किया। वे अनेक राजाओं और महाराजाओं से भी मिले। वे मूर्ति-पूजा का खंडन कर जनता को ईश्वर का वास्तविक रूप समझाते रहे। उनका कहना था कि ईश्वर एक है और उसका कोई रूप नहीं। उन्होंने बाल-विवाह, अनमेल-विवाह, जाति-पाँति और छुआछूत का विरोध किया, अन्धविश्वासों और मिथ्या धारणाओं का खंडन किया। लोगों को जनेऊ पहनाया, संध्या सिखाई, गायत्री का जप बताया। लाखों लोगों को सदुपदेश से सन्मार्ग दिखाया। उन्होंने बताया, ''गुण और कर्म से वर्ण होते हैं, जन्म से नहीं। वेद पढ़ने और यज्ञ करने का सभी को एक समान अधिकार है।'' उन्होंने स्त्री-शिक्षा का प्रचार किया। सहस्त्रों हिन्दुओं को मुसलमान और ईसाई बनने से बचाया।

खुलेआम शास्त्रार्थ करने और अपने आपको हिन्दू-धर्म का ठेकेदार कहने वालों की ठेकेदारी खतरे में पड़ने के कारण बहुत-से लोग उनके शत्रु बन गए। उनको मारने के अनेक प्रयत्न किए गए। अनूपशहर में उन्हें पान में विष दिया गया, गंगा में उठाकर फेंकने और तलवार से मारने का प्रयत्न किया गया। भाषण करते समय उन पर पत्थर फेंके गए। आखिर उनकी मृत्यु एक षड्यन्त्र के कारण ही हुई। एक बार स्वामीजी ने राजा की भर्त्सना की। इससे वह नन्हींजान वेश्या चिढ़ गई। उसने स्वामीजी के विश्वस्त रसोइये को धन देकर उनके दूध में पारा डलवा दिया। अनेक उपचार करने के बाद भी बच न सके और सम्वत् 1940 में दीपावली के दिन उन्होंने इस नश्वर शरीर को छोड़ दिया।

अपनी मान्यताओं के प्रचार-प्रसार हेतु 10 अप्रैल 1875 को मुम्बई में प्रथम 'आर्य समाज' की स्थापना की। उसके बाद तो 'आर्य समाज' का प्रचार इतना बढ़ा कि आज आर्य समाज-मंदिरों का भारत में जाल बिछा हुआ है।

स्वामी जी ने ऋग्वेद के तीन-चौथाई भाग और समस्त यजुर्वेद का भाष्य लिखा। सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका और संस्कार-विधि आदि विद्वतापूर्ण अनेक ग्रन्थ लिखे।

स्वामी दयानन्द ने वैदिक धर्म को ही सच्चा धर्म माना है। उन्होंने घोषणा की कि, "हिन्दू धर्म-ग्रन्थों में वेद ही मान्य हैं, अन्य शास्त्रों और पुराणों की बात बुद्धि की कसौटी पर कसे बिना नहीं मानी जानी चाहिए।" छः शास्त्रों और अठारह पुराणों को उन्होंने एक ही झटके में साफ कर दिया। वेदों में मूर्ति-पूजा, अवतारवाद, तीर्थों और अनेक पौराणिक अनुष्ठानों का समर्थन नहीं था, अतएव स्वामी जी ने इन सारे कृत्यों और विश्वासों को गलत घोषित किया।

स्वामी दयानन्द सरस्वती महान् पुरुष थे। न केवल हिन्दू ही, अपितु यवन और ईसाई नेता भी उनके व्यक्तित्व से प्रभावित थे। उनकी मृत्यु पर सुप्रसिद्ध मुस्लिम नेता सर सैयद अहमद खाँ ने अत्यन्त भावपूर्ण शब्दों में संवेदना और शोक प्रकट किया था। मादाम ब्लेवास्की ने स्वामी जी के देहावसान पर श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा था—"जनसमूह के उबलते हुए क्रोध के सामने कोई संगमरमर की पूर्ति भी स्वामी जी से अधिक अडिग नहीं हो सकती थी।" थियोसोफिस्ट अखबार ने उनकी प्रशंसा करते हुए लिखा था—"उन्होंने जर्जर हिन्दुत्व के गतिहीन ढूह पर भारी बम का प्रहार किया और अपने भाषणों से लोगों के हृदयों में ऋषियों और वेदों के लिए अपरिमित उत्साह की आग जला दी।"

(401) जवाहरलाल नेहरू

संकेत बिंदु—(1) आधुनिक भारत के निर्माता (2) नेहरू जी का जन्म और बाल्यकाल (3) स्वदेश वापसी और स्वतंत्रता-आंदोलन में सक्रिय योगदान (4) भारत-विभाजन और नेहरू जी प्रथम प्रधानमंत्री (5) उपसंहार।

"अगर मेरे बाद कुछ लोग मेरे बारे में सोचें तो मैं चाहूँगा कि वे कहें—वह एक ऐसा आदमी था, जो अपने पूरे दिल व दिमाग से हिन्दुस्तानियों से मुहब्बत करता था और हिन्दुस्तानी भी उसकी खामियों को भुलाकर उससे बेहद, अज़हद मुहब्बत करते थे।"

—जवाहरलाल नेहरू

पंडित जी के शब्दों को थोड़ा-सा बदलकर यदि यह कहें कि वे मानवमात्र से मुहब्बत करते थे, तो अतिश्योक्ति न होगी। उनके निधन पर विश्व के समस्त राष्ट्रों द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर शोक मनाया जाना, हमारे इस कथन का परिचायक है।

भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम के पथ-दृष्टा, नवीन भारत के निर्माता, देश के प्रहरी, राजनीति के चाणक्य तथा बच्चों के चाचा एवं भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री जवाहरलाल का नाम भारत के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा।

14 नवम्बर, 1889 को प्रयाग में जवाहरलाल जी का जन्म हुआ था। आपके पिता का नाम मोतीलाल नेहरू था। मोतीलाल नेहरू एक सुप्रसिद्ध एवं धनाढ्य वकील थे। बाद में वे कांग्रेस के एक नेता के रूप में भी प्रसिद्ध हुए।

जवाहरलाल जी की प्रारम्भिक शिक्षा घर पर हुई। घर पर ही पढ़ाने के लिए एक अंग्रेज विद्वान पंडित नियुक्त था। देश के शिक्षित वर्ग पर पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव होने के कारण पंडित मोतीलाल ने आपको 15 वर्ष की अल्पायु में शिक्षणार्थ इंग्लैण्ड भेज दिया। वहाँ इन्हें हैरो स्कूल में प्रविष्ट करा दिया गया। तत्पश्चात् आपने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में प्रवेश किया। यहाँ आप इंग्लैण्ड के धनी परिवार के बच्चों के साथ शिक्षा पाते थे। सम्राट् एडवर्ड अष्टम आपके सहपाठी थे। कॉलेज में 'विज्ञान' में आपकी विशेष रुचि थी; परन्तु पिता की इच्छानुसार आप सन् 1912 में बैरिस्ट्री की परीक्षा उत्तीर्ण कर भारत लौटे। 1915 में आपका विवाह कमला जी के साथ हुआ।

स्वदेश लौटने पर पंडित जी ने वकालत आरंभ की, परन्तु उसमें उनका मन नहीं लगा। लगता भी कैसे? इंग्लैण्ड जैसे स्वतन्त्र देश में भ्रमण किया हुआ जवाहर अपने देश को परतन्त्र कैसे देख सकता था? इधर देश में 1919 के रौलेट एक्ट तथा पंजाब के मार्शल लॉ एवं जलियाँवाला बाग के अमानुषिक अत्याचारों ने देश में जागृति उत्पन्न कर दी थी। इसी बीच प्रथम महायुद्ध छिड़ गया। जवाहरलाल जी लोकमान्य तिलक और श्रीमती एनीबेसेण्ट की दो होमरूलों के सक्रिय सदस्य बन गए। जब श्रीमती एनीबेसेन्ट गिरफ्तार हुईं, तो जवाहरलाल जी ने अपने पिता मोतीलाल नेहरू, डॉक्टर तेजबहादुर सप्रू और सर चिन्तामणि को उत्तरप्रदेशीय डिफेंस का कार्य बन्द करने के लिए विवश कर अहिंसात्मक आंदोलन का सूत्रपात कर दिया। देश के नेता महात्मा गाँधी के सन्देशानुसार आपने असहयोग आन्दोलन में भाग लिया। राजसी ठाठबाट छोड़ दिए और मोटा खद्दर का कुर्ता पहनकर एक सत्याग्रही सैनिक बन गए। इसके बाद उन्होंने अपना सारा जीवन देश के लिए राजनीति में घुला दिया। 1920 से लेकर 1944 तक अनेक बार सत्याग्रह किया और कारावास गए। इस दीर्घकाल में उन्हें अनेक कष्ट सहने पड़े। सत्याग्रह के दिनों में पत्नी तथा माता-पिता की मृत्यु से इन पर दु:खों का पहाड़ टूट पड़ा, परन्तु यह वीर सेनानी सब-कुछ हँसते-हँसते सह गया।

पंडित जी ने अपनी अन्तिम जेल-यात्रा सन् 1942 में 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के अन्तर्गत की। इस बार आप तीन वर्ष तक कारावास में रहे। इसी बीच सन् 1945 में द्वितीय विश्व युद्ध समाप्त हो गया था। ब्रिटेन में चर्चिल के स्थान पर एटली (मजदूर नेता) की सरकार सत्तारूढ़ हो गई। उसने यह देखा कि भारत के स्वतन्त्रता-संघर्ष को दबाना कठिन ही नहीं, असंभव भी है। दूसरे, ब्रिटेन की आर्थिक स्थिति डाँवाँडोल हो चुकी थी। तीसरी

ओर, नौ-सेना विद्रोह और नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की हिन्द-फौज के आक्रमण ने अंग्रेज सरकार को हिला दिया था। ऐसी स्थिति में बाध्य होकर सन् 1946 में अंग्रेज-सरकार ने भारत को स्वतन्त्र करने का निर्णय लिया। इसके अनुसार एक अन्तरिम सरकार बनाई गई, जिसके प्रधानमन्त्री जवाहरलाल जी बने। सन् 1947 में भारत विभाजन होने के साथ-साथ ब्रिटेन द्वारा भारत को एक औपनिवेशिक राज्य घोषित कर दिया गया। इस समय भी आप औपनिवेशिक राज्य के प्रधानमन्त्री बने। सन् 1952 में प्रथम निर्वाचन हुआ। उसमें आप विजयी हुए और पुनः प्रधानमन्त्री बने। 1957 के द्वितीय तथा 1962 के तृतीय महानिर्वाचनों में भी आप विजयी हुए और प्रधानमन्त्री पद को मृत्यु-पर्यन्त सुशोभित करते रहे।

विश्व शांति स्थापनार्थ पंचशील सिद्धान्तों के निर्माता थे। चीन के साथ हुए पंचशील सिद्धांतों के आधार पर मित्रता, इसका प्रथम उदाहरण बना। चीन द्वारा विश्वासघात कर सन् 1962 के आक्रमण में पराजित भारत की वेदना नेहरू जी झेल न सके। 27 मई 1964 को आपका देहांत हो गया।

पण्डित जी ने व्यस्त राजनीतिक जीवन में जो साहित्य-सेवा की, वह भी कभी भुलाई नहीं जा सकती। 'मेरी कहानी' आपका सर्वोत्तम तथा सर्वप्रिय ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त 'भारत की कहानी', 'पिता के पुत्र पुत्री को' तथा 'विश्व-इतिहास की झलक' आपकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। ये सारे ग्रन्थ आपने कारावास की कोठरियों में बैठकर लिखे थे। इस कारण इनका महत्त्व और भी बढ़ जाता है।